ॐ

❀ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ❀

रामस्नेहिदासजी विरचितम्

श्रीजानकी-चरितामृतम्

भाषाटीका-सहितम्
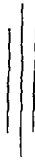
प्रकाशिका:-

प्रातः स्मरणीय अनन्त श्रीविभूषित विश्वात्मा महर्षि श्रीकार्तिकेयजी महाराजकी भगवत् साक्षात्कार प्राप्त आदर्शचरिता शिष्या

श्रीमती कमला अम्बाजी

श्रीरामविवाहपञ्चमी, सम्वत् २०१४ विक्रमाब्द

॥ श्रीकरुणानिधये नमः ॥

सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीकी जय

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान—

१—निर्भय-भवन-आनन्दधाम (वटवृक्ष)
गुप्तार पार्क, फैजाबाद।

२—प्रधान विक्रेता श्रीपद्मधर मालवीय—
मालवीय पुस्तककेन्द्र,
न्यू बिल्डिङ्ग अमीनाबाद, लखनऊ।

सर्वसिद्धान्तसार—

बुद्धी होवे इदाकार, हिरदय होवे निर्विकार।
मनमें होवे सद्विचार, इन्द्रिन सो हितकर व्यवहार॥

हे नाथ! आपकी कृपासे, विश्वका कल्याण हो।
सभी कर्त्तव्य परायण हों, परस्पर प्रेम हो॥

प्रथम संस्करण] २६-११-१६४७ [न्यौछावर ११)
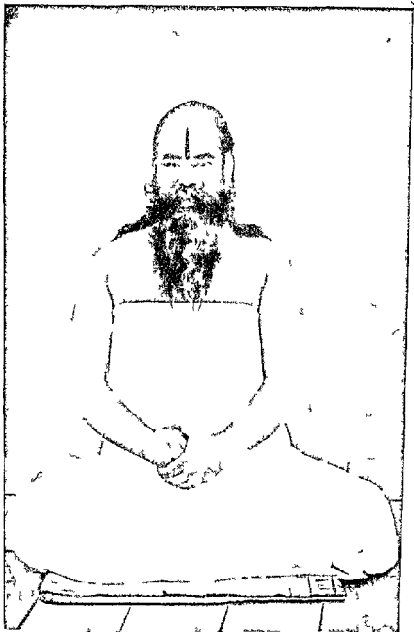
अनन्तश्रीविभूषित महर्षि कार्त्तिकेयजी

ममेष्टदस्य कमलाम्बयेदमकिञ्चनस्य हरिहद्रसन्त्या ।
प्रकाशयित्वा चरितामृतं य सद्ग्रन्थो ददौ तं गुरुमानतोऽस्मि ॥

❁ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❁

❁ प्राक्कथनम् ❁

[महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगोपीनाथ 'कविराज' एम० ऐ० डी० लिट् महोदयस्य]

जनकपुरवासिना श्रीमता रामस्नेहिदासेन विरचितं श्रीजानकीचरितामृताख्यमष्टोत्तरशताध्याय-समृद्धं काव्यमंशतो मया क्वचित् क्वचिदवलोकितम्। अवलोक्य च महतीं प्रसन्नतामवाप्तं मे चेतः। कविरयं रचनाकुशलः त्यागविनयादिदिव्यगुणोपेतः भक्तिमान् लब्धभगवत्कृपश्च महता परिश्रमेण विपुलकायमपि प्रसादविमलं काव्यमिदं निर्माय स्वल्पेनैव कालेन मुद्राप्य च गुणदोषविवेचकानां विदुषां पुरतःविमर्शनार्थं स्थापितवान्, गुणकपक्षपातिनः सन्तः विषयमाहात्म्यानुरोधेन हंसनयेन गुणा-नेवास्य गृह्णीयुः तद्द्वारा मोदं चाप्नुयुरिति। भक्तस्य स्वाभीष्टदेवतायाः चरणेषु भक्त्युपहारनिवेदना-त्मकमिदं, न तु काव्यमात्रमिति मन्यमानोऽहं तद्रूपेणैव महात्मनः श्लाघनीयं प्रयत्नमिममभिनन्द-यामि। सर्वे भगवल्लीलारसिकाः कोविदा इतरेऽपि तल्लीलाकथाशुश्रूषवो जनाः भगवत्याः चरितचित्रणमा-कलय्य मुदिता भविष्यन्तीति मे विश्वासः। काव्यमिदं प्रांजलमपि मूलकारकृतभाषानुवादसाहित्येन प्रकाशितमिति सामान्यतः भक्तसमाजस्य महान् उपकारोऽस्मात् स्यादिति तत्रैवास्य समुचित आदरः भूयान् प्रचारश्च भविष्यतीति संभाव्यते।

इतः परं ग्रन्थकारः श्रीभगवल्लीलारहस्यमपि तत्त्वदृष्ट्या स्वसंप्रदायानुसारतः स्वानुभूतिबलेन यथाशक्ति वर्णयितुं दत्तचित्तो भविष्यतीति दृढमाशासे, प्रार्थये च श्रीभगवन्तमयं तत्कार्यनिर्वाहार्थं स्वस्थदेहेन चिरजीवी भूयादिति शुभम्।

—❁❁❁—

२ए सिगरा,
वाराणसी-
११-१२-१९५७

कविराजोपाह्वः-
श्रीगोपीनाथ शर्मा

॥ श्रीजानकी वल्लभो विजयते ॥
॥ श्रीमते गुणज्ञानन्य शरणाय नमः ॥

★ भूमिका ★

अखिलहेय प्रत्यनीक, स्वाभाविक, अनवधिक, अतिशय, असंख्येय, कल्याणगुणगणार्णव, अचिन्त्य सौन्दर्य माधुर्य सुधासिन्धु श्रीभगवान् की प्राप्ति ही मानवमात्र का चरम लक्ष्य है। वेद कहता है कि 'उस परमात्मा को पाकर ही मृत्यु से मानव पार हो सकता है दूसरा उपाय नहीं है।'

'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' वे प्रभु ही रसरूप हैं, उस रसको पाकर ही जीव पूर्ण आनन्द से युक्त हो सकता है।

'रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।' इत्यादि।

इस परम रस की प्राप्ति के लिए शास्त्रों में कर्म, ज्ञान, भक्ति ये तीन साधन कहे गये हैं श्रीमद्भागवत में स्वयं प्रभु ने कहा है कि मेरी प्राप्ति के लिये ये ही तीन मार्ग हैं अन्य उपाय मानव के लिये है ही नहीं। योगास्त्रयो मया-प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया। ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति देहिनाम्। इन तीनों में एकता होने पर भी आस्वादभेद होने से एक की अपेक्षा एक उत्कृष्ट है अर्थात् कर्म से ज्ञान, ज्ञान से भक्ति उत्कृष्ट है।

मानव के पास तीन सामग्रियाँ प्रधान हैं शरीर बुद्धि, हृदय। शरीर का भोजन कर्म है बुद्धि का भोजन ज्ञान है, किन्तु हृदय का भोजन भक्ति ही है।

श्रीरूप गोस्वामी भक्ति का लक्षण करते हैं—सभी अभिलाषाओं से रहित ज्ञान कर्म के आवरणों से रहित, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर भावों में से किसी एक अनुकूल भाव से भगवान् से प्रेम करना भक्ति है—"सर्वाभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुच्यते।"

भक्ति से विरुद्ध ज्ञान कर्म ही आवरक है भक्ति सम्बन्धी ज्ञान कर्म उपयोगी है, ऐसा टीकाकार जीव गोस्वामी कहते हैं आरम्भ में तो कर्म, ज्ञान, भक्ति तीनों ही साधक के पास रहते हैं किन्तु भजनरस की निष्पत्ति होने पर कर्म ज्ञान में लीन हो जाता है एवं ज्ञान भक्तिरस में विलीन हो जाता है। अन्त में तो बस, रस ही रस रह जाता है इसी लिये गोस्वामी पाद भी कहते हैं कि संयम नियम फूल है, ज्ञान फल है श्रीभगवत्पादारविन्द में रति ही रस है 'संयम नियम फूल-फल ज्ञाना। हरिपद रति रस वेद बखाना॥'

दार्शनिक दृष्टि से विचार करने पर भी अन्त में रस की सिद्धि में ही वेदान्त का पर्यवसान ज्ञात होता है— 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्' इत्यादि श्रुतियों से सत् चित्, आनन्द ब्रह्म का स्वरूप सर्वविदित है। सत् का विकास कर्मयोग से चिद् का विकास ज्ञानयोग से एवं आनन्द का विकास भक्तियोग से समझना चाहिए। सत् चिद् में चिद् आनन्द में समाविष्ट होता है।

आनन्द ब्रह्म के दो भेद हैं एक षडैश्वर्य प्रधान ब्रह्म तथा एक तिरोहित षडैश्वर्य, आह्लादमय प्रधान ब्रह्म प्रथम ब्रह्म श्री राघवेन्द्र हैं आह्लादमय प्रधान ब्रह्म श्री मैथिली हैं यथा सत् चित् आनन्द स्वरूप श्री राघवेन्द्र हैं तथैव सन्धिनी, संवित्, आह्लादिनी स्वरूप श्री मैथिली हैं। सन्धिनी का संवित् का आह्लादिनी में समावेश है। आह्लादिनी सार भी तत्व ही वृत्तिभेद से दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर भेद से चेतनों के हृदय में श्रीजीकी कृपा से प्रकाशित होकर ब्रह्म को आकृष्ट करता है।

चेतनों का स्वरूपत अधिकार केवल चिद् राज्य में है अर्थात् कैवल्य मुक्ति में ही है, आनन्द में अधिकार आह्लादिनी श्रीमैथिली कृपा कटाक्ष से ही सम्भव है।

तत्वतः एक होने पर भी चमत्कार भेद से दास्य से सख्य, सख्य से वात्सल्य, वात्सल्य से मधुररस उत्तरोत्तर उत्कृष्ट है।

मधुर रस का स्थायी भाव 'रति' है जो कि प्रौढ़ दशा में प्राप्त होने पर महाभाव दशा को प्राप्त हो जाती है। तब तो मुक्तगण एवं श्रेष्ठ भक्तगण भी इसकी चाहना करते हैं प्राप्ति तो दुर्लभ है। रूप गोस्वामी कहते हैं।

इयमेव रतिः प्रौढा महाभाव दशा व्रजेत्। या मृग्या स्याद् विमुक्तानां भक्तानाञ्च वरीयसाम्॥

जिस प्रकार बीज से इक्षु (ऊख) दण्ड, क्रमशः रस, गुड़, खाँड, शर्करा, मिश्री, ओलाकन्द तक एक ही रस परिपाक भेद से इतनी अवस्थाएँ प्राप्त करता है, एवं तत्त्वतः एक होने पर भी स्वाद वैचित्री भेद से विभिन्न रूप से आस्वाद्य बनता है उसी प्रकार एक ही रति प्रेम, स्नेह, मान प्रणय, राग, अनुराग, भाव आदि भेदों से अनेक अवस्थाओं को प्राप्त करती है। इनके अवान्तर भेद भी अनेक हैं। यथा:—

बीजमिक्षुः स च रसः स गुडः खण्ड एव सः। स शर्करा सिता सा स्यात्।
स्यादुद्ढेय रतिः प्रेमा मोद्यन्स्नेहः क्रमादयम्।
स्यान्मानः प्रणयो रागोऽनुरागो भाव इत्यपि॥

पुनः महाभाव ही रूढ़, अधिरूढ़, मोहन, मोदन आदि तरङ्गों से तरङ्गित मादन महासागर में आकर अनन्त रस रूप हो जाता है, श्रीप्रियाप्रियतम का अनन्त विहार एक रस इसी मादनाख्य महाभाव में होता रहता है। स्थायी रति की चरम अवधि यही है।

साधारणी, समञ्जसा, समर्था, भेद से रति के और भी तीन भेद हैं क्रमशः मणि, चिन्तामणि, कौस्तुभमणि के सदृश जानना चाहिए। भगवद्दर्शन जन्य सम्भोगेच्छानिदान रति साधारणी कही गई है लोकधर्मापेक्षिता, गुणादिश्रवणोत्पन्ना, भेदित सम्भोगतृष्णा रति समञ्जसा कहलाती है कुलधर्मधैर्य लोक लज्जादि विस्मरण कराने में समर्थ रति को समर्था रति कहते हैं, यह 'रति' एक रस नित्य प्रेयसी में प्रकाशित रहती है।

श्री अवध श्रीलक्ष्मण किलाधीश स्वामी श्री युगलानन्य शरण जी महाराज ने तीनों रति समूह श्री प्रियाजू में स्वीकार किया है, यथा:—

इन सबको आधार नवल निर्णय निज सुनो सुहावन।
साधारणी रति कोउ असमजस रली प्रभावन॥
कोउ दोऊ ते परे परारति सरस समर्था पावन।
युगलानन्य शरणन स्वामिनि सिय सभ्य सकलच्छवि छावन॥

मादनाख्य महाभाव के लिए भी आपने श्री प्रियाजू में ही एक रसता स्वीकार किया है:—

मादन मन फन्दन अनुरञ्जन अञ्जन ने ही निरखो।
भाव कदम्ब जनक सब ही विधि महानेह निधि परखो॥
वामा वचन विलास वस्तु उर परस न लाज परेखो।
युगलानन्य शरन स्वामिनि सिय अन्तर भाव अशेषो॥

इस प्रकार रति से लेकर मादन पर्यन्त समस्त रस स्तरों का रसास्वादन रसिक पाठकगण श्रीरूपगोस्वामी विरचित 'उज्ज्वल नीलमणि' में तथा स्वामी श्री युगलानन्यशरण विरचित 'रसकान्ति' में करेंगे, प्रस्तुत प्रबन्ध केवल संकेत मात्र है। 'श्रीजानकी चरितामृतम्' एक महान् ग्रन्थ है, जिसमें श्रीरामानन्द दायिनी श्रीमैथिलीजू के मधुरमय चारु चरित्रों का वर्णन है। श्रीसीता तत्त्व का विशद विवेचन वेदावतार श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में समीचीन रूप से है। मूल केन्द्र तो मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद ही है—'अस्येशाना जगतः' 'हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्' आदि मन्त्रों से विपुल वैभव का प्रतिपादन है।

रामतापनी श्रुति भी श्रीमैथिली को जगदानन्ददायिनी, सृष्टि स्थिति संहारकारिणी, बतलाती है, 'श्रीराम सान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी, उत्पत्ति स्थिति संहारकारिणी सर्वदेहिनाम्।

श्रुति कहती है 'स्वर्णवर्णा, द्विभुजवाली, सभी अलंकारों से युक्त, चिद्रूपिणी कमलधारिणी श्रीमैथिली के साथ श्री प्रियालिङ्गनजन्य आनन्द से श्रीरघुवेन्द्र राघवेन्द्र सदा ही पुष्ट रहते हैं।

'हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया चिता। श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः (तापनी।)।

श्री पराशरभट्ट कहते हैं—

> उद्घाहुस्त्वामुपनिषदसावाद नैका नियन्त्रीं, श्रीमद्रामायणमपि परं प्राणिति त्वच्चरित्रे।
> स्मर्तारोऽस्मज्जननि! यतमे सेतिहासैः पुराणैर्निन्युर्वेदानपि च ततमे त्वन्महिम्नि प्रमाणम्॥

अर्थात् केवल उपनिषद् ही शपथपूर्वक आपको जगत् की नियन्त्री नहीं कहती है, किन्तु श्रीमद् रामायण भी आपके महान् चरित से उत्कर्षपूर्वक जीवित है, हे मैथिलीजू! स्मृतिकार श्रीपराशर महर्षि प्रभृति भी इतिहास पुराणों समस्त वेदों को आपकी महिमा में प्रमाण मानते हैं।

श्रीवाल्मीकीय रामायण में महर्षि कहते हैं—समस्त श्रीरामायण काव्य श्रीसीताजी का महान् चरित है—'कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्।' श्रीराघवेन्द्र ने भ्राताओं से श्रीरामायण श्रवण के लिए आग्रह किया और ये मुनिवेषधारी, कुशलव जो चरित सुना रहे हैं, वह मेरे जीवन धारण का कारण है तथा महान् प्रभावों से युक्त है—

इमौ मुनी पार्थिवलक्षणान्वितौ कुशीलवौ चैव महातपस्विनौ। ममापि तद्भूतिकरं प्रचक्ष्यते महानुभावं चरितं निबोधत।

श्रीरामजी धीरोदात्त नायक हैं जिसका लक्षण है कि अपनी प्रशंसा न सुनने वाला न कहने वाला, यथा 'कृपावानविकत्थन.' अतः यदि रामचरित प्रधान रामायण होता तो धीरोदात्त नायक श्रीरामजी अपने गुणों के श्रवण के लिए ऐसा आग्रह नहीं करते न तो 'महानुभाव' विशेषण ही देते।

श्रीराघवेन्द्र की अपेक्षा श्रीमैथिली में अधिक करुणा है इसी से पराशर भट्ट ने कहा है कि—हे मातः मैथिली! तामें अपराध करने वाली राक्षसियों को श्रीहनुमान्‌जी से रक्षा करके आपने श्रीराघवेन्द्र की सभा को लघु कर दिया क्योंकि जयन्त एवं विभीषण की रक्षा श्रीरामजीने 'मैं आपका हूँ' इतना कहने पर की और आपने बिना ही प्रार्थना के राक्षसियों की रक्षा की। अतः आपकी करुणा अहैतुकी है वही हम सब आश्रितों के लिये एक मात्र आधार है—

> मातर्मैथिलि? राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया।
> रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता॥
> काक त च विभीषण शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः।
> सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी॥

हे मैथिलि! पिता के सदृश आपके प्रियतम चेतनों के हित की दृष्टि से अपराधों को देखकर कभी कभी खीझ कर रुष्ट होते हैं—तब आप उनकी कोपमुद्रा को देखकर पूछती हैं कि क्या बात है? क्यों इतना रुष्ट हैं! जब प्रभु उत्तर देते हैं कि अपराधी जीवों के अनाचार देखकर मैं रुष्ट हूँ, तब आप व्यङ्ग्य करतीं हैं कि इस जगत् में अपराध रहित कौन है? इस प्रकार उचित उपायों से प्रभु को जीवों के अपराध विस्मरण करा देती हैं अतः आप हमारी माता हैं यथा—

पितेव त्वत्प्रेयान् जननि। परिपूर्णागसि जने हितस्रोतो वृत्त्या भवति च कदाचित् कलुषधीः। किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितैरुपायैर्विस्मार्य—स्वजनयसि माता तदसि नः।

इस प्रकार श्रीमैथिली की कृपा से ही जीव परमानन्द प्राप्त कर सकता है श्रीमैथिली का पुरुषाकार वैभव श्रीरामायण में सर्वविदित है पाठक वहीं देखें।

श्री राघवेन्द्र की मधुर उपासना में कुछ सज्जन सन्देह करते हैं किन्तु सन्देह का अवसर किञ्चित् मात्र नहीं है प्रमाण परतन्त्र महानुभाव गम्भीरतापूर्वक वेदावतार श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण का अध्ययन, मनन करें।

जब वेदवेद्य पुरुषोत्तम चक्रवर्ती कुमार रूप में अवतीर्ण हुए तब वेद भी श्रीरामायण रूप से अवतीर्ण हुआ।

यथा—वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद् रामायणात्मना। वेदार्थ प्रकाशक रामायण को महर्षि ने कुशलव को पढ़ाया। 'वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः' सर्ववेदान्त वेद परात्परतत्त्व श्रीराम तत्व का ही आदि से अन्त तक रामायण में वर्णन है। जब कि वेद ही का अवतार श्रीरामायण है, तब सर्वरस शिरोमणि शृङ्गार रस का रामायण में वर्णन नहीं हो, ऐसी बात हो नहीं सकती। इतना अवश्य है कि जिस प्रकार श्री कृष्णोपासना में विशेषतः गौड़ीय वैष्णवगण ने परकीया में रस स्वीकार किया है, श्रीरामोपासना में श्रीरामायण केवल स्वकीया के साथ ही श्रीराघवेन्द्र का विहार स्वीकार करती है।

श्रीमैथिली के साथ श्रीमिथिला से उनकी अङ्गभूत सखियाँ भी साथ आई थीं ऐसा रामायण में वर्णन है, यथाः— 'अथ राजा विदेहाना ददौ कन्याधनं बहु' पुनः अयोध्या काण्ड में मन्थरा श्री कैकेयी से कहती है कि श्री राम के राज्याभिषेक होने पर श्रीराम की परम स्त्रियाँ प्रसन्न होंगी तथा—श्रीभरत की अवनति होने से तुम्हारी पतोहू-गण अप्रसन्न होंगी।

"हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमा स्त्रियः। अप्रहृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये॥"

समुद्रतट पर श्री राघवेन्द्र अपनी भुजा को शिर के नीचे रख कर शयन कर रहे हैं, उसी समय महर्षि के हृदय में रस की याद आई और श्रीराघवेन्द्र के अन्तःपुर की मधुर स्मृति आ गई वह, सुन लीजिए। कहने लगे कि जो भुजा श्रेष्ठ केयूरहारों एवं मुक्ता आदि के वर विभूषणों से विभूषित परम नारियों की भुजाओं द्वारा अनेक बार अभिमृष्ट थी अर्थात् रसक्रिया द्वारा अभिमर्दित थी, यथा—

"वर काञ्चनकेयूरमुक्ताप्रवरभूषणैः। भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा।"

यहाँ परम नारियों की भुजायें अनेकों विभूषणों से विभूषित कही गई हैं वे परम नारियाँ भोग पत्नियाँ हैं। इसी तरह श्रीमैथिली ने भी सन्देश में कहा है कि 'पिता की आज्ञापालन करके वन से लौट कर विशाल नेत्र वाली नायिकाओं के साथ आप रमण करेंगे।

पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा वनान्निवृत्तश्चरितव्रतश्च।
स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिस्त्वं रंस्यसे वीतभयः कृतार्थः॥

—वा० रा० सु० का०

उत्तरकाण्ड अशोक वाटिका विहार प्रसंग में तो अत्यन्त स्पष्ट है कि श्रीराघवेन्द्र ने मनोऽभिरामा रामाओं के साथ रमण किया।

मनोऽभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः। रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः॥"

—उ० का०

इस प्रकार समस्त रामायण में मधुररस की अजस्रधारा बहती है कृपाभाजन जन तो सदा इस रस का पान कर सन्तृप्त रहते हैं। विशेष जिज्ञासा के लिए 'सुन्दर-मणि सन्दर्भ, श्रीरामतत्व प्रकाश' श्रीजानकीगीत आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

'श्रीजानकी चरितामृतम्' के रचयिता महात्मा श्रीराम सनेहीदास जी हैं किन्तु महान् आश्चर्य का विषय है कि रचयिता न तो व्याकरण के ज्ञाता हैं न तो साहित्य, अलंकारों के ज्ञाता हैं, श्रीजनकपुर धाम में श्री राजकिशोरीजी का महल में आप नित्य सेवा में बड़ी श्रद्धा से संलग्न रहते थे, अब तक इनका जीवन सेवा में ही व्यतीत होता है श्री महल की सेवा से हृदय निर्मल हुआ तथा भाव रस ऐसा परिपूर्ण हुआ कि कविता सरिता यह चली जिसमें अवगाहन कर सहस्रों प्रेमीजन कृतार्थ होंगे, साधना भक्ति से सिद्धा भक्ति अर्थात् भाव भक्ति में प्रविष्ट होने पर नित्य लीला का विकास होने लगता है। स्वयं भगवान् कपिल ने माता देवहूति से कहा है कि—

'पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति॥'

अर्थात् हे मातः ! वे सन्त मेरे अरुण नेत्र युक्त वरदायक प्रसन्न मुख कमल का दर्शन करते हैं तथा मेरे साथ बातें करते हैं। यहाँ ध्यान में बातें भी सन्त करते हैं यह कपिलजी का कथन है।

अत: श्रीरामसनेहीदासजी की इस रचना से यह सिद्ध है कि श्रीजी की कृपा से ही यह अनुपम ग्रन्थ का निर्माण हुआ है।

क्योंकि केवल थोड़ी हिन्दी लिखने पढ़ने योग्य ये सन्त हैं १०८ अध्यायों का इतना विशाल ग्रथ का निर्माण करना तो सर्वथा असम्भव है। इसीलिये तो श्रुति कहती है कि—

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम् ॥'

अर्थात् यह परमात्मा श्रवण, मनन निदिध्यासन एवं प्रवचन आदि से नहीं मिलता है किन्तु जिसको प्रभु स्वीकार कर लें उसी को प्राप्त होते हैं तथा उस उपासक के समक्ष अपना समग्र स्वरूप प्रकट कर देते हैं।

वे पञ्चस्तवीकार कहते हैं कि न्याय आदि दर्शन, वेदार्थ प्रकाशक इतिहास, पुराण आदि द्वारा जो आपकी भक्ति से पुनीत हृदय वाले भक्त हैं उनको वेदों का अर्थ इतना स्पष्ट दीखता है जो दोपहर के सूर्य के प्रकाश में सभी घट पट आदि पदार्थों को लोग देखते हैं। जो लोग आपकी भक्ति से हीन हैं उनको षड् दर्शन एवं इतिहास पुराण आदि से भी यथार्थ बोध नहीं होता है क्योंकि जिनके नेत्र में दोष होता है उनको सूर्य के प्रकाश में भी शंख श्वेत नहीं दीखता है। यथा :—

न्यायस्मृतिप्रभृतिभिर्भवता निसृष्टैर्वेदोपबृंहणविधावुचितैरुपायैः।
श्रुत्यर्थमर्थमिव भानुकरैर्विभेजुस्त्वद्भक्तिभावितविकल्मषशेमुषीकाः ॥
ये तु त्वदङ्घ्रिसरसीरुहभक्तिहीनास्तेषाममीभिरपि नैव यथार्थबोधः।
पित्तघ्नमञ्जनमनायुषि जातु नेत्रे नैव प्रभाभिरपि शङ्खसितत्व बुद्धिः ॥

स्वामी रामानुजाचार्य ने भी अपने श्रीभाष्य में कहा है कि जो लोग भक्ति से विमुख हैं तथा तरह तरह के कुतर्क द्वारा अनन्त कल्याण गुण प्रभु को गुणहीन, एवं विग्रहहीन बतलाते हैं उनका मत आदर के योग्य नहीं है।

'तदिदमौपनिषद परमपुरुष वरणीयताहेतुगुणविशेषविरहिणामनादिपापवासनादूषिताशेषशेमुषीकाणाम् ' ' याथात्म्यविद्भिरनादरणीयम् ' (श्रीभाष्य)।

श्रीसीताराम जी का चरित अनन्त है 'चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्' अत कोई भी विवेकी भगवच्चरित के विषय में ऐसा संशय नहीं कर सकता है कि अमुक चरित में क्या प्रमाण है! 'नाना भाँति राम अवतारा। रामायण शत कोटि अपारा ॥' स्थूल विचार से देखने पर भी यह प्रतीत होता है कि श्रीसीतारामजी ने ११ हजार वर्ष तक इस लीलाभूमि में विराजमान होकर महामधुर लीलायें की। तो क्या ! श्री वाल्मीकीय रामायण आदि २०-२५ रामायणों में जो वर्णित चरित हैं उतना ही चरित सरकार ने किया ! श्रीरामचरितमानस मे अथवा वाल्मीकीय रामायण में केवल संकेत मात्र है, भक्तगण ध्यान से विशेष चरितों का दर्शन करें, प्रस्तुत ग्रन्थ में केवल उन्हीं श्रृङ्गारिक भावों का वर्णन है! जो सर्वथा अलौकिक एवं दिव्यधाम की लीलाओं से ही सम्बन्ध रखते हैं!! अतएव उनमें हम मनुष्यों के लिये परमावश्यक मानव धर्मशास्त्रों के आनुकूल्य, प्रातिकूल्य के अनुसन्धानों की बात नहीं उठनी चाहिये !!! वे घटनायें भवाटवी में भटकनेवाले दुर्बल बुद्धि वालों के लिये ग्रन्थ में समाविष्ट नहीं हैं, किन्तु सांसारिक मिथ्यात्व की सर्वावस्था में सुदृढ़ संस्कार वाले रामलीला वर्णन कुशल भगवद्भक्ति रसामृत सिन्धु स्वान्त शुकादि सदृश वीतराग सन्त शिरोमणियों के ही मनन योग्य हैं!

फिर भी मास नवाहादि पारायण परायण सर्वसाधारण श्रद्धालु भक्तवृन्दों की बुद्धि, कुतर्कादि का शिकार न हो जाय एतदर्थ २१ अध्याय से २२ अध्याय तक 'जीवा श्रुति कृपा' आदि सखियों की रूपकपूर्ण लीलाओं का वर्णन किया गया है, जिसमें स्पष्ट है कि 'विरजा' के दक्षिण तट जो भवाटवीमय है उसमें ईश्वराश जीव की दुर्दशा अवश्यम्भावी है, अत सेवासक्त योगीन्द्रजन दूरङ्गता सखियाँ इधर भूल कर भी नहीं आती हैं! हाँ उपास्यदेव की उपासना प्रसङ्ग से उन योगीश्वरियों की दृष्टि में अगम्यता अकर्त्तव्यतादि पाश का निःसन्देह ही कोई मूल्याङ्कन नहीं है!

इत्यादि अर्थ का समझाते हुए 'श्री कनकभवनीय लीलाओं' का प्रकृत ग्रन्थ में वर्णन है।

भवाटवी के गहकूप में आयुर्बल रूपी तृणपुञ्ज के सहारे त्रिविध कर्मरूपी विशाल पर्वताक्रान्ता कामक्रोधादि हिंस्रजन्तु तस्करादि त्रासपूर्ण रोगशोक चिन्ताव्याकुला 'जीव सखी' के परित्राणार्थ आचार्यरूपा 'कृपा सखी' से प्रेरित श्रुतिवाक्यरूपा 'श्रुतिरूपा सखी' के द्वारा 'ज्ञान, कर्म्म, उपासना' रूपक त्रिविध राजमार्ग एवं उसकी नानाशाखा प्रशाखाओं के संकेत आदि दिखाकर अन्त में उद्धार का प्रसङ्ग अत्यन्त गम्भीर मननीय है जिसका अधिक वर्णन 'भूमिका' में समुचित नहीं इसके लिए ग्रंथ ही श्री जनकराज किशोरी जी की अकारण करुणा से संसार तापाकुल प्राणियों के कल्याण और भक्तों के स्वान्त सुख के लिये सामने आ चुका ही है।

श्रीराम युधिष्ठिरादि सदृश सन्तति रत्नों के उत्पादन द्वारा विश्व कल्याण के लिए अत्यावश्यक श्री पातिव्रत्य सतीत्व युत मातृत्व उसकी शिक्षा अपने आदर्श चरित्र से मातृ (नारी) जाति को देने के लिये मीमांसा कर्मकाण्डमय रजःकणाकुला मिथिल मही से समुत्तीर्ण करुणावरुणालया जगन्माता सीता के मर्यादापूर्ण चरित्र से ही तो सम्पूर्ण काव्य भरा पड़ा है।

प्रधानतया उनके पतितपावनत्व, करुणामयत्व आदि दिव्य गुण भी अनेक प्रसङ्ग से चरित्र में दिखलाये गये हैं। 'मिथिला भूमि', 'कमला नदी' आदि के स्तोत्र 'श्रीजानकी सहस्र नाम' 'विश्वगाम्य लीला' 'वरदान से पहले ही श्रीपार्वती (गिरिजा) जी द्वारा जानकी स्तुति, लक्ष्मण परशुराम का वीर रस संवाद' 'सनकादिकों का मनोरथ, स्तुति, उच्छिष्ट प्रार्थना', 'अयोध्या यात्रा के अवसर पर चरित नायिका को पातिव्रत्य की शिक्षा' आदि प्रसङ्ग में श्रौतस्मार्त्तमर्यादा के सार्वाङ्गिक संरक्षणपूर्वक जो सरस वर्णन करके कवि ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है उसके चित्रण के लिये ग्रंथ ही लिख डालने की आवश्यकता प्रतीत होती है भूमिका में तो मैं पाठकों के सामने इतनी ही चर्चा करके विश्राम करना आवश्यक समझता हूँ! सिता (मिसरी) के माधुर्य ज्ञान के लिये उसका आस्वाद ही आवश्यक है इसी तरह इस काव्य रसास्वाद के लिये काव्यावगाहन को ही आवश्यक समझ कर पाठकों से ग्रन्थावगाहन की प्रार्थना करते हैं।

इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य

जागतिक सम्बन्ध को बन्धनकारक और नित्य (परात्पर ब्रह्म श्रीसीतारामजी के) सम्बन्ध को मोक्षप्रद बतलाकर उनकी विविध प्रकार की लोकोत्तरीय (श्रीसाकेतधामीय) अति सरस लीलाओं के पुनः पुनः वर्णन के द्वारा मुमुक्षु साधकों को लौकिक तुच्छ, क्षणभंगुर, अहितकर, शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्धादि की विषयासक्ति से हटाकर श्रीयुगल रूप में तन्मयता प्रदान करना तथा विविध प्रकार के चरितों के द्वारा श्रीजनकराजकिशोरीजू के अनुपम दया, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य, औदार्य तथा अचिन्त्य शक्ति, ऐश्वर्य एवं अद्भुत भक्ताशेषभारपूरकत्वादि गुणों की पराकाष्ठा का वर्णन करके, समस्त प्राणियों को उनके श्रीचरण कमलों में लगाना है। अस्तु —

'राम भगति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥

इस ग्रन्थ में चार संवाद हैं—याज्ञवल्क्य कात्यायनी, सूत शौनक, शिव पार्वती, स्नेहपरा श्रीरामजी। श्रीराज किशोरीजी के जन्म से विवाह पर्यन्त लीलाओं का विशद वर्णन है। १०८ अध्यायों में यह ग्रंथ विस्तृत है अन्तिम अध्याय में विषय सूची भी है। श्रीमैथिलीजू के मधुर चरित के रसास्वादन करने वाले पाठकगण को यदि इस लेख से कुछ भी सन्तोष हुआ तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

आचार्य पीठ श्रीलक्ष्मण किला
श्रीअयोध्याधाम
१-१२-५७

भक्तानामनुचर'
पं० सीतारामशरण व्यास

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

अस्मिन् ग्रन्थे पूज्यपादानां विदुषां सम्मतयः

[श्री १००८ जगद्गुरु भगवद्रामानुजाचार्य्य-काशीपीठाधीश-स्वामी श्रीदेवनायकाचार्य्यवर्य्य की सम्मति]

"श्रीजानकी चरितामृतम्" नाम प्रसाद गुणयुतं भक्तिरसाप्लुतं भव्यं नव्यं काव्यं स्थालीपुलाक न्यायेन कतिपयस्थलेष्वन्वभावि।

काव्यस्यास्य रचयिता जनकपुरधामनिवासी महात्मा श्रीरामवल्लभाशरण महाभागः। शास्त्राभ्यसनाव्यसनिनाऽपि महात्मनोपासनासामर्थ्येन काव्यमेतद्व्यरचीति श्रुतम्।

परस्मिन्नेव श्रीजानकीविवाह पञ्चमी दिवसे प्रकाशनमुपादाय स्थिता प्रहीष्यत इति सद्योऽर्धैवाभिप्रायलिपिर्देयेत्यनुरोधमनुसृत्य किञ्चिदुपन्यस्यते।

मन्ये काव्यस्यास्य प्रेमभावाभिज्ञाने सम्यगुपयोगः स्यात्। भगवत्याः श्रीमज्जनकनन्दिन्या अनुपमवपुषैव प्रकाशनमनेन सम्पाद्यते।

सूतोक्तित आरभ्य श्रीकात्यायनीयाज्ञवल्क्यसंवाद रूपेण वर्णनमुपक्रान्तं, मध्ये बहुविधसंवाद घटितम्, अष्टोत्तरशता (१०८) ध्यायैः समापितम्।

प्रमाणतन्त्राणां शिष्टानां काव्यभूतान्वेषणपरा सहजा मनोवृत्तिरिहापि नूनमुदेष्यतीति तत्र स्पष्टमनुक्त्वा मुधा तेषां क्लेशहेतवो मा भूम इति तद्विषये स्फुटं ब्रूमो यत्-आंशिकप्रमाणदर्शनेऽपि प्रकृत-काव्यस्य सर्वांशे मूलभूतं किमपि स्मृतीतिहासपुराणादिकं प्रामाणिकमम्मतं केनापि नोपन्यस्तम्।

अथाप्यस्मिन् श्रीसीतारामगुणग्रामवर्णनसम्बन्धः, रूपगुणादिनी वर्णनसरणिरित्येवमादयो गुणाः श्लाघनीयाः सन्ति।

एतस्य परिशीलनेन श्रीसीतारामचरणसरोरुहभक्तयङ्कुरं चेतनानां मनस्युदियादिति मङ्गलमाशास्महे।

विशेषत एतावद्विशालग्रन्थ सम्पादनैकाग्रतां शास्त्राभ्यासमन्तरापि भगवच्चरणावलम्बनमलरूपरचनापाटवञ्च महात्मनामभिनन्दामः।

विदुषामन्तरङ्गपरीक्षायां के के गुणा दोषा वा तैरनुभविष्यन्त इति त एवात्र प्रमाणम्।

मार्ग शुक्ल ४ सं० २०१४
२५।११।५७
'राजमन्दिर-वाराणसी'

श्रीदेवनायक आचार्यः

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

न्याय, वेदान्त, मीमांसा, व्याकरणाचार्य वैष्णवकुलभूषण पूज्यपाद १०८ श्रीवेदान्तीजी महाराज, श्रीअयोध्याजीकी सम्मति

अखिल ब्रह्माण्डाधिष्ठात्र्याः जगदुद्भवादिकर्त्र्याः आदिशक्त्याः श्रीसीतायाः मधुरातिमधुरलीलां प्रकाशयितुं श्रीकिशोरीजू कृपावलम्बिना श्रीरामसनेहीदासेन कृतः परिश्रमोऽ तीव प्रशस्तः-ग्रन्थेन 'श्रीजानकी-चरितामृतेन' शुभप्रकटलीलाविधानं सुगमेन परिज्ञातं भविष्यतीति निश्चिनुमः-इतिहास पुराणोपनिषदादीनां सारं समुद्धृत्य तथा भावुकानां भावं संकलय्य अधुना महती आवश्यकता प्रपूरिता ग्रन्थप्रकाशनेन, सम्भाव्यते यत् अयं ग्रन्थः भावुकानामामोदाय चिरं स्थास्यति, ।

आशास्महे, वयं वेदान्तिनः-

२८-११-५७

श्रीजानकीघट्टनिवासिनः

रामपदार्थदासाः ।

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

अनेकशास्त्रविशेषज्ञ-प्रकृष्टोपदेशक-परमशान्त-लोकप्रिय-पं० श्री १०८ अखिलेश्वरदासजी महाराजकी सम्मति

श्रीजनकपुरधाम निवासिना श्रीरामसनेहिदासेन प्रकाशितं गीतम्, इदं 'श्रीजानकी-चरितामृतम्' श्रीसीतारामतत्त्वजिज्ञासूनां कृते महदुपकारकं भविष्यतीति निश्चितम्, यतोऽत्र काव्ये जगदुदय-पालनादिविभवत्याः श्रीमत्याः श्रीजनकजायाश्चरित्रमन्यत्र विशदतयानुपलभ्यमानं वैशद्येन काव्य-निर्मात्रा वर्णितम् । श्रीसीतायाश्चरित्रं यद्वाल्मीकीयरामायणादिषु ऐतिह्यादि प्रमाणैश्च परोक्षमापया वर्णितं तदेवात्रापरोक्षतयाऽदर्शि, ततश्च समेषां समाधिकाल्पबुद्धीनां कृते महदुपकारः कृत इति मन्ये एवमस्य काव्यस्य भाषाऽपि सुष्ठुतरा वर्तते भाषाटीकापि मूललेखकेनैव कृता, महत्काव्यमिदं भूयात् सर्वेषां शुभकृत्सदा ।

इत्यहमाशासे,

पं० अखिलेश्वरदासः

श्रीरामकुञ्ज-रामघाट, अयोध्याजी ।

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

लक्ष्मीपुर पी० एन्० एम्० संस्कृत महाविद्यालयीय प्राचार्य्य पं० श्रीमुनीन्द्रझा महानुभावकी सम्मति

१–खड़का ग्रामनिवासी तनयो झोपारव्य सुन्दरस्याहम् ।
लक्ष्मीपुरस्य दैवी-भाषाविद्यालये महति ।

२–प्राचार्यो विनियुक्तो मुनीन्द्रशर्म्माऽवलोक्य सत्काव्यम् ।
रामस्नेहि-विरचितम् प्रसादि-परमप्रसन्नधीरस्मि ।

३–*श्रीजानकी-चरितामृतं निपीयशान्ततरात्मना नूनम् ।*
धीमन्तोऽमृतमीयुः सन्तः स्वान्तः सुखायैव ।

पं० श्रीमुनीन्द्र (झा) शर्मा प्राचार्य्यः
लक्ष्मीपुर पी० एन्० एम्० महाविद्यालय-बौंसी,
पो० बौंसी, भागलपुर ।

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

शाब्दिकालङ्कारिक-प्रवर-कविवर-जनकपुरस्थराजकीय-संस्कृत-महाविद्यालय, साहित्य-प्राध्यापक-पं० श्रीजीवनाथझा शर्मणां सम्मतिः

सीतारामसेवनासादितसाधुशेमुषीचय,-सद्भावमार्थकीकृतसकललक्षण,-वैष्णवकुलावतंस,-परमहंस, निर्वेदव्यपगतविलास,-श्रीरामस्नेहिदासविरचितं जगज्जननी जानकी बालचरित चित्तं भविक-भक्ति भावभूतं 'श्रीजानकी-चरितामृतं' निरीक्ष्य परीक्ष्य च स्थालीपुलाकन्यायं निर्मायं समासाद्य प्रसाद्यमान-मानसतया मद्दत्तराकारतया तूर्णं परिपूर्णं नितरां प्रसीदामितराम्, इति सप्रीति वदति ।

जनकपुरतः
सं० २०१४ गोपाष्टम्याम्

मैथिलीचरणसेवनकर्मा,
जीवनाथ झा शर्मा,

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

उत्तरप्रदेशीय 'देवरिया' मण्डलान्तर्गत 'थूँ आटीकर' ग्रामनिवासि-काशी-स्थार्जुनदर्शनानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय पदार्थविज्ञान-प्राध्यापक पं० श्रीगोमतीप्रसाद मिश्र व्याकरण-विशिष्टाचार्य-न्यायसाहित्यशास्त्रि-बी० आई० एम०एस० आयुर्वेदाचार्य्य महोदयानां-सम्मतिः

आसीदिदं भारतवर्षं लोकगुरुस्तत्रापमेव विशेष आसीद्यदार्यावर्त्तनिवासिनोऽलोलुपाः कुम्भीधान्याः षडङ्गवेदज्ञानरता उभयलोकतत्त्वज्ञानवन्तः कृतमन्त्रसाक्षात्कारा लोकोपकाररता ब्राह्मणा आसन्।

तस्मिन् काले व्यास वाल्मीकि कालिदास प्रभृतिभिः रामादिवत्प्रवर्त्तितव्यं न रावणादिवदिति लोकोपकारदृष्ट्या स्वान्तःसुखाय चानेके महाकाव्यग्रन्थाः सुलिख्यामरत्वङ्गताः।

इदानीमुदरम्भरित्वाकुले कलिकाले कस्यचिदपि महाकाव्यस्य रचना कीदृशी दुरूहेति सुस्पष्टमेवास्ति।

त्यागमूर्त्तिना निवृत्तवर्येण श्रीरामस्नेहिदासमहोदयेन श्रुतिसुखदं मनोहारि भक्तिपूर्णमुभयलोकसुखजनकं स्वर्गसोपानभूतं 'श्रीजानकीचरितामृत' नामकं महाकाव्यं विलिख्य लोकस्य सुमहानुपकारः कृतः।

मन्ये, सर्वान्तर्वासिन्याः पराशक्तेर्जगज्जनन्याः मिथिलामहीप्रसूतायाः ईदृशं शोभनं वर्णनमन्यत्र न क्वापि सुलभम्।

किञ्च विश्वकल्याणमातृभूमिसेवाभावनाप्रचारप्रसारमये वर्त्तमानसमये रामयुधिष्ठिरादितुल्यसन्ततिरत्नोत्पादनद्वारा विश्वकल्याणसम्पादननिदानं यत् पातिव्रत्यसतीत्वयुतमातृत्वं तस्यानुपमत्यागतपस्यापूर्णश्रुतिसम्मतस्वाचारैर्नारीः शिक्षयितुमवतीर्णाया रामाभिन्नाया भगवत्या जगन्मातुर्मैथिल्या अपि मातृभूमितया विश्वेषां प्राणिनां मातृभूमिभूतायाः,सेवकानां स्मारकानाञ्च पुरुषार्थचतुष्टयसम्पादिकायाः जनकयाज्ञवल्क्यादि-जीवन्मुक्तजनप्रसविन्याः सर्वेषु सुखावहायाः रत्नगर्भाया मिथिलाऽवनेः सरस सरल-ललितभाषया सुविशदवर्णनञ्चैतद्ग्रन्थरत्नस्य विशेषोपकृतिसम्पादकं सुमहद्वैशिष्ट्य सम्पन्नञ्चास्ति।

एतद्ग्रन्थपरिशीलकानां हृदये परमकल्याणकरो मिथिलामैथिल्योर्गाढतमो भक्तिभावो नूनमेवोदेष्यतीति सम्भावयामि।

आशासे च गुणग्राहका विद्वांसो भक्तिपूर्णस्यैतस्य महाग्रन्थस्य समादरं करिष्यन्ति।

प्रार्थये, चाकिञ्चनप्रियौ भगवन्तौ 'श्रीसीतारामौ' यदयं महाग्रन्थोऽकिञ्चनस्यास्य लेखकस्य श्रीरामस्नेहिदासस्य स्वान्तःसुखाय लोकोपकाराय च भूयादिति।।शुभम्।।

गोमतीप्रसाद मिश्रः

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

श्री १००८ वेदोपनिषद् भाष्यकाराणां सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणा-मखिलवादिविजयिनां पण्डितराज स्वामि-श्रीभगवदाचार्य्यवर्य्याणां सम्मतिः—

श्रीजानकीचरितामृतस्य केचिदंशा मया बहोः कालात्पूर्वमवलोकिताः। मन्ये तत्साम्प्रतिकानां रसिकोपासनापरायणानामुज्जीरयिष्यतीति।

अहमदाबाद ७ }
९-१२-५७ }

———❀❀❀———

भगवदाचार्य्यः

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

साहित्याचार्य्य, विद्याभूषण, विद्वच्छिरोमणि, प्रबलगोरखा-दक्षिणबाहु, कविवर पं० श्रीकुलचन्द्रगोतम-महोदयानां सम्मतिः।

———❀❀❀———

(१) बहिरन्तश्च नितान्तं सुन्दरमेतद्धि नूतनं पुस्तम्।
मस्तकचार्य्यं विदुषा रत्नोपममेव मन्येऽहम्॥

(२) पदपद्मपूजकानां कवीन्द्रता शाश्वतीं ददतीम्।
जगदर्चनीयचरणां विदेहजां मातरं वन्दे॥

(३) गुणगणपूर्णा रचना वचनानां माधुरी रुचिरा।
मनुजस्य जगत्यखिले नाऽकृतपुण्यस्य गोचरी भवति॥

(४) अविगीतकल्पनायाः साम्राज्यं भाव्यमालोच्य।
के वा ! सचेतसः स्युर्न विस्मयोत्फुल्लमानसाः सुधियः॥

(५) आदरणीया निपुणैर्भावाभिव्यक्तिरस्त्युच्चा।
सहृदयसमाजमखिलां भाषा नीराजितं कुरुते॥

(६) एतद्गुणप्रशंसा चिकीर्षुरपि लेखनीं स्वीयाम्।
अप्यैव पूर्णतमया न प्रभवाम्यग्रतो नेतुम्॥

(७) मातुर्विदेहजायाः कीर्तिमालोचयन् मधुरम् ।
सुकृतातिरेकलभ्यं दृष्टेः साफल्यमाकलये ॥

(८) दोषाननुपेक्ष्य कांश्चिद् गुणबाहुल्यं समालोक्य ।
प्राधान्येन विधत्ते व्यपदेशं वस्तुतत्त्वज्ञः ॥

(९) अथ मुनेर्वाल्मीकेः सत्यगिरः सर्वपूज्यस्य ।
प्रतिकूलकल्पनायां न लेखनी मे पुरः स्फुरति ॥

(१०) एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ।
इति वाल्मीकिवागाह जगतीत्रयपूजिता ॥

(११) सर्वा शृङ्गारसामग्री रासनर्तनशालिनः ।
श्रीकृष्णचन्द्रस्य कृते यथा शक्त्युपयोज्यताम् ॥

(१२) धृत्वा सनातनं धर्मं वर्तमानाः सचेतसः ।
इमं प्रबन्धमालोक्य किं किं ब्रूयुर्न वेद्मि तत् ॥

(१३) इत्यनल्पेन जल्पेन निरुद्ध्य मतिर्यं निजम् ।
निरीक्ष्यः सौम्यया दृष्ट्या समालोचयिता जनः ॥

(१४) समयाऽपव्ययमफलं परिहर्तुं ते प्रभूतकार्यस्य ।
सीतारामसनेहिन् ! कविवर ! विश्रान्तिमिच्छामि ॥

श्रीरामघाट,
वाराणसी-

१२-१२-५७

भवदीयः-
कुलचन्द्रगौतमः

❀ सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीकी जय ❀

डा० श्रीमङ्गलदेव शास्त्री M A D. Phil-(oxon) रिटायर्ड प्रिन्सिपल (गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस) महोदयकी सम्मति :-

जनकपुर-निवासी भक्तप्रवर श्रीरामसनेहीदासकी अद्भुतकृति "श्रीजानकी चरितामृत" नामक काव्यको मैंने अंशतः यत्र-तत्र देखा। साथ ही उसके निर्माणकी आश्चर्यप्रद कथा भी ग्रन्थकर्ताके मुखसे सुनी, बड़ी प्रसन्नता हुई। भक्ति-भावनासे आप्लुत प्रसाद गुण-युक्त यह काव्य निश्चय ही विद्वानों को आह्लादित करेगा। भक्तोंको तो इसमें आनन्द-रसका दिव्यप्रवाह अनुभव गम्य होगा। अपने इष्टदेवताके प्रति इस पवित्र रमणीय उपहारको सफलतापूर्वक उपस्थित करने के लिए मैं हृदयसे ग्रन्थकर्ताका अभिनन्दन करता हूँ।

पूर्ण आशा है कि इस ग्रन्थका जनतामें प्रचार और प्रसार होगा।

इङ्गलिशियालाइन
बनारस कैण्ट।
१६-१२-१९५७

—❀❀❀— श्रीमङ्गलदेव शास्त्री,

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

उत्तर प्रदेशीय माध्यमिक विद्यालय-संस्कृत शिक्षक संघ प्रधान मन्त्रि-श्रीरामबालक शास्त्रिणां महोदयानां सम्मति :-

साधुशिरोमणिना श्रीरामस्नेहिदासेन विरचितं श्रीजानकी-चरितामृतं हिन्दीभाषया सटीकं महाकाव्यं महाकायं विलोक्य चेतसि महान् आनन्दसन्दोहः समजनि। प्रसादगुणगुम्फितं प्रौढबन्ध सम्बद्धं समपेक्षितालङ्कारभूषितं भक्तिरसप्रधानं काव्यमेतत् असत्सम्बन्धं निरस्य सत्सम्बन्धे सन्निवेश्य दिव्यधाम प्रापयेत् काव्यरसिकमिति स्पष्ट प्रतीयते। बहोः कालात्प्राक् किमपि काव्यमेता दृशं संस्कृतभाषायां न प्रकाशतां गतमिति मे विचारः। अस्य ग्रन्थस्य प्रणेता प्रकाशकश्च संस्कृत-संसारस्य धन्यवादार्हाविति शुभाशंसानः कामयतेऽस्य प्रचुर प्रचारम्।

रामापुरा वाराणसी।
१६-१२-५७

—❀❀❀— रामबालकः

Padmabhushan, Knight Commander, Darshanacharya
Dr. B. L Atreya, M. A., D. Litt.,
Research Director, Indian Society for Psychic and Yogic Research.

I have had the pleasure of glancing through Mahatma Ram Sanehi Dasa's *Shri Janaki-Charitamritam* and the privilege of hearing from him the story of how this great work has been composed and published. I have been amazed at the miraculous way in which everything has been done in this connection.

The work is really an inspired one and I am sure it will rank as one of very valuable works of the cult of the worshippers of Shri Rama. It reveals many aspects of the life of Sri Janakiji which were not known outside the esoteric circle of the cult. The author is a vary humble devotee of sri Janakiji and Claims to have got all that he has given to the world through inspiration. The language of the work is simple and sweet Sanskrit which has been translated in to Hindi by the author himself I am quite sure everybody who reads it will appreciate it

B. L. Atreya.

Atreya-niwas,
Varanasi 5.
Dec. 2, 1957

श्री १००८ परिव्राजकाचार्य स्वामि श्रीकरपात्रीजी महाराज की सम्मतिः—

श्रीजानकी पराम्बा विजयते

भजनानन्दमनोहरमसृणमतिना महात्मना श्रीरामसनेहिदासमहाशयेन सदृब्धं श्रीजानकीचरितामृतं नाम कमनीयं काव्यमिदं दक्षिणानिलसञ्चार इव कस्य मनो न प्रसादयेद्, वसन्तश्रीसौरभमिवकं सहृदयहृदयं नावर्जयेत्, कस्मिन् वा रसास्वादधुरामारूढे शान्ते स्वान्ते सिन्धाविव शरद्राकासुधांशुमरीचिनिचयः परमाह्लादतरङ्गभङ्गान् नोद्वेलयेत् ।

पराशक्तिपरिवस्यासाक्षात्कृत लीलाकल्लोलसमुत्तुङ्गितेऽष्टाशताध्यायीपरिकलिते निर्मलचित्सुधासरोवरेऽस्मिन् महाकाव्ये क्व मधुरा लीलाविस्तराः क्व प्रमाणसोपानपरम्परोपढौकनं, क्व पराम्बाविलासरसास्वादपारवश्यं क्व काव्यपाटवोद्घाटन परीक्षणविलसितानाम् ।

अत्र मधुराः सरसाः सहृदयहारिण्यो रुचिराः पेशलाः समास्वाद्यन्तां परेशयोर्लीलाः, समासाद्यन्तां समग्राः पुरुषार्थाः, चरिताध्यन्तां वर्णाश्रमानुसारीणि रमणीयानि जन्मप्रभृतीनि साधनानि ।

काव्यमिदं चित्सुखानन्दमहोदधेः पूर्णतमपरब्रह्मणः श्रीराघवेन्द्रश्रीरामचन्द्रस्य माधुर्यपरमाह्लादसारसर्वस्वस्वरूपायाः श्रीसीतादेव्या महाशक्तेश्चरितामृतानन्दमहोदधिं भवत्पुद्रकाव्यक्रीकृतार्थसार्थ सादरभरं निभाल्य भक्तजनेष्वस्य दैनन्दिनीं विसृमरतां स्यात्सुतां च यावद्भगवतः श्रीमन्नारायणस्य सकौस्तुभवक्षोदर्शनं स्पृहयति ।

श्री १००८ मतां परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्याणाम्, पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणानाम् श्रीकरपात्रि स्वामिनामभिप्रायावेदकः ।

अधिक श्रावण कृष्ण १२
सं० २०१५

मार्कण्डेयः
धर्मसंघ-शिक्षामण्डलम्
दुर्गाकुण्डम्, वाराणसी-५

श्री १०८ दार्शनिक सार्वभौम श्रीस्वामि वासुदेवाचार्यजी महाराज की सम्मतिः—

श्रीरामो जयति

सत्काव्यापेक्षितगुणालङ्कारादिभिरलंकृतं श्रीजानकी-चरितामृताभिधं महाकाव्यं [illegible] व्याकरणसाहित्यछन्दोग्रन्थादिकमनधीत्यापि चिरपरिचितेन श्रीरामस्नेहिदासमहोदयेन विरचितमवलोक्य तपः प्रभावात् कस्याश्चिद्देवताया आकस्मिककृपाकटाक्षाद्वा सर्वमेतत् सम्भवतीति इत्थमिदं, रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः। यच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यतीत्यादिवचनराशिं सत्यापयति। अवस्थायामस्यां प्रामाण्याप्रामाण्यादितर्ककर्कशविचारचातुर्यं परित्यज्यैतत्काव्यरसास्वादान्मनसः प्रसादोऽवश्यं भविष्यतीति निवेदयतोऽप्ययोध्यां दार्शनिकाश्रमे निवसतो वासुदेवाचार्यस्य सम्मतिः।

दार्शनिकाश्रम
अयोध्या

श्रीजानकीनाथ शर्मा सम्पादक—कल्याण "कल्याण प्रेस" गोरखपुर की सम्मतिः—

श्रीजानकीचरितामृतम् की एक प्रति यहाँ यथा समय पहुँच गयी थी। श्रीभाई जी, श्री गोस्वामीजी तथा अन्यान्य सभी सम्पादक बन्धुओं ने उसे ध्यान से देखा है। रचना बड़ी प्रौढ़, प्राञ्जल तथा प्राचीन सी लगती है।

जिन लोगों ने इस ग्रन्थ को प्रकाशमें लाने की दया की, वे सब भी बधाई के पात्र हैं। ग्रन्थ नितान्त उत्तम है। इसके विषय में जो कुछ लिखा जाय, थोड़ा ही होगा। विशेष भगवत् कृपा।

जानकी नाथ शर्मा
सं० क०
कल्याण प्रेस, गोरखपुर।

आचार्य्य चरण–
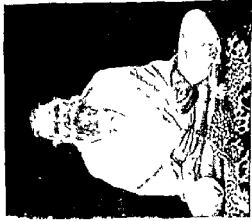
श्री १०८ महान्त श्रीस्वामी हरिनारायण दासजी महाराज श्रीजानकी निवास प्रमोदवन श्रीअयोध्याजी

श्री १०८ महान्त श्रीस्वामी रामपदार्थ दासजी महाराज (वेदान्ती) श्रीजानकी घाट श्रीअयोध्याजी

—* नम्रनिवेदन तथा क्षमा-याचना *—

सर्व प्रथम श्रीअयोध्या प्रमोद वनान्तर्गत श्रीजानकीनिवास-मन्दिराधिपति, सन्त-शिरोमणि, त्यागमूर्ति, श्री १०८ गुरुदेव भगवान् स्वामी श्रीहरिनारायणदासजी महाराजके श्रीचरणकमलोंमें मेरे अनन्तशः साष्टाङ्ग प्रणाम हैं, जिनकी कृपासे ही मुझ पतित पर श्रीयुगल-सरकारकी ऐसी विलक्षण कृपा हुई है, पुनः जिनकी कृपासे श्रीयुगल सरकारके गुप्त रहस्योंका मुझे कुछ परिज्ञान हुआ है, उन विद्वच्छिरोमणि समस्त विरक्तमण्डल-लब्धप्रतिष्ठ श्रीअयोध्याजीके श्रीजानकीघाटस्थित श्रीरामवल्लभा-कुञ्जाधिपति स्वामी १०८ श्रीरामपदारथदासजी महाराज श्रीवेदान्तीजी एवं श्रीजनकपुर धामीय विहारकुण्डके परमसन्तसेवी, निरन्तर श्रीसीतारामनाम-जप-परायण श्री १०८ स्वामी श्रीरामदासजी महाराजको हमारा कोटिशः प्रणाम है।

पुनः अनन्त करुणा-वरुणालया सर्वेश्वरी-भक्तभाव पूरिका-श्रीकिशोरीजीके मङ्गलमय चरणारविन्दमें मेरा कोटिशः प्रणाम है, जिनकी कृपाके लवलेशसे आज यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

श्रीजनकपुर धाम (विदेह नगर) निवासी 'रत्नसागर' के बगिया वाले वीतराग, त्यागमूर्ति परमहंस १००८ श्रीअवधविहारीदासजी महाराजको नमस्कार है जिनकी प्रेरणा तथा प्रोत्साहनसे, साहित्य-व्याकरणानभिज्ञ केवल उर्दूका मिडिल पास-शास्त्रज्ञानशून्य-वेषमात्रका साधु-सब प्रकारसे गया बीता होकर भी सर्वशक्तिमती श्रीकिशोरीजीकी कृपाका ही अवलम्ब लेकर किसी प्रकार उनकी आज्ञाका पालन कर सका हूँ। इसमें मेरी अज्ञता भ्रम-और प्रमाद आदि दोषसे जो कुछ त्रुटियाँ होगयी हों उन्हें वेही क्षमा करने की कृपा करें।

इस ग्रन्थके सभी कार्य (आरम्भ समाप्ति प्रकाशन आदि), शुभ मुहूर्तमें ही सम्पन्न हुए हैं, खास कर ग्रन्थका आरम्भ और उसकी समाप्ति तो श्रीजनकपुर धामके श्रीजानकी-मन्दिरमें ही हुई है।

अतः इस कार्य सम्पादनमें विशेष सहयोग प्रदायक मन्दिरके अधिपति श्री १०८ महान्त श्रीनवल किशोरदासजी महाराज तथा महान्त श्रीरामशरणदासजी, महाराज एवं पुजारी श्रीकमला-शरणजी आदिका मैं विशेष आभारी हूँ।

मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थको सम्पन्न करानेमें कोई अव्यक्त शक्तिका ही अदृश्य पूर्ण सहयोग है, जिसे हम श्रीराघवेन्द्र सरकार ही कह सकते हैं। क्योंकि श्रीकिशोरीजीके चरितोंको प्रकाशित करानेके लिये भला उनसे बढ़कर और किसकी उत्सुकता हो सकती है ?

अतः जिस प्रकार उन्होंने चाहा इस यन्त्र (मुझ तुच्छ जीव) के द्वारा लिखा लिया। भक्तसुखद-अद्भुतलीला-परायण, व्यक्ताव्यक्त स्वरूप, विश्वात्मा, तीर्थपाद, अनन्त श्रीविभूति

श्रीसद्गुरु भगवान् महर्षि श्रीकार्तिकेयजी महाराजके अवनि-पावन प्रातः स्मरणीय श्रीचरण-कमलोंमें मेरा कोटिशः प्रणाम है, जिन्होंने भक्तोंके सुखार्थ तथा इस शिशुके भावकी पूर्तिके लिये टीका सम्पन्न होनेके पूर्व ही मार्चके अन्तिम सप्ताहमें अपनी कृपापात्र भक्तकुलभूषणा 'श्रीमती-कमला-अम्बाजी' को इसे शीघ्रातिशीघ्र छपवा देनेकी आज्ञा प्रदानकी, जिससे श्रीअम्बाजीकी बारंबार की आज्ञासे सङ्कुचित होकर मुझे बहुत शीघ्रताके साथ टीका सम्पन्न करना अनिवार्य हो गया। वर्तमान विक्रम संवत् २०१४ की ऋषिपञ्चमी (भाद्रशुक्ला पञ्चमी) के दिन मध्याह्न कालमें टीका सम्पन्न हुई, और मैं पत्रीको प्रातःकाल मुद्रण करानेके लिये प्रस्थित (विदा) हुआ।

प्रभुकी इच्छासे कितनी अगड़ बात चीत होने पर भी श्रीविश्वनाथजीकीपुरी "श्रीवाराणसीजी" के 'श्रीराम-प्रेस' में ही इस 'श्रीजानकी-चरितामृत' के छपने की व्यवस्था हुई, तदनुसार दिनाङ्क १२-९-१९५७ ई० को शुभ मुहूर्त्त में प्रकाशन कार्य-आरम्भ कराया गया और श्रीकिशोरीजीकी कृपासे आज वह अपने अभीष्ट मुहूर्त्त पर प्रकाशित होगया। इसके समय पर प्रकाशित हो जानेके लिये परम सज्जन मुद्रणालयाध्यक्ष (प्रेस-प्रोप्राइटर) श्रीविश्वनाथ (भगतजी) एवं श्रीविश्वनाथजी (चौधरी) ने अपने परिवार तथा कर्मचारियोंके सहित प्रशंसनीय परिश्रम किया है, अन्यथा १६५ फर्मेका यह ग्रन्थ सिर्फ ढाई महीनेमें छपकर तैयार हो जाना सरल न था, इसके प्रकाशनमें, उन्हें तथा उनके सभी कर्मचारियोंको जो अधिक कष्ट उठाना पड़ा है, उसके लिये मैं उनसे क्षमा प्रार्थी होता हुआ चरित-रसिक श्रीराघवेन्द्र सरकारसे इस श्रमके लिये, उन्हें समुचित फल देनेकी प्रार्थना करता हूँ। ग्रन्थ-संशोधन आदि कार्यों में जिन विद्वानोंने मुझे सहयोग प्रदान करने की कृपाकी है, उनकी नामावली नीचे दी जारही है, उनके लिये महाप्रभु ही उचित पुरस्कार प्रदान करने की कृपा करें।

१-१००८ पण्डितराज, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, परिव्राजकाचार्य, प्रतिवादि-गज-पञ्चानन, श्रीस्वामी भगवदाचार्य्यजी महाराज वेदोपनिषद्भाष्यकार (अहमदाबाद)। २-अखिल नेपाल राष्ट्रिय सन्मार्ग सङ्घके प्रथम सभापति, वैष्णवभूषण अद्वितीय पुराणज्ञ, विशिष्टोपासक पं० श्रीसीतारामदासजी महाराज श्रीजनकपुरधाम। ३-साहित्याचार्य, साहित्यमणि, विद्याभूषण, विद्वच्छिरोमणि, प्रबल-गोरखादविषयबाहु पं० श्रीकुलचन्द्रगोतम। ४-पं० श्रीअवधकिशोरदासजी महाराज साहित्य धुरीण श्रीरामानन्दाश्रम श्रीजनकपुरधाम। ५-पं० श्रीमुनीन्द्रझा शर्मा प्राचार्य्य लक्ष्मीपुर बी. एन्. एस्. महाविद्यालय बौंसी, (भागलपुर)। ६-शाब्दिकालङ्कारिक-प्रवर, कविवर-जनकपुरस्थ राजकीय-संस्कृत महाविद्यालय साहित्य-प्राध्यापक पं० श्रीजीवनाथझा। ७-श्रीगौरीनाथजी पाठक, साहित्याचार्य्य काशी। ८-पं० श्रीकृष्णानिधि व्या० आ० प्राप्तस्वर्णपदक महामन्त्री-अखिल नेपाल राष्ट्रिय सन्मार्ग सङ्घ श्रीजनकपुरधाम।

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

❀ सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीकी जय ❀

—❀❀❀—

परमाह्लादिनि शक्ति भक्तसुखमूल सुहाई। विश्वहेतु निज दिव्य धाम सुख-शान्ति विहाई ॥
भक्ति-ज्ञान-वैराग्य-दान नित रहैं लुटाई। अवध-धाम गत गोप्रतार-शुचि घट्ट सदाई ॥

मध्य विराजति सोइ कृपालु, बायें ललितांशा। सेवा-परमप्रवीण युक्त सब जासु प्रशंसा।
हाथ जोड़ि जो दक्षभाग में खड़ी हुई हैं। श्रीकमलाम्बा अमरकीर्ति सुख-प्राप्त यही हैं ॥

—❀❀❀—

अपनी दयामयी पूज्यपादारविन्दा श्रीमती अम्बाजीके लिये मैं क्या कहूँ ? जिन्होंने मेरे भाव पूर्त्यर्थ श्रीसद्गुरु भगवानकी आज्ञाके अनुसार नवसहस्र (नौ हजार) से अधिक मुद्राओंका निःस्वार्थ व्यय किया है।

इस (श्रीजानकी-चरितामृत) ग्रन्थमें जो शब्द या विषय हैं उनमेंसे किसीका भी उत्तर देनेकी क्षमता मुझमें नहीं है ! अतः कोई भी सज्जन (सन्त या विद्वान जन) मुझसे किसी बातका उत्तर माँगने का कष्ट न करें ! जैसे-मणि-मुक्ता (मोती) हीरक (हीरा) आदि रत्न समूह, नाना प्रकारके फल-फूल और मकरन्द जिन-जिन जगहोंसे भगवदिच्छा वश प्रकट होजाते हैं, उनसे उनके प्रमाण-गुणवर्णन एवम् परीक्षणके विषयमें प्रश्न करने पर कुछ भी उत्तर प्राप्त नहीं हो सकता। ठीक इसी तरह भगवदिच्छा और श्रीपरमहंसजीकी आज्ञा तथा आशीर्वाद द्वारा मुझ जैसे तुच्छसे यह जो 'श्रीजानकी-चरितामृतम्' प्रकट हुआ है, उसका प्रमाण-गुणवर्णन एवं परीक्षण-विषयक उत्तर मुझसे बन पड़ना सर्वथा असम्भव है।

हाँ भक्तिभावके रसिक भजनानन्द सन्त और साङ्गोपाङ्ग सरहस्य निगम तथा अशेष आगमोंके विशेषज्ञ सभी विद्वज्जन इसके परीक्षक प्रमापक एवम् आस्वादयिता हो सकते हैं !

मैं तो उपर्युक्त प्रातः स्मरणीय श्रीपरमहंसजीकी आज्ञाके अनुसार केवल श्रीकिशोरीजीकी ही कृपाका अवलम्बन लेकर लिखनेमें प्रवृत्त हुआ था, किसी ग्रन्थका आश्रय लेकर नहीं।

अतः उन्होंने ही जहाँ जिस प्रकार चाहा, लिखवाया है, इसीलिये मुझे इस ग्रन्थमें अपना नाम देनेका साहस नहीं पड़ता था, किन्तु विद्वानों के आग्रह विशेष से विवश होकर मुझे वह देना ही पड़ रहा है। फिर भी मैं स्पष्ट कह रहा हूँ कि इस ग्रन्थको कोई मेरी कृति ही मानकर लाभसे वञ्चित न रहें ! यह साक्षात् श्रीराघवेन्द्र सरकारकी इच्छासे ही मुझ तुच्छ जीवको नाम-मात्रके लिये निमित्त बनाकर निर्मित हुआ है, आशा है अनुरागी भक्तगण इस ग्रन्थसे अवश्य अपूर्व आनन्दको प्राप्त करेंगे।

नोट—यह ग्रन्थ सर्वेश्वरी श्रीजनकराज-किशोरीजी के मन्त्रराज तथा उनके गायत्री आदि अन्यान्य मन्त्रों से परिष्कृत है। अतः कोई भी विद्वान् महाशय संशोधन आदि करते समय किसी भी श्लोकके आदि अक्षरको बिना आगे पीछेका क्रम देखे हुये कभी हटाने का कष्ट न करेंगे। यह सदाके लिये मेरी प्रार्थना है। इस ग्रन्थमें कहीं कहीं प्रभुने जो अपने अत्यन्त अन्तरङ्ग भक्तोंके साथ दिव्यधाम सुख प्रदायिनी लीलायें की हैं, वे अलौकिक और उनके सर्वतन्त्र स्वतन्त्र स्वरूपके द्वारा की हुई हैं, ऐसा समझकर कोई भ्रम या कुतर्कमें पड़कर अपराध भाजन न बने।

समयाभावके कारण सामने उपस्थित हुये मूफमें भाषादि संशोधन की ओर विशेष दत्तचित्त रहने के कारण ग्रन्थ-मुद्रणमें कई एक प्रकार की त्रुटियाँ हो गयी हैं, उनके लिये मैं दुःख पूर्वक अपनी श्रीअम्बाजीसे तथा श्री जी.सी. अग्रवालजी (रिसर्च आफिसर रुड़की)से सर्व प्रथम क्षमा प्रार्थी हूँ जिनके इतने रुपिया खर्च करने पर भी मैं इस ग्रन्थका विशुद्ध संस्करण निकाल कर उनके सामने न रख सका, न उचित चित्र ही दे सका। आशा है वे अपने इस अबोध शिशुकी उन सभी त्रुटियों को अवश्य ही क्षमा करेंगी।

विद्वानों से करबद्ध प्रार्थना है कि वे लोग मूल और टीकामें जो कुछ मेरे द्वारा त्रुटियाँ रह गयी हों, उन्हें लोकहितार्थ प्रतिपाद्य भावकी सुरक्षा करते हुये भविष्यमें अवश्य सुधार लेनेकी कृपा करेंगे।

पुनः पाठक भक्तोंसे भी मेरी यह सादर सविनीत प्रार्थना है कि वे अपने ग्रन्थके अन्तमें दिये हुये शुद्धा-शुद्धिपत्रके अनुसार तथा कहीं-कहीं म, भ, ध, घ, प, प व, य आदि अक्षरोंकी अशुद्धियोंको अपनी बुद्धिसे भी स्थानानुसार उचित रूपमें सुधार करके उस कष्टके लिये मुझे अवश्य क्षमा प्रदान करेंगे, क्योंकि इन सब त्रुटियोंका मूल कारण मैं ही हूँ।

दूसरे संस्करणमें सुधारने योग्य त्रुटियाँः—

१—अध्याय २२ के श्लोकोंका क्रम नम्बर १ से न होकर अ० २१ के अन्तिम ५७ श्लोकसे ही आगे क्रमशः अन्त तक पड़ता गया है।

२—१६३ फर्मा पर के पृष्ठोंकी जो संख्या १२९७ से १३०४ तक होनी चाहिये थी वह धोखे से १२९३ से १३०० तक छप गयी है।

३—मा० पा० विश्राम २६–११५१ पृष्ट पर चाहिये था वह धोखेसे ११६४ पर छप गया है। अभी इतनी त्रुटियाँ ज्ञात हुई हैं आगे श्रीकिशोरीजी जानें॥ इत्यलम्॥

सब प्रकारकी त्रुटियोंका क्षमाप्रार्थी—

श्रीजानकीविवाह-पञ्चमी, संवत् २०१४ —०००— भक्तोंका कृपाभिलाषी रामसनेहीदास।

॥ श्रीजानकी-चरितामृतम् ॥

का

अध्याय-विषय-संक्षिप्तसूची-पत्र

(: समाप्त :)

❀ सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजू की जय ❀

❀ श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः ❀

❀ श्रीजानकीचरितामृतम् ❀

अथ

❀ मङ्गला-चरणम् ❀

—❀❀❀—

दोहा–भक्ति, भक्त, हरि, गुरु, गणप, गिरा सशक्ति त्रिदेव।
वन्दि सबहिं सिय-सिय पिया, सुमिरौं हर अवरेव ॥१॥
बार बार निज युगल प्रभु, चरणकमल शिर नाय।
कृपावलम्बन करि लिखूँ, टीका सुजन-सुखाय ॥२॥
श्रीसीता-चरितामृतम्, रामप्रिया - यश - गेह।
टीका युत पढ़ि लहहिं सुख, सज्जन सहित सनेह ॥३॥
सम्वत् मुनि-नभ-गगन-हय, सुन्दर अगहन मास।
शर-तिथि, शुक्ला बुधदिवस, टीका करौं प्रकाश ॥४॥
सो सज्जन जन सरल चित, भूल चूक बिसराय।
पढिहहिं बालक तोनरो, वाणी सहज सुभाय ॥५॥

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

चेतश्चिन्तयताद्धि सच्च मननं
नित्यं विदध्यान्मनो ।
भूयाद्गोनिकरः सदा हितकरो
धीः सद्विचारान्विता ॥
अस्माकं कमलार्चिते ! प्रतिदिनं
रामप्रिये ! याचतां ।
सर्वासम्भवसम्भवाय कुशले !
लीलाजगन्मोहिनि ! ॥१॥

—❀❀❀—

अघटित घटना पटीयसी वात्सल्य कारुण्यसिन्धु जगज्जननी

सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

❀ अनुपमकरुणामय श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ❀ श्रीआचार्यचरणकमलेभ्यो नमः

❀ श्रीजानकी-चरितामृतम् ❀

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीजानकीचरितामृत पान करने के लिये जीवकल्याणार्थ श्रीकात्यायनीजी का श्रीयाज्ञवल्क्य मुनि के प्रति प्रश्न ।

श्री सूत उवाच ।

श्रीन्दुमौलिदयितादिवन्दिता तारिणी सहृदया दयार्णवा ।
यादिशाऽस्तु भवतां शिवाय सा सेवनीयचरिता विदेहजा ॥ १ ॥

श्री (लक्ष्मी) जी इन्दुमौलिदयिता (श्री पार्वतीजी) आदि प्रधान से प्रधान सभी शक्तियाँ जिन्हें प्रणाम करती है, सभी के हृदय की पुकार जो सदा एकाग्रचित्त से श्रवण करती हैं, जैसे समुद्र सर्वथा सभी के लिये अथाह है, वैसे ही जिनकी दया सर्वथा सभी के द्वारा अथाह है, जो भक्तों के वास्तविक हित-अहित की पूर्ण जानकारी रखती हैं, तथा अपने कल्याण के लिए जिनके चरित्र गृहस्थों से लेकर विरक्तों तक सभी प्राणियों के लिये सेवन करने योग्य हैं वे विदेह महाराज की श्रीराजदुलारीजी आप समस्त प्राणियों का कल्याण करें ॥१॥

तस्यै नमः सततमस्तु सहस्रकृत्वः सीतेति नाम भुवनप्रथितं यदीयम् ।
या सानुकम्पहृदयेन निजेन रामं सर्वेश्वरं कृतवती परितो विमुग्धम् ॥ २ ॥

जिन्होंने अपने सहज दयापरिपूर्ण हृदय द्वारा सब प्रकार से सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी को मुग्ध (मोहित) कर रक्खा है, जिनका "श्रीसीताजी" ऐसा सुन्दर, मनोहर, मंगलकरण नाम आज तीनों लोकों के प्राणियों की जिह्वा पर विद्यमान है, उन श्रीकिशोरीजी के लिये हमारा सहस्रों बार सर्वदा प्रणाम है ॥२॥

तस्मै नमः प्रभुवराय सहस्रकृत्वः सम्पूर्णलोकपरिकीर्त्तितनामकाय।
यो मैथिलीपरममङ्गलबालकीर्त्तिश्रोतृप्रधानपरगोज्ज्वलकीर्त्यकीर्तिः ॥३॥

जिनका "श्रीराम" इस मङ्गलमय पतितपावन नाम से तीनों लोकों में कीर्त्तन किया जाता है, जो श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू की परम मङ्गलमय बालकीर्त्ति के श्रोताओं में प्रधान, परम उज्ज्वल कीर्त्तन करने के योग्य कीर्त्ति वाले हैं, उन प्रभुवर कौशल्या-नन्दनजी को मेरा बारं बार सहस्रशः नमस्कार है ॥३॥

तस्यै नमोऽस्त्वहरहः सततं शिवायै या श्रीमहेशमुखतश्चरितानि पूर्वम्।
श्रीमैथिलीचरणपद्मजुषां हिताय पृष्ट्वाऽर्पयन्मुनिगणाय महीसुतायाः ॥४॥

जिन्होंने श्रीमिथिलेशललीजू के चरणकमलानुरागी सेवकों के हितार्थ स्वयं प्रश्न करके भगवान् शङ्करजी के ही मुखारविन्द से श्रीभूमिसुताजी के चरित्रों को मुनियों के लिये प्रदान कराया है, उन श्री पार्वतीजी के लिये सर्वदा मेरा नमस्कार है ॥४॥

तस्यै नमोऽस्तु परितः सततं सभावं कात्यायनीत्यभिधया श्रुतिमागतायै।
या याज्ञवल्क्यमुनिमौलिमपृच्छदेतत् सीतासुमङ्गलयशो जगतः शिवाय ॥५॥

जिन्होंने श्रीमिथिलेशदुलारीजू के इस सुन्दर मङ्गलमय बाल-चरित को भगवान् श्रीयाज्ञवल्क्यजी से पूछा है, तथा "श्री कात्यायनी" इस नाम से जो श्रवणगोचर हो रही हैं अर्थात् जिनका कात्यायनी यह शुभ नाम सुना जाता है, उनको भाव-पूर्वक सब ओर से मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥

तस्मै नमोऽस्त्वथ सदाऽसकृदम्बिकाया नाथाय वायुतनयाभिधया स्मृताय।
यः श्रीविदेहतनयादशयानसूनोर्लब्धानुकम्पजनमुख्य उदारसेवः ॥६॥

जो श्रीविदेहकुमारी और श्रीदशरथनन्दनजू के कृपापात्रों में मुख्य हैं, जिनकी सेवा सकल मनोरथों को सिद्ध करने वाली है, जो कैङ्कर्य-लोभ से पवन-पुत्र श्रीहनुमान नाम से स्मरण किये जाते हैं, उन अम्बिकापति भगवान् श्रीसदाशिवजी के लिये हमारा बारंबार सर्वदा प्रणाम है ॥६॥

तस्मै नमोऽस्तु तनयाय पराशरस्य व्यासाह्वयाय मुनिमौलिविभूषणाय।
यत्पादपद्मकृपयाऽद्य यशः पवित्रं प्राप्तं प्रदातुमहमस्मि समुद्यतो वः ॥७॥

जिनके श्रीचरण-कमल की कृपा से प्राप्त हुये श्रीकिशोरीजी के इस पवित्र यश को आप लोगों को प्रदान करने के लिये मैं सम्यक् प्रकार से उद्यत हूँ, उन मुनि शिरोमणि पराशरपुत्र भगवान् श्रीव्यासजी के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥७॥

१—श्रीस्नेहपराजी अपने शयन भवनमे श्री किशोरीजीकी शयन झाँकी करती हुई श्रीराघवेन्द्र सरकारकी आज्ञानुसार अपने हृदयाकर्षक श्री किशोरीजीके चारितोको उन्हे श्रवण करा रही है।

२—श्रीभोलेनाथजी श्रीसनकादिकोंके सहित श्रीयाज्ञवल्क्यजी की उपस्थिति मे श्रीपार्वतीजी को श्रीस्नेहपरा व श्रीरामभद्रजूका संवाद श्रवण करा रहे हैं।

३—श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीको श्री शिवपार्वती संवाद श्रवण करा रहे है।

४—श्रीसूतजी श्रीशौनकादि ऋषियोंसे नैमिषारण्यमें श्रीयाज्ञवल्क्य और कात्यायनीजीका संवाद वर्णन कर रहे है।

तुभ्यं नमोऽस्त्वखिललोकहिते रताय सश्रद्धमाप्तयशसे महतां वराय ।
पृष्ट्वेदमद्य सुरहस्यमुरः स्पृशं मे सौख्यं परं त्वमददश्चिरमीप्सितं यत् ॥८॥

अहह ! आप ने इस परम सुन्दर रहस्य को पूछ कर मुझे चिर (बहुत दिनों के) अभिलषित (चाहे हुये) हृदय हारी महान् सुखको प्रदान किया है, अत एव प्राणि-मात्र के हितपरायण, महात्माओं में श्रेष्ठ, आप्तयश (जिसे अब और कोई लोकप्रसिद्ध यश प्राप्त करने को शेष न हो, ऐसे) आप के लिये बार बार नमस्कार है ॥८॥

सीरध्वजसुताकीर्त्तिः कीर्त्यमाना मयाऽधुना ।
श्रूयतां यतचित्तेन स्वपृष्टा मुनिसत्तम ॥९॥

हे मुनियों में श्रेष्ठ, आप के द्वारा पूछी हुई श्रीसीरध्वज महाराज की राजकुमारीजी की बाल-कीर्त्ति को आप एकाग्रचित्त से श्रवण करें ॥९॥

रामस्य लोकरामस्य प्रेरणेयं विभाव्यताम् ।
वक्तुं सीतायशश्चेतो मम लोलायते भृशम् ॥ १०॥

मेरा चित्त श्रीकिशोरीजी के चरितों को वर्णन करने के लिये इस समय अत्यन्त लालायित हो रहा है, अत एव आपकी जिज्ञासा और मेरे कथन करने की उत्कट इच्छा में भुवनाभिराम प्रभु श्रीराम की प्रेरणा ही प्रधान समझनी चाहिये ॥१०॥

सीतारामौ प्रणम्याहं जगद्धेतू जगद्गुरू ।
अन्तरङ्गां तयोर्लीलां प्रवक्ष्ये प्रेरितात्मना ॥११॥

अब प्रेरणा युक्त हृदय हो जाने से मैं जगत् (स्थावर जङ्गमादि समस्त प्राणियों) के कारण, सभी चर-अचर के गुरु श्रीसीतारामजी को प्रणाम करके उनकी अन्तरङ्ग लीलाओं का वर्णन करूँगा ॥११॥

कात्यायनी तपःसिद्धा याज्ञवल्क्यप्रिया शुचिः ।
श्रुत्वाऽनेकचरित्राणि पुराणोक्तानि भूरिशः ॥१२॥
निवसन्ती च तेनैव पत्या सार्द्धं शुभोटजे ।
असौ यच्चिन्तयामास कल्याणि ! तन्निबोध मे ॥१३॥

हे श्रीशौनक जी ! तप के प्रभावसे जिनको सिद्धावस्था तथा पवित्रता प्राप्त है, वे याज्ञवल्क्य-

वल्लभा श्रीकात्यानीजी ने अपने पतिदेव के द्वारा हृदय की आन्तरिक बातें समझने के लिये जिस प्रकार विचार किया, वह सब आप को मैं सुनाता हूँ ॥१२॥१३॥

अस्मिन् देशे परा शक्तिः सर्वशक्तीश्वरेश्वरी ।
आविरासीत्क्षितेर्गर्भाच्छ्रीसाकेतविहारिणी ॥१४॥

इसी मिथिला प्रदेश में भूमि के गर्भ से श्रीसाकेतविहारिणी, समस्त शक्तिनायक की परात्पर शक्ति (श्रीकिशोरीजी) प्रकट हुई थीं ॥१४॥

यस्याश्चरणविन्यासैः पावितेयं वसुन्धरा ।
ब्रह्मादिभिः सदा वन्द्या तीर्थानां कल्मपापहा ॥१५॥

जिन सर्वेश्वरी जू के श्रीचरणकमल के स्पर्श मात्र से पवित्र हुई यह "श्रीमिथिला भूमि" सभी के पापों को हरण करने वाली एवं ब्रह्मादि देवों के लिए भी शिरटेक कर सदा नमस्कार करने योग्य है ॥१५॥

यस्याः कृपात एवेह विमुक्तिर्भवबन्धनात् ।
यामृते नात्मनः श्रेयो या च नः परमा गतिः ॥१६॥

जिनकी कृपा से ही जन्म मरण के बन्धन से वास्तविक छुटकारा मिलता है, जिनकी अनुकम्पा हुये बिना अपना कल्याण ही नहीं है, अतएव जो हम सभी जीव मात्र की चारों ओर से रक्षा करने वाली तथा सुख और कल्याण की उपाय स्वरूपा है ॥१६॥

तस्या एव न चाद्यापि जन्मादिककथा श्रुता ।
शृण्वन्त्या सत्कथाश्चान्या विपुला बहुकालतः ॥१७॥

हाय, मैं बहुत दिनों से और तो बहुत सी सत्कथाओं का श्रवण करती ही आरही हूँ तथापि उन (श्रीकिशोरीजी) के प्रकट होने आदि की ही परम मंगलमयी कथा को आज पर्यन्त नहीं सुन सकी ॥१७॥

सर्वज्ञं पतिमासाद्य ज्ञातव्यमवशिष्यते ।
यदि वा जीवितं व्यर्थं जीवितं पापजीवितम् ॥१८॥

सर्वज्ञ पति को प्राप्त कर के भी यदि परम जानने योग्य बात ही जाननी बाकी रह गयी, तो यह पापमय जीवन किस काम का? ॥१८॥

इति निश्चित्य पूतात्मा सारं सारविदां वरम्।
प्रभातेऽपृच्छदासीनं याज्ञवल्क्यं कृतक्रियम् ॥१९॥

इस प्रकार सार बात को जानना आवश्यक निश्चय करके विशुद्ध अन्तःकरण वाली श्रीकात्यायनीजी ने सारवेत्ताओं में श्रेष्ठ श्रीयाज्ञवल्क्यजी से प्रातः काल, उनके उस समय की आवश्यक क्रिया पूरी करके विराजमान होने पर प्रश्न किया ॥१९॥

श्रीकात्यायन्युवाच।

परब्रह्मांशभूतोऽपि जीवोऽयं केन हेतुना।
पीड्यते जन्ममृत्युभ्यां बोध्यमानोऽपि चागमैः ॥२०॥

प्रभो ! यह जीव एक तो परब्रह्म का अंश है ही, दूसरे इस को शास्त्र भी बराबर स्वरूपज्ञान तथा कर्त्तव्यज्ञान कराते रहते हैं तथापि यह कौनसा कारण है? जिससे जन्म, मरण से यह जीव पीड़ित रहता है ॥२०॥

कथमस्य विमोक्षः स्यादनायासेन तद्वद।
गोपनीयमपीदानीं न दास्या गोपय प्रभो ॥२१॥

इस जीव को जन्म-मरण से किस प्रकार छुटकारा मिल सकता है? यदि छुटकारा पासकने का कोई छिपाने योग्य भी साधन हो, तो भी दासी से गुप्त न रक्खा जाय ॥२१॥

श्रीसूत उवाच।

एवमभ्यर्थितः श्रीमान् योगिवर्य्यो महामुनिः।
याज्ञवल्क्यः सतां श्रेष्ठ उवाच विनयान्विताम् ॥२२॥

श्रीसूतजी महाराज बोले–हे शौनक मुने ! इस प्रकार से श्रीकात्यायनीजी की प्रार्थना सुनकर योगियों में श्रेष्ठ, सन्तप्रवर, महामुनि श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज उन विनययुक्ता श्रीकात्यायनीजी से बोले ॥२२॥

श्री याज्ञवल्क्य उवाच।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा चैवावधारय।
श्रुतीनामत्र सिद्धान्तं मुनीनां भावितात्मनाम् ॥२३॥

हे देवि ! मैं आप के इस प्रश्न के उत्तर में श्रुतियों तथा अनुभवशील मुनियों का सिद्धान्त कहूँगा, उसे आप सुनें और हृदय में धारण करें ॥२३॥

नाना योनिषु जीवस्य जन्ममृत्योश्च कारणम् ।
मोह एव परो ज्ञेयस्तत्स्वरूपं निबोध मे ॥२४॥

हे प्रिये! नाना योनियों में जीव के जन्म मरण का मुख्य कारण मोह ही समझना चाहिये, अब उस (मोह) का स्वरूप मुझसे अर्थात् मेरे वचनों से समझ लो ॥२४॥

असत्सम्बन्धसम्बन्धः सत्सम्बन्धानभिज्ञता ।
गुणत्रयात्मिका माया तद्बीजमवधार्यताम् ॥२५॥

माता, पिता, बन्धु, बान्धव, पुत्र, कलत्र (स्त्री) मित्र, आदिक, जो केवल कल्पना मात्र से मान लिये गये हैं, उनमें आसक्ति हो जाना और जो वास्तविक माता, पिता, बन्धु, मित्र, सुहृद सब कुछ अपने हैं, उन सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान्, अघटित-घटना-पटीयान्, अनन्त ब्रह्माण्डनायक, सर्वगत, सर्व उर निवासी प्रभु से अपने सम्बन्ध के ज्ञानका अभाव अर्थात् ज्ञान का न होना, यही मोह का स्वरूप है, उस मोहकी उत्पत्तिका कारण सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंसे परिपूर्ण माया है ॥२५॥

तस्या निवृत्तिकामस्तु मायेशौ शरणं व्रजेत् ।
मायेश्वरौ विजानीहि सीतारामौ परात्परौ ॥२६॥

उस तीन गुणमयी माया से जो बचना चाहे वह मायापति की शरण जाय, मायापति परात्पर प्रभु श्रीसीतारामजी को जानो ॥२६॥

अनेकजन्मसंस्कारैः सतां सत्सङ्गतस्तथा ।
शास्त्राणां श्रवणाच्चापि प्राकृतं ज्ञानमाप्यते ॥२७॥

हे प्रिये! अनेक जन्मों के शुभसंस्कारों (पुण्यफलों) से, सन्तों के सत्सङ्ग से और शास्त्रों के श्रवण से साधारण ज्ञान प्राप्त होता है ॥२७॥

अप्यविद्यामयं तेन सुखं यद् दृश्यते भुवि ।
केवलं दुःखरूपं तन्मत्वेहेत निवृत्तये ॥२८॥

उस साधारण ज्ञान से पृथिवीतल पर जो बाह्येन्द्रिय-विषय जन्य सुख दिखाई देता है उसे मायामय अर्थात् क्षणिक केवल प्रलोभन कारक और अन्त में दुःखद मानकर उस से निवृत्ति पाने के लिये इच्छा करे ॥२८॥

ततः श्रीरामसुद्राभिरूर्ध्वपुण्ड्रेण चान्वितम् ।
ब्रह्मिष्ठं शोभितग्रीवं तुलस्या युग्ममालया ॥२९॥

सीतारामरहस्यज्ञं दयादिगुणमन्दिरम् ।
क्षमावन्तं जितामित्रं सर्वभूतानुकम्पिनम् ॥३०॥
शुद्धधर्मोपदेष्टारं वेदवेदान्तपारगम् ।
गतद्वन्द्वं मुनिं शान्तं हीनदर्पं दृढव्रतम् ॥३१॥
धर्मिष्ठं शरणं गत्वा गुरुं त्रैलोक्यपावनम् ।
प्रणतिप्रश्नसेवाभिर्लभेत ज्ञानमद्भुतम् ॥३२॥

तदनन्तर श्रीसीतारामजी की मुद्राओं से युक्त, ऊर्ध्वपुण्ड्र से सुशोभित भाल और युगल तुलसी की कण्ठी से शोभायमान कण्ठ, परात्पर ब्रह्म श्रीसीतारामजी में पूर्ण निष्ठा रखने वाले, दया आदिक सकल दिव्यगुण के निवासस्वरूप अर्थात् परिपूर्ण, अत्यन्त क्षमा (सहन) शील काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेषादि सकल शत्रुओं पर विजय प्राप्त किये हुए, सभी प्राणिमात्र पर दया करने वाले, शुद्ध धर्म के उपदेशक वेद और उपनिषद् (वेदान्त) के रहस्य को पूर्णरीति से समझने वाले, शीत-घाम, सुख-दुःख, जीवन मरण, यश-अपयश लाभ-हानि, अच्छा-बुरा, इष्ट-नेष्ट सभी परिस्थितियों में समभाव वाले, प्रभु के लीलारहस्यादिका मनन करने वाले, अष्टयाम सेवा-परायण, किसी भी कारण से चंचलचित्त न होने वाले, अभिमान रहित, अपने नियमादिक व्रत में परम पक्के, अपने वेदानुकूल स्वीकृत धर्म में पूर्णनिष्ठा रखने वाले, त्रिलोकी को पवित्र करने के लिए समर्थ ऐसे श्रीगुरुदेव महाराज की शरण जाकर प्रथम उनको विनीत भाव से श्रद्धापुरःसर प्रणाम करे, फिर सेवापरायण होकर स्वयं गुरुदेव की आज्ञा मिलने पर अपने कल्याणार्थ प्रश्न करके उनसे अद्भुत (लोकोत्तर याने अलौकिक) ज्ञान को प्राप्त करे ॥२९॥३०॥३१॥३२॥

अनुभूतिः स्वरूपस्य पररूपस्य तेन वै ।
इष्ट-प्राप्तिसमुत्कण्ठा विरतिर्जनसंसदि ॥३३॥
प्रेमा-परादिभक्तीनामुदयश्चातिनम्रता ।
तल्लग्नचित्तवृत्तिश्च सद्गुणानां प्रकाशनम् ॥३४॥
भवत्यत्यन्तवैराग्यं विशुद्धं भव-बाधकम् ।
विज्ञानस्थदशायाश्च परीक्षेयं मयोदिता ॥३५॥

उस अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर अपने स्वरूपका और परात्पर प्रभु श्रीसीता-

रामजी के स्वरूप का अनुभव तथा अपने उन श्रीयुगल इष्टदेव सरकार की प्राप्ति के लिये सम्यक् प्रकार से उत्कण्ठा, लोक समाज से वैराग्य, प्रेमा, परा आदि भक्तियों का हृदय में उदय, नम्रताकी प्राप्ति, अपने उपास्यदेव में चित्तवृत्ति की परम आसक्ति और सुन्दर शुभ गुणों का प्रकाश तथा जन्म मरण निवारण करने वाला विशुद्ध वैराग्य प्राप्त होता है। विज्ञान को प्राप्त हुये मनुष्य की दशा की यह परीक्षा मैंने तुम से वर्णन की है ॥३३,३४॥३५॥

ततो विज्ञाननिरतस्य निर्मले हृदि शोभने।
श्रीसीतारामसम्बन्धाधिकारो जायते ध्रुवः ॥३६॥

इति प्रथमोऽध्याय।

हे शोभने! तब उस अलौकिक ज्ञान सम्पन्न के निर्मल (विकाररहित) हृदय में ही श्री सीतारामजी के प्रति किसी भी प्रकार के सम्बन्ध में अटल अधिकार प्राप्त होता है ॥३६॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

श्रीयाज्ञवल्क्यजी का श्रीकात्यायनीजी के प्रति श्रीसीतारामजी के सम्बन्धभाव की निष्ठा का वर्णन।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

चेतसा चिन्तयेदित्थं नित्यसम्बन्धमात्मनः।
नाहं देहो न वै प्राणा न मनोऽहं न चेन्द्रियम् ॥१॥

श्रीसूतजी महाराज कहते हैं कि हे श्रीशौनकजी! श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजी से बोले:—हे प्रिये! वह लोकोत्तर ज्ञान सम्पन्न साधक, अपने चित्त से इस प्रकार चिन्तन करे कि, न तो मैं देह हूँ और न प्राण हूँ, न मन हूँ, न शरीरस्थ कोई इन्द्रिय ही हूँ ॥१॥

न वर्णी नाश्रमी चाहं नो मनुष्यो न देवता।
निरुपाधिकतत्सत्त्वात्तदीयोऽस्मीति केवलम् ॥२॥

कोई वर्ण या आश्रम विशेषवाला भी मैं नहीं हूँ, न वास्तव में मैं मनुष्य हूँ न देवता ही हूँ, मैं तो उपाधि (आवरण) रहित ब्रह्म की सत्ता मात्र होने के कारण उन्हीं सर्वेश्वर प्रभु का अंश हूँ ॥२॥

विशुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपो गतमायकः ।
तुरीयावस्थया युक्तो महाकारणदेहगः ॥३॥

उस सच्चिदानन्द घन परब्रह्म का अंश होने से मैं भी तीनों गुणों से परे सत्-चित्-आनन्द-घन स्वरूप, माया से रहित, तुरीयावस्था से युक्त, महाकारण याने वासनातीत शरीर में समाया हुआ हूँ ॥३॥

यथा बद्धो भवेन्मूर्खोऽनित्यसम्बन्धबन्धनैः ।
तथा मुक्तो भवेद्धीमान् नित्यसम्बन्धसाधनैः ॥४॥

जैसे स्वस्वरूप, परस्वरूप का ज्ञान न रखने वाला मूर्ख विषयासक्त प्राणी, क्षणभङ्गुर लौकिक सम्बन्ध के बन्धनों द्वारा जीवन-मरण रूपी चक्र में बँध जाता है, उसी प्रकार निज और पर-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त बुद्धिमान् प्राणी उन परात्पर ब्रह्म सर्वेश्वर प्रभु श्रीसीतारामजी के प्रति अपने सदा स्थायी रहने वाले अनेक नित्य सम्बन्ध साधनों के द्वारा आवागमन से छूट कर सदा अविनाशी अखण्डानन्द सागर में निवास करता है ॥४॥

स त्वनन्तविधः प्रोक्तः शान्तारम्भोज्ज्वलान्तकः ।
वैचित्र्येण रुचीनां च सर्वथाऽभीष्टसिद्धिदः ॥५॥

वह सर्वेश्वर प्रभु के प्रति सम्बन्ध भाव शान्ति से प्रारम्भ कर उज्वल (शृङ्गार) भाव पर्यन्त लोगों की भिन्न २ रुचि के कारण अनन्त प्रकार का वर्णन किया गया है। परन्तु सर्वेश्वर प्रभु के साथ वह सभी प्रकार का सम्बन्ध साधक को मनोऽभिलषित अर्थात् मन चाहा फल प्रदान करने वाला है ॥५॥

शान्तं सर्वगतं मत्वा मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
तस्यागणितभेदांश्च सुविचार्य पुनः पुनः ॥६॥

तत्त्वदर्शी महर्षियों ने उस सम्बन्ध भाव के अनन्त भेदों को बार बार विचार करके तथा उन में शान्तभाव को प्रायः सभी में समाया हुआ मान कर ॥६॥

स दास्य-सख्य-वात्सल्य-शृङ्गारैर्वर्णितोऽनघे ।
विभक्तो विगतायासः सम्बन्धो नित्यधामदः ॥७॥

हे निष्पापे ! जिस में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है, जो सदा स्थिर रहने वाले नित्य

(अविनाशी) प्रभु के धाम को प्राप्त कराता है, ऐसे भगवान् के प्रति उस नित्य सम्बन्ध भावको उन्हों ने दास्य (दासभाव) सख्य (सखाभाव) वात्सल्य (माता-पिता भाव) शृङ्गार, (सखी तथा कान्ता भाव) प्रधानतया इन चार प्रकार के भावों में पृथक् करके वर्णन किया है ॥७॥

क्रमादेकैकभावस्योपासकानां सुचेतने !
धारणां संप्रवक्ष्यामि यथावत्त्वं निशामय ॥८॥

हे शुभमते ! अब मैं उपर्युक्त चारो भावों के उपासकों की पृथक् २ क्रमशः यथावत् धारणा का वर्णन करूँगा, आप श्रवण करें ॥८॥

दासास्तु द्विविधाः प्रोक्ता अधिकारप्रभेदतः ।
शृणुतादू यतचित्ता त्वं वदतो मम शोभने ! ॥९॥

हे शोभने ! अधिकार-भेद के कारण दास दो प्रकार के कहे गये हैं, उन दोनों को एकाग्र चित्त से आप श्रवण करें ॥९॥

मिथिलासम्भवा दासाः सर्वसेवाधिकारिणः ।
अपरे च त्वया ज्ञेया बाह्यसेवाधिकारिणः ॥१०॥

श्रीमिथिलाजी में जिनका जन्म हुआ है, वे श्रीयुगल सरकार की सभी सेवा करने के अधिकारी हैं और उन से इतर अन्य देश, नगर निवासी दासों को आप श्रीसीतारामजी की केवल बाहरी सेवा का अधिकारी जानिये ॥१०॥

अत्रादौ मैथिलानां तु धारणा प्रोच्यते मया ।
सावधानात्मनाऽऽकर्ण्या पुनरन्यत्र वासिनाम् ॥११॥

इन दोनों प्रकार के दासों में पहले मैं श्रीमिथिलाजी में जन्म लिये हुये दासों की धारणा का वर्णन करता हूँ, उसे आप सावधान चित्त से सुनें, उसके पश्चात् अन्यदेश निवासी दासों की धारणा को श्रवण करेंगी ॥११॥

श्रीविदेहान्वये जाता जानक्या अनुजाः प्रियाः ।
गौरवर्णा वयं च स्मः कार्या सेवा तयोर्हि नः ॥१२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज के कुल में ही हम लोगों का जन्म हुआ है, अत एव हम श्रीकिशोरीजी के गौर वर्ण छोटे भइया हैं, हमारा कर्त्तव्य केवल श्रीयुगल सरकार की सेवा मात्र है ।१२॥

पाणिग्रहणकाले तु मैथिल्याः स्मृतिविह्वलाः ।
सेवार्थमर्पिताः प्रेम्णा मात्रा-पित्रा विचार्य च ॥१३॥

जब श्रीकिशोरीजी के पाणि-ग्रहण का समय उपस्थित हुआ, उस समय विवाह के बाद उनसे वियोग होने का अनिवार्य अवसर स्मरण करके हम विह्वल हो गये, यह दशा देखकर हमारे माता-पिताजी ने भी श्रीकिशोरीजी के वियोग को हमारे लिये न सहन कर सकने योग्य विचार करके युगल सेवा में ही हमें अर्पित कर दिया ॥१३॥

तल्लग्नचित्तवृत्तीनां गतिः सर्वत्र नस्तथा ।
स्वसॄणां हि यथाऽस्माकं ताभ्यां सार्द्धमिति ध्रुवम् ॥१४॥

सभी स्थानों में जैसे हमारी बहिनों को जाने का अधिकार है, वैसे ही श्रीयुगल सरकार में लगी हुई चित्तवृत्ति वाले हम लोगों को भी निःसन्देह श्रीयुगल सरकार के साथ २ सर्वत्र जानेका अधिकार है, (यह श्रीमिथिलाजी में जन्म ग्रहण किये हुये दासों की दृढ़ धारणा हुई) ॥१४॥

अन्यत्रसम्भवा दासा रघुवंशं कुलं निजम् ।
अमात्यपुत्रं वाऽऽत्मानं भावयेयुः सुनिष्ठया ॥१५॥

श्रीमिथिलाजी से बाहर अन्य देश में जिनका जन्म हुआ है, वे दृढ़ निष्ठा से रघुवंश को ही अपना वंश समझते हैं, अथवा अपने को मन्त्रि पुत्र की भावना करते हैं ॥१५॥

आचार्यो वायुसूनुश्च तोषणीयो यथार्हतः ।
दासानामेष आचार्यो महाभागवतोत्तमः ॥१६॥

उनके आचार्य महाभागवत-शिरोमणि श्रीपवनकुमारजी हैं। उनको युक्तरूप से प्रसन्न कर लेना चाहिये, क्योंकि वे दास्य भाव युक्त सभी साधकों के मुख्य आचार्य है ॥१६॥

मुख्यसेवाधिकारस्तु रत्नसिंहासनालये ।
मध्याह्नोत्तरकाले च रामसेवाधिकारिणः ॥१७॥

इन दासों को मुख्य सेवा का अधिकार श्रीरत्नसिंहासन कुंज में और मध्याह्न विश्राम से उठने के बाद भी सरकार की सेवा करने का अधिकार है ॥१७॥

समर्यादस्य रामस्य सर्वकुञ्जेष्वपि प्रिये !
दर्शनस्याधिकारस्तु विज्ञेयो जानकीपतेः ॥१८॥

हे प्रिये! मर्यादा युत विराजमान हुये श्रीजानकी जीवन के दर्शन करने का उनका अधिकार तो प्रायः सभी कुञ्जों में जानिये ॥१८॥

गौरवर्णं तथा ज्ञेयमात्मनः कार्यमर्चनम् ।
श्रीसीतारामयोर्भक्त्या सर्वस्वं तौ दयानिधी ॥१९॥

वे अपने शरीर को गौर वर्णवाला जानें, तथा श्रीयुगल सरकार की प्रेम पूर्वक सेवा को ही अपना प्रधान कर्त्तव्य और उन्हीं दयानिधि को अपना सर्वस्व समझें ॥१९॥

सर्वः सर्वनियन्ताऽसौ सर्वकारणकारणम् ।
सर्वावतारमूलं च सर्वसाक्षी च सर्वगः ॥२०॥

वे सर्वस्वरूप (सभी प्रकार के स्वरूपों में विराजमान) छोटे से छोटे और बड़े से बड़े सभी जन्मदाताओं के जन्मदाता, सभी अवतारों के कारण स्थान, सभी प्राणि-मात्र के अच्छे बुरे कर्मों के साक्षी, (तथा) सब जगह परिपूर्ण, ॥२०॥

श्रीवैकुण्ठादिलोकानां कारणे परमाद्भुते ।
विचित्ररचनायुक्ते साकेते परधामनि ॥२१॥

विचित्र रचना युक्त, परम आश्चर्यमय, वैकुण्ठादि सभी लोकों के कारणस्वरूप, सर्वोत्कृष्ट साकेत धाम में ॥२१॥

शुद्ध सत्वमये रम्ये सुदिव्यमणिमण्डपे ।
ससीतो राजते रामो दासीदासगणैर्वृतः ॥२२॥

शुद्ध सत्वमय, (स्वच्छ) रम्य एवं अत्यन्त दिव्य मणि मण्डप में दासी तथा दास गणों से युक्त श्रीराघवेन्द्र सरकारजू श्रीकिशोरीजी सहित विराजते हैं ॥२२॥

दासवृन्दैः सखिव्यूहैः सखीवृन्दै रघूत्तमः ।
अत्यानन्दमयीं लीलां कुरुते स्वेच्छया प्रभुः ॥२३॥

प्रभु अपनी इच्छा से दासवृन्द, सखावृन्द, तथा सखीवृन्दों के सहित अति आनन्दमयी लीलाओं को करते हैं ॥२३॥

सख्यभावाश्रितानां च भेदास्तुर्यविधाः स्मृताः ।
अयोध्यामिथिलानाम्नो वयसश्च प्रभेदतः ॥२४॥

सख्य भाव वालों के भी अवस्था भेद और श्री अयोध्या मिथिला इन युगल पुरियों के नाम भेद से चार भेद हैं ॥२४॥

नैमिवंश्यकुमारा ये जानक्याश्च वयोऽवराः ।
सखायो रामचन्द्रस्य मधुराः पार्श्ववर्तिनः ॥२५॥

जो निमि वंशियों के पुत्र श्रीकिशोरीजी से अवस्था में छोटे हैं, वे श्रीराम सरकारके समीप रहने वाले मधुर सखा कहलाते हैं ॥२५॥

अव्याहतगतिस्तेषां सर्वकुञ्जेषु नित्यशः ।
मैथिलीरामचन्द्राभ्यां स्वसॄणां च यथा तथा ॥२६॥

श्रीमिथिलाजी में जन्म लिये हुए, उन सखाओं को भी श्रीयुगल सरकारके साथ २ निमि वंश-कुमारियों के सरीखे ही, सर्वत्र जानेका अधिकार प्राप्त है, इसी भावानुसार उनकी धारणा रहती है ॥ २६ ॥

बाह्यक्रीडासहायास्तज्ज्येष्ठा मन्त्रीनवंशजाः ।
सखायोऽन्तःप्रवेशार्हा अपौगण्डवयः स्थिताः ॥२७॥

जो मन्त्रियों के पुत्र हैं अथवा सूर्य वंश में ही जिनका जन्म है परन्तु अवस्थामें सरकार से कुछ बड़े हैं, वे बाहरी लीलाओं में सरकार के सहायक बनते हैं, और जिन की अभी पौगण्ड अवस्था नहीं हुई है, वे सखा सरकार के अन्तःपुर की लीलाओं में भी प्रवेश करने के अधिकारी हैं। (एवं प्रकार की धारणा सख्य भाव वालों की होती है) ॥२७॥

भ्रातरं मिथिलेन्द्रस्य साकेताधिपतेश्च वा ।
वात्सल्य-भावसम्पन्नाः स्वात्मानं भावयन्ति हि ॥२८॥

वात्सल्य भाव वाले अपने को, श्रीमिथिलेशजी महाराज अथवा श्रीकोशलेन्द्र महाराज का भाई मानते हैं ॥ २८ ॥

सुखार्थं श्रेयसे चैव मनोवाग्बुद्धिकर्मभिः ।
कार्यं तथाऽऽत्मनो यावद्विदुस्ते रामसीतयोः ॥२९॥

जिसको करने से श्रीसीतारामजी को सुख अथवा उनका कल्याण हो, उसे ही मन, वचन, बुद्धि, कर्म से करना अपना वे प्रधान कर्त्तव्य समझते हैं। यही वात्सल्य भाव वालों की धारणा है ॥२९॥

शृङ्गारभावसम्पन्नाः कुमार्यो निमिवंशजाः ।
सर्वसेवाधिकारिण्यो मुख्याः सख्य उदाहृताः ॥३०॥

श्रीनिमि वंश कुमारियाँ शृङ्गार (कान्ता) भाव से युक्त होने के कारण श्रीयुगल सरकार की सर्वसेवाधिकारिणी प्रधान सखी कही गयी है ॥ ३० ॥

तासां च धारणां वक्ष्ये सावधानतया शृणु ।
सुखसाध्यप्रयत्नोऽयं नित्यधाम्नः सुदुर्लभः ॥३१॥

उन शृङ्गार भाव सम्पन्ना निमि वंश कुमारियों की धारणा को मै कहता हूँ, आप सावधान होकर श्रवण करें। यह 'शृङ्गार भाव' नित्य (सदा सर्वदा एक रस रहने वाले श्रीसीतारामजी के) धाम साकेत की सुख पूर्वक प्राप्ति कराने वाला है। परन्तु इसकी प्राप्ति भी बहुत कठिनता से होती है ३१

निमिवंशेऽवतीर्णायाः सीतायाः कामरूपिणी ।
सर्वेश्वर्या विशालाक्ष्या अनुजाऽहं पदानुगा ॥३२॥

मै निमि वंश मे प्रकट हुई विशाललोचना, सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी के पीछे २ चलने वाली उनकी, छोटी बहिन हूँ ॥३२॥

सा हि मे परमोपास्या जीवनं परमं धनम् ।
प्राप्या प्राप्तेरुपायश्च शरणं प्रेमभाजनम् ॥३३॥

अतः निश्चय करके सब से बढ़ कर उपासना करने योग्य देवता, जीवनस्वरूप, परम (उत्कृष्ट, सर्वश्रेष्ठ) धन, प्राप्ति करने योग्य, प्राप्ति का उपाय, सब ओर से रक्षा करने वाली, निर्भय स्थान तथा प्रेमपात्र मेरी वही श्रीकिशोरीजी है ॥३३॥

तस्या अन्यन्न जानामि न ज्ञातव्यं हि विद्यते ।
सा सेव्याऽनन्यभावेन हृद्वपुर्वाग्भिरन्वहम् ॥३४॥

उन श्रीकिशोरीजी के अतिरिक्त और कुछ मै न जानती हूँ और न मुझे कुछ जानना आवश्यक ही है, मेरी तो केवल वे ही अनन्य भाव पूर्वक हृदय से, वाणी से और शरीर से सतत सेवन करने योग्य है ॥३४॥

यथा प्राकृतदेहेऽहं प्रविष्टा प्रकृतेः परा ।
तथा प्राकृतदेहेषु प्रविष्टं मेऽखिलं कुलम् ॥३५॥

जैसे प्रकृति यानी माया से रहित स्वरूप होने पर भी मैं ने इस पञ्चभूतों (पृथिवी, जल, अग्नि,

वायु, आकाश) से बने हुए शरीर में प्रवेश किया है, उसी प्रकार से वह मेरा दिव्य (अमायिक) निमि वंश भी प्राकृत शरीरों में प्रवेश कर गया है ॥३५॥

पश्यन्त्यपि न पश्यामि कुलं निर्मायिकं स्वकम् ।
कुतस्तु मैथिलीं सीतामतोऽहं भवपाशगा ॥३६॥

मैं मायिक (पाञ्चभौतिक) शरीर में आजाने के कारण अपने दिव्य निमि कुलको अवलोकन करती हुई भी जब निश्चयात्मक बुद्धि से अनुभव करने में असमर्थ हूँ, तब श्रीकिशोरीजी को भला किस प्रकार पहचान सकती हूँ ? अत एव आवागमन के चक्कर में पड़ी हूँ ॥३६॥

विवाहकाले जनकात्मजाया उद्वाहिताऽहं रघुनन्दनेन ।
सेवार्थमेवेह निबद्धभावा पित्रा प्रदत्ताऽस्य्यसुरक्षणाय ॥३७॥

श्री किशोरीजी के विवाह के समय, उनमें विशेष बद्धभाव (अत्यन्तासक्त) होने के कारण जब मैं उनके वियोग-भय से मूर्च्छित हो गयी और मेरे जीने की आशा नहीं रही, तब मेरे पिताजी ने मेरे प्राणों की रक्षा के लिए मुझे सेविका रूप से उन्हें समर्पण कर दिया, अत एव श्रीकिशोरीजू के प्रसन्नतार्थ श्रीरघुनन्दन प्यारे ने भी मेरा कर-ग्रहण स्वीकार कर लिया अर्थात् अपनी बना लिये ॥३७॥

लक्ष्मीपतिर्मातृकुलस्य देवता श्रीरङ्गनाथः कुलपूज्यदैवतम् ।
सखीप्रधानेन्दुकला ममाप्यसावाचार्यभूता भरताग्रजः पतिः ॥३८॥

अत एव मेरे मातृकुल-देव श्रीमन्नारायण और कुलदेव श्रीरङ्गनाथजी, आचार्या सभी सखियों में मुख्य श्रीचन्द्रकलाजी, और पतिदेव साक्षात् श्रीभरतलालजू के बड़े भइया श्रीराघवेन्द्र सरकारजू हैं ॥३८॥

मुख्यालयः श्रीकनकालयो मम प्राप्तिः प्रियस्य प्रणिपाततुष्टया ।
प्रधानकं तत्सुखमेव निर्मलं तथा कृपासाध्यमपीतरत्सुखम् ॥३९॥

हमारा मुख्य महल श्रीकनक-भवन है, प्रणाम मात्र से प्रसन्न हो जाने वाली श्रीकिशोरीजी के द्वारा हमें प्राणप्यारेजू की प्राप्ति हुई है, श्रीयुगलसरकार का सुख ही हमारा प्रधान वाञ्छित सुख है, विकार रहित स्वसुख युगलकृपा लभ्य है ॥३९॥

विस्मृतं सकलं पूर्वं स्मारितं कृपया गुरोः ।
संस्मरन्ती त्वहोरात्रं स्वीयं यास्यामि तत्पदम् ॥४०॥

मुझे पूर्व की अपनी सभी बातें भूल गयी थीं, कृपा करके श्रीगुरुदेव ने उन्हें स्मरण करा दिया है, अत एव अब मैं दिन रात अपनी उसी पूर्व परिस्थिति को स्मरण करती २ पुनः अपने उसी पूर्वपद को प्राप्त कर लूँगी, अर्थात् जैसे मैं पूर्व में श्रीयुगलसरकार की सखी थी, भावना करते २ वैसी ही हो जाऊंगी ॥४०॥

॥ श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ॥

इत्येवं निश्चयं कृत्वा दृढेन स्थितचेतसा ।
स्वसखीरूपमाचिन्त्य भावयेद्वाटकालयम् ॥४१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे प्रिये ! शृङ्गार भाव युक्त साधक इस प्रकार की धारणा करके दृढ एकाग्रचित्त से अपने सखी स्वरूप का ध्यान कर श्रीकनक भवन का ध्यान करे ॥४१॥

सप्तावरणतस्तस्य शोभितस्य सुवेश्मनः ।
पञ्चमावरणे नित्यं ध्यायेत्स्वावासमन्दिरम् ॥४२॥

सात आवरणों से शोभायमान उस सुन्दर श्रीकनक भवन के पाचवें आवरण में अपने वास कुञ्ज (निवास महल) का नित्य ध्यान करे ॥४२॥

ततो गुरूक्तया रीत्या सार्कं चन्द्रकलादिभिः ।
समाप्य नित्यकृत्यं च प्रविशेच्छ्रीनिकेतनम् ॥४३॥

अपने उस निवास महल में आचार्य की बतलाई हुई रीति से अपना स्नान शृङ्गारादि सभी कृत्य समाप्त करके वहाँ से चलकर श्रीचन्द्रकलाजी तथा श्रीचारुशीलाजी आदि सभी सखी समाज के सहित श्रीकिशोरीजी के मुख्य (शयनवाले) महल में प्रवेश करे ॥४३॥

आदौ शयनकुञ्जश्च गन्तव्य. सततं तया ।
ताभ्यां सार्द्धं सखीभिश्च सर्वतोप उपालय. ॥४४॥

इस प्रकार उसे शयन कुञ्ज में जाना चाहिए, फिर सब परिकर के साथ श्रीयुगलसरकार के सहित वह सर्वतोप नाम की उपकुञ्ज में जावे ॥४४॥

मङ्गलाख्यो निकुञ्जश्च गन्तव्यस्तु ततः परम् ।
निमीनवंशभूपाभ्यां दन्तधावनसञ्ज्ञक. ॥४५॥

सर्वतोप कुञ्ज के पश्चात् उसे मङ्गल कुञ्ज में जाना चाहिए, तदनन्तर भूषण सदृश निमि और सूर्यवंश के शोभा बढ़ाने वाले श्रीप्रिया प्रियतमजू के साथ उसे दन्तधावन नाम की कुञ्ज में पधारना चाहिये ॥४५॥

तयाऽयोनिजया सार्कं पुनर्वै मज्जनालयम् ।
अथोपभोजनागारं शृङ्गाराख्यं ततः परम् ॥४६॥

पुनः श्रीकिशोरीजू के सहित स्नानकुञ्ज, उसके बाद फलेवा कुञ्ज, तदनन्तर शृङ्गार कुञ्ज में पधारे ॥४६॥

सभागारं ततस्ताभ्यमालियूथशतैरपि ।
अधिगच्छेत्ततः कुञ्जं भोजनाख्यं मनोहरम् ॥४७॥

पुनः सखियोंके सैकड़ों यूथोंके सहित, श्रीप्रियाप्रियतमजूके साथ सभाभवन जावे। वहाँसे मन को हरण करने वाले 'भोजन' नामक महल में गमन करे ॥४७॥

ततो विश्रामकुञ्जं च सर्वभोगसमन्वितम् ।
विचित्ररचनायुक्तं ताभ्यां ताभिश्च संव्रजेत् ॥४८॥

भोजनके बाद उन सभी सखियोंके साथ वह श्रीयुगल सरकारके सहित, सब प्रकारके भोग्यपदार्थोंसे परिपूर्ण, अत्यन्त आश्चर्यमयी रचनासे युक्त, विश्रामकुञ्जमें जावे ॥४८॥

फलभोजननैदाघरत्नसिंहासनादिषु ।
रासहिंडोलप्रभृतिनामभिर्विश्रुतासु च ॥४९॥
एतेषु सर्वकुञ्जेषु यो विहारो विहारिणोः ।
अतिचित्रो विचित्रश्च भावनीयस्तदन्वहम् ॥५०॥

श्रीफलभोजनकुञ्ज, श्रीनिदाघकुञ्ज, श्रीरत्नसिंहासनकुञ्ज, श्रीरासकुञ्ज, श्रीहिंडोलकुञ्ज आदि नामोंसे प्रसिद्ध इन सभी कुञ्जोंमें जो श्रीविहारिणीविहारी (श्रीसीताराम) जीका अत्यन्तसे अत्यन्त परम आश्चर्यमय विहार होता है, उसका प्रति दिन उसे चिन्तन करना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥

ताभ्यां च गम्यते यत्र विहाराय यदा यदा ।
गत्वाऽनन्तसखीभिश्चाचरेद्दास्यं तु वै तयोः ॥५१॥

जहाँ, जब जब श्रीयुगल सरकार भक्तोंको अनेक प्रकारका सुख प्रदान करने वाली लीला करनेको पधारें, तब २ वह अनन्त सखी वरिन्दके साथ जाकर वहाँ श्रीप्रियाप्रियतमजूके प्रति दासीभाव व्यवहार करे ॥५१॥

श्रीशृंगारवनं रम्यं विहारवनमद्भुतम् ।
पारिजातं तथाऽशोकं तमालारण्यमेव च ॥५२॥
चम्पकं च रसालं च श्रीविचित्रवनं तथा ।
अनङ्गकाननं दिव्यं कदम्बारण्यमुत्तमम् ॥५३॥
चन्दनं चारुशोभाढ्यं वनं श्रीनागकेशरम् ।
द्वादशैतानि रम्याणि सुवनानि निबोध मे ॥५४॥

१—श्रीशृङ्गारवन, २—श्रीविहारवन, ३—श्रीपारिजातवन, श्रीअशोकवन, ५—श्रीतमालवन ६—श्रीचम्पकवन, ७—श्रीरसालवन, ८—श्रीविचित्रवन, ९–श्रीअनङ्गवन, १०–श्रीकदम्बवन, ११–श्रीचन्दनवन, १२–श्रीनागकेशरवन, इन बारह वनोंको आप अत्यन्त सुन्दर श्रीयुगलसरकारके विहार करनेके योग्य, समझो ॥५२॥५३॥५४॥

एतेषु वनमुख्येषु ह्यान्दोलं होलिकोत्सवम् ।
रासोत्सवं तथा ध्यायेत्तयोः श्रीप्रेयसोः शुभम् ॥५५॥

इन मुख्य द्वादशवनों में श्रीप्रियाप्रियतमजूके मङ्गलमय झूलन, होली, रास आदिक उत्सवोंका वह ध्यान करे ॥५५॥

चङ्गादिकास्तथा लीला रचितेषु सखीजनैः ।
दिव्यस्थलेषु संभाव्या विहारश्च विचित्रकः ॥५६॥

उसी प्रकार सखियोंके द्वारा रचना किये हुये दिव्य स्थानोंमें श्रीयुगलसरकारकी पतङ्ग आदिक लीलाओं तथा विचित्र विहारोंका उसे ध्यान करना चाहिये ॥५६॥

शृंगाराद्रिश्च रत्नाद्रिः श्रीलीलाद्रिस्तथैव च ।
मुक्ताद्रिः पर्वतो रम्यश्चत्वारो गिरयस्त्विमे ॥५७॥

श्रीशृङ्गाराद्रि, श्रीरत्नाद्रि, श्रीलीलाद्रि, श्रीमुक्ताद्रि, ये चार बड़े ही सुन्दर मणिमय पर्वत हैं ५७॥

विषयांश्च परित्यज्य तौ भजेत्स्वहितैषिणौ ।
भाव्यौ सर्वगतौ नित्यौ सर्वभूतमयावुभौ ॥५८॥

चल, बुद्धिको नष्ट करने वाले इन्द्रियोंके सभी प्रकारके विषयोंको परित्याग करके अपने परम हितैषी (हित चाहने वाले) श्रीप्रियाप्रियतम श्रीसीतारामजूका वह भजन करे, और उसे

अपने दोनों (श्रीयुगल) सरकारको सर्वत्र (सब जगह) विराजमान, सदा एक रस रहनेवाले, तथा सभी प्राणियोंका स्वरूप धारण किये हुये सदा निश्चय करना चाहिये ॥५८॥

तयोः कृपाभिलाषश्च कर्त्तव्यः सततं तया ।
क्षुधार्दितेन चान्नस्य क्रियते वै यथैव सः ॥५९॥

जैसे भूखसे व्याकुल मनुष्य अन्नकी चाह करता है, उसी प्रकार साधकको श्रीयुगल-सरकारकी कृपाकी परम अभिलाषा सतत (सब समय) बनाये रहनी चाहिये ॥५९॥

रागद्वेषौ विमुच्याथ काङ्क्ष्यं सर्वहितं सदा ।
प्रीत्या प्रगल्भया कार्यं तयोर्नामानुकीर्त्तनम् ॥६०॥

राग कहते हैं आसक्ति को और द्वेष कहते हैं वैरको, सो इन दोनोंका परित्याग करके सदा प्राणिमात्रके हितकी ही चाह करनी चाहिये, तथा युगलसरकारके "श्रीसीताराम" इस शुभ मङ्गल नामका गाढ़ी प्रीतिके सहित अर्थात् अत्यन्त अनुरागके साथ बराबर कीर्त्तन करते रहना चाहिये ॥६०॥

सम्बन्धे च तथा मन्त्रे श्रीसीतारामयोस्तयोः ।
पूर्णश्रद्धा प्रकर्त्तव्या प्रीतिश्च परमाऽचला ॥६१॥

और श्रीयुगलसरकारके (आचार्य द्वारा प्राप्त हुये) सम्बन्ध तथा मन्त्रमें पूर्ण श्रद्धा एवं परम अटल प्रीति करनी आवश्यक है ॥६१॥

सदा सेवाष्टयामेन कर्त्तव्या निश्चलात्मना ।
शान्तिशीलक्षमाऽहिंसापरितोषादिसम्पदाम् ॥६२॥
यथा शक्ति यतेतास्यै ह्येतद्धनमनुत्तमम् ।
प्रतिक्षणं तयोः कार्यं स्मरणं पादपद्मयोः ॥६३॥

श्रीप्रियतमजूकी अष्टयाम सेवा गुरुदेवकी बतलाई हुई रीतिके अनुसार सदा एकाग्रचित्त होकर करनी चाहिये। "शान्ति" (वह शक्ति जो सुख-दुःख, संयोग-वियोग, आदि अनेक द्वन्द्वोंके उपस्थित हो जाने पर भी चित्तको उथल-पुथल होनेसे बचाती है अर्थात् चित्तको स्थिर रखती है) "शील" (वह गुण जो मनुष्यको अपने हृदयकी अभिमानशून्यता और कृतज्ञताकी वृद्धिके द्वारा ही प्राप्त होता है) "क्षमा" (वात्सल्य, सौहार्द, सौजन्यादि गुणोंसे प्राप्त हुई वह 'सहन-

शक्ति' जो सामर्थ्य होते हुये भी अपराधी जीवोंके लिये दण्ड देनेकी इच्छा को ही हृदयमें नहीं आने देती) "अहिंसा" (वह गुणमयी शक्ति, जो दुष्टसे दुष्ट प्राणीको भी किसी प्रकार दुखी करनेकी भावना भी हृदयमें नहीं आने देती) "परितोष" (सभीकी श्रद्धा कराने वाला वह दिव्यगुण जो किसी भी परिस्थितिमें लोलुपता (लालच) हृदयमें नहीं प्रकट होने देता)। आदिक सुसम्पत्तियोंकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता रहे, क्योंकि यह धन ही सर्वश्रेष्ठ धन कहा गया है। प्रत्येक क्षण श्रीयुगलसरकारके श्रीचरणकमलोंका स्मरण करना ही उसका परम कर्त्तव्य है ॥६२॥६३॥

हेमा क्षेमा वरारोहा सुभगा पद्मगन्धिनी ।
लक्ष्मणा चारुशीला च तथा चन्द्रकलाभिधा ॥६४॥

श्रीहेमाजी, श्रीक्षेमाजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीसुभगाजी, श्रीपद्मगन्धाजी, श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीचारुशीलाजी, श्रीचन्द्रकलाजी ॥६४॥

अष्टाविमास्तथा मुख्यास्तयोः सख्य उदाहृताः ।
सर्वसौभाग्यसम्पन्ना गुणरूपविभूषिताः ॥६५॥

ये श्रीप्रियाप्रियतमजूकी सर्वसौभाग्यसे परिपूर्ण, और गुण रूपसे शोभायमान, मुख्य अष्ट (यूथेश्वरी) सखी कही गयी हैं ॥६५॥

इमा यूथेश्वरीणां च प्रवराः परमेशयोः ।
सखीनामपि सर्वासां नियन्त्र्यो हि विशेषतः ॥६६॥

ये अष्ट सखी विशेष रूपसे सभी सखियोंको स्वेच्छानुसार नियम-बद्ध करने वाली श्रीसर्वेश्वरी-सर्वेश्वर युगलप्रभु श्रीसीतारामजीकी समस्त यूथेश्वरी सखियोंमें सबसे श्रेष्ठ (पदवाली) हैं ॥६६॥

आसामपि प्रधाने द्वे यूथेश्वर्यौ प्रकीर्त्तिते ।
एका चन्द्रकला ज्ञेया चारुशीलाऽपरा प्रिये ! ॥६७॥

हे प्रिये ! इन अष्ट महायूथेश्वरियों में भी दो यूथेश्वरी प्रधान कही गयी हैं, उनमें एक श्रीचन्द्रकलाजीको जानो और दूसरी श्रीचारुशीलाजीको ॥६७॥

सेवाधर्मसुकुशले नितम्प्रयुक्ते सरोजदलनेत्रे ।
प्रेमाप्लावितहृदये सकलविधौ मुख्यभावज्ञे ॥६८॥

ये दोनों यूथेश्वरी सुन्दर नितम्बवाली, कमलदललोचना, सब प्रकारके भावोंकी एक ही (सर्व श्रेष्ठ) पण्डिता (जानने वाली) हैं, इनका हृदय श्रीयुगलसरकारके प्रेम प्रवाहमें सदा ही डूबा रहता है ॥६८॥

सत्सङ्गेन विशेषं च रसग्रन्थवरैस्तथा ।
ज्ञायतां त्यज्यतां चापि कुसङ्गस्तु दुरात्मनाम् ॥६६॥

उपासना की और विशेष बातें उसे निजरस के उपासक सन्तों के सत्सङ्ग से तथा निजरस प्रधान श्रेष्ठ ग्रन्थों के द्वारा ज्ञात करनी चाहिये और दुष्टबुद्धियों की कुसङ्गतिका निश्चय ही परित्याग रखना चाहिये ॥६६॥

दिव्यं परिकरं विद्यात् समस्तं भावनास्पदम् ।
नित्यं रसमयं चैव गतमायं चिदात्मकम् ॥७०॥

समस्त परिकरको दिव्य, भावना करने योग्य, सदा एक रस रहने वाला, आनन्दमय, पञ्च-भूतोंकी सृष्टिसे रहित, चैतन्य (इष्ट) स्वरूप समझे ॥७०॥

नाम्नि रूपे च लीलायां प्रसादे धाम्नि वै तयोः ।
भाविताऽनन्यता सद्भिस्तत्पराणां च सङ्गतिः ॥७१॥

इस रसके साधकके लिये सन्तोंने श्रीयुगल सरकारके नाम, रूप लीला, धाम, प्रसाद आदिकमें सर्वोपरि श्रद्धा रखना और युगल उपासकोंकी ही सङ्गति करना मुख्य कर्तव्य बतलाया है ॥७१॥

इत्थं स्वभावे परिबद्धचित्तैर्येप्सिते नैकविधेऽप्यासम् ।
मोक्षो हि किं धाम परं दुरापं संप्राप्यते जन्तुभिरेव सर्वैः ॥७२॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ।

हे प्रिये ! इस प्रकार श्रीयुगलसरकारके साथ नित्यसम्बन्ध जोड़नेके लिये, असंख्य प्रकारके भावोंमें से अपने हृदयको रुचिकर प्रतीत होने वाले किसी एक भावमें जो साधक अपने चित्तको आसक्त कर देते हैं, उन सभी भाग्यशालियोंके लिये मोक्ष ही क्या ? अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होनेवाला प्रभुका नित्य धाम भी, बिना किसी प्रकारका कष्ट सहन किये ही सुखपूर्वक, प्राप्त हो जाता है ॥७२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः।

पराशक्तिके अवतार लेनेका क्या कारण है ? यह सुनकर श्रीयाज्ञवल्क्यजीका श्रीशिव-पार्वती सम्वाद वर्णन।

श्रीकात्यायन्युवाच।

भाग्योदयेन कृपया जनकात्मजाया हे प्राणनाथ! भवताऽस्मिकृता कृतार्था।
साकेतलब्धिसुखसाधनमुक्तमस्मात् तुभ्यं नमोऽस्तु मम कोटिसहस्रकृत्वः ॥१॥

सूतजी कहते हैं कि हे शौनकजी ! यह सब रहस्य श्रीयाज्ञवल्क्य महाराजके मुखारविन्दसे श्रवण करके श्रीकात्यायनीजी अपनी प्रार्थना निवेदन करती हैः—हे प्राणनाथ ! श्रीकिशोरीजीकी कृपासे आज मेरा परम सौभाग्यका उदय हुआ, जो आपने मुझे श्रीसाकेतधाम प्राप्तिका सुख-साध्य-साधन बतलाकर कृतार्थ कर दिया, अत एव आपके लिये मेरा करोड़ों सहस्रबार नमस्कार है ॥१॥

यस्याः कृपातिपरमेपणयाऽप्यजस्रं संसेव्यते चिरमियं मिथिलामहाभूः।
आविष्कृतं सुललितं तिलकं च भूमेः पादारविन्दरजसाऽप्यवतीर्णया च ॥२॥

विश्वमें पधारकर श्रीकिशोरीजीने अपने श्रीचरणकमलोंकी रजसे, जिसको स्वयं समस्त भूमिके सुन्दर तिलक होनेका महान् गौरव प्रदान किया है; उस श्रीमिथिला भूमिका जिन (श्रीकिशोरीजी) की कृपा प्राप्तिकी परम अभिलाषासे ही हम बहुत दिनों से सेवन कर रही हैं ॥२॥

दिव्यप्रशस्यगुणरूपदयोरुशक्तिः साऽऽविर्बभूव निमिवंश उदारकीर्तिः।
कस्मात्कथं कथय याज्ञिकवेदिगर्भद्रूपेण केन वयसा वदतां वरिष्ठ! ॥३॥

जिनकी सुन्दर कीर्त्ति स्मरण, मनन, कीर्त्तन, अध्ययन, (पाठ) श्रवण आदिके द्वारा सभी प्रकारके दुर्लभसे दुर्लभ मनोरथोंको प्रदान करने वाली है, वे अलौकिक प्रशंसा करने योग्य अनन्त गुण-स्वरूप, महाशक्तिसम्पन्ना, करुणावरुणालया सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी निमिवंशमें किस लिये, किस प्रकार, किस रूपसे, किस अवस्थासे यज्ञवेदीके गर्भ याने मध्यसे प्रकट हुईं ? हे वक्ताओंमें शिरोमणि ! उसे आप मुझसे कथन करें ॥३॥

सर्वेश्वर्या जगन्मातुः परा-शक्तेर्महीतले।
आविर्भावो मुनिश्रेष्ठ ! महाश्चर्यप्रदो हि मे ॥४॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! जो सर्वेश्वरी अर्थात् स्थावर जङ्गम, लोक, लोकपाल, छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े सभी चेतनोंके उपर शासन करनेवाली हैं, जो सभी चर-अचर प्राणियोंके जन्मदाताओंकी आदि जन्मदाता हैं, तथा जो श्रेष्ठसे श्रेष्ठ सभी शक्तियोंकी शिरोमणि हैं, उन श्रीकिशोरीजीका भूतलमें प्रकट होना हमें बहुत ही आश्चर्य प्रदान कर रहा है ॥४॥

यस्या नादिं न मध्यं च नान्तं वेदविदो विदुः ।
तस्या वत किमत्र स्यादाविर्भावप्रयोजनम् ॥५॥

वेदवेत्ता भी जिनका न आदि, न मध्य, न अन्त जान सके, अहो ! उन श्रीकिशोरीजीके भूतल पर पधारनेका क्या प्रयोजन हुआ ? ॥५॥

यस्याः स्थिताश्च सेवायां महामायादिशक्तयः ।
तस्या वत किमत्र स्यादाविर्भावप्रयोजनम् ॥६॥

जिनकी सेवामें महामायादि सभी प्रमुख शक्तियां सदा विद्यमान रहती हैं, अहो ! उन श्री किशोरीजीको इस पृथिवीतल पर प्रकट होनेकी क्या आवश्यकता पड़ी ॥६॥

यस्या भृकुटिसञ्चाराद्ब्रह्माण्डानां भवाप्ययौ ।
तस्या वत किमत्र स्यादाविर्भावप्रयोजनम् ॥७॥

जिनके भौंहके इधर-उधर करने मात्रसे ही अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति और विनाश हो जाता है भला, उन श्रीकिशोरीजूका इस मनुष्य लोकमें प्रकट होनेका क्या तात्पर्य ? ॥७॥

यया सर्वमिदं विश्वं यथा रामेण वै ततम् ।
तस्या वत किमत्र स्यादाविर्भावप्रयोजनम् ॥८॥

जैसे परात्पर ब्रह्म प्रभु श्रीरामके द्वारा यह सारा दृश्य जगत् व्याप्त है, उसी प्रकारसे जिनकी सत्तासे भी यह सारा दृश्य जगत् अभिव्याप्त है, अहो ! हमारी उन श्रीकिशोरीजीको धरातल पर प्रकट होनेकी भला क्या आवश्यकता हो सकती है ? ॥८॥

चन्द्रभान्वग्निदामिन्यो यस्यास्तेजोऽधिसीकरात् ।
दुर्निरीक्ष्या जगत्सर्वं भासयन्ति प्रभान्विताः ॥९॥

जिनके समुद्रवत् तेजके सीकर मात्र तेजसे कठिनता पूर्वक देखने योग्य प्रकाशयुक्त चन्द्र, सूर्य, अग्नि, बिजुली आदि सारे जगत् को प्रकाशमय कर देते हैं ॥९॥

सा कथं गोचरीभूय चक्षुषां चर्मचक्षुषाम्।
लीलाश्चकार सर्वज्ञ ! सच्चिदानन्ददायिनीः ॥१०॥

हे सर्वज्ञ ! अर्थात् सभी गूढ़ बातोंके रहस्यको जानने वाले प्रभो ! जिनके सीकर मात्र तेजके कुछ अंशका दर्शन भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त हो सकता है, भला उन श्रीकिशोरीजीने चर्म चक्षुओं वाले मनुष्योंके नयन गोचर होकर किस प्रकार ? सत् चित् आनन्द (भगवदानन्द) प्रदान करने वाली लीलायें कीं ॥१०॥

कानि कानि चरित्राणि शैशवानि कृतान्यथ।
तया पद्मपलाशाक्ष्या पुत्र्या श्रीमिथिलेशितुः ॥११॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पुत्री कहाकर अर्थात् उनके पुत्रीभावको स्वीकार करके उन कमल-दललोचना श्रीकिशोरीजी ने कौन २से शिशु चरित किये ? ॥११॥

तानि संश्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तवाननात्।
श्रावयितुं कृपासिन्धो ! त्वं कृपां कर्तुमर्हसि ॥१२॥

हे कृपा सिन्धो ! मैं आपके श्रीमुखारविन्दसे विस्तार पूर्वक उन्हें श्रवण करना चाहती हूँ, अत एव आप उन चरितोंको मुझे सुनानेकी अवश्य कृपा करें ॥१२॥

यथा चान्याः श्रुता नाथ ! कथा विस्तरशो मया।
न तथा निमिभूपाया अद्यावधि भवन्मुखात् ॥१३॥

हे नाथ ! जैसे और बहुत सी कथायें मुझे विस्तार पूर्वक आपके श्रीमुखारविन्दसे श्रवण करने को मिली हैं, उस प्रकार श्रीकिशोरीजीकी बाल्यावस्थादिकी लीलायें मुझे आज तक नहीं श्रवण करनेको प्राप्त हुईं ॥१३॥

एवमुक्तो महातेजाःसर्वतत्त्वविदां वरः।
याज्ञवल्क्यो मुनिश्रेष्ठो व्याजहार वचो हसन् ॥१४॥

श्रीसूतजी बोले। हे श्रीशौनकजी ! श्रीकात्यायनीजीके इस प्रकार प्रार्थना करने पर महातेजस्वी, सकलतत्त्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ एवं भगवद्गुण, रूप, रहस्यादिकोंके मननकरनेवालोंमें उत्तम श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज मुस्कराते हुये श्रीकात्यायनीजीसे बोले ॥१४॥

धन्याऽसि कृतपुण्याऽसि भूरिभागाऽसि वल्लभे !
यतस्ते हृदि सीतायाः श्रोतुं लीलाः सुलालसा ॥१५॥

हे श्रीगौनकजी ! श्रीयाज्ञवल्क्य महाराज बोले:—हे प्रिये ! आपके हृदयमें श्रीकिशोरीजीके चरितोंके श्रवण करनेकी उत्सुकता है, अतएव आप सभी पुण्यकर्मोंको कर चुकने वाली धन्य २ और बड़ा भागिनी हैं ॥१५॥

अत्र ते कथयिष्यामि संहितां परमाद्भुताम् ।
जानकीयशसोपेतां महाशम्भुप्रभाषिताम् ॥१६॥

हे प्रिये !, श्रीकिशोरीजीके चरित श्रवण करनेकी आपकी इच्छाको पूरी करनेके लिये उन (श्रीकिशोरीजी) के यशसे ओतप्रोत भगवान् महाशम्भुकी कही हुई संहिताका मैं आपसे वर्णन करूँगा ॥१६॥

यद्यप्यृषिवरैस्तस्या लीला नैव प्रकाशिताः ।
अमूल्यधनवत्सायो विन्यस्ता हृदि गर्तके ॥१७॥

यद्यपि मुख्य ऋषियोंने अपने हृदय रूपी तरहरामें धरी हुई श्रीकिशोरीजीकी लीलाओंको अमूल्य (बहुमूल्य) सम्पत्ति सरीखे मानकर विशेष रूपसे उन्हें प्रकाशित (प्रसिद्ध) नहीं किया है ॥१७॥

तथापि प्रीयमाणेभ्यः सातिश्रद्धेभ्य आदरात् ।
वक्तुं मुख्याधिकारिभ्यश्चक्रुरेव यथा कृपाम् ॥१८॥
तथैव तेऽपि व्याख्यास्ये श्रद्धावत्यै वरानने ।
प्रसादितो भृशं सीतालीलासंस्मारणात्त्वया ॥१६॥

फिर भी उन महर्षियोंने अत्यन्त श्रद्धा युक्त, चरित सुननेके मुख्य अधिकारी, अपने प्रेमपात्रोंके प्रति जैसे श्रीकिशोरीजीके चरितोंको वर्णन करनेकी कृपाकी है, उसी प्रकार मैं भी आपसे उनका अवश्य वर्णन करूँगा, क्योंकि एक तो श्रीकिशोरीजीके चरितोंको स्मरण करानेसे मेरा हृदय आपके प्रति बहुत ही प्रसन्न हो रहा है, दूसरे चरित श्रवण करनेके लिये आपकी श्रद्धा भी विशेष है ॥१८॥१६॥

एकदा शोभने ! यात्रा कैलाशस्य मया कृता ।
तस्यामासादितं देवि ! कथारत्नमिदं शुभम् ॥२०॥

हे शोभने ! अर्थात् अपने मङ्गलमय आचरण व्यवहारोंसे प्राप्तशोभे ! एक समय मैंने कैलाशकी यात्रा की थी। हे देवि ! अर्थात् दैवीगुण युक्ते ! उस यात्रामें श्रीकिशोरीजीका कथा रूपी यह रत्न मुझे प्राप्त हुआ था ॥२०॥

प्रार्थ्यमानेन पार्वत्यै दीयमानं पिनाकिना ।
समक्षं ब्रह्मपुत्राणां यथाऽऽप्तं तद्वदामि ते ॥२१॥

बहुत प्रार्थना करने पर ब्रह्मपुत्र सनकादिकोंके सामने श्रीपार्वतीजीके लिये भगवान् शङ्करजी के द्वारा प्रदान करते हुये यह कथा रत्न हमें जिस प्रकार मिला है, उसे आप से कहता हूँ ॥२१॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

प्राणेशाम्भोजपत्राक्ष ! जीवसंसृतिवारणम् ।
साधनं सुखसाध्यं मे किञ्चनाख्यातुमर्हसि ॥२२॥

श्रीपार्वतीजी श्रीभोलेनाथजीसे बोलीं :—हे प्राणनाथ ! हे कमलदललोचन ! जीव के जन्म-मरणको दूर कर देने वाले, तथा सुखसे करने योग्य, किसी साधनको बतलानेकी कृपा करें ॥२२॥

रहस्यं जानकीजानेर्विस्तरेण मया श्रुतम् ।
कृपातस्तव योगीन्द्र ! साक्षाच्छ्रीमुखपङ्कजात् ॥२३॥

हे योगिराज प्रभो ! आपकी कृपासे, आपके श्रीमुखारविन्दसे ही श्रीजानकीवल्लभलालजू का रहस्य मैं ने विस्तार पूर्वक सुना है ॥२३॥

न तु सर्वसहा-पुत्र्या बाललीला मया श्रुता ।
अद्यावधि कृपासिन्धो ! स्वस्वामिन्या महाप्रभो ! ॥२४॥

हे कृपासिन्धो ! (अर्थात् अपार कृपा से युक्त) हे महाप्रभो ! (अर्थात् महान् समर्थ) परन्तु अपनी श्रीस्वामिनी (श्रीभूमिनन्दिनी) जू की बाललीला ही आजतक मुझे सुननेको प्राप्त नहीं हुई ॥२४॥

श्रीमताऽपि न मे जातु कृपातः श्राविता प्रिय !
तन्न युक्तं दयागार ! शरणागतवत्सल ! ॥२५॥

हे प्यारे ! श्रीमानने भी कभी कृपा करके मुझे उसको नहीं श्रवण कराया । हे दयाके निवासस्थान ! हे शरण आये हुये जीवोंके अपराधों पर ध्यान न देकर, केवल उनका परमहित चाहनेवाले प्रभो ! यह योग्य नहीं हुआ ॥२५॥

महानस्त्यभिलाषो मे श्रोतुं बालयशः शुभम् ।
मैथिल्यास्त्वदृते स्वामिन् ! कं पृच्छामि ततो वद ॥२६॥

हे स्वामिन् ! श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके मङ्गलमय बाल-चरित सुननेके लिये मेरी बड़ी ही उत्कण्ठा है, उन्हें आपको छोड़कर और किससे पूछूँ ? अत एव आप ही कृपा करके उनका कथन करें ॥ २६ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः सानुरागं सुखश्रवम् ।
प्रणयाद्भाषितं युक्तं शङ्करो हर्षनिर्भरः ॥२७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले, हे प्रिये! श्रवणोंको सुख देनेवाले, अनुराग युक्त, श्रीपार्वतीजीके प्रणयपूर्वक कहे हुये इस प्रकारके वचनोंको श्रवण करके भगवान् श्रीशङ्करजी हर्षमें डूब गये ॥२७॥

तूष्णीं भूत्वा ततः किञ्चिद्बाष्पाकुलितलोचनः ।
गाढमालिङ्ग्य तां प्रेम्णा स्वस्थचित्तो महेश्वरः ॥२८॥

पुनः नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुये थोड़ी देर बिल्कुल मौन रहकर, भगवान शङ्करजी उन (श्रीगिरिराजकुमारीजी) को प्रेमपूर्वक हृदयसे लगाकर स्थिर चित्त हुये ॥२८॥

प्रशस्य बहुशः प्राह नोक्ता सत्यमिति प्रियाम् ।
अपृच्छाभाषणे दोषं मया देवि! प्रपश्यता ॥२९॥

हे श्रीशौनकजी! इसके बाद बहुत कुछ प्रशंसा करके श्रीपार्वतीजीसे भगवान शिवजी बोले:-- हे देवि! बिना पूछे श्रीभगवानके रहस्योंको वर्णन करनेके दोषको मैं जानता हूँ, अत एव तुम्हारे बिना पूछे श्रीकिशोरीजीकी लीलाओंको मैं ने नहीं सुनाया यह सत्य ही है ॥२९॥

जीवसंसृतिमोक्षाय पर्याप्तं साधनं हि तत् ।
मया यच्छंसितं पूर्वं पृच्छन्त्यै ते सविस्तरम् ॥३०॥

प्राणियोंको जन्म-मरणसे छुड़ाने वाला सबसे सरल और सुख-साध्य वह पर्याप्त साधन है, जिसको पूर्व ही में आपके पूछने पर, मैं विस्तार पूर्वक कथन कर चुका हूँ ॥३०॥

अथ ते कथयिष्यामि प्रिये! त्वद्वाञ्छितप्रदम् ।
सुचित्रानन्दिनीराम-संवादं परमाद्भुतम् ॥३१॥

हे प्रिये! अब मैं आपसे परम आश्चर्यमय श्रीसुचित्रानन्दिनी और प्रभु श्रीरामके सम्वादको कहूँगा जो, आपकी श्रीकिशोरीजीके चरित-श्रवण-अभिलाषाको अवश्य पूरी करेगा ॥३१॥

तोषितायां मया भक्त्या मैथिल्यां लब्ध एव यः ।
तदाज्ञप्तेन रामस्य पररूपदिदृक्षया ॥३२॥

हे प्रिये! एक समय प्रभु श्रीरामके परात्पर स्वरूपके दर्शनोंकी इच्छासे मैं ने उनके मन्त्रराजका अनुष्ठान किया, तब उन्होंने मुझे श्रीकिशोरीजीकी आराधना करने की आज्ञा दी, प्रभुके आज्ञा-

नुसार मैं उनकी आराधना में लग गया, मेरे प्रेमसे श्रीकिशोरीजी प्रसन्न हो गयीं, उनके प्रसन्न होने पर, उनके आशीर्वाद से मुझे यह संवाद प्राप्त हुआ ॥३२॥

॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥

एतद्रहस्यमाख्यातुं कृपां कृत्वा ममोपरि ।
तृशार्त्तां मां भुवः पुत्र्याः पाययस्व कथामृतम् ॥३३॥

हे श्रीशौनकजी ! श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोले–हे प्रिये ! भगवान् शङ्करजीके इस गूढ़ वचनको सुनकर भगवती श्रीपार्वतीजीने प्रार्थना की:–हे प्यारे ! अब पहले आप इस रहस्यको कृपा करके सुनाइये, तदनन्तर मुझ प्यासीको श्रीकिशोरीजीके चरित रूपी अमृतका पान कराइये ॥३३॥

त्वयि मे प्राप्तये देवि ! चरन्त्यां परमं तपः ।
गिरिराज सुते ! श्रुत्वा नारदस्य प्रभाषितम् ॥३४॥

श्रीशिवजी श्रीपार्वतीजीसे बोले:–हे प्रिये ! जिस समय श्रीनारदजीका उपदेश सुनकर आप मेरी प्राप्तिके लिये विशाल तप कर रही थीं ॥३४॥

दिदृक्षमाणः सद्रूपमेकदा जानकीपतेः ।
अजपं मन्त्रराजं तद्दिव्यवर्षशतं शिवे ! ॥३५॥

हे कल्याणि ! उसी अवसर पर एक समय श्रीजानकी-वल्लभलालजूके परात्पर स्वरूपके दर्शन करनेकी इच्छासे मैंने दिव्य सौ वर्ष तक उनके मन्त्रराजका जप किया ॥३५॥

तदा प्रसन्नो भगवाञ्छ्रीरामो मामवोचत् ।
मन्त्रसंवेद्यरूपेण कृपासिन्धुरिदं वचः ॥३६॥

तब कृपासागर, भगवान् श्रीरामजी प्रसन्न होकर मन्त्र संवेद्य (मन्त्र शक्ति द्वारा दर्शन प्राप्त होने योग्य) अपने स्वरूपसे प्रकट हो मुझसे बोले:–॥३६॥

द्रष्टुमिच्छसि चेद्रूपं मदीयं परतः परम् ।
महेशाभावनागम्यं मम शक्तिं समाश्रय ॥३७॥

हे महेश ! यदि आप भावनासे प्राप्त होने योग्य मेरे परात्पर स्वरूपका दर्शन करना ही चाहते हैं, तो, मेरी आह्लादिनी शक्तिकी शरण ग्रहण करें ॥३७॥

सा हि वै परमोपायो मम प्राप्तेः सदा शिव !
विनाराधनया तस्या न मे तुष्टिः कथञ्चन ॥३८॥

हे शिव ! यह निश्चय जानो मेरी प्राप्ति का "सर्वश्रेष्ठ उपाय" सदा वे ही श्रीकिशोरीजी हैं, बिना उनकी आराधनाके किसी प्रकारसे भी मुझे प्रसन्नता नहीं होती ॥३८॥

सा ममात्मा परिज्ञेया स्वेच्छयात्तसुविग्रहा ।
तया युक्तोऽस्म्यहं रामो विरामश्च तया विना ॥३६॥

उन्हें निज इच्छासे विश्वविमोहन स्वरूपको धारणकी हुई साक्षात् मेरी आत्मा ही जानिये। उनसे युक्त ही मैं राम (सारे विश्व को आनन्द प्रदान करने वाला हूं, बिना उनके सभीका अन्तिम विश्रामस्थान केवल निरीह, निरञ्जन, सत्तामात्र अनाम, रूप शुद्ध-ब्रह्म हूं ॥३६॥

सा ममास्ति परं तत्वं जीवनं परमं धनम् ।
सुखसाधनमात्मस्था प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥४०॥

अत एव मेरे सुखका साधन, मेरे हृदयमें विराजमान, मेरे प्राणोंसे प्रिय, मेरा परम तत्त्व, मेरा परम जीवन-धन, वे ही श्रीकिशोरीजी हैं ॥४०॥

सर्वस्वं परमाराध्या सर्वसौभाग्यदायिनी ।
मया शक्तिमती ख्याता सा तया शक्तिमानहम् ॥४१॥

वे ही सभी आराधना करने योग्य देवताओंमें श्रेष्ठ, भक्तोंको सब प्रकारका सौभाग्य प्रदान करनेवाली, मेरा सर्वस्व हैं। मुझसे युक्त वे शक्तिमती (आद्या शक्ति) कहलाती हैं, और उनसे ही युक्त मैं सर्वशक्तिमान् कहा जाता हूँ ॥४१॥

एकात्मा द्विशरीरोऽहं रश्मिभ्यां दीपको यथा ।
द्वावावां च स्वरूपाभ्यामेक एव हि वस्तुतः ॥४२॥

जैसे दो ज्योतिवाला दीपक देखनेमें दो प्रतीत होता हुआ भी वास्तवमें एक ही है। उसी प्रकार मैं और मेरी परा-शक्ति श्याम-गौर शरीरके कारण देखनेमें भले ही दो प्रतीत होते हों, किन्तु वस्तुतः दोनों शरीरोंकी आत्मा एक ही है ॥४२॥

शरीरेण विना नात्मा शरीरं नात्मना विना ।
कस्यापि देव ! भूतस्य स्वार्थसिद्ध्यै भवेदलम् ॥४३॥

हे देव ! जैसे किसी भी प्राणीका स्वार्थ पूरा करनेके लिये बिना शरीरके आत्मा, और आत्माके बिना शरीर पर्याप्त नहीं हो सकता है ॥४३॥

मया तया विहीनेन हीनया च तया मया।
कऽपि सिद्धिर्विधातव्या नेति सत्यं ब्रवीमि ते ॥४४॥

उसी प्रकार मैं (पूर्ण ब्रह्म) उन अपनी प्राणप्रिय शक्तिका अवलम्बन लिये बिना किसी प्रकारकी सिद्धिका विधान करनेको समर्थ नहीं हूँ और मुझ ब्रह्मका अवलम्बन लिये बिना वे भी किसीभी सिद्धिका विधान नहीं कर सकतीं, यह मैं आपसे यथार्थ कहता हूँ। सरकारके कहनेका भाव यह है—कि वे "श्रीकिशोरीजी" मुझ ब्रह्मकी इच्छा शक्ति हैं और मैं ब्रह्म उनका शरीर हूँ अतः बिना इच्छाके भला, कौन किसी सिद्धिको कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। और बिना शरीरका अवलम्बन लिये हुये केवल इच्छा भी कैसे कोई सिद्ध कर सकती है ? अतः सरकारका कहना परम युक्त है ॥४४॥

सीति श्रवणमात्रेण हृत्पद्मं मे प्रफुल्लति।
तेति श्रुत्वा पराह्लाद-प्रवाहे याति लोलताम् ॥४५॥

"सी" इस शब्दके श्रवण मात्रसे ही मेरा हृदय कमल खिल जाता है, और इसके आगे यदि "ता" कहीं यह शब्द सुननेको प्राप्त हुआ तो, वह मेरा प्रफुल्लित हृदय-कमल महान् आनन्दके प्रवाह में पड़ कर हिलने-डोलने लगता है ॥४५॥

वेद्य एवमहं तस्याः सर्वस्वं गिरिजापते !
नात्र ते संशयः कार्यो मद्वचनात्कदाचन ॥४६॥

हे गिरिजापते ! इसी प्रकार श्रीकिशोरीजीका सर्वस्व आप मुझे जानिये। मेरे इन वचनोंमें कभी भी सन्देह करना उचित नहीं ॥४६॥

मत्तो दशगुणा सा वै गौरवेणाधिराजते।
धर्मतः सर्वभूतानां माता दशगुणा पितुः ॥४७॥

हे शम्भो ! इतना ही नहीं, अपितु वे श्रीकिशोरीजी मुझसे भी गौरव (प्रतिष्ठा) में दश गुणा अधिक हैं, कारण यह है कि, माताकी मान्यता पितासे धर्म शास्त्रके सिद्धान्तानुसार प्राणी मात्रके लिये दश गुणा विशेष होती है ॥४७॥

मम मन्त्रे स्थिता सा वै तस्या मन्त्रेऽहमास्थितः।
तदाऽऽवां सर्वथाऽभिन्नौ विद्धि साहमसावहम् ॥४८॥

मेरे मन्त्रमें वे श्रीप्रियाजू विद्यमान हैं, और उनके मन्त्रमें मैं विराजमान हूँ। इस हेतु हम दोनोंको अभिन्न एक ही समझो, उनमें मैं हूँ और मुझमें वे हैं ॥४८॥

नावयोर्भेददृष्टिस्ते दिदृक्षोः परमं वपुः ।
मन्त्राभिलक्ष्यरूपेण ततोऽहं दृष्टिगोचरः ॥४६॥

मेरे और मेरी श्रीप्रियाजूके प्रति आपको भेद दृष्टि नहीं है इसीसे मेरे पर (साकेत धाममें विराजमान) स्वरूप देखनेके लिये अभिलाष युक्त होने, पर मैं आपके सामने केवल मन्त्रशक्तिसे देखने योग्य अपने स्वरूपसे प्रत्यक्ष हो गया हूँ ॥४६॥

नाम रूपं च मे लीला धाम मन्त्राद्युपासना ।
तद्वैमुख्यात्मनां कर्तुं न शक्ताः सम्मुखं हि माम् ॥५०॥

हे शङ्करजी ! जिन जीवोंका हृदय श्रीकिशोरीजीसे विमुख है, मेरा नाम, रूप लीला, धाम, तथा मन्त्रादिकी उपासना, कोइ भी उनके सम्मुख मुझको नहीं कर सकता, अर्थात् ये सब प्रधान साधन भी श्रीकिशोरीजीसे विमुख हृदय वाले साधक प्राणियोंको मेरा प्रत्यक्ष दर्शन नहीं करा सकते, यह निश्चय है ॥५०॥

तस्या विमुखजीवानां कामये नेक्षितुं मुखम् ।
कुतस्तद्वाञ्छितं दातुं सत्यमेव वदामि ते ॥५१॥

हे सदा शिव ! आपसे सत्य कहता हूँ, जो श्रीकिशोरीजीसे विमुख प्राणी हैं, उनका मैं मुख भी नहीं देखना चाहता; फिर उनके साधन द्वारा मन चाही सिद्धिको कहाँ तक देनेकी इच्छा कर सकता हूँ ? अर्थात् बिल्कुल नहीं ॥५१॥

युग्मनामरता ये च युग्ममन्त्रानुजापकाः ।
युग्मध्यानसमासक्ता युग्मोपासनतत्पराः ॥५२॥
का सिद्धिर्दुर्लभा तेषामावयोः सुखलभ्ययोः ।
ब्रह्मादिभिस्तु वै येषां पादरेणुर्विमृग्यते ॥५३॥

जो साधक मेरे तथा श्रीप्रियाजीके (युगल) नाममें रत हैं, युगल मन्त्रोंका जप करने वाले हैं, युगल ध्यानमें सब प्रकारसे आसक्त हैं, युगल उपासनामें लगे हुये हैं, उन भाग्यशाली भक्तोंकी चरण धूलिको ब्रह्मादिक देव श्रेष्ठ भी खोजते रहते हैं। हम और श्रीप्रियाजी दोनों ही जब उन्हें सुलभ हो जाते हैं, तब उन्हें भला और कौन सिद्धि दुर्लभ रह सकती है ? ॥५२॥५३॥

अतस्त्वं गिरिजाधीश ! शरच्चन्द्रनिभाननाम् ।
नीलपद्मपलाशाक्षीं कोटिविद्युन्महाप्रभाम् ॥५४॥

अतः हे पार्वती नाथ! आप-जिनका श्रीमुखारविन्द शरद ऋतुके पूर्णचन्द्र सरीखे परमआह्लाद प्रदान करने वाला अति मनोहरण है, नीलकमलदलके सरीखे विशाल जिनके नेत्र हैं, करोड़ों विद्युत-(बिजुली) पुञ्जके समान जिनके श्रीअङ्गका महान प्रकाश है ॥५४॥

तप्तहाटकगौराङ्गीं पक्वबिम्बफलाधराम् ।
रक्ताम्भोरुहहस्ताब्जां जगत्पावनसुस्मिताम् ॥५५॥

तपाये हुये सुवर्णके समान देदीप्यमान, गौर जिनके श्रीअङ्ग हैं, पके बिम्बाफलकी लालिमाके समान अरुण जिनके अधर हैं, लाल कमल जिनके हस्त कमलमें शोभा पा रहा है, जिनकी मन्द मुसकान सभी स्थावर-जङ्गम प्राणियोंको पवित्र करने वाली है ॥५५॥

क्वणन्नूपुरपदाब्जां करुणामृतवर्षिणीम् ।
सर्वशृङ्गारसम्पन्नां परिभूतरतिव्रजाम् ॥५६॥

ताल-स्वरसे बोलते हुये नूपुर जिनके श्रीचरणकमलोंमें सुशोभित हैं, जो करुणारूपी अमृतकी वर्षा करने वाली दिव्य सोरहो प्रकारके शृङ्गारको धारण किये हुई अपने श्रीअंगके सहज सौन्दर्य-माधुर्य से करोड़ों रति समूहोंका अभिमान दमन कर रही हैं ॥५६॥

कोटिशीतांशुतापघ्नीं कोटिसूर्यप्रभाकरीम् ।
कोटिलक्ष्मीपरित्रात्रीं कोटिधात्रीविधायिनीम् ॥५७॥

जो करोड़ों चन्द्रमाओंके समान सहजमें सारे विश्वका ताप-हरण करने वाली, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश करने वाली और करोड़ों लक्ष्मियोंके समान सब प्रकारसे रक्षा करने वाली, तथा करोड़ों ब्रह्माणियोंके तुल्य जो सृष्टि करने वाली है ॥५७॥

कोटिदुर्गासुसंहर्त्रीं कोटिशेषधराधराम् ।
कोटिकालदुराधर्षामशक्यं पराक्रमाम् ॥५८॥

जो करोड़ों शेषोंके समान सहजमें पृथिवी (भूमि) को धारण करने वाली, अर्थात् अपनी शक्तिसे करोड़ों शेषोंकी शक्तिको तिरस्कृत करने वाली है, जो करोड़ों कालके समान जीतने में अशक्य है, जिनका पराक्रम तर्क शक्तिसे बाहर है ॥५८॥

परमाह्लादिनीं शक्तिं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
अचिन्त्यामाप्तसङ्कल्पामगम्यां गीर्मनोधियाम् ॥५९॥

जो आह्लाद प्रदान करने वाली सभी शक्तियोंकी शिरोमणि और कारणस्वरूपा हैं, जिनका स्वरूप सत् (विकार रहित सदा एक रस रहने वाला) चित् (चैतन्य स्वरूप) आनन्दमय है। जो किसीके भी चिन्तनका विषय नहीं हैं। किसी भी प्रकारके सङ्कल्पकी सिद्धि जिन्हें प्राप्त करनी बाकी नहीं है। वाणी, मन बुद्धि जिन्हें प्राप्त करने में असमर्थ हैं ॥५९॥

भजनीयगुणोपेतां श्रयणीयकृपालुताम् ।
श्लाघनीयमहाकीर्त्तिं मननीयगुणावलिम् ॥६०॥

जो भजन करने योग्य सभी विशिष्ट (सौशील्य, वात्सल्य, गाम्भीर्य, कारुण्य, सारल्य, ऐश्वर्य, माधुर्यादि) दिव्यगुणों से युक्त हैं, प्राणीमात्रके लिये सर्वोत्कृष्ट सिद्धिपूर्वक अपनी परिस्थितिः सुरक्षाके लिये जिनकी कृपाका अवलम्बन लेना आवश्यक है, जिनकी महाकीर्त्ति सब प्रकारसे प्रशंसाके योग्य, तथा जिनकी गुण-पङ्क्ति सर्वदा मनन करनेके लायक है ॥६०॥

वाञ्छनीयकरच्छायां चिन्तनीयशुचिस्मिताम् ।
शिरोधार्यकराम्भोजां भावनीयाङ्घ्रिलाञ्छनाम् ॥६१॥

सब प्रकारके तापोंकी निवृत्तिके लिये प्राणी मात्रको जिनके करकमलोंके छायाकी ही इच्छा करनी उचित है, तथा अपने अन्तःकरणकी अपवित्रताको दूर करनेके लिये, जिनकी पवित्र मन्द-मुसकान चिन्तन करने योग्य है। सभी प्रकारकी आपत्तियोंसे निर्भय होनेके लिये, जिनके कर कमल ही अपने शिर पर धारण करने योग्य हैं, विभिन्न प्रकारकी सिद्धि प्राप्तिके लिये जिनके श्रीचरणकमलोंके रेखाओंकी ही भावना करनी उचित है ॥६१॥

श्रवणीययशोगाथां स्मरणीयपदाम्बुजाम् ।
वरणीयपदासक्तिं चरणीयपरस्मृतिम् ॥६२॥

दिव्य गुण प्राप्तिके लिये तथा मेरी प्रसन्नता सिद्धिके लिये जिनके पावन, मङ्गल चरित्र ही श्रवण करने योग्य हैं। मनुष्य जीवन कृतार्थ करने के लिये जिनके श्रीचरण-कमल ही स्मरण करने योग्य हैं, तथा सभी प्रकारकी सांसारिक आसक्तियोंको दूर करनेके लिये जिनके श्रीचरण कमलोंकी आसक्ति ही स्वीकार करने योग्य है। मेरे चित्तको अपनी ओर आकर्षित करने (खींचने) के लिये जिनका सुमिरण ही विशेष रूपसे प्राप्त करने योग्य है ॥६२॥

महामाधुर्यसम्पन्नां सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् ।
निर्व्याजकरुणामूर्त्तिं सर्वजीवानुकम्पिनीम् ॥६३॥

जो महामाधुर्य रससे युक्त सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली हैं, जीवके किसी भी शुभ कर्त्तव्यकी जिसे अपेक्षा नहीं होती, ऐसी करुणाकी जो साक्षात् मूर्त्ति हैं, और सभी जीव मात्र पर जिनकी पूर्ण अनुकम्पा (दया) रहती है ॥६३॥

मम पार्श्वसमासीनां द्योतयन्तीं दिशो दश ।
छत्रचामरहस्ताभिः सखीभिः परिसेविताम् ॥६४॥

जो छत्र-चामर हाथमें लिये हुई अनन्त सखियोंसे सेवित, मेरे पार्श्व (बगल) में विराजमान हुई दशों दिशाओंको प्रकाश मय कर रही हैं ॥६४॥

अनवद्यां गुणातीतां भावयन्मम वल्लभाम् ।
जप तन्मनुराजं वै मन्मन्त्रेण समन्वितम् ॥६५॥

जो गुण, रूप, ऐश्वर्य, माधुर्य आदि अपनी सभी अलौकिक अप्राकृत सम्पत्तियोंके कारण वेद, शास्त्र, लोक, लोकपाल सभीके द्वारा स्तुति करने योग्य हैं, जो सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंसे परे हैं, उन हमारी श्रीप्रियाजीका ध्यान करते हुये उनके मन्त्रराजसे युक्त मेरे मन्त्र राजका आप जप करें ॥६५॥

सीताशब्दश्चतुर्थ्यन्तः स्वाहान्तस्तु षडक्षरः ।
श्री पूर्वो मन्त्रराजोऽयं प्रियाया मम शङ्कर ! ॥६६॥

हे शङ्कर जी ! "श्री" बीज जिनके पूर्व में है पुनः चतुर्थी विभक्तिसे युक्त सीता शब्द (सीतायै) मध्यमें और अन्तमें स्वाहा शब्द है, बस यही हमारी श्रीप्रियाजीका (श्रीं सीतायै स्वाहा) श्रीमन्त्रराज है, श्रीप्रियाजूके सहित मेरा ध्यान करते हुये इस मन्त्रके साथ मेरे षडक्षर मन्त्रराजका जप करें, तब मेरे परात्पर स्वरूपका दर्शन आपको प्राप्त होगा ॥६६॥

इत्युक्त्वा स मया रामो भगवानभिवादितः ।
ह्लादयन्मम गात्राणि तत्रैवान्तरधात्प्रभुः ॥६७॥

श्रीसूतजी श्रीशौनकजीसे और श्रीयाज्ञवल्क्यजी कात्यायनीजीसे बोले:-इतनी कथा श्रीपार्वतीजीको सुनाकर श्रीभोलेनाथजीने कहा–हे प्रिये ! मैंने प्रभुका यह मार्मिक आदेश सुनकर गद्गद हो प्रणाम किया, तब वे भगवान् श्रीरामजी मेरे अङ्ग प्रत्यङ्गको आह्लादित करते हुये उसी जगह अन्तर्धान हो गये ॥६७॥
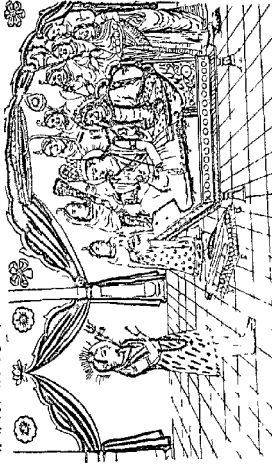
श्रीकिशोरीजी की कृपा से, श्रीभोलेनाथजी को भगवान श्रीरामजी के दिव्य रूप का दर्शन ।

सोऽहं जितेन्द्रियग्रामो युग्ममन्त्रपरायणः ।
युग्मध्यानविलीनात्मा प्राभवं दर्शनाशया ॥६८॥

हे प्रिये ! तत्पश्चात् जिसे भगवान् श्रीरामने अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्राप्तिके साधनको निज श्रीमुखारविन्दसे सुनानेकी कृपाकी थी, वह मैं अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर दोनों प्रभुके परात्पर स्वरूपके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे श्रीयुगल सरकारके ध्यानमें मनको विशेष तल्लीन करके उनके युगल-मन्त्रके जपमें तत्पर हो गया ॥६८॥

कालेनाल्पीयसा देवि ! प्रसन्ना जनकात्मजा ।
दर्शयित्वाऽस्मरूपं तत् परं रूपमदर्शयत् ॥६९॥

हे देवि ! बहुत थोड़े समयमें ही श्रीकिशोरीजी प्रसन्न हो गयीं, और मुझे अपने प्रत्यक्ष स्वरूपका दर्शन कराकर उन्होंने भगवान श्रीरामजीके सहित अपने उस परात्पर स्वरूपका दर्शन भी प्रदान किया ॥६९॥

दृष्ट्वैव सहसा तस्य तेजसाऽहं विमूर्च्छितः ।
समुत्थाय ततोऽपश्यं कथञ्चित्तचिरेप्सितम् ॥७०॥

हे प्रिये ! उस स्वरूपका दर्शन करके, उनके तेजको न सहन कर सकनेके कारण मैं तत्क्षण मूर्छित हो गया, पुनः श्रीकिशोरीजीकी कृपा दृष्टि होने पर सावधान हुआ, तब जिसको देखनेके लिये बहुत दिनोंसे लालायित था, प्रभु श्रीरामके उस परात्पर स्वरूपका मैं दर्शन करने लगा ॥७०॥

अनन्तसूर्यचन्द्राग्निसुप्रभं वल्गुदर्शनम् ।
प्रतिरोमरुचिस्पर्द्धिसहस्ररतिमन्मथम् ॥७१॥

वह स्वरूप अनन्त सूर्य, चन्द्र, अग्निके समान सुन्दर प्रकाशमय, देखते ही चित्तको चुराने-वाला, और अपने रोम-रोमकी शोभासे सहस्रों काम और रतिका मान-मर्दन करनेवाला था ॥७१॥

दर्शनीयं कृपासाध्यं महामाधुर्यमण्डितम् ।
अप्रमेयं गुणातीतं चिदानन्दमयं परम् ॥७२॥

वह युगल परात्पर स्वरूप, महामाधुर्यसे विभूषित, तीनों (सत्व, रज, तम) गुणोंसे परे, अन्त न पाने योग्य, चैतन्य, आनन्दमय, केवल कृपाके द्वारा ही साधनमें आनेवाला, बस देखने ही योग्य था ॥७२॥

मामुवाच ततः साक्षान्मैथिली श्लक्ष्णया गिरा ।
वाक्यं प्रणतिसन्तुष्टा स्मयमानमुखाम्बुजा ॥७३॥

तदनन्तर मेरे प्रणाम करने पर परम प्रसन्न हो मन्द २ मुस्कराती हुई साक्षात् सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी अपनी बड़ी ही मधुर-वाणी द्वारा मुझसे बोलीं ॥७३॥

श्रीसीतोवाच ।

वरं ब्रूहि मुदा शम्भो ! प्रसन्ना वरदाऽस्मि ते ।
यत्त्वया काङ्क्षितं श्रेयः समाधिस्थितचेतसा ॥७४॥

हे शम्भो ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, अत एव समाहित चित्तसे आपने जो अपने लिये श्रेय चाहा हो उसे प्रसन्नता पूर्वक मुझसे माँगिये, मैं तुम्हें अवश्य प्रदान करूँगी ॥७४॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तोऽश्रुपूर्णाक्षः संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
नत्वा गद्गदया वाचा तामयाचत सद्वरम् ॥७५॥

हे प्रिये ! श्रीस्वामिनीजूकी इस कृपा पूर्ण आज्ञाको सुनकर मेरे नेत्र भर आये, परन्तु हृदयको विचार द्वारा किसी प्रकार स्वयं सम्हाल कर गद्गदवाणी पूर्वक उन (श्रीकिशोरीजी) से मैंने यह उत्तम वर माँगा ॥७५॥

यदि दित्ससि संप्रीता वरं मे वरदेश्वरि !
संप्रयच्छाचलां प्रीतिमेतदेवेप्सितं वरम् ॥७६॥

हे वरदाताओंकी स्वामिनीजू ! यदि आप सम्यक् प्रकारसे प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहती हैं, तो अपने श्रीचरण-कमलोंमें मुझे आप निश्चल प्रीति प्रदान करनेकी कृपा करें, यही मेरा ईप्सित वर है ॥७६॥

एवमुक्ता मयाऽचिन्त्या प्रत्युवाच शुभं वचः ।
शृण्वति श्रीरघुश्रेष्ठे ह्लादयन्त्यखिलाः सखीः ॥७७॥

जब मैं ने इस प्रकारकी प्रार्थनाकी, तब चिन्तनमें न आने योग्य वे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी सरकार श्रीरामके सुनते हुये सभी सखियोंको आह्लादित करती हुई मुझसे बोलीं ॥७७॥

श्रीसीतोवाच ।

याचितं यत्त्वया शम्भो ! तन्मया दत्तमेव ते ।
दीयतेऽन्यद्वरं गुह्यं तद्गृहाण महामते ! ॥७८॥

हे महामते ! अब अपनी इच्छासे स्वयं कृपा करके जो मैं वर प्रदान कर रही हूँ ! उसको तुम ग्रहण करो ॥७८॥

कृपया मम देवेश ! श्रुतीनामप्यगोचरम् ।
आवयोः परमं गुह्यं रहस्यं सम्यगेष्यसि ॥७९॥

हे देवेश ! हमारे परस्परका परम गोपनीय रहस्य जिसे वेद भी नहीं जान पाते, उसे आप सम्यक् प्रकारसे ज्ञात कर लेंगे ॥७९॥

गुप्तप्रकटलीलानां द्रष्टा दर्शयिता भवान् ।
चारुशीलास्वरूपेण सदा स्थास्यति मेऽन्तिके ॥८०॥

जो कुछ हमारी गुप्त या प्रकट लीलायें हैं, उन्हें आप स्वयं देखेंगे और अपने जिन कृपापात्रको चाहेंगे दिखा भी सकते हैं तथा श्रीचारुशीला सखीके स्वरूपसे सदा मेरे समीपमें निवास करेंगे ॥८०॥

श्रीशिवउवाच ।

उक्तवत्यामिदं तस्यां रहस्यं परमाद्भुतम् ।
प्रत्यक्षमिव मे सर्वं संबभूव तयोः शुभम् ॥८१॥

हे पार्वति ! श्रीकिशोरीजीके यह उच्चारण करते ही युगल सरकारका मङ्गलमय, परम आश्चर्य युक्त, सबका सब रहस्य मुझे प्रत्यक्षवत् दिखाई देने लगा ॥८१॥

ततः सा प्राणनाथेन सखीभिः परिवारिता ।
त्र्यधीशोपास्यपद्माङ्घ्रिः पश्यतो मे तिरोऽदधात् ॥८२॥

तत्पश्चात् जिनके श्रीचरण कमलोंकी उपासना,ब्रह्मा,विष्णु,महेश आदि देवोंकोभी करनी आवश्यक है, वे श्रीकिशोरीजी सखियोंसे सेवित, अपने प्राणनाथजूके सहित मेरे देखतेर अन्तर्हित हो गयीं ॥८२॥

एवमाप्तं मया देवि ! रहस्यं वर्ण्यतेऽधुना ।
पृच्छया श्रद्धयोपेते ! भक्त्या संतोषितेन ते ॥८३॥

हे देवि ! इस प्रकार आपके पूछने पर,आपके भक्ति-भावसे संतुष्ट होकर,अब मैं उस प्राप्त रहस्य को वर्णन करता हूँ क्योंकि श्रद्धायुक्त होनेसे आप श्रवण करने की अधिकारिणी हैं ॥८३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एतदुक्त्वा प्रियां देवो यथा वक्तुं प्रचक्रमे ।
तथा तुभ्यं प्रवक्ष्यामि शृणु संयतचेतसा ॥८४॥

हे श्रीशौनकजी ! श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोले:—हे प्रिये ! भगवान् श्रीशङ्करजी श्रीपार्वतीजी से इतना कहकर जिस प्रकार कहना प्रारम्भ किये थे, उसी प्रकार मैं भी आपसे कथन करूँगा। आप एकाग्र चित्त हो श्रवण करें ॥८४॥

श्रीकात्यायन्युवाच ।

अर्थं मन्त्रस्य मे ब्रूहि सीतायाश्च परात्परम् ।
यं जपता त्रिनेत्रेण रूपं रामस्य वीक्षितम् ॥८५॥

हे श्रीशौनकजी ! श्रीयाज्ञवल्क्य महाराजके इस वचनको सुनकर श्रीकात्यायनीजी बोलीं:— हे प्राणनाथ ! पहले आप हमें श्रीकिशोरीजीके उस मन्त्र राजका अर्थ समझाइये, जिसके जपसे भगवान् श्रीभोलेनाथजीने सर्वेश्वर, प्रभु, श्रीरामजीके परात्पर स्वरूपका दर्शन प्राप्त किया था ॥८५॥

ततो विदेहनन्दिन्या लीलाः श्रवणमङ्गलाः ।
प्रियायै शङ्करेणोक्ता भगवन्कथयादितः ॥८६॥

तत्पश्चात् श्रीविदेहनन्दिनीजू की उन लीलाओंको आदिसे कहिये, जिनके सुनने से ही जीव का मङ्गल होता है तथा जिन्हें भगवान् शङ्करजीने अपनी प्राणप्रिया (श्रीपार्वतीजीको) सुनाया था ॥८६॥

श्रीसूतउवाच ।

इत्थं प्रियाया वचनं निशम्य श्रीयाज्ञवल्क्यो भगवान् मुनीन्द्रः ।
उवाच वाचा स्मितपूर्वयाऽसौ श्रीमैथिलीध्यानसमन्वितात्मा ॥८७॥

इति तृतीयोऽध्यायः ।

हे श्रीशौनकजी ! इस प्रकार मुनि शिरोमणि भगवान् श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज अपनी प्रिया (श्रीकात्यायनीजीकी) प्रार्थनाको सुनकर श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूका ध्यान करते हुये प्रसन्नतापूर्ण वाणीसे बोले ॥८७॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

श्रीसीतामन्त्रराज अर्थ वर्णन।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

श्रीमन्मैथिलराजपट्टमहिषी-पुण्याङ्कपूर्णश्रियो,
वन्दे वन्द्यमजाब्जनाभगिरिशैः श्रेयोनिधिं शंप्रदम्।
कामक्रोधमदेषणाप्रशमनं पादारविन्दं शुभं,
मुक्तास्पर्द्धिनखद्युति प्रविमलं देवर्षिसिद्धैर्नुतम् ॥१॥

हे श्रीशौनकजी! श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोले:—हे प्रिये! श्रीमिथिलेशजीमहाराज की पटरानी (श्रीसुनयनामहारानीजीके) पवित्र गोद की पूर्णशोभा स्वरूपा श्रीकिशोरीजीके श्रीचरण-कमलोंको मैं प्रणाम करता हूँ, वे श्रीचरण-कमल कैसे हैं? देव, सिद्ध, ऋषियों द्वारा स्तुत अर्थात् जिनकी ये सब स्तुति करते हैं, जिनकी बड़ी ही सुन्दर छटा है, जिनके नखोंके प्रकाश से चन्द्रमा भी डाह करता है अर्थात् लज्जित रहता है, जो परममङ्गल स्वरूप हैं, तथा भक्तों (अर्थात् स्मरण, ध्यान, सेवन करने वालोंके) काम, क्रोध, लोभ, मोह अहङ्कार और पुत्र, कलत्र (स्त्री) वित्त (धन) की वासनाको नष्ट करने वाले हैं, जो सभी प्रकार का कल्याण प्रदान करने वाले, समस्त मङ्गलोंके खजाना (कोष) ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिकोंके भी वन्दना करने योग्य हैं ॥१॥

यां विना नो गतिः कापि मामिका हन्त कुत्रचित्।
सा श्रीजनकराजस्य तनया मे प्रसीदतु ॥२॥

अहह! जिनके बिना हम सभी जीवोंकी कभी कोई और रक्षा करने वाला ही नहीं, वे श्रीजनकराज किशोरीजी हम सबों पर प्रसन्न हों ॥२॥

स्वाहान्तः षट्पदैर्युक्तः शकारादिर्मनुस्त्वयम्।
तस्यैकैकपदस्यार्थमुच्यमानं मया शृणु ॥३॥

हे प्रिये! यह श्रीकिशोरीजीका मन्त्रराज आदिमें "श्" और अन्त में स्वाहा इन छः पदों से युक्त है, उस (मन्त्रराज) के एक एक पदका अर्थ मेरे कहते हुये आप श्रवण करें ॥३॥

शकारार्थो हि जीवोऽयं सर्वसेवाविचक्षणः।
रेफस्यार्थस्तु श्रीरामः कोटिब्रह्माण्डनायकः ॥४॥

शकारका अर्थ है प्रभुकी सभी प्रकारकी सेवामें निपुण याने परम चतुर जीव, फकारका अर्थ है कोटिब्रह्माण्डनायक सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी ॥४॥

ईकारो मूलप्रकृतेर्वाचकः कथ्यते बुधैः।
परीता जीवब्रह्मभ्यां पदेनानेन गद्यते ॥५॥

तत्त्ववेत्ता ज्ञानी जन ईकारको मूलप्रकृतिका वाचक (कहने वाला) कहते हैं। इस "ई" पदके युक्त होनेसे श्रीकिशोरीजी जीव और ब्रह्म दोनोंसे युक्त कही जाती हैं ॥५॥

सीति सूच्चारणादस्मिन् प्रेमानन्दरुचां सदा।
सहजामलभाग्यस्य भवेत्प्राप्तिर्न संशयः ॥६॥

"सी" इस पदके महा सुन्दर प्रेमवर्द्धक उच्चारण करनेसे मनुष्योंको बिना अन्य साधनोंके ही प्रेम, आनन्द, कान्ति तथा स्वाभाविक विशुद्ध भाग्यकी निःसन्देह प्राप्ति हो जाती है ॥६॥

"ता" पदोच्चारणं वेद्यं त्रिगुणार्णवतारणम्।
तीव्रवैराग्यसन्दोहमनुरागाङ्कुरार्द्धनम् ॥ ७ ॥

"ता" पद के उच्चारणको सत्व, रज, तम इन तीनों गुणरूपी समुद्रसे पार कर देने वाला, तीव्र वैराग्य, और अनुरागकी वृद्धि करने वाला जानिये ॥७॥

प्रिय-संयोगदं नित्यं तद्वियोगाधिनाशनम्।
ता पदोच्चारणं ज्ञेयं भावतारुण्यपूरणम् ॥८॥

पुनः "ता" पदका नित्य उच्चारण प्यारेका मिलन कराता है, और उनके वियोगसे प्राप्त हुई सारी मानसिक-व्यथाओंको दूर करता है, एवं "ता" पदका उच्चारण भावकी तरुण अवस्थामें ले आता है अर्थात् खूब पका बना देता है ॥८॥

यावत्कृत्यं हि सीतार्थं प्राणिनोऽशेषमेव तत्।
प्रधानं तत्सुखं मत्वा चतुर्थ्यर्थोऽयमुच्यते ॥९॥

श्रीकिशोरीजीकी प्रसन्नताको ही अपना मुख्य सुख मानकर प्राणी जो कुछ कर्तव्य करें वह सब उन्हींके लिये करे, यह "ता" पदकी चतुर्थी विभक्तिका अर्थ है ॥९॥

स्वाहा स्वातन्त्र्यमुत्सृज्य सुवृत्त्याऽनन्यया॒ऽऽत्मनः।
सवस्वं किल सीताया अर्पणार्थं प्रयुज्यते ॥१०॥

"स्वाहा" का प्रयोग समर्पण अर्थ में किया जाता है, अतः इस पदका अर्थ हुआ जीव अपनी स्वतन्त्रताका परित्याग करके अनूठी सुन्दर वृत्तिसे अपना तन,मन,धन श्रीकिशोरीजीको समर्पण कर दिया, तब उन सबमें ममता न रखते उनकी चीणता और वृद्धिमें केवल अपना यह दृढ भाव जमाये रक्खे कि, मेरी समर्पणकी हुई इन सभी वस्तुओंको श्रीकिशोरीजी जिस प्रकार जिस समय रखना उचित समझती हैं रख रही है, और आगेभी सदा अपनी रुचिके अनुसार ही वे इन्हे रखनेकी कृपा करें, क्योंकि ये सभी वस्तुयें अब उन्ही की हुई, अतएव उनकी रुचि मे हर्ष विषाद करने वाले हम कौन ? ॥१०॥

अथ श्यादिनमोऽन्तस्य मन्त्रस्यार्थोऽस्य कथ्यते ।
श्रूयतां सावधानेन तप संशुद्धचेतसा ॥११॥

हे श्रीशौनकजी ! श्रीयाज्ञवल्क्यजीने कहाः-हे प्रिये ! "श्री"पद जिसके आदिमे है और नमः पद अन्तमे तथा "सीतायै" यह पद जिसके मध्यम है उन तीन पद युक्त श्रीकिशोरीजीके इस मन्त्र राजका अर्थ मैं कहता हू, आप तप द्वारा पवित्र किये हुये अपने सावधान चित्तसे श्रवणकरें ॥११॥

मूलशक्तिप्रधानाद्या. शुभे ! सर्वा हि शक्तय. ।
गुणवत्यो ह्यनन्ताश्च यदंशांशसमुद्भवाः ॥१२॥

मूलप्रकृति आदि सभी त्रिगुणमयी अनन्तशक्तियॉ जिनके अंश, अंशांशो से उत्पन्न होती है अर्थात् रमा, उमा, ब्रह्माणी ये तथा श्रीचन्द्रकलाचारुशीलादिक अष्टयूथेश्वरियां आपकी अंश भूत शक्तियाँ हैं, और इनके अंशोंसे तथा अंशोकेभी अंशोसे अन्यान्य अगणित शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं सो वे अपनी कारण शक्तिके गुणसेही युक्त होती है ॥१२॥

अनन्तश्रीसमुत्पत्तिकारणं या कृपाकरी ।
प्रणिपातैकतुष्टा सा शर्मदा श्रीपदात्मिका ॥१३॥

जो प्रणाम मात्रसे ही प्रसन्न हो जाती ह, शरणागत भक्तोंको सब प्रकारका सुख प्रदान करने वाली, कृपाकी खानि हैं । जिनसे अगणित शोभा, सौन्दर्य, वैभव आदिकी उत्पत्ति होती है, वे "श्री" जी कहाती हैं ॥१३॥

प्राप्तिबाधकदोषान् या स्वाश्रितानां हरेः सदा ।
हिनस्ति सर्वदु.खान्यमङ्गलानि दयापरा ॥१४॥

दया प्रधान होनेके कारण जो अपने आश्रितोंके सभी प्रकारके अमङ्गल, दुःख और प्रभु प्राप्ति में बाधा करने वाले सभी दोषोंको निवारण करती हैं ॥१४॥

या शृणोति सदा दुःखं जीवानां सोपपत्तिकम् ।
भगवन्तं तथा रामं श्रावयत्यूरुवत्सला ॥१५॥

जो, जीवोंके कारण समेत सभी दुःखोंको स्वयं श्रवण करती हैं और वात्सल्याधिक्यके कारण पुनः उन्हें अपने प्यारे भगवान् श्रीरामजीको श्रवण कराती हैं ॥१५॥

शरणागतजीवेषु कृत्वा निर्हेतुकीं कृपाम् ।
त्रायते सर्वदा प्रीत्या मार्जारी बालकानिव ॥१६॥

जो शरणागत जीवों पर निर्हेतुकी (बिना किसी प्रकारके कर्त्तव्यकी अपेक्षा युक्त) कृपा करके उनकी सदा सर्वदा इस प्रकार रक्षा करती हैं जैसे बिल्ली अपने बालकोंकी ॥१६॥

धर्मार्थकाममोक्षाख्यचतुर्वर्गप्रदा हि सा ।
अनायासेन भक्तानां श्रीशब्देन निगद्यते ॥१७॥

जो अनायास (बिना साधन विशेषके) ही भक्तोंको धर्म, अर्थ काम, मोक्ष नामक चतुर्वर्ग को प्रदान करने वाली हैं, वे श्री शब्दसे पुकारी जाती हैं अर्थात् उपर्युक्त समस्त गुण सम्पन्नाको ही श्री (जी) कहते हैं ॥१७॥

अस्य तप्तं हुतं जप्तं दत्तमाप्तमनुष्ठितम् ।
सुकृतं यद्धि सीतायै नेतरस्यै शरीरिणः ॥१८॥

इस जीव द्वारा किया हुआ जो कुछ तप, हवन, धनादिक जप, दान तथा प्राप्त किया हुआ, अनुष्ठान एवं सुकृत है, वह सब श्रीकिशोरीजीके लिये ही है अन्य किसीके लिये नहीं, (यह मध्य-पद "सीतायै" का अर्थ हुआ) ॥१८॥

नमोऽर्थो नैव जीवस्य तदर्थोऽयं विभाव्यताम् ।
सर्वस्वं खलु जीवस्य श्रीसीतायै समर्पितम् ॥१९॥

नमः का अर्थ है जीवका नहीं, इसका तात्पर्य यह है कि इस त्रिलोकीमें जो कुछ भी है वह सब श्रीकिशोरीजीका है, जीवका नहीं, अत एव वह किसी भी वस्तुमें अनधिकार आसक्ति करके दण्डका भागी न बने, केवल अधिकारानुसार उनका हितकर सदुपयोग करता रहे और अपना सब कुछ उन्हींके श्रीचरणोंमें समर्पित समझे यही "नमः" का अर्थ है ॥१९॥

नैवात्मानमहं त्रातुं न कोऽप्यन्यो जगत्त्रये ।
विना सीतां क्षमो जातु श्रुतिज्ञानामिदं मतम् ॥२०॥

श्रीकिशोरीजीके बिना न मैं अपनी रक्षा करनेको स्वयं समर्थ हूँ और न तीनों लोकोंमें कोई अन्य ही मेरी रक्षा करनेको कभी समर्थ है, यह वेदवेत्ताओंका मत (सिद्धान्त) है ॥२०॥

तस्मात् पूज्यो न मे कश्चिन्नोपास्यो ध्येय एव नो ।
तामन्तरेण लोकेषु वैदेहीं जनकात्मजाम् ॥२१॥

अत एव उन श्रीकिशोरीजीको छोड़ कर कोईभी मेरे द्वारा पूजा, उपासना तथा ध्यान करनेके लिये आवश्यक नहीं है, (और यदि करें तो कोई प्रतिबन्धभी नहीं है) ॥२१॥

सा पूज्या मम सा ध्येया सोपास्या साऽऽश्रयास्पदा ।
वन्द्या मान्याऽनुभाव्या सा ज्ञेया गेया हि सा मम ॥२२॥

अत एव हमें पूजा भी उन्हींकी करनी विशेष आवश्यक है, ध्यान भी हमें उन्हींका करना आवश्यक है, उपासना भी हमें उन्हींकी करनी चाहिये, शरणागति भी हमें उन्हींकी स्वीकार करना कर्तव्य है, तथा उन्हींकी वन्दना, उन्हींका सम्मान, उन्हींकी भावना (विचार) उन्हींका ज्ञान, और उन्हींकी लीलाओंका गान हमें करना परम आवश्यक है ॥२२॥

राममन्त्रस्य रां बीजे सीताऽकारात्मिकोच्यते ।
भवभीत्यार्त्तजीवानां शरण्यैका तदाप्तये ॥२३॥

वे श्रीकिशोरीजी राम-मन्त्रके रां बीजमें अकार स्वरूपसे विराजमान कही जाती हैं, अत एव जन्म-मरणके भयसे व्याकुल जीवोंको प्रभु प्राप्तिके लिये, उनकी ही शरणागति स्वीकार करनी परम आवश्यक है । क्योंकि "रकार" वाचक प्रभु श्रीराम और मकार वाचक यह जीव है, इस हेतु प्रभुकी प्राप्ति करवानेमें मध्यस्थ अकार स्वरूपा श्रीकिशोरीजीको विना अपनाये अर्थात् प्रसन्न किये हुये कदापि उनके दाहिने भागमें विराजमान प्रभु नहीं प्राप्त हो सकते ॥२३॥

सीतारामावुभावेकावखण्डौ ज्ञानविग्रहौ ।
तयोर्भेदं न पश्यन्ति पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः ॥२४॥

श्रीसीतारामजी दोनों सरकार एक हैं अर्थात् उनकी समताका दूसरा कोई है ही नहीं । वे अखण्ड हैं अर्थात् किसीके खण्ड (अंश) नहीं हैं सभी कारणों के कारण ये दोनों पूर्णब्रह्म हैं । ज्ञानकी

साक्षात् मूर्त्ति हैं। तत्त्वका विचारही जिनमें प्रधान है वे बुद्धिमान् महर्षि गण उन श्रीयुगलसरकारमें कुछ भी भेद भाव नहीं देखते। अर्थात् दोनोंको एकही समझते हैं ॥२४॥

तस्मात्तौ हि मम श्रेष्ठौ सीतारामौ परात्परौ।
नान्यदेवं विजानामि नान्यस्मान्मे प्रयोजनम् ॥२५॥

इस कारण पर (ब्रह्मादि) देवश्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ वे ही श्रीयुगल सरकार हमारे परम प्यारे हैं, मैं अन्य किसीको जानता ही नहीं, और न मुझे किसी अन्यसे कुछ प्रयोजन ही है ॥२५॥

तयोश्च पार्षदा ये ते ह्यनन्योपासकास्तथा।
तन्नामरूपलीलादि-धामान्येव प्रियाणि मे ॥२६॥

दोनों सरकारके जो पार्षद हैं तथा जो अनन्य उपासक हैं, वे और उन प्रभुके नाम, रूप, लीला, धाम आदि हमें परम प्रिय हैं ॥२६॥

अहमस्मि तयोर्भोग्यो भोक्तारौ मामकौ हि तौ।
इत्येवं किल सीताया मन्त्रराजार्थ उच्यते ॥२७॥

मैं उन्हीं श्रीयुगल सरकारके भोगमें आने योग्य हूँ और वे ही श्रीयुगल प्रभु हमारे भोक्ता (भोगने वाले) हैं, श्रीकिशोरीजीके मन्त्रराजका इसी प्रकार अर्थ कहा जाता है ॥२७॥

कुर्वन्त्यर्थानुसन्धानमेवं जपपरायणा।
त्वमपि ध्यानसंयुक्ता जीवन्मुक्ता न संशयः ॥२८॥

हे श्रीजानकजी! श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजीसे यह बोले—हे प्रिये! इसी प्रकार मन्त्रराजके अर्थका अनुसन्धान करती हुई आपभी युगल ध्यान पूर्वक श्रीयुगलमन्त्र-जप परायण हो जावें, इसमें सन्देह नहीं, इससे आप अवश्य जीवन्मुक्त हो जावेंगी ॥२८॥

धन्यास्ते प्राणिनो लोके सीतारामपरायणाः।
पशुघ्नास्ते हि विज्ञेया ये च ताभ्यां पराङ्मुखाः ॥२९॥

लोकमें वे प्राणी धन्य हैं, जो श्रीसीतारामजीमें लगे हुये हैं, अर्थात् उनका भजन करते हैं और जो श्रीयुगल सरकारसे विमुख हैं, उन्हें निश्चय करके पशुघातक (कसाई) जानो ॥२९॥

भूमिभारस्वरूपा हि नररूपेण राक्षसाः।
परहिंसारता ये च सीतारामपराङ्मुखाः ॥३०॥

जो प्राणी श्रीसीतारामजीका भजन नहीं करते तथा दूसरोंके वास्तविक हित (भगवत् प्राप्ति) का

अपने बल, बुद्धि द्वारा हनन करते हैं वे पृथ्वीके भार स्वरूप मनुष्य रूप बनाये हुये निश्चय ही राक्षस हैं ॥३०॥

दुर्भगाः क्षीणपुण्यास्ते सीताराममनाश्रिताः ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषामाचरन्ति ये ॥३१॥

जो श्रीसीतारामजीके आश्रित नहीं है, और अपने लिये प्रतिकूल सिद्ध होनेवाले ही व्यवहारों को जानबूझकर दूसरोंके प्रति करते हैं उनका निश्चयही पूर्व जन्मोंका कमाया हुआ सारा पुण्य समाप्त है, अत एव वे बड़े ही दुर्भागी हैं ॥३१॥

प्रधानत्वेन नो येषां मैथिली हृदि राजते ।
धिगस्तु जननं तेषां मिथिलायां विशेषतः ॥३२॥

जिन प्राणियों के हृदयमें श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजी प्रधान रूप से नहीं विराज रही हैं, उनके जन्मको धिक्कार है। यदि कहीं वे श्रीमिथिलाजीमें जन्म लिये हुये हैं, तो उन्हें और भी विशेष रूपसे धिकार है ॥३२॥

ब्रह्मादिदेववर्याणां सदा दुष्प्राप्यदर्शना ।
येषामलभ्यलाभायावतीर्णा जगदीश्वरी ॥३३॥

हे श्रीशौनकजी ! श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे कहते हैं कि:-हे प्रिये ! श्रीमिथिलाजीमें जन्म लिये हुये प्राणीयोंको विशेष धिकार इस लिये है:-जिनका दर्शन ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवोंके लिये भी सदा दुर्लभ रहता है, वे सभी स्थावर-जङ्गम (चर-अचर) की स्वामिनी; जिन श्रीमिथिलानिवासियोंको, किसी भी साधनसे न प्राप्त होने योग्य अपने दर्शनादिकोंका सुख प्रदान करनेके लिये श्रीमिथिलाजीमें प्रकट हुई हैं, उन श्रीकिशोरीजीकी प्रधानता यदि मिथिलानिवासी ही अपने हृदयमें नहीं रखते तो वे कृतघ्न होनेके कारण स्पष्ट ही अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा विशेष धिकारके पात्र हैं ॥३३॥

दुर्लभः सुलभो यस्याः प्रसादाद्भवति ध्रुवम् ।
यां विना नैति संतुष्टिं श्रीरामः साऽस्तु मे गतिः ॥३४॥

जिनकी कृपासे दुर्लभ (श्रीरघुनन्दनप्यारे) भी सुलभ हो जाते हैं, जिनकी कृपा-कटाक्ष हुये बिना प्रभु श्रीरामकी प्रसन्नता होती ही नहीं, वे सर्वेश्वरी करुणावरुणालया श्रीकिशोरीजी मेरी गति (परमप्याधारस्वरूपा) हैं ॥३४॥

धन्यास्युदितसौभाग्या वल्लभे ! नात्र संशयः ।
श्रोतुमभ्युत्सुका तस्या बाललीला महीभुवः ॥३५॥

हे प्रिये ! आप उन्हीं श्रीकिशोरीजीकी बाललीलाओंको सुननेके लिये उत्सुक हो रही हैं ? अत एव आप धन्य हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, आपके सौभाग्यका उदय है ॥३५॥

श्रीसूत उवाच ।

इति मुनिगणसत्तमः प्रभाष्य मृदुवचनं दयितां प्रसन्नचेताः ।
हृदि जनकसुतां विभाव्य सम्यक् पुनरवदन्मुदितः कृतप्रणामः ॥३६॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ।

हे श्रीशौनकजी ! इस प्रकार वे मुनिवृन्दोंमें श्रेष्ठ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज अपनी प्रिया श्रीकात्यायनीजीसे कहकर बहुत प्रसन्न चित्त हो गये । पुनः श्रीकिशोरीजीको अपने हृदयमें भली प्रकार ध्यान तथा प्रणाम करके मोदपूर्ण मधुर वचन बोलेः-॥३६॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रीयाज्ञवल्क्यजी द्वारा श्रीकिशोरीजीकी स्तुति करके
मुक्त जीवोंकी सेवाका वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

राकेशास्यां सुभालां जलरुहनयनां पक्वबिम्बाधरोष्ठीं
सुस्निग्धारालकेशीं सुललितचिबुकां कीरसम्मोहिनासाम् ।
कम्बुग्रीवां सुकर्णां निरवधिसुषमालङ्कृतिस्निग्धहस्तां
शङ्खाम्भोजाष्टकोणाम्बरनरकुलिशैश्चिह्निताङ्घ्रिं नमामि ॥१॥

जिनका श्रीमुख चन्द्रके समान है, सुन्दर भाल है, कमलके समान जिनके नयन, जिनके अधर तथा ओष्ठ पके बिम्बाफलके सदृश अरुण हैं, बड़े ही चिकने कुञ्चित (घुंघुराले) जिनके बाल हैं, ठोढ़ी जिनकी बड़ीही सुन्दर हैं, शुकको मोहित करनेवाली नासिका, शङ्खके समान जिनका कण्ठ है, शोभा मय जिनके कान हैं, अनन्त सौन्दर्य मय, भूषणोंसे भूषित जिनके करकमल हैं, शङ्ख, कमल, अष्टकोण, अम्बर, नर, वज्र आदि अड़तालिस चिन्होंसे चिन्हित जिनके श्रीचरणकमल हैं, उन श्रीकिशोरीजीको मैं प्रणाम करता हूं ॥१॥

भाले चातीवरम्या विजितविधुरुचिश्चन्द्रिका भूरिदीप्तिः
सीमन्तः सर्वशोभानिरुपमनिलयो मौक्तिकैः शोभमानः।
ताटङ्कं कर्णयुग्मे मधुकरपटलभ्रान्तिदा मूर्द्धिनकेशा
नासायां मौक्तिकं यज्जितविधुनि मुखे पक्वताम्बूलवीटी ॥२॥

चन्द्रमाकी छविको परास्त करने वाली, अत्यन्तसुन्दर, महाप्रकाश युक्त चन्द्रिका जिनके भाल पर सुशोभित है, गजमुक्तादिकोंसे शोभायमान जिनकी माँग सभी शोभाओंका उपमा रहित स्थान है। कर्णफूल जिनके युगलकानोंमें सुशोभित हो रहे हैं, मस्तक पर भौंरोंके समूहोंका भ्रम (संदेह) कराने वाले जिनके अति सुन्दर कोमल घुंघुराले केश हैं, नासिकामें गजमोतीकी शोभा है, चन्द्रको अपनी शोभासे लज्जित करने वाले जिनके श्रीमुखारविन्दमें पके पानोंका बीरा है ॥२॥

ग्रैवेयं कम्बुकण्ठे विविधमणिमयं हृत्स्थले हारमाला
देवच्छन्दः सुरम्यः सरसिजकरयोः शोभनाः पारिहार्याः।
यस्याः कट्यां कलापश्चरणनलिनयोर्हंसकक्षुद्रघण्टयः
सर्वाङ्गे युक्तवस्त्रानुपमितरचना भाति सीतां भजे ताम् ॥३॥

जिनके शङ्ख समान सुन्दर कण्ठमें सौलड़ा हार व अनेक प्रकारका मणियोंसे बना हुआ कण्ठा, हृदय-देशमें मोतियोंका अत्यन्त सुन्दर हार, मणियों तथा पुष्पोंकी मालायें शोभा दे रही हैं, कर-कमलोंमें मणिजटित चूड़ियाँ सुशोभित हैं, जिनके सुन्दर कटिभागमें पचीस लड़की मणिमयी तागड़ी (कमर बन्धनी, डण्कसी या करधनी) और श्रीचरणकमलोंमें नूपुर व घुंघुरू सुशोभित हैं, तथा सभी अङ्गोंमें युक्त अर्थात् जिस अङ्गमें जहाँ जैसी चाहिये वैसी ही वस्त्रोंकी अनुपम सजावट शोभा दे रही है, उन श्रीकिशोरीजीका मैं भजन करता हूँ तथा करूँगा ॥३॥

कारुण्याम्भोधिरूपां निरवधिसुभगां सर्वसच्चिह्नयुक्तां
विद्युद्दामायुताभां जितरतिसुषमां कोटिचन्द्रोज्ज्वलास्याम्।
माधुर्य्याम्भोधिपद्मां विधिहरिगिरिशैर्भाविभिर्भाव्यमानां
त्क्षान्तिश्लाघ्योरुकीर्त्तिं निमिमणितनयां रामकान्तां प्रपद्ये ॥४॥

जो करुणारस-समुद्रकी मूर्त्ति हैं, जिनके सौन्दर्यकी अवधि (अन्त) नहीं है। जो सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त हैं, करोड़ों बिजलीकी मालाओं जैसा जिनके श्रीअङ्गका सहज प्रकाश है, जो रति

और सुषमा (जिससे बढ़कर और कोई सौन्दर्य हो ही न सके) दोनोंको अपने अलौकिक सौन्दर्य-माधुर्यसे विजय कर रही हैं, करोड़ों चन्द्रमाओंके समान जिनका निर्मल प्रकाश युक्त आह्लाद प्रदान करने वाला श्रीमुखारविन्द है, माधुर्य-सिन्धुकी जो लक्ष्मी हैं अर्थात् सिन्धु मात्रकी शोभाका सार तो श्रीलक्ष्मीजी हैं और आप माधुर्यसिन्धुकी शोभाका सार स्वरूपा लक्ष्मी हैं, केवल सिन्धुकी ही नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर आदिक भावुक देवगण भी जिनकी अनेक प्रकारसे भावना (पूजा) कर रहे हैं, क्षमा गुणसे जिनकी महती कीर्ति विशेष प्रशंसनीय है, उन निमिवंश मणि (श्रीमिथिलेश) जी की दुलारी श्रीरामप्राणवल्लभा श्रीकिशोरीजीकी शरणमें मैं प्राप्त हूँ ॥४॥

भूयो भूयोऽपि नत्वा सकरुणहृदयां नीलपद्मायताक्षीं
पापेभ्यो द्वेषकृद्भ्योऽप्यभयकरयुगप्रीतिदानप्रसक्ताम् ।
लक्ष्मीदुर्गादिभिश्च प्रतिदिनमभितः सेव्यमानां वरेण्यां
कल्याणानां निधानं क्षितिपतितनयां वन्दनैकप्रसाद्याम् ॥५॥

अपार करुणा परिपूर्ण जिनका हृदय है, नील कमलके समान विशाल जिनके लोचन हैं, पापियों और वैरभाववालोंके लिये भी अपना अभय हस्त और युग (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष) को प्रीति पूर्वकप्रदान करनेमें सदा आसक्ति रखती हैं, लक्ष्मी दुर्गादिक सभी विशिष्टसे विशिष्ट शक्तियाँ सब ओरसे जिनकी सेवामें सदा तत्पर रहती हैं, जो सभी प्रधानोंमें प्रधान हैं, सभी कल्याणोंका जो खजाना ही हैं, प्रणाम मात्रसे जो भली प्रकारसे प्रसन्न हो जाती हैं, उन श्रीमिथिलेशदुलारीजीको बारं बार प्रणाम करके ॥५॥

तस्या एवोरुकीर्त्तेरघहरयशसा भूषिताङ्गी विशेषं
श्रीमत्या भावपूर्णा क्षितिपतिदुहितुः संहिता शम्भुनोक्ता ।
पृच्छन्त्यै ते शुभाङ्गि ! प्रणयत इह सा वर्ण्यते भूमिजायाः
प्रालम्ब्यैवानुकम्पामघटितघटनासुक्षमां भावगम्याम् ॥६॥

अनन्त ब्रह्माण्ड ही जिनकी कीर्ति स्वरूप हैं, उन सर्व शोभा सम्पन्ना श्रीमिथिलेश दुलारी अवनिकुमारीजूकी असम्भवको सम्भव करनेमें पूर्ण समर्थ, भावके द्वारा ही प्राप्त होने योग्य कृपाका सहारा लेकर उन्हीं श्रीकिशोरीजूके समस्त पापहारी चरित्रोंसे विभूषित, भावपूर्ण, भगवानशंकरजीकी कही हुई संहिताको, मैं आपसे वर्णन करता हूँ ॥६॥

सा संहितेयं परमं मुनीनां प्रियं धनं मानसगर्त्तगुप्तम् ।
श्रीमैथिलीबालचरित्ररत्नैर्मनोहरैश्चारुचमत्कृताङ्गी ॥७॥

जिसके अङ्ग प्रत्यङ्ग श्रीकिशोरीजीके केवल चरित्ररूपी मनोहर रत्नोंसे भलीभाँति चमक रहे हैं, वही यह मुनियोंका श्रेष्ठ तथा प्यारा संहिता रूपी धन उनके ही मानसिक-गर्त (तरहरा) में सुरक्षित है ॥७॥

श्राव्या त्वयैकाग्रहृदा सुपुण्या त्वदीयशङ्कामपहर्तुमीशा ।
यतः किलास्यां जगतां जनन्याः प्राकट्यहेतुश्च परात्परायाः ॥८॥
यशः पवित्रं धृतबालमूर्त्तेः संवर्णितं स्नेहपरामुखेन ।
साक्षाद्दशस्यन्दननन्दनाय श्रीरामभद्राय परात्पराय ॥९॥

इस संहितामें परात्परा (जिनसे बढ़कर कोई दूसरा है ही नहीं उन) जगज्जननी श्रीकिशोरीजीके प्रकट होनेका मुख्य कारण और उनके बाल स्वरूपमें विराजनेके पवित्र यशको श्रीस्नेहपराजीने दशरथ-नन्दन श्रीरामभद्रजूसे वर्णन किया है, अतः आप इस संहिताको एकाग्र चित्तसे श्रवण करें; क्योंकि उपर्युक्त विषय प्रधान होनेके कारण यह आपकी शङ्काको दूर करनेमें अवश्य समर्थ है ॥८॥९॥

वंशावली पुण्यमयी च पित्रोराद्यन्तमध्यैः परिवर्जितायाः ।
अयोनिजाया जनकात्मजाया रसान्विता गुप्तविहारलीला ॥१०॥

वस्तुतः जिनका कभी न आदि है, न मध्य है और न अन्त, उन अयोनिसम्भवा श्रीजनकदुलारीजूकी सरस गुप्त विहार लीलाओं और उनके माता-पिता श्रीसुनयना महारानी व श्रीजनकजी महाराजकी पवित्र-वंशावलीका इस संहितामें वर्णन है ॥१०॥

प्राकट्यहेतुः प्रथमं मया ते निगद्यते शम्भुमुखोदितो यः ।
चित्तं समाधाय विशुद्धबुद्धे ! स श्रूयतां यच्छ्रवणीय एषः ॥११॥

हे विशुद्ध बुद्धे ! अब मैं भगवान शंकरजीके द्वारा कहे हुये श्रीकिशोरीजीके प्रकट होनेका मुख्य कारण बताता हूँ, आप उसे अपने चित्तको सावधान करके श्रवण करें, क्योंकि यह विषय भली भाँति श्रवण करने योग्य है ॥११॥

श्रीशिव उवाच ।

न यद्रविर्भासयते न चन्द्रो नैवानलः स्वप्रभया प्रदीप्तम् ।
यत्रांशिनो ब्रह्महरीश्वराणां तथाऽखिलानां जगतां वसन्ति ॥१२॥

जिसे सूर्य, चन्द्र, अग्नि अपने प्रकाशसे प्रकाशित करनेको समर्थ नहीं, जो अपने सहज प्रकाशसे स्वयमेव प्रकाशमान है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिकोंके कारण (व्यूह) तथा समस्त लोकोंके कारण लोक, निवास करते हैं ॥१२॥

यदाप्तिहेतोर्मुनिहंसमुख्या यतात्मना तीव्रतपश्चरन्ति ।
प्राप्तं शकृद्वत्सुखमुद्विहाय व्यपास्तसम्यक्सदसत्प्रसङ्गाः ॥१३॥

यह दृश्य जगत् सत्य है अथवा असत्य ? इस प्रसङ्गको सर्वथा त्यागकर उपलब्ध सुखोंको विष्ठा (मल) के सदृश आसक्ति रहित हो परित्याग कर, तथा अपने मनको वशमें रखते हुये परम-हंस मुनिवृन्द, जिस धामकी प्राप्तिके लिये घोर तप करते हैं ॥१३॥

अथो निवर्तन्त इहैव भूयो न यत्र गत्वाऽक्षरसञ्ज्ञकं तत् ।
निर्मायिकं धाम परं जिताशैः सर्वेशपादाम्बुजलीनलभ्यम् ॥१४॥

जहाँ प्राणी जाकर पुनः इस त्रिलोकी में नहीं लौटते, तथा जो समस्त वासनाओंके जीते हुये सर्वेश्वर प्रभुके श्रीचरण कमलोंमें आसक्त भक्तोंके लिये ही प्राप्त होनेमें सुलभ है, वही सर्व श्रेष्ठ, अमायिक (पञ्चभूतोंके प्रपञ्चसे न बना हुआ) अविनाशी, दिव्य धाम है ॥१४॥

तत्रापि सत्याऽखिललोकवन्द्या स्थानं परं राममुपाश्रितानाम् ।
न विद्यते कश्चिदुपाय एव विनैकभक्तया यदवाप्तये च ॥१५॥

उस दिव्य धाममें भी सभी लोकोंसे वन्दनीय श्रीराम-उपासकोंका परम (उत्कृष्ट-सर्वोत्तम) स्थान श्रीसाकेत (धाम) है जिसकी प्राप्तिके लिये श्रीसीतारामजीकी एक अनन्य उपासनाको छोड़कर और कोई साधन है ही नहीं ॥१५॥

तस्यामपि श्रीकनकालयाख्यं स्थानं परं योगिभिरप्यगम्यम् ।
ऋते कृपां श्रीजनकात्मजायास्तपोभिरुग्रैः शतकोटियत्नैः ॥१६॥

उस साकेत धाममें भी अनेक प्रकारके कठिनसे कठिन तप आदि करोड़ों साधन करने पर भी विना श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीकी कृपाके नीरस योगियोंको प्राप्त न होने योग्य, मुख्य स्थान श्रीकनक भवन है ॥१६॥

परात्परं नित्यमनन्तवैभवं सच्चित्परानन्दमयं रसात्मकम् ।
तेजोमयं शाश्वतदम्पतीगृहं युतं च सप्तावरणैः समुच्छ्रितैः ॥१७॥

वह कनक भवन ऊँचे २ सात आवरणोंसे युक्त, सत्, चित् (ब्रह्म श्रीरामके उपासकों) के सेवानन्दसे परिपूर्ण, रसका स्वरूप, अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न, सदा एक रस रहने वाला, तेजो मय, सर्वश्रेष्ठ, शाश्वत (कभी विनाश भावको न प्राप्त होने वाले) दम्पती श्रीसीतारामजीका मुख्य महल है ॥१७॥

अगोचरं मैथिलराजपुत्र्याः सम्बन्धनिष्ठापरिवर्जितानाम् ।
मनोगिरामक्षरमप्रमेयं परेशयोर्गात्ररुचिप्रदीप्तम् ॥१८॥

वह महल सर्वेश्वरी सर्वेश्वर श्रीसीतारामजीके ही श्रीअङ्गकी कान्तिसे प्रकाशित तथा तर्कसे अगम्य है श्रीकिशोरीजीकी सम्बन्ध निष्ठा शून्य हृदय वाले न, उसका मनसे मनन कर सकते हैं, न वाणी से वर्णन ॥१८॥

तत्रेश्वराणां परमेश्वरी सा ब्रह्मात्मिका राममनोहरन्ती ।
मन्दस्मिता प्रेमकृपैकमूर्तिः सखी-सहस्रैर्विहरत्यजस्रम् ॥१९॥

जो सभी लोकाधिपोंकी स्वामिनी प्रेमरु कृपाकी अद्वितीय मूर्ति तथा ब्रह्म-स्वरूपा हैं, जिनकी मन्द-मन्द सुन्दर मुसकान है, वे श्रीसाकेत-विहारिणीजी सहस्रों सखियोंके सहित, अपने प्राणप्यारे श्रीरामभद्रजूके मनको हरण करती हुई उस "कनक भवन" में सर्वदा विहार करती हैं ॥१९॥

तां सप्रियां शाश्वतमुक्तजीवाः सेवासतृष्णाः परमानुरक्ताः ।
रूपाण्यनेकानि विधाय कामं भजन्ति वस्त्राभरणादिकानाम् ॥२०॥

सेवाके अभिलाषी, परम अनुरागी, नित्य मुक्त जीव आवश्यकतानुसार वस्त्र भूषणादिकोंके अपने अनेक स्वरूप बनाकर प्राणप्रियतमजूके सहित उन (श्रीकिशोरीजी)की समयोचित सेवा करते हैं ॥२०॥

सिंहासनस्थां च भवन्ति केचिद् दृष्ट्वाऽऽतपत्रव्यजनादिकानि ।
विदूषका हास्यकलाप्रवीणाः क्वचिन्नटा नृत्यविदो भवन्ति ॥२१॥

कुछ नित्य-मुक्त सेवाभिलाषी जीव श्रीकिशोरीजीको सिंहासन पर विराजमान देखकर छत्र, व्यजन (पँखा) आदिक बन जाते हैं, कभी हास्यकलामें प्रवीण विदूषक, कभी नट, कभी नृत्य-विद्याके जानने वाले बनकर श्रीयुगलसरकारके सेवा परायण होते हैं ॥२१॥

भूत्वा वयस्याः परिशीलयन्ति स्नपानहौ पादसरोजयुग्मम् ।
अशेषसेवाध्यधिकारयुक्ताः स्वेच्छास्वरूपाणि विधातुमीशाः ॥२२॥

प्रभुकी इच्छासे सभी प्रकारके स्वरूप धारण करनेको समर्थ, वे नित्य-मुक्त जीव कभी सखा

होकर सरकारकी लीलामें सहायता करते हैं, तो कभी पदत्राण (जूता) बनकर श्रीयुगल प्रभुके श्रीचरण-कमलोंमें सुशोभित होते हैं। कहाँ तक कहें? इस प्रकार वे जीव श्रीयुगल सरकारकी सभी सेवाओंके अधिकारी बन जाते हैं ॥२२॥

शय्यावितानास्तरणोपबर्हण-प्रभृत्यनेकानि यथोचितानि वै ।
सद्भोग्यवस्तुत्वमुपेत्य नित्यशः क्वचिद्भजन्ते च सनिद्रलोचनाम् ॥२३॥

जब कभी श्रीकिशोरीजी अपनी निद्रावस्थाको प्रकट करती हैं, तब वे मुक्त जीव; पलङ्ग, वितान (चँदोवा) बिछौना, तकिया आदि भोग्य वस्तु बनकर उनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त करते हैं ॥२३॥

बाणं धनुः कन्दुकपद्मवेत्रप्रसूनगुच्छैणपिकादिकाश्च ।
रथं च खेलाखिलवस्तुकानि भवन्ति कामं हि यथावकाशम् ॥२४॥

सामयिक आवश्यकताओंके अनुसार वे कभी बाण कभी धनुष, कभी गेंद, कभी कमल, कभी बेंत, कभी फूलोंका गुच्छा, कभी हरिण, कभी कोयल पक्षी, कभी रथ, कभी खेलकी सभी सामग्री बन जाते हैं ॥२४॥

पारार्थिकाः सच्छ्रुतयश्च सर्वा भूत्वा वयस्याः परिशीलयन्ति ।
शिष्यास्तु भक्तेः रसनिर्भराया मुग्धादिभेदात्परमप्रवीणाः ॥२५॥

केवल ब्रह्मका प्रतिपादन करने वाली सभी प्रेमा भक्तिकी परम चतुरी शिष्या श्रुतियाँ, मुग्धादि अवस्था भेदसे सखी बनकर श्रीकिशोरीजीकी अनेक प्रकारसे सेवा करती हैं ॥२५॥

तस्यै परानन्दरसाश्रयाय माधुर्यवात्सल्यकृपालयाय ।
लावण्यवारांनिधिविग्रहायै नमो नमः श्रीजगतां जनन्यै ॥२६॥

जो परम आनन्द-रसकी कारण स्वरूपा माधुर्य, वात्सल्य और कृपाका स्थान, तथा लावण्य समुद्रकी मूर्त्ति हैं, उन जगज्जनी श्रीकिशोरीजीके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है ॥२६॥

रामप्रियायै निमिभूषणाय पञ्चेषुजायाऽधिकशोभनायै ।
शचीविधात्रीगिरिजारमाभिः संसेवितायै सततं नमोऽस्तु ॥२७॥

इन्द्राणी, ब्रह्माणी, रुद्राणी, लक्ष्मीजी आदि प्रधान शक्तियोंसे सम्यक् प्रकार जो सेविता हैं, रतिसे अधिक जो सौन्दर्य सम्पन्ना हैं, इस धरातल पर प्रकट होकर जो भूषणके समान निमिवंशको सुशोभित कर रही हैं, उन श्रीरामप्रियाजूके लिये मेरा सर्वदा नमस्कार है ॥२७॥

आत्तप्रपत्तीन् विगतान्यवृत्तीन् कटाक्षयन्त्यै करुणार्द्रदृष्ट्या ।
कान्तांसविन्यस्तकराम्बुजायै रामप्रियायै सततं नमोऽस्तु ॥२८॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ।

—: मास परायण १ समाप्तः :—

जिन्होंने अन्य सभीकी शरणागतिका परित्याग करके केवल आप (श्रीकिशोरीजी) की ही शरणागति स्वीकार की है, उन जीवोंकी करुणासे भीगी हुई दृष्टिके द्वारा अवलोकन करती हुई जो श्रीप्राणप्यारेजूके कन्धे पर अपना कर-कमल धारण किये हुये हैं, उन श्रीरामवल्लभाजूके लिये मेरा सतत काल नमस्कार है ॥२८॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

"श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजी अनुपमदया-सागरा हैं" इसे प्रमाण पूर्वक सिद्ध करके भगवान् शिवजीका श्रीपार्वतीजीकी शङ्काको दूर करना ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

भगवन् ! सर्वतत्त्वज्ञ ! मैथिली जनकात्मजा ।
महर्षिभिश्च कविभिः कथिता दीनवत्सला ॥१॥
क्षमापीयूषजलधिः सर्वैः श्रुतिपरायणैः ।
अद्वितीय-कृपाम्भोधिः प्रमाणं चात्र किं भवेत् ॥२॥

श्रीपार्वतीजी भगवान् शङ्करजीसे प्रश्न करती हैं:-हे भगवन् ! आप तो सभी बातोंके तत्त्व (मर्म) को जानने वाले हैं, अत एव यह बतलाइये जिनके हृदयमें केवल वेदोंकी ही प्रधानता है वे सभी श्रीवाल्मीकिजी आदि कवि और श्रीअगस्त्यजी आदि महर्षिगण भी श्रीमिथिलेश-दुलारीजीको क्षमारूपी अमृतका सिन्धु, अद्वितीय (उपमा रहित) कृपा सागरा कहते हैं, पर इस विषयमें प्रमाण क्या है ? ॥१॥२॥

श्रीशिव उवाच ।

गिरिजे ! त्वं महाभागा सीतापादपरायणा ।
हिताय क्षीणपुण्यानां सुप्रश्नोऽयं त्वया कृतः ॥३॥

भगवान् शङ्करजी बोले :–हे पार्वति! आप श्रीकिशोरीजीके चरण कमलोंकी उपासना करने वाली हैं, अत एव बड़ भागिनी हैं। आपने उन प्राणियोंके हित (कल्याण) के लिये यह प्रश्न बहुतही सुन्दर किया है, जिनका पुण्य नष्ट प्राय हो चुका है ॥३॥

श्रूयतां सावधानेन चेतसैका कथा शुभा।
वदतो मम बह्वीनां प्रमाणार्थं त्वया शिवे! ॥४॥

हे कल्याणस्वरूपे! इस विषयमें प्रमाणके लिये बहुतसी कथाओंमें से एक कथाको मैं कहता हूँ, उसे आप सावधान चित्तसे श्रवण करें ॥४॥

प्रतीच्यां विश्रुतो देश एको वारहलाह्वयः।
तत्र श्रीधर्मशीलस्य चत्वारः सूनवोऽभवन् ॥५॥

पश्चिम दिशामें एक वारहल नामका प्रसिद्ध देश था, उस देशमें एक धर्मशील नामक ब्राह्मणके चार पुत्र हुये ॥५॥

प्रमोदश्चानुमोदश्च सुमोदो मोदसञ्ज्ञकः।
ज्येष्ठो मोद इति ख्यातः सुतस्तस्य द्विजन्मनः ॥६॥

मोद, सुमोद, अनुमोद, प्रमोद, ये उन ब्राह्मण पुत्रोंके नाम थे। उन चारों पुत्रोंमें मोद बड़ा पुत्र था ॥६॥

सुकुमारवयस्येव तेषां माता मृतिं गता।
ततो मासत्रयेऽतीते पिता मृत्युमवाप्तवान् ॥७॥

वे कुमार अवस्थामें भी न प्रवेश कर पाये थे, इतनेमें ही उनकी माताकी मृत्यु हो गयी। पुनः तीन महीना पीछे उनका पिताभी मर गया ॥७॥

एकात्मानो ह्यपश्यन्तः स्वशरण्यं तिरस्कृताः।
पितृव्यादिजनैर्दीनाः पुरौकोभिरुपेक्षिताः ॥८॥

चरन्तो भैक्ष्यवृत्तिं ते ग्रामाद्ग्रामं पुरं पुरात्।
गच्छन्तः कतिभिर्वर्षैः पुरीं वाराणसीं गताः ॥९॥

माता-पिताकी मृत्युहो जाने पर उन बालकोंका उनके चाचा आदिक कुटुम्बियोंने विशेष तिरस्कार प्रारम्भ किया, किन्तु उनकी इस दयनीय दीन दशा पर पुरवासियोंने भी जब कुछ ध्यान

नहीं दिया, तब वे चारो अनाथ बालक अपना कोई रक्षक न देखकर, एकमति हो, भीख माँगकर अपने जीवनकी रक्षा करते हुये, एक गाँवसे दूसरे गाँव व एक पुरसे दूसरे पुरको जाते हुये कुछ वर्षोंमें श्रीकाशीजी जा पहुँचे ॥८॥९॥

तस्यां भैक्ष्येण जीवन्तो न्यवसन्सुखपूर्वकम् ।
अलब्धद्विजसंस्काराः प्रीयमाणाः परस्परम् ॥१०॥

जिनका अभी ब्राह्मण संस्कार (यज्ञोपवीत आदि) भी नहीं सम्पन्न हुआ था, वे चारो बालक उस काशीपुरीमें परस्पर अटल प्रेम रखते हुये भिक्षा वृत्तिसे जीवन निर्वाह करते सुखपूर्वक रहने लगे ॥१०॥

सदयेन महादेवि ! मया तुष्टेन संस्कृताः ।
द्विजरूपं समास्थाय सादरं ते यथाविधि ॥११॥

हे महादेवि ! मुझे उनकी उस दीनदशा पर दया आगयी, अतः उनकी वृत्तिसे संतुष्ट हो, ब्राह्मण रूप बनाकर आदरके सहित विधिपूर्वक मैंने उन बालकोंका ब्रह्म-संस्कार कर दिया ॥११॥

भैक्ष्याय गमनं तेषां यत्र तत्र पृथक्पृथक् ।
नित्यं प्रजायते देवि ! स्नात्वा भागीरथीजले ॥१२॥

हे देवि ! वे नित्य श्रीगङ्गाजीमें स्नान करके भिक्षा माँगनेके लिये अलग-अलग जहाँ तहाँ चले जाते ॥१२॥

यदन्नं या शुभा वार्ता प्रिये ! तैरुपलभ्यते ।
सर्वैः सर्वेभ्य आदाय दिनान्ते विनिवेद्यते ॥१३॥

उन बालकोंको जो अन्न या जो शुभ वार्ता दिनभरमें प्राप्त होती, उसे वे सभी सायंकालके समय भिक्षासे लौटने पर सबको निवेदन करते ॥१३॥

पतितोद्धारिणी सीता रामः पतितपावनः ।
कथायां महतां श्रुत्वा मोदेनेति निवेदितम् ॥१४॥

"पतितोंका उद्धार करने वाली श्रीकिशोरीजी और पतितोंको पावन करनेवाले प्रभुश्रीरामजी हैं" एक दिन सन्तोंकी कथामें इस रहस्यको सुनकर ज्येष्ठ भाई मोद जब सायंकाल भिक्षासे लौटकर अपने नियत स्थान पर पहुँचा तो, उसने अपने सभी भाइयोंसे निवेदन किया ॥१४॥

शुभकर्मरताः स्वर्गं निरयं यान्ति पापिनः ।
प्रमोदेनैतदादाय बन्धुभ्यो वाक्यमर्पितम् ॥१५॥

इसी प्रकार भाई प्रमोदने "शुभ कर्म करनेवाले स्वर्ग और पाप करनेवाले लोग नरकको जाते हैं" इस रहस्य मय वचनको कहींसे सुनकर सब भाइयोंको सुनाया ॥१५॥

अहिंसा परमो धर्मो हिंसा धर्मेतरः परः ।
अनुमोदेन बन्धुभ्यो वाक्यमेतत्समर्पितम् ॥१६॥

"तन, मन, वचन, किसीसे भी किसीको कुछ भी कष्ट न देना अर्थात् सुख पहुँचाना सर्वश्रेष्ठ धर्म तथा किसी प्रकारसे भी किसीको दुखी करना, महान अधर्म है" यह सिद्धान्त वाक्य कहींसे अनुमोदने सुनकर अपने शेष तीनों भाइयोंको सुनाया ॥१६॥

साधुगोद्विजदेवानां हेलनं पातकं महत् ।
भारतीत्यर्पिताऽऽनीय सुमोदेन दिनक्षये ॥१७॥

"साधु, गो, ब्राह्मण तथा देवताओंका तिरस्कार महान् पाप-कर्म है," दिन समाप्त होने पर सुमोदने कहींसे लाकर यह वाणी अपने भाइयोंको समर्पण की ॥१७॥

वाक्चतुष्टयसम्पन्नाश्चत्वारस्ते द्विजात्मजाः ।
मिथो विचारयाञ्चक्रुः स्वकार्यं हितमेकदा ॥१८॥

हे प्रिये ! इन चार रहस्य पूर्ण सिद्धान्तकी बातोंसे युक्त होकर वे चारो ब्राह्मण-कुमार, एक समय आपसमें अपने हितकर कर्त्तव्यका विचार करने लगे ॥१८॥

द्विजपुत्रा ऊचुः ।

अहिंसायाः परो धर्मो नास्ति कोऽपि जगत्त्रये ।
नाधर्मोऽप्यस्ति हिंसाया अधिकः प्रियबान्धवाः ! ॥१९॥

हे प्यारे भाइयो ! किसीका वास्तविक हित करनेसे बढ़कर तीनों लोकोंमें कोई धर्म नहीं और किसीका अहित करनेसे बढ़कर कोई अधर्म (पापभी) नहीं है ॥१९॥

निषेवेम ह्यधर्मं चेन्निरयं तल्लभेमहि ।
धर्मं निषेवमाणानां स्वर्गप्राप्तिर्भवेद्धि नः ॥२०॥

यदि हम लोग अधर्मका सेवन करते हैं तो नरक मिलेगा, और यदि धर्मको अपनाते हैं या उसकी शरणमें जाते हैं तो इसमें सन्देह नहीं कि, हम लोगोंको स्वर्ग अवश्य प्राप्त होगा ॥२०॥

श्रीसीतारामसम्प्राप्तिर्वाञ्छनीया परन्तु नः ।
ययोः प्रसादमश्नामः पित्रा दत्तं स्म नित्यशः ॥२१॥

किन्तु हे भाइयो ! हमें तो उन श्रीसीतारामजीकी ही प्राप्तिकी इच्छा करनी चाहिये, जिनका कि प्रसाद घर पर पिताजीके देने पर हम सभी नित्य खाया करते थे ॥२१॥

श्रीसुमोद उवाच ।

तयोः प्राप्तिप्रयत्नः को येनाप्ति सुखिनो वयम् ।

श्रीशिव उवाच ।

सुमोदस्यैतदाकर्ण्य वाक्यं मोदस्तमब्रवीत् ॥२२॥

तीनों भाइयोंका जब यह दृढ़ विचार हो गया, तब आनन्द ! मग्न होकर सुमोदने कहा–भाइयों यह विचार तो बहुत अच्छा किया है, परन्तु उन (श्रीसीतारामजी) की प्राप्तिका उपाय क्या है जिसके कर लेनेसे हम सब अनायासही सुखी हो जायँ। भगवान् शङ्करजी श्रीपार्वतीजी से बोले:– हे प्रिये ! सुमोदकी इन बातोंको सुनकर मोद (ज्येष्ठ भाई) ने उत्तर दिया ॥२२॥

पतितोद्धारिणी सीता कथ्यमाना मया श्रुता ।
अस्यार्थं वः प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा सर्वैर्विचार्यताम् ॥२३॥

हे भाइयो ! "श्रीकिशोरीजी पतितोंका उद्धार करनेवाली हैं" यह बात मैंने वक्ता श्र [illegible] स्वामीजीके मुखसे सुनी थी, इसका अर्थ अब मैं आप लोगोंसे कहता हूं, उसे सुनकर स्वयं सब लोग विचार करें ॥२३॥

ये सन्ति पतिता लोके सर्वधर्मबहिष्कृताः ।
उद्धारः क्रियते तेषां सीतयैव सदा ध्रुवम् ॥२४॥

जिन्हें किसी भी धर्म के पालन करनेका अधिकार नहीं रह गया है, ऐसे जो पतित-जीव संसारमें हैं, उनका उद्धार स्वयं श्रीकिशोरीजी ही करती है, यह निश्चय है ॥२४॥

पावनाय सदा कर्म पतितानां कुमेधसाम् ।
अधर्माचारयुक्तानां रामस्यैव करे स्थितम् ॥२५॥

पापका ही आचरण करनेवाले कुबुद्धि, पतित जीवोंके पवित्र करनेका कार्यभार श्रीरामजीके ही हाथमें रहता है। अर्थात् ऐसे पतित जीवोंको स्वयं श्रीरामजी ही पवित्र करते हैं ॥२५॥

अत एव महन्मुख्यैः कथ्यते मुक्तया गिरा।
भ्रातरः करुणासिन्धू रामः पतितपावनः ॥२६॥

हे भाइयो! इसी कारणसे श्रेष्ठ महात्मा भी अपनी स्पष्ट वाणी द्वारा सब सन्देह त्याग कर श्रीरामजीको करुणा-सागर व पतित-पावन कहते हैं ॥२६॥

पतिताश्चेद्वयं स्याम रामो नः पावयिष्यति ।
उद्धरिष्यति सा सीता ध्रुवं चाकिञ्चनप्रिया ॥२७॥

यदि हम लोग ठीक पतित हों तो श्रीरामजी हम लोगोंको पवित्र करेंगे ही, तथा सब साधन-शक्ति-शून्य (रहित) व्यक्ति ही जिन्हें प्रिय हैं, वे श्रीकिशोरीजी हम लोगोंका अवश्यही उद्धार करेंगी ॥२७॥

तस्मात्कार्यं प्रयतनं पतिता भवितुं सदा ।
अस्माभिः स्वेष्टसिद्ध्यर्थमप्रमत्तेन चेतसा ॥२८॥

इस लिये हम लोगोंको अपनी इष्ट-सिद्धिके लिये सावधान चित्तसे सदा पतित होनेका ही उपाय करना चाहिए ॥२८॥

श्रीशिव उवाच ।

इति निश्चित्य कर्त्तव्यं द्विजपुत्राः स्वशर्मदम् ।
पतिताचारनिरता अभवंस्ते यथामति ॥२९॥

भगवान शिवजी बोले—हे पार्वती! इस प्रकार वे ब्राह्मण कुमार अपने कल्याण (श्रीसीताराम-प्राप्ति) कारक कर्त्तव्यको निश्चय करके अपने विचारानुसार पतितोंका आचरण करने लगे ॥२९॥

ग्राह्यस्तेषां न सिद्धान्तः शिवे ! बुद्धिविनाशकः।
प्राणिभिर्भद्रमिच्छद्भिर्ग्राह्यो भावो हि केवलम् ॥३०॥

हे कल्याणि! अपना कल्याण-चाहने वाले प्राणियोंको, केवल उन ब्राह्मण-कुमारोंके भावको ही ग्रहण करना चाहिए, उनके सिद्धान्तको नहीं, क्योंकि वह बुद्धिनाशक (होनेसे सर्व नाशक भी बन सकता) है ॥३०॥

कालेन कियता भद्रे ! कालधर्ममुपागतान्।
धर्मराजभटाः पाशैर्बबन्धुर्भीमदर्शनाः ॥३१॥

हे कल्याण स्वरूपे ! कुछ दिनोंके बाद वे विप्र पुत्र मृत्युको प्राप्त हुये, उन्हें भयानक स्वरूपसे युक्त यमराजके दूतोंने आकर रस्सोंमें बाँध लिया ॥३१॥

त्रासयन्तश्च वह्वीभिर्यातनाभिर्गिरीन्द्रजे !।
असुखप्रदमार्गेण निन्युस्तान् यमसन्निधिम् ॥३२॥

हे शैल कुमारी ! पुनः अनेक प्रकारकी यातनाओंके द्वारा उन ब्राह्मण-कुमारोंको कष्ट देते हुये बड़े ही दुःखप्रद मार्ग (रास्ते) से वे यमराजके पास ले गये ॥३२॥

तेऽपूर्वभीषणाकाराश्चकितं यममब्रुवन् ।
दिश देव ! स्थलं शीघ्रं निवासायोचितं हि नः ॥३३॥

जानबूझ कर शास्त्रोक्त महा पातक कर्म-परायण होनेके कारण उन ब्राह्मण पुत्रोंका प्रभुकी इच्छासे ऐसा भयङ्कर स्वरूप हो गया, जैसा कि कभी किसीका नहीं हुआ था, उस स्वरूपको देखकर धर्मराज बड़ेही आश्चर्यमें पड़ गये। उनकी वह दशा देखकर उन पुत्रोंने कहा-हे देव ! हम लोगोंके निवासके लिये जो उचित स्थान हो, उसे शीघ्र दीजिये, विलम्ब क्यों कर रहे हैं ॥३३॥

श्रीशिव उवाच।

इति तेषां वचः श्रुत्वा चित्रगुप्तं यमोऽब्रवीत्।
पापकर्मानुसारेण स्थलमेभ्यस्त्वयोच्यताम् ॥३४॥

उनके यह निर्भय वचन सुनकर यमराजजी चित्रगुप्तजीसे बोले-हे चित्रगुप्तजी ! पापकर्मानुसार इन ब्राह्मण कुमारोंके लिये जो उचित नरक हो, उसे आप कह दीजिये ॥३४॥

न विलम्बोऽत्र कर्त्तव्यो बिभेम्येषां हि दर्शनात्।

श्रीशिव उवाच।

स दृष्ट्वा पापकर्माणि तेनेत्युक्तोऽगिरं गतः ॥३५॥

कहनेमें आपको विलम्ब करना उचित नहीं है, क्योंकि इनके दर्शनसे मुझे बहुत भय लग रहा है। भगवान् शङ्करजीने कहा:-हे प्रिये ! धर्मराजकी उस आज्ञाको पाकर चित्रगुप्तजी उनके (पाप कर्मोंका हिसाब) देख कर मौन ही रह गये ॥३५॥

श्रीधर्म उवाच।

शीघ्रमुच्चार्यतां तात ! वासायैषां किल स्थलम्।
मुहुस्तेनेति संप्रोक्तश्चित्रगुप्तस्तमब्रवीत् ॥३६॥

हे तात ! "इन लोगोंके रहनेके लिये आप शीघ्र ही निश्चित स्थान बताइये" जब इस प्रकार धर्मराजजी घबड़ाते हुये बारंबार चित्रगुप्त से कहने लगे, तब चित्रगुप्तजी उनकी आज्ञासे लाचार होकर बोले ॥३६॥

श्रीचित्रगुप्त उवाच ।

एषां कर्मानुसारेण नावकाशोऽत्र दृश्यते ।
कोऽपि सञ्चिन्वता बुद्ध्या मयाऽतो रुद्धवागहम् ॥३७॥

हे श्रीधर्मराजजी महाराज ! मैंने बहुत कुछ अपनी बुद्धि लड़ाई, परन्तु कर्मानुसार इनके रहनेके लिये यहाँ कोई भी न्याययुक्त स्थल दिखाई ही नहीं देता, इसी कारणसे मैं मौन था ॥३७॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवं शंसितस्तेन शमनो भयविह्वलः ।
सर्वेश्वरेश्वरं दध्यौ कर्त्तव्यज्ञानसिद्धये ॥३८॥

भगवान् शङ्करजी बोले:-हे पार्वति ! श्रीचित्रगुप्तजीके इस प्रकार कहने पर धर्मराजजी भयसे विह्वल हो गये, पुनः हृदयको सम्हाल करके (हमको इस विकट समस्या के उपस्थित हो जाने पर अब क्या करना चाहिये ? इस) कर्तव्यका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये चर अचर सभी प्राणियोंके स्वामी जो भगवान विष्णु आदि हैं उनके भी प्रभु श्रीरामजीका वे ध्यान करने लगे ॥३८॥

प्रार्थयामास मनसा विशुद्धेन समाधिना ।
साकेताधिपतिं देवं शरण्यं सर्वदेहिनाम् ॥३९॥

पुनः समाधि क्रियाके द्वारा अपने शुद्ध किये हुये मनसे प्राणिमात्रकी रक्षा करनेको समर्थ, श्रीसाकेत विहारी सरकारसे वे प्रार्थना करने लगे ॥३९॥

श्रीधर्म उवाच ।

हे नाथ ! हे रमानाथ ! जानकीवल्लभ ! प्रभो !
कृपया मे भयार्तस्य शरणं भव राघव ! ॥४०॥

श्रीधर्मराजजी प्रार्थना करने लगे कि:-हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे श्रीजानकी वल्लभजू ! हे राघव ! हे प्रभो ! नरकमें आये हुये इन ब्राह्मण पुत्रोंके भयसे मैं घबड़ा गया हूँ, अत एव अब कृपा करके मेरी रक्षा कीजिये ॥४०॥

त्वमसि सकललोकप्राणिनां प्राणभूतः शरणमवनिपुत्रीप्राणनाथः परेशः ।
निखिलभुवनलीलाधाम दीनैकबन्धो! भवतु गतिरिदानीं मे भवानाप्तकामः॥४१॥

प्रभो ! अनन्त ब्रह्माण्ड ही आपकी लीलाके धाम (समूह) हैं, आप सकल लोक निवासी प्राणियोंके प्राण और श्रीअवनि (भूमि) कुमारीजूके प्राणनाथ, ब्रह्मादिकोंके स्वामी तथा आप्त-काम हैं। हे दीनबन्धो ! इस समय आप मेरी रक्षा कीजिये ॥४१॥

सततपतितकर्माचारिणां कर्मगत्या
न हि मम विषयेऽपि स्थातुमेषां स्थलं वै ।
कथमविहितपुण्याः प्रेषणीया दिवि स्यु-
स्तत उचित उपायश्चिन्त्यतां नः शिवाय ॥४२॥

हे नाथ ! सब दिन, सब समय, पतितोंके ही आचरण करने वाले इन ब्राह्मण-पुत्रोंको कर्मकी गतिके अनुसार, मेरे इस यम लोकमें ठहरनेके लिये भी कोई जगह नहीं है। तब जिन्होंने कुछ भी पुण्य नहीं किया, ऐसे इन लोगोंको स्वर्ग भी किस तरह भेजा जाय ? अर्थात् न इनको मेरे ही यहाँ रहनेका ठिकाना है, न स्वर्गमें ही। अत एव हे सर्व समर्थ प्रभो ! अब हमारा जैसे कल्याण हो, उस उचित उपायका आप चिन्तन करें (सोचें) ॥४२॥

श्रीशिव उवाच ।

इयं तु प्रार्थना तस्य पत्रिका-रूप धारिणी ।
कोटिब्रह्माण्डनाथस्य निपपात पदाम्बुजे ॥४३॥

भगवान् शंकरजी बोले-हे प्रिये ! धर्मराजकी यह "प्रार्थना" पत्रिका रूपको धारण करके कोटिब्रह्माण्ड-नायक श्रीमदवध बिहारीजूके सर्वशरण्य श्रीचरण कमलोंमें जा गिरी ॥४३॥

सा निरीक्ष्यैव रामेण वायुसूनोः कराम्बुजात् ।
प्रियायै दर्शिता तूर्णं कृपासारैकमूर्त्तये ॥४४॥

धर्मराजकी उस प्रार्थना-पत्रीको श्रीरामजीने स्वयं अवलोकन करके श्रीपवनकुमारजीके कर-कमलों द्वारा उसे कृपा-सारकी अद्वितीय मूर्त्ति, अपनी श्रीप्राणप्रिया (श्रीकिशोरी) जी को दिखाया ॥४४॥

श्रीसीतोवाच ।

एतादृशां तु जीवानां निवासस्थानमुत्तमम् ।
मद्धाम परमं ज्ञेयमस्वर्गनिरयं कपे ! ॥४५॥

भगवान् शंकरजी बोले-हे प्रिये ! धर्मराजकी उस प्रार्थना-पत्रीको अवलोकन करके

श्रीकिशोरीजी बोलीः हे पवन पुत्र! जैसे वे ब्राह्मण पुत्र हैं, वैसे व्यक्तियोंके लिये, न स्वर्गही योग्य निवास स्थान है, न नरक ही, उनके लिये तो मेरा यह दिव्य धाम साकेत ही उत्तम निवास-स्थान है ॥४५॥

पापानां वाऽशुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम !।
कार्यं कारुण्यमार्येण नकश्चिन्नापराध्यति ॥४६॥

हे मरुत् नन्दन! चाहे कैसा भी पापी अथवा कैसा भी अशुभ कर्म करने वाला क्यों न हो, चाहे प्राण दण्डके ही योग्य किसीने अपराध क्यों न किया हो, परन्तु श्रेष्ठ पुरुषको उनसे द्वेष न करके सर्वदा उसकी भलाईके लिये ही यथा योग्य कृपा करनी आवश्यक है, क्योंकि ऐसा कोई है ही नहीं, जो अपराधसे अछूता रहे, अर्थात् सभीसे कुछ न कुछ अपराध हो ही जाता है, इस सिद्धान्तानुसार हमें उन जीवों पर भी कृपा ही करनी आवश्यक है ॥४६॥

गच्छ तान्दिव्ययानेन मनोवेगेन चानय।
सादरं पतितश्रेष्ठान् यमलोकान्ममान्तिकम् ॥४७॥

अत एव तुम जाओ, और मनकी गतिके समान शीघ्र गमन करने वाले दिव्य विमानके द्वारा उन पतित शिरोमणि चारो भाइयोंको यम लोकसे आदर पूर्वक मेरे पास ले आओ ॥४७॥

आशु मुक्तस्त्वया कार्यो यमेशो महतो भयात्।
अनेनैव प्रयत्नेन मदाज्ञामवता त्वया ॥४८॥

इसी उपायके द्वारा मेरी आज्ञाकी रक्षा करते हुये उपस्थित महा भयसे तुम शीघ्र यमराजको मुक्त करो ॥४८॥

श्रीशिव उवाच।

प्रणम्य दण्डवद्भूमावित्याज्ञप्तोऽनिलात्मजः।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो जगामान्तकविष्टपम् ॥४९॥

श्रीकिशोरीजीकी इस आज्ञाको पाकर पवनपुत्र श्रीहनुमत्लालजीके सभी अङ्ग पुलकायमान हो गये। पुनः वे उनको भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करके यम लोक पधारे ॥४९॥

पश्यतां सर्वदेवानां यमराजभयप्रदान्।
विप्रपुत्रान्समादाय स्वस्वामिन्यन्तिकं ययौ ॥५०॥

वे श्रीहनुमतलालजी सभी उपस्थित देवताओंके देखते हुये यमराजको भय प्रदान करने वाले उन ब्राह्मण कुमारोंको लेकर अपनी श्रीस्वामिनीजूके पास जा पहुँचे ॥५०॥

ईर्ष्यापरायणैर्देवैर्न चैतत्साध्वमन्यत ।
अतो ब्रह्माणमभ्येत्य त ऊचुर्नतकन्धराः ॥५१॥

परन्तु श्रीकिशोरीजीके इस विधानको ईर्ष्या-परायण (अपनेसे अधिक किसीकी उन्नतिको न सहन कर सकने वाले) देवताओंने न्याययुक्त नहीं माना, अतः वे सब ब्रह्माजीके पास जाकर अपने कन्धोंको झुकाते हुये प्रार्थना करने लगे ॥५१॥

देवा ऊचुः ।

अन्यायोऽस्ति महानेष विधातः ! संप्रतीयते ।
निरयेऽप्यव्यवस्थानां सल्लभ्येयं गतिर्यतः ॥५२॥

देवता बोले:-हे विधातः ! जिन पतितोंको उनके पाप कर्मोंकी विशेषताके कारण नरकमें भी न्यायपूर्वक रहनेको कोई जगह न दी जा सकी, उन्हें सत्पुरुषोंको मिलने योग्य साकेत धाममें बुलाया गया है, बहुत कुछ विचार करने परभी बड़े दरबारका यह बड़ाही अन्याय प्रतीत होता है ॥५२॥

श्रीशिव उवाच ।

एतदाभाषितं तेषां श्रुत्वा लोकपितामहः ।
मैवं तान्वदतेत्युक्त्वा रहस्यं तद्व्यघोषयत् ॥५३॥

उन देवताओंका यह कथन सुनकर सभी लोकोंके बाबा ब्रह्माजीने हां-हां, ऐसा मत कहो, कह कर उन पतित कर्मा ब्राह्मण पुत्रोंको जिससे साकेत बुलाया गया था, उस रहस्यको उन्हें कह सुनाया ॥५३॥

ब्रह्मोवाच ।

संप्राप्तिप्रदसाधनं सुभजतां मत्वा सदा सद्धिया,
मुत्कृष्टं यदिवा श्रुतिप्रगदितं पुंसां निकृष्टं परम् ।
सीतारामशुभोपलब्धिकरणं भूयाद्ध्रुवं निर्जरा !
भावग्राहिसुरोत्तमैकमहितौ तौ सर्वलोकप्रभू ॥५४॥

ब्रह्माजी बोले हे देवताओ ! चाहे वेदके द्वारा श्रेष्ठ कहा गया हो, अथवा परम निकृष्ट (नीच), परन्तु "यह साधन हमें अवश्य श्रीसीतारामजीकी प्राप्ति करा देगा" ऐसा अटल विश्वास करके जो उस साधनमें लगे रहते हैं, हे देवताओ ! उन साधक मनुष्योंको वह साधन अवश्य श्रीसीतारामजीकी प्राप्ति करा देता है । इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं, क्योंकि सभी लोकोंके स्वामी

वे श्रीसीतारामजी भावग्राही (केवल भावको ही ग्रहण करने वाले) सभी श्रेष्ठ देवताओंके द्वारा अनन्य भाव से पूजित हैं अर्थात् भावग्राही सभी देवश्रेष्ठ भी उन्हीं श्रीसीतारामजीको अपना शिरोमणि मानते हैं ॥५४॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं ते विबुधा मुदान्वितमुखाः संबोधिता वेधसा
संछिन्नाखिलसंशयाः शरणदौ प्रार्थ्य क्षमार्थं मुहुः ।
भक्त्या संयतपाणयो विनमितस्कन्धद्वया भूरिशो
नत्वा लोकमथागमन् जय जयेत्युच्चैर्गृणन्तः स्वकम् ॥५५॥

इस प्रकार ब्राह्मण पुत्रोंका मत सहस्य श्रीब्रह्माजीके सुनाने पर उन देवताओंके सब सन्देह नष्ट हो गये, अत एव उन सबोंके मुख पर आनन्द छा गया, तब वे अपने दोनों कन्धोंको झुकाकर हाथ जोड़े हुये, अपने अपराधोंको क्षमा करानेके लिये, सभीको रक्षा प्रदान करनेवाले श्रीसीतारामजी से प्रार्थी हो उन्हें बार बार प्रणाम करके, उच्चस्वरसे जय जय पुकारते हुये अपने लोकको गये ॥५५॥

तस्मादेव महादेवि ! मैथिली जनकात्मजा ।
सर्वसिद्धान्तकृद्भिरोक्ता ह्यपारकरुणार्णवा ॥५६॥

इति षष्ठोऽध्यायः ।

इसलिये हे महादेवि ! श्रीमिथि महाराजके वंशमें प्रकट हुई श्रीजनक-दुलारीजीको सभी सिद्धान्तकारोंने अपार-करुणा-सागरा कहा है ॥५६॥ (१)

---

(१) इस कथासे कदाचित् किसीके मनमें किसी प्रकारका भ्रम उत्पन्न न हो जाये, अतः यह स्पष्टीकरण आवश्यक है— इस कथामें आये ब्राह्मणकुमार भगवत्प्राप्तिकी दृढ कामना तथा शुद्ध सरल चित्तसे पतित बने। इससे कोई यह न समझे कि पतित बनना ही भगवत्प्राप्तिका एक मात्र साधन है। दीन हीनकी दशा पर प्रभु की कृपा साधारण जनकी भी शीघ्र आकर्षण होता है। भगवत्प्राप्तिके लिये यदि पतित बनना हो तो, उन ब्राह्मण कुमारों के जैसा ही दृढ़निष्ठ भी होना चाहिए। यदि वैसी निष्ठा नहीं होगी तो भ्रमण करनेके लिये चौरासी लक्षयोनियाँ तथा यमनायका चक्र तो खुला ही रहेगा।

अथ सप्तमोऽध्यायः।

जीवोंके कल्याणार्थ श्रीसाकेतधामका श्रीसीताराम-सम्वाद।

श्रीशिव उवाच।

अगुणसगुणरूपौ वेदवेदान्तसारौ
निरवधिसुपमाढ्यौ भूषितौ स्रग्विणौ तौ।
जलधरचपलाभौ रत्नसिंहासनस्थौ
परमकरुणचित्तौ नौमि सीतां च रामम् ॥१॥

जो निर्गुण स्वरूपसे सारेविश्वमें व्याप्त है और सगुण स्वरूपसे भक्तोंके भावको पूर्ण कर रहे हैं, वेद और उपनिषद्के जो सार है अर्थात् वेद और उपनिषदोंने अपने सारे कथनका लक्ष्यस्थान जिन्हें नियत किया है, अत्यन्त निरुपम सौन्दर्यसे जो युक्त है, सब प्रकारके भूषणोंसे जो विभूषित है, गलेमें सुन्दर माला पहिने हुये है, मेघ और बिजलीके सदृश जिनके श्रीअङ्गका प्रकाश है, मणिमय रत्न-सिंहासन पर जो विराजमान है, जिनका चित्तपरम करुणारससे युक्त हैं, उन साकेत धामके भूषण प्रभु श्रीसीतारामजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

कदाचित्प्राणदाऽमोघा जीवलोकं यदृच्छया।
कृपावत्याः कृपादृष्टिः प्रयाताऽऽनन्दवर्षिणी ॥२॥

भगवान् शङ्करजी श्रीपार्वतीजीसे बोले:-हे प्रिये! किसी समय अनन्त करुणामयी श्रीकिशोरी-जीकी आनन्दकी वर्षा करने वाली व कभी भी निष्फल न होने वाली तथा हताश प्राणियोंको आशा रूपी प्राणप्रदान करने वाली कृपा पूर्ण दृष्टि अकस्मात् जीव लोककी ओर गयी ॥२॥

दीना निरीक्षिता जीवा नानाकर्मपरायणाः।
निरस्तसच्चिदानन्दा विषयानन्दलोलुपाः ॥३॥

उन्हें सभी जीव सत्, चित्, आनन्दसे सर्वथाशून्य, अनेक प्रकारके सकाम कर्मोंमें लगे हुए, इन्द्रियोंके विषय-सुखकी प्राप्तिके लिये ही सदा चिन्ता युक्त, अति दीन दिखलाई दिये ॥३॥

चिन्तोदिताऽप्यचिन्ताया हृदि ज्ञात्वेति तां प्रियः।
अजानन्निव पप्रच्छ प्रियाचिन्तानुचिन्तितः ॥४॥

अत एव सर्व चिन्ताओंसे रहित श्रीकिशोरीजीके कोमल हृदयमें चिन्ताका उदय हुआ, प्राण-

प्यारे (श्रीरघुनन्दन) जूने यह जानकर भी प्रियाजूकी चिन्तासे चिन्तितसे होते हुये अज्ञानीके सरीसे प्रश्न किया ॥४॥

श्रीराम उवाच।

किमर्थं प्राणेशे ! विधुनिकरसम्मोहिवदनं
तवेदं सम्लानं कथय करुणापूर्णहृदये ! ।
रमोमावागीशाश्चरणकृपयाऽपारगतयो
ऽप्यहो यस्या लोके प्रथित विभवास्तेस्थिरगुणाः ॥५॥

हे श्रीप्राणेश्वरीजू ! अहो पार न पाने योग्य महिमा और जगत्-प्रसिद्ध ऐश्वर्य तथा सदा स्थिर रहने वाले गुण जिनके श्रीचरण कमलोंकी कृपासे श्रीलक्ष्मीजी श्रीपार्वतीजी, तथा श्रीब्रह्माणीजीको अनायास ही प्राप्त हैं, हे करुणापूर्ण हृदये ! उन आपका अनन्त चन्द्रमाओंको भी अपने स्वच्छ प्रकाश तथा आह्लादक गुणसे मोहित करने वाला यह श्रीमुखारविन्द क्यों मलिन हुआ ? उसे आप मुझसे कहनेकी कृपा करें ॥५॥

प्रिये यद्वा मत्तस्तव भवतु चिन्तापहरणं
तदाख्यातुं कार्या सपदि हि कृपा ते प्रियतमे !
न हि द्रष्टुं शक्तोऽस्म्यहमपरितुष्टेन्दुवदनं
प्रबुध्यैतत्सत्यं हृदयगतभावं प्रकटय ॥६॥

अथवा हे प्रिये ! यदि मुझसे ही आपकी चिन्ता दूर होने वाली हो, तो वह भी शीघ्र मुझसे कहने की कृपा करें, क्यों कि हे प्राणप्यारीजू ! आपके मुरझाये हुये श्रीमुखारविन्दके दर्शन करनेको मैं असमर्थ हूँ। इस बातको सत्य जानकर मुखमलिनताके कारण स्वरूप हृदयमें आये हुये अपने भावको आप शीघ्र प्रकट कीजिये ॥६॥

श्रीसीतोवाच।

अहो प्राणप्रेष्ठ ! क्षितितलमधो दृष्टिरमितो
यदृच्छासंप्राप्ता मम हृदयचिन्तैकजननी ।
व्यवस्थां तत्रात्यां प्रियवर ! समीक्ष्याति करुणा
प्रजाता मे चेतस्यविरलतया कारणमिदम् ॥७॥

श्रीप्रियाजू प्रियतम प्यारेके ये वचन सुनकर बोलीं—अहो श्रीप्राणनाथजू ! आज मेरी चिन्ताको जन्म देनेवाली मेरी यह सहज दृष्टि अकस्मात् ही नीचे पृथिवी तल पर पड़ी और वहाँकी दुर्व्यवस्थाको

देखकर मेरे चित्तमें अविरल करुणा प्रकट हो गयी, हे प्यारे ! यही मेरे मुख मलिनताका मुख्य कारण है ॥७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा विशालाक्षी शरच्चन्द्रनिभानना ।
प्रेयसश्चिबुकं स्पृष्ट्वा मैथिली वाक्यमब्रवीत् ॥८॥

भगवान् शङ्करजी कहते हैं कि:-हे पार्वती ! जिनका शरद् ऋतुके चन्द्रके समान अत्यन्त मनोहर श्रीमुखारविन्द है, जिनके विशाल लोचन हैं, वे श्रीकिशोरीजी इस प्रकार अपने मुख मलीनताका कारण बताकर, अपने श्रीप्राणनाथजूकी ठोढीका स्पर्श करके उनसे स्पष्ट बोलीं ॥८॥

श्रीसीतोवाच ।

श्रूयतां तद्वदन्त्या मे सावधानतया प्रिय !
उपायं चोचितं तस्य त्वं चिकीर्ष प्रियाय मे ॥९॥

श्रीकिशोरीजी सरकार से बोलीं.-हे प्यारे ! इस समय मेरे हृदयमें जो भाव आया है उसे मैं कहती हूँ, आप सावधान चित्तसे श्रवण कीजिये, तदनन्तर मेरी प्रसन्नताके लिये उसका उपाय करनेकी इच्छा करें ॥९॥

आवयोरंशसंभूता आवयोस्तुल्यविग्रहाः ।
साधना-धाम संप्राप्य मुक्तिद्वारं नृणां वपुः ॥१०॥

हे प्यारे ! ये मृत्युलोक निवासी हमारे आपके ही अंशसे उत्पन्न, हमारे-आपके ही तुलना करने योग्य शरीर धारी, सभी साधनाओंका स्थान और मुक्तिका द्वार स्वरूप इस मनुष्य शरीरको पाकर ॥१०॥

मोहिता मायया हन्त विषयानन्दसस्पृहाः ।
यतमानाः सुखायैव प्रायो दुःखं व्रजन्ति ते ॥११॥

मायाके द्वारा मोहग्रस्त किये हुये वे प्राणी, केवल विषय सुखके लिये ही लालायित हो रहे हैं, कितने खेदकी बात है, कि उस विषय सुखकी प्राप्तिकी साधना करते भी प्रायः वे दुखको ही प्राप्त होते हैं, अर्थात् उन्हें विषय सुख भी पूर्ण नहीं प्राप्त होता है ॥११॥

सुखमप्राकृतं तेषां कुत एव भवेदिदम् ।
अखण्डं दिव्यकं प्रेष्ठ ! नास्ति यज्ज्ञानमच्युत ॥१२॥

हे प्यारे ! हे श्रीप्रियतमजू ! फिर हमारे इन दिव्य धाम निवासी जीवोंका सर्व विकार रहित, पूर्ण, सदा एक रस रहने वाला, यह अप्राकृत सुख उनको कहाँ से प्राप्त हो सकता ? जिसका उन्हें ज्ञान तक नहीं है ॥१२॥

श्रीशिव उवाच ।

प्रियया शंसितं श्रुत्वा वल्लभो लोकवल्लभः ।
कृपार्द्रहृदयः श्रीमान् व्याजहारोत्तरं शुभम् ॥१३॥

भगवान् शङ्करजी बोले कि हे प्रिये ! श्रीलोकवल्लभ प्यारेने अपनी श्रीप्रियाजूके ये वचन सुना और कृपासे द्रवी भूत हृदय होते हुये मङ्गल मय उत्तर प्रदान किया ॥१३॥

श्रीराम उवाच ।

जीवानां दुःखमोक्षाय सुखायैव युगे युगे ।
मम सत्वगुणो विष्णुर्जायते नैकरूपतः ॥१४॥

हे श्रीप्रियाजू ! जीवोंके दुःख निवृत्ति और सुखप्राप्तिके लिये ही युग-युगमें हमारे सत्व गुण-स्वरूप भगवान् विष्णु कछुआ, मछली, शूकर आदिक अनेक रूपोंसे प्रकट हुआ करते है ॥१४॥

श्रुतिशास्त्रपुराणानि मयोपनिषदादयः ।
संहिताः स्मृतयश्चैव मुनिवर्य्यैः प्रचारिताः ॥१५॥

स्वयं मैंने मुनियोंके द्वारा चार वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण, ग्यारहसौ असमी उपनिषद्, सभी संहिता, सभी स्मृतियाँ महाभारतादिक इतिहास तथा और भी अनेक धर्मग्रन्थोंका प्रचार कराया है॥१५॥

विनिन्द्य विषयानन्दं प्रोच्य मायामयं जगत् ।
कोटयः सुखमार्गाश्च दर्शिता मे दयानिधे ! ॥१६॥

हे श्रीदयानिधिजू ! उन सभी छोटे बड़े ग्रन्थोंमें विषय सुखकी घोरनिन्दा करके इस दृश्य जगतको प्रभुकी माया (इच्छाशक्तिकी कल्पना) मय बतलाकर जीवके वास्तविक सुख सिद्धिके लिये मैंने करोड़ों रास्ते दिखाये हैं ॥१६॥

श्रेयसे भुवनस्यास्य वहूपायाः कृता मया ।
यथा शक्ति यथा बुद्धि दूषणं किं ततो मम ॥१७॥

हे श्रीप्रियाजू ! मैंने इस लोक वासियोंके कल्याणके लिये अपनी बुद्धि एवं शक्तिके अनुसार बहुत कुछ उपाय किया तथापि यदि वे सुखी न हों तो, आप ही कहें मेरा क्या दोष है ? ॥१७॥

प्रदान करना चाहिये । श्रीकिशोरीजीकी इस अमृतमयी वाणीका भाव यह है-कि, हमारे इन दिव्य-धामनिवासियोंको हमारे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक दिव्य विषय सुखको सहज प्राप्ति है अतः ये दिव्य सुखको प्राप्त हैं, इस कारण जब हम दोनों मृत्यु लोकमें भी इसी रूपसे प्रकट होंगे, तब वहाँके प्राणी भी उपर्युक्त दिव्य-विषय-सुखको प्राप्त हो कर सहज ही तुच्छ विषय सुखको त्याग देंगे, क्योंकि जो प्राणी मधुर शब्दके विषयमें आसक्त हैं उन्हें हमारे जैसा मधुर शब्द और मिलेगा कहाँ ? जो स्पर्श सुखमें आसक्त हैं, उन्हें ऐसा सुखद स्पर्श भी अन्यत्र कहाँ ? जो रूपासक्त हैं, उन्हें भी हमारा सा स्वरूप ही फिर कहाँ मिलेगा ? जो रसासक्त हैं, उन्हें हमारे प्रसादसे बढ़कर मधुर और सरस वस्तु ही कहाँ मिलेगी ? जो गन्धासक्त हैं, उन्हें भी हमारे आपके श्रीअङ्गकी सुगन्धसे बढ़कर और सुगन्ध ही कहाँ मिलेगी ? जो लीला देखनेमें आसक्त हैं, उन्हें ऐसी सुखद मनोहारिणी लीलायें-भी कहाँ अन्यत्र मिलेंगी ? अत एव हे प्यारे ! हमारे और आपके भूतल पर पधारनेसे, वे तुच्छ विषयासक्त जीव भी सहज में ही दिव्य-सुखके भोक्ता बन जांयगे ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

तां निशम्य प्रियावाचं सर्वजीवसुखावहाम् ।
बभाणाश्रित-ध्वान्तेनो व्यञ्जयन् रोषमात्मनः ॥२३॥

भगवान शङ्करजी बोले-हे प्रिये ! प्राणि-मात्रको पूर्ण सुखी कर देनेवाली, श्रीप्रियाजूकी उस अमृतमयी वाणीको सुनकर, भक्तोंके हृदयान्धकारको सूर्यके समान अनायास नष्टकर-देने वाले, प्राण प्यारेजू मनुष्योंके प्रति कुछ अपना रोष प्रकट करते हुये बोलेः-॥२३॥

श्रीराम उवाच ।

वाय्विनेन्द्राग्निमृत्युक्ष्मापद्मोद्भवमहेश्वराः ।
अतन्द्रिता भयोपेताः स्वकार्ये लग्नचेतसः ॥२४॥

हे श्रीप्रियाजू ! मेरा भय मान करही सभी बड़ेसे बड़े शक्तिमान वायु, सूर्य, इन्द्र अग्नि, मृत्यु पृथिवी, ब्रह्मा, शङ्करादिक-आलस्य छोड़कर अपने अपने नियमित कार्योंमें लगे रहते हैं अर्थात् जिसको जो कार्य करनेका मैंने आदेश दिया है उसमें वह अहर्निश लगा रहता है ॥२४॥

दंशभीता भयापेता भूत्वा मत्तः पराङ्मुखाः ।
स्वेच्छासञ्चारिणो मर्त्याः प्रबुध्योन्मार्गवर्तिनः ॥२५॥

परन्तु मरणधर्मा ये अल्प शक्तिमान मनुष्य, जिन्हें एक मच्छड़ से भी भय लगा रहता है वे

मेरा भय न मानकर, मुझसे ही विमुख हो वेद, शास्त्र, और किसी महानुभावकी आज्ञा, न मानकर केवल अपने मन माने आचरण करते हुये, जान बूझकर कुमार्गगामी हो रहे हैं ॥२५॥

एतैः क्रीडां चिकीर्षामि नैते पश्यन्ति मामपि ।
अपराध्यन्ति जानन्तो वल्लभे ! चाप्यनुक्षणम् ॥२६॥

हे श्रीप्राण प्यारीजू ! मेरी यह इच्छा है कि मैं इनके साथ-साथ खेलता रहूँ, परन्तु ये मेरी ओर देखते भी नहीं, और जान बूझकर प्रतिक्षण मेरा अपराध किया करते हैं ॥२६॥

ममाप्रीतिकरं कर्म कुर्वाणानामहर्निशम् ।
हठतो मन्दभागानां कथं तेषां सुखं भवेत् ॥२७॥

हे प्रिया जू ! जो जीव हठ पूर्वक मुझे अप्रसन्न कराने वाले ही कर्मोंको रात-दिन करते रहते हैं, आप ही कहें ? उन मन्द भागियोंको, कैसे सुख हो सकता है ? ॥२७॥

श्रीशिव उवाच ।

रोषयुक्तमिदं वाक्यं चन्द्रवक्त्रसमीरितम् ।
श्रुत्वोचे विधुपुञ्जाभविस्मेररुचिरानना ॥२८॥

भगवान् शङ्करजी कहते हैं—हे प्रिये ! चन्द्र पुञ्जके सदृश प्रकाशमान मुस्कानयुक्त, मनोरम श्रीमुखारविन्द वाली श्रीकिशोरीजी, प्यारेके चन्द्रवत् मुख-कमलसे रोष पूर्वक इन कहे हुये वचनोंको सुनकर बोलीं ॥२८॥

श्रीसीतोवाच ।

बालानामपराधान् किं पश्यन्ति पितरः क्वचित् ।
मायया संवृतात्मानः कथं त्वां वीक्षितुं क्षमाः ॥२९॥

हे प्यारे ! क्या कोई माता-पिता भी अपने अबोध बालकोंके अपराधों पर कभी दृष्टि देते हैं ? अर्थात् कभी नहीं । इसी तरह आप भी इन जीवोंके अपराधों पर ध्यान न देनेकी कृपा करें । इनके बुद्धि और नेत्रों पर मायाका परदा पड़ा हुआ है, अत एव बिना उसके हटाये ये किस प्रकार आपके दर्शन करने को समर्थ हो सकते हैं ? क्योंकि हे प्यारे । उस मायाका पर्दा हटानेकी सामर्थ्य भी तो इनमें नहीं है, उसे हटाना भी तो आपके ही हाथ है, तब ये जीव मेरी ओर देखते भी नहीं ऐसा कहते हुये बेचारे इन जीवोंको कलङ्क देना आपके लिये कैसे उचित है ॥२९॥

किं बिभ्यति कचिद्बालाः पित्रोरैश्वर्यदर्शनात् ।
तेषां क्रीडा सुखायैव प्रभवत्यार्द्रचेतसोः ॥३०॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! क्या ऐश्वर्य देखकर माता पितासे उनके बालक भी कभी भय मानते हैं ? अर्थात् कभी नहीं। अत एव यदि ये जीव आपसे भय नहीं भी मानते हों, तो भी रोषके पात्र नहीं हो सकते। जैसे बालकोंकी सभी सूधी टेढ़ी क्रीडाओंको देखकर उनके अनुरागी माता पिता विशेष सुख ही मानते हैं, उसी प्रकार अनन्त करुणावरुणालय, सच्चे सुहृद्, जगत् पिता आप इन जीव रूपी बालकोंके मनमाने सभी आचरणोंसे रुष्ट न होकर सुख ही मानिये ॥३०॥

जीवानां दुर्दशां पश्य दुर्गुणानसमीक्ष्य च ।
नैष्ठुर्यं संपरित्यज्य कारुण्यं भज वल्लभ ! ॥३१॥

हे प्राणप्रियतमजू ! जीवोंके दुर्गुणों पर दृष्टि न देकर केवल उनकी दुर्दशाको ही देखिये और इनके अवगुणोंको देखने से जो आपके हृदयमें निठुरता आरही है, उसे परित्याग करके इनके प्रति अब केवल करुणा मात्र लावें, अर्थात् कृपा करके इनको दिव्य सुख प्रदान करनेके लिये मनुष्य लोकमें अपने इसी विश्वविमोहन रूप, गुण-सम्पन्न दिव्य मङ्गलमय विग्रहसे पधारने (प्रकटहोने) की इच्छा करें ॥३१॥

श्रीशिव उवाच।

सर्वजीवानुकम्पिन्या वाक्यं वाक्यविदां वरः ।
कृत्वा कर्णगतं रामश्चतुरः पुनरब्रवीत् ॥३२॥

भगवान् शङ्करजी बोले:–हे प्रिये ! वाक्य (वचन) का अर्थ समझने वालोंमें श्रेष्ठ, परमचतुर प्राणप्यारेजू सर्व जीवों पर अनुकम्पा (दया) करने वाली श्रीकिशोरीजीके वचनोंको श्रवण करके उनसे फिर बोले ॥३२॥

श्रीराम उवाच।

अजाचिन्त्यादिनामानि श्रुतिगीतानि वल्लभे !
असत्यानि भविष्यन्ति तेन वेदोऽनृतो भवेत् ॥३३॥

हे श्रीप्रियाजू ! यदि इन जीवोंपर कृपा करते हुए इन्हें दिव्य सुख प्रदान करनेके लिये इसी अपने स्वरूपसे मृत्यु लोकमें पधारें, तो अजन्मा, अचिन्त्य (चिन्तनसे परे) आदिक वेदोक्तसभी नाम झूँठे हो जायेंगे, और उनके झूँठे होनेसे वेद भी झूठा सिद्ध होगा ॥३३॥

श्रीशिव उवाच ।

विज्ञचूडामणेरेतत्पुनराकर्ण्य भाषितम् ।
प्रेयसी प्रेयसं प्राह श्रूयतां वदतां वर ! ॥३४॥

भगवान्शङ्करजी बोले—हेप्रिये ! चतुरशिरोमणि प्राणप्रियतमजूके ये वचन सुनकर प्राणप्रिया श्रीकिशोरीजी पुनः प्यारे से बोलीं—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! श्री प्राणप्यारे जू ! सुनें ॥३४॥

श्रीसीतो उवाच ।

वेदो नेतीति सम्भाष्य प्रेममग्नो बभूव ह ।
तस्मादसत्यतां वेदो नैष्यति प्राणवल्लभ ! ॥३५॥

हे प्राण वल्लभजू ! वेद हमारे और आपके स्वरूपको वर्णन करते करते नेति नेति अर्थात् जैसे हमने कहा है वैसा ही नहीं है, बल्कि उससे भी विलक्षण है, ऐसा कह कर वह प्रेममें डूब गया, अत एव प्रभु ऐसे ही हैं, यह निश्चय न कर देने से वेद झूठा नहीं हो सकता ॥३५॥

श्रीशिव उवाच ।

कान्तावचनचातुर्यं प्रसमीक्ष्य सतां प्रियः ।
पुनराह वचः श्लक्ष्णं रसिको रसविग्रहाम् ॥३६॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः—हे पार्वति ! श्रीप्रियाजूकी वचन-चातुरीको अच्छी प्रकारसे देखकर रसिक-शिरोमणि (भक्तोंको अपने शिरकी मणिके समान श्रेष्ठ मानने वाले) सन्तोंके प्यारे सरकार, साक्षात् रसकीमूर्त्ति (त्रिगुणातीत ब्रह्मस्वरूपा) श्रीकिशोरीजीसे पुनः बड़े ही प्रेम से बोले ॥३६॥

श्रीराम उवाच ।

रक्षणार्थं प्रपन्नानां प्रतिज्ञा विहिता मया ।
नाययुः शरणं यत्ते किं करोमि ततोऽन्वहम् ॥३७॥

हे श्रीप्रियाजू ! शरणागत जीवोंकी रक्षा करनेके लिये मैं ने तो प्रतिज्ञा ही कर रक्खी है, तथापि यदि वे मेरी शरण ही न आवें, तो फिर मेरा क्या दोष है ? ॥३७॥

श्रीशिव उवाच ।

एतदाकर्ण्य भावज्ञा वचनं प्रेयसोदितम् ।
तूर्णमेवाब्रवीद्रामं तं गिरा स्मितपूर्वया ॥३८॥

भगवान् शङ्करजी कहते हैं—हे पार्वति ! प्यारेके उन कहे हुये वचनोंको सुनकर प्यारेके

भावको जानने वाली श्रीकिशोरीजी, मन्द-मन्द मुस्कराती हुई तुरत उन हृदयविहारी प्राण-प्रियतमजूसे बोलीं ॥३८॥

श्रीसीतोवाच।

अपेक्षायां दयालुत्वं किञ्च ते काऽप्युदारता।
बालास्तवास्म्यहं क्वापि पितृपादान् वदन्ति किम् ॥३९॥

हे प्राण प्रियतमजू! अगर आपके हृदयमें यह अपेक्षा हो कि, जीव मेरी शरणमें आवे और "हे नाथ! मैं आपका हूँ, आप हमारी रक्षा करें ऐसी प्रार्थना करे तब मैं सब प्राणियोंसे उसे अभय करूँ" भला इस अपेक्षामें आपकी क्या दयालुता हुई? और इसमें उदारता भी आपकी क्या हुई? अर्थात् दयालुता तब मानी जाती है, जब किसी भी प्राणीको दुखी देख कर उसके बिना कहे ही दुख दूर कर दिया जाय। इसी प्रकार किसी भी अन्नके भूखे प्राणीको बिना उसके माँगे ही उसकी भूखको दूर कर देनेमें ही उदारता समझी जाती है। इसके विपरीत दुखी प्राणीके अनुनय-विनयसे विवश होकर दुख दूर करनेमें न दयालुता ही सिद्ध होती है, न उदारता ही, अत एव इन जीवोंके हमारे और आपके शरणमें बिना आये ही, इन्हें सुखी कर देना हमारा और आपका परम कर्त्तव्य है! एतदर्थ मृत्युलोकमें इसी रूपसे हमें और आपको प्रकट होना आवश्यक है। क्या कोई बालक भी अपने माता-पितासे "हम आपके हैं" कहीं कहते हैं? इसलिये यदि ये मनुष्य आपसे-"हे प्रभो! हम आपके हैं" ऐसा न भी कहते हों, तो भी पुत्रवत् न कहनेके अपराधसे ये उपेक्षा करनेके योग्य नहीं हैं, अर्थात् दया करने के ही योग्य हैं ॥३९॥

स्वायम्भुवो मनुर्जातो भूत्वा दशरथो नृपः।
येन तप्तं तपो घोरमावयोराप्तिकाम्यया ॥४०॥

हे प्राणवल्लभजू! हमारी और आपकी प्राप्तिके लिये जिन्होंने पूर्वमें कितनी घोर तपस्याकी थी, वे स्वायम्भुव (ब्रह्माजीके पुत्र मनु महाराज) दशरथ महाराजके नामसे इस समय उत्पन्न हैं ॥४०॥

शतरूपा महाराज्ञी कौशल्या नामविश्रुता।
विवाहिता च तेनैव वृद्धत्वं तौ समीयतुः ॥४१॥

श्रीशतरूपा महारानी श्रीकौशल्या नामसे विख्यात हुई हैं उनका विवाह भी श्रीदशरथजी महाराजके साथ ही हुआ है। इस समय वे दोनों प्राणी वृद्धावस्थाको प्राप्त हो चुके हैं ॥४१॥

ताभ्यां दत्तं वरं यत्तत्कथं विस्मरसि प्रिय!
ब्रह्मादयः प्रतीक्षन्ते ह्यावयोरागमोत्सवम् ॥४२॥

हे प्यारे ! उन दोनोंको पूर्वमें हम लोग जो वर दे चुके हैं, उसे कैसे भुला रहे हैं ? उसी वरदानकी आशासे ब्रह्मादिक सब देवगण हमारे-आपके पृथिवीतल पर आगमन होनेकी बाट जोह रहे हैं ॥४२॥

तयोः संयाहि पुत्रत्वमहं श्रीमिथिलेशितुः ।
यज्ञवेद्याः समुत्पत्स्ये पुत्र्यर्थं तेन याचिता ॥४३॥

हे प्राणप्रियतमजू ! आप उन दोनोंके पुत्र भावको प्राप्त हों, तदनन्तर मैं श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पूर्व जन्मकी प्रार्थनानुसार उनकी यज्ञ वेदीसे पुत्री रूपमें प्रकट होऊँगी ॥४३॥

केवलानन्दसन्दोहचरित्राणि शरीरिणाम् ।
प्रेष्ठ ! दर्शयितव्यानि प्रेम-गङ्गा प्रवाह्यताम् ॥४४॥

हे प्राणप्यारेजू ! इस प्रकार हम और आप पृथिवीतलपर प्रकट होकर प्राणियोंको केवल आनन्द ही आनन्द प्रदान करने वाले चरित्रोंको दिखावें और अपने सौहार्दपूर्ण व्यवहारोंसे प्रेमकी गङ्गा बहा दें ॥४४॥

यत्सुखाप्तिर्न संजाता ब्रह्मादीनां चिरेप्सिता ।
तद्वृष्टिः पुष्कला कार्या मिथिलाऽयोध्ययोर्भुवि ॥४५॥

हे श्रीप्यारेजू ! ब्रह्मादिक देव भी जिन सुखोंकी प्राप्तिके लिये बहुत दिनोंसे लालायित हैं, उन (सुख)की अखण्ड वर्षा श्रीमिथिलाजी और श्रीअयोध्याजीकी भूमिपर भली प्रकारसे करनी चाहिये॥४५॥

श्रीशिव उवाच ।

प्रेयस्या निर्जितो वादे रामः कारुण्यवारिधिः ।
हर्षरोमाञ्चिताङ्गोऽसौ तामूचे सरसं वचः ॥४६॥

भगवान् शङ्करजी बोले:—हे प्रिये ! इस प्रकारसे योगियोंके मनोविहार-स्थान सरकार, शास्त्रार्थमें अपनी करुणासागरा, प्राणप्रिया श्रीकिशोरीजीसे हार गये, पुनः उनकी अपेक्षा-शून्यकृपालुताकी पराकाष्ठा देखकर हर्षसे रोमाञ्चित होते हुये उन श्रीप्रियाजूसे यह रस-युक्त (आनन्द) युक्त वचन बोले ॥४६॥

श्रीराम उवाच ।

धन्या तवानुकम्पेयं निरपेक्षा तवोचिता ।
त्वामृते मयि नान्येषु कुतः स्यात्प्राणवल्लभे ! ॥४७॥

हे श्रीप्राणवल्लभे जू ! अहह ! आपकी इस अनुकम्पा (दया) को धन्यवाद है, जिस कृपासे जीवोंके किसी भी साधनकी अपेक्षा (चाहना) नहीं है । यह कृपा आपके ही योग्य है, जब ऐसी कृपा आपको छोड़कर मुझमें भी नहीं है, तब और अन्यों में कहांसे हो सकती है ? ॥४७॥

कृपैकसाधनं श्रेयस्तव निर्हेतुकी प्रिये !
देहिनामपि सर्वेषां तथैव परमा गतिः ॥४८॥

हे श्रीप्रियाजू ! प्राणिमात्रके कल्याणके लिये आपकी यह निर्हेतुकी कृपा, ही मुख्य साधन स्वरूपा तथा सभी प्राणियोंके लिए सब प्रकारसे सुरक्षा करनेवाली है ॥४८॥

सर्वतन्त्रस्वतन्त्रोऽपि सर्वथा ते वशीकृतः ।
अजेयो निर्जितः सम्यङ् मोहितो विश्वमोहनः ॥४९॥

हे श्रीप्राणप्रियतमेजू ! आज तक मैं न किसीके अधीन हुआ और न होऊंगा, परन्तु आज आपने अपनी इस निर्हेतुकी कृपालुताके द्वारा मुझे अपने वशी भूत कर लिया, अजेयको जीत लिया, और मुझ विश्वविमोहनको सब प्रकारसे मुग्ध कर लिया है ॥४९॥

यथोक्तं ते तथैव स्याद्यतस्तेऽहं मनोऽनुगः ।
प्रयावस्तत्पुरे तस्मादावां परिकरान्वितौ ॥५०॥

हे श्रीप्राण प्यारीजू ! अब जैसे आपने कहा है वैसेही होगा, अर्थात् अवश्य अपने इसी दिव्य स्वरूपसे हम मृत्युलोकमें प्रकट होंगे, क्योंकि मैं तो आपके मनके पीछे-पीछे ही चलने वाला हूँ । अत एव अब हम और आप अपने परिकरके सहित श्रीदशरथजी महाराज तथा श्रीमिथिलेशजी महाराज, दोनोंके नगरोंमें पधारें ॥५०॥

श्रीशिव उवाच ।

तयोः संवादमाकर्ण्य सख्यो हर्षप्रपूरिताः ।
प्रणम्य सादरं भूयो युगपद्वाक्यमब्रुवन् ॥५१॥

भगवानशङ्करजी बोले:—हे प्रिये ! अपने श्रीप्रियाप्रियतमके इस दिव्य संवादको सुनकर पूर्णहर्षसे प्राप्त हुई सखियाँ बोलीं ॥५१॥

सख्य ऊचुः ।

जयतु जयतु शश्वत्स्वामिनी स्नेहमूर्त्तिर्निरुपमगुणरूपा न्यस्तकान्तांसहस्ता ।
अगतिगतिरुदारा सच्चिदानन्ददात्री परमसरलचित्ता सुस्मिता नः शरण्या ॥५२॥

जिनका चित्त अत्यन्त सरल है, सुहावनी जिनकी मुसकान है, सभी प्राणिमात्रकी रक्षा करनेको जो समर्थ है, जो भक्तोंको सत् चित् आनन्द अर्थात् भगवत्सुख प्रदान करनेवाली हैं, असहायोंकी जो सहायिका और अत्यन्त उदार स्वभावसे युक्त है, जिनके मङ्गलमय गुण और अप्राकृत विश्वविमोहनमोहन-स्वरूपकी कोई उपमा है ही नहीं, प्यारेके स्कन्धे पर जो अपना हस्त-कमल रक्खे हुई हैं, उन प्रेम मूर्त्ति हमारी श्रीस्वामिनीजूकी सदाही जय हो ! जय हो ॥५२॥

जयतु जयतु मेशः प्राणनाथः परेशो विमलकमलनेत्रः शर्वरीनाथवक्त्रः ।
परमललितलीलो भावगम्यः सुशीलो मृदुलतरनिसर्गो गुप्तसद्भक्तवर्गः ॥५३॥

सज्जन भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, अत्यन्त कोमल स्वभाव, सुन्दर शीलवान, भाव (प्रेमकी पराकाष्ठा) से ही प्राप्त होने योग्य, परमसुन्दर लीलाओंके नायक, चन्द्रवदन, विमलकमलके समान नेत्रवाले, ब्रह्मादिकोंके स्वामी श्रीप्राणनाथजूकी सदाही जय हो ! जय हो !! ॥५३॥

श्रीशिव उवाच ।

इति पतितजनानां सच्चिदानन्दसिद्ध्यै निखिलभुवनधामाधीश्वरी भाविताश्रीः ।
प्रियतममभिभाष्य स्वोद्भवं निश्चिकाय श्रुतकुल इह यस्मिञ्छृणु यन्मादितस्तत् ॥५४॥

इति सप्तमोऽध्याय ।

भगवानशङ्करजी बोले—हे प्रिये ! साक्षात् श्रीदेवीकी भी कारण स्वरूपा, समस्तब्रह्माण्डोंकी स्वामिनी, वे श्रीकिशोरीजी इस प्रकार अपने प्राणप्रियतमजूसे कहलेनेके बाद पतितजीवोंके दिव्यसुख सिद्धिके लिये उन्होंने जिस प्रसिद्ध कुलमें अपना प्रकट होना निश्चय किया, उस प्रसङ्गको आदिसे श्रवण करें ॥५४॥

अथाष्टमोऽध्यायः ।

अव्यक्त (भगवान विष्णु) से लेकर सपरिवार श्रीसीरध्वज पर्यन्त निमि वंश-वर्णन

श्रीशिव उवाच ।

अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा परीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।
मरीचेः कश्यपो जज्ञे विवस्वान् कश्यपात्मजः ॥१॥

हे पार्वति ! अव्यक्त भगवान् श्रीविष्णुके पुत्र ब्रह्मा हुये, ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके पुत्र कश्यपजी, श्रीकश्यपजीके पुत्र श्रीविवस्वान्‌जी हुये ॥१॥

विवस्वतो मनुर्जात इक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः।
निमिरिक्ष्वाकुसूनुश्च यशस्वी तत्सुतो मिथिः ॥२॥

श्रीविवस्वान्‌जीके पुत्र मनु महाराज, श्रीमनुके पुत्र इक्ष्वाकु महाराज, श्रीइक्ष्वाकु महाराजके पुत्र श्रीनिमि महाराज, श्रीनिमि महाराजके यशस्वी पुत्र श्रीमिथि महाराज हुये ॥२॥

जनको मिथिपुत्रश्च तस्माज्जज्ञ उदावसुः।
नन्दिवर्द्धनकस्तस्य सुकेतुस्तत्सुतः स्मृतः ॥३॥

श्रीमिथिके पुत्र श्रीजनकजी, श्रीजनकजीके पुत्र श्रीउदावसुजी, श्रीउदावसुके पुत्र श्रीनन्दिवर्धनजी, श्रीनन्दिवर्धनके पुत्र श्रीसुकेतु महाराज हुये ॥३॥

सुकेतो देवरातश्च धर्ममूर्तिः सुविक्रमः।
तस्माद्बृहद्रथो जज्ञे राजर्षिः सत्यसङ्गरः ॥४॥

सुकेतु महाराजके पुत्र बड़े ही पराक्रमी और साक्षात् धर्मकी मूर्ति श्रीदेवरातजी महाराज, श्रीदेवरातजीके पुत्र बड़े प्रतापी श्रीबृहद्रथजी हुये ॥४॥

तस्माच्छूरो महावीरः सुधृतिस्तस्यपुत्रकः।
धृष्टकेतुश्च सुधृतेस्तस्य हर्यश्व आत्मजः ॥५॥

श्रीबृहद्रथ महाराजके पुत्र श्रीमहावीर महाराज, श्रीमहावीरके पुत्र श्रीसुधृति महाराज, श्रीसुधृति महाराजके पुत्र श्रीधृष्टकेतु महाराज, श्रीधृष्टकेतुके पुत्र श्रीहर्यश्व महाराज ॥५॥

हर्यश्वस्य मरुर्जज्ञे तस्य पुत्रः प्रतीन्धकः।
सुतः कीर्तिरथस्तस्य देवमीढश्च तत्सुतः ॥६॥

हर्यश्व महाराजके पुत्र श्रीमरु महाराज, मरु महाराजके पुत्र श्रीप्रतीन्धक महाराज, श्रीप्रतीन्धक महाराजके पुत्र श्रीकीर्तिरथ महाराज, श्रीकीर्तिरथ महाराजके पुत्र श्रीदेवमीढ महाराज ॥६॥

विदुषो देवमीढस्य सूनुस्तस्य महीध्रकः।
कीर्तिरातः सुतस्तस्य महारोमा तदात्मजः ॥७॥

श्रीदेवमीढमहाराजके पुत्र श्रीमहीध्रक महाराज, श्रीमहीध्रक महाराजके पुत्र, श्रीकीर्तिरात महाराज, श्रीकीर्तिरात महाराजके पुत्र श्रीमहारोमा महाराज हुये ॥७॥

महारोम्णस्तु सञ्जज्ञे स्वर्णरोमा प्रतापवान् ।
ह्रस्वरोमा सुतस्तस्य महात्मा धर्मवित्तमः ॥८॥

श्रीमहारोमाजीके प्रतापवान् पुत्र श्रीस्वर्णरोमा महाराज, श्रीस्वर्णरोमा महाराजके पुत्र धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महात्मा श्रीह्रस्वरोमा महाराज हुये ॥८॥

ह्रस्वरोम्णो नृदेवस्य राज्ञस्तिस्रो मनोहराः ।
शुभजाया सदा चैव सर्वदा चेति सञ्ज्ञया ॥९॥

श्रीह्रस्वरोमा महाराजकी श्रीशुभजायाजी, श्रीसदाजी, श्रीसर्वदाजी इन शुभ नामोंसे युक्त मनो हारिणी तीन महारानियाँ हुईं ॥९॥

शुभजायासुतौ द्वौ श्रीसीरध्वजकुशध्वजौ ।
जज्ञिरे सूनवः पञ्च सदायास्तान्निशामय ॥१०॥

श्रीशुभजाया महारानीसे श्रीसीरध्वज महाराज, श्रीकुशध्वज महाराज, ये दो पुत्र हुये और सदा महारानीसे पाँच पुत्र हुये, उन्हें श्रवण करें ॥१०॥

श्रीमद्यशध्वजो योगी श्रीमद्वीरध्वजोऽनघः ।
रिपुतापन उर्वीशः श्रीमद्धंसध्वजस्तथा ॥११॥

१ योगी श्रीयशध्वज महाराज, २-परम निष्पाप श्रीवीरध्वज महाराज, ३-श्रीरिपुतापन महाराज, ४-श्रीहंसध्वज महाराज ॥११॥

वीरः केकिध्वजः श्रीमान् सर्वदायाः सुताञ्छृणु ।
शत्रुजिच्च यशः शाली तेजः शाल्यरिमर्दनौ ॥१२॥

५-वीर श्रीकेकिध्वज महाराज । श्रीसर्वदा महारानीके पुत्रोंको सुनें १-श्री शत्रुजित् महाराज, २-श्रीयशःशाली महाराज, ३-श्रीतेजःशाली महाराज, ४-श्री अरिमर्दन महाराज ॥१२॥

विजयध्वजो यशः श्लाघ्यस्तथा श्रीमत्प्रतापनः ।
श्रीमद्धीमङ्गलश्चैव यशस्वी श्रीबलाकरः ॥१३॥

५-प्रशंसा करने योग्य कीर्ति सम्पन्न श्रीविजयध्वज महाराज, ६-श्री महीमङ्गल महाराज, ७-श्रीबलाकर महाराज ॥१३॥

सर्वबुद्धिमतां मान्यश्चन्द्रभानुश्च योगिराट् ।
सर्वदायाः सुता ह्येते श्रीमत्सीरध्वजानुजाः ॥१४॥

सभी बुद्धिमानोंके माननीय, योगिराज श्रीचन्द्रभानु महाराज, ये श्रीसर्वदा महारानीके पुत्र श्रीसीरध्वज महाराजके छोटे भाई हुये ॥१४॥

ह्रस्वरोमसुतानां च भूयोऽपि शृणु वर्णनम् ।
महिषी-पुत्र-पुत्रीणां सर्वेषां च महात्मनाम् ॥१५॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! श्रीह्रस्वरोमा महाराजके सभी महात्मा पुत्रोंकी महारानी, पुत्र, पुत्रियोंका आप पुनः वर्णन सुनें ॥१५॥

राज्ञ्यौ प्रिये सुनयनालघुकान्तिमत्यौ लक्ष्मीनिधिश्च सुगुणाकर आत्मजौ द्वौ ।
श्रीसीरकेतुतनये जगदेकमाता सीताऽखिलेशदयिता च तथोर्मिला द्वे ॥१६॥

श्रीसीरध्वज महाराजकी श्रीसुनयना महारानी, छोटी श्रीकान्तिमतीजी, ये दो महारानियाँ, श्रीलक्ष्मीनिधिजी, श्रीगुणाकरजी ये दो पुत्र, जगज्जननी सर्वेश्वरप्राणवल्लभा श्रीकिशोरीजी तथा श्रीउर्मिलाजी, ये दो पुत्रियां हुई ॥१६॥

राज्ञ्यौ सुभद्रा च तथा सुदर्शना महात्मनः श्रीलकुशध्वजस्य वै ।
निधानकश्रीनिधिकौ च पुत्रकौ श्रीमाण्डवी च श्रुतिकीर्त्तिरात्मजे ॥१७॥

श्रीकुशध्वज महाराजके श्रीसुदर्शना महारानी व श्रीसुभद्रा महारानी, ये दो महारानियाँ, श्रीनिधिजी, श्रीनिधानकजी ये दो पुत्र तथा श्रीमाण्डवीजी श्रीश्रुतिकीर्त्तिजी ये दो पुत्रियां हुई ॥१७॥

राज्ञी सुचित्रा च यशध्वजस्य श्रीधीरवर्णस्तनयो बभूव ।
पुत्र्यस्तु तस्याः परमा परान्ता स्नेहादिरन्या सुपमेति तिस्रः ॥१८॥

श्रीयशध्वज महाराजकी महाराणी श्रीसुचित्राजी, पुत्र श्रीधीरवर्णजी और उनके श्रीसुपमाजी, श्रीपरमाजी तथा श्रीस्नेहपराजी ये तीन पुत्रियाँ हुईं ॥१८॥

सुखवर्द्धिनी च सहजासुन्दरिका रतिविमोहिनी सुभगाः ।
वीरध्वजस्य नृपतेस्तिस्रः पुत्र्यस्त्रयः पुत्राः ॥१९॥

श्रीवीरध्वज महाराजके श्रीसुखवर्द्धिनीजी, श्रीसहजसुन्दरीजी, श्रीरतिविमोहिनीजी ये तीन महारानियाँ, तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं ॥१९॥

आज्ञापरस्तरङ्गः पुत्रः पुत्री च सहजसुन्दर्याः ।
सुखवर्द्धिन्याः पुत्रः सुरदानी पुत्रिकोमङ्गा ॥२०॥

श्रीसुखवर्द्धिनी महाराणीके पुत्र श्रीदेवदानीजी और पुत्री श्रीउमङ्गाजी । श्रीसहजसुन्दरी महाराणीके पुत्र श्रीआज्ञापारजी, पुत्री श्रीतरङ्गाजी हुई ॥२०॥

श्रीमोहिनीति तस्याः सुता वधूर्मदनमालिती नाम्नी ।
पुत्रो रतिमोहिन्याः श्रीमान् वंशप्रवीणश्च ॥२१॥

श्रीरतिमोहिनीजूकेपुत्र श्रीवंशप्रवीणजी, पुत्र श्रीमोहिनीजी, पतोहू श्रीमदन मालतीजी हुई ॥२१॥

रिपुतापनस्य राज्ञी सुव्रताभिधेत्याज्ञाप्रवीणश्च ।
पुत्रौ श्रीचित्रभानुः श्रीक्षेमा चैव पुत्रिका जज्ञे ॥२२॥

श्रीरिपुतापन महाराजकी महारानी श्रीसुव्रताजी ! पुत्र श्रीआज्ञा प्रवीणजी, श्रीचित्रभानुजी पुत्री श्रीक्षेमाजी हुई ॥२२॥

हंसध्वजस्य पत्नी विख्याता क्षेमवर्द्धिनी नाम्नी ।
प्रेमनिधिः खलु पुत्रः शुभशीलासञ्ज्ञका पुत्री ॥२३॥

श्रीहंसध्वजजी महाराजकी महाराणी श्रीक्षेमवर्द्धिनीजी विख्यात हैं। उनके पुत्र श्री प्रेमनिधिजी जी। पुत्री श्रीशुभशीलाजी हुई ॥२३॥

केकिध्वजस्य राज्ञी शशिकान्ता तस्या उभे च पुत्र्यौ ।
विहारिणीमाधुर्ये पुत्रः सेवापरस्तस्य ॥ २४ ॥

श्रीकेकिध्वज महाराजकी महाराणी श्रीचन्द्रकान्ताजी, पुत्र श्रीसेवापरजी, श्री - श्रीविहारिणी जी, श्रीमाधुर्याजी ॥२४॥

शत्रुजितश्च सुमहिषी शशिकान्तिः पुत्रः शृङ्गारनिधिः ।
पुत्रवधूर्वर्द्धिनिका पुत्री श्रीचारुशीलाख्या ॥२५॥

श्रीशत्रुजित महाराजकी महाराणी श्रीचन्द्रकान्तिजी, पुत्र श्रीशृङ्गारनिधिजी पुत्री श्रीचारुशीलजी हुई ॥२५॥

श्रीलविदग्धा नम्नी राज्ञी श्रीकीर्तिशालिनः ख्याता ।
अंशपरस्तत्तनयः पुत्री श्रीलक्ष्मणेत्युदिता ॥२६॥

श्रीयशश्शाली महाराजकी महाराणी श्रीविदग्धाजी विख्यात हैं, पुत्र श्रीअंशपरजी, और पुत्री श्रीलक्ष्मणाजी कही जाती हैं ॥२६॥

तेजः शालिसुनृपतेरासीद्राज्ञी विशालाक्षी ।
पुत्रोऽनूपनिधिश्च प्रयता तनया सुलोचना नाम्नी ॥२७॥

श्रीतेजश्शाली महाराजकी महारानी श्रीविशालाक्षीजी, पुत्र श्रीसुलोचनाजी, पुत्र श्रीअनूप निधिजी हुये ॥२७॥

अरिमर्दनस्य पत्नी बभूव सद्गुणा सुभद्राख्या तु ।
तस्यां पुत्री जाता श्रीहेमा भूपतेस्तस्य ॥२८॥

श्रीअरिमर्दन महाराजकी महाराणी सर्व गुण आगरी श्रीसुभद्राजी, और उनसे पुत्री श्रीहेमाजी हुई ॥२८॥

विजयध्वजस्य पत्नी नाम्नाऽशोका गुणैर्महिता ।
उदयप्रभा च पुत्री यस्यां जाता सुलक्षणा विदुषी ॥२९॥

श्रीविजयध्वज महाराजकी महाराणी सर्व गुणकी खानि श्रीअशोकाजी हुई। उनसे सब शुभ लक्षणोंसे युक्त उदयप्रभा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई ॥२९॥

प्रतापनस्य महिषी विनीतेति शीलमण्डिता ।
सुता श्रीसुभगा चैव पुत्रः क्षेमनिधिः स्मृतः ॥३०॥

श्रीप्रतापनमहाराजकी परम सुशीला महाराणी श्रीविनीताजी, उनके पुत्र श्रीक्षेमनिधिजी, और पुत्री श्रीमती सुभगाजी हुईं ॥३०॥

महीमङ्गलपत्नी तु मोदिनी रूपशालिनी ।
वरारोहा तु तत्पुत्री मङ्गलादिनिधिः सुतः ॥३१॥

श्रीमहिमङ्गलमहाराजकी परमसुन्दरी महाराणी श्रीमतीमोदिनीजी, उनके पुत्र श्रीमङ्गलानिधिजी, पुत्री श्रीवरारोहाजी हुईं ॥३१॥

वलाकरस्य नृपतेः शोभनाङ्गी च पत्निका ।
तनयः शीलनिधिकः पद्मगन्धा सुता तथा ॥३२॥

श्रीवलाकर महाराजकी महाराणी श्रीशोभनाङ्गीजी, उनके पुत्र शीलनिधिजी, पुत्री श्रीपद्मगन्धाजी हुईं ॥३२॥

महिषी श्रीचन्द्रभानोर्नाम्नाचन्द्रप्रभा चैव ।
जानक्याः पार्श्वस्था चन्द्रकला नामिका पुत्री ॥२३॥

इति अष्टमोऽध्यायः ।

श्रीचन्द्रभानु महाराजकी महाराणी श्रीचन्द्रप्रभानामसे प्रसिद्ध हैं। उनकी पुत्री श्रीजनकदुलारीजूके साथ चलनेवाली श्रीमतीचन्द्रकलाजी हुईं ॥२३॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

श्रीमिथिलेशजी महाराजके नाना आदि सम्बन्धियोंका संक्षिप्त वर्णन ।

श्रीकात्यायन्युवाच ।

कृपया ते महायोगिन् भ्रातॄणां मिथिलेशितुः ।
अपत्यानां च सर्वज्ञ ! मदर्थे वर्णनं कृतम् ॥१॥

हे महायोगिराज ! हे सर्वरहस्योंको जानने वाले प्रभो ! आपने मेरे लिये कृपा करके श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंके सन्तानोंका वर्णन किया है ॥१॥

नाद्भुतं तल्लघुष्वेव गुरवः करुणापराः ।
तृणानि मूर्ध्नि दधते गिरयः सर्वदा प्रभो ! ॥२॥

इसमें कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि-छोटों पर बड़े लोग स्वाभाविक ही कृपा परायण होते हैं। जैसे कि-पर्वत उतने बड़े होते हुये भी तृणोंको सर्वदा अपने शिर पर धारण करते रहते हैं ॥२॥

इदानीं श्रावय स्वामिन् ! मिथिलाधिपपुङ्गवः ।
विवाहितो महाराजो जनकः कुत्र योगिराट् ॥३॥

हे स्वामिन् ! इस समय हमें यह सुनाइये, श्रीमिथिलाजीके नृपशिरोमणि योगिराज श्रीजनकजी महाराजका शुभ विवाह कहाँ हुआ था ? ॥३॥

कस्यां लक्ष्मीनिधिर्जातश्चोर्मिला जलदद्युतिः ।
श्रुतिकीर्तिश्च माण्डव्या नाम मातुश्च किं मुने ॥४॥

हे प्रभु-रहस्योंके मनन करने वाले ! नाथ ! कौन सी महारानीजीसे श्रीलक्ष्मीनिधिजीका

और मेघसदृश श्यामवर्णवाली श्रीउर्मिलाजीका जन्म हुवा ? श्रीश्रुतिकीर्तिजी और श्रीमाण्डवी जीकी माताका क्या नाम है ? ॥४॥

लक्ष्मीनिधिविवाहोऽपि कस्मिन्देशे शुभेऽभवत् ।
का श्वश्रूः श्वसुरः कश्च सूनोर्जनकभूपतेः ॥५॥

जनकदुलारे श्रीलक्ष्मीनिधिजीका विवाह किस शुभ देशमें हुवा ? और उनके सास, ससुरका क्या नाम था ? ॥५॥

कस्मिन्देशे पितुस्तस्य मातामह उदारधीः ।
भवन्तमपहायान्यः कतमः स्यात्प्रियवदः ॥६॥

हे नाथ ! श्रीलक्ष्मीनिधिजीके पिताजीके नाना किस देशमें रहते थे ? मेरे इन विशेष प्रश्नोंसे बुरा न मानें क्योंकि, आपके अतिरिक्त इस प्रिय वस्तुको कहने वाला हम और कौन है ? जिससे कि प्रश्न करूँ ? अत एव यह सब विषय आप ही कहनेकी कृपा करें ॥६॥

श्री सूत उवाच ।

एवमुक्तो महायोगी मुनिवर्यस्तपोनिधिः ।
श्रूयतामिति सम्भाष्य कथनायोपचक्रमे ॥७॥

श्रीसूतजी बोले—हे श्रीशौनकजी ! इस प्रकारसे श्रीकात्यायनीजीके कहने पर मुनियोंमें श्रेष्ठ, तपस्याके निधि, योगिशिरोमणि, श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोले—हे प्रिये ! जो आपने पूछा है, उसे सुनिये । ऐसा कहकर उनके प्रश्नोंका उत्तर देना प्रारम्भ किये ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

पूर्वदक्षिणके कोणे विकाशाया महीपतेः ।
श्रीभूरिमेधसः पुत्रौ सुमालः कुण्डलस्तथा ॥८॥

पूर्व और दक्षिणके कोणमें एक विकाशा नामकी पुरी थी वहाँके राजा श्रीभूरिमेधा महाराज हुये, उनके श्रीसुमालजी व श्रीकुण्डलजी नामके दो पुत्र हुए ॥ ॥

सुनेत्राकान्तिमत्यौ च सुधाग्रायां बभूवतुः ।
अर्पिते सादरं तेन श्रीमत्सीरध्वजाय ते ॥९॥

श्रीभूरिमेधा महाराजकी श्रीसुधाग्रा महारानीसे श्रीसुनयनाजी, श्रीकान्तिमतीजी ये दो पुत्रियाँ हुई । उन दोनोंको श्रीभूरिमेधा महाराजने श्रीसीरध्वज महाराजके लिये अर्पण कर दिये ॥९॥

जगदम्बोर्विजा सीता प्रोक्ता सुनयनासुता ।
लक्ष्मीनिधिश्च सत्पुत्रो जानक्या अनुजः प्रियः ॥१०॥

श्रीसुनयना महारानीके जगज्जननी, अवनिकुमारी, श्रीकिशोरीजी पुत्री और श्रीकिशोरीजीके छोटे प्रिय भइया श्रीलक्ष्मीनिधिजी सत्पुत्र हुये ॥१०॥

कान्तिमत्याः सुतः श्रीमान् गुणाकर इति स्मृतः ।
सुतोर्मिला शुभा तस्या जानक्या भगिनी प्रिया ॥११॥

श्रीकान्तिमती महारानीके पुत्र श्रीगुणाकरजीके नामसे स्मरण किये जाते हैं, और उनकी शुभ पुत्री, श्रीकिशोरीजीकी प्रिय बहिन, श्रीऊर्मिलाजी हुईं ॥११॥

भूरिमेधोऽनुजः श्रीमान् ज्ञानमेधाः प्रतापवान् ।
गुणाग्रायां तु तत्पत्न्यां जातौ श्रीवीरकान्तकौ ॥१२॥

श्रीभूरिमेधा महाराजके छोटे भाई श्रीज्ञानमेधा महाराज बड़े प्रतापी हुये, उनकी गुणाग्रा महारानीसे श्रीवीर, श्रीकान्त ये दो पुत्र हुये ॥१२॥

सुदर्शनासुभद्राख्ये तथा तस्यां बभूवतुः ।
विवाहिते उभे पुत्र्यौ श्रीमद्दर्भध्वजेन ते ॥१३॥

तथा उन्हीं महारानीजीसे श्रीसुदर्शनाजी, श्रीसुभद्राजी ये दो पुत्रियाँ हुईं। उन दोनों का विवाह श्रीकुशध्वज-महाराजके साथ सम्पन्न हुआ ॥१३॥

माण्डवीश्रीनिधी प्रोक्तौ भद्रे ! सौदर्शनावुभौ ।
सुभद्रायां तथा जातौ श्रुतिकीर्त्तिनिधानकौ ॥१४॥

श्रीसुदर्शना महारानीकी पुत्री श्रीमाण्डवीजी, पुत्र श्रीनिधिजी कहे जाते हैं तथा श्रीसुभद्रा महारानीके पुत्र श्रीनिधानकजी और पुत्री श्रीश्रुतिकीर्तिजी प्रसिद्ध हैं ॥१४॥

याम्यां विडालिकापुर्यां श्रीधरो राजसत्तमः ।
श्रीसुकान्तिः प्रिया तस्य पातिव्रत्यपरायणा ॥१५॥

दक्षिण दिशामें एक विडालिका नामकी पुरीके राजा भूपशिरोमणि श्रीधरजी महाराज हुये हैं, उनकी महारानी श्रीसुकान्तिजी बड़ी ही पतिव्रता थीं ॥१५॥

तस्यां द्वौ तनयौ जातौ कान्तिधारियशोधरौ ।
सिद्धिर्वाणी च नन्दोपा चतस्रः पुत्रिका इमाः ॥१६॥

श्रीसुकान्ति महाराणीके श्रीकान्तिधर, श्रीयशोधर नामसे दो पुत्र हुये और श्रीसिद्धिजी, श्रीवाणीजी, श्रीनन्दाजी, श्रीउपाजी, ये चार पुत्रियाँ हुईं ॥१६॥

श्रीलक्ष्मीनिधये सिद्धिर्नन्दा श्रीनिधयेऽर्पिता ।
वाणी गुणाकरायैव तथोपा च निधानके ॥१७॥

श्रीलक्ष्मीनिधिजीको श्रीसिद्धिजी, श्रीगुणाकरजीको श्रीवाणीजी, श्रीनिधिजीको श्रीनन्दाजी, श्रीनिधानकजीको श्रीउपाजी प्रदानकी गई ॥१७॥

वारहलाख्ये कौवेर्य्यां देशे वृन्दारको नृपः ।
वंश्योऽर्कभास्वरस्तस्य जाज्याया वल्लभोऽभवत् ॥१८॥
वलायतवलोन्नायौ तस्य पुत्रौ बभूवतुः ।
शुभजायाऽभवत्पुत्री ह्रस्वरोम्णे तु साऽर्पिता ॥१६॥

पूर्व-उत्तर कोणमें वारहल नामके देशमें एक श्रीवृन्दारकजी नामके राजा हुये हैं, उनके वंशमें श्रीअर्कभास्वर महाराज हुये, जिनकी महाराणी श्रीजाज्याजी हुईं और उनके श्रीवलायतजी श्रीवलोन्नायजी ये दो पुत्र और श्रीशुभजाया नामकी पुत्री हुई, जो श्रीह्रस्वरोमा महाराजको विवाही गयीं ॥१८॥१६॥

तस्याः पुत्रौ महाभागौ सीरध्वजकुशध्वजौ ।
पौत्र्यश्च रूपशालिन्यो भूमिजाद्या मनोहराः ॥२०॥

उन्हीं श्रीशुभजाया महाराणीके श्रीसीरध्वज महाराज, श्रीकुशध्वज महाराज ये दो पुत्र हुये। श्रीकिशोरीजी आदि मनोहर, परम रूपवती पुत्रोंकी पुत्रियाँ हुईं ॥२०॥

लक्ष्मीनिध्यादयः पौत्रा अभवन्भाग्यशालिनः ।
सिद्धयाद्याः पौत्रवध्वश्च स्नुषाः सुनयनादयः ॥२१॥

उन्हीं भाग्यशाली श्रीह्रस्वरोमा महाराजके श्रीलक्ष्मीनिधि आदिक पौत्र (पुत्रोंके पुत्र) हुये तथा श्रीसिद्धिजी आदिक पौत्रोंकी पत्नियाँ (बहुयें) हुईं, और श्रीसुनयनाजी आदि पतोहू हुईं ॥२१॥

तटे महोदधेश्चैकं वारधानं पुरं महत् ।
विश्वकायो महाराजस्तत्रत्यो नृपपुङ्गवः ॥२२॥

तेनापि विधिना तस्मै पुत्र्यौ द्वे भव्यदर्शने ।
हरवरोम्णे नरेन्द्राय प्रदत्ते सर्वदासदे ॥२३॥

महोदधिके किनारे पूर्वमें एक वारधान नामका बडा भारी नगर था, वहाँके एक राजा श्रीविश्वकायजी महाराज हुये हैं, उनके श्रीसदाजी व श्रीसर्वदाजी ये दो पुत्रियाँ हुईं, उन दोनों पुत्रियोंको विधिपूर्वक श्रीविश्वकाय महाराजने, श्रीहरवरोमा महाराजको दान किया ॥२२॥२३॥

तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च वर्णिताः पूर्वमेव हि ।
सर्व एव महाभागा मैथिल्या भावभाविताः ॥२४॥

श्रीसदाजी और श्रीसर्वदाजीके पुत्र, पौत्र आदिका वर्णन मैं पूर्व में ही कर चुका हूँ, अत एव अब इस समय उनका क्या वर्णन करूँ ? श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीके भावसे प्रभावित होनेके कारण वे सभी बडभागी हैं ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एषा तेऽभिहिता सूक्ष्मं निमिवंशावली मया ।
विस्तरेण न मे वक्तुं शक्तिरस्ति महामते ! ॥२५॥

हे श्री शौनकजी ! भगवान् श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजीसे बोले:—हे महामते ! सूक्ष्म रूपसे ही मैं ने इस निमि वंशावलीका आपसे वर्णन किया है क्योंकि, विस्तार पूर्वक इसके वर्णन करनेकी मेरी सामर्थ्य ही नहीं है ॥२५॥

य इमां मनुजो नित्यमधीते गतकल्मषः ।
निमिवंशावलीं पुण्यां स भवेद्धरिवल्लभः ॥२६॥

इति नवमोऽध्यायः ।

जो मनुष्य इस पवित्र निमिवंशावलीका नित्य पाठ करेंगे, वे अवश्यमेव सब पापोंसे छूटकर प्रभु श्रीरामके प्यारे बनेंगे ॥२६॥

अथ दशमोऽध्यायः।

स्नेहपरा सखीकी आसक्ति, सेवाविधि तथा उनके प्रति श्रीपद्मगन्धा सखीका दिव्योपदेश।

श्रीशिव उवाच।

अथ स्नेहपरा-रामसंवादं कथयामि ते।
मोदिता कथमित्येव तवशङ्कामपोहितुम् ॥१॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये! अब मैं किस प्रकार श्रीकिशोरीजी प्रकट हुई? आपकी इस शङ्काको दूर करनेके लिए श्रीस्नेहपरा और श्रीरामजीके सवादको आपसे कहता हूँ ॥१॥

धीरवर्णानुजा ज्ञेया सुचित्रागर्भसम्भवा।
सुता स्नेहपरा श्रीमद्यश:केतोर्महात्मनः ॥२॥

उस स्नेह पराको आप महात्मा श्रीयशध्वज महाराजकी पुत्री और श्रीधीरवर्णजीकी छोटी बहिन तथा श्रीसुचित्रा महाराणीके गर्भसे जायमान (उत्पन्न) जानो ॥२॥

स्वसृभ्यां सह रामाय सेवार्थं च समर्पिता।
सुवर्णभवने प्राप निवासं योगिदुर्लभम् ॥३॥

वह अपनी दो बहिनो (श्रीसुपमाजी, श्रीपरमाजी) के सहित सेवा प्राप्तिके लिये अपने माता पिता द्वारा श्रीरामजीको ही समर्पणकी गयी, जिस कारण योगियोंके लिये भी परमदुर्लभ श्रीकनक भवनमें ही उसने निवास पाया ॥३॥

रात्रौ यामावशिष्टायां कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः।
साऽन्वहं शयनागारं याति श्रीपद्मगन्धया ॥४॥
दिदृक्षुर्जानकीरामौ घर्मार्त्तः पादपं यथा।
आतुराऽऽलिजनैः सार्कं स्वसेवावस्तुहस्तका ॥५॥

प्रतिदिन वह रात्रिके एक याम (पहर) समय बाकी रहनेपर ही अपने शयनसे उठकर नित्य स्नान आदिक सभी आवश्यक क्रियाओंको किसी प्रकार पूरी करके, श्रीपद्मगन्धाजीके साथ अपनी मुख्य सेवा वस्तु हाथमें लिये हुई, दर्शन प्राप्तिकी उत्कट अभिलाषासे, अपनी सखियोंके सहित श्रीयुगलसरकारके शयन कुञ्जको इस प्रकार जाया करती थी, जैसे धूपसे व्याकुल प्राणी छाया प्राप्तिके लिये वृक्षके पास जाता हो ॥४॥५॥

शयनान्तं विहारं तं प्रातरुत्थितयोस्तयोः ।
श्रीसीतारामयोर्दिव्यं चिदानन्दमयं परम् ॥६॥
दृष्ट्वा तु दैनिकं सर्वं स्वसेवातत्परा मुदा ।
निशीथोपगते काले पुनरावर्तते गृहम् ॥७॥

प्रातःकालसे लेकर शयनपर्यन्त श्रीसीतारामजीके दिन भरके सत्-चित्, परम आनन्दमय उस दिव्य विहारको, उनकी सेवामें तत्पर रहती हुई अवलोकन करके लगभग अर्द्ध रात्रिके समय पुनः वह अपनी कुञ्जको वापस आती ॥६॥७॥

यामं कल्पं च मन्वाना कथञ्चिन्नयते निशा ।
नक्षत्राणि प्रपश्यन्ती सा तु बालस्वभावतः ॥८॥

परन्तु वह अपने बाल स्वभावके कारण बाकी एक पहर रातके समयको भी कल्पके समान विशेष मानती तारोंको देखती हुई बड़ी कठिनतासे व्यतीत करती थी ॥८॥

पुनरुत्थाय सेवार्थं कृत्वा वै पूर्ववत्क्रियाः ।
प्रयाति शयनागारं दम्पत्योः प्राणतुल्ययोः ॥९॥

एक याम (पहर) रात्रि इस प्रकार व्यतीत होनेपर, वह पुनः पूर्ववत् स्नान आदिक अपनी सभी आवश्यक क्रियाओंको पूर्ण करके अपने प्राणप्यारे, दम्पती श्रीसीतारामजीके श्रीशयनभवनमें जाती थी ॥९॥

नित्यप्रबोधितां ताभ्यां वियोगं सोढुमक्षमाम् ।
पद्मगन्धा जगादेदं वचश्चन्द्रकलाज्ञया ॥१०॥

उसकी यह दशा देखकर श्रीकिशोरीजी और सरकार नित्य ही उसे प्रबोध कराते थे, परन्तु उसे उनका एक पहर मात्रका भी वियोग सहन करना कठिन हो जाता था, तब श्रीचन्द्रकलाजीकी आज्ञासे श्रीपद्मगन्धाजी उनसे बोलीं ॥१०॥

श्रीपद्मगन्धोवाच ।

भद्रं ते श्रूयतां गुह्यं रहस्यमिदमद्भुतम् ।
धैर्यमालम्ब्य सौचित्रि ! यतः शान्तिर्भविष्यति ॥११॥

हे श्रीसुचित्रा नन्दिनि ! आपका कल्याण हो, आप धैर्य धारण करके श्रीप्रिया-प्रियतमजूके

इस गुह्य (सभीसे न कहने योग्य) आश्चर्यमय रहस्यको सुनें, उससे आपके हृदयमें अवश्य शान्ति हो जावेगी ॥११॥

नैतौ श्रीजानकीरामौ प्राकृतावेकदेशगौ ।
दम्पती सुषमागारावेतौ सर्वगतौ विभू ॥१२॥

ये अतुलित शोभाके धाम दम्पती श्रीसीतारामजी पञ्चभूतों (क्षिति, जल, अग्नि, आकाश, पवन) के ने बहुये शरीर वाले नहीं है, अर्थात् इनका श्रीअङ्ग अपाञ्चभौतिक (दिव्य) है, इस हेतु ये एक देशी अर्थात् केवल अपने महलमें ही निवास करने वाले नहीं हैं, बल्कि सर्वत्र सर्वदा सम-रूपसे, एक रस विराजमान, सर्व व्यापक ब्रह्म है ॥१२॥

स्वेच्छं प्रकटितौ भूमौ सच्चिदानन्दविग्रहौ ।
कर्तारौ सर्वलोकानां जननीजनकौ तथा ॥१३॥

ये सत् चित् आनन्दमय विग्रह (शरीर) वाले सभी लोकोंके रचना करने वाले तथा माता-पिता स्वयं होते हुये भी जीवोंके कल्याणके लिये अपनी इच्छासे भूतलमें प्रकट हुए हैं ॥१३॥

सर्वज्ञौ निखिलाधारौ निराधारौ परात्परौ ।
सर्वेश्वरौ तथाऽचिन्त्यौ सर्वशक्तीश्वरेश्वरौ ॥१४॥

ये सभीके, सभी भावोंको, सभीकी सभी परिस्थितियोंको, सभीके ह्रास, और विकास (अवनति-उन्नति) के कारण और उनके उपायको भलीभाँति, सब समय जानते हैं। ये सभीके आधार स्वरूप हैं, परन्तु इनका आधार कोई नहीं है। ये बडे से बड़े, सभी शासकों पर शासन करने वाले, सभी शक्तियोंके स्वामियोंके स्वामी, चिन्तनमें न आने योग्य पूर्ण ब्रह्म हैं ॥१४॥

एतौ चिदानन्दमयौ निरीहौ सर्वेष्टकल्पद्रुमतामुपेतौ ।
अमेयशक्ती मुनिहंसभाव्यौ शम्भोर्मनोमानसराजहंसौ ॥१५॥

ये श्रीयुगलसरकार ब्रह्मानन्दमय, सभी प्रकारकी लौकिक पारलौकिक इच्छाओंसे रहित, शरणागतजीवोंकी सभी कामनाओंकी पूर्ति करनेके लिये कल्पवृक्षके समान, पार न पाने योग्य-शक्तिसे युक्त, सारग्राही-मुनियोंकी भावनामें आने योग्य, भगवान् शङ्करजीके मनरूपी मानसरोवरमें निवास करनेवाले राजहंस हैं ॥१५॥

नाभ्यां समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः श्रीजानकीराघवसुन्दराभ्याम् ।
माधुर्य ऐश्वर्य उरुप्रभावे सौन्दर्यवात्सल्यदयाऽऽर्जवेषु ॥१६॥

माधुर्य, ऐश्वर्य, अघटित-घटना-समर्थ प्रभाव (महिमा) युक्त विश्वविमोहन सौन्दर्य, वात्सल्य, दया, सरलता आदिमें इन श्रीजनकनन्दिनी तथा श्रीरघुनन्दनप्यारेकी समता करनेके लिये भी कोई नहीं है, तब अधिक कहाँसे हो सकता है ? ॥१६॥

परात्परं ब्रह्म ययोर्विभूतिर्ब्रह्मादयः पादरजःप्रपन्नाः ।
ध्यायन्ति यौ योगिन आत्मनिष्ठाः श्रीलोमशाद्या उदिताविमौ तौ ॥१७॥

ब्रह्म (विश्वनियन्ता ईश्वर) जिनकी विशिष्ट विभूति है, ब्रह्मादिक देव श्रेष्ठ जिनके श्रीचरण-कमलकी धूलिकी शरणमें हैं, केवल ब्रह्ममात्रमें निष्ठा रखनेवाले श्रीलोमशजी आदि महान् योगिराज भी जिनका ध्यान करते हैं, वही ये सभी उत्कर्षोंसे उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) पूर्ण ब्रह्म, मङ्गलमय विग्रहको धारण कर प्रकट हुये हैं ॥१७॥

नादिं न मध्यं न ययोस्तथान्तं विदुश्च देवासुरयोगिसिद्धाः ।
भजन्ति सन्तः कवयो यतीन्द्रा ब्रह्मर्षयः सारविदां वरिष्ठाः ॥१८॥

जिनका देवता, असुर, योगि, सिद्ध कोई भी आज तक आदि, मध्य और अन्त न जान सके, सन्त (ब्रह्मको अपने अन्तःकरणमें रखने वाले) श्रीसनकादिक, श्रीअगस्त्यजी आदि, कवि-श्रीवाल्मीकिजी, श्रीव्यासजी, श्रीउशनाजी आदि, यतिराज-श्रीकपिलदेव आदि, ब्रह्मर्षि, श्रीवशिष्ठजी आदिक, सारवेत्ताओंमें श्रेष्ठ-श्रीनारदादिक जिनका भजन करते हैं ॥१८॥

ययोर्महिम्नः श्रुतिसारयोश्च सर्वाशिनोः शेषमहेशवाण्यः ।
न स्प्रष्टुमर्हाः श्रुतयोऽपि नूनं छायामपि श्रीरतिमारहेत्वोः ॥१९॥

वेदोंके सार, सभीके कारण, रति और कामके भी मूल (प्राकट्यस्थान) स्वरूप जिन पूर्ण परात्पर सच्चिदानन्दघन, सगुण, साकार ब्रह्म और उनकी आदि शक्तिकी महिमाको श्रीशेषजी, महेशजी, श्रीसरस्वतीजी तथा चारों वेद वर्णन करते करते भी उसकी छायाका भी स्पर्श करनेको समर्थ नहीं होते अर्थात् जिनकी महिमाकी-छायाका भी वर्णन करनेमें वे असमर्थ ही रहते हैं ॥१९॥

तावेव चेमौ जगदेकवन्द्यौ श्रीजानकीश्रीरघुराजसूनू ।
सर्वार्थसम्पूरणचित्रकीर्ती जातौ कुले श्रीनिमिसूर्ययोश्च ॥२०॥

सारे स्थावर-जङ्गमके समस्त वन्दनीयों (प्रणाम करने योग्यों) में श्रेष्ठ, मङ्गल मनोरथोंको प्रदान करने वाली विचित्र कीर्तिसे युक्त, निमि और सूर्य वंशमें प्रकट हुये, वे वे ही श्रीकिशोरीजी और श्रीदशरथनन्दनजू प्यारे हैं ॥२०॥

आज्ञा शिरोधार्यतमा सहर्षं तयोः सुखेनैव सुखं प्रयाहि ।
न क्षेपणीयः क्षणमात्रकालः स्मृतिं विनाऽनुग्रहरूपयोश्च ॥२१॥

अत एव श्रीयुगल सरकारकी आज्ञा ही हर्ष पूर्वक तुम्हें शिरपर धारण करना परम आवश्यक है, उनकी प्रसन्नतामें ही तुम प्रसन्न रहो और उन कृपास्वरूप श्रीयुगल सरकारके सुमिरण बिना एक क्षणमात्रका समय भी बिताना तुम्हें उचित नहीं है ॥२१॥

यासां नियोक्त्री स्वसुभावमाप्ता महाकृपावारिधिराप्तकामा ।
सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशपुत्री तासां तु का ब्रूहि शुभे ! ऽनुचिन्ता॥२२॥

हे शुभे ! साक्षात् महाकृपासागरा, पूर्णकामा, सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशकिशोरीजी जिनकी *बहिन भावको स्वीकार करते हुए आज स्वामिनीपद पर विराजमान हुई हैं, भला उन हम सबोंके* लिये अब किस बातकी चिन्ता है ? ॥२२॥

सा वै शरण्या शरणं तु यासां प्रेम्णाऽनुकूला परिपालिनी च ।
ब्रह्माण्डकोटिप्रभुवल्लभाद्या तासां तु का ब्रूहि शुभे ! ऽनुचिन्ता ॥२३॥

सभी प्राणीमात्रकी रक्षा करनेको समर्थ प्रेमपूर्वक हमसबोंका पालन करने वाली, हमारे सभी प्रकारसे अनुकूल, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायककी प्राणवल्लभा, श्रीकिशोरीजी ही जब हम सबोंकी रक्षा करने वाली हैं, तब तुम्हीं कहो, हम लोगोंको फिर क्या चिन्ता करनी उचित है ?॥२३॥

अतितममृदुचित्ता भूपतेर्नन्दिनीयं प्रणतसुखसुखाप्ता दुःखतो दुःखिता च ।
सकलहृदयभावं सर्वदा सर्वकाले स्फुटमिह निखिलं वै वेत्ति वत्से ! यथार्थम् ॥२४॥

हे वत्से ! श्रीकिशोरीजीका हृदय बहुत ही कोमल है, अतः वे आश्रितोंके सुखसे सुखी और दुखसे दुखी हो जाती हैं, सभीके हृदयगत भावोंको वे सदा सर्वदा और पूर्णतया यथार्थ रूपसे जानती हैं ॥२४॥

सकलविधिहितेयं सर्वकल्याणकर्त्री ह्यगतिगतिसुवेत्री श्रीधरानाथपुत्री ।
प्रणतिपरमतुष्टा नो वधार्हेऽपि रुष्टा त्विति मनसि विदित्वा मा शुचो याहि धैर्य्यम्२५

इति दशमोऽध्याय ।

ये श्रीकिशोरीजी सभीके उद्धार पतनके उपायको भली भाँतिसे जानने वाली, निर्हेतुकी कृपा परिपूर्ण हृदय होनेके कारण केवल प्रणाम मात्रसे ही परम प्रसन्न हो जाने वाली, सभीका कल्याण करने वाली, सभी प्रकारसे हम सब जीवोंका हित ही करने वाली हैं। ऐसा जानकर तुम

मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता न करके धीरजको ही धारण करो अर्थात् घबड़ाओ नहीं, क्योंकि वे हृदयके भावको तो जानती ही हैं, परन्तु जिस व्यवहारसे जिसका हित समझती हैं, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करती हैं, अत एव उनके सभी विधानोंको अपने हितकर ही समझकर प्रसन्न रहना चाहिये, जिससे उनका भी हृदय प्रसन्न रहे, अन्यथा दुखी होनेसे वे भी दुखी हो जायेंगी ॥२५॥

अथैकादशो (११) ऽध्यायः ।

श्रीसीतारामजीको अपने भवनमें ले जानेके लिये श्रीस्नेहपराजीके द्वारा भाव-निवेदन तथा श्रीपद्मगन्धाजीका उपदेश

श्रीशिव उवाच ।

एवं संबोधिता हृष्टा प्रफुल्लकमलेक्षणा ।
जहौ दुःखं निजान्तःस्थं स्वामिन्या दुःखशङ्कया ॥१॥

इस प्रकार श्रीयुगल सरकारके परत्व, गुण, स्वभाव आदिका सम्यक् प्रकारसे बोध कराने पर स्नेहपराने अपने हृदय-स्थित दुःखको, अपनी श्रीस्वामिनीजूके दुखी हो जानेकी शङ्कासे परित्याग कर दिया ॥१॥

प्रत्यहं प्रातरुत्थाय यात्वा श्रीशयनालयम् ।
निरीक्ष्य प्राणनाथौ तौ सफलं मनुते भवम् ॥२॥

अब प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर, श्रीयुगलसरकारके श्रीशयनभवनमें उपस्थित होकर वहाँ अपने उन प्रियतम श्रीयुगल प्राणनाथ (श्रीसीतारामजी) का दर्शन करके अपने जीवनको सफल मानने लगी ॥२॥

आसंवेशविहारं सा श्रयन्ती प्रिययोस्तयोः ।
दृष्ट्वाऽथ स्वालयं याति श्रीपर्यङ्कशयानयोः ॥३॥

प्रातः काल शयनसे उठनेके पश्चात् श्रीयुगलसरकारकी सेवामें परायण रहती हुई, उनके पुनः रात्रिमें पर्यङ्क पर शयन करनेके समय तक, वह समस्त आनन्दप्रद विहारोंको अवलोकन करती हुई, अपने महलको जाने लगी ॥३॥

पूर्वजाः स्वा नमस्कृत्य कृतसेवा महामतिः ।
आज्ञया स्वालिभिः सार्द्धं संविशत्यात्मनो गृहम् ॥४॥

इस प्रकारसे, वह सभी आकारोंमें इष्ट-मति अर्थात् हमारे इष्ट (श्रीयुगलसरकार) ही विश्वके इन सभी स्वरूपोंको धारण करके हमारे दशो दिशाओंमें विद्यमान हैं, इस प्रकारकी बुद्धिको प्राप्त हो जानेसे, श्रीस्नेहपराजी अपनी प्रधान ज्येष्ठ बहनोंके यहाँ जाकर, उनकी समयोचित सेवा बजाकर, प्रेमवश उनके द्वारा बारम्बार जानेकी आज्ञा प्राप्त करने पर ही वे उन्हें प्रणाम करके, अपनी सखियोंके सहित अपने महलको जाया करती थीं ॥४॥

तत्र गत्वा विशालाक्षी शयनीयमनुत्तमम् ।
श्रीसीतारामयोरर्थं विधाय प्रेमनिर्भरा ॥५॥
प्रसुप्तौ भावयन्ती तौ प्राणनाथौ मनोहरौ ।
याममेकं निशीथिन्याः कथञ्चिद्व्यपयत्यसौ ॥६॥

अपने महलमें जाकर श्रीयुगलसरकारके निमित्त अत्यन्त सुन्दर शय्या सजाकर प्रेम निर्भर हुई अपने उन दोनों प्राणनाथों को अपनी कुंजके उसी सजे हुए पर्यंक पर शयन किये हुये भावना करती हुई अर्द्धरात्रिका शेष एक पहर भी वे बड़ी ही कठिनता से व्यतीत करती थीं ॥५॥६॥

एकदा सा महाभागा श्रीयशध्वजनन्दिनी ।
दम्पत्योः सत्कृपापात्रं पद्मगन्धालयं गता ॥७॥
कृत्वाऽथ पूजनं तस्याः सादरं शुभशेमुषी ।
तयादिष्टेप्सितं सर्वं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥८॥

एक दिन वे श्रीयुगलसरकारकी उत्तम कृपा पात्र, बड़भागिनी, श्रीयशध्वजनन्दिनी स्नेहपराजी श्रीपद्मगन्धाजीके महलमें पहुँचीं ॥७॥ उनका पूजन करके शुभ बुद्धि वाली उन स्नेहपराजीने श्रीपद्मगन्धाजीकी आज्ञा पाकर अपने अभिलषित मनोरथको उन्हें कहना प्रारम्भ किया ॥८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

ममाचार्ये ! युक्तिं वदतु भवती कामपि यया,
धरापुत्री पत्या सह परिजनैर्मे तु सदनम् ।
पुनीयात्प्रेमज्ञा स्वपदरजसा सार्द्रहृदया,
मनोऽभीष्टं त्वेतद्यदिह गदितं विद्धि परमम् ॥९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे ममाचार्ये ! आप हमें कोई ऐसी युक्ति बतादें, जिसके द्वारा प्रेम-तत्त्वको

जानने वाली, दया, वात्सल्यादिक दिव्य गुण रूपी अमृतसे आर्द्र, (भीगे) हृदयवाली, श्रीधरणि (भूमि) नन्दिनी, श्रीकिशोरीजी अपने प्यारेके साथ, समस्त परिकरके सहित, मेरे गृहको अपने श्रीचरणरजसे पवित्र करदें, यही मेरे मनका इस समय कहा हुआ परम अभीष्ट भाव आप जानें, अब इसे आप कृपाकरके सफल करें ॥९॥

श्रीपद्मामोगन्धोवाच।

साधु साधु महाभागे ! विचारोऽत्यन्तसुन्दरः ।
कृतकृत्या हि ता यासां स्वामिन्यां निश्चला रतिः ॥१०॥

हे महाभागे ! तुम्हारे विचार बहुत अच्छे बहुत ही अच्छे तथा अत्यन्त सुन्दर हैं, क्योंकि जिन लोगोंका अटल प्रेम श्रीकिशोरीजीमें है, वे ही निश्चय कृतकृत्य है ॥१०॥

यदि नाराधिता श्यामा जगन्मोहनमोहिनी ।
क्षमौदार्यदयोपेता तपसा किंनु भूयसा ॥११॥

उस विशाल तपसे क्या ? जिसके करने पर भी क्षमा, औदार्य (उदारता) दयादिक दिव्य गुणपरिपूर्ण, अपने गुण, रूप, लीलादिकोंसे सारे जगत्को मुग्ध करने वाले प्राणप्यारेके चित्तको भी अपने दिव्य कारुण्य, वात्सल्य, सारल्य, सौशील्य, औदार्य, माधुर्यादि गुणोंसे मोहित करने वाली श्रीकिशोरीजीकी प्रसन्नता प्राप्त न हो सकी ॥११॥

आराधिता जगन्माता मैथिली चेज्जगद्धिता ।
परमाह्लादिनी वत्से ! तपसा किं नु भूयसा ॥१२॥

और यदि चर-अचर प्राणियोंका हित करने वाली जगज्जननी, परमाह्लादिनी श्रीकिशोरीजी ही प्रसन्न हैं, तो फिर विशाल तप करनेसे प्रयोजन ही क्या ? ॥१२॥

यासां प्रीतिर्न वै तस्यां ता मृता अमृताशनाः ।
वञ्चिता दुष्कृतैर्नूनं दुर्भगाः पतिताः स्मृताः ॥१३॥

जिनका प्रेम श्रीकिशोरीजीमें नहीं है, वे अमृतका आहार करने वाली होने पर भी मृतक हैं तथा वे निश्चय ही अपने पाप कर्मोंके द्वारा ठगी जारही है, इससे दुर्भाग्यताको प्राप्त होती हुई, वे निश्चय ही पतित समझी जाती हैं ॥१३॥

विद्धि योगं कुयोगं त्वं ज्ञानमज्ञानमेव च ।
न भवेदचला प्रीतिर्यदि तस्यां सतां गतौ ॥१४॥

यदि-उन सन्तोंकी गति स्वरूपा श्रीकिशोरीजीमें प्रेम नहीं हो रहा है तो, अपने योग-साधनको कुयोग (विपरीत फल प्रदान करने वाला साधन) और प्राप्त हुए ज्ञानको निश्चय ही अज्ञान समझो, क्योंकि वास्तविक ज्ञान जब प्राप्त होता है, तब श्रीकिशोरीजीमें प्रेम होना अनिवार्य ही हो जाता है अर्थात् वास्तविक ज्ञानीके हृदयमें प्रेमका उदय अवश्य ही होता है ॥१४॥

यस्या वश्यायते प्रेष्ठोऽनन्तब्रह्माण्डनायकः।
अन्येषां का गतिस्तर्हि तामृते नो भविष्यति ॥१५॥

अनन्त ब्रह्माण्डनायक श्रीप्राणप्रियतमजू भी जिनके अधीनसे रहते हैं, भला उन श्रीकिशोरीजीको छोड़कर फिर हम सबोंके लिये और ठिकाना ही क्या होगा? ॥१५॥

यस्याज्ञावशवर्तिनश्च हरयः पद्मासनाः शङ्करा
मार्तण्डाः शशिनो यमा हरिहया वित्तेश्वरा वायवः।
काला दिक्पतयोऽग्नयश्च वरुणाः शेषाः सुरा राक्षसाः
सर्वे सर्षिमहर्षयो रघुपतेर्ब्रह्माण्डकोटिस्थिताः ॥१६॥

अनन्त ब्रह्माण्डोंमें विराजमान-अनन्त विष्णु, अनन्तब्रह्मा, अनन्तशिव, अनन्तसूर्य, अनन्तचन्द्र, अनन्तयम, अनन्तइन्द्र, अनन्तकुवेर, अनन्तवायु, अनन्तकाल, अनन्तदिशापति, अनन्तअग्नि, अनन्तवरुण, अनन्तशेष, अनन्तदेव, अनन्तराक्षस, अनन्तऋषियों के सहित महर्षिगण जिनकी आज्ञाके वशमें रहते हैं ॥१६॥

सोऽपि प्राणधनं तु नः सुमधुरो यस्याः कृपावारिधे-
र्द्रष्टुं चेह कृपार्द्रदृष्टिमनिशं लोलायते सर्वदा ॥
यस्या एव कृपात आर्यतनयं प्राप्ता वयं दुर्लभं
तस्या विस्मरणात्परं किमधिकं पापं हि नो गर्हितम् ॥१७॥

वे हमारे अत्यन्त मधुर प्राण प्यारे प्राणधन भी, जिन कृपासागरा (श्रीकिशोरी) जीकी कृपा रससे भीजी हुई दृष्टि (चितवन) का दर्शन करनेके लिये सर्वदा चञ्चलसे (लालायित) बने रहते हैं, जिनकी कृपासे ही हम लोगोंको ब्रह्मादिदेव-दुर्लभ प्राणप्यारेजू प्राप्त हुये हैं, उन श्रीकिशोरीजीको ही भुला देनेके समान भला हम लोगोंके लिये और क्या निन्दित पाप हो सकता है? ॥१७॥

कृतकृत्याऽसि धन्याऽसि कृतपुण्याऽसि सन्मते।
जानक्यास्त्वं कृपापात्रं सफलं तव जीवितम् ॥१८॥

ना हे श्रीप्रियाप्रियतमजूके नाम,रूप, लीला धामादिकोंमें ही अपनी मतिको स्थिर रखनेवाली स्नेह-पराजी ! तुम निश्चय ही समस्त पुण्योंको तथा समस्त श्रुति-शास्त्र विहित कर्त्तव्योंको कर चुकी हो, इसीसे श्रीकिशोरीजीकी कृपा पात्रा हुई हो, अत एव तुम धन्य हो, तुम्हारा जीवन सफल है ॥१८॥

भावज्ञा हृदयज्ञाऽसौ सर्वासां परमेश्वरी !
प्रणिपातप्रसन्ना हि स्वामिनी नः कृपानिधिः ॥१९॥

साक्षात् श्रीकृपा देवीकी गूढ़ स्वरूपा, हमारी श्रीस्वामिनीजी केवल प्रणाम मात्रसे ही प्रसन्न होने वाली सभी शासन करने वाली, शक्तियोंकी स्वामिनी व सभीके हृदयको भली भाँति जानने वाली, तथा सभीके भावोंको पूर्णतया समझने वाली हैं ॥१९॥

वाञ्छितं प्राप्स्यसे नूनं सर्वथेति मतिर्मम ।
तस्माद्व्रज प्रणम्येदं श्रीकलायै निवेदय ॥२०॥

मेरा विश्वास है कि, तुम्हारी इच्छा सब प्रकारसे परिपूर्ण होगी, अत एव अब तुम जाकर श्रीकिशोरीजीकी साक्षात् मुख्यकलास्वरूपा (श्रीचन्द्रकला) जीसे अपनी उत्कण्ठाको निवेदन करो ॥२०॥

यथाऽसौ सम्मतिं दद्यात्कर्त्तव्यं तत्तथा त्वया ।
तयोररीकृतं विद्धि राजपुत्र्येति निश्चितम् ॥२१॥

इति एकादशोऽध्यायः ।

श्रीचन्द्रकलाजी इस विषयमें तुम्हें जो अपनी सम्मति प्रदान करें, तुम पूर्ण रूपसे वैसाही करना, उनकी स्वकृतिको श्रीकिशोरीजी की ही स्वीकृति जानना ॥२१॥

अथ द्वादशो (१२) ऽध्यायः ।

श्रीचन्द्रकलाजीकी सान्त्वनासे श्रीस्नेहपराजीके द्वारा श्रीकिशोरीजीकी कृपाके प्रति विश्वास-वर्णन ।

श्रीशिव उवाच ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सुचित्रानन्दवर्द्धिनी ।
प्रागाचन्द्रकलावेश्म प्रसन्नमुखपङ्कजा ॥१॥

भगवान् शङ्करजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीपद्मगन्धाजीके वचन सुन कर श्रीसुचित्रा अम्बाजीके

हृदयके आनन्दको बढ़ाने वाली, स्नेहपराजीका मुख कमल प्रसन्न हो गया, वह (उनकी आज्ञाके अनुसार) श्रीचन्द्रकलाजीके महलमें पहुँची ॥१॥

सम्मानिता तया प्रीत्या पृष्टा सा नतमस्तका ।
प्रणम्य करुणारूपामिदमूचे कृताञ्जलिः ॥२॥

श्रीचन्द्रकलाजीसे सम्मानित होकर प्रेमपूर्वक उनके (आगमनका कारण) पूछने पर स्नेहपराजी शिर झुकाकर प्रणाम करके हाथ जोड़कर उन करुणास्वरूपा श्रीचन्द्रकलाजीसे बोलीं ॥२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

कारुण्यामृतवारिधे ! रसनिधे ! रासप्रिये ! सद्गते !
श्रीमच्चन्द्रकले ! प्रसीद ! कृपया ! मय्यात्मकामप्रदे ! ।
रासोल्लासविवर्द्धिनि ! प्रियरते ! संयोगदे ! प्रेयसो-
रानन्दैकनिधे ! त्वदंघ्रियुगलं सन्नौमि यूथेश्वरि ! ॥३॥

हे रासका उल्लास (भगवदानन्द) बढाने वाली ! प्रिय करनेमें तत्पर ! श्रीप्रियाप्रियतमजूका संयोग प्रदान करने वाली ! आनन्दकी सर्वोत्तम निधि ! समस्त यूथेश्वरियोंकी स्वामिनि ! मैं आपके दोनों श्रीचरण-कमलोंको सम्यक् प्रकार (मन, वाणी, शरीर) से प्रणाम करती हूँ। हे करुणारूपी अमृतकी सागरे ! हे रसनिधे ! हे सद्गते ! (श्रीयुगलसरकारको ही अपना सर्वस्व मानने वाली) हे रासमें (प्रभु उपासकोंके प्रति) विशेष प्रेम रखने वाली ! हे मनोगत कामनाओंको पूरा करने वाली ! श्रीचन्द्रकलेजू ! आप मुझपर प्रसन्न हों ॥३॥

आर्ये त्वामिदमर्थयेऽद्य शुभदां सङ्कल्पसिद्धिप्रदां
त्वं सम्प्रार्थय दम्पती मृदुगिरा गन्तुं मदीयालयम् ।
अस्त्येवं हि मनोरथो रसनिधे ! संदुर्लभः सर्वदे !
तत्पूर्त्तिः खलु वर्तते तव करे स्यान्नान्यथेति ध्रुवम् ॥४॥

हे श्रीरसनिधे जू ! हे आश्रितोंके सङ्कल्पकी सिद्धि प्रदान करने वाली ! समस्त मङ्गलोंको देने वाली ! आपसे आज मैं यह प्रार्थना कर रही हूँ कि, आप मेरे महल पधारनेके लिये अपनी कोमल वाणीके द्वारा श्रीप्रियाप्रियतमजूसे प्रार्थना कर दीजिये, हे आश्रितोंको सब कुछ मनोवाञ्छित प्रदान करने वाली ! सम्यक् प्रकारसे दुर्लभ होनेपर भी मेरा मनोरथ तो कुछ ऐसा ही है, उसकी पूर्ति बस आपके ही करकमलमें है, बिना आपकी कृपाके (अन्य किसी साधनोंसे) वह पूर्ण नहीं हो सकता, ऐसा निश्चय है ॥४॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

ईदृशी त्वं मतिं प्राप्ता कुतः परम दुर्लभम् ।
न त्वद्भुतं भवेदत्र तयोरुच्छिष्टसेवनात् ॥५॥

स्नेहपराजीकी प्रार्थना सुनकर श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:-ऐसी परम दुर्लभ बुद्धि तुम्हें कहाँ से मिली ? श्रीयुगलसरकारकी जूठन सेवनसे यदि ऐसी बुद्धि मिली भी है, तो (इस प्राप्तिके विषयमें) कोई विशेष आश्चर्यकी बात नहीं ॥५॥

साध्वभीष्टं च ते वत्से ! श्रुत्वाऽहं हर्षनिर्भरा ।
वरं ददाम्यतस्तुभ्यं सफलोऽस्तु मनोरथः ॥६॥

हे वत्से ! तुम्हारा अभीष्ट बहुत सुन्दर है, मैं उसे सुनकर हर्षसे परिपूर्ण हो गयी हूँ, अतः मैं तुम्हें यह वरदान देती हूँ कि, तुम्हारा मनोरथ सफल हो ॥६॥

भोजनाख्यं मया सार्द्धं कुञ्जमभ्येत्य तत्र वै ।
अशनान्ते त्वया ताभ्यां निवेद्यं काङ्क्षितं स्वकम् ॥७॥

मेरे साथ भोजन कुञ्ज चलकर वहाँ भोजनके पश्चात् अपने निश्चित किये हुये भावको तुम श्रीप्रियाप्रियतमजूसे निवेदन करना ॥७॥

तावुभौ साधु सत्कर्तुं प्रबन्धः क्रियतां शुभे !
श्वः परश्वोऽथवा प्रेष्ठौ नेतव्यावात्ममन्दिरे ॥८॥

हे शुभे ! सबसे पहले आप श्रीप्रियाप्रियतमजूके उचितसत्कार करनेका प्रबन्ध करलो, तदनन्तर चाहे कल हो या परसों, उनके अपने महल लेजाना, यही तुम्हारे लिये उचित होगा ॥८॥

सालियूथसहस्राणामनुगानां तयोरपि ।
सत्काराय त्वया कार्यः प्रबन्धो भद्रमस्तु ते ॥९॥

तुम्हारा कल्याण हो ! हजारों सखी यूथोंके सहित श्रीयुगल सरकारके सभी अनुचर-अनुचरियोंके सत्कारका भी तुम्हें प्रबन्ध कर लेना चाहिये ॥९॥

श्रीशिव उवाच ।

परमाचार्ययाऽऽज्ञप्ता स्वकुञ्जमगमत्तदा ।
प्राब्रवीत्स्वाः सखीः सर्वाः समाहूय कृताञ्जलीः ॥१०॥

भगवान् शङ्करजी बोले-हे प्रिये ! परमाचार्या (श्रीचन्द्रकला)जी की आज्ञा पाकर स्नेहपराजी

अपनी कुञ्ज पधारीं, वहाँ सखियोंको बुला कर, हाथ जोडे हुये उन्हें अपने सामने खड़ी देखकर वे उनसे बोलीं ॥१०॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

याहि चित्तवति ! क्षिप्रं सूक्ष्मबुद्धे ! मनस्विनि ! ।
यथा चन्द्रकला प्राह क्रियतामविलम्बितम् ॥११॥

हे चित्तवती ! हे सूक्ष्मबुद्धे ! हे मनस्विनि ! आप सब लोग श्रीचन्द्रकलाजूकी जो आज्ञा हुई है, उसे शीघ्र पालन करें अर्थात् जैसा उन्होंने कहा है, वैसा ही सारा प्रबन्ध करें ॥११॥

अहं तत्रैव गच्छामि यत्र स्तो नित्यदम्पती ।
रसमाधुर्यसौन्दर्यक्षमाकारुण्यवारिधी ॥१२॥

मैं उसी महल पर जारही हूँ जहाँपर रस, माधुर्य, सौन्दर्य, क्षमा, कारुण्य (दया) आदिके समुद्र नित्यदम्पती (सदाएक रस ज्योंका त्यों रहने वाले श्रीप्रियाप्रियतमजू) विराज रहे हैं ॥१२॥

सख्य ऊचुः।

कृतं यथोक्तमस्माभिर्द्रष्टुमर्हसि शोभने !
देशिकाभ्यां तथा सर्वं प्रबन्धं दर्शयाधुना ॥१३॥

श्रीस्नेहपराजीकी इस आज्ञाको सुनकर उनकी सखियाँ बोलीं:-हे शोभनेजू ! आपकी आज्ञानुसार सब कार्य हम लोगोंने कर लिया है, उसे आप अवलोकन कर लें, पुनः हम लोगों इस किये हुयेके प्रबन्धको उन दोनों श्रीआचार्याजी को भी दिखला दें ॥१३॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

साधु साधु प्रपश्यामि दर्शयिष्यामि साम्प्रतम् ।
देशिकाभ्यां प्रमोदध्वं प्रबन्धं भद्रमस्तु वः ॥१४॥

सखियोंकी प्रार्थना सुनकर श्रीस्नेहपराजी बोलीं—सखियो ! बहुत अच्छा है। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारे किये हुये (श्रीप्रियाप्रियतमजूके सत्कारार्थ) प्रबन्धको अभी देखती हूँ तथा श्रीपद्मगन्धाजी और श्रीचन्द्रकलाजीको भी दिखलाऊँगी, तुम लोग प्रसन्न रहो ॥१४॥

इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं पद्मगन्धालयं शुभम् ।
नमस्कृत्याञ्जलिं बद्ध्वा तामुवाच शुचिस्मिताम् ॥१५॥

श्रीशिववाच।

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजी अपनी सखियोंसे इतना कहकर तुरत श्रीपद्म-

गन्धाजीके मङ्गलमय महलको गयीं, और वहाँ नमस्कार करके पवित्र मुस्कान युक्त उन (श्रीपद्मगन्धजी) से हाथ जोड़कर बोलीं ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अहं पूज्ये ! त्वयाऽऽज्ञप्ता प्रागां चन्द्रकलां प्रति ।
यथाऽऽदेशंस्तया दत्तो विधायैवाहमागता ॥१६॥

हे पूज्ये ! मैं आपकी आज्ञाके अनुसार श्रीचन्द्रकलाजीके पास गयी थी, उन्होंने जो आज्ञा दी थी, उसे पूरी करके मैं आपके पास आई हूँ ॥१६॥

इतो मया नु किं कार्यं तन्मे ब्रूहि कृपानिधे !
रसाधिपे रसागारे ! रसमूर्ते ! नमोऽस्तु ते ॥१७॥

हे रसाधिपे ! हे रसमन्दिरे ! हे रसमूर्ते ! श्रीकृपानिधेजू ! आपके लिये मेरा नमस्कार है अब मुझे क्या करना उचित है सो आज्ञा करें ॥१७॥

श्रीपद्मगन्धोवाच ।

गच्छ सौम्ये ! मया साकं तामेवेन्दुकलामरम् ।
प्रणिपत्याञ्जलिं बध्वा तस्यै सर्वं निवेदय ॥१८॥

श्रीपद्मगन्धाजी बोलीं—हे सौम्ये ! मेरे साथ उन्हीं श्रीचन्द्रकलाजीके पास तुम शीघ्र चलो, (वहाँ) उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर, अपने किये हुए सब कृत्योंको निवेदन करो ॥१८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आज्ञाप्रमाणमेवार्ये ! गच्छाव त्वरितं शुभे !
तस्याः सुरम्यमागारं द्रष्टुं तां त्वरते मनः ॥१९॥

श्रीपद्मगन्धाजीकी आज्ञा सुनकर श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे शुभे ! हे आर्ये ! मेरे लिये आपकी आज्ञा ही प्रमाण है, अतः हम यहाँ से श्रीचन्द्रकलाजीके सुन्दर महलको शीघ्र प्रस्थान करें, क्योंकि उनके दर्शनके लिये मन शीघ्रता कर रहा है ॥१९॥

श्रीशिव उवाच ।

दृष्ट्वा त्वरां तु सा तस्याः पद्मगन्धा मुदान्विता ।
वायुवेगं समारुह्य विमानमगमत्तदा ॥२०॥

भगवान् शङ्करजी श्रीपार्वतीजीसे बोले—हे प्रिये ! तब श्रीस्नेहपराजीकी आतुरता देखकर श्रीपद्मगन्धाजीने बहुत प्रसन्नता पूर्वक वायुवेग नामके विमानमें विराजमान होकर प्रस्थान किया ॥२०॥

द्वारि त्यक्त्वा विमानं सा तया तद्धर्म्यमाविशत् ।
तत्पदाम्बुरुहे भक्त्या ववन्दाते उभे च ते ॥२१॥

श्रीचन्द्रकलाजीके महलके द्वारपर ही विमानको छोड़कर श्रीपद्मगन्धाजीने श्रीस्नेहपराजीके सहित उनके महलमें प्रवेश किया, पुनः उन दोनोंने श्रीचन्द्रकलाजीके श्रीचरण कमलोंको प्रणाम किया २१

आशीर्वादमसौ दत्वा तदा प्रोवाच सादरम् ।
ब्रूतं विवक्षितं यच्च मयादिष्टे परिस्फुटम् ॥२२॥

तब श्रीचन्द्रकलाजी दोनोंके लिये आशीर्वाद देते हुए बड़े आदरके साथ बोलीं—तुम्हें जो कहना अभीष्ट है, मेरी आज्ञा से, उसे स्पष्ट रूपमें कहो ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्ता मधुरं प्रेम्णा पद्मगन्धेङ्गिता मुदा ।
गृहीताङ्घ्रिस्तु सोवाच प्रेमगद्गदया गिरा ॥२३॥

इस प्रकारसे प्रेमपूर्वक श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा कही हुई बातोंको सुनकर श्रीस्नेहपराजी प्रेमाधिक्यसे मोद युक्त हो श्रीपद्मगन्धाजीका सङ्केत पानेके पश्चात् अपनी गद्गद् वाणीके द्वारा उनके श्रीचरणकमलोंको पकड़े हुये बोलीं ॥२३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

नमश्चन्द्रकले ! तुभ्यं दम्पत्योः प्रीतियोगदे ! ।
चन्द्रभानुसुते ! ज्येष्ठे ! प्रधानालिगणेश्वरि ! ॥२४॥

हे श्रीचन्द्रभानु पुत्रि ! हे ज्येष्ठे ! हे प्रधानसखीसमाजकी स्वामिनी ! हे श्रीप्रियाप्रियतम (श्रीसीतारामजू) का प्रीतिरूप योग प्रदान करने वाली ! हे श्रीचन्द्रकलेजू ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥२४॥

कृत्वा कृत्यं यथाऽऽदिष्टं भवत्या पूर्वमग्रजे ! ।
आगताऽहं त्वदभ्याशे तन्निवेदयितुं च ते ॥२५॥

श्रीयुगल सरकारका सत्कार करनेके लिये पूर्वमें आपने जैसी आज्ञा दी थी, उसी तरह करनेके बाद, मैं उसे आपसे निवेदन करनेके लिए आई हूँ ॥२५॥

द्रष्टुमर्हसि तत्सर्वं स्वयमेव कृपानिधे !
श्रीपद्मगन्धया सार्द्धं प्रयाय भवनं मम ॥२६॥

सो हे कृपानिधेऽ ! श्रीपद्मगन्धाजीके सहित यदि आप स्वयं मेरे महल चलकर उस सारे प्रबन्धको देखनेकी कृपा करतीं तो, अति उत्तम होता ॥२६॥

श्रीशिव उवाच ।

सा निशम्य प्रहृष्टात्मा तया श्रीपद्मगन्धया ।
विमानं वरमारुह्य तस्या भवनमभ्यगात् ॥२७॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजी श्रीस्नेहपराजीकी प्रार्थनाको सुनकर प्रसन्न हृदय होती हुई, श्रीपद्मगन्धाजीके साथ श्रेष्ठ विमानमें विराजमान होकर उन (श्रीस्नेहपराजी) के भवनको गयीं ॥२७॥

नीत्वा पूज्ये हि ते कुञ्जे स्वकीये मणिनिर्मिते ।
यथावत्पूजनं कृत्वा ताभ्यां सर्वं प्रदर्शितम् ॥२८॥

श्रीस्नेहपराजीने अपने मणि-निर्मित महलमें उन दोनों पूजनीया बहनोंको लेजाकर, विधि-पूर्वक उनका सत्कार करके, अपनी सखियोंके द्वारा श्रीयुगल सरकारके सत्कारके निमित्त किये हुये सारे प्रबन्धोंको उन्हें दिखलाने लगीं ॥२८॥

दृष्ट्वा ते ययतुर्मोदं प्रसन्ने भद्रमूचतुः ।
प्राप्स्यसे परमं काममित्युक्त्वा गन्तुमुद्यते ॥२९॥

उन दोनोंने इस प्रबन्धको देखकर सुखी और प्रसन्न होकर कहा—तुम्हारा कल्याण हो, और इस अति श्रेष्ठ मनोरथकी सिद्धिको तुम अवश्य प्राप्त करोगी, इतना कहकर वे चलनेको उद्यत हो गयीं ॥२९॥

ताभ्यां सार्द्धं ततो गत्वा मैथिलीराममन्दिरम् ।
अभवत्तत्परा चासौ सेवायां प्रेयसोस्तयोः ॥३०॥

श्रीस्नेहपराजी उन दोनों बहनोंके साथ, श्रीसीतारामजीके महल जाकर उन (श्रीप्रिया-प्रियतमजू) की सेवामें तत्पर हो गयीं ॥३०॥

गोपयन्ती मनोहर्षं जातं जातं नवं नवम् ।
सा तु युग्मेक्षणानन्दा जगादेदं निजं मनः ॥३१॥

श्रीयुगलसरकारके ही दर्शनों में आनन्द माननेवाली वे श्रीस्नेहपराजी अपने मनमें नये-नये उत्पन्नहोनेवाले हर्षोंको छिपाती हुई श्रीयुगल सरकारकी सेवा परायण हो, अपने मनसे बोलीं ३१

श्रीस्नेहपरोवाच।

मद्गृहं यास्यतोऽद्यैतौ श्रीनिकुञ्जविहारिणौ।
कृतकृत्या भविष्यामि मत्समा नापरा भवेत् ॥३२॥

आज ये श्रीनिकुञ्जविहारिणी और विहारीजी मेरे महल पधारेंगे, अत एव आज मैं कृत हो जाऊँगी, आज मेरे भाग्यकी समता करने वाली और कोई भी न होगी ॥३२॥

इति संस्मृत्य संस्मृत्य मुह्यन्ती हर्षवेगतः।
श्रीपद्मगन्धयाऽऽश्वस्ता लब्धसञ्ज्ञा प्रहृष्यति ॥३३॥

इस प्रकार सम्यक् प्रकारसे उस सुखको स्मरण करके वारंवार हर्षके वेगसे मूर्च्छित होती हुई श्रीपद्मगन्धाजीके द्वारा आश्वासन पाकर सावधानताको प्राप्त हो वे अत्यन्त हर्षको प्राप्त हो जाती थीं ॥३३॥

अथासौ कुञ्जमासाद्य भोजनाख्यं मनोहरम्।
बहुधा चिन्तयामास मज्जन्ती हर्षवारिधौ ॥३४॥

इसके बाद वे (श्रीस्नेह पराजी) श्रीयुगलसरकारके मनोहर भोजन कुञ्जमें पहुंच कर हर्ष सागरमें डूबती हुई, बहुत प्रकारका चिन्तन करने लगीं ॥३४॥

कच्चिन्ममालयं नूनं यास्यतो दीनवत्सलौ।
कच्चित्स्वपादरजसा मद्गृहं पावयिष्यतः ॥३५॥

क्या दीनवत्सल श्रीयुगल प्रभु निश्चय ही हमारे महलमें पधारें गे? क्या वे अपने श्री चरण कमलोंकी धूलिसे, मेरे महलको अवश्य पवित्र करेंगे? ॥३५॥

कच्चिन्मयाऽर्पितं दिव्यमासनं स्वीकरिष्यतः।
कच्चिन्मनोरथं प्राणवल्लभौ पूरयिष्यतः ॥३६॥

क्या मेरे महलमें पहुंचकर वहाँ मेरे द्वारा अर्पण किये हुये दिव्य आसनको स्वीकार करेंगे? क्या ये प्राणोंके समान प्यारे श्रीयुगल सरकार मेरे मनोरथको निश्चय ही पूरा करेंगे? ॥३६॥

यद्यपि सर्वथा हीना पतिताऽज्ञाऽस्मि बालिका।
करिष्यतः कृपां नूनं तथापि श्रीप्रियाप्रियौ ॥३७॥

यद्यपि मैं सब प्रकारके साधनोंसे हीन हूँ, पतित हूँ, मूर्खा हूँ, बालिका हूँ तथापि मेरे ऊपर श्रीप्रियाप्रियतमजू कृपा तो, अवश्य ही करेंगे ॥३७॥

नेयमद्यापि भावज्ञा स्वामिनी मम कर्हिचित् ।
ममाप्रियं कृतवती क्षमासारा कृपानिधिः ॥३८॥

क्षमाकी सारस्वरूपा, कृपाकी मन्दिर, सभीके हृदयस्थित भावको जानने वाली, इन श्रीस्वामिनीजीने आजतक कभी भी कोई मेरी अप्रसन्नता कारक व्यवहार ही नहीं किया है ॥३८॥

अनया पालितैवाहं लालिताऽस्मि सुता यथा ।
अस्याः कराङ्गुलीं श्रित्वा कालान्नापि बिभेम्यहम् ॥३९॥

पुत्रीके समान, इन्हीं श्रीकिशोरीजीने मेरा लालन, पालन किया है, इन अपनी श्रीस्वामिनीजूके हाथकी अङ्गुलीका सहारा पा जाने पर, मैं कालसे भी नहीं डरती ॥३९॥

इयं सर्वांशिनी प्रोक्ता सर्वज्ञा नारदादिभिः ।
सर्वेश्वरी जगन्माता करुणासिन्धुरूपिणी ॥४०॥

श्रीनारदजी आदि ऋषियोंने इन हमारी श्रीस्वामिनीजीको सभीकी मूलकारण स्वरूपा, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंकी सभीकी सभी हो गयी, हो रही, होने वाली, परिस्थितियोंको जानने वाली, समस्त छोटेसे छोटों और बड़ेसे से बड़ोंकी स्वामिनी, चर-अचरकी माता, करुणासागर स्वरूपा कहा है ॥४०॥

परीक्षितेयमस्माभिर्नस्तुत्यैव हि बुध्यते ।
निःसंशयं ममाभीष्टं सफलं सा करिष्यति ॥४१॥

इति द्वादशोऽध्यायः ।

—: मासपारायण २ समाप्त :—

हम लोगोंने परीक्षा करके भी श्रीकिशोरीजीको उपर्युक्त गुणसम्पन्ना देख लिया है, केवल उन लोगोंकी की हुई स्तुतिसे ही नहीं समझ रही हूं, इसलिये वे मेरे अभीष्टको अवश्यही पूरा करेंगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥४१॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

भोजनके पश्चात् स्तुति करके श्रीयुगलसरकारके प्रति
श्रीस्नेहपराजीका अपना मनोभाव निवेदन ।

श्रीशिव उवाच ।

इति निश्चिन्वती बुद्ध्या दम्पत्योः करुणैषिणी ।
सेवायां तत्परा जाता वीक्षमाणा तयोश्छविम् ॥१॥

श्रीप्रियाप्रियतमजूकी कृपा-काङ्क्षिणी वे श्रीस्नेहपराजी अपनी बुद्धिके द्वारा ऐसा निश्चय करके, श्रीयुगलछविको अवलोकन करती हुई सेवामें लग गयीं ॥१॥

भोजनान्ते ततस्तत्र सुखासनविराजितौ ।
नीराजितौ विशालाक्षौ शरच्चन्द्रनिभाननौ ॥२॥

उसके बाद उस कुञ्जमें भोजनके उपरान्त शरच्चन्द्र सदृश मुखारविन्द, विशाललोचन, श्रीयुगलसरकारके सुखासनसे विराजमान होने पर, जब उनकी आरती हो चुकी ॥२॥

दृष्ट्वा विद्युद्घनाभौ तौ कोटिराकेशशोभनौ ।
प्रणम्य बहुशः प्रेष्ठौ तदा स्तोतुं प्रचक्रमे ॥३॥

बिजली और मेघके समान प्रकाश युक्त, करोड़ों शरत्-ऋतुकी पूर्णिमाके चन्द्रके सदृश शोभायमान, उन श्रीप्रियाप्रियतमजीके दर्शन करके श्रीस्नेहपराजी उन्हें बहुत बार प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगी ॥३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

जयाष्टमीन्दुमस्तके ! शरत्सुधाकरानने !
मुखप्रभाजितेन्दुक ! प्रियस्मितान्वहं जय ॥
वसुन्धराधवात्मजे ! वसुन्धरासमुद्भवे !
वसुन्धरेश्वरात्मज ! प्रभो ! जय प्रभो ! जय ॥४॥

अष्टमीके चन्द्रके समान मस्तक वाली हे श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो ! शरदृतुके चन्द्रमाके तुल्य अत्यन्त आह्लाद प्रदायक, प्रकाशयुक्त श्रीमुखकमल वाली हे श्रीस्वामिनी जू ! आपकी जय हो। अपने श्रीमुखकी छटासे चन्द्रमण्डलको निन्दित करने वाले ! प्यारे ! आपकी जय हो।

प्रिय मुस्कान युक्त हे श्रीप्राणप्यारेजू ! आपकी जय हो । हे श्रीपृथिवीपतिनन्दिनीजू ! हे पृथिवीसे प्रकट होने वाली श्रीस्वामिनीजू ! हे भूपतिकिशोर प्राणप्यारेजू ! आप दोनों श्रीयुगलसरकारकी सदा ही जय हो ॥४॥

विभूषिपद्महस्तके ! जयाम्बुजातलोचने !
जयारविन्दलोचनामृतांशुमोहनानन ! ।
कृपाप्रपूर्णवीक्षणे ! ऽद्वितीयदिव्यलक्षणे !
स्वभावमोहनेक्षण ! प्रकृष्टदिव्यलक्षण ! ॥५॥

दिव्य भूषणोंसे विभूषित, कमलवत् कोमल हस्त वाली श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो, हे कमलके समान विशाललोचना श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो, अरुण कमलके समान लाल कोर युक्त नेत्रवाले ! अमृतके समान सुखद किरण वान चन्द्रको श्रीमुखसे मोहित करने वाले वाले प्राणप्यारेजू ! आपकी जय हो, हे कृपासे परिपूर्ण चितवन वाली ! हे दिव्य लक्षणयुक्ताओंमें सर्वश्रेष्ठे ! श्रीस्वामिनीजू ! हे स्वभावसे ही सभीको मुग्ध करने वाली चितवन वाले ! हे उत्तमसे उत्तम दैवी लक्षणोंसे सम्पन्न प्राणप्यारेजू ! आप दोनों सरकारकी जय हो ॥५॥

जितच्छविस्मरप्रिये ! समस्तमार्दवान्विते !
मनोजमोहनाकृते ! नमोऽस्तुते जगत्पते ॥
ललल्ललाटचन्द्रिके ! सुकुण्डले ! ललन्तिके !
द्युमत्किरीटकुण्डलालकाश्रितास्यमण्डल ! ॥६॥

अपनी अप्राकृत छविसे साक्षात् त्रिभुवनकी छवि और रतिको जीतने वाली ! समस्त कोमलतासे परिपूर्ण श्रीस्वामिनीजू ! हे सन्तोंके पति (रक्षा करनेवाले) ! कामदेवको मोहित कर देने वाले सुन्दर शरीर धारी ! हे सर्वश्रेष्ठ ! श्रीप्यारेजू ! आप दोनों सरकारकी जय हो ! हे ललाटपर सुन्दर चन्द्रिका वाली ! हे सुन्दर कुण्डलों वाली ! हे मुक्तामणिमयी कण्ठी वाली श्रीस्वामिनीजू ! हे प्रकाशयुक्त किरीट कुण्डल वाले ! हे घुंघराले केशोंसे सुशोभित मुख-मण्डल वाले प्राणप्यारेजू ! आप दोनों सरकारकी जय हो ॥६॥

प्रसूनगुम्फिकुन्तले ! सुदामशोभिहृत्स्थले !
जयासमग्रभूषण ! स्वभाववीतदूषण ! ॥
मनोहराब्जहस्तके ! जयातिकोमलाङ्घ्रिके !
जयारविन्दहस्तकाश्रितामरद्रुमाङ्घ्रिक ! ॥७॥

हे फूलोंसे गुथे हुये केशवाली ! हे सुन्दरमालाओंसे सुशोभित हृदय प्रदेशवाली श्रीस्वामिनीजू ! हे अल्प भूषणधारण किये हुये ! हे स्वभावसे ही सब प्रकारके दोषोंसे रहित प्राणप्यारेजू ! आपकी जय हो ! हे मनोहर कमलके समान सुकोमल हाथवाली ! हे अत्यन्त कोमल श्रीचरण कमलवाली ! श्रीस्वामिनीजी ! आपकी जय हो ! हे अरुण कमलके समान हाथ वाले ! हे आश्रितोंके लिये कल्पवृक्षके सदृश श्रीचरणवाले प्यारेजू ! आपकी जय हो ॥७॥

तडिन्निकाय सद्द्युते ! नवीनवारिदाकृते !
रसाकृते ! रसाम्बुधे ! रसानुरक्तिवारिधे ! ॥
अशेषसद्गुणाश्रिते ! सुखाम्बुधे ! महामते !
युवां जगत्परप्रभू ! प्रियौ ! जयेतमीप्सितम् ॥८॥

हे बिजली-समूहके समान सदा एक रस रहनेवाली गौर कान्तिवाली श्रीस्वामिनीजू ! हे नवीन मेघके समान श्याम शरीर वाले ! श्रीप्यारेजू ! हे रसस्वरूपे ! हे रससागरे श्रीस्वामिनीजू ! हे वात्सल्य शृङ्गारादि सभी रसोंके तथा प्रेमके सागर श्रीप्रियतमजू ! हे समस्तसद्गुणविभूषिते ! हे सुखसागरे श्रीस्वामिनीजू ! हे महा (अनन्त, अखण्ड, असीम, अजस्र) मतिवाले प्राणप्यारेजू ! हे जगत्के सर्वोपरि स्वामी श्रीप्रिया प्रियतमजू ! आप दोनों की सदा ही यथेच्छ जय हो ॥८॥

युवामशेषदेहिनां सदात्मनोऽधिकप्रियौ
युवां जगद्दृगुत्सवावशेषमोहनाकृती ।
युवामतुल्यसौभगौ रसाम्बुधी च माम्बुधी
युवां जयेतमन्वहं सकृन्नतिप्रसादितौ ॥९॥

आप दोनों सरकार, समस्त प्राणियोंको अपनी आत्मासे भी सदा अधिक प्रिय हैं। आप दोनों स्थावर-जङ्गम (चर-अचर) प्राणियोंके नेत्रोंको उत्सवके समान आनन्द प्रदान करने वाले, सभीको मुग्ध करनेको समर्थ आकृति वाले हैं। आप दोनों किसीसे भी तुलना न करने योग्य सौन्दर्य वाले, रसके समुद्र तथा चमाके सागर हैं। आप दोनों सरकार केवल प्रणाममात्रसे प्रसन्नताको प्राप्त कराये जाने वाले हैं, अतः आप दोनोंकी सदा ही जय हो ॥९॥

युवां निमीनवंशजौ शतेनविष्णुधिद्युती
युवां मनोहरस्मितौ सुवीक्षणौ सुभाषितौ ।
युवां कुलाभिभूषकौ जगच्छिरोमहामणी
युवां जयेतमन्वहं महाकृपामृतोदधी ॥१०॥

आप दोनों सरकार निमि और सूर्य वंशमें प्रकट हुये हैं, आपकी कान्ति सैकड़ों सूर्य व चन्द्रसे भी बढ़कर है, आप दोनोंकी मुस्कान बड़ी मनोहरण है आप दोनों सरकारकी चितवन व भाषण सभीका मङ्गल करने वाला है, आप दोनों सरकार अपने अपनाये हुये कुलोंको सुशोभित करने वाले, सारे विश्वके शिर (दिव्य धामोंकी मद्दा (असीम) मणिके समान सदा एक रस प्रकाशित रखने वाले हैं, हे जीवोंको भगवदानन्द प्रदान करनेकी इच्छायुक्त निर्हेतुकी-कृपामृतके सागर प्राणप्यारे युगलसरकारजू! अतः आप दोनोंकी सदा ही जय हो ॥१०॥

युवामनाथवत्सलौ प्रधानवाञ्छितप्रदौ
युवां हि नः परागतिः समस्तभावपूरकौ।
युवां हि नः परं धनं तपः फलं च मङ्गलं
युवां जयेतमन्वहं प्रियाप्रियौ! निरामयौ ॥११॥

हे सकल विकार रहित श्री प्रियाप्रियतम जू! आप दोनों सरकार अनाथ अर्थात् (अ=परमात्मा नाथ=स्वामी) जिन प्राणियोंके गुरु, पितु, मातु, बन्धु, मित्र, पुत्र, कलत्र (स्त्री), धन, धाम आदिक सर्वस्व आपही हैं, उन ज्ञान, कर्म उपासना आदि समस्त साधनोंके अभिमानसे रहित, आश्रितोंके वत्सल (अवगुणोंको न देखकर केवल हित करने वाले) हैं, मन चाहे वर दाताओंमें भी प्रधान अर्थात् तुल्य हैं, आप दोनों सरकार भक्तोंके समस्त भावोंको पूरा करने वाले, तथा हम सब परिकरकी परम रक्षा करने वाले हैं, एवं हमारी तपस्याका फल, हमारा मङ्गल, हमाराधन भी आप ही युगल सरकार हैं, अतः आप दोनों की सदा ही जय हो ॥११॥

श्रीशिव उवाच।

इमं श्रुत्वा स्तवं दिव्यं सरसं प्रेमतोषितौ।
च्युतां पदाब्जयोर्दीनां परिष्वज्येदमूचतुः ॥१२॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये! इस अनुराग युक्त दिव्य स्तवको सुनकर प्रेमसे प्रसन्न हो, अपने श्रीचरणोंमें दीन भावसे पड़ी हुई श्रीस्नेहपराजीको हृदयसे लगाकर श्रीयुगल सरकारजी बोले-१२

श्रीदम्पती ऊचतुः।

किं त्वया काङ्क्षितं भद्रे! सम्यक्कथय मा शुचः।
संकोचोऽस्तिवृथा सर्वं न चिरादेव लप्स्यसे ॥१३॥

हे कल्याणि! जो तुम चाहती हो वह सब तुमको शीघ्र ही मिलेगा, व्यर्थ सङ्कोच क्यों करती हो? अतः तुम क्या चाहती हो? पूर्णरूपसे कहो, चिन्ता मत करो ॥१३॥

श्रीशिव उवाच।

एवमाश्वासिता ताभ्यां स्वधर्ममनुचिन्त्य सा।
भक्त्या करपुटं बध्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥१४॥
श्रीचन्द्रकलया साक्षात्तथा श्रीपद्मगन्धया।
नोदिता नतदृष्टिश्च प्रेममग्नेदमब्रवीत् ॥१५॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिय! इस प्रकार श्रीयुगलप्रभुकी ओरसे आश्वासन पाकर वे श्रीस्नेहपराजी अपने कर्त्तव्य (आज्ञापालन) का भलीभाँति विचार कर, बारंबार श्रीयुगल-सरकारको प्रणाम करके दोनों हाथोंको जोड़कर, श्रीचन्द्रकलाजी और श्रीपद्मगन्धाजीका सङ्केत पाकर दृष्टिको नीचेकी ओर करती हुई वे प्रेममें मग्न हो युगलसरकार से इस प्रकार बोलीं–॥१४॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

कृतार्थाऽहं कृतार्थाऽहं कृतार्थाऽहं न संशयः।
यदि प्रीतौ मयि प्रेष्ठौ वरं दातुं समुद्यतौ ॥१६॥

हे श्रीप्रियाप्रियतमजू! यदि आप मुझपर प्रसन्न होकर वर देनेको उद्यत हुये हैं तो, मैं तीनों काल में कृतार्थ हूँ, मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥१६॥

यौ कोटिभुवनाधीशौ सच्चिदानन्दविग्रहौ।
तौ युवां हि मयि प्रीतौ सफलोऽर्थो न को मम ॥१७॥

जो करोड़ों भुवनोंके चक्रवर्ती (बादशाह) हैं, जिनका मङ्गलमयविग्रह सदा एकरस रहने वाला, चैतन्यस्वरूप, आनन्द (ब्रह्म) मय है, वे दोनों सरकार ही जब मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो, फिर मेरा कौन अब अर्थ पूरा होनेको शेष है? ॥१७॥

यौ च भूमण्डलाधारौ वेदैर्नेतीति कीर्त्तितौ।
तौ युवां स्थो मयि प्रीतौ सफलोऽर्थो न को मम ॥१८॥

जो सारे भूमण्डलके आधार भूत हैं, वेद भगवान् जिन्हें न इति न इति अर्थात् हमने जैसे निरूपण किया है, प्रभु ऐसे ही नहीं हैं, अपितु उससे भी विलक्षण हैं, उस से भी विलक्षण हैं ऐसा कहते हैं वे आप दोनो सरकार ही जब मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो, फिर अब मेरा कौन अर्थ पूरा होने को शेष रह गया? ॥१८॥

यथोरंशांशकलया सम्भूतं सचराचरम् ।
तौ युवां स्यो मयि प्रीतौ सफलोऽर्थो न को मम ॥१६॥

जिनके अंश महाविष्णु, उनके अंश भगवान् विष्णु, उनके कलास्वरूप श्रीब्रह्माजी, और उन के द्वारा यह चर अचर प्राणिमय समस्त विश्व उत्पन्न हुवा है, वे ही आप श्रीयुगलसरकार जब मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो, फिर अब कौन सा मेरा अर्थ सफल नहीं है ? ॥१६॥

ययो रमाशिवाधात्र्यो न गच्छन्ति प्रसन्नताम् ।
तौ युवां स्यो मयि प्रीतौ सफलोऽर्थो न को मम ॥२०॥

जिनको श्रीलक्ष्मीजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीब्रह्माणीजी भी प्रसन्न नहीं कर पातीं हैं, वे ही आप दोनों सरकार जब मेरेपर प्रसन्न हैं तो फिर मेरा अब कौनसा अर्थ सफल नहीं है ? ॥२०॥

यावदृश्यौ सुसिद्धानां मनोवाग्धीभिरप्यजौ ।
तौ युवां हि मयि प्रीतौ सफलोऽर्थो न को मम ॥२१॥

जो पूर्णसिद्धोंके भी मन, वाणी, बुद्धिके विषय-गोचर नहीं होते हैं, कभी भी जन्म न लेनेवाले वे आप दोनों सरकार ही जब मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो फिर मेरा कौनसा अर्थ अब पूरा होने को शेष है ? ॥२१॥

श्रीकिशोरि ! दयागारे ! प्राणनाथ ! दयानिधे !
किं न लब्धं मया ? सर्वं युवयोः प्रीतयोर्ननु ॥२२॥

हे दया-मन्दिर श्रीकिशोरीजू ! हे दयाके निधि श्रीप्राणनाथजू ! आप दोनो सरकारके प्रसन्न होनेपर आज मैंने क्या नहीं पाया ? अर्थात् सब कुछ ही पा लिया ॥२२॥

वाञ्छितं मनसा यन्मे युवाभ्यां ज्ञातमेव तत् ।
तथाऽऽज्ञां पुरस्कृत्य प्रवक्ष्ये रसवारिधी ॥२३॥

हे रससागर श्रीप्रियाप्रियतमजू ! मेरा मन जो चाहता है सो आपको ज्ञात ही है, तथापि आपकी आज्ञाको प्रधान मानकर उसे निवेदन करती हूँ ॥२३॥

गत्वा मदीयभवनं करुणार्द्रनेत्रौ पादारविन्दरजसा कुरुतं पवित्रम् ।
कामं त्विदं ह्यसुलभं मनसेप्सितं मे ऽन्येषां किशोरि ! रघुराज ! तथापि देयम् २४

हे करुणासे आर्द्र लोचन, श्रीयुगलसरकार ! मेरे भवन पधारकर अपने श्रीचरण कमलकी

धूलिसे उसे पवित्र करनेकी कृपा कीजिये ! हे श्रीकिशोरीजी ! हे रघुराज श्रीप्राणप्यारेजू ! यद्यपि यह मेरा मनोरथ पूर्ण होना अन्य प्राणियोंके लिये निःसन्देह दुर्लभ है, तथापि मुझ दासीके लिये इस ईप्सित वस्तुको प्रदान करना ही उचित है ॥२४॥

मन्ये मनोरथमिमं सुदुरापमेव ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि किं मनुष्यैः।
जातौ यया करुणया निमिसूर्यवंशे लभ्यस्तयैव किल चात्र न संशयो मे ॥२५॥

मैं मानती हूँ कि मेरा यह मनोरथ ब्रह्मादि-देव-श्रेष्ठोंके लिये भी विशेष दुर्लभ है, मनुष्योंके लिये तो बातही क्या ? परन्तु हे श्रीप्रियाप्रियतमञ्ज ! आप दोनों सरकारको, आपकी ही जिस निर्हेतुकी करुणाने निमि और सूर्य वंशमें प्रकट कर दिया है, वही आपकी करुणा मेरे लिये इस दुर्लभ मनोरथको भी सुलभ करेगी, इस विषयमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२५॥

श्रीशिव उवाच।

इति परमभिकाङ्क्षितं निवेद्य प्रणयत आत्मवती प्रियाप्रियाभ्याम्।
अतितरमृदुपादपङ्कजेषु व्यलुठदतीवसुभक्तियोगनम्रा ॥२६॥

इति त्रयोदशोऽध्यायः।

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! इस प्रकार प्रणय पूर्वक श्रीप्रियाप्रियतमजूसे अपने अभिलषित (चाहे हुये) वरको निवेदन करके, वे आत्मवती (श्रीयुगलसरकारको अपने हृदयमें स्थित कर चुकने वाली श्रीस्नेहपराजी) दोनों सरकारके अतिशय कोमल श्रीचरणकमलोंमें अतीव अनुराग युक्त होकर लोटने लगीं ॥२६॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

श्रीयुगलसरकारके "ऐसा ही होगा" इस वचनामृतको पान करके श्रीस्नेहपराजीका अपने विश्राम भवन प्रस्थान।

श्रीशिव उवाच।

एवमस्त्विति तामुक्त्वा प्रहृष्टौ दययान्वितौ।
स्वपाणिभ्यामुभौ तस्याः शिरः पस्पृशतुः स्वयम् ॥१॥

भगवान् शिवजी बोले हे प्रिये ! दयालु श्रीयुगल सरकार श्रीस्नेह पराजी पर प्रसन्न हो, उनसे स्वयं एवमस्तु (ऐसाही होगा यह) कहकर उनके शिर पर अपना कर-कमल फेरने लगे ॥१॥

गाढ़मालिङ्गनं दत्वा कृपादृष्ट्या विलोक्य च ।
हस्तच्छायागता ताभ्यां कृतकृत्या हि सा कृता ॥२॥

पुनः वे श्रीयुगलसरकार श्रीस्नेहपराजीको अपनी कृपापूर्ण दृष्टिसे अवलोकन करके तथा अच्छी तरहसे अपना आलिङ्गन सुख-प्रदान कर, अपने हाथोंकी छायामें लेकर उनको कृतकृत्य कर दिये ।२

पुनश्चन्द्रकला ताभ्यां मुख्ययूथेश्वरीश्वरी ।
प्रेरिता तत्र सर्वांश्च इदं प्रोवाच सादरम् ॥३॥

तत्पश्चात् मुख्य यूथेश्वरियों (हेमा क्षेमा वरारोहादिकों) पर भी शासन करने वाली श्रीचन्द्रकलाजी श्रीयुगल सरकारकी प्रेरणासे सबोंके प्रति आदर पूर्वक इस प्रकार बोलीं ॥३॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

सख्योऽद्य श्रीमती श्यामा जगदानन्दकारिणी ।
तोषिता गाढ़भावेन गन्त्री स्नेहपरालये ॥४॥

हे सखियो ! आज चर, अचर सभी प्राणियोंको आनन्दप्रदान करने वाली श्रीमती किशोरीजी श्रीस्नेहपराजीके महल पधारेंगी, क्योंकि वे उनके गाढ़ भावसे प्रसन्न हो गयी हैं ॥४॥

प्रीता परिजनैः सार्कं सप्रिया करुणानिधिः ।
अपराह्णे विशालाक्ष्यो नैका विदितमस्तु वः ॥५॥

हे विशाललोचनाओ ! करुणाकी निधि श्रीकिशोरीजी आज दिनके तीसरे पहर स्नेह पराजीके यहाँ अकेली ही नहीं अपितु (बल्कि) प्राण प्यारेके साथ साथ परिकरके सहित पधारेंगी, यह बात आप लोगोंको ज्ञात होनी चाहिए ॥५॥

श्रीशिव उवाच ।

तच्छ्रुत्वा मृगशावाक्ष्यो जयेत्यूचुर्मुहुर्मुहुः ।
पश्यन्त्यस्ता तयोर्वक्त्रं विह्वलत्वमुपाययुः ॥६॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे पार्वति ! श्रीचन्द्रकलाजीसे यह सूचना सुनकर मृगोंके बच्चोंके समान सुन्दर नेत्रवाली सभी सखियाँ, श्रीयुगल सरकारका बारं बार जयकार बोलने लगीं । पुनः दोनोंके मुख चन्द्रका दर्शन करती हुई विह्वल हो गयीं ॥६॥

ततः सर्वाः समाश्वस्ता निर्जग्मुर्मन्दिरात्ततः ।
ताभ्यां सार्द्धं सुविश्राम-भवनं प्रतिपेदिरे ॥७॥

तदनन्तर श्रीचन्द्रकलादि यूथेश्वरियोंके द्वारा आश्वासन पाकर वे सब सखियां दोनों सरकारके सहित उस भोजन कुञ्जसे निकली और सुन्दर विश्राम-सदनमें पहुचीं ॥७॥

नानामणिगणाकीर्णे नानारत्नोपशोभिते ।
सर्वर्तुसुखसंवेशे तप्तचामीकरप्रभे ॥८॥
अन्तर्द्वारैर्गवाक्षैश्च विशालामलदर्पणैः ।
मनोहरैस्तथा चित्रैः सर्वतः समलङ्कृते ॥९॥
मणयाकीर्णचतुष्प्रान्तैर्वितानैः परिशोभिते ।
सच्चिन्मये महारम्ये सर्वभोगसमन्विते ॥१०॥
विशालेन प्रभाढ्येन मनोदृष्टयपहारिणा ।
निःसरेणाति भव्येन चित्रितेन समश्चिते ॥११॥
वज्रसारकपाटैश्च नानारत्नचमत्कृतैः ।
सार्गले भावनागम्ये तस्मिंस्तौ भवनोत्तमे ॥१२॥

अनेक प्रकारकी मणि समूहोंसे परिपूर्ण, अनेक प्रकारके रत्नोंकी रचनासे सुशोभित, जिसमें शयन करना सभी ऋतुओंमें सुखप्रद, होता है, तपाये हुये सोनेके सरीखे प्रकाश युक्त, ॥८॥ भीतर चारो ओर जाली झरोखा (खिड़की), विशाल स्वच्छ दर्पण, एवंविविध प्रकारसे मनको हरण करनेवाले सुन्दर चित्रों (तसवीरों) से सजाये हुये, ॥९॥ झालरसे सुशोभित, चारो किनारों पर मणियोंसे युक्त वितानों (चँदोवों) से अत्यन्त शोभायमान, सदा एकरस रहनेवाले चैतन्यमय, विहारके परमयोग्य, सुखद, सभी आवश्यक सामग्रियों (चीजों) से युक्त, ॥१०॥ प्रकाश युक्त, विशाल, अनेक प्रकारकी चित्रकारी किये हुये, मन और दृष्टिको हरण करनेवाले, अति सुन्दर दरवाजोंसे युक्त ॥११॥ अनेक रङ्गोंके रत्नोंकी रचनासे चमकते हुये, वज्रके सारके समान अति सुदृढ़ (अत्यन्त मजबूत), अर्गला (किवाड़ोंको खुलनेसे रोकनेके लिये दीवालमें लगाई जानेवाली बड़ी) लगे हुये किवाड़ोंसे युक्त, भावनाके द्वारा ही प्राप्त होंने योग्य, उस उत्तम महलमें ॥१२॥

रत्नमाणिक्यपर्यङ्के कोमलास्तरणान्विते ।
शयानौ वीक्ष्य चक्षुर्भ्यां बभूवुः कीलिता इव ॥१३॥

रत्न खचित मणियोंके बने हुये कोमल बिछावनसे शोभायमान, पलङ्गपर श्रीयुगलसरकारको शयन किये हुये दर्शन करके, वे सखी कीली हुई अर्थात् मूर्तियों के समान हो गयीं ॥१३॥

समाश्वास्य समाज्ञप्ता विश्रामार्थमनिन्दिताः ।
पुनः प्राणाधिकाभ्यां ता मैथिल्या राघवेण च ॥१४॥

प्राणोंसे बढकर प्यारे श्रीयुगल सरकार श्रीमिथिलेशनन्दिनी व रघुनन्दनजीने सभीको सम्यक् प्रकारसे आश्वासन देकर विश्राम करनेके लिये आज्ञा प्रदानकी ॥१४॥

कृच्छ्रात्प्रणम्य तौ प्रेष्ठौ श्रीनिकुञ्जविहारिणौ ।
ययुः स्वं स्वं निकेतं ताः काश्चित्तत्रैव शिश्यिरे ॥१५॥

श्रीनिकुञ्जविहारिणीविहारी प्राणप्यारे युगलसरकारकी आज्ञाको स्वीकार कर बड़ी कठिनतासे वे अपने-अपने महल गयी और कुछ सखियोंने वहीं विश्राम किया ॥१५॥

साऽपि ताभ्यां समाज्ञप्ता नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
कृच्छ्रात्स्नेहपरा प्रागाच्चिन्तयन्ती च तौ गृहम् ॥१६॥

इति चतुर्दशोऽध्यायः ।

वे श्रीस्नेहपराजी दोनो सरकारकी आज्ञा पाकर बारंबार उन्हें नमस्कार कर, दोनोंको स्मरण करती हुई, बड़ी कठिनतासे अपने निवास महलको गयी ॥१६॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

"हमारे दोनों प्राणनाथ (श्रीसीतारामजी) मेरे भवनमें आज पधारेंगे"

इस बातको स्मरण करके श्रीस्नेहपराजीका प्रेम प्रलाप

श्रीशिव उवाच ।

ततस्तु संप्राप्य निवासमात्मनस्तयोः कृपां स्नेहपरा व्यचिन्तयत् ।
जहर्ष सा तौ मनसैव दण्डवत् प्रणम्य भूयो निजकृत्यमैक्षत ॥१॥

श्रीयुगल सरकारके विश्रामभवनसे वे श्रीस्नेहपराजी अपने निवास महलमें पहुँचकर, श्रीयुगल सरकारकी कृपाका चिन्तन करने लगीं, जिससे वे बहुत ही हर्षित मनहो श्रीयुगलसरकारको साष्टाङ्ग प्रणामकरके अपने और कर्त्तव्यका विचार करने लगीं ॥१॥

आहूय सर्वा निजकिङ्करीस्ताः सोवाच वाक्यं त्विदमादरेण ।
सत्कारकृत्यं भवतीभिरेव सम्पादितं द्रष्टुमहं समीहे ॥२॥

जिन्होंने श्रीयुगल सरकारके सत्कारका सब प्रबन्ध किया था, उन अपनी किङ्करियोंको बुलाकर वे आदर पूर्वक बोलीं—हे सखियों! आप लोगोंके द्वारा किये हुये कृत्यको मैं देखना चाहती हूँ ॥२॥

अद्यापराह्ले कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ।
ममालयं पुण्यचयेन सेव्यौ प्रफुल्लपङ्केरुहपत्रनेत्रौ ॥३॥

बड़े ही पुण्य सङ्गसे सेवनीय, खिले कमलपत्रके समान नेत्र वाले, श्रीनित्यविहारिणी विहारी, कृपालू युगलसरकार, कृपा करके आज तीसरे पहर मेरे घर पधारेंगे ॥३॥

प्रपन्नभृत्याम्बुजकाननार्कौ विदेहकाकुत्स्थकुलप्रदीपौ।
अद्यापराह्ले कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥४॥

शरणमें आये हुये सेवा-परायण भक्त रूपी कमल वनको सूर्यके समान प्रफुल्लित करने वाले व श्रीविदेह और काकुत्स्थ वंशको दीपकके सदृश प्रकाशित करने वाले वे नित्यविहारिणीविहारी, कृपालु श्रीयुगलसरकार, कृपा करके आज तीसरे पहर मेरे महलमें पधारेंगे ॥४॥

मनोहरस्मेरसुधाकरास्यौ दृगुत्सवौ सर्वचराचराणाम्।
अद्यापराह्ले कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥५॥

मनोहरण मुस्कान युक्त, चन्द्रमाके तुल्य, परम आह्लादप्रदायक श्रीमुखारविन्द वाले, सभी स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके नेत्रोंको उत्सवके सदृश सुख देने वाले, वे श्रीनित्यविहारिणी-विहारी कृपालु श्रीयुगलसरकार कृपा करके तीसरे पहर आज मेरे महलमें पधारेंगे ॥५॥

मुनीन्द्रवृन्देडितपुण्यकीर्ती सतां गती सेव्यतमावशेषैः।
अद्यापराह्ले कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥६॥

जिनकी पवित्र कीर्तिकी बड़ेसे बड़े मुनिराज भी स्तुति करते हैं, जो सन्तोंकी सब प्रकारसे रक्षा करने वाले हैं, सभी छोटोंसे छोटे और बड़ोंसे बड़ोंको जिनकी सेवा करना अत्यन्त आवश्यक है, वे हमारे श्रीनित्यविहारिणी विहारी कृपालु श्रीयुगलसरकार कृपा करके तीसरे पहर आज मेरे यहाँ अवश्य पधारेंगे ॥६॥

महार्हवस्त्राभरणाञ्चिताङ्गौ पयोदविद्युद्द्युतिपुञ्जकान्ती।
अद्यापराह्ले कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥७॥

बहु मूल्य वस्त्र और भूषणोंसे सजाये हुये जिनके श्रीअङ्ग हैं, मेघ और बिजलीकी द्युतिसमूहके

समान श्याम-गौर वर्णमय जिनके श्रीअङ्गकी कान्ति है वे श्रीनित्यविहारिणी विहारी कृपालू श्रीयुगलसरकार, कृपा करके आज तीसरे पहर मेरे यहाँ अवश्य पधारनेकी कृपा करेंगे ॥७॥

आदर्शसूक्ष्मामलकोमलाङ्गौ मन्दस्मितौ साञ्जनकञ्जनेत्रौ ।
आद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥८॥

जिनके मल रहित, सूक्ष्म ज्ञानस्वरूप कोमल अङ्ग, मुस्कान तथा अञ्जनसे आँजे हुये जिनके नेत्र कमल हैं, वे नित्यविहारिणी विहारी, कृपालू श्रीयुगलसरकार आज कृपाकरके तीसरे पहर मेरे महलमें आनेकी कृपा करेंगे ॥८॥

बिम्बाधरौ दाडिमचारुदन्तौ विशालभालौ मणिकुण्डलाढ्यौ ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥९॥

जिनके बिम्बा फलके समान लाल ओष्ठ और अधर हैं, अनारके दानोंके समान अत्यन्त सुन्दर जिनके दाँत हैं, विशाल भाल है, जो अपने सुन्दर कानोंमें मणियोंके कुण्डल धारण किये हुये हैं,वे श्रीनित्यविहारिणीविहारी कृपालु श्रीयुगलसरकार आज मेरे यहाँ दिनके तीसरे पहर तो, अवश्य ही पधारेंगे ॥९॥

मधुव्रतस्निग्धसुकुन्तलौ श्री-मन्दीकृतानङ्गरतिव्रजौ च ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥१०॥

भौंरोंके सरीखे काले घुंघुराले सुन्दर जिनके बाल हैं, जो अपने श्रीअङ्गकी शोभासे रति और काम-समूहोंको भी तुच्छ कररहे हैं, वे श्रीनित्यविहारिणी-विहारी, कृपालू श्रीयुगलसरकार आज कृपा करके मेरे यहाँ तीसरे पहर अवश्य आयेंगे ॥१०॥

तिरस्कृतानन्तसुधांशुकान्ती सरोजहस्तौ मृदुलाम्बुजाङ्घ्री ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥११॥

अपने श्रीअङ्गके आह्लाद-प्रदायक प्रकाशसे जो अनन्त चन्द्रमाकी कान्तिको लज्जित कररहे हैं, जो प्रायः अपने करकमलोंमें कमलको धारण किये रहते हैं, कमलके समान ही कोमल जिनके श्रीचरण हैं, वे श्रीनित्यविहारिणी-विहारी, कृपालु श्रीयुगलसरकार, कृपाकरके आज तीसरे पहर मेरे यहाँ अवश्य पधारेंगे ॥११॥

ययोर्विनोपासनया न मुक्तिः संसारदावानलतीव्रतापात् ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥१२॥

प्राणियोंको अन्य विविध साधनोंके करनेपर भी जिनको बिना भजे, जन्म मरणरूपी-दावानलकी प्रचण्ड जलनसे छुटकारा नहीं मिलता, वे कृपालु श्रीनित्यविहारिणी–विहारी श्रीयुगलसरकार कृपा-करके आज तीसरे पहर मेरे यहाँ अवश्य आवेंगे ॥१२॥

व्रतैर्न दानैः क्रतुभिस्तपोभिः दृश्याव्रृते यौ किल भक्तियोगात् ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥१३॥

विना भक्ति–योगको अपनाये व्रत, दान, यज्ञ, तप आदिकोंके द्वारा भी जिनका दर्शन प्राप्त नहीं होता, वे नित्यविहारिणी विहारी श्रीयुगलसरकार कृपाकरके आज तीसरे पहर मेरे यहाँ पधारेंगे १३

पुंसां ययोर्विस्मरणाधिका नो कापीरिता वै महती विनष्टिः ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥१४॥

जिनको भूलजानेसे अधिक प्राणियोंकी महती क्षति (सबसे बढकर हानि) और कोई भी नहीं कही गयी है, वे श्रीनित्यविहारिणी विहारी कृपालु श्रीयुगलसरकार कृपापूर्वक आज मेरे यहाँ तीसरे पहर अवश्य पधारेंगे ॥१४॥

करिष्यतः पावनमद्य कुञ्जं मदीयमेवेति सुनिश्चयो मे ।
अहं तयोः पादसरोजगन्धमाघ्राय हृष्यामि यथा षडङ्घ्रिः ॥१५॥

मुझे पूर्ण निश्चय है कि, वे श्रीकृपालु युगलसरकार मेरी कुञ्जको अवश्यही अपने श्रीचरणरजसे आज पवित्र करेंगे, आज मैं श्रीयुगल प्रभुके श्रीचरणकमलकी सुगन्धको सूंघकर वैसेही सुखी होऊँगी जैसे कमलके सुगन्धोको ग्रहण करके भौंरा हर्षित होता है ॥१५॥

पितामहो नैव हरिर्गदाभृच्छम्भुस्त्रिनेत्रो न च पत्न्य एषाम् ।
प्राप्ताः प्रसादं हि यमद्वयं तं प्राप्स्याम्यहं नूनमिहाद्य कामम् ॥१६॥

ब्रह्मा, गदाधारी विष्णु, त्रिलोचन शिव तथा इनकी पत्नियाँ सावित्री, लक्ष्मी, पार्वतीजी आदि श्रीयुगलसरकारके जिस उपमा रहित प्रसादको निश्चय ही प्राप्त नहीं कर सकीं, उसीको अपनी इच्छा-नुसार आज मैं निश्चय ही प्राप्त करूँगी ॥१६॥

इत्येवमुक्त्वा प्रमदातिरेकान्मुमोह सा वै कमलायताक्षी ।
प्राबोधयद्बुद्धिमती तदा तां कृताञ्जलिर्भूय उवाच नम्रा ॥१७॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिये ! वे कमलपत्रके समान विशाल लोचना श्रीस्नेहपराजी, अपने सखियोंसे इस प्रकार कहकर, हृदयमें विशेष आनन्दकी बाढ़ आजानेके कारण मूर्छित होगयीं, तब

उन्हें बुद्धिमती सखीनें सावधान कराया, फिर वह अपने सर्वाङ्गको भुलाये हुये हाथ जोड़, कर बोली ॥१७॥

श्रीबुद्धिमत्युवाच।

धन्या सुचित्रा जननी तवासौ जाताऽसि यस्यां कुलदीपरूपे !
यशध्वजस्ते जनकोऽपि धन्यो यस्यात्मजा त्वं कथिताऽसि लोके ॥१८॥

हे कुलको दीपकके समान प्रकाश युक्त करनेवाली ! जिनसे आप प्रकट हुई हैं, वे आपकी माता श्रीसुचित्राजी धन्य हैं, तथा जिनकी आप लोकमें पुत्री कही जाती हैं, वे आपके पिता श्रीयश ध्वजजी महाराज भी धन्य हैं ॥१८॥

सिद्धाऽसि पुण्याऽसि कृतव्रताऽसि यदीदृशी भक्तिरहैतुकी ते ।
तयोः पदाब्जेषु महाजनेष्टा भाग्यं त्वदीयं मुनिशंसनीयम् ॥१९॥

आपके सब साधन सफल है, आप पुण्यकी तो स्वरूप ही हैं, आप सभी व्रतोंको कर चुकी, क्योंकि इसप्रकारकी निर्हेतुकी प्रेमाभक्तिकी प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े तत्त्वदर्शी, ब्रह्मोपासक, मुनिवृन्द भी तरसते हैं, वह आपकी निस्स्वार्थ भक्ति श्रीयुगलसरकारके श्रीचरणकमलोंमें स्वाभाविक है, अत एव आपका सौभाग्य मुनियोंके द्वारा भी प्रशंसा करनेके योग्य है ॥१९॥

धन्या वयं पुण्यवतां वरिष्ठा याभिश्च लब्धा त्वममोघभावा ।
सुस्वामिनी पद्मदलायताक्षी कारुण्यपात्रं जनकात्मजायाः ॥२०॥

जिन (हमलोगों) की आप जैसी श्रीकिशोरीजीकी कृपापात्र, सिद्धभाववाली, कमलदल लोचना, सुन्दर (युगलप्रेम परिपूर्ण) स्वामिनी मिली हैं, वे पुण्यवतियों में श्रेष्ठ, हमभी धन्य हैं ॥२०॥

श्रीशिव उवाच।

एतावदुक्त्वा वचनं विनीतं चार्णं विमुह्याशु च लब्धसञ्ज्ञा ।
प्रादर्शयत्कृत्यमसौ तदानीं तस्यै तत सुष्ठुतया कृतं यत् ॥२१॥

भगवान् शिवजी बोले—हे प्रिये ! इस प्रकार बुद्धिमती नामकी सखी श्रीस्नेहपरानीसे विनीत वचन कहकर थोड़ीदेर प्रेममूर्च्छासे प्राप्त हुई, फिर सावधान हो श्रीयुगल सरकारके सत्कारार्थ अच्छीतरह किये हुये अपने सारेकृत्य (प्रबन्ध) को उन्हें अवलोकन कराया ॥२१॥

तुतोष सोद्वीक्ष्य विमुच्य कण्ठान्मणिस्रजं स्वां प्रददौ हि तस्यै।
हर्षस्तु तस्या न तयैव वाच्यस्तदोदितो यो हृदये विशुद्धे ॥२२॥

इति पञ्चदशोऽध्याय।

श्रीस्नेहपराजीने अपनी सखियोंके द्वारा किये हुये श्रीयुगलसरकारके सत्कार प्रबन्धको देखकर प्रसन्न होकर अपने गलेसे मणिमयी माला निकालकर बुद्धिमतीजीको देदी, हे प्रिये! श्रीस्नेहपराजीके निर्मल हृदयमें श्रीयुगल सरकारके उस सत्कार, प्रबन्धका दर्शन करके उस समय जो सुख उदय हुआ, उसे कहनेको वे (श्रीस्नेहपराजी) स्वयं भी असमर्थ थीं, तब दूसरा उस हर्षको कथन करनेके लिये कैसे समर्थ हो सकता है? अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं ॥२२॥

अथ षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

श्रीसीतारामजीका श्रीस्नेहपराके भवन पधारना, तथा उसके द्वारा उनकी भोजनपर्यन्त पूजाका वर्णन।

श्रीशिव उवाच।

तत्रत्तराह्ने कमलायताक्ष्यः सख्यस्तयोः स्वापगृहाङ्गणे च।
आगत्य गानं मधुरस्वरेण चक्रुर्यदाकर्ण्य विहीनतन्द्रौ ॥१॥
उत्थाय दिव्यांशुकभूषणाढ्यौ स्थितौ यदाऽन्योन्यमुपेत्य कान्तौ।
सख्यस्तदैवाचमनं प्रियाभ्यामाचारयामासतुरादरेण ॥२॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये! वहाँ श्रीयुगलसरकारकी सखियाँ दिवा-शयन भवनके आँगनमें पहुँचकर, मधुरस्वरसे उत्थापनके पद गाने लगीं, जिनको सुनकर श्रीयुगलसरकार आलस्य रहित हो दिव्य वस्त्र भूषणोंसे विभूषित हो एक दूसरेसे मिले हुये बैठ गये, तब सखियों ने दोनों सरकारको आदरपूर्वक आचमन कर वाया ॥१॥२॥

तौ मोहनावादतुरल्पभक्ष्यमन्योऽन्यपूर्णेन्दुमुखे प्रदाय।
पुनस्तु वीटीं रसिकाधिराजौ नीराजितौ तर्हि मिथः प्रदिश्य ॥३॥

सभीके चित्तको मुग्ध कर लेने वाले वे रसिकाधिराज (भक्तोंके शासनमें रहने वाले) दोनों सरकार, एक दूसरेके पूर्णचन्द्र समान मुखमें देकर उत्थापन भोग अरोगते हुये, तदनन्तर पानके

बीड़े परस्पर प्रदान करके स्वयं पाते हुये, उस समय सखियोंने अपने प्राणप्यारे दोनों सरकार (श्रीसीतारामजी) महाराजकी आरती की ॥३॥

वक्त्रश्रियं दर्पणके विचित्रां सम्प्रेक्ष्य तौ दृष्टिमतां मनोज्ञौ ।
मिथःप्रियौ पाणिसुशोभितांसावुत्सृज्य पर्यङ्कमनन्तकीर्ती ॥४॥
संप्रेष्य सख्यौ सुभगामनोज्ञे पूर्वं सुचित्रादुहितुः सकाशम् ।
धैर्याय तस्याः सुमनोहराक्षौ लोकाभिरामौ जगदेकबन्धू ॥५॥
समं सखीभिर्गजगामिनीभिः सर्वाभिरानन्दमहानिधाने ।
प्रजग्मतुः स्नेहपरानिवासं विमानमारुह्य मनोजवं स्वम् ॥६॥

नेत्रवालोंके मनको हरण करनेवाले वे दोनों अनन्तकीर्ति, श्रीयुगलसरकार दर्पण (आयना) में आश्चर्यमयी अपनी मुख शोभाका दर्शन करके, परस्पर एक दूसरेके कन्धे पर हस्त-कमल रखते हुये पलङ्गको छोड़कर ॥४॥ सारे विश्वके उपमा रहित हितकारी, सभी प्राणियोंको आनन्दप्रदान करनेवाले, भलीभाँतिसे मन-हरण-नयन वाले दोनों श्रीप्राणप्यारे सरकार, श्रीसुभगाजी श्रीमनोज्ञाजी नामकी दो सखियोंको, श्रीसुचित्रानन्दिनी (स्नेहपरा) जीके पास उनके धीरज बधानेके लिये पहले भेजकर ॥५॥ मनके समान शीघ्र चलने वाले मनोजवनामके विमानमें बैठकर सभी गजगामिनी सखियोंके साथ वे श्रीस्नेहपराजीके महल पधारे ॥६॥

ताभ्यां प्रबुध्यागमनं कुजायाः सवल्लभाया द्रुतमद्रवत्सा ।
सुस्वागतार्थं सहिता सखीभिः समातुरा दर्शनकाङ्क्षया च ॥७॥

महलसे गयी उन दोनों सखियोंके द्वारा प्राणप्यारेके सहित भूमिनन्दिनी श्रीकिशोरीजीका आगमन होरहा जानकर, दर्शनोंकी इच्छासे वे श्रीस्नेहपराजी अपनी सखियोंके सहित सम्यक् प्रकारसे आतुर हो, उनका सुन्दर स्वागत करनेके लिये तुरत दौड़ीं ॥७॥

दृष्ट्वा तदाकाशगतं विमानं मनोजवं विद्युदिवप्रदीप्तम् ।
समावृतं कोटिसहस्रयानैर्हर्षातिरेकादपतद्धरण्याम् ॥८॥

उस समय बिजुली समूहके समान प्रकाशमान, सहस्रों करोड़ अन्य विमानोंसे घिरे हुये आकाशमें श्रीयुगलसरकारके विमानका दर्शन करके हर्षकी अधिकताके कारण श्रीस्नेहपराजी पृथ्वीमें गिर गयीं अर्थात् मूर्छित हो गयीं ॥८॥

दृष्ट्वेदृशीं प्रेमदशां तदीयामप्रीयत श्रीमिथिलेन्द्रपुत्री ।
सवल्लभोत्तीर्य ततो विमानादालिङ्गयामास च सानुरागम् ॥९॥

श्रीस्नेहपराजीकी इस प्रकारकी प्रेमदशा देखकर श्रीमिथिलेशनन्दिनीजी प्रसन्न हो कर, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित विमानसे उतर कर उन्हें प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया ॥९॥

आसाद्य साऽऽलिङ्गनजातशातं पपात पादेषु च साश्रुनेत्रा ।
विहीनसञ्ज्ञेव पुनश्च बुद्ध्वा दृष्ट्वाऽऽत्मनाथाविदमाह वाक्यम् ॥१०॥

वे श्रीस्नेहपराजी आलिङ्गन-जन्य सुखको पाकर सजलनेत्र हो, श्रीयुगलचरणकमलोंमें मूर्च्छित सी गिर पड़ी। पुनः सावधान हो अपने युगल प्राणनाथ (श्रीसीताराम) जीका दर्शन करके यह वचन बोलीं ॥१०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सुस्वागतं वां करुणानिधाने! प्रपन्नकल्पद्रुमपादपद्मौ!
प्रोत्फुल्लचार्वम्बुजलोचनाभ्यां प्रियाप्रियाभ्यां मधुरस्मिताभ्याम् ॥११॥

हे करुणानिधान! हे आश्रितोंके लिये कल्पवृक्ष तुल्य श्रीचरणकमल! विकसित कमलके समान सुन्दर लोचन, मधुर मुस्कानवाले, आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूका मैं स्वागत करती हूँ ॥११॥

नमोऽस्तु ते स्वामिनि! सर्वदायै नमः प्रियायास्तु च तेऽम्बुजाक्ष!
नमः किशोर्यै जनकात्मजायै नरेन्द्रपुत्राय नमः प्रियाय ॥१२॥

हे श्रीस्वामिनीजू! भक्तोंको सब कुछ प्रदान करने वाली, आपके लिये मैं नमस्कार करती हूँ, हे कमल लोचन! आप प्यारे जूके लिये मेरा नमस्कार है। आप श्रीजनक दुलारी श्रीकिशोरीजूके लिये मेरा नमस्कार है, हे राजकुमार प्यारेजू! आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥१२॥

अनन्त राकेशनिभाननायै नमो नमस्तेऽम्बुजलोचनाय।
सौदामिनीकोटिसहस्रदीप्त्यै नमोऽस्तु नीलाश्ममहाप्रभाय ॥१३॥

अनन्त चन्द्रके समान मुखवाली श्रीकिशोरीके लिये नमस्कार है, कमललोचन प्यारेके लिये मैं नमस्कार करती हूँ, करोड़ों हजार बिजलीके समान कान्ति वाली तथा नील मणिके तुल्य महाप्रभा वाले आप दोनों सरकारके लिये मेरा नमस्कार है ॥१३॥

नमोऽस्तु ते प्रेमसुधार्णवायै रसस्वरूपाय नमोऽस्तु तुभ्यम्।
नमः कृपाक्षान्तिसुविग्रहायै कारुण्यरूपाय नमः प्रियाय ॥१४॥

प्रेमा मृत सागरा (हे श्रीकिशोरीजी !) आपके लिये मेरा नमस्कार है, रसके स्वरूप प्राणप्यारेजू ! आपके लिये मैं नमस्कार करती हूँ । कृपा और चमाकी सुन्दर मूर्त्ति श्रीस्वामिनीजू आपके लिये मेरा नमस्कार है, हे करुणाकी मूर्त्ति प्यारेजू (आप) केलिये मेरा नमस्कार है ॥१४॥

नमोऽस्तु ते रत्यधिकप्रभायै नमोऽस्तु कोटिस्मरसुन्दराय ।
असङ्ख्यविद्युच्चयचन्द्रिकायै नमोऽस्त्वनन्तार्ककिरीटिने ते ॥१५॥

आप रतिसे भी अधिक अनन्त गुणा सौन्दर्य सम्पन्ना ह, अतः आपके लिये मैं नमस्कार करती हूँ, करोडों कामके समान सुन्दर (प्यारेजू ! आप) के लिये मेरा नमस्कार है । असंख्य विजली समूहके सम प्रकाश मान जिनकी चन्द्रिका है उन आप (श्रीकिशोरीजीके) लिये मेरा नमस्कार है, अनन्त सूर्य सदृश प्रकाशमान जिनका किरीट है, उन आप प्यारेजूके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ॥१५॥

नमोऽस्तु दिव्याम्बरभूषणाभ्यां पाथोजपत्रायतलोचनाभ्याम् ।
नित्यं युवाभ्यां दयिताप्रियाभ्यां लावण्यवात्सल्यदयानिधिभ्याम् ॥१६॥

जिनके वस्त्र और भूषण सब दिव्य ह, कमलपुष्पके दलके समान जिनके विशाल नयन हैं, उन सौन्दर्य, वात्सल्य, और दयाके निधि आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये मेरा नित्य नमस्कार है ॥१६॥

वैदेहकाकुत्स्थकुलोद्भवाभ्यां विद्युत्पयोदद्युतिमोहनाभ्याम् ।
तिरस्कृतानन्तरतिस्मराभ्यां नमोऽस्तु वां लोकमहेश्वराभ्याम् ॥१७॥

श्रीविदेह व काकुत्स्थ वंशमें प्रकट हुये, विजली और मेघकी कान्तिको श्रीअङ्गकी कान्तिसे आश्चर्ययुक्त करने वाले, अनन्तरति और कामको अपनी सुन्दरतासे अभिमान रहित करने वाले, समस्त लोकोंके सबसे बडे स्वामी हे श्रीयुगल सरकार ! आप दोनोंके लिये मैं नमस्कार करती हूँ॥१७॥

आगच्छतं प्रेष्ठतमौ ! स्वदास्या निवेशनं फुल्लसरोजनेत्रौ !
पादाम्बुजैः पावयत दयालू ! सेत्येवमुक्त्वा न्यपतत्पदाब्जे ॥१८॥

हे विकसित कमल नयन ! हे प्राणाधिक प्यारेजू ! अपनी दासीके महल पधारिये और इसे अपने श्रीचरण कमलोंसे पवित्र कीजिये । भगवान श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! वे श्रीस्नेह पराजी इस प्रकार अपनी प्रार्थना निवेदन करके श्रीयुगल सरकारके श्रीचरणकमलोंमें गिर पड़ीं ॥१८॥

मय्येधते प्रत्यहमेव दिष्ट्या प्रीतिर्यथा ते सितपक्षचन्द्रः ।
इत्युचरन्ती क्षितिजा कराभ्यां पस्पर्श तस्याः शिर आदृताया: ॥१६॥

श्रीकिशोरीजी आदरके साथ बोलीं–हे स्नेहपरे ! "सौभाग्य वश मेरे प्रति तुम्हारी प्रीति शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान प्रतिदिन ही बढ़ रही है"। इस तरह कहती हुई अवनिकुमारी श्रीकिशोरीजी, उनके शिरको अपने करकमलोंसे सहलाने लगीं ॥१९॥

मुदाप्लुता गानसुनृत्यवाद्यैः छत्राश्रितौ पुष्पसुवर्षणैः सा ।
नत्वाऽनयत्सध्वजचामरैस्तौ विभूषितावश्वेभविमानसङ्घैः ॥२०॥

श्रीकिशोरीजीके करकमलका स्पर्श पानेके कारण आनन्दमें डूबी हुई, श्रीस्नेहपराजी छत्रसे सुशोभित उन श्रीयुगल सरकारको प्रणाम करके नृत्य, गान, वाद्यके सहित; ध्वज चँवर आदिसे अलङ्कृत, अश्व, गजयान-वृन्दके सहित, फूलोंकी सुन्दर वर्षा पूर्वक अपने महलमें ले गयीं ॥२०॥

प्रियौ निकेतान्तिकमागतौ तौ नीराज्य भक्त्या परया तथैव ।
गृहान्तरे रत्नमणिक्षितावानीतौ दयालू महताऽऽदरेण ॥२१॥

महलके समीप श्रीयुगल प्राणप्यारे, दयालू सरकार श्रीसीतारामजीके पहुँचनेपर श्रीस्नेहपराजी परम श्रद्धापूर्वक आरती करके उन्हें अत्यन्त आदर समन्वित सुन्दर मणिमय भूमिवाले अपने महलके भीतर ले गयीं ॥२१॥

सुखावहे मौक्तिकमण्डपे तौ निवेशितौ चित्रितरत्नपीठे ।
महार्हदिव्यास्तरणांशुकाढ्ये सुवासिते नूतनपुष्पगन्धैः ॥२२॥

वहाँ उन दोनों सरकारोंको सुखप्रद, मोतियोंके बने हुये मण्डपमें अनेक प्रकारकी चित्रकारीसे युक्त, बहुमूल्य-दिव्य-सिंहासनसे सजाये गये, नवीन पुष्पगन्धसे युक्त, रत्नमय सिंहासन पर विराजमान किया ॥२२॥

सौवर्णपीठेषु सखीगणाश्च यथोचितेष्वेव निवेशितास्ताः ।
सत्कारहेतोरमिता वयस्या नियोजितास्तत्र तथैव तासाम् ॥२३॥

पुनः उन समस्त सखियोंको सोनेकी बनी हुई यथायोग्य चौकियों पर बैठाकर उनके सत्कारके लिये असङ्ख्य सखियोंको नियुक्त किया ॥२३॥

मुख्यालिभिः स्नेहपरा समेता सेवां तयोः सा स्वयमाचरन्ती ।
हर्षं गता यं खलु सा समेतं वक्तुं न शक्तो द्विसहस्रजिह्वः ॥२४॥

मुख्य सखियोंके सहित उन्होंने स्वयं श्रीयुगलसरकारकी सेवा करती हुई जिस सुखको प्राप्त किया, उस सुखको बखाननेके लिये दो हजार-जिह्वा वाले (शेषजी) भी असमर्थ हैं ॥२४॥

विष्टभ्य साऽऽत्मानमथात्मना द्रुतं यथा विधानं ससमर्चनस्पृहा ।
उवाच तां प्रेमरसाप्लुताशया सवल्लभां श्रीजनकेश्वरात्मजाम् ॥२५॥

इसके बाद-विधि पूर्वक पूजन करनेकी इच्छासे युक्त, प्रेम रसमें भीगे हुये हृदय वाली वे श्रीस्नेहपराजी, अपने हृदयको शीघ्र सावधान करके प्राणप्यारेके सहित उन श्रीजनकराज किशोरी-जीसे बोली-॥२५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

दत्तं मया पाद्यमिदं पवित्रं शामाब्जदूर्वादियुतं मनोज्ञम् ।
गृहाण कञ्जायतचारुनेत्रे ! सवल्लभे ! स्वामिनि ! मे कृपातः ॥२६॥

हे कमलसदृश विशाललोचने ! हे स्वामिनीजू ! सावाँ, कमल, दूब आदिसे युक्त, मनोहर, पवित्र इस मेरे द्वारा अर्पण किये हुये इस पाद्य (पाव धोनें योग्य जल) को आप श्रीप्राण-प्यारेजूके सहित केवल अपनी कृपासे ग्रहण करें ॥२६॥

नानासुदिव्यौषधिसारयुक्तं सुदिव्यसौगन्धविमिश्रितं च ।
युतं तुलस्या कुसुमैश्च दर्भैरर्घ्यं गृहाणेदमथार्पितं मे ॥२७॥

अनेक प्रकारकी सुन्दर दिव्य औषधियोंके सारसे युक्त, दिव्यसुगन्ध मिले हुये तुलसीके सहित, पुष्प और दर्भ (कुश) से युक्त मेरे द्वारा अर्पण किये हुये अर्घ्य (हस्त प्रक्षालन योग्य जल)को आप स्वीकार कीजिये ॥२७॥

अनेकगन्धैश्च सुवासितं च दिव्यं सरय्वाः सरितः सुशीतम् ।
आचम्यतां वारि करान्तचारि प्रियेण साकं सरसीरुहास्ये ! ॥२८॥

हे कमलमुखि ! श्रीस्वामिनीजू ! अनेक प्रकार सुगन्ध मिलाये हुये, सुन्दर करमें शोभित श्रीसरयूजीके दिव्य, सुशीतल जलको प्राणप्यारेजूके सहित आप आचमन कीजिये ॥२८॥

नमोऽस्तु ते श्रीजनकात्मजायै सवल्लभायाखिलेष्टदायै ।
गृहाण चेमं मधुपर्कमार्ये ह्रियारि ! वात्सल्यवती सुरुच्यम् ॥२९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आश्रितोंके सभी मनोरथोंको प्रदान करने वाली, प्राणप्यारेजूके सहित आप श्रीजनकदुलारीजूके लिये मेरा नमस्कार है, हे वात्सल्यनदीजू ! आप इस रुचिकर, श्रेष्ठ मधुपर्कको ग्रहण कीजिये ॥२६॥

पयोदधिक्षौद्रसिताज्ययोजनं विधाय पञ्चामृतमर्पितं मया ।
किशोरि ! कारुण्यरसाप्लुताशये ! प्रगृह्यतामार्यसुतेन च त्वया ॥३०॥

हे कारुण्यरसनिमग्न हृदये ! हे श्रीकिशोरीजू ! दूध, दही, मधु, शक्कर, घृतको एकमें मिला कर मेरे द्वारा समर्पण किये हुये इस पञ्चामृतको, प्राणप्यारेजूके सहित आप स्वीकार कीजिये ॥३०॥

अशेषतीर्थाहृतदिव्यतोयं समस्त मुख्यौषधिमिश्रितं च ।
सहार्यपुत्रेण नतिप्रतुष्टे ! निमज्जनार्थं कृपया गृहाण ॥३१॥

हे प्रणाम मात्रसे प्रसन्न होने वाली श्रीकिशोरीजी ! समस्त तीर्थोंसे लाये गये सम्पूर्ण मुख्य पुष्टिकारक औषधियोंसे युक्त किये हुये, इस दिव्य जलको श्रीप्राणप्यारेजूके सहित स्नानके लिये आप कृपा करके स्वीकार कीजिये ॥३१॥

सुकोमलस्निग्धनवीनपीनाङ्गप्रोञ्छनं वास इदं प्रदत्तम् ।
ऊरीकुरु प्राणधनेन साकं जयोर्मिलेशाग्रजपट्टकान्ते ! ॥३२॥

हे ऊर्मिलावल्लभ (श्रीलक्ष्मणलालजू) के अग्रज (बड़े भाई) प्राणप्यारे श्रीरामजू की पट्टकान्ते (पटरानी) श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो, प्राणधनजूके सहित मेरे समर्पित किये हुये इस सुन्दर, कोमल, चिक्कण नवीन मोटे, अङ्ग, प्रोञ्छनवस्त्र (तौलिया) को स्वीकार कीजिये ॥३२॥

नवाम्बराणीह सुचित्रितानि नित्यामलान्यद्भुतभान्वितानि ।
भक्त्यार्पितान्यार्यसुतेन साकं श्रीस्वामिनि ! स्वीकुरु भावतुष्टे ! ॥३३॥

केवल प्राणियोंके विशुद्ध, दृढ़भावसे ही प्रसन्न होने वाली ! हे श्रीस्वामिनीजू ! मेरे द्वारा श्रद्धा पूर्वक समर्पित, सुन्दर, अनेक प्रकारकी चित्रकारीसे युक्त, सदा नवीन रहने वाले इन वस्त्रोंको श्रीप्राणप्रियतमजूके सहित आप स्वीकार कीजिये ॥३३॥

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं सौवर्णवर्णं रघुराजसूनो ! ।
दत्तं मया स्वीकुरु वारिजाक्ष ! सवल्लभायास्तु नमो नमस्ते ॥३४॥

हे कमललोचन ! हे श्रीरघुराजसूनो ! (श्रीरघु महाराजके वंशजोंके राजा श्रीदशरथजी महाराजके लाडले !) श्रीप्रियाजूके सहित आपके लिये मेरा बार बार नमस्कार है मेरे द्वारा

समर्पित किये हुए सुवर्णतारके सदृश रङ्गवाले परमपवित्र इस यज्ञोपवीत (जनेऊ) को आप स्वीकार कीजिये ॥३४॥

चूडामणिं तालदलं सुचन्द्रिकां ललाटिकां दीप्तिमतीं च कुण्डले ।
ग्रैवेयकं श्रीनिमिवंशनन्दिनि ! प्रगृह्यतामम्बुजपत्रलोचने ! ॥३५॥

हे श्रीनिमिवंश नन्दिनीजू ! हे कमलदललोचने श्रीस्वामिनीजू ! चूडामणि, कानके भूषण, सुन्दर चन्द्रिका, प्रकाश युक्त ललाट-भूषण, (पातफीणी) और कुण्डल, गोप (कण्ठा) को आप ग्रहण कीजिये ॥३५॥

आवापकं रत्नचमत्कृतैर्नवं केयूरयुग्मं मणिमण्डितोर्मिकाम् ।
मनोहरे कङ्कणे ऊर्जितप्रभे कलापपादाङ्गदकिङ्किणीस्तथा ॥३६॥

अनेक प्रकारके रत्नोंसे चमकती हुई चूड़ियोंके सहित नवीन बाजूबन्द, मणि जटित अँगूठी, दिव्य प्रकाशमय मनोहर कंगन, पच्चीस लड़की करधनी, नूपुर (पैंजनी) घुंघुरू तथा-॥३६॥

सर्वाङ्गदेशस्य विभूषणानि गृहीष्व चान्यान्यपि मे ऽर्पितानि ।
सौभाग्यमेवं तु कुतः पुनः स्यात् किशोरि ! दास्याश्चरणाब्जयोस्ते ॥३७॥

और भी सर्वाङ्ग देशके मेरे समर्पण किये हुये आभूषणोंको आप ग्रहण कीजिये, क्योंकि हे श्रीकिशोरीजी ! आपके श्रीचरण कमलोंकी सेवाके लिये दासीको फिर ऐसा सौभाग्य कहाँ मिल सकेगा ? ॥३७॥

गोपुच्छधेनुस्तनमन्दरांश्च समाणवं गुच्छमथार्द्धहारम् ।
रश्मिं कलापेन युतं च देवच्छन्दं सहाङ्गीकुरु वल्लभेन ॥३८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! २, ४, ८, १६, ३२, ६४ और ३६ के सहित ५६, १०० लड़ वाले हारोंको श्रीप्यारेजूके सहित आप स्वीकार कीजिये ॥३८॥

किरीटनासामणिकुण्डलैः सह ग्रैवेयकं कौस्तुभमङ्गदे शुभे ।
सुकङ्कणे नूपुरयुग्ममूर्मिकां काञ्चीं च गृह्णीष्व ममार्यनन्दन ! ॥३९॥

हे मेरे प्राणनाथजू ! किरीट नासामणि कुण्डलोंके सहित गोप, कौस्तुभमणि, बाजूबन्द, सुन्दर कङ्कन, नूपुर, अंगूठी, एक लड़की करधनीको आप कृपा करके स्वीकार कीजिये ॥३९॥

छन्दद्वयं वै विजयेन्द्रसञ्ज्ञं हारं सुरच्छन्दमथार्धहारम् ।
दिव्यार्द्धरश्मिं च तथैव गुच्छं समाणवं श्रेष्ठ! गृहाण मत्तः ॥४०॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! इन्द्रच्छन्द (१००८ लड़ी युक्त) हार, विजयच्छन्द (५०४ लड़ियोंका) हार नामके दो, हार और (१०८ लड़ीका) हार, देवच्छन्द (१००लड़ीका) अर्धहार (६४ लड़ीका) तथा अर्द्ध रश्मि, (५४) गुच्छ, (३२) माणव (१६ लड़ी वाले हार)को मुझसे स्वीकार करें ॥४०॥

अप्राकृतं दिव्यमिमं सुगन्धं मनोहरं प्राणवतां दयाब्धे !
सवल्लभा श्रीनिमिवंशभूपे ! सुरोचितं मोदकरं गृहाण ॥४१॥

हे दयासागरे ! हे निमिवंश भूपरूपे ! श्रीकिशोरीजी ! प्राणेन्द्रिय वालोंके मनको हरण करने वाले आनन्दप्रद, देवश्रेष्ठोंके योग्य, इस विशिष्ट, दिव्य सुगन्धको श्रीप्राणवल्लभजूके सहित आप ग्रहण कीजिये ॥४१॥

तापापहं शीतकरं मनोज्ञं वाह्लीकसाराढ्यमनुत्तमं च ।
कर्पूरयुक्तं मलयाद्रिजातं सुचन्दनं सार्यसुता गृहाण ॥४२॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! तापको हरने वाला, शीतल-कारक मन-मोहक, केशरयुक्त, कर्पूर मिला हुआ मलयागिरिसे उत्पन्न इस सुखकर चन्दनको प्राणप्यारेजूके सहित ग्रहण कीजिये ॥४२॥

नवोत्तरीयं वसनं सुसूक्ष्मं विचित्रनानारचनान्वितं च ।
सहार्यपुत्रेण कृपैकसिन्धो ! प्रगृह्यतामाद्रसरोजनेत्रे ! ॥४३॥

हे सजलकमलदललोचने ! हे कृपैक सागरे ! आश्चर्य कारक, अनेक प्रकारकी रचनासे युक्त, अति झीने, नवीन उत्तरीय-वस्त्र (दुपट्टा) को प्राणप्रियतमजूके सहित ग्रहण कीजिये ॥४३॥

सुवन्यमाल्यानि ससौरभानि नानाविधान्यार्यसुतेन साकम् ।
अङ्गीकुरुष्व स्मितचन्द्रवक्त्रे ! नमोऽस्तु ते प्राकृतनित्यलीले ! ॥४४॥

हे मन्द मुस्कान युक्त पूर्ण चन्द्रके समान मुख वाली ! हे चैतन्यमय सदा स्थिर लीला करने वाली श्रीकिशोरीजू ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ—आप प्राणप्यारेजूके सहित द्वादश वनोंके विविध फूलोंकी बनी हुई अनेक प्रकारकी सुगन्धयुक्त, इन मालाओंको स्वीकार कीजिये ॥४४॥

सुदूर्वपत्राङ्कुरपत्रपुष्पं यवं तिलं प्रेष्ठतमेन साकम् ।
गृहाण सौलभ्यगुणैकमूर्त्ते ! किशोरि ! तुष्टा भव मन्दहासे ! ॥४५॥

हे उपमा रहित सौलभ्य गुण स्वरूपे ! हे मन्द मुस्कान वाली श्रीकिशोरीजी ! आप प्रसन्न होकर; प्राणप्यारेजूके सहित दूबकी पत्ती, अङ्कुर तुलसीदल, पुष्प, यव, तिलको ग्रहण कीजिये ॥४५॥

वनस्पतीनां सुरसोद्भवं च सुगन्धयुक्तं शतपत्रनेत्रे !
धूपं गृहाणेममजादिवन्द्ये ! किशोरि ! सप्रेष्ठतमा मनोज्ञम् ॥४६॥

हे ब्रह्मादि देवोंके लिये भी प्रणाम करने योग्य श्रीकिशोरीजी ! अनेक वनस्पतियोंके रससे बने हुये, सुगन्धयुक्त, मनको प्रसन्न करने वाले, इस धूपको प्राणप्यारेके सहित आप स्वीकार कीजिये ॥४६॥

घृताक्तकर्पूरसुवर्तियुक्तं मयार्पितं दीपमिमं गृहाण ।
प्रसीद दास्यां दयितेन साकं किशोरि ! कल्याणदुघाङ्घ्रिपद्मे ! ॥४७॥

हे कल्याणदुघाङ्घ्रिपद्मे (अपने श्रीचरनकमलोंके द्वारा समस्त कल्याणोंका दोहनकर भक्तों को देने वाली) हे श्रीकिशोरी जी ! दासीपर प्रसन्न हों और प्यारेके सहित घीसे भीगी हुई कपूर सहित बत्तीसे युक्त इस दीपको आप ग्रहण कीजिए ॥४७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं तु साऽऽदीपसमर्हणं च विधाय भक्त्या परयेन्दुमुख्याः ।
सवल्लभाया जनकात्मजाया बभूव नैवेद्यविधिं चिकीर्षुः ॥४८॥

भगवान् शङ्करजी बोले:—हे प्रिये ! इस प्रकार परम श्रद्धा पूर्वक दीप पर्यन्तकी पूजन विधि कर, उसने नैवेद्य-विधि करनेकी इच्छा की अर्थात् भोग लगाना चाहा ॥४८॥

दिव्यं समुद्यद्रविसन्निभप्रभा चतुर्विधं षड्रससंयुतं मुदा ।
निधाय रत्नाञ्चितभाजनेषु सा समार्पयत्स्नेहपरा सुसादरम् ॥४९॥

तदनन्तर उदय कालीन सूर्यके समान प्रकाश वाली वे श्रीस्नेहपराजी षट् रसोंसे युक्त चार प्रकारके उन नैवेद्योंको रत्नजटित पात्रोंमें सजाकर बड़ेही आदरके साथ समर्पण करने लगीं ॥४९॥

विनम्रगात्रा प्रणिपत्य दम्पती कृताञ्जलिर्दीनवचो ऽब्रवीदिदम् ।
तवोचितं किञ्चिदपीदमस्ति नो किशोरि! गृह्णीष्व तथापि वत्सले! ॥५०॥

श्रीस्नेहपराजी अपने शरीरको झुकाती हुई श्रीयुगल सरकारको प्रणाम करनेके पश्चात् हाथ जोड़कर यह वचन बोलीं—हे श्रीकिशोरीजी ! यद्यपि यह आपके योग्य कुछ भी नहीं है, तथापि वात्सल्य भाव प्रधान होनेके कारण इसे आप ग्रहण कर लीजिये ॥५०॥

प्रीतियुता कुरु भोजनमीप्सितमार्यसुतेन युता मृदुहासे !
आश्रितरञ्जिनि ! संसृतिभञ्जिनि ! शीलगुणाद्यगुणरत्नसुराशे ॥

क्षन्तुमिहार्हसि विस्मृतमेव च दीनहिते ! श्रुतिगीतचरित्रे !
वेद्मि रुचिं तु तदाऽमुकवस्तु हि देहि,यदेति वदिष्यसि मह्यम् ॥५१॥

इति षोडशोऽध्याय ।

हे कोमल मुस्कान वाली ! हे आश्रितोंको आनन्द युक्त करने वाली ! हे उपासकोंके जन्म-मरणको भङ्ग करने वाली ! हे शीलकृपा गुण रूपी रत्नोंकी राशि ! हे दीनोंका हित करने वाली ! हे वेदोंके द्वारा गायेगये चरित्र वाली ! श्रीस्वामिनीजू ! प्रीतिपूर्वक श्रीप्राणनाथजूके सहित ईप्सित (पूर्ण रूपसे) भोजन कर लीजिये, जो कुछ इस व्यवहारमें मेरी श्रद्धा आदिकी त्रुटि हो रही हो, उसे क्षमा (सहन) करना ही आपके लिये उचित है। जब आप "अमुक वस्तु दें" ऐसी आज्ञा मुझे करनेकी कृपा करेंगी तभी मैं भोजनमें, निश्चय करके आपकी रुचि जानूंगी ॥५१॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

भोजनके पश्चात्‌की शेष पूजाको पूर्ण करके श्रीस्नेहपराजीके द्वारा अपनी प्रमाद-जनितकी हुई त्रुटियोंके लिये श्रीयुगलसरकारसे क्षमा माँगना।

श्रीशिव उवाच।

एतत्समाकर्ण्य वचो गतस्मयं तस्या मनोज्ञं करुणैकवारिधिः ।
आश्वास्य तामाखिलसमूहमध्यगा सवल्लभाऽऽरभतात्तुमीश्वरी ॥१॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजीके अभिमान रहित, मनोहर, इस वचनको सुनकर, सखी समूहके बीचमें विराजमान, करुणाकी उपमा रहित सागर स्वरूपा, प्राणी मात्रकी अन्तर्यामिनी रूपमें शासन करने वाली श्रीकिशोरीजीने उन्हें आश्वासन प्रदान कर, प्राणप्यारेजूके सहित भोजन करना प्रारम्भ किया ॥१॥

ग्रासं विधाय रमणीमणिकण्ठरत्न श्रीकोशलेन्द्रमहिषीवरशुक्तिजातः ।
प्रादान्मृगाङ्कवदने दयितः प्रियायाः प्रेष्ठेन्दुपूर्णवदने दयिता च हृष्टा ॥२॥

श्रीकोशलेन्द्र महिषी (पटरानी) श्रीकौशल्या अम्बाजी रूपी शुक्ति (सीपी)से प्रकट हुये, विहार-परायणा समस्त सखियोंकी मणि (श्रीकिशोरीजी)के कण्ठके मुक्ता (मोती) रूपी रत्नके समान शोभा बढ़ानेवाले श्रीप्राणप्यारेजू, श्रीकिशोरीजीके पूर्णचन्द्र समान आह्लादवर्धक श्रीमुखारविन्दमें तथा प्राणवल्लभा श्रीप्रियाजू, हर्षित हो प्राणप्यारेजूके श्रीमुखारविन्दमें कवल बना बनाकर देने लगीं ॥२॥

तावादतुः प्रेष्ठतमौ सुभोजनं स्वादूचरन्तौ च पुनः पुनर्भृशम्।
मुहुर्मुहुः प्रेष्ठतमाय साऽऽर्पयत्तस्यै तथाऽसौ कवलं रसप्रियः ॥३॥

इस प्रकार वे दोनों प्राणप्यारेजू बार बार वस्तुओंके स्वादका वखान करते हुये सुन्दर भोजनोंको पाने लगे, बारंबार श्रीकिशोरीजी प्यारेको और रसप्रिय प्यारेजू श्रीकिशोरीजीके मुखारविन्दमें कवल देने लगे ॥३॥

तद्वीक्ष्य वीक्ष्यालिगणाः प्रहर्षं जग्मुर्भृशं मञ्जुलनीरजाक्ष्यः।
तासां तु नेत्रालिगणा मनोज्ञे तयोर्निपेतुर्मुखपङ्कजे च ॥४॥

श्रीयुगल सरकारकी उस आनन्दमयी लीलाको देख देखकर कमललोचना-सखियोंके समूह अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुवा, अत एव उनके नेत्ररूपी भौंरे दोनों सरकारके मनोहर मुख कमल पर जा गिरे ॥४॥

आदाय रत्नाञ्चितवारिपात्रं पूर्णं च सख्यौ कमलोदकेन।
उभे स्थिते पार्श्व उदीर्णकान्ती संयच्छतः कालमवेक्षमाणे ॥५॥

रत्न जटित श्रीकमलाजीके जलसे भरी हुई झारियोंको लेकर विशाल तेजवाली दो सखियाँ श्रीयुगलसरकारके बगलमें उपस्थित होकर अवसर देखती हुई उन्हें जल समर्पण करने लगीं ॥५॥

गायन्ति सख्यो मधुरस्वरेण कूटोक्तिभिस्तौ परिहर्षयन्त्यः।
न यान्ति तृप्तिं हृदये कथञ्चिन्निरीक्षमाणा ह्यनिशं प्रकामम् ॥६॥

सखियाँ अपनी कूट (व्यङ्ग) उक्तियों द्वारा श्रीयुगलसरकारको अत्यन्त हर्षित करती हुई मधुर स्वरसे गान करती हैं, सततकाल दर्शन करती हुई कभी भी किसीप्रकार वे दर्शनसे तृप्त नहीं होतीं अर्थात् उत्सुक ही बनी हैं ॥६॥

सुव्यञ्जनानि क्वचिदर्पयंस्त्रो मनोहराङ्गेषु मुदा सखीनाम्।
उत्क्षिप्य चोत्क्षिप्य विचित्रकेलिर्हसत्यविज्ञातगतिः सकान्तः ॥७॥

कभी-कभी विचित्र केलि (अद्भुत खिलाडी) श्रीप्राणप्यारेजू अपनी सखियोंके मनोहर अङ्गों पर सुन्दर व्यञ्जनोंको फेंक २ कर, उन लोगोंके द्वारा अपना यह रहस्य न जान,सकनेपर, वे श्रीप्रियाजूके सहित हँसने लगे ॥७॥

न लाघवं तस्य दिदृक्षमाणाः पश्यन्ति कान्तस्य सतां गतेस्ताः।
पिबन्ति रूपं नयनद्वयेन विस्मृत्य देहस्मृतिमिन्दुमुख्यः ॥८॥

चन्द्रमुखी सखियाँ, सन्तोंके परमाधार, श्रीप्राणप्यारेजूके हस्त चलानेकी शीघ्रताको देखनेके

लिये उत्सुक होनेपर भी नहीं देख पाती थीं अतः अपने शरीरकी सुधि भुलाकर अपने दोनों नेत्रोंसे श्रीयुगल स्वरूपको पान करने लगीं ॥८॥

अथो समूचुर्नलिनीदलाक्ष्यो मिथो विदुष्यः परिहासवाक्यम् ।
साश्चर्यमिन्दुप्रतिमाननाश्च तयोर्मनोरञ्जनसाभिलाषाः ॥९॥

इसके पश्चात् वे कमलदललोचना, पूर्णचन्द्रमुखी, विदुषी (पण्डिता) सखियाँ श्रीयुगल-सरकारके मनोरञ्जन करानेकी इच्छासे परस्पर आश्चर्यपूर्ण, परिहास युक्त वचन कहने लगीं ॥९॥

श्रीचारुशीलोवाच ।

वर्णाश्रसर्वे पशुपक्षिसंघा भवार्त्तिशान्त्यै कृतपुण्यपुञ्जाः ।
को यद्भगिन्यां विहरन्त्यजस्रं पित्राऽनुजैस्तत्परिरम्भितायाम् ॥१०॥

श्रीचारुशीलादि सखियाँ बोलीं–हे सखियो ! वे कौन हैं ? पिता और अनुजोंके सहित जिनके द्वारा आलिङ्गनकी हुई उनकी बहिनमें जन्म-मरण आदिकी पीड़ा-निवृत्तिके लिये, पूर्व जन्मोंमें पुण्यराशिका सञ्चय किये हुये, चारो वर्ण, पशु, पक्षियोंके समूह भी सदा विहार करते हैं ॥१०॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

सोऽयं महात्मा मृगपोत नेत्रः सशरसहस्ताम्बुरुहः प्रियो नः ।
नृपेति भद्रे! न कथं शृणुष्व वशिष्ठजा नास्य भवेत्स्वसा किम् ॥११॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं–हे भद्रे ! वे मृगके बच्चेके समान सुन्दर विशाल ,शोभायमान नेत्र वाले, अपने हस्तकमलमें कमल (कौर) को लिये हुये ये महात्मा हमारे श्रीप्यारेजू ही तो हैं । यह सुनकर श्रीचारुशीलाजी बोलीं–नहीं आपका यह कथन झूठा है । यह सुनकर श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं–हे भद्रे ! मेरी यह बात झूठी नहीं, सत्य है । उस पर श्रीचारुशीलाजी प्रश्न करती हैं कि-यदि आपकी यह बात सत्य है तो, किस प्रकार ? श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं–सुनो–श्रीवशिष्ठ महाराजकी पुत्री श्रीसरयूजी हैं, क्या वे प्यारेकी बहिन नहीं हैं ? अर्थात् निःसन्देह हैं, पिता (श्रीदशरथ) जी, अनुज (श्रीलक्ष्मणादि) के सहित क्या उनका ये श्रीप्यारेजू आलिङ्गन नहीं करते हैं ? अर्थात् अवश्य करते हैं, तथा सभी वर्णके पुण्यात्मा लोग, पशु, पक्षी आदि भी उनमें विहार करते ही हैं ॥११॥

भुक्त्वाऽस्य वंशे किल पायसान्नं पतिं विनैवाऽऽजनयन्ति पुत्रान् ।
सत्या कुमारीभिरनङ्गरूपः कथं ह्युपेक्ष्यो नवसुन्दरीभिः ॥१२॥

श्रीलक्ष्मणाजी बोलीं–अरी बहिनों ! इन प्यारेजूके वंशमें स्त्रियाँ, खीर खाकर ही बिना पतिके अपनी इच्छाके अनुकूल पुत्र पैदा कर लिया करती हैं, अर्थात् उन्हें सन्तानोत्पादनके लिये पतिकी आवश्यकता नहीं रहती । ऐसी विलक्षण स्त्रियाँ प्यारेके वंशमें होती हैं । श्रीअवधकी नवीन

अवस्था सम्पन्ना सुन्दर कुमारी बालिकायें, साक्षात् कामदेवके सदृश विश्वविमोहनस्वरूप वाले इन प्राणप्यारेजूकी भला किस प्रकार उपेक्षा कर सकी होंगी ? ॥१२॥

श्रीसुभगोवाच ।

अस्वीकृताऽस्य क्षितिपैः प्रजाभिः स्वसाऽर्दिता मन्मथवह्निना सा ।
तपस्विनं चानुजगाम दीना स्वयं सुपीनस्तनभारनम्रा ॥१३॥

श्रीसुभगाजी बोलीं–अरी बहिनों एक बात मेरी भी सुनो-अपने स्थूल स्तनोंके बोझसे झुकी हुई इनकी बहिनको जब राजा और प्रजा, किसीने भी स्वीकार नहीं किया, तब वे काम जनित अग्नि से व्याकुल, दीन (विवश) होकर, रूपासक्त तपस्वी (शृङ्गीऋषि) के पीछे स्वयं चली गयीं ॥१३॥

श्रीशिव उवाच ।

दृष्ट्वा सलज्जं प्रियमम्बुजाक्षं श्रीचारुशीला निजगाद वाक्यम् ।
सङ्कुच्यते कान्त ! किमर्थमीदृक् त्वयाऽत्र नान्यः सरयूविहारिन् ! ॥१४॥

भगवान् शङ्करजी कहते हैं–हे प्रिये ! सखियोंके इन हास्य पूर्ण वचनोंको सुन कर, कमल नयन प्राण-प्यारेजीको लज्जासे युक्त देखकर, श्रीचारुशीलाजी बोलीं–हे कान्त ! हे श्रीसरयूविहारी (सरयूजीमें विहार करने वाले) सरकार ! इन सब गुप्त रहस्य पूर्ण बातोंको यहाँ आपके अतिरिक्त सुनने वाला कोई अन्य है, ही नहीं; तब आप इस प्रकारसे सङ्कुचित क्यों हो रहे हैं ? ॥१४॥

जहास मन्दं तु तदा रसज्ञा निशम्य वाक्यानि रसाप्लुतानि ।
सखीजनानां हृदयङ्गमानि सग्रासपूर्णेन्दुमुखी च तेषाम् ॥१५॥

इस प्रकार श्रीचारुशीलादि उन अपनी सखियोंके रसमय (सरस), हृदयमें प्रवेश कर जाने वाले वचनोंको श्रवण करके, सभी रसोंको पूर्ण रीतिसे जानने वाली, कवल युक्त, पूर्णचन्द्रमुखी, श्रीकिशोरीजी मन्द मन्द मुस्काने लगीं ॥१५॥

ज्ञात्वेङ्गितं स्नेहपरा तयोस्तदा सुशीतलं स्वादुयुतं सुनिर्मलम् ।
जलं परं तृप्तिकरं समर्पयत्ताभ्यां प्रहर्षाश्रुयुतेन्दुमानना ॥१६॥

उस समय अत्यन्त हर्ष जनित अश्रु युक्त पूर्णचन्द्र समान प्रकाशमान मुखवाली, श्रीस्नेहपराजी, श्रीयुगलसरकारका सङ्केत जानकर, उन्हें अतीव तृप्तिकारक, स्वादयुक्त, शीतल निर्मल-जल समर्पण करने लगीं ॥१६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

हितौषधीनां सुरसेन संयुतं द्रग्जाजलं सौरभमिश्रितं प्रिये !
दत्तं मयाऽऽचम्यमिदं कृपान्विते ! गृहाण तुष्टा सममार्यसूनुना ॥१७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे कृपान्विते ! हे प्रिये ! श्रीस्वामिनीजू ! हितकारक औषधियोंके सुन्दर रससे युक्त, सुन्दर सुगन्ध मिश्रित, इस मेरे द्वारा समर्पण किये हुये, आचमन करने योग्य-श्रीसरयू जलको, प्यारेजूके सहित आप प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कीजिए ॥१७॥

सुस्वादुयुक्तानि रसाद्भुतानि नानाविधानीह फलानि भक्त्या ।
मयाऽर्पितानि प्रिय ! ईप्सितानि सवल्लभा स्वीकुरु भक्तिगम्ये ! ॥१८॥

हे भक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य श्रीप्रियाजू ! सुन्दर-स्वाद युक्त, रसपरिपूर्ण, अनेक प्रकारके ईप्सित, इन मेरे समर्पण किये हुये फलोंको, प्राण प्यारेजूके सहित आप स्वीकार कीजिये ॥१८॥

गृहाण ताम्बूलमिदं मयाऽर्पितं सवल्लभा मङ्गलपुण्यकीर्त्तने !
सपूगमेलाखदिरादिसंयुतं सचूर्णकं दिव्यसुगन्धवासितम् ॥१९॥

हे समस्त मङ्गल और पुण्य स्वरूप (नाम, रूप, लीला, धाम) के कीर्त्तन वाली श्रीकिशोरीजी ! दिव्य सुगन्धसे सुगन्धित, चूना, कत्था, इलायची और सुपाड़ीसे युक्त, मेरे द्वारा समर्पण किए गए इस ताम्बूलको श्रीप्यारेजूके सहित आप ग्रहण कीजिए ॥१९॥

श्रीशिव उवाच ।

ततस्तया पुष्करसन्निभेक्षणौ सौदामिनीसान्द्रपयोदविग्रहौ ।
नीराजितौ हर्षनिमग्नया प्रियौ विदेहकाकुत्स्थकुलाभिनन्दनौ ॥२०॥

भगवान शिवजी बोले:-हे प्रिये ! उसके पश्चात् हर्षमें डूबी हुई उन श्रीस्नेहपराजीने कमलके समान सुन्दरनेत्र, बिजली और सघन मेघके सदृश गौर-श्याम विग्रह, विदेह और काकुत्स्थ वंशको सम्मान युक्त करने वाले, प्रियाप्रियतम (श्रीयुगलसरकार) की आरती की ॥२०॥

पुष्पाञ्जलिं साऽर्प्य ततः प्रियाभ्यां सुस्वादु दिव्यं च सुधाधिकं वै ।
समार्पयच्छ्रीफलमादरेण सदक्षिणं लोकदृगुत्सवाभ्याम् ॥२१॥

पुनः उन्होंने समस्त लोकोंके नेत्रोंको उत्सवके सदृश आनन्द प्रदान करने वाले, दोनों सरकारके लिए पुष्पाञ्जलि समर्पण करके, अमृतसे भी अधिक स्वाद युक्त दक्षिणाके सहित, आदरपूर्वक श्रीफल (नारियल) समर्पण किया ॥२१॥

स्तुतिं चकारातिविनम्रभावा प्रफुल्लकञ्जायतचारुनेत्रा ।
निपत्य पादाम्बुजयोर्भगिन्याः सवल्लभायाः करुणाकरायाः ॥२२॥

पूर्ण खिले हुए नेत्र वाली उन श्रीस्नेहपराजीने, अतिविनम्रभावसे प्राणप्यारेजूके सहित करुणाकी खानि स्वरूपा, अपनी बहिन (श्रीकिशोरी) जूके श्रीचरणकमलोंमें गिरकर बड़े प्रेमसे उनकी स्तुतिकी-२२

श्रीस्नेहपरोवाच।

जय निमिवंश-पद्मवन-भास्करभे ! शुभदे।
जय रघुवंश-वारिनिधि-पूर्ण-सुधाकर ए॥
जय नलिनार्द्रफुल्लदलचारुशुभाक्षि ! शुभे।
जय मृगशावकाभकमनीयविलोचन ! ए ! ॥२३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे श्रीनिमिवंश रूपी कमल-वनको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्यकी प्रभा-स्वरूपे ! हे आश्रितोंको मङ्गल प्रदान करने वाली श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो ! हे रघुवंशरूपी समुद्रको परम आनन्दित करनेके लिये पूर्णचन्द्रस्वरूप प्राणप्यारेजू ! आपकी जय हो। हे कमलके सरस पत्रके समान सुन्दर मङ्गल लोचने ! हे शुभ स्वरूपे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे मृगशावक (छौना) के सदृश अत्यन्त चञ्चल सुन्दर लोचन प्यारे ! आपकी जय हो ॥२३॥

जय सुतिरस्कृतायुतसहस्रविभूषिरते !
जय जय वल्लभानवधिमन्मथमन्मथ ! ए !
प्रजय सरस्वतीजलधिजागिरिजादिनुते !
जय विधिविष्णुशम्भुफणिराजसमीडित ! ए ॥२४॥

हे करोड़ों शृंगार युक्त रतियोंको अपने सौन्दर्यसे सब प्रकारसे तुच्छ सिद्ध करने वाली श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे अपने सौन्दर्यसे अनन्त कामदेवोंके मनको मन्थन करने वाले ! वल्लभजू ! आपकी जय हो जय हो, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती आदि विशिष्टशक्तियोंके द्वारा सदा स्तुतिकी जाने वाली ! श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे ब्रह्मा, शिव, शेष आदिसे प्रशंसित प्यारेजू ! आपकी जय हो ॥२४॥

जय जय हेमचम्पकतडित्प्रतिमाभतनो !
जय सजलाभ्रनीलमणिनीलसरोजनिभ !।
धृतमणिचन्द्रिकादिललितप्रवराभरणे !
धृतमुकुटाङ्गदादिवरसुन्दरभूषण ए ! ॥२५॥

हे सुवर्ण मूर्तिके सदृश गौर वर्ण, चम्पापुष्पकी मूर्तिके समान सुन्दर सुगन्धयुक्त, बिजलीकी मूर्तिके समान कान्ति मय विग्रह वाली श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो जय हो; हे सजल मेघ व नीलमणिके सदृश प्रकाशयुक्त, सचिक्कण श्यामवर्ण, कमलके तुल्य कोमल शरीर वाले प्यारे !

आपकी जय हो ! मणिमय चन्द्रिकादि विशिष्टतम भूषणोंको धारण किये हुई श्रीकिशोरीजी आपकी जय हो, हे मुकुट, बाजूबन्द आदि मुख्य भूषणोंको धारण किये हुये प्यारेजू ! आपकी जय हो ॥२५॥

जय जय, सूक्ष्मदिव्यबहुवर्णतडिद्वसने !
जय जय पीतदिव्यविमलाम्बरभूषित ! ए।
जय धृतपङ्कजे ! अतिकमनीयसरोजकरे
धृत दयितांसचारुजलजातमनोज्ञकर ! ॥२६॥

बिजलीके समान प्रकाशमान हे महीन, दिव्य अनेक रङ्गोंके वस्त्र वाली, श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो, जय हो, हे पीले दिव्य, निर्मल वस्त्रोंसे विभूषित प्यारेजू ! आपकी जय हो जय हो। हे अत्यन्त मनोरम कमलवत् कोमल हाथमें कमलको धारण किये हुई श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो, श्रीप्रियाजूके कन्धे पर कमलके समान मनोहर सुन्दर हाथको रक्खे हुये प्यारेजू ! आपकी जय हो ॥२६॥

जय जय आर्यपुत्रहृदयाब्जनिवासगृहे !
जय रसिकेश्वरीहृदयकञ्जसुमन्दिर ए ।
जय जगदुत्सवे ! जनकनन्दिनि ! शीलनिधे !
जय जगदब्धिपूर्णरजनीकर ! दाशरथे ! ॥२७॥

हे प्राणप्रियतमजूके हृदय-कमलमें निवासमहल वाली श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो, जय हो। हे रस (सगुणपरब्रह्म) प्रधानोंकी स्वामिनी, श्रीकिशोरीजीके हृदय-कमलमें सुन्दर महल वाले प्यारेजू ! आपकी जय हो। हे स्थावर जङ्गम प्राणियोंको उत्सवके सरीखे आनन्द प्रदान करने वाली, श्रीजनकजी महाराजको भगवदानन्दसे युक्त करने वाली ! हे शीलनिधे ! श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे जगत् रूपी समुद्रको पूर्णचन्द्रके समान आह्लाद युक्त करने वाले ! हे श्रीदशरथनन्दन प्राणप्यारेजू ! आपकी जय हो ॥२७॥

जय नृपसूनुचारुमुखचन्द्रचकोरि ! शुभे !
जय दयितामनोज्ञवदनेन्दुचकोर ! हरे !।
जय शरणागतार्त्तजनकामदुघाङ्घ्रिनखे !
जय जय भक्तकामविबुधद्रुमपद्मपद ! ॥२८॥

हे राजपुत्र, प्राणवल्लभजूके सुन्दर मुखचन्द्रकी चकोरी! आपकी जय हो। हे श्रीप्रियाजूके मनोहर-मुख चन्द्रचकोर! हे भक्तोंकी समस्त आपत्तियोंको हरण करने वाले! आपकी जय हो। हे शरणागत भक्तोंके समस्त मनोरथोंको प्रदानकारक श्रीचरणनख वाली श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो। भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षके समान श्रीचरण-कमल वाले प्यारेजू! आपकी जय हो ॥२८॥

जय करुणामृतैकपरिपूर्णमहाजलधे!
जय रसवारिधे! रसिकशेखर! वल्लभ! ए।
जय पतितैकपावनि! किशोरि! रसेश्वरि! ए
प्रियवर! आश्रितार्तजनरक्षणतत्पर! ए ॥२९॥

हे करुणा रूपी अमृतकी उपमा रहित पूर्ण सागरस्वरूपा श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो। हे रस सागर! हे रसिकशिरोमणि! हे वल्लभजू! आपकी जय हो। हे पतित जीवोंको उपमा रहित पावन करने वाली! हे समस्त रसोंकी स्वामिनी! हे श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो। हे आर्त्त व आश्रित भक्तोंकी रक्षामें तत्पर! हे प्रियवर! आपकी जय हो ॥२९॥

जय मम भाग्यदे! प्रियरते! रसिकेशनुते!
जय जय वाञ्छितप्रद! सरोरुहलोचन ए।
जय निजकिङ्करी-नियुतकोटि सहस्रवृते!
जय नवलाङ्गनानिकरकोटिसुसेवित ए! ॥३०॥

हे मेरे इस अपूर्व सौभाग्यको प्रदान करने वाली! हे रसिक-नाथस्तुते श्रीस्वामिनीजू! आपकी जय हो। हे इच्छित वरदानको देने वाले! हे कमल लोचन प्यारे! आपकी जय हो, जय हो। हे अनन्त निज सखियोंसे घिरी हुई श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो। हे अनन्त नव सखियोंसे सेवित प्राणप्यारेजू! आपकी जय हो ॥३०॥

ब्रह्मणे नैव लभ्यो न वै विष्णवे शम्भवे नापि शेषाय नान्येभ्य उ।
यो वरः सोऽद्य मह्यं युवाभ्यां कृतः श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३१॥

अहह! जो वरदान न ब्रह्माजीके लिये न भगवान विष्णुके लिये न शङ्करजीके लिये न शेषजी के लिये और न किसी अन्यके लिये ही सुलभ हुआ, उसी वरदानको आज मेरे लिये आप दोनों सरकारने सुलभकर दिया, इस हेतु मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये नमस्कार करती हूँ ॥३१॥

यौ च योगेश्वराणामदृश्यौ प्रभू नेति नेतीति वेदैः सदा कीर्तितौ ।
ताविहोत्तीर्य संक्रीडितोऽनेकधा श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३२॥

जो आप दोनों सरकार अति सूक्ष्मतमस्वरूप होनेके कारण बड़े-बड़े योगेश्वरोंके लिए भी नयन-गोचर नहीं हो सकते, वेद जिन्हें नेति-नेति अर्थात् ऐसे ही नहीं इतने ही नहीं, बल्कि इससे भी विलक्षण, अनन्त महिमावान् कहते हैं, वे ही आप, इस पृथिवी मण्डलपर दृष्टि गोचर होकर विचित्र प्रकारसे क्रीडाकर रहे हैं, अत एव आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजीको मैं नमस्कार करती हूँ ॥३२॥

हीननेत्रौ विहीनाननौ क्रीडतश्चारुफुल्लोद्र्यपाथोजपत्रेक्षणौ ।
कोटिराकाचर्पानाथभव्याननौ श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३३॥

श्रुति भगवती जिस पूर्ण ब्रह्मको नेत्र, मुख आदि समस्त इन्द्रियोंसे रहित प्रतिपादन करती है, वही आप सुन्दर खिले सरस कमलदललोचन, करोड़ों शरदपूर्णिमाके चन्द्रतुल्य, अखिल जगदाह्लाद प्रदायक, भावनाके योग्य मुखारविन्द वाले बनकर भक्त-सुखद लीलाकर रहे हैं, अत एव मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये नमस्कार करती हूँ ॥३३॥

अश्रुती शुक्तिकर्णावपाणी मृदुस्निग्धपाथोजहस्तौ च बिम्बाधरौ ।
क्रीडतो निष्कलौ सर्वलोकोत्सवौ श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३४॥

जिन्हें श्रुति भगवती अश्रुती (श्रवण रहित) कहती हैं वे, ही आप सुन्दर शुक्ति समान कर्णोंसे युक्त हमारे नयनके विषय हो रहे हैं, जिन्हें वह अपाणी (हस्त रहित) सिद्ध करती हैं, वे ही आप कोमल सचिक्कण कमल सदृश शीतल मनोहर हस्तोंसे युक्त, बिम्बाफलके समान लाल अधर वाले, हम सबोंके सामने विराजमान हैं। जिन्हें श्रुति निष्कल (समस्तकलाओंसे रहित) बतलाती है, वे समस्त कलाओंसे युक्त तथा सभी लोकोंके उत्सवके समान सुखद बने हुये हैं, अत एव मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजू लिये नमस्कार करती हूँ ॥३४॥

पूर्णकामौ सदा प्रीतिभावाञ्छतो निस्तनू सर्वलोकाभिरामाकृती ।
क्रीडतो ह्लादयन्तौ सतां स्वालिभिः श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३५॥

श्रुति जिन्हें पूर्ण काम कहती है, वे ही आप सदा जीवोंसे प्रेमकी इच्छा रखते हैं। जिन्हें वह निराकार कहती है, वे आप अखिल भुवन मनोहर विग्रह (स्वरूप)को धारण कर सज्जनोंको आह्लादित करते हुये अपनी सखियोंके साथ लोकपावन लीलायें कर रहे हैं। अत एव आप दोनों श्रीप्रिया-प्रियतमजूके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ॥३५॥

ध्यानगम्यौ मुनीनां कथञ्चित्परौ दिव्यसिंहासनस्थौ मयाऽभ्यर्चितौ ।
क्रीडतो ऽनिन्द्रियौ सेन्द्रियौ शोभनौ श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३६॥

जो विशेष साधन सम्पत्तिके द्वारा ही कहीं मुनियोंके ध्यानमें आते है, वे परात्पर प्रभु आप दोनों सरकार, मेरे द्वारा पूजित होकर दिव्य सिंहासन पर विराजमान है। श्रुतियोंके द्वारा जिन्हे इन्द्रियातीत कहा गया है, वही आप श्रीयुगलसरकार समस्त इन्द्रियोंसे युक्त शोभायमान हो रहे है, अत एव आप दोनो श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥३६॥

सर्वलोकांशिनौ राजवंशोद्भवौ लालितौ पालितौ मातृभिः पालकौ ।
क्रीडतो दिव्यकेली यथा प्राकृतौ श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३७॥

जिन्हें श्रुति समस्त लोकोंका कारण सिद्ध करती है, वे दोनों आप राजकुलमें प्रकट है, जिन्हे वे श्रुतियाँ अखिल पालक कहती है, वे दोनो आप अपनी माताओंसे लालित पालित है, जिन्हें श्रुति दिव्य केली कहती है, वे आप दोनों माया रचित मनुष्योंके सदृश सब लीला कर रहे हैं, अत-एव आप दोनो श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये मै नमस्कार करती हूँ ॥३७॥

या कृता वै युवाभ्यां कृपा मय्यपि प्रोदिताम्भोजपत्रार्द्रनेत्रौ ! परा ।
सा च वाचा न वाच्या कृपावारिधी ! श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३८॥

हे खिले कमलपत्रके समान दयापूर्णविलोचन श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आपने मेरे ऊपर जो सर्वश्रेष्ठ कृपाकी है, उसे वर्णनकरनेकी मेरी वाणीमे शक्ति ही नही है, अतः उसका कैसे वर्णन करूँ ! हे कृपावारिधि श्रीयुगलसरकार ! इस असमर्थताके कारण मै आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये नमस्कार ही करती हूँ ॥३८।

श्रीप्रियाया विना सानुकम्पेक्षणं प्राप्तिरस्तीह नूनं दुरापा तवे ।
नैव लभ्य विना वै तया सत्सुखं श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३९॥

हे प्राणनाथजू ! इस लोकमे श्रीप्रियाजूकी कृपावलोकन हुये विना, आपकी प्राप्ति निश्चय ही दुर्लभ है, और विना आपकी प्राप्ति हुये आपके नित्य पार्षदोंसे प्राप्त सहज सेवा सुख निश्चय ही सुख लभ्य नही है, अत एव मै आप दोनो श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये नमस्कार करती हूँ ॥३९॥

या गतिर्दुर्लभा वै मुनीनामपि क्लिष्टयोगव्रतेज्यातपोभिः चितौ ।
सैव लभ्येन्दुमुख्याः कृपातः सुखं श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४०॥

जो गति पृथिवी पर मुनियोंके लिये योग, व्रत, यज्ञ, तप आदिके द्वारा भी दुर्लभ है, वही गति चन्द्रमुखी श्रीकिशोरीजीकी कृपासे सुख पूर्वक प्राप्त होने योग्य होती है, अतः मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये नमस्कार करती हूँ ॥४०॥

नैव येषां गतिः कापि दृष्टा त्रितौ तद्गतिः सर्वथा स्थो युवां हे प्रियौ! ।
चेष्टितं विद्महे वै युवाभ्यां न हि श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४१॥

जिनकी इस पृथिवी तल पर कोई रक्षा करने वाला नहीं है, उनकी आप दोनों सरकार सब प्रकारसे रक्षा करते हैं, आपने हम सभी चरणाश्रितोंको क्या न क्या विलक्षण सुख देनेकी चेष्टा की है ? उसे हम कोई नहीं जानती, अत एव आप दोनों सरकारको मैं नमस्कार करती हूँ ॥४१॥

नैव लभ्यौ युवां चेह सर्वैरपि ब्रह्मविष्ण्वादिभिः साधनैर्निश्चितम् ।
वीक्ष्य लभ्यौ युवां वै कृपामात्रतः श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४२॥

आप दोनों सरकार साधनोंके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु आदिके लिये भी दुर्लभ हैं, ऐसा श्रुति शास्त्रों तथा मुनिवाक्योंसे निश्चित है, अतः मैंने देख लिया, आप दोनों सरकार केवल अपनी निर्हेतुकी कृपासे ही सुलभ हैं, अन्य साधनोंसे नहीं । अत एव मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजीको नमस्कार करती हूँ ॥४२॥

नैव भाग्यं कथञ्चिन्मदीयं त्विदं ज्ञायते वां कृपैवेह निर्हेतुकी ।
कुञ्जमभ्येत्य दत्तं सुखं हीदृशं श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४३॥

हे श्रीयुगल सरकार ! यह मेरे भाग्यकी बात तो किसी प्रकारसे भी नहीं है, बल्कि इसे तो मैं आपकी निर्हेतुकी (साधन अपेक्षा शून्य) कृपा ही जानती हूँ, जिसकी प्रेरणासे आप दोनों सरकारोंने मेरी कुञ्जमें पधार कर, मुझे इस प्रकारका अपूर्व सुख प्रदान किया है; अतः आप दोनों श्रीप्रिया-प्रियतमजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥४३॥

ईदृशी सत्कृपा मय्यहो सर्वदा चेह कार्या युवाभ्यां जगत्क्षेमदा ।
नापरा काऽपि मे वां गतिर्मे परा श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४४॥

अहो ! आप दोनों सरकार इस जीवलोकमें सदा एक रस रहने वाली अपनी विश्वकल्याण-कारिणी इसी प्रकारकी निर्हेतुकी कृपा, मेरे प्रति करते रहें, क्योंकि मेरी सर्वोत्तम गति तो आपही हैं, दूसरा कोई भी नहीं, एतदर्थ मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये नमस्कार करती हूँ ॥४४॥

या प्रमादान्मया स्यात्कृता विस्मृतिः चम्यतां सा दयालू ! मया प्रार्थितौ ।
किङ्करी वामहं पादपद्माश्रिता श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४५॥

इति सप्तदशोऽध्यायः ।

हे दयालु श्रीयुगल सरकार ! प्रमादके कारण जो कुछ सत्कारमें मेरी भूल हो गयी हो, उसे मेरी प्रार्थनासे क्षमा करेंगे, क्योंकि मैं आपके श्रीचरण कमलोंकी आश्रित किङ्करी ही हूँ, इस हेतु आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ॥४५॥

अथाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

पर्यङ्कपर शयन कराये हुये श्रीयुगलसरकारकी शयन झाङ्की करके श्रीस्नेहपराजीके द्वारा उनका पुष्प-शृङ्गार ।

श्रीशिव उवाच ।

एवं संस्तुतयाऽऽश्वस्ता गृहीतचरणाम्बुजा ।
मृदुस्वभावया प्रेम्णा विनीतमिदमब्रवीत् ॥१॥

भगवान् शङ्करजी बोले, हे पार्वति ! इस प्रकार स्तुति करने पर अत्यन्त कोमल स्वभाववाली श्रीकिशोरीजीने प्रसन्न हो, उसे आश्वासन प्रदान किया, तब वे श्रीस्नेहपराजी उनके युगल श्री चरणकमलोंको पकड़कर विनय पूर्वक यह प्रार्थना करने लगीं ॥१॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

कुरुतं शयनं कलितास्तरणे करुणाम्बुनिधी कृपया त्वचिरम् ।
रचितं शयनीयमिदं सुखदं भवतोः शयनाय सुगन्धयुतम् ॥२॥

हे करुणासागर श्रीयुगलसरकार ! आपके शयनके लिये यह सुगन्ध युक्त, सुखद शय्या तैयार है, अतः सुन्दर बिछावन युक्त इस शय्यापर कृपापूर्वक थोड़ी देर शयन कर लीजिये ॥२॥

चमितं बहु कष्टमिदं कृपया भवता प्रभुयुग्म ! मदर्थमहो ।
कुरुतं शयनं कलितास्तरणे करुणाम्बुनिधी ! कृपया त्वचिरम् ॥३॥

हे अनन्त शोभा सम्पन्न श्रीयुगल सरकार ! आपने मेरे संतोषके लिये बहुत कष्ट सहन किया है; अतः हे करुणासागर ! कृपा करके थोड़ी सी देरके लिये शयन कर लीजिये ॥३॥

परिपूरयतं मम तर्षमिमं प्रभुन्दाशरथे ! मिथिलेशसुते !
कुरुतं शयनं कलितास्तरणे करुणाम्बुनिधी ! कृपया त्वचिरम् ॥४॥

हे श्रीमिथिलेशकिशोरीजी ! हे श्रीदशरथनन्दन प्राणप्यारेजू ! आप दोनों करुणाके सागर हैं, एतदर्थ कोमल बिछावन युक्त शय्यापर आप थोड़ी देर शयन कर लीजिये, कृपा करके मेरे इस मनोरथको सफल कीजिये ॥४॥

श्रीशिव उवाच।

तत एव तथेति निगद्य तयोः शयनीयमुपागतयोः सुपमाम्।
मिथिलेशसुतारघुनन्दनयोः प्रददर्श विनिन्दितकामरतिम् ॥५॥

भगवान् शङ्करजी बोले हे प्रिये ! तब "ऐसा ही हो" कहकर श्रीमिथिलेशनन्दिनी व श्रीरघुनन्दनजूके शय्याके ऊपर पधारने पर, वे श्रीस्नेहपराजी काम और रतिको लज्जित करने वाली, उन दोनों (सरकार)की उपमा रहित (निरतिशय) सुन्दर, शयन छविका दर्शन करने लगीं ॥५॥

कुसुमेषुशरासनसुभ्रुयुगौ तरुणाम्बुरुहार्द्रसुचारुदृशौ।
चलकुण्डलशोभिकपोलयुगौ मधुपावलिकुञ्चितशीर्षरुहौ ॥६॥

कामदेवके धनुषके समान मनोहर भौंह, नूतन कमलके समान रसयुक्त अत्यन्त सुन्दर नयन, मणिमय कुण्डलोंसे सुशोभित युगलकपोल, भौंरोंकी पंक्तियोंके समान काले घुँघराले बाल ॥६॥

वरकुङ्कुमवर्द्धितभालरुची नवबिम्बफलाभसुशोभ्यधरौ।
करकाभमनोज्ञतडिद्दशनौ घनवैद्युतबिन्दुलसच्चिबुकौ ॥७॥

उत्तम केशरकी खौरसे बढ़ी हुई भालकी शोभासे युक्त, नवीन बिम्बाफलके समान सुशोभित लाल अधर, दाडिम (अनार)के दानोंके समान मनोहर बिजलीके सदृश प्रकाशयुक्त दाँत, मेघ और बिजलीके सरीखे श्याम गौर बिन्दुसे शोभायमान ठोढ़ीसे युक्त ॥७॥

अभयप्रदसर्वसुभीतिहरप्रणतेप्सितदाम्बुजमञ्जुकरौ।
धृतसूक्ष्ममनोहरनीलसुपीतनवाद्भुतचारुतडिद्वसनौ ॥८॥

अभयप्रद (सबके भयको भली प्रकारसे हरण करने वाले), भक्तोंके चाहे हुये मनोरथोंको पूर्ण करने वाले, कमलके समान कोमल हाथ, झीने मनोहर नील पीतरङ्गके सदा नवीन अद्भुत, मनोहर, बिजलीके समान कान्तिमय वस्त्रोंको धारण किये हुये ॥८॥

सुरवह्निफणीशगणेशनुताऽऽश्रितकोटिसुरद्रुमपद्मपदौ।
पदपङ्कजपा दुरितौघहरद्विजराजचयाभपदाब्जनखौ ॥९॥

त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष, गणेश आदिसे स्तुति किये गये, आश्रितोंके लिये कोटि कल्पवृक्षके समान चरण-कमल वाले तथा श्रीचरण कमलसेवकोंके समस्त दुःखोंको हरनेवाले, चन्द्रवत् शीतल प्रकाशमान, आह्लादप्रद श्रीचरणनख वाले ॥९॥

निजरूपतिरस्कृतकोटिशतव्रजकामरतिप्रियचारुरुची ।
मुनिपुङ्गवहंसमनोनिलये सततं महितौ किल भावनया ॥१०॥

अपने सुन्दर स्वरूपसे सौ करोड़ काम और रतिकी मनोहर छविको भी तिरस्कार करने वाले, हंसवृत्ति मुनिश्रेष्ठोंके मन रूप मन्दिरमें, भावनाके द्वारा सदा पूजित, होने वाले ॥१०॥

इति ताववलोक्य महासुभगौ न शशाक निरोद्धुमपि स्वमनः ।
कृपया च तदैव तयोरकरोत्पदपङ्कजसेवनमेकगतिः ॥११॥

सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य युक्त श्रीयुगल सरकारको इस प्रकार अवलोकन करके वे अपने मनको निज वशमें रखनेको समर्थ न रह सकीं, तब वे अनन्य गति (श्रीस्नेहपराजी) श्रीयुगल सरकारकी कृपासे सावधान हो, उनके श्रीचरण कमलोंकी सेवा करने लगीं ॥११॥

पुनरिङ्गितमाप्य निरालसयोर्हृदयेश्वरयोरुभयोः सुभगा ।
अनुरागसुनिर्भरसद्धृदया कृत्यकृत्यमसौ मनुते स्म भवम् ॥१२॥

पुनः अपने आलस्य रहित हृदयेश प्राणप्यारी प्यारेजूका सङ्केत (इशारा) पाकर अनुराग परिपूर्ण हृदय हो, वे सौभाग्यवती श्रीस्नेहपराजी अपने जीवनको कृत कृत्य मानने लगीं ॥१२॥

आदाय पूर्णं मणिवारिपात्रं तयोः सकाशं सरयूदकेन ।
अकारयद्ध्याचमनं प्रियाभ्यां प्रक्षाल्य पूर्णेन्दुमुखं मनोज्ञम् ॥१३॥

श्रीसरयूके जलसे पूर्ण, मणिमयजलपात्रको, उन्होंने दोनों सरकारके पास लाकर, श्रीप्रिया प्रियतमजूके मनोहर मुखचन्द्रको धो करके आचमनकर वाया ॥१३॥

पुष्पार्त्तिकं तर्हि कृतं तया वै प्रदाय पुष्पाञ्जलिमाह पश्चात् ।
इमानि पौष्पाणि विभूषणानि शृङ्गारहेतो रचितानि भक्त्या ॥१४॥
कृपात उरीकुरुतं दयालू ! नमो युवाभ्यां रसिकेश्वराभ्याम् ।
प्रीत्यै तितस्याः सुवचो निशाम्य संभूषयावामिति चोचतुस्ताम् ॥१५॥

उसके पश्चात् उन श्रीस्नेहपराजीने श्रीयुगल सरकारकी फूल आर्तीकर, पुनः पुष्पाञ्जलि प्रदान

करके हाथ जोड़े हुई वे बोलीं:—हे दयालु श्रीयुगलसरकार! भक्ति पूर्वक फूलोंसे बने हुये इन भूषणोंको शृङ्गारके लिये, कृपया स्वीकार कीजिये, एतदर्थ आप दोनों रसिक नायकों (भक्तोंकी आज्ञामें चलने वालों) के लिये मैं नमस्कार करती हूँ। भगवान् श्रीशङ्करजी पार्वतीजीसे बोले:—हे प्रिये! श्रीयुगल-सरकार उन श्रीस्नेहपराजीके प्रेमपूर्वक कहे हुये इन सुन्दर (विनीत) वचनोंको श्रवण करके बोले:—हे प्रिये! इन फूलोंके बनाये हुये भूषणोंको तुम्हीं धारण करा दो ॥१४॥१५॥

श्रीशिव उवाच।

प्राणप्रियाप्राणपरप्रियौ तौ दृष्ट्वाऽऽत्मनि प्रीतियुतौ प्रकामम्।
विभूषयामास निदेशमेत्य मनोहराङ्गेषु यथोचितं सा ॥१६॥

इति अष्टादशोऽध्यायः।

—: मासपारायण ३—नवाह्नपारायण-विश्राम १ :—

भगवान शिवजी बोले:—हे प्रिये! श्रीस्नेहपराजीने अपने प्रति प्राणोंसे अधिक दोनों प्यारोंको इस प्रकार प्रसन्न देखकर उनकी आज्ञा पाकर अपनी इच्छाके अनुसार यथोचित भूषणोंको उन (श्रीयुगल सरकार) के मनोहर श्रीअङ्गोंमें धारण कराया ॥१६॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

आकाशको मेघोंसे घिरा हुआ देखकर श्रीचन्द्रकलाजीका श्रीयुगल सरकारसे झूलनके लिये अपने भावोंका निवेदन।

श्रीशिव उवाच।

गत्वा ततश्चन्द्रकलेति नाम्नी यूथेश्वरी ह्यग्रचरी सखीनाम्।
जयेति संभाष्य विनम्रगात्रा प्रणम्य मूर्द्ध्ना पुनराह वाक्यम् ॥१॥

उसके बाद समस्त सखियोंके आगे चलने वाली, श्रीचन्द्रकला नामकी यूथेश्वरी सखी श्रीयुगल सरकारके पास आकर उनको अपने शरीरको झुका शिरके द्वारा प्रणाम करके जयकार करती हुई, बोलीं अर्थात् प्रार्थना करने लगीं ॥१॥

श्रीचन्द्रकलोवाच।

आच्छादितं सान्द्रघनैर्नभस्तलं वर्षन्ति ते मन्दतरं सुधाजलम्।
त्रिधाऽनिलो वाति सुखप्रदः प्रिये! विभाति पृथ्वी हरिदम्बरावृता ॥२॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:—हे श्रीप्रियाजू! इस समय आकाश सजल मेघोंसे ढका हुआ है और

वे (मेघ) नन्हीं नन्हीं बूँदोंसे अमृत रूपी जलकी वर्षा कर रहे हैं, हृदयको अत्यन्त सुख देने वाला त्रिविध (शीतल, मन्द, सुगन्ध) पवन भी चल रहा है, पृथिवी देवी हरे रङ्गके वस्त्रोंको धारण किये हुई अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही है ॥२॥

वने मयूराः शुकसारिकाश्च विचित्रवर्णाः स्वनयन्ति हृष्टाः ।
नृत्यन्ति केचित्स्वगणैः समेता इतस्ततो धावति कोकिलश्च ॥३॥

विचित्र वर्णके शुक, सारिका (तोता, मैना) आनन्द युक्त, चित्तसे वनोंमें शब्द कर रहे हैं और अपने-अपने यूथोंसे युक्त होकर नृत्य कर रहे हैं, कोयल इधर उधर (हर्षसे) उछल-कूद कर रही है ॥३॥

भृङ्गाः प्रमत्ताः प्रपिबन्ति कामं सरोरुहाणां मकरन्दमार्ये !
गुञ्जन्ति धावन्ति सुपुष्पितेषु नवद्रुमेषु प्रिय ! इन्दुवक्त्रे ! ॥४॥

हे आर्ये ! हे चन्द्रवदने ! हे श्रीप्रियाजू ! उन्मत्त भौंरे नवीन सुन्दर फूले हुये वृक्षों पर गूँजते और दौड़ते हैं, तथा कमलके फूलोंके रसको अपने इच्छानुसार पान कर रहे हैं ॥४॥

महीरुहाः पुष्पफलैः समन्विताः सुखप्रदा दृष्टिमतां मनोहराः ।
विभाति दृग्जा नवचित्रपङ्कजा प्रवाहशब्दैश्च दिशो भजन्ती ॥५॥

वृक्ष, पुष्प फलोंसे सुशोभित-देखनेसे सुख प्रदान करने वाले, और मनको हरण करने वाले हैं, श्रीसरयूजी अपने प्रवाह शब्दको दशो दिशाओंमें व्याप्त करती हुई विविध प्रकारके कमल पुष्पोंसे युक्त विशेष शोभाको ग्रहण कर रही हैं ॥५॥

सर्वा हि सख्यो युवयोरिदानीमान्दोलकुञ्जोत्सवमेव कामम् ।
दिदृक्षवः सन्ति किशोरि ! नूनं यथेप्सितं तदिह संविधत्स्व ॥६॥

हे श्रीकिशोरीजू ! ऐसा सुअवसर देखकर आप दोनों सरकारकी सभी सखियाँ झूलन कुञ्जके उत्सवको अपनी इच्छानुसार देखनेके लिये लालायित हो रही हैं, इस विषयमें आपकी अब जो इच्छा हो वही करनेकी कृपा करें ॥६॥

श्रीशिव उवाच ।

श्रुत्वा वचः कर्णसुखं सुरुच्यं राजीवनेत्रो रसिकेन्द्रमौलिः ।
स्पृष्ट्वा कराग्रेण मुदा प्रियायास्ततो मनोज्ञं चिबुकं जगाद ॥७॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! रसिकेन्द्रमौलि (भक्तोंको अपना सबसे बड़ा शासक मानने

वाले) कमलनयन श्रीप्राणप्यारेजू श्रीचन्द्रकलाजीके कर्णसुखद और अपनी रुचिकी पूर्ति करने वाले इन शब्दोंको सुनकर, अपनी अङ्गुलीसे श्रीप्रियाजूके मनोहर ठोढीको छूकर बोले ॥७॥

ममापि चान्दोलमहोत्सवे प्रिये ! जातोऽभिलाषो हृदये महानयम् ।
श्रुत्वा सखीनां च तथेप्सितं वरं यद्रोचते ते दयिते कुरुष्व तत् ॥८॥

सरकार बोले:—हे प्रिये ! सखियोंका मनोरथ सुनकर मेरे भी हृदयमें झूलनके लिये बड़ी इच्छा उत्पन्न हो गयी है, परन्तु हे श्रीप्राणप्रियतमेजू ! अब आपकी जिसमें रुचि हो वही उत्सव करनेकी कृपा करें ॥८॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

उत्कण्ठितं प्रेष्ठ ! यदि त्वयाऽपि हि कार्यस्तदान्दोलमहोत्सवो ध्रुवम् ।
ममाप्ययं रूपनिधे ! महान् प्रियो न तृप्तिमाप्नोति मनः कदाचन ॥९॥

श्रीकिशोरीजी बोलीं:—हे प्राणप्यारेजू ! झूलनोत्सवके विषयमें यदि आपकी भी इच्छा है तो, उसी महोत्सवको निश्चय ही करना उचित है, क्योंकि हे रूपनिधे श्रीप्यारेजू ! मुझे भी यह उत्सव महान प्रिय है, इस उत्सवसे मेरा मन तो कभी भी नहीं तृप्त होता ॥९॥

प्रयाहि भद्रे ! क्रियतां प्रबन्धस्तटे सरय्वाश्च वने सुनीपे ।
कलस्वना यत्र विहङ्गमाश्च विचित्रवर्णाः सुभगा मयूराः ॥१०॥

श्रीप्यारेजूसे इतना कहकर श्रीकिशोरीजी एक सखीको आज्ञा करती हैं, हे कल्याणी ! तुम श्रीसरयूजीके किनारे कदम्ब वनमें जाओ, और वहाँ झूलनका प्रबन्ध करो ! जहाँ बड़ी ही मीठी बोली बोलने वाले विचित्र रङ्गके सुन्दर मोर पक्षी हैं ॥१०॥

नवद्रुमाः पुष्पफलादिभारैर्विनम्रशाखाभ्रमराभिजुष्टाः ।
भूवारिजाश्चित्रविचित्रवर्णाः सुपुष्पिता भाति सुकेतकी च ॥११॥

जहाँ भौंरोंसे सेवित, पुष्प फलोंके भारसे झुकी हुई डाली वाले नवीन वृक्ष हैं, चित्र विचित्र रङ्गके जहाँ गुलाब हैं, सुन्दर फूली हुई केतकी जहाँ शोभा दे रही है ॥११॥

विचित्रवृक्षैः सुरवृक्षकल्पैस्तीरोद्भवैः पुष्पफलावनम्रैः ।
द्विजौघजुष्टैरुपशोभिता सा सुगह्वरैश्चारुलतानिकेतैः ॥१२॥

पक्षिसमूहोंसे सेवित, कल्पवृक्षके समान प्रभावशाली, किनारे पर उत्पन्न पुष्प फलादिसे झुके हुये, विचित्र वृक्षों तथा सुन्दर गह्वरों और लतागृहोंसे सुशोभित, ॥१२॥

श्रीनेत्रजा यत्र सुधाम्बुपूर्णा मरालवृन्दैरधिकं विभाति ।
प्रोत्फुल्लकञ्जैःपरिशोभिता च प्रियालि ! माणिक्यतटीङ्गितज्ञा ॥१३॥

हे प्रियसखी ! जो अमृत समान जलसे परिपूर्ण है, मणियोंसे जिसके दोनों किनारे बान्धे गये हैं, सङ्केतको भली भाँति समझने वाली, श्रीसरयूजी, जहाँ पर हंसवृन्द तथा फूले हुये कमलोंसे विशेष रूपसे शोभा पा रहीं हैं (उसी सरयूतट पर कदम्ब वनमें जाकर झूलनोत्सवका प्रबन्ध करो)॥१३॥

श्रीशिव उवाच ।

तथेति सा चन्द्रकला प्रभाष्य ह्यान्दोलकुञ्जाधिकृतान्तिकं च ।
संप्रेषयामास सखीं सुविज्ञां मनोजवां तां शुभसूचनायै ॥१४॥

भगवान् शङ्करजी बोले:—हे प्रिये ! श्रीकिशोरीजीकी इस आज्ञाको सुनकर, श्रीचन्द्रकलाजीने "वैसा ही होगा" कहकर झूलन कुञ्जकी अधिष्ठात्री सखीके पास श्रीयुगलसरकारके होने वाले उस शुभागमनकी सूचना देनेके लिये, मनके वेगके समान शीघ्र पहुँचने वाली सुविज्ञा सखीको, भेज दिया ॥१४॥

चर्वणं चालौकिकदम्पती तावलौकिकैर्दिव्यगुणैः परीतौ ।
अलौकिकाकर्षणयुक्तदिव्यसौन्दर्यसंभूषितसर्वगात्रौ ॥१५॥
निवेशितौ सादरमम्बुजाक्षौ श्रीजानकीपङ्क्तिरथात्मजौ तौ ।
प्रेमाश्रुमुख्या विनयेन दिव्ये मृद्वंशुके रत्नमये सुपीठे ॥१६॥

उसके बाद, वे प्रेमाश्रुमुखी (श्रीस्नेहपराजी) ने आदर पूर्वक विनयके सहित लोकोत्तर गुणोंसे युक्त, अलौकिक आकर्षण सम्पन्न दिव्य सौन्दर्य-विभूषित-सकल अङ्गों वाले, अलौकिक प्रियाप्रियतम, कमलनयन श्रीजनकनन्दिनी दशरथ-नन्दन-प्यारेजूको कोमल बिछावन युक्त रत्नमय सुन्दर चौकी पर विराजमान किया ॥१५॥१६॥

सुचर्वणं मिष्टफलान्यथैव ददौ सुनैवेद्यमपि प्रियाभ्याम् ।
ताम्बूलवीटीं रचितां स्वहस्तैः प्रदाय नीराजनमेव चक्रे ॥१७॥

तदनन्तर अनेक प्रकारके सुन्दर, चर्वण (चबेना) और मीठे फलोंकी नैवेद्य श्रीयुगल सरकारको अर्पण की, पुनः अपने हाथोंसे बनाये हुये पानके बीड़ोंको प्रदान करके, उनकी आरती की ॥१७॥

ततस्तयोः सा प्रणतिं विधाय तस्थौ समीपे किल बद्धपाणिः ।
आश्वासिता श्लक्ष्णवचोभिराद्यैः सकान्तया श्रीमिथिलेन्द्रपुत्र्या ॥१८॥

इति एकोनविंशोऽध्यायः ।

तत्पश्चात् श्रीयुगल सरकारको प्रणाम करके वे प्रेम विह्वल हो गयीं, पुनः श्रीप्राणप्यारेजूके सहित श्रीकिशोरीजीके अनुपम, मृदुल, सस्नेह वचनोंके द्वारा आश्वासन पाकर (श्रीस्नेहपराजी) हाथ जोड़कर समीपमें जा बैठीं ॥१८॥

अथ विंशोऽध्यायः ॥२०॥

श्रीस्नेहपराजीके भवनसे विदा होकर, श्रीयुगल सरकारका श्रीसरयूजीके तट पर झूलन विहार ।

श्रीशिव उवाच ।

विमानमारुह्य मुदा तदानीं नरेन्द्रसूनुर्नरराजपुत्री ।
समन्वितौ सर्वसखीनिकायैः प्रजग्मतुश्चारुवनं सुनीपम् ॥१॥

भगवान् शङ्करजी बोले:-हे प्रिये ! उस समय श्रीमिथिलेशनन्दिनी व श्रीदशरथनन्दन प्यारे, दोनों सरकार, सखीवृन्दके सहित विमानमें विराजमान होकर कदम्ब वन पधारे ॥१॥

आन्दोलकुञ्जाधिकृता निशम्य विमानशब्दं परमप्रहृष्टा ।
सुस्वागतार्थं जनकात्मजायाः प्रत्युज्जगाम प्रियपार्श्वगायाः ॥२॥

झूलन कुञ्जकी मुख्य सखी विमानके शब्दको सुनकर परम हर्षको प्राप्त कर, प्यारेजूके बगलमें विराजमान हुई श्रीकिशोरीजूका सुन्दर (यथोचित) स्वागत करनेके लिये आगे बढ़ीं ॥२॥

प्रणम्य नीराजनमुत्सवं च चकार भक्त्या नलिनाक्षयोः सा ।
नीतौ तयाऽऽन्दोलनिकुञ्जमाद्यं सखीगणैर्गीतगुणौ प्रियौ तौ ॥३॥

प्रणाम करनेके पश्चात् बहुत ही प्रेम पूर्वक, उसने कमलनयन दोनों श्रीयुगल सरकारका आरती-उत्सव मनाया, और सखियोंने गुणगान किया, उसके बाद वे सखियाँ दोनों श्रीप्रिया प्रियतमजूको उस अनुपम झूलन कुञ्जमें ले गयीं ॥३॥

लतासुवेश्मानि मनोहराणि तटे सरय्वाश्च विशालकानि ।
सौवर्णदण्डैश्च विनिर्मितानि सुगन्धवातैः परिसेवितानि ॥४॥

ध्वजापताकावरतोरणानि सुपुष्पमाल्यैः परिशोभितानि ।
विहङ्गमैश्चापि सुकूजितानि लसन्ति रम्याणि नभःस्पृशानि ॥५॥
पीतारुणश्वेतविनीलवर्णैर्लसन्ति पुष्पै रचितानि रूप्यैः ।
पयोमणिद्मापरिशोभितानि नवाम्बुदस्तम्भमयानि यत्र ॥६॥

श्रीसरयूजीके जिस किनारे पर सोनेके दण्डोंसे बनाये हुये सुगन्धितयुक्त वायु (हवा) से सेवित, बड़े-बड़े मनहरण लता भवन, ध्वजा पताका वन्दनवारसे युक्त, सुन्दर फूलोंकी मालाओंसे सजाये, पक्षियोंके मधुर शब्दसे गुञ्जायमान, आकाशका स्पर्श करनेवाले (अत्यन्त ऊँचे), विहार के योग्य, शोभा दे रहे हैं। जहाँ पर कोई-कोई निकुञ्ज जलतके रङ्गके समान मणि भूमिसे सुशोभित, नवीन मेघोंके सदृश मणिमय स्तम्भों (खम्भों) से युक्त, पीत, लाल, श्वेत, नील रङ्गके फूलोंसे बनाये हुये, अत्यन्त शोभा दे रहे हैं ॥४॥५॥६॥

अर्घ्यादिकं तत्र विधाय मुख्या आन्दोलकुञ्जस्य सखी सुभक्त्या ।
प्रादर्शयद्दीपमथ प्रियाभ्यामाघ्राप्य धूपं स्मितमोहनाभ्याम् ॥७॥
समर्प्य दिव्यानि नवानि ताभ्यां फलानि मिष्टानि सुधोपमानि ।
उत्साहवीर्यादिविवर्द्धकानि सुस्वादुसौगन्धयुतानि हृष्टा ॥८॥
चकार नीराजनमम्बुजाक्षी सुकार्यभक्त्याऽऽचमनं प्रियाभ्याम् ।
ताम्बूलवीटीं परिदिश्य पश्चात् सखीसहस्रैर्बहुवाद्ययुक्तैः ॥९॥

उस भूलन कुञ्जमें-वहाँकी मुख्य सखीने सुन्दर मन्द मुसकानसे सारे स्थावर जङ्गम प्राणियोंको मोहित कर लेने वाले, श्रीयुगल सरकारके लिये, भक्तिपूर्वक, अर्घ्य आदिकी विधि करके, धूप देकर दीपकका दर्शन कराया ॥७॥ पुनः उत्साह, पराक्रम आदिकी वृद्धि करनेवाले सुन्दर स्वादु और सुगन्धसे युक्त, नवीन, दिव्य, अमृतके समान मीठे फलोंको समर्पण कर बड़े ही हर्षको प्राप्त किया ॥८॥ तत्पश्चात् आचमन कराके प्रियाप्रियतम श्रीसीतारामजूको पानके बीड़ोंको देकर बहुत प्रकारके बाजोंके साथ-साथ हजारों सखियोंके सहित, उस कमललोचना (भूलन कुञ्जकी प्रधान सखी) ने उनकी आरती उतारी ॥९॥

प्रदत्तपुष्पाञ्जलिरिन्दुमुख्या नतोरुभाला परमादरेण ।
पपात पादाम्बुजयोः परस्य पुरः प्रियायाः सदयाम्बुकायाः ॥१०॥

उसके बाद दोनों सरकारको पुष्पाञ्जलि प्रदान करके, शिरको झुकाये हुई वह बड़े ही आदर पूर्वक परात्पर प्रभु तथा चन्द्रमुखी, सदयलोचना, श्रीप्रियाजूके श्रीचरण कमलोंके आगे गिर गयी ॥१०॥

उत्थापिता सा च कृतप्रणामा प्रोवाच बद्धाञ्जलिमादरेण ।
श्रीस्वामिनि ! प्रेष्ठ ! मया च दास्या कृतः प्रबन्धो विधिनोत्सवाय ॥११॥

उसके प्रणाम करने पर श्रीयुगल सरकारके द्वारा जब वह उठाई गयी, तब हाथ जोड़कर आदर पूर्वक वह बोलीः–हे श्रीस्वामिनीजू ! हे प्राण प्यारेजू ! झूलन उत्सवके लिये मैंने सारा प्रबन्ध विधिपूर्वक सम्पादित कर लिया है ॥११॥

कृत्वेममान्दोलमहोत्सवं च निजाश्रितानां सुखमावह त्वम् ।
एकाग्रचित्तेन च द्रष्टुकामाः सर्वाः स्थिता अत्र समुत्सुका हि ॥१२॥

अतएव इस झूलनोत्सवको प्रारम्भ करके, अपने समस्त आश्रितोंके सुखको बढ़ाने की कृपा कीजिये, क्योंकि–आपकी ये सभी सखियाँ एकाग्र चित्तसे इस उत्सवके दर्शन करने की इच्छा से बड़ी ही उत्सुक हुई, यहाँ विराज रही हैं ॥१२॥

श्रीशिवउवाच ।

ओमित्यथाभाष्य सुदम्पती तावुत्थाय दत्तांसभुजौ कृपालू ।
आन्दोलके तर्हि सुसज्जिते च निविश्य तौ रेजतुरालिवृन्दे ॥१३॥

भगवान् श्रीशङ्करजी बोलेः–हे प्रिये ! झूलन कुञ्जकी अधिष्ठात्री (मुख्य) सखीकी यह प्रार्थना सुनकर, वे कृपालु दोनों सुन्दर दम्पती श्रीसीतारामजी, परस्पर कन्धेपर अपनी भुजा रक्खे हुये उठे और बहुत ही उत्तम रीतिसे सजाये हुये झूलन पर सखियोंके झुण्डमें बैठकर सुशोभित हुये ॥१३॥

आन्दोलयामासुरतीवपुण्याः सख्यस्तयोः प्रेमनिमग्नचित्ताः ।
काश्चिज्जगुर्ह्लादकरं मनोज्ञं मल्हाररागं रसवर्द्धनं च ॥१४॥

तब दोनों सरकारके प्रेममें डूबे हुये चित्त वाली, अत्यन्त पुण्य शीला सखियाँ उन श्रीयुगल सरकारको झुलाने लगीं और कुछ आह्लाद वर्द्धक, मनोहर, आनन्दकी वृद्धि करनेवाला मल्हार राग गाने लगीं ॥१४॥

काश्चिच्च वाद्यानि सुवादयन्त्यो दृक्सम्पुटाभ्यां स्म पिबन्ति हृष्टाः ।
स्वरूपमाधुर्यसुधां तयोश्च कृपैकलभ्यां न हि यत्नसिद्धाम् ॥१५॥

और कुछ सखियाँ अनेक बाजोंको सुन्दर रीतिसे बजाती हर्षित हो, केवल कृपासे ही प्राप्त

होने योग्य, अन्य साधनोंसे मिलनेको असम्भव, श्रीयुगल सरकारकी स्वरूपकी माधुरी रूपी सुधाको अपने नेत्र रूपी दोनों द्वारा पान करने लगीं ॥१५॥

काश्चिन्मयूरीव घनं निरीक्ष्य सौदामिनीदामसमावृतं च ।
सहप्रियं प्रेष्ठमतुल्यरूपं विलोकयन्त्यो ननृतुः स्त्रियस्ताः ॥१६॥

बिजलीकी मालाको धारण किये हुये, मेघको देखकर जैसे मोरनी नाचने लगती हैं वैसे ही श्रीकिशोरीजीके सहित प्राणप्यारेजूके अतुल्य रूप (तुलनामें न आसकने योग्य सौन्दर्य) का दर्शन करती हुई वे सभी सखियाँ नाचने लगीं ॥१६॥

आनन्दमत्ताः पुलकायमाना अपास्तदेहस्मृतयो मृगाक्ष्यः ।
जडीकृता रूपसुधैकपानाद्विहारिणा प्रेष्ठतमेन सख्यः ॥१७॥

वे मृगलोचना सखियाँ, आनन्दमें मस्त, पुलकायमान होती हुई, अपने शरीरकी सुधि बुधि भुला गयीं, झूलनविहारी श्रीप्राणप्यारे सरकारने अपनी रूप माधुरीके पानसे सभी सखियोंको जड़ (चैतन्यावस्था रहित) बना दिया ॥१७॥

काश्चिच्च पुष्पाणि सुसौरभानि तयोरुपर्युत्तमकानि भूयः ।
जयेति सम्भाष्य निगूढभावा हर्षप्रकर्षाद्ववृषुः समेताः ॥१८॥

तदनन्तर छिपे हुये भाववाली कुछ सखियाँ सावधान और संमिलित होकर हर्षबाहुल्यके कारण, जय जय शब्द कहकर, सुन्दर सुगन्ध युक्त उत्तम फूलोंकी वर्षा दोनों श्रीयुगल सरकार पर करने लगीं ॥१८॥

प्रियां तदाऽऽन्दोलयितुं किलेशो ब्रह्मादिकानां स्वयमेव कामम् ।
संप्रार्थयामास विनम्रभावः कृताञ्जलिस्ताश्च सखीः प्रियायाः ॥१९॥

उस समय ब्रह्मादिकों पर भी शासन करने वाले प्राणप्यारे सरकार, श्रीप्रियाजूको अपने हाथसे स्वयं झुलानेकी इच्छासे, विनम्र भाव हो, श्रीप्रियाजूकी उन (झुलाने वाली) सखियोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे ॥१९॥

श्रीराम उवाच ।

यूयं हि धन्याः कृतपुण्यपुञ्जाः सख्यः प्रियायाः करुणापयोधेः ।
सेवारताः श्रीनिमिवंशजाता भद्रं सदा वः खलु तत्सुखिन्यः ॥२०॥

अरी सखियों ! आप लोगोंका सदा ही मङ्गल हो क्योंकि आप लोगोंने पूर्वजन्ममें पुण्यपुञ्ज

(जप, तप, व्रत यज्ञ, दान, पाठ, पूजा आदि समस्त सत्कर्मों) को विधिवत् किया है, अतएव आप लोग निमिवंशमें जन्म लेकर करुणालया श्रीकिशोरीजीके ही सुखमें सुख मानने वाली, उनकी सेवा परायणा सखी हुई हैं, अतः निश्चय ही आप सब धन्य हैं ॥२०॥

ज्ञात्वा निजं भूरिनतं प्रियायाः सम्बन्धतो मामपि भूरिभागाः ।
सेवाधने कश्चिदनुग्रहेण स्वकीयके यच्छत भागमद्य ॥२१॥

अरी बड़भागिनी सखियों ! आप लोग श्रीप्रियाजूके सम्बन्धसे हमें अपना समझकर अपने सेवा रुपी धनमें से कुछ थोड़ा सा भाग, आज कृपा करके हमें भी प्रदान करो ॥२१॥

श्रीशिव उवाच ।

एतत्समाकर्ण्य वचः प्रियस्य निगूढभावान्वितमार्यसूनोः ।
उरः स्पृशं वाक्यविदां वरिष्ठा आन्दोलयेति प्रियमूचुराल्यः ॥२२॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः—हे प्रिये ! अत्यन्त गूढ भाव युक्त, अपने हृदयको अत्यन्त प्रिय लगने वाले श्रीप्यारेजूके इस वचनको सुनकर, वार्त्ताका अर्थ समझनेमें परम चतुर वे सखियाँ बोलीं:– हे श्रीप्राणप्यारेजू ! आप भी "झुला लीजिये" ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

निदेशमासाद्य तदा सखीनां सस्मेरपार्वेन्दुनिभाननानाम् ।
श्रीकोशलाधीशसुतो ऽवतीर्य मणिचितौ पाणिगृहीतरज्जुः ॥२३॥

भगवान शिवजी बोलेः–हे प्रिये ! मुसकान युक्त चन्द्रमुखी सखियोंकी आज्ञा पाकर श्रीकोशलेन्द्र-कुमार सरकारने झूलनसे मणिरचित भूमि पर उतरकर, अपने हस्त कमलसे झूलनकी डोरी पकड़ ली ॥२३॥

आन्दोलयामास विशुद्धभावो विगाढभावेन रसैकमूर्त्तिः ।
अशेषदिव्याभरणाञ्चिताङ्गो निःशेषदिव्याभरणाञ्चिताङ्गीम् ॥२४॥

अपने श्रीअङ्गोंमें सम्पूर्ण भूषणोंको धारण किये हुये विशुद्ध (ब्रह्म) भाव युक्त, श्रीप्राणप्यारे सरकारजी नखसे शिखा पर्यन्त सभी दिव्य भूषणोंको श्रीअङ्गोंमें धारण किये हुई रसकी उपमा रहित मूर्ति, श्रीकिशोरीजीको झुलाने लगे ॥२४॥

पीताम्बरः श्यामल एक एकां नीलाम्बरां हाटकगौरमूर्त्तिम् ।
सुखैकधामा सुभगः किरीटी सुखैकरूपां मणिचन्द्रिकाढ्याम् ॥२५॥

तडिन्निभां मेघनिभः शुभां शुभो नीलाम्बुजाक्षीमरविन्दलोचनः।
ताटङ्ककर्णां मणिकुण्डलश्रुतिः कान्तां स कान्तः कमनीयविग्रहाम् ॥२६॥

श्यामशरीर, अद्वितीय (उपमारहित), पीताम्बर धारण किये हुये सुखके धाम, सर्वसौन्दर्य, सम्पन्न किरीट धारी, मेघवर्ण, मङ्गलमय, अरुण कमल दललोचन, कानोंमें मणिमय कुण्डल धारण किये हुये, श्रीप्राणप्यारेजू, तुलनासे रहित, सुवर्णके समान गौर वर्ण, नीलाम्बर धारण किये हुई, सम्पूर्ण सुखोंकी सर्वश्रेष्ठ मूर्त्ति, मणिमय चन्द्रिकासे विभूषित, बिजलीके समान कान्तिसे युक्त, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, नीलकमलदललोचना, अत्यन्त मनन्हरण, सुन्दर, विश्वविमोहनविग्रहा, कर्णफूल कानोंमें धारण किये हुई श्रीप्रियाजूको ॥२५, २६॥

प्रेम्णाऽतिगाढ़ेन सखीनिकाये तद्रूपमाधुर्यमवेक्षमाणः।
आन्दोलयंस्तां न जगाम तृप्तिं श्रीकोशलाधीशसुतप्रधानः ॥२७॥

सखियोंके मुण्डमें अत्यन्त गाढ़ प्रेमपूर्वक प्रधान (ज्येष्ठ) श्रीकोशलराजकुमार प्यारेजू, श्रीप्रियाजूकी स्वरूपमाधुरीका पान करते और झुलाते हुये तृप्त न हो सके ॥२७॥

हर्षप्रमत्ताश्च बभूवुराल्यो जयेति रम्यां गिरमुच्चरन्त्यः।
मुहुर्मुहुस्ताः कुसुमान्यवर्षन्नुत्फुल्लनीलाम्बुजपत्रनेत्राः ॥२८॥

सरकारको झुलाते हुये देखकर, पूर्ण खिले नीले कमलपत्रके समान विशाल लोचना सखियाँ, मङ्गलमय जय जय शब्द बारं बार उच्चारण करती हुई, हर्षसे पागल हो गयीं, अतः वे दोनों सरकार पर फूल बरसाने लगीं ॥२८॥

दिव्यं प्रसूनं ववृषुश्च देवाः संशुश्रुवे दुन्दुभिनिःस्वनश्च।
सुधाकणान्सूक्ष्मतरानवर्षन् विनद्य मन्दं मधुरं पयोदाः ॥२९॥

देवगण दिव्य (कल्पवृक्षके) फूलोंको बरसाने लगे, नगाड़ोंका शब्द सुनाई देने लगा, मेघ गर्जना करके धीरे धीरे अत्यन्त नन्हें नन्हें अमृत कणोंको बरसाने लगे ॥२९॥

आमोदमादाय ववुश्च वाताः सुशीतलाः सत्वरताविहीनाः।
मधुव्रताः पङ्कजशङ्किनश्च परिभ्रमन्ति स्म तयोः पुरस्तात् ॥३०॥

शीतल, मन्द, सुगन्ध हवाएँ चलने लगीं, मुख, नेत्र, हस्त-पादारविन्दादि के दर्शन करते हुये कमल पुष्पोंकी आशङ्कासे, भौंरे दोनों सरकारके आगे घूमने लगे ॥३०॥

(जप, तप, व्रत यज्ञ, दान, पाठ, पूजा आदि समस्त सत्कर्मों) को विधिवत् किया है, अतएव आप लोग निमिवंशमें जन्म लेकर करुणालया श्रीकिशोरीजीके ही सुखमें सुख मानने वाली, उनकी सेवा परायणा सखी हुई हैं, अतः निश्चय ही आप सब धन्य हैं ॥२०॥

ज्ञात्वा निजं भूरिनतं प्रियायाः सम्बन्धतो मामपि भूरिभागाः ।
सेवाधने कश्चिदनुग्रहेण स्वकीयके यच्छत भागमद्य ॥२१॥

अरी बड़भागिनी सखियों ! आप लोग श्रीप्रियाजूके सम्बन्धसे हमें अपना समझकर अपने सेवा रूपी धनमें से कुछ थोड़ा सा भाग, आज कृपा करके हमें भी प्रदान करो ॥२१॥

श्रीशिव उवाच ।

एतत्समाकर्ण्य वचः प्रियस्य निगूढ़भावान्वितमार्यसूनोः ।
उरः स्पृशं वाक्यविदां वरिष्ठा आन्दोलयेति प्रियमूचुरात्यः ॥२२॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः–हे प्रिये ! अत्यन्त गूढ़ भाव युक्त, अपने हृदयको अत्यन्त प्रिय लगने वाले श्रीप्यारेजूके इस वचनको सुनकर, वाणीका अर्थ समझनेमें परम चतुर वे सखियाँ बोलीं:– हे श्रीप्राणप्यारेजू ! आप भी "भुला लीजिये" ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

निदेशमासाद्य तदा सखीनां सस्मेरपार्वेन्दुनिभाननानाम् ।
श्रीकोशलाधीशसुतो ऽवतीर्य मणिचितौ पाणिगृहीतरज्जुः ॥२३॥

भगवान शिवजी बोलेः–हे प्रिये ! मुसकान युक्त चन्द्रमुखी सखियोंकी आज्ञा पाकर श्रीकोशलेन्द्र-
'८ सरकारने भूलनसे मणिगचित भूमि पर उतरकर, अपने हस्त कमलसे भूलनकी डोरी
५४०० ली ॥२३॥

आन्दोलयामास विशुद्धभावो विगाढ़भावेन रसैकमूर्त्तिः ।
अशेपदिव्याभरणाञ्चिताङ्गो निःशेपदिव्याभरणाञ्चिताङ्गीम् ॥२४॥

अपने श्रीअङ्गोंमें सम्पूर्ण भूषणोंको धारण किये हुये विशुद्ध (अद्य) भाव युक्त, श्रीप्राणप्यारे
.जी नखसे शिखा पर्यन्त सभी दिव्य भूषणोंको श्रीअङ्गोंमें धारण किये हुई रसकी उपमा
रहित मूर्ति, श्रीकिशोरीजीको भुलाने लगे ॥२४॥

पीताम्बरः श्यामल एक एकां नीलाम्बरां हाटकगौरमूर्त्तिम् ।
सुमेरुधामा सुभगः किरीटी सुखैकरूपां मणिचन्द्रिकाढ्याम् ॥२५॥

तडिन्निभां मेघनिभः शुभां शुभो नीलाम्बुजाक्षीमरविन्दलोचनः ।
ताटङ्ककर्णां मणिकुण्डलश्रुतिः कान्तां स कान्तः कमनीयविग्रहाम् ॥२६॥

श्यामशरीर, अद्वितीय (उपमारहित), पीताम्बर धारण किये हुये सुखके धाम, सर्वसौन्दर्य, सम्पन्न किरीट धारी, मेघवर्ण, मङ्गलमय, अरुण कमल दललोचन, कानोंमें मणिमय कुण्डल धारण किये हुये, श्रीप्राणप्यारेजू, तुलनासे रहित, सुवर्णके समान गौर वर्ण, नीलाम्बर धारण किये हुई, सम्पूर्ण सुखोंकी सर्वश्रेष्ठ मूर्त्ति, मणिमय चन्द्रिकासे विभूषित, विजलीके समान कान्तिसे युक्त, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, नीलकमलदललोचना, अत्यन्त मन-हरण, सुन्दर, विश्वविमोहनविग्रहा, कर्णफूल कानोंमें धारण किये हुई श्रीप्रियाजूको ॥२५, २६॥

प्रेम्णाऽतिगाढेन सखीनिकाये तद्रूपमाधुर्यमवेक्षमाणः ।
आन्दोलयंस्तां न जगाम तृप्तिं श्रीकोशलाधीशसुतप्रधानः ॥२७॥

सखियोंके झुण्डमें अत्यन्त गाढ़ प्रेमपूर्वक प्रधान (ज्येष्ठ) श्रीकोशलराजकुमार प्यारेजू, श्रीप्रियाजूकी स्वरूपमाधुरीका पान करते और झुलाते हुये तृप्त न हो सके ॥२७॥

हर्षप्रमत्ताश्च बभूवुराल्यो जयेति रम्यां गिरमुच्चरन्त्यः ।
मुहुर्मुहुस्ताः कुसुमान्यवर्षन्नुत्फुल्लनीलाम्बुजपत्रनेत्राः ॥२८॥

सरकारको झुलाते हुये देखकर, पूर्ण खिले नीले कमलपत्रके समान विशाल लोचना सखियाँ, मङ्गलमय जय जय शब्द बार बार उच्चारण करती हुई, हर्षसे पागल हो गयीं, अतः वे दोनों सरपर फूल बरसाने लगीं ॥२८॥

दिव्यं प्रसूनं ववृषुश्च देवाः संशुश्रुवे दुन्दुभिनिःस्वनश्च ।
सुधाकणान्सूक्ष्मतरानवर्षन् विनद्य मन्दं मधुरं पयोदाः ॥२९॥

देवगण दिव्य (कल्पवृक्षके) फूलोंको बरसाने लगे, नगाड़ोंका शब्द सुनाई देने लगा, मेघ गर्जना करके धीरे धीरे अत्यन्त नन्हें नन्हें अमृत कणोंको बरसाने लगे ॥२९॥

आमोदमादाय ववुश्च वाताः सुशीतलाः सत्वरताविहीनाः ।
मधुव्रताः पङ्कजशङ्किनश्च परिभ्रमन्ति स्म तयोः पुरस्तात् ॥३०॥

शीतल, मन्द, सुगन्ध हवाएँ चलने लगीं, मुख, नेत्र, हस्त-पादारविन्दादि के दर्शन करते हुये कमल पुष्पोंकी आशङ्कासे, भौंरे दोनों सरकारके आगे घूमने लगे ॥३०॥

तदा चकोराश्च समेत्य तत्र सुविस्मिताश्चन्द्रमुखं निरीक्ष्य ।
क्वागतो ऽयं सुरलोकवासी कृत्वा कृपां चेति हि मेनिरे ते ॥३१॥

उस समय वहाँ आकर श्रीयुगल सरकारके मुखचन्द्रका दर्शन करके चकोर विस्मित हो गये, पुनः यह स्वर्ग लोकवासी हमारे प्रिय चन्द्रदेव, हम सब पर कृपा करके ही आज भूतलमें पधारे हैं, वे ऐसा मानने लगे ॥३१॥

अथेङ्गितं प्राप्य सुलब्धकामः प्रियाकराम्भोजगृहीतपाणिः ।
समारुरोहाशु पुनश्च तस्मिन्नान्दोलके पुष्पमये सुरम्ये ॥३२॥

इस प्रकार अपने मनोरथको भली भाँतिसे पूर्णकरके श्रीप्राणप्यारीजूके हस्तकमलं द्वारा अपना हाथ पकड़े जाने पर, श्रीप्रियतमजू श्रीप्राणप्यारीजूका संकेत पाकर पुनः उस मनोहर, पुष्पमय भूलन पर विराजमान हो गये ॥३२॥

एवं निकुञ्जे परिदोल्यमानौ सुदम्पती तौ सरयूर्विलोक्य ।
हर्षप्रवेगाज्जलमुत्क्षिपन्ती सुश्रावयामास रवं विचित्रम् ॥३३॥

इस प्रकार श्रीभूलनकुञ्जमें सखियोंके द्वारा भुलाये जाते हुये श्रीयुगलसरकारका दर्शन करके, हर्षकी विशेष वृद्धिके कारण जलको उछालती हुई, श्रीसरयूजी विचित्र ही शब्द सुनाने लगीं ॥३३॥

चक्रान् हंसततिं भषादीन् विचित्रमत्स्यान्परिधावमानान् ।
संक्रीडमानान्ससुखं मिथो वै प्रादर्शयत्स्वात्मनि संस्थितांश्च ॥३४॥

पुनः अपने उदरमें रहने वाले, दौड़ते और परस्पर क्रीडा करते हुये चकवा, हंस, मगर, विचित्र प्रकारके मत्स्य आदिकोंका दर्शन कराने लगीं ॥३४॥

तौ वीज्यमानौ परितः सखीभिः सुपुष्पकराणां व्यजनैः सुखार्हौ ।
आन्दोलके पुष्पमये विचित्रे विरेजतुस्तौ परिदोल्यमानौ ॥३५॥

चारों ओरसे सखियोंके द्वारा फूलके बने हुये पङ्खोंसे सेवित होते हुये, सदा ही सुखके योग्य, उन श्रीयुगलसरकारजू विचित्र, पुष्पमय भूलनपर भूलते हुये बहुत ही शोभाको प्राप्त हुये ॥३५॥

पुष्पाम्बरौ पुष्पविभूषणौ तौ सालस्यकाम्भोजदलायताक्षौ ।
विजृम्भमाणौ च मुहुर्मुहुस्ता उदीक्ष्य सरयो विनयेन चोचुः ॥३६॥

फूलोंके वस्त्र फूलोंके ही भूषण धारण किये आलस्य युक्त कमल नयन दोनो सरकारको बारंबार जम्हाई लेते हुये देखकर सखियाँ विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगी ॥३६॥

सख्य ऊचु ।

हे स्वामिनि ! प्रेयसि ! हे कृपालो ! प्राणेश ! राकाधिपमोहनश्रीः ! ।
भद्रं युवाभ्यां श्रमितौ स्थ इत्थं विसृज्यतां दोलमहोत्सवोऽयम् ॥३७॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! हे प्राणप्यारीजू ! हे कृपामयि ! हे प्राणनाथजू ! हे शरदपूर्णचन्द्रविमोहन कान्ति, श्रीकिशोरीजू ! आप दोनो सरकारका मङ्गल हो ! हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! अब आप निश्चय ही थक गये होंगे अत एव आजके इस झूलन महोत्सवको विसर्जन कीजिये ॥३७॥

श्रीशिव उवाच ।

विज्ञाय सा चेष्टितमम्बुजाक्ष्याः प्रियस्य चान्दोलगृहालिमुख्या ।
आज्ञां समादाय सुमुख्यकायाश्चन्द्रप्रभाया दुहितुः प्रविज्ञा ॥३८॥

भगवान शङ्करजी बोले हे प्रिये ! सखियोंके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करने पर झूलने कुञ्जकी प्रधान सखीने श्रीकमललोचना प्रियाजू तथा प्राणप्यारेजूका संकेत समझकर श्रीचन्द्रकलाजूकी आज्ञा पाकर ॥३८॥

प्रचक्र आन्दोलविसर्जनार्त्तिकं तदाह्निक गानसुयन्त्रवादनैः ।
पुष्पाञ्जलिं साऽर्प्य तदा शुभानना रोमाञ्चिताङ्गी निपपात पादयोः ॥३९॥

सुन्दर गान वाद्यके सहित उस दिनके झूलनकी विसर्जन-आरती की, पुनः वह मङ्गल मुखी सखी उस, समय पुष्पाञ्जलि समर्पण करके, रोमाञ्चित शरीर हो, श्रीयुगलसरकारके श्रीचरण कमलोंमे गिर पड़ी ॥३९॥

ततस्तु सर्वालिगणाः शुभास्याः प्राणेश्वरौ प्राणपरप्रियौ तौ ।
श्रीजानकीराघवयोः पदाब्जे सुकोमले संजगृहुः प्रणम्य ॥४०॥

इति त्रिंशोऽध्याय ।

उसके पश्चात् सभी मङ्गलमुखी सखियोंके वृन्दने अपने दोनों प्राणाधिक, प्राणनाथ, श्रीयुगल सरकारके सुन्दर, कोमल, श्रीचरणकमलोंको प्रणाम करके उन्हें पकड़ लिया ॥४०॥

अथैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

श्रीयुगल सरकारका श्रीसरयूजीके तटसे श्रीरत्नसिंहासन गृह-प्रस्थान ।

श्रीशिव उवाच ।

ततः परस्तान्निमिसूर्यवंश्यौ सौन्दर्यमाधुर्यमहासमुद्रौ ।
आन्दोलिकायाः परयन्त्रितायाः उतेरतुस्तौ स्मयमानवक्त्रौ ॥१॥

तदनन्तर निमि-सूर्यवंशी, सौन्दर्य माधुर्यके महान् समुद्र, जिनका मन्द-मन्द-मुस्कान युक्त, श्रीमुखारविन्द, आश्रितोंको आह्लाद प्रदान कर रहा है, वे श्रीयुगल सरकार उस झूलन परसे उतर गये ॥१॥

छत्रं समादाय कराम्बुजेन तावन्वगात्काचनपौष्पमेकम् ।
काश्चित्तयोः पार्श्वगता वराङ्ग्यो नीला स्वहस्ते व्यजनं विचित्रम् ॥२॥

कोई सखी उपमा रहित, फूलोंसे बनाये हुये छत्रको अपने हस्त कमलमें लेकर, दोनों सरकारके पीछे चली और कुछ श्रेष्ठलक्षण युक्त, अङ्ग वाली सखियाँ, विचित्र शोभा युक्त पङ्खोंको अपने हस्तमें धारण किये हुये, युगल सरकारके दोनों बगलमें चलने लगीं ॥२॥

सुचामरे हस्तगते च कृत्वा सख्यौ स्थिते दक्षिणपार्श्वके च ।
ताम्बूलपात्रं च पतद्ग्रहं च करे गृहीत्वाऽनुगते मनोज्ञे ॥३॥

दो सखियाँ चँवर अपने हाथमें लेकर श्रीयुगल सरकारके दाहिनी ओर खड़ी हुईं और कोई पानदान हाथमें लेकर आगे और कोई पीकदान लिये पीछे २ चलने लगीं ॥३॥

पुण्ड्रेक्षुखण्डानि नितान्तमिष्टान्यादाय तष्टानि सुसज्जितानि ।
फलानि चान्यानि मनोरमाणि तस्थुश्च काश्चिद्धृतरुक्मदण्डाः ॥४॥

कुछ सखियाँ अनेक मणिमय थालोंमें सजाये हुये, अत्यन्त मीठे छीले गन्नोंके टुकड़ों तथा फलोंको लेकर और कुछ सौभाग्यशालिनी, श्रीयुगल सरकारकी सेवा परायण सखियाँ, सुवर्णकी छड़ियोंको हाथमें लेकर अपने प्राणोंसे अधिक प्यारे दोनों सरकारके दाहिने बायें खड़ी हो गयीं ॥४॥

अरिक्तहस्ताभिरुभौ समेतौ वरांशुकाभूषणभूषिताभिः ।
संसेव्यमानौ परितः सुभक्त्या रमाविधात्रीगिरिजोपमाभिः ॥५॥

श्रीलक्ष्मीजी, श्रीविधात्रीजी, श्रीपार्वतीजी ही जिनकी उपमा देने योग्य हैं, उन श्रेष्ठ वस्त्र भूषणों

से भूषित सेवा वस्तु युक्त हस्तकमलवाली सखियोंके द्वारा, अनुराग पूर्वक चारों ओरसे सेवित होते हुये ॥५॥

प्रजग्मतुस्तौ पुलिने सरय्वा मत्तेभशार्दूलमरालगत्या ।
विचेरतुस्तत्र यथा सुखं च तदीयकल्लोलविलोलदृष्टी ॥६॥

मस्त हाथी और सिंहकी चालसे वे दोनों श्रीयुगल सरकार श्रीसरयूजीके किनारे पधारे, और वहाँ उनकी तरङ्गोंकी शोभा देखनेके लिये चञ्चल दृष्टि किए हुये सुखपूर्वक टहलने लगे ॥६॥

सरोजनेत्रौ तडिदम्बुदाभौ निरीक्ष्य तौ विश्वविमोहनाङ्गौ ।
मत्स्यादयो वीतभयाः समेतास्तयोः पुरस्ताज्जलजन्तवश्च ॥७॥

उसी समय मछली आदिक जलके जीव, कमल दलके समान विशाल सुन्दर नयन, मेघ और बिजुलीके सदृश कान्ति, विश्वविमोहन अङ्ग, उन दोनों सरकारका दर्शन करके, भय छोड़कर उनके सामने आगये ॥७॥

हंसा उपागत्य तयोः पदाब्जे लुठन्ति नृत्यन्त परिक्रमन्ति ।
स्पृष्टाश्च ताभ्यां जनजीवनाभ्यां निमील्य चञ्चूँषि कलं स्वनन्ति ॥८॥

हंस, पासमें आकर श्रीयुगल सरकारकी परिक्रमा करते हैं, पुनः आनन्दमें मस्त हो नृत्य करते हैं और श्रीचरण कमलोंमें लोटने लगते हैं, पुनः अपने भक्तोंके जीवन स्वरूप श्रीयुगल सरकारके श्रीचरणकमलोंका स्पर्श पाकर, वे आँख मीचकर सुन्दर बोली बोलने लगे ॥८॥

कादम्बकाद्या जलकुक्कुटाश्च समाययुर्वीतभयाः समेत्य ।
विक्रीडितुं तीव्रतरप्रमोदात्समन्ततस्तत्र तदा मयूराः ॥९॥

जल कुक्कुट (जलके मुरगा) बत्तख आदि मिलकर निर्भयता पूर्वक वहाँ आगये, एवं अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करनेके लिये आनन्दयुक्त, मोर भी चारों ओरसे श्रीयुगल सरकारके समीप आ पहुँचे ॥९॥

विभिन्नवर्णाश्च मृगाश्चकोरा विभिन्नवर्णाः शुकसारिकाश्च ।
आगत्य नाथौ परितोषयन्ति निजैर्निजैर्मुख्यगुणैः सुभक्त्या ॥१०॥

अनेक प्रकारके मृग, चकोर, शुक (तोता) सारिका (मैना) आदि आ-आकर अपने अपने मुख्य गुणोंके द्वारा बड़े ही प्रेमपूर्वक, अपने मालिक श्रीसीतारामजीको प्रसन्न करने लगे ॥१०॥

प्राणेश्वरौ तान्पदयोः प्रपन्नान् स्पर्शेन संभाव्य सहाशनेन ।
यथोचितं सत्कुरुतः स्म सर्वान् सरित्तटस्थावभिजातहर्षौ ॥११॥

श्रीसरयूजीके किनारे पर विराजमान, अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुये, श्रीयुगल सरकार अपने श्रीचरणोंमें आये हुये, उन बड़भागी जीवोंको स्पर्श व भोजन प्रदानके द्वारा संतुष्ट करके सभीका यथोचित सत्कार करने लगे ॥११॥

सुतर्पितांस्तानवलोक्य सख्यः प्रियाप्रियाभ्यां मधुरस्मिताभ्याम् ।
विज्ञापयामासुरतीवनम्राः श्रीरत्नसिंहासनसद्मवेलाम् ॥१२॥

मधुर मधुर मुसकाते हुये श्रीप्रियाप्रियतमजूके द्वारा, उन सभी आगन्तुक जीवोंको भली भाँति तृप्त किये देखकर, अत्यन्त विनम्रभावको ग्रहणकी हुई सखियोंने, श्रीरत्नसिंहासन नामक महलमें पधारनेकी, उपस्थित वेलाको, श्रीयुगल सरकारके लिये स्मरण करवाया ॥१२॥

प्रेष्ये तदैवाययतुः सकाशं श्रीजानकीश्रीरघुराजसून्वोः ।
श्रीरत्नसिंहासनमुख्यकायास्तौ नेमतुस्ते शिरसा निपत्य ॥१३॥

उसी समय श्रीरत्नसिंहासन कुञ्जकी प्रधान सखीकी दो दूतियाँ श्रीजनकनन्दिनी-रघुकुल-नन्दन श्रीसीतारामजूके पास आपहुँची, पुनः उन्होंने उनके श्रीचरणकमलोंमें गिरकर शिर झुकाके प्रणाम किया ॥१३॥

आज्ञां समादाय कृताञ्जली ते तावूचतुः प्राणपरप्रियौ च ।
वेला व्यतीतेति विचार्य सद्य संप्रेषिते स्वः किल मुख्यसख्या ॥१४॥

पुनः वे आज्ञा पाकर हाथ जोड़े हुए श्रीप्रियाप्रियतमजूसे बोलीं:-हे श्रीयुगल सरकार ! आपका, अपने उस महल पधारनेका समय व्यतीत हो गया विचार कर, हम लोगोंको (श्रीरत्नसिंहासनकी) मुख्य सखीजूने यहाँ भेजा है ॥१४॥

समागतैर्दर्शनलालसैश्च प्रियौ । जनैराकुलितो निकेतः ।
विना युवाभ्यां न हि शोभतेऽसौ यथाऽक्षिहीनं कमनीयगात्रम् ॥१५॥

हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आपके दर्शनोंकी अभिलाषासे आये हुये लोगोंसे वह रत्नसिंहासन भवन भर गया है, परन्तु बिना आपके इस प्रकारसे शोभाहीन प्रतीत होता है-जैसे दोनों नेत्रोंसे हीन सुन्दर शरीर ॥१५॥

मुहुर्मुहुर्मार्गमवेक्षमाणा दिदृक्षया व्यग्रमनाः सखी वाम् ।
कृपानिधे ! स्वामिनि ! हे किशोरि ! प्राणप्रिय ! प्रेष्ठ ! दयामयेति ॥१६॥
समुच्छ्वसन्ती प्रलपत्यधीरा नैवागताविद्युनाऽपि कस्मात् ।
कृत्वा कृपां शीघ्रमितो दयालू गन्तुं रुचिं धत्तमदः सुखाय ॥१७॥

वह आपके रत्नसिंहासनकी मुख्य सखी आपके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे बारं बार आगमनकी बाट देखती हुई व्यग्र चित्त होकर, "हे कृपा निधेजू ! हे श्रीस्वामिनीजू ! हे श्रीकिशोरीजू ! हे श्रीप्राणप्यारेजू ! हे प्रेष्ठ ! हे दयामय ! मेरे किस अपराधके कारण अभी तक आपने पधारनेकी कृपा नहीं की" ? इस प्रकार ऊर्ध्वश्वास लेती हुई वह, अधीर होकर प्रलाप कर रही है, अत एव हे दयालु सरकार ! अब कृपा करके उस सखीको सुखी करने के लिये यहाँसे शीघ्र श्रीरत्नसिंहासन भवन पधारनेकी रुचि करें ॥१६॥१७॥

श्रीशिव उवाच।

इत्येवमुक्ता सदयाम्बुजाक्षी हे प्रेष्ठ ! गच्छाव इतोऽचिरेण ।
प्रियं समाभाष्य समुत्थितेति दृष्ट्वोदतिष्ठद्दयितोऽपि तां सः ॥१८॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! इस प्रकारसे रत्नसिंहासन कुञ्जकी मुख्य सखीजूके द्वारा भेजी हुई सखियोंकी प्रार्थना सुनकर, वे दयापूर्ण कमल-लोचना श्रीकिशोरीजी, प्राणप्यारेजूसे :— हे प्यारे ! अब यहाँसे रत्नसिंहासन कुञ्ज शीघ्र पधारें, इतना कहकर श्रीप्रियाजू उठ खड़ी हुईं उन्हें उठी देखकर श्रीप्राणप्यारेजू भी उठ खड़े हुये ॥१८॥

सर्वाभिरारुह्य मृगेक्षणाभिर्विद्युज्जवं तौ तु महाविमानम् ।
आसेदतुस्तत्क्षणमेव दिव्यं श्रीरत्नसिंहासनमुख्यवेश्म ॥१९॥

विद्युज्जव (बिजलीके वेगके समान चलने वाले) विशाल विमान पर दोनों श्रीयुगलसरकार, सभी मृगनयनी सखियोंके साथ विराजमान होकर, क्षणमात्रमें ही उस रत्नसिंहासन नामके मुख्य दिव्य महलमें पहुँचे ॥१९॥

ध्वजापताकावरतोरणाढ्यं जाम्बूनदस्तम्भसहस्रयुक्तम् ।
गुल्मान्वितं दामविभूषितं च मनोहरं शक्रसभाधिकं तत् ॥२०॥

छोटे २ वृक्षोंकी पंक्तिसे युक्त, मालाओंसे सुसज्जित, सोनेके हजार खम्भोंसे शोभायमान,

ध्वजा-पताका तथा श्रेष्ठ वन्दनवारसे युक्त, जनसमुदायसे गुञ्जायमान, वह भवन ही बहुत सुन्दर प्रतीत हो रहा था ॥२०॥

चिरस्थिता द्वारि तदालिमुख्या कृत्वाऽऽर्त्तिकं हर्षनिमग्नचित्ता ।
उत्तार्य तस्मान्महतो विमानादारोप्य चान्यत्र सखीविमाने ॥२१॥
गृहान्तरं साऽनयदाशु हृष्टा सुदम्पती प्रेमनिधी स्मितास्यौ ।
सर्वाङ्गनाभिर्विपुलेक्षणाभिः पुष्पाम्बराभूषणमोहनाङ्गौ ॥२२॥

बहुत देरसे अपने द्वारपर खड़ी हुई श्रीरत्नसिंहासन कुञ्जकी वे मुख्य सखीजू श्रीयुगल सरकारके पधारने पर हर्ष निमग्न चित्त हो; आरती करके, विशाललोचना सखियोंके सहित, प्रेमके निधि, मुसकान युक्त मुखकमल, फूलोंके बनाये हुये वस्त्र भूषणोंसे अलंकृत, अपने श्रीअङ्गकी छटासे सारे जड़-चेतनोंको मोहित करने वाले, उन अनुपम सुन्दर दम्पती श्रीसीतारामजीको, उस विशाल विमानमें से उतार कर, दूसरे विमानमें हर्षपूर्वक बिठाकर अपने महलके भीतर ले गयीं ॥२२॥

आघ्राप्य धूपं च सुगन्धयुक्तं प्रादर्शयन्मङ्गलदीपमाली ।
निधाय सुस्वादुसुतेमनानि पुनश्च सौवर्णविशालपात्रे ॥२३॥
नैवेद्यहेतोर्नियताञ्जलिः सा समर्पयामास समादरेण ।
अनेकशः प्रार्थनया विनीता जलं सरय्वाश्चषके निधाय ॥२४॥

वहाँ पहुँचने पर उस सखीने सुन्दर गन्धयुक्त धूप सुँघाकर, मङ्गलमय दीपक श्रीयुगल सरकारको दिखया, पुनः सुवर्णके विशाल पात्र (थाल) में स्वादिष्ट व्यञ्जनोंको सजाकर तथा गिलासमें श्रीसरयू जल रखकर, बड़े ही आदर पूर्वक अनेक प्रकारकी प्रार्थनाके साथ-विनय भाव युक्त, हाथ जोड़ती हुई, उस प्रधान सखीने श्रीयुगल सरकारको नैवेद्य समर्पण किया ॥२३॥२४॥

यद्रोचते सुष्ठुतया प्रियाभ्यां ददाति सा तद्विपुलं स्म वस्तु ।
पुनः पुनः प्रार्थनयोरुभक्त्या श्रीजानकीपङ्क्तिरथात्मजाभ्याम् ॥२५॥

श्रीयुगल सरकार, जिन-जिन पदार्थोंको रुचि पूर्वक ग्रहण करते थे उन-उन पदार्थोंको वह सखी विशेष श्रद्धा और प्रार्थना पूर्वक बार बार अधिक रूपमें उन्हें समर्पण करने लगी ॥२५॥

सुस्वादयुक्तं त्वमृतोपमानं रुचिं समुत्प्रेक्ष्य ददौ सुतोयम् ।
त्यक्तामृतस्वादुरशनस्पृहाभ्यामकारयत्स्वाचमनं सभावम् ॥२६॥

पुनः उसने श्रीयुगलसरकारकी रुचि देखकर सुन्दर अमृतके समान स्वादयुक्त श्रीसरयूजलको उन्हें प्रदान किया। पश्चात् अमृतके समान हितकर स्वादयुक्त भोजन करनेकी इच्छा रहित हुये उन श्रीयुगलसरकारके लिये भाव पूर्वक आचमन करवाया ॥२६॥

प्रक्षाल्य पूर्णेन्दुमुखं च हस्तौ तयोः पयःपानमकारयत्सा।
ताम्बूलवीटीं पुनरेव दत्त्वा नीराजयामास सुदम्पती तौ ॥२७॥

तदनन्तर श्रीयुगलसरकारके पूर्ण चन्द्र सदृश विश्वसुखद श्रीमुखारविन्द, और हस्त कमलोंको धोकर दुग्धपान कराया पुनः उस सखीने पानका बीड़ा प्रदान कर, दोनों श्रीप्रियाप्रियतम सरकारकी आरती उतारी ॥२७॥

प्रदत्तपुष्पाञ्जलिरात्मनाथौ ननाम शीतांशुमुखी सुभक्त्या।
आश्वासिता सर्वदृगुत्सवाभ्यामवाप धैर्यं विरहाकुला सा ॥२८॥

तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि प्रदान कर, सुन्दर भक्ति पूर्वक वह चन्द्रमुखी (श्रीरत्नसिंहासन सदनकी मुख्य) सखीने, अपने दोनों श्रीस्वामिनी स्वामीजीको प्रणाम किया और बादमें होनेवाले विरहको याद करके वह उसी क्षण व्याकुल हो गयी पुनः प्राणियोंके नेत्रोंको उत्सवके समान विशेष आनन्द प्रदान करने वाले उन दोनो सरकारके आश्वासन देने पर उसने धैर्यको प्राप्त किया ॥२८॥

सहस्रपत्रस्य च मध्यदेशे वैडूर्यमुक्तामणिनिर्मितस्य।
महार्हरत्नाञ्चितदामयुक्ते श्रीरत्नसिंहासन आलिवृन्दैः ॥२९॥
निवेशितौ सादरमम्बुजाक्ष्या प्रियाप्रियौ प्राणधने मनोज्ञौ।
विरेजतुस्तौ विधुकोटिकान्ती सरोजहस्तौ सरसीरुहाक्षौ ॥३०॥

उस कमललोचना सखीने, वैडूर्य (लाल रङ्गकी मणि) मुक्ता और अन्यान्य मणियोंसे बनाये हुये, सहस्रदल कमलके मध्य भागमें बहुमूल्य रत्नोंसे सुशोभित, मालाओंसे शृङ्गार युक्त किये हुये, उस रत्नमयसिंहासन पर, सखी वृन्दोंके सहित दोनों प्राणधन, मनहरण श्रीप्रियाप्रियतमजूको विराजमान किया, उसपर कमलनयन, चन्द्रसे, करोड़ गुणा अधिक कान्ति युक्त श्रीयुगल प्रभु कमलको अपने हस्तमें लिये हुये बहुत ही शोभाको प्राप्त हुये ॥२९॥३०॥

स्कन्धार्पितस्निग्धभुजौ रसेशौ रसाश्रयौ कुञ्चितकुन्तलौ तौ।
सस्मेरकोटीन्दुमनोहरास्यौ बिम्बाधरौ पुष्करसन्निभाक्षौ ॥३१॥

तौ लज्जितानन्तरतिस्मरच्छवी विनीलपीतांशुकमण्डिताङ्गकौ ।
महार्हदिव्याभरणैश्चमत्कृतौ तडिद्घनस्पर्द्धिसुशोभनद्युती ॥३२॥
प्रकाशयन्तौ प्रभया सभागृहं सुपीतनीलोत्पलपाणिपल्लवौ ।
सखीसहस्रैर्जयतः सुसेवितौ श्रीजानकीदाशरथी प्रियाप्रियौ ॥३३॥

परस्पर एक दूसरेके कन्धे पर अपनी अत्यन्त सचिक्कण भुजाको रक्खे हुये, समस्त रसोंके स्वामी और कारण, कुञ्चित (घुँघुराले) केश युक्त, मन्द मुस्कानसे सुशोभित, करोड़ों चन्द्रमाओंको मुग्ध करने वाले श्रीमुखारविन्दसे युक्त, बिम्बाफलके सदृश अरुण अधर वाले तथा कमलके समान विशाल नयनसे सुशोभित, अपने श्रीअङ्गकी शोभासे अनन्त रति और कामके सौन्दर्यको लज्जित करने वाले, नीलाम्बर पीताम्बरसे विभूषित, बहुमूल्य दिव्य भूषणोंसे देदीप्यमान जिनके श्रीअङ्ग हैं, अपनी अति सुहावनी कान्तिसे बिजली और मेघको ईर्ष्या युक्त करने वाले, अपने करकमलोंमें नील पीत कमलको धारण किये हुए, सहस्रों सखियोंसे सेवित, दोनों श्रीयुगल सरकार, (श्रीजनक-नन्दिनीरघुनन्दन प्यारे) जू, अपने श्रीअङ्गकी कान्तिसे, उस सभा-भवन (श्रीरत्नसिंहासन कुञ्ज) को प्रकाश युक्त करते हुये सर्वोत्कृष्ट रुपसे विराजते हैं ॥३१॥३२॥३३॥

माधुर्यसौशील्यगुणोपपन्नौ लावण्यपाथोनिधिसत्कृतौ च ।
जगच्चकोरेन्दुसहस्रकल्पौ सुखास्पदौ प्राणपरप्रियौ तौ ॥३४॥
श्रीचन्द्रिकारत्नकिरीटयुक्तौ सुकुञ्चितस्निग्धशुभालकौ च ।
सुचर्चितस्निग्धविशालभालौ पञ्चेषुकोदण्डनिभभ्रुवौ तौ ॥३५॥
विशालकञ्जायतमोहनाक्षौ नासामणिद्योतितनासिकौ च ।
बिम्बाधरौ दाडिमचारुदन्तावादर्शसूक्ष्माङ्कितशुभ्रगण्डौ ॥३६॥
ताटङ्ककर्णोत्पलचित्तचोरौ सुकम्बुकण्ठौ सुनिगूढजत्रू ।
सकङ्कणस्निग्धभुजङ्गबाहू भजज्जनाभीतिकराब्जपाणी ॥३७॥
हारोपदिव्यद्दृढयप्रदेशौ काञ्च्याऽन्वितौ सूक्ष्मकटी सुजङ्घौ ।
रम्भोरुयुग्मौ सुनिगूढगुल्फौ सुनूपुरालङ्कृतपद्मपादौ ॥३८॥
सुधाकरश्रेणिनखौ मनोज्ञौ सतां गती सर्वनिषेव्यसेव्यौ ।
सिन्दूरपुञ्जाङ्घ्रितलौ प्रपर्पदप्रकृतानन्दसुधास्पदौ ॥३९॥

छत्रावृतौ स्मेरमृगाङ्कवक्त्रौ मन्दस्मितौ मङ्गलवीक्षणौ च ।
निजालिभिश्चामरसेव्यमानौ संपश्यतां दृङ्मनसी हरन्तौ ॥४०॥
सुसुन्दरौ वीक्ष्य जयेति चोक्त्वा नेमुश्च तौ प्रेमपरिप्लुताक्ष्यः ।
क्षणं तु निःशब्दमभूद्गृहं तज्जनाश्च तौ द्वौ स्तिमिता अपश्यन् ॥४१॥

जो दोनों सरकार चन्द्रिका और किरीटसे युक्त हैं, चिकनी, घुंघुराली मनोहर जिनकी अलकावली हैं, जिनके विशाल मस्तकपर चन्दन आदिकी खौर लगी हुई है। कामदेवके धनुषके समान जिनकी सुन्दर तिरछी भौंहें हैं ॥३५॥ कमलदलके समान जिनके विशाल व मनोहर नेत्र हैं। नासामणिके द्वारा जिनकी नासिका चमक रही है। बिम्बाफल (कुन्दरु) के समान लाल २ जिनके अधर व ओष्ठ हैं। अनारदानोंके समान जिनकी सुन्दर चमकदार दन्तपङ्क्ति है। शीशाके समान प्रतिबिम्ब ग्रहणकारी जिनके अलंकृत कपोल हैं ॥३६॥ कर्णफूल और कुण्डलोंकी शोभासे जो सभीके चित्तको चुरा रहे हैं। शङ्खके आकारका जिनका बड़ा ही सुन्दर कण्ठ (गला) है। गलेसे कण्ठतक आनेवाली हड्डी छिपी हुई है। सर्पके समान जिनकी चिकनी सुडौल भुजायें कङ्कण (कङ्गना) व कड़ेंसे विभूषित हैं। जिनके कर-कमल भक्तोंको अभयदायक हैं ॥३७॥ जिनका हृदयप्रदेश हार समूहोंसे प्रकाशित हैं। सिंहके समान जिनकी पतली कमर है। कमरमें करधनी धारण किये हैं। केलाके खम्भके समान चिकने, सुडौल, बिना रोमवाले, जिनके सुन्दर जङ्घे हैं। पैरकी गाँठे छिपी हुई हैं। जिनके श्रीचरणकमल नूपुरोंसे अलंकृत हैं ॥३८॥ चन्द्रपङ्क्तिके समान जिनके नखोंकी शोभा है। सज्जनोंके जो एकही आधारहैं तथा सभी सेवनीय ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिके लिए भी जो परम आराधनीय हैं। जिनके श्रीचरणकमल-के तलवे सिन्दूरकी ढेरीके समान लाल हैं। जिन दोनों सरकारका कटाक्ष, भगवदानन्दरूपी अमृतकी वर्षा कर रहा है ॥३९॥ छत्रसे आवृत पूर्णचन्द्रके सदृश सर्वाह्लादक, प्रकाशमय जिनका मुखारविन्द, है, जिनकी मन्द मुस्कान, व मङ्गलमय दर्शन है, अपनी सखियोंके द्वारा जो चँवरसे सेवित, तथा दर्शन करनेवालोंके जो नेत्र और मनको हरण करनेवाले हैं, अपने आश्रितोंपर प्रेमपूर्ण दृष्टि फेंकते हुये, उन दोनों सुन्दर श्रीयुगलसरकारका दर्शन करके, प्रेमाश्रु युक्त लोचना सखियाँ "जय हो, जय हो" ऐसा कहकर उन दोनोंको प्रणाम करने लगीं, उस समय क्षण मात्रके लिये सारा महल निःशब्दसा होगया, सब लोग मूर्त्तिके समान एकटक दृष्टिसे दोनों सरकारका दर्शन करने लगे ॥४०॥४१॥

तत्राययुः श्रीभरतादयोऽपि सर्वेऽनुजा भानुकुलोद्भवाश्च ।
पुरोकसां देवि ! तथैव पुत्राः प्रिया वयस्या अवलोकनाय ॥४२॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे देवि ! उस श्रीरत्नसिंहासन कुञ्जमें श्रीभरत, लषण, रिपुदमन आदि सभी सूर्यवंशमें जन्म लिये हुये भैया तथा सरकारके प्रियसखा, जो पुरवासियोंके पुत्र थे, वे भी सब वहाँ दर्शनोंके लिए आगये ॥४२॥

सम्मानितास्ते च कृतप्रणामाः सर्वे हि ताभ्यां परमादरेण ।
उपाविशंस्तेऽपि तदा निदेशात्कृपाकटाक्षेन निरीक्षिता द्राक् ॥४३॥

उन सबोंने श्रीयुगल सरकारको प्रणाम किया, दोनों सरकारने उनका बड़े ही आदर पूर्वक सम्मान किया, तब वे उनकी कृपाकटाक्षसे अवलोकित हो तथा आज्ञा पाकर समीपमें जा विराजे ४३

गुरूंश्च मातृः स्वयमेव भक्त्या प्रणेमतुस्तौ सुपवित्रकीर्त्ती ।
दासैर्मुदा वन्दितवारिजाङ्घ्री नीराजयामास गृहालिमुख्या ॥४४॥

दोनों सरकारके श्रीचरणकमलोंमें दासवर्गके हर्षपरिपूर्ण हृदयसे प्रणामकर लेनेपर, अत्यन्त पवित्र कीर्त्तिवाले, आप स्वयं श्रीयुगलसरकार श्रद्धापुरःसर अपने गुरु और मातृवर्गको प्रणामकिये, तदनन्तर प्रधान सखीने उनकी आरती की ॥४४॥

देवा मुनीन्द्रा ऋषयश्च सिद्धा गन्धर्वविद्याधरचारणाश्च ।
कलत्रिणः किन्नरनागयक्षा दिदृक्षयाऽथोऽप्सरसः सहर्षाः ॥४५॥
तत्राभ्युपेता अखिलाण्डनाथौ सोपायनाम्भोजकराः शुभाङ्गाः ।
उभौ नमस्कृत्य सुतुष्टुवुस्ते नमस्कृताः सादरमेव ताभ्याम् ॥४६॥

उस समय अपनी २ धर्मपत्नियोंके सहित देव, मुनीन्द्र, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्नर, नाग, यक्ष, अप्सरायें अखिल ब्रह्माण्डनायक श्रीयुगलसरकारका दर्शन करनेकी उत्कण्ठासे, अपने हाथोंमें अनेक प्रकारकी भेंट (उपहार) लिये, मङ्गलमय विग्रह धारण किये हुये वहाँ आगये। उन सबोंको श्रीयुगलसरकारने बड़े ही आदरपूर्वक नमस्कार किया । वे सभी दोनों सरकारको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥४५॥४६॥

त उदिताम्बुरुहायतलोचनौ प्रणयपूर्णकृपामृतवारिधी ।
करुणयाऽऽर्द्रदृशाऽनुकटाक्षिता विहितपङ्क्तिपदाः समुपाविशन् ॥४७॥

पुनः वे, उन कृपारूपी अमृतके समुद्र, प्रफुल्ल कमलके समान विशाल लोचन, श्रीयुगलसरकार की प्रेम पूर्ण दृष्टिका कटाक्ष प्राप्तकर, सुन्दर पङ्क्ति बाँधकर बैठ गये ॥४७॥

सख्यस्तदानन्दनिमग्नचित्ता दत्तांसबाहू समुदीक्ष्य कामम् ।
तावात्मनाथौ तडिदम्बुदाभावेकस्वरेणोचुरुदारभावाः ॥४८॥

उस समय बिजली और मेघके समान प्रकाशमान, परस्पर एक दूसरेके कन्धेपर भुजा रक्खे हुये, अपने दोनों श्रीस्वामिनी-स्वामीका दर्शन करके सखियोंके चित्त आनन्द समुद्रमें डूब गये; अतः ये सब उदारभावा (जिनका भाव सब कुछ प्रदान करने वाला बन जाता है, वे) एक स्वरसे बोलीः-॥४८॥

श्रीसख्य ऊचुः ।

सीरध्वजानन्दसुविग्रहाभ्यां श्रीकोशलाधीशदृगुत्सवाभ्याम् ।
स्वाभाविकाह्लादविवर्द्धनाभ्यां प्रियाप्रियौ ! वामनिशं सुभद्रम् ॥४६॥

श्रीसीरध्वज-महाराजके आनन्दकी सुन्दर मूर्ति, श्रीदशरथजी महाराजके नेत्रोंको उत्सवके सदृश नित्य आनन्दप्रद, अपने सहज स्वभावसे आश्रित प्राणियोंके आह्लादकी वृद्धि करने वाले हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारका सदा परम मङ्गल हो ॥४६॥

ताराधिपस्पर्द्धिशुभाननाभ्यामादर्शतुल्यद्युतिगण्डकाभ्याम् ।
प्रोत्फुल्लकञ्जाञ्जितलोचनाभ्यां प्रियाप्रियौ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५०॥

चन्द्रमाको अपने प्रकाश युक्त परम आह्लादप्रद मुखारविन्दकी छटासे और अपने कपोलोंकी प्रतिबिम्ब ग्रहण शक्तिसे शीशेको, ईर्ष्या (डाह) युक्त करने वाले, पूर्ण खिले कमलके समान विशाल अञ्जनयुक्त नयन, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारका सदा ही सुमङ्गल हो ॥५०॥

रामाजनैरञ्जितमस्तकाभ्यां बिम्बाधराभ्यां मधुरस्मिताभ्याम् ।
नासामणिद्योतितनासिकाभ्यां प्रियाप्रियौ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५१॥

सखियोंके द्वारा केशर और, तिलक आदि रचना युक्त किये हुये मस्तक, बिम्बा फलके समान लाल लाल अधर, मधुर मुस्कान, नासामणिसे प्रकाशित नासिका वाले हे श्रीप्रियाप्रियतमजू! आप दोनों सरकारका सतत सुमङ्गल हो ॥५१॥

माल्यैर्विचित्रैर्विविधैर्वृताभ्यां सकङ्कणस्निग्धकराम्बुजाभ्याम् ।
तडिद्घनाभाकृतिमोहनाभ्यां प्रियाप्रियौ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५२॥

विचित्र रचना युक्त अनेक प्रकारकी मालाओंसे ढके हुये वक्षः स्थल तथा कङ्कण युक्त सचि-

भगवान् शङ्करजी बोले—हे देवि ! उस श्रीरत्नसिंहासन कुञ्जमें श्रीभरत, लक्ष्मण, रिपुसूदन आदि सभी सूर्यवंशमें जन्म लिये हुये भैया तथा सरकारके प्रियसखा, जो पुरवासियोंके पुत्र थे, वे भी सब वहाँ दर्शनोंके लिए आगये ॥४२॥

सम्मानितास्ते च कृतप्रणामाः सर्वे हि ताभ्यां परमादरेण ।
उपाविशंस्तेऽपि तदा निदेशात्कृपाकटाक्षेण निरीक्षिता द्राक् ॥४३॥

उन सभोंने श्रीयुगल सरकारको प्रणाम किया, दोनों सरकारने उनका बड़े ही आदर पूर्वक सम्मान किया, तब वे उनकी कृपाकटाक्षसे अवलोकित हो तथा आज्ञा पाकर समीपमें जा विराजे ४३

गुरूंश्च मातृः स्वयमेव भक्त्या प्रणेमतुस्तौ सुपवित्रकीर्त्ती ।
दासैर्मुदा वन्दितवारिजाङ्घ्री नीराजयामास गृहालिमुख्या ॥४४॥

दोनों सरकारके श्रीचरणकमलोंमें दासवर्गके हर्षपरिपूर्ण हृदयसे प्रणामकर लेनेपर, अत्यन्त पवित्र कीर्त्तिवाले, आप स्वयं श्रीयुगलसरकार श्रद्धापुरःसर अपने गुरु और मातृवर्गको प्रणामकिये, तदनन्तर प्रधान सखीने उनकी आरती की ॥४४॥

देवा मुनीन्द्रा ऋषयश्च सिद्धा गन्धर्वविद्याधरचारणाश्च ।
कलत्रिणः किन्नरनागयक्षा दिदृक्षयाथोऽप्सरसः सहर्षाः ॥४५॥
तत्राभ्युपेता अखिलाण्डनाथौ सोपायनाम्भोजकराः शुभाङ्गाः ।
उभौ नमस्कृत्य सुतुष्टुवुस्ते नमस्कृताः सादरमेव ताभ्याम् ॥४६॥

उस समय अपनी २ धर्मपत्नियोंके सहित देव, मुनीन्द्र, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्नर, नाग, यक्ष, अप्सरायें अखिल ब्रह्माण्डनायक श्रीयुगलसरकारका दर्शन करनेकी उत्कण्ठासे, अपने हाथोंमें अनेक प्रकारकी भेंट (उपहार) लिये, मङ्गलमय विग्रह धारण किये हुये वहाँ आगये। उन सभोंको श्रीयुगलसरकारने बड़े ही आदरपूर्वक नमस्कार किया। वे सभी दोनों सरकारको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥४५॥४६॥

त उदिताम्बुरुहायतलोचनौ प्रणयपूर्णकृपामृतवारिधी ।
करुणयाऽऽर्द्रदृशाऽनुकटाक्षिता विहितपङ्क्तिपदाः समुपाविशन् ॥४७॥

पुनः वे, उन कृपारूपी अमृतके समुद्र, प्रफुल्ल कमलके समान विशाल लोचन, श्रीयुगलसरकार की प्रेम पूर्ण दृष्टिका कटाक्ष पाकर, सुन्दर पङ्क्ति बाँधकर बैठ गये ॥४७॥

सख्यस्तदानन्दनिमग्नचित्ता दत्तांसबाहू समुदीक्ष्य कामम्।
तावात्मनाथौ तडिदम्बुदाभावेकस्वरेणोचुरुदारभावाः ॥४८॥

उस समय बिजली और मेघके समान प्रकाशमान, परस्पर एक दूसरेके कन्धेपर भुजा रक्खे हुये, अपने दोनों श्रीस्वामिनी-स्वामीका दर्शन करके सखियोंके चित्त आनन्द समुद्रमें डूब गये; अतः वे सब उदारभावा (जिनका भाव सब कुछ प्रदान करने वाला बन जाता है, वे) एक स्वरसे बोलीं:-॥४८॥

श्रीसख्य ऊचुः।

सीरध्वजानन्दसुविग्रहाभ्यां श्रीकोशलाधीशदृगुत्सवाभ्याम्।
स्वाभाविकाह्लादविवर्द्धनाभ्यां प्रियाप्रियौ! वामनिशं सुभद्रम् ॥४९॥

श्रीसीरध्वज महाराजके आनन्दकी सुन्दर मूर्ति, श्रीदशरथजी महाराजके नेत्रोंको उत्सवके सदृश नित्य आनन्दप्रद, अपने सहज स्वभावसे आश्रित प्राणियोंके आह्लादकी वृद्धि करने वाले हे श्रीप्रियाप्रियतमजू! आप दोनों सरकारका सदा परम मङ्गल हो ॥४९॥

ताराधिपस्पर्द्धिशुभाननाभ्यामादर्शतुल्यद्युतिगण्डकाभ्याम्।
प्रोत्फुल्लकञ्जाञ्जितलोचनाभ्यां प्रियाप्रियौ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५०॥

चन्द्रमाको अपने प्रकाश युक्त परम आह्लादप्रद मुखारविन्दकी छटासे और अपने कपोलों की प्रतिबिम्ब ग्रहण शक्तिसे शीशेको, ईर्ष्या (डाह) युक्त करने वाले, पूर्ण खिले कमलके समान विशाल अञ्जनयुक्त नयन, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू! आप दोनों सरकारका सदा ही सुमङ्गल हो ॥५०॥

रामाजनैरञ्चितमस्तकाभ्यां बिम्बाधराभ्यां मधुरस्मिताभ्याम्।
नासामणिद्योतितनासिकाभ्यां प्रियाप्रियौ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५१॥

सखियोंके द्वारा केशर और, तिलक आदि रचना युक्त किये हुये मस्तक, बिम्बा फलके समान लाल लाल अधर, मधुर मुस्कान, नासामणिसे प्रकाशित नासिका वाले हे श्रीप्रियाप्रियतमजू! आप दोनों सरकारका सतत सुमङ्गल हो ॥५१॥

माल्यैर्विचित्रैर्विविधैर्वृताभ्यां सकङ्कणस्निग्धकराम्बुजाभ्याम्।
तडिद्घनाभाकृतिमोहनाभ्यां प्रियाप्रियौ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५२॥

विचित्र रचना युक्त अनेक प्रकारकी मालाओंसे ढके हुये वक्षः-स्थल तथा कङ्कण युक्त सचि-

करुण करकमल वाले, बिजुली और मेघकी कान्तिको अपने श्रीअङ्गकी छटासे मुग्ध करने वाले, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारके लिये सदा ही सुमङ्गल हो ॥५२॥

यतात्मभिर्भाव्यपदाम्बुजाभ्यां सुधाकरस्पर्द्धिनखद्युतिभ्याम् ।
महार्हदिव्याम्बरभूषिताभ्यां प्रियाप्रियौ वामनिशं ! सुभद्रम् ॥५३॥

जिन्होंने चित्तको अपने वशमें कर लिया है, उन्हें भी अपने जीवनकी सफलता-प्राप्तिके लिये जिनके श्रीचरण कमलोंकी भावना करना परमावश्यक है, जिनके नखकी कान्तिसे चन्द्रमा अपने मानभङ्गकी आशङ्कासे ईर्ष्या (डाह) करता है, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! बहुमूल्य दिव्य, प्रकाश युक्त वस्त्र और भूषणोंसे विभूषित, उन आप दोनोंका सतत काल सुमङ्गल हो ॥५३॥

मञ्जीरहाराङ्गदकण्ठभूषैरलङ्कृताभ्याममृतेक्षणाभ्याम् ।
कलापपीताम्बरबद्धकट्यौ ! प्रियाप्रियौ ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५४॥

नूपुर, हार, कण्ठा आदि भूषणोंके शृङ्गार युक्त अमृतके समान मृतकको जीवित कर देने वाली चितवनसे युक्त, २५ लड़की करधनी और पीताम्बरसे बँधी सुशोभित कमर वाले ! हे श्रीप्रिया-प्रियतमजू ! आप दोनों सरकारका सदा ही सुमङ्गल हो ॥५४॥

गजेन्द्रमुक्ताश्रितमण्डनाभ्यां सङ्गच्छिदाभ्यां ललितेक्षणाभ्याम् ।
तिरस्कृतासङ्ख्यरतिस्मराभ्यां प्रियाप्रियौ वामनिशं सुभद्रम् ॥५५॥

गजमुक्ता आदिसे जटित किरीट-चन्द्रिकादिभूषणोंके शृङ्गारसे युक्त, सब प्रकारकी आसक्ति को नष्ट करने वाले, मनोहर दर्शन, अपने छवि सौन्दर्यसे अनन्त रति और कामको लज्जित करने वाले, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारके लिये सदा ही मंगल हो ॥५५॥

लम्बाब्जदामाहितदीप्युरोभ्यां नवालिवृन्दैः समुपासिताभ्याम् ।
सचामरच्छत्रवृतानानाभ्यां प्रियाप्रियौ ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५६॥

लम्बी कमलकी मालासे देदीप्यमान वक्षः स्थल, नवीनसखी वृन्दोंसे सुसेवित, चँवर सहित छत्रसे ढके मुखारविन्द वाले, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारके लिये सर्वदा परम मङ्गल हो ॥५६॥

एवं वदन्तीषु सखीषु तासु त्वदृष्टवाणी श्रुतिगोचराऽभूत् ।
सा वर्ण्यते भक्तिरसप्रपूर्णा श्राव्या त्वयैकाग्रहृदाऽऽमलाब्धे ॥५७॥

इत्येकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

—: इति मासपारायण ४ समाप्तः—

भगवान शिवजी बोले—हे प्रिये! इस प्रकार उन सखियोंके मङ्गलानुशासन करते ही अदृष्ट (न दिखाई देनेवाली सखीकी) वाणी सभोंको सुनाई पड़ी, वह भक्तिके रसोंसे परिपूर्ण थी, अत एव उसे स्व स्वरूपकी प्राप्तिके लिये, आप भी एकाग्र हृदयसे श्रवण करें, मैं उसे वर्णन करता हूँ ॥५७॥

—❀❀❀—

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

जीता सखीकी विनयपत्रिका।

अदृष्टवाण्युवाच।

नमोऽस्तु ते खञ्जनलोचनायै विदेहवंशार्पभपुत्रिकायै।
नमोऽस्तु चन्द्रप्रभचन्द्रिकायै किशोरि! सर्वेश्वरि! मे प्रसीद ॥५८॥

अदृष्ट वाणी बोली :—हे सर्वेश्वरी! श्रीकिशोरीजू! जिनके चञ्चल नेत्र खञ्जन पक्षीके समान हैं, विदेहवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजकी जो सुपुत्री हैं, उन आपके लिये मैं नमस्कार करती हूँ, चन्द्रमाके समान प्रकाशमान चन्द्रिका वाली श्रीकिशोरीजी! आपके लिये मेरा नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥५८॥

ललन्तिकाशोभितमस्तकायै चलत्तडित्स्पर्द्धिसुकुण्डलायै।
मुक्तामणिद्योतितनासिकायै किशोरि! सर्वेश्वरि! मे प्रसीद ॥५९॥

ललन्तिका (मँगटीका) से शोभायमान भाल और चञ्चल बिजुली को लज्जित करने वाले देदीप्यमान कुण्डल मुक्तामणिसे प्रकाशमान जिनकी नासिका है, उन आपके लिये मैं नमस्कार करती हूँ। हे सर्वेश्वरि! श्रीकिशोरीजू! आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥५९॥

आदर्शसूक्ष्मामलगण्डकायै नमो रतिस्पर्द्धिमहाद्भुतायै।
राकाशशाङ्कप्रतिमाननायै किशोरि! सर्वेश्वरि! मे प्रसीद ॥६०॥

दर्पणके समान सूक्ष्म प्रतिबिम्ब ग्रहणशील निर्मल-कपोल, रतिसे स्पर्द्धा (डाह) कराने वाली महाछवि एवं शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान अत्यन्ताह्लाद प्रदायक मुखवाली हे सर्वेश्वरि श्रीकिशोरीजू! आपके लिये मैं नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये। ६०॥

बिम्बाधरायै नवकुन्ददत्यै दयासुधानिर्भरनीरजाक्ष्यै।
नमोऽस्तु ते कुञ्चितकुन्तलायै किशोरि! सर्वेश्वरि! मे प्रसीद ॥६१॥

बिम्बाफलके समान लाल अधर, नवीन कुन्दके समान सुन्दर दाँत, दयारूपी अमृतसे

लवालव कमलके सदृश विशाल लोचन तथा घुंघुराले केश वाली, हे सर्वेश्वरि ! श्रीकिशोरीजी ! आपके लिये मैं नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥६१॥

नमोऽस्तु ते नृत्यदतीवरम्यसरोरुहालङ्कृतपाणिपद्मे ।
सुवर्णसूत्रद्युतिमद्दुकूले ! किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥६२॥

हे नाचते हुये अत्यन्त सुन्दर कमलसे विभूषित हस्तकमले ! हे सुवर्णके धागोंके समान प्रकाशमान दुपट्टावाली ! हेसर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजू ! आपके लिये मेरा नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये।

नमो नमस्तेऽस्तु सवल्लभायै केयूरहारादिसमञ्चितायै ।
अनेकदिव्याम्बरभूषितायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥६३॥

केयूर (बाजूबन्द) हार आदिसे विभूषित, अनेक दिव्य वस्त्रोंसे अलंकृत, हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजू ! आपके लिये मेरा नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥६३॥

हारैरनेकैर्मणिमौक्तिकैश्च व्यलङ्कृतायै सततं नमस्ते ।
विभिन्नरत्नाञ्चितनूपुराढ्ये ! किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥६४॥

अनेक प्रकारके मणि और मोतियोंके हार शृङ्गरसे युक्त, विविध रत्नोंसे जटित नूपुरोंको धारण किये हुई, हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजू ! आपके लिये मेरा सदाही नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये।

मुनीन्द्रहंसाश्रितवारिजाङ्घ्रे ! प्रसूनसिंहासनराजितायै ।
नमो नमस्ते श्रुतिभिर्विमृग्ये ! किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥६५॥

हंसवृत्तिवाले मुनिराज जिनके श्रीचरणकमलोंकी शरणमें रहते हैं, वेदोंके द्वारा ही जिनका विशेष खोजकी जासकती है, फूलोंके सिंहासन पर विराजमान हुई, उन आप सर्वेश्वरी श्रीकिशोरी जीके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥६५॥

निकुञ्जकेल्युत्सुकमानसाभिर्विभूषणाढ्यालिभिरर्च्यमाने ।
नमोऽस्तु ते प्रेष्ठहृदालयायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥६६॥

भूषण भूषित, निकुञ्जकेलि (लीलाओं) के लिये उत्सुक मन वाली अपनी समस्त सखियों द्वारा पूजित होती हुई, हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी ! प्राणप्यारेजूके ! हृदय रूपी महलमें निवास करने वाली, आपके लिये मेरा नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥६६॥

प्राणेशनेत्रोत्सवविग्रहायै नमोऽस्तु ते शाश्वति ! शान्तिदायै ।
नमः प्रपन्नाभयदानशीले ! किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥६७॥

हे तीनों (भूत,भविष्य,वर्तमान) कालोंमें सदा अविचल रूपसे विद्यमान रहने वाली ! हे अपने शरणागत जीवोंके लिये अभय दान लुटाने वाली ! हे शान्ति प्रदान करने वाली ! हे श्रीप्राणनाथजू के नेत्रोंको, उत्पलके सदृश सदा स्वाभाविक, नूतन, आनन्द प्रदायक स्वरूप वाली, आपके लिये मेरा बारं बार नमस्कार है, हे सर्वेश्वरि ! हे श्रीकिशोरीजू ! आप मुझपर प्रसन्न होयिये ॥६७॥

नमोऽस्तु ते ब्रह्महरीशवन्द्ये ! त्वङ्गीकृतानाथसमाश्रितायै ।
नमोऽस्तु सर्वार्यगुणालयायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥६८॥

हे ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देवश्रेष्ठोंके प्रणाम करने योग्य श्री स्वामिनीजू ! अनाथ (जिनके केवल विश्वव्यापिनी आपही नाथ हैं दूसरा नहीं उन) शरणागत जीवोंको निश्चय स्वीकार करनेवाली आपके लिए मैं नमस्कार करती हूँ। समस्त-श्रेष्ठ गुणोंकी मन्दिर स्वरुपा हे सर्वेश्वरि श्रीकिशोरीजी ! मेरा आपके लिये नमस्कार है आप मुझपर प्रसन्न होयिये ॥६८॥

नमो नमस्तेऽस्तु गतामयायै तिरस्कृतानन्ततडित्प्रभायै ।
नमोऽस्तु राकेशकरस्मितायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥६६॥

मायिक विकार रूपी रोगोंसे रहित, अपने स्वाभाविक श्रीअङ्गके प्रकाशसे अनन्त बिजलियोंके प्रकाशको तुच्छ करने वाली, श्रीस्वामिनीजू ! आपके लिये नमस्कार है नमस्कार है हे सर्वेश्वरि! श्रीकिशोरीजू ! शरद्ऋतुके पूर्णिमाके चन्द्र किरणोंके समान परमाह्लाद प्रदायक जिनकी मन्द मुस्कान है, उन आपके लिये मैं नमस्कार करती हूँ आप मुझपर प्रसन्न होयिये ॥६६॥

नमो जगन्मोहनमोहनाङ्ग्यै कौतूहलाह्लादसुविग्रहायै ।
नमोऽस्तु ते रञ्जितसंश्रितायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥७०॥

सारे स्थावर जंगम प्राणियोंको अपनी छवि माधुरीसे मुग्ध करनेवाले प्राणप्यारे (श्रीराममद्र) जूको भी मोहित करनेवाले श्री अङ्गोंवाली, आश्चर्य और आह्लाद की सुन्दर मूर्ति स्वरुपा, श्रीस्वामिनीजू ! आपके लिये मेरा नमस्कार है, हे आश्रितोंको सब प्रकारसे सुखी करनेवाली हे सर्वेश्वरि ! श्रीकिशोरीजी ! आपकेलिए मैं नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होयिये ॥७०॥

नमोऽस्तु ते राघवपट्टकान्ते ! रासेश्वरि ! स्निग्धसुकोमलाङ्गि ! ।
कारुण्यपीयूषसमुद्ररूपे ! किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥७१॥

हे श्रीरघुनन्दनजूकी पट्ट महिषी (पटरानी) ! हे श्रीरासेश्वरि (भगवत्सम्बन्धी) (भक्तों) की

स्वामिनी) जू ! हे अत्यन्त सचिक्कण सुकोमल श्रीअङ्गो वाली ! हे करुणामृत रससागरे ! हे सर्वेश्वरि श्रीकिशोरीजी ! आपके लिये मेरा नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होयिये ॥७२॥

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः कृपाक्षमौदार्यगुणालयायै ।
मनोहरस्मेरसुधांशुमुख्यै किशोरि ! सर्वेश्वरि मे ! प्रसीद ॥७२॥

हे सर्वेश्वरि श्रीकिशोरीजी कृपा क्षमा उदारता गुणोंका मन्दिर, मनोहर मन्द मुस्कान युक्त चन्द्रमुखी आपके लिये मेरा सहस्रों (हजारों) बार नमस्कार है प्रणाम है आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥७२॥

नमोऽस्तु ते सर्वजगद्धितायै कौशेयदिव्याम्बरभूषितायै ।
अजात्मजज्येष्ठसुतप्रियायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥७३॥

सभी स्थावर जङ्गम प्राणियोंका हितकरनेवाली, रेशमी दिव्यवस्त्र, भूषणोंसे भूषित, श्रीदशरथजी महाराजके ज्येष्ठ राजकुमारजूकी प्राणवल्लभा हे सर्वेश्वरि श्रीकिशोरीजी आपके लिये मेरा नमस्कार है आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥७३॥

नमोऽस्तु सीरध्वजपुत्रिकायै विदेहवंशाब्जरविप्रभायै ।
दयार्द्रफुल्लाम्बुजलोचनायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥७४॥

हे विदेह वंशरूपी कमलको सूर्यकी प्रभाके समान प्रफुल्लित करने वाली ! हे श्रीसीरध्वज नन्दिनीजू ! हे दयासे गीले प्रफुल्लित कमलके समान विशाल लोचनोंसे युक्त हे सर्वेश्वरि श्रीकिशोरीजी ! आपके लिये मैं नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥७४॥

नमो नमस्तेऽस्तु मृदुस्मितायै समस्तमाङ्गल्यगुणालयायै ।
निजाश्रितेभ्योऽखिलकामदात्र्यै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥७५॥

अत्यन्त मृदु (मन्द, हृदयाकर्षक) मुस्कान वाली हे समस्त मङ्गल (दया,क्षमा, शील, वात्सल्य गाम्भीर्य, सौहार्द, औदार्य आदि) गुणोंकी मन्दिर स्वरूपा अपने आश्रितोंके लिये समस्त मनोरथोंको प्रदान करने वाली, हे सर्वेश्वरि ! श्रीकिशोरीजी ! मैं आपके लिये बारंबार नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥८५॥

कनकभवननित्यानन्तसन्दानहेतो ! विमलकमलनेत्रे ! सच्चिदानन्दरूपे ।
भवतु शरणमेवाम्भोजपादौ भवत्याः सपदि सदयचित्ते ! भूरिशम्ने नमोऽस्तु ७६

हे श्रीकनक भवनके अविचल आनन्दकी कारण स्वरूपे ! हे अमल पद्मके समान विशाल नेत्रों

से भूषित संत ! हे चित्‌ आनन्द रूपिणी ! हे दया परिपूर्ण हृदय वाली ! हे सर्वेश्वरि श्रीकिशोरीजी ! मैं आपके लिये बारंबार नमस्कार करती हूँ अब आपका अति सुकोमल, श्रीचरणकमल आपकी प्राप्तिके लिये मेरा शीघ्र उपाय बने ॥७६॥

यावन्न धास्यामि शिरः पदाब्जयोर्ब्रह्मादिदेवैर्हृदि भावनीययोः।
भजज्जनाभ्यर्थितकल्पवृक्षयोस्तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७७॥

ब्रह्मादि देवताओंको भी अपनी कल्याण सिद्धिके लिये हृदयमें जिनकी भावना (चिन्तन) करना आवश्यक है, जो भक्तोंके मनोवाञ्छित अर्थको कल्पवृक्षके सदृश तत्क्षण प्रदान करने वाले हैं, उन आपके श्रीचरणकमलोंमें मुझे अपना शिर रखनेको जब तक सौभाग्य नहीं प्राप्त होगा, तब तक किसी प्रकार भी मुझको अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥७७॥

यावन्न पश्यामि निजात्मनः प्रियौ यथेप्सितं दृष्टिपथं गतावुभौ।
मनोहरौ सर्वदृगुत्सवाकृती तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७८॥

जब तक अपनी आँखोंके सामने प्राप्त हुये, सभीके नेत्रोंको उत्सवके सदृश नूतन सुख प्रदायक विग्रह वाले, मनहरण, अपने दोनों प्राणप्यारे श्रीयुगल सरकारका मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मेरे हृदयको कभी भी शान्ति न मिलेगी ॥७८॥

यावन्न कञ्जायतचारुलोचनौ दयानिधाने सुषमामहाम्बुधी।
गमिष्यतो दृष्टिपथं च मे प्रभू तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७९॥

कमलके समान आह्लाद गुण युक्त विशाल नयन, दयानिधान, निरतिशय सौन्दर्य (जिससे बढ़कर और कोई सुन्दरता हो ही न सके उस) के महासमुद्र, असम्भवको सम्भव करनेमें पूर्ण समर्थ श्रीयुगल सरकारजू जब तक हमें अपना दर्शन नहीं प्रदान करेंगे, तब तक मुझे शान्तिकी प्राप्ति न हो सकेगी ॥७९॥

यावन्न राकेशनिभाननावुभौ तडित्पयोदप्रतिमद्युती स्वयम्।
प्रदास्यतो दर्शनमात्मनो विभू तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८०॥

शरदऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य परम आह्लाद प्रदायक, उज्वल प्रकाशमय मुख, बिजली और मेघके समान श्यामगौर कान्ति वाले, विश्वरूप, श्रीजनकनन्दिनी रघुनन्दन प्यारेजू दोनों जब तक स्वयं मुझे दर्शन नहीं प्रदान करेंगे, तब तक मेरे लिये अब कहीं भी शान्ति न मिलेगी ॥८०॥

यावन्न दिव्याम्बरभूषणाश्रितौ चलत्तडित्कुण्डलशोभिगण्डकौ ।
पश्यामि दृग्भ्यां रजनीकराननौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८१॥

दिव्य वस्त्र और भूषणोंको धारण किये हुये, बिजलीके समान चमकदार चञ्चल कुण्डलोंसे शोभित कपोल, चन्द्रवदन श्रीयुगलसरकारका जब तक मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मुझे अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥८१॥

यावन्न वीक्षे सुमनोहरच्छवी विनीलपीतांशुकधारिणावहम् ।
किरीटरत्नाश्रितचन्द्रिकान्वितौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८२॥

जिनकी सुन्दरता अत्यन्त मनोहरण है, नील-पीत रङ्गके सुन्दर दिव्य वस्त्रोंको जो धारण किये हुये हैं, किरीट व अनेक रत्नोंसे जटित चन्द्रिकासे जिनके शिर शोभायमान हैं, उन श्रीयुगलसरकारको जब तक मैं अवलोकन नहीं करूँगी, तब तक मेरे लिये कहीं भी अब शान्ति न मिलेगी ॥८२॥

यावन्न हाराङ्गदनिष्ककिङ्किणीयुकङ्कणाद्यादिविभूषितौ प्रियौ ।
वीक्षे दृशा कोटितडिन्निभद्युती तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८३॥

अनेक प्रकारके हार, बाजूबन्द, कण्ठा, करधनी, सुन्दर कङ्कण, चूड़ी आदि भूषणोंसे विभूषित करोड़ों बिजुलीके समान कान्ति वाले, अपने दोनों सरकारको जब तक मैं अपनी आँखोंसे नहीं देखूँगी, तब तक मुझे कभी भी अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥८३॥

यावन्न कान्ताङ्कगतां शुभेक्षणां दयामयीं श्रीमिथिलेशनन्दिनीम् ।
वीक्षे दृशा पद्मपलाशलोचनां तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८४॥

श्रीप्राणप्यारेजूकी गोदमें विराजमान, मङ्गलमयी चितवन वाली, दयास्वरूपा, कमल पत्रके समान विशाल लोचना श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीको, जब तक मैं अपने इन नेत्रोंसे नहीं देखूँगी तब तक अब मुझे कभी भी शान्ति न मिलेगी ॥८४॥

यावन्न दिव्याम्बरभूषणान्वितां धृतप्रियांसाम्बुजशोभिहस्तकाम् ।
वीक्षे दृशा स्वालिगणैर्विराजितां तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८५॥

दिव्य वस्त्र और भूषणोंसे भूषित, प्राणप्यारेजूके कन्धे पर कमलसे शोभायमान हाथ रक्खे हुये, अपनी सखियोंके समूहमें विराजमान हुई, श्रीकिशोरीजीका मैं जब तक अपने इन नेत्रोंसे दर्शन नहीं करूँगी, तब तक मुझे कभी भी अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥८५॥

यावन्न सूक्ष्माम्बरभूषणान्वितां स्वल्पालसां तल्पगतां प्रियान्विताम् ।
प्रक्षालितास्यामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८६॥

अल्प वस्त्र भूषणोंको धारण किये हुई, किञ्चित् आलस्ययुक्त, प्राणप्यारेजूके सहित, अपनी प्रधान सखियों द्वारा प्रक्षालितमुख वाली, श्रीकिशोरीजीका जब तक मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मुझको कभी भी अब शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥८६॥

यावन्न भक्त्याऽऽलिगणैर्नमस्कृतां विद्युन्निभां श्रीदयितोपसंस्थिताम् ।
नीराजिताङ्गीमवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८७॥

उस शयन कुञ्जमें पधारी हुई सखियों द्वारा, भक्ति भावपूर्वक प्रणामको प्राप्त हुई, बिजलीके समान चमकती हुई, श्रीप्राणप्यारेजूके समीपमें विराजमान, आरती उतारे हुये श्रीअङ्गों वाली श्रीकिशोरीजीको जब तक मैं नहीं देखूँगी, तब तक मुझे अब शान्ति नहीं हो सकती ॥८७॥

यावन्न यान्तीमथ मङ्गलालयं गृहीतसर्वेशकराम्बुजाङ्गुलिम् ।
वीक्षे दृशा हंसगतिं विभूषितां तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८८॥

जब तक सर्वेश्वर प्राणप्यारेजूके करकमलकी अङ्गुली पकड़कर मङ्गल कुञ्ज जाती हुई श्रीकिशोरीजीका, मैं अपनी आँखोंसे दर्शन नहीं करूंगी, तबतक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ८८

यावन्न गोनागमृगद्विजातमजान् मुहुः स्पृशन्तीं रघुराजसूनुना ।
आलोकयन्तीमनुरागविग्रहां तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८९॥

मङ्गल कुञ्जमें–स्वस्तिक आसन पर विराजमान होकर श्रीरघुनन्दन प्यारेजूके सहित कामधेनु, गौ, एरावत हाथी, मृग (हिरण) शुकसारिकादिक पक्षियोंके बचोंका दर्शन, स्पर्श करती हुई, अनुरागमूर्त्ति श्रीकिशोरीजीका, जब तक मुझे दर्शन नहीं मिलेगा, तब तक कभी भी मुझको अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥८९॥

यावन्न सप्राणपतिं शुभेक्षणां विराजमानां चतुरस्रपीठके ।
द्रक्ष्याम्यहं सद्मनि दन्तधावने तावन्नमे जातु च शान्तिरेष्यति ॥९०॥

दन्तधावन कुञ्जमें प्राण प्यारेजूके सहित मणिमयी चतुष्कोणकी चौकी पर विराजमान, दर्शन मात्रसे मङ्गल करने वाली श्रीकिशोरीजीका, जब तक मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥९०॥

यावन्न भक्त्याऽऽलिनिकायसेवितां नीराजितां वेश्मनि दन्तधावने ।
पाथोजहस्तामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥९१॥

दन्तधावन कर चुकने पर हाथमें कमलका फूल लिई हुई, सखी गणोंसे परम श्रद्धा पूर्वक सेवित, आरतीसे सत्कृतकी हुई, श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूका, जब तक दर्शन नहीं मिलेगा, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति न मिलेगी ॥९१॥

यावन्न च स्नानगृहान्तरे गतां सुस्नापितां मङ्गलभूषणान्विताम् ।
सादर्शहस्तामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥९२॥

स्नानकुञ्जमें विराजमान, स्नान करायी गई, मङ्गल भूषणोंसे अलङ्कृतकी हुई, आयना (दर्पण) से युक्त हस्तकमल वाली, श्रीकिशोरीजीका जब तक मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक अब मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥९२॥

यावन्न तां वै लघुभोजनालये सुभोजनं सालिगणां प्रकुर्वतीम् ।
वीक्षे सरामां मणिपीठमध्यके तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥९३॥

कलेऊ कुञ्जमें प्राणप्यारेजूके सहित, सखी गणोंसे युक्त, मणिमयी चौकीपर विराजमान होकर भोजन करती हुई, श्रीकिशोरीजीका जब तक दर्शन नहीं मिलेगा, तब तक कभी भी मुझे शान्ति नहीं हो सकती ॥९३॥

यावन्न यान्तीं शिविकामधिष्ठितां शृङ्गारसद्मालिगणैः समावृताम् ।
सहार्यपुत्रामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥९४॥

श्रीप्राणप्यारेजूके सहित, पालकी में विराजमान, सखी गणोंसे घिरी, शृङ्गार कुञ्जको जाती हुई श्रीकिशोरीजीका, जब तक मुझे दर्शन नहीं प्राप्त होगा, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥९४॥

यावन्न सर्वाभरणैरलङ्कृतां कौशेयदिव्यामलवस्त्रमण्डिताम् ।
श्यामा सकान्तामवलोकयाम्यहं तावन्नमे जातुच शान्तिरेष्यति ॥९५॥

दिव्य, निर्मल, रेशमी वस्त्रोंसे भूषित, सर्वशृङ्गारसे अलंकृत, श्रीप्राणनाथजूके सहित, श्रीकिशोरीजीका जब तक मैं दर्शन नहीं करूँगी, तबतक मुझे अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥९५॥

यावन्नचामीकररत्ननिर्मिते सभागृहे मौक्तिकमण्डपान्तरे ।
माणिक्यसिंहासनगां सवल्लभां तावन्नमे जातु च शान्तिरेष्यति ॥९६॥

अनेक प्रकारके रत्नोंकी कारीगरी (मजावट) से युक्त, सुवर्णरचित सभा कुञ्जमें, मोतियोंके मण्डपमें मणिमय सिंहासनपर, श्रीप्यारेजूके सहित विराजी हुई श्रीकिशोरीजीका जब तक मैं दर्शन नहीं प्राप्त करूँगी, तबतक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥९६॥

यावन्न तौ प्राणधने शुचि स्मितावुच्छिष्टमन्नं कृपया प्रदास्यतः।
स्वयं कराभ्यां करुणैकवारिधी तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥९७॥

वे पवित्र मुस्कान प्राणधन, करुणासागर, दोनों सरकार जब तक कृपा करके अपने कर-कमलोंसे मुझे स्वयं अपनी प्रसादी (जूठन) नहीं प्रदान करेंगे, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥९७॥

यावत्सरय्या अमृतोपमं पयो दिव्यौषधीनां सुरसेन मिश्रितम्।
दिशामि ताभ्यां न सुगन्धवासितं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥९८॥

दिव्य पौष्टिक औषधियोंके रससे मिला हुआ, अमृतके तुल्य स्वादिष्ट, सुगन्ध युक्त किये हुये, श्रीसरयू जलको, जब तक मैं अपने हाथोंसे श्रीयुगल सरकारको स्वयं समर्पण नहीं करूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥९८॥

यावन्न ताविष्टतमौ मनोहरौ प्रक्षालिताम्भोजकराननाङ्घ्रिकौ।
पश्याम्यहं बिम्बफलारुणाधरौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥९९॥

धोये हुये कमलके समान हाथ, मुख, पाँव, मन हरण, बिम्बा फलके सदृश लाल अधर वाले अपने सर्वोत्तम इष्टदेव श्रीयुगल सरकारका जब तक मुझे दर्शन नहीं मिलेगा, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥९९॥

यावन्न तौ सादरमात्मनः प्रियौ सिंहासने काञ्चनके सुसज्जिते।
निवेशयामि प्रणयात्प्रियाप्रियौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१००॥

सुन्दर रीतिसे सजाये हुये सुवर्णके सिंहासन पर अपने उन प्यारे (प्रियाप्रियतम श्रीयुगल) सरकारको आदर पूर्वक प्रणय (अत्यन्त परम प्रेम) के साथ जब तक मैं स्वयं नहीं विराजूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥१००॥

यावन्न विश्रामगृहं सहप्रियां शनैर्व्रजन्तीं कलहंसगामिनीम्।
मन्दस्मितास्यामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१०१॥

श्रीप्राणप्रियतमजूके सहित हंसके समान सुन्दर धीरे २ (मन्द गतिसे) गमन करने वाली मन्द मुस्कान युक्त मुखवाली श्रीकिशोरीजीका विश्राम कुञ्ज पधारते हुये, जब तक मैं दर्शन नहीं पाऊँगी तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥१०१॥

यावन्न ताभ्यां रचितां सुवीटिकां प्रीत्या कराभ्यां प्रदिशामि हर्षिता ।
निरीक्षमाणा सुमनोहरच्छविं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१०२॥

जब तक श्रीयुगल सरकारकी अत्यन्त मनहरण छविको अवलोकन करती हुई मैं दोनों सरकारको भली प्रकार बनाया हुआ पानका बीरा नहीं समर्पण करलूँगी, तब तक मुझे कभी भी अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥१०२॥

यावन्न चोभौ फलभोजनालये पुष्पाम्बरौ पुष्पविभूषणान्वितौ ।
सिंहासनस्थाववलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१०३॥

जब तक फलभोजन कुञ्जमें फूलोंके वस्त्र व भूषणोंको धारण किये हुये सिंहासन पर विराजमान दोनों सरकार (श्रीसीतारामजी) का मैं दर्शन नहीं करूँगी, तब तक मुझे किसी प्रकार भी अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥१०३॥

यावन्न मिष्टानि फलानि भक्तितो सुभक्षयन्तौ मधुरस्मिताननौ ।
मिथोऽर्पयन्तावक्लोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१०४॥

उस फल भोजन कुञ्ज में वहाँ की सखी द्वारा समर्पण किये हुये मीठे फलोंको, आपसमें एक दूसरेको पवाते, मधुर २ मुस्काते हुये जब तक मैं नहीं दर्शन करूँगी, तब तक मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥१०४॥

यावन्न सर्वालिगणैः समन्वितौ निदाघकुञ्जे विमलाम्भसि प्रियौ ।
पश्यामि कामं जलकेलितत्परौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१०५॥

जब तक सखियोंके सभी झुण्डके सहित निदाघ कुञ्जके, स्वच्छ जलमें जलकेलि करते हुये श्रीयुगल प्राणवल्लभ (श्रीसीतारामजी) का मैं दर्शन, नहीं पाऊँगी, तब तक मुझे कभी भी शान्ति न मिलेगी ॥१०५॥

यावद्धृतांसामलपाणिपल्लवौ न रत्नसिंहासनसङ्ज्ञकालये ।
सिंहासनस्थाववलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१०६॥

जब तक रत्नसिंहासन नामके सुप्रसिद्ध महलमें, परस्पर एक दूसरेके कन्धे पर हस्तकमल

रखकर सिंहासन पर बैठे हुये श्रीयुगल सरकारका मैं दर्शन नहीं करूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब चैन नहीं मिलेगी ॥१०६॥

यावन्न सर्वाश्रयणीयसद्गणैः संवेष्टितौ चामरशोभिहस्तकैः ।
पश्यामि दृग्भ्यां ससरोजहस्तकौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१०७॥

जब तक चामर (चँवर) आदि सेवा सामग्रियोंको हाथमें लिये, समस्त आश्रितवर्गोंसे घिरे, हाथमें कमल धारण किये हुये, श्रीयुगलसरकारका मैं दर्शन नहीं प्राप्त करूँगी, तब तक कभी भी हमें शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥१०७॥

यावन्न नैशाशनमन्दिरान्तरे विराजमानौ प्रभयाऽतिभास्वरे ।
सुभञ्जयन्ताववलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१०८॥

जब तक अत्यन्त प्रकाश युक्त ब्यारू कुञ्जमें सखियोंके बीचमें श्रीयुगलसरकारको विराजमान हो, रूचिपूर्वक ब्यारू करते हुये मैं दर्शन नहीं प्राप्त करूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं आयेगी ॥१०८॥

यावन्न सर्वाक्षिसरोजभास्करौ ग्रासान् सहासं ददतौ परस्परम् ।
रमाश्रयौ ताववलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१०६॥

समस्त प्राणिमात्रके नेत्ररूपी कमलोंको भगवान् भास्कर (सूर्य) के सदृश प्रफुल्लित करदेने-वाले, समस्त शोभाके मूलभूत, श्रीयुगलसरकारका परस्पर मुस्काते हुये ग्रास प्रदान करते जब तक, मैं दर्शन नहीं करूँगी तब तक मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥१०६॥

यावन्न पूर्णेन्दुमनोहराननौ सखीजनेभ्यो मधुरस्मितावुभौ ।
पश्यामि शेषं ददतौ पृथक् पृथक् तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥११०॥

जब तक सखीजनोंके लिये अपना प्रसाद वितरण करते हुये, पूर्णचन्द्रके समान मनहरण मुखारविन्द व मधुर मुस्कान वाले श्रीयुगलसरकारका मैं दर्शन नहीं प्राप्त करूँगी, तब तक मुझे किसी प्रकार भी शान्ति न मिलेगी ॥११०॥

यावन्न दिव्यास्तरणैः परिष्कृते हैरण्यतल्पे कृतभोजनावुभौ ।
सुखं शयानाववलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१११॥

जब तक भोजन करके दिव्य बिछावनसे सुशोभित, सुवर्ण पर्यङ्कपर शयन किये हुये श्रीयुगल-सरकारका मैं सुखपूर्वक दर्शन नहीं प्राप्त करूँगी, तब तक कभी भी मुझे शान्ति नहीं मिलेगी॥१११॥

यावन्न रासोचित भूषणाम्बरौ शृङ्गारकुञ्जे मणिमण्डपे स्थितौ ।
शृङ्गारमूर्ती ह्यवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥११२॥

जब तक रासोचित अर्थात् भगवदानन्द प्रदायक लीलाओंके योग्य वस्त्रभूषण धारण करके शृङ्गार कुञ्जके मणिमय मण्डपमें विराजमान हुये, शृङ्गार रसस्वरूप उन दोनों श्रीसीतारामजीका मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मुझे कभी भी अब शान्ति न मिलेगी ॥११२॥

यावत्सखीमण्डलमध्यवर्तिनौ तिरस्कृतानन्तरतिस्मरच्छवी ।
नेत्रे स्थितौ रासगृहे मृदुस्मितौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥११३॥

जब तक रास कुञ्जमें सखीमंडलके बीचमें विराजमान, अपनी छविसे अनन्त रति और कामदेव को तिरस्कृत करने वाले श्रीयुगलसरकारको मृदु मुस्काते हुये मैं नहीं देखूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥११३॥

यावन्न कान्तं नतमस्तकं प्रियं मानान्वितां प्राणसमां कृताञ्जलिम् ।
सम्मानयन्तं ह्यवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥११४॥

सखियोंके विनोदार्थ उस रासलीलामें मान करती हुई श्रीप्राणप्यारीजूको मस्तक नीचे किये हुये, हाथ जोड़ कर भली प्रकारसे मनाते हुये श्रीप्राणप्यारेजूका जब तक मैं दर्शन नहीं करूँगी, तब तक कभी भी मुझको शान्ति नहीं होगी ॥११४॥

यावन्न पश्यामि च रासमण्डले मध्ये सखीनामपि रासतत्परौ ।
धृतांसपाणी मृगशावकेक्षणौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥११५॥

जब तक रासमण्डलमें, सखियोंके बीचमें परस्पर कन्धोंपर हस्तकमल रखकर मृगशावक लोचन श्रीयुगलसरकारका रास (भगवदानन्द प्रदायक लीला) करते हुये मैं दर्शन नहीं प्राप्त करूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं होगी ॥११५॥

यावत्स्वहस्ते प्रियपाणिपङ्कजं निधाय नृत्यामि न रासमण्डले ।
प्रीत्यै प्रियायाः सहिताऽऽलिभिः सुखं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥११६॥

जब तक रास (भगवद्भक्ताओंके) मण्डलमें श्रीप्रियाजूकी प्रसन्नताके लिये सखियोंके सहित अपने हाथमें श्रीप्राणप्यारेजूके हस्त कमलको रखकर सुख-पूर्वक मैं नृत्य नहीं करूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥११६॥

यावन्न नृत्यन्तमतीवसुन्दरं ह्यग्रे प्रियाया बहुधा रसात्मकम् ।
पश्यामि विस्मेरसुधाकराननं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥११७॥

जब तक, सम्पूर्ण रसोंके स्वरूप, मन्दमुस्कान युक्त, चन्द्रवदन, अत्यन्त सुन्दर श्रीप्राणप्यारेजी को, श्रीप्रियाजूके आगे बहुत प्रकारसे मैं नृत्य करते हुए नहीं अवलोकन करूँगी, तब तक किसी प्रकार भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥११७॥

यावन्न हस्ताङ्घ्रिसरोरुहाणि तौ सुचालयन्तौ गतितालभेदतः ।
वीक्षे प्रियौ रासविलासतत्परौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥११८॥

जब तक, रासकेलि-परायण श्रीयुगलसरकारको, गति-ताल-भेदानुसार मैं हस्त और पाद-कमलोंका सञ्चालन करते हुये नहीं देखूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥११८॥

यावन्न चान्दोलगृहे प्रियाप्रियौ सन्दोल्यमानौ मणिदोलसंस्थितौ ।
पश्याम्यहं स्वालिगणैरुपासितौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥११९॥

झूलनकुञ्जमें सखीगणों से सेवित, मणिमय झूलेपर विराजमान, श्रीयुगलसरकारको जब तक झूलते हुये मैं नहीं अवलोकन करूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥११९॥

यावन्न रत्नाञ्चितदोलकालये प्रियाप्रियौ कोटिरतिस्मरच्छवी ।
यथा मनस्तौ परिदोलयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१२०॥

करोडों रति और कामदेवकी छविको धारण कियेहुये, श्रीप्रियाप्रियतमजूको रत्न खचित झूलन भवनमें जब तक मैं अपने मनभर नहीं झुलापाऊँगी, तब तक मेरे हृदयको अब कभी भी शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥१२०॥

यावन्न वीक्षे दयितं सखीगणे मनोहरं प्रेमनिमग्नचेतसा ।
प्राणेश्वरीदोलनकर्मतत्परं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१२१॥

अपनी सर्वस्व भूता श्रीप्राणेश्वरीजीको सखियोंके समूहमें प्रेमनिमग्न चित्तसे भली-भाँति झुलाते हुये श्रीप्राणप्यारेजूका जब तक मैं दर्शन नहीं करूँगी, तब तक मुझे अब किसी प्रकार भी चैन नहीं मिलेगी ॥१२१॥

यावन्न पुष्पाम्बरभूषणाञ्चितौ सन्दोलयन्तावबलोकयाम्यहम् ।
आन्दोलके पुष्पमये सरित्तटे तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१२२॥

श्रीसरयूजीके किनारे फूलोंका शृङ्गार धारण किये, पुष्पमय झूलनपर झूलते हुये श्रीयुगल-सरकारका जब तक मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तबतक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती १२२

यावन्न वासान्तिकरत्नमन्दिरे प्रेष्ठौ वसन्तोत्सवसक्तचेतसौ ।
पश्याम्यहं चन्द्रमुखीव्रजान्वितौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१२३॥

वसन्त ऋतुके रत्नमय भवनमें, चन्द्रमुखी सखियोंके झुण्डमें जब तक फागखेलमें आसक्त चित्त, श्रीयुगल सरकारका मैं दर्शन नहीं प्राप्त करूँगी, तब तक मेरे हृदयमें अब कभी भी चैन नहीं पड़ेगी ॥१२३॥

यावत्सखीवेषमतुल्यसौभगं प्राणप्रियाया मृदुपादपङ्कजे ।
मूर्द्ध्ना स्पृशन्तं न विलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१२४॥

तुलना न करने योग्य, व अपार सौन्दर्य सम्पन्न श्रीप्राणप्यारेजीको सखीका वेष धारण करके श्रीप्रियाजूके सुकोमल श्रीचरणारविन्दों को, शिरसे स्पर्श करते हुये जब तक मैं नहीं देखूँगी, तब तक मुझको कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥१२४॥

यावन्न मुख्ये शयनालयान्तरे सुस्निग्धवस्त्राञ्चितरत्नतल्पगौ ।
सुखं शयानौ परिशीलयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१२५॥

अत्यन्त चिक्कण बिछावन युक्त, रत्नमय पर्यङ्क पर मुख्य शयन भवनमें सुखपूर्वक शयन किये हुये, श्रीयुगल सरकारकी सेवाका सौभाग्य मैं जब तक नहीं पाऊँगी, तब तक मुझे कभी भी अब शान्ति नहीं मिल सकेगी ॥१२५॥

यावन्न सन्तापकृशानुवारिणोः श्रीप्रेयसोः स्निग्धपदारविन्दयोः ।
सामेपशातं विलुठामि निर्भया तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१२६॥

जब तक श्रीप्रियाप्रियतमजूके सन्ताप रूप अग्निको जलके समान शान्त कर देने वाले चिकने, श्रीचरण-कमलोंमें, अपार सुख-पूर्वक निर्भय हृदयसे मैं नहीं लोटूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब चैन नहीं मिलेगी ॥१२६॥

यावन्न कोटीन्दुविमोहनाननौ कृपाकटाक्षं मयि पातयिष्यतः ।
सुखं शयानौ सुमनोहरस्मितौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१२७॥

जिनका श्रीमुखारविन्द करोड़ों चन्द्रमाओंको विमुग्ध करदेने वाला है, तथा जिनकी मुस्कान अनायास मनको हरण कर लेती है, वे दोनों श्रीयुगल सरकार अपने पर्यंङ्क (पलङ्ग) पर सुख पूर्वक

शयन किये हुये जब तक मेरे ऊपर अपना कृपाकटाक्ष नहीं डालेंगे, तब तक किसी प्रकार भी मेरे हृदयमें अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥१२७॥

यावत्स्वकीयाभयहस्तपङ्कजं सधास्यति प्रीतियुता न शीर्षिण मे।
सर्वस्वभूता मम दीनवत्सला तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१२८॥

मेरी जब तक सर्वस्व भूता दीन (साधनादि सर्वाभिमान शून्य जन) वत्सला श्रीकिशोरीजी प्रसन्नता पूर्वक अपना अभय हस्त कमल मेरे शिर पर नहीं रक्खेंगी, तब तक कभी भी मुझको अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥१२८॥

यावन्न सस्मेरसुधाकरानना मृदुस्पृशन्ती हृदयङ्गमं वचः।
मां श्रावयिष्यत्यसिताब्जलोचना तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१२९॥

जिनका श्रीमुखारविन्द चन्द्रमाके समान परमाह्लाद वर्द्धक व मुस्कान युक्त है, वे नीलकमल दल लोचना श्रीकिशोरीजी अपने सुकोमल कर कमलोंसे स्पर्श करती हुई, अपनी हृदय हारिणी बोली जब तक मुझे नहीं सुनायेंगी तब तक किसी प्रकार भी मुझे अब चैन नहीं मिल सकती ॥१२९॥

यावन्न तस्या मृदुपादपल्लवौ दृग्भ्यां कराभ्यां शिरसा स्पृशाम्यहम्।
नेत्थं निधायोरसि पीडयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१३०॥

जब तक श्रीकिशोरीजीके सुकोमल श्रीचरणकमलोंको अपने नेत्रों, हाथों और शिरसे मैं स्पर्श नहीं करूँगी तथा जब तक अपने हृदयपर रखकर, उनकी सेवा नहीं करूँगी तब तक मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिल सकेगी ॥१३०॥

यावन्न चानन्दमयाश्रुविन्दुभिः श्रीराजपुत्र्या मृदुपादपङ्कजे।
प्रक्षालयामि द्रुहिणादिवन्दिते तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१३१॥

श्रीमिथिलेश दुलारीजूके ब्रह्मादि देव वन्दित जब तक सुकोमल श्रीचरणारविन्दोंको मैं अपने आनन्दमय अश्रुविन्दुओंसे नहीं धोऊँगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥१३१॥

यावन्न पूर्णेन्दुनिभाननं प्रियं रहः शयानाऽस्मसुदिव्यमन्दिरे।
वीक्षे समीपे मृगशावकेक्षणं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१३२॥

जब तक पूर्णिमाके चन्द्रके समान विश्वसुखद मुखारविन्द, मृगछौनाके नेत्रोंके सदृश नयन, प्राणप्यारेजीको अपने दिव्य भवनमें अकेली सोई हुई समीपमें विराजमान नहीं देखूँगी, तब तक अब मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥१३२॥

यावन्न चामीकरतल्पशायिनोः करोमि पादाम्बुजयोर्निषेवणम् ।
शय्योपविष्टाऽखिलदुर्लभेष्टदं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१३३॥

सुवर्णके पर्यङ्क (पलङ्ग) पर शयन किये हुये श्रीयुगल सरकारकी समस्त दुर्लभ मनोवाञ्छित प्रदान करने वाली श्रीचरणकमलोंकी सेवा, उनकी सेजके पास बैठी हुई, जब तक मैं नहीं करूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिल सकेगी ॥१३३॥

यावन्न तस्याङ्क उदारकीर्त्तनां सुनूतनेन्दीवरपत्रवर्ष्मणः ।
प्रियां शयानामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१३४॥

अत्यन्त नवीन नीले कमल दलके सदृश श्याम विग्रह वाले उन प्यारेजूके अङ्कमें सोती हुई उदार कीर्त्तना (जिनका कीर्त्तन धर्म अर्थ, काम, मोक्षको ही नहीं बल्कि स्वयं उनको प्रदान कर-देने वाला है, उन) श्रीप्रियाजूका जब तक मैं दर्शन नहीं करलूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं होगी ॥१३४॥

यावत्स्वकान्तेन्दुमुखे मनोहरे पश्यामि ताम्बूलसुवीटिकां मुदा ।
प्रियं कराभ्यां प्रदिशन्तमादरात्तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१३५॥

श्रीप्राणप्यारीजूके मनहरण श्रीचन्द्रवदनमें अपने करकमलों द्वारा, पानका बीड़ा प्रदान करते हुए श्रीप्यारेजूको जब तक मैं नहीं अवलोकन करूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥१३५॥

यावत्सकान्तः कलहास्यवीक्षण-सम्भाषणाद्यैरभिनन्द्य किङ्करीः ।
निमीलिताक्षः स मया न दृश्यते तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति॥१३६॥

अपनी मन्दमुसकान, मनहरणचितवन, पिकवाणी आदिके द्वारा अपनी किङ्करियोंको आनन्दित करके निद्रा सेवन करने की इच्छाका भाव प्रकट करनेके लिये, आँखें मन्द किये हुये, वे श्रीप्राण प्यारेजू श्रीप्रियाजूके सहित मुझे जब तक दर्शन नहीं प्रदान करेंगे, तबतक कभी भी मुझे शान्ति नहीं मिलेगी ॥१३६॥

यावच्छयानौ न निसर्गसुन्दरौ निरीक्ष्य नित्यावखिलाण्डनायकौ ।
नमामि भक्त्या प्रणयान्वितात्मना तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१३७॥

स्वाभाविक सुन्दर सदा एक रस रहने वाले, अनन्त ब्रह्माण्डनायक श्रीयुगल सरकारका

शयन किये हुये जब तक दर्शन करके मैं प्रेमपूर्वक, श्रद्धासमान्वित नमस्कार नहीं करूँगी तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥१३७॥

यावत्क्रियेते हृदयस्थितावुभौ भुक्तां स्रजं प्राप्य तयोरभीप्सिताम् ।
मुदा प्रदत्तां कृपयाऽऽलिमुख्यया तावन्नमे जातु च शान्तिरेष्यति ॥१३८॥

जब तक कृपाकरके श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा प्रदानकी हुई अपनी मन चाही श्रीयुगलसरकार की प्रसादी मालाको प्राप्त करके, मैं उन दोनों प्यारोंको अपने हृदयमें नहीं बसालूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥१३८॥

—: इति मासपारायण ४ समाप्त :—

यथा शिशुर्वै रहितो जनन्या नारी विहीना च यथैव पत्या ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या वदामि किं वेत्सि हि तद् दिरथा ॥१३९॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! महतारीके बिना शिशु और पतिके बिना स्त्रीकी जो दशा होती है, वही आपके बिना मेरी दशा है, उसको मैं क्या कहूँ ? आप हृदय विहारिणी हैं, अतः उसे आप स्वयं जानती हैं१३९

यथैव राज्ञा रहितः सुदेशो राजा स्वदेशेन यथा विहीनः ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या वदामि किं वेत्सिऽहि तद्धृदिस्था॥१४०॥

हे श्रीकिशोरिजी ! जैसे राजाके बिना सुन्दरदेश (प्रबल दुर्जनोंकी वृद्धि होजानेके कारण नष्ट होजाता है) और अपने देशसे हीन राजा (होजानेपर जैसे श्रीविहीन होजाता है) उसीप्रकार आपके बिना मैं (काम, क्रोध, लोभ मोहादि प्रबल तस्करोंसे नष्ट-भ्रष्ट, श्रीहत) हूँ, सो आप स्वयं जानती ही हैं, क्यों कि सर्वान्तर्यामिनी रूपसे मेरे भी हृदयमें विराज रही हैं, अतः अपनी इस परिस्थितिको आपसे क्या निवेदन करूँ ? ॥१४०॥

सूर्यो यथा वै प्रभया विहीनो दिनं च सूर्येण यथा विहीनम् ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥१४१॥

जैसे प्रभासे रहित सूर्य, और सूर्यके बिना दिन सुन्दर नहीं लगता, उसीप्रकार आपके बिना मैं बुरी लगरहीहूँ, सो आप हृदयमें निवास करती हुई स्वयं ही जानती हैं अतःमैं उसे क्या कहूँ ? ॥१४१॥

रात्रिर्यथा चन्द्रमसा विहीना ज्योत्स्ना विहीनस्तु यथैव चन्द्रः ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥१४२॥

जैसे चन्द्रमाके विना रात्रि, और चान्दिनीके विना चन्द्रमा बुरा लगता है, उसी प्रकार आपके विना मेरी दशा है, उसे आप हृदयमें विराजमान होनेके कारण स्वयं ही जानती हैं, अत एव उसे मैं क्या निवेदन करूँ ? ॥१४२॥

यथा सरित्यात्सलिलेन हीना फणी विहीनो मणिना यथैव ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्हृदिस्था ॥१४३॥

जैसे जलके विना नदी शोभा हीन है और मणिके विना सर्पका जीवन भी महान् दुःखप्रद है, उसी प्रकार आपके विना मेरा जीवन भी व्यर्थ है, सो आप जानती ही हैं क्योंकि हृदयमें निवास कर रही हैं, अतः इस विषयमें आपसे मैं और क्या निवेदन करूँ ? ॥१४३॥

यथा शरीरं ह्यसुभिर्विहीनं गृहं विहीनं भजया यथैव ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्हृदिस्था ॥१४४॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! जैसे प्राणोंके विना शरीर सन्तानके विना घर शोभा शून्य है, उसी प्रकार आपके विना मेरा यह जीवन व्यर्थ है, इसे आप भली भाँति जानती ही हैं, अत एव मैं आप हृदय (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) में बैठी हुई से क्या निवेदन करूँ ? ॥१४४॥

यथा फलं चापि रसेन हीनं यथा द्रुमश्चेह दलैर्विहीनः ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्हृदिस्था ॥१४५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जैसे लोकमें नीरस फल, और पत्तोंसे हीनपेड़ अशोभित है, उसी प्रकार आपके विना मेरा यह जीवन भी सर्वथा निष्फल है, उसे मैं क्या कहूँ ? हृदयमें विराजमान होनेसे आप सब जानती ही हैं ॥१४५॥

वाणी विना व्याकरणं यथैव यथा च नारी वसनेन हीना ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥१४६॥

व्याकरण ज्ञानके विना जैसे वाणी और वस्त्र विहीन जैसे स्त्री शोभाहीन है उसी प्रकार आपके सामीप्यके विना मैं हूँ, अतः क्या कहूँ ? हृदयमें विराजमान होनेसे आप सब जानती ही हैं ॥१४६॥

करेण हीनस्तु यथा गजेन्द्रो यथाऽऽत्मबोधेन विना मनुष्यः ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्हृदिस्था ॥१४७॥

हे श्रीसुनयनाहृदयनन्दिनीजू ! जैसे विना सुण्डके गजराज और आत्मज्ञानके विना मनुष्य का

जीवन बेकार है, उसी प्रकार आपके बिना मेरा यह जीवन सर्वथा निष्फल है, सो मैं क्या कहूँ ! आप स्वयं ही सब जानती हैं ॥१४७॥

यथा श्रुतिज्ञस्तव भक्तिहीनो वैराग्यहीनस्तु यथा विरागी ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥१४८॥

जैसे आपकी भक्तिसे हीन सकल वेदोंके रहस्यको जानने वाला विद्वान् और वैराग्य हीन विरक्त वेषधारी साधक शोचनीय है, उसी प्रकार हे श्रीकिशोरीजी आपके बिना मैं शोचनीय हूँ, अधिक क्या निवेदन करूँ ! आप सब जानती ही हैं, क्योंकि हृदय (मन, बुद्धि, चित्त व अहङ्कार इन चारों) में आपका सदा निवास है ॥१४८॥

यथा विहीनस्तपसा तपस्वी सन्तोषहीनस्तु यथेह साधुः ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥१४९॥

जैसे तप-साधन रहित, वेष मात्रका तपस्वी और सन्तोष हीन साधु मृतक तुल्य है, उसी प्रकार आपके बिना मैं मृतकके समान हूँ, सो आप हृदयमें निवास करती हुई स्वयं ही जानती हैं, अतः उसे मैं क्या कहूँ ? ॥१४९॥

यथा वपुः स्याच्छिरसा विहीनं वाणी तथाऽर्थेन यथा विहीना ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्हृदिस्था ॥१५०॥

जैसे शिरके बिना धड़ (शरीर) और अर्थके बिना वाणीकी शोभा नहीं है, उसी प्रकार आपके सामीप्यके बिना मैं भी बुरी लग रही हूँ, सो हृदयमें निवास करने वाली आप स्वयं ही जानती हैं, अतः उसे मैं क्या कहूँ ? ॥१५०॥

विष्णुत्वहीनस्तु यथैव विष्णुर्धातृत्व हीनस्तु यथा विधाता ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥१५१॥

जैसे सर्व व्यापकत्व गुणके बिना भगवान् विष्णु और विधान शक्तिसे रहित विधाता (ब्रह्मा) उपहासके पात्र माने जायेंगे, उसी प्रकार आपके बिना मैं भी उपहास का पात्र हूँ, सो आप स्वयं ही जानती हैं क्योंकि हृदयमें निवास करती हैं, अतः उसे मैं आपसे क्या निवेदन करूँ ? ॥१५१॥

रुद्रत्व हीनस्तु यथैव रुद्रो धनेन हीनस्तु यथा कुबेरः ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥१५२॥

विश्वसंहार शक्तिसे हीन रुद्र और धनहीन कुबेरकी जैसे हँसी होना आवश्यक है, उसी प्रकार

आपके बिना मेरी हँसी भी अनिवार्य है, सो आप जानती ही हैं, क्योंकि हृदयमें विराज रही हैं, अतः मैं क्या निवेदन करूँ ? ॥१५२॥

वह्निर्यथा दाहकशक्तिहीनः पक्षेण हीनस्तु यथा पतत्त्री ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥१५३॥

जैसे जलानेकी शक्तिके बिना अग्नि और पङ्खोंके बिना पक्षी दयनीय है, उसी प्रकार आपकी समीपताके बिना मैं भी हँसीके योग्य और दयाका पात्र हूँ, सो आप हृदयवासिनी होनेसे सब जानती ही हैं, अतः मैं क्या निवेदन करूँ ? ॥१५३॥

देवं विना देवगृहं यथैव पुमान्मनुष्यत्वविवर्जितश्च ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥१५४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जैसे देवताके बिना देवमन्दिर और मनुष्यत्व (मनन शीलता) के बिना मनुष्य नष्टश्री और पृथ्वीका भार होता है, उसी प्रकार मैं भी आपकी समीपताके बिना श्रीहीन और पृथ्वीका भार ही हूँ, सो हृदयमें निवास करनेके कारण आप जान ही रही हैं, अतः मैं उसे क्या निवेदन करूँ ? ॥१५४॥

एवं विचार्यैव दशां मदीयां यथेप्सितं कार्यमहो भवत्या ।
प्रसीद मे स्वामिनि ! दीनबन्धो ! यतस्तवाहं शतपत्रनेत्रे ! ॥१५५॥

हे दुःखियोंका हितकरने वाली श्रीस्वामिनीजू ! मेरी इस प्रकारकी दयनीय दशाको विचार कर, आप जैसा उचित समझें वैसा ही अपनी इच्छाके अनुसार करें। हे श्रीकमललोचनेजू ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होवें, क्योंकि मैं आपकी ही हूँ ॥१५५॥

काश्चित्तृपार्त्ता म्रियते पिपासया गङ्गाजलस्था वनजायतेक्षणे ।
काचित्सनाथा विधवेव दृश्यते ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि ! दृश्यताम् ॥१५६॥

हे कमलदललोचना श्रीकिशोरीजी ! कोई एक ऐसी है, जो गङ्गाजीके जलमें तो विराज रही है परंतु प्यासके कारण मर रही है, एक कोई है, जो सधवा होने पर भी देखनेमें विधवा सी अनाथ प्रतीत हो रही है, इस आश्चर्य मयी घटनाको आप अवलोकन कीजिये ॥१५६॥

अङ्के स्थिता मातुरिहैव बालिका काचित्प्रिया वै म्रियते ह्युपेक्षया ।
संपीड्यमाना क्षुधया पिपासया ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि ! दृश्यताम् ॥१५७॥

कोई अत्यन्त प्रिय बालिका अपनी माताकी गोदमें बैठी हुई उपेक्षा दृष्टिके कारण क्षुधा पिपासा (भूख-प्यास) से पीड़ित होकर मर रही है, हे श्रीकिशोरीजी ! इस आश्चर्यमयी घटनाको आप अवलोकन कीजिये ॥१५७॥

ज्योत्स्नान्वितः कश्चिदिहैव चन्द्रमाः खद्योतकल्पः सुनिरीक्ष्यते जनैः ।
तापार्दितो वारिकणेन सिच्यते ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि ! दृश्यताम् ॥१५८॥

कोई एक पूर्ण चाँदनी युक्त चन्द्रमा है, उसे लोग जुगुनू की सदृश तुच्छ दृष्टिसे देख रहे हैं, वह (चन्द्र) भी तापसे अत्यन्त व्याकुल है अतः उस पर जल कणोंका छिड़काउ किया जा रहा है, हे श्रीकिशोरीजी ! इस आश्चर्य पूर्ण घटनाको आप अवलोकन कीजिये ॥१५८॥

कश्चिच्छुभाङ्गि ! प्रलयोग्रभास्करः प्रच्छाद्यते वै तमसा महीतले ।
शीतार्दितो वह्निमपेक्षते हृदा ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि ! दृश्यताम् ॥१५९॥

प्रलय कालके एक प्रचण्ड सूर्य है, परन्तु पृथिवी तल पर उन्हें अन्धकार ढँक रहा है, वे ठण्ढीसे दुखी होकर हृदयसे अग्निकी अपेक्षा कर रहे हैं, हे शुभाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! इस आश्चर्यमयी घटनाको आप निश्चय ही अवलोकन कीजिये ॥१५९॥

कश्चिन्नृपत्वेन युतो नराधिपो ह्यकिञ्चनत्वेन भृशं प्रपीड्यते ।
क्षुधार्दितो मृत्युमभीप्सुरातमना ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि ! दृश्यताम् ॥१६०॥

कोई एक नरपालन सामर्थ्य (बल, बुद्धि, सेना, कोष आदि) से युक्त राजा है, परन्तु निर्धनतासे दुखी हो रहा है, यहाँ तक कि भूखसे व्याकुल हो सुख पूर्वक मृत्युकी बाट जोह रहा है, हे श्रीकिशोरीजी ! यह भी आश्चर्य पूर्ण घटना आप अवलोकन कीजिये ॥१६०॥

कश्चिच्छरण्यस्य कृपामृताम्बुधेः सर्वेश्वरस्याश्रयणे पदाब्जयोः ।
सुतत्परोऽनाथ इवाभिपीड्यते ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि ! दृश्यताम् ॥१६१॥

कोई एक ऐसा है, जो आश्रित वत्सल, सर्वेश्वर, कृपासुधासागर, सब प्रकारसे रक्षा करने वाले सर्वसमर्थ प्रभुके श्रीचरण-कमलोंकी सेवामें तत्पर होने पर भी अनाथकी नाईं पीड़ित हो रहा है, हे श्रीकिशोरीजी इस आश्चर्यमयी घटनाको भी आप अवश्य अवलोकन करें ॥१६१॥

काचिन्न शार्दूलसुता दुरात्मभिः संक्लिश्यते ग्राममतङ्गवैरिभिः ।
स्वस्या हि मातुः पुरतो न सेक्षते ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि ! दृश्यताम् ॥१६२॥

एक शार्दूल की बच्ची है, उसे उसके सामने ही कुत्ते तङ्ग कर रहे हैं, पर वह देखती ही नहीं, हे श्रीकिशोरीजी! इस आश्चर्यमयी घटनाको भी आप अवश्य अवलोकन कीजिये ॥१६२॥

सुवत्सला काचिदचिन्त्यवैभवा ज्ञात्वाऽमिवीक्ष्याप्यनुगामुपेक्षते ।
सङ्क्लिश्यमानां दयितां दयानिधे! आश्चर्यमेतत्तु किशोरि! दृश्यताम् ॥१६३॥

अहो कोई एक हैं, जिनका ऐश्वर्य चिन्तन शक्तिसे अगोचर है, जो वात्सल्य रसमें प्रधान व दया की समुद्र हैं, उनकी प्रिय अनुचरी (दासी) अत्यन्त क्लेशको पारही है, परन्तु वे जानकर और देखकर भी उसके दुःख हरण करनेकी ओर ध्यान नहीं दे रही हैं। हे श्रीकिशोरीजी! इस आश्चर्य पूर्ण घटना को भी आप अवश्य अवलोकन कीजिये ॥१६३॥

प्रसीदतांचारुमनोज्ञहास्ये । संमर्षयामर्ष्यमहापराधान् ।
कारुण्यमेवाभरणं त्वदीयं दयानिधे! संत्यज निर्दयत्वम् ॥१६४॥

इस प्रकारसे उन जीवा सखीने उपर्युक्त व्यङ्ग्योक्तियोंके द्वारा अपनी आर्त्तदशाको आश्चर्यमयी घटनाओंका रूपक देकर श्रीकिशोरीजीसे देखनेके लिये प्रार्थना निवेदनकी, उस समय उनके हृदयमें श्रीकिशोरीजी मुसकराती हुई प्रतीत हुईं अतः जीवा सखी फिर प्रार्थना करती हैं:- हे सुन्दर मनहरण मुसकान युक्ता श्रीकिशोरीजी! मैंने अपनी मूर्खता वश उपालम्भ कह डाला? सो इन अक्षम्य अपराधोंको आप क्षमा करें, और दुःखी जानकर प्रसन्न हों! हे दयानिधे! आश्रितोंके दुःखको देखकर द्रवित होना ही आपका प्रधान भूषण है, अत एव निर्दयताका परित्याग कीजिये ॥१६४॥

क ईश्वरः साधयितुं जगत्त्रये विनिर्दयत्वं करुणानिधे! त्वयि ।
क्षमस्व वात्सल्यवतीरितं मया किशोरि! मौढ्यात्प्रणयादनर्गलम्॥१६५॥

हे श्रीकिशोरीजी! आप वात्सल्य रसका सागर हैं, अत एव मेरे द्वारा मूर्खता या प्रणय वश अनुचित कहे हुये शब्दोंको आप क्षमा ही कीजिये, क्योंकि आप तो दयाकी सागर ही हैं, उनमें दयाहीनता सिद्ध करनेके लिये त्रिलोकोंमें भला कौन समर्थ हो सकता है? ॥१६५॥

खगा यथा खे च यदुत्पतन्ति व्रजन्ति पारं न तथा मुनीन्द्राः ।
तव क्षमाशीलकृपादिकानां परिस्थितिं स्वामिनि! वर्णयन्तः ॥१६६॥

हे श्रीस्वामिनीजू! जैसे आकाशमें पक्षीगण अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार बहुत दूर उड़ते हैं, परन्तु उस (आकाशका) पार नहीं पाते, इसी प्रकार श्रेष्ठ मुनि गण भी अपनी अपनी शक्ति

और मतिके अनुसार आपके क्षमा शील कृपादिक दिव्य मङ्गल गुणोंकी परिस्थितिका वर्णन करते हुये कभी भी पार नहीं पाते ॥१६६॥

गतिस्त्वमेवासि चराचराणां स्थितिस्त्वयैवाश्रितकामधेनो ! ।
संमर्षयाघौघमहो कृपातः किशोरि ! मातेव जगत्त्रयाम्ब ! ॥१६७॥

हे आश्रित-कामदोहे (शरणागतजीवोंकी सभी हितकर इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली) ! चर अचर प्राणियोंको आपही सम्हालने वाली है, आपही के द्वारा इनकी स्थिति भी है, अत एव हे जगज्जननी श्रीकिशोरीजी ! आप मेरे अपराधपुञ्जोंको अपनी कृपासे ही क्षमा करें ॥१६७॥

घनिष्ठसम्बन्धमृते न जातु प्राप्तिर्भवत्या इति निश्चितं हि ।
गुरोः सकाशात्तमवाप्य विज्ञाः सुखेन संयान्तु तव प्रसादम् ॥१६८॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! बिना घनिष्ठ सम्बन्धके आपकी प्राप्ति कभी भी नहीं होती है, ऐसा निश्चित सिद्धान्त है, अतएव बुद्धिमानोंको चाहिये कि, वे आचार्य द्वारा उस (सम्बन्ध-भाव) को प्राप्त करके सुखपूर्वक आपके प्रसादको प्राप्त करें ॥१६८॥

चराचरं सर्वमिदं त्वदंशजं त्वयाऽभिगुप्तं त्वयि सुप्रतिष्ठितम् ।
त्वय्येव चान्ते प्रविलीयते तथा त्वया ततं सर्वजगद्धितैषिणि ! ॥१६९॥

हे स्थावर जङ्गम प्राणियोंका हित चाहने वाली श्रीकिशोरीजी ! यह सारा चर अचर मय जगत्, आपके ही अंशसे प्रकट, और आप में ही स्थित है, आपही इसकी रक्षा करने वाली हैं, तथा अन्तमें यह सब दृश्य प्रपञ्च आपमें ही लीन होगा और आपके द्वारा अभी भी यह सारा विश्व व्याप्त हो रहा है ॥१६९॥

चलं स्त्रियं काञ्चनमुत्सृजन्तो भजन्ति ये त्वां विगताभिलाषाः ।
सुखेन ते त्वच्चरणप्लवाश्रितास्तीर्त्वा भवाब्धिं तव यान्ति धाम ॥१७०॥

छल, स्त्री, धन आदि आसक्ति-वर्द्धक वस्तुओंका परित्याग करते हुये जो सब कामनाओंको छोड़कर आपका भजन करते हैं, वे सुखपूर्वक आपके श्रीचरण कमल रूपी जहाजका अवलम्ब लेकर संसार-सागरको पार करके आपके दिव्य धामको प्राप्त होते हैं ॥१७०॥

जना हृदिस्थेन सुवञ्चिता इव केनापि देवेन सुमन्दभाग्यतः ।
विसृज्य ते पादसरोजमर्थदं भजन्त्यनाढ्यान् हतमङ्गलश्रियः ॥१७१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! लोग अत्यन्त मन्द भाग्यके कारण हृदयमें विराजमान किसी देवतासे वञ्चित किये (ठगे) हुयेके समान सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करने वाले आपके श्रीचरणकमलोंको छोड़कर दरिद्र, धन हीनोंकी सेवा कर रहे हैं ॥१७१॥

क्वणत्पदाब्जाभरणस्य नादः श्रुतो न यैस्त्वन्निमिवंशभूपे ! ।
तेषां गतं व्यर्थमिदं सुजन्म सुरैर्विमृग्यं जलजोदराक्षि ! ॥१७२॥

हे निमिवंशकी भूषण स्वरूपा ! हे कमलदललोचना श्रीकिशोरीजी ! जिन्होंने झङ्कार करते हुये आपके पाद-भूषणोंका शब्द नहीं श्रवण किया, उनका देवताओंके द्वारा खोजने योग्य यह सुन्दर मानव-जीवन व्यर्थ ही नष्ट हुआ ॥१७२॥

नमन्ति गायन्ति भजन्ति ये त्वां सर्वात्मना वै शरणं प्रयान्ति ।
धन्याः कृतार्थाः कृतपुण्यपुञ्जा नमोऽस्तु तेभ्यो मम कोटिकृत्वः ॥१७३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो आपको नमस्कार करते हैं आपके गुणोंका गान करते हैं, तथा जो सब प्रकारसे आपकी शरणागति स्वीकार करते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं, और बहुत बड़े पुण्यशील हैं, मेरा करोड़ों बार उनके लिये प्रणाम है ॥१७३॥

तवानुकम्पा न करोति किं किं निरक्षरं विज्ञतमं करोति ।
मूकं च वाचालमरिं सुमित्रं तुषारमग्निं शमशं किशोरि ! ॥१७४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी कृपा क्या नहीं करती है ? अर्थात् सब कुछ करती है ! जिसने एक अक्षर नहीं पढ़ा, उसे वह प्रकाण्ड विद्वान्, गूंगेको वाचाल (खूब बोलने वाला) शत्रुको सुन्दर-मित्र, अग्निको हिम (बर्फ)के समान शीतल, और अमङ्गलको मङ्गलमय बना देती है ॥१७४॥

दशा मदीयाऽपि निरीक्षितव्या स्वभावसिद्धेव कृता मया या ।
विगर्हणीया भुवि शोचनीया महद्भिरार्ये ! कमलायताक्षि ! ॥१७५॥

हे कमलके समान विशाललोचना श्रीकिशोरीजी ! मेरे द्वारा स्वभाव-सिद्ध सी बनाई हुई, सन्तोंके द्वारा अत्यन्त निन्दनीय तथा शोचनीय, मेरी इस दशाको भी अवलोकन करना उचित है ॥१७५॥

धनं मदीयं तव पादपङ्कजं विराजितं मे हृदयान्धगर्तके ।
प्रज्वाल्य तत्प्रेमसुदीपमञ्जसा प्रदर्शयानुग्रहभावतोऽधुना ॥१७६॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! मेरे अँधेरे हृदय रूपी गर्तमें विराजमान, आपका श्रीचरण-कमल ही मेरा

निज धन हैं, अतः आपने कृपा भावसे ही मेरे इस अँधेरे हृदयमें प्रेमरूपी सुन्दर दीपक जलाकर उसका मुझे अब दर्शन करा दीजिये ॥१७६॥

न कुत्सितं कर्म तदस्ति हे प्रिये ! व्यधायि यन्नेह मया सहस्रशः ।
विपाककाले ऽभिमुखं तवागता क्रन्दामि साऽहं कृपया प्रसीद मे ॥१७७॥

हे श्रीप्रियाजू ! जगत्‌में वह कोई भी निन्दित कर्म नहीं है, जिसे मैंने सहस्रों बार न किया हो, परन्तु उनका फल उदय होने पर, वही मैं आपके सम्मुख आकर अब रो रही हूँ, अतः कृपा करके आप मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥१७७॥

पठन्तु वेदागमसत्पुराण - स्मृतीतिहासानिह संहिताश्च ।
अहं तु वां नाम पठानि पूतं किशोरि ! सौभाग्यमिदं प्रयच्छ ॥१७८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! भले कोई वेद पढ़े, शास्त्र पढ़े, सत्पुराण, स्मृति, इतिहास और संहिताओंको पढ़े, परन्तु आप हमें यह सौभाग्य प्रदान कीजिये, जिससे मैं केवल आप ही श्रीयुगल सरकारके पवित्र 'श्रीसीताराम' इस नामका पाठ करती रहूँ ॥१७८॥

फलेद् द्रुतं मे ऽ यमभीष्टवृक्षस्तवानुकम्पामृतवर्द्धितो हि ।
विनष्टिमाप्नोत्वचिरेण सम्यङ् ममाहितं दुर्व्यसनं समूलम् ॥१७९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मेरा दुर्व्यसन रूपी शत्रु सम्यक् प्रकारसे शीघ्र जड़ सहित नष्ट हो जावे । आपकी कृपा रूपी अमृतसे बढ़ा हुआ, मेरा यह मनोरथ रूपी वृक्ष शीघ्र फलवान् बने ॥१७९॥

बलं त्वदीयं बलमेव विद्यात् कुर्यात्तवार्चां गुणकीर्त्तनाढ्याम् ।
यायाच्छरण्यं शरणं वरेण्यं मनस्त्वदीयाङ्घ्रिसरोजमार्ये ! ॥१८०॥

हे आर्ये ! मेरा मन आपके ही बलको अपना बल, और गुण कीर्त्तन आदिसे युक्त आपकी पूजाको ही, अपना वास्तविक कर्त्तव्य जाने, तथा रक्षा करनेको पूर्णसमर्थ आपके ही सर्वश्रेष्ठ श्रीचरणकमलोंकी शरण ग्रहणको करे ॥१८०॥

भवे भवे वै कृपया भवत्या त्वज्जन्मभूमौ मम जन्म भूयात् ।
रतिस्त्वदीयाङ्घ्रिसरोजयोश्च स्वभावजेवास्त्वनपायिनी च ॥१८१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जब-जब मेरा जन्म हो, तब-तब आपकी कृपासे आपकी ही श्रीजन्मभूमि (श्रीमिथिलाजी) में होवे और मेरी प्रीति सदा आपके ही श्रीचरण कमलोंमें स्वाभाविकसी एक रस बनी रहे ॥१८१॥

मतिं हि तां देहि यया त्वहर्निशं तवानुकम्पां सुखदुःखयोरपि ।
विनष्टशङ्का सकलेषु जन्मसु प्रतिक्षणं चेतसि भावयाम्यहम् ॥१८२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मुझे सभी जन्मोंमें यह मति प्रदान कीजिये, जिसके द्वारा निःसन्देह होकर सुख-दुखोंकी दोनों उपस्थितियें भी अपने चित्तमें रातदिन क्षण-क्षण आपकी दयाका ही मैं सदा अनुभव करती रहूँ ॥१८२॥

यदीह मय्यस्ति तवानुकम्पा किशोरि ! काचित्किल भूरिभाग्यात् ।
तदा कृतार्थाऽस्मि न संशयोऽत्र भवस्तु नूनं सफलो ममाद्य ॥१८३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! परम सौभाग्यवश मेरेप्रति आपकी यदि किञ्चित् भी कृपा है, तो मैं कृत-कृत्य हूँ और मेरा जन्म अवश्य सफल है, इसमें नेक भी सन्देह नहीं ॥१८३॥

रमेरन्नेवं विषयेषु दुर्भगा मनस्तु मे त्वच्चरणारविन्दयोः ।
भजन्तु लोकाः कमपीष्टदैवतं मनो मदीयं तु तवाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥१८४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! दुर्भागी जीव भले अपनी इच्छाके अनुसार विषयोंमें रमें (खेलकरें), किन्तु मेरा यह मन सर्वदा आपके ही श्रीचरणकमलोंमें विहार करे । लोग भले किसी अन्य इष्ट-देवोंका भजन करें, परन्तु मेरा मन आपके ही श्रीचरणकमलोंका निरन्तर भजन करे ॥१८४॥

ललन्तु केचित्कमपीह संश्रिताः परन्तु चेतो मम नष्टसंशयम् ।
त्वदीयसुस्निग्धपदाम्बुजाश्रितं न चान्यथा जातु किशोरि ! वञ्चितम् ॥१८५॥

कोई जीव भले ही किसीका आश्रय लेकर आनन्द करें, परन्तु मेरा यह चित्त समस्त सन्देहोंसे रहित होकर सदा आपके ही सुकोमल श्रीचरणकमलोंका आश्रित हो सुखका अनुभव करे, अन्यथा आपके श्रीचरणकमलोंसे वञ्चित रहकर यह कभी भी सुख न माने ॥१८५॥

वरं प्रयच्छेदमभीप्सितं शुभे ! सुसाधुमृग्यं मुनिवर्यसम्मतम् ।
ममाहितं दुष्कृतकर्मसम्भवं क्षयं व्रजेद्दुर्व्यसनं सकारणम् ॥१८६॥

हे सकल मङ्गलरूपा श्रीकिशोरीजी ! जिसे मुनिश्रेष्ठ भी सबसे उत्तम मानते हैं और उत्तम सन्त भी जिसकी खोज करते हैं, बस वही उपर्युक्त अभीष्ट वर मुझे प्रदान कीजिये, और मेरे ही पूर्वके दुष्कर्मोंका फलस्वरूप, पूर्ण अहित करने वाला मेरा यह दुर्व्यसन (खोटा अनादरयुक्त अभ्यास) समूल नष्ट हो जावे ॥१८६॥

सतां स्वभावं कलयेत्तु सर्वदा गृह्णातु मा वृत्तिमथासतां मनः।
सदैव पश्येत्त्वदनुग्रहं प्रिये ! निजां स्थितिं चैव किशोरि ! निश्चलाम् ॥१८७॥

हे श्रीप्रियाजू ! मेरा मन, संतोंके स्वभाव प्राप्तिकी ही सदा उत्कण्ठा रक्खे, और कभी भी असज्जनों (दुष्टों) की वृत्तिको न ग्रहण करे, तथा हे श्रीकिशोरीजी ! यह मेरा मन एकाग्र होकर अपनी स्थिति और आपके अनुग्रहका सदैव दर्शन करता रहे ॥१८७॥

पडङ्घ्रिवृत्तिं तव पादपङ्कजे लभेत चित्तं मम नित्यमेव हि ।
नैव श्ववृत्तिं भजतां सुचञ्चलां निरङ्कुशत्वेन युतां किशोरि ! मे ॥१८८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मेरा चित्त आपके श्रीचरणकमलोंमें नित्य भौंरेकी वृत्तिको प्राप्त करे, शासनहीन कुत्तेके समान परम चञ्चल वृत्तिका यह कभी भी सेवन न करें ॥१८८॥

शमं व्रजेचञ्चलमुज्झितेषणं निर्द्वन्द्वमार्ये ! तव पादपङ्कजे ।
पाथोजनेत्रे ! निवसेन्मनो हि मे विहाय यायान्मिथिलां न कुत्रचित् ॥१८९॥

हे आर्ये ! हे कमललोचने ! मेरा मन चञ्चलताको छोड़कर, सभी प्रकारकी वासनाओंसे रहित हो, सुख-दुःख शीतोष्ण, लाभ हानि, संयोग वियोग, मान अपमानमें समताको ग्रहण करता हुआ, आपके श्रीचरणकमलोंमें शान्ति ग्रहण करे, तथा आपके ही श्रीचरणकमलोंमें सदा निवास करे और श्रीमिथिलाजीको छोड़कर कभी भी अन्यत्र न जावे ॥१८९॥

हसन्तु निन्दन्तु वदन्तु दुर्वचो जना नियुक्ता हृदयस्थितेन वै ।
केनापि देवेन पदाम्बुजाश्रितं न संस्थितिं स्वां प्रजहातु मन्मनः ॥१९०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! हृदयमें विराजमान हुये किसी (आवेशरूप) देवताकी प्रेरणासे लोग भले मेरी हँसी करें, निन्दा करें और दुर्वचन कहें, परन्तु मेरा मन आपके श्रीचरणकमलोंका आश्रित होकर अपनी स्थितिका कभी भी परित्याग न करे ॥१९०॥

क्षमस्व वात्सल्यवति ! क्षमानिधे ! सुदुष्कृतानि प्रचुरीकृतानि मे ।
पापात्मनाऽनन्तसहस्रजन्मभिर्दयानिधे ! प्रेक्ष्य पदाम्बुजाश्रिताम् ॥१९१॥

हे वात्सल्यवती ! दयानिधे ! श्रीकिशोरीजी ! मैं ने अनन्त सहस्र जन्मों में जो पाप बुद्धिके कारण ढेरके ढेर खोटे कर्मोंका सञ्चय कर लिया है, उन्हें आप अपने श्रीचरणकमलोंकी आश्रित समझकर मुझे क्षमा करें ॥१९१॥

त्रस्ताऽस्मि भीताऽस्म्यपि सर्वथैव किशोरि ! कामं सुतिरस्कृताऽहम् ।
यथोचितं दुर्गतिरस्ति लब्धा मया त्वदीयाङ्घ्रियुगं त्यजन्त्या ॥१६२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपके श्रीचरणकमलोंका त्याग करनेके कारण मैं सब प्रकारकी यथोचित दुर्गतिको अब प्राप्त कर चुकी हूँ, तिरस्कार प्राप्तिमें भी अब कुछ कमी बाकी नहीं है, एतदर्थ बहुत दुखी हूँ और अपने कर्मोंके फल-भोग-भयसे डर रही हूँ ॥१६२॥

ज्ञप्तिर्मयैषा हृदयस्थितायै कृपासुधापूर्णविलोचनायै ।
निवेद्यते सप्रियशोभितायै सर्वस्वभूते ! मयि संप्रसीद ॥१६३॥

हे मेरी सर्वस्वभूते श्रीकिशोरीजी ! प्राणप्यारेजूके सहित शोभायमान, हृदयनिवासिनी कृपारूपी अमृतसे पूर्ण लोचनाजू, आपसे यही विज्ञप्ति मैं निवेदन कररही हूँ कि आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥१६३॥

नमस्तेऽम्बुजाक्ष्यै सतामार्तिहन्त्र्यै विदेहात्मजायै चिदानन्दमूर्ते !
रमाशैलपुत्रीविधात्रीभिरीड्ये ! नमस्तेऽन्वहं प्रेष्ठहृद्भावविज्ञे ! ॥१६४॥

हे श्रीप्राणप्यारेजूके हृदयका भली भाँति भाव जानने वाली ! हे चित्, आनन्द-विग्रह (ब्रह्मके आनन्दकी मूर्त्ति) श्रीकिशोरीजी ! हे सन्तोंका दुख हरने वाली ! हे रमा, उमा, ब्रह्माणियोंके द्वारा स्तुति करने योग्य श्रीकिशोरीजू ! आप श्रीविदेहनन्दिनीजीको मेरा सतत नमस्कार है ॥१६४॥

नमस्ते सतां सर्वसौख्यप्रदात्र्यै सुशीले ! क्षमाब्धे ! दिव्यकान्ते !
नमस्तेऽस्तु भूयो महाप्रेममूर्त्ते ! विदेहात्मजे ! स्वालिवृन्दैःसमेते ! ॥१६५॥

हे सौशील्यगुणयुक्ते ! हे क्षमासागरे ! हे दिव्यकान्तिवाली ! श्रीकिशोरीजी ! आप सन्तोंको सभी सुख प्रदान करती हैं, अतः आपके लिये मेरा नमस्कार है । हे महाप्रेममूर्त्ते ! हे सखीवृन्दोंसे युक्ते ! हे श्रीविदेहनन्दिनीजू ! आपके लिये मेरा वारं वार नमस्कार है ॥१६५॥

दिनेशान्वयाम्भोजहंसप्रियायै शरच्चन्द्रपुञ्जाभचारुस्मितास्ये !
नमस्तेऽस्तु विद्युत्सहस्रप्रभायै लसद्रत्नसिंहासने राजितायै ॥१६६॥

हे शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्र पुञ्जके समान सुन्दर मुस्कान युक्त मुखवाली श्रीकिशोरीजी ! आप सूर्यवंशरूपी कमलको सूर्यकेसमान खिलाने वाले श्रीरामभद्रजूकी प्राणप्रिया हैं, और अत्यन्त शोभायमान रत्नसिंहासन पर विराजमान, सैकड़ों बिजुलीके समान प्रभा (प्रकाश) वाली हैं, अतः आपके लिये मेरा वारंवार प्रणाम है ॥१६६॥

कृपोपेतनेत्रे ! मनोज्ञाङ्गि ! नित्ये ! नमस्तेऽस्तु हारावलीभूषितायै ।
नमस्तेऽस्तु दिव्याम्बरालङ्कृतायै मणिव्रातसङ्गुम्फिताभूषणायै ॥१९७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपके कटाक्ष कृपासे युक्त हैं, आपके सभी अङ्ग मनको हरण करनेवाले हैं, आप सदा ही एकरस बनी रहती हैं, हारकी पङ्क्तियोंसे आपका हृदयस्थल सुशोभित हो रहा है, मैं आपको नमस्कार करतीहूँ। मणियोंसे गुथे हुये जिनके भूषण हैं, दिव्यवस्त्रोंसे जो विभूषित हैं, उन आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥१९७॥

तडित्कोटिपुञ्जोज्ज्वलचन्द्रिकायै लसत्कङ्कणाम्भोरुहोदारहस्ते ।
रविभ्रान्तिकृत्कर्णपुष्पे ! रसज्ञे ! सदा प्रेष्ठमोदप्रदे ! मन्दहास्ये ! ॥१९८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! करोड़ों बिजलीके समूहोंके समान प्रकाशमान चन्द्रिकाको जो धारण किये हुई हैं, जिनके उदार हस्तकमल सुन्दर कङ्कणोंसे अलंकृत हैं तथा सूर्यका भ्रम कराने वाले जिनके कर्ण भूषण हैं, जो सब रसोंका यथार्थ परिज्ञान रखती हैं, और सदा अपने प्राणप्यारेजीको परम सुख प्रदान करती रहती हैं, जिनकी मन्द २ सुन्दर मुस्कान है, उन आपके लिये मेरा बार बार नमस्कार है ॥१९८॥

नमस्ते प्रियाब्जाक्षिबालार्कवक्त्रे ! द्विरेफावलीकुञ्चितस्निग्धकेशि ! ।
नमस्तेऽन्वहं नूपुराढ्याङ्घ्रिपद्मे ! प्रपन्नार्तकल्पद्रुमाब्जाङ्घ्रिरेणो ! ॥१९९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! प्यारेके नेत्र रूपी कमलको खिलानेके लिये जिनका श्रीमुखारविन्द उदय कालके सूर्यके समान है, जिनके केश भ्रमरोंके समान काले और कुञ्चित (घुँघुराले) हैं, उन आपके लिये मेरा नमस्कार है। जिनके श्रीचरण कमल नूपुरोंसे सुशोभित हैं, तथा जिनके श्रीचरण कमल-की धूलि शरणागत भक्तोंको कल्प वृक्षके समान सर्वाभीष्ट प्रदान करने वाली है, उन आपके लिये मेरा सर्वदा नमस्कार है ॥१९९॥

नमस्तेऽस्तु सर्वेप्सितैकप्रदात्र्यै मुकारुण्यपीयूषसद्माब्जनेत्रे !
नमः प्राणनाथात्मनित्यालयायै मृदुस्मेरपूर्णेन्दुकान्ताननायै ॥२००॥

जो भक्तोंके सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली हैं, जिनके नेत्र कमल कृपारूपी अमृतके भवन हैं, हे श्रीकिशोरीजी ! उन आपके लिये मेरा नमस्कार है, जिनका श्रीप्राणनाथजीके हृदयमें नित्य वास है, मधुर मुस्कान युक्त, पूर्ण चन्द्रके सदृश अत्यन्त सुन्दर, आह्लाद कारक, प्रसन्नरूप, जिनका श्रीमुखारविन्द है, हे श्रीकिशोरीजी ! उन आपके लिये मेरा सतत नमस्कार है ॥२००॥

नमो भाग्यदे ! भक्तदौर्भाग्यहन्त्र्यै ! प्रपन्नाखिलाभीष्टदानप्रसक्ते !
शुभं ते चिरञ्जीव सप्राणनाथा दयालो ! दया मे विधेया भवत्या ॥२०१॥

हे उत्तम भाग्य प्रदान करने वाली ! हे भक्तोंके दुर्भाग्यको नष्ट करने वाली ! हे आश्रितोंके सम्पूर्ण मनोरथोंको प्रदान करनेमें विशेष आसक्त होने वाली, श्रीकिशोरीजी ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ! हे दयालो ! आपका मङ्गल हो, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित आप चिर जीवें, और मेरे लिये अपनी कृपाका विधान करें ॥२०१॥

—: इति पारायण ५ समाप्त :—

हे हे स्वामिनि ! सर्वदे ! गुणनिधे ! कल्याणवारां निधे !
हे सर्वेश्वरि ! पद्मपत्रनयने ! कोटीन्दुतुल्यानने !।
हे साकेतविहारिणि ! प्रियवरे ! सौशील्यरत्नालये !
हे श्यामे ! वरभूषणे च रसिके ! जानामि न त्वां विना ॥२०२॥

हे सभीका शासनछत्र अपने हाथमें रखने वाली ! हे कमलदललोचने ! हे भक्तोंको सब कुछ प्रदान करने वाली ! हे समस्त गुणोंकी सुनिधि स्वरूपा ! हे समस्त मङ्गलोंकी सागर ! हे करोड़ों चन्द्रमाओंके सदृश परम आह्लाद वर्द्धक प्रकाशमान मुखारविन्द वाली ! हे श्रीसाकेत विहारिणीजी ! हे प्रियशिरोमणे ! हे सौशील्य गुणकी समुद्र ! हे किशोरावस्थासे युक्त ! हे श्रेष्ठ भूषणोंको धारण किये हुई ! हे प्रियतम-सुखास्वाद-परायणे ! आपके बिना मैं और कुछ नहीं जानती हूँ ॥२०२॥

नैवेहास्ति गतिर्हि कापि शुभदे ! त्वत्पादपद्मादृते ।
मह्यं सत्यमवेहि नानृतमहं त्वां वच्मि सत्योज्झिता ॥
वात्सल्यात्त्वमशेषहृद्गतिसुवित् प्रीता भवातो मयि ।
प्राणेशात्मसरोजकुञ्जनिलये ! जानामि न त्वां विना ॥२०३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! यद्यपि मैं झूठी हूँ तथापि आपसे सत्य कह रही हूँ, कि आपके श्रीचरण कमलके बिना मेरा कोई और उपाय है ही नहीं, आप इसे असत्य न जानें। फिर आप तो सभीके हृदयकी गतिको जानती ही हैं, अतः आपसे असत्य क्या छिप सकता है ? हे श्रीप्राणप्यारेजूके हृदय रूपी कमलकुञ्जमें निवास करने वाली श्रीकिशोरीजी ! मैं आपके बिना और किसीको जानती ही नहीं हूँ, अतः आप अपने वात्सल्य-भावसे ही मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥२०३॥

पापा पापविचक्षणा चपलधीः पापोद्भवा पापिनी
पापात्माऽखिलपापकण्टकगृहं सर्वापराधाश्रयः ।
सैवाहं शरणं गता निखिलदौ पादौ त्वदीयौ शुभौ
तस्मादेव दयस्व किञ्चन परं जानामि न त्वां विना ॥२०४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मैं पापका स्वरूप, पाप करनेमें सब प्रकारसे चतुर, चञ्चल बुद्धि, पापोंसे ही जन्मी हुई, पाप कर्म प्रधान, पापमय बुद्धि वाली व समस्त पाप रूपी काँटोंका निवास स्थान तथा सभी अपराधोंका घर हूँ, सो मैं आपके मङ्गलमय सर्वाभीष्टप्रदायक श्रीचरणकमलोंकी शरणमें आगयी हू, अतः आप मेरे प्रति दया कीजिये, क्योंकि मैं आपको छोडकर और कुछ जानती ही नहीं ॥२०४॥

संस्मृत्येह कृपां च तेऽपरिमितां निर्हेतुकां भूरिदां
जातायां नहि दुर्लभं किमपि वै यस्यां त्रिलोकेष्वपि ।
यात्यानन्दमिदं मनो हि परमं मे पापरूप ह्यतो
निर्भीताऽस्मि कृता तयैव शुभदे ! जानामि न त्वां विना ॥२०५॥

हे सकल मङ्गल प्रदान करने वाली श्रीकिशोरीजी ! यह मेरा पापी मन आपकी उस हेतु रहित अपार कृपाका स्मरण करके परम आनन्दको प्राप्त हो रहा है, जो भक्तोंको उनकी योग्यता से करोडों गुणा अधिक दान दे डालती है तथा जिसके प्रकट होजाने पर तीनो लोकोंमे कोई भी वस्तु भक्तके लिये दुर्लभ रह ही नहा जाती। मुझे आपकी उस निर्हेतुकी कृपाने ही निर्भय कर दिया है, अत एव मैं आपके बिना और कुछ जानती ही नहीं ॥२०५॥

लोके मे बहवः श्रुता मुनिवरैर्वेदैश्च सङ्कीर्त्तिताः
कारुण्यामृतसिन्धवश्च शुचयो दीनप्रिया वत्सलाः ।
सौशील्यादिगुणालयाः प्रवरदाः पूर्णेन्दुभव्यानना-
स्त्वादृक्कोऽपि निरीक्ष्यते न तु मया जानामि न त्वां विना ॥२०६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! लोकमे मुनियों और वेदोंके द्वारा गाये हुये बहुतसे करुणा रूपी अमृत के सागर, परम पवित्र, दीनोंको प्यार करने वाले और परमवात्सल्य स्वभावसे युक्त, सुशीलता आदि गुणोंके मन्दिर, दाता शिरोमणि, पूर्णचन्द्रके समान परमाह्लाद वर्द्धक मुखारविन्द वाले मैं ने

श्रवण किये हैं, परन्तु आपके सदृश मैं किसीको भी नहीं देख रही हूँ, अत एव मैं आपके विना और किसी को भी नहीं जानती हूँ ॥२०६॥

त्वं हि स्वामिनि ! मे पिता च जननी विद्या तथा सैख्यदा
बन्धुर्दीनपरायणा सुमतिदा लावण्यशीला परा।
आचार्या परमा हिता शरणदा दौर्गुण्यविध्वंसिनी
सर्वस्वं च हितैषिणी सुखनिधिर्जानामि न त्वां विना ॥२०७॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! आप ही मेरी पिता, माता, विद्या, सुख देनेवाली, बन्धु, दीनोंको सम्हाल करने वाली, सुन्दर मति प्रदान करने वाली, अत्यन्त छविमाधुर्य सम्पन्ना, सद्गुरु, हित करने वाली, रक्षा करनेवाली तथा खोटे गुणोंको नष्ट करने वाली, सुखोंकी खजाना, हितचिन्तन करने वाली, सर्वस्व हैं, अत एव मैं आपको छोड़कर और कुछ जानती ही नहीं हूँ ॥२०७॥

यस्याः पादसरोजरेणुरनिशं संमृग्यते नैगमै
र्ब्रह्माविष्णुमहेश्वरादिविबुधैर्नैवाप्यते जातुचित्।
तामुत्सृज्य किशोरि ! चाप्यहह वै वात्सल्यवारां निधिं
यायां कुत्र किमर्थमेव वद मे जानामि न त्वां विना ॥२०८॥

जिनके श्रीचरणकमलकी धूलिको ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि देवता तथा वेद-वेत्ता-गण संतत खोजते हैं, पर प्राप्त वह कभी नहीं होती, हे श्रीकिशोरीजी ! अहह उन आप वत्सल्य-सागराको छोड़कर बतलाइये मैं कहाँ ? और किस लिये जाऊँ ? मैं आपके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती २०८

वाञ्छा मेऽस्ति न काचिदप्यवनिजे ! त्वां प्राप्य वै स्वामिनीं
नाहं त्वद्बलगर्विताऽद्य कलये किञ्चित्सुरेशानपि।
प्राबुद्ध्ये न कदाचिदप्यवनिजे ! लोकेषु चाद्यापि वै
तत्त्वं वेत्सि हि किं ब्रवीमि तदतो जानामि न त्वां विना ॥२०९॥

हे श्रीधरणिनन्दिनीजू ! आप स्वामिनीको पाकर मुझे किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं शेष है, और मैं आपके बलके अभिमानसे देवनायकोंको भी कुछ नहीं गिन रही हूँ, और न उन्हें त्रिलोकीमें आज तक कुछ समझती ही रही, सो मैं कहूँ क्या ? आप जानती ही हैं, अतः आपके विना और मैं कुछ भी नहीं जानती ॥२०९॥

भवाम्बुनाथोदरपातिताऽस्मि स्वकर्मभिर्मन्दमतिः प्रकामम् ।
तुदन्ति कामादिजलौकसो मां ते शान्तिमांसादवराः किशोरि ! ॥२१०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मुझ मन्द मतिको अपने ही कर्मोंने संसार रूपी समुद्रके बीचमें पटक दिया है जिससे कामादि रूपी मगर आदिक जलजन्तु मुझको अत्यन्त कष्ट दे रहे हैं, क्योंकि वे शान्ति रूपी माँसके मुख्य भक्षण करने वाले हैं ॥२१०॥

वलोत्कटेभ्यः कृपया कृपालो ! विमोचनं कारय मे प्रियेण ।
स एव संरक्षणयोगदक्षो निजाश्रितानामपि मृत्युवक्त्रात् ॥२११॥

हे कृपालो ! इन महाबलवानोंसे कृपा करके श्रीप्राणप्यारेजूके द्वारा मुझे छोड़वा दीजिये क्योंकि श्रीप्राणप्यारेजू अपने आश्रितोंकी मृत्युके मुखसे भी रक्षा करनेमें अत्यन्त ही प्रवीण हैं ॥२११॥

तुतोष पापेष्वधमेषु चापि वधार्हणीयेष्वपराधकेषु ।
यथा तथा मे भव सुप्रसन्ना निर्व्याजया सत्कृपयैव चाशु ॥२१२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जिस निर्हेतुकी केवल कृपाके वश होकर आप अत्यन्त पापी, अधम, प्राणदण्ड योग्य अपराध करने वालों पर भी प्रसन्न हो गयीं उसी कृपा वश मेरे ऊपर भी शीघ्र प्रसन्न हूजिये ॥२१२॥

सुबुद्धिमार्ये ! कृपया प्रयच्छ सप्रेमभक्तिं विमलां सबोधाम् ।
अहं समासाद्य पदारविन्दे निवेशये यां स्वमनोऽलिपोतम् ॥२१३॥

हे आर्ये ! हमें कृपा करके वह ज्ञान युक्त, प्रेम भक्ति समन्वित, उज्वल, सुन्दर, शुद्धि प्रदान कीजिये जिसको पाकर मैं अपने मन रूपी भौंरेके बच्चेको आपके श्रीचरणरूपी अरुण कमलमें बिठा सकूँ २१३

प्रसीद कारुण्यरसाप्लुताक्षि ! स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषे ।
प्रदेहि कैङ्कर्यमजादिकाङ्क्ष्यं पदाब्जयोर्मे करुणैकलभ्यम् ॥२१४॥

हे सहज स्वभावसे समस्त दोषोंसे रहित, हे कारुण्य-रसपूर्ण कमललोचने श्रीकिशोरीजी ! मुझपर प्रसन्न हों। ब्रह्मादि देवोंको भी जिसकी इच्छा करना कर्त्तव्य है, जो केवल कृपासे ही प्राप्त हो सकती है, अपने श्रीचरण कमलोंकी उस सेवाको मुझे प्रदान कीजिये ॥२१४॥

सन्तस्तु यद्भावनया सुतृप्ताश्चरन्त्यदुःखं विषयेष्वसक्ताः ।
तस्मात्सिरस्त्वाशु किशोरि ! मेऽपि प्रसीद सीरध्वजनन्दिनि ! त्वम् ॥२१५॥

हे श्रीसीरध्वजनन्दिनी श्रीकिशोरीजी ! आप मुझपर प्रसन्न होवें, सन्त जिस भावनाके रसमें छके हुये विषयोंमें आसक्ति रहित होकर, इस संसार रूपी जङ्गलमें सुख पूर्वक विचरते हैं, उस भावनाकी प्राप्ति मुझे भी शीघ्र हो जावे ॥२१५॥

नासादितः स्वामिनि ! भोग एव न प्रेमयोगो न तथाऽऽत्मबोधः ।
गतं मदीयं खलु सर्वथैव निरर्थकं हन्त मनुष्यजन्म ॥२१६॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! न मैंने भोग ही प्राप्त किया और न प्रेम योग, न आत्मज्ञानकी ही प्राप्ति की, अतएव मेरा यह मनुष्य जन्म हाय बिल्कुल व्यर्थ ही नष्ट हो गया ॥२१६॥

दत्तप्रियांसाम्बुजमञ्जुहस्तां स्मितेन्दुवक्त्रां वनजायताक्षीम् ।
त्वां तप्तचामीकरभूषिताङ्गीं कदा नु वीक्षेऽक्षिगतां कृपालो ! ॥२१७॥

हे कृपालो ! जिनका मन्द मुस्कान युक्त पूर्णचन्द्रके समान प्रकाश युक्त परमाह्लाद प्रदायक श्रीमुखारविन्द, कमलके समान विशाल जिनके नयन तथा तपाये हुये सुवर्ण (सोने)के समान शृङ्गार युक्त गौर अङ्ग हैं, श्रीप्राणप्यारेजूके स्कन्धे पर सुन्दर हस्तकमल रक्खे आँखोंके सामने पधारी हुई, उन आपका मैं कब दर्शन करूँगी ? ॥२१७॥

तदेव सौभाग्यदिनं मदीयं भविष्यति स्निग्धकरारविन्दम् ।
यस्मिन्नुदीक्षे स्वशिरःस्थितं श्रीप्राणेशकण्ठाभरणं त्वदीयम् ॥२१८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! श्रीप्राणनाथजूके कण्ठका भूषण स्वरूप स्निग्ध कमलके समान कोमल आपके हाथको जिस दिन मैं अपने शिर पर विराजमान देखूँगी वही, मेरे परम सौभाग्यका दिन होवेगा २१८

कां यामि हा हा शरणं शरण्ये ! यस्याः कृपातो मम वाञ्छितं स्यात् ।
ऋते त्वदीयाङ्घ्रिसरोजयुग्मान्न वीक्ष्यते कश्चिदुपाय एव ॥२१९॥

हे समस्त चर-अचर, ब्रह्मासे मशक (मच्छड) पर्यन्त जीवोंकी रक्षा करनेकी समर्थ श्रीस्वामिनीजू ! मैं किसकी शरण जाऊँ ? जिसकी कृपासे मेरी इस पूर्वोक्त अभिलाषाकी सिद्धि हो ! हा हा आपके युगल श्रीचरणकमलको छोडकर इस मनोरथकी प्राप्तिके लिये दूसरा और कोई उपाय दीखता ही नहीं ॥२१९॥

तां भक्तिमेष्यामि यया सहर्षं कृपां करिष्यस्यमलाम्बुजाक्षि ! ।
कदान्विति ब्रूहि कृपैकमूर्त्ते ! किशोरि ! देवैरपि मार्गणीयाम् ॥२२०॥

हे कृपाकी उपमा रहित विग्रह, अमल कमलके समान नेत्रवाली, श्रीकिशोरीजी ! बतलाइये

देवताओंके खोजने योग्य मैं आपकी उस भक्तिको कब प्राप्त करूँगी ? जिसके प्राप्त हो जानेपर आप हर्ष पूर्वक मेरे हृदयकी उत्कण्ठा पूरी करनेके लिये स्वयं कृपा करेंगी ॥२२०॥

सवल्लभा सालिगणा कदा वै सरोरुहं पाणितले दधाना ।
सस्मेरपूर्णेन्दुमुखी सभूपा हृदालये मे विहरिष्यसि त्वम् ॥२२१॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! पूर्ण श्रृङ्गार युक्त, अपने करकमलमें कमलको धारणकी हुई, श्रीप्राण प्यारेजूके सहित, सखी वृन्दोंके समेत मन्दमुस्कान युक्त, पूर्णचन्द्रके समान परमाह्लाद-वर्द्धक प्रकाशमान मुख वाली आप कब मेरे हृदयरूपी मन्दिरमें विहार करेंगी ? ॥२२१॥

हरिप्रियां हारविभूष्युरस्कामशेषसौन्दर्यनिकेतनाङ्गीम् ।
विहारिणीं बिम्बफलाधरोष्ठीं पश्यन्ति ये त्वां खलु तेऽतिधन्याः ॥२२२॥

जिनके श्रीअङ्गोंमें ही समस्त सौन्दर्यका निवास है, अरुण बिम्बाफलके समान जिनके अधर और ओष्ठ हैं, हारोंसे अलंकृत जिनका उरस्थल है, सारे विश्वमें जो नाना रूपोंसे विहार कर रही हैं, तथा भक्तोंके पाप और दुःख को हरने वाले श्रीरघुनन्दन प्यारेजूकी जो प्रिया हैं, उन आपके दर्शनसुखका सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हैं, वे निश्चय ही अत्यन्त धन्य हैं ॥२२२॥

स्तादाशु संप्रीतिकरस्वभावो मनोरथश्चेति हृदि स्थितो मे ।
करोमि किं दुष्टमनो न याति स्थैर्यं महाचञ्चलमर्चनीये ! ॥२२३॥

हे विश्व मात्रके पूजने योग्य श्रीकिशोरीजी ! मेरे हृदयमें मनोरथ तो यही स्थित है, कि मेरा स्वभाव ही आपकी शीघ्र प्रसन्नता कराने वाला हो जावे, परन्तु करूँ क्या ? यह मेरा दुष्ट महा चञ्चल मन स्थिर होता ही नहीं ॥२२३॥

जनाः प्रमत्ता हितबुद्धिहीना मज्जन्ति संसारपयोधिमध्ये ।
सङ्क्लिश्यमाना मदनादिनक्रैरपास्य ते पादसरोजपोतम् ॥२२४॥

जिनकी बुद्धि हितकारिणी नहीं है, वे लोग प्रमाद वश हो आपके श्रीचरण कमलरूपी जहाजको त्याग कर संसार रूपी समुद्रके बीचमें डूब रहे हैं, और उन्हें कामादिक मगर आदि जन्तु अत्यन्त कष्ट पहुँचा रहे हैं ॥२२४॥

न तेऽनुरक्ताः सदयाब्दिदृष्टा लब्धाङ्घ्रिपङ्केरुहदीर्घनौकाः ।
प्रिये ! निमज्जन्ति भवे प्रपन्ना दयानिधे ! पुण्यकृतां वरिष्ठाः ॥२२५॥

हे दयानिधे श्रीप्यारीजू ! परन्तु जिन पुण्यात्माओंको आपके श्रीचरणकमलकी विशाल

नौका मिल गयी है, तथा जिन्हें आप अपनी दयापूर्ण दृष्टिसे अवलोकन कर चुकी हैं, वे आपके प्रेमी शरणागत भक्त, संसार सागरमें कभी नहीं डूबते हैं ॥२२५॥

कदा नु ते स्निग्धपदारविन्दे ब्रह्मादिदेवैर्मनसाऽभिजुष्टे ।
मनोऽलिपोतो मम चम्पकाभे सुनूपुराढ्ये प्ररमेत भूयः ॥२२६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! ब्रह्मादि देवताओंके मन द्वारा सेवित, चम्पा पुष्पकी द्युतिको जीतने वाले नूपुरोंसे युक्त, अतीव चिकणा, आपके श्रीचरण कमलमें मेरा यह मन रूपी भौंरेका बच्चा कब क्रीडा करेगा ? ॥२२६॥

रासप्रियां रासकलासुदक्षां रासेश्वरीं रासरसेशकान्ताम् ।
रासस्थले रासविलासमग्नां कदा नु संवीक्ष्य कृती भवेयम् ॥२२७॥

जिन्हें रासप्रिय है, रासकी कलामें जो अत्यन्त निपुण, और रास रसके नायक श्रीरामजी सरकारकी प्राण प्यारी हैं, उन आपका रासके स्थलमें रास केलि करते हुये मैं कब भली भाँति दर्शन करके कृतकृत्य होऊँगी ? ॥२२७॥

जपादियोगं न च वेद्मि कश्चित्कृतो न मे जातु च मुक्तियत्नः ।
नानुष्ठितः प्रीतिकरो हि योगस्तव प्रसन्नाक्षि ! मया कदाचित् ॥२२८॥

हे प्रसन्न लोचना श्रीकिशोरीजी ! मैं जप आदिक किसी योगको नहीं जानती हूँ, और न मैंने कभी अपनी मुक्तिके लिये ही कुछ प्रयत्न किया है, न आपके ही प्रसन्नता कारक (भक्ति) योगका अनुष्ठान ही मैंने कभी किया है ॥२२८॥

पुनीहि मेऽन्तःकरणं स्वदृष्ट्या पाथोजपादावपि संनिधत्स्व ।
मनोमृगं मे स्मितपाशबद्धं कृत्वाऽर्पितं ते कृपया गृहाण ॥२२९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आप अपनी कृपादृष्टिसे मेरे अन्तः करणको पवित्र कीजिये और अपने श्रीचरण-कमलोंको उसमें रख लीजिये तथा आपके लिये अर्पण किये हुये मेरे मनरूपी मृगको अपनी मुस्कान रूपी डोरीमें बाँधकर कृपा पूर्वक स्वीकार कीजिये ॥२२९॥

त्रीण्येव मुक्त्यै किल साधनानि प्रोक्तानि वेदैरपि विश्रुतानि ।
तानि त्वदीयां न कृपां विनाऽपि प्रयान्ति कर्मक्षमतां कथञ्चित् ॥२३०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मुक्ति प्राप्तिके लिये कर्म, ज्ञान, उपासना ये, ही तीन साधन वेद कथित

सुने जाते है, परन्तु ये तीनों भी बिना आपकी कृपा हुये किसी प्रकारसे भी सामीप्य मुक्तिकी प्राप्ति कराने में समर्थ कभी नहीं होते ॥२३०॥

दिश स्वप्रेमाप्लुतभक्तियोगं कृपैकहेतुं गतसर्वदोषम् ।
निरीक्ष्य पादाम्बुजयोः प्रपन्नां किशोरि! मां त्वं प्रणिपाततुष्टे! ॥२३१॥

हे प्रणाम मानसे संतुष्ट (प्रसन्न) हो जाने वाली श्रीकिशोरीजी! आप मुझे अपने श्रीचरण-कमलोंकी शरणमें आई हुई देखकर, उस परमपवित्र प्रेममे भीजे हुये भक्ति योगका उपदेश करनेकी कृपा कीजिये कि, जिसके द्वारा आपकी कृपाका प्रवाह (बहना) स्वयमेव प्रारम्भ हो जाय ॥२३१॥

व्यवस्थचित्ता गतसर्वतृष्णा यथा च कैङ्कर्यरता भवेयम् ।
तथाऽनुगृह्णीष्व किशोरि! मह्यं चिराय मे कूलमिवासि लब्धा ॥२३२॥

हे श्रीकिशोरीजी! अब आप मेरे प्रति ऐसी अनुग्रह कीजिये कि जिससे मैं सब कामनाओंसे मुक्त, एकाग्रचित्त होकर आपकी सेवा परायण बन जाऊँ, हे श्रीकिशोरीजी! इस संसार-सागरके मझाहमें डूबती हुई को बहुत दिनोके बाद आपका यह जीवन आधारद, स्मृतिरूपी अवलम्ब मुझे इस प्रकार मिला है, मानो किनारा ही मिल गया हो ॥२३२॥

सिञ्चन्त्य आरात्प्रियमात्मनाथं लब्धेङ्गिताः कोशलराजसूनुम् ।
तवालिमुख्यास्त्वयि बद्धभावा दृश्या भविष्यन्ति कदा नु ता मे ॥२३३॥

हे श्रीस्वामिनीजू! जिन्होंने आपके प्रति अपना सम्बन्ध भाव बाँध लिया है, वे आपकी सखियाँ आपका इशारा पाकर अपने प्रिय प्राणनाथ, श्रीकोशल राजकुमारजीको (फागके उत्सवमें रंगसे) सिञ्चन करती (भिगोती) हुई कब मेरे द्वारा दर्शन योग्य हो सकेंगी? अर्थात् मुझे उनके दर्शनका कब सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा? ॥२३३॥

हारांश्च नव्यानि विभूषणानि सुपुष्कराणां रचितानि भक्त्या ।
मयाऽर्पितानि प्रणयेन तुष्टा संधारयिष्यस्यथवा कदा वा ॥२३४॥

हे श्रीकिशोरीजी! प्रेमपूर्वक बनाकर मेरे समर्पण किये हुये सुन्दर फूलोंके हार, भूषणोंको मेरे प्रणय भावसे प्रसन्न हो कर आप कब भली भाँति धारण करेंगी? ॥२३४॥

सहार्यपुत्रेण मुदा स्वपन्त्याः पुष्पाम्बरालङ्कृतरत्नतल्पे ।
कदा भवत्याः पदपद्मसेवा लभ्या च मे रूपसुधां पिबन्त्याः ॥२३५॥

हे श्रीकिशोरीजी! युगल छवि-सुधाको पान करते हुये, मुझे कब पुण्योंके बिछावन युक्त रत्नमय पलङ्ग पर, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित सुख पूर्वक शयन किये हुई, आपके श्रीचरणकमलकी सेवा, प्राप्त हो सकेगी? ॥२३५॥

नवामलोत्फुल्लसरोजनेत्रां सिंहासनस्थां सुपमैकमूर्त्तिम्।
कदालकालङ्कृतमोहनास्यां द्रक्ष्याम्यहं प्रेष्ठकराश्रितांसाम् ॥२३६॥

जिनके नव निर्मल कमलके समान खिले नेत्र हैं, उपमा रहित सौन्दर्यकी जो विग्रह हैं, अलकावलीसे सुशोभित, मन-मोहक जिनका श्रीमुखारविन्द है, प्राणप्यारेजूके करकमलसे सुशोभित जिनका स्कन्ध भाग है, सिंहासन पर जो विराज रही हैं, उन आपका प्रत्यक्ष दर्शन कब मैं प्राप्त करूँगी? ॥२३६॥

स्थानं स्वकीयं सुखदं दुरापं कदा नु वेत्ता पदपङ्कजं ते।
मनःषडङ्घ्रिर्मम हीनतृष्णः किशोरि! वात्सल्यवति! प्रसीद ॥२३७॥

हे वात्सल्य रसमयी श्रीकिशोरीजी! मुझपर प्रसन्न होइये। मेरा मनरूपी भौंरा समस्त वासनाओंसे मुक्त होकर कब आपके दुर्लभ श्रीचरण-कमलोंको ही अपना सुखद, निवास-स्थान समझेगा? ॥२३७॥

मङ्गलं ते दयासिन्धो! धरित्रीगर्भसम्भवे!
वेद्यायै श्रुतिसारज्ञैर्ज्ञानभक्त्येकमूर्त्तये ॥२३८॥

हे दयासिन्धो! हे पृथिवीके गर्भसे प्रकट हुई श्रीकिशोरीजी! वेदोंका सार जानने वाले ही विद्वान् आपकी महिमाको कुछ समझ सकते हैं, आप ज्ञान और भक्तिकी साक्षात् विग्रह हैं, अतः आपका सदा ही मङ्गल हो ॥२३८॥

मङ्गलं तेऽसुनाथाय यतीनां लक्ष्यरूपिणे।
भक्तवश्याय भक्तानां नाकिवृक्षाम्बुजाङ्घ्रये ॥२३९॥

हे श्रीकिशोरीजी! जो यतियोंके लक्ष्य (परब्रह्म) स्वरूप भक्तोंके अधीन रहने वाले तथा भक्तोंको कल्पवृक्षके सदृश सर्वाभीष्टप्रदायक श्रीचरणकमल वाले हैं, उन आपके श्रीप्राणनाथजू का मङ्गल हो ॥२३९॥

मङ्गलं मिथिलेन्द्राय जनन्या सहिताय ते।
ब्रह्मादिसकलाभीष्टदातृदानविधायिने ॥२४०॥

महादि देवताओंको जो सर्व प्रकारका अभीष्ट प्रदान करने वाले सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामसरकारजू हैं, उन्हें दान प्रदान करने वाले आपकी श्रीअम्बा (सुनयनामहारानी) जीके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजका मङ्गल हो ॥२४०॥

मङ्गलं मिथिलायै च नतायै सर्वधामभिः।
यन्नत्यानां च सौभाग्यं विस्मिता वीक्ष्य लोकपाः ॥२४१॥

जहाँके निवासियोंका सौभाग्य देखकर सभी लोकपाल भी आश्चर्यमें निमग्न हैं, तथा सभी धाम भी जिसे प्रणाम करते हैं, आपकी उस श्रीमिथिलाजीका मङ्गल हो ॥२४१॥

मङ्गलं ते सखीभ्योऽस्तु स्तुत्यकीर्त्तिभ्य एव च।
सुलब्धाशेषकैङ्कर्यावसराभ्यो जगद्धिते ! ॥२४२॥

हे चर-अचर प्राणी मात्रका हित करने वाली श्रीकिशोरीजी ! जिन्होंने आपकी सेवाका पूर्ण अवसर प्राप्तकर लिया है, एतदर्थ जिनकी कीर्ति प्रशंसनीय हैं, उन आपकी सखियोंके लिये मङ्गल हो ॥२४२॥

जयेन्दुकोटिभानने ! सरोरुहार्द्रलोचने !
जयामितार्त्तवत्सले ! किशोरि ! कान्तजीविते !
जयाब्जपाणिपङ्कजे ! प्रियात्मनित्यमन्दिरे !
कदा दयिष्यसे शुभे ! स्वतो मयि श्रियाऽर्चिते ! ॥२४३॥

हे चन्द्रसे कोटि गुणा अधिक प्रकाश युक्त श्रीमुखवाली ! हे कमलके समान आर्द्र (दयासे द्रवित) नेत्र वाली श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे आर्त्तभक्तोंके प्रति अत्यन्त वात्सल्य भाव रखने वाली ! हे प्राणप्यारेकी जीवन स्वरूपा श्रीकिशोरी जी ! आपकी जय हो। हे अपने करकमलमें कमलका पुष्प धारण करने वाली ! हे प्यारेके हृदयको ही अपना स्वच्छ महल बनाने वाली ! आप की जय हो। हे श्रीदेवीसे पूजिते ! हे मङ्गल स्वरूपा, श्रीकिशोरीजी ! कब आप अपनी ही निर्हेतुकी दया से द्रवी भूत होकर स्वयं मेरे ऊपर कृपा करेंगी ? ॥२४३॥

जयाजविष्णुशङ्कराहिराड्दुरापदर्शने !
जयाखिलाङ्गशोभने ! सुदिव्यभूषणान्विते !
जयालिवृन्दसेविते ! रसाश्रये ! रसाकृते !
कदा दयिष्यसे शुभे ! स्वतो मयि श्रियाऽर्चिते ! ॥२४४॥

हे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शेष आदिके लिये भी कठिनतासे दर्शन करने योग्य ! हे सभी अङ्गोंसे परम सुन्दर प्रतीत होने वाली ! हे अत्यन्त दिव्य भूषणोंको धारण करने वाली श्रीकिशोरीजी ! आप की जय हो । हे सखी वृन्दोंसे सेवित्ता, सभी रसों की कारण भूता, रस की मूर्त्ति, श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो ॥२४४॥

जयाश्रितामरद्रुमारविन्दकोमलाङ्घ्रिके !
जयेश्वरेश्वरेश्वरि ! क्षितीश्वरात्मजप्रिये ।
गुणाम्बुधे ! क्षमाम्बुधे ! शुभाम्बुधे ! सतां गते !
कदा दयिष्यसे शुभे ! स्वतो मयि श्रियाऽर्चिते ! ॥२४५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपके अरुण कमलके समान "सुकोमल श्रीचरण कमल" आश्रित भक्तोंके अभीष्ट पूरा करनेके लिये कल्पवृक्षके समान हैं, आप सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी सरकारकी प्राणप्यारी और सभी शासक-शक्तियों पर शासन करने वाली हैं, आपकी जय हो । हे दयासागरे ! हे क्षमासिन्धो ! हे समस्त मङ्गलोंकी समुद्र-स्वरूपे ! हे सन्तोंकी रक्षा करने वाली । हे मङ्गल स्वरूपा ! हे श्रीदेवीसे पूजिते श्रीकिशोरीजी ! आप अपनी ही निर्हेतुकी कृपासे कब तक मेरे ऊपर दया करेंगी ॥२४५॥

नमोऽस्तु ते सदाऽन्वहं सुलालिताश्रितावले !
समस्तसद्गुणालये ! विदेहराजकन्यके ! ।
नरेन्द्रसूनुसङ्गते ! प्रकृष्टदीनवत्सले !
कदा दयिष्यसे शुभे ! स्वतो मयि श्रियाऽर्चिते ॥२४६॥

जिनके द्वारा आश्रित भक्तोंका अत्यन्त लाड़ लड़ाया जा रहा है, जो समस्त सद्गुणोंका मन्दिर और श्रीविदेह महाराजकी कुमारी हैं, तथा श्रीचक्रवर्तीकुमारजीके समीपमें विराज रही हैं, जो दीन जनोंके प्रति वात्सल्य भाव रखने वालियोंमें परमश्रेष्ठ और श्रीदेवीजीसे पूजित, मङ्गल स्वरूपा हैं, हे श्रीकिशोरीजी ! उन आपके लिये मैं सतत नमस्कार करती हूँ, आप अपने अपेक्षा रहित सहज स्वभावसे कब मेरे प्रति कृपा करेंगी ॥२४६॥

अनन्तमारवल्लभाविमोहनाङ्गि ! सर्वदे ! ।
सम्मुस्मितेन्दुभानने ! सुरर्चिताङ्घ्रिसंश्रिते !
अमोघपुण्यदर्शने ! शुभाद्युदारकीर्त्तने ! ।
कदा दयिष्यसे शुभे ! स्वतो मयि श्रियार्चिते! ॥२४७॥

हे अपने श्रीअङ्गोंकी छविसे अनन्त रतियोंको मुग्ध कर लेने वाली ! हे आश्रितोंको सब कुछ प्रदान करने वाली ! हे सुन्दर मुस्कान युक्त, चन्द्रमाके प्रकाशके समान शीतल प्रकाश युक्त श्रीमुख कमल वाली ! हे अपने श्रीचरण कमलोंके शरणागत भक्तोंकी रक्षा करने वाली ! हे मङ्गलमय नेत्र वाली ! हे अमोघ (कभी भी निष्फल न जाने वाले) दर्शनों वाली ! हे उदार कीर्त्तन वाली ! (अर्थात् जिनका कीर्त्तन बिना और किसी साधनकी अपेक्षा रखते हुये, ही भक्तोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सब कुछ प्रदान कर देता है वे) हे मङ्गल स्वरूपे ? हे श्रीदेवीसे पूजित श्रीकिशोरीजी ! कब आप अपनी ही कृपासे मेरे ऊपर दया करेंगी ? ॥२४७॥

दृगम्बुजालये ममाऽऽवसानघस्मितानने !
न रत्नकाञ्चनालये मृदुर्हि वस्तुमर्हसि ॥
इदं सुवाञ्छितं मया समीक्ष्य वीक्ष्य चासकृत्
कदा दयिष्यसे शुभे ! स्वतो मयि श्रियाऽर्चिते ! ॥२४८॥

हे पवित्र मुस्कान युक्त श्रीमुखारविन्द वाली श्रीकिशोरीजी ! आप मेरे नेत्ररूपी कमल-भवनमें निवास कीजिये, रत्न और कञ्चन-भवनमें नहीं, क्योंकि आप अत्यन्त सुकुमारी है, इन कठोर महलोंमें बसनेके योग्य नहीं हैं, अतः मैंने बार बार भली-भाँति सोच-विचार करके ही यह (उपर्युक्त) इच्छा हृदयमें जमाई है। हे श्रीदेवीसे पूजित, मङ्गल-स्वरूपा, श्रीकिशोरीजी ! आप अपनी स्वाभाविकी कृपासे द्रवित होकर कब मेरे प्रति दया करेंगी ? ॥२४८॥

बृहत्क्षमामहार्जवानृशंसतासुशीलता-
शरण्यतावरेण्यतामनोज्ञतामहानिधे ! ॥
ऋते त्वदङ्घ्रिपङ्कजाद् गतिर्नु केतरा हि मे ?
कदा दयिष्यसे शुभे ! स्वतो मयि श्रियाऽर्चिते ! ॥२४९॥

हे अत्यन्त क्षमा, अतिशय सरलता, मृदुलता, अतीव दयालुता, सुशीलता, रक्षा करनेकी पूर्ण योग्यता, सर्वश्रेष्ठता, मनोहरता समूहकी महानिधि श्रीकिशोरीजी ! आपके श्रीचरण कमलोंके अतिरिक्त मेरी दूसरी और गति ही कौन है ? हे श्रीदेवीसे पूजित मङ्गल स्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! कब आप अपने सहज दयालु स्वभावसे मेरे प्रति दया करेंगी ? ॥२४९॥

अहं किशोरि ! यादृशी शुभाऽशुभाऽपि मूढ़धी-
स्त्वदीयसर्वकामदं पदाम्बुजं समाश्रिता ।
प्रसीद भूरिवत्सले ! रमाशिवादिवन्दिते !
कदा दयिष्यसे शुभे ? स्वतो मयि श्रियार्चिते ! ॥२५०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मैं जैसी भी अच्छी बुरी मूढ़ मति हूँ, आपके ही सर्वाभीष्ट दायक श्रीचरण कमलोंकी ही आश्रिता हूँ, आप प्रसन्न होइये । हे अत्यन्त वात्सल्य गुण युक्ते ! हे रमा, (लक्ष्मी) पार्वतीजी आदिसे वन्दिता तथा श्रीदेवीसे पूजित, मङ्गलस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! अपने सहज स्वभावसे ही कब आप मेरे ऊपर दया करेंगी ॥२५०॥

श्रीविदेहात्मजे ! प्राणनाथप्रिये ! स्वामिनी त्वं मदीयाऽसि सर्वेश्वरी ।
चारुफुल्लासिताम्भोजपत्रेक्षणे ! सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥२५१॥

हे श्रीप्राणनाथ, रघुनन्दन प्यारेजूकी प्रियाजू । हे श्रीविदेहनन्दिनीजू ! आप सभीका शासन करने वाली, मेरी स्वामिनी हैं, हे सुन्दर खिले हुये नीले कमलदलके समान नेत्र वाली, श्रीकिशोरीजी ! मैं आपका सभी भावोंसे आश्रय ग्रहण करती हूँ, आश्रय ग्रहण करती हूँ ॥२५१॥

सीतिवर्णस्तु यस्याः शुभो नाम्नि वै पूर्वकोऽर्थप्रदः शोकसंतापहा ।
तुष्टिदः प्रेयसो वक्तृकल्पद्रुमः सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥२५२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मङ्गलमय, शोक सन्तापको हरण करने वाला अभीष्टदायक, प्राणप्यारेजी की प्रसन्नता कारक, वक्ताके लिये कल्पवृक्षके समान मनोवाञ्छित वर देने वाला, जिनके नामका पूर्व वर्ण "सी" है, उन आपका मैं सभी भावों से आश्रय ग्रहण करती हूँ ॥२५२॥

ताः स्त्रियस्ते नराश्चेह लोकत्रये पूजनीयोत्तमाः सर्वदेवर्षिभिः ।
याश्च ये त्वत्कृपाभाजनान्यर्थदे ! सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥२५३॥

हे भक्तोंको सब कुछ प्रदान करने वाली श्रीकिशोरीजी ! जो आपकी कृपाके पात्र बन चुके हैं, वे तीनों लोकोंमें सभी देवता और ऋषियोंके द्वारा भी परम पूजनीय (पूजा करने के योग्य) हैं, अतः मैं सभी भावपूर्वक उन आपकी शरणागति स्वीकार करती हूँ, स्वीकार कर रही हूँ ॥२५३॥

यैरहो नादृते त्वत्पदाम्भोरुहे कोमले भक्तकल्पद्रुमौ सुन्दरे ।
तैर्न वै लभ्यते सिद्धिरेवेप्सिता सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥२५४॥

अहो ! जिन्होंने आपके भक्तकल्पतरु, सुन्दर, कोमल श्रीचरणकमलोंका आदर नहीं किया है, उन्हें भगवत्प्राप्तिस्वरूपा मनोभिलषित सिद्धि मिलती ही नहीं, अतः मैं सभी भावपूर्वक आपकी शरण में जाती हूँ ॥२५४॥

स्वामिनी त्वं हिता सर्वमोदप्रदा सर्वकल्याणदा रूपशीले ! हि नः।
त्वां समाश्रित्य किं नो सुखं भुज्यते सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥२५५॥

हे रूपशीले ! श्रीकिशोरीजी ! आप ही हम लोगोंको सर्वकल्याण प्रदान करने वाली हैं, सकल सुखदायिनी तथा हित सोचने वाली स्वामिनी हैं, आपकी शरणमें आकर प्राणियोंको कौन सुख नहीं प्राप्त होता ? अर्थात् उत्तमसे उत्तम ऐसा कोई सुख नहीं, जो आपकी शरणमें आने पर भक्तोंको न मिलता हो । अत एव मैं सभी भावोंसे, उन आपकी शरण ग्रहण करती हूँ, शरण ग्रहण करती हूँ ॥२५५॥

हारिणी संसृतेः सर्वकामप्रदा प्राणनाथासुभूते ! जगन्मङ्गलम् ।
या नुता ब्रह्मविष्ण्वीशशेषादिभिः सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥२५६॥

हे श्रीप्राणप्यारेजूकी प्राणभूता श्रीकिशोरीजी ! जिनकी ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शेष आदि देव श्रेष्ठ भी स्तुति करते हैं, जो चर-अचर प्राणियोंकी मङ्गल-स्वरूपा, सर्वमनोरथोंको प्रदान करने वाली तथा भक्तोंका जन्म-मरण दूर करने वाली हैं, उन आपका मैं सभी भावसे आश्रय ग्रहण करती हूँ, आश्रय ग्रहण करती हूँ ॥२५६॥

या भजद्धत्तमोनाशनानुस्मृतिः पावनी पावनानां यशोदाऽच्युता ।
आलियूथेश्वरीस्वामिनी श्रीप्रिये ! सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥२५७॥

हे श्रीप्रियाजू ! जो सखियोंके यूथेश्वरियोंकी स्वामिनी, कभी भी अपने स्वभावसे च्युत न होने वाली, तथा भक्तोंको अनेक प्रकारका यश प्रदान एवं पावनोंको भी पावन करने वाली हैं, जिनका बार बारका चिन्तन भक्तोंके हृदयका अन्धकार दूर करने वाला है, उन आपकी मैं सभी भावसे शरणापन्न हूँ ॥२५७॥

मोहनः सर्वलोकस्य यस्या वशे संस्थितः सर्वदा मोहितो रूपतः ।
ह्लादिनी रासलीलेश्वरी या शुभा सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥२५८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! सभी लोकोंको अपनी छवि माधुरीसे मुग्ध करलेने वाले श्रीप्राणप्यारेजू भी, जिनके रूप सौन्दर्यसे मोहित होकर सदा वशमें बने रहते हैं, जो अपने सहज स्वभावसे सभीको

आह्लादित करती रहती हैं तथा जिनकी अध्यक्षतामें ही रास लीला होती है उन आपकी सभी भावोंसे मैं शरणागत हूँ शरणागत हूँ ॥२५८॥

अस्मि पापाऽधमा यादृशी तादृशी किन्तु ते पादपाथोजयोः किङ्करी ।
त्वं हि माता पिता सद्गुरुर्मे हिता, त्वं स्वसा बन्धुरग्र्या गतिः शाश्वती ॥२५९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मैं पापिनी व अधम जैसी भी हूँ वैसी आपके ही श्रीचरणकमलों की किङ्करी हूँ और आप ही मेरी माता, पिता, सद्गुरु, हित करने वाली, बहिन, भइया और आपही मेरी सर्वोत्तम गति अर्थात् कल्याणका उपाय हैं ॥२५९॥

या क्षमाप्रीतिकारुण्यशीलैर्वृता, सर्वसौभाग्यदा कोटिचन्द्रानना ।
दुर्लभा दुर्लभैर्ब्रह्मविष्णवादिभिर्वत्सला वत्सलेभ्योऽखिलेभ्योऽधिका ॥२६०॥

जो क्षमा, प्रीति, करुणा, शीलका भवन और सर्व-सौभाग्य प्रदान करने वाली हैं, कोटि चन्द्रमाओंके समान आह्लादप्रदायक जिनका श्रीमुखारविन्द है, जो दुर्लभ ब्रह्मा, विष्णु आदिकोंके लिये भी दुर्लभ हैं और समस्त वात्सल्य प्रधानोंसे बढ़कर जिनका वात्सल्य है ॥६०॥

तामृते त्वां गतिः का ममास्तीह वै विद्धि सत्यं त्विदं नानृतं मद्वचः ।
देहि दास्यं स्वपादाब्जयोः स्वामिनि ! श्रीः ! श्रियः संप्रसीद प्रसीदाशु मे॥२६१॥

उन आपके बिना मुझे और कौन सम्हालने वाला है ? यह आप सत्य जानें, मेरे वचनोंको झूठे ही न मानें। हे श्रीदेवीकी भी शोभा सम्पत्स्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! अब शीघ्र प्रसन्न हो, शीघ्र प्रसन्न हो, हे श्रीस्वामिनीजू ! और मुझे अपने श्रीचरण-कमलोंकी सेवा प्रदान कीजिये ॥२६१॥

सर्वापराधपाशेभ्यो नरा मुक्ता यथोक्षिताः ।
तया प्रपश्य मां दृष्ट्या सार्द्रयेहाश्वमोघया ॥२६२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जिसके द्वारा अवलोकन करने पर प्राणी सभी अपराध पाशों (बेड़ियों) से मुक्त हो जाता है उसी अमोघ और दयाद्रवित अपनी कृपा दृष्टिसे मुझे शीघ्र अवलोकन कीजिये २६२

निश्चितो मम सिद्धान्तः कृपारूपाऽसि सर्वदे !
तदन्यथा प्रपश्यामि क्लिश्यमानाम्बुजेक्षणे ! ॥२६३॥

हे सब कुछ प्रदान करने वाली कमलदललोचना श्रीकिशोरीजी ! आप साक्षात् कृपाका स्वरूप हैं, ऐसा मेरा निश्चित सिद्धान्त है, परन्तु मेरे क्लेशोंका अन्त नहीं हो रहा है, इसलिये अपने सिद्धान्तके विपरीत आपको अनुभव कर रही हूँ ॥२६३॥

किञ्चित्परिचितं चापि लोकाः सम्मानयन्ति हि।
कीदृशं पश्य भावज्ञे! किं बहूक्त्या ममाग्रजे!॥२६४॥

थोडा भी जिससे परिचय होता है देखिये उसका लोग किस प्रकारसे आदर करते हैं? हे मेरी श्रीबहिन जू! बहुत निवेदन करनेसे क्या? क्योंकि आप हृदयके भावको तो भली प्रकारसे ही जानती हैं—आपसे मेरा छोटी बहिन होनेका सम्बन्ध भी है न॥२६४॥

कच्चिच्च धनिनो लोके पूजामर्हन्ति केवलम्।
कच्चिन्नाकिञ्चनाः पूज्या विरक्तास्त्वामुपाश्रिताः॥२६५॥

हे श्रीकिशोरीजी! क्या लोकमें संसारी सम्पत्तिशाली ही पूजाके अधिकारी हैं? और आप ही जिनकी सम्पत्ति हैं, वे आपके विरक्त आश्रित जन क्या नहीं आदरणीय हैं?॥२६५॥

येषां सर्वं त्वमेवासि त्वत्कामा ये त्वदाश्रिताः।
कच्चिन्न ते विशालाक्षि! त्वदुच्छिष्टाधिकारिणः॥२६६॥

हे विशाललोचने श्रीकिशोरीजी! आपकी इच्छा ही जिनकी इच्छा है और आपके ही जो आश्रित हैं, तथा जिनकी सब कुछ आप ही हैं, क्या वे आपकी जूठनके भी नहीं अधिकारी हैं॥२६६॥

कच्चिच्च ते जगन्मातर्धनाढ्या एव वल्लभाः।
कच्चिन्न सर्वभावेन त्वत्पदाम्भोजमाश्रिताः॥२६७॥

हे जगजननि! क्या आपको धनाढ्य लोग ही प्यारे हैं? क्या सर्वभावसे आपके श्रीचरण कमलोंकी शरणमें आने वाले आपको नहीं प्रिय हैं?॥२६७॥

कच्चित्ते गुणिनोऽप्येव सन्ति प्रेष्ठा महीतले।
कच्चिन्न सर्वभावेन त्वां प्रपन्ना अकिञ्चनाः॥२६८॥

हे श्रीस्वामिनीजू! क्या आपको गुणी लोग ही अत्यन्त प्रिय हैं? और अकिञ्चन आश्रित प्रिय नहीं हैं?॥२६८॥

कच्चित्सर्वं परित्यज्य निश्चितार्था अकिञ्चनाः।
यातास्त्वां शरणं ये वै वल्लभाः सन्ति ते न ते॥२६९॥

हे श्रीकिशोरीजी! जिन्होंने अपने जीवनका चरम (अन्तिम) अर्थ आपकी प्राप्ति ही निश्चित करके, अकिञ्चन बनकर आपकी शरणमें प्राप्त हैं, क्या वे आपको प्रिय नहीं हैं?॥२६९॥

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
येषां परागतिश्चाहं कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२७०॥

जिनकी परमगति मैं ही एक हूँ, उन साधु भक्तोंके बिना मैं अपना अस्तित्व ही नहीं चाहती, क्या श्रीगुरुकी वाणी यह झूँठी ही है ? ॥२७०॥

अहं भक्तपराधीना ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः ।
साधुभिर्ग्रस्तचेतस्का कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२७१॥

जैसा पाला हुआ पक्षी अपने मालिकके अधीन होता है, उसी प्रकारसे मैं अपने भक्तोंके पराधीन हूँ, वे अपनी प्रेमरूपी डोरीसे मेरे चित्तको ही बाँध लेते हैं क्या यह वचन झूठा ही है ? ॥२७१॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२७२॥

जिसके हिस्सेमें केवल मैं ही हूँ, वह महानसे महान् दुराचारी भी होकर यदि मेरा भजन करता है तो, उसे साधु ही मानना चाहिये । क्या, श्रीगुरुकी वाणी यह असत्य ही है ? ॥२७२॥

न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः ।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२७३॥

चारों वेदोंका पारगत मुझे उस प्रकार प्रिय नहीं है, जिस प्रकार मुझे अपना भक्त श्वपच भी प्यारा है, अत एव अपने कल्याणार्थ यदि कुछ दान या प्रतिग्रह देनी है, तो उसे देना चाहिये, और वह भक्त कृपा करके जो कुछ भी दे, उसे प्रसाद समझकर अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिये, क्या यह वचन असत्य ही है ? ॥२७३॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
कच्चित्किशोरि ! सम्प्रोक्तमिदमप्यनृतं वचः ॥२७४॥

जो साधक, जिस भावसे मेरी शरण ग्रहण करते हैं, उनको मैं उसी भावानुसार स्वीकार करती हूँ । हे श्रीकिशोरीजी ! क्या आपका यह भी वचन आज असत्य हो रहा है ? ॥२७४॥

ये दारागारपुत्राप्तान् हित्वा मां शरणं गताः ।
कथं तानुत्सहे त्यक्तुं कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२७५॥

जो स्त्री, पुत्र, घर आदिक सभी सहज प्राप्त वस्तुओंकी ममता छोड़कर, केवल मेरी शरण लेते हैं, भला उन्हें मैं किस प्रकार त्याग करनेका उत्साह करूँ ? क्या यह वचन भी असत्य है ? ॥२७५॥

न मे प्रियतमस्तावानात्मयोनिर्नशङ्करः।
नैवात्मा च यथा भक्ताः कश्चिचेत्यनृतं वचः ॥२७७॥

जिस प्रकार मुझे भक्त प्यारे हैं उस प्रकार मुझे न ब्रह्मा प्रिय है, न शङ्कर और न अपनी आत्मा ही, क्या यह भी वचन झूठा ही है ॥२७७॥

भक्ता ममास्मि भक्तानां मयि तेषु भिदा न च।
तेषां द्रोही मम द्रोही कश्चिचेत्यनृतं वचः ॥२७८॥

भक्त मेरे हैं, और मैं भक्तोंका हूँ, मेरे और भक्तोंमें कोई भेद भाव नहीं, जो भक्तोंका द्रोही (वैरी) है, वह मेरा द्रोही है, क्या यह वचन भी असत्य है ? ॥२७८॥

प्रपन्ना हि मम प्राणास्तेषां प्राणा अहं किल।
पूजनीया यथाऽहं ते कश्चिचेत्यनृतं वचः ॥२७९॥

आश्रित भक्त ही मेरे प्राण हैं और उनका मैं प्राण स्वरूप हूँ अतः जैसे लोकमें मैं पूज्य हूँ उसी प्रकार वे मेरे भक्त भी पूजनीय हैं ॥२७९॥

निर्द्वन्द्वा निःस्पृहाः क्षान्ता ये जना मत्परायणाः।
देवास्तेषां नमस्यन्ति कश्चिचेत्यनृतं वचः ॥२८०॥

जो सुख-दुःख, शीतोष्ण, शत्रु मित्र, लाभ हानिमें एक समान रहते हैं और किसी भी प्रकारकी इच्छा नहीं रखते तथा सहन शील होकर मेरा निरन्तर भजन करते हैं, उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं, क्या यह वचन झूठा ही है ? ॥२८०॥

एतादृशानि वाक्यानि प्रोक्तान्यृषिवरैर्बहु।
कश्चित् किशोरि ! सन्त्येव वृथोन्मादकराणि वै ॥२८१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! इस प्रकार ऋषि श्रेष्ठों ने जो श्रीमुखके बहुतसे वचनोंका कथन किया है, क्या वे व्यर्थ ही पागल बनाने वाले हैं ? ॥२८१॥

केचित्पत्न्यर्थमेवेह नाना कर्मपरायणाः।
प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२८२॥

कोई अपनी स्त्रीके लिये ही अनेक प्रकारके कर्मोंमें व्यग्र हैं और जो भी उनकी समझमें प्रिय वस्तु प्रतीत होती है उसे लाकर प्रयत्न पूर्वक देते हैं ॥२८२॥

केचिन्मित्रार्थमेवान्ये यथाशक्ति दयानिधे ! ।
प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२८३॥

हे दयासागरा श्रीकिशोरीजी ! और कुछ मित्रोंके लिये ही अपनी शक्तिके अनुसार प्यारी वस्तु लाकर प्रयत्न पूर्वक समर्पण करते हैं ॥२८३॥

भ्रातुरर्थे तथा केचिच्छ्रमेण बहुना किल ।
प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२८४॥

कोई अपने भाईके लिये ही, बहुत श्रम पूर्वक प्रिय वस्तुको लाकर उसे प्रयत्न पूर्वक प्रदान करते हैं ॥२८४॥

मातुरर्थे तथा केचिद्यथाशक्ति यथामति ।
प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२८५॥

कुछ अपनी माताके लिये ही अपनी शक्ति और बुद्धिके अनुसार प्रयत्न करके प्रिय वस्तुको लाकर उसे समर्पण करते हैं ॥२८५॥

नाना कुर्वन्ति कर्माणि तोषणाय पितुः स्वयम् ।
केचित्स्वसुः प्रियार्थाय तनयानां प्रियाय च ॥२८६॥

कोई अपने पिताको सन्तुष्ट करनेके लिये, कोई अपनी बहिनकी प्रसन्नताके लिये, कोई अपने पुत्र पुत्रियोंके सन्तोषार्थ अनेक प्रकारके कर्म करते हैं ॥२८६॥

शिष्याणां चैव प्रीत्यर्थं केचित्स्वीकृतसौहृदाः ।
केचित्स्वकिङ्कराणां वै प्रीतये भृत्यवत्सलाः ॥२८७॥
केचित्परिचितानां च प्रीतये बहुधार्थिनः ।
प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२८८॥

कोई सुहृदता वश अपने शिष्योंकी प्रसन्नताके लिये, कोई अपने सेवकोंपर वात्सल्यभाव रखने वाले अपने किङ्करोंकी प्रसन्नताके निमित्त, कोई अनेक प्रकारकी स्वार्थ सिद्धि चाहने वाले, अपने परिचितोंकी प्रसन्नताके लिये ही प्रिय वस्तु लाकर, उन्हें प्रयत्न पूर्वक समर्पण करते हैं ॥२८७॥२८८॥

स्वस्वप्रियस्य संप्रीत्यै प्रयतन्ते समे जनाः ।
प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२८९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! कहाँ तक कहें ? सभी लोग अपने अपने प्रियकी प्रसन्नताके लिये प्रयत्न करते है और युक्ति-पूर्वक उसकी प्यारी वस्तु लाकर उसे प्रदान करते हैं ॥२८९॥

मिथ्याभिभाषणं चौर्यं दैन्यं च प्रियहेतवे ।
प्रियवस्तु समादाय प्रदानं क्रियते जनैः ॥२९०॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! इतना ही नहीं बल्कि अपने प्रियके निमित्त लोग झूठ भी बोलते है, चोरी भी करते हैं, और दीनता भी प्रकट करते हैं फिर भी प्यारी वस्तु लाकर उसे प्रयत्न पूर्वक प्रदान अवश्य करते हैं ॥२९०॥

मम माता पिता भ्राता सद्गुरुः प्रेमभाजनम् ।
स्वामिनी वत्सला त्वं हि पूर्वजाऽसि परागतिः ॥२९१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मेरी माता, पिता, भ्राता, सद्गुरु, प्रेमपात्र, स्वामिनी, वात्सल्यभाव रखने वाली, सबसे बढ़कर रक्षा करने वाली और कल्याणका सर्वोत्कृष्ट उपाय तथा सम्बन्धमें बड़ी बहिन भी मेरी, तो आप ही एक हैं ॥२९१॥

अनवाप्तत्वदुच्छिष्टप्रसादाया इयच्चिरम् ।
भुवनत्रयसम्पूज्ये ! धिगस्तु मम जीवितम् ॥२९२॥

हे त्रिभुवन पूजनीय श्रीचरण-कमले ! सो मैं आपकी जूठन प्रसादको भी नहीं प्राप्त कर रही हूँ, अतएव मेरे इस जीवनको धिकार है ॥२९२॥

का नु शक्ता भवेत्सोढुमेतद्दुःखं महीतले ।
कयाऽऽशाया स्वयं ब्रूहि जीवितं धारयाम्यहम् ॥२९३॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! यह दुःख, जो मुझे इस समय प्राप्त है, उसे पृथिवी पर सहन करनेको कौन समर्थ हो सकेगी ? अब आप ही बतलाइये, किस आशासे मैं जीवन धारण करूँ ? ।२९३॥

यस्याः सर्वं त्वमेवासि त्वदन्यां नैव वेत्ति या ।
भवत्योपेक्षिता यायात्कां गतिं वद साऽधुना ॥२९४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जिसकी आप ही सब कुछ हैं जो आपके अतिरिक्त अन्य किसीको जानती ही नहीं, बतलाइये—आपकी उपेक्षा होने पर वह इस समय किसकी शरण जाये ? ॥२९४॥

शरण्याऽसि वरेण्याऽसि भावज्ञाऽस्यखिलांशिनी।
नैवोपेक्षा त्वया कार्या स्वाश्रितानां दयानिधे ॥२९५॥

हे दयानिधे ! आप सभी प्राणी मात्रकी रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ, सर्वश्रेष्ठ, हृदयके भावको समझने वाली और सभीकी मूलभूता हैं, अतएव आपको अपने आश्रितोंकी उपेक्षा करना उचित नहीं है २९५

यतो ब्रह्मणि ब्रह्मत्वं विष्णौ विष्णुत्वमप्यसि ।
त्वं हि धातरि धातृत्वं शङ्करत्वं च शङ्करे ॥२९६॥

क्योंकि ब्रह्ममें सबसे बड़ा होनेका, और विष्णुमें सर्वव्यापक होनेका, विधातामें सृष्टि आदिक विधान करनेका, शङ्करमें कल्याण करनेका, सुहृद गुण आप ही हैं ॥२९६॥

गणेशत्वं गणेशे च धनेशत्वं धनाधिपे।
शक्तिस्त्वं चासि शक्तौ त्वं यमत्वं त्वं यमेऽप्यसि ॥२९७॥

गणेशमें गणनायक होनेका, कुबेरमें धनाधिप होनेका, शक्तिमें शक्ति होनेका, यमराजमें यमन (शासन) करनेका गुण, आप ही हैं ॥२९७॥

काले त्वमसि कालत्वं मृत्युत्वं च मृतावपि।
देवेशत्वं च देवेशे जलेशत्वं जलाधिपे ॥२९८॥

कालमें (संहार) करनेका, मृत्युमें मारनेका, इन्द्रमें देवराज होनेका, वरुणमें जलनाथ होनेका, गुण भी आप ही हैं ॥२९८॥

रवित्वं त्वं रवौ चासि चन्द्रत्वं त्वं निशापतौ ।
अमृतेऽस्यमृतत्वं त्वं प्रभुत्वं त्वं प्रभावपि ॥२९९॥

सूर्यमें शीतहरणपूर्वक प्रकाश करनेका, चन्द्रमामें प्रकाशपूर्वक शीतलता तथा तुष्टि प्रदान करनेका, अमृतमें अमर करनेका गुण भी आप ही हैं ॥२९९॥

पवने पवनत्वं त्वं पावकत्वं च पावके ।
हरित्वं त्वं हरौ ज्ञेया हरत्वं च हरे खलु ॥३००॥

अग्निमें जलानेका, वायुमें शोषण पूर्वक उड़ानेका, हरिमें भक्तोंके दुःख, पाप-ताप आदि हरण करनेका, हरमें भक्तोंके अनेक संकष्ट दूर करनेका गुण भी निश्चय आप ही हैं ॥३००॥

दयालुत्वं दयालौ च सिद्धौ सिद्धित्वमप्यसि ।
क्षमात्वं त्वं क्षमायां च क्षान्तौ क्षान्तित्वमप्यसि ॥३०१॥

दयावानोंमें दयालु होनेका सिद्धिमें सिद्ध करनेका, क्षमामें क्षमाका, सहन शीलतामें सहनेका गुण भी आपहीं हैं ॥३०१॥

तपस्विनि तपस्वित्वं योगित्वं चैव योगिनि ।
वैष्णवे वैष्णवत्वं त्वं साधौ साधुत्वमप्यसि ॥३०२॥

तपस्वीमें तपशील होनेका योगियोंमें योग परायण होनेका, वैष्णवमें विष्णु भक्त होनेका, साधुमें साधन शीलताका गुण भी आप ही है ॥३०२॥

वीर्ये त्वं चासि वीर्यत्वं वरत्वं च वरे तथा ।
श्रेष्ठे त्वमसि रामत्वं कृष्णे कृष्णत्वमप्यसि ॥३०३॥

वीर्य मे वीरताका, श्रेष्ठमें श्रेष्ठ होनेका, और प्यारे (श्रीरामसरकार) में प्राणीमात्रको आनन्दित करनेका तथा सबको अपनेमें और सबमें स्वयं रमण करनेका गुण, एवं भगवान श्रीकृष्ण चन्द्रजीमें सभीको अपनी ओर आकर्षित करनेका तथा भक्तोंके सकल शोक और पापोंके खींचे लेनेका गुण आपही हैं ॥३०३॥

नृसिंहत्वं नृसिंहे त्वं वामनत्वं च वामने ।
दातृत्वं दातरित्वं च भर्तृत्वं भर्तरि ह्यसि ॥३०४॥

नृसिंह देवमें नरसिंह होनेका, वामनजीमें वामन होनेका, दातामें दानी होनेका, भर्तामें भरण (पोषण) करनेका गुण भी आप ही हैं ॥३०४॥

नृपे नृपत्वं भ्रातृत्वं भ्रातरि त्वं वरानने ! -
सुशीलत्वं सुशीले च मृदुत्वं त्वं मृदावसि ॥३०५॥

हे श्रीवराननेजू ! नृप (राजा) में मनुष्योंके पालन, रक्षणका, भाईमें भाईपनका, सुशीलमें सुशीलताका और मृदुमें कोमलताका गुण, आपही हैं ॥३०५॥

गुरुत्वं त्वं गुरौ चासि बन्धौ बन्धुत्वमप्यसि ।
कामत्वं चासि कामे त्वं रतित्वं चासि वै रतौ ॥३०६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! गुरुमें अज्ञान रूपी अन्धकार दूर करनेका, बन्धुमें बन्धुपनाका काममें कामना होनेका रतिमें रति (प्रेम) का गुण आप ही हैं ॥३०६॥

शुभे शुभत्वं कार्यत्वं कार्ये चासि रसे रसः ।
शरण्यत्वं शरण्ये त्वं शुचित्वं चासि वै शुचौ ॥३०७॥

शुभमें शुभ होनेका, कार्यमें करनेकी आवश्यकताका, रसमें सरसताका, रक्षणसामर्थ्य सम्पन्न में रक्षा करनेकी योग्यताका, पवित्रमें पवित्रताका गुण निश्चय ही आप हैं ॥३०७॥

देवे त्वमसि देवत्वं सिद्धे सिद्धत्वमप्यसि ।
वरेण्यत्वं वरेण्येऽसि ह्यीश्वरत्वं त्वमीश्वरे ॥३०८॥

देवतामें दिव्यताका, सिद्धमें सिद्धिका, श्रेष्ठमें श्रेष्ठताका, ईश्वरमें ईश्वरताका गुण भी आप ही हैं ॥२०८॥

मनोज्ञत्वं मनोज्ञे च सुखत्वं चासि वै सुखे ।
सुभगे सुभगत्वं त्वं कर्तृत्वं चासि कर्त्तरि ॥३०९॥

मन हरणमें मनोहरताका, सुखमें सुखी करनेका, सुन्दरमें सुन्दरताका, कर्तामें करनेका गुण भी आपही हैं ॥३०९॥

रसिके रसिकत्वं त्वं भाव्ये भाव्यत्वमप्यसि ।
ध्येयत्वं त्वमसि ध्येये सद्व्रतत्वं च सद्व्रते ॥३१०॥

रस प्रेमियोंमें अर्थात् भगवद्-उपासकोंमें उपासनाके रसास्वादन करनेकी योग्यता, भावना योग्योंमें भावना करनेकी योग्यता रूपी गुण, आपही हैं, ध्यानके योग्यमें ध्यानास्पद होनेकी योग्यताका सद्व्रतोंमें उत्तम व्रत होनेका गुण भी आप ही हैं ॥३१०॥

ह्लादत्वं त्वमसि ह्लादे संस्कृतत्वं च संस्कृते ।
प्रकृतौ प्रकृतित्वं च ज्ञेये ज्ञेयत्वमप्यसि ॥३११॥

आह्लादमें आह्लादित करनेका, सस्कार युक्तमें सस्कार सम्पन्न होनेका, प्रकृति (माया) में जग त्प्रपञ्च रूपी सर्वोत्कृष्ट कृति (कार्य) करनेका और जानने योग्यमें जानने योग्य होनेका गुण भी आप ही हैं ॥३११॥

तत्त्वत्वं चासि वै तत्त्वे जीवे जीवत्वमप्यसि ।
अमरे चामरत्वं त्वं बुधत्वं त्वं बुधेऽप्यसि ॥३१२॥

तत्त्वमें तत्त्व होनेका जीवमें जीव होनेका, अमरमें अमर होनेका, बुद्धिमानमें बुद्धिमत्ताका गुण भी आप ही हैं ॥३१२॥

गेयत्वं चासि वै गेये ध्यातृत्वं ध्यातरि ह्यसि ।
मुनौ मुनित्वं त्वं चासि ऋषित्वं च ऋषावपि ॥३१३॥

गान योग्यमें, गान योग्य होनेका, ध्यान करने वालेमें ध्यान करनेकी योग्यताका, मुनिमें मनन करनेका, ऋषिमें मन्त्रद्रष्टा होनेका गुण आप ही हैं ॥३१३॥

लालित्ये चासि मञ्जुत्वं स्वामित्वं स्वामिनि ह्यसि ।
स्वजने स्वजनत्वं त्वं प्रियत्वं त्वं प्रिये स्मृता ॥३१४॥

सौन्दर्यमें सुन्दरताका, स्वामीमें शासन और पालन करनेका, स्वजनमें स्वात्मीयता (अपने पन) का, प्यारेमें प्रिय होनेका गुण भी आप ही स्मरणकी जाती हैं ॥३०४॥

सुलभे सुलभत्वं त्वं दुर्लभत्वं च दुर्लभे ।
दुर्धर्षत्वं च दुर्धर्षे दुर्जयत्वं च दुर्जये ॥३१५॥

सुलभमें सुलभताका दुर्लभमें दुःख साध्य होनेका और कठिनतासे जीतने योग्यमें, कठिनतासे जीतने योग्य होनेका, कठिनतासे हरा सकने योग्यमें, उसकी इस योग्यताका गुण भी आप ही हैं ३१५

सारे सारत्वमेवासि नित्ये नित्यत्वमेव हि ।
मुक्ते त्वमसि मुक्तत्वं मुक्तौ मुक्तित्वमेव च ॥३१६॥

सारमें सार होनेका, नित्यमें सदा एक रस रहनेका, मुक्तमें मुक्त होनेका, मुक्तिमें मुक्त करने का, गुण भी वास्तवमें आप ही हैं ॥३१६॥

गतौ गतित्वं त्वं प्रोक्ता प्रेरकत्वं च प्रेरके ।
आधारत्वं तथाऽऽधारे साधनत्वं च साधने ॥३१७॥

गतिमें गमन व रक्षा करनेका, प्रेरणा करने वालेमें प्रेरणा करनेका, गुण भी आप ही कही गयी हैं, तथा आधारमें धारण करनेका, साधनमें सिद्ध करनेका गुण भी आप ही हैं ॥३१७॥

यत्किञ्चिद्दिद्यते लोके मनोवाग्दृष्टिगोचरम् ।
तत्तत्त्वं त्वमेवासि निश्चितेति मतिर्मम ॥३१८॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! इस लोकमें जो कुछ मननमें आता है, वाणीसे कथन किया जाता है तथा

दृष्टिसे जो दिखाई देता है, उस सबका तत्व (प्रधानपुरुष अर्थात् शक्ति) आप ही है, ऐसी मेरी निश्चित मति है ॥३१८॥

एवं स्मृत्वाऽऽत्मनो रूपं व्यापितं भुवनत्रये ।
नैवोपेक्षा त्वया कार्या स्वाश्रितानां दयानिधे ! ॥३१९॥

हे श्रीदयानिधेजू ! इस प्रकारसे अपने स्वरूपको तीनों लोकोंमें व्यापक स्मरण करके अपने आश्रितोंके प्रति आपको उपेक्षा करना उचित नहीं है ॥३१९॥

त्वदन्यां नैव जानामि त्वदन्या नास्ति मे गतिः ।
न काचित्त्वामुपाश्रित्य क्लेशपात्रत्वमर्हति ॥३२०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपके अतिरिक्त न मैं किसी दूसरीको जानती ही हूँ, न दूसरी कोई मेरी रक्षक ही है । आपकी शरणमें आकर किसीको भी क्लेशभाजन नहीं होना उचित है ॥३२०॥

आश्चर्यं तु मदीयान्तःकरणे जायते भृशम् ।
किं नु सूर्याश्रिता क्लिश्येच्छीतेनाम्बुजलोचने ! ॥३२१॥

हे कमललोचने श्रीकिशोरीजी ! मेरे अन्तः करणमें यह महान् आश्चर्य हो रहा है, क्योंकि क्या सूर्य भगवानकी शरणमें जाने वालेको भी शीत (ठण्डी) का क्लेश सहन करना पड़ता है ?

चन्द्राश्रिता च धूपेन मृत्युनाऽमृतमाश्रिता ।
कल्पवृक्षाश्रिता क्लिश्येन्निर्धनत्वेन भूरिदे ! ॥३२२॥

क्या चन्द्रदेवकी शरणमें गया हुआ धूपके, और अमृतका आश्रय लेने वाला भी निर्धनताके कष्टका अवश्य अनुभव करे ? ॥३२२॥

शरणं त्वत्पदाम्भोजमाश्रितेह यथाऽगतिः ।
कृच्छ्रमृच्छेद्दयाम्भोधे ! सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥३२३॥

हे दयासागरा श्रीकिशोरीजी ! इसीप्रकार क्या आपके सकल काम पूरक श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करनेवालीको भी आपत्तिमें पड़ना अनिवार्य है ? ॥३२३॥

शार्दूलीं च समाश्रित्य ग्रामसिंहैः प्रपीड्यताम् ।
कामधेनुमुपाश्रित्य क्षुत्तृड्भ्यां दुःखमश्नुयात् ॥३२४॥

शार्दूली (जो अपने पञ्जेमें हाथी तकको पकड़ कर उसे आकाशमें उड़कर खाजाती है उस)का आश्रय ग्रहण करनेपर भी क्या कुत्तोंसे पीडित होना उचित है ? और कामधेनु गऊकी शरण में आकर भी क्या भूख प्यासका दुःख सहन करना युक्त है ? ॥३२४॥

खगेन्द्रं शरणं गत्वा पन्नगैः पीडिता भवेत् ।
गङ्गां शरणमभ्येत्य क्लेशभीयातिपिपासया ॥३२५॥

क्या गरुडकी शरणमें जाकर भी सर्पोंके द्वारा कष्टपाना उचित है ? और श्रीभगवती गङ्गाजीकी शरणमें गयी हुइको भी क्या प्यासका कष्ट भोगना उचित है ? ॥३२५॥

चक्रवर्तिनमाश्रित्य पीडां प्राप्नोतु दौर्जनीम् ।
गुरुं शरणमभ्येत्य संसृतिक्लेशभाग्भवेत् ॥३२६॥

क्या चक्रवर्ती राजाकी शरणमें जानेपर भी दुर्जनोंसे पीडित होना उचित है ? क्या गुरुमहाराजकी शरणगति स्वीकार करनेपर भी जन्म-मरणका क्लेश भोगना न्याय युक्त है ? ॥३२६॥

महाविष्णुमुपाश्रित्य रक्षोभिः कृच्छ्रमाप्नुयात् ।
वाणीं शरणमासाद्य मूर्खताधिमवाप्नुयात् ॥३२७॥

क्या महाविष्णुकी शरणमें प्राप्त होनेपर भी राक्षसोंसे महान कष्टपाना उचित है ? हे श्रीप्रियाजू ! क्या सरस्वतीका आश्रय लेनेपर भी मूर्खताका मानसिक-कष्ट सहन करना युक्त है ? ॥३२७॥

महालक्ष्मीमुपाश्रित्य महादारिद्र्यसंभवम् ।
कृच्छ्रमृच्छेद्दयाम्भोधे ! त्वमेव वक्तुमर्हसि ॥३२८॥

हे दयासागरा श्रीस्वामिनीजू ! उसी प्रकार आप ही कहें ? क्या महालक्ष्मीजीकी शरणमें गयी हुईको भी महा दरिद्रताका संकट सहन करना उचित है ? ॥३२८॥

यस्याः परा न वै काचिद्या च सर्वांशिनी स्मृता ।
दयामृतैकपायोधिः क्षमाशीलसुखाम्बुधिः ॥३२९॥

जिनसे बढ़कर और कोई है ही नहीं, जो सभीकी कारण स्वरूप कीजाती हैं, जो दयारूपी अमृतका समुद्र और क्षमा, शील, सुखका सागर ही है अर्थात् जिनके दया, क्षमा, शील, सुखादिक गुण समुद्रके समान अथाह हैं ॥३२९॥

सर्वज्ञा करुणाधाम्नी सर्वगा सर्वकामदा ।
सर्वैरर्हितपादाब्जा सर्वैश्चापि नमस्कृता ॥३३०॥

सभीके भूत, भविष्य, वर्तमानको अनायास जानने वाली, करुणाकी भवन, सर्व-काल, देशमें सर्वत्र, एक रस विराजमान, आश्रितोंकी सकल कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, सभी देव, नर, मुनि,

दृष्टिसे जो दिखाई देता है, उस सबका तत्व (प्रधानगुण अर्थात् शक्ति) आप ही हैं, ऐसी मेरी निश्चित मति है ॥३१८॥

एवं स्मृत्वाऽऽत्मनो रूपं व्यापितं भुवनत्रये।
नैवोपेक्षा त्वया कार्या स्वाश्रितानां दयानिधे ! ॥३१९॥

हे श्रीदयानिधेजू ! इस प्रकारसे अपने स्वरूपको तीनों लोकोंमें व्यापक स्मरण करके अपने आश्रितोंके प्रति आपको उपेक्षा करना उचित नहीं है ॥३१९॥

त्वदन्यां नैव जानामि त्वदन्या नास्ति मे गतिः।
न काचित्त्वामुपाश्रित्य क्लेशपात्रत्वमर्हति ॥३२०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपके अतिरिक्त न मैं किसी दूसरीको जानती ही हूँ, न दूसरी कोई मेरी रक्षक ही है। आपकी शरणमें आकर किसीको भी क्लेशभाजन नहीं होना उचित है ॥३२०॥

आश्चर्यं तु मदीयान्तःकरणे जायते भृशम्।
किं नु सूर्याश्रिता क्लिश्येच्छीतेनाम्बुजलोचने ! ॥३२१॥

हे कमललोचने श्रीकिशोरीजी ! मेरे अन्तः करणमें यह महान् आश्चर्य हो रहा है, क्योंकि क्या सूर्य भगवानकी शरणमें जाने वालेको भी शीत (ठण्डी) का क्लेश सहन करना पड़ता है ?

चन्द्राश्रिता च धूपेन मृत्युनाऽमृतमाश्रिता।
कल्पवृक्षाश्रिता क्लिश्येन्निर्धनत्वेन भूरिदे ! ॥३२२॥

क्या चन्द्रदेवकी शरणमें गया हुआ धूपके, और अमृतका आश्रय लेने वाला भी निर्धनताके कष्टका अवश्य अनुभव करे ? ॥३२२॥

शरणं त्वत्पदाम्भोजमाश्रितेह यथाऽगतिः।
कृच्छ्रमृच्छेद्दयाम्भोधे ! सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥३२३॥

हे दयासागरा श्रीकिशोरीजी ! इसीप्रकार क्या आपके सकल काम पूरक श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करनेवालीको भी आपत्तिमें पड़ना अनिवार्य है ? ॥३२३॥

शार्दूलीं च समाश्रित्य ग्रामसिंहैः प्रपीड्यताम्।
कामधेनुमुपाश्रित्य क्षुत्तृड्भ्यां दुःखमश्नुयात् ॥३२४॥

शार्दूली (जो अपने पञ्जेमें हाथी तकको पकड़ कर उसे आकाशमें उड़कर लेजाती है उस)का आश्रय ग्रहण करनेपर भी क्या कुत्तोंसे पीड़ित होना उचित है ? और कामधेनु गऊकी शरण में आकर भी क्या भूख प्यासका दुःख सहन करना युक्त है ? ॥३२४॥

खगेन्द्रं शरणं गत्वा पन्नगैः पीडिता भवेत् ।
गङ्गां शरणमभ्येत्य क्लेशमीयात्पिपासया ॥३२५॥

क्या गरुडकी शरणमेंजाकर भी सर्पोंके द्वारा कष्टपाना उचित है ? और श्रीभगवती गङ्गाजीकी शरणमें गयी हुईको भी क्या प्यासका कष्ट भोगना उचित है ? ॥३२५॥

चक्रवर्तिनमाश्रित्य पीडां प्राप्नोतु दौर्जनीम् ।
गुरुं शरणमभ्येत्य संसृतिक्लेशभाग्भवेत् ॥३२६॥

क्या चक्रवर्ती राजाकी शरणमें जानेपर भी दुष्टोंसे पीडित होना उचित है ? क्या गुरुमहाराज-की शरणगति स्वीकार करनेपर भी जन्म-मरणका क्लेश भोगना न्याय युक्त है ? ॥३२६॥

महाविष्णुमुपाश्रित्य रक्षोभिः कृच्छ्रमाप्नुयात् ।
वाणीं शरणमासाद्य मूर्खताधिमवाप्नुयात् ॥३२७॥

क्या महाविष्णुकी शरणमें प्राप्त होनेपर भी राक्षसोंसे महान कष्टपाना उचित है ? हे श्रीप्रियाजू! क्या सरस्वतीका आश्रय लेनेपर भी मूर्खताका मानसिक-कष्ट सहन करना युक्त है ? ॥३२७॥

महालक्ष्मीमुपाश्रित्य महादारिद्र्यसंभवम् ।
कृच्छ्रमृच्छेद्दयाम्भोधे ! त्वमेव वक्तुमर्हसि ॥३२८॥

हे दयासागरा श्रीस्वामिनीजू उसी प्रकार आप ही कहें ? क्या महालक्ष्मीजीकी शरणमें गयी हुईको भी महा दरिद्रताका संकट सहन करना उचित है ? ॥३२८॥

यस्याः परा न वै काचिद्या च सर्वाशिनी स्मृता ।
दयामृतैकपाथोधिः क्षमाशीलसुखाम्बुधिः ॥३२९॥

जिनसे बढ़कर और कोई है ही नहीं, जो सभीकी कारण स्मरण कीजाती है, जो दयारूपी अमृतका समुद्र और क्षमा, शील, सुखका सागर ही हैं अर्थात् जिनके दया, क्षमा, शील, सुखादिक गुण समुद्रके समान अथाह हैं ॥३२९॥

सर्वज्ञा करुणाधाम्नी सर्वगा सर्वकामदा ।
सर्वैरर्हितपादाब्जा सर्वैश्चापि नमस्कृता ॥३३०॥

सभीके भूत, भविष्य, वर्तमानको अनायास जानने वाली, करुणाकी भवन, सर्व-काल, देशमें सर्वत्र, एक रस विराजमान, आश्रितोंकी सकल कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, सभी देव, नर, मुनि,

सिद्ध, योगी, भूत, प्रेत, राक्षस, छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़ोंके द्वारा जिनके श्रीचरण कमल पूजित हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि सभी बड़ेसे बड़े और छोटेसे छोटे प्राणी जिन्हें नमस्कार करते हैं ॥३३०॥

सर्वासामपि शक्तीनां नियन्त्री परमेश्वरी ।
असीमाऽचिन्त्यशक्तिर्दुर्विभाव्याऽच्युता वरा ॥३३१॥

जो सभी उमा, रमा, ब्रह्माणी आदि महाशक्तियोंको स्वेच्छानुसार विभिन्न कार्योंमें लगाने वाली और सभीका शासन करने वाली है, जिनकी शक्ति चिन्तन सामर्थ्यसे परे है तथा जिनके स्वरूपकी बड़ी ही कठिनतासे भावनाकी जासकती है, एवं जिनका रूप, गुण, ऐश्वर्य सब असीम है, जो तीनों कालमें एक रस रहती है, कभी जिनमें किञ्चित् भी त्रुटि नहीं आती, जिनसे बढ़कर कोई हुआ है, न है, और न होगा ॥३३१॥

तामेव शरणं यात्वा कथं शोचितुमर्हति ।
यदि तत्रापि शोकः स्यात्कां यायाच्छरणं जगत् ॥३३२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! भला उन (आप) की शरणमें जाकर किसी भी जीवको शोक करना किस प्रकार उचित हो सकता है ? यदि ऐसेकी शरण लेने पर भी चिन्ता ही बनी रही तो, अपने दुःख की निवृत्ति के लिये यह जगत् (चर-अचर प्राणि-समूह) और फिर किसकी शरणमें जावे ॥३३२॥

इत्थं विचार्य सर्वज्ञे ! निर्हेतुक्यनुकम्पया ।
प्रीयस्व करुणापूर्णे ! श्रीसीरध्वजनन्दिनि ! ॥३३३॥

हे करुणापूर्ण श्रीसीरध्वज नन्दिनीजी ! हे सर्वज्ञे ! ऐसा विचार करके अपनी निर्हेतुकी कृपासे ही प्रसन्न हो जावें ॥३३३॥

यन्मुखात्त्वं मया प्रोक्ता कृपापीयूषनीरधिः ।
तस्माद्वाच्या कथं त्वं स्या निर्दया मे शुचिस्मिते ! ॥३३४॥

हे शुचिस्मिते ! श्रीकिशोरीजी ! जिस मुखसे मैंने आपको कृपापीयूष-सागरा कहा है, उसीसे आपको दया हीन कहना कैसे उचित हो सकता है ? ॥३३४॥

मातृत्वं चैव पितृत्वं बन्धुत्वं मयि दर्शय ।
येभ्यो मनो व्रजेच्छान्ति मदीयं चिन्तयाऽऽकुलम् ॥३३५॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! अब कृपा करके मेरे प्रति अपना मातृभाव, पितृभाव तथा बन्धुभाव प्रकट कीजिये, जिससे मेरा चिन्तासे व्याकुल हुआ यह मन शान्तिको प्राप्त हो जाय ॥३३५॥

लोकानामुपकारः स्यात्सर्वेषामिह तत्कृते ।
नास्तिकत्वं परित्यज्य नास्तिकास्त्वां श्रयन्तु हि ॥३३६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! यदि मेरी प्रार्थनाको स्वीकार कर लेंगी, तो सभीके लिये उपकार होगा और नास्तिक जीव भी "ईश्वर कोई वस्तु नहीं है" इस भावनाका परित्याग करके आपकी निश्चय ही शरणागति ग्रहण करलेंगे ॥३३६॥

यदि त्वां शरणं गत्वा पुनः शोकोऽवशिष्यते ।
अपि मोघा भवेत्तर्हि प्रपत्तिस्तव हे प्रिये! ॥३३७॥

हे श्रीप्यारीजू ! यदि आपकी शरणमें आकर भी शोककी निवृत्ति न हुई, तो आपकी शरणमें आना ही निष्फल होगा, यह निश्चय है ॥३३७॥

पूर्वकर्मविपाकेन ब्रूयाश्चेत् सुखदुःखिते ।
अपि मोघा भवेत्तर्हि प्रपत्तिस्तव हे प्रिये ! ॥३३८॥

हे श्रीप्रियाजू ! यदि आप कहें कि, सुख-दुःख तो पूर्वजन्मके किये हुये स्वकर्मानुसार मिलते हैं, उनका प्रवाह रोका नहीं जासकता, तो आपकी शरणमें आनाफिर भी निष्फल हुआ ॥३३८॥

मृदुस्वभावाऽसि दयापयोधे ! वात्सल्यभाग्दीनहिता शरण्या ।
मयि प्रसीद ह्यनुपेक्ष्य दासीं निजानुगां शोकसमुद्रमग्नाम् ॥३३९॥

हे दयाकी निधि श्रीकिशोरीजी ! अब आप अपनी अनुचरी दासी पर उपेक्षा दृष्टि न करके प्रसन्न होवें, क्योंकि इस समय यह शोकसागरमें डूबी हुई है, आप तो अत्यन्त कोमल स्वभाव युक्त, क्षमासागरा, सर्वाभिमानशून्य आश्रितोंका परम हित करने वाली तथा सब प्रकारसे रक्षा करनेको समर्थ हैं, अतः मेरी उपेक्षा न करें ॥३३९॥

श्रीस्वामिनि ! प्रेष्ठमनोनिकेतने, स्वान्तःस्थितं ! वच्मि शृणु त्वमात्मदे !
निजानुगामेव विचार्य वत्सले ! प्रसीद मां मङ्क्षु जनानुकम्पिनि ! ॥३४०॥

हे श्रीप्राणप्यारेजूके मन रूपी मन्दिरमें निवास करने वाली ! हे भक्तों पर परम अनुकम्पा (दया भाव) रखने वाली ! हे वात्सल्यरसमयी श्रीस्वामिनी जू ! मैं अपना विचार पूर्वक निश्चय

हे श्रीकिशोरीजी ! कब ब्रह्मादि देवताओंके पूजने योग्य आपके श्रीचरण कमलकी धूलि मेरे मस्तककी सुशोभित करेगी ? और कब चन्द्रसमूहोंको अपनी कान्तिसे तुच्छ करने वाली आपके श्रीचरण-कमलकी नख-ज्योति मेरे हृदयमें प्रवेश करेगी ? ॥३४५॥

हे कञ्जपत्रायतचारुलोचने ! श्रीस्वामिनि ! प्रेष्ठहृदम्बुजालये ।
दास्यामि हस्तेन कदा नु वीटिकां भावत्कजैवातृकसुन्दरे मुखे ॥३४६॥

हे कमलदलके समान विशाल सुन्दर नेत्र वाली ! हे प्राणप्यारेजूके हृदयमें निवास करने वाली श्रीस्वामिनीजू ! आपके चन्द्रतुल्य प्रकाशमान श्रीमुखमें मुझे पानका बीड़ा प्रदान करनेका कब सौभाग्य प्राप्त होगा ? ॥३४६॥

रासस्थलीं तेऽनुगता कदा न्वहं द्रक्ष्यामि रासं ननु दिव्यविग्रहे ।
शिक्षानुसारं तु कदा विधास्यते स्वयञ्च तद्ब्रूहि दयासुधानिधे ! ॥३४७॥

हे दिव्यविग्रह-सम्पन्ना श्रीरासेश्वरीजू ! आपके पीछे-पीछे रासस्थलीमें जाकर कब मैं आपके रास-उत्सवका दर्शन करूँगी ? हे समस्त प्राणियोंका हित चाहने वाली श्रीकरुणानिधिजू ! और कब मैं भी आपकी शिक्षानुसार स्वयं रास करूँगी ? मुझे सो बतलाइये ॥३४७॥

ममेश्वरि ! ज्ञाननिधे ! प्रसीद मामवेहि दासीं स्वपदाब्जसंश्रयाम् ।
कदा नु मे दास्यसि भूर्यनुहे ! निर्हेतुकीं भक्तिमभीप्सितां शुभाम् ॥३४८॥

हे ज्ञाननिधे ! मेरी स्वामिनीजू ! मुझे अपने श्रीचरण कमलोंकी आश्रित दासी जानिये और मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये। हे अपार करुणामयीजू ! सुर, नर, मुनि, सिद्ध, योगि जिसको चाहते हैं उस अपनी मङ्गलमयी निर्हेतुकी प्रेमाभक्तिको मुझे कब प्रदान करनेकी कृपा करेंगी ? ॥३४८॥

वल्मीकयोनिः कलशोद्भवो मुनिः श्रीगाधिपुत्रोऽत्रिररुन्धतीपतिः ।
श्रीनारदोऽन्येऽपिवदन्ति नित्यशःकीर्त्तिं त्वदीयामतिनिर्मलां शुभाम्॥३४९॥
लभन्त एवान्तमपीह जातु नो मज्जन्ति चानन्दसुधापयोनिधौ ।
तदा कथं वक्तुमहं क्षमा यशस्तव प्रिये ! तत्स्वयमेव मां वद ॥३५०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! श्रीवाल्मीकिजी महाराज, श्रीअगस्त्यजी महाराज, श्रीविश्वामित्रजी महाराज, श्रीअत्रिजी महाराज, श्रीवशिष्ठजी महाराज, श्रीनारदजी महाराज तथा अन्य महर्षिगण आपकी मङ्गलमयी अत्यन्त उज्वल (परमनिर्दोष) कीर्त्तिका गान करते हैं ॥३४९॥ परन्तु आपकी महिमाका कभी

पार नहीं पाते, बल्कि आनन्दसागरमें डूब जाते हैं, तब मैं क्षुद्रबुद्धि आपके उस अप्रमेय यशको वर्णन करनेकेलिये किसप्रकार समर्थ हो सकती हूँ ? हेश्रीप्रियाजू ! सो आपही मुझे बतलाइये॥३५०॥

भान्वादयस्ते प्रभया प्रभासितास्त्वंभाससे स्वीयरुचा न कस्यचित् ।
सोमास्त्वदीयाङ्घ्रिनखप्रभांशजा अनन्तब्रह्माण्डगताश्च शुश्रुम ॥३५१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी ही कान्तिसे सूर्य, चन्द्र, अग्नि, बिजुली आदि प्रकाशमान हैं किन्तु आप अपने ही तेजसे प्रकाशयुक्त हैं, न कि किसी अन्यके प्रकाशसे । अनन्त ब्रह्माण्डोंमें जो चन्द्रमा हैं, वे भी आपके श्रीचरणकमलकेनखकी ज्योतिके अंशसे ही प्रकाशमान हैं, ऐसा हमने सुना है ३५१

यैस्तोषिता त्वं सुमनोहरस्मिते ! तैस्सर्व एवासुभृतः सुतोषिताः ।
सर्वान्तरात्माऽसि यतो रसाश्रये ! प्राणप्रियप्राणपरप्रिया ध्रुवम् ॥३५२॥

हे रसकी कारण-स्वरूपा ! सुन्दर मन-हरण मुस्कानवाली श्रीकिशोरीजी ! जिन्होंने आपको प्रसन्न करलिया, उन्होंने विधिपूर्वक विश्वके समस्त प्राणियोंको भी प्रसन्नकर लिया है, इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं, क्योंकि सभीके जो प्राणतुल्य प्रिय श्रीरघुनन्दनप्यारेजू हैं, आप उनकी अन्तरात्मा (आत्मामें रहने वाली) हैं ॥३५२॥

धीराः श्रयन्ते परिशुद्धचेतसस्त्वां कोविदाः श्रीरघुनन्दनाप्तये ।
भजन्त्यनायासमिहेश्वरेश्वं तमन्य एव स्युरनाप्तवाञ्छिताः ॥३५३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो आपके और श्रीरघुनन्दन प्यारे जूके स्वभाव और रहस्यको जानते हैं वे समस्त वासनाओंसे अपने चित्तको शुद्ध रखकर श्रीप्राणप्यारेजूकी प्राप्तिके लिये आपका भजन किया करते हैं । अतः उन्हें किसी प्रकारकी भी परिस्थिति लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं कर पाती। जिससे वे इस जीवनमें ही उन सर्वेश्वर सरकारको बिना किसी कठिनताके ही प्राप्त कर लेते हैं । परन्तु जो मूर्ख आपका आश्रय नहीं लेते उनकी आशा निष्फल हो जाती है । अर्थात् उन्हें वे श्री प्राणप्यारेजी प्राप्त नहीं होते ॥३५३॥

महत्कृपानूनमुदेति वै यदा तदैव भक्तिस्तव चाधिगम्यते ।
प्रसीद कल्याणि ! निजानुकम्पया नो वीक्ष्य मेऽघौघशिलोच्चयान् किल ॥३५४॥

हे कल्याणस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ... ॥ ...ओंकी कृपा जब उदय होती है, तभी आपके श्रीचरणकमलोंकी भक्ति प्र...दिपूज्ययोः पदा...अत एव आप मेरे पापरूपी पहाड़ समूहों पर ध्यान न देकर अपनी नि...कृतचन्द्रसश्रया नखद्युति...पासे ही मेरे पर प्रसन्न हूजिये ॥३५४॥

हितैषिणी त्वं जगतोऽखिलस्य च त्वं स्वामिनी त्वं जननी परावरे !
विश्वम्भरा त्वं परमेश्वरेश्वरी प्रसीद दास्यां मयि दीनवत्सले ॥३५५॥

हे सर्वोत्कृष्ट (ब्रह्म) स्वरूपा, दीन वत्सला श्रीकिशोरीजी ! आप इस समस्त स्थावर-जङ्गमकी हित चाहने वाली हैं, आपही माता है, और आपही इसकी स्वामिनी (आवश्यकतानुसार हित दृष्टिसे शासन करने वाली) है, आपही भगवान शङ्करजी आदिकोंकी स्वामिनी हैं, आपही सारे विश्वका पोषण-भरण (पालन) आदि करने वाली है, मैं आपकी दासी हूँ, मेरे प्रति प्रसन्न होइये ॥३५५॥

तत्राप्नुयां प्रीतिकरं न यत्तव ह्यशेषकल्याणगुणैकसागरे !
प्रयच्छ बुद्धिं हतसर्वकल्मषां शुद्धाशया त्वां तु भजाम्यहं यया ॥३५६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जिससे आपकी प्रसन्नता न होती हो, ऐसी किसी भी वस्तुकी मुझे प्राप्ति ही न हो। हे श्रीकरुणा सागरेजू ! मुझे वह सकल पाप रहित बुद्धि प्रदान कीजिये जिसके द्वारा मैं शुद्धान्त होकर आपका भजन कर सकूँ ! ॥३५६॥

नः पश्य सम्पादितभक्तमङ्गले ! दयार्द्रदृष्ट्या हतसर्वदोषया ।
प्रीता त्वमस्मासु यदीह संसृतौ वयं कृतार्थाः खलु नात्र संशयः ॥३५७॥

हे भक्तोंका मङ्गल सम्पादन करने वाली श्रीकिशोरीजी ! सब दोषोंको हरण करने वाली अपनी दयापूर्ण दृष्टिसे हमलोगोंको अवलोकन कीजिये। यदि इस असार संसारमें आप हमलोगों पर प्रसन्न हैं, तो हमलोग अवश्य कृतार्थ हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥३५७॥

सीमानमार्ये ! न महाक्षमाया ब्रह्माऽपि वेत्तुं हि कथञ्चनार्हति ।
ये ये गुणाः सन्त्यपरैर्दुरापाः कृतालयास्ते त्वयि रामवल्लभे ! ॥६५८॥

हे श्रेष्ठगुण सम्पन्ना श्रीकिशोरीजी ! सब प्रकारसे प्रयत्नशील होने पर भी साक्षात् ब्रह्मा भी किसी प्रकारसे आपकी महती क्षमाका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, तब इतरोंकी बात ही क्या है ! हे सर्वेश्वर (श्रीराम सरकार) की प्राणप्यारीजू ! जिनकी प्राप्ति अन्य सबोंके लिए कठिन है वे सभी सद्गुण सहज स्वभावसे आपमें निवास कर रहे हैं ॥३५८॥

ता भूरिभागास्त्वयि बद्धसौहृदा याः सर्वभावेन तवाङ्घ्रिमाश्रिताः ।
यासां मनो वै मधुपायते सदा त्वदीयपादाम्बुजयोः स्वभावतः ॥३५९॥

जिनका मन आपके श्रीचरणकमलोंमें सहजस्वभावसे भौंरावत् लीन बना रहता है, जो सभी

भावसे आपके श्रीचरणकमलोंके आश्रित हैं और अपना सौहार्दभाव आपमें ही बाँध रक्खे हैं, अर्थात् जो आपको ही सुहृदय समझती हैं वे बड़ भागिनी हैं ॥३५९॥

प्रसीद मह्यं कृपया यथा तथा निधेहि मे मूर्द्धनि पाणिपङ्कजम् ।
मोघेतरस्पर्शमिति प्रयाचनाममोघतां प्रापय मे कृपानिधे ! ॥३६०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! अब जैसे बने मुझपर प्रसन्न हूजिये और अपने उस कर-कमलको जिसका स्पर्श कभी भी निष्फल नहीं जाता मेरे शिर पर रखनेकी कृपा कीजिये ! हे कृपानिधेजू ! मेरी इस याचनाको सफल बनाइये ॥३६०॥

चोद्या त्वया ह्यस्मि च शिक्षणीया सदैव सत्कर्मणि योजनीया ।
वीक्ष्याऽस्मि शिष्येव च किङ्करीव सर्वात्मनाऽऽराध्यतमे ! भवत्या ॥३६१॥

हे आराध्यतमे ! जिनकी उपसना करना समस्त प्राणी मात्रके लिये परम आवश्यक कर्त्तव्य है वे, श्रीकिशोरीजू ! जैसे शिष्या व दासियोंको वात्सल्यपूर्ण दृष्टिसे लोग देखा करते हैं, वैसे ही आप मुझे अवलोकन कीजिये और उसी प्रकारकी दृष्टिसे मुझे सत्कर्मों में लगाइये तथा शिक्षा दीजिये और अपनी इच्छानुकूल सेवा आदि कार्यों में निःसङ्कोच भावसे सदाही प्रेरणा (सङ्केत) करती रहिये ॥३६१॥

दयार्द्रफुल्लाम्बुजपत्रलोचने ! सहप्रिया साऽलिगणा सुशोभने !
मदीयहृत्सद्मनि दृष्टिपाविते वसानुकम्पामृतपूर्णवारिधे ! ॥३६२॥

हे दयासे द्रवित और खिले कमलदलके समान विशाल लोचने ! हे भरे अमृत सागरकी तरह अथाह अनुकम्पा(दया)वाली श्रीकिशोरीजी ! आप अपनी कृपावलोकनसे पवित्र किये हुये परम सुन्दर मेरे हृदय रूपीमहलमें, समस्त सखीगणोंके सहित, श्रीप्राणप्यारेजूके साथ निवास कीजिये ॥३६२॥

यात्यञ्जसा त्वद्विषये मनो मम स्वभावतोऽन्यत्र तथैव गच्छति ।
कृपा त्वदीया मयि वर्तते न वा किशोरि ! शङ्केति न मे निवर्तते ॥३२६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मेरा मन बिना किसी परिश्रमके ही आपकी ओर जाता है, और अपने स्वभावके वश होकर अन्य विषयों की ओर भी गमन करता है, अत एव आपकी कृपा मेरे पर है ? अथवा नहीं ? यह मेरी शङ्का भली प्रकारसे नहीं दूर होती है, क्योंकि यदि कृपा न होती, तो मेरे मनकी गति आपकी ओर कैसे होती ? और यदि कृपा है, तो फिर मेरा मन आपके अतिरिक्त विषयोंकी ओर जाता ही क्यों है ? ॥३६३॥

और यदि मेरा जन्म भौरेकी योनिमें हुआ, तो मैं अपनी स्वाभाविक चञ्चलताको छोड़कर परम आनन्दमय, समस्त अमङ्गलहारी, आपके श्रीचरण-कमलोंकी सुगन्धको सूंघा करूँगी ॥३६९॥

अथवा तु चकोरजातिषु प्रभवेज्जन्म किशोरि ! चेदपि ।
द्युतिनिर्जितचन्द्रसञ्चयान् समवेक्षेय नखांस्त्वदङ्घ्रिजान् ॥३७०॥

अथवा यदि मेरा जन्म चकोरकी जातियोंमें होगा, तो भी कोई दुःखकी बात नहीं, क्योंकि उसमें भी मैं चन्द्रसमूहोंको अपने प्रकाशसे लज्जित करने वाले आपके श्रीचरणारविन्दके नखोंका दर्शन किया करूँगी ॥३७०॥

वहु किं लपितेन मे प्रिये ! न हि दुःखं भुवि मेऽस्ति जन्मतः ।
यदि चेत्थमथो न सम्भवेन्ममदुःखाय तदा भृशं भवेत् ॥३७१॥

हे श्रीप्रियाजू ! विशेष प्रलाप करनेसे क्या लाभ ? यदि उपर्युक्त प्रकारसे पृथ्वीपर भी जन्म मिले तो मुझे उससे कोई दुःख नहीं, अन्यथा जन्मकी प्राप्ति मेरे लिये महान् दुःखका कारण सिद्ध होगी ॥३७१॥

कच्चिन्निशास्वापनिकेततल्पगौ विध्वाननौ चित्तहरौ दरालसौ ।
विजृम्भमाणौ च मिथोऽभ्युपेत्य वै द्रक्ष्यामि वां जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३७२॥

हे मङ्गलमय अङ्गवाली श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये, शयन भवनके पलङ्गपर सखियोंके द्वारा विराजमान हो आपसमें एक दूसरेसे मिलकर आलस्य युक्त जम्हुवाई लेते हुये चन्द्र तुल्य मुखारविन्द वाले आप दोनों चितचोर सरकारका क्या मुझे कभी भी दर्शन प्राप्त होगा ?॥३७२॥

कच्चित्सुगन्धान्वितवारिणाऽन्वित-स्निग्धास्यसंप्रोञ्छनचीनवाससा ।
प्रक्षालितेन्दुप्रतिमाननावुभौ द्रक्ष्यामि वां जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३७३॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे यह बतलाइये सुगन्ध युक्त जलसे भीगे हुये मुख-पोंछनेके भीने चिकने वस्त्रसे धोये हुये आप दोनों सरकारके चन्द्र तुल्य मुखारविन्दका मैं कभी भी दर्शन प्राप्त करूँगी, अर्थात् क्या उस समयका मुझे दर्शन मिलेगा ? ॥३७३॥

कच्चिन्नु चान्योन्यभुजान्तरं गतौ मन्दस्मितौ पङ्करुहायतेक्षणौ ।
नीराजमानौ च सखीगणान्तरे द्रक्ष्यामि वां जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३७४॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये सखियोंके बीचमें आरती होते समय एक

दूसरेके भुजाके नीचे परस्पर प्राप्त अर्थात् गलबँहियाँ दिये कमलके समान सुन्दर और विशाल लोचन, मन्द-मन्द मुस्कराते हुये आप दोनों सरकारका मुझे क्या कभी भी दर्शन प्राप्त होगा? ३७४

कच्चित्सुचीनांशुकभूषणान्वितां त्वां पुष्पमाल्यैः सुविभूष्य सप्रियाम् ।
नीराजमानां दीयते ! सखीगणे द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३७५॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीप्रियाजू ! मुझे बतलाइये सखियोंके मण्डलमें अत्यन्त भीने वस्त्र और भूषणोंका शृङ्गार धारणकी हुई आपको श्रीप्यारेजूके सहित पुष्पकी मालायें पहिना कर आपका आरती के समयका दर्शन क्या कभी भी मैं प्राप्त कर सकूँगी ? ॥३७५॥

कच्चिच्च सिंहासनमध्यवर्तिनीं त्वां सार्यपुत्रां मिथिलेश्वरात्मजे !
दृग्भ्यां सपाथोजकरां शुचिस्मितां द्रक्ष्याम्यहं जातु किशोरि ! भण्यताम्॥३७६॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू ! मुझे बतलाइये श्रीप्राणप्यारेजूके सहित सिंहासनके बीचमें विराजमान, पवित्र मुस्कान युक्त, अपने कर-कमलमें नील कमलको धारण किये हुई आपका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३७६॥

कच्चिच्च सर्वालिनताङ्घ्रिपङ्कजां, ताभिर्व्रजन्तीमथ मङ्गलालयम् ।
आधाय कान्तांसभुजं शनैः शनैर्द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३७७॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये, सब सखियोंके द्वारा श्रीचरण-कमलोंको नमस्कार कर चुकने पर, उनके सहित श्रीप्राणप्यारेजूके कन्धे पर अपनी भुजा रक्खे हुये धीरे-धीरे मङ्गल-भवन पधारती हुई आपका दर्शन, क्या कभी भी मुझे प्राप्त होगा ॥३७७॥

कच्चिद्युवां मङ्गलवेश्मनि स्थितौ छत्रावृतावालिनिकायसेवितौ ।
आह्लादयन्तौ निजकिङ्करीः शुभा द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३७८॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये श्रीमङ्गल भवनमें छत्रसे ढके हुये सखियोंके झुण्डसे सेवित, अपनी मङ्गलरूपा किङ्करियों (दासियों) को आह्लादयुक्त करते हुये आप दोनों सरकारका क्या मुझे कभी भी दर्शन प्राप्त होगा ? ॥३७८॥

कच्चिद्युवां सद्मनि दन्तधावने षडस्रपीठोपरिसंनिवेशितौ ।
शुभेक्षणौ धावनकृत्यतत्परौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३७९॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये दन्तधावन कुञ्जमें षट्कोण की चौकी पर

सखियों के द्वारा विराजमान किये हुये, मुख धोनेका कार्य करते हुये, मङ्गलमय चितवन युक्त आप दोनों सरकारका क्या मैं कभी भी दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥३७६॥

कच्चिद्युवां सर्वदृगुत्सवाकृती श्रीस्नानकुञ्जे मणिपीठके स्थितौ ।
चलङ्करिष्णू प्रणयान्मिथः प्रभू द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम्॥३८०॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये श्रीस्नानकुञ्जमें अपने विश्वमोहन रूपसे सभीके नेत्रोंको उत्सवके सदृश विशेष आनन्द प्रदान करने वाले, परस्पर एक दूसरेका शृङ्गार करनेकी इच्छासे युक्त हुये मणिमय चौकी पर विराजमान, सर्व समर्थ, आप दोनों सरकारका दर्शन क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३८०॥

कच्चिद्युवां लप्स्यशनालयान्तरे माणिक्यपीठोपरि चालिसञ्चये ।
संजग्धतौ वारिजपत्रलोचनौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३८१॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये कलेवा कुञ्जमें सखियोंके समूहमें मणिमय चौकी पर भोजन करते हुये कमल दलके समान विशाल लोचन आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३८१॥

कच्चिद्युवां कामरतिस्मयापहौ शृङ्गारकुञ्जान्तरमध्यवर्तिनौ ।
महार्हदिव्याम्बरभूषणान्वितौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम्॥३८२॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये शृङ्गार कुञ्जके मध्य भागमें विराजमान अत्युत्तम और बहुमूल्य, दिव्य वस्त्र भूषणोंका शृङ्गार धारण किये हुये, अपनी अतुलित छवि माधुरीसे रति व कामदेवके अभिमानको दूर करने वाले, आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३८२॥

कच्चिद्युवां ब्रह्महरीशवन्दितौ शचीविधात्रीगिरिजारमार्चितौ ।
प्रकाशयन्तौ प्रभया सभागृहं द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३८३॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि देवश्रेष्ठोंसे वन्दित (प्रणाम किये हुये) और रमा (श्रीलक्ष्मीजी) उमा, ब्रह्माणी, इन्द्राणी आदि विशिष्ट शक्तियोंसे पूजित, अपने श्रीअङ्गके सहज प्रकाशसे सभा भवनको प्रकाश युक्त करते हुये आप दोनों सरकारका दर्शन क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३८३।

कच्चिद्युवां काञ्चनपीठके स्थितौ प्रियावदन्तौ वरतेमनानि वै ।
परस्परं ग्राससमर्पणोत्सुकौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३८४॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—भोजन सदन (गृह) में सुवर्णकी चौकी पर विराजमान, नाना प्रकारके उत्तम व्यञ्जनोंको पाते और परस्पर पवानेकी इच्छासे, ग्रास (कवल) देनेको उत्सुक हुये, आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३८४॥

कच्चिद्दिवास्वापगृहे सुसज्जिते सौवर्णपर्यङ्कगतौ प्रियाप्रियौ ।
सुखं शयानौ परमाद्भुतच्छवी द्रक्ष्यामि वां जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३८५॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-भली प्रकारसे सजाये हुये, दिनके शयन भवन (विश्राम कुञ्ज)में, सोनेके पलङ्गपर परम आश्चर्यमय छविसे युक्त सुखपूर्वक शयन किये हुये आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतम सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ॥३८५॥

कच्चिद्युवां वै फलभोजनालये शुभेक्षणानां निवहैः समावृतौ ।
फलान्यदन्तौ प्रणयार्पितानि च द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३८६॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-फलभोजन कुञ्जमें कमलनयना सखियोंके यूथसे घिरकर, वहाँकी प्रधान सखीके द्वारा प्रणय पूर्वक समर्पण किये, मधुर फलोंको, पाते हुये आप श्रीयुगल सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३८६॥

कच्चिन्निदाघोत्सवमन्दिरे युवां मुदा सरय्वाः सरसि स्थितेऽम्भसि ।
सहालिवृन्दैर्जलकेलितत्परौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३८७॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-गर्मीकी ऋतु वाले उत्सव महलमें, श्रीसरयू-जलसे पूर्ण सरोवरमें सखी समूहोंके साथ आनन्द पूर्वक जल केलि करते हुये, आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मैं कभी भी प्राप्त करूँगी ? ॥३८७॥

कच्चिद्यु वामालिसहस्रमध्यगौ नौकाविहारौ कमनीयविग्रहौ ।
पुष्पाम्बराभूषणभव्यदर्शनौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३८८॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-फूलोंके वस्त्र व भूषणोंसे अत्यन्त भव्यदर्शन वाले, मन-हरण-रूपवाली सहस्रों सखियोंके बीचमें विराजमान होकर, नौका विहार करते हुये आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३८८॥

कच्चिद् वां पुष्पनिकुञ्जमध्यगौ घृतप्रसूनाम्बरभूषणौ प्रियौ ।
तटे सरय्वाः स्वसखीभिरावृतौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३८९॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-श्रीसरयूजीके किनारे अपनी सखियोंसे घिरे हुये, पुष्प निकुञ्ज (फूलबँगला) के बीचमें विराजमान, फूलोंके वस्त्र-भूषणोंको धारण किये हुये आप श्रीयुगलसरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३८९॥

कच्चिद् वां रत्नविभूषणाञ्चितौ समावृतौ दाससखीगणादिभिः ।
श्रीरत्नसिंहासनवेश्मनि स्थितौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम्॥३९०॥

हे शोभनाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-क्या रत्नसिंहासन नामके महलमें दासवृन्द, सखी वृन्द आदिसे घिरे हुये, और रत्नोंके बने भूषणोंका शृङ्गार धारण किये हुये, आप श्रीयुगल सरकारका दर्शन, मैं कभी भी प्राप्त करूँगी ? ॥३९०॥

कच्चिद् वां विश्वविमोहनस्मितौ निशाशनागारगतौ सहालिभिः ।
प्रियावदन्तौ च यथेप्सिताशनं द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम्॥३९१॥

हे शोभनाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-ब्यारू (रात्रिके भोजन) कुञ्जमें सखियोंके सहित इच्छानुकूल भोजन करते हुये, अपनी मधुर मुस्कानसे सारे विश्वको मुग्ध करने वाले आप श्री युगलसरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३९१॥

कच्चिद्वां संश्रितकल्पपादपौ स्वलङ्करिष्णू मणिपीठके स्थितौ ।
वराङ्गनाभिः परिसेवितौ मुदा द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३९२॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजू ! मुझे बतलाइये-शृङ्गारकुञ्जमें अपनी सखियोंसे सेवित, आश्रितोंकी कल्पवृक्षके समान सभी इच्छित फलोंके देनेवाले, मणिमय चौकीपर बैठकर, शृङ्गारकरनेकी इच्छासे युक्त हुये, आप दोनों सरकारके दर्शनोंका सौभाग्य, मैं क्या कभी प्राप्त कर सकूंगी ? ॥ ३९२ ॥

कच्चिद् वां रासनिकुञ्जगामिनौ रासार्हणीयाम्बरभूषणान्वितौ ।
मिथोऽर्पितांसैकभुजौ मनोहरौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३९३॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-रासोचित वस्त्र-भूषणोंका शृङ्गार धारण किये, परस्पर एक दूसरेके कन्धेपर अपनी भुजा रक्खे रासकुञ्जमें पधारते हुये, सभीके मनकी चोरी करने वाले आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३९३॥

कच्चित्तु वां कोटिरतिस्मरच्छवी निजालिभिः शोभितरासमण्डले ।
ता ह्लादयन्तौ किल रासतत्परौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३६४॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी! मुझे बतलाइये-रासकी कलाको भलीप्रकारसे जानने वाली सखियोंसे शोभित रासमण्डलमें, करोड़ो रति और कामदेवके तुल्य कान्तिवाले, सखियोंको आह्लादयुक्त करते हुये, रासपरायण अर्थात् अपने भगवदीय आनन्द प्रदायक लीला करनेमें तत्पर हुये, आप दोनों सरकारका दर्शन क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ॥३६४॥

कच्चित्तु वां रासपरिश्रमान्वितावान्दोलकुञ्जे स्वसखीभिरावृतौ ।
सन्दोल्यमानौ सुषमामहाम्बुधी द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३६५॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी! मुझे बतलाइये रासके परिश्रमसे युक्त (होनेके कारण) झूलन कुञ्जमें (पधारे हुये) सुन्दरताके महासागर स्वरूप, सखियोंसे घिर कर भली प्रकारसे झूलते हुये आप श्रीयुगल सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा? ॥३६५॥

कच्चिद्रसज्ञेन नरेन्द्रसूनुना संदोल्यमानां करपल्लवेन वै ।
त्वां प्रेयसा ह्लादमहार्णवाकृति द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३६६॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी! मुझे बतलाइये, उस झूलन कुञ्जमें, आनन्दवर्धक क्रियाओंका ज्ञान रखने वाले श्रीचक्रवर्तीकुमार प्राणप्यारेजूके, कर कमलोंसे झुलाई जाती हुई, आह्लादकी महासागर स्वरूपा आपका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा? ॥३६६॥

कच्चित्तु वामालिभिरम्बुजेक्षणौ विभाजिताभी रसिकेश्वरौ मिथः ।
मुदा वसन्तोत्सवकेलितत्परौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३६७॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी! मुझे बतलाइये, वसन्त ऋतुकी कुञ्जमें, सखियोंके दो भाग करके अपनेर भागकी सखियोंके सहित परस्पर आनन्द पूर्वक फाग खेलते हुये, रसिकेश्वर (भक्तोंके शासनमें रहने वाले) कमल लोचन आप श्रीयुगल सरकारका दर्शन क्या मैं कभी भी प्राप्त करूँगी? ३६७

कच्चिज्जितप्रेष्ठतमां विहारिणा त्वां स्तूयमानां सुदृशामथाज्ञया ।
आलिङ्गयन्तीं तमृतं मुदा प्रियं द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३६८॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी! मुझे बतलाइये, फागके खेलमें प्यारेसे जीत लेने पर मृगनयनी सखियोंकी आज्ञासे श्रीप्राणप्यारेजूके द्वारा आपकी स्तुति करते हुये, पुनः उन सत्य (ब्रह्म स्वरूप) श्रीप्यारेजीको हृदय लगाते हुये आपका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा? ॥३६८॥

कच्चिद् युवां श्रीसरयूतटे शुभे संवेष्टितौ कोटिसखीभिरीप्सितम् ।
प्रियौ चरन्तौ मणिभूषणाञ्चितौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम्॥३९९॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-श्रीसरयूजीके किनारे मणिमय भूषणोंको धारण किये हुये, करोड़ों सखियोंसे घिरकर, इच्छानुकूल टहलते हुये, आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतम सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ॥३९९॥

कच्चिद् युवां पुष्पितवाटिकागतौ सुलाल्यमानौ ललितेक्षणाव्रजैः ।
विलोकयन्तौ फलपुष्पवाटिकां द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥४००॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-फूली हुई वाटिकामें पधारकर, अपनी सुन्दर चितवनवाली सखीवृन्दोंसे प्यार किये जाते हुये तथा उसवाटिकाके फल व पुष्प आदिकोंको अवलोकन करते हुये, आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥४००॥

कच्चिन्निशास्वापगृहे मनोहरे नोराजितां त्वां शतपत्रलोचनाम् ।
विसर्जयन्तीं परितोषिताः सखीर्द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥४०१॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-रात्रिके शयन भवनमें, शयन आरती हो जाने के पश्चात्, अपनी मनहरण चितवन सुन्दर मुस्कान व अमृतमय वचन आदिक अनेकों ढंगसे सन्तुष्ट करके सखियोंको, विसर्जन करती हुई, कमलके समान विशाल नेत्रवाली आपका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥४०१॥

कच्चिद् युवां वै मणितल्पशायिनौ मनोहरे काञ्चनरत्नमन्दिरे ।
सूक्ष्माम्बराच्छावलकाञ्चिताननौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥४०२॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-सुवर्ण खचित उस रत्न मन्दिरमें, अति झीने वस्त्रों को धारण किये हुये, अलकोंसे शोभित मुखारविन्द वाले, मणिमय पलङ्ग पर शयन किये हुये, आप दोनों मनहरण सरकारका दर्शन क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥४०२॥

कच्चिद् युवां विश्वविमोहनाकृती निद्रावशान्मीलितकञ्जलोचनौ ।
प्रकाशयन्तौ प्रभया स्वकीयया द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥४०३॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-अपने मंगलमय रूप-सौन्दर्यसे समस्त विश्वको मुग्ध कर लेने वाले, निद्रावश कमलके समान सुन्दर व विशाल नेत्रोंको बन्द किये हुये,

अपने-अपने वर्णकी गौर-श्याम कान्तिसे उस महलको प्रकाश युक्त करते हुए आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥४०३॥

कदा नु पश्यामि विचित्रपङ्कजां वशिष्ठपुत्रीं सरयूं मनोरमाम् ।
चक्रायुधानन्दमयाश्रुबिन्दुजां तद्ब्रूहि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥४०४॥

हे कल्याणस्वरूपे श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—आपकी कृपासे विचित्र रङ्गके कमलोंसे सुशोभित, श्रीविष्णुभगवानके आनन्दमय अश्रुबिन्दुसे प्रकट हुई, सभीके मनको रमाने वाली, श्रीवशिष्ठ नन्दिनी श्रीसरयूजीका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४०४॥

कदा नु सत्यां रघुमौलिपालितां वनप्रमोदातिशयेन शोभिताम् ।
आनन्दमग्नैश्च जनैः समाकुलां द्रक्ष्यामि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥४०५॥

हे कल्याणस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! प्रमोद वनसे अतिशय सुशोभित व आनन्दमग्न नर-नारी गणोंसे परिपूर्ण, श्रीरघुकुल श्रेष्ठ (श्रीदशरथ) जी महाराजके द्वारा पालित श्रीअयोध्यापुरीका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ॥४०५॥

कदा नु सर्वोत्तममहाटकालयं विशालकं कोटिसहस्रमन्दिरम् ।
तडित्प्रभं स्त्रीजनयूथसङ्कुलं द्रक्ष्यामि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥४०६॥

हे कल्याणस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! कब अरबों महलोंसे युक्त, बिजुलीके समान प्रकाश वाले, सखियोंके यूथोंसे भरे हुये, विशाल व सर्वश्रेष्ठ, आपके श्रीकनकभवनका दर्शन मैं प्राप्त करूँगी ॥४०६॥

कदोत्थिता स्वालिभिरेव बोधिता सुस्नापिता दिव्यविभूषणान्विता ।
संपूजिता चन्द्रकलां व्रजाम्यहं तद्ब्रूहि कल्याणि ! निजानुकम्पया ॥४०७॥

हे कल्याणस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये अपनी सखियोंके द्वारा जगाई हुई मैं उठकर स्नान करके, दिव्य भूषणोंको पहन कर, अपनी उन अनुचरियोंकी पूजा-ग्रहण करके श्रीचन्द्रकलाजीके पास कब जाऊँगी ? ॥४०७॥

कदा तया साकमखिन्नचेतसा सखीनिकायेन सखीप्रधानया ।
विशामि ते स्वापगृहाजिरद्वयं तद्ब्रूहि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥४०८॥

हे कल्याणस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! मुझे आप बतलाइये कब मैं आपकी कृपासे सखी वृन्दके सहित उन प्रधान सखी (श्रीचन्द्रकला) जीके साथ, प्रसन्न चित्तसे, आपके श्रीशयन महलके दूसरे आङ्गनमें प्रवेश करूँगी ? ॥४०८॥

कदोत्थितां प्रेष्ठतमोपराजितां सुवासयन्तीं गृहमङ्गसौरभैः।
मनोहराङ्गीमलकावृताननां द्रक्ष्यामि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥४०९॥

हे कल्याणस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! सखियोंके मधुर मंगल गान द्वारा (सावधान हो) उठकर, प्राण प्यारेजूके पास विराजमान हुई, अलकावलीसे आवृत (आच्छादित) मुखारविन्दवाली, अपने श्रीअङ्गकी अद्भुत छटासे सभीके मनको हरण करनेवाली तथा अपने श्रीअङ्गकी सहज सुगन्धिसे सारे महलको सुगन्धमय करती हुई आपका दर्शन, मुझे आपकी कृपासे कब प्राप्त होगा ? ॥४०९॥

कदा नु कान्तांसकरां शुचिस्मितां विजृम्भमानां नलिनायतेक्षणाम्।
त्वां वीक्ष्य दृग्भ्यां विधुमोहनाननामेष्यामि चक्षुष्फलमूरुवत्सले ! ॥४१०॥

हे चन्द्रमाको मोहित करने वाले मुख वाली, परम वात्सल्यवती श्रीकिशोरीजी ! पवित्र मुस्कानसे युक्त, कमलके समान सुन्दर और विशाल नेत्रवाली, प्यारेके कन्धे पर अपना हस्तकमल रक्खे, जम्भुवाई लेती हुई आपका दर्शन करके, मैं कब अपने नेत्रोंको सफल करूँगी ? ॥४१०॥

कदा नु पुष्पाञ्जलिमार्प्य सादरं कृतस्तुतिस्त्वां प्रणमामि हर्षिता।
भालेपरिस्थाप्य तवाङ्घ्रिपङ्कजं सवल्लभायाः स्वदृशा स्पृशाम्यहम् ॥४११॥

हे श्रीकिशोरीजी ! कब मैं पुष्पाञ्जलि समर्पण करके स्तुतिसे निवृत्त हो, आपको हर्ष पूर्वक प्रणाम करूँगी ? और कब मैं प्राणप्यारेजूके सहित आपके श्रीचरण-कमलोंको अपने भालपर रखकर, उन्हें नेत्रों से स्पर्श करूँगी ? ॥४११॥

कदा नु पुष्पस्रजमुत्तमां नवां सधार्य मूर्द्ध्ना विहिताञ्जलिः स्थिता।
नीराजमानां निहतस्मरस्मयां द्रक्ष्याम्यहं त्वां हि तवानुकम्पया ॥४१२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! उत्तम, नवीन पुष्प माला आपको धारण कराके, अपने शिर पर बँधे हुवे हाथ रखकर खड़ी हुई मैं, आरती किये जाते समय कामदेवके अभिमानको चूर्ण करने वाले श्रीप्राणप्यारेजूके सहित, आपका दर्शन, मुझे आपकी कृपासे कब प्राप्त होगा ? ॥४१२॥

कदा नु वै भावसुतोषिता भृशं कराम्बुजं धास्यसि मूर्द्ध्नि मे शुभम्।
दत्ताभयं संशमिताखिलाशुभं स्निग्धं मनोज्ञं वरदं सुकोमलम् ॥४१३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मेरे भावसे अति प्रसन्न होकर, भक्तोंको सब प्रकारसे अभय देने वाले व सकल अमङ्गलोंको शान्त (नष्ट) करने वाले, चिक्कने, मनहरण, अभीष्टवर प्रदायक, अत्यन्त कोमल, मङ्गलमय, अपने श्रीकरकमलको कब मेरे शिर पर रखने की कृपा करेंगी ? ॥४१३॥

कदा नु सखीलिगणैः समर्चितां प्रियेण साकं कमनीयविग्रहाम् ।
राजोपचारैरखिलैः सुसेवितां द्रक्ष्यामि यान्तीं भवनं च मङ्गलम् ॥४१४॥

प्राणप्यारेजूके सहित अपनी सखी-वृन्दोंसे पूजित, अत्यन्त सुन्दर स्वरूप, छत्र, चामर, मोर-छल आदि राजाओंके योग्य समस्त सेवा सामग्रियोंके द्वारा भली प्रकारसे सेवित, श्रीमङ्गल भवनको पधारती हुई आपका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४१४॥

कदा जितेभेन्द्रगती शुचिस्मितौ छत्रावृतास्यौ सरसीरुहेक्षणौ ।
मिथोंऽसविन्यस्तकराम्बुजौ प्रियौ द्रक्ष्याम्यहं वां हि तवानुकम्पया ॥४१५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपसमें एक दूसरेके कन्धेपर हस्त कमल रक्खे हुये, कमलदललोचन, पवित्र मुस्कानवाले, अपनी मधुर चालसे गजराजको भी लज्जित करनेवाले तथा छत्रसे ढकेहुये मुखार-विन्दवाले, आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतम-सरकारका दर्शन, मुझे कब आपकी कृपासे प्राप्त होगा ? ॥४१५॥

कदा न्वहं मङ्गलवेश्मनि स्थितौ माङ्गल्यवस्त्राभरणैरलङ्कृतौ ।
अवेक्षमाणौ द्विजनागगोशिशून् युवामुदीक्षे कमलायतेक्षणे ! ॥४१६॥

हे कमलके समान विशाल लोचना श्रीकिशोरीजी ! मगल भवनमें विराजमानहोकर, मंगलमय वस्त्र भूषणोंका शृङ्गार किये, तोता, मैना, हंस और ऐरावत हाथीके बच्चोंको अवलोकन करते हुये, आप दोनों सरकारका दर्शन, मुझे आपकी कृपासे कब प्राप्त होगा ? ॥४१६॥

कदा स्पृशन्ती तरुणाम्बुजेक्षणां गोनागहंसद्विजशावकाञ्छुभान् ।
प्रदर्शयन्ती दयिताय सादरं द्रक्ष्याम्यहं त्वां मृदुलामलाशयाम् ॥४१७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! उसमङ्गल कुञ्जमें ही, गो, ऐरावतहाथी, हंस आदि पक्षियोंके बच्चोंको अपने करकमलोंसे स्पर्श करती और श्रीप्राणप्यारेजीको उनका आदरपूर्वक दर्शन करवाती हुई, स्वच्छ कोमल अन्तःकरणवाली तथा नवीन खिले कमलके समान नेत्रवाली आपका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४१७॥

कदा नुसस्मेरमुखीं तणिद्द्युतिं विराजमानां चतुरस्रपीठके ।
सवल्लभां स्वामिनि ! दन्तधावने द्रक्ष्याम्यहं त्वां मुखधावने रताम् ॥४१८॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! श्रीप्राणप्यारेजूके सहित, दन्त धावन कुल्ला, मुख शुद्धके लिये, मणिमय चार कोणकी चौकी पर विराजमान, मन्दमुस्कान युक्त मुखारविन्द व बिजुलीके समान कान्ति वाली आपका, दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ॥४१८॥

कदा नु पश्यामि सखीगणैर्वृतां त्वां प्राणनाथेन कुशेशयेक्षणाम् ।
यथेप्सितं सारयवं च ते जलं समर्पयन्ती कृतकृत्यचेतसा ॥४१६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! कृत कृत्य चित्तसे रुचिके, अनुसार आपको श्रीसरयूजल समर्पण करती हुई मैं, श्रीप्राणनाथजूके सहित, सखीवृन्दोंसे घिरी हुई, कमलके समान सुन्दर विशाल नेत्रवाली आपका दर्शन, कब प्राप्त करूँगी ? ॥४१९॥

कदा च ते प्रोञ्छ्य मुखारविन्दं मन्दस्मितं फुल्लसरोजनेत्रम् ।
विम्बोष्ठमादर्शकपोलमार्ये ! सुनासिकं चारुतरं निरीक्षे ॥४२०॥

हे श्रेष्ठे ! (श्रेष्ठ गुण, स्वभाव, लवण, कुल आदिसे युक्ते) श्रीकिशोरीजी ! जिसमें खिले कमलके समान सुन्दर और विशाल नेत्र हैं, बिम्बाफलके सदृश लाल जिसमें ओठ हैं, आदर्श (दर्पण) के समान स्वच्छ, प्रतिबिम्ब ग्रहण करने वाले जिसमें कपोल (गाल) हैं और जिसका मन्द मुस्कान है तथा जिसकी नासिका अत्यन्त सुन्दर है, ऐसे आपके श्रीमुखकमलको पोंछ कर उसका दर्शन मैं भली प्रकारसे कब प्राप्त करूँगी ? ॥४२०॥

कदा नु वीक्षे चतुरस्रपीठके षडस्रके वै वसुकोणपीठके ।
सुस्नाप्यमानौ सरयूशुभाम्भसा स्नानालये सूक्ष्मसिताम्बरौ हि वाम्॥४२१॥

हे श्रीकिशोरीजी ? श्रीस्नान कुञ्जमें, महीन, श्वेत-वस्त्रोंको धारण कर, चतुष्कोणकी चौकी, (जिसके प्रत्येक कोण पर मध्यकी ओर झुके हुये सहस्र धार वाले जल यन्त्रोंसे जल गिरता है) षट् कोण, (जिसके प्रत्येक कोणपर हाथियोंकी सूँड़से मध्य भागकी ओर जल गिरता है) व अष्ट कोणकी चौकी (जिसके प्रत्येक कोणपर अष्ट सखियोंके हाथमें विराजमान सुवर्ण यानी सोने के अधो मुखी घड़ोंसे सुन्दर स्वच्छ यथेष्ट शीतोष्ण जल गिरता है, उन) पर श्रीसरयूजीके मंगलमय जलसे स्नान कराये जाते हुये, आप दोनों सरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४२१॥

कदा भवत्याश्चिकुरप्रसाधनं कुर्वन्तमम्भोजदलायतेक्षणम् ।
प्रेमप्रवीणं रसिकेशमादराद् द्रक्ष्यामि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥४२२॥

हे कल्याणस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! आदरपूर्वक आपके केशों को सँवारते हुये, प्रेममार्गमें परम चतुर, भक्तोंके शासनमें रहनेवाले, कमलके समान विशाल सुन्दर नयन, श्री प्राणप्यारेजूका दर्शन, मुझे कब प्राप्त होगा ? ॥४२२॥

कदा नु वै राजकुमारभाले स्वयं कराभ्यां तिलकं मनोज्ञम् ।
प्रेम्णा लिखन्तीं नवकुङ्कुमेन त्वां द्रष्टुमेष्यामि सुखस्वरूपाम् ॥४२३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! श्रीराजकुमारजीके मस्तक पर, स्वयं अपने करकमलों द्वारा प्रेमपूर्वक नवकेशरसे मनोहर तिलककी रचना करती हुई आपका मुझे, कब दर्शन प्राप्त होगा ? ॥४२३॥

कदा नु सर्वालिसमूहसंवृतां सवल्लभां काञ्चनपीठके स्थिताम् ।
विम्बाधरां त्वां लघुभोजनालये द्रदयाम्यदन्तीं मृदुपाणिपल्लवाम् ॥४२४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! सखी दलके सहित सुवर्णकी चौकी पर, श्रीप्राणप्यारेजूके साथ, विराजमान हो भोजन करती हुई, विम्बा फलके समान लाल र अधर व कोमल हस्तकमल वाली आपका, मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥४२४॥

कदा न्वहं प्रीतिगृहीतबुद्धिर्जलं सरय्वा विमलं सुमिष्टम् ।
धृत्वाऽम्बुपात्रे सनरेन्द्रजायै समर्प्य ते चन्द्रमुखं निरीक्षे ॥४२५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! प्रेममें भीनी हुई बुद्धि वाली मैं, श्रीसरयूजीके स्वच्छ व मीठे जलको सोनेके गिलासमें रखकर, श्रीचक्रवर्तीकुमारजीके समेत आपको समर्पण करके, कब आपके श्रीमुखचन्द्रका दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥४२५॥

कदा नु चाश्नामि सहालिवृन्दैस्तवाधरोच्छिष्टमनुत्तमान्नम् ।
जलं च पास्यामि सुधोपमं वा सहप्रियाया मननीयकीर्त्ते ! ॥४२६॥

हे मनन करने योग्य कीर्त्ति वाली श्रीकिशोरीजी ! सखी वृन्दोंके सहित मैं, श्रीप्राणप्यारेजूके समेत आपके सर्वश्रेष्ठ, अधरोच्छिष्ट अन्नका प्रसाद, कब सेवन कर सकूँगी ? और कब आप दोनोंका अधरोच्छिष्ट अमृतके समान जल मुझे पीनेको मिलेगा ? ॥४२६॥

ईक्षे कदा वां सुमुखीभिरन्वितौ शृङ्गारकुञ्जान्तरवेदिकोपरि ।
स्वलङ्करिष्णू समुपस्थितौ मिथो भक्तार्थसम्पादितकृत्स्नकृत्यकौ ॥४२७॥

हे श्रीकिशोरी जी ! सुन्दर मुखारविन्द वाली सखियोंसे युक्त, परस्पर एक दूसरेका शृङ्गार करनेके लिये, शृङ्गारकुञ्जके अन्दरकी मणिमयी वेदीपर विराजमान, केवल भक्तोंके सुखार्थ समस्त कृत्य करने वाले आप, श्रीयुगल-सरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४२७॥

कदा ह्युपस्थाप्य विभूषणानां करण्डमग्रे सुविराजमानाम् ।
विभूषयन्तं स्वकराम्बुजाभ्यां त्वां द्रष्टुमेष्यामि तमिन्दुवक्त्रम् ॥४२८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आप दोनों सरकारके सामने भूषणोंकी पिटारी रखकर मैं, मणिमय चौकी पर विराजमान हुई, आपका अपने कर-कमलोंसे शृङ्गार करते हुये, उन श्रीचन्द्रवदन प्राणप्यारेजूका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४२८॥

कदा जगन्मोहनमोहनस्मितां प्राणेशनेत्रोत्सवतुल्यहर्षदाम् ।
विभूषयन्तीं मृदुलाब्जपाणिना द्रक्ष्यामि कान्तं जलजायतेक्षणम् ॥४२९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! अपने कमलके समान कोमल सुन्दर हाथोंसे, कमलनयन श्रीप्राणप्यारे जूका शृङ्गार करती हुई, श्रीप्राणप्यारेजूके नेत्रोंको अपने श्रीविग्रहसे उत्सवके सदृश विशेष आनन्द प्रदान करने वाली, तथा चर-अचर प्राणियोंको अपनी छविमाधुरीसे मुग्ध करने वाले, श्रीप्राण-प्यारेजूको भी अपनी मुस्कानसे मुग्ध (आश्चर्य युक्त) करने वाली आपका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ॥४२९॥

कदा युवां चन्द्रमसौ मनोहरौ सौवर्णसिंहासनसन्निवेशितौ ।
नृत्यैश्च वाद्यैः कलगानविद्यया संसेव्यमानाववलोकयाम्यहम् ॥४३०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! नृत्य, वाद्य, तथा सुन्दर गान विद्याके द्वारा सखियोंसे प्रसन्न किये जाते हुये, सुवर्णके सिंहासन पर विराजमान आप दोनों मन हरण चन्द्रोंका, मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥४३०॥

कदा प्रहृष्टौ निमिभानुवंश्यौ निवेशयित्वा मृदुलासनेऽहम् ।
धृतांसपाणी हृतदृष्टिचित्तौ वीक्षे सखीमण्डलराजितौ वाम् ॥४३१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! सखियोंके नृत्य, वाद्य गान आदिसे प्रसन्न हो, अपनी छविमाधुरीसे प्राणियोंके दृष्टि व चित्तको हरण करने वाले, एक दूसरेके कन्धे पर अपना हस्त कमलको रक्खे हुये निमी व सूर्य वंशमें प्रकट, कमलके समान जिनके सुकोमल श्रीचरण हैं, उन आप दोनों सर-कारको सखियोंके मण्डलमें कोमल आसनपर विराजमान करके, मैं कब दर्शन करूँगी ? ॥४३१॥

कदा महार्हाम्बरभूषणान्वितौ छत्रावृतास्यौ सकिरीटचन्द्रिकौ ।
युवां निरीक्षे सकलाङ्गसुन्दरौ सिंहासनस्थौ परिपन्निवेशने ॥४३२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो बहुमूल्य वस्त्र व भूषणोंका शृङ्गार धारण किये हुये हैं, किरीट चन्द्रिका

जिनके शिरपर सुशोभित है, छत्र जिनके श्रीमुखारविन्दको ढके हुये है, सभाभवनके मणिमय सिंहासन पर विराजमान, सर्वाङ्गसुन्दर यानी गुण रूप, वैभव, बल, तेज, चरित्र आदि सभी प्रकारकी दृष्टिसे सुन्दर, उन आप श्रीयुगल सरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४३२॥

कदा नु वै नाट्यकलां नटानां सुनर्तकानां बहुधा च नृत्यम् ।
गानं कलं गायकभूषणानां वीक्षे युवां वीक्ष्य निशामयन्तौ ॥४३३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! नटोंकी बहुत प्रकारकी नटलीला और नृत्य करने वालोंका बहुत प्रकारका नृत्य (नाच) अवलोकन करके श्रेष्ठ गायकोंका सुन्दर गान श्रवण करते हुये आप श्रीयुगल सरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४३३॥

सुपीतनीलारुणशुक्लवर्णैः पुष्पैः सगन्धैर्मिलितान्तराले ।
निधाय माले युवयोः सुकण्ठे कदा नु वां पादयुगं ग्रहीष्ये ॥४३४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! सुगन्ध युक्त श्वेत (सफेद) लाल, नील, पीत रङ्गके पुष्पोंकी बनाई हुई मालायें आप दोनों सरकारके सुन्दर गलोंमें पहिनाकर, कब मैं आप श्रीयुगल सरकारके श्रीचरणकमलोंको ग्रहण करूँगी ? ॥४३४॥

कदा नु माध्याह्निकभोजनालये सुखोपविष्टौ मणिपीठकोपरि ।
वृतौ शरच्चन्द्रमुखीभिरालिभिर्युवां निरीक्षे हरिदम्बरौ प्रिये ! ॥४३५॥

हे श्रीप्रियाजू ! दोपहरके भोजन सदन (गृह) में शरद् ऋतुके चन्द्रमाके तुल्य उज्वल प्रकाशमान, आह्लादकर मुखवाली सखियों से घिरे हुये, हरे रङ्गके वस्त्रों से युक्त, मणिमय चौकी पर सुख पूर्वक विराजमान, आप श्रीयुगलसरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४३५॥

कदा प्रपश्यामि युवामदन्तौ चतुर्विधं षड्रसभोजनं च ।
प्रदाय पूर्वं कवलानि कृत्वा परस्परं भूरिनिगूढभावौ ॥४३६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! षड्रसोंसे युक्त, चार प्रकारके भोजन को कवल बना बनाकर, परस्पर एक दूसरेको पवा कर स्वयं पाते हुये, अत्यन्त अथाह भाव वाले आप दोनों सरकार का दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४३६॥

कदा नु सस्मेरसुधांशुवक्त्रौ प्रियाप्रियौ दाडिमचारुदन्तौ ।
मुहुर्मुहुर्ग्रासमथार्पयन्तौ सुखं निरीक्षे खलु चर्वयन्तौ ॥४३७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मुस्कान युक्त चन्द्र तुल्य आह्लाद वर्धक जिनका श्रीमुखारविन्द है, अनारके दानोंके सदृश जिनकी सुन्दर दन्त पंक्ति है, परस्पर एक दूसरेको वारम्बार ग्रास प्रदान करते व आश्रितोंके लिये सुख बरसाते हुये उन आप दोनों सरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४३७॥

कदा नु वीक्षे रसिकाधिराजं सुधाकरस्पर्द्धिमुखे त्वदीये ।
ग्रासार्धकं प्रीतिवशात्समर्प्य भुञ्जानमर्द्धं परयानुरक्त्या ॥४३८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! चन्द्रमासे स्पर्धा करने वाले आपके श्रीमुखारविन्दमें, प्रीति वश आधा ग्रास देकर, शेष आधेको परम अनुराग पूर्वक स्वयं पाते हुये, भक्तोंको अपना सम्राट् मानने वाले श्रीप्राणप्यारेजूका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४३८॥

कदा नु वै चन्द्रकला रसज्ञा संभोजयन्ती परमादरेण ।
त्वां हासयन्ती सनरेन्द्रपुत्रां पुनः पुनर्मेऽक्षिपथं प्रयात्री ॥४३९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आप दोनों सरकारके परत्वको भली प्रकारसे जानने वाली प्राणप्यारेजूके सहित, आपको परम आदर पूर्वक सम्यक् प्रकारसे भोजन करवाती और हँसती हुई श्रीचन्द्रकलाजी, कब वारम्वार मुझे दर्शन प्रदान करेंगी ? ॥४३९॥

कदा नु चामीकरवारिपात्रे सुनिर्मलं दिव्यसुगन्धयुक्तम् ।
जलं निधायामृततुल्यमिष्टं समर्पयिष्ये परमश्रियौ ! वाम् ॥४४०॥

हे परम आश्चर्यमय छवियाली श्रीकिशोरीजी ! दिव्य सुगन्धसे युक्त, निर्मल, मीठे जलको सोनेंकी भारीमें लेकर, कब मैं दोनों सरकारको समर्पण करूँगी ? ॥४४०॥

कदा युवाभ्यां कृतभोजनाभ्यां प्रदाय चाचम्यमतीवरुच्यम् ।
विध्वास्यमाप्रोञ्छ्य करौ च पादौ ताम्बूलवीटीर्मुदिता प्रदास्ये ॥४४१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! भोजन करनेके पश्चात् अत्यन्त रुचिकारक आचमन प्रदान करके, मुख चन्द्र तथा हस्त व चरणकमलोंको पोंछ कर आनन्दमान होती हुई, मैं कब आप श्रीयुगल सरकारके लिये पानका बीरा प्रदान करूँगी ॥४४१॥

कदा नु चारनामि कृपैकलभ्यं प्रसादमुच्छिष्टमभीष्टमन्तः ।
नीराजितायां च सखीसभायां त्वयि प्रदृष्यार्यसुतान्वितायाम् ॥४४२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! सखियोंकी सभामें श्रीप्राणप्यारेजूके सहित आपकी आरती हो जानेके बाद,

केवल कृपासे ही प्राप्त होने योग्य तथा अपने अन्तःकरणसे चाहे हुये आप दोनों सरकारके उच्छिष्ट प्रसादका सेवन, मुझे कब करनेको प्राप्त होगा ? ॥ ४४२ ॥

कदाऽनवद्यां दयितोपशायिनीं प्रफुल्लपङ्केरुहसाञ्जनेक्षणाम् ।
विश्रामकुञ्जान्तररत्नतल्पके द्रक्ष्याम्यहं वै भवतीं कृपावतीम् ॥४४३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! विश्राम-कुञ्जके भीतर, रत्न खचित पलङ्गपर श्रीप्राणप्यारेजूके समीपमें सोई हुई, खिले कमलके समान विशाल और अञ्जन युक्त नेत्रवाली, सब प्रकारसे प्रशंसाके योग्य, कृपा-वती आपका दर्शन, कब मुझे प्राप्त होगा ? ॥ ४४३ ॥

कदा स्वपन्त्याः पदपद्मपीडनं सवल्लभायास्तव दिव्यतल्पके ।
विगाढभावेन निधाय चोरसि प्रिये ! करिष्यामि तवानुकम्पया ॥४४४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी कृपासे दिव्य-पलङ्गपर श्रीप्राणप्यारेजूके साथ शयनकी हुई, आपके श्रीचरण-कमलों की सेवा बड़े ही गाढ़ भावसे उन्हें अपने हृदय-स्थलपर रखकर मैं करनेको कब प्राप्त होऊँगी ॥ ४४४ ॥

कदा दयालो ! त्रिदशैरगम्यं मनोहरं सर्वसखीजनानाम् ।
प्रस्वापसंदर्शनमेव कृत्वा मुहुः करिष्ये सफले स्वनेत्रे ॥४४५॥

हे दयालो श्रीकिशोरीजी ! कब आपकी कृपासे सखियोंके मनको हरण करनेवाले देवताओंसे अगम्य आपकी शयन-झाङ्कीका वारम्बार दर्शन करके मैं अपने नेत्रोंको सफल करूँगी ? ॥४४५॥

कदा कृपादृष्टिनिरीक्षिता त्वया सकान्तया स्वापगृहान्तरस्थया ।
सुखं स्वपन्त्या नियताञ्जलिः स्थिता मृद्वङ्गि! मङ्क्ष्यामि सुखार्णवोदरे ॥४४६॥

हे कोमलांगी श्रीकिशोरीजी ! शयन सदनके मध्यमें, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित सुख पूर्वक शयन करती हुई आपके, कृपा दृष्टिसे अवलोकन करनेपर हाथ जोड़े खड़ी हुई मैं, कब सुखरूपी सागरमें गोता लगाऊँगी ॥४४६॥

कदा सतन्द्रौ च निमीलिताक्षौ मनोजचापप्रतिमभ्रुवौ वाम् ।
विलज्जिकोटीन्दुमनोहरास्यौ पद्माक्षि ! वीक्षेऽक्षिवतां मनोज्ञौ ॥४४७॥

हे कमललोचना श्रीकिशोरीजी ! नेत्रवालोंके मनको लुभाने वाले, और अपनी मनहरण मुखारविन्दकी शोभासे करोड़ों चन्द्रमाको लज्जित करने वाले, तथा कामदेवके धनुषके समान

सुन्दर भौंह वाले, नयन कमलोंको बन्द किये हुये, आप दोनों सरकारजीको, मैं कब अवलोकन करूँगी ? ॥४४७॥

कदा स्वपन्तौ परिशुद्धभावौ प्रेमास्पदौ प्रेमविहारिणौ वाम्।
प्रिय ! प्रिये ! ऽथो हि मिथो ब्रुवन्तौ शनैः शनैश्चैव मृगाक्षि ! वीक्षे ॥४४८॥

जो प्रेमके पात्र और प्रेममें ही विहार करनेवाले है, तथा जिनका मनोभाव सब प्रकारसे विकार रहित है, सोते समय, धीरे-धीरे परस्पर "हे श्रीप्रियाजू ! हे श्रीप्यारेजू" उच्चारण करते हुए, उन आप दोनों सरकारका मैं, कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥ ४४८ ॥

कदाऽऽलिमुख्यापरिबोधितौ वां मनोहरोत्फुल्लसरोजनेत्रौ ।
सुकुन्तलौ बिम्बफलाधरोष्ठौ प्रिये ! निरीक्षे मणितल्पसंस्थौ ॥४४९॥

हे श्रीप्रियाजू ! श्रीचन्द्रकलाजी व श्रीचारुशीलाजी आदि मुख्य सखियोंके द्वारा जगानेपर मणिमय पलंग पर बैठे हुये, मनहरण खिले कमलके सदृश लोचन, सुन्दरकेश, बिल्वाफलके समान लाल अधर व ओठ वाले, आप दोनों सरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥

प्रक्षालिताशेषहिमांशुवक्त्रौ स्वलङ्कृताङ्गौ निजकिङ्करीभिः ।
नीराजितौ प्रेमपरिप्लुताभिर्विलोक्य वीटीश्च कदा नु दास्ये ॥४५०॥

प्रेममें डूबी हुई किङ्करियोंने जिनके पूर्णचन्द्र तुल्य मुखारविन्दको धोया और सभी अगों का शृंगार किया है, उनके ही द्वारा आरती किये हुये आप दोनों सरकारका दर्शन करके मैं, कब आपको पानका बीरा प्रदान करूँगी ॥ ४५० ॥

कदा नु माल्यानि सुवासितानि विचित्रपुष्पैः परिगुम्फितानि ।
स्वयं सुकण्ठे तव धारयित्वा मुदामुदीक्षे दयितान्वितायाः ॥४५१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! अनेक प्रकारके पुष्पोंकी गूँथी हुई सुगन्धयुक्त मालाओंको श्रीप्राणप्यारेजू के सहित आपके सुन्दर गलेमें पहनाकर, मैं कब आप दोनों सरकारका दर्शन करूँगी ? ॥

कदा त्वहं प्रेमपरिप्लुताक्षी कृपाकटाक्षेण निरीक्षिता ते ।
सवल्लभायास्तव पाद पाद्मं निधाय भाले सुखिता शुचे ! स्याम् ॥४५२॥

हे शुचे ! (सकल विकार रहिते) कब आपके द्वारा कृपापूर्ण कटाक्षसे, देखनेपर प्रेमभरे नेत्र होकर मैं, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित आपके श्रीचरणकमलोंको, अपने मस्तकपर रखकर सुखी होऊँगी ?

कदा नु वै चम्पकदामवर्णां विनीलवस्त्रां गजगामिनीं त्वाम् ।
सुकोमलस्निग्धपदारविन्दां कञ्जाक्षि ! वीक्षे शरदिन्दुवक्त्राम् ॥४५३॥

हे कमललोचना श्रीकिशोरीजी ! जिनके श्री अंगका रंग चम्पाके फूलोंकी मालाके सदृश गौर है, वस्त्र नीले हैं, सुडौल जङ्घे और अत्यन्त कोमल चिकने श्रीचरणकमल हैं, जिनका शरद्-ऋतु के चन्द्रमाके समान मुखारविन्द है और गजेन्द्रके समान गति (चाल) है, उन आपका मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥ ४५३ ॥

कदा नु वै कुञ्चितनीलकुन्तलां सिन्दूरपुञ्जाभकराङ्घ्रिपङ्कजाम् ।
निःशेषकल्याणगुणैकविग्रहां त्वां जातु वीक्षेय विभूषणान्विताम् ॥४५४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जिनके घुंघराले केश और सिन्दूर पुञ्जके समान लाल श्रीहस्त व पदकमल हैं, उन भूषणोंसे भूषित, समस्त कल्याणकारी गुणोंकी मूर्ति, आपका मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥

प्रेष्ठांसविन्यस्तभुजां कलस्मितां ताटङ्कनासामणिचन्द्रिकान्विताम् ।
दिव्याङ्गनाप्रेमसुदेवलालितां त्वां द्रष्टुमेष्यामि धवाङ्कवर्तिनीम् ॥४५५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! श्रीप्राणप्यारेजूके कन्धे पर अपनी भुजा रक्खे हुये, सुन्दर मुस्कानसे युक्त, कर्णभूषण, नासामणि चन्द्रिकाको धारण किये, श्रीप्यारेजूकी गोदमें विराजमान, सखियोंके प्रेमरूपी देवतासे लालित, आपका दर्शन मैं, कब प्राप्त करूँगी ? ॥ ४५५ ॥

कदा नु मञ्जीरसुनूपुराढ्यां प्रियोपविष्टां सदयाम्बुजाक्षीम् ।
धृताब्जहस्तां सुप्रेमैकमूर्तिं त्वां हन्त पश्यामि जनानुकम्पिनीम् ॥४५६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो अपने श्रीचरणकमलों में नूपुर व पायजेबको पहिने हुई हैं, जिनके नेत्र कमल दयासे परिपूर्ण हैं, आश्रित जनोंपर दयाभाव रखनेवाली, श्रीप्राणप्यारेजूके पास विराजमान, अद्वितीय सौन्दर्यकी मूर्ति, हाथमें कमल लिये हुई उन आपका मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥४५६॥

कदा व्रजन्तीं फलभोजनालयं सखीजनानां निवहे मृदुस्मिताम् ।
त्वां सार्यपुत्रां सुखयानकेन वै वीक्षे विभाव्ये ! करुणाप्लुतारायाम् ॥४५७॥

हे माननेके योग्य गुण-रूप सम्पन्ना श्रीकिशोरीजी ! सखियोंके झुण्डमें श्रीप्राणप्यारेजूके सहित सुखयानके द्वारा फलभोजनकुञ्जमें पधारती हुई, मृदु-मुस्कानसे युक्त, करुणा परिपूर्ण हृदयवाली आपका मैं, कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥ ४५७ ॥

कदा नु पुष्पाभरणैर्विचित्रैर्नेपथ्यकालङ्कृतकोमलाङ्गीम् ।
सवल्लभां काञ्चनपीठके त्वां द्रक्ष्याम्यदन्तीं सुफलानि रुच्या ॥४५८॥

शृंगार करनेवाली सखीके द्वारा जिनके कोमल श्रीअंगोंका शृंगार, विचित्र फूलोंके भूषणोंसे किया गया है, सुवर्णकी चौकीपर प्राणप्यारेजूके सहित सुन्दर फलोंको रुचि पूर्वक पाती हुई, उन आपका मैं, कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥ ४५८ ॥

कदा सरय्वां जलकेलितत्परां प्रियेण साकं ससहस्रकिङ्करीम् ।
विद्युन्निभां लाघवनिर्जितप्रियां त्वां चारु वीक्ष्ये सुसुखैकविग्रहाम् ॥४५९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो बिजुलीके समान प्रकाशवाली सुन्दर सुखकी उपमा रहित मूर्त्ति हैं, जिन्होंने अपने लाघव (फुर्ती) से प्राणप्यारेजूको हरा दिया है, सहस्रों सखियों के सहित श्रीप्राणप्यारेजूके साथ, श्रीसरयूजी मे जल केलि करती हुई, उन आपका मैं, कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥ ४५९ ॥

कदा नु पुष्पालयमध्यभागे सुपुष्पसिंहासनराजमानौ ।
पुष्पाम्बरौ पुष्पविभूषणौ वां प्रेक्षे प्रसूनाभसुकोमलाङ्गौ ॥४६०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! पुष्प सदनके मध्यभागमें पुष्पोंके वस्त्र भूषणोंसे युक्त, सुन्दर पुष्पोंके सिंहासनपर सुशोभित होते हुए पुष्पके समान सुकोमल अंगोंवाले आप दोनों सरकारका मैं, कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥ ४६० ॥

कदा नु नाना रचनाचमत्कृते सहस्रनारीनरयूथसङ्कुले ।
ध्वजापताकावरतोरणाञ्चिते वां रत्नसिंहासनके निरीक्षे ॥४६१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! अनेक प्रकारकी सजावटसे जगमगाते हुए, हजारों नर नारियोंके झुण्डोंसे परिपूर्ण, ध्वजापताका और उत्तम तोरणसे सुशोभित, श्रीरत्नसिंहासन नामके महलमें, आप दोनों सरकार का मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी ॥ ४६१ ॥

कदा न्वशेषाम्बरभूषणाढ्यौ निःसीमसौन्दर्यसुखैकमूर्ती ।
निःसीममाधुर्यगुणोपपन्नौ वां रत्नसिंहासनके निरीक्षे ॥४६२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! समस्त वस्त्र-भूषणोंसे युक्त, असीम सौन्दर्य और उपमा रहित सुखकी मूर्त्ति

तथा असीम माधुर्य-गुणोंसे सम्पन्न आप दोनों सरकारका, श्रीरत्नसिंहासन सदनमें, कब मैं दर्शन प्राप्त करूँगी ! ॥४६२॥

कदा नु वै रासनिकुञ्जमध्ये रासस्थले मण्डल आश्रितानाम् ।
दत्तप्रियांसैकभुजां लसन्तीं स्वलङ्कृतां मञ्चगतां निरीक्षे ॥४६३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! रास-कुञ्जके मध्यवाले रासस्थलमें, भली प्रकारसे शृंगार की हुई प्यारेके कन्धे पर एक भुजा रक्खे, सखियोंके मण्डलमें, सिंहासनपर विराजमान होती हुई आपका, मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥ ४६३ ॥

कदा न्वहं राससुकेलितत्परां त्वां प्रेयसा साकमतुल्यसौभगाम् ।
चन्द्राननावेष्टितरासमण्डले बिम्बाधरोष्ठीं मृदुलाङ्गि ! वीक्षे ॥४६४॥

हे मृदुलांगी श्रीकिशोरीजी ! चन्द्रमुखी सखियोंसे घिरे हुए रासमण्डलमें, जिनके सौन्दर्यकी तुलना ही नहीं है तथा जिनके अधर व ओठ बिम्बाफलके सदृश लाल २ हैं, उन श्रीप्राणप्यारेजूके सहित रासक्रीड़ा करती हुई आपका मैं, कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥ ४६४ ॥

कदा नु चीनांशुकमण्डिताङ्गीं तन्द्रान्वितां न्यस्तधवांसहस्ताम् ।
राजोपचारैरुपचर्यमाणां यान्तीं निशास्वापगृहं निरीक्षे ॥४६५॥

जिनके अंग झीने वस्त्रोंसे विभूषित हैं, प्यारेके कन्धेपर हाथ रक्खे हुये राजसी उपचार छत्र चामर आदिसे सेवित रात्रिके शयनको पधारती हुई उन आलस्ययुक्त, आपका मुझे कब दर्शन प्राप्त होगा ? ॥ ४६५ ॥

कदा नु तस्मिन्नतिभव्यसद्मनि ह्यनेकपुष्पाञ्चितमाल्यशालिनीम् ।
धृतप्रियांसाम्बुजमञ्जुहस्तकां नीराजितामालिजनैरुदीक्षे ॥४६६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! उस अत्यन्त भव्य शयन भवनमें अनेक प्रकारके पुष्पोंसे बनी हुई मालाओं को धारणकर, प्यारेके कन्धेपर अपना कोमलहस्त कमल रक्खे हुई, तथा सखीजनोंके द्वारा आरती उतारी हुई आपका, मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी ॥ ४६६ ॥

कदा शयानां सममार्यसूनुना सौवर्णतल्पे मृदुलांशुकाञ्चिते ।
पश्येयमाराद्विहिताञ्जलिः स्थिता त्वां चित्स्वरूपां हि तवानुकम्पया ॥४६७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी ही कृपासे हाथ जोड़कर पास खड़ी हुई मैं, कोमल बिछावनसे सुशोभित सुवर्णमय पलंगपर, श्रीप्राण प्यारेजूके सहित शयनकी हुई, चैतन्य-घनस्वरूप आपका, कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥ ४६७ ॥

श्रीपार्वतीब्रह्मसुतादिसेवितां वेधःसुपर्णध्वजशम्भुभाविताम् ।
अचिन्त्यशक्तिं सुविचित्रवैभवां श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ॥४६८॥

श्रीलक्ष्मीजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीसरस्वतीजी आदि महाशक्तियाँ, जिनकी सेवा कर रही हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिनकी भावना करते हैं तथा जिनकी शक्तिका चिन्तन श्रीप्राणप्यारेजूके लिये ही करनेको सुगम है, और जिनका गुण रूपादि वैभव अत्यन्त ही आश्चर्यमय है, उन श्रीस्वामिनी जूकी मैं शरण हूँ ॥४६८॥

सीरध्वजस्यात्मभवां भवापहामत्यन्तसौलभ्यगुणेन भूषिताम् ।
कारुण्यसौशील्यसहिष्णुताकृतिं श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ॥४६९॥

जो श्रीसीरध्वज महाराजकी पुत्री, भक्तोंके जन्म-मरणको हरण करनेवाली, अत्यन्त सौलभ्य गुणसे भूषित, करुणा, सुशीलता, सहिष्णुताकी मूर्त्ति हैं, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ॥४६९॥

तारप्रभावाम्बुजदीर्घलोचनां विम्बाधरोष्ठीं शुकतुण्डनासिकाम् ।
मनोहरां कोटिसुधाकराननां श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम्॥४७०॥

जिनके विशाल नेत्र भवसागरसे पार करनेवाले हैं, विम्बाफलके समान जिनके लाल अधर व ओठ हैं, नासिका शुकके समान है, करोड़ों चन्द्रमाओंके सदृश प्रकाशमान आह्लादकारक जिनका श्रीमुखारविन्द है, जो अपने नाम रूप लीला धामादि सभी अङ्गोंसे मनको हरण करनेवाली हैं, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ॥४७०॥

यैरादृता सर्वगतिः सदा शिवा ते वै कृतार्था मुनिभिश्च निश्चिताः ।
तां प्रेयसीं सर्व सुरेश्वरप्रभोः श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ॥४७१॥

सभीकी रक्षा करनेवाली उन सदा मङ्गल स्वरूपा श्रीकिशोरीजीका, जिन सौभाग्य शाली प्राणियोंने आदर किया है, वे मुनियोंकेद्वारा कृतार्थ निश्चित किये जाते हैं, सर्व सुरेशोंके प्रभुकी श्रीप्राणप्यारी, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें हूँ ॥४७१॥

नवारुणाम्भोजकरां शुचिस्मितामनन्तविद्युच्चयसन्निभप्रभाम् ।
सुशुक्तिकर्णां वरकुण्डलाञ्चितां श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ॥४७२॥

नवीन लाल कमलके समान जिनके हाथ हैं, पवित्र मुस्कान है, जिनके श्री अङ्गकी

कान्ति अनन्त बिजुलीके समूहों के समान है, सुन्दर सीपीके सदृश जिनके कान हैं, जो श्रेष्ठ कुण्डलोंसे सुशोभित हो रही हैं, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरण में हूँ ॥४७२॥

मोहान्धकारान्तकरीं यशस्विनीमगाधसौन्दर्यनिधिं वरप्रदाम् ।
अशेषकल्याणगुणैकसन्निधिं श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ॥४७३॥

जो मोहरूपी अन्धकारको दूर करनेवाली और यशरूपी धनसे पूर्ण सम्पन्न, तथा अथाह सौन्दर्य की सदा एक रस रहने वाली निधि, वर प्रदान करनेवाली, समस्त कल्याणकारक गुणोंकी समुद्र हैं, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें हूँ ॥४७३॥

न चास्ति भूता भविता न जातुचिद् गुणैः सभद्रैः किल यादृशी परा ।
तामार्द्रपङ्केरुहपत्रलोचनां श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ॥४७४॥

मङ्गलमय गुणोंकेद्वारा जिनकी समता करनेवाली, न कोई महाशक्ति है, न पूर्वमें हुई थी और न आगे कभी होवे गी ही, उन आर्द्र कमलदलके समान सुन्दर नेत्रवाली श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ॥४७४॥

मोदप्रदां भूमिसुतामयोनिजां तिरस्कृतानन्तरतिं परात्पराम् ।
माधुर्यवस्त्रां वरभूषणाञ्चितां श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ॥४७५॥

जो आनन्द प्रदान करनेवाली, भूमिकीपुत्री, किसीकी योनिसे न जन्म ग्रहण करनेवाली अपने छवि-माधुर्यसे अनन्त रतियोंका तिरस्कार करनेवाली, परात्परा (सबसे बढ़कर) माधुर्य रूपी वस्त्रको धारण किये हुई, उत्तम भूषणोंसे भूषित, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें हूँ ॥४७५॥

सा चारुकञ्जाभविशालनेत्रा मनोभिरामा भुवनैकवन्द्या ।
सर्वेश्वरी दिव्यविभूषणाढ्या श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४७६॥

जिनके नेत्र कमलके समान विशाल हैं, जो अपने सहज स्वभाव, गुण, रूप आदिसे सभीके मनको सुन्दर लग रही हैं तथा जो लोकमें सर्वश्रेष्ठ, वन्दनाके योग्य, सभीपर शासन करनेवाली, दिव्य भूषणोंसे भूषित हैं, वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षक बनें ॥४७६॥

'सी' वर्ण आह्लादकरो हि पूर्वो यस्याश्च नाम्नो भृशमार्पसूनोः ।
सा चन्द्रवृन्दायुतसुन्दरास्या श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४७७॥

जिनके नामके पूर्वका "सी" वर्ण श्रीप्राणप्यारेजूको अत्यन्त ही आह्लाद कारक है, वे अनन्त

पूर्ण चन्द्रके समान परम सुखद, शीतल, आह्लाद वर्द्धक प्रकाशमय मुखवाली श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करने वाली बनें ॥४७७॥

तावन्न लभ्यो रघुवंशनाथो यावन्न तुष्येज्जनकात्मजा सा ।
इत्यादिवाक्यैर्मुनिभिः स्तुता या श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४७८॥

जब तक श्रीजनकलड़ैतीजू प्रसन्न नहीं होती, तब तक रघुवंशके नाथ श्रीप्राणप्यारे सरकारजू, जीवको सुलभ होते ही नहीं, इस प्रकारके वचनों द्वारा जिनकी मुनिजन स्तुति करतेहैं, वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करने वाली बनें ॥४७८॥

गतिर्विना यां न च काऽपि लोके प्रोक्ताऽगतीनां क्वचिदेव सद्भिः ।
सा प्राणनाथाधिकपुण्यकीर्त्तिः श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४७९॥

सन्तोंके द्वारा किसीभी प्रसङ्गमें जिनके अतिरिक्त और कोई भी शक्तिमान् व शक्ति समस्त साधन हीन, पतित, दीन जनोंकी रक्षा करने वाली, कहीं भी नहीं कही गयी है, श्रीप्राणनाथजीसे अधिक पुण्यकीर्ति वाली वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करने वाली बनें ॥४७९॥

तिरस्कृताभा शतशो विधूनां यस्याश्च पादाब्जनखप्रभातः ।
सा दुर्विभाव्या मुनिहंसभाव्या श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४८०॥

जिनके श्रीचरण-कमलके नखकी प्रभासे, अनन्तब्रह्माण्डोंके सम्पूर्ण चन्द्रमाओंकी सामूहिक प्रभा, शतशः तिरस्कारको प्राप्त है, जो अत्यन्त कठिनतासे भावनामें आने योग्य, केवल हंसवृत्ति मुनियों के लिये ही भावना करनेमें सुलभ हैं, वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करने वाली बनें ॥४८०॥

रजस्तमः सत्वगुणैर्विहीना सतां गतिः सर्वहिता शरण्या ।
आह्लादिनी ब्रह्मपरं परेशा श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४८१॥

जो सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणोंसे परे, सन्तोंकी सर्वोपाय स्वरूपा, सभी चर-अचर प्राणियोंका हित करने वाली, तथा सभीकी रक्षा करनेको समर्थ, प्राणियोंको आह्लादयुक्त करने वाली हैं, ब्रह्मा, विष्णु महेशादि जिनके शासनको शिरोधार्य कर अपने २ कर्त्तव्य पालनमें तत्पर रहते हैं, वे परब्रह्मस्वरूपा श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करने वाली बनें ॥४८१॥

स्तुतिं न वै शक्ष्यति कोऽपि कर्तुं यथावदम्भोजमनोहराक्ष्याः ।
यस्या मनोवाग्दृगगोचरी सा श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४८२॥

जिन, कमलके समान मनोहरण लोचनावालीकी स्तुति वस्तुतः कोई कर ही नहीं सकता, क्योंकि

वे मन, वाणी, नेत्रोंके लिये अगोचर हैं अर्थात् उनके वास्तविक स्वरूपका न नेत्रदर्शन ही कर सकते हैं, न उसका वाणी वर्णन ही कर सकती है, वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करने वाली बनें ॥४८२॥

मेघाभगात्रांसधृतैकहस्ता रासेश्वरी ध्येयसरोजपादा ।
लावण्यवारांनिधिरप्रमेया श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४८३॥

मेघके समान जिनका, श्याम श्रीअङ्ग है उन श्रीप्राणप्यारेजूके कन्धे पर जो अपना एक हस्त-कमल रक्खे हुई हैं और जो रास यानी भगवदानन्दकी मालिकनी हैं, ध्यान करनेके लिये परम आवश्यक कमलके समान कोमल जिनके श्रीचरण हैं, जो लावण्यकी निधि और गुण, रूप, ऐश्वर्य आदि सभीमें अन्तसे परे हैं, वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करने वाली बनें ॥४८३॥

सीमा क्षमाया रघुनाथकान्ता भाव्या वरेण्या निलयः सुखानाम् ।
श्यामा शुभाङ्गी रुचिरस्मितास्या श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४८४॥

जो क्षमाकी सीमा और समस्त जीवोंके नाथ श्रीप्राणप्यारेजूकी प्राणवल्लभा, भावना करने योग्य सर्वश्रेष्ठ, समस्त सुखोंका निवास स्थान तथा किशोर अवस्था सम्पन्न, मङ्गलमय अङ्गवाली, तथा सुन्दर मुस्कान युक्त मुखचन्द्र वाली हैं, वे श्रीस्वामिनीजू अब कृपा करके मेरी रक्षा करें॥४८४॥

ताम्रारुणाब्जाङ्घ्रितला किशोरी मन्दीकृतानन्तसुधांशुपुञ्जा ।
कारुण्यरत्नैकनिधिः श्रियः श्रीः श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४८५॥

जिनके श्रीचरण कमलके तलवा ताम्रके सदृश लाल व कोमल हैं, जो किशोर अवस्थासे युक्त हैं और अपने श्रीमुखारविन्दकी कान्तिसे अनन्त चन्द्र समूहोंको जो मन्द (फीके) कर रही हैं तथा जो करुणारूपी रत्नकी निधि और शोभाकी भी शोभा हैं, वे श्रीस्वामिनीजू अपनी कृपाके द्वारा, अब मेरी रक्षा करें ॥४८५॥

रामाभिरामा श्रुतिवेद्यरूपा सर्वेश्वरी श्रीमिथिलोत्सवा हि ।
विद्युच्चयाङ्गी निमिवंशदीपा श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४८६॥

योगियोंके हृदयमें रमण करने वाले, श्रीप्राणप्यारेजूके हृदयमें जो भली प्रकारसे विहार कर रही हैं, वेदोंके द्वारा ही जिनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान प्राप्त हो सकता है, जो सर्वेश्वर प्रभुकी प्राणवल्लभा और श्रीमिथिलाजीकी उत्सव स्वरूपा हैं, जिनके श्रीअङ्ग बिजुलीके पुञ्जके समान कान्ति से युक्त हैं, जो निमिवंश रूपी भवनकी दीपकके सदृश शोभा बढ़ाने वाली हैं, वे श्रीस्वामिनी (श्रीसाकेतविहारिणी) जू अपनी कृपासे ही इस समय मेरी रक्षा करें ॥४८६॥

मन्दस्मिता मङ्गलमङ्गलाब्धिः पुण्यश्रवा सच्चरिताऽम्बुजाक्षी ।
वश्या श्रुतिज्ञा सरलस्वभावा श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४८७॥

जिनकी मन्द मन्द मुस्कान है, जो मङ्गलोंके भी मङ्गलकी समुद्र हैं, जिनकी लीला व गुणोंका श्रवण अत्यन्त पुण्यमय है, तथा जिनके चरित सब सत् हैं और जिनके नेत्र कमलके समान सुन्दर व विशाल हैं, जो भक्तोंके भाव द्वारा वशमें आनेको सरल हैं तथा जो चारों वेदोंको भली प्रकारसे जानती हैं, जिनका स्वभाव अत्यन्त सरल है, वे श्रीस्वामिनी (साकेताधीशप्राणवल्लभा) जू अब अपनी ही कृपासे मेरी रक्षा करें ॥४८७॥

प्रवालमुक्तामणिभूषणाढ्या सुचन्द्रिकाशोभितचारुभाला ।
सप्राणनाथा च सखीसहस्रैः श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४८८॥

जो मूँगा, मोती, मणियोंके भूषणोंसे युक्त हैं, जिनका मनोहर मस्तक सुन्दर चन्द्रिकासे सुशोभित है, अनन्त सखियोंसे युक्त व श्रीप्राणप्यारेजूके सहित वे श्रीस्वामिनीजू अपनी ही निर्हेतुकी कृपासे इस कठिन समयमें मेरी रक्षा करें ॥४८८॥

पञ्चाननाराधितपादपद्मा ब्रह्मांशिनी ब्रह्मपरं त्रिसत्या ।
निरञ्जनाऽऽनन्दमयी निरीहा श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात्॥४८९॥

भगवान् शङ्करजी जिनके श्रीचरण कमलोंकी आराधना करते हैं, जो ब्रह्मांशिनी (श्रीप्राणप्यारेजूकी भोग्य स्वरूपा, तथाउनके मनोभावको जानने वाली, उत्कृष्ट गुण सम्पन्ना) पर ब्रह्म स्वरूपा भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें सत्य, मायाजनित विकार रूपी कालिमासे रहित, आनन्दमय, अपने लिये किसी प्रकारकी चेष्टा न करने वाली हैं, वे श्रीस्वामिनीजू ! इस पतित अवस्थामें अपनी स्वाभाविक कृपासे ही मेरी रक्षा करें ॥४८९॥

नारायणी भक्तिमदिष्टदात्री सत्यस्वरूपा मृदुसर्वगात्री ।
कृपामृताम्भोधिरनादिराद्या श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४९०॥

जो ज्ञानका भवन और भक्तोंको मनोवाञ्छित प्रदान करने वाली हैं, तथा जिनका स्वरूप ब्रह्मसे अभिन्न अर्थात् ब्रह्म-स्वरूप ही है, जिनके सभी अङ्ग अत्यन्त कोमल हैं, कृपा रूपी अमृतका जो समुद्र, आदिरहित और सबसे श्रेष्ठ हैं, वे श्रीस्वामिनी (सर्वेश्वर प्राणवल्लभा श्रीमत्कनकविहारिणीजू) अपनी ही साधन अपेक्षा रहित कृपा द्वारा अब मेरी रक्षा करें ॥४९०॥

सितेन्दुवक्त्रा परिशुद्धभावा तुच्छीकृतानन्तरती रसज्ञा ।
दिव्याम्बरा दीनहिता शरण्या श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४६१॥

मन्द मुस्कान युक्त चन्द्रमाके समान जिनका आह्लाद प्रदायक श्रीमुखारविन्द है तथा जिनका भाव अत्यन्त शुद्ध (सर्व विकार रहित) है जो अपने सौन्दर्यसे अनन्त रतियोंको तुच्छ कर रही है, तथा सभी शान्त वात्सल्यादि रसोंको जो भली प्रकारसे जानती हैं, जिनके वस्त्र भी दिव्य हैं, जो समस्त साधनाभिमान रहित भक्तोंका विशेष हित करने वाली, एवं मच्छड़से ब्रह्मा पर्यन्तकी रक्षा नेको समर्थ हैं, वे श्रीस्वामिनीजू अपनी ही स्वभाव सिद्ध कृपासे मेरी अब रक्षा करें ॥४६१॥

शिरसि धेहि मे हस्तपङ्कजं सरसिजान्वितं शान्तिवर्द्धनम् ।
वरदवल्लभं दीनरञ्जनं करुणयाऽऽश्रितत्राणतत्परम् ॥४६२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो शान्तिकी वृद्धि करने वाला, वरद (अचय सुख शान्ति प्रदान करने वाले) श्रीप्राणप्यारेजीका अत्यन्त प्रिय, दीनजनोंको आनन्द प्रदान करने वाला है, तथा जो आश्रितोंकी रक्षा करनेके लिये तत्पर और कमलसे युक्त है, अपने उस शीतल, सुखद हस्तकमलको मेरे शिर पर करुणा पूर्वक रक्खें ॥४६२॥

मृदुवचोऽमृतं सर्वतापहं सुदुरितान्तकं प्रेष्ठजीवनम् ।
मुदमुदश्रयन्त्याशु वीक्ष्य मां सदयचक्षुषा पाययाद्य वै ॥४६३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! दया युक्त नेत्रोंसे देखकर आनन्दको भी आनन्द युक्त करती हुई सभी तापोंका हरण व सभी प्रकारके कष्टोंका अन्त करने वाले, श्रीप्राणप्यारेजूके जीवन स्वरूप अपने वचन-रूपी अमृतको, आप मुझे शीघ्र पिलाइये ॥४६३॥

अपि निजाधरोच्छिष्टमालदे ! सपदि दीयतां दीनवत्सले ! ।
निपतिता त्वहं त्वं सुपावनी कृपणतां गतायां कृपां कुरु ॥४६४॥

हे दीन वत्सले ! हे भक्तोंके लिये स्वयं अपनेको दे डालने वाली श्रीकिशोरीजी ! अब अपना अधरोच्छिष्ट प्रसाद शीघ्र प्रदान कीजिये । मैं अवश्य अत्यन्त पतित हूँ, परन्तु आप भली प्रकारसे पवित्र करने वाली भी तो हैं, अत एव मुझ दीनके प्रति कृपा करें ॥४६४॥

अयि कदा भवत्याः शुभानने दयितदत्तकर्पूरवीटिकाम् ...
प्रियवरोत्तमे मुष्टुवीटिकां नयनपङ्कजेऽहं समर्पये ॥४६५॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! जिसके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं और जो अत्यन्त ही परम प्यारा है तथा जो श्रीप्राणप्यारेजूके नेत्र रूपी चकोरोंको चन्द्रसमूहोंके समान परम सुख प्रदान करने वाला है, आपके उस श्रीमुखारविन्दमें कब मैं पानका बीरा प्रदान करूँगी ॥४६५॥

निजकरेण वै त्वत्पदाम्बुजं भजदभीष्टदं भूमिमङ्गलम् ।
अजरमापतित्र्यक्षभावितं गजगतिं कदाऽहं प्रपीडये ॥४६६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो भजन करने वालोंके सभी प्रकारके मनोरथोंको प्रदान करने वाला भूमिका मङ्गल स्वरूप है, ब्रह्मा, विष्णु महेश जिसकी भावना करते हैं, जिसकी चाल हाथीके समान मस्त है उन आपके श्रीचरण कमलोंकी सेवा, मैं अपने हाथोंसे कब करूँगी ? ॥४६६॥

स्वपिमि निर्भया त्वत्पदाश्रिता चपलबुद्धिरज्ञा निरङ्कुशा ।
अपि कदा त्वया सङ्गता सुखं कृपणवत्सले!ऽहं रमे चिरम् ॥४९७॥

साधनाभिमानशून्य जीवों पर वात्सल्य भाव रखने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! मैं मूर्खा, किसीके भी शासनमें न रहने वाली, चञ्चलबुद्धि, कब आपको प्राप्त होकर आपके श्रीचरण कमलोंकी आश्रित हुई, निर्भय सोऊँगी ? और कब आपको प्राप्त होकर अनन्तकाल तक सुखपूर्वक क्रीड़ा करूँगी॥४६७॥

कमललोचने ! किं वदामि ते मम हृदिस्थिता वेत्सि वै स्वयम् ।
मम गतिस्त्वमेका न चेतरा भ्रमितबुद्धिरस्मीह हे प्रिये ! ॥४९८॥

हे कमल लोचने श्रीकिशोरीजी ! आपसे क्या कहूँ ? क्योंकि आप मेरे हृदयमें स्थित हैं, अतः स्वयं सब जानती ही हैं। हे प्रियाजू ! मेरी बुद्धि भ्रममें पड़ी है, अतः इस समय आपही मेरी रक्षा करने वाली हैं, दूसरा कोई नहीं ॥४६८॥

जय दयानिधे ! कञ्जलोचने ! प्रियदृगुत्सवे ! सुस्मिताननने !
जय जयालियूथौघसेविते ! मयि कृपाकटाक्षं निपातय ॥४९९॥

हे प्राणप्यारेजीके नेत्रोंको उत्सवके सदृश विशेष सुख प्रदान करने वाली ! हे मन्द मुस्कानसे युक्त ! हे दयानिधे ! हे कमल लोचने ! आपकी जय हो ! हे सखियोंके यूथसमूहोंसे सेवित श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो, जय हो, अब अपना कृपा-कटाक्ष मेरे प्रति फेंकिये ॥४६६॥

समर्पितं फलं भूरिभूरिशः कमललोचने ! दुर्विधेर्वशात् ।
सुमुखि ! ते विसृष्टाङ्घ्रिसेवया मम महापराधं क्षमस्व तत् ॥५००॥

हे सुन्दर मुख वाली कमललोचना श्रीकिशोरीजी ! दुर्भाग्य वश मैं ने जो आपके श्रीचरण

कमलोंकी सेवा छोडी उसका फल मुझे व्याज सहित भर पेट प्राप्त होगया इसलिये सेवा छोडनेके मेरे इस महान् अपराधको आप क्षमा कीजिये ॥५००॥

कुरु कृपां कृपापूर्णलोचने ! शरणमाशु दास्या भवाधुना ।
चरणयोर्भवत्याः सहस्रशः परमभक्तितो मे नमस्कृतिः ॥५०१॥

हे कृपासे पूर्ण नेत्रवाली श्रीकिशोरीजी ! मेरे ऊपर कृपाकरें और कृपा करके मुझ दासीकी अब शीघ्र रक्षा कीजिये, एतदर्थ मैं आपके श्रीचरणकमलोंमें परम भक्ति पूर्वक हजारोंबार प्रणाम करती हूँ ॥५०१॥

नमोऽस्तु तस्यै मम कोटिकृत्वो गोपायितुं दुःखसमुद्रपातात् ।
चक्रे प्रयत्नं बहुकृत्व आर्या या प्रज्ञया नैकविधं स्वशक्त्या ॥५०२॥

जिन्होंने मुझे दुःख सागरमें गिरनेसे बचानेके लिये अपनी शक्ति व बुद्धिके अनुसार अनेकों उपाय किये, उन श्रेष्ठ स्वभाव युक्ता (श्रीश्रुतिरूपाजी) को मेरा कोटिशः नमस्कार है ॥५०२॥

तयाऽपि कारुण्यजुषाऽपराधः संमर्षणीयः श्रुतिरूपयाऽसौ ।
विधिर्बलीयान् न हि मेऽस्ति दोषो यः प्राक्षिपन्मां प्रसभं वनेऽस्मिन्॥५०३॥

वे श्रीश्रुतिरूपाजी भी मेरे उस आज्ञा न माननेके अपराधको अपने करुणापूर्ण स्वभावसे क्षमा करें, क्यों कि भाग्य ही बलवान् माना गया है, अतः मेरा कोई दोष नहीं। देखो मेरे उसी दुर्भाग्यने ही तो, मुझे बलपूर्वक इस संसार रूपी वनमें पटक दिया है ॥५०३॥

कुतो गता हन्त कृपास्वरूपा सखीप्रधाना मिथिलेशजायाः ।
परागतिर्मे हि ययाऽद्य दृष्टा व्यतीतशोका सुखिनी भवेयम् ॥५०४॥

हा मेरी जो परम रक्षा करनेवाली है, जिनकी दृष्टि होते ही मेरा सब शोक दूर हो जावेगा और मैं पूर्ण सुखी हो जाऊँगी वे श्रीमिथिलेशदुलारीजूकी मुख्यसखी श्रीकृपास्वरूपाजी कहाँ चली गयीं ? ॥५०४॥

हे प्राणनाथाम्बुजपत्रनेत्र ! दयानिधे ! कोशलराजसूनो !
कृपास्वरूपा क्व गता सखी वां तयोरुकार्यं बत वर्तते मे ॥५०५॥

हे कमलदल लोचन ! हे प्राणनाथ ! हे दयानिधे ! हे कोशलेन्द्र कुमारजू ! आप श्रीयुगलसरकारकी श्रीकृपारूपा सखीजी कहाँ चली गयीं ? उनसे मेरा बहुत बडा आवश्यक कार्य है ॥५०५॥

तामेव चेहाशु दिदृक्षुरस्मि तया विना मे नहि जातु शर्म ।
प्रसीद दास्यां प्रणतार्तिहारिन् सानुग्रहं सङ्गमयामुया माम् ॥५०६॥

हे भक्तोंके दुःखको हरण करने वाले ! हे नाथ ! दासी पर प्रसन्न होइये और कृपा पूर्वक उन "श्रीकृपारूपा" सखीजीसे मेरी भेंट करा दीजिये ॥५०६॥

प्रियालि ! यूथेश्वरि ! हे कृपालो ! हे शोभने ! चन्द्रकले ! बहुज्ञे !
कृपासखीं सङ्गमयाऽधुना मे प्रियां वयस्यां कृपयाऽऽत्मनो वै ॥५०७॥

हे श्रीप्रियाजूकी मुख्य सहेलीजू ! हे समस्त यूथोंकी स्वामिनीजू ! हे कृपावतीजू ! हे शोभनेजू हे अनन्त ज्ञान सम्पन्नेजू ! इस समय कृपा करके अपनी प्यारी सखी श्रीकृपास्वरूपाजूसे मेरी भेंट करा दीजिये ॥५०७॥

हे चारुशीले ! सदये ! शरण्ये ! हे लक्ष्मणे ! हे विमलोर्मिले च ।
हे पद्मगन्धे ! रतिवर्द्धिनीशे ! चेमे ! च हेमे ! सुभगे ! मनोज्ञे ! ॥५०८॥

हे दयासे युक्ते, शरणमें आये हुये की रक्षा करनेको समर्थ श्रीचारुशीलेजू ! हे श्रीलक्ष्मणेजू ! हे श्रीविमला व ऊर्मिलाजू ! श्रीपद्मगन्धेजू ! हे श्रीरतिवर्द्धिनी व ईशाजू ! हे श्रीक्षेमेजू ! हे श्रीहेमेजू ! हे श्रीसुभगेजू ! हे श्रीमनोज्ञेजू ! ॥५०८॥

हेऽशेषसख्यो मम पूज्यपादा ! नमोऽस्तु वः कोटिसहस्रकृत्वः ।
कृपास्वरूपां वदताशु मह्यं यथातथं दुर्लभदर्शनां ताम् ॥ ५०९ ॥

हे मेरे द्वारा पूजने योग्य श्रीचरण कमलवाली समस्त सखियो ! आप लोगोंको मैं करोड़ों हजार बार नमस्कार करती हूँ आप लोग जिस प्रकार हो, उस प्रकारसे जिनका दर्शन हमें दुर्लभ है, उन श्रीकृपारूपा सखीजीको हमें बतला दीजिये ॥ ५०९ ॥

एवं तु सम्प्रार्थ्य सखीः समस्ताः प्राणप्रियौ दीनगिरा स्वशक्त्या ।
वक्तुं न किञ्चिद्वचनं च भूयो शशाक सा वै विरहाग्नितापात् ॥५१०॥

इति द्वाविंशोऽध्यायः ।

—: इति पारायण ६ समाप्त :—

भगवान् शङ्करजी बोले:-हे पार्वतीजी ! इस प्रकारसे वह जीवा नाम्नी सखी सखियोंसे तथा अपने प्राणप्यारे श्रीयुगल सरकारसे अपनी शक्तिके अनुसार, दीन वाणीसे प्रार्थना करके, विरह रूपी अग्निके विशेष तापके कारण, पुनः कुछ भी बोलनेको समर्थ न हो सकी ॥५१०॥

अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥

जीवा सखीका उद्धार।

श्रीशिव उवाच।

निशम्य तत्प्रेमजलाप्लुतेक्षणौ प्रियाप्रियौ सादरमीप्सितार्थदौ ।
वियोगतप्तार्त्तविलापसङ्ग्रहं बभूवतुर्विस्मितमानसौ क्षणम् ॥१॥

भगवान् शिवजी बोलेः-हे प्रिये ! वियोगसे तपी हुई जीवा सखीके उस आर्तविलाप संग्रहको बड़े आदर पूर्वक श्रवण करके, मनोवाञ्छित प्रदान करने वाले श्रीप्रियाप्रियतम श्रीसीतारामजी महाराजके कमलके समान विशाल व मनहरण नेत्रोंमें, प्रेमका जल भर आया और क्षणमात्रके लिये उन दोनों सरकारका मन आश्चर्यन्वित हो गया ॥१॥

प्रियं तदाऽपृच्छदमेयसत्कृपा समातुरा श्रीः करुणाप्लुताशया ।
श्रीमैथिली दाशरथिं सखीगणे शरत्सुधांशुप्रतिमप्रियानना ॥२॥

जिनकी कृपाका थाह (अन्त) नहीं लगाया जा सकता, जिनका श्रीमुखारविन्द शरद ऋतुके पूर्ण चन्द्रके समान सुन्दर, आह्लाद वर्धक और प्रकाशमय है, उन श्रीमिथिलेश-नन्दिनीजूका हृदय करुणा रससे डूब गया, अतः वे घबड़ाकर सखियोंके बीचमें दशरथनन्दन श्रीप्राणप्यारेजूसे पूछने लगीं ॥२॥

श्रीसीतोवाच।

हे प्रेष्ठ ! कस्या नु वियोगगाथा ? कुतस्त्वियं हन्त समागता च ? ।
तद्वेदितुं क्षिप्रतया समीहे तां द्रष्टुकामा व्यथिताशयाऽस्मि ॥३॥

हे प्राणवल्लभजू ! यह किसके वियोगकी गाथा है ? और कहाँसे आई है ? सो मैं शीघ्र जानना चाहती हूँ, मेरा हृदय उसके देखनेकी इच्छासे व्याकुल हो रहा है ॥३॥

यावन्न पश्यामि निजां वयस्यां दुःखाभिभूतां शरदिन्दुवक्त्राम् ।
तावत्क्षणार्द्धं मम तद्वियोगात् कल्पायते दुःखतरं दयार्द्र ! ॥४॥

हे दयासे द्रवित श्रीप्राणप्यारेजू ! जब तक मैं दुःखोंसे अधीर हुई उस अपनी शरद ऋतुके

चन्द्रमाके समान मुख वाली सखीका दर्शन नहीं करूँगी, तब तक उसके वियोगके कारण मुझे आधा क्षणका समय भी कल्पके समान अत्यन्त दुःखमद प्रतीत हो रहा है ॥४॥

श्रीशिव उवाच।

कान्तां समाश्वास्य रघुप्रवीरः पप्रच्छ सर्वाः कमलायताक्षीः।
कया प्रयुक्तेयमशातगाथा ? कुतः प्रविष्टा श्रुतिमार्गमाल्यः ? ॥५॥

भगवान् शङ्करजी बोले ! हे पार्वती ! इस प्रकारसे श्रीकिशोरीजीके व्याकुल हो जानेपर, सरकार उन्हें आश्वासन देकर अपनी कमल-लोचना सभी सखियोंसे बोले:–हे समस्त सखियो ! इस दुःख पूर्णगाथाका प्रयोग किस सखीने किया है ? और कहाँसे यह दुःखमयी गाथा श्रवण मार्गमें प्रविष्ट हुई है अर्थात् सुनाई पड़ी है ? ॥५॥

ब्रूयाद्रहस्यं परिवेत्ति येदं ममाज्ञयोत्थाय चिरान्न विज्ञा।
जिज्ञासया शोकसमुद्रमग्ना प्राणप्रिया यन्मृगशावकाक्षी ॥६॥

जो विशिष्ट ज्ञान सम्पन्ना सखी, इस रहस्यको भली प्रकारसे जानती हो, वह मेरी आज्ञासे उठकर तत्क्षण निवेदन करे, क्योंकि इस रहस्यको जाननेकी इच्छासे मृगशावक लोचना श्रीप्रियाजी, शोक रूपी समुद्रमें डूब गयी हैं ॥६॥

तासां समुत्थाय निबद्धपाणिः श्रुतिस्वरूपाऽऽलिवरा तदानीम्।
प्रणम्य पादौ प्रिययोर्मनोज्ञौ प्रचक्रमे वक्तुमुदारबुद्धिः ॥७॥

भगवान् शङ्करजी बोले हे पार्वती ! श्रीप्राणप्रियतमजूके उस आदेशको सुनकर तथा श्रीकिशोरी जी की उस भक्त विरह दशाको देखकर, उन सखियोंमसे सखी-श्रेष्ठा, श्रीश्रुति रूपा सखी उठी और दोनो सरकारके मनहरण, श्रीचरण कमलोंको नमस्कार करके, हाथ जोड़े हुई, उस रहस्यको कहना प्रारम्भ किया ॥७॥

श्रीश्रुतिरूपोवाच।

नाज्ञातमम्भोरुहपत्रनेत्र ! किञ्चिद्युवाभ्यां खलु विद्यतेऽत्र।
तथापि वक्ष्ये भवतो निदेशाज्जानामि यद् वां चरणैकदासी ॥८॥

हे कमलदल-लोचन प्यारे ! यद्यपि आप दोनों सरकारसे कुछ छिपाहुआ नहीं है, फिर भी मैं आप दोनों सरकारके श्रीचरण कमलोंकी दासी हूँ, अतः आपकी आज्ञानुसार इस रहस्यके विषयमें जो मैं जानती हूँ, वह आपसे निवेदन कर रही हूँ ॥८॥

सकाशतो वां पुलिनात्सरय्वा विहाय सेवां भवतोः प्रयाता।
जीवस्वरूपा विरजाप्रदेशं दिदृक्षया मन्दमतिः कुभाग्यात् ॥९॥

हे प्यारे! श्रीसरयूजीके किनारे से ही आप दोनों सरकारकी सेवा छोड़कर आप श्रीयुगल सरकारके पाससे मन्दमति, जीवरूपा सखी दुर्भाग्य वश, श्रीविरजाजीके किनारेका प्रदेश देखनेकी इच्छासे वहाँ चली गयी ॥९॥

निवार्यमाणाऽपि हठात्सखी सा यदा प्रतस्थे विरजां दिदृक्षुः।
कृपास्वरूपाऽऽलिवरा तदानीमुवाच मां वाक्यमिदं महार्थम् ॥१०॥

उसे विरजाजीके किनारे जानेसे बहुत कुछ रोका गया, परन्तु जब हठ करके विरजाजीका दर्शन करनेके लिये उसने प्रस्थानकर ही दिया, तब सखियोंमें प्रधान श्रीकृपारूपाजी महान् अर्थ से युक्त, मुझसे यह वचन बोलीं ॥ १० ॥

श्रीकृपारूपोवाच।

इयं हि दुर्भाग्यविनष्टबुद्धिर्नैवात्मनो वेत्ति हिताहिते च।
विसृज्य सेवां द्रुहिणाद्यलभ्यां दिदृक्षयाऽन्यद्धठसंपरीता ॥११॥

हे श्रुतिरूपे! इस जीवा सखीकी बुद्धिको इसके दुर्भाग्यने नष्ट कर दिया है, अत एव यह अपना हित, अहित कुछ भी नहीं समझती, एतदर्थ ब्रह्मादि देवोंके लिये भी न प्राप्त होने योग्य, श्रीयुगल सरकारकी सेवाको छोड़कर श्रीविरजाजीका तट देखनेके लिये हठकर रही है ॥११॥

अतस्तु भद्रे! क्रियतां प्रयाणं सहानयैकाकृतितस्त्वयाऽपि।
यत्नैरनेकैरवबोधनीया संरक्षणीया हि तमःप्रवेशात् ॥ १२ ॥

अत एव हे कल्याणस्वरूपे! तुम एक रूपसे इसके साथही साथ प्रस्थान करो और अनेक उपायोंसे इसे कर्त्तव्यका ज्ञान कराओ तथा अज्ञान रूपी अन्धकार मय भवाटवीमें जानेसे इसकी रक्षाकरो अर्थात् जिस संसार रूपी वनमें पहुँचते ही अपने स्वरूपका ज्ञान ही नष्ट हो जाता है, उसमें जानेसे इसे सब प्रकारसे बचाओ ॥१२॥

यथा तथा विज्ञतया विहारिणोरुपस्थितेयं पुनरेव कार्या।
आनीय चैवाभिमुखे भवत्या निदेशमेतं शृणु मे प्रयाहि ॥१३॥

हे श्रुति रूपे! मेरी आज्ञाको सुनो—इस जीवा सखीके साथ जाओ, और अपनी चतुराईसे जैसे बनें, इसे श्रीयुगल सरकारके सम्मुख लाकर उनकी सेवामें पुनः उपस्थित करो ॥ १३ ॥

तयेत्यमुक्ता विमनायिताऽहं दृष्ट्वाऽनुरोधं सुभृशं च तस्याः ।
आज्ञावशात्तान्वगमं हि जीवां पराङ्मुखीं स्वामिनि ! दीनबन्धो ! ॥१४॥

हे श्रीस्वामिनिजू ! हे श्रीदीनबन्धुजू ! जीवा सखीका अत्यन्त हठ देखकर, मैं भी उससे खिन्न गयी थी, परन्तु श्रीकृपारूपा सखीजीकी आज्ञासे मन मारकर, आप श्रीयुगलसरकारसे विमुख हुई उन जीवा सखीके, मैं पीछे-पीछे चल पड़ी ॥१४॥

सा जीवरूपोपवनं निरीक्ष्य जहर्ष मन्दा विरजातटस्थम् ।
उपेक्षमाणा विचचार मां सा सचित्सुखानन्दमयं मनोज्ञम् ॥१५॥

हे श्रीयुगलसरकारजू ! मैं उसके पीछे पीछे चल रही थी, परन्तु वह मेरी ओर देखती भी न थी । जब वह श्रीविरजाजीके किनारे पहुँची, तो उनके किनारेके सत्, चित् सुखानन्द(भगवदानन्द) मय, मनोहर, उपवनको देखकर बड़ी प्रसन्न हुई और उसमें विचरने लगी ॥ १५ ॥

अभ्येत्य कूलं विरजोत्तरं सा पुनः स्थिता हर्षयुता मृगाक्षी ।
अम्भस्तरङ्गानवलोकयन्ती याम्यतटस्योपवनं ददर्श ॥ १६ ॥

पुनः वह मृगके समान चञ्चल नेत्रवाली जीवा सखी, श्रीविरजाजीके उत्तरी किनारे पर खड़ी होकर, जलकी तरङ्गोंको बड़े हर्ष पूर्वक देखती हुई, उनके दक्षिणी किनारेके उपवनको देखा॥१६॥

तद्द्रष्टुकामा प्रबभूव सद्यः पुनः प्रवेष्टुं स्वमनश्चकार ।
तदीयमुद्योगममुं निरीक्ष्य मया यदुक्तं शृणु तद्वचो मे ॥१७॥

तत्क्षण श्रीविरजाजीके उस दक्षिणी किनारेके उपवनको देखनेकी, उनके हृदय से प्रबल इच्छा उदय हो गयी, अतः वह उसमें प्रवेश करनेके लिये मानसिक सङ्कल्प करने लगी, तब उसका यह उद्योग देखकर, जो कुछ मैंने उससे कहा, हे मन हरण सरकार ! उसे आप श्रवण करें ॥१७॥

हे जीवरूपे ! किमिदं त्वयेप्सितं करोषि किं कुत्र समागताऽधुना ।
प्राणप्रियाप्राणपरप्रियौ कथं विस्मृत्य हन्ताद्य सुखेन वर्तसे ॥१८॥

मैंने कहा:-हे जीव रूपे ! आपने यह क्या मनमें विचारा है ? और आप यह क्या करती हैं ! तथा इस समय आप कहाँ आई हैं ? बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि, प्राणोंके समान परम प्यारे श्रीयुगल सरकारको भुलाकर आज आप सुखी होती हैं ! ॥१८॥

भाव्यं हि किं ते नहि युज्यते मया दृष्ट्वा दशां ते चलितं हि मे मनः ।
निषिद्ध्यमानाऽपि मया महत्तया निवर्तसे नो यतसे दुराग्रहात् ॥ १९ ॥

हे जीव रूपे ! मैं हजारों प्रकारसे मनाकर चुकी, परन्तु तुम अपने खोटे हठसे निवृत्त नहीं हो रही हो, अतएव मेरी समझमें नहीं आताकि न जाने तुम्हारे लिये क्या (अचिन्तनीय महान् दुःख) होनहार है ? हाय तेरी इस विपरीत अवस्थाको देखकर मेरे मनको बड़ा आश्चर्य हो रहा है ॥१९॥

प्रवेष्टुकामाऽसि च यत्र भूयस्तमोमयीं विद्धि भवाटवीं ताम् ।
प्रविश्य यां नो सुखमेति कश्चिन्न चाशु वै निष्क्रमणं हि यस्याः ॥२०॥

हे जीव रूपे ! अब आप पुनः जिसमें प्रवेश करनेकी इच्छा कर रही हैं, वह इस किनारे जैसा उपवन नहीं है, उसे तुम अन्धकार (अज्ञान) मय भवाटवी (संसार रूपी वन) जानो, वह भवाटवी कैसी है ? जिसमें प्रवेश करके कोई भी सुखी नहीं हुआ। यदि कहोकि सुख न पाने पर हम वहाँसे लौट आवेंगी, अतः वहाँ जानेमें क्या हानि है ? तो यह तुम्हारा विचार कल्याणकारी न होगा, क्योंकि उस भवाटवीमें पहुँच जाने पर, उससे शीघ्र निकलना नहीं होता, ऐसा निश्चय है। अत एव श्रीविरजाजीके दक्षिणी तटको, जिसे आप अभी उपवन समझ रही हैं, उसे भवाटवी (संसार रूपी वन) समझ करके वहाँ जानेका सङ्कल्प छोड़कर श्रीयुगल सरकारकी सेवामें लौट चलें ॥२०॥

इत्थं मया वै परिबोध्यमाना सा मामनादृत्य च सानुरोधम् ।
उल्लङ्घ्य तूर्णं विरजां विवेश तमोमयीं सूपवनं विचार्य ॥२१॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! इस प्रकारसे मेरे समझाते हुये, वह जीवा सखी मेरा निरादर करके, हठ पूर्वक तत्वण विरजाजीको पार करके उनके, दक्षिणी किनारे पर स्थित भवाटवीमें, जिसमें एक अज्ञान ही प्रधान है, उसे श्रीविरजाजीके उत्तरी किनारे परके अप्राकृत (दिव्य) उपवनसे भी सुन्दर विचार करके, प्रवेश कर गयी ॥२१॥

तद्व्याघ्रसिंहकिरिभल्लतरक्षुखड्गजम्बूकशल्यवृककासरनागसर्पैः ।
संसेवितं च परितः प्रसमीक्ष्य बाला त्यक्त्वाऽऽत्महर्षमधिकं भयमाससाद ॥२२॥

हे प्यारे ! जब वह श्रीविरजाजीके दक्षिणी किनारे पर पहुँची और जिसके सम्बन्धमें उत्तरी किनारेसे भी श्रेष्ठ उपवनका वह अनुमान कर रही थी, उसे व्याघ्र, सिंह, सूकर, भालू, चीता, गैंडा, सियार, स्याही, भेड़िया, भैंसा, हाथी और सर्पोंसे सब ओर सेवित देखकर, उस (दक्षिणी किनारे पर) आने का जो हृदयमें हर्ष था, उसे परित्याग कर अत्यन्त भय को प्राप्त हो गयी ॥२२॥

भयावहं तत्प्रसमीक्ष्य काननं ततो विनिर्गन्तुमियेष तत्क्षणम् ।
तिस्रो मया पद्धतयो विनिर्मितास्तथापि रेमे वन एव तत्र सा ॥२३॥

हे प्यारे ! जब उसने उस वन को भयंकर देखा, तो उसी समय वहाँ से निकलना चाहा, तब मैंने अवसर देखकर तीन सुन्दर और सुगम राज मार्ग बना कर उसे दिखला दिये, परन्तु वह जीवा सखी उन तीनों को छोड़कर, उस अन्धकार मय वनमें ही भटकने लगी ॥२३॥

मोघं निरीक्ष्य निजकर्म मया तदानीं शाखाशतानि विहितानि पुनश्च तेषाम्।
नाङ्गीचकार दुरदृष्टतया विमूढ़ा सा पूर्णचन्द्रमुखि! नैकमपि भ्रमन्ती॥२४॥

हे पूर्णचन्द्र, मुखी श्रीस्वामिनीजू ! जब मैंने अपना यह कार्य भी निष्फल देखा, तब उन तीनों मार्गोंमें प्रत्येक की सैकड़ों सुन्दर शाखायें बना डालीं, जिससे यह इनमें से भी किसी एक पर यदि चलने लगे तो, उसीके द्वारा इस जीवा सखीको राज मार्ग पर लाकर भवाटवीसे पार करके मैं सेवा में ले चलूं, परन्तु दुर्भाग्यने उसकी मति हर ली, अत एव उसने उन मार्गों में से एक को भी नहीं अपना कर उसी वनमें भटकने लगी ॥२४॥

अग्रे पुनः समधिगम्य विमूढकृत्या सिंहादिजन्तुपरिजुष्टगुहासमूहम् ।
दुष्पारमेव समवेक्ष्य भयातिखिन्ना शैलत्रयं भयदमुच्चतरं विशालम् ॥२५॥

फिर जब वह आगे बढ़ी तो सिंह आदि हिंसक जीवोंसे युक्त जिनमें गुफायें थीं, इस तरहके भय दायक बड़े बड़े अत्यन्त ऊँचे २ तीन पहाड़ मिले। जिन्हें पार करना अतिशय कठिन देखकर जीवा सखी भयसे अति खिन्न हो गयी अतः उसे अपनी रक्षाके लिये कोईभी रास्ता नहीं मिला २५

गर्त्तं विबुध्य निपपात भियाऽन्धकूपे त्रातारमेव कमपीह न वीक्षमाणा ।
दृष्ट्वाऽथ ऊर्ध्ववदनाजगरं च तस्मिन्नाशां जहौ कमललोचन! जीवितस्य २६

हे कमललोचन ! प्राणप्यारेजू ! जब उसने देखा कि मेरी रक्षा करने वाला यहाँ कोई भी नहीं है, तो वह घबड़ाकर उन सिंह आदि हिंसक जीवों की दृष्टिसे अपनेको बचानेके लिये पासमें स्थित अँधेरे कुयें को गड्ढा समझकर उसमें गिर पड़ी। गिरते हुये उसने जब उस अँधेरे कुयेंके नीचे, ऊपर मुख किये हुये अजगर सर्पको बैठे देखा, तब अपने जीवनकी आशा छोड़दी ॥२६॥

पाणाववाप्य तृणपुञ्जमसौ च दिष्ट्या मृत्योर्भयं हृदयतस्तत उज्जहार ।
आलोक्य तर्हि निलयं मधुमक्षिकानां क्षुत्संयुता करमदाद्ग्रहणाय तस्मिन्॥२७॥

हे श्री युगल सरकार ! संयोग वश उस अँधेरे कुयेंमें कुछ तृण पुञ्ज जीवा सखीके हाथ लग गये, जिनकी आड रहनेके कारण वह कूप प्रतीत नहीं होता था उनकी प्राप्तिसे उसने मृत्युका भय, तत्कालके लिये अपने हृदयसे निकालही दिया, क्योंकि उसे यह विश्वास आगया, कि जब तक इन तृण समूहों को मैं हाथमें पकड़े रहूंगी तब तक न नीचे गिरूंगी और न मुझे अजगर निगल ही सकेगा। मृत्युका भय हटतेही उसे क्षुधा (भूख) ने आसताया, अतः उस समय उसने कुयेंमें मधुमक्खियोंका घर (छत्ता) देख कर अपनी क्षुधा निवृत्तिके लिये, उसकी प्राप्ति हेतु अपना एक हाथ, उसमें दे दिया ॥२७॥

सर्वा ददंशुरभितः किल जातरोषाः पीडामवाप परमां न च मृत्युमेकम् ।
सञ्ज्ञामवाप्य च पुनः करजाग्रलग्नं किञ्चिल्लिलेह मधु शर्म च तेन साऽऽर्च्छत् २८

हाथ देतेही छत्तामें बैठी हुई वे सभी मधुमक्खियाँ क्रुद्ध होकर सब ओरसे जीवा सखीको काटने लगीं। जिससे एक मृत्युही उसकी नहीं हुई, परन्तु उससे उसको जो पीडा हुई, वह मृत्युसे किञ्चित्भी कमी नहीं थी। कुछ देरके बाद पीडा कम हो जाने पर जब उसे होश आया, तब अपने नखमें किञ्चित् लगे हुए मधुको उसने चाटा, जिसकी मिठासका आस्वादन कर उसे कुछ सुख प्राप्त हुआ ॥ २८ ॥

लब्धा मया परमदारुणवेदनाऽपि कामं तथापि मधु मिष्टतमं विभाति ।
इत्थं विचार्य पुनरेव ददौ स्वपाणिं प्राक्कष्टमेत्य मधुशातमवाप तावत् ॥२९॥

हे श्रीयुगलसरकारजी ! जीवा सखी, नखके अग्र भागमें लगे हुये उस मधुको जिह्वासे चाट कर विचारने लगी-अहो ! मुझे इसके लोभसे कष्टतो बहुतही उठाना, पड़ा परन्तु मधुभी बहुत मीठा प्रतीत होता है। ऐसा विचार करके मिठासके लोभसे फिर उसने अपना हाथ छत्तामेंदे दिया। मधु मक्खियोंनेभी फिर अपने छत्तेसे निकलकर उसे खूब काटा। जीवा सखी तृणोंको एक हाथसे पकड़े हुई मारे छटपटाहटके नॉच रही थी पर अजगरके भयसे उन तृणोंका अवलम्बभी नहीं छोड़ती थी। कुछ समयके बाद जब कष्ट कम हुआ, तो उसने अपने नखोंके अग्रभागमें लगे हुये उस किञ्चित् मधुको पुनः चाटा और मिठासका पुनः प्राप्त किया ॥ २९ ॥

तथातितुच्छसुखलब्धिसतृष्णचित्ता सेहेऽल्पकष्टमधुना न हि वारिजाक्ष !
लब्धा न योनिरुत भावनया तया का स्वल्पावकाश इह पादमुपेत्य गन्त्र्या ३०

हे कमल-नयन- श्रीप्राणप्यारेजू ! इस प्रकारसे उस मूर्खा: जीवा सखीने मधु-मिठासके अत्यन्त तुच्छ सुखकी प्राप्तिकी तृष्णासे थोड़ा नहीं अपितु- अवर्णनीय अतिशय, कष्टको सहन किया है और इतने थोड़ेसे ही समयमें उसने अपनी भावनाके द्वारा कौनसी योनि नहीं प्राप्तकी अर्थात् चौरासी लाख योनियोंका भी भोग भोग लिया है ॥३०॥

कास्मि क काऽस्मि किमिहास्ति मया हि कार्यं विज्ञातुमेतदवलोक्य न चापि शक्ताम्।
सर्वेश्वरी ! निखिलदेहभृतां शरण्यो ! तस्यै विवेकममलं प्रददौ कृपाली ॥३१॥

हे सभी चर-अचर प्राणियोंका शासन करने वाले तथा समस्त प्राणियोंकी रक्षा करने को समर्थ, हे श्रीयुगलसरकारजू ! जब श्री कृपा रूपा सखीजीने देखा, कि अब जीवा सखीमें; "मैं पहले कहाँ थी ? अब कहाँ हूँ ? तब कौन थी ? अब कौन हूँ ? क्या मुझे करना आवश्यक है ?" इतना भी जाननेकी शक्ति नहीं रह गयी है, तब उसने जीवा सखीको दिव्य ज्ञान प्रदान किया ॥३१॥

तस्मात्स्मृतिं! व्यपगतां पुनराप्य जीवा संसारदुःखशिखिनोः समवाप्तये वाम् ।
संस्तौति पद्मनयने! सदये! विरज्य ! ह्युद्धारमाप्तुमधुनाऽर्हति सा युवाभ्याम्॥३२॥

उस दिव्य ज्ञानकी प्राप्तिसे उसे, जो सुख भूल गया था, वह सब स्मरण आगया और वहाँके सुखोंको दुःखमय समझकर उनसे अपनी आसक्ति हटाकर, संसार (जन्म-मरण) के समस्त दुःखोंको भस्मसात् करने वाले आप दोनों सरकारकी प्राप्तिके लिये स्तुति कर रही है। हे दया युक्ते ! हे कमललोचने श्रीकिशोरीजू ! आप दोनों सरकारके द्वारा, अब वह, उद्धारही पानेके योग्य है॥३२॥

ज्ञातं मया यदपि तत्सकलं किलोक्तं संपृष्टया कमललोचन ! आर्तबन्धो !
स्वीकार्य एष विनयो मम चोचितश्चेज्जीवैतु पादसरसीरुहदर्शनं वाम् ॥३३॥

हे कमललोचने श्रीकिशोरीजी ! हे आर्तबन्धो ! श्रीप्राणप्यारेजू ! जो कुछ मुझे इस अदय वाणीका रहस्य ज्ञात था, वह प्रश्नानुसार मैंने सब निवेदन कर दिया, अब जीवा सखी, आप श्रीयुगल सरकारके श्रीचरण कमलोंको प्राप्त होवे, यदि मेरी यह विनय अनुचित न हो, तो इसे अवश्य स्वीकार करें ॥३३॥

श्रीशिवउवाच ।

इत्थं निशम्य वचनं सकृपं मनोज्ञं पुत्री जगाद मिथिलाधिपनायकस्य ।
संवीतशोकहृदया श्रुतिमाप्रशस्य जीवाहिते सुनिरतां स्वकृपां निशम्य ॥३४॥

इस प्रकार श्रीश्रुतिरूपाजीके दया युक्त एवं मन-मोहक वचनको सुनकर और अपनी कृपा

सखीको जीवा सखीके हित साधनमें तत्पर जानकर भक्तके चिन्ताजन्य शोकसे रहित हो श्रीमिथिलाधिपतिजूकी ललीजूने श्रीश्रुतिरूपाजीकी प्रशंसाकी और उनसे बोलीं ॥ ३४ ॥

श्रीसीतोवाच।

हे ! आलि ! यर्हि कृपया मम चास्ति दृष्टा जीवासखी त्वरितमेव तमो निरस्य।
एत्येव नात्र भविता किल तद्विलम्बः सर्वं भविष्यति भवद्विनयानुसारम् ॥३५॥

हे सखी ! जब मेरी कृपा रूपा सखीकी दृष्टि उसपर हा चुकी है, तो वह जीवा सखी शीघ्रही संसार, रूपी अन्धार मय वनको परित्याग कर, मेरे पास आती ही है उसे आनेमें अब विलम्ब नहीं होगा, जैसा तुम उसके निमित्त मेरे चरणोंके दर्शनार्थ प्रार्थना कर रही हो, उसे वैसा ही होगा ३५

श्रीशिव उवाच।

इत्थं तस्यां वदन्त्यामभयदवचनं भावसन्तोषितायां
कूपान्निःसारिता सा श्रुतिकृतसुपथा जीवरूपा तदानीम्।
आनन्दाम्भोधिमग्ना त्वरितममलधी रत्नसिंहासने वै
प्राणेशौ प्राणतुल्यौ द्विजपतिवदनौ प्राप्य दृष्ट्वा नमन्ती ॥३६॥

इति त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।

भगवान शिवजी बोले:-हे पार्वति ! जीवा सखीके भावसे सन्तुष्ट हुई श्रीकिशोरीजीके, इस प्रकार अभय प्रदान करने वाले वचनोंको कहते ही, श्रीकृपारूपा सखीजीने, उधर जीवा सखीका हाथ पकड़ कर, उसे उस तृणाच्छादित कुएँ से निकालकरके श्रुतिरूपा सखीके बनाये हुवे प्रधान तीन मार्गोंमेंसे एक भक्तिमार्ग पर चलनेका आदेश कर दिया, अतः वह उस मार्गसे श्रीरत्नसिंहासन नामके भवनमें पूर्ण चन्द्रके समान परम प्रकाशमय, आह्लादवर्द्धक श्रीमुखारविन्दवाले, प्राणोंके तुल्य प्रिय, अपने प्राणनाथ श्रीयुगल सरकार (श्रीसीतारामजी) को प्राप्त होकर उनके श्रीचरण-कमलोंको प्रणाम करती हुई, वह सखियोंको दिखाई पड़ी, किन्तु किस पथ ? किस ओरसे ? किस प्रकारसे वह वहाँ पहुँची ? यह किसीको नहीं ज्ञात हो सका ॥३६॥

अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

जीवा-सखीके द्वारा भाव-पुष्पाञ्जलि-समर्पण तथा श्रीयुगल सरकारका ब्याल व शृङ्गार कुञ्ज-प्रस्थान।

श्रीशिव उवाच।

जीवस्वरूपाऽथ कृपाप्रसादाच्छ्रीरत्नसिंहासनमुख्यगेहे।
श्रीमैथिलीराघवयोः सकाशं गत्वा बभूवाशु निरस्तशोका ॥१॥

भगवान् शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! श्रीकृपारूपासखीजीकी दयासे श्रीरत्नसिंहासन नामक भवनमें श्रीमिथिलेशनन्दिनी व श्रीरघुनन्दनजूकी पुनः समीपता प्राप्त करके वह जीवा सखी शोक रहित होगयी ॥१॥

विलोक्य कामं नयनाभिरामौ चकार भक्त्या प्रणतिं पदाब्जे ।
नेत्राम्बुभिर्युग्मसरोजपादौ प्रक्षाल्य गाढं हृदये दधार ॥२॥

नेत्रोंको परम सुन्दर लगनेवाले उन श्रीयुगल सरकारका, अपनी इच्छानुसार दर्शन करके, बड़े प्रेम पूर्वक उनके श्रीचरणकमलमें, उस जीवा सखीने प्रणाम किया, पुनः अपने आँसुओंसे श्रीयुगल सरकारके चरणकमलोंको धोकर हृदय पर दबाकर रख लिया ॥२॥

सा भावपुष्पाञ्जलिमूरुभक्त्या प्राणप्रियाप्राणपरप्रियाभ्याम् ।
समर्पयामास यथाऽत्र जीवा शृणुष्व मत्तो यतमानसा त्वम् ॥३॥

हे पार्वती ! उस जीवा सखीने बड़ी ही श्रद्धा पूर्वक भाव रूपी पुष्पाञ्जलि अपने प्राणोंसे प्यारी श्रीकिशोरीजी तथा प्राणोंसे प्यारे सरकारजीको जिस प्रकार समर्पण किया, उसी प्रकार मैं तुम्हें सुनाता हूँ, तुम एकाग्र मनसे श्रवण करो ॥३॥

जीवा सख्युवाच ।

सौभाग्यदा च शुभदा सुगतिप्रदात्री सौशील्यरत्ननिचया नृपतेः किशोरी ।
कामप्रियानियुतकोटिविमोहनाङ्गी श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥४॥

जो सौभाग्य, मङ्गल और सुन्दर मतिको प्रदान करने वाली, सुशीलता रूपी रत्नोंकी समूह, श्रीमिथिलेशजी महाराजकी किशोरी, व अपने सौन्दर्यसे अनन्त रतियोंको मोहित करने वाली, चन्द्रके समान, आह्लादको देने वाली और शीतल प्रकाशयुक्त मुखारविन्द वाली हैं, उन हमारी श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥ ४ ॥

रासप्रिया च रसिका रसिकेन्द्रकान्ता रसेश्वरी रसनिधी रसिकैरुपास्या ।
वाणीरमाकुधरजादिभिरर्चिताङ्घ्रिः श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥५॥

रस (प्रियतम) का सब कुछ ही जिनको प्रिय है, रस (प्रियतम) ही जिनके सर्वस्व हैं, रसिकेन्द्र-कान्ता अर्थात् रस (भगवानको) सर्वस्व मानने वाले अनन्य भक्तोंकोही अपना स्वामी मानने वाले उन श्रीप्राणप्यारेजूकी जो प्रिया हैं, जो रास (भगवदानन्द) की स्वामिनी हैं तथा जो रस (प्रियतम) की निधि है भगवदनुरागियोंको जिनकी उपासना करना आवश्यक है, जिनके श्रीचरणकमलों

की पूजा श्रीसरस्वतीजी श्रीलक्ष्मीजी, श्रीपार्वतीजी आदि प्रमुख शक्तियाँ भी करती हैं, उन चन्द्र तुल्य श्रीमुख वाली हमारी श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥ ५ ॥

आनन्दवर्षिजलजातदलायताक्षी शोभानिधिर्गुणनिधिर्नवहेमवर्णा ।
ब्रह्माण्डकोटिपरमेशसुभाविताङ्घ्रिः श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥६॥

जिनके नेत्र आनन्दकी वर्षा करने वाले, कमलके पत्रके समान विशाल और सरस हैं, जो शोभा वात्सल्य और सौलभ्य आदि समस्त गुणोंकी खान हैं, जिनके श्रीअङ्गका रङ्ग सोनेके समान गौर है तथा जिनके श्रीचरण-कमलोंका चिन्तन करोड़ों ब्रह्माण्डोंके सबसे बड़े स्वामी (श्रीप्राण प्यारे) जू भी करते हैं, उन हमारी चन्द्रतुल्य मुखवाली श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥६॥

सर्वेश्वरी शरणदा भुवनादिकर्त्री कल्याणसौख्यनिलया रुचिरस्मितास्या ।
वेदैर्नुता सुमतिदा मुनिहंसभाव्या श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥७॥

जो सभी अल्पसे अल्प व महानसे महान् शक्तिमानोंपर भी शासन करनेवाले श्रीप्राणप्यारेजूकी प्रिया हैं तथा अनाथों व असहायोंकी रक्षा करनेवाली, चौदहो भुवनोंकी आदि कर्त्री (प्रथम रचना करनेवाली), कल्याण व सुखोंकी भवन हैं, जिनका श्रीमुखारविन्द मन्द मुस्कानसे युक्त है, वेदभगवान् जिनकी स्तुति करते हैं, भक्तोंको जो सुन्दर मति प्रदान करती हैं, हंसकी वृत्तिको प्राप्त हुये मुनिजन ही जिनकी भावना करनेके लिये समर्थ हैं, उन चन्द्र तुल्य श्रीमुखवाली हमारी श्रीकिशोरीजीकी जय हो॥७

श्यामा मनोविजयकामविचिन्त्यपादा बिम्बाधराऽभयदशीतलपद्मपाणिः ।
संतप्तहाटकरुचिः सरसीरुहाङ्गी श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥८॥

जिनकी सुन्दर और दर्शनीय १६ वर्षकी अवस्था है तथा मनपर विजय चाहनेवाले भक्तोंको लिये जिनके श्रीचरणकमलोंका चिन्तन नितान्त आवश्यक है, बिम्बाफलके सदृश लाल जिनके अधर हैं व भक्तोंको अभय देनेवाले कमलके सदृश कोमल शीतल जिनके हाथ हैं, तपाये हुये सोनेके सदृश जिनकी गौर कान्ति है और कमलके समान कोमल जिनके अङ्ग है, चन्द्रमाके सदृश सुन्दर स्वच्छ, प्रकाशमय और आह्लादवर्द्धक मुखारविन्दवाली उन हमारी श्रीस्वामिनी जूकी जयहो ॥८॥

आह्लादिनी त्रिजगतां भुवनाभिरामा सङ्कीर्त्तनीयचरिता मतिशोधनाय ।
भाव्या शुभा प्रवरदा वरभूषणाढ्या श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ९

जो तीनों लोकोंके चर-अचर प्राणियोंको आह्लाद प्रदान करने वाली, लोकोत्तर सुन्दरताकी मूर्ति हैं, अपने चित्तकी शुद्धिके लिये जिनके चरितोंका सङ्कीर्त्तन करना आवश्यक है जो, भावना

करनेके योग्य व साक्षात मङ्गल स्वरूपा हैं, तथा वर प्रदान करने वालोंमें श्रेष्ठ, उत्तम भूषणोंसे जो विभूषित हैं, चन्द्र तुल्य मुख वाली हमारी उन श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥६॥

विद्युत्सहस्रनिचयाभविमोहनाङ्गी प्राणप्रिया प्रणतपालशिरोमणेश्च।
वेदान्तवेद्यचरणा मृदुसर्वगात्री श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥१०॥

जिनके श्रीअङ्ग हजारों बिजुलीके समूहोंकी कान्तिको मोहित करने वाले हैं, जो आश्रितोंके पालन करने वालोंके शिरोमणि (श्रीरघुनन्दनप्यारेजू) की प्राणोंके समान प्यारी हैं तथा जिनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान वेदान्तके द्वारा ही होना सुलभ है, एवं जिनके अङ्ग अत्यन्त कोमल हैं, चन्द्रमाके समान परम अह्लाद वर्द्धक मुख वाली, उन हमारी श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥१०॥

दिव्याम्बरा भुवनपावननामकीर्त्तिर्मुक्ताहिरण्यमणिवारिरुहस्रजाढ्या।
प्रेमाम्बुधिः सहचरीगणसेव्यमाना श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥११॥

दिव्य जिनके वस्त्र हैं, जिनके नामकी कीर्त्ति समस्त भुवनोंको पवित्र करने वाली है, जो मोती, सोना, मणि और कमलकी मालाओंसे भूषित हैं, जिनका प्रेम समुद्रके समान अथाह है, और जो अपनी सहचरियोंसे सेवित हैं, चन्द्रमाके समान परमानन्दवर्द्धक, प्रकाशमय मुखवाली, हमारी उन श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥११॥

जय जय वारिजाक्षि ! मिथिलाधिपराजसुते !
निरवधिशर्वरीशनिचयाभलसद्वदने !
जय नृपचक्रवर्तितनयात्ममनोज्ञगृहे !
विधिहरिशम्भुशेषसुदुरीक्ष्यसरोजपदे ! ॥१२॥

हे अनन्त चन्द्रसमूहोंके समान शोभायमानमुख वाली, हे कमलके समान नेत्रवाली हे श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीराजकुमारिजू ! आपकी जय हो जय हो। जिनके श्रीचरणकमलोंका दर्शन ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शेषजीको भी दुर्लभ है तथा जिनके लिये श्रीचक्रवर्तीकुमार (श्रीप्राणप्यारे) जूका हृदय ही सुन्दर भवन है उन आपकी जय हो जय हो ॥१२॥

जय रसिके ! रसेशमणिमोहिनि ! वेदनुते !
जयकरुणामृताब्धिपरिपूर्णतमाक्षि ! शुभे !
जय नवसुन्दरीनिकरकोटिसहस्रवृते !
रतिचयकोटिकोटिशतसुन्दरि ! शीलनिधे ! ॥१३॥

हे श्रीप्राणप्यारेजीको अपना सर्वस्व मानने वाली ! हे समस्त रसोंके मुख्य स्वामी (श्रीप्राणप्यारे) जीको मुग्ध करनेवाली ! हे वेदोंके द्वारा स्तुतिकी जाने वाली श्रीकिशोरीजू ! आपकी जय हो ! हे शुभ (मङ्गल) स्वरूपे ! हे करुणारूपी अमृत सिन्धुसे परिपूर्ण नेत्रवाली ! श्रीकिशोरीजू ! हे आपकी जय हो। हे नवसुन्दरियोंके अनन्त यूथोंसे घिरी हुई ! हे कोटि कोटि रतियोंके समान सुन्दर रूप वाली ! हे शील की निधि श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो, जय हो ॥१३॥

जय गुणसागरे ! नवविभूषितदिव्यतनो !
प्रियतमवाञ्छितप्रवरसिद्धिसुरूपिणि ए।
जय जनकात्मजे ! पतितपावनि ! दीनहिते !
धृतकरपङ्कजारुणमनोहरपङ्करुहे ! ॥१४॥

जिनके वात्सल्य, सौशील्य, कारुण्यादि समस्त गुण समुद्रके समान अनन्त व अथाह हैं और जो प्यारेकी मुख्य अभीष्ट सिद्धिका स्वरूप हैं, उन नवीन शृङ्गार युक्त शरीरवाली हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। जो श्रीजनकजी महाराजकी ललीजू कहाती हैं, जो पतित जीवोंको पवित्रता प्रदान करने वाली, अभिमान रहित प्राणियोंके हितमें सदा तत्पर रहती हैं, अपने कर-कमलमें मनोहर अरुण (लाल) कमलको धारण किये हुई हैं, हे श्रीकिशोरीजी ! उन आपकी जय हो ॥१४॥

जय जय लज्जितानवधिविद्युददभ्रनिधे !
जय रसिकेन्द्रमौलिमुखचन्द्रचकोरि ! रमे।
जय रसरूपिणि ! श्रुतिविमृग्यपदाम्बुरुहे !
जय निखिलांशिनि ! प्रथितदिव्यगुणे ! ऽखिलदे ! ॥१५॥

जिनके श्रीअङ्गकी प्रभासे अनन्त बिजुलियोंकी खान भी लज्जाको प्राप्त होती है, ऐसी हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो जय हो। भक्तोंको अपना श्रेष्ठस्वामी माननेवाले, श्रीप्राणप्यारेजूके मुखरूपी चन्द्रके दर्शनसे चकोरीके समान कभी तृप्त न होनेवाली, शक्तिस्वरूपसे सबमें रमण करनेवाली, आपकी जय हो। जो रस (प्यारे) का स्वरूप हैं, वेदोंके द्वारा जिनके श्रीचरणकमलोंका अन्वेषण किया जाता है तथा जो सभीकी कारण स्वरूपा हैं, क्षमादिक जिनके दिव्यगुण विश्वविख्यात हैं, भक्तोंके लिये सब कुछ प्रदान करने वाली, हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो ॥१५॥

जय रघुनन्दनप्रियवरे ! स्मरणीयगुणे !
जय चरितोद्धृतागणितपापसमूहरते ।
जय शरणागतप्रणतवाञ्छितदप्रवरे !
जय रुचिरस्मिते ! सुमृदुभाषिणि ! भूमिसुते ! ॥१६॥

कल्याण प्राप्तिके लिए जिनके वात्सल्य, गाम्भीर्य, सौशील्य, कारुण्य आदि दिव्यगुणोंका स्मरण करना आवश्यक है, ऐसी श्रीरघुनन्दन प्यारेजूकी समस्त प्रियाओंमें श्रेष्ठ प्रिया (पटरानी,जू! आपकी जय हो। अपने मङ्गलमय चरितोंकेद्वारा असंख्य महापाप-परायणजीवोंका उद्धार करनेवाली आपकी जय हो। शरणागत भक्तोंको अभीष्ट प्रदान करने वालियोंमें परम श्रेष्ठ हे श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो। सुन्दर मुस्कानसे युक्त, अत्यन्त कोमल रीतिसे बोलने वाली हे श्रीभूमिलाडिलीजू! आपकी जय हो ॥१६॥

जय मदनाग्निशान्तिकरयुग्मपदाब्जनखे !
जय मम सर्वदे ! सुमतिदायिनि ! सौख्यनिधे ।
जय भवसिन्धुपारकरपोतसरोजपदे !
जय जनवत्सले ! जनकनन्दिनि ! केलिरते ॥१७॥

जिनके श्रीयुगलचरण कमलोंके नख कामाग्निको शान्त करनेवाले हैं, उन आपकी जय हो। आप सुखोंकी निधि हैं, सुन्दरमति प्रदान करनेवाली हैं, मेरी सब कुछ दाता हैं, आपकी सदा जय हो। आपके श्रीचरणकमल संसाररूपी सागरसे पार करनेके लिये जहाजके सदृश हैं, अतः आपकी जय हो। हे भक्तोंके अवगुणोंको न देखती हुई, उनका हित साधन करनेवाली ? हे भक्तोंके सुखार्थ नानाप्रकारकी, आनन्दमयी लीला करनेवाली ! हे श्रीजनकनन्दिनीजू ! आपकी जय हो ॥१७॥

जय नवनागरि ! प्रियवरे ! नवलालिवृते !
जय सुखसागरे ! नवलरासरते ! परमे !
जय जगदेकमङ्गलविभावननामवरे !
जय मृगलोचने ! नृपसुते ! महदेकगते ॥१८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आप नवीन चातुर्य गुणसे युक्त हैं, सबों से अधिक प्रिय हैं और नवल सखियों से घिरी हुई हैं आपकी जय हो। आप समुद्र के समान अथाह व अनन्त सुख वाली हैं

आप सदा ही नूतन प्रतीत होने वाले श्रीप्राणप्यारेजूके आनन्दमें आसक्त रहने वाली, सभीसे उत्कृष्ट हैं, आपकी जय हो। आपका नाम स्थावर और जङ्गम रूप समस्त प्राणियोंके अनुपम मङ्गलका उत्पादक है, आपकी जय हो। आपके नेत्र भक्तोंके दर्शनार्थ मृगके समान (सदा चञ्चल रहते) हैं, आप श्रीमिथिलेशजी महाराजकी लली और महात्माओंकी एक (उपमा रहित) ही रचा करने वाली हैं, आपकी जय हो ॥१८॥

जय मणिभूषणे! रुचिरविम्बफलोष्ठि! शुभे!
जय मिथिलाधिपाजिरविहारिणि! सर्वहिते!।
जय मम भाग्यदे! रसनिधे! धृतदिव्यतनो!
जय जय सर्वदा सदयितालिचये! ह्यनिशम् ॥१९॥

हे मङ्गलस्वरूपा श्रीकिशोरीजी! आपके मणिमय भूषण (भक्तोंके हृदयका अन्धकार दूर करनेके लिये) हैं, आपके ओष्ठ बिम्बाफलके समान लाल और सुन्दर हैं, आपकी जय हो। आप सभी प्राणियोंका हित करने वाली तथा श्रीमिथिलेशजी महाराजके आङ्गनमें खेलने वाली हैं, आपकी जय हो। आप मेरी सौभाग्य प्रदान करने वाली तथा श्रीप्यारेजूकी निधि हैं, दिव्य-अपाञ्च भौतिक, मङ्गलमय विग्रहको धारण किये हुई हैं, उन आपकी जय हो। सखी समूहके सहित और श्रीप्राणप्यारेजूके समेत आपकी सदा सर्वदा जय हो। जय हो ॥१९॥

यस्याः सरोजाङ्घ्रिसुशक्तिचिन्हजा
ब्रह्माण्डवृन्दं कृषिको यथा कृषिम्।
शक्तिः सृजत्यत्ति च पात्यथाज्ञया
तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२०॥

जिनके श्रीचरण कमलके शक्ति चिन्हसे प्रकट हुई आद्या शक्ति आपकी आज्ञानुसार, ब्रह्माण्ड-वृन्दोंका इस प्रकारसे उद्भव, पालन और संहार करती है, जैसे किसान अपनी खेतीका, उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेश-दुलारीजूका सदा ही सुमङ्गल हो ॥२०॥

या ब्रह्मविष्णवीशनुताङ्घ्रिपङ्कजा सौदामिनीकोटिविमोहनद्युतिः।
महार्हवस्त्राभरणैरलङ्कृता तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२१॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिनके श्रीचरण कमलोंकी स्तुति किया करते हैं, तथा जो अपने श्रीअङ्ग

की कान्तिसे करोड़ों विजुलियोंको आश्चर्य युक्त करने वाली हैं, बहुमूल्य वस्त्र व भूषणोंसे जिनका शृङ्गार किया हुआ है, उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेश-दुलारीजूका सदा ही सुन्दर मङ्गल हो २१

सर्वेश्वरी सर्वजगद्धितैषिणी सर्वं ततं विश्वमिदं ययांऽशतः।
कारुण्यरत्नैकनिधिर्विलक्षिता तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२२॥

जो सभी छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े पर शासन करने वाले श्रीप्राणप्यारेजूकी पटरानी व समस्त चर-अचर प्राणियोंका हित चाहने वाली हैं, तथा जिन्होंने अपने अंशसे सारे विश्वको व्याप्त कर रक्खा है, जो करुणा रूपी रत्नकी निरुपम निधि (खजाना) ही लक्षित हो रही हैं. उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेश-दुलारीजूका सदा ही सुमङ्गल हो ॥२२॥

या प्रीतिशीला नृपसूनुवल्लभा रक्ताब्जपाणौ धृतनीलपङ्कजा।
श्यामा शरत्पूर्णसुधाकरानना तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२३॥

प्रीति करनेका जिनका सहज स्वभाव है, जो श्रीदशरथ-नन्दनजूकी प्यारी व, अपने अरुण कमलके समान हाथमें नीलकमलको धारण किये हुई हैं, जिनकी १६ वर्षकी सुन्दर मधुर अवस्था और शरद्‌ऋतुकी पूर्णिमाके चन्द्रके सदृश विश्वसुखद, प्रकाशमय श्रीमुखारविन्द है, उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेशदुलारीजीका सदा ही, सुन्दर मङ्गल हो ॥२३॥

या कञ्जपत्रायतचारुलोचना सौन्दर्यसौन्दर्यवरप्रदायिनी।
त्रैलोक्यसंमोहनमोहनच्छविस्तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२४॥

जिनके कमल-दलके समान सुन्दर व विशाल नेत्र हैं, जो सौन्दर्यको भी सुन्दरता का वरदान देनेवाली हैं, तथा अपनी छविसे त्रिलोकीको पूर्ण मुग्ध कर लेने वाले श्रीप्राणप्यारेजीको चकित करने वाली हैं, उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेश-दुलारीजूके लिये सदा ही सुमङ्गल हो ॥२४॥

याऽऽह्लादिनी प्रेमपरा रसाश्रया रामा रमावाग्गिरिजादिवन्दिता।
सैरध्वजी भूमिसुतेति कीर्त्तिता तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२५॥

जो आह्लाद प्रदान करने वाली और प्रेमको ही मुख्य मानने वाली हैं तथा जो समस्त रसोंकी कारण व अपने प्रेरक रूपसे, सभी प्राणियोंके द्वारा नाना प्रकारकी क्रीड़ा करवाने वाली और अपने निजरूपसे स्वयं क्रीड़ा करने वाली हैं, रमा, उमा, ब्रह्माणी आदि महाशक्तियाँ जिनकी वन्दना करती हैं, जो सीर ध्वज नन्दिनी, भूमिसुता आदि नामोंसे कथनकी जाती हैं, उन आप अयोनिजा (बिना किसी कारण, अपनी भक्तानन्दकारिणी इच्छा मात्रसे प्रकट होने वाली) श्रीमिथिलेश-दुलारीजूका सदा ही सुमङ्गल हो ॥२५॥

या प्रेष्ठहृत्सद्मकृतामलालया रासेश्वरी रासविलासतत्परा ।
लावण्यशीला भुवनैकवन्दिता तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२६॥

जिन्होंने श्रीप्राणप्यारेजूके हृदय रूपी महलको ही अपना उज्वल भवन बनाया है व जो भगवद् भक्तोंकी स्वामिनी है और भगवदानन्दनमय लीला करनेमें तत्पर है, लावण्यकी निधि है और तीनो लोकोंसे उपमारहित नमस्कारकी हुई है, उन आप अयोनिजा (बिना किसी कारण भक्त भाव परिणी अपनी निर्हेतुकी इच्छा मात्रसे ही प्रकट होने वाली), श्रीमिथिलेश-दुलारीजीका सदा ही सुमङ्गल हो ॥२६॥

याऽनन्तमुख्यात्मसखीगणैर्वृता दिव्यासनस्था दयितांसहस्तका ।
कान्तेडिता स्नेहपराहितैषिणी तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२७॥

जो अपने अनन्त सखी गणोंसे घिरी हुई, दिव्य सिंहासनपर विराजमान, प्यारेके कन्धेपर अपना हस्त कमल रक्खे हुए है, जिनकी प्रशंसा स्वयं प्राणप्यारेजू करते है, जो स्नेह पराजूका हित चाहने वाली है, उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेश दुलारीजूका सदा ही सुमङ्गल हो ॥२७॥

कारुण्यपूर्णजलजातदलायताक्षी दिव्याम्बराभरणभूषणभूषिताङ्गी ।
श्रीचक्रवर्तिसुतचित्तकृताधिवासा तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥२८॥

जिनके कमलके समान विशाल नेत्र करुणा रससे परिपूर्ण है, दिव्य वस्त्र व अत्युत्तम भूषणोंसे जिनके अङ्ग, शृङ्गार किये हुये है, श्रीचक्रवर्ती कुमार (प्राणप्यारे) जूके चित्त रूपी भवनमें जिनका निवास है, उन आप श्रीमिथिलेश दुलारीजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥२८॥

यस्याः पदाम्बुरुहशक्तिसुलब्धजाता ब्रह्माण्डकोटिरचनादिषु वै समर्था ।
शक्तिर्विरिञ्चिहरिशम्भुनमस्कृताङ्घ्रिस्तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥२९॥

जिनके सुन्दर श्रीचरण कमलके शक्ति चिन्हसे जायमान शक्ति, करोड़ों ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति पालन व संहार, करनेको समर्थ होती है, तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश जिनके चरणोंमें प्रणाम करते है, उन आप श्रीमिथिलेश-दुलारीजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥२९॥

दुष्प्राप्यसर्वगुणरत्नवरैकराशिः सौन्दर्यलेशविजितामितकामपत्नी ।
रासेश्वरी रसिकमौलिमणेः प्रिया या तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३०॥

जिन गुणोंकी प्राप्ति बड़ी कठिनतासे होती है, आप उन सभी अलौकिक और अनुपमेय गुणोंकी राशिरूपा है। जिन्होंने अपने सौन्दर्यके स्वल्प अंशसे ही अनन्त रतियों पर विजय प्राप्त कर

लिया है, जो भगवदानन्दकी स्वामिनी और भक्तोंको अपने शिरकी मणिके तुल्य श्रेष्ठ मानने वाले (श्रीप्राणप्यारे) जूकी प्राणप्यारी हैं, उन आप श्रीमिथिलेश दुलारीजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥३०॥

यस्याः कृपा करगतं कुरुते दुरापं मूर्खं विशारदमजं मशकं पयोऽम्भः ।
रात्रिं दिनं दिनकरं द्विजराजकल्पं तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे॥३१॥

जिनकी कृपा दुष्प्राप्य वस्तुको हथेलीमें रक्खी हुईके समान सुलभ, मूर्खको पण्डित, मच्छड़ को ब्रह्मा, जलको दूध, रात्रिको दिन, तथा सूर्यको चन्द्रमाके समान शीतल कर देती है, उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥३१॥

यस्या विना करुणया करगोऽप्यलभ्यो न ध्यानकीर्तनजपैरपि राघवाप्तिः ।
एतद्वदन्ति मुनयस्त्विह निश्चितार्थास्तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३२॥

जिनकी विना कृपाके हथेलीमें आई हुई वस्तु भी मिलनी असम्भव है। ध्यान, कीर्त्तन, जप आदि श्रेष्ठ साधनोंके द्वारा भी (विना जिनकी कृपा हुए) श्रीरघुनन्दनप्यारे नहीं मिलते। ऐसा निश्चित सिद्धान्त-सम्पन्न मुनि जन कहते हैं, उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥३२॥

नाम्नस्तु सीति खलु वर्णमिदं प्रियायाः पूर्वं निशम्य सुखदं स्वहृदो हि यस्याः।
वक्तुर्मुखं झटितमातुर ईक्षतेऽयं तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३३॥

ये श्रीप्राणप्यारेजू अपने हृदयको सुख प्रदान करनेवाले जिन श्रीप्रियाजूके नामका पहला "सी" वर्ण सुनकर तुरत आतुर होकर (नामका दूसरा वर्ण "ता" सुननेकी आशासे) उस "सी" बोलने वालेका मुख देखने लगते हैं, उन आप श्रीमिथिलेश दुलारीजूके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ॥३३॥

यस्याःप्रियःस्वविमुखोऽपि महाप्रियोऽस्य ब्रह्मादिमौलिनमिताम्बुजकोमलाङ्घ्रेः।
दत्वा सुखं बहुविधं क्रियते समीपी तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३४॥

ब्रह्मादिदेवोंके द्वारा शिरसे प्रणाम किये हुये, कमलके समान कोमल श्रीचरण कमल वाले इन श्रीप्यारेजीको, जिनका प्रिय अपनेसे विमुख होने पर भी अत्यन्त प्रिय होता है और उसे श्रीप्राणप्यारेजू बहुत प्रकारका सुख प्रदान करके अपना समीपवर्ती बना लेते हैं, उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥३४॥

तप्त्वा तपो बहुविधं विफलं कृतं तैर्यैर्नादृतं चरणपङ्करुहं त्वदीयम् ।
कृच्छ्रैरवाप्य निपतन्ति परं ततस्ते तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जिन्होंने आपके श्रीचरण कमलोंका आदर नहीं किया उन्होंने निश्चय ही अनेक प्रकारका किया हुआ अपना तप व्यर्थ ही कर डाला क्योंकि यदि अनेक प्रकारके महा कष्टोंको सहन करनेके प्रभावसे उन्हें परम पद मिल भी गया तो (आपकी कृपा न होनेके कारण) वहाँसे भी उनका पतन हो जाता है उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजूके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ॥३५॥

भजन्तु केचिद्धृदयस्थमीश्वरं परात्परं ब्रह्म निरीहमव्ययम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥३६॥

कोई भलेही, सदा एक रस रहने वाले परात्पर ब्रह्म या हृदयमें विराजमान ईश्वरका भजन करें, परन्तु मैं तो तुरत वध कर देने योग्य, अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥३६॥

भजन्तु केचिद्धरिमिन्दिरापतिं चतुर्भुजं लोकगुरुं जगत्पतिम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥३७॥

कोई जगत्पति, लोकगुरु, चार भुजाओंसे युक्त, भक्तोंके दुःखको दूर करनेवाले लक्ष्मीपति भगवान्का भले ही भजन करें, परन्तु मैं तो तत्क्षण वध करनेके योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखनेवाली आप श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥३७॥

भजन्तु केचिद्धृतमीनविग्रहं बृहत्तनुं लोकहितं जनार्दनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥३८॥

कोई भले ही भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाले लोकहितकारी, विशालकाय, भीमस्वरूप धारीमीन भगवान्का भजन करें, किन्तु मैं तो अपराधके कारण तुरत वध किये जाने योग्य, जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखनेवाली अर्थात् उन्हें दण्ड देनेकी भावना छोडकरउनका हित ही चिन्तन करनेवाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥३८॥

भजन्तु केचिच्च वराहरूपिणं हरिं हिरण्याक्षवधादिविश्रुतम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥३९॥

हिरण्याक्षके वधसे प्रसिद्ध हुये वराह रूपधारी भगवान् विष्णुका कोई भलेही भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥३९॥

भजन्तु केचित्कमठाकृतिं विभुं समुद्धृतेलाधरमन्दरं हरिम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥४०॥

रसातलमें गये हुए मन्दराचल पहाड़को अपनी पीठ पर रखकर समुद्र मन्थनके लिये ऊपर लाने वाले कछुवा रूप धारी सर्वव्यापक भगवान्का भले ही कोई भजन करें किन्तु मैं तो तुरत वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली, आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४०॥

भजन्तु केचिन्नृहरिं सतां गतिं खलान्तकं भक्तवचोऽनुसारिणम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥४१॥

सन्तोंकी रक्षा और दुष्टोंका विनाशकरने वाले तथा अपने भक्तोंके कथनानुसार चलने वाले भगवान् नरसिंहजीका ही भले कोई भजन करें, किन्तु मैं तो तत्काल वध कर देनेके योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४१॥

भजन्तु केचित्त्वदितीप्रियंकरं निलिम्पनाथानुजमादिपूरुषम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनी त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥४२॥

अदितीजीका प्रिय करने वाले, इन्द्रके छोटे भइया, आदि पुरुष, श्रीवामन भगवान्का ही कोई भले भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४२॥

भजन्तु केचिज्जमदग्निनन्दनं निःक्षत्रियोर्वीकरमुग्रकोपनम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥४३॥

अथवा बड़े प्रचण्ड कोपको धारण करने वाले तथा पृथिवीको क्षत्रिय हीन करदेने वाले जमदग्नि नन्दन श्रीपरशुरामजी भगवान्का ही भले कोई भजन करें, परन्तु मैं तो तत्क्षण वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली, आप श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४३॥

भजन्तु केचिन्नृपजाकृतिं हरिं दृढव्रतं सद्गुणसिन्धुमव्ययम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनी त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥४४॥

कोई भले ही समस्त सद्गुणोंके सागर, अपने व्रतका पालन करनेमें सदा अचल रहने वाले भक्तोंके दुःख व पापोंको छीन लेने वाले राजकुमारका विग्रह धार किये हुये अविनाशी भगवान् श्रीप्राणप्यारेजू

प्यारेजूका ही भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने, वाली आप मिथिलेशदुलारी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४४॥

भजन्तु केचिद्वसुदेवनन्दनं रसस्वरूपं नवनीततस्करम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम्॥४५॥

भले कोई रस (आनन्द)के स्वरूप, मक्खन चोर, श्रीवसुदेव नन्दनजीका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं वो तुरत वध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४५॥

भजन्तु केचिद्धृतबौद्धविग्रहं रक्षोऽहिताय श्रुतिमार्गखण्डनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनी त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥४६॥

अथवा राक्षसोंकी वृद्धिको रोकनेके लिये, वेद-मार्गका खण्डन करने वाले भगवान् बुद्धजीका भले ही कोई क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षणवध करने योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी क्योंकि मेरा निर्वाह उन आपके ही पास है ॥४६॥

भजन्तु केचिद्भगवन्तमच्युतं श्रियः पतिं कल्किनमिष्टसत्पथम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनी त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥४७॥

भले ही कोई सत्पथका प्रचार करने वाले कल्की रूपधारी लक्ष्मी पति, अच्युत भगवान्का भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४७॥

भजन्तु केचित्कपिलं महामुनिं सतां गतिं व्याकृतसाङ्ख्यशासनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनी त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥४८॥

अथवा सन्तोंकी रक्षा करने वाले साङ्ख्यशास्त्रके रचयिता महामुनि श्रीकपिलदेव भगवान्का ही कोई भजन करें किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करदेने योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४८॥

भजन्तु केचित्किल नाभिनन्दनं पन्थानमार्यं विदधानमुज्वलम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥४९॥

भले ही कोई ऋषियोंके उज्वल मार्ग यानी परमहंसोंके पथका निधान करने वाले, श्रीऋषभ भगवानका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली आप ही मिथिलेश-दुलारी श्रीसीताजीका भजन करूँगी ॥४६॥

भजन्तु केचित्तपसां निधिं प्रभुं नारायणं मर्दितमन्मथस्मयम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥५०॥

कोई भले ही तपके निधान सर्व समर्थ, कामदेवके अभिमानको चूर करने वाले श्रीनारायण भगवानका क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तुरत वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५०॥

भजन्तु केचिद्धयकण्ठमेव वा सङ्गीतशास्त्रैकगुरुं पुरातनम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥५१॥

अथवा कोई सङ्गीत शास्त्रके अद्वितीय गुरु, पुरातन भगवान् श्रीहयग्रीवजीका भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तुरत वधके योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५१॥

भजन्तु केचिद्विधिमब्जसम्भवं तपःपराणां वरदानतत्परम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥५२॥

अथवा कोई नाभि कमलसे प्रकट हुये, तप करने वालोंको अभीष्टवर देनेमें तत्पर, भगवान् ब्रह्माजीका ही भले क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करने योग्य अपराधयुक्त जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप ही मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका भजन करूँगी ॥५२॥

भजन्तु केचिच्छिवमद्रिजापतिं सदाऽऽशुतोषं वृकवाञ्छितप्रदम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥५३॥

अथवा वृकासुरको अभीष्ट वर देने वाले आशुतोष, पार्वती पति भगवान् श्रीशिवजीका ही सदा कोई क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५३॥

भजन्तु केचित्करिवक्त्रमृद्धिदं विनायकं विघ्नहरं शुभावहम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥५४॥

भले ही कोई ऋद्धि प्रदान करने वाले मङ्गलप्रद, विघ्नहरता, गजवदन श्रीगणेश भगवानका

ही क्यों न भजन करे किन्तु मैं तो तत्क्षण वध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५४॥

भजन्तु केचिद्वसुधादुहं पृथुं पवित्रकीर्तिं मनुवंशभूषणम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥५५॥

अथवा कोई क्यों न मनुमहाराजके कुलके भूषण, पवित्र-कीर्ति, गौरूप धारी पृथिवीको दुहने वाले श्रीपृथुमहाराजका भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५५॥

भजन्तु केचिद्धृतहंसविग्रहं कुमारचेतोभ्रममूलकृन्तनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥५६॥

अथवा कोई भले ही सनकादिकोंके चित्तका सन्देह निकालने वाले हंस रूप धारी भगवानका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तुरत, वध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५६॥

भजन्तु केचित्सनकादिकान् मुनीन् यैः सारमेकं भजनं विलोकितम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥५७॥

अथवा जिन्होंने जन्म-ग्रहण करके इस असार संसारमें भगवानका भजन ही एक मात्र सार देखा है, उन सनकादिक मुनियोंका ही भले कोई क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तुरत वधकर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५७॥

भजन्तु केचिन्मुनिमत्रिनन्दनं प्रणीततन्त्रं सदसद्विवेकिनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥५८॥

अथवा भले ही कोई तन्त्र शास्त्रके निर्माण करनेवाले सद्-असद् विवेकी, अत्रिनन्दन भगवान् दत्तात्रेय मुनिका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वधकर डालने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेश नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५८॥

भजन्तु केचिच्च पराशरात्मजं महाकविं सर्वविदां परं गुरुम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥५९॥

अथवा भलेही कोई महाकवि, समस्तशास्त्रों और वेदोंके रहस्यको जानने वालोंके भी परम गुरु, पराशार,नन्दन श्रीवेदव्यास भगवानका ही क्यों न भजन करें,किन्तु मैं तो तुरत वध कर डालने योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी।५९

भजन्तु केचित्त्रिदशेश्वरं हरिं शचीपतिं नाकपतिं घनाधिपम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥६०॥

अथवा कोई भले ही मेघों के स्वामी, स्वर्गलोकके पालन करने वाले, शचीके पति, देवराज इन्द्रका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्त्वण वध करदेने योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेशनन्दिनीं श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६०॥

भजन्तु केचिद्वरुणं जलेश्वरं धनेश्वरं गुह्यकयक्षनायकम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥६१॥

अथवा कोई जलके स्वामी श्रीवरुणदेवजीका व गुह्यक-यक्ष नायक, धनके स्वामी श्रीकुबेरजीका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्त्वण वधकर डालने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप श्रीमिथिलेश-दुलारी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६१॥

भजन्तु केचिद्यममुग्रशासनं दिनेशसूनुं कृतभृत्यमृत्युकम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥६२॥

अथवा कोई भले ही मृत्युको अपना सेवक बनाने वाले, कठोर शासन-परायण सूर्यपुत्र, यम राजका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्त्वण वध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजी का ही भजन करूँगी ॥६२॥

भजन्तु केचिद्बलिमिन्द्रवैरिणं प्रसिद्धदातारमजेशयाचकम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥६३॥

कोई भले ही इन्द्रके शत्रु, प्रसिद्धदानी श्रीबलिमहाराजका क्यों न भजन करें, जिनके पास स्वयं भगवान याचक बने हैं, परन्तु मैं तो तत्त्वण वध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६३॥

भजन्तु केचिद्रविमुग्रतेजसं शुभप्रदं पूज्यतमं त्विषांपतिम्।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥६४॥

अथवा कोई मङ्गल दानी, परम पूज्य, उग्रतेज-सम्पन्न, ज्योतियों के पति भगवान् सूर्यका ही क्यों न भजन करें, परन्तु मैं तो तत्काल वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६४॥

भजन्तु केचिद्विधुमब्धिनन्दनं सुधाकरं शीतलशीतलाश्रुतम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥६५॥

कोई भले ही सागर नन्दन, सुधामय किरण वाले, शीतल स्वभावसे प्रसिद्ध, चन्द्रदेवका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करडालने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६५॥

भजन्तु केचिद्भिषजौ दिवौकसां तावाश्विनेयौ भजदामयापहौ ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥६६॥

अथवा कोई भले ही भक्तोंके रोगको दूर करने वाले देवताओंके वैद्य, अश्विनी कुमारजीका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६६॥

भजन्तु केचित्त्रिदशान् दिवौकसः कलत्रपुत्रादिसमृद्धिसिद्धिदान् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥६७॥

अथवा कोई देवलोकमें रहने वाले, स्त्री-पुत्र आदि ऋद्धि, सिद्धि रूप समृद्धिको प्रदान करने वाले देवताओंका ही भले क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्काल वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ६७

भजन्तु केचिज्जगदेकवन्दितां सरस्वतीमीप्सितरामकीर्त्तनाम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥६८॥

अथवा कोई भले ही जगत् वन्दिता श्रीरामकीर्त्तनाभिलाषिणी श्रीसरस्वतीजीका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करडालने योग्य अपराधी जीवों पर भी वत्सल्य भाव रखने वाली मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६८।

भजन्तु केचित्सुरदुःखभञ्जिनीं धृतोग्ररूपामिह शक्तिमम्बिकाम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥६९॥

अथवा कोई भले ही देवताओंका दुःख नाश करने वाली भयङ्कर स्वरूपको धारण किये हुई अम्बिका का ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्काल वध कर देने योग्य अपराधी पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६६॥

भजन्तु केचिद्धरिवल्लभां सतीं पयोधिपुत्रीं भुवनैकवाञ्छिताम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥७०॥

कोई भले ही, समस्त लोगोंकी मुख्य रूपसे अभीष्ट, सागर नन्दिनी, विष्णुवल्लभा, सती श्रीलक्ष्मी जीका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध कर डालने योग्य अपराधी जीवोंपर भी अपना वात्सल्यभाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७०॥

भजन्तु केचिद्दनुजान्महोरगान् गन्धर्वविद्याधरयक्षचारणान् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥७१॥

भले ही कोई दैत्योंका, चाहे तक्षक आदि सर्पोंका, अथवा गन्धर्वोंका, किम्वा विद्याधरोंका यक्षोंका, यदि वा चारणोंका क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वधकर देनेके योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ७१

भजन्तु तत्त्वानि समर्हितानि वा गिरीन्समुद्रानथवा नदीर्नदान् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥७२॥

भले ही कोई लोग आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पञ्च तत्त्वोंका अथवा हिमालय आदि पर्वतोंका, समुद्रोंका नदी व नदोंका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करडालने योग्य अपराधी जीवोंपर भी अपना वात्सल्य भाव रखनेवाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७२॥

भजन्तु केचिद्बहुधार्थसिद्धिदान् प्रेतांश्च भूतानि तथान्यकान्यपि ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥७३॥

अथवा भले ही कोई लोग अनेक प्रकारका लौकिक स्वार्थ सिद्ध करदेने वाले प्रेत भूतादिकों का ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी अपना वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७३॥

भजन्तु केचिज्जगतीपतीन्नृपान् कवीन्द्विजान् वा धनिनोऽथ कोविदान् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥७४॥

भले ही लोग राजाओंका, चाहे कवियोंका, चाहे ब्राह्मणोंका, चाहे धनी लोगोंका, पण्डितोंका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वधकर डालने योग्य अपराधी पर निरपराधीकी तरह समान भावसे वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजी ही भजन करूँगी ॥७४॥

भजन्तु केचित्पितरौ सुखप्रदौ हितैषिणौ पोषितकोमलाङ्गकौ ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥७५

अथवा कोई भले ही लोग अपने कोमलगातका पोषण करने वाले, हितैषी, सुखदाई मा पिताका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वधकर देने योग्य अपराधी जीवों पर समान भावसे वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ७

भजन्तु केचिद्गुणिनोऽथवात्मजान् धनानि नारीः परिवारमेव वा ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलान् ॥७६॥

चाहे भले ही कोई गुणियोंका, चाहे अपने पुत्रोंका, चाहे नाना प्रकारके धनका, चाहे स्त्रियोंक अथवा चाहे अपने परिवारका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वधकर देने योग्य अपराध जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली, आपमिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७६।

भजन्तु केचित्परिचिन्त्य दुर्लभं शरीरमेवेदमथात्मनो जडम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥७७॥

अथवा, चाहे कोई भले ही लोग इस अपने जड़ शरीरको ही दुर्लभ विचार करके, इसीका क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्काल वधकर डालने योग्य अपराधी जीवों पर भी अपना वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशदुलारी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७७॥

भजन्तु केचित्कमपीह किं मया यथेप्सितं योग्यमयोग्यमेव वा ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुवधार्हवत्सलाम् ॥७८॥

हे श्रीस्वामिनीजू! विशेष क्या प्रार्थना करूँ? भले ही कोई लोग अपनी इच्छानुसार चाहे कैसी भी योग्य अथवा अयोग्यका ही क्यों न भजन करें, उससे मेरा क्या प्रयोजन? मैं तो तत्क्षण ध कर डालने योग्य अपराधी जीवोंपर भी अपना वात्सल्य भाव रखनेवाली आप मिथिलेश-न्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७८॥

श्रीशिव उवाच।

तद्भावपुष्पाञ्जलिमोदसंयुतौ बभूवतुः स्मेरसुधाकराननौ ।
उपस्थितैः सर्वजनैर्निवेशने तस्मिञ्जनानुग्रहविग्रहावुभौ ॥७९॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे पार्वती ! भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही जो दिव्य और मङ्गलमय विग्रहको धारण करते हैं, वे दोनों श्रीयुगल सरकार उस रत्न सिंहासन नामके भवनमें उपस्थित हुये समस्त जनोंके समेत, उस जीवा सखीकी भाव-पुष्पाञ्जलिसे आनन्दित होगये, अतः उनका चन्द्रमाके समान आह्लादकारक परम प्रकाशमय मनोहर मुखारविन्द मन्द-मन्द मुस्कानसे युक्त होगया ॥७९॥

अथागते द्वे निशिभोजनस्य प्रेष्ये समानेतुमुदारकान्ती ।
प्रजग्मतुः प्रार्थनया सुतुष्टौ तयोर्निशाभोजनवेशम रम्यम् ॥८०॥

उसके बाद ब्यारू कुञ्जकी दो दूतियाँ, श्रीयुगल-सरकारको अपने यहाँ ले जानेके लिये आ गयीं, उनकी प्रार्थनासे उदारकान्ति, श्रीयुगल सरकार प्रसन्न होकर ब्यारू नामके सुन्द रसदन (कुञ्ज) को प्रस्थान किये ॥८०॥

षष्ठं विहायावरणं सुरम्यमुपेयतुः सप्तमकं क्षणेन ।
मरुद्विमानेन तडित्प्रभेन सखीसमूहैः परिवेष्टितौ तौ ॥८१॥

बिजुलीके समान प्रकाश युक्त, वायु-विमानके द्वारा दोनों सरकार सखीवृन्दोंसे घिरे हुये क्षण-मात्रमें छठे आवरणको छोड़कर सातवेंमें आ गये ॥८१॥

नीराजितौ वै पथि यत्र तत्र नानासुगन्धैः परिषेचिते च ।
पुष्पावकीर्णे मणिभूमिरम्ये ध्वजापताकाभिरलङ्कृते तौ ॥८२॥

ध्वजा पताका आदिकी सजावटसे युक्त, पुष्प बिछे हुये, मणिमयी भूमिसे सुशोभित व नाना प्रकारकी सुगन्धसे सींचे हुये, उस सप्तम आवरणके मार्गमें उन दोनों सरकारोंको जहाँ तहाँ आरती उतारी गई ॥८२॥

तत्तीरयोर्दर्शनसाभिलाषा मनोहराङ्गीर्विपुलाम्बुजाक्षीः ।
निरीक्षमाणौ सकृपार्द्रदृष्ट्या कृताञ्जलीस्ता ययतुर्मनोज्ञौ ॥८३॥

उस मार्गके दोनों किनारों पर दर्शनोंकी अभिलाषासे मनोहर अङ्ग व कमलके समान मनोहर

नेत्र वाली हाथ जोड़े खड़ी हुई सखियोंको अपनी कृपार्द्र दृष्टिसे अवलोकन करते हुये वे दोनों सरकार आगे पधारे ॥८३॥

श्रीरत्नसिंहासनकस्य सख्या विज्ञाय चैवागमनं तयोः सा ।
प्रतीक्षमाणा निशिभोजनस्य मुख्या सखी शातमवाप बाढम् ॥८४॥

श्रीप्यारू कुञ्जकी मुख्य सखी श्रीयुगल सरकारके आगमनकी बहुत देरसे बाट जोह रही थी अतः जब उसने श्रीरत्न सिंहासन कुञ्जकी सखीजीके द्वारा अपने यहाँ, श्रीयुगलसरकारके आगमन का समाचार सुना, तो वह महान् सुखको प्राप्त हुई ॥८४॥

प्रत्युद्ययौ सन्मुखमालिपङ्क्त्या धृत्वा करे मङ्गलभाजनं स्वे ।
उपागतौ सालिगणौ महार्हौ नीराजयामास मुदा प्रियौ तौ ॥८५॥

और वह सखियोंकी पंक्तिके सहित, अपने हाथमें मङ्गल थाल रखकर श्रीयुगलसरकारकी अगवानी करनेके लिये उनके सन्मुख चली। जब परमपूज्य वे दोनों श्रीयुगल सरकार अपनी सखी वृन्दोंके सहित पासमें आ गये, तो उस (प्यारू कुञ्जकी) सखीजीने उन दोनोंकी आरती उतारी ॥८५॥

प्रसार्य दिव्यास्तरणानि भूमौ नीतौ तया रत्नगृहान्तरे वै ।
दिव्यांशुकाच्छादितहेमपीठे निवेशितौ तौ मणिमौक्तिकाढ्ये ॥८६॥

पुनः दिव्य पाँवड़े डाल कर अपने रत्न खचित महलके भीतर ले गयी और जहाँ मणि व मोतियोंकी सजावटसे युक्त सुवर्ण (सोने) की चौकी पर उन्हें विराजमान किया ॥८६॥

प्रक्षाल्य सा पाणिपदाम्बुजानि प्रदाय चैवाचमनं प्रियाभ्याम् ।
सखीजनेभ्योऽप्युचितासनानि निजाभिरालीभिरदापयच्च ॥८७॥

पुनः श्रीयुगल सरकारके हस्त व पाद कमलोंको धोकर और उन्हें आचमन प्रदान करके, अपनी सखियोंके द्वारा, श्रीयुगल सरकारकी समस्त सखियोंके लिये उचित आसन, बड़े प्रेम भाव पूर्वक प्रदान कराती हुई ॥८७॥

पक्वान्नपात्राणि शतानि तत्र संन्यस्य मुख्या वसुकोणपीठे ।
चतुर्विधं षड्रसकं सुभोज्यं समर्पयामास उदारभावा ॥८८॥

तदनन्तर उस उदार भावसे युक्त प्यारू कुञ्जकी सखीजीने, अष्ट कोणकी चौकी पर सैकड़ों पक्वान्न पात्र सजाकर षट्रसोंसे युक्त चारों प्रकारके भोजनोंको समर्पण करने लगी ॥८८॥

प्रसाद्य सा दीनवचोभिरिष्टौ प्राणेश्वरौ प्राणसमप्रियौ तौ ।
अकारयद्भोजनमम्बुजाक्षी रुचिप्रदं वाक्यमुदाहरन्ती ॥८६॥

अपने इष्ट प्राणनाथ, प्राणोंके तुल्य प्यारे श्रीयुगल सरकारको दीन वचनोंके द्वारा प्रसन्न करके, रुचि कराने वाले वचनोंको कहती हुई, वह कमल लोचना सखी, उन्हें भोजन कराने लगी ॥८६॥

सख्यौ स्थितेऽम्भश्चषके निधाय हस्ताम्बुजे साम्बुसुवर्णपात्रम् ।
तत्पार्श्वयोः खञ्जनसाञ्जनाक्ष्यौ प्रयच्छतो वीक्ष्य तयो रुचिं ते ॥६०॥

हाथमें जल भरे सोनेके गिलास व झारीको लेकर अञ्जन युक्त (लगे हुये) खञ्जन पक्षीके सदृश चञ्चल लोचना, दो सखी दायें बायें खड़ी हो गयीं और वे, दोनों सरकारकी रुचि देखकर जल देने लगीं ॥६०॥

गायन्ति गीतानि रसाप्लुतानि तयोः सकाशे रुचिवर्द्धनानि ।
काश्चिद्विचित्रा बहुशो विरच्य प्रहेलिकाः श्रावयितुं प्रवृत्ताः ॥६१॥

कुछ सखियां, भावयुक्त होकर आनन्द जनक रुचिवर्द्धक गीतोंको, श्रीयुगल सरकारके पास बैठ कर गाने लगीं और कुछ बहुत सी आश्चर्य युक्त प्रहेलिकाओंको बना बनाकर सुनाने लगीं ॥६१॥

अथेङ्गितं प्राप्य निशाशनस्य मुख्या सखी श्रीजनकात्मजायाः ।
अकारयत्स्वाचमनं प्रियाभ्यां सुधाजलैः कञ्जविलोचनाभ्याम् ॥६२॥

तत्पश्चात् श्रीजनकनन्दिनीजूका सङ्केत पाकर, उस ब्यारू कुञ्जकी मुख्य सखीजीने, अमृतमय जलसे कमल लोचन दोनों सरकारोंको, आचमन करवाया ॥६२॥

पुनः पयःपानविधिं प्रियाभ्यामकारयत्प्रार्थनयोरुभक्त्या ।
ताम्बूलवीटीं विरचय्य पश्चात्समार्पयत्सा परयाऽनुरक्त्या ॥६३॥

पुनः बड़ी श्रद्धा भावपूर्ण प्रार्थना पूर्वक श्रीयुगल सरकारको दूध पिलाकर, उसने पानका बीड़ा बनाकर उन्हें परम अनुराग पूर्वक समर्पण किया ॥६३॥

धूपं समाघ्राप्य सुगन्धियुक्तं गवाज्यकर्पूरयुतं च दीपम् ।
प्रदर्श्य ताभ्यां ज्वलितं सखीभिर्नीराजनं चाथ तया व्यधायि ॥६४॥

फिर सुगन्ध युक्त धूपको सुँघाकर, जलते हुये कपूरके सहित, गऊके घृतका दीपक, श्रीयुगल-सरकारको दिखलाकर, उस (ब्यारू कुञ्जकी मुख्य) सखीने, सखियोंके सहित उनकी आरती उतारी ६४

यथाविधि स्वर्घ्य सुमाञ्जलिं सा ननाम भक्त्या दयितौ सखीश्च।
ताश्चापि तौ प्राणपरप्रियौ हि नत्वा मिथो नेमुरतिप्रसन्नाः ॥६५॥

पुनः पुष्पाञ्जलि प्रदान करके श्रीयुगल-सरकारको उसने बड़े ही प्रेमपूर्वक प्रणाम किया, तदनन्तर उनकी सखियोंको नमन किया, उन सखियोंने भी श्रीयुगल सरकारको प्रणाम करके अति प्रसन्न हृदयसे परस्पर एक दूसरेको प्रणाम किया ॥९५॥

नीत्वा विरामाय ततोऽन्यगेहे तया प्रियौ तौ रुचिरप्रकाशे।
तूलांशुकैः स्वश्चितहेमतल्पे विश्रामितौ सूक्ष्मविभूषणाङ्गौ ॥६६॥

पुनः प्यारू कुञ्जकी सखी, विश्राम करानेके लिये उन दोनों प्यारे श्रीयुगल-सरकारको, दूसरे सुन्दर प्रकाश युक्त भवनमें ले जाकर, उनके अङ्गोंमें स्वल्प भूषणोंका शृङ्गार रखकर, उन्हें मखमली गुदगुद बिछावन बिछे सुवर्णके पलङ्गपर विश्राम कराया ॥९६॥

तयोस्तदोच्छिष्टमथार्प्य सर्वाः सम्भोजिताः सादरमेव सख्या।
यथा हि तौ प्रेष्ठतमौ दयालू ताम्बूलवीट्यादिभिरर्चितास्ताः ॥६७॥

श्रीयुगल-सरकारके विश्राम कर जानेपर उसने श्रीयुगल-सरकारका उच्छिष्ट प्रसाद समर्पण करके सभीको प्रेम व आदर पूर्वक भोजन करवाया और अपने प्राणप्यारे, दयालू श्रीयुगल-सरकारके सदृश ही, पान आदि के द्वारा उनका पूजन किया ॥९७॥

तत्रैव सख्योऽपि च शिश्यिरे ताः श्रीजानकीराघवयोः शुभाङ्गयः।
विश्रामसन्दर्शनमम्बुजाक्ष्यः कुर्वन्त्य एवेप्सितमाप्तकामाः ॥६८॥

पुनः उन कमलनयनी मङ्गलाङ्गी सखियोंने भी श्रीयुगल सरकारके विश्रामका अभीष्ट दर्शन करती हुई प्यारू कुञ्जके उसी विभागमें विश्राम किया जिसमें कि, श्रीयुगल-सरकार कर रहे थे ॥९८॥

किञ्चिद्व्यतीते समये तु तत्र प्रेष्ये शुभे चाययतुर्मनोज्ञे।
शृङ्गारकुञ्जाधिकृतानिदेशादानेतुकामे दयितौ मनीषे ॥६९॥

जब विश्राम करते कुछ समय बीत गया, तब दो मनोहर मङ्गल स्वरूपा, चातुर्यगुण-सम्पन्ना सखियाँ, शृङ्गारकुञ्जकी सखीकी आज्ञासे दूती बनकर, श्रीयुगल सरकारको अपने भवन ले जानेकी इच्छासे वहाँ पहुँचीं ॥९९॥

श्रीचारुशीलेन्दुकले प्रणम्य ते चोचतुः स्वागमनस्य हेतुम् ।
ताभ्यां प्रियैः कर्णसुधावचोभिर्विज्ञापितः स प्रियपुङ्गवाभ्याम् ॥१००॥

उन दोनोंने श्रीचारुशीलाजी व, श्रीचन्द्रकलाजीको प्रणाम करके अपने आनेका कारण उनसे निवेदन किया, उन दोनों नेभी श्रीयुगल सरकारके सामने उस कारणको प्रेम भरे सुधाकी तरह मधुर वचनोंके द्वारा उपस्थित किया ॥१००॥

प्रियाप्रियौ रासनिविष्टचित्तौ प्रचक्रतुस्तर्हि मनोऽभिगन्तुम् ।
ततः सखीनामपि वल्लभानामौत्सुक्यमत्यन्तमवेक्ष्य रासे ॥१०१॥

तब प्रिय सखियोंकी रास (वह लीला जिससे भगवदानन्द प्राप्त होता है उस) में अत्यन्त उत्सुकता देखकर श्रीयुगल सरकारने, उन्हें अपने उस भगवदानन्दको प्रदान करनेके लिये उसी आनन्दमें दत्त-चित्त होकर, उस प्यारू कुञ्जसे रासके शृङ्गार कुञ्जमें जानेके लिये इच्छाकी ॥१०१॥

आरुह्य भव्यां शिविकां विशालां शृङ्गारकुञ्जं ययतुः प्रहृष्टौ ।
तत्सद्मनो मुख्यसखी विदित्वाऽऽयान्तौ तदाऽवाच्यसुखं प्रयाता ॥१०२॥

इति चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

—: इति नवाह्न पारायण विश्राम २ समाप्त :—

अतः विशाल, परम शोभायमान शिविका (पालकी) में बैठकर वे बड़े हर्ष पूर्वक शृङ्गार कुञ्जमें पधारे। श्रीयुगल सरकारको अपने कुञ्जमें आते हुये जानकर वहाँ की प्रधान सखीजी, अकथनीय सुखको प्राप्त हुईं ॥१०२॥

अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥२५॥

श्रीयुगलसरकारकी रासकुञ्ज लीला ।

श्रीशिव उवाच ।

सुस्वागतार्थं परमेष्टयोः सा प्रत्युज्जगामाऽनुरागपूर्णा ।
आर्तिक्यपात्रं च निधाय पाणौ स्वकिङ्करीभिर्गजराजगत्या ॥१॥

भगवानशिवजी बोले:—हे प्रिये ! वह शृङ्गार कुञ्जकी सखी अनुराग पूर्ण होकर अपने परम प्यारे श्रीयुगल सरकारका स्वागत करनेके लिये, आरती सजाया हुआ थाल अपने हाथमें लेकर निज सखियोंके सहित, गजराजकी चालसे आगे पधारी ॥१॥

तयाऽऽगतौ प्रेष्ठतमौ सखीभिर्नीराज्य नीतौ भवनान्तरे च ।
मणिप्रकाशे मणिमण्डपे तौ निवेशितौ सांशुकरत्नपीठे ॥२॥

प्राण-प्यारे श्रीयुगल सरकारके पहुँच जाने पर, सखी-वृन्दोंके सहित आरती करके उनको महलके भीतरले गयी। और वहाँ मणियोंके प्रकाशसे युक्त मणिमय मण्डपमें कोमल वस्त्र बिछी हुई रत्नमय चौकी पर उन्हें विराजमान किया ॥२॥

आनीय रासोचितभूषणानि परार्ध्यवस्त्राणि सुवासितानि ।
भूपालयस्याधिकृता सुभक्त्या संस्थापयामास यथा क्रमेण ॥३॥

पुनः रासके योग्य बहुमूल्य, इत्र आदिसे सुगन्ध युक्त किये हुये वस्त्र व भूषणोंको बड़ी ही श्रद्धा पूर्वक लाकर, क्रमके अनुसार श्रीयुगल सरकारको सजाया ॥३॥

धृत्वा करण्डानि विभूषणानां दिव्याम्बराणामुभयोः सकाशम् ।
अपावृतास्यानि कृताञ्जलिः सा स्थित्वा पुनश्चन्द्रमुखावपश्यत् ॥४॥

दिव्य वस्त्र व भूषणोंके खुले पिटारे श्रीयुगल सरकारके पास रखकर, हाथ जोड़के खड़ी हो वह उन श्रीयुगल सरकारके चन्द्रके समान शीतल-प्रकाशसे युक्त, परम आह्लाद कारक मुखारविन्दका दर्शन करने में तत्पर हो गयी ॥४॥

ततस्तु वेणी रचिता प्रियाया एणीदृशः श्रीरघुनन्दनेन ।
प्रसूनमुक्तामणिभिर्मनोज्ञा प्रेम्णा तु चातुर्यतया प्रियेण ॥५॥

तब श्रीरघुनन्दनप्यारेजूने प्रेम व चातुर्य पूर्वक मृग पूर्वक लोचना श्रीप्रियाजूकी वेणीको पुष्प, मोती व मणियोंके द्वारा बड़ी सुन्दर रचनाके साथ गूँथी ॥५॥

तयाऽपि भाले सुमनोहरे च प्राणप्रियस्य स्वयमम्बुजाक्ष्या ।
सुवेणुपत्रं रचितं मनोज्ञं विगाढभावेन सखीसमाजे ॥६॥

और श्रीप्यारेजूके परम मनोहर भालमें, स्वयं कमल-लोचना श्रीकिशोरीजीने भी सखी-समाजके बीचमें, विशेष गाढ़ भाव पूर्वक वेणुपत्राकार, सुन्दर और हृदयाकर्षक तिलक लगाया ॥६॥

आदर्शकल्पौ च मिथः कपोलौ प्रेमालयावङ्कयतुस्तथैव ।
ततः परं साञ्जनमञ्जुनेत्रौ कुञ्जेश्वरी सा समलञ्चकार ॥७॥

पुनः प्रेमके सदन दोनों श्रीयुगल सरकारने फूल पत्ती आदि अनेक प्रकारकी रचनाओंसे आयनाके

समान प्रति बिम्ब ग्रहण करने वाले, कपोलोंको परस्पर अलङ्कृत किया। पश्चात् उस शृङ्गार कुञ्जकी मुख्य सखीजीने उन कज्जल युक्त सुन्दर नयन (श्रीयुगल सरकार) का पूर्ण शृङ्गार किया॥७॥

पौष्पाणि माल्यानि ससौरभानि सा धारयित्वा प्रिययोः सुकण्ठे।
धूपं समाघ्राप्य पुनश्च ताभ्यां मादर्शयद्दीपमुदारचित्ता ॥८॥

पुनः उस उदार चित्ता सखीजीने सुगन्ध युक्त फूलोंकी मालाओंको, श्रीयुगल सरकारके गलेमें धारण कराके उन्हें धूप सुँघाकर मङ्गलमय दीपका दर्शन कराया॥८॥

सौवर्णपात्रस्थितपायसान्नं समर्प्य सा वै परयाऽनुरक्त्या।
पुष्पार्तिकं चारु चकार भूयः भक्त्या तयोः सर्वसखीसमेता ॥९॥

तत्पश्चात् परम अनुराग पूर्वक, सुवर्णके पात्रमें रक्खी हुई पायस (खीर) को दोनों प्यारे सरकारके लिये समर्पण करके, समस्त सखियोंके सहित भक्ति पूर्ण भावसे उनकी पुष्पार्ती (फूल आरती) उतारी॥९॥

आनन्दमत्ताऽभिमुखे ननर्त प्रदाय ताभ्यां कुसुमाञ्जली च।
संस्तुत्य भूयः प्रणनाम जुष्टे ब्रह्मादिभिस्तद्द्वयपादपद्मे ॥१०॥

इसके बाद पुष्पाञ्जलि समर्पण करके आनन्दसे मस्त हो वह श्रीयुगल सरकारके सामने नाचने लगी तत्पश्चात् स्तुति करके, ब्रह्मादि देवोंसे सेवित, उनके श्रीचरण कमलोंको प्रणाम किया॥१०॥

परस्परं चापि ततः सहर्षं ननाम भक्त्याऽऽश्रुपरिप्लुताक्षी।
रासालयस्याधिकृताज्ञया द्वे सख्यौ तदैवाययतुः सकाशम् ॥११॥

उसके बाद आनन्दके आँसुओंसे डब-डबाये (भरे हुए) नेत्रों वाली उस सखीने हर्ष और भक्तिसे युक्त होकर सबोंको प्रणाम किया, उसी समय रास-कुञ्जकी प्रधान सखीजूकी आज्ञासे दो सखियाँ श्रीयुगल सरकारके पास आ गयीं॥११॥

बद्धाञ्जलिं ते नतमस्तके तौ प्रणेमतुः सत्वरमात्तलाभे।
आज्ञापिते चोचतुरम्बुजाक्ष्यौ हेतुं स्वकीयागमनस्य सख्यौ ॥१२॥

उन्होंने दर्शनोंका लाभ लेकर शिरको झुकाया और हाथ जोड़कर प्रेम पूर्वक श्रीयुगलसरकारको प्रणाम किया। पुनः आज्ञा मिलने पर दोनोंने कमललोचना श्रीचन्द्रकला व श्रीचारुशीला सखीजीसे अपने आनेका हेतु निवेदन किया॥१२॥

श्रीचारुशीलेन्दुकले तदानीं विज्ञापयामासतुरात्मदाभ्याम् ।
प्रणम्य वै चन्द्रचयाननाभ्यां ताभ्यां मिथोऽर्पितहस्तकाभ्याम् ॥१३॥

उन दोनों मुख्य यूथेश्वरी सखियोंने प्रणाम करके, परस्पर एक दूसरेके कन्धेपर हस्तकमल रक्खे हुये, चन्द्र समूहोंके समान परम प्रकाशमय आह्लाद युक्त मुखारविन्दसे पूर्ण भक्तोंके लिये अपने आपको दे डालने वाले, उन श्रीयुगल-सरकारको उन सखियोंके उस "आगमन-कारण"को ज्ञात कराया ॥१३॥

रासोत्सवायाशु ततोऽभिरामौ सखीजनैः साकमतुल्यरूपौ ।
रासस्थलीं श्रीरसिकाधिराजौ प्रजग्मतुः कामगयानकेन ॥१४॥

इस हेतु अनुपमेय रूपवाले, सब प्रकारसे सुन्दर, भक्तोंको अपना सम्राट् माननेवाले, श्रीयुगल सरकार, भगवदानन्दको देनेवाले, उस उत्सवको करनेके लिये, इच्छानुसार चलनेवाले विमानके द्वारा, रासस्थली अर्थात् विशेष आत्मानन्द प्रदान करनेवाले स्थानमें, पधारे ॥१४॥

प्रेष्ठावुपागम्य मनोहराङ्गौ चिन्तापहौ द्वारि सुखैकमूर्त्ती ।
विलोक्य साऽनन्दमहाब्धिमग्ना न स्वागतं चापि शशाक कर्तुम् ॥१५॥

रास कुञ्जकी वह मुख्य सखी अपने द्वारपर आकर उन मन-हरण अङ्गवाले सुखकेस्वरूप, चिन्ताको दूर करनेवाले दोनों श्रीयुगल सरकारोंका दर्शनकरते ही आनन्दरूपी महासागरमें इस प्रकार डूब गयी कि, उनका स्वागत करनेके लिये भी, समर्थ न हुई अर्थात् बेसुध हो गयी ॥१५॥

स्वकिङ्करीभिः परिबोधिताऽथो विष्टभ्य चात्मानमुदारधृत्या ।
नीराजनं हर्षयुता चकार श्रीमैथिलीराघवयोः सखीभिः ॥१६॥

पुनः अपनी सखियोंके द्वारा सावधानकी गयी, उस रास कुञ्जकी मुख्य सखीने अपनी उदार धृतिसे अपने हृदयको स्थिर करके सखियोंके सहित श्रीमिथिलेशनन्दिनी व श्रीरघुनरप्यारेजूकी आरती की ॥१६॥

वृष्टिं पुनः पुष्पमयीं विधाय तयोरुपर्यम्बुजनेत्रयोः सा ।
उत्तार्य तस्माच्छिबिकां निवेश्य निन्ये मुदा रासगृहे हृदीशौ ॥१७॥

पुनः वह उन दोनों कमल-नयन, श्रीयुगल सरकारके ऊपर फूलोंकी वर्षा करके, अपने उन दोनों हृदयके स्वामी स्वामिनीजूको उस "कामग" नामके विमानसे उतार कर पालकीमें बिठाकर रास भवनमेंले गयी ॥१७॥

लतानिकेतैः सफलैश्च वृक्षैर्गुल्मान्विते कोकिलकूजिते च ।
सुपुष्पितारामसमन्विते तौ तस्मिन्नपि प्रेष्ठतमौ तयाऽऽल्या ॥१८॥

और उस सखीने परम-प्यारे दोनों सरकारको लताओंसे बने हुये गृह वाले, फले हुये वृक्ष व गुल्मोंसे युक्त कोयलोंके शब्दसे सुशोभित, फूली हुई वाटिकासे अलंकृत, उस रास भवनमें भी ॥१८॥

मनोरमे पुष्पमये सुदिव्ये गवाक्षजालैः समलङ्कृते च ।
त्रिधाऽनिलैः पूरितमण्डपे वै नानापरिस्पन्दसमन्विते च ॥१९॥

नाना प्रकारकी रचनासे युक्त, शीतल, मन्द, सुगन्ध पवनसे पूर्ण, जालदान (झरोखों) से सुशोभित फूलोंसे बनाये हुये परम सुन्दर, अत्यन्त दिव्यमण्डपमें ॥१९॥

सिंहासने रत्नमये सुरम्ये निवेशितौ स्वास्तरणेन युक्ते ।
सखीनिकायैः परिवारितौ तौ विरेजतुः प्रीतिनिषेव्यमाणौ ॥२०॥

अत्यन्त सुन्दर बिछावन युक्त रत्नमय सिंहासन पर विराजमान किया । सखी वृन्दोंसे घिरे हुए, उन श्रीयुगल सरकारकी उस सखीने प्रेम पूर्वक इस तरहसे सेवाकी, जिससे वे प्रसन्नताके कारण परम शोभाको प्राप्त हुए ॥२०॥

छत्रं गृहीत्वा मृदुपाणिपद्मे काचित्तु सिंहासनपृष्ठभागे ।
रराज रामा नलिनायताक्षी दिव्याम्बराभूषणभूषिताङ्गी ॥२१॥

कोई दिव्य वस्त्र भूषणोंसे भूषित अङ्ग वाली, कमलके समान विशाल लोचना सखी, अपने कोमल हस्त-कमलमें छत्र लेकर सिंहासनके पीछे सुशोभित हुई ॥२१॥

काश्चिच्चलच्चामरपद्महस्ताः स्थिताः सुखं तत्र च सव्यपार्श्वे ।
काश्चिन्मयूरस्य सुपिच्छगुच्छानादाय रेजुः प्रियदक्षभागे ॥२२॥

कुछ सखियाँ अपने २ हस्त कमलोंमें चँवरको डुलाती हुई सुखपूर्वक, श्रीयुगल सरकारके बायें भागमें खड़ी हुईं और कुछ अपने हाथोंमें मयूरपक्ष (मोरछल) लेकर उनके दाहिने भागमें सुशोभित हुईं, ॥२२॥

सुवर्णदण्डानपरास्तथैव द्विपार्श्वयोः पाणितले निधाय ।
सवल्लभाया जनकात्मजाया रेजुः परार्घ्यांशुकभूषणाढ्याः ॥२३॥

और कुछ बहुमूल्य वस्त्र-भूषणोंका शृङ्गार धारण किये हुई, सोनेकी छड़ी हाथमें लिये श्रीयुगल-सरकारके दोनों भागमें सुशोभित हुईं ॥२३॥

ताम्बूलपात्राणि मनोहराणि काश्चित्समादाय सरोजपाणौ ।
काश्चित्तु मिष्टानि फलानि भक्त्या निधाय पात्रेषु समास्थिताश्च ॥२४॥

कुछ सखियाँ, प्रेम पूर्वक अपने हस्त कमलमें मनोहर पानदान, और कुछ मीठे फलोंके पात्र लेकर सुशोभित हुई ॥२४॥

सपल्लवं दीपयुतं च काश्चिद्दास्यो गृहीत्वा कलशं विरेजुः ।
काश्चित्सरय्वा अमृतोपमाम्भः पात्रेषु चाधाय सुवर्णवर्णाः ॥२५॥

कुछ दासियाँ आम्र पल्लवके सहित दीप युक्त सुवर्णमय कलशोंको लेकर और कुछ सुवर्णके समान गौरस्वरूप वाली सखियाँ अनेक पात्रोंमें अमृतके समान स्वादिष्ट श्रीसरयूजीके जलको लिये हुई सुशोभित हुई ॥२५॥

काश्चित्तदैवं चषकाणि पाणौ मिष्टान्नपात्राणि तथैव काश्चित् ।
तयोर्विरेजुर्युगपार्श्वयोस्ताः श्रीजानकीराघवयोः शुभाङ्ग्यः ॥२६॥

इसी प्रकार उस समय कुछ सखियाँ गिलास आदि पीनेके लघु पात्र तथा सुस्वादु मिष्टान्नके अनेक पात्रोंको लेकर श्रीजनकनन्दिनी व श्रीरघुनन्दन प्यारेजूके दोनों बगलमें सुशोभित हुई ॥२६॥

धूपं तदाऽऽघ्राप्य प्रदर्श्य दीपं नैवेद्यकस्यापि विधिं चकार ।
सुपायसैस्तावपि तर्पयित्वा साऽकारयन्नाचमनं प्रियाभ्याम् ॥२७॥

तब उस रास कुञ्जकी सखी श्रीयुगल सरकारको धूप सुँघा कर तथा मङ्गलदीपको दिखाकरके नैवेद्य की विधि करने लगी, उस विधिमें सुन्दर पायस (खीर) से दोनों प्यारे सरकारको तृप्त करके, उसने उन्हें आचमन करवाया ॥२७॥

नीराजनं साऽथ चकार मुग्धा हर्षाश्रुकाम्भोरुहपत्रनेत्रा ।
गानैश्च वाद्यैर्दरनिःस्वनैश्च युता वयस्याभिरलङ्कृताभिः ॥२८॥

उसके बाद हर्षाश्रु युक्त तथा कमलपत्रके समान नेत्र वाली उस सखीने, शृङ्गार युक्त सखियोंके सहित, गान, वाद्य, और शङ्ख ध्वनि पूर्वक श्रीयुगल सरकार की आरतीकी ॥२८॥

पुष्पाञ्जलिं सादरमर्पयित्वा प्रियाप्रियाभ्यां मृगशावकाक्षी ।
चक्रे स्तुतिं सा प्रणिपत्य भूयः श्रीश्रेयसोरब्जपदद्वयोर्हि ॥२९॥

पश्चात् मृगके बच्चेके समान विशाल, चञ्चल, लोचना वह सखी, दोनों सरकारोंको पुष्पाञ्जलि प्रदान करके तथा उनके कमलके समान कोमल और सुगन्ध युक्त श्रीचरणोंमें प्रणाम करने के बाद उनकी स्तुति करने लगी ॥२९॥

रासकुञ्जेश्वर्युवाच ।

जय रासरसेश्वरि ! पूर्णतमे ! रघुनन्दन ! आर्यकुमार ! हरे ! ।
जय चारुमृगाक्षि ! मनोज्ञतनो ! जलजाक्ष ! विमोहितमार ! हरे ॥३०॥

रासकुञ्जकी सखी बोलीः—हे पूर्णतमे ! (परब्रह्म स्वरूपे) हे रासरसेश्वरि ! (भगवदानन्द प्रदायक लीलाके रस (आनन्द)की स्वामिनी)जू ! हे भक्तोंके दुःखहारी प्राणप्यारे ! श्रीरघुनन्दनजू ! आपकी जय हो । हे मृगके समान विशाल व सुन्दर चञ्चल लोचनोंसे युक्त मन हरण व मङ्गलमय विग्रह वाली श्रीकिशोरीजी ! हे कमल नयन ! हे अपने सौन्दर्यसे कामको मोहित करनेवाले, भक्तोंके दुःख हारी प्यारे ! आपकी जय हो ।३०।

जय भूमिसुतेऽखिलसौख्यनिधे ! रससद्म ! मनोहररूप ! हरे ! ।
जय शीलकृपापरमायतने ! मम नाथ ! रसेश्वर-भूप ! हरे ! ॥३१॥

हे समस्त सुखोंकी निधि-स्वरूपा श्रीभूमिनन्दिनीजू ! आपकी जय हो । हे आनन्दके मन्दिर ! मनहरण रूप वाले, भक्त-दुःखहारी प्यारे ! आपकी जय हो ! हे शील व कृपाकी सर्व श्रेष्ठ भवन-स्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो । हे रसोंके स्वामी-सम्राट्, भक्त-दुःखहारी प्यारे ! आपकी जय हो ॥३१॥

जय सर्वसुरद्रुमपद्मपदे ! शरणागतवत्सल ! राम ! हरे !
जय सर्वहितैषिणि ! वेदनुते ! रसिकेश्वर ! रूपललाम ! हरे ! ॥३२॥

हे प्राणिमात्रके लिये कल्पवृक्षके समान अभीष्ट फलदायक चरण-कमल वाली श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो । हे शरणमें आये हुये जीवोंके ऊपर वात्सल्य भाव रखने वाले, घट-घट विहारी भक्त-दुःखहारी प्यारे ! आपकी जय हो । हे सभी चर अचर प्राणियोंका हित चाहने वाली, वेदोंके द्वारा स्तुति की हुई श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो । हे भक्तोंके शासन (आज्ञा) में रहने वाले, रूपसे परम सुन्दर-भक्त दुःखहारी प्यारे ! आपकी जय हो ॥३२॥

जय सर्वसुदिव्यगुणौघयुते ! श्रुतिवेद्य ! निजाश्रितसेव्य ! हरे ! ।
जय कोटिसुधांशुमनोज्ञमुखि ! प्रियवर्य ! परेशविभाव्य ! हरे ! ॥३३॥

हे समस्त, सुन्दर, दिव्य(अप्राकृत) वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, कारुण्य, माधुर्य, औदार्य आदि गुण समूहोंसे युक्ता श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो । हे वेदोंके द्वारा ठीक समझमें आने योग्य, तथा अपने आश्रितोंके लिये ही सुलभ-सेवा वाले, भक्त-दुःखहारी प्यारे ! आपकी जय हो। हे करोड़ों

चन्द्रमाओंके समान मनोहर मुख वाली श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे प्रेमपात्रोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा भावना करनेके योग्य, भक्त दुखहारी प्यारे ! आपकी जय हो ॥३३॥

जय रासरते ! रसिकेशनुते ! जय वारिधिजासुनिवास हरे ! ।
जय पद्मजविष्णुशिवार्च्यपदे ! क्षितिजाहृदयाब्जनिवास ! हरे ! ॥३४॥

हे श्रीप्राणप्यारेजूके आनन्दमें आसक्ति रखने वाली, हे भक्तोंके शासनमें रहने वाले प्राणप्यारे जूसे स्तुतिकी हुई श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो। हे लक्ष्मीजीके सुन्दर निवास भवन, भक्त दुखहारी प्यारे! आपकी जय हो। हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिके द्वारा पूजने योग्य श्रीचरण-कमल वाली श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे श्रीभूमिनन्दिनीजूके हृदय रूपी कमलमें निवास करने वाले भक्त दुखहारी प्यारे! आपकी जय हो ॥३४॥

जय दीनहिते ! मिथिलेशसुते ! रघुवंशविभूषण ! कान्त ! हरे ! ।
जय मोहनमोहिनि ! शीलनिधे ! नृपनन्दन ! वल्लभ ! दान्त ! हरे ! ॥३५॥

हे साधनाभिमान रहित साधकोंका हित करने वाली श्रीमिथिलेश-दुलारीजू ! आपकी जय हो, हे रघुवंशको भूषित करने वाले प्यारे ! भक्त दुखहारी ! आपकी जय हो। हे विश्वविमोहन श्रीप्राणप्यारेजीको अपने गुण, स्वरूप आदिसे मुग्ध करने वाली शीलकी निधि स्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुये भक्त दुखहारी प्यारे नृपनन्दनजू ! आपकी जय हो ॥३५॥

जय चन्द्रकलादिसखीमहिते ! मुनिमानसराजमराल ! हरे ! ।
जय जानकि ! रूपनिधे ! परमे ! रुचिरस्मित ! भूषितभाल ! हरे ! ॥३६॥

हे श्रीचन्द्रकला आदि सखियोंसे पूजित श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो, हे मुनियोंके मन रूपी मानसरोवरमें निवास करने वाले राजहंस, भक्तोंके दुखहारी प्यारे आपकी जय हो। हे समस्त शक्तियोंमें सर्वश्रेष्ठ, रूपकी निधि श्रीजनकलडैतीजू ! आपकी जय हो। हे सुन्दर मुस्कानसे युक्त व खौर आदिसे भूषित भालवाले भक्त दुखहारी प्यारे ! आपकी जय हो ॥३६॥

जय लज्जितकोटिसहस्ररते ! त्रिदशद्विजधेनुसुपाल ! हरे ! ।
जय दिव्यविभाव्यतनो ! शुभदे ! धृतरत्नविभूषणमाल ! हरे ॥३७॥

हे अपने श्रीअङ्गकी शोभासे करोड़ों हजार रतियोंको लज्जित करने वाली ! श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे विशेष रूपसे देव, ब्राह्मण (ब्रह्मोपासक), गौका पालन करने वाले भक्त

दुखहारी प्यारे ! आपकी जय हो। हे अप्राकृतः प्राणियोंके द्वारा भावना करनेके योग्य श्रीविग्रह वाली, भक्तोंके लिये मङ्गल प्रदायिका श्रीकिशोरीजी आपका मङ्गल हो। हे रत्नोंके भूषण, व मालाओं को धारण करने वाले भक्त दुखहारी ! प्यारे ! आपकी जय हो ॥३७॥

अधुना निजपादसरोजरता अनुगाः परिनन्दयत कृपया ।
मिथिलेशसुते ! रघुनन्दन ! हे निजमङ्गलरासमहोत्सवतः ॥३८॥

हे श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीकिशोरीजी ! व हे श्रीरघुनन्दनप्यारेजू ! अब आप दोनो सरकार अपने मङ्गलमय भगवदानन्द प्रदायक महोत्सवसे, श्रीचरण-कमलोंमें आसक्त रहने वाली अपनी अनुचरियोंको पूर्णरूपसे आनन्दित कीजिये ॥३८॥

इयमेव हि सम्प्रति मे पदयोर्युवयोर्विनतिर्विनतिर्विनतिः ।
इति,सोचिवती चरणाम्बुजयोः पतिता भृशमोदभरेण हृदा ॥३९॥

हे श्रीयुगल सरकार ! इस समय आपके श्रीचरण कमलोंमें यही विनती है, यही विनती है, यही विनती है। भगवान शङ्करजी, बोले:–हे पार्वती ! राम कुञ्जकी मुख्य सखीने इस प्रकार श्रीयुगल सरकारसे प्रार्थनाकी और आनन्द निर्भर हृदयसे उनके श्रीचरण कमलोंमें गिर पड़ी ॥३९॥

उत्थापिता सादरमम्बुजाक्षी ह्याश्वासिता तर्हि सुखास्पदाभ्याम् ।
स्पृष्ट्वा च सुस्निग्धकराम्बुजाभ्यां कृपाकटाक्षैर्वचनैः स्मितैश्च ॥४०॥

तब परम सुखके स्थान श्रीयुगल सरकारने उस कमल-लोचना सखीको बड़े आदरपूर्वक उठाकर, अपने अत्यन्त चिकने व कोमल हस्त कमलोंसे उसके शिर आदिका स्पर्श करके, अपने कृपाकटाक्ष, मुस्कान व मनोहर वचनोंके द्वारा उसको आश्वासन (सान्त्वना) प्रदान किया ॥४०॥

आज्ञापिताः प्राणपरप्रियाभ्यां गन्धर्वनागामरकिन्नराणाम् ।
यक्षादिकानां तनया नृपाणां रासोत्सवाय स्मितमोहनाभ्याम् ॥४१॥

अपने मुस्कानसे सभीको मुग्ध करने वाले तथा प्राणसे परम प्रिय श्रीयुगल सरकारने गन्धर्व, नाग, देव, किन्नर, यक्षादिकों की कन्याओंको तथा राज कुमारियोंको रास (भगवदानन्द प्राप्ति कारक लीला) के लिये आज्ञा प्रदानकी ॥४१॥

यथोचितेष्वासनकेषु विष्टा माणिक्यरत्नाचितमण्डपे ताः ।
रासोत्सुका रासपरा रमज्ञा राकापतिस्मेरमनोहरास्याः ॥४२॥

उस रत्न खचित मणिमय मण्डपमें शरदृतुके पूर्णचन्द्रके समान मनोहर, मुस्कान युक्त

सुखवाली, प्यारेके स्वरूपज्ञानसे युक्त, प्यारेके नाम, रूप, लीला, धाममें आसक्त तथा प्यारेके ही आनन्द की उत्सुक वे सखियाँ यथोचित आसनो पर बैठी ॥४२॥

वरालकाः पद्मपलाशनेत्राः परार्ध्यदिव्याभरणाञ्चिताङ्ग्यः।
प्रतीक्षमाणा मनसा निदेशं श्रीजानकीराघवयोर्विरेजुः ॥४३॥

उत्तम अलकावलीसे युक्त कमल-दलके समान नेत्र व बहुमूल्य दिव्य भूषणोंके भण्डारसे युक्त अङ्गवाली सखियाँ, अपने मन ही मन श्रीजनक नन्दिनी व श्रीरघुनन्दन प्यारेजूकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती हुई सुशोभित हुई ॥४३॥

श्रीचारुशीलेन्दुकलादिसख्यः स्थितास्तयोश्चाभिमुखं प्रधानाः।
श्रुतिप्रियाह्लादकगानविद्यायुक्ताः सखीभिः स्पृहणीयभावाः ॥४४॥

और श्रवणोको प्रिय तथा आह्लाद कराने वाली गान विद्यासे युक्त एव प्रशंसा करने योग्य भाव वाली श्रीचारुशीला व श्रीचन्द्रकला आदि मुख्य सखियाँ श्रीयुगलसरकारके सम्मुख विराजी ४४

चक्रुः सवाद्यं सरसं च गानं तालादिभेदैः स्वरसप्तकेन।
प्रसादयन्त्यो नवदम्पती ताः कारुण्यमाधुर्यसुखैकमूर्त्ती ॥४५॥

और वे कारुण्य, माधुर्य और सुखकी अद्वितीय मूर्त्ति, व सदा ही नवीन रहने वाले श्रीयुगल सरकारको प्रसन्न करती हुई, सप्तम स्वरसे युक्त तालादिक भेद पूर्वक, वाजोंके सहित, सरस (आनन्दमय) गान गाने लगीं ॥४५॥

आज्ञापितास्तु क्रमतोऽम्बुजाक्ष्या सकान्तया वै कृतयूथकाश्च।
रासाङ्गणे नृत्यकला विचित्राः प्रादर्शयन्कौशलमात्मनस्ताः ॥४६॥

पुनः श्रीप्राणप्यारेजूके सहित कमल लोचना श्रीकिशोरीजीका आदेश पाकर, वे सखियाँ अपने २ क्रम (पारी) से यूथ बना २ कर रासके प्राङ्गण (आँगन) में विचित्र २ (आश्चर्य पूर्ण) नृत्य कला व अपनी निपुणता, श्रीयुगल सरकारको दिखलाने लगीं ॥४६॥

विद्युल्लतास्ताः समुदीक्ष्य तत्र नवाम्बुदो नैकतनुर्विवेश।
तेनान्विताःस्ता अभवन् हि सर्वा नान्यामपश्यन्सहितां तु तेन ॥४७॥

नवीन मेघकी उपमासे युक्त श्रीप्राणप्यारेजू, बिजुलीकी लताकी उपमा धारण किये हुई उन सखियोंको देखकर, उनके सुखार्थ स्वयं अनेक (सहस्रों) रूप होकर उन (सखियों) में

मिल गये, जिससे सभी सखियाँ श्रीप्राणप्यारेजूसे युक्त होगयीं, परन्तु किसी भी सखीने अपनेसे अन्य किसी सखीको भी प्यारेसे युक्त न देखा ॥४७॥

आत्मानमालोक्य समं प्रियेण नान्याः सखीर्मोदयुता बभूवुः ।
दोर्भ्यां गृहीत्वा प्रियपाणिपद्मे मनोहराङ्ग्यो ननृतुर्विमुग्धाः ॥४८॥

सखियाँ केवल अपनेको प्यारेके साथ तथा अन्योंको एकाकी (अकेली) देखकर अपने प्रति उनकी विशेष कृपाका अनुभव करके, बड़ी ही सुखी हुई अतः प्यारे पर विशेष मुग्ध होकर वे मनोहर अङ्गोंवाली, प्यारेके दोनों कर कमलोंको अपने दोनों हाथोंसे पकड़ कर नाचने लगीं ॥४८॥

तासां तदा नूपुरकिङ्किणीनां श्रुत्वा रवं देवगणाः सभार्याः ।
द्रष्टुं तु तद्विस्मितमानसास्ते स्थलोन्मुखाकाशगता विरेजुः ॥४९॥

उन नाचती हुई सखियोंके नूपुर किङ्किणी आदिक भूषणोंके शब्दको सुनकर अप्सराओंके सहित देवगण विस्मित हो गये, अतः वे अपनी प्रियाओंके सहित उस लीलाका दर्शन करनेके लिये स्थलके ऊपर, आकाशमें आकर सुशोभित हुए ॥४९॥

पुष्पाण्यवर्षन्विबुधद्रुमाणां दृष्ट्वा हरिं नृत्यकलानिमग्नम् ।
तेषां निपेतुः पटभूषणानि सरोजमाल्यानि गतस्मृतीनाम् ॥५०॥

वे देवगण भक्त दुख हारी प्यारे को नृत्यकलामें निमग्न देखकर कल्पवृक्षोंके फूलोंकी वर्षा करने लगे, आनन्दमें शरीर आदिका भान न रहनेसे उनके वस्त्र भूषण और कमलकी मालायें गिरने लगीं ॥५०॥

पुनश्च गानं पुनरेव नृत्यं गानं सनृत्यं पुनरेव चक्रुः ।
आलक्ष्यते प्राणधनः सखीषु निजस्वरूपेण सहस्रशश्च ॥५१॥

इधर सखियाँ भी पुनः गान व पुनः नृत्यके सहित पुनः गान करने लगीं, उस समय सखियों के बीचमें प्राणधन (प्यारे) भी, अपने स्व स्वरूपसे हजारों रूपमें दिखाई पड़ने लगे ॥५१॥

ततस्तु कान्तांसधृतैकहस्तः प्रियः सखीमण्डलमध्यगोऽसौ ।
रराज रामो रमणीयरूपः कैशोरमूर्त्तिर्हतकामदर्पः ॥५२॥

पुनः अपनी शोभासे कामके अभिमानको चूर करने वाले, सोलह वर्षकी नूतन किशोर अवस्थासे सम्पन्न, सुन्दर स्वरूप, पट-पट विहारी, प्राणप्यारे सरकार श्रीकिशोरीजीके कन्धे पर अपना एक हस्त कमल रक्खे हुये, सखियोंके मध्य-मण्डलमें सुशोभित हुये ॥५२॥

स रूक्षवाचः स्वगिरा पिकादीन् गानेन गन्धर्वसुताश्च रासे ।
व्यलज्जयत्कोटिमनोभवं स रूपेण गुर्वीं सुषमां प्रपन्नः ॥५३॥

उस रासमें अपनी वाणीसे कोयल आदिकोंको तथा अपनी गानविद्यासे गन्धर्व कन्याओंको तुच्छ करते हुये निरतिशय शोभाको प्राप्त, उन सरकारजूने अपने रूपसे करोड़ों काम देवोंको लज्जित कर दिया ॥५३॥

यदा प्रियाया मृदुपाणिपद्मो निधाय हस्ताम्बुजयोर्मनोज्ञे ।
ननर्त रामः प्रियया परीतोऽवाग्गोचरा तस्य छविस्तदाऽऽसीत् ॥५४॥

जब श्रीप्राणप्यारेजू श्रीप्रियाजूके कोमल व मनोहर हस्त कमलको अपने दोनों हस्त कमलोंमें रखकर श्रीप्रियाजूके सहित नृत्य करने लगे, उस समयकी उनकी छवि, वाणीसे अवर्णनीय थी ॥५४॥

स्रग्वस्त्रभूषावयवस्मृतिश्च जगाम मूर्च्छां किल सर्वशैव ।
तत्र स्थितानामवलोक्य कामं प्राणेश्वरौ रासपरायणौ तौ ॥५५॥

रास करते हुये दोनों प्राणनाथ (श्रीयुगल सरकार) का, अपनी इच्छानुसार दर्शन करके उस रासस्थलमें उपस्थित सखियोंकी, तथा गुप्त रूपसे उपस्थित अन्य सपत्नीक देवताओंकी अपने वस्त्र-भूषण, अङ्ग आदिकी सुधि बिल्कुल जाती रही ॥५५॥

रामस्तदा रासविलासकौशलं समीक्ष्य तत्रासुपरप्रियायाः ।
माधुर्यसिन्धोश्छविरूपसिन्धोराश्चर्यसिन्धावभवन्निमग्नः ॥५६॥

उसके पश्चात् उस रासकुञ्जमें समुद्रके समान अथाह छवि, रूप, माधुर्य सम्पन्ना, प्राणोंसे परम प्यारी श्रीमिथिलेश-दुलारीजूकी रासक्रीड़ाकी निपुणताको सम्यक प्रकारसे अवलोकन करके योगियों के मनमें रमण करनेवाले घट-घट वासी श्रीप्राणप्यारेजू आश्चर्य-सागरमें निमग्न हो गये ॥५६॥

ततस्तु नागामरसिद्धयक्षगन्धर्वविद्याधरकिन्नराणाम् ।
राज्ञां सुतानां निमिसम्भवानां स्वलङ्कृतानां रतिमोहिनीनाम् ॥५७॥

तदनन्तर नाग, देव, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर आदि राज कन्याओं और अपनी छविसे रतिको मुग्ध करने वाली सुन्दर शृङ्गार युक्ता निमिवंश कुमारियोंने ॥५७॥

आज्ञापितानां विधुभानुपुत्र्या यूथैः समावृत्य विचित्ररीत्या ।
कृतो महारासमहोत्सवश्च रामं सकान्तं किल मोदयद्भिः ॥५८॥

श्रीचन्द्रकलाजीकी आज्ञा प्राप्तकर, समस्त यूथोंके सहित श्रीप्रियाजूके समेत परमप्यारे श्रीरामजी सरकारको; अपने आगारमें लाकर आनन्दित करते हुये विचित्र रीतिसे महारास महोत्सव किया ॥५८॥

पीताम्बरस्ताश्च सखीः समस्ता अनन्तरूपोऽसुखयन्मुदैवम् ।
प्रियेङ्गितज्ञस्तु निशीथकाल व्यतीतमाबुध्य जगाम तन्द्राम् ॥५९॥

और पीताम्बर धारी श्रीप्राणप्यारेजू इस प्रकारसे आनन्द पूर्वक अपने अनन्त रूप बनाकर, उन,समस्त सखियोंको सुखी करते हुये। पुनः श्रीप्रियाजूके सङ्केतके द्वारा अर्धरात्रि- समय गत हो गया जानकर, आलस्यको प्राप्त हुये ॥५९॥

अतिश्रमाप्ता अपि ताश्च सर्वा दरालसाकुञ्चितचक्षुरब्जौ ।
निरीक्ष्य संवेशगृहं तदानीं समानयामासुरुदीर्णकान्ती ॥६०॥

इति पञ्चविंशोऽध्यायः ।

—ः इति मासपारायण ७ समाप्तः ः—

अत एव स्वयं विशेष श्रमको प्राप्त हुई वे समस्त सखियाँ, उस समय कान्तिपुञ्ज, श्रीयुगल सरकारके नवकमलोंको किञ्चित् आलस्यसे सकुचे हुये देखकर, उन्हें शयनागारमें ले आती हुईं ॥६०॥

अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२६॥

अपने महलमें श्रीस्नेहपराजीका श्रीयुगलसरकारको शयनकराना ।

श्रीशिव उवाच ।

तन्मन्दिरं कोटिशशिप्रकाशं विचित्रचित्रं सुविचित्रशोभम् ।
आवश्यकाशेषसुवस्तुयुक्तं सर्वर्तुसेव्यं गिरिजे ! मनोज्ञम् ॥१॥

हे पार्वती ! वह शयन भवन करोड़ों चन्द्रमाके समान शीतल और प्रकाश वाला, आश्चर्यकारी, चित्रोंसे सुशोभित, परम विचित्र शोभा सम्पन्न और आवश्यक समस्त सुन्दर वस्तुओंसे युक्त एवं चित्त हर्षक तथा सभी ऋतुओंमें सेवन करने योग्य था ॥१॥

विधाय तत्रार्तिकमुत्सवं ता निधाय तौ चोरसि कुञ्जमय्युः ।
आघ्राय पादाम्बुजसौरभं स्वं स्वं कथञ्चित्परितोषिता वै ॥२॥

उस शयन भवनमें श्रीयुगल सरकारकी शयन आरती करके उनके द्वारा परितोषको प्राप्त कराई गईं वे सखियाँ, युगल चरण-कमलोंकी सुगन्धको सूँघकर, उन्हें अपने हृदयमें विराजमान करके, किसी प्रकारसे अपने २ कुञ्जमें गईं ॥२॥

संप्रस्थितास्वम्बुजलोचनासु स्नेहाश्चिता स्नेहपरा तदानीम् ।
पत्योः समालोकनसाभिलाषे निमेषशून्ये नयने चकार ॥३॥

जब वे कमललोचना सखियाँ अपने २ कुञ्जके लिये विदा हुईं, तब अपनी विदाईकी बारी उपस्थित समझकर स्नेहसे शोभित श्रीस्नेहपराजी, श्रीयुगल सरकारका एकटक होकर दर्शन करने लगी ॥३॥

ताम्बूलवीटीश्च शिवे ! प्रियाभ्यां समर्प्य माणिक्यसुतल्पगाभ्याम् ।
स्थिता निबद्धाञ्जलिरश्रुनेत्रा दृष्ट्वा वियोगावसराधिमात्ताम् ॥४॥

हे शिवे ! श्रीयुगल सरकारसे वियोग होनेके समयकी, मानसी वेदनाको उपस्थित देखकर, मणिमय सुन्दर पलङ्ग पर विराजमान, दोनो प्यारे सरकारको पानका बीरा समर्पण करके, अश्रु युक्त नेत्र हो वह, हाथ जोडकर खडी हो गयी ॥४॥

महादयार्द्राशयया स्वहस्ताद्भुक्तस्रजो दानत आदरेण ।
प्रियेण सार्कं स्ववचोभिराज्ञां ददौ स्वकुञ्जं परितोष्य गन्तुम् ॥५॥

तब श्रीप्राणप्यारेजूके सहित दयासे महाद्रवित हृदय वाली श्रीकिशोरीजीने अपने हाथसे आदर पूर्वक प्रसादी मालाके प्रदानसे तथा अपने वचनोके द्वारा उसे परितोष कराके अपने कुञ्जमें जानेके लिये आज्ञा प्रदान की ॥५॥

आज्ञां च तस्याः सुनिधाय भाले संस्पृश्य दृग्भ्यां चरणारविन्दे ।
निवेश्य चित्ते च तयोः स्वरूपं कुञ्जं गतेन्दुकलया सहैव ॥६॥

श्रीकिशोरीजीकी आज्ञाको अपने मस्तक पर रखकर, अपने नेत्रासे उनके श्रीचरण-कमलोंको भली प्रकारसे स्पर्श कर तथा श्रीयुगल छवि हृदयमें विराजमान करके श्रीचन्द्रकलाजीके सहित वह अपनी कुञ्जको गयी ॥६॥

स्वापालयद्वारि बहिः स्थिता सा नताऽतिसौभाग्यविभूषिमाला ।
आश्वास्यमाना विपुलप्रयत्नैर्नीता कथञ्चित्स्वनिकुञ्जमाद्यम् ॥७॥

पुनः वह, श्रीयुगल सरकारके शयन भवनके बाहरी फाटक पर आकर अपने अत्यन्त सौभाग्य भूषित मस्तकको उसीकी ओर झुकाये हुई खड़ी होगयी, तब वहाँसे भी बहुत युक्तियों द्वारा आश्वासन कराते हुये उन्हें वे श्रीचन्द्रकलाजी अपने श्रेष्ठ कुञ्जमें ले गयीं ॥७॥

ततस्तु तां प्रीतितया मनोज्ञैः कृपालुताऽऽकृष्टहृदा वचोभिः ।
चन्द्राकंजा सुष्ठुतया यथार्हमाश्वासयामास सबाष्पनेत्राम् ॥८॥

वहाँ वे कृपालुतावश अपने आकृष्ट (खिचे हुये) हृदयसे, प्रेमपूर्वक मनोहर वचनोंके द्वारा उन्होंने आँसू भरे नेत्र वाली श्रीस्नेहपराजीको भली प्रकारसे यथा योग्य आश्वासन प्रदान किया ॥८॥

श्रीवाद्विमुच्य कुसुमाचितदिव्यमाले श्रीस्वामिनीदयितयोः करकञ्जलब्धे ।
प्रीत्या सरोजकमनीयकरेण तस्या न्यस्ते सुकम्बुरुचिहारिमनोज्ञकण्ठे ॥९॥

पुनः श्रीचन्द्रकलाजीने श्रीस्वामिनीजू व श्रीप्यारेजूके हस्त कमलसे मिली हुई फूलोंकी मालायें अपने गलेसे निकाल कर, कमलके सदृश सुन्दर, अपने हाथसे, शङ्खकी शोभाको हरण करने वाले श्रीस्नेह-पराजीके गले में डाल दी ॥९॥

आज्ञां दिदेश गमनाय पुनः पुनश्च प्रेमाप्लुतेन हृदयेन समादरेण ।
स्पृष्ट्वा तदङ्घ्रियुगलं स्वसखीसमेता तद्ध्याययौ प्रियतमौ पथि चिन्तयन्ती॥१०॥

पुनः प्रेम भरे हुये हृदय से, आदर पूर्वक श्रीचन्द्रकलाजूने उन्हे अपनी कुञ्ज आनेके लिये वारम्वार आज्ञा प्रदानकी। तदनुसार वे श्रीस्नेहपराजी उनके युगल श्रीचरणोंका स्पर्श करके अपनी सखियोंके सहित, श्रीयुगल सरकारका चिन्तन करती हुई श्रीचन्द्रकलाजूके महलसे विदा होकर राज-मार्गमें आयीं ॥१०॥

श्रीप्रेयसोर्विरहवारिधिमग्नचित्ता प्रेमाश्रुपूर्णनवसाञ्जनकञ्जनेत्रा ।
ऊचुः सखीति शृणु मे हृदयस्य वार्तां पाणिं निधाय निजमञ्जुलकञ्जपाणौ ॥११॥

भगवान शङ्करजी बोलेः—हे पार्वती ! श्रीयुगल-सरकारके विरह रूपी समुद्रमें डूबे हुये चित्त व प्रेमाश्रुभरे अञ्जन युक्त नवीन कमलके समान नेत्र वाली वे श्रीस्नेहपराजी, सखीका हाथ अपने कमल-कोमल हाथमें लेकर बोलीः—हे सखी ! मेरे हृदयकी बात सुनों ॥११॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सौभाग्यभाजनमिदं हि दिनं सुलब्धं दास्यामपीह विहिता च कृपा गरिष्ठा ।
सम्मोहिनी मयि परा करुणावशाभ्यां ताभ्यां विहीनगृहमालि ! कथं व्रजेयम्॥१२॥

अहह ! आज करुणाके वशमें हो जाने वाले श्रीयुगल सरकारजू सपरिकर मुझ दासीके कुञ्जमें

पधारे, यह उनकी मेरे प्रति परम आश्चर्य कारिणी, व बड़ी भारी कृपा है। अतः आजका यह दिन मुझे सौभाग्यका पात्र ही मिल गया, अरी सखी! जिन श्रीयुगल सरकारके पधारनेसे मेरे उस कुञ्ज में इतने आनन्दकी वर्षा हुई, भला उन दोनों सरकारसे शून्य, अपने उस कुञ्जको मैं कैसे चलूँ?॥१२॥

रुद्धा गतिश्चरणयोर्मम साम्प्रतं हि कुत्रापि गन्तुमनुगे नहि चास्मि शक्ता ।
इत्थं निगद्य निपपात तु राजमार्गे श्रीप्रेयसोर्वदनचन्द्रविलीनवृत्तिः ॥१३॥

अरी सखी! अब मेरे चरणों की गति रुद्ध है अर्थात् श्रीयुगल सरकारके विरहसे मेरे पैर आगे नहीं बढ़ रहे हैं, अत एव इस समय कहीं भी जानेको मैं समर्थ नहीं हूँ। भगवान् शङ्करजी बोलेः—हे पार्वती! इस प्रकार कह कर वे श्रीस्नेहपराजी श्रीयुगल सरकारके मुख रूपी चन्द्रमें विलीनवृत्ति (अन्तर्वृत्ति) हो कर राज मार्गमें गिर पड़ीं ॥१३॥

सख्यो निरीक्ष्य विरहेण विमूर्च्छितां तां शीतांशुपूर्णवदनां विकला बभूवुः ।
कार्यं किमत्र न हि चेतसि बोधमीयुःशक्त्या कृतेऽपि यतने न च साऽऽप सञ्ज्ञाम्॥

सखियां श्रीयुगल सरकारके विरहसे पूर्णचन्द्रमुखी श्रीस्नेहपराजीको मूर्च्छित देखकर व्याकुल हो गयीं, पुनः उन्हें सावधान करनेके लिये वे यथा शक्ति सब कुछ प्रयत्न करतीं हुईं किन्तु श्रीस्नेहपराजी सावधान न हो सकीं। अतः उन्हें सावधान करनेके लिये उन सखियोंको फिर कोई उपाय ही न सूझा ॥१४॥

आकाशगीः श्रुतिसुखा हि तदैव जाता पुष्पानुवृष्टिसहिता विपुलार्थयुक्ता ।
श्रीमद्यशध्वजसुते! सफलो भवस्ते ह्युत्तिष्ठ याहि भवनं प्रिययोरुपेतम् ॥१५॥

उसी समय श्रवणोंको सुख देनेवाली बहुत अर्थसे युक्त पुष्पवृष्टि पूर्वक आकाश वाणी हुई कि:—हे श्रीयशध्वजनन्दिनीजू! आपका जन्म सफल है, उठो और जाओ। तुम्हारा भवन दोनों श्रीप्रियाप्रियतम सरकारसे युक्त है ॥ १५ ॥

सञ्ज्ञां निशम्य तदवाप च पुष्पवृष्टिं दृष्ट्वाऽथ धैर्यमधिगम्य सखीं बभाषे ।
संदृश्यते न दश दिक्ष्वपि काऽपि नारी मर्त्यः कुतः कनकसञ्ज्ञकमन्दिरेऽत्र॥१६॥

उस आकाश वाणीको सुनकर श्रीस्नेहपराजी सावधान हुईं, पुनः फूलोंकी वर्षा देखकर धैर्य को प्राप्त हो अपनी सखीसे बोलीं:—हे सखी! मुझे दशों दिशाओंमें आपलोगोंको छोड़कर यहाँ और कोई स्त्री भी नहीं दिखाई देती, तब भला इस कनक नामके भवनमें मनुष्य कहाँसे आयेगा?

अतः यह फूलोंकी वर्षा किसने की ?, उठो महल जाओ। जिनके विरहमें तुम व्याकुल हो रही हो उन श्रीयुगल सरकारसे तुम्हारा महल युक्त है" यह कहा किसने ? ॥१६॥

वाणी श्रुता श्रवणमूलसमीपगेव स्वाश्चर्यमुक्तमनयाऽऽलि ! निबोध सत्यम् ।
नूनं हि चेयमधुना सुरवर्त्मवाणी तोषाय मे दयितयोः कृपया प्रसूता ॥१७॥

अरी सखी ! यह वाणी मुझे ऐसी सुनाई पड़ी है, मानों कोई मेरे कानके मूलमें ही कह रहा हो, इसलिये निश्चय ही मेरे सन्तोषके लिये श्रीयुगल सरकारकी कृपासे ही यह आकाश-वाणी प्रकट हुई है, सो इसने बड़े ही आश्चर्यकी बात कही है, परन्तु उसे तुम सत्य जानों ॥ १७ ॥

स्वाश्चर्यकं श्रवणगं हि वचः सखीति "कुञ्जं गतौ हि विरहेण ययोर्युताऽसि" ।
प्रस्वाप्य तौ शयनसञ्ज्ञकमन्दिरेऽहमायामि साम्प्रतमृतं तदिदं कथं स्यात् १८

अरी सखी ! "जिनके विरहसे तुम व्याकुल हो, वे श्रीयुगल सरकार तुम्हारे कुञ्जमें चले गये" आकाश वाणीसे सुना हुआ यह वचन बड़ा ही आश्चर्य मय है, क्योंकि मैं उन श्रीयुगल सरकारको शयन भवनमें शयन कराके ही तो अभी आ रही हूँ सो मैं बीच मार्गमें ही हूँ और श्रीयुगल सरकार मेरी कुञ्जमें विद्यमान हैं, यह आकाश वाणीका वचन कैसे सत्य होगा ? ॥१८॥

मोघेयमालि ! भवितुं न हि जातु युक्ता मातुः पुरा श्रुतवती बहुवारमेतत् ।
तस्माद्व्रजेम न चिरेण किलात्मकुञ्जं स्यान्मे मनोरथलता सफला न चित्रम् १६

अरी सखी ! परन्तु पहले अपनी श्रीअम्बाजीसे यह बात बहुतसे बार सुन चुकी हूँ कि, यह आकाश वाणी कभी भी निष्फल नहीं जाती । इस लिये शीघ्र अपनी कुञ्ज चलें, अवश्य ही मेरे मनोरथ रूपी लतामें फल लगेंगे (इस विषयमें श्रीयुगल सरकारकी कृपासे) कोई आश्चर्य भी नहीं है ॥१६॥

श्रीशिव उवाच ।

वामाक्षिबाहुभ्रुकुटिप्रमुखास्तदङ्गाः विश्वासमाशुजनयन्स्फुरणैस्तदानीम् ।
गत्वा ददर्श भवनं युगलप्रकाशं प्रेमातुरालिभिरसावतिहाय शोकम् ॥२०॥

हे पार्वती ! उसी समय श्रीस्नेहपराजीके बायें नेत्र, भुज, भौंह आदि अङ्गोंने अपने फड़कनेसे, आकाश वाणीके उस वचनपर उन्हें शीघ्र विश्वास उत्पन्न करा दिया, अतः वे विरह रूपी शोकको परित्याग करके प्रेमातुर हो सखियोंके सहित अपने भवनमें पधारीं, वहाँ पहुँचकर उन्होंने श्रीयुगल सरकारके गौर तथा श्याम प्रकाशसे युक्त अपने भवनको देखा ॥२०॥

अन्तः प्रविश्य मुदिता शयनालये स्वे सुप्तौ निरीक्ष्य चकिता भृशमास बाला ।
दृग्भ्यां तयोरछविसुधां सुतरां पिबन्ती ह्यासेदुषी युगलपादसमीपगा सा ॥२१॥

फाटकके बाहरसे ही अपने भवनको गौर श्याम प्रकाशसे युक्त देखकर मुदित हो, श्रीस्नेहपराजी भीतर गयीं, वहाँ अपने शयन गृहमें श्रीयुगल सरकारको सोये हुये देखकर अत्यन्त चकित हो गयी पुनः सावधान होकर श्रीयुगलछवि-सुधाको भली प्रकारसे पान करती हुई दोनों सरकारके श्रीचरण-कमलोंके पास बैठ गयीं ॥२१॥

सेवां चकार विधिना हि मनोऽनुभवैरानन्दमग्नहृदयाऽश्रुकलाकुलाची ।
प्रेम्णा प्रसन्नहृदयावमितद्युती तावुन्मील्य कञ्जनयनेऽहसतां मनोज्ञौ ॥२२॥

पुनः आनन्दमग्न हृदय और अश्रुओंसे लवालब भरे नेत्रों वाली श्रीस्नेहपराजी अपने प्रत्येक मानसिक भावानुसार, श्रीयुगल सरकारके श्रीचरण-कमलोंकी विधि पूर्वक सेवा करने लगीं, जिससे असीम कान्ति वाले वे मनहरण श्रीयुगल सरकार प्रसन्न हृदय होकर, अपने कमलके समान सुन्दर नेत्रोंको खोलकर प्रेमपूर्वक मुस्काने लगे ॥२२॥

दृष्ट्वा तु सा भजदनुग्रहविग्रहौ तौ प्रेमास्पदौ परतमौ नयनाभिरामौ ।
प्राणप्रियौ निजगती सुपमैकमूर्ती बिम्बाधरौ ललितसाञ्जनखञ्जनाचौ ॥२३॥

जिनकी छवि नेत्रोंको परम सुखद है, जो सबसे परे हैं, जिनसे प्रेम करना सब प्रकारसे उचित है, जिनके प्रति प्राणोंके समान प्रेम है, जो अपनी रचा करने वाले हैं और सुषमाके स्वरूप हैं, बिम्बा फलके सदृश लाल जिनके अधर हैं, तथा जिनके अञ्जन युक्त नेत्र खञ्जन पक्षीके सदृश भक्तोंका दर्शन करनेके लिये, सदा चञ्चल रहते हैं ॥ २३ ॥

नीलालकावृतशरद्विधुमोहनास्यौ श्रीमन्निमीनकुलमण्डनपुण्यकीर्त्ती ।
श्रीजानकीरघुवरौ रतिमारहेतू प्रेमाम्बुवाहकविभोरतनुः पपात ॥२४॥

काली-काली अलकोंके आवरणसे युक्त, शरद ऋतुके चन्द्रमाको भी अपने सुन्दर प्रकाश व आह्लादक गुणसे मुग्ध करने वाला जिनका श्रीमुखारविन्द है, जिनकी पवित्र कीर्ति निमि व सूर्य वंश को सुशोभित करने वाली है, जो रति व कामके कारण (उत्पादक) हैं तथा जो रघुकुलमें श्रेष्ठ व श्रीजनकजी महाराजकी दुलारी हैं, और भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही जो अपना मङ्गलमय विग्रह धारण करते हैं, ऐसे उन दोनों सरकारोंका दर्शन करके प्रेमके प्रवाहमें शरीरकी सुधि (स्मृति) भूल जानेसे वे श्रीस्नेहपराजी गिर पड़ी ।२४॥

संस्पर्शमेत्य च तयोरुपलब्धसञ्ज्ञा-श्रीस्वामिनीति दयितेति मुहुस्तदोक्त्वा ।
संवेशभोग्यमतिपुष्कलतया समर्प्य वीटीर्ददेश विनयेन पुनः प्रियाभ्याम् ॥२५॥

प्रियतम ! त्वमशेषहृदिस्थितो ननु न वेत्सि वदेति हि सर्ववित् ।
तदपि ते कथये भवदाज्ञया चरितमूर्विसुताङ्घ्रिरतिप्रदम् ॥६॥

हे प्यारे ! आप सभीके हृदयमें विराज रहे हैं, अतः सब कुछ जानते ही हैं अच्छा आप ही कहें क्या मेरे हृदयके इस रहस्य व श्रीकिशोरीजीके चरित्रोंको आप नहीं जानते हैं ? अर्थात् अवश्य जानते हैं फिर भी आपकी आज्ञासे श्रीकिशोरीजीके श्रीचरण कमलोंमें दृढ़ प्रेम प्रदायक, उनके चरित्रोंको मैं, आपसे वर्णन करती हूँ ॥६॥

श्रुतिगतं मम सम्भवतः पुरा कृतमसुप्रिय ! वा मम शैशवे ।
अविदितं तदयोनिभुवो ध्रुवं परमतो विदितं स्वदृशेक्षितम् ॥७॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! जो मेरे जन्मके पूर्वमें अथवा मेरे शिशु कालमें इन श्रीअयोनिजाजूके किये हुये चरित हैं, उनका मुझे ज्ञान ही क्या ? उन्हें तो मैं सुनकर ही जानती हूँ और शिशुकालके बादके चरित्रोंको मैं निश्चय ही जानती हूँ क्योंकि वे मेरी आँखोंके देखे हैं ॥७॥

श्रुतिगतं प्रथमं तुनरीक्षितं क्रमविनष्टिभिया कथयामि ते ।
शृणु यदि श्रवणाय च ते रुची रसिकवल्लभ ! आदित एव तत् ॥८॥

हे रसिक वल्लभ ! अर्थात् भक्तोंकोही अपना प्रेमास्पद माननेवाले प्यारे सरकार ! यदि आपकी रुचि श्रीकिशोरीजीके चरित्रोंके सुननेमें है, तो आदिसे ही उन अनुरागप्रद चरित्रोंको आप श्रवण कीजिये । मैं क्रमभङ्ग भयसे पहले सुने हुये फिर आँखोंसे देखे हुये, उन चरित्रोंको कहूंगी ॥८॥

निखिलशंप्रदजन्ममहोत्सवे भवत उज्ज्वलकीर्तिनृपाधिपः ।
श्वसुर आप्तमनोरथ एव मे सकलभूमिपतीन्समुपाह्वयत् ॥९॥

हे प्यारे ! सफल मनोरथ, उज्ज्वल (दोषरहित) कीर्तिसे युक्त राजाओंके राजा मेरे श्वशुर श्रीदशरथजी महाराजने, समस्त चर-अचर प्राणियोंके लिये मङ्गल प्रदायक आपके जन्म महोत्सव में, सभी राजाओंको अपने यहाँ बुलाया ॥९॥

मम पिता जनको मिथिलाधिपस्तत उपागमदूरुयशा इह ।
सविधिसत्कृत आत्मविदाम्वरो ह्यनुचरैः स भवन्तमुदैक्षत ॥१०॥

अब एन आपके उस जन्म महोत्सवमें आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, महायशस्वी मेरे पिता मिथिलापति, श्रीजनकजी महाराज भी यहाँ पधारे । और विधि पूर्वक सत्कृत हो जाने, पर अपने अनुचरोंके सहित उन्होंने, आपका दर्शन किया ॥१०॥

शिशुवपुस्तव वीक्ष्य मनोहरं मदनमोहनमास सुविह्वलः ।
क नु ? कुतोऽस्मि ? च करित्वति विस्मृतः पुनरवाप्ततनुस्मृतिरास्थितः॥११॥

तब (अपनी सुन्दरतासे) कामको भी मुग्ध करने वाले आपके, मन-हरण शिशु-स्वरूप का दर्शन करके वे अत्यन्त विह्वल हो गये अतः मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? कहाँ हूँ ? यह भी भूल गये। पुनः अपने शरीरकी सुधि प्राप्त हो जाने पर वे उचित रूपसे बैठ गये ॥११॥

सुरमुनीश्वरवन्दितनारदस्तत उपागमदग्निसमद्युतिः ।
तमवलोक्य महीपतिनायकस्त्वरितमुत्थित आसनतोऽखिलैः ॥१२॥

उसके पश्चात् सुर मुनीश्वरोंसे नमस्कार किये हुये, अग्निके समान कान्ति वाले, श्रीनारदजी महाराज आ पधारे, उनका दर्शन करते ही श्रीचक्रवर्तीजी महाराज, सिंहासनसे उतरकर सभी उपस्थित लोगोंके सहित, तुरत खड़े होगये ॥१२॥

सविधमर्हणमादरपूर्वकं मुनिवरस्य चकार स धर्मवित् ।
समविशन्निकटे पुनरेव तत्समुपलब्धनिदेश उशद्यशाः ॥१३॥

धर्मका रहस्य जानने वाले यशस्वी श्रीकोशलेन्द्रजी महाराजने, विधिके सहित, आदर पूर्वक महामुनि श्रीनारदजीकी पूजाकी, पुनः आज्ञा पाकर वे उनके समीपमें जा बैठे ॥१३॥

अपि कृतार्थयितुं कृपयैव नः कुत इहागमनं भवतः प्रभो !
सदसि भूमिभृतां तनयो विधेरित्विति स पृष्ट उवाच वचो मुनिः ॥१४॥

हे प्रभो ! कृपा करके हम लोगोंको कृतार्थ करनेके लिये इस समय आपका शुभागमन कहाँ से हुआ है ? श्रीचक्रवर्ती महाराजके द्वारा इस प्रकार राज सभामें पूछे जाने पर भगवद्गुण, रूप, लीला, धाम, मनन-परायण, ब्रह्माजीके पुत्र वे श्रीनारदजी यह वचन बोले ॥१४॥

श्रीनारद उवाच ।

त्वमसि धन्यतमो वसुधापते न हि समस्तव कोऽपि तपोधनः ।
परमहंसमनोनिलयस्तव प्रकटितः शिशुरूपधृगालये ॥ १५ ॥

हे राजन् ! आप अवश्य परम धन्यवादके पात्र हैं, आपके समान अन्य कोई भी तपका धनी नहीं है, क्योंकि जो तपोधनोंके भी ध्यानमें नहीं आते तथा परम हंसोंके ही विशुद्ध मनोंमें जो निवास करते हैं, वे ही प्रभु इस समय शिशुरूप धारण करके आपके मणिमय महल में प्रकट हैं ॥१५॥

अधिकमद्य वदामि च किं हि ते परमभाग्यवते कुलनन्दन !
भवत एतदुदीक्ष्य तपःफलं मुनिवराः सुभृशं चकिता वयम् ॥१६॥

हे रघुकुलको आनन्दित करनेवाले राजन् ! आप परम भाग्यवान्से मैं आज अधिक क्या कहूँ ! अपनी आखोंसे आपकी तपस्याका फल देखकर हम सभी मुनि-गण अत्यन्त आश्चर्य में पड़े हैं १६

तमनुदर्शयितुं क्रियतां कृपा निजसुतं विधिविष्णुशिवेश्वरम् ।
मम महीप ! यदर्थमिहागतिः सपदि द्रष्टुममुं मन आतुरः ॥१७॥

हे राजन् ! जिनके दर्शनोंके लिये ही मेरा आपके यहाँ आना हुआ है तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिनके शासनमें रहते हैं, उन अपने श्रीलालजीका मुझे बारम्बार दर्शन करानेकी कृपा करते रहिये गा, अर्थात् जब-जब मैं आपके यहाँ आऊँ तब-तब उनका दर्शन करा दीजिये गा, इस समय आपके श्रीलालजीका शीघ्र दर्शन करनेके लिये मेरा मन आतुर हो रहा है, अतः उनका दर्शन मुझे शीघ्र कराइये ॥१७॥

इति निशम्य वचः प्रणयोदितं मुनिवरस्य जगाद नृपो मुने !
फलमिदं भवतां कृपयाऽतुलं ननु तपोजनितं कलयाम्यहम् ॥१८॥

हे प्यारे ! इस प्रकारके श्रीनारदजीके प्रणय पूर्वक कहे हुये वचनोंको सुनकर, महाराज बोले:- हे मुने ! आप लोगोंकी ही कृपासे यह अतुलनीय फल, हमें प्राप्त हुआ है, इसे मैं अपने तपका फल नहीं मानता ॥१८॥

यदि च सत्यमिदं प्रकृतेः परो मम सुतत्वमुपागत ईश्वरः ।
करुणयाऽऽत्तसुमङ्गलविग्रहः सुलभ आस स मेऽर्चितुमिच्छते ॥१९॥

और भक्तोंके प्रति रहने वाली अपनी स्वाभाविक असीम करुणा वश होकर "मायातीत ईश्वर ही मङ्गल मय सुन्दर विग्रहको धारण करके मेरे पुत्र बने हैं" यदि यह सत्य है, तो मुझ पूजना-भिलाषीकी पूजाके लिये वे ईश्वर सुलभ होगये, अर्थात् मैं अपने लालजीकी ही सुलभता पूर्वक ईश्वर भावनासे पूजा किया करूँगा, क्योंकि निराकार रूपमें उस ईश्वरकी पूजा करनी बड़ी ही झंझट था १९

समवलोक्य मुनिं मनुजाधिपो निज गिरा किल मौनमुपागतम् ।
द्रुतमिदं च सुमन्त्रमुपस्थितं वचनमाह स शापभिया मुनेः ॥२०॥

हे प्यारे ! महाराज अपने इन वचनोंसे श्रीनारद मुनिको मौन हुये देखकर, उनके शापके भयसे घबड़ाकर वे पासमें विराजमान श्रीसुमन्त्रजीसे बोले ॥२०॥

श्रीदशरथ उवाच।

त्वमभिगच्छ सुमन्त्र ! ममाज्ञया त्वरितमानय वत्सतराञ्छिशून् ।
इति जगाम सुधीर्भवनोत्तमं नृपवरोक्त उदार यशा ह्यसौ ॥२१॥

हे सुमन्त्रजी ! तुम मेरी आज्ञासे अन्तः पुर जाओ और अत्यन्त छोटे २ मेरे चारों शिशुओंको तुरत ले आओ। हे प्यारे ! महाराजकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके सुन्दर बुद्धिसे सम्पन्न, उदार यश वाले वे श्रीसुमन्त्रजी महाराजके अन्तः पुरमें पधारे ॥२१॥

अनयदाशु भवन्तमुरञ्छविं नृपसकाशमसौ जननीगृहात् ।
रुचिरमङ्गलवस्त्रविभूषणं शशिमुखं ह्यनुजैः कृतमङ्गलम् ॥२२॥

वहाँसे वे श्रीअम्बाजीके द्वारा मङ्गलमय वस्त्र भूषणोंको पहनाकर मङ्गल किये हुये, मनोहर छविसे सम्पन्न, छोटे भइयोंके सहित आप चन्द्रवदनजीको लेकर श्रीदशरथजी महाराजके पास आये ॥२२॥

लघुसुयानसमागतमन्तिके समवलोक्य सुमन्त्रसुरक्षितम् ।
न च शशाक स नोत्थितुमाश्वतः स हि दधार निजाङ्क इवातुरः ॥२३॥

हे प्यारे ! श्रीसुमन्त्रजीकी संरक्षकतामें लघुयान (बालकोंकी सवारी) के द्वारा अपने समीप आये हुये आपका दर्शन करके आपके पिताजीसे बैठे न रहा गया, अत एव उन्होंने आतुरके समान उठकर झट आपको अपनी गोदमें ले लिया ॥२३॥

विगतपूर्वविचार उवाच तं पुलकिताङ्ग उपेत्य महामुनिम् ।
मम सुतं परिपश्य शिरोनतं सदय ! नाथ ! च बन्धुभिरन्वितम् ॥२४॥

हे प्यारे ! आपके पिताजीको ईश्वर भावनासे जो आपकी पूजा करनेका विचार हुआ था वह आपका दर्शन करते ही वात्सल्य रसकी धारामें बह गया, उनके अङ्ग आनन्दसे पुलकायमान हो गये, पुनः वे श्रीनारदजीके पास जाकर आपका शिर उनके चरणोंमें झुकाकर उनसे बोले:—हे दयामय ! हे नाथ ! अपने भइयोंके सहित शिर झुकाकर आपको मेरे लालजी प्रणाम कर रहे हैं, उनको अवलोकन कीजिये ॥२४॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

प्रिय ! भवन्तमनङ्गविमोहनं नयनगं सुविधाय स विह्वलम् ।
जडवदास्थितमाह मुनीश्वरं पुनरवेक्ष्य नृपः परिशङ्कितः ॥२५॥

हे प्यारे ! कामको अपनी छविसे मुग्ध करने वाले आपका, भली प्रकारसे दर्शन करके मुनि-

श्रेष्ठ श्रीनारदजी महाराज विह्वल हो जड़के समान स्थित थे, अतः उनकी यह स्थिति देखकर आपके श्रीपिताजी विशेष शङ्कासे युक्त होकर उनसे पुनः बोले ॥२५॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच।

अहह नाथ ! दशा तव कीदृशी किमु भवान् ग्रसितोऽस्ति हि मूर्च्छया।
वदति नैव च किञ्चिदपीह मे सजलनेत्र ! किमर्थमहो मुने ! ॥२६॥

अहह नाथ ! आपकी यह कैसी दशा है ? क्या आपको मूर्च्छा हो गयी है ? अहो हे अश्रुपूर्णनयन ! क्या आप कुछ मनन करनेकी धुनिमें हैं ? जो हमसे नेक भी नहीं बोल रहे हैं ॥२६॥

अपि तु सर्व इहावनिपालका उपगताः समतां किल मूर्त्तिभिः।
व्रजति मेऽपि च विह्वलतां मनः सुतमवेक्ष्य किमत्र हि कारणम् ॥२७॥

इस राज सभामें उपस्थित सभी राजा भी प्रायः मूर्तियोंकी उपमा (तुलना) ग्रहण कर रहे हैं, अर्थात् उनके भी कोई नेत्रादि अङ्ग चलते नहीं दिखाई देते हैं, और मेरा भी मन अपने श्रीलालजीका दर्शन करके विह्वल होता जारहा है, सो इस उपस्थित परिस्थिति का क्या कारण है ? ॥२७॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

क्षणमिदं च बभूव कुतूहलं पुनरुपागतशान्तय एव ते।
अतुलितच्छविमीक्षितुमुत्सुका जय जयेति मुहुर्मुहुरब्रुवन् ॥२८॥

हे प्यारे ! क्षण भर यही कौतूहल रहा, उसके पश्चात् वे सब राजा सावधान होकर आपकी उपमा रहित छवि का दर्शन करनेके लिये उत्सुक हो, आपका जयजय कार बोलने लगे ॥२८॥

अजसुतोऽजसुतं मुनिपुङ्गवो नृपतिपुङ्गवमाह यथातथम्।
यमनुमन्यस आत्मसुतं परं पुरुषमाद्यमवेहि तमव्ययम् ॥२९॥

हे प्यारे ! मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीअज (ब्रह्मा) के पुत्र श्रीनारदजी, महाराजोंमें श्रेष्ठ श्रीअज महाराजके पुत्र (आपके श्रीपिताजी) से यथार्थ रहस्य कहने लगे:-हे राजन ! आप जिनको अपने लालजीमान रहे हैं, उनको सबसे श्रेष्ठ, अविनाशी, परम पुरुष (परब्रह्म) जानिये ॥२९॥

त्रितनयास्तव चास्य निजांशजा नृपवरोत्तम ! सत्यपराक्रमाः।
शिवविरिञ्चिनुताः शुचिकिङ्कराः शशिमुखाः पदपङ्कजगाश्रिताः ॥३०॥

हे महाराजाधिराज ! और ये चन्द्रमाके समान मुखवाले तीनों आपके पुत्र ब्रह्मा, शिवसे स्तुति किये हुये, सत्य पराक्रम तथा इनके ही ज्ञान बल आदि पूर्ण ऐश्वर्यसे युक्त, पवित्र, ऐश्वर्यपरायण व चरण कमलों के आश्रित हैं ॥३०॥

प्रियतमोऽखिलदेहभृतामयं चिरमुदीक्षित आत्मशताधिकः ।
असुलभाप्तिसुखेन महीयसा भवति नैव तु कस्य दशेदृशी ॥३१॥

हे राजन्! सम्पूर्ण शरीर धारियों को ये आपके श्रीलालजी अपनी आत्मासे भी सैकड़ों गुणा अधिक प्रिय हैं, पर ये बहुत कालसे दर्शन नहीं देते थे, सो आज मङ्गल मय वस्त्र, भूषणोंको धारणकर दर्शन देरहे हैं। ऐसे न मिलने योग्य महान् लाभके सुखसे भला किसकी ऐसी पागलदशा नहीं होती है? अर्थात् सभीकी होनी सम्भव है ॥३१॥

परमशांतवपुर्गतमायिकः कुसुमचापविमोहनविग्रहः ।
सकलसाधनमुख्यफलं ह्ययं तव सुतस्त्विदमेव हि कारणम् ॥३२॥

पुनः आपके श्रीलालजी समस्त साधनोंके मुख्य फल, परम सुखमय स्वरूप मायासे परे हैं और इनकी शारीरिक छविके दर्शनसे कामदेव भी अत्यन्त मूर्छित होजाता है, तब अन्य प्राणियोंके लिये कहना ही क्या? यही सबके मूर्छित होने का कारण है ॥३२॥

तव तपोनिजदृष्टिपथं गतं चिरमुपासितमद्य यतात्मना ।
नृप! सुखं परिरभ्य मयोरसा तव सुतं क्रियते सफलो भवः ॥३३॥

हे राजन्! मनको एकाग्र करके जिनका मैंने बहुत काल तक भजन किया परन्तु वे न मिले, आज आपके तपःप्रभावसे अपने नयनगोचर (आँखोंके सामने) उपस्थित हुये उन्हीं आपके श्री लालजीको सुखपूर्वक (अनायास) हृदयसे लगा कर मैं अपने जन्मको सफल करता हूँ ॥३३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति निगद्य वचो मुनिसत्तमो नृपवराङ्कत आर्द्रविलोचनः ।
समुपगृह्य हृदा परिरभ्य सः प्रिय! भवन्तमियाय सुखं परम् ॥३४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः-हे प्यारे! इस प्रकार मुनिशिरोमणि श्रीनारदजी प्रेम मय वचन कहकर सजलनेत्र हो महाराज (आपके पिताजी) की गोदसे आपको लेकर अपने हृदयसे लगाकर परम (सर्वोत्तम) सुखको प्राप्त हुये ॥३४॥

पुनरसौ भरतं सहलक्ष्मणं रिपुनिषूदनमप्युपगृह्य च ।
असकृदेव मुनिर्मुदितात्मना सुखमवाप भवन्तमनल्पकम् ॥३५॥

हे प्यारे! पुनः वे श्रीनारदजी महाराज अपने मोद भरे हृदयसे श्रीभरतलालजी, श्रीलक्ष्मणलालजी, श्रीशत्रुघ्नलालजीका और आपका वारम्वार आलिङ्गन करके अपार सुखको प्राप्त हुवे । ३५

आशीर्वादमृषिर्वितीर्य शुभदं सर्वेभ्य एवादरा-
द्भूपेभ्यः प्रणतेभ्य ऊर्जितयशाः पित्रा तवाभ्यर्चितः।
त्वन्मूर्तिं सुनिधाय चात्महृदये सम्प्राप्तकामोऽगम-
द्ब्रह्मानन्दपयोधिमग्नहृदयोऽसौ वै कथञ्चित्प्रिय ! ॥३६॥

इति सप्तविंशतितमोऽध्याय ।

हे प्यारे ! पुनः वे ब्रह्मानन्द रूपी समुद्रमें डूबे हुये हृदय, महयशस्वी ऋषि, श्रीनारदजी महाराज, पूर्ण काम हो, आपकी मनोहर मूर्तिको अपने हृदयमें अच्छे प्रकारसे रखकर, आपके श्रीपिताजीसे पूजित हो, प्रणाम करने वाले सभी राजाओंके लिये मङ्गलप्रद आशीर्वाद आदर पूर्वक वितरण करके किसी प्रकार (बड़ी कठिनता) से चले गये ॥३६॥

अथाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके हृदयमें सर्वेश्वर श्रीरामभद्रजीको, श्वशुर सम्बन्ध द्वारा प्राप्त करनेके लिये, श्रीसर्वेश्वरीजीकी प्राप्ति अनिवार्य सिद्ध होना, तथा उसके प्राप्ति साधनकी जिज्ञासार्थ ऋषियोंका आह्वान (बुलावा) करना ।

श्रीस्नेह परोवाच ।

अथ याते मुनौ तस्मिन् नारदे ब्रह्मसम्भवे ।
समुत्कण्ठोदिता प्रेष्ठ ! महतीयं पितुर्हृदि ॥१॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! अब मैं आगेका रहस्य आपको सुनाती हूँ। जब वे श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीनारदमुनिराज सभासे चले गये, तब हमारे पिता (श्रीमिथिलेशजी महाराज) के हृदयमें यह पूर्ण उत्कण्ठा अकस्मात् उदय हुई ॥१॥

एष धन्यो महाभागश्चक्रवर्ती नराधिपः ।
राजा दशरथः श्रीमान् कृतकृत्यो न संशयः ॥२॥

ये चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराज ही वास्तवमें श्रीमान् हैं, राजा हैं, और धन्यवादके पात्र हैं, वही भाग्यशाली हैं और वे ही कृत कृत्य हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥२॥

अनेनैव नरेन्द्रेण श्रीमता चक्रवर्तिना ।
नरजन्मफलं प्राप्तं यथेष्टं प्राक्तपो बलात् ॥३॥

अपने पूर्व जन्मके तपो बलसे मनुष्य जीवनका यथेष्ट फल इन्हीं श्रीमान् चक्रवर्ती महाराजने प्राप्त किया, जो आज सर्वेश्वर प्रभुको अपनी गोदमें खेलानेका सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं ॥३॥

अयं तु भगवान् साक्षात्साकेताधिपतिः प्रभुः ।
परंब्रह्म परंधाम सर्वकारणकारणम् ॥४॥

ये श्रीरामलालजीही षडैश्वर्य सम्पन्न, साक्षात् श्रीसाकेतधामके अधिपति (मालिक), सर्व समर्थ, सभी कारणोंके कारण, परमज्योति-स्वरूप, परब्रह्म हैं ॥४॥

सर्वावतारमूलं च साक्षी सर्वगतो महान् ।
कर्ता कारयिता वश्यो, मनोवाचामगोचरः ॥५॥

ये ही सभी अवतारोंके मूल, (अन्तर्यामी रूपसे सभीके कर्मोंके) साक्षी, निराकार रूपसे सर्व व्यापक ब्रह्म हैं । विश्वके अपने ही अनेक आकारोंके द्वारा स्वयं अनेक प्रकारका कृत्य करने वाले, और परमात्म-रूपसे कराने वाले भक्तोंके ही भावसे सुगमता पूर्वक वशमें होने वाले, हैं, अन्यथा ये मन-वाणीसे अगोचर हैं, अर्थात् इनके स्वरूपका न मन मनन और न वाणी कथन ही करनेको समर्थ है ॥५॥

पुत्रभावेन स प्राप्तो योगिनां परमा गतिः ।
शरण्यश्च वरेण्यश्च मुनिवर्यानुभावितः ॥६॥

जो ये योगियोंकी परम गति, प्राणिमात्रकी रक्षा करनेमें समर्थ, व सर्वश्रेष्ठ हैं, तथा बड़े-बड़े मुनि जिनकी भावना किया करते हैं, वे श्रीदशरथजी महाराजको पुत्र भावसे प्राप्त हुए हैं, ॥६॥

अनेन देवदेवेन पुत्रभाव उरीकृते ।
सर्वे भावा उरीकार्या यथायोगस्य वै ध्रुवम् ॥७॥

इन देवोंके देवजीने जब श्रीदशरथजी महाराजके पुत्र भावको स्वीकार कर लिया है, तब यथा योग्य भाग्यशालीके और भी सभी भाव, इन्हें निश्चय ही स्वीकार करने पड़ेंगे ॥७॥

तेषु वात्सल्यभावे तु यत्सुखं तदनुत्तमम् ।
तस्मिन्मुख्याधिकारश्च त्रयाणामेव मे मतिः ॥८॥

परन्तु उन सभी भावोंमेंसे वात्सल्य भावमें जो सुख है, वही सबसे उत्तम है, किन्तु उस वात्सल्य भावमें मेरी मतिसे तीनका ही मुख्य अधिकार है ॥८॥

ते पिताऽऽचार्यश्वशुराः सभार्याः सानुजादिकाः ।
श्वशुरस्यैव चैतेषु पदं शेषं हि दृश्यते ॥९॥

पिता, आचार्य, श्वशुर ये तीन, अपनी पत्नियों व भाई आदिकोंके सहित इस वात्सल्य भावके मुख्य अधिकारी हैं, सो इन तीनोंके पदोंमें केवल मुझे श्वशुरका पदही शेष देखनेमें आरहा है, क्योंकि पिता तो दशरथजी हैं और आचार्य श्रीवशिष्ठजी महाराज भी विद्यमन ही हैं अतः इन दो पदोंकी तो पूर्ति बनी बनाई ही है, केवल श्वशुरका पद अभी किसीको नहीं प्राप्त है ॥९॥

तत्प्राप्तिश्च यदि स्यान्मे सफलस्तर्हि मे भवः ।
अन्यथा मरणं श्रेयो जीवितं पापजीवितम् ॥१०॥

सो यदि इस श्वशुर पदकी मुझे प्राप्ति हो जाय तो, निश्चय ही मेरा जन्म सफल है, नहीं तो मर जाना ही मङ्गल-मय है, जीना तो पाप मय है ॥१०॥

सर्वेश्वरस्य चिन्मूर्त्तेः श्वशुरः स भविष्यति ।
सर्वेश्वरी हि चिन्मूर्तिर्यस्य पुत्री भविष्यति ॥११॥

परन्तु चिन्मूर्ति (चैतन्यस्वरूप) सर्वेश्वर प्रभुका श्वशुर निश्चय करके वही हो सकता है, जिसकी पुत्री साक्षात् चिन्मूर्ति श्रीसर्वेश्वरीजी होंगी ॥११॥

अकन्यायं कथं त्वस्य मह्यं जामातृरूपिणः ।
सम्प्राप्तिस्तु भवेदेव यथा तन्नेह साधनम् ॥१२॥

मुझ कन्या हीनको जमाई रूपसे इन प्रभुकी सम्यक् प्रकारसे प्राप्ति कैसे हो सकेगी ? जहाँ सर्वेश्वरी पुत्री रूपी साधन इनकी प्राप्तिके लिये मेरे पास होना आवश्यक था, वहाँ साधारण कन्या रूपी साधन भी मेरे पास नहीं है, तब क्या आशा करूँ ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति चिन्तां समापन्नः पिता मे परधार्मिकः ।
सदःस्मृत्याप्तधैर्योऽसौ नोदासीनमुखोऽभवत् ॥१३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! परम धार्मिक मेरे श्रीपिताजी, इस प्रकारकी चिन्तामें सम्यक् प्रकारसे पड़गये, परन्तु सभामें अपनी उपस्थिति स्मरण करके वे धैर्यको प्राप्त हो गये, क्योंकि चिन्ता वश उदास मुख होनेसे सभीको बुरा लगेगा ॥१३॥

साश्रुनेत्रोऽङ्कतो राजस्त्वामादाय शुभेक्षणम् ।
आत्मनः क्रोडमारोप्य परमानन्दमाप्तवान् ॥१४॥

पुनः मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराज, प्रेमाश्रुयुक्त नेत्र होकर, आप मङ्ग ,दर्शनजीको महाराजकी गोदसे अपनी गोदमें रखकर परमानन्दको प्राप्त हुये ॥१४॥

मनोभावं यथार्थेन मनोवाचा निवेद्य ते ।
कतिघस्रान्युपित्वैवं मिथिलां गन्तुमुद्यतः ॥१५॥

तत्पश्चात् वे आपसे अपने मनके भावको मनकी ही वाणीसे यथार्थ रूपसे निवेदन करके, कुछ दिन श्रीअवधमें योंही निवास करके, श्रीमिथिलाजी जानेके लिये उद्यत हुये ॥१५॥

याच्ञयाऽऽसादितानुज्ञस्त्वां निवेश्य निजोरसि ।
जगाम मिथिलां रम्यां देवर्षिव्रजसङ्कुलाम् ॥१६॥

बहुत प्रार्थना करने पर आपके श्रीपिताजीसे जानेकी आज्ञा पाकर, वे आपको अपने हृदयमें विराजमान करके, देववृन्द व ऋषि वृन्दोंसे परिपूर्ण परम सुन्दरी श्रीमिथिलाजीको पधारे ॥१६॥

तत्र रात्रौ जनन्या मे सम्मुखे विदितात्मना ।
सत्कारस्य प्रशंसा च पितुस्ते भूरिशः कृता ॥१७॥

श्रीमिथिलाजी पहुँचकर, वहाँ रात्रिके समय व आपके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त हुये मेरे श्रीपिता मिथिलेशजी महाराजने हमारी श्रीसुनयना अम्माजीके सामने आपके श्रीपिताजीके सत्कारकी बहुत प्रशंसा की ॥१७॥

पुनस्त्वद्रूपमाधुर्यं नारदस्य समागमम् ।
ऋषिराजेन्द्रसम्वादमुत्कण्ठां च मनोगताम् ॥१८॥

हे प्यारे! पुनः श्रीअम्माजीसे आपके स्वरूपका माधुर्य, श्रीनारदजीका आगमन, श्रीनारदजी व महाराजका सम्वाद और अपने मनमें प्राप्त हुई उत्कण्ठाका ॥१८॥

वदतः साश्रुनेत्रस्य पितुर्मे मिथिलापतेः ।
व्यतीता शर्वरी कृत्स्ना सा क्षणार्द्धमिव प्रिय! ॥१९॥

कथन करते करते अश्रु भरे नेत्र मेरे पिता, श्रीमिथिलापतिजीकी वह सारी रात आधे क्षणके समान शीघ्र व्यतीत हो गयी ॥१९॥

प्रातरुत्थाय मे तातः कृतसन्ध्यादिकक्रियः ।
प्रागात्सभालयं तूर्णं बन्धुमन्त्रिद्विजैर्युतम् ॥२०॥

वे मेरे पिताजी प्रातःकाल उठकर, सन्ध्या आदिक नित्य कृत्यसे निवृत्त हो, शीघ्र अपने भाइयों, मन्त्रियों व ब्राह्मणोंसे युक्त सभा भवनको पधारे ॥२०॥

राजसिंहासनारूढो यथावत्सत्कृतो नृपः ।
तेभ्य एव च सर्वेभ्यो ह्यनुरक्तेभ्य आदरात् ॥२१॥

हे प्यारे ! सभामें पहुँचने पर सभीने उनका यथोचित सत्कार किया, तब वे राजसिंहासन पर विराजमान हो, अपने उन सभी प्रेमियोंसे आदर पूर्वक ॥२१॥

कृताञ्जलिपुटः श्रीमान् सर्वज्ञानवतां वरः ।
कृत्स्नं निवेद्य वृत्तान्तं तूष्णीमास महायशाः ॥२२॥

हाथ जोड़कर सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करके समस्त ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, श्रीमान्, महायशस्वी वे, श्रीमिथिलेशजी महाराज, चुप हो गये ॥२२॥

विस्मितास्तत्समाकर्ण्य सर्व एव सभासदः ।
ऊचुः करपुटं बद्ध्वा मिथो निश्चित्य सन्मतम् ॥२३॥

सभासद लोग उस सारे वृत्तान्तको सुनकर विस्मय युक्त हो गये, पुनः परस्पर कर्तव्यका निश्चय करके वे हाथ जोड़कर बोले ॥२३॥

सभासद ऊचुः ।

योगिराज ! महाराज ! सन्मतं भवदाज्ञया ।
दिक्षुविख्यातसत्कीर्त्ते यथा बुद्ध्या ब्रुवामहे ॥२४॥

हे दशों दिशाओंमें विख्यात सत्कीर्ति वाले तथा योगियोंमें सर्वोत्कृष्ट रूपसे सुशोभित, हे महाराज ! हमलोग यथा बुद्धि आपकी आज्ञासे इस विषयमें अपना सम्मत निवेदन करते हैं ॥२४॥

श्रूयतां तत्कृपागार ! धर्ममूर्त्ते ! नृपोत्तम ! ।
यथेष्टं तु विधत्स्वेह स्वयमेव विचार्य च ॥२५॥

हे कृपाके सदन ! हे धर्मके स्वरूप ! हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! उसे आप श्रवण कीजिये और स्वयं विचार करके, जैसा उचित समझें, वैसा करें ॥२५॥

आह्वानमृषिमुख्यानां सर्वेषां च महात्मनाम् ।
क्रियतामविलम्बेन सादरं मुख्यकिङ्करैः ॥२६॥

हम लोगोंका यह सम्मत है कि आप समस्त मुख्य ऋषियों और महात्माओंको, अपने मुख्य सेवकोंके द्वारा आदर पूर्वक यहाँ शीघ्र बुला लीजिये ॥२६॥

अपि तेषां सभामध्ये ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
उपायं ज्ञास्यसे युक्तं वर्णितात्ममनोरथः ॥२७॥

भगवान्‌का ध्यान करने वाले उन ऋषियोंकी सभाके बीचमें जब आप अपना मनोरथ निवेदन करेंगे तब उन लोगोंकी कृपासे अवश्य कोई अच्छा उपाय ज्ञात हो जावेगा ॥२७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

स एतद्वचनं तेषां समाकर्ण्य शुभाक्षरम् ।
बाढमित्यब्रवीद्राजा स्वस्थचित्तो मनोहर ! ॥२८॥
ततस्तेनानवद्येन धर्मज्ञेन महात्मना ।
विसृष्टाः किङ्करा मुख्या आह्वानाय महात्मनाम् ॥२६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे मनहरण सरकार ! सभा सदोंके ये मङ्गलमय अक्षरोंसे युक्त वचन सुनकर वे श्रीमिथिलेशजी महाराज स्वस्थचित्त होकर उनसे बोले—हे सभासदो ! आप लोगोंकी सम्मति मुझे सहर्ष स्वीकार है ॥२८॥ तत्पश्चात् उस निश्चयानुसार अपने कर्त्तव्योंसे प्रशंसाके योग्य, धर्मके रहस्यको भली प्रकारसे जानने वाले मेरे पिताजीने हृदयमें आपका स्मरण कर, भगवानको ही अपने हृदयमें बसाने वाले उन महर्षियोंको बुलानेके लिये अपने मुख्य सेवकोंको विदा किया ॥२६॥

ते तु धर्म्याः सदाचारा धर्मज्ञा नयकोविदाः ।
हृदयज्ञा विनीताश्च सर्वदाऽमृतभाषिणः ॥३०॥
प्रत्येकस्य मुनेर्गत्वाऽऽश्रमं परमपावनम् ।
नमस्कृत्याब्रुवन्नम्राः प्रार्थनां मिथिलेशितुः ॥३१॥

सो धर्मपरायण, सदाचारी, धर्मको जानने वाले, नीतिका भली प्रकारसे ज्ञान रखने वाले तथा हृदयको पहचानने वाले, नम्रतासे युक्त, सदा अमृतके समान मधुर वाणी बोलने वाले उन

सेवकोंने ॥३०॥ प्रत्येक मुनिके पवित्र करने वाले आश्रममें जाकर, हर एकको नमस्कार किया और नम्रता पूर्वक अपने यहाँ पधारनेके लिये श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रार्थना निवेदन की ॥३१॥

मिथिलेशेति नामैव श्रुत्वा हर्षसमन्विताः ।
सत्कारं विधिना चक्रुस्तथेत्याभाष्य वल्लभ ! ॥३२॥

हे प्यारे ! मिथिलेश नाम ही सुनकर सभी ऋषि परम हर्षको प्राप्त हो "हम अवश्य चलेंगे" यह कहकर उन सभीने सेवकोंका विधि पूर्वक सत्कार किया ॥३२॥

सशिष्याश्च पुनः सर्वे मुनयो वीतकिल्विषाः ।
अगस्त्यप्रमुखाः - श्रेष्ठ ! दीप्तानलशिखोपमाः ॥३३॥
आजग्मुर्मिथिलां पुण्यां कृतपौर्वाह्लिकीक्रियाः ।
नामानि तेषु मुख्यानां विश्रुतानि वदामि ते ॥३४॥

हे प्यारे ! पुनः जलती हुई अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी पाप रहित भगवानका मनन करने वाले वे सभी श्रीअगस्त्यजी आदि महर्षिगण शिष्योंके सहित ॥३३॥ पूर्व पहरकी क्रियाओंसे निवृत्त होकर पुण्य स्वरूपा श्रीमिथिलाजी आ पधारे । उन महर्षियोंमें मुख्य ऋषियोंके सुने हुये नामोंको मैं आपसे निवेदन करती हूँ ॥३४॥

मरीचिः कश्यपो धौम्यो नमुचिः प्रमुचिस्तथा ।
यवक्रीतश्च कण्वश्च गालवश्च महानृषिः ॥३५॥

श्रीमरीचिजी, श्रीकश्यपजी, श्रीधौम्यजी, श्रीनमुचिजी तथा श्रीप्रमुचिजी, श्रीयवक्रीतजी, श्रीकण्वजी, श्रीगालवजी व महर्षि ॥३५॥

पुलस्त्यः पुलहो गार्ग्यः कौपेयो गोतमस्तथा ।
जमदग्निर्भरद्वाजो वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ॥३६॥

श्रीपुलस्त्यजी, श्रीपुलहजी, श्रीगार्ग्यजी, श्रीकौपेयजी तथा श्रीगोतमजी, श्रीजमदग्निजी, श्रीभरद्वाजजी, श्रीभगवानके गुण व चरितोंके मनन करने वालोंमें श्रेष्ठ श्रीवाल्मीकिजी ॥३६॥

याज्ञवल्क्योऽङ्गिरा चन्द्रो नृपाङ्गुः कवषो भृगुः ।
अत्रिर्मेधातिथिश्चैव विश्वामित्रो महातपाः ॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी, श्रीअङ्गिराजी, श्रीचन्द्रजी, श्रीनृपतजी, श्रीऋषपजी, श्रीभृगुजी, श्रीअत्रिजी, श्रीमेधातिथिजी और महातपस्वी श्रीविश्वामित्रजी ॥३७॥

मृकण्डुर्लोमशश्चैव मुनिस्तु वकदालभः ।
मार्कण्डेयः क्रतुश्चैव च्यवनश्च विभाण्डकः ॥३८॥

श्रीमृकण्डुजी, श्रीलोमशजी, श्रीवकदालभजी, श्रीमार्कण्डेयजी और श्रीक्रतुजी, श्रीच्यवनजी, श्रीविभाण्डकजी ॥३८॥

अहिर्बुध्न्यः कुरुर्वायुः पिप्पलादश्च भास्करः ।
संवर्त्तः कपिलो धौम्रो मौद्गल्यश्च कचो मुनिः ॥३९॥

श्रीअहिर्बुध्न्यजी, श्रीकुरुजी, श्रीवायुजी, श्रीपिप्पलादजी, श्रीभास्करजी, श्रीसंवर्त्तजी, श्रीकपिलजी, श्रीधौम्रजी, श्रीमौद्गल्यजी, श्रीकचमुनि ॥३९॥

तृणविन्दुश्च माण्डव्यः शङ्खश्च लिखितस्तथा ।
देवलो देवरातश्च जामदग्न्यपराशरौ ॥४०॥

श्रीतृणविन्दुजी, श्रीमाण्डव्यजी, श्रीशङ्खजी तथा श्रीलिखितजी, श्रीदेवलजी, श्रीदेवरातजी, श्रीजामदग्न्यजी, श्रीपराशरजी, ॥४०॥

सर्वेषां कश्च नामानि समर्थो वक्तुमेव हि ।
समासेन ततः प्रेष्ठ ! वर्णितानि श्रुतानि मे ॥४१॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! सभी ऋषियोंके नाम वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? अतएव संक्षेपसे सुने हुये उनके नामोंको मैंने वर्णन किया है ॥४१॥

स्वागतं विधिना तेषां सर्वेषां च महात्मनाम् ।
चकार निमिवंशेनः पिता परमधार्मिकः ॥४२॥

निमिवंशमें सूर्यके समान देदीप्यमान परमधार्मिक पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजने उन सभी महात्माओंका विधिपूर्वक स्वागत किया ॥४२॥

सर्वशर्मनिवासे च वासं दत्वा मुदान्वितः ।
सेवां चकार वै तेषां जनन्या मम संयुतः ॥४३॥

उन सब महर्षियोंको जहाँ सब प्रकारका सुख रहे ऐसे स्थलमें वास प्रदान करके, प्रसन्न चित्त हो, वे श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीसुनयना अम्बाजीके सहित उनकी सेवा ग्रहण की ॥४३॥

बहुरात्रिं गतां वीक्ष्य संवेशाय महात्मभिः ।
अनुज्ञातो महाराजो जगामागारमात्मनः ॥४४॥

पुनः बहुत रात्रि व्यतीत हुई देखकर उन महात्माओंने महाराजको शयन करनेके लिये आज्ञा दी, तदनुसार वे अपने महलमें चले गये ॥४४॥

पूर्वं सूर्योदयादेव संप्रबुध्य नृपोत्तमः ।
कृत्यं पौर्वाह्णिकं कृत्वा मुनिवासालयं ययौ ॥४५॥

राजाओंमें श्रेष्ठ (मेरे वे श्रीपिताजी) वहाँ शयन करके सूर्योदयके पूर्व ही जागकर, पूर्व पहरका आवश्यक कृत्य पूरा करके मुनियोंके वासस्थलमें पधारे ॥४५॥

दर्शनार्थमसौ तत्र महर्षीन् धर्मवित्तमः ।
ननाम दण्डवद्भूमौ पुलकाञ्चितविग्रहः ॥४६॥

वहाँ धर्मका रहस्य जाननेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजका शरीर पुलकायमान हो गया और उन्होंने भूमिमें गिरकर ऋषियोंको दण्डवत् प्रणाम किया ॥४६॥

आशीर्भिर्नन्दितः श्रीमान् ब्रह्मविद्भिर्महर्षिभिः ।
प्रबन्धं भोजनस्याशु चक्रेऽमृतमयस्य हि ॥४७॥

पुनः ब्रह्मवेत्ता महर्षियोंके आशीर्वादके द्वारा अभिनन्दित होकर श्रीसे युक्त श्रीपिताजीने उन महात्माओंके लिये अमृतमय भोजनका तुरत प्रबन्ध किया ॥४७॥

पादप्रक्षालनं मात्रा ज्येष्ठया मे महात्मनाम् ।
ऊरुभक्त्या कृतं तेषां सर्वेषामथ तत्र वै ॥४८॥

भोजनकी तैयारी हो जानेपर वहाँ हमारी बड़ी अम्बा (श्रीसुनयना महारानी) जीने बड़ी श्रद्धा पूर्वक उन सभी महात्माओंके पाँव धोये ॥४८॥

पादसंप्रोञ्छनं पित्रा मम ज्येष्ठेन चैव हि ।
ऋषीणामेव सर्वेषां कृत तत्रैव सादरम् ॥४९॥

और उस समय मेरे बड़े पिता (श्रीमिथिलेशजी महाराज) ने उन सभी महात्माओंके श्रीचरण-कमलोंको आदर पूर्वक स्वयं पोंछा ॥४९॥

कुर्वत्सु भोजनं तेषु महत्सु मिथिलेश्वरः ।
बद्धाञ्जलिपुटो राज्ञ्या चक्रे तेषां परिक्रमाः ॥५०॥

जब सब महात्मा लोग भोजन करने लगे, तब श्रीअम्बाजीके सहित हाथ जोड़े हुए श्रीमिथिलेशजी महाराजने उन महर्षियोंकी परिक्रमा करने लगे ॥५०॥

ते निरीक्ष्येदृशीं श्रद्धां महत्सु मुनिसत्तमाः ।
तयोरानन्दमग्नास्तौ तद्दर्शनमुदान्वितौ ॥५१॥

श्रीअगस्त्यजी आदि श्रेष्ठ मुनि-वृन्द हमारी श्रीअम्बाजी व श्रीपिताजीकी महात्माओंके प्रति उस प्रकारकी श्रद्धा देखकर वे आनन्दमग्न होगये तथा उन ऋषियोंके दर्शनसे वे दोनों आनन्दमग्न होगये ॥५१॥

ते तु संतर्पितास्तेन भोजनेनामृताम्भसा ।
आचमनं ततः कृत्वा समूचुर्मनुजाधिपम् ॥५२॥

इस प्रकार भोजन व अमृतमय जलसे श्रीमिथिलेशजीमहाराजके द्वारा तृप्त किये हुये वे महर्षिगण आचमन करके महाराजसे भलीभाँति बोले-॥५२॥

ऋषय ऊचुः ।

क्रियतां भोजनं क्षिप्रं गतं यामद्वयं दिनम् ।
अतिवेलं भवेत्प्रायो ह्यशनं स्वास्थ्यहानिकृत् ॥५३॥

हे राजन्! अब आप भी शीघ्र भोजन कर लीजिये, क्योंकि दो पहर (६ घण्टा) दिन बीत गया है, समयका अतिक्रमण हो जानेसे भोजन प्रायः स्वास्थ्यके लिये हानिकारक होजाता है ॥५३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

महाकृपेति संभाष्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
समासाद्यात्मनो वेश्म भोजनं तु चकार सः ॥५४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! ऋषियोंके इस प्रकार समझाने पर महाराजने "बड़ी कृपा है" ऐसा उनसे कहकर एवं बारम्बार उनको प्रणाम कर अपने महलमें पहुँचकर भोजन किया ॥५४॥

पुनश्च नृपशार्दूलो विश्रामं घटिकात्रयम् ।
विधाय तत उत्थाय मज्जनं स चकार ह ॥५५॥

पुनः उन श्रीमिथिलेशजूने तीन घड़ी विश्राम करनेके बाद उठकर स्नान किया ॥५५॥

सभालङ्कारसंयुक्तः पुनश्चैव सभालयम् ।
अभ्यगात्स महीपालः सेव्यमानः स्वकिङ्करैः ॥५६॥

उसके पश्चात् महाराज सभाके अलङ्कारोंसे धारण करके अपने किङ्करोंके द्वारा, छत्र चामर आदिसे सेवित हुये सभाभवनमें पधारे ॥५६॥

रथेनातीवभव्येन युतेन श्वेतकुञ्जरैः ।
आगतं तं धरानाथं सदःस्थाश्चाभ्यपूजयन् ॥५७॥

श्वेत हाथियोंसे युक्त अत्यन्त सुन्दर रथ द्वारा आये हुये उन श्रीमिथिलेशजी महाराजका सभामें सभी उपस्थित लोगोंने भली प्रकारसे पूजन (स्वागत) किया ॥५७॥

शब्दो जय - जयेत्युच्चैरभूदानन्दवर्धनः ।
सिंहासने ततस्तस्मिन् महाराजे विराजिते ॥५८॥

तदनन्तर उन महाराजके सिंहासन पर विराजमान होते ही आनन्दकी वृद्धि करने वाला जय-जयकारका शब्द बड़े ऊँचे स्वरसे हुआ ॥५८॥

सादरं प्रणुतोऽमात्यैर्बन्धुभिश्च महायशाः ।
वन्दितश्रेष्ठवर्गोऽसौ सिंहासनमधिष्ठितः ॥५६॥
प्रीत्या परमया युक्तो भ्रातरं श्रीकुशध्वजम् ।
अथोवाच वचः श्लक्ष्णमिदं स परमार्थवित् ॥६०॥

वे यशस्वी श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने भाइयों और मन्त्रियों आदिका प्रणाम स्वीकार कर तथा अपने गुरुजनोंको प्रणामकर राजसिंहासन पर विराजमान हुए ॥५६॥ परमार्थको जाननेवाले उन महाराजने अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने भइया श्रीकुशध्वज महाराजसे मधुर शब्दोंमें यह बात कही ६०

श्रीमिथिलेश उवाच ।

आहूय स्वकुलाचार्यं शतानन्दं महामुनिम् ।
दूतैर्विनयसम्पन्नैः सादरं कुलनन्दन ! ॥६१॥

हे कुलनन्दन ! विनयादि-गुण-युक्त दूतोंके द्वारा महामुनि यानी मन्त्रका मनन करने वाले अपने कुलगुरु श्रीशतानन्दजी महाराजको बुलाइये ॥६१॥

कार्यमेकं महत्तेन कर्त्तव्यं च विपश्चिता ।
तस्मान्नैव विलम्बस्ते विधेयो मम शासने ॥६२॥

(क्योंकि) विद्वान महानुभाव शतानन्दजी द्वारा बहुत बड़ा कार्य इस समय करना आवश्यक है, अतएव मेरी आज्ञामें विलम्ब न करें ॥६२॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा शतानन्दपुरोधसः ।
सकाशं प्रेषयामास दूतं विजयसंज्ञकम् ॥६३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी महाराजकी इस प्रकारकी आज्ञा पाकर, श्रीकुशध्वज महाराजने "ऐसा ही होगा" कहकर पुरोहित श्रीशतानन्दजी महाराजके पास विजय नामके दूतको भेजा ॥६३॥

स गत्वा प्रार्थितं राज्ञा विनिवेद्य कृताञ्जलिः ।
प्रणिपत्य मुहुर्भूयो समीपस्थो बभूव ह ॥६४॥

उस दूतने श्रीशतानन्दजी महाराजके पास जाकर, उन्हें बारम्बार प्रणाम किया और अपने दोनों हाथोंको जोड़े हुये उनसे श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रार्थना निवेदनकी तथा समीप खड़े होगये ६४

तूर्णं जगाम विप्रेन्द्रो नृपवाक्येन तोषितः ।
समज्यां सह दूतेन स्यन्दनेन विशांपतेः ॥६५॥

दूतके द्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजके कहे हुये वचनोंसे सन्तुष्ट हो ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ श्रीशतानन्दजी महाराज उस दूतके सहित रथके द्वारा तत्काल राज सभामें पधारे ॥६५॥

स्वागतं तस्य विप्रर्षेर्विदेहो मिथिलाधिपः ।
चकार विधिना प्रेष्ठ ! तेन तुष्टः स चाब्रवीत् ॥६६॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! लगातार आपका ही चिन्तन करनेके कारण अपनी देहका भान न रखने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजने महर्षि श्रीशतानन्दजीका विधिपूर्वक स्वागत किया तथा उससे सन्तुष्ट होकर वे बोले ॥६६॥

श्रीशतानन्द उवाच।

चिरञ्जीव महाराज ! वाञ्छितं शीघ्रमाप्नुहि ।
श्रीमताऽद्य विशेषेण किमर्थं संस्मृतोऽस्म्यहम् ॥६७॥

हे महाराज ! आप बहुत काल तक जीवें, आपका मनोरथ शीघ्र पूरा हो। आज श्रीमान्जीने विशेष रूपसे मुझे क्यों स्मरण किया है ? ॥६७॥

तदुच्यतां ममादेशान्नरदेवशिखामणे !।
कारणं भवता स्पष्टं प्रसन्नाय हितेप्सवे ॥६८॥

हे राजाओंके चूड़ामणिजू ! उस कारणको आप स्पष्ट रूपसे मुझे बतलाइये क्योंकि मैं आपसे प्रसन्न हूँ और आपका हितचिन्तक हूँ ॥६८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

गुरोरादेशमासाद्य नरेन्द्रो नियताञ्जलिः ।
प्रणम्य शिरसा प्रह्वो बभाणेदं शुभं वचः ॥६९॥

गुरु श्रीशतानन्दजी महाराजकी आज्ञा पाकर, महाराज हाथ जोड़कर, उनके चरणकमलोंमें अपना शिर रखकर प्रणाम करके, बड़े विनम्र भावसे यह मङ्गलमय वचन बोले—॥६९॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

अगस्त्यप्रमुखा नाथ ! मुनयोऽमोघदर्शनाः ।
आगताः कृपयाऽऽहूताः प्रधानाः सर्व एव हि ॥७०॥

हे नाथ !, जिनका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता है, वे श्रीअगस्त्यजी आदि प्रधान मुनिवृन्द मेरे बुलाये हुये प्रायः सबके सब, कृपा करके यहाँ पधारे हुये हैं ॥७०॥

यदि गच्छाम्यहं तांश्च नानानियमतत्परान् ।
सर्वकर्णगतं कर्तुमशक्तः स्यां हृदीप्सितम् ॥७१॥

सो यदि मैं स्वयं उनके निवास-भवनमें जाऊँ भी तो वहाँ मैं अपने हृदयके भावको सबके कानों तक पहुँचानेमें असमर्थ ही रहूँगा क्योंकि वे मुनिवृन्द पृथक्-पृथक् नियमोंका पालन करनेवाले हैं अर्थात् कोई जप, कोई तप, कोई ध्यान, कोई पाठ, कोई यज्ञ, कोई हवन, कोई भगवद् गुणानुवाद आदिका नियम करने वाले होंगे, तब मैं एक साथ सबको अपने हृदयका भाव किस प्रकार वहाँ जाकर सुना सकूँगा ? अर्थात् नहीं सुना सकूँगा अत एव इस निमित्त वहाँ स्वयं जाना व्यर्थ है ७१

केनोपायेन वै तेषामाह्वानं कार्यमत्र च ।
महतां नैव वै किञ्चिद्यतः स्यादप्रसन्नता ॥७२॥

और यहाँ बुलानेमें उनकी अप्रसन्नता हो जानेका भय है क्योंकि कहीं वे लोग यहाँ बुलाने से ऐसा न विचार करलें कि, राजा स्वयं क्यों नहीं हम लोगोंके पास चला आया, हमें क्यों यहाँ बुला रहा है, क्या हमलोग उसके नौकर हैं जो उसकी आज्ञासे राज-सभामें जावें ? अत एव किस

उपायसे उन महर्षियोंको अपने यहाँ बुलाना उचित है जिससे वे लोग यहाँ आ भी जावें और मेरे प्रति उनकी किसी प्रकारकी अप्रसन्नता भी न हो ॥७२॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

तस्य तद्व्यापितं वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविदां वरः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शतानन्दो महामुनिः ॥७३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! श्रीमिथिलेशजी महाराजके इस कहे हुये वचनको सुनकर भगवान्‌के सर्वज्ञता आदि दिव्य-गुणोंको मनन करने वालोंमें महान्, वक्ताओंमें श्रेष्ठ, प्रसन्न हृदय श्रीशतानन्दजी महाराज बोले—॥७३॥

श्रीशतानन्द उवाच।

येनोपायेन धर्मात्मन् महर्षीणामिहागमः।
सहर्षं स्यादुपायं तं स्वयमेव करोम्यहम् ॥७४॥

हे धर्मात्म बुद्धिसे युक्त राजन्! आप चिन्ता न करें, जिस उपायसे वे महर्षिगण हर्षपूर्वक यहाँ पधारेंगे उस उपायको मैं स्वयं करूँगा ॥७४॥

सार्द्धं मया प्रचलतु भ्राता तव कुशध्वजः।
त्वयोक्तं साधयिष्यामि प्रत्ययं गच्छ भूपते ॥७५॥

हे राजन्! मेरे साथ आपके छोटे भइया कुशध्वजजी चलें, मैं आपके कथनानुसार ऋषियोंको प्रसन्नतापूर्वक ही यहाँ लाऊँगा आप विश्वास करें ॥७५॥

नानाफलानि दिव्यानि सुधास्वादुमयानि च।
उपायनाय दीयन्तां स्वर्णपात्रधृतान्यरम् ॥७६॥

महर्षियोंको भेंट करनेके लिये दिव्य और अमृतके समान स्वाद वाले नाना प्रकारके फलोंको सुवर्णके थालोंमें रखकर शीघ्र हमें दीजिये ॥७६॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमुक्तो यशःश्लाघ्यो राजा धर्मभृतां वरः।
भाजनानि सहस्राणि निर्भराणि सुधाफलैः ॥७७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! श्रीशतानन्दजी महाराजकी इस आज्ञाको पाकर अपने यशसे

परम प्रशंसनीय, धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराज सुधाके समान स्वादिष्ट फलोंसे भरे हुये हजारों पात्रोंको ॥७७॥

तस्मा उपायनार्थाय गुरवे वह्नितेजसे ।
स निवेद्य महर्षीणां भ्रातरं पुनरब्रवीत् ॥७८॥

ऋषियोंकी भेंटके लिये अग्निके समान तेजवाले कुलगुरु श्रीशतानन्दजी महाराजको वे निवेदन करके, अपने भइया श्रीकुशध्वजजी महाराजसे पुनः बोले—॥७८॥

भ्रातः सुगम्यतां सार्कं गुरुणा क्षिप्रमेव हि ।
आवासः परमर्षीणां ज्वलत्पावकतेजसाम् ॥७९॥

हे भइया ! तुम श्रीगुरु महाराजके साथ, जलती हुई अग्निके समान तेजवाले उन श्रेष्ठ ऋषियोंके वास स्थल पर शीघ्र जाओ ॥७९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तथेति सम्भाष्य विनम्रभाव. कृताञ्जलिः पूर्वजमार्यसूनो ।
जगाम सानन्दमनिन्दितात्मा सम शतानन्दपुरोधसा सः ॥८०॥

इत्यष्टविंशतितमोऽध्याय ।

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी महाराजकी इस आज्ञाको सुनकर प्रशस्त बुद्धि श्रीकुशध्वज महाराज पुनः अपने बड़े भाईजीसे विशेष नम्र भावपूर्वक हाथ जोड़कर "ऐसा ही करेंगे" कहकर आनन्द पूर्वक पुरोहित श्रीशतानन्दजी महाराजके साथ चल दिये ॥८०॥

अथैकोनत्रिंशततमोऽध्यायः ॥२९॥

श्रीजनकजी-महाराजके द्वारा ऋषियोंका अपने यहाँ बुलानेका कारण निवेदन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथैत्य क्षणमात्रेण तदावासं महात्मनाम् ।
अहल्यायाः सुतः श्रीमान् पितृव्येन समं मम ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! इसके बाद मेरे चाचा श्रीकुशध्वज महाराजके सहित श्रीअहल्याजीके पुत्र श्रीशतानन्दजी-महाराज थोड़ी देरमें ऋषियोंके निवासस्थान पर पहुँचे और ॥१॥

सुखासीनं महात्मानं दृष्ट्वाऽगस्त्यं तपोनिधिम् ।
दिक्षु विख्यातसत्कीर्त्तिं साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ॥२॥

तपस्याके खजाना, सभीमें भगवद्बुद्धि रखने वाले, अपनी पावनीकीर्तिसे दशों दिशाओंमें विख्यात, सुखासनसे विराजमान श्रीअगस्त्यजी-महाराजका दर्शन करके उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया २

पुनरुत्थाय सर्वेभ्यो मुनिभ्यो गोतमात्मजः ।
नमश्चक्रे ब्रुवन्साश्रुर्धन्यो यो दर्शनादिति ॥३॥

पुनः उठकर श्रीगोतमजी-महाराजके पुत्र श्रीशतानन्दजी महाराजने प्रेमाश्रु-युक्त हो "मैं आप महानुभावोंके दर्शनोंसे आज धन्य हुआ" ऐसा कहकर भगवद्गुण-रूप-लीला और उनमें ऐश्वर्य आदिका सतत मनन करने वाले उन सभी महात्माओंको प्रणाम किया ॥३॥

आस्यतामिति तैरुक्तो निषसाद कृताञ्जलिः ।
आचार्यो निमिवंश्यानां समीपे कुम्भजन्मनः ॥४॥

बैठनेके लिये उन ऋषियोंकी आज्ञा पाकर निमिकुलके गुरु श्रीशतानन्दजी-महाराज हाथ जोड़े हुये श्रीअगस्त्यजी-महाराजके समीप बैठ गये ॥४॥

धृत्वाऽग्रे सर्ववस्तूनि स्वर्णपात्रगतानि सः ।
राज्ञार्पितानि चेमानि स्वीकार्याणीत्यथाब्रवीत् ॥५॥

पुनः उन्होंने सुवर्णके पात्रोंमें सजाई हुई सभी वस्तुओंको श्रीअगस्त्यजी महाराजके आगे रखकर कहा—भगवन् ! इन सब वस्तुओंको भेंटके रूपमें श्रीमिथिलेशजी-महाराजने श्रीचरण-कमलोंमें अर्पण किया है, अतः इन्हें स्वीकार करना ही उचित है ॥५॥

अद्येयं मिथिला धन्या धन्याश्चैव वयं मुने ।।
दर्शनाद्भवतां सर्वं ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥६॥

हे मुने ! आत्मसाक्षात्कार करने वाले आप सब महर्षियोंके मङ्गलमय दर्शनोंसे आज यह मिथिलापुरी धन्य है तथा हम सभी परम धन्य हैं ॥६॥

एकैकदर्शनं येषाममोघं सर्वकामदम् ।
तांस्तु वै युगपद्दृष्ट्वा किमसाध्यं जगत्त्रये ॥७॥

जिन एक एक ऋषिका दर्शन प्राणियोंके मनोरथोंको पूर्ण करने वाला तथा अमोघ है उन सबोंका एक साथ दर्शन करके भला त्रिलोकीमें किस मनोरथकी सिद्धि नहीं हो सकती ? ॥७॥

असौ धन्यो महाराजः श्रीमत्सीरध्वजाह्वयः ।
अनुगृहीतुमायाता भवन्तः सर्व एव यम् ॥८॥

वे श्रीमान् सीरध्वज-महाराज धन्य हैं जिन पर अनुग्रह करनेके लिये आप सभी महर्षिगण यहाँ पधारे हुये हैं ॥८॥

स एव भूभृतां श्रेष्ठः श्रीमतामेककिङ्करः ।
धर्मात्मा सत्यसन्धश्च पुण्यश्लोको जगद्धितः ॥९॥

वे राजाओंमें श्रेष्ठ, आप सब महात्माओंके मुख्य सेवक, धर्मबुद्धि, सत्यप्रतिज्ञ, पुण्ययश, चर-अचर सभी प्राणियोंका हित करने वाले श्रीमिथिलेशजी-महाराज । ९॥

पुनातुं काङ्क्षते नानाऽलङ्कारैः समलङ्कृतम् ।
मुख्यराजसभागारं भवतां पादपांसुभिः ॥१०॥

अनेक प्रकारकी सजावटसे सजाये हुये अपने राज-सभा भवनको आप लोगोंके श्रीचरण-कमलोंकी धूलिसे पवित्र करना चाहते हैं ॥१०॥

तदर्थमागतो भ्राता तन्निदेशात्कुशध्वजः ।
न भयात्स्वयमाख्याति तद्भवाञ्ज्ञातुमर्हति ॥११॥

उसी लिये उनकी आज्ञासे ये उनके छोटे भाई श्रीकुशध्वजजी मेरे साथ आये हुये हैं, किन्तु भयके कारण स्वयं नहीं कह रहे हैं, सो आप स्वयं जान सकते हैं ॥११॥

यदि कष्टं न हे नाथ ! तर्हि तत्सदनं द्रुतम् ।
पुनीहि त्वं कृपासिन्धो ! सर्वैर्गत्वाऽङ्घ्रिरेणुभिः ॥१२॥

हे नाथ ! हे कृपासिन्धो ! यदि आप लोगोंको कष्ट न हो तो सब ऋषियोंके सहित चलकर श्रीमिथिलेशजी महाराजके उस राज-सभा भवनको श्रीचरण-कमलकी रजसे पवित्र कीजिये ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

श्रुत्वेत्यभिहितं वाक्यं गोतमस्य सुतस्य सः ।
एवमस्त्विति तं प्रोच्य महतः प्रत्यवैक्षत ॥१३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीगोतमजी-महाराजके पुत्र श्रीशतानन्दजी महाराजकी इस प्रकारकी प्रार्थना सुनकर वे श्रीअगस्त्यजी-महाराज उनसे ऐसा ही रहकर महात्माओंके प्रति देखने लगे ॥१३॥

ते तु सर्वे महात्मानो वीतरागा जितेन्द्रियाः ।
वाक्यं सविनयं श्रुत्वा स्वीचक्रुश्च मुदान्विताः ॥१४॥

तब अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुए, आसक्तिरहित महात्माओंने श्रीशतानन्दजी-महाराजके विनयपूर्वक वचनोंको सुनकर प्रसन्नता वश श्रीमिथिलेश महाराजके राजसभा-भवनमें पधारना स्वीकार किया ॥१४॥

तदाऽऽह मम पितृव्यः प्रणिपत्य कृताञ्जलिः।
इमानि स्यन्दनानीह भवद्भ्यआगतानि हि ॥१५॥

तब मेरे चाचा श्रीकुशध्वज महाराज हाथ जोड़कर सभी ऋषियोंको प्रणाम करके बोले- हे महाराज! ये रथ आप लोगोंके लिये ही आये हैं ॥१५॥

आरात्स्थितानि सर्वाणि मणिभिर्भूषितानि च।
काञ्चनानि नृपार्हाणि सज्जितानि विशेषतः ॥१६॥

ये सभी रथ राजाओंके योग्य, सोनेके बने हुये तथा मणियोंसे भूषित, विशेष रूपसे सजाये हुये पासमें ही खड़े हैं ॥१६॥

आरुह्य तानि योगीन्द्र! तपोमूर्तिभिरन्वितः।
गन्तुं कुरु कृपां दिष्ट्या वृतं चेन्मद्गुरूदितम् ॥१७॥

हे योगियों में श्रेष्ठ! यदि सौभाग्यवश आपने मेरे श्रीगुरुदेवजीकी प्रार्थना स्वीकार करली है, तो आप तपोमूर्ति ऋषियोंके सहित उन्हीं रथोंपर बैठकर राजसभा-भवन पधारनेकी कृपा करें ॥१७॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भ्रातुः श्रीमिथिलापतेः।
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टः कुम्भजन्मा कुशध्वजम् ॥१८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे! श्रीमिथिलेशजू महाराजके भइया श्रीकुशध्वजकी उस प्रार्थनाको सुनकर अगस्त्यजी महाराज प्रसन्न हुए और उन्होंने उनकी प्रार्थना बहुत अच्छा कहकर स्वीकार की ॥१८॥

पुनस्तु मुनिभिः सार्द्धं समारुह्य रथोत्तमम्।
तूर्णं जगाम तेनैव शतानन्देन च प्रभुः ॥१९॥

पुनः परम समर्थ वे श्रीअगस्त्यजी महाराज श्रीशतानन्दजी महाराज और उन श्रीकुशध्वज चाचाजीके सहित उत्तम रथपर बैठकर समस्त मुनियोंके सहित शीघ्र वहाँ से राज-सभा भवनके लिये प्रस्थान किये ॥१९॥

राजमार्गेण भव्येनालङ्कृतेन विशेषतः।
सिञ्चितेन शुभैर्गन्धैर्मणिभिर्निर्मितेन च ॥२०॥

मणियोंसे बने और मङ्गलमय सुगन्धसे सींचे हुए, विशेष सजावट युक्त परम शोभायमान राज-मार्गसे ॥२०॥

अत्युच्छ्रितपताकाभिर्ध्वजैश्चापि मनोहरैः।
सवारिमज्वलद्दीपघटैरशुभतां तटे ॥२१॥

जिसके दोनों किनारों पर थोडी-थोडी दूर पर बहुत ऊँची झण्डियाँ और मनोहर झण्डे फहरा रहे थे और जलते हुये दीपोंसे युक्त सजल कलशों से जिसके दोनों पार्श्व (किनारे) सुशोभित थे २१

पुष्पितैर्ह्रस्ववृक्षैश्च दर्शनेप्सुजनैस्तथा।
सङ्कीर्णोभयपार्श्वौ तौ शुशुभाते तदा भृशम् ॥२२॥

तथा फूले हुये छोटे छोटे वृक्षोंसे तथा सन्तोंका दर्शन करनेके लिये उपस्थित हुई जनताकी महती भीडसे जिसके दोनों किनारे सुसज्जित अत्यन्त शोभाको प्राप्त थे (उस राज-मार्गसे) ॥२२॥

सोऽधिगम्य सभागारं मिथिलेन्द्रस्य भास्वरम्।
द्वाःस्थं ददर्श तं भूपं स्वागतार्थमनिन्दितः ॥२३॥

निश्वसे प्रशंसा प्राप्त श्रीअगस्त्यजी महाराजने समस्त ऋषियोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके राजभवनमें पहुँच कर स्वागतके लिये उन्हें द्वार पर खड़े हुये देखा ॥२३॥

नमस्कृतस्तु साष्टाङ्गं तेन नीराज्य सादरम्।
प्रसादितोऽग्र्या भक्त्या भगवान् कुम्भसम्भवः ॥२४॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने आदरपूर्वक आरती उतारकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अपनी परा भक्तिके द्वारा उन भगवान् श्रीअगस्त्यजी महाराजको प्रसन्न कर लिया ॥२४॥

ततो राजसभागारे मम पित्रा यशस्विना।
बभूवुः प्रार्थिताः प्रीता- मुनयो नतिपूर्वकम् ॥२५॥

तत्पश्चात् राजसभा भवनमें मेरे उन यशस्वी श्रीपिताजीकी प्रणामपूर्वक प्रार्थनासे मुनिवृन्द परम प्रसन्न हुये ॥२५॥

अगस्त्येन समं सर्वे वेदतत्त्वविदां वराः।
आसनेषु यथार्हेषु निषेदुर्वीतकिल्बिषाः ॥२६॥

और वेदोंके मर्मके जानने वाले में श्रेष्ठ, पाप व विकार रहित वे सभी मुनिवृन्द श्रीअगस्त्यजी महाराजके सहित यथायोग्य सुसज्जित आसनों पर विराजमान हो गये ॥२६॥

सुखोपविष्टेष्वेतेषु सर्वेष्वेव महर्षिषु ।
अनुज्ञातो महाराजो विवेशासनमात्मनः ॥२७॥

उन सब महर्षियोंके सुखपूर्वक विराजमान हो जानेपर श्रीमिथिलेशजी महाराज भी आज्ञा पाकर अपने आसन पर विराजमान हुवे ॥२७॥

तमूचुर्निर्जितस्वान्ता मुनयः पुण्यदर्शनाः ।
प्रसन्नवदनाः सौम्या वाचा प्रेमरसार्द्रया ॥२८॥

हे प्यारे ! जिन्होंने मनको पूर्ण रूपसे अपने अधीन कर लिया है तथा जिनके दर्शनोंसे बड़ा पुण्य होता है वे सौम्य-भावसे युक्त प्रसन्न मुख मुनिवृन्द अपनी प्रेम रस भींनी वाणीसे श्रीमिथिलेशजी महाराजसे बोले-॥२८॥

मुनय ऊचुः ।

राजन् ! विवेकसिन्धोस्ते स्मृतिर्नो हृदि सर्वदा ।
ज्ञानप्रसङ्गसमये समुदेति सुखावहा ॥२९॥

हे राजन् ! हम लोगोंमें जब कभी ज्ञानका प्रसङ्ग छिड़ता है तब समुद्रके समान अथाह ज्ञानसे युक्त आपका सुखकर स्मरण हम लोगोंके हृदयमें सदा हो जाया करता है ॥२९॥

दृष्ट्वा ज्ञानपराकाष्ठां तव योगीन्द्रसत्तम ।
शक्नुमो नैव तरितुं कथञ्चिद्विस्मयोदधिम् ॥३०॥

हे योगिराजोंमें श्रेष्ठ ! आपके ज्ञानकी पराकाष्ठा देखकर हमलोग आश्चर्य-सागरको किसी प्रकारसे भी पार करनेको समर्थ नहीं हो पाते हैं अर्थात् उसीमें डूबते रहते हैं ॥३०॥

कच्चित्ते कुशलं राजन् ! सान्तः पुरजनस्य हि ।
कच्चिद्भ्रातृषु मित्रेषु तव चैवास्त्यनामयः ॥३१॥

हे राजन् ! अन्तः पुरके लोगोंके सहित आपकी कुशल तो है ? और आपके सभी भाई व मित्र निरोग तो हैं ? ॥३१॥

कच्चित्पुरजने राष्ट्रे कुशलं तव वर्तते ।
कच्चिन्न व्यसनं प्राप्तः कच्चिच्चास्ति सुखी भवान् ॥३२॥

आपके पुरवासियोंमें तथा राष्ट्रमें कुशल तो है ? कोई व्यसन तो प्राप्त नहीं है ? आप सुखी तो हैं ? ॥३२॥

उच्यतां भवताऽस्माकमाह्वानस्य प्रयोजनम् ।
धर्मतत्त्वविदां श्रेष्ठ ! निर्भयेन मुदात्मना ॥३३॥

हे धर्मतत्त्वके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! आप प्रसन्नतापूर्वक हम लोगोंको यहाँ बुलानेका कारण निर्भय हृदयसे निवेदन करिये ॥३३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्यादेशं शिरे धृत्वा पिता मे जनकाभिधः ।
उत्थाय तान्नमस्कृत्य निजगाद कृताञ्जलिः ॥३४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! महर्षियोंकी इस आज्ञाको अपने शिरपर धारण करके मेरे पिता श्रीजनकजी महाराज उठकर मुनियोंको प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए बोले—॥३४॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

अनुग्रहेण युष्माकं कुशली सर्वथा ह्यहम् ।
अग्रेऽपि सर्वदैवाहो भवेयं मुनिपुङ्गवाः ॥३५॥

श्रीमिथिलेशजी बोले—हे ब्रह्मतत्त्वके मनन करनेवाले मुनियोंमें श्रेष्ठ ! समस्त विघ्न-बाधाओंसे रहित पूज्य महर्षिवृन्द ! आप सब सन्तोंके अनुग्रहसे मैं सब प्रकारसे कुशलपूर्वक हूँ तथा आगे भी सदा रहूँगा ॥३५॥

अयं नाथ स्वभावो हि जीवस्यैव महामुने ! ।
न संस्मरति विश्वेशं तदीयान्निष्प्रयोजनम् ॥३६॥

हे महामुने ! हे नाथ ! जीवका तो स्वभाव ही है कि बिना कोई प्रयोजन उपस्थित हुये न वह विश्वपति भगवानका ही ठीक स्मरण करता है न उनके भक्तोंका ॥३६॥

तत्स्वभावप्रयुक्तेन यदर्थं संस्मृता मया ।
अभयीकृतेन युष्माभिस्तत्तु सर्वं निगद्यते ॥३७॥

जीव होनेके कारण मैं भी उसी स्वभावसे युक्त हूँ अतः जिस प्रयोजनसे मैंने आप सब महानुभावोंका स्मरण किया है उस (समस्त कारण)को आप लोगोंके द्वारा अभय किया हुआ मैं निवेदन करता हूँ ॥३७॥

अयोध्याधिपतेः पुत्रशुभजन्ममहोत्सवे ।
तेनाहूतोऽगमं तत्र दृष्टवानस्मि तत्सुतान् ॥३८॥

श्रीअयोध्याधिपति श्रीदशरथजी महाराजके लालजीके शुभ-जन्म महोत्सवमें उनके द्वारा बुलाया हुआ मैं श्रीअयोध्याजी गया था सो वहाँ मैंने उनके पुत्रोंका दर्शन किया ॥३८॥

नारदेन समागत्य तदानीं ब्रह्मसूनुना ।
विज्ञापितं समाकर्ण्य चिन्तया संयुतोऽभवम् ॥३९॥

उसी समय श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीनारदजी महाराजने वहाँ पधारकर जो सूचना (चेतावनी) दी उसे सुनकर मैं चिन्तासे युक्त हो गया ॥३९॥

एतत्परात्परं ब्रह्म पुत्रभावेन शाश्वतम् ।
दशरथाय यच्छर्म ददाति योगिदुर्लभम् ॥४०॥

ये शाश्वत (सदा रहने वाले) परात्पर ब्रह्म (पञ्च तत्वोंकी कारण प्रकृति उससे परे) अपनेको पुत्र मानकर जो सुख योगियोंको दुर्लभ था, उसे श्रीदशरथजी महाराजको प्रदान कर रहे हैं ॥४०॥

तस्य प्राप्तिः कथं मे स्यादिति चिन्तयतो मुहुः ।
या हि बुद्धिः समुत्पन्ना वर्ण्यते सा यथातथम् ॥४१॥

उस सुखकी प्राप्ति मुझे कैसे हो ? इस विषयका बारम्बार चिन्तन करते हुये जो बुद्धि उत्पन्न हुई, उसे मैं यथार्थ रूपसे निवेदन करता हूँ ॥४१॥

अयं वात्सल्यभावाढ्यः श्रीमान्दशरथो नृपः ।
वात्सल्यभावजं चास्य सुखं लोके परात्परम् ॥४२॥

ये श्रीमान् दशरथजी महाराज वात्सल्यभावसे युक्त हैं, अतः इन्हें वात्सल्यभाव-जन्य सुख प्रभुके द्वारा प्राप्त है, और लोकमें भी वास्तवमें यही सुख सबसे बढ़कर है ॥४२॥

अस्मिन् भावे त्रयाणां हि समावेशः प्रदृश्यते ।
श्वशुराचार्यपितॄणां नूनं मुख्यतया स्फुटम् ॥४३॥

इस वात्सल्य भावमें पिता, आचार्य, तथा श्वशुर इन्हीं तीनोंका मुख्य रूपसे समावेश स्पष्टतया दिखाई देता है ॥४३॥

पितुर्लेभे पदं राजा वशिष्ठश्च गुरोः पदम् ।
श्वशुरस्य पदं शेषं ममेदं तत्सुखप्रदम् ॥४४॥

पिताका पद तो श्रीदशरथजी-महाराजको मिल ही चुका और गुरुका पद, श्रीवशिष्ठजी-महाराजके लिये कुल परम्परानुसार है ही, अतः ये दोनों पद तो पूरे हो चुके अब केवल श्वशुरका पद ही शेष है, जो मुझे वात्सल्य-भावका सुख प्रदान कर सकता है ॥४४॥

एतत्पदस्य सम्प्राप्तिस्तस्या एव भविष्यति ।
सर्वेश्वरी हि चिन्मूर्त्तिर्यस्य पुत्री भविष्यति ॥४५॥

परन्तु इस पदकी प्राप्ति भी उसी सौभाग्यशालीको होगी, जिसकी पुत्री चिन्मूर्ति (अप्राकृत-दिव्य शरीरवाली) सर्वेश्वरी (अनन्तब्रह्माण्डनायककी प्राणवल्लभाजी) होंगी ॥४५॥

अकन्याय कथं तस्य मह्यं जामातृरूपिणः ।
भवेल्लाभ इयं चिन्ता प्रजाता दुर्निवारणा ॥४६॥

कन्याहीन मुझको प्रभु जमाई रूपसे कैसे मिलेंगे ? यह ऐसी चिन्ता प्रकट हुई है जिसका निवारण करना कठिन हो गया ॥४६॥

तन्निवृत्त्यै सुहृद्वृन्दैश्चोदितः समुपाह्वयम् ।
दूतैर्विनयसम्पन्नैर्भवतो भूरितेजसः ॥४७॥

इस महती चिन्ताकी निवृत्तिके लिये ही अपने सुहृद् लोगोंकी प्रेरणासे, विनयसम्पन्न दूतोंके द्वारा मैंने आप सभी महातेजस्वियोंको अपने यहाँ बुलाया है ॥४७॥

आह्वानहेतुर्भवतां किलायं समीरितश्चैव यथातथं मे ।
निशम्य तच्छंसत मे प्रयत्नं कृपालवश्चेन्मयि वोऽनुकम्पा ॥४८॥

इति एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

हे कृपालु श्रीमहर्षिवृन्द ! आप लोगोंको बुलानेका कारण मैंने ज्योंका त्यों पूर्णरूपसे निवेदन किया, यदि आप लोगोंकी कृपा मेरे ऊपर है तो उसे सुनकर अब वात्सल्य-भावजन्य सुखकी प्राप्तिके लिये श्वशुर-पदकी प्राप्तिका उपाय मुझे बतलाइये ॥४८॥

अथ विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

ऋषियोंकी आज्ञासे श्रीभोलेनाथजीको प्रसन्न करके श्रीजनकजी महाराजका उनसे वर प्राप्त करना।

श्रीस्नेहपरोवाच।

अभिप्रायं तु विज्ञाय नृपस्य मुनिपुङ्गवाः।
क्षणं विलम्ब्य तं प्राहुर्हताशापतितं नृपम् ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! श्रीमिथिलेशजी महाराजका अभिप्राय समझकर सभी मुनिश्रेष्ठ थोड़ी देर अवाक् रह गये। उनको मौन देखकर श्रीमिथिलेशजी महाराज हताश हो गिर पड़े, क्योंकि जिनकी आशा की गयी थी कि कुछ साधन अवश्य बतलायेंगे, वे सभी मौन दिखाई पड़े। महाराजको इस प्रकार निराशावश गिरा देखकर वे महर्षिगण उनसे बोले—॥१॥

मुनय ऊचुः।

गहनोऽयं तव प्रश्नोऽभिलापश्चातिदुर्लभः।
नावलम्ब्या निराशा ते तथापीप्सितसिद्धये ॥२॥

हे राजन्! आपका प्रश्न बड़ा गूढ़ है और आपकी अभिलाषा भी बड़ी कठिनतासे पूरी होने योग्य है तथापि अपने मनोरथको सिद्ध करनेके लिये आपको निराश होना भी उचित नहीं है॥२॥

भावात्प्रकटितो यश्च सच्चिदानन्दविग्रहः।
पुत्ररूपेण सत्यायां स तेऽभीष्टं विधास्यति ॥३॥

क्योंकि जो सत्-चित्-आनन्द-विग्रह प्रभु पुत्रभावसे श्रीअयोध्याजीमें प्रकट हो गये हैं, वे आपकी भी इच्छाको पूर्ण करेंगे ॥३॥

ज्ञातानि यानि यानीह साधनान्यस्मदादिभिः।
तानि वै चिरसाध्यानि दुष्कराणीति बुध्यताम् ॥४॥

हमलोग उन सत् चित्-आनन्द-विग्रह सर्वेश्वरीजीकी प्राप्तिके लिये जो जो साधन जानते हैं, उन सबोंको आप अत्यन्त कष्टसाध्य अथवा चिरसाध्य ही समझें, जिससे वे दोनों प्रकारके ही साधन आपके योग्य नहीं हैं क्योंकि अत्यन्त कष्ट साध्य साधन करने योग्य आपका यह कोमल

शरीर नहीं है और चिरसाध्य साधन आपकी अभीष्ट सिद्धि न कर सकेगा क्योंकि वे प्रभु राजकुमार ही नहीं चक्रवर्ती कुमार बने हैं, अतः उनका विवाह कुमार अवस्थामें ही हो जावेगा जिससे उनके श्वशुरका पद जो आपको अभीष्ट है वह और ही कोई ले लेगा तब आपका वह चिरसाध्य साधन सिद्ध होने पर भी क्या लाभ होगा? और सर्वेश्वरीजी कितने वर्षोंमें प्रसन्न होती हैं इसका कोई निश्चय नहीं। तथा आपके यहाँ प्रकट होकर कुछ तो बड़ी होंगी तब तक क्या वे प्रभु बिना विवाहके ही रहेंगे? अत एव वे सब साधन हमलोग बतलाना उचित न समझकर कुछ देर मौन रह गये थे ॥४॥

श्रूयतामाशु सिद्ध्यर्थमभीष्टस्य नृप त्वया।
समस्तसाधनाचार्यः शंसता कुम्भजन्मना ॥५॥

हे राजन्! अब अपने अभीष्टकी शीघ्र सिद्धिके लिये आप श्रीअगस्त्यजी महाराजके कथनसे समस्त साधनोंके बतलाने वाले आचार्यको सुनें ॥५॥

श्रीअगस्त्य उवाच।

ज्ञानिनां योगिनां चैव वरिष्ठः सात्वतामपि।
शङ्करो भगवान् राजन्! सर्वेषामाशुसिद्धिदः ॥६॥

श्रीअगस्त्यजी महाराज बोले–हे राजन्! भगवत् तत्त्वके जानने वालोंमें व अपनी चित्तवृत्तिको भगवान्में तदाकार करनेवालोंमें तथा अनेक भावोंसे परम अनुराग पूर्वक भगवान्की उपासना करने वालोंमें भी भगवान् शङ्करजी ही सबसे श्रेष्ठ हैं और वे अपने सभी भक्तोंके मनोरथकी सिद्धि बहुत शीघ्र प्रदान करते हैं ॥६॥

तं तोषय महेशानं त्रिकालज्ञं जगद्गुरुम्।
न च तुष्टे हि वै तस्मिन्दुर्लभस्ते मनोरथः ॥७॥

अत एव आप तीनों कालका मर्म जाननेवाले उन जगद्गुरु महेशको प्रसन्न कीजिये, उनके प्रसन्न हो जाने पर आपका मनोरथ दुर्लभ नहीं रह सकता ॥७॥

अयं हि निश्चयोऽस्माकं सर्वलोकमहेश्वरीम्।
पुत्रीभावेन संप्राप्तावञ्जसैवेह चाचिरात् ॥८॥

हे राजन्! पुत्रीभावसे श्रीसर्वेश्वरीजीकी शीघ्र और अनायास प्राप्तिके विषयमें हम लोगोंका यही ध्रुव निश्चय है ॥८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्यादिष्टो भगवता साक्षाच्छ्रीकुम्भजन्मना ।
अनुमत्या च सर्वेषामृषीणां भावितात्मनाम् ॥९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! आत्माका साक्षात्कार करनेवाले उन सभी ऋषियोंकी अनुमतिपूर्वक साक्षात् भगवान् श्रीअगस्त्यजी महाराजने इस प्रकारका आदेश, महाराजको प्रदान किया ॥९॥

नतभालः स धर्मात्मा तदोवाच कृताञ्जलिः ।
भगवंस्तद्विदां श्रेष्ठ ! शिरोधार्य्यं वचस्तव ॥१०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वा महातेजास्तेजोराशिं घटोद्भवम् ।
सभा-विसर्जनं चक्रे महर्षीणामनुज्ञया ॥११॥

तब वे धर्मबुद्धि श्रीमिथिलेशजी महाराज हाथ जोड़े हुये, मस्तक झुकाकर बोले—हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! षडैश्वर्य-सम्पन्न प्रभो ! आपका वचन शिरोधार्य है अर्थात् मैं तदनुसार ही करूँगा ॥१०॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! महातेजस्वी श्रीमिथिलेशजी महाराजने तेजके पुञ्जस्वरूप श्रीअगस्त्यजी महाराजसे इस प्रकार कहकर महर्षियोंकी आज्ञासे सभाका विसर्जन किया ॥११॥

ऋषयः पञ्चरात्रं ते तत्रोषित्वोरुयाञ्चया ।
सत्सङ्गसुखलाभाय ययुः स्वं स्वं तपोवनम् ॥१२॥

पुनः सत्सङ्ग सुखके लाभके लिये श्रीमिथिलेशजी महाराजकी विशेष-याचनासे वे ऋषिवृन्द पांच रात्रि वहाँ निवास करके अपने-अपने तपोवनको चले गये ॥१२॥

अथ यातेषु वै तेषु महत्सु मिथिलेश्वरः ।
त्र्यम्बकस्य सुधीः शम्भोस्तोषणाय मनोदधे ॥१३॥

अब वे महात्मावृन्द वहाँसे चले गये, तब सुन्दरबुद्धि सम्पन्न श्रीमिथिलेशजी महाराजने त्रिनेत्रधारी भगवान् शङ्करजीको प्रसन्न करने में मन लगाया ॥१३॥

तपस्तेपे ततो घोरमूर्ध्वबाहुरतन्द्रितः ।
अष्टवर्षाणि युक्तात्मा तदा प्रीतोऽभवद्धरः ॥१४॥

उसके निमित्त मनको अपने वशमें रखकर आलस्य रहित हो ऊँची बाहें करके आठ वर्ष तक घोर तप किये तब भक्तोंके दुःख हरने वाले भगवान् शिवजी प्रसन्न हुये ॥१४॥

अभ्येत्य दृष्टिमार्गं स पितुर्मे चन्द्रशेखरः ।
तुष्टोऽस्म्यहं वरं ब्रूहि तमाहेति हसन्निव ॥१५॥

तब वे मेरे श्रीपिताजीको दर्शन देकर उनसे मुस्कराते हुये यह बोले–हे राजन् ! मैं प्रसन्न हूँ आप वर माँगिये ॥१५॥

एवमुक्तः पपातासौ त्र्यम्बकस्य पदाब्जयोः ।
तमुत्थाप्य परिष्वज्य ददौ तस्मै स सान्त्वनाम् ॥१६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! भगवान् श्रीसदाशिवजीकी इतनी आज्ञा पाकर श्रीमिथिलेशजी महाराज उनके श्रीचरण-कमलोंमें गिर पड़े, श्रीभोलेनाथ बाबाने उन्हें उठा लिया और हृदयसे लगा कर सान्त्वना प्रदान की ॥१६॥

धैर्यमालम्ब्य योगीन्द्रः पुनस्तं संयताञ्जलिः ।
प्रार्थयामास धर्मज्ञः पार्वतीवल्लभं विभुम् ॥१७॥

जिसके प्रभावसे धर्मके तत्त्वको जानने वाले और योगियोंमें श्रेष्ठ उन श्रीमिथिलेशजी महाराजने धैर्य धारण करके उन श्रीपार्वतीवल्लभजूसे पुनः प्रार्थना की ॥१७॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

यदि तुष्टोऽसि मे नाथ ! सर्वाभीष्टफलप्रदः ।
वाञ्छितं देहि मे शम्भो ! यदर्थं त्वं निषेवितः ॥१८॥

हे समस्त अभीष्ट फलको प्रदान करने वाले नाथ ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो हे शम्भो ! मेरा वह अभीष्ट प्रदान कीजिये जिसके लिये मैंने इस समय आपका भजन किया है ॥१८॥

सर्वेश्वर्या हि सम्प्राप्तिः पुत्रीरूपेण मे प्रभो ! ।
भवेदाशु यतो ब्रह्म जामाता नृपजो भवेत् ॥१९॥

हे प्रभो ! श्रीसर्वेश्वरीजीकी मुझे पुत्री रूपसे प्राप्ति हो, जिससे ब्रह्मस्वरूप श्रीचक्रवर्ती कुमार श्रीरामललाजी मेरे जमाई (दामाद) बनें ॥१९॥

तत्सम्बन्धप्रदानं हि वरं मे परमं प्रभो ! ।
दीयतां करुणासिन्धो ! वरं दातुं यदीहसे ॥२०॥

श्रीरामललाजीके इस सम्बन्धका दान ही मेरा सर्वोत्कृष्ट वर है। अतः हे करुणासागर! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो यही वर प्रदान कीजिये ॥२०॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

तमुवाच प्रसन्नात्मा शङ्करः प्रहसन्निव।
वरं ददामि ते कामं न मोघोऽस्तु मनोरथः ॥२१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! भगवान् शङ्करजी प्रसन्न हृदय होकर हँसते हुये श्रीमिथिलेशजी महाराजसे बोले:—हे राजन्! मैंने तुम्हें यथेष्ट वरदान दिया तुम्हारा मनोरथ सफल हो, सफल हो ॥२१॥

यं च लेभे दशरथो यां च प्राप्तुं समीहसे।
तौ हि सर्वेश्वरौ साक्षात् सीतारामौ परात्परौ ॥२२॥

जिनकी प्राप्ति आप करना चाहते हैं और जिनको श्रीदशरथजी महाराज प्राप्त कर चुके हैं वे दोनों साक्षात् परात्पर सर्वेश्वरी सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी हैं ॥२२॥

रामं दशरथः प्राप सीतां प्राप्तुं यतानघ!
तस्याः प्राप्तिप्रयत्नस्तु तन्मन्त्रः सुलभोऽधिकः ॥२३॥

हे निष्पाप राजन्! सर्वेश्वर श्रीरामजीको तो श्रीदशरथजी महाराजने प्राप्त किया अतः आप सर्वेश्वरी श्रीसीताजीकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न कीजिये। उन श्रीसर्वेश्वरी किशोरीजीकी प्राप्तिका अधिक सुलभ साधन, उन्हींका श्रीमन्त्रराज है ॥२३॥

रहस्यं श्रूयतां गुह्यं त्वदीहासिद्धिसूचकम्।
तेन विश्रब्धमनसा कार्यं कर्म समाचर ॥२४॥

आपके मनोरथकी सिद्धिका सूचक एक गुप्त रहस्य है, उसे सुनें और उस रहस्यके श्रवणसे अपने मनोरथकी सिद्धि पर विश्वास कर अपने आवश्यक कर्त्तव्यको भली प्रकारसे पूर्ण करें ॥२४॥

एकदा वै परे धाम्नि मुक्तजीवनिषेविते।
श्रीसीतारामसंवादः शिवाय जगतोऽभवत् ॥२५॥

एक समय मुक्त-जीवोंसे सेवित, सर्वोत्कृष्ट श्रीसाकेत धाममें समस्त चर अचर प्राणियोंको वास्तविक कल्याणकी प्राप्ति करानेके लिये अर्थात् उनकी देहाकार और विषयाकार चित्तवृत्तियोंको हटाकर भगवदाकार और कर्त्तव्याकार बनानेके लिये श्रीसीतारामजीका संवाद हुआ था ॥२५॥

सिद्धान्तितमिदं तस्मिन्सीतया जगदम्बया ।
यज्ञवेद्याः समुत्पत्स्ये ततो यज्ञो विधीयताम् ॥२६॥

उस परस्परके सिद्धान्तमें जगज्जननी श्रीसीताजीने अपना यह सिद्धान्त बताया था कि "मैं यज्ञवेदीसे प्रकट होऊँगी" अतः हे राजन् ! आप उनकी प्राप्तिके लिये पुत्रेष्टि यज्ञ करें ॥२६॥

प्राकट्यसूचकानीह सर्वेश्वर्य्या बहून्यपि ।
निमित्तानि प्रपश्यामि तानि मे वदतः शृणु ॥२७॥

इस समय श्रीसर्वेश्वरीजीके प्राकट्य-सूचक मैं बहुतसे शुभ शकुन देख रहा हूँ उन्हें मेरे कहते हुये श्रवण करें ॥२७॥

येषां येषां महद्वैरं मिथः शास्त्रेषु वर्णितम् ।
तेषां तेषां परा प्रीतिर्मिथश्चात्र प्रदृश्यते ॥२८॥

शास्त्रोंमें जिन जिन प्राणियोंका एक दूसरेके प्रति अत्यन्त वैर वर्णन किया गया है, उन-उन प्राणियोंमें इस समय भली प्रकारसे अत्यन्त प्रेम दिखाई दे रहा है ॥२८॥

ये विनिश्चितकाले हि सौख्यदाः सर्वदेहिनाम् ।
ते तु वै साम्प्रतं लोके सर्वकालसुखावहाः ॥२९॥

जो अपने निश्चित समय पर ही सब प्राणियोंको सुखदाई हुआ करते थे, वे सब इस समय सभी कालमें सुखको उपस्थित कर रहे हैं ॥२९॥

यश्च वै विषवत्पूर्वमिदानीं स सुधोपमः ।
ये जडाः कथिताः पूर्वं चेतना अभवन् हि ते ॥३०॥

जो पहले विषके समान घातक था वह अब अमृतके समान जीवनदान देने वाला बन गया है और जिनको पहले जड कहा करते थे वे इस समय चेतन हो गये हैं ॥३०॥

कृत्स्ना कामदुघा भूमिः पाषाणा मणयोऽभवन् ।
वृक्षा वै कल्पवृक्षाश्च मर्त्यं स्वर्गमनामयम् ॥३१॥

इस समय सारी भूमि लोगोंकी इच्छानुसार उपजाऊ हो गयी है, पत्थर, मणियोंका रूप धारण कर रहे हैं और वृक्ष, कल्पवृक्षका प्रभाव दिखा रहे हैं, यह मृत्युलोक, समस्त रोगोंसे रहित स्वर्गके सदृश सुखद हो रहा है ॥३१॥

एवमादीनि चिह्नानि त्वयाऽपूर्वोद्भवानि हि।
सन्निरीक्ष्येप्सितप्राप्त्यै यज्ञः शीघ्रं विधीयताम् ॥३२॥

इस प्रकारके उत्तम-उत्तम चिह्नोंको, जो और कभी पहले प्रकट ही नहीं हुये थे उन्हें सम्यक् प्रकारसे देखकर अपनी अभीष्ट-पूर्त्तिके लिये आप शीघ्र पुत्रेष्टि यज्ञ करें ॥३२॥

सिद्धिं परामेष्यसि मत्प्रसादादिष्टां विदेहान्वयपद्मभानो!
कीर्त्तिश्च ते पुण्यमयी प्रशस्या गेया महद्भिर्भविता चिराय ॥३३॥

हे श्रीविदेहकुलकमलदिवाकर! मेरी कृपासे आप अपनी सर्वोत्कृष्ट अभीष्ट सिद्धिको शीघ्र ही प्राप्त करेंगे और आपकी प्रशंसनीय पुण्य मयी कीर्त्ति महात्माओंके द्वारा अनन्त काल तक गानेके योग्य बन जायेगी ॥३३॥

न चास्ति भूतो भविता न चैव लोकत्रये वै सदृशस्त्वदेव।
इतो व्रज त्वं कुरु यज्ञमाद्यं ततो महाभाग! लभस्व सिद्धिम् ॥३४॥

हे राजन्! इन तीनों लोकोंके बीचमें आपके सदृश सौभाग्यवान् न इस समय कोई है, न कोई पहले हुआ है, और न पीछे कोई होगा ही। अत एव हे महाभाग! अब आप यहाँ से अपने महल जावें और उस उत्तम यज्ञको करें तथा उसके द्वारा अपनी अभीष्ट-सिद्धिको प्राप्त करें ॥३४॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एतद्वरं प्रीतियुतः प्रदाय श्रीशङ्करो देववरः कृपालुः।
अन्तर्दधे पश्यत एव तस्य सौदामिनीव प्रिय! पद्मनेत्र! ॥३५॥

इति त्रिंशोऽध्यायः।

—: इति परायण ८ समाप्तः :—

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे! हे कमलनयन! देवताओंमें श्रेष्ठ, भक्तों पर कृपा करनेका सहज स्वभाव रखने वाले श्रीशङ्कर भगवान् श्रीमिथिलेशजी महाराजको प्रीतिपूर्वक यह वरदान देकर उनके देखते-ही-देखते बिजुलीके सदृश अन्तर्धान हो गये ॥३५॥

अथैकत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३१॥

यज्ञके लिये निवास स्थानोंको बनवाना तथा निमन्त्रण द्वारा पधारे हुये महर्षियों और समस्त राजाओं आदिका समुचित सत्कार

श्रीस्नेहपरोवाच।

अथ लब्धवरः श्रीमान् निमिवंशप्रभाकरः।
समागत्यालयं शम्भोर्वरं लब्धमकीर्त्तयत् ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे! निमिवंशको विश्वमें प्रकाशित करने वाले श्रीमान् श्रीमिथिलेशजी महाराज वरदान पाकर अपने महलमें पहुँचे और भगवान् श्रीसदाशिवजीसे पाये हुए वरदानकी कह सुनाये ॥१॥

भ्रातरो मन्त्रिणश्चैव पुरोधाश्च द्विजर्षभाः।
निशम्यागमनं राज्ञः शीघ्रमेव समागताः ॥२॥

इतने ही में श्रीमिथिलेशजी महाराजका निज महलमें आगमन सुनकर सभी भाई, मन्त्री, श्रीशतानन्दजी और श्रेष्ठ द्विज (ब्राह्मण) वृन्द शीघ्र ही उनके पास आ गये ॥२॥

तैरभिनन्दितः श्रीमान् यथायोग्य नृपोत्तमः।
वरं बभाण सम्प्राप्तं सर्वेभ्यो वरदर्षभात् ॥३॥

और उन लोगोंने यथोचित धन्यवाद दिया तब नृपोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् मिथिलेशजीने वरद शिरोमणि श्रीसदाशिवजीसे प्राप्त हुये अपने वरदानको सभीसे निवेदन किया ॥३॥

तच्छ्रुत्वा हर्षिताः सर्वे शतानन्दमथाब्रुवन्।
कारयाशु महायज्ञं सन्मुहूर्तं विचार्य च ॥४॥

भगवान् शिवजीसे वरदानकी प्राप्ति सुनकर सबकेसब बड़े हर्षको प्राप्त हुये और वे श्रीशतानन्दजी महाराजसे बोले–हे महाराज! अच्छा मुहूर्त विचार करके भगवान् शिवजीके बतलाये हुये इस महायज्ञको शीघ्र करवाइये ॥४॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

पुनस्तु पूजिताः सर्वे यथाकामं नृपेण ते।
निवासं चागमन् स्वं स्वं प्रशंसन्तो महीपतिम् ॥५॥

शतानन्दो महातेजास्तपःसंवीतकिल्विषः ।
रात्रौ विचार्य दोषज्ञो मुहूर्तं दुर्लभेष्टदम् ॥६॥
प्रत्यूषे राजभवनं समागत्य मुदान्वितः ।
पूजितो विधिना प्राह राजानं विनयान्वितम् ॥७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! उसके पश्चात् श्रीमिथिलेशजी महाराजसे वे यथेष्ट पूजित होकर उनकी प्रशंसा करते हुये सभी अपने-अपने भवन पधारे ॥५॥ तपसे जिनके समस्त पाप नष्ट हुये हैं, ऐसे महातेजस्वी, विद्वान् श्रीशतानन्दजी महाराज अपने निवासस्थानपर रातमें दुर्लभ सिद्धि प्रदान करने वाला, सुन्दर मुहूर्त विचार करके ॥६॥ प्रातः बड़ी प्रसन्नतापूर्वक राजभवनमें जाकर विधिवत् पूजित हो, उन विनययुक्त श्रीमिथिलेशजी महाराजसे बोले-॥७॥

श्रीशतानन्द उवाच ।

संभाराः संप्रियन्तां चानीयन्तां मुनिपुङ्गवाः ।
निमन्त्रयस्व धर्मज्ञान् सर्वभूमण्डलेश्वरान् ॥८॥

हे राजन् ! अब यज्ञके लिये सभी सामग्री एकत्रित कराइये और मुनिश्रेष्ठोंको बुलाइये तथा सभी धर्मज्ञ भूमण्डलेश्वरोंको निमन्त्रण दीजिये ॥८॥

पञ्चम्यां हि सिते पक्षे वर्षेऽस्मिन्सुमहामते ।
अपूर्वयोगलग्नर्क्षमुहूर्ता मासि माधवे ॥९॥

क्योंकि हे सुमहामते ! इसी वर्षके वैशाख मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें जो शुभयोग, लग्न, नक्षत्र, मुहूर्त एकत्रित हुये हैं वे पूर्वमें और कभी नहीं हुये थे ॥९॥

अद्य वै पाश्चिमी यात्रा प्रशस्ता सर्वसिद्धये ।
अतः श्रीलक्ष्मणातीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥१०॥

और आज सभी विचारोंसे पश्चिम दिशाकी यात्रा भी समस्त सिद्धि-प्राप्तिके लिये अत्यन्त उपयुक्त उपस्थित है, अत एव यज्ञ-भूमि संशोधन आदिके लिये यात्राके अनुसार पश्चिमकी और ही आज प्रस्थान करना श्रेयस्कर है अतः श्रीलक्ष्मणा गङ्गाजीके किनारे ही यज्ञभूमि बनाई जावे ॥१०॥

पृथक् पृथगपि सर्वेषामावासाश्च मनोहराः ।
सर्वावश्यकसंयुक्ताः कर्त्तव्या बहुविस्तराः ॥११॥

और सभीके लिये अलग २ समस्त आवश्यक वस्तुओंसे युक्त बहुत लम्बे चौड़े मनोहर निवास भवन बनवाये जायें ॥११॥

मुनीनां पृथगावासा राज्ञां चैव तथा पृथक् ।
प्रत्येकवर्णजातीनामावासाश्च पृथक् पृथक् ॥१२॥

मुनियोंके लिये अलग, राजाओंके लिये अलग तथा प्रत्येक वर्ण और जातिके लिये अलग २ भवन बनवाये जायें ॥१२॥

शिल्पिदैवज्ञविदुषामागतानां सुदूरतः ।
नटानां नर्तकानां च भट्टानां कल्पवेदिनाम् ॥१३॥

दूरसे आये हुये कल्पका भेद जानने वालोंके, भाटोंके, नृत्यकारोंके, नटोंके, ज्योतिषियोंके व कारीगरोंके लिये ॥१३॥

क्रियन्तां महदावासाः सर्वावश्यकसंयुताः ।
तथा पौरजनस्यापि विधेया बहुविस्तराः ॥१४॥

सभी आवश्यकता निर्वाहिक सामग्रियोंसे युक्त, बड़े २ महल बनवाये जायें और पुरवासियोंके लिये भी बड़े-बड़े निवासस्थान बनवाने चाहिये ॥१४॥

देयमावश्यकं सर्वं सादरं न तु लीलया ।
सर्वेभ्यः पुष्कलं प्रीत्या प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥१५॥

और सभी आवश्यक वस्तुयें सभीके लिये प्रेमपूर्वक, प्रसन्न हृदयसे पर्याप्त (आवश्यकतासे (अधिक) मात्रामें आदरपूर्वक दी जायें, देनेमें उदासीन भाव न रहे ॥१५॥

कस्यचिन्नापि चावज्ञा विधेया भूप ! तावकैः ।
यज्ञकर्मणि सक्तास्तैस्तोषणीया विशेषतः ॥१६॥

और हे राजन् ! आपके कर्मचारियोंको किसीका भी अपमान नहीं करना चाहिये और यज्ञके कार्यमें सलग्न रहने वालोंको विशेष रूपसे सन्तुष्ट रखना ही उनका आवश्यक कर्त्तव्य है ॥ १६ ॥

हताशा नार्थिनः कार्या देहप्राणधनैरपि ।
अयाचकाः प्रकर्त्तव्या यज्ञेऽस्मिन्नित्ययाचकाः ॥१७॥

धन, शरीर, प्राण भी यदि देनेकी आवश्यकता उपस्थित हो जाय तो सहर्ष दे डालें, किन्तु याचककी आशाको भङ्ग न करें। इस यज्ञमें नित्य भिक्षा माँगनेका ही जिन्हें व्यसन पड़ गया है उन्हें भी अपनी उदारतासे अयाचक बना दिया जाय अर्थात् उन्हें इतना दान दिया जावे कि जिससे उन्हें अपनी उस वृत्तिको लाचार होकर छोड़ना ही पड़े ॥१७॥

एवं त्वया महायज्ञो दुर्लभार्थाप्तिकाम्यया ।
कर्त्तव्यो विधिवद्राजन् ! क्षिप्रमेव प्रयत्नतः ॥१८॥

हे राजन् ! आपको इस रीतिसे दुर्लभ मनोरथकी सिद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक शास्त्रविधिके अनुसार ही उस यज्ञको शीघ्र करना चाहिये ॥१८॥

श्रीमान् दशरथो राजा सत्यसन्धः प्रतापवान् ।
समानेयो यशःश्लाघ्यो विनयेनाद्यमन्त्रिणा ॥१९॥

अपने यशसे ही प्रशंसाके पात्र, सत्यप्रतिज्ञ, प्रतापशाली, श्रीयुक्त दशरथजी-महाराजको आपके प्रधानमन्त्री (श्रीसुदर्शनजी) बुला लावें ॥१९॥

विकाशाया धवः श्रीमान् भूरिमेधास्तु सानुजः ।
विष्वक्सेनेन चानेयः श्वशुरः सानुजस्तव ॥२०॥

आपके श्वशुर, विकाश पुरीके राजा श्रीमान् भूरिमेधाजी महाराजको छोटे भाई ज्ञान मेधाके सहित विष्वक्सेन मन्त्रीजी ले आवें ॥२०॥

श्रीधरं परमोदारं राजानं सत्यविक्रमम् ।
अमात्यो जयमानश्च समानयतु सादरम् ॥२१॥

सत्य-पराक्रमवाले, परम उदार श्रीधर महाराजको आपके मन्त्री श्रीजयमानजी आदर-पूर्वक ले आवें ॥२१॥

सुदामा यातु चानेतुं वृद्धं मातामहं तव ।
वार्हलाधिपतिं शूरं नरेन्द्रमर्कभास्वरम् ॥२२॥

श्रीसुदामा मन्त्री आपके वृद्ध नाना वार्हल देशके राजा शौर्य-गुण-युक्त श्रीअर्क भास्वरजी महाराजको लेनेके लिये जावें ॥२२॥

विश्वकायं समानेतुं सपुत्रं बन्धुभिर्युतम् ।
सुनीलो यातु धर्मज्ञं वारधानपुरेश्वरम् ॥२३॥

पुत्र व बन्धुओंके सहित धर्मके रहस्यको समझने वाले वारधानपुरके राजा श्रीविश्वकायजी महाराजको लेनेके लिये श्रीसुनील मन्त्रीजी पधारें ॥२३॥

काशिराजं तथाऽऽनेतुं विधिज्ञो यातु धार्मिकम् ।
कोशलाधिपतिं वृद्धमानयेत्सन्धिवेदनः ॥२४॥

धर्मपरायण श्रीकाशीनरेशजीको लेनेके लिये श्रीविधिज्ञ मन्त्रीजी जावें और कोशल देशके वृद्ध राजाको श्रीसन्धिवेदन मन्त्रीजी ले आवें ॥२४॥

तथा मगधभूपालं रोमपादं दयापरम् ।
सुमतो यातु चानेतुं सुदामा केकयेश्वरम् ॥२५॥

तथा श्रीसुमत मन्त्रीजी, मगध देशके परम दयालु श्रीरोमपादजी महाराजको लेनेके लिये और श्रीसुदामा मन्त्री, केकय नरेशको लेनेके लिये पधारें ॥२५॥

अनुक्तान्पार्थिवांश्चापि दूताः कार्यविशारदाः ।
समानयन्तु शीघ्रेण विनयेनैव तोषितान् ॥२६॥

और जिनका नाम नहीं लिया गया है उन राजाओंको भी कार्यकुशल दूत अपनी-अपनी प्रार्थना से सन्तुष्ट करके शीघ्र बुला लावें ॥२६॥

चातुर्वर्णाश्रमस्थानां सर्वेषामपि सादरम् ।
निमन्त्रणं च क्रियतां विशेषेण महात्मनाम् ॥२७॥

चारों वर्ण व चारों आश्रमों में रहने वाले सभी लोगोंका निमन्त्रण कीजिये उनमें भी जिनके हृदयमें भगवानका ही मुख्य विहार रहता है ऐसे महात्माओंका विशेष रूपसे निमन्त्रण कीजिये २७

एवमुक्तो महातेजा योगिनामृषभो नृपः ।
आदिदेश महामात्यान् यथोक्तं च पुरोधसा ॥२८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीशतानन्दजी महाराजकी इस प्रकारकी आज्ञासे सुनकर योगियोंमें श्रेष्ठ महातेजसे युक्त श्रीमिथिलेशजी महाराजने उनके आज्ञानुसार अपने महामन्त्रियोंको आदेश प्रदान किये ॥२८॥

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे बुद्धिमन्तो नरेश्वरम् ।
अकारयत्तदाऽऽस्रासञ्छिल्पकर्मविशारदैः ॥२९॥

तब वे सभी बुद्धिमान् मन्त्रीगण-महाराजसे "ऐसा ही होगा" कहकर परम-चतुर कारीगरोंसे निवास-भवन बनवाने लगे ॥२९॥

यथायोग्यांश्च सर्वेषां सर्वावश्यकसंयुतान् ।
सर्वर्तुसुखदान् रम्यान् नानारचनयान्वितान् ॥३०॥

जो कि सभीके लिये योग्य, समस्त आवश्यक पदार्थोंसे परिपूर्ण, सभी ऋतुओंमें सुखद, नाना प्रकारकी रचनासे युक्त और सुन्दर थे ॥३०॥

पुनर्गत्वा नृपादेशाद्देशांस्ते परिकीर्तितान् ।
नाना यानानि चारुह्य वायुसूर्यजवानि ह ॥३१॥

पुनः श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञासे वायु और सूर्यके समान शीघ्र चलने वाली सवारियों पर बैठ कर जिनका नाम कहा गया था उन सभीके यहाँ जाकर ॥३१॥

प्रणता नीतिशास्त्रज्ञाः स्निग्धाश्च सारवेदिनः ।
उक्तेभ्यो नृपमुख्येभ्यः प्रददू राजपत्रिकाम् ॥३२॥

नीतिशास्त्रके ज्ञाता कोमल स्वभाव और जीवनका सार जानने वाले मन्त्री गणोंने प्रणाम किया और श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पत्रिका प्रदान की ॥३२॥

वाचयित्वा तु तां प्रेम्णा लिखितां निमिभानुना ।
महर्षं ते परं लब्ध्वाऽऽश्वाजग्मुर्मिथिलापुरीम् ॥३३॥

निमिवंशको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजकी लिखी हुई पत्रिकाको बाँचकर वे राजा लोग परम हर्षको प्राप्त हो शीघ्र श्रीमिथिलापुरीमें आ पहुँचे ॥३३॥

श्रीमान् सुदर्शनो नाम प्रधानः सर्वमन्त्रिणाम् ।
अयोध्यां चागमत्तूर्णं समानेतुं महान्नृपम् ॥३४॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रधानमन्त्री श्रीसुदर्शनजी श्रीचक्रवर्तीजी महाराजको लेनेके लिये शीघ्र श्रीअयोध्याजी पधारे ॥३४॥

गत्वाऽसौ तं नमस्कृत्य राजानं सत्यवादिनम् ।
संपृष्टकुशलः सौम्यो दत्तवान् राजपत्रिकाम् ॥३५॥

वहाँ सत्यवादी महाराजके पास पहुँच कर उन्हें नमस्कार किया और कुशल समाचार आदि पूछे जाने पर महाराजकी पत्रिका उनको समर्पण की ॥३५॥

तां तु पङ्क्तिरथः श्रीमान् प्रहृष्टवदनः शुचिः ।
श्रूयतामिति सम्भाष्य सुमन्त्राय न्यशामयत् ॥३६॥

उस पत्रिका को पवित्र आचरण सम्पन्न, प्रसन्न मुख, श्रीमान् दशरथजी महाराजने स्वयं पढ़ा और हे सुमन्त्रजी ! श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पत्रिका श्रवण कीजिये, ऐसा कहकर उनको पढ़कर सुनाया ॥३६॥

सिद्धिश्रीः ! सकलप्रशस्तगुणधे ! राजेन्द्रचूडामणे !
मार्तण्डान्वयवारिजातविपिनध्वान्तापह ! श्रीमतः ।
पादाब्जे मम कोटिशः प्रणतयः स्युः सादर स्वीकृताः
आशासे कुशली भवान्कुलयुतो भद्रं हि नः सर्वथा ॥३७॥

हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यप्राप्त ! समस्त प्रसिद्ध क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, सौजन्य, औदार्य, कारुण्यादि गुणोंके निधि ! श्रेष्ठराजाओंमें शिरोमणि ! मार्तण्ड (सूर्य) वंश रूपी कमलवनको प्रफुल्लित करने वाले सूर्य ! श्रीमहाराजधिराज श्रीमानजीके श्रीचरणकमलोंमें कोटिशः प्रणाम स्वीकृत हो, मैं कुशलसे हूँ और आशा करता हूँ कि आप भी अपने कुलके सहित सब प्रकारसे सकुशल होंगे ॥३७॥

पुत्रीष्टिं कर्तुमिच्छामि मुनीनां सम्मतेन तत् ।
आरम्भः शुक्लपञ्चम्यां माधवस्य सुनिश्चितः ॥३८॥

इस समय मैं मुनियोंकी सम्मतिसे पुत्रीष्टि यज्ञ करना चाहता हूँ उसका आरम्भ वैशाखशुक्ल पञ्चमीमें सुनिश्चित हुआ है ॥३८॥

तं निजागमनेनैव समलङ्कर्तुमर्हसि ।
सपुत्रबन्धुमित्रैश्च राज्ञीभिर्मन्त्रिभिः सह ॥३९॥

अतः उस यज्ञको पुत्र, बन्धु, मित्रोंके सहित तथा महारानियों व मन्त्रियोंके साथ अपने शुभागमनके द्वारा सुशोभित करनेकी कृपा करें ॥३९॥

इमां तु प्रार्थनाशाखां भवता सफलीकृताम् ।
द्रष्टुमर्होऽस्मि राजेन्द्र ! कृपया ते कृपानिधेः ॥४०॥

हे राजेन्द्र ! आप कृपाकी निधि हैं अत एव आपकी कृपासे मैं अपनी इस प्रार्थना रूपी शाखाको फल युक्त ही देखने के योग्य हूँ ॥४०॥

अधिकं प्रार्थये किन्न भवन्तं वाग्विदां वरम् ।
भवदीयकृपाकाङ्क्षी सीरध्वज इति श्रुतः ॥४१॥

आप वाणीका अर्थ समझने वालोंमें श्रेष्ठ हैं अतः आपसे और अधिक मैं क्या प्रार्थना करूँ? आपका कृपाकाङ्क्षी सीरध्वज नामसे विख्यात ॥४१॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

तन्निशम्य सुमन्त्रोऽतिहर्षसम्प्लाविताशयः ।
व्याजहार वचः श्लक्ष्णं राजानं प्रति शोभनम् ॥४२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी पत्रिकाको सुनकर श्रीसुमन्त्रजीका हृदय अत्यन्त हर्षसे डूब गया, अतः वे महाराजसे बड़े ही प्रेममय और सुहावन वचन बोले-॥४२॥

श्रीसुमन्त्र उवाच।

अहो राजशिरोरत्न निघृष्टचरणाम्बुज !
स्वीकार्यं प्रार्थनापत्रमिदं श्रीमिथिलेशितुः ॥४३॥

हे राजाओंके शिरोंमें सुशोभित रत्नोंके स्पर्श-चिन्होंसे युक्त श्रीचरणकमलवाले महाराज ! यहो श्रीमिथिलेशजी महाराजके इस प्रार्थना-पत्रको अवश्य स्वीकार करना चाहिये। ४३॥

एकवंश्यौ महाराज भवांश्च मिथिलेश्वरः ।
दिक्षु विख्यातसत्कीर्ती युवां मान्यौ जगत्त्रये ॥४४॥

हे महाराज ! क्योंकि आप और श्रीमिथिलेशजी दोनों ही एक (श्रीइक्ष्वाकुमहाराजके) वंशज हैं दोनोंकी ही सत्कीर्ति दशो दिशाओंमें विख्यात है और आप दोनों ही त्रिलोकीमें सम्माननीय हैं ४४

मन्त्रिणोक्तमिदं प्रेष्ठ ! समाकर्ण्य शुभाक्षरम् ।
साधु साध्विति तद्वाक्यं क्षितिपालोऽन्वपूजयत् ॥४५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीसुमन्त्रजीके सुन्दर अक्षरोंसे ओत प्रोत (युक्त) कथनको सुनकर श्रीचक्रवर्ती महाराजने, आपने बहुत अच्छा कहा ठीक कहा इत्यादि कहते हुवे उनके वचनों की बारम्बार प्रशंसा की ॥४५॥

पुनर्वशिष्ठमाहूय स्वाचार्यं सुहृदां वरम् ।
कृत्स्नं निवेद्य वृत्तान्तं तेनाज्ञप्तश्च तेन सः ॥४६॥

विवस्वान् दैववातिश्च पावकाग्निस्तथैव च ।
विश्वमना मयोभूश्च सुमेधा चोशना तथा ॥५३॥

श्रीविवस्वानजी, श्रीदैववातिजी, श्रीपावकाग्निजी तथा श्रीविश्वमनाजी, श्रीमयोभूजी, श्रीसुमेधाजी, श्रीउशनाजी ॥५३॥

देवलो वामदेवश्च परमेष्ठी प्रजापतिः ।
पुलहश्च पुलस्त्यश्च गोतमस्त्रित आसुरिः ॥५४॥

श्रीदेवलजी, श्रीवामदेवजी, श्रीपरमेष्ठीजी, श्रीप्रजापतिजी, श्रीपुलहजी, श्रीपुलस्त्यजी, श्रीगोतमजी, श्रीत्रितजी, श्रीआसुरिजी ॥५४॥

आङ्गिरसः सुश्रुतः शंयुर्भारद्वाजस्तु लोमशः ।
विरूप आडवत्सारो याज्ञवल्क्यो बृहस्पतिः ॥५५॥

श्रीअङ्गिराजीके पुत्र सुश्रुतजी, श्रीशंयुजी, श्रीभरद्वाजजीके पुत्र श्रीप्रजापतिजी, श्रीलोमशजी, अडवत्सारके पुत्र श्रीविरूपजी, श्रीयाज्ञवल्क्यजी, श्रीबृहस्पतिजी ॥५५॥

वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा सुवन्धुः काश्यपो जयः ।
देवश्रवो देववातः कण्वश्चित्रः सुतम्भरः ॥५६॥

श्रीविश्वमित्रजीके पुत्र श्रीमधुच्छन्दाजी, श्रीसुवन्धुजी, कश्यपके पुत्र श्रीजयजी, श्रीदेवश्रवजी, श्रीदेववातजी, श्रीकण्वजी, श्रीचित्रजी, श्रीसुतम्भरजी ॥५६॥

आपुलवनद्रुमदा रैस्तो गौरीवितिस्तथा ।
मानवो नाभानेदिष्टः सत्याथिको महानृपिः ॥५७॥

श्रीआपुलवनद्रुमदाजी श्रीरैस्तजी, श्रीगौरीवितजी, श्रीमानवजी, श्रीनाभानेदिष्टजी, महर्षि सत्याथिकजी ॥५७॥

श्रुतवन्धुः प्रवन्धुश्च सिन्धुद्वीपोऽथ सोमकः ।
प्रस्कण्वः कुत्स उत्कील आत्रिः सोमाहुतिस्तथा ॥५८॥

श्रीश्रुतवन्धुजी, श्रीप्रवन्धुजी, श्रीसिन्धुद्वीपजी, श्रीसोमकजी, श्रीप्रस्कण्वजी, श्रीकुत्सजी, श्रीउत्कीलजी तथा श्रीअत्रिजीके पुत्र सोमाहुतिजी ॥५८॥

देवश्रवा त्रिशोकश्च भरद्वाजश्च भार्गवः ।
मेधातिथिस्त्रिदस्युश्च पायुर्गृत्समदो मनुः ॥५९॥

श्रीदेवश्रवाजी, श्रीत्रिलोकजी, श्रीभरद्वाजजी, श्रीभार्गवजी, श्रीमेधातिथिजी, श्रीत्रिदस्युजी, श्रीपाथुजी, श्रीगृत्समदजी, श्रीमनुजी ॥५९॥

कुत्सिर्दीर्घतमा देवा शुनःशेपोऽथ वारुणिः ।
श्यावाश्वश्चैव वत्सारो वरुणस्तापसो भृगुः ॥६०॥

श्रीकुत्सिजी, श्रीदीर्घतमाजी, श्रीदेवाजी, वरुणके पुत्र शुनःशेपजी, श्रीश्यावाश्वजी, श्रीवत्सारजी श्रीवरुणजी, श्रीतापसजी, श्रीभृगुजी ॥६०॥

श्रौर्णवाभो मधुच्छन्दा गृत्सो वत्सो मृडीयवः ।
वैखानः शास आत्रेयो नाभनेदिः पराशरः ॥६१॥

श्रीऊर्णवाभके पुत्र मधुच्छन्दाजी, श्रीगृत्सजी, श्रीवत्सजी, श्रीमृडीयवजी, श्रीवैखानजी, श्रीअत्रिजीके पुत्र शासजी, श्रीनाभानेदिजी, श्रीपराशरजी ॥६१॥

वन्धूर्दीर्घतमोनथ्यौ प्रियमेधा भिषक्तथा ।
सुतजेतृमधुच्छन्दा दधिक्रावश्च मुद्गलः ॥६२॥

श्रीवन्धूजी, श्रीदीर्घतमाजी, श्रीउनथ्यजी, श्रीप्रियमेधाजी, श्रीभिषक्जी, श्रीसुतजेतृमधुच्छन्दाजी, श्रीदधिक्रावजी, श्रीमुद्गलजी ॥६२॥

नारायणो मधुच्छन्दो नाभानेदिष्ट आत्मवान् ।
विवृहा च सप्तधृतिर्बार्हस्पत्यः शयुर्लुशः ॥६३॥

श्रीनारायणजी, श्रीमधुच्छन्दजी, श्रीनाभानेदिष्टजी, श्रीविवृहाजी, श्रीसप्तधृतिजी, श्रीबृहस्पतिके पुत्र श्रीशयुजी, श्रीलुशजी ॥६३॥

वत्सपः परमेष्ठी च कुशविन्दुश्च कीर्त्तिमान् ।
शङ्खः कुमारो हारीतः श्रीनिरवावसुराश्विनौ ॥६४॥

श्रीवत्सपजी, श्रीपरमेष्ठीजी, श्रीकुशविन्दुजी, कीर्तिमान् श्रीशङ्खजी, श्रीकुमारजी, श्रीहारीतजी, श्रीनिश्वावसुजी, श्रीअश्विनजी ॥६४॥

विश्वदेवोदगयनः सविता वसुयू नरपिः ।
हैमवर्चिर्भिभूतिश्च कौण्डिन्यो विधृतिस्तथा ॥६५॥

श्रीविश्वदेवजी, श्रीउदगयनजी, श्रीसविताजी, श्रीवसुयूनरपि, श्रीहैमवर्चिजी, श्रीविभूतिजी, श्रीकौण्डिन्यजी, श्रीविधृतिजी ॥६५॥

अरुणत्रसदस्युश्च स्वत्यात्रेयश्च सौभरिः ।
नृमेधपुरुषमेधौ यामायनो महानृषिः ॥६६॥

श्रीअरुणत्रसदस्युजी, श्रीस्वत्यात्रेयजी, श्रीसौभरिजी, श्रीनृमेधजी, श्रीपुरुषमेधजी, श्रीमहर्षि-यामायनजी ॥६६॥

लौगाक्षिः प्रादुराचिश्च रम्याची च महानृषिः ।
शम्युरङ्गिरसश्चैव प्रस्कण्व ऋषीश्वरः ॥६७॥

श्रीलौगाक्षीजी, श्रीप्रादुराचीजी, श्रीरम्याची महर्षि, श्रीशम्युजी, श्रीअङ्गिरसजी और श्रीप्रस्कण्वऋषीश्वरजी ॥६७॥

आथर्वाशिवः श्रीकामो गर्गः कत्सस्तथैव च ।
विश्ववारा विहव्यश्च नोधा मेधा ऋषीश्वरः ॥६८॥

श्रीआथर्वाशिवजी, श्रीकामजी, श्रीगर्गजी, श्रीकत्सजी तथा श्रीविश्ववाराजी, श्रीविहव्यजी, श्रीनोधाजी श्रीमेधाजी ॥६८॥

कूर्मो गृत्समदः कृष्णः कौत्सादिर्ऋषिसत्तमः ।
वृहदुक्थो वामदेवः सुहोत्रः कुशिकस्तथा ॥६९॥

श्रीकूर्मजी,श्रीगृत्समदजी, श्रीकृष्णजी, ऋषिश्रेष्ठ श्रीकौत्सादिजी, श्रीवृहदुक्थजी,श्रीवामदेवजी श्रीसुहोत्रजी तथा श्रीकुशिकजी ॥६९॥

ऋजिश्वा च प्रतिक्षत्रः प्रगाथो दमनस्तथा ।
भरद्वाजशिरश्विष्ठः साद्धारयोऽथ महानृषिः ॥७०॥

श्रीऋजिश्वाजी, श्रीप्रतिक्षत्रजी, श्रीप्रगाथजी, श्रीदमनजी, श्रीभरद्वाजशिरश्विष्ठजी, महर्षिसाद्धारयजी ॥७०॥

लूशश्चधानको दक्षः कुसुरविन्दुरेव च ।
सुकक्षः श्रुतकक्षश्च श्रीनोधागोतमस्तथा ॥७१॥

श्रीलूशजी, श्रीधानकजी, श्रीदक्षजी, श्रीकुसुरविन्दुजी, श्रीसुकक्षजी, श्रीश्रुतकक्षजी तथा श्रीनोधागोतमजी ॥७१॥

सुचीको यज्ञपुरुषः पुरमीढ ऋषीश्वरः ।
मेधाकामस्तिरश्चिश्च दध्यङ्ङाथर्वणस्तथा ॥७२॥

श्रीदुर्वीकजी, श्रीपञ्चपुरुषजी, श्रीपुरमोढ़जी ऋषीश्वर श्रीमेधातिथिजी, श्रीविरथिजी, श्रीदध्य-ङ्ङाथर्वणजी ॥७२॥

विभ्राडगस्त्योऽजमील्हो गृत्सो देवो बृहद्दिवः ।
शम्युश्च बार्हस्पत्यश्चोत्तरनारायणस्तथा ॥७३॥

श्रीविभ्राडगस्त्यजी, श्रीअजमील्हजी, श्रीगृत्सजी, श्रीदेवजी, श्रीबृहद्दिवजी, श्रीशम्युजी श्रीबार्ह-स्पत्यजी, श्रीउत्तरनारायणजी ॥७३॥

लोपामुद्रा विदर्भिश्च स्वयंभूर्ब्रह्म चात्मवान् ।
परमेष्ठी वाकुत्सश्चाप्रतिरथो महानृषिः ॥७४॥

श्रीलोपामुद्राजी, श्रीविदर्भिजी, श्रीस्वयंभूजी, आत्मवान् श्रीब्रह्मजी, श्रीपरमेष्ठीवाकुत्सजी, महर्षि श्रीअप्रतिरथजी ॥७४॥

सुतजेता विश्वकर्मा शिवसङ्कल्प एव च ।
देववातो नृमेधश्च दत्तात्रेयस्त्वथर्वणः ॥७५॥

श्रीसुतजेता विश्वकर्माजी, श्रीशिवसङ्कल्पजी, श्रीदेववातजी, श्रीनृमेधजी, श्रीदत्तात्रेयजी, श्रीअथर्वणजी ॥७५॥

प्राजापत्यस्तथा यज्ञो विश्वकर्मा च विश्वभूः ।
अश्विनी च कुमारश्च सरस्वती महानृषिः ॥७६॥

तथा प्रजापतिके पुत्र श्रीयज्ञजी, श्रीविश्वकर्माजी, श्रीविश्वभूजी, श्रीअश्विनीजी, श्रीकुमारजी, महर्षि श्रीसरस्वतीजी ॥७६॥

काण्वायनः कुमारश्च कविवानोशिजस्तथा ।
कपोलो नैर्ऋतः केतुः कण्वो घोरो महानृषिः ॥७७॥

श्रीकाण्वायनके पुत्र कुमारजी, श्रीकविवान्जी, श्रीऔशिजजी, तथा श्रीकपोलजी श्रीनैर्ऋतजी, श्रीकेतुजी, श्रीकण्वजी, श्रीमहर्षिघोरजी ॥७७॥

काण्वायनोऽश्वसूक्ती च कापन आयुस्तथा कुशः ।
ऋषिः कामायनी श्रद्धा कार्पणी विश्वकस्तथा ॥७८॥

श्रीकाण्वायनके पुत्र श्रीअश्वसूक्तीजी, श्रीकणुके पुत्र आयुजी तथा श्रीकुशजी, ऋषि कामायनीजी, श्रीश्रद्धाजी, श्रीकार्पणीजी, श्रीविश्वकजी ॥७८॥

ऋषिः काक्षीवती घोषा काशिराजः प्रतर्दनः ।
काश्यपौ रेभसून् च कुत्स आङ्गिरसस्तथा ॥७९॥

ऋषि श्रीकाक्षीवतीजी, श्रीघोषाजी, श्रीकाशिराजजी, श्रीप्रतर्दनजी, कश्यपजीके पुत्र श्रीरेभजी, श्रीसूनुजी तथा अङ्गिराजीके पुत्र श्रीकुत्सजी ॥७९॥

आङ्गिरसः कृतयशाः कृष्ण आङ्गिरसस्तथा ।
काण्वः कुरुसुतिश्चैव केतुराग्नेय एव च ॥८०॥

श्रीअङ्गिराजीके पुत्र कृतयशाजी, श्रीअङ्गिराजीके पुत्र श्रीकृष्णजी, कण्वके पुत्र श्रीकरुसुति जी, अग्निके पुत्र श्रीकेतुजी ॥८०॥

ऋषिः कुमार आग्नेयः कौशिको गाथिरेव च ।
श्रीकर्णश्रुतश्च वाशिष्ठः कौत्सो दुर्मित्र आत्मवान् ॥८१॥

श्रीअग्निके पुत्र ऋषिकुमारजी, कुशिकके पुत्र गाथिजी श्रीवशिष्ठजीके पुत्र कर्णश्रुतजी, श्रीवुरसजी, श्रीकुत्सजीके पुत्र बुद्धिमान् दुर्मित्रजी ॥८१॥

काक्षीवतश्च कुशिकः शवरैपीरथी तथा ।
कविर्भार्गव उत्कील कुसीदी कात्य एव च ॥८२॥

श्रीकक्षवानके पुत्र श्रीकुशिकजी, श्रीशवरजी, श्रीएपीरथिजी तथा भृगुजीके पुत्र कविजी, श्रीउत्कीलजी, श्रीकुसीदीजी, श्रीकात्यजी ॥८२॥

ऋषिः काश्यपोऽवत्सारः कलिप्रगाथ एव च ।
वैश्वामित्रः कतश्चैव वैखानसो महानृषिः ॥८३॥

श्रीकश्यपजीके पुत्र श्रीअवत्सार ऋषि, श्रीकलिप्रगाथजी, श्रीविश्वामित्रजीके पुत्र श्रीकतजी, श्रीमहर्षि वैखानसजी ॥८३॥

करिक्रतश्च शैलूषिः कल्मलबर्हिषस्तथा ।
वातरशनो मारीचः कश्यपश्च महानृषिः ॥८४॥

श्रीकरिक्रतजी, श्रीशैलूषिजी, श्रीकल्मलबर्हिषजी तथा श्रीवातरशनजी, मरीचके पुत्र और महर्षि श्रीकश्यपजी ॥८४॥

काण्वायनश्च गोसूक्ती गयो गातुर्गविष्ठिरः ।
वत्सप्रीर्गय आत्रेयः सङ्कसुको महानृषिः ॥८५॥

श्रीकण्वायनके पुत्र गोसूक्तीजी, श्रीगयजी, श्रीगातुजी, श्रीगविष्ठिरजी, श्रीवत्सप्रीजी, श्रीअत्रिजीके पुत्र गयजी, श्रीमहर्षि सङ्कसुकजी ॥८५॥

सारवेतः कुरुसुतिर्वन्धुर्गोपायनस्तथा ।
ऋषिर्गर्गो भारद्वाजो गोपवनो महानृषिः ॥८६॥

श्रीसारवेतजी, श्रीकुरुसुतिजी, श्रीवन्धुजी तथा श्रीगोपायनजी, श्रीभरद्वाजजीके पुत्र श्रीगर्गजी, महर्षि श्रीगोपवनजी ॥८६॥

गर्भकर्ता तथा त्वष्टा गौतमो नोध एव च ।
गृहपतिश्च सहसः पुत्रः संकसुकस्तथा ॥८७॥

श्रीगर्भकर्ताजी, श्रीत्वष्टाजी, श्रीगौतमजी, श्रीनोधजी, श्रीगृहपतिजी, श्रीसहसजी, श्रीपुत्रजी, श्रीसंकसुकजी ॥८७॥

घोरश्च तापसो धर्मो गयप्रातश्च शौनकः ।
ऋषिः सुहस्त्यो धौपेयश्चत्तुर्मानव एव च ॥८८॥

श्रीघोरजी, श्रीतापसजी, श्रीधर्मजी, श्रीगयप्रातजी, श्रीशौनकजी, ऋषि श्रीसुहस्त्यजी, श्रीधौपेयजी, श्रीचत्तुजी, श्रीमानवजी ॥८८॥

च्यवनो भार्गवश्चित्रो महावाशिष्ठ आत्मवान् ।
चात्तुषोऽग्निर्जमदग्निर्जय ऐन्द्रो महानृषिः ॥८९॥

श्रीच्यवनजी, श्रीभार्गवजी, श्रीचित्रजी, आत्मवान् श्रीमहावाशिष्ठजी श्रीचत्तुके पुत्र श्रीअग्निजी, श्रीजमदग्निजी, इन्द्रके पुत्र महर्षि श्रीजयजी, ॥८९॥

जूतिर्जुहूर्ब्रह्मजाया वातरशन एव च ।
जामदग्न्यो महर्षिश्च जानवृसस्तथैव च ॥९०॥

श्रीजूतिजी, श्रीजुहूजी, श्रीब्रह्मजायाजी, श्रीवातरशनजी, महर्षि श्रीजमदग्निजीके पुत्र परशुरामजी, तथा श्रीजानवृसजी ॥९०॥

मधुच्छन्दसश्च जेता शार्ङ्गी च जरिता तथा ।
तपूर्मूर्द्धा बार्हस्पत्यस्तापसोऽग्निस्तथैव च ॥६१॥

श्रीमधुच्छन्दाजीके पुत्र जेताजी, श्रीशार्ङ्गीजी तथा श्रीजरिताजी, श्रीबृहस्पतिजीके पुत्र तपूर्मूर्द्धाजी, तपाजीके पुत्र श्रीअग्निजी ॥६१॥

तान्वः प्राध्यर्यस्तथाशक्तिस्त्रिशोकः काण्व आत्मवान् ।
अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यश्च तिरश्चिस्त्र्यरुणस्तथा ॥६२॥

श्रीतान्वजी, श्रीशक्तिजी, श्रीप्राध्यर्यजी, कण्वजीके पुत्र बुद्धिमान् श्रीत्रिशोकजी, श्रीअरिष्टनेमिजी, श्रीतार्क्ष्यजी, श्रीतिरश्चिजी, श्रीत्र्यरुणजी ॥६२॥

सदस्युः पौरुकुत्स्यस्त्रित आप्त्यो महानृषिः ।
त्रैवृष्णस्तृणपाणिश्च तथा तर्व्यो महानृषिः ॥६३॥

श्रीसदस्युजी, श्रीपौरुकुत्स्यजी, श्रीत्रितजी, महर्षि श्रीअपाजीके पुत्र आप्त्यजी, श्रीत्रिवृष्णजीके पुत्र तृणपाणिजी तथा महर्षि तर्व्यजी ॥६३॥

ऋषिस्त्वाष्ट्रश्च त्रिशिरा अनुसूया तपोधना ।
दार्ढच्युतो मुक्तबाहा लोपामुद्रा द्वितस्तथा ॥६४॥

श्रीत्वष्टाजीके पुत्र श्रीत्रिशिराजी, श्रीतपोधना अनुसूयाजी, श्रीदार्ढच्युतजी, श्रीमुक्तबाहाजी, श्रीलोपामुद्राजी तथा श्रीद्वितजी ॥६४॥

द्युतानो मारुतो देवातिथिः काण्वस्तथैव च ।
द्युमनो दमनो यामायनो देवातिथिस्तथा ॥६५॥

श्रीद्युतानजी, श्रीमारुतजी तथा कण्वके पुत्र श्रीदेवातिथिजी, श्रीद्युमनजी, श्रीदमनजी, तथा श्रीयमायनजीके पुत्र देवातिथिजी ॥६५॥

दक्षिणा प्राजापत्या च दुर्वासाश्च महानृषिः ।
दाक्षायिण्यदितिश्चैव देवलः काश्यपस्तथा ॥६६॥

प्रजापतिकी पुत्री श्रीदक्षिणाजी, महर्षि श्रीदुर्वासाजी, दक्षकी पुत्री श्रीअदितिजी तथा श्रीकश्यपजीके पुत्र देवलजी ॥६६॥

ऋषिर्द्युम्नीको वाशिष्ठो देवगन्धर्व एव च।
धानाकश्च कुशो धिष्णयो धरुणो नारदस्तथा ॥९७॥

वशिष्ठजीके पुत्र ऋषि श्रीद्युम्नीकजी, श्रीदेवगन्धर्वजी, श्रीधानाकजी श्रीकुशजी, श्रीधिष्ण्यजी, श्रीधरुणजी तथा श्रीनारदजी ॥९७॥

नीपातिथिर्निध्रुविश्च तथाऽऽत्रेयो गविष्ठरः।
नारमेधः शकपोतो निध्रुविः काश्यपस्तथा॥९८॥

श्रीनीपातिथिजी, श्रीनिध्रुविजी, श्रीअत्रिजीके पुत्र गविष्ठरजी, श्रीनरमेधजीके पुत्र श्रीशकपोतजी तथा श्रीकश्यपजी के पुत्र श्रीनिध्रुविजी ॥९८॥

निवारी सिकता नेमो गृत्समदश्च भार्गवः।
नहुशो मानवश्चैव भारद्वाजो नरस्तथा॥९९॥

श्रीनिवारीजी, श्रीसिकताजी, श्रीनेमजी, श्रीभृगुजीके पुत्र श्रीगृत्समदजी, श्रीनहुशजी श्रीमानवजी तथा श्रीभरद्वाजजीके पुत्र श्रीनरजी ॥९९॥

नभःप्रभेदनश्चैव वैरूपश्च महानृषिः।
ययातिर्नाहुषः पारुच्छेपी पावक एव च ॥१००॥

महर्षि श्रीविरूपजीके पुत्र श्रीनभःप्रभेदनजी, नहुषके पुत्र ययातिजी, पारुच्छेपीजी, पावकजी १००

दिव्यश्च नारदः काण्व ऐलः पुरुरवस्तथा।
पर्वतश्च पुनर्वत्सः पृषध्रः पनयोऽसुरः ॥१०१॥

श्रीदिव्यजी, श्रीकण्वके पुत्र नारदजी इलाके पुत्र श्रीपुरूरवजी, श्रीपर्वतजी, श्रीपुनर्वत्सजी, श्रीपृषध्रजी, श्रीपनयजी, तथा श्रीअसुरजी ॥१०१॥

प्रवित्रः पुरुमेधश्च पृश्नियोऽजस्तथैव च।
अनानतः पारुच्छेपी प्रतिभानुः प्रतिप्रभः ॥१०२॥

श्रीप्रवित्रजी, श्रीपुरुमेधजी, श्रीपृश्नियजी, श्रीअजजी, इसी प्रकार श्रीअनानतजी, श्रीपारुच्छेपीजी, श्रीप्रतिभानुजी, तथा श्रीप्रतिप्रभजी ॥१०२॥

प्राजापत्यः पतङ्गश्च पूरु आत्रेय एव च।
भारद्वाज ऋषिः पायुः प्रयोगो भार्गवस्तथा ॥१०३॥

श्रीप्रजापतिके पुत्र श्रीपतङ्गजी, श्रीअत्रिजीके पुत्र श्रीपूरुजी, श्रीभरद्वाजजीके पुत्र श्रीपायुकृति तथा श्रीभृगुजीके पुत्र श्रीप्रयोगजी ॥१०३॥

आङ्गिरसः पवित्रश्च पूतदक्षो महानृषिः ।
ऋषिः काण्वः पुनर्वत्सः प्रचेता प्रमतिस्तथा ॥१०४॥

श्रीअङ्गिराजीके पुत्र पवित्रजी, महर्षि पूतदक्षजी, कण्वके पुत्र ऋषिपुनर्वत्सजी, श्रीप्रचेताजी, तथा श्रीप्रमतिजी ॥१०४॥

ऋषिः पूर्णो वैश्वामित्रः पौर आत्रेय एव च ।
पौलोमी च शची प्लातो दल्हच्युतो महानृषिः ॥१०५॥

श्रीविश्वामित्रजीके पुत्र पूर्ण महर्षि श्रीअत्रिजीके पुत्र पौरजी, पुलोमकी पुत्री श्रीशचीजी, श्रीप्लातजी, महर्षि श्रीदल्हच्युतजी ॥१०५॥

प्रजावान्प्राजापत्यश्च प्रथो वासिष्ठ एव च ।
वाच्यः प्रजापतिश्चर्षिराङ्गिरसः प्रभूवसुः ॥१०६॥

श्रीप्रजापतिके पुत्र श्रीप्रजावान्जी और श्रीवशिष्ठजीके पुत्र श्रीप्रथजी, श्रीवाच्यः प्रजापतिजी, श्रीअङ्गिराजीके पुत्र श्रीप्रभूवसुजी ॥१०६॥

प्रयस्वन्तस्तथाऽऽत्रेयः प्रतिरथो महानृषिः ।
प्रैयमेधश्च सिन्धुक्षिद्वर्पागिरो वसूयवः ॥१०७॥

श्रीअत्रिजीके पुत्र श्रीप्रयस्वन्तजी, महर्षि प्रतिरथजी, श्रीप्रियमेधजीके पुत्र श्रीसिन्धुक्षित्जी, श्रीवर्पागिरजी, श्रीवसूयवजी ॥१०७॥

विन्दुर्वव्रिश्च बभ्रुश्च भर्गो भौमश्च भारतः ।
भारतो देववातश्च भिक्षुर्नामा महानृषिः ॥१०८॥

श्रीविन्दुजी, श्रीवव्रिजी, श्रीबभ्रुजी, श्रीभर्गजी, श्रीभरतके पुत्र भौमजी, श्रीभरतजीके पुत्र देववातजी और महर्षि श्रीभिक्षुजी ॥१०८॥

भूतांशो भुवनो राजाऽश्वमेधा भारतस्तथा ।
वार्षागिरो भयमानो देवश्रवा च भारतः ॥१०९॥

श्रीभूतांशजी, श्रीभुवनजी, श्रीराजाजी श्रीभरतजीके पुत्र श्रीअश्वमेधाजी, वार्षागिरजीके पुत्र श्रीभयमानजी, तथा श्रीभरतजीके पुत्र श्रीदेवश्रवाजी ॥१०९॥

भारद्वाजी तथा रात्रिर्मेध्यातिथिर्महानृषिः ।
माधुच्छन्द ऋषिर्मेध्यो मातरिश्वा च मुष्कवान् ॥११०॥

श्रीभरद्वाजजी, महाराजकी पुत्री श्रीरात्रिजी महर्षि, श्रीमेध्यातिथिजी, श्रीमधुच्छन्दके पुत्र श्रीमेध्य ऋषिजी, श्रीमातरिश्वाजी और श्रीमुष्कवानजी ॥११०॥

मूर्धन्वान्ययतश्चैव यमो वैवस्वतस्तथा ।
यमी वैवस्वती यज्ञो रातहव्यस्तथैव च ॥१११॥

श्रीमूर्धन्वान्जी, श्रीयपतजी, श्रीविवस्वान् (सूर्य) के पुत्र श्रीयमराजजी, श्रीविवस्वान्जीकी पुत्री श्रीयमीजी तथा श्रीयज्ञजी और श्रीरातहव्यजी ॥१११॥

रेभो राहुगणश्चैव लवो लौपायनस्तथा ।
वातायनो वातहव्यो वैश्वामित्रो बृहन्मतिः ॥११२॥

श्रीरहूगणके पुत्र श्रीरेभजी, लोपायनजीके पुत्र लवजी, श्रीवातायनजी, श्रीवातहव्यजी तथा श्रीविश्वामित्रजीके पुत्र श्रीबृहन्मतिजी ॥११२॥

बृहदुक्थो वामदेवो बाहुवृक्तो वसुश्रुतः ।
वैरूपो विश्वसामा च वीतहव्यो वरुस्तथा ॥११३॥

श्रीबृहदुक्थजी, श्रीवामदेवजी, श्रीबाहुवृक्तजी, श्रीवसुश्रुतजी, श्रीविरूपजीके पुत्र विश्वसामाजी, श्रीवीतहव्यजी तथा श्रीवरुजी ॥११३॥

वसुक्रो विमदो विष्णुर्लौक्यो बृहस्पतिर्वसः ।
वैकुण्ठप्रमतिर्वैरव्यः काण्वो ब्रह्मातिथिस्तथा ॥११४॥

श्रीवसुक्रजी, श्रीविमदजी, श्रीविष्णुजी, श्रीलौक्यजी, श्रीबृहस्पतिजी श्रीवसजी, श्रीवैकुण्ठ प्रमतिजी, श्रीवैरव्यजी तथा कण्वजीके पुत्र श्रीब्रह्मातिथिजी ॥११४॥

भुवनपुत्री रक्षोहा रोमशा ब्रह्मवादिनी ।
ब्राह्मस्तथोर्ध्वनाभा च शेन आङ्गिरश्च शाकरः ॥११५॥

श्रीभुवनपुत्रीजी, श्रीरक्षोहाजी, ब्रह्मवादिनी श्रीरोमशाजी, श्रीब्रह्माजीके पुत्र ऊर्ध्वनाभाजी, अङ्गके पुत्र श्रीशेनजी और श्रीशाकरजी ॥११५॥

श्यावाश्वी शौनहोत्रश्च शिखण्डीश्रुतवित्तथा ।
शौचीकः शशकर्णश्च शश्वत्याङ्गिरसी शिशुः ॥११६॥

श्रीश्यावाश्वीजी, श्रीशौनहोत्रजी, श्रीशिखण्डीजी तथा श्रीश्रुतनिवृजी, श्रीशुचीकके पुत्र शौचीकजी और श्रीशशकर्णजी, श्रीअङ्गिराजीकी पुत्री शश्वतीजी, श्रीशिशुजी ॥११६॥

श्रुष्टिगुः शुनहोत्रश्च सनकाद्या महर्षयः ।
स्थौरः सहस्रः सौहोत्रः साङ्ख्यः सौर्यः सदापृणः ॥११७॥

श्रीश्रुष्टिगुजी, श्रीशुनहोत्रजी चारो भाई सनकादिक महर्षि, श्रीस्थौरजी, श्रीसहस्रजी, श्रीसौहोत्रजी श्रीसाङ्ख्यजी श्रीसौर्यजी श्रीसदापृणजी ॥११७॥

संवननः सुदीतिश्च संवर्तः सप्तगुः ससः ।
सत्यश्रवाः सप्तवध्रिः सुकक्षश्च महानृषिः ॥११८॥

श्रीसंवननजी, श्रीसुदितिजी, श्रीसंवर्तजी, श्रीसप्तगुजी, श्रीससजी, श्रीसत्यश्रवाजी श्रीसप्तवधिजी महर्षि श्रीसुकक्षजी ॥११८॥

सव्यः सुकीर्तिः सध्वंसःसुपर्णः सप्रथस्तथा ।
देवशुनी च सरमा स्वस्तिः संवरणस्तथा ॥११९॥

श्रीसव्यजी, श्रीसुकीर्त्तिजी, श्रीसध्वंसजी, श्रीसुपर्णजी, श्रीसप्रथजी, श्रीदेवशुनीजी, श्रीसरमाजी, श्रीस्वस्तिजी, तथा श्रीसंवरणजी ॥११९॥

सौभरिः सूर्यासावित्री हविर्धानो महानृषिः ।
हर्य्यतो हरिमन्तश्चाकृष्टो मापोऽघमर्षणः ॥१२०॥

श्रीसौभरिजी, श्रीसूर्यासावित्रीजी, महर्षि श्रीहविर्धानजी, श्रीहर्य्यतजी, श्रीहरिमन्तजी, श्रीअकृष्टजी, श्रीमापजी, श्रीअघमर्षणजी ॥१२०॥

अंहोमुकवामदेवोऽनिलोऽग्नीगुरनानतः ।
महर्षिरष्टादंष्ट्रोऽथाभिवर्तोऽभितपास्तथा ॥१२१॥

श्रीअंहोमुक वामदेवजी, श्रीअनिलजी, श्रीअग्नीगुजी, श्रीअनानतजी, महर्षि श्रीअष्टादंष्ट्रजी, श्रीअभिवर्तजी तथा श्रीअभितपाजी ॥१२१॥

अग्नियूपोऽगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचार्यङ्ग औरवः ।
अम्बरीषोऽर्चनाना- चामहीयुर्बुदोऽपुरा ॥१२२॥

श्रीअग्निपूपजी, श्रीअगस्त्यजी, महाराजके शिष्य, श्रीब्रह्मचारीजी, श्रीअङ्गजी, श्रीअम्बरीषजी, श्रीअर्चनानाजी, श्रीअमहीयुजी, श्रीअर्बुदजी, श्रीअसुराजी ॥१२२॥

अरुणोऽर्चन्नवत्सारोऽश्वमेधोऽस्युरष्टकः ।
अयास्योऽरिष्टनेमिश्चासितोऽत्रिरदिती तथा ॥१२३॥

श्रीअरुणजी, श्रीअर्चन्नवत्सारजी, श्रीअश्वमेधजी, श्रीअस्युजी, श्रीअष्टकजी, श्रीअयास्यजी, श्रीअरिष्टनेमिजी, श्रीअसितजी, श्रीअत्रिजी तथा श्रीअदितीजी ॥१२३॥

अथर्वकोऽश्वसूक्ती चात्तोमौजवान्महानृषिः ।
ऋषिरात्रेय्यपालाख्य आजीगर्तिर्महानृषिः ॥१२४॥

श्रीअथर्वकजी, श्रीअश्वसूक्तीजी, महर्षि अर्च मौजवान्जी, श्रीअत्रिजीकी पुत्री ऋषि अपालाजी, महर्षि आख्य आजीगर्ति (अजीगर्तजीके पुत्र) जी ॥१२४॥

अभिवर्तस्तथाग्नेय आत्रेयो बुध एव च ।
ऋषिर्विवस्वानादित्य आप्त्यस्त्रितो महानृषिः ॥१२५॥

श्रीअभिवर्तजी अग्निके पुत्र श्रीअत्रिजीके पुत्र श्रीबुधजी, अदितिजीके पुत्र श्रीविवस्वान् ऋषि, आप्तिके पुत्र महर्षि त्रितजी ॥१२५॥

आप्सवो मनुरासङ्गः प्लायोगी चामहीयवः ।
ऋषिरार्बुदूर्ध्वयाव आम्भृणी वाङ् महानृषिः ॥१२६॥

श्रीअप्सुजीके पुत्र मनुजी, श्रीअसङ्गजीके पुत्र प्लायोगीजी, श्रीआमहीयुजी, ऋषि आर्बुदीजी, श्रीऊर्ध्वयावजी, महर्षि श्रीआम्भृणीवाक्जी ॥१२६॥

आयुः काण्व आङ्गिरसः शौनहोत्रस्तथैव च ।
देवापिरार्ष्टिषेणश्च सुनुरार्भव एव च ॥१२७॥

श्रीकण्वजीके पुत्र श्रीआयुजी, श्रीशौनहोत्रजी, श्रीऋष्टिषेणजीके पुत्र देवापिजी, श्रीऋभुजी के पुत्र श्रीसुनुजी ॥१२७॥

सिन्धुद्वीप याम्बरीष इषः नागर इरिम्बिठिः ।
इन्द्राणीन्द्र इध्मवाह इष आत्रेय एव च ॥१२८॥

श्रीअम्बरीषजीके पुत्र सिन्धुद्वीपजी, कन्वजीके पुत्र श्रीइषजी, श्रीइरिम्बिठिजी, श्रीइन्द्राणीजी, श्रीइन्द्रजी, श्रीइध्मवाहजी, श्रीअत्रिजीके पुत्र श्रीइषजी ॥१२८॥

इटो भार्गव ऊरुश्चोतथ्य उरुक्षयस्तथा ।
उपमन्युर्वाशिष्ठश्चोलोवातायन एव च ॥१२९॥

श्रीभृगुजीके पुत्र इटजी, श्रीऊरुजी, श्रीउतथ्यजी श्रीउरुक्षयजी, श्रीवशिष्ठजीके पुत्र उपमन्युजी, तथा श्रीउलोवातायनजी ॥१२९॥

उपस्तुतो वार्ष्टिहव्य उरूचक्री महानृषिः ।
महर्षिः काल्य उत्कील ऊर्वशी ऋषिका तथा ॥१३०॥

श्रीवृष्टिहव्यजीके पुत्र श्रीउपस्तुतजी, महर्षि श्रीउरूचक्री, महर्षि श्रीकाल्य उत्कीलजी, तथा ऊर्वशी ऋषि ॥१३०॥

आयुर्दिरूर्ध्वग्रावा चोरु आङ्गिरस एव च ।
ऊर्ध्वसद्मोरुकृशनो ऊर्ध्वनाभा विधेः सुतः ॥१३१॥

श्रीआयुर्दजीके पुत्र ऊर्ध्वग्रावाजी, श्रीअङ्गिराजीके पुत्र ऊरुजी, श्रीऊर्ध्वसद्मजी, श्रीऊरुकृशनजी, श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीऊर्ध्वनाभाजी ॥१३१॥

वार्षागिरस्तथार्ज्राश्वो वैराज ऋषभस्तथा ।
ऋषभो वैश्वामित्रश्च श्रीऋषिका ऋणञ्चयः ॥१३२॥

श्रीवर्षागिरके पुत्र ऋज्राश्वजी, विराट्के पुत्र श्रीऋषभजी, श्रीविश्वामित्रजीके पुत्र ऋषभजी श्रीऋषिकाजी, तथा श्रीऋणञ्चयजी ॥१३२॥

श्रीवातरशनश्चर्ष्य शृङ्गस्तथा महानृषिः ।
एरावदो महातेजा ऐश्वर ऐन्द्र एव च ॥१३३॥

श्रीवातरशनजी तथा महर्षि श्रीऋष्यशृङ्गजी, महातेजस्वी श्रीएरावदजी, श्रीऐश्वरजी और ऐन्द्रजी ॥१३३॥

एतशो वातरशन एकद्युर्नोधसस्तथा ।
एलूषः कवषश्चैन्द्रोऽप्रतिरथो महानृषिः ॥१३४॥

श्रीएतशोवातरशनजी, श्रीनोधाजीके पुत्र श्रीएकद्युजी, इलूषके पुत्र श्रीकवषजी, तथा इन्द्रजीके पुत्र महर्षि श्रीअप्रतिरथजी ॥१३४॥

एरम्मदो देवमुनिर्जय ऐन्द्रस्तथैव च।
ऐरावतो जरत्कर्ण ऐपीरथिर्महानृषिः ॥१३५॥

इरम्मदजीके पुत्र श्रीदेवमुनिजी, श्रीइन्द्रजीके पुत्र श्रीजयजी, इरावानजीके पुत्र श्रीजरत्कर्णजी, तथा महर्षि श्रीऐपीरथिजी ॥१३५॥

एवयामरुदङ्गश्चौरव औशीनरः शिविः।
औशियो दैर्घतमस इत्याद्या वैदिकर्षयः ॥१३६॥

श्रीएवयामरुदङ्गजी श्रीउरुजीके पुत्र और उशीनरजीके पुत्र श्रीशिविजी, श्रीदीर्घतमाजीके पुत्र श्रीऔशियजी इत्यादि वैदिक ऋषि ॥१३६॥

कश्यपा काश्यपेया च काश्यपेया च काशिका।
काश्यः कौशिला काशः कगयः कौलवः कपिः ॥१३७॥

श्रीकश्यपाजी, श्रीकश्यपाजीकी पुत्री काश्यपेयाजी तथा कश्यपाजीकी पुत्री काशिकाजी, श्रीकाश्यजी, श्रीकौशिलाजी, श्रीकाशजी, श्रीकगयजी, श्रीकौलवजी, श्रीकपिजी ॥१३७॥

कात्यायनश्च कौशल्य कृत्सः कौल्यश्च कप्सिपः।
कुशितः कपिलः कौत्सः कगवः कुशितः किलः ॥१३८॥

श्रीकात्यायनजी, श्रीकौशल्यजी, श्रीकृत्सजी, श्रीकौल्यजी, श्रीकप्सिपजी, श्रीकुशिकजी श्रीकपिलदेवजी, श्रीकौत्सजी, श्रीकगवजी, श्रीकुशितजी श्रीकिलजी ॥१३८॥

ऋषिः कुत्सात्रसदस्यः कृष्णाजिनो महानृषिः।
कर्सामुना च कृष्णात्रिः खते चैव खिलस्तथा ॥१३९॥

श्रीकुत्सात्रसदस्यजी, महर्षि श्रीकृष्णाजिनजी, श्रीकर्सामुनाजी और श्रीकृष्णात्रिजी, श्रीखतेजी, तथा श्रीखिलजी ॥१३९॥

गोभिलो गौतमी गार्गी गुणितो गौरवस्तथा।
गाङ्गेयो गालवो गर्गश्चन्द्रगर्गश्चितस्तथा ॥१४०॥

श्रीगोभिलज, श्रीगौतमीजी, श्रीगार्गीजी, श्रीगुणितजी, श्रीगौरवजी, श्रीगाङ्गेयजी, श्रीगालव श्रीगर्गजी, श्रीचन्द्रगर्गजी तथा श्रीचितजी ॥१४०॥

च्यशिलश्च्यवनश्चक्रश्चान्द्रायणो महानृषिः।
ऋषिश्चामनदेवश्च जावहिश्च महानृषिः ॥१४१॥

श्रीच्यशिलजी, श्रीच्यवनजी, श्रीचक्रजी, श्रीमहर्षि, चान्द्रायणजी ऋषिचामनदेवजी, और महर्षि श्रीजावहिजी ॥१४१॥

तन्नस्त्रेयवशिष्ठश्च तिथेऽत्रोदेवलस्तथा ।
देवरात्रश्च दाल्भ्य ऋषिर्दर्भोदवारणः ॥१४२॥

श्रीतन्नस्त्रेय वशिष्ठजी, श्रीतिथेऽत्रजी, श्रीदेवलजी, श्रीदेवरात्रजी, श्रीदाल्भ्य ऋषिजी, श्रीदर्भोदवारणजी ॥१४२॥

देवराजपौस्मासे च दिवदसो महानृपिः ।
दनच्यो देवरातश्च देया देवदशा तथा ॥१४३॥

श्रीदेवराजपौस्मासेजी, श्रीमहर्षि दिवदसजी, श्रीदनच्यजी, श्रीदेवरातजी, श्रीदेयाजी, श्रीदेवदशाजी ॥१४३॥

धात्रयो भुवनेनश्च धारणीको धनञ्जयः ।
धरणीपुत्रं धौम्रश्च नमार्दा नैभ्रुवरतथा ॥१४४॥

श्रीधात्रयजी, श्रीभुवनेनजी, श्रीधारणीकजी, श्रीधनञ्जयजी, श्रीधरणीपुजी, श्रीधौम्रजी, श्रीनमार्दाजी तथा श्रीनैभ्रुवजी ॥१४४॥

नितुन्दनः पुलस्त्यश्च पुलस्तः पाराशरस्तथा ।
पौष्युतः पौवनाश्चश्च पुलहो विष्णुवर्द्धनः ॥१४५॥

श्रीनितुन्दनजी, श्रीपुलस्त्यजी, श्रीपुलस्त जी श्रीपाराशरजी, श्रीपौष्युतजी, श्रीपौवनाश्चजी, श्रीपुलहजी, श्रीविष्णुवर्द्धनजी ॥१४५॥

वाल्खिलो वातहव्यश्च वात्सो वोधायनस्तथा ।
वाशिष्ठौ वासिलो वालो वौरुचो वेधसो विदः ॥१४६॥

श्रीवाल्खिलजी, श्रीवातहव्यजी, श्रीवात्सजी तथा श्रीवोधायनजी, श्रीवशिष्ठजीके पुत्र श्रीवासिलजी, श्रीवालजी, श्रीवौरुचजी, श्रीवेधसजी, श्रीविदजी ॥१४६॥

वाशिलुर्वसिलो ब्रह्मा विष्णावो वैमलस्तथा ।
वाल्मीकिश्च वको वैष्णो विष्णुबार्हस्पतस्तथा ॥१४७॥

श्रीवाशिलुजी, श्रीवसिलजी, श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णावजी तथा श्रीवैमलजी, श्रीवाल्मीकिजी, श्रीवकजी, श्रीवैष्णजी तथा श्रीबृहस्पतिजीके पुत्र श्रीविष्णुजी ॥१४७॥

वन्यो व्याघ्रपतयस्वो वोदासश्च महानृषिः ।
विहको भद्रशीलश्च भागीरस्य ऋषिस्तथा ॥१४८॥

श्रीवन्यजी, श्रीव्याघ्रपतयस्वजी, श्रीवोदासजी महर्षि, श्रीविहकजी, श्रीभद्रशीलजी तथा ऋषि भागीरस्यजी ॥१४८॥

भावनश्च भलिश्चैव भारद्वासित एव च ।
मौनसौ मौगिलौ, मानो मध्यायनो महानृषिः ॥१४९॥

श्रीभावनजी, श्रीभलिजी, श्रीभारद्वासितजी, श्रीमौनसजी, श्रीमौगिलजी, श्रीमानजी, महर्षि श्रीमध्यायनजी ॥१४९॥

मैत्रेतृणश्च मौनस्यो माध्रुवच्छन्दसस्तथा ।
माण्डकेयो मिहरसो माधुच्छन्दस एव च ॥१५०॥

श्रीमैत्रेतृणजी, श्रीमौनस्यजी, श्रीमाध्रुवच्छन्दसजी, श्रीमाण्डकेयजी, श्रीमिहरसजी श्रीमाधुच्छन्दसजी ॥१५०॥

मौकल्यश्च माण्डव्य ऋषिर्मित्रयुवस्तथा ।
मध्यामो यजनो यस्को यौयाजज्ञौ महानृषी ॥१५१॥

श्रीमौकल्यजी, श्रीमाण्डव्यजी, तथा ऋषि मित्रयुवजी, श्रीमध्यामजी, श्रीयजनजी, श्रीयस्कजी, श्रीयौयाजो, श्रीयज्ञजी महर्षि ॥१५१॥

श्रीयज्ञातपहारी च यदभूश्चर्षिसत्तमः ।
याज्ञवल्को यमदग्नो रणेजभुव एव च ॥१५२॥

श्रीयज्ञातपहारीजी, ऋषिश्रेष्ठ श्रीयदभूजी, श्रीयाज्ञवल्कजी, श्रीयमदग्नजी, श्रीरणेजभुवजी १५२

लोहितो लोहकाचश्च लोमसः शाङ्कत्यनः ।
शौनकः शौनकेतश्च शिष्यपर्वा महानृषिः ॥१५३॥

श्रीलोहितजी श्रीलोहकाचजी, श्रीलोमसजी, श्रीशाङ्कत्यनजी, श्रीशौनकजी, श्रीशौनकेतजी, महर्षि श्रीशिष्यपर्वाजी ॥१५३॥

श्रभ्रवसुः शिलश्चैव शुद्धत्तशय एव च ।
ऋषिः शावैतशश्चैव श्रावत्सारो महानृषिः ॥१५४॥

श्रीश्रभ्रवसुजी, श्रीशिलजी, श्रीशुद्धत्तशयजी, ऋषि शावैतशजी, महर्षि श्रीवत्सारजी ॥१५४॥

साङ्कृत्यनश्च सङ्ख्या च सादित्यः सम्भवस्तथा ।
साङ्कृतः सिंहलश्चैव साङ्ख्यायनो महानृषिः ॥१५५॥

श्रीसांकृत्यनजी, श्रीसङ्ख्याजी, श्रीसादित्यजी तथा श्रीसम्भवजी श्रीसांकृतजी, श्रीसिंहलजी, महर्षि श्रीसाङ्ख्यायनजी ॥१५५॥

सैन्यः सत्यवतीतश्च सतसारश्च स्वेतपः ।
साङ्ख्यालितसारस्वतौ वैश्वानो ब्राह्म एव च ॥१५६॥

श्रीसैन्यजी, श्रीसत्यवतीतजी, श्रीसतसारजी, श्रीस्वेतपजी, श्रीसाङ्ख्यालितजी, श्रीसारस्वतजी, ब्रह्माजीके पुत्र श्रीवैश्वानजी ॥१५६॥

सावकानः सत्यवतिः सङ्खलिखित एव च ।
हरिकर्णस्तथाऽऽत्रेयो हिरण्यस्तूप आत्मवान् ॥१५७॥

श्रीसावकानजी, श्रीसत्यवतिजी, श्रीसङ्खलिखितजी, तथा श्रीअत्रिजीके पुत्र श्रीहरिकर्णजी, बुद्धिमान् श्रीहिरण्यस्तूपजी ॥१५७॥

असितश्चाप्नुवानश्चानुरुक्तोऽश्वदलस्तथा ।
अमिलुरमिलोऽमौह्योऽर्चिसोऽगस्तोऽघमर्षणः ॥१५८॥

श्रीअसितजी, श्रीआप्नुवानजी, श्रीअनुरुक्तजी तथा श्रीअश्वदलजी, श्रीअमिलुजी, श्रीअमिल श्रीअमौह्यजी, श्रीअर्चिसजी, श्रीअगस्तजी, श्रीअघमर्षणजी ॥१५८॥

अष्टाचक्रोऽञ्छिलोऽमानोऽङ्गिरसोऽत्रिसरस्तथा ।
अत्रसुप्रोऽम्बसारश्चवत्सारश्च महानृषिः ॥१५९॥

श्रीअष्टाचक्रजी, श्रीअञ्छिलजी, श्रीअमानजी श्रीअङ्गिरसजी तथा श्रीअत्रिसरजी, श्रीअत्रसुप्रजी श्रीअम्बसारजी, श्रीमहर्षि अवत्सारजी ॥१५९॥

आर्चनानस आयास्य ऋषिराङ्गिरसस्तथा ।
आयास्य आश्वकर्णश्चार्यश्चावत्सार एव च ॥१६०॥

आर्चनानाजीके पुत्र श्रीआर्चनानसजी, श्रीआयास्यजी तथा ऋषि श्रीआङ्गिरसजी, श्रीआयास्यजी, श्रीआश्वकर्णजी श्रीआर्यश्चावत्सारजी ॥१६०॥

ऋषिरिन्द्रोदयश्चैवेन्द्रप्रमदा महानृषिः ।
इन्द्रप्रमद एवाथोपमन्युरुदवारणः ॥१६१॥

ऋषि श्रीइन्द्रोदयजी, श्रीइन्द्रप्रमदाजी, महर्षि, श्रीइन्द्र प्रमदजी, श्रीउपमन्युजी, श्रीउद्वारणजी ॥१६१॥

औदर औरसश्चौर्व एकावशिष्ट एव च ।
एरम्वमैजनश्चैव पौरुश्चैव महानृषिः ॥१६२॥

श्रीऔदरजी, श्रीऔरसजी, श्रीऔर्वजी, श्रीएकावशिष्टजी श्रीएरम्वमैजनजी, महर्षि पौरुजी १६२

तिष्यस्तन्नश्च पार्थश्च शौव साम्बस्तथैव च ।
शारद्रम जातुकर्णौ तोपकल्या महानृषिः ॥१६३॥

श्रीतिष्यजी, श्रीतन्नजी, श्रीपार्थजी, श्रीशौवजी, श्रीसाम्बजी तथा श्रीशारद्रमजी, श्रीजातुकर्णजी, महर्षि श्रीतोपकल्याजी ॥१६३॥

बार्हस्पतिर्देवदत्तो वैनहव्यादयस्तथा ।
असंख्याताः सुविख्याताः प्राणनाथ ! महर्षयः ॥१६४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीबृहस्पतिजीके पुत्र श्रीदेवदत्तजी तथा वैनहव्यादि सुप्रसिद्ध असङ्ख्य महर्षि थे ॥१६४॥

सत्कृतेभ्यो यथायोग्यं शतानन्दो महातपाः ।
सादरं विनयेनाथ तेभ्यो वासं दिदेश ह ॥१६५॥

विनयपूर्वक आदरके सहित महातपस्वी श्रीशतानन्दजी महाराजने उन सत्कृत महर्षियोंके रहनेके लिये यथायोग्य स्थान प्रदान किया ॥१६५॥

समवेता यदा सर्वे ऋषयश्चावनीश्वराः ।
येऽन्ये निमन्त्रिता राज्ञा नानाकार्यविदां वराः ॥१६६॥

हे प्यारे ! जब सभी ऋषि व राजा तथा अन्य निमन्त्रित अनेक कार्यकुशल लोग आगये १६६

दिदृक्षुस्तांस्तु भूपालो निर्जगाम पुराद्बहिः ।
प्राच्यां ददर्श चावासान् मुनीनामग्नितेजसाम् ॥१६७॥

तब उन सबोंके दर्शनेच्छुक हो श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने पुरसे बाहर निकले । और उन्होंने पूर्व दिशामें अग्निके समान तेज वाले मुनियोंके स्थानों का दर्शन प्राप्त किया ॥१६७॥

नानाकर्मसु दक्षाणामावासान्दिशि दक्षिणे ।
वैश्यानां च तथा तस्मै शतानन्दो व्यदर्शयत् ॥१६८॥

श्रीशतानन्दजी महाराजने दक्षिण दिशामें अनेक कार्य कुशल व्यक्तियोंके तथा वैश्योंके स्थानोंका उनको दर्शन कराया ॥१६८॥

प्रतीच्यां ब्राह्मणावासान् संददर्श महीपतिः ।
बाहुजानां तथोदीच्यामागन्तुकमहीक्षिताम् ॥१६९॥

पश्चिम दिशामें श्रीमिथिलेशजी महाराजने ब्राह्मणोंके स्थानों का दर्शन किया तथा क्षत्रियोंके व आये हुये राजाओंके स्थानों का दर्शन उत्तर दिशा में किया ॥१६९॥

शूद्राणां पृथगावासांश्चतुर्दिक्षु च पङ्क्तितः ।
अपश्यन्निमिवंशेनः सेवाचातुर्यशालिनाम् ॥१७०॥

चारों दिशाओंमें उपर्युक्त लोगोंसे पृथक् पङ्क्तिसे सेवाकार्य में अत्यन्त चतुर शूद्रोंके स्थानोंको श्रीमिथिलेशजी महाराजने अवलोकन किया ॥१७०॥

एवमेव समुद्वीक्ष्यागन्तुकानां पिता मम ।
आवासांश्च यथायोग्यान् प्रहृष्टमुखपङ्कजः ॥१७१॥

इस प्रकार सभी आये हुये लोगोंके यथा योग्य स्थानोंका दर्शन करके मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराज का मुख कमल बड़े ही हर्ष को प्राप्त हुआ ॥१७१॥

आजगाम पितुर्वासं तव पङ्कजलोचन !
दर्शनार्थं ततः श्रीमान् सर्वतः समलङ्कृतम् ॥१७२॥

हे कमल लोचन श्रीप्राणप्यारेजू ! तत्पश्चात् श्रीमान् श्रीमिथिलेशजी महाराज दर्शन करनेके लिये सब प्रकारसे अलकृत आपके श्रीपिताजीके महलमें पधारे ॥१७२॥

तमायान्तं समाकर्ण्य सुमन्त्रात् कोशलेश्वरः ।
तूर्णमेवागतो द्वारि मिलितु बन्धुभिर्युतः ॥१७३॥

श्रीसुमन्त्रजीसे उनका आगमन सुनकर श्रीकोशलेन्द्र महाराज अपने भाइयोंके सहित मिलनेके लिये द्वार पर आगये ॥१७३॥

भ्रातृभिः सपरीतं त्वां कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ।
कृत्वा दृष्टिगतं राजा नृपाग्रे जडवत्स्थितः ॥१७४॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज, भाइयोंके सहित करोड़ो कामदेवोंके सदृश सुन्दरता युक्त आपका दर्शन करके श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके आगे जड़वत् खड़े रह गये ॥१७४॥

तद्दृष्ट्वा पितुरस्माकं विह्वलत्वं पिता तव ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं समुवाच दरस्मितः ॥१७५॥

हमारे पिताजीकी उस विह्वलताको देखकर, आपके पिताजी मन्दमुस्कुराते हुये उनका हाथ अपने हाथसे पकड़ कर बोले ॥१७५॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

राजन् स्वं कुशलं ब्रूहि सान्तः पुरजनस्य हि ।
अपि राष्ट्रस्य योगीन्द्र ! किमर्थं चासि विह्वलः ॥१७६॥

हे राजन् ! अन्तः पुर जनोंके सहित अपनी कुशल और राष्ट्रकी कुशल कह ! हे योगी राज ! आप विह्वल किस कारणसे हैं ? ॥१७६॥

एवं सम्बोधितः श्रीमान् पिता मे मिथिलेश्वरः ।
ववन्दे चरणौ तस्य हर्षविस्फारितेक्षणः ॥१७७॥

इस प्रकार सम्बोधित होने पर मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराज जिनकी आँखें हर्षसे पूर्ण फैली हुई थीं, उन्होंने आपके श्रीपिताजीके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम किया ॥१७७॥

आलिलिङ्ग तमुर्वीश रघुवंशप्रभाकरः ।
तस्मै त्वामथ सङ्केत नमस्कर्तुं चकार सः ॥१७८॥

उन्हें रघुकुल को सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले आपके श्रीपिताजीने हृदयसे लगा लिया पुनः उन्हें प्रणाम करनेके लिये आपको सङ्केत किया ॥१७८॥

प्रणमन्तमथोद्वीक्ष्य भवन्तं हर्षनिर्भरः ।
परिष्वज्य हृदा काममन्दानन्दमाप सः ॥१७९॥

आप को प्रणाम करते हुये देखकर श्रीमिथिलेशजी महाराज हर्षनिर्भर हो गये। पुनः आपको हृदयसे लगाकर अपार (अमन्द) आनन्दको प्राप्त हुये ॥१७९॥

पुनश्चित्तं समाधाय कथञ्चिद्योगिसत्तमः ।
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा राजानं समभाषत ॥१८०॥

पुनः व योगियोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराज बड़ी कठिनतासे अपने चित्तको सावधान करके हाथ जोड़े हुये श्रीचक्रवर्तीजी महाराजसे बोले—॥१८०॥

श्रीमिथिलेश उवाच।

सर्वथा कुशली चाह कृपया तव भूपते!
अतीवानुगृहीतोऽस्मि श्रीमताऽऽगमनेन च ॥१८१॥

हे नृपश्रेष्ठ! मैं आपकी कृपासे सब प्रकार कुशलसे हूँ! श्रीमान्जूने अपने शुभागमनसे मुझे अत्यन्त अनुग्रहीत किया है ॥१८१॥

दिदृक्षैषां सुतानां स्म बहुकालान्ममोरसि।
पूरिता साऽद्य भाग्येन भवतश्च प्रसादतः ॥१८२॥

बहुत दिनोंसे आपके श्रीराजकुमारोंके दर्शनोंकी मेरे हृदयमें इच्छा थी सो भाग्यवश और आपकी कृपासे आज पूरी हुई ॥१८२॥

न भवेद्यदि ते कष्टमवकाशो भवेद्यदि।
कृपया मे मखानन्तां द्रष्टुमर्हसि पुत्रकैः ॥१८३॥

हे राजन्! यदि आपको कष्ट न हो और अवकाश हो तो, अपने श्रीराजकुमारोंके सहित मेरी यज्ञभूमिको अवलोकन कर लीजिये ॥१८३॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

तथेति प्रतिजग्राह विनयं राजपूजितः।
सुसत्कारविधिं तस्य विधाय जगतीपतेः ॥१८४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! राजाओंसे पूजित श्रीकोशलेन्द्रजी महाराजने पृथिवीपति श्रीमिथिलेजी महाराजकी उस विनयको स्वीकार किया पुनः उनका भली प्रकार सत्कार करके १८४

निर्जगामावनीशेन्द्रो यज्ञभूमिदिदृक्षया।
मम पित्रा समं भूपैः संवृतः प्राणवल्लभ! ॥१८५॥

हे श्रीप्राणवल्लभजू! राजाओंसे घिरे हुये श्रीकोशलेन्द्रजी महाराज मेरे श्रीपिताजीके सहित यज्ञ भूमिका दर्शन करने लिये पधारे॥ १८५॥

वशिष्ठं तेजसां राशिं मुनिवन्द्यपदाम्बुजम्।
मुनिवाससमेतञ्च प्रणनाम पिता मम ॥१८६॥

उस समय मुनियोंके स्थानसे आये हुये, मुनियोंके द्वारा वन्दनीय श्रीचरण कमल वाले तेजपुञ्ज श्रीवशिष्ठजी महाराजको मेरे श्रीपिताजीने प्रणाम किया ॥१८६॥

महाप्रसन्नतां प्राप्तो वशिष्ठस्तत्समागमात्।
सादरं प्रार्थितो राज्ञा जगाम सह तेन वै ॥१८७॥

श्रीवशिष्ठजी महाराज उनके समागमसे बड़े प्रसन्न हुये पुनः आदर पूर्वक उन श्रीमिथिलेश महाराजकी प्रार्थनासे उनके साथ यज्ञभूमि देखने चले ॥१८७॥

रचनां वीक्ष्य वै तस्य यज्ञभूमेर्विलक्षणाम्।
प्रशशंसुर्महीपाला ऋषयः सर्व एव तम् ॥१८८॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी यज्ञ भूमिकी विलक्षण सजावटको देखकर सभी ऋषि व रा उनकी प्रशंसा करने लगे ॥१८८॥

दर्शनाद्यज्ञवेद्यास्तु तावकीया प्रसन्नता।
सर्वेषां च विशेषेण महानन्दकरी बभौ ॥१८९॥

हे प्यारे! पुनः यज्ञ वेदीके दर्शनसे आपको जो प्रसन्नता हुई, वह सबको ही विशेष रूप महान आनन्द प्रदान करने वाली सिद्ध हुई ॥१८९॥

एवं स्वयज्ञावनिमूर्विनाथः प्रदर्श्य भूपालविभूषणाय।
यथाविधानं रचनासमेतां सर्वर्तुनिर्विघ्नसुखास्पदां सः ॥१९०॥

इस प्रकार पृथिवी पति मेरे श्रीपिताजी, भूपालोंके भूषण आपके श्रीपिताजीको शास्त्रके विधानानुसार रचना युक्त और सभी ऋतुओंमें विघ्न रहित एक मात्र सुखका स्थान अपनी यज्ञ भूमिका दर्शन कराके ॥१९०॥

समाससादात्मन आत्मवेश्म स्मरन्भवन्तं स्मरमोहनाङ्गम्।
सर्वेभ्य आसादितसन्निदेशः कृतप्रणामः प्रणतो नरेन्द्रैः ॥१९१॥

इत्येकत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

समस्त आये हुए अतिथि राजाओंसे परस्पर प्रणामादि होने पर और विश्राम करनेके लिये उन सभोंसे आज्ञा प्राप्तकर लेनेपर कामदेवको भी अपने अङ्गकी छविसे मुग्ध करने वाले आप मन हरण सरकारका स्मरण करते हुये वे अपने सुरम्य महलको गये ॥१९१॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीदशरथजी महाराजको अपनी यज्ञ भूमि दिखला रहे हैं।
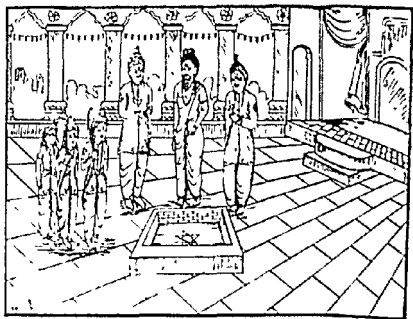
अथ द्वात्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३२॥

सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीकी प्राप्तिके लिये श्रीमिथिलेशजी महाराजका—

यज्ञारम्भ तथा श्रीकिशोरीजीका प्रादुर्भाव।

श्रीस्नेहपरोवाच।

अथ राजा चतुर्थ्यां च सत्तिथौ नियताञ्जलिः।
अभिवाद्य शतानन्दं धर्मज्ञो वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः—हे प्यारे! इसके पश्चात् धर्मके रहस्यको जानने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज वैशाख शुक्ल चौथकी तिथिको श्रीशतानन्दजी महाराजको प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बोले—॥ १ ॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच।

भगवंस्त्वत्कृपादृष्ट्या ह्यसाध्याः सिद्धयो मम।
अत्यन्तसुलभा भान्ति करस्था इव देहिनाम् ॥२॥

हे भगवन्! प्राणियोंको किसी भी साधनसे न प्राप्त होने योग्य सिद्धियाँ भी आपकी कृपादृष्टि से मुझे हाथमें रक्खी हुई सी अत्यन्त सुखलभ्य प्रतीत हो रही हैं ॥२॥

अयं तु माधवो मासः सर्वमासोत्तमः शिवः।
साक्षाद्भगवतो रूपं सितपक्षेण संयुतः ॥३॥

यह मङ्गलमय, सभी मासोंमें श्रेष्ठ, साक्षात् भगवान्का स्वरूप माधव (वैशाख) मास, शुक्लपक्षसे युक्त, प्रारम्भ है ॥३॥

तिथिः श्वः पञ्चमी पुण्या सर्वाभीष्टप्रदायिनी।
वासरो गुरुवाराख्यः सर्वमङ्गलकारकः ॥४॥

कल सभी अभीष्ट सिद्धियोंको देने वाली पुण्यमयी पञ्चमी तिथि और सकल-मङ्गल कारक गुरु (बृहस्पति) वारका दिन है ॥४॥

ऋतूनामृतुराजोऽयं सिद्धयोगश्च सिद्धिदः।
संदुर्लभो मनुष्याणामीदृशोऽवसरः शुभः ॥५॥

कल सिद्धयोग भी है, ऋतुओंमें यह ऋतुराज वसन्त ही ठहरा! इस प्रकारका शुभ अवसर मनुष्योंके लिये अतीव दुर्लभ है ॥५॥

अतः श्व एव वेदज्ञैर्यज्ञारम्भो विधीयताम् ।
यथाशास्त्रविधानं च समेतो मुनिपुङ्गवैः ॥६॥

अत एव वेदवेत्ता ऋषियों और मुनियोंके सहित आप कल ही शास्त्रके विधानानुसार यज्ञको प्रारम्भ करवाइये ॥६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

स तथेति समाभाष्य गौतमीसूनुरात्मवान् ।
पूजितो विधिवद्राज्ञा जगाम पितुरन्तिके ॥७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीशतानन्दजी महाराज श्रीमिथिलेशजी महाराजसे ऐसा ही होगा, कहकर उनसे पूजित हो, अपने पिता श्रीगौतमजी महाराजके पास चले गये ॥७॥

पुनः प्रातः समागत्य राजवेश्म त्वरान्वितः ।
कारयामास विधिवद्दम्पत्योः समलङ्कृतिम् ॥८॥

पुनः प्रातः काल उन्होंने शीघ्रता पूर्वक राजभवन आकर श्रीमिथिलेशजी महाराज व श्रीसुनयना अम्बाजीका विधि पूर्वक शृङ्गार करवाया ॥८॥

ततो मङ्गलवाद्यैश्च स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
वेदमन्त्रोच्चरद्भिश्च ब्राह्मणैः सह दम्पती ॥९॥

पश्चात् मङ्गलमय बाजोंके बजते हुये, स्वस्ति वाचनपूर्वक, वेदके मन्त्रोंको उच्चारण करते हुये ब्राह्मणोंके सहित दोनों श्रीसुनयना अम्बाजी तथा श्रीमिथिलेशजी महाराजको ॥९॥

वर्षतां पुष्पवर्षाणि सुराणां पुरवासिनाम् ।
जयशब्दैः समानीतौ यज्ञभूमिं पुरोधसा ॥१०॥

देवता और पुरवासियोंके जयकार पूर्वक पुष्पोंके बरसाते हुये, पुरोहित श्रीशतानन्दजी महाराज यज्ञ भूमिमें ले आये ॥१०॥

अभिवाद्य ऋषीन्सर्वान् द्विजान्वृद्धांश्च पार्थिवः ।
आज्ञया निषसादाथ सह राज्ञ्या निजासने ॥११॥

वहाँ श्रीमिथिलेशजी महाराज सभी ऋषियोंको, सभी ब्राह्मणोंको सभी वृद्धोंको प्रणाम करके उनकी आज्ञासे श्रीसुनयना महारानीके सहित अपने यजमानके आसनपर विराजमान हो गये ॥११॥

अनुमत्या महर्षीणां शतानन्दो महामुनिः।
यज्ञं प्रवर्तयामास सात्विकं वेदपारगः ॥१२॥

सभी महर्षियोंकी अनुमतिसे सम्पूर्ण वेदोंके मर्मको जानने वाले, ब्रह्मतत्वका मनन करने वाले श्रीशतानन्दजी महाराजने, सत्वगुण विशिष्ट यज्ञको प्रारम्भ करवाया ॥१२॥

प्रारम्भिते तदा तस्मिन् यज्ञे वृन्दारकाश्च खात्।
मन्दारपुष्पवर्षाणि विदधुर्वै मुहुर्मुहुः ॥१३॥

उस यज्ञके प्रारम्भ होते ही देवताओंने आकाशसे बारबार कल्पवृक्षके फूलोंका बरसाना आरम्भ कर दिया ॥१३॥

ह्लादयुक्तानि, चेतांसि बभूवुः सर्वदेहिनाम्।
ऋद्धयः सिद्धयः सर्वास्तत्र सेवार्थमाययुः ॥१४॥

सभी प्राणियोंके चित्त आह्लादसे युक्त हो गये और सभी ऋद्धियाँ सिद्धियाँ सेवा बजानेके लिये वहाँ आगयीं ॥१४॥

तत्रस्थानां च सङ्केतं देवा इन्द्रपुरोगमाः।
प्रतीक्षमाणा वै तस्थुर्गुप्तरूपेण तत्र च ॥१५॥

और उस स्थलमें रहने वालोंके सङ्केतकी प्रतीक्षा करते हुये इन्द्रप्रमुख देवगण गुप्त रूपसे वहीं रहने लगे ॥१५॥

ब्राह्मणा नाथवन्तश्च तापसा यतयस्तथा।
वृद्धाश्च व्याधिता बाला भुञ्जते सर्व एव हि ॥१६॥

ब्राह्मण, सेवक, तपस्वी, तथा सन्यासी, वृद्ध, रोगी, बालक सभी प्रकारके व्यक्ति वहाँ भोजन करते थे ॥१६॥

अभिन्नभोजनं तत्र सर्वेषां वै पृथक् पृथक्।
कूटवद्दृश्यते नित्यमपूर्वास्वादितं स्म तैः ॥१७॥

उन सबोंका भोजन अलग अलग था किन्तु भेद रहित एक प्रकारका, अर्थात् जो श्रीचक्रवर्तीजी आदि राजाओंके लिये, वही एक साधारण व्यक्ति केलिये, सो भी नित्यनूतन (नये) स्वादु युक्त पहाड़की चोटीके समान दिखाई देता था ॥१७॥

प्रत्यहं नूतनस्वादुभोजनं क्रियतेऽखिलैः ।
जय जयेति सच्छब्दः श्रूयते तत्र चानिशम् ॥१८॥

प्रति दिन राजा व रङ्क सबी नवस्वादु युक्त भोजन करते थे, कहाँ तक कहा जाय ? उस स्थलमें रात दिन जय हो जय हो बस यही एक सत् शब्द सुनाई देता था ॥१८॥

नाहर्पितो जनः कश्चिन्नार्थवान्नैव याचकः ।
दृश्यते मार्गमाणेऽपि नायतात्मा स्म वल्लभ ! ॥१९॥

हे प्यारे ! उस यज्ञ स्थलमें खोजने पर भी न कोई दुःखी, न कोई किसी प्रकारकी इच्छा वाला ही और न कोई माँगने वाला, न कोई चञ्चल चित्त स्त्री वा पुरुष दिखाई देता था ॥१९॥

न चानिष्कधरः कश्चिन्नासमग्रविभूषणः ।
नाव्यवस्थितचित्तश्च नाशतानुचरस्तथा ॥२०॥

ऐसा भी कोई नहीं दिखाई देता था जिसके गलेमें सोनेकी कण्ठी न हो, अथवा सम्पूर्ण भूषणोंको जो न धारण किये हो, और जिसका चञ्चल चित्त हो व जिसके सौ सेवक न हों ॥२०॥

नाविद्वानग्रजन्मा च नाव्रतो नाबहुश्रुतः ।
नावादकुशलः कश्चिन्नाषडङ्गविशारदः ॥२१॥

ब्राह्मण कोई भी ऐसा न था जो विद्वान् न हो अथवा अनेक पवित्र व्रतों को धारण करने वाला व बहुतसे शास्त्रों को श्रवण किये हुये न हो, और ऐसा भी कोई ब्राह्मण न था जो शास्त्रार्थ करनेमें पूर्ण चतुर न हो अथवा षडङ्ग वेद को जो पूर्ण रूपसे न जानता हो ॥२१॥

सदस्या भूमिपालस्य सर्वविद्याविशारदाः ।
नीतिज्ञाः प्रीतिमन्तश्च सुहृदो धर्मवित्तमाः ॥२२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके सभी सदस्य सम्पूर्णविद्याओंके पण्डित, नीतिशास्त्र को जानने वाले, प्रेमी, सुहृद और धर्मशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता (जानने वाले) ॥२२॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रधराः सर्वे ऋत्विजश्च समासदः ।
तथैव शोभितग्रीवास्तुलस्या युग्ममालया ॥२३॥

सभी ऋत्विज व सभासद ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी तुलसीकी युगल कण्ठीसे सुशोभित गले वाले थे ॥२३॥

अन्येऽपि बहवस्तत्र भगवच्चिह्नचिह्निताः ।
तथा सानुचरा रेजुर्देवा इव प्रियोत्तम ! ॥२४॥

तथा अन्य भी बहुतसे कर्मचारी व सज्जन गण अपने अनुचरों (सेवकों) के सहित वैष्णव सम्बन्धी चिन्होंसे चिन्हित, देवताओंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥

प्रत्यहं यज्ञवेद्याश्च एधमाना प्रभा प्रिय !
सिद्धिं कथयतीवैव दृश्यते स्म सुशोभना ॥२५॥

हे प्यारे ! प्रतिदिन यज्ञवेदीकी बढ़तीहुई मनोहर कान्ति यज्ञकी सिद्धि को कथन करती हुई सी दिखाई देती थी ॥२५॥

मन्त्रं च शङ्करेणोक्तं जपन्तौ तौ हि दम्पती ।
भावयन्तौ परं रूपं विधानं चक्रतुः क्रतोः ॥२६॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज व श्रीसुनयना अम्बाजी भगवान् शङ्करजीके बतलाये हुये षडक्षर मन्त्रराज (श्रींसीतायै स्वाहा) को जपते और श्रीकिशोरीजीके परात्पर स्वरूपकी भावना करते हुये यज्ञकी विधि करने लगे ॥२६॥

अथ सम्वत्सरे पूर्णे पूजनं विधिपूर्वकम् ।
सर्वेश्वर्याश्चकारासौ प्रेमनिर्भरचेतसा ॥२७॥

उस प्रकार सम्वत्सर (वर्ष) पूरा होजाने पर उन्होंने प्रेमनिर्भरचित्तसे विधि पूर्वक श्रीसर्वेश्वरीजी का पूजन किया ।२७॥

शालिग्रामशिलायां च मम मात्रा समन्वितः ।
अस्याः सर्वालियुक्तायाः आम्नायोक्तविधानतः ॥२८॥

वेदके विधानानुसार वह समस्त सखियोंके सहित इनका पूजन मेरी माता श्रीसुनयना अम्बाजीके समेत शालिग्रामकी शिला अर्थात् मूर्तिमें किया ॥२८॥

पुनस्तु शेषभागेन सर्वदेवानपूजयत् ।
नियतात्मा विनीतश्च महाभाग उदारधीः ॥२९॥

उसके बाद जो शेष भाग बचा था, उससे एकाग्रचित्तसे महाभाग्यशाली उदार बुद्धि, विनयभाव सम्पन्न मेरे श्रीपिताजीने समस्त देवताओंका पूजन किया ॥२९॥

प्रतीक्षमाणयोस्तस्या दर्शनं च प्रतिक्षणम् ।
विगतं दिनमत्यन्तमभूच्चिन्ताप्रदं तयोः ॥३०॥

दर्शनाशावशेनैव समतीत्य दिनत्रयम् ।
नवम्यां बाष्पपूर्णाक्षौ पूजयामासतुः शुभाम् ॥४१॥

उस समय (षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी) दर्शनोंकी आशाके आधार पर तीन दिन बड़ी ही कठिनतासे व्यतीत हुये, नवमीको आखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित करते हुये उन दोनोंने मङ्गलस्वरूपा सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीका पूजन किया ॥४१॥

पूजित्वा तावृषीन्यश्च प्रभयाऽलभ्यदर्शना ।
वेदी बभूव प्राणेश ! तदानीमेव सर्वथा ॥४२॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! उस समय ऋषियोंको, श्रीमिथिलेशजी महाराज व श्रीसुनयना अम्बाजीको तथा आप सर्वोंको छोड़कर उस यज्ञवेदीका दर्शन, दिव्य प्रकाशकी वृद्धिके कारण अन्य सभीके लिये अप्राप्त हो गया ॥४२॥

दक्षिणायां प्रदत्तायामथ ताभ्यां कृपानिधिः ।
आविर्बभूव निर्भिद्य यज्ञवेदीमियं तदा ॥४३॥

अथ श्रीमिथिलेशजी महाराज व श्रीसुनयना अम्बाजूके दक्षिणा प्रदान करते ही ये कृपासागरा मनहरण छवि, श्रीकिशोरीजू, यज्ञवेदीको फाड़ करके प्रकट हो गयीं ॥४३॥

अष्टयूथेश्वरीभिश्च वीज्यमाना समन्ततः ।
रत्नसिंहासनारूढा वयसा द्वादशाब्दिका ॥४४॥

अष्ट यूथेश्वरी सखियोंके द्वारा छत्र, चॉवर, मोरछल, व्यजन (पङ्खा) आदिसे सेवित होती हुई, रत्नसिंहासनमें विराजमान बारह वर्षकी अवस्थासे सम्पन्न ॥ ४४ ॥

पुष्यर्क्षे माधवे मासि कर्कलग्ने शुभावहे ।
नवम्यां च सिते पक्षे मङ्गले मङ्गलेऽहनि ॥४५॥

वैशाख मासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथि, मङ्गलके दिन शुभकारक कर्क लग्न व पुष्य नक्षत्रमें ४५

प्रभामाच्छाद्य सूर्यस्य सहजेनात्मतेजसा ।
माध्याह्नोपगते काले तडिद्वन्निर्गता घनात् ॥४६॥

अपने स्वाभाविक तेजसे सूर्यके तेजको आच्छादित (ढक) करके मध्याह्न (दोपहर)के समीप समयमें जैसे बिजुली मेघसे निकलती है, उसी प्रकार ये श्रीकिशोरीजी यज्ञवेदी रूपी मेघसे प्रकट हो गयीं ४६

भक्तभावानुग्रहविग्रहा, सर्वेश्वरी श्रीसाकेत विहारिणी, श्रीमिथिलेशराज कि...

त्रिदशैः स्तूयमानां तां ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ।
सर्वशृङ्गारसम्पन्नां स्मयमानमुखाम्बुजाम् ॥४७॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंके स्तुति करते हुये सम्पूर्ण शृङ्गारसे युक्त, मन्द मन्द मुस्कान वाले मुखकमलवाली उन श्रीकिशोरीजीका ॥४७॥

सन्निरीक्ष्यर्षयः सर्वे सिद्धयोगितपस्विनः ।
युगपत्स्तोत्रयामासुर्गलसंरुद्धया गिरा ॥४८॥

पूर्ण रूपसे दर्शन करके सभी ऋषि, सिद्ध, योगी, तपस्वी वृन्द गद्गद्‌वाणी से एक साथ मिल कर स्तुति करने लगे ॥ ४८ ॥

महर्षिसिद्धयोगितपस्विन ऊचुः ।

ॐ पूर्णपूर्णतमतत्त्वमनोज्ञवेषां सच्चित्सुखैकजलधिं स्वयमात्तदेहाम् ।
हस्तारविन्दधृतनीलसनालपद्मां माङ्गल्यसिन्धुमनिशं प्रणता वयं त्वाम् ४६

जो ओङ्कार (प्रणव) स्वरूपिणी, मायिक द्रव्यों (विषय, कर्म, सुर) से पूर्ण विश्व (विराट्) के पूर्णतम तत्त्व (पूर्ण करनेवाले तत्त्व) का मनोहर वेष धारण करनेवाली सत् (तीनों काल में एकरस) चित् (चैतन्य स्वरूप) सुखकी समुद्र, स्वयं अपनी इच्छासे मङ्गलमय विग्रहको धारण किये, करकमलमें नाल (दण्डी) के सहित श्याम कमलको लिये हुई, माङ्गल्य समुद्ररूपा हैं, उन आपकी हमलोग शरणमें प्राप्त हैं ॥४६॥

सीरध्वजस्य निमिवंशविभूषणस्यासङ्ख्यैकसोकृतपयोनिधिसारुजद्दमीम् ।
मीनाङ्कुशध्वजसरोरुहभूषिताङ्घ्रिं संभावयेम शरणं शरणोज्झितानाम् ॥५०॥

जो, अपनी उज्वल कीर्ति आदिके द्वारा निमि वंशको सुशोभित करनेवाली श्रीसीरध्वज महाराजके अपरिमित (अपार) सुकृत समुद्रकी सुन्दर लक्ष्मी, मीन, अङ्कुश, ध्वज, कमल आदि चिन्होंसे शोभायमान श्रीचरण-कमलवाली, अशरणों (असहायों, अनाथों) की शरण (रक्षा) करने वाली हैं, उन आपके प्रति हम सभी लोग हृदय में अनेक प्रकारके सेव्यभाव रखते हैं ॥५०॥

तां पूर्णचन्द्रवदनां मृगपोतनेत्रां मन्दस्मितामसितकुञ्चितकुन्तलां त्वाम् ।
भक्त्या प्रणौमि कृपयाऽप्यधुनाऽस्मनो नोया दृक्चरी विधिहरादिमनोऽप्यगम्या ५१

जो आप ब्रह्मा, रुद्र आदिकोंके मनसे भी अगोचर हैं, अपनी कृपाके द्वारा हम लोगोंकी

आँखोंके सामने इस समय उपस्थित हैं, उन पूर्ण चन्द्रमुखवाली, मृगशिशुके नेत्रोंके समान नेत्रवाली, मन्द हास्य व श्याम-कुटिल केशवाली आपको हमलोग प्रेमपूर्वक प्रणाम करते हैं ॥ ५१ ॥

ध्यायेम रूपममलं तव वीतमायं सिंहासनस्थमतुलश्रियमालिजुष्टम् ।
आविष्कृतं करुणया भजतां सुखाय माधुर्यसिन्धुरससारमिदं मनोज्ञम् ॥५२॥

हे श्रीसर्वेश्वरीजू ! हम लोग आपके गुणातीत, नित्य, अखण्ड, ज्ञान स्वरूप, उस रूपका ध्यान करते हैं, जिसके द्वारा आप अपनी अंश भूता लक्ष्मी आदि शक्तियोंको अपने अपने कार्योंमें नियुक्त करती हैं, तथा जो उपासकोंके सुखार्थ माधुर्य समुद्रके रसका सारभूत अनुपम शोभासे युक्त, सखियों द्वारा सेवित सिंहासन पर विराजमान, प्रकाश मय, कृपासे ही साक्षात्कार हुआ है ५२

येऽन्ये भजन्ति तव निर्गुणरूपमद्धा तत्ते भजन्तु सुतरां स्वमतानुरूपम् ।
रूपं तवेदमनिशं हृदयेष्वभीष्टं सर्वेश्वरैकदयिते ! किल नश्चकास्तु ॥५३॥

और जो अपने मतानुकूल साक्षात् आपके निर्गुण रूप का ही भजन करते हैं वे, भले ही करें, परन्तु हे सर्वेश्वरप्राणवल्लभाजू ! हम लोगोंके हृदयोंमें यही आपका अभीष्ट, मन-हरण स्वरूप निरन्तर प्रकाश करे ॥५३॥

मज्जत्सुपोतचरणाम्बुरुहे ! ऽद्य दृष्ट्या प्राप्तं समस्तविधिदुर्लभदर्शनं ते ।
मोघेतरं परतरं शुभकृच्छुभानामस्माभिरस्ति किमतो गमनीयमन्यत् ॥५४॥

हे संसार रूपी सागरमें डूबते हुये जीवोंके उद्धारके लिये सुन्दर जहाज रूपी श्रीचरण कमल वाली ! आज प्रारब्ध वश समस्त साधनोंसे दुर्लभ, अमोघ, मङ्गलों का भी मङ्गल करने वाला, परम श्रेष्ठ आप का दर्शन प्राप्त है, अतः अब हम लोगोंके लिये और क्या प्राप्य फल शेष है ? अर्थात् कुछ भी नहीं सब कुछ मिल गया, शेष नहीं है ॥५४॥

साक्षिण्यशेषजगतां प्रभवादिहेतुः सर्वेश्वरी श्रुतिनुता निखिलान्तरात्मा ।
दृग्गोचरी सकलमङ्गलमोदवृद्ध्यै स्या नस्त्वमार्द्रसरसीरुहसन्निभाक्षि ! ॥५५॥

हे आर्द्र (गीले) कमलके समान विशाल व सुन्दर नेत्र वाली श्रीसर्वेश्वरीजू ! चर अचर प्राणियोंके कर्मोंकी अन्तर्यामी रूपसे साक्षिणी और जगत्के उत्पत्ति, स्थिति लयकी कारण स्वरूपा, सभी पर शासन करने वाली, वेदोंके द्वारा प्रशंसित, सम्पूर्ण प्राणियोंकी अन्तरात्मा, अपनी कृपा द्वारा दिये हुये ज्ञान रूप साधनसे साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) होने वाली, आप हम सभी प्राणियोंके सम्पूर्ण मङ्गल व सुख वृद्धिके लिये होवें ॥५५॥

संसारघोरवडवानलतप्यमानांस्त्वत्पादपद्मभजदङ्घ्रिसमाश्रितान्नः ।
उद्धर्तुमम्ब ! कृपयाऽर्हसि याचमानान्नामह्रियैव यदिवाऽघमचिन्तयन्ती ॥५६॥

हे अम्ब ! संसाररूपी घोर वड़वानलसे तपते (जलते) हुये, आपके श्रीचरणकमलोंके सेवकोंके समाश्रित हुये हम सबोंके दोषों को चिन्तन न करती हुई अपनी निर्हेतुकी कृपाके द्वारा अथवा अपने नामकी ही लज्जासे हम याचक लोगोंका उद्धार आपको करना ही उचित है ॥५६॥

प्रीत्यै न तेऽस्ति किमपीह हि साधनं नः सत्यं वदाम इति ते ! नतिमन्तरेण ।
नैर्लज्यसम्पदभियुक्तहृदां जनानां निर्हेतुकी भवतु ते शरणं कृपैव ॥५७॥

हे दयायुक्ते ! आपको प्रसन्न करनेके लिये यहाँ पर हमलोगोंके पास एक प्रणामको छोड़कर और कोई भी साधन नहीं है, यह हमलोग सत्य कह रहे हैं, अतः निर्लज्जता रूपी सम्पत्तिसे युक्त हृदयवाले हम भक्तों पर आपकी निर्हेतुकी कृपा ही शरण (उपायभूत व रक्षक) होवे ॥ ५७॥

तावत्कदाचिदपि नास्ति सुखं न शान्तिः संसारतापविनिवृत्तिरुदारकीर्त्ते ।
यावन्निषेव्यत इहाङ्घ्रिसरोरुहं नो सर्वात्मना सकलमङ्गलमङ्गलं ते ॥५८॥

हे उदार (स्मरण कीर्त्तन आदिसे सब कुछ प्रदान करनेवाली) कीर्त्तिवाली ! सम्पूर्ण मङ्गलोंके मङ्गल स्वरूप आपके श्रीचरणकमलोंकासेवन जब तक सब प्रकारसे नहीं किया जाता है, तब तक पूर्णतया न कभी किसीको सुख है, न शान्ति है, न संसार-जन्य तापोंकी निवृत्ति ही हो सकती है ५८

स्तादाशु सर्वशरणं तदिदं त्वदीयं पादाम्बुजं परमभागवतैकसेव्यम् ।
सौख्याय सर्वजगतः प्रणुतं मुनीन्द्रैः सर्वेशभावितममोघनतिस्तवार्चम् ॥५९॥

हे श्री सर्वेश्वरीजू ! परम भागवतों (अनन्य भक्तों) द्वारा एक ही सेवने योग्य, सभीकी रक्षा करनेवाले, मुनीन्द्रोंसे स्तुति किये हुये, सभी ईश (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण) आदिकोंसे आराधित, अमोघ प्रणाम, अमोघ स्तुति, अमोघ पूजनवाले आपके श्रीचरणकमल सम्पूर्ण जगत्‌के सुख सिद्धिके लिये हों, अर्थात् आपके इन श्रीचरण-कमलोंके प्रणाम, स्तुति, पूजन आदिके द्वारा समस्त चर अचर प्राणी सुखी हो जावें ॥ ५९ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं स्तुवत्सु वै तेषु योगिसिद्धमहर्षिषु ।
कृपाप्रोत्फुल्लनयना पितराविव्यमैक्षत ॥६०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! इस प्रकार उन योगी, सिद्ध महर्षियोंकी स्तुति करनेपर कृपा द्वारा विकसित नेत्रवाली, इन श्रीकिशोरीजी ने दोनों श्रीमाता पिताओं की ओर देखा ॥ ६० ॥

तौ न द्रष्टुं यदा शक्तौ दम्पती प्रबभूवतुः ।
तदेयं दयया ताभ्यां दिव्यां दृष्टिमदात्स्वयम् ॥६१॥

जब श्रीसुनयना अम्बाजी व श्रीमिथिलेशजी महाराज, श्रीकिशोरीजीके उस रूपके दर्शन करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ न हो सके, तब स्वयं श्रीकिशोरीजीने उन दोनोंको कृपा करके दिव्य दृष्टि प्रदान की ॥ ६१ ॥

ततोऽस्या वीक्ष्य माधुर्यं रूपस्य परमाद्भुतम् ।
पपात मूर्च्छयाऽऽक्रान्तः पिता मे पश्यतस्तव ॥६२॥

उस दिव्य दृष्टिके प्रभावसे श्रीकिशोरीजीके रूपकी परम आश्चर्यमयी माधुरीका दर्शन करके मेरे श्रीपिताजी आपके देखते ही देखते मूर्छावश गिर पड़े ॥ ६२ ॥

अम्बा सुनयना चापि तेजसाऽस्याः प्रधर्षिता ।
पादयोरपतत्तूर्णं मुनीनां स्तुवतां तदा ॥६३॥

उस समय श्रीसुनयना अम्बाजी भी मुनियोंके स्तुति करते हुये श्रीकिशोरीजीके तेजसे घबड़ाकर तत्क्षण उनके श्रीचरणकमलों में गिर पड़ीं ॥ ६३ ॥

तौ समुत्थाप्य पाणिभ्यां प्रेम्णा चन्द्रनिभानना ।
समुवाच वचः श्लक्ष्णं पिकपोतकलस्वना ॥६४॥

उन दोनोंको अपने हस्तकमलोंके द्वारा प्रेमपूर्वक उठाकर कोयलके बच्चेके समान मधुरभाषिणी वे चन्द्रके समान मुखवाली श्रीकिशोरीजी, उनसे मधुर वचन बोलीं—॥ ६४ ॥

श्रीसर्वेश्वर्युवाच ।

आत्मनश्च तपःसिद्धिं वित्तं मां समुपस्थिताम् ।
यज्ञस्यास्य मिषेणैव ब्रह्मविष्ण्वीशादुर्लभाम् ॥६५॥

हे अम्ब ! हे तात ! आप इस यज्ञके बहानेसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिकों को भी दुर्लभ, मुझे अपने पूर्व तपकी उपस्थित हुई सिद्धि जानिये ॥ ६५ ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा कर्णपीयूषसन्निभम् ।
आह चन्द्रमुखीं तातः प्रणम्य विहिताञ्जलिः ॥६६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रवणोंको अमृतके समान सुख देनेवाले श्रीकिशोरीजीके उस वचनको सुनकर मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराज ! प्रणाम करके हाथ जोड़कर श्रीचन्द्रमुखीजूसे बोले—॥ ६६ ॥

श्रीमिथिलेश उवाच।

यदि सत्यमिदं तर्हि सफलं जीवितं मम ।
अविनीतोऽपि सदये ! श्रीमत्याऽस्म्यनुकम्पितः ॥६७॥

यदि आप मेरे इस यज्ञके बहानेसे मेरे तपकी मूर्तिमती सिद्धिके रूपमें उपस्थित हुई हैं तो, मेरा जीवन सफल है, क्योंकि हे दयायुक्ते ! मैंने आप जगज्जननी को अपनी पुत्री बनानेके लिये जो साधन किया, यह मेरी कितनी ढिठाई हुई है, परन्तु आपने फिर भी मेरे पर अनुकम्पा ही की अर्थात् पुत्री बनना स्वीकार ही कर लिये ॥६७॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

पुनः कटाक्षयन्तीं त्वां त्वां च तां मिथिलेश्वरः ।
प्रसमीक्ष्य सुविश्रब्धः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥६८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! आपकी ओर इन्हें और इनकी ओर आपको कटाक्ष करते हुये देख कर पूर्ण विश्वासको प्राप्त हो, श्रीमिथिलेशजी महाराज हाथ जोड़कर बोले:-॥६८॥

श्रीमिथिलेश उवाच।

उपसंहर विश्वेशि ! इदं रूपं परात्परम् ।
शिशुरूपं समास्थाय सुखं मे देहि वाञ्छितम् ॥६९॥

हे विश्वका नियमन करने वाली श्रीमेरेश्वरीजू ! इस अपने परात्पर स्वरूपका उपसंहार (त्याग) कीजिये और शिशु रूपमें स्थित होकर मुझे अभीष्ट-सुख-प्रदान कीजिये ॥६९॥

प्रतिरोमेषु वै यस्मिन्ब्रह्माण्डाः परमाणवः ।
दृश्यन्ते त्वत्स्वरूपं तत्कथं स्याल्लालनाय मे ॥७०॥

क्योंकि जिस रूपके प्रत्येक रोममें अनन्त ब्रह्माण्ड परमाणुके सदृश अत्यन्त सूक्ष्म दिखाई दे रहे हैं, वह आपका ऐश्वर्यमय स्वरूप मेरे लालन करने योग्य कैसे हो सकता है ? अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं ॥७०॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमभ्यर्थितस्तेन श्रीमता करुणार्णवा ।
दधार बालरूपं सा प्राकृतं सूक्ष्मतेजसम् ॥७१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! इस प्रकार श्रीमान् मिथिलेशजी महाराजके प्रार्थना करने पर इन करुणासागर श्रीकिशोरीजीने सूक्ष्म तेजसे युक्त, स्वाभाविक अपना बालरूप धारण कर लिया ७१

आवृतेऽपि यथा सूर्ये न तेजस्तिरोहति ।
अस्या अपि तथैवासीत्तेजस्तन्न तिरोहितम् ॥७२॥

हे प्यारे ! जैसे मेघ आदिकोंके द्वारा भगवान् भास्कर (सूर्य) के छिप जाने पर भी उनका तेज नहीं छिपता है, उसी प्रकार श्रीकिशोरीजीके उस ऐश्वर्यमय स्वरूपके छिपाने पर भी उनका तेज छिप नहीं सका अर्थात् अलौकिकता बनी ही रही ॥७२॥

स समीक्ष्य महाभागः शिशुरूपं समास्थिताम् ।
अभिधाव्य समुत्थाप्य क्रोडमारोपयन्मुदा ॥७३॥

इधर श्रीमिथिलेशजी महाराजने शिशु रूपम स्थित, श्रीकिशोरीजीको देखकरके दौड़कर, सुखपूर्वक उठाकर उन्हें गोदमें बैठा लिया ॥७३॥

अवादयन् दुन्दुभयो देवाः पुष्पाण्यवर्षयन् ।
एनामङ्कगतां दृष्ट्वा जयघोषसमन्विताः ॥७४॥

उधर श्रीमिथिलेशजी महाराजकी गोदमें विराजमान, इन श्रीकिशोरीजीका दर्शन करके देवगण जयजयकारके सहित नगाड़े बजाने लगे और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥७४॥

वक्षोजाभ्यां तदम्बायाः प्रसुस्रावामृतं पयः ।
तस्मादधैर्यमासाद्य नृपाङ्कात्स्वाङ्कमाददे ॥७५॥

श्रीसुनयनाअम्बाजीके स्तनोंसे अमृतके समान दूध निकलने लगा अतः उन्होंने अधीर होकर महाराजकी गोदसे श्रीकिशोरीजीको अपनी गोदमें ले लिया ॥७५॥

मङ्गलावसरं ज्ञात्वा निःसरन्तं दृशोर्जलम् ।
युक्त्या रुरोध धर्मज्ञा कथञ्चिद्योगमास्थिता ॥७६॥

आनन्दकी अधिकतासे जो आँसू आखोंसे निकल रहे थे उन्हें धर्मको जानने वाली श्रीअम्बाजीने मङ्गलका अवसर जानकर बडी कठिनतासे, योगमें स्थिर होकर युक्ति पूर्वक रोका ॥७६॥

मातुरालिङ्गनं प्राप्य ह्यपूर्वंसादितं प्रिय ।
अतिगाढं विवेशाङ्कमियं चन्द्रनिभानना ॥७७॥

हे प्यारे ! माताका आलिङ्गन, जो पूर्वमें कभी भी प्राप्त न हुआ था (उसे) पाकर उनकी गोदमें अत्यन्त गाढ़ रूपसे ये श्रीचन्द्रनिभाननाजू लिपट गयीं ॥७७॥

एवं श्रीशरदिन्दुसुन्दरमुखी सर्वेश्वरी सद्गति-
नीलेन्दीवरपत्रचारुनयना विस्मेरबिम्बाधरा।
आनन्दाय शरीरिणां प्रकटिता कारुण्यवारां निधिः
सर्वेषां नयनाद्भुतोत्सववपुः श्रीस्वामिनी नः प्रिय ! ॥७८॥

इति द्वात्रिंशतितमोऽध्यायः।

हे प्यारे ! इस प्रकारसे शरद ऋतुके चन्द्रमाके समान सुन्दर आह्लाद वर्धक मुखवाली, सभीकी स्वामिनी, सन्तोकी रक्षा करनेवाली, श्याम कमल दलके सदृश मनोहर विशाल नेत्रवाली, मुस्कान-युक्त, बिम्बाफलके तुल्य लाल अधर वाली, करुणाकी सागर, अपने स्वरूपसे सभीके नेत्रोंको आश्चर्य जनक, उत्सवके सदृश सुख प्रदान करने वाली, हमारी श्रीस्वामिनीजू समस्त प्राणियोंको आनन्दित करनेके लिये प्रकट हुईं ॥७८॥

त्रयस्त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३३॥

श्रीअम्बाजीकी गोदमें श्रीकिशोरीजीका दर्शन करके सभीकी छःमासकी चेतन समाधि, पुनः विविध प्रकारका धन लुटाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजका यज्ञभूमिसे श्रीजनकपुर प्रस्थान तथा श्रीस्नेहपराजी द्वारा निमिवंश कुमारियोंकी हार्दिक इच्छाओंका वर्णन।

श्रीस्नेहपरोवाच।

आनन्दाम्बुधिसम्प्लुताः प्रियतम ! व्यस्तस्मृतिप्राणिनः
पश्यन्तश्छविमाधुरीमतुलितां सर्वे समाधिं गताः।
अस्या दर्शनसंप्रसक्तहृदयो नाब्दार्द्धकालं गतं
प्राबुध्यद्भगवांस्तदा दिनमणिः खे संस्थितो मूर्त्तिवत् ॥१॥

हे परम प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके दर्शन रूपी आनन्द सिन्धुमें डूबे, बेसुध प्राणी इनकी अनुपम छबिमाधुरीका दर्शन करते हुए सबके सब समाधिको प्राप्त होगये, उस समय आकाशमें मूर्त्तिके समान सम्यक् प्रकारसे स्थित हुए भगवान सूर्य, उनके दर्शनमें सब प्रकारसे परम आसक्त हृदय हो जानेके कारण छः महिनेका बीता हुआ समय, ज्ञात न कर सके ॥१॥

राजा लब्धमनोरथोऽतिमुदितो द्रव्यप्रदानाय वै
आहूयाखिलमन्त्रिणो गिरमिमां संप्राह गद्गद्गिरा।
यूयं यात ममाज्ञया च निखिलान्कोषांश्चिरादर्जितान्
सर्वेभ्यः किल सानुरोधमधुना भक्त्या प्रदत्तादरात् ॥८॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने मनोरथकी सिद्धि पाकर अत्यन्त मुदित हो अपने समस्त मन्त्रियोंको बुलाकर द्रव्य प्रदान करनेके लिये उनसे इस प्रकार गद्गद्वाणीसे बोले—हे समस्त मन्त्रियों ! तुम लोग (नगर) जाओ और मेरी आज्ञासे बहुत दिनोंका इकट्ठा किया हुआ सारा खजाना अनुरोध पूर्वक, श्रद्धाके सहित, आदरके साथ सभीके लिये, अभी दान कर दो ॥८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

राज्ञस्तस्य विदेहभूपतिमणेराज्ञानुसारं हि ते
नानारत्नमणिप्रवालविलसत्कोषान्समुद्रायितान् ।
प्रेमोन्मत्तधियस्तु तर्हि समदुः सर्वेभ्य एवेप्सितं
दानैर्वित्तपराङ्मुखाः सुविहितास्तैर्वित्ततृष्णातुराः ॥९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :—हे प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके दर्शनानन्द से विदेह (देहकी सुधिरहित) अवस्थाको प्राप्त योगियोंके सम्राट् श्रीमिथिलेशजी महाराजके आज्ञानुसार वे प्रेम-बावरे-बुद्धि, मन्त्रीगण अनेक प्रकारके रत्न, मणि, मूँगोंसे सुशोभित, समुद्रका रूप ग्रहण करने वाले खजानोंको लुटाने लगे, जिसको जो रुचा वही उसे दिया, कहाँतक कहा जाय ? उन मन्त्रियोंने दानके द्वारा सभी धनतृष्णातुरों अर्थात् धनकी इच्छासे पागल हुए लोगोंको धनसे विमुख कर दिया, यानी धनकी ओर देखनेकी भी उनकी इच्छा न रहने दी ॥९॥

निःसङ्कोचमुदारचारुमतयः प्रादुर्धनं पुष्कलं
यल्लब्ध्याऽखिलयाचकाः समभवन्नित्ये कुबेराधिकाः ।
किन्तु प्रेष्ठ ! न कस्यचिद्धननिधिर्याता त्रुटिं कामपि
दृष्टं चेति कुतूहलं हि परमं सर्वैस्तदानीं नवम् ॥१०॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! इस प्रकारसे उन उदार सुन्दरमति, मन्त्रियोंने सङ्कोचको परित्याग कर बहुत २ दान दिया, जिसको पाकर सभी नित्य भिक्षा माँगने वाले दरिद्र प्राणी भी, धनमें कुबेरसे अधिक सम्पन्न हो गये, परन्तु किसी भी कोषाध्यक्षके खजाने में किसी प्रकारकी भी कमी नहीं आई, यह उस समय सभीने परम नवीन आश्चर्य देखा ॥१०॥

इत्थं चान्नविभूषणाम्बरगवां दानैर्जनास्तर्पिताः
सर्वेषां मुखतो जयेति च मुहुः संश्रूयते स्म ध्वनिः ।
दृश्यन्ते स्म तदाऽर्थिनो न नगरे संमार्गमाणाः क्वचित्
सर्वत्रैव च सर्व एव समुदो दातृत्वबुद्धिं ययुः ॥११॥

इसी प्रकार अन्न,भूषण, वस्त्र, गौ आदिके दानोंसे सब लोग तृप्त कर दिये गये, अतः सबके मुखसे सुख-पूर्वक जय हो-जय हो, बस यही शब्द बार बार सुननेमें आता था और उस समय भली प्रकारसे खोजने पर भी कोई किसी भी वस्तुको चाहने वाला नगरमें नहीं मिलता था बल्कि-सबके सब सानन्द दान करनेकी ही बुद्धिको प्राप्त हो गये अर्थात् दान देने लगे ॥११॥

कुर्वन्तः सुरपुष्पवृष्टिममरा दृष्ट्वा तु नः स्वामिनी-
मात्मानं खलु मेनिरे प्रतिपलं नूनं कृतार्थीकृतम् ।
ब्रह्मत्र्यम्बकचक्रपाणिसुरराड्वित्तेशपाशयन्तकाः
कृत्वा दर्शनमीप्सितं समवसन् गूढस्वरूपाः पुरे ॥१२॥

हमारी श्रीस्वामिनीजूका दर्शन करके देववृन्द पल पलपर कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा करते हुये अपनेको बिना किसी अन्य साधनके ही कृतार्थ मानने लगे। श्रीब्रह्माजी,श्रीशिवजी, श्रीविष्णु भगवान्, इन्द्र, कुवेर, वरुण, यम श्रीकिशोरीजीका मनचाहा दर्शन करके गुप्त स्वरूपसे नगरसे बस गये १२

नानादेशनराधिपैश्च गुणिभिः सर्वैश्च तत्रागतैः
संदीप्ताग्निशिखोपमैर्मुनिवरैः सद्भिः प्रमोदान्वितैः ।
सम्मत्या महतां पितुश्च भवतो वेश्मागयौ स्वं तदा
तत्रानन्दमवेक्षितं हि भवता मन्ये यथेच्छं प्रिय ! ॥१३॥

हे प्यारे ! महात्माओंकी और आपके पिताजीकी सम्मतिसे वे श्रीमिथिलेशजी महाराज यज्ञ-महोत्सवमें पधारे हुये आनन्दयुक्त अनेक देशके राजाओं, गुणियों, प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी मुनिवरो और सन्तगणोंके सहित अपने महलमें आये। उस समयका आनन्द आपने अपने इच्छानुसार भली प्रकारसे अवश्य अवलोकन किया होगा, यही मैं निश्चय मानती हूँ ॥१३॥

यर्ह्यादाय सुधांशुपूर्णवदनां तातो गृहं प्रस्थित-
स्तर्हि स्वर्द्रुमपुष्पवृष्टिभिरियं व्याप्ता मही नाकिनाम् ।

सर्वं स्थावरजङ्गमं जगदिदं सच्चित्सुखं चान्वभूद्
देवर्षिव्रजसङ्कुला च मिथिला शोभां प्रपेदेऽतुलाम् ॥१४॥

और जिस समय हमारे पिताजी उस यज्ञस्थलीसे पूर्णचन्द्रमुखीजीको लेकर अपने महलके लिये प्रस्थान किये, उस समय देवताओंके द्वारा कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षासे सारी पृथिवी परिपूर्ण हो गयी, समस्त स्थावर जङ्गममय यह जगत्, सत्, चित्, सुख (भगवदानन्द) का अनुभव करने लगा और देवताओं व ऋषिवृन्दोंसे भरी हुई श्रीमिथिलाजी अनुपम शोभाको प्राप्त हुई ॥१४॥

एतच्चापि रहस्यमुक्तमधुना मातुर्मया प्राक्श्रुतं
मापन्त्याः सुभगां प्रति प्रणयतो बाष्पप्रसिक्तास्यतः ।
तत्सत्यं यदि वा न हीति सुभग ! ज्ञाता भवान् सर्वथा
ध्यायन्त्याः श्रुतमेव मे तु हृदयं संयात्यमन्दं सुखम् ॥१५॥

हे प्राणप्यारेजू ! यह रहस्य सुनयनाजीके प्रति प्रणयपूर्वक श्रीअम्बाजीके कहते हुये उनके अश्रुभीगे मुखारविन्दसे मैंने पूर्वमें सुना था, उसे इस समय आपसे मैंने निवेदन किया, पर यह सत्य है अथवा झूठ, (उस समय उपस्थित होनेके कारण) इस बातको आप भली प्रकारसे जानते हैं, किन्तु उस सुने हुये ही रहस्यका ध्यान करने मात्रसे मेरा हृदय अपार सुखको प्राप्त हो जाता है, फिर जिन्होंने उसे प्रत्यक्ष देखा होगा उनके आनन्दको कहना ही क्या है ? ॥१५॥

सेयं श्रीनिमिराजमौलितनया साकं प्रिय ! श्रीमता
मच्छोकोन्मथनाय भक्तिवशगा प्रस्थापिता मन्दिरे ।
मत्तोऽग्रे गृहमेत्य दीनसुखदा दास्याः कृपावारिधिः
स्वापाख्ये मम भाविते च भवने शेते सुखं पूर्ववत् ॥१६॥

जिनको मैं शयन-भवनमें सुलाकर आई थी, वे ही श्रीनिमिवंशके राजशिरोमणि श्रीमिथिलेशजी महाराजकी दुलारीजू प्रेमके वशीभूत होकर मेरे शोकको नाश करनेके लिये दीन जनोंको सुख देने वाली कृपासागराजू मुझसे पूर्व ही मुझ दासीके शयन महलमें स्वयं पधार कर अपने शयन भवनकी तरह यहाँ सुखपूर्वक सो रही हैं ॥१६॥

धन्या हन्त कृपालुता प्रणयता सच्छीलता स्निग्धता
स्वामिन्या मम सर्वलोकशुभदा सद्भावता मीलिता ।

प्राणप्रेष्ठ ! यया सुदुर्लभसुखं चेदं मयाऽऽसादितं
नो चेत्त्वं हि वदाद्य नाथ ! तदिदं मह्यं सुखं वै कुतः ॥१७॥

हे प्राणप्यारेजू ! हमारी श्रीकिशोरीजीकी कृपालुता, प्रणयभाव, सुशीलता, भक्तोंपर स्नेहभाव, समस्तप्राणियोंको मङ्गलप्रदान करने वाली सद्भावना और प्रीति धन्य है जिसके द्वारा मुझे आज यह अलौकिक और परम दिव्य सुख प्राप्त होरहा है, जो अन्य किसीको किसी अवस्थामें भी सुलभ नहीं है, हे नाथ ! आपही कहिये यदि श्रीकिशोरीजीमें उपर्युक्त दिव्यगुणोंकी प्रधानता न होती तो यह अत्यन्त दुर्लभसुख मुझ-जैसी साधारणको कैसे मिल सकता था ? ॥१७॥

मुह्यन्तीह न च स्त्रियः कथमपि प्रेक्ष्य स्त्रियं कामपि
प्रख्यातेयमुदारपुण्यचरित ! प्राणेश ! लोके कथा ।
सर्वासां हृदयेभ्य एव नितरामञ्जो विमोहप्रदः
प्रत्येकाङ्गतनूरुहस्तु सुदृढं नोऽस्याः परं वल्लभ ! ॥१८॥

हे उदारपुण्यचरित ! श्रीप्राणनाथजू ! स्त्रियाँ किसी भी स्त्रीको देखकर किसी भी प्रकारसे मुग्ध नहीं होतीं" यह कथा लोकमें प्रसिद्ध है, परन्तु हे प्यारे ! इन श्रीकिशोरीजीका प्रत्येक रोम हम सभी सखियोंके हृदयको तत्काल ही मुग्धकर लेता है, अर्थात् हम लोगोंका हृदय इनके एक-एक रोम पर मुग्ध है ॥१८॥

अस्माभिस्तु निमेषनिर्मितिकृते दुःखाभिभूतासमि-
दुर्वादः प्रतिदीयते प्रतिपलं वृद्धाय धात्रेऽसकृत् ।
अस्या दर्शनविघ्नदाय कुधिये प्राणेश ! शोभाकर !
त्वं तस्मान्महतो महिष्ठदुरितात्त्रायस्व नः प्रेयसीः ॥१९॥

अत एव हे शोभाके राशि श्रीप्राणप्यारेजू ! हम सभी दुःखी हृदयसे बूढ़े ब्रह्माको प्रतिपल बहुत-बहुत गाली दिया करती हैं क्योंकि उन्होंने अपनी दुर्बुद्धिके कारण आँखोंमें पलक बनाकर श्रीकिशोरीजीके दर्शन करनेमें हम लोगोंको विघ्न (बाधा) उत्पन्न कर दिया है, अतः आप इस परम महान् अपराधसे हम सभी प्यारियोंकी रक्षा कीजिये ॥१९॥

पूर्णेन्दुप्रतिमाननाऽञ्जनयना विस्मेरबिम्बाधरा
वैदेही मिथिलाधिनाथतनया मात्रा सदा लालिता ।
अस्माभिश्च सुजीवताच्चिरमियं संसेव्यमाना मुदा
सर्वासां किल हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२०॥

हे प्यारे ! हम सबोंकी एकमात्र यही सदा हार्दिकी अभिलाषा रहा करती है कि ये पूर्ण-चन्द्र-तुल्य-मुखी, कमललोचना, मुस्कान युक्ततथाबिम्बाफलके सदृश लाल अधर वाली श्रीमिथिलेशदुलारीजू भक्तोंको सुख प्रदान करनेमें अपनी सुधि भूल जानेवाली श्रीसुनयना अम्बाजीसे लालित और सब बहिनियोंसे प्रणयके साथ आनन्दपूर्वक सेवित होती हुई चिरकाल तक जीवित रहें ॥२०॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्मितमुखी सर्वास्ववस्थासु वै
खेलन्ती विचरन्त्यथो स्थितवती संसेव्यमाना मुदा ।
भद्राण्येव च सर्वदिक्षु सततं प्राणाधिका पश्यता-
त्सर्वासां किल हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२१॥

और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि सभी अवस्थाओंमें खेलती और विचरती हुई, हम सभीसे सेवित रहें और आनन्दपूर्वक दशो दिशाओंमें मन्दहास्य युक्त मुखवाली ये श्रीप्राणाधिकाजू मङ्गल-ही मङ्गल सदा अवलोकन करती रहें यही हम लोगोंकी हार्दिक कामना रात-दिन बनी रहती है २१

मृद्वङ्गी स्मितनन्दिताखिलजना कारुण्यपूर्णेक्षणा
विद्युद्दामसमद्युतिः सुहसिता सौन्दर्यरत्नाकरी ।
अस्माकं नयनालयेषु वसतादाराध्यमाना मुदा
सर्वासां किल हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२२॥

तथा अपनी मन्दमुस्कान मात्रसे समस्त प्राणियों को आनन्दित करने वाली करुणा-रस-पूर्ण चितवन व बिजुलीकी मालाके सदृश प्रकाशमय कान्ति व सुन्दर मुस्कानवाली, ये कोमलाङ्गी, सौन्दर्य सागरा श्रीकिशोरीजी हम सभी आश्रित-जनोंसे सेवित होती हुई आनन्दपूर्वक हम लोगोंके नेत्ररूपी महलोंमें निवास करती रहें, यही हम सबके हृदयमें सदा ही उत्कण्ठा बनी रहती है ॥ २२ ॥

कारुण्यामृतवर्षिणी शशिमुखी सच्चित्सुखैकाकृति-
र्नेत्रानन्दकरी मनोहरगतिः शोभावधिः सद्गतिः ।
पश्यत्वार्द्रदृशा दयार्द्रहृदया दासीश्च नः स्वश्रिता
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२३॥

कारुण्य रूपी अमृत की वर्षा करने वाली सत्-चित् (सदा एक रस रहने वाले अमायिक) सुखकी उपमा-रहित विग्रह (मूर्ति), नेत्रोंको अपने दर्शनोंसे ही आनन्दित करनेवाली तथा अपनी

गमनकी शोभासे सभी प्राणीमात्रके मनको हरण करने वाली, शोभाकी सीमा, सन्तोंकी आधार, दयासे द्रवित हृदय वाली ये शशिमुखी (श्रीकिशोरी) जू अच्छी प्रकारसे पूजित होकर हम सब दासियोंको अपनी दयाद्रवित-चितवनसे सदा अवलोकन करती रहें, यही इस जीवनमें हम सबोंके हृदयकी नित्य (अविचल) कामना रहा करती है ॥२३॥

अम्बाक्रोडविहारिणी लघुदती मन्दस्मिता शोभना
गौराङ्गी कुटिलालकावृतशरत्पूर्णेन्दुभव्यानना ।
अस्माकं कुरुतात्त्रितापशमनं प्रीता कृपावीक्षणैः
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२४॥

जिनके छोटे छोटे दाँत हैं, मन्द मुसकान है, जो सब प्रकारसे सुन्दर हैं, गौर जिनका अङ्ग है, शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रके सदृश परम आह्लादवर्द्धक प्रकाशमय जिनका श्रीमुखारविन्द कुञ्चित अलकावलीसे युक्त है, ऐसी अम्बाजीकी गोदमें विहार करने वाली सुनयना श्रीकिशोरीजी प्रसन्न हो अपनी कृपामयी चितवनसे हम सब आश्रितोंके तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंको शमन करती रहें। यही हम सबोंकी इस जीवनमें एकरस हार्दिकी कामना है ॥२५॥

स्वामिन्या मम सर्वतापहरणं कल्याणसौख्यप्रदं
राकानाथकरौघमोहजनकं चित्तापकर्षं परम् ।
भूयादात्मतमोघ्नमाश्रुशुभदं मन्दस्मितं पावनं
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२५॥

समस्त पापोंको हरण करने वाली तथा कल्याण व सुखको प्रदान करने वाली, पूर्णचन्द्रकी किरण समूहोंको भी मुग्ध करने वाली चित्ताकर्षक परम पवित्र कारक कल्याणको देनेवाली हमारी श्रीस्वामिनीजीकी मन्द मुस्कान हम आश्रितोंके हृदयके अन्धकार (अज्ञान) को दूरकरे, इस जीवनमें यही हम सबोंके हृदयमें रात दिन अटल उत्कण्ठा बनी हुई है ॥२५॥

खेलन्त्याः कमलापवित्रपुलिने सत्रालिवृन्दैः शुभं
ब्रह्माद्यैश्च शिरोभिरेव नमितं वेदैर्विमृग्यं परम् ।
पादाम्भोजरजः सदाऽस्तु शरणं नश्चोत्पतच्छ्रीश्रियः
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२६॥

श्रीकमलाजीके पवित्र किनारे पर अपने सखीवृन्दोंके सहित खेलती हुई शोभाकी सीमा स्वरूप

श्रीकिशोरीजीकी ब्रह्मादि देवताओंसे नमस्कार की हुई, वेदों द्वारा परम खोजने योग्य, उड़ती हुई श्रीचरणकमल धूलि हम सभी आश्रितोंकी सदा रक्षा करे, यही हम सबोंकी इस जीवनमें अटल कामना है ॥२६॥

शश्वद्विश्वभयापहः सुललितः शोभाकरः शीतलः
स्वामिन्या मम सर्वतापहरणः सत्कङ्कणैः स्वञ्चितः ।
स्निग्धाम्भोरुहशोभनाभयकरः शीर्षेषु नो राजतां
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२७॥

सदा विश्वमात्रके भयको नष्टकर देने वाला, अत्यन्त सुन्दर, शोभाकी खानि, शीतल, समस्त तापोंको हरण करने वाला, सत्कङ्कणोंसे भूषित हमारी श्रीस्वामिनीजूका चिक्कण कमलके समान सोहावन अभय हाथ, हम लोगोंके शिरपर सदा सुशोभित रहे, हम सभीके हृदयकी इस जीवनमें यही अटल कामना सदा बनी हुई है ॥२७॥

अस्याः सा तनुकान्तिरस्तु चपला पुञ्जोपमा पावनी
तेजोवारिधिसीकरात्प्रकटिता यस्याः शशीनाग्नयः ।
दुष्प्रेक्ष्याः प्रिय ! भासकास्त्रिजगतां मोहान्धकारापहा
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२८॥

जिसके तेजरूपी सागरके सीकर (कण) मात्र तेजसे प्रकट हुये चन्द्र, सूर्य, अग्नि त्रिभुवनको प्रकाशयुक्त करने वाले कठिनतासे देखे जाते हैं पवित्र कारण गुण-सम्पन्ना, बिजलीके समूहके समान उन श्रीकिशोरीजीकी श्रीअङ्ग-कान्ति हम लोगोंके मोह (अज्ञान) रूपी अन्धकारको हरण करे—यही इस जीवनमें हम सबोंके हृदयमें सदा ही नित्य-कामना रहा करती है ॥२८॥

अस्याः श्लाघ्यदयानुरागपरमौदार्यक्षमाशीलता-
वात्सल्यादिगुणा हि सन्तु शरणं दिव्याः पराः पावनाः ।
मैथिल्याः सततं मनोहररुचेः शोभावधेः सद्गतेः
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२९॥

जिनका दर्शन सदाही मनोहर है, जो शोभाकी सीमा और सन्तोंकी रक्षा करने वाली हैं उन्हीं इन श्रीमिथिलेश-दुलारीजीके प्रशंसनीय दया, अनुराग, परम उदारता, क्षमा, शीलता,

वत्सलता आदि परम पावन दिव्य गुण हम समस्त प्राणियोंकी रक्षा करें—यही हम सबोंके हृदयकी अहर्निश नित्य ही उत्कण्ठा इस जीवनमें बनी हुई है ॥२९॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं तस्यां तदोक्त्वा रघुकुलमिहिरो बाष्पपूर्णाम्बुजाक्ष्या-
मापन्नायां विसञ्ज्ञां सरसिजनयनस्तां प्रबोध्येत्यथोचे ।
तत्कीर्तिं श्रावय त्वं हृदयसुनिहितां कर्णपीयूपकल्पां
संस्मृत्यामोघभावां सुविशदहृदये स्वं समाधाय चेतः ॥३०॥

इति त्रयस्त्रिंशतितमोऽध्यायः ।

—: मासपारायण ६ :—

इस प्रकार कह कर अश्रुपूर्ण कमललोचना श्रीस्नेहपराजूके प्रेममयी मूर्च्छाको प्राप्त हो जाने पर, कमलनयन प्राणप्यारेजू उन्हें सावधान करके बोले—हे परम निर्मल (विशुद्ध) हृदयवाली ! तुम अपने चित्तको सावधान करके तथा अमोघभाव सम्पन्ना श्रीकिशोरीजीको सम्यक् प्रकारसे स्मरण करके मुझे अपने हृदयमें रक्खी हुई श्रवणोंको अमृतके समान सुख देने वाली उनकी कीर्ति (चरित्रों) को श्रवण कराइये ॥३०॥

अथ चतुस्त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३४॥

श्रीस्नेहपराजीके द्वारा श्रीमिथिलेश-राजकिशोरीजीके षष्ठी उत्सवका वर्णन

श्रीशिव उवाच ।

एवमाभाषिता तेन प्रेयसा प्रेयसी सखी ।
प्रेयसं तमुवाचेदं प्रेमगद्गदया गिरा ॥१॥

भगवान् शिवजी बोले :—हे शैलराजकुमारीजू ! इस प्रकार श्रीप्रियाजूकी सखी स्नेहपराजी श्रीप्राणप्यारेजूके प्रेमपूर्वक आज्ञा देने पर प्रेमवृद्धिके कारण गद्गद हुई वाणी द्वारा उन श्रीप्यारेजूसे बोलीं—॥ १ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आब्रह्मकीटपर्यन्ताः शक्तिमन्तः पृथक् पृथक् ।
यदिच्छाशक्तिमात्रेण कोटिब्रह्माण्डवर्तिनः ॥२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! जिनकी इच्छाशक्तिमात्रसे करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें रहने वाले ब्रह्मासे लेकर कीट पर्यन्त सभी पृथक्-पृथक् अल्प-विशेष शक्तिसे सम्पन्न हैं ॥२॥

क्वचित्कीटायते ब्रह्मा क्वचित्कीटोऽप्यजायते ।
क्षणार्द्धेनैव नो शक्या यदिच्छा चातिवर्तितुम् ॥३॥

अत एव कभी वही उनकी अभिमान-निवारिणी इच्छा-शक्ति जगत्कर्ता ब्रह्माको आधे क्षणमात्रमें कीड़ाके समान अल्प-शक्ति बना देती है कभी अकाणियोंको अपने साधनोंका अभिमान नष्ट करके लोकोपकारार्थ उन्हें अपनी अघटित-घटना-पटीयसी शक्तिका अनुभव कराने वाली इच्छा शक्ति उसी आधे क्षणमात्रमें कीड़ाको ब्रह्माके समान सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेकी सामर्थ्यसे युक्त बना देती है तथा जिनकी इच्छाका उल्लङ्घन कभी हो ही नहीं सकता अर्थात् जिस समय प्राणीकी जितनी शक्तिको उनकी इच्छा-शक्ति किसी महान अपराधके दण्डमें खींच लेती है तब वह चाहे अल्पसे अल्प शक्तिमान हो, चाहे ब्रह्मा विष्णु महेशके ही समान विश्वविख्यात एवं महाशक्तिमान क्यों न हो, पर करोड़ों प्रयत्न करने पर भी तब तक उस शक्तिसे वह कदापि युक्त नहीं हो सकता, जब तक उन दयामयीजूकी अनुपम उदार इच्छा शक्ति फिर उसे उस शक्तिको स्वतः देनेकी कृपा नहीं करती और जब तक उनकी इच्छा शक्ति जिस प्राणीको अपनी किसी प्रकारकी रीझ वश जिस शक्तिसे सम्पन्न रखना चाहती है तब तक त्रिलोकीमें कोई भी शक्ति उसे उस शक्तिसे रिक्त नहीं कर सकती ॥३॥

प्राणनाथारविन्दाक्ष ! सच्चिदानन्दविग्रह ! ।
चरितं श्रूयतां तस्या जन्मोत्सवसमन्वितम् ॥४॥

हे सदा एक रस रहनेवाले अप्राकृत आनन्दके विग्रह श्रीप्राणनाथजू ! उन श्रीकिशोरीजीके जन्मोत्सवसे युक्त चरितोंको आप श्रवण कीजिये ॥४॥

आगत्य निलयं मुख्यं पिता मे यज्ञवाटतः ।
ससमाजो नृपैर्विप्रैः सर्वैर्यज्ञ उपागतैः ॥५॥

यज्ञमें पधारे हुये सभी राजाओं व ब्राह्मणोंके सहित अपने समाजके साथ हमारे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजने यज्ञस्थलीसे अपने मुख्य महलमें आकर ॥५॥

महार्हरत्नहर्म्याणि यथायोग्योत्तमानि च ।
संदिदेश प्रहृष्टात्मा सर्वेभ्यस्तेभ्य आदरात् ॥६॥

उन सबोंको आदरपूर्वक यथायोग्यसे भी उत्तम बहुमूल्य रत्नोंके महल, प्रसन्न हृदय हो प्रदान किया ॥६॥

भूषणांशुकरत्नानां महावृष्टिरनुत्तमम् ।
कारिता नरदेवेन प्रेमनिर्भरचेतसा ॥७॥

पुनः प्रेम-निर्भर चित्त हो वे श्रीमिथिलेशजी महाराज भूषण, वस्त्र, रत्नोंकी चण-क्षणपर महान् वर्षा करवाने लगे ॥७॥

अम्बा तदा सुनयना पुत्रमेकमजीजनत् ।
सुतमेकं सुतां चैकामसूत कान्तिमत्यपि ॥८॥

उसी समय श्रीसुनयना अम्बाजीके एक पुत्र और श्रीकान्तिमती अम्बाजीके एक पुत्र व एक पुत्री का जन्म हुआ ॥८॥

जातकर्मादिकं कर्म तेषां कृत्वा विधानतः ।
श्रीविदेहो महाराजो महानन्दपरिप्लुतः ॥९॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज उनके जन्मका संस्कार (जातकर्म आदि) विधिपूर्वक करके महान् आनन्दमें डूब गये अतः उन्हें देहकी सुधि नहीं रही ॥९॥

तद्गृहं दृश्यते न स्म न यस्मिन्मङ्गलोत्सवः ।
जन्मनोऽस्या विशालाक्ष्या महानन्दविधायकः ॥१०॥

हे प्यारे ! उस समय वह कोई भी ऐसा गृह नहीं दिखाई देता था, जिसमें इन विशाल-लोचना श्रीकिशोरीजीका महान् आनन्दकारक जन्मका मङ्गलोत्सव न मनाया जारहा हो ॥१०॥

पताका-केतु-कलश-तोरणै रहितं गृहम् ।
अन्त्यजस्याऽपि नादर्शि पुरि तस्यां तदा किल ॥११॥

कहाँ तक कहें ? उस समय शूद्र व अन्त्यजों (भङ्गी, डोम आदिकों) का भी घर ऐसा देखने को सुलभ नहीं था, जिसमें मङ्गल कलशकी स्थापना न की गयी हो, अथवा जिसमें ध्वजा न फहरा रही हो, तथा जिसमें झण्डी व वन्दनवार न लगाये गये हों ॥११॥

किं पुनर्ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशां तथा ।
शक्यते द्रष्टुमागारमृते जन्ममहोत्सवात् ॥१२॥

फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंका कोई घर श्रीकिशोरीजीके जन्ममहोत्सवसे खाली देखनेको कैसे सुलभ हो सकता था ? ॥१२॥

महानन्देन चैवेत्थमतीत्य दिनपञ्चकम् ।
अथ षष्ठ्युत्सवं राजा समारेभे विधानतः ॥१३॥

इस प्रकार पाँच दिन बड़े ही आनन्दसे व्यतीत करके श्रीमिथिलेशजी महाराज ने विधिपूर्वक षष्ठी (छट्ठी) महोत्सव प्रारम्भ किया ॥१३॥

आजग्मुः पुरवासिन्यो रतिरूपमदापहाः ।
नार्यो भूषितसर्वाङ्ग्यो मङ्गलवस्तुपाणयः ॥१४॥

अपने सौन्दर्यसे रतिके रूपका अभिमान दूर करने वाली, सर्व अङ्गोंमें शृङ्गारयुक्त पुर-वासिनी स्त्रियाँ, अनेक प्रकारकी माङ्गलिक वस्तुओंको हाथोंमें ले-लेकर आने लगीं ॥१४॥

नर्तका गायका मुख्याः सूताश्चैव विदूषकाः ।
सत्कौतुककलाभिज्ञाः कवयो गणका भटाः ॥१५॥

मुख्य-मुख्य नाचनेवाले, गानेवाले, सूत, विदूषक अच्छी-अच्छी कौतुककी कलाको जाननेवाले, कवि, ज्यौतिषी, भट (भाँट) ॥१५॥

वादित्रकुशला मल्लाः सर्वशास्त्रविशारदाः ।
कोविदाश्चैव सस्त्रीका राजानः ससमाजकाः ॥१६॥

वाद्य-विद्याके पण्डित, मल्ल (पहलवान) सभी शास्त्रोंके ज्ञाता विद्वान, स्त्रियोंके सहित तथा समाजके समेत राजा लोग ॥१६॥

आगताश्च महात्मानो मुनयः सर्व एव हि ।
भवाँश्च भ्रातृभिः सार्कं सह पित्रा समागतः ॥१७॥

और सभी महात्मा, सभी मुनि आने लगे तथा भाइयोंके सहित व पिताजीके साथ आप भी पधारे ॥१७॥

तेन तत्र समादृत्य सत्कृत्य सुविधानतः ।
महार्हरत्नपीठेषु विनयेन निवेशिताः ॥१८॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने आदर व विधिपूर्वक सत्कार करके बहुमूल्य रत्नमयी चौकियों पर सभीको विनयपूर्वक विराजमान किया ॥१८॥

राज्यः सर्वा नरेन्द्राणां मातृभिस्तव संयुताः ।
सत्कृत्य स्वासनेष्वन्तःपुरे प्रीत्या निवेशिताः ॥१६॥

और अन्तःपुरमें आपकी माताओंके सहित सभी राजाओंकी रानियोंका सत्कार करके उन्हें प्रेमपूर्वक सुन्दर आसनों पर विराजमान किया गया ॥१६॥

ताराधिपमुखीनां तु महामोदान्वितात्मनाम् ।
सामयिकं तदा गानं संप्रवृत्तं मनोहरम् ॥२०॥

पुनः उस उपस्थित समयानुसार महान् आनन्द परिपूर्ण हृदयवाली चन्द्रमुखी सखियोंके मनोहर मङ्गल गीतोंका गान प्रारम्भ हुआ ॥२०॥

क्वचिन्नृत्यं क्वचिद्गानं क्वचिच्छास्त्रार्थनिर्णयः ।
क्वचिद्वन्दीजनानां च संस्तवः सुखवर्द्धनः ॥२१॥

उधर अन्तः पुर से बाहर कहीं नृत्य कहीं गान कहीं शास्त्रके अर्थका निर्णय (निश्चय) कहीं वन्दीजनोंका सुखवर्द्धक गुणगान आरम्भ हुआ ॥२१॥

क्वचिज्ज्योतिर्विदां वादः कवीनां कविता क्वचित् ।
क्वचिद्विदूषकानां च समाजो मोदसञ्चयः ॥२२॥

कहीं ज्योतिष विद्याके विद्वानोंका पारस्परिक विवाद कहीं पर कवियोंकी कविताका आनन्द, कहीं विदूषकोंका समाज आनन्द-पुञ्ज बना ॥२२॥

सगानं वाद्यविदुषां क्वचिद्वादित्रवादनम् ।
नटानां च तथा नाट्यं महाश्चर्यप्रदं नृणाम् ॥२३॥

कहीं अनेक प्रकारके वाद्यों (बाजाओं) के विद्वानोंकी गानपूर्वक वाद्यध्वनि, कहीं महान् आश्चर्य-प्रद नटोंकी नाट्य-लीला प्रारम्भ हुई ॥२३॥

संप्रवृत्ते तु मे पुर्यां कोणे कोणे महोत्सवे ।
अभूतपूर्व इत्येव श्रवनेत्रसुखावहे ॥२४॥

इस प्रकार मेरी पुरीके कोने-कोनेमें श्रवण व नेत्रोंको सुख देनेवाले अभूतपूर्व महोत्सवके प्रारम्भ हो जाने पर ॥२४॥

उद्वर्तनादिकविधिं कृत्वौषधियुताम्भसा ।
स्नापितेयं समं मात्रा नखकर्तनपूर्वकम् ॥२५॥

उबटन आदिकी विधि कराकर श्रीअम्बाजीके सहित नखोंको कटवा कर अनेक प्रकारकी पौष्टिक माङ्गलिक आदि औषधियोंसे युक्त जलसे इन श्रीकिशोरीजीको स्नान करवाया गया ॥२५॥

पीतांशुकाभूषणभूषिताङ्गी क्रोडे स्वमातुः सुभृशं रराज ।
ननर्त तद्वीक्ष्य पराऽनुरक्त्या रमा तु शैलात्मजया तदानीम् ॥२६॥

हे प्यारे ! पीत रङ्गके वस्त्रोंको धारण की हुई, भूषणोंसे भूषित अङ्गवाली श्रीकिशोरीजी अपनी श्रीअम्बाजीकी गोदमें अत्यन्त सुशोभित हुई, उस शोभाको देखकर श्रीलक्ष्मीजी परम अनुरागपूर्वक श्रीपार्वतीजीके सहित इच्छानुकूल नृत्य करने लगीं ॥२६॥

चकार गानं च कलस्वरेण तदा विधात्री समयानुकूलम् ।
स्वरूपमाधुर्यरसप्रमत्ता विगाढभावेन मुदा समाजे ॥२७॥

श्रीकिशोरीजीके स्वरूपके माधुर्य रसको पान करके मस्त हुई विधात्री (श्रीसरस्वती) जी अत्यन्त गाढ़-भाव पूर्वक प्रसन्नताके सहित उत्सवानुकूल मङ्गल गीत गाने लगीं ॥२७॥

एवं विरिञ्च्यादिसुरा दिगीश्वराः सशक्तिका भूमिसुतादिदृक्षया ।
सोपायनाम्भोजकरा हताशुभा आजग्मुरन्येऽप्यनुरागनिर्भराः ॥२८॥

इस प्रकार समस्त अमङ्गलोंको नष्ट करनेवाले, अपनी शक्तियोंके सहित ब्रह्मादिदेव, दिग्पाल (इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर) तथा अन्य भी देवगण श्रीकिशोरीजीके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे अपने करकमलोंमें नानाप्रकारकी भेंट लिये हुये पूर्ण अनुराग पूर्वक वहाँ आये ॥२८॥

गन्धर्वविद्याधरयक्षचारणास्तथागमन् किन्नरनागगुह्यकाः ।
उपेयतुश्चन्द्रदिवाकरौ तदा द्विजाकृती श्रीमिथिलेश्वरोत्सवे ॥२९॥

उसी प्रकार गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष चारण, किन्नर, नाग, गुह्यक गण पधारे। उसी समय भगवान् चन्द्र व सूर्य ब्राह्मणका रूप धारण किये हुये श्रीमिथिलेशजी महाराजके उत्सवमें आ पधारे ॥२९॥

तेऽदीर्घपादोरुकरां सुखावहां तनुद्युतिस्पर्द्धितडिल्लतप्रभाम् ।
दृष्ट्वा जगन्मोहनमोहनाकृतिं सुधाकरानन्तमनोहराननाम् ॥३०॥

वे छोटे-छोटे पाँव, छोटी-छोटी जंघा, व छोटे २ हाथ वाली, अपने श्रीअङ्गकी कान्तिसे अनन्त विद्युलीकी प्रभाको स्पर्धा युक्त करनेवाली, स्थावर जंगम प्राणियोंको अपने रूपके वैभवसे मुग्ध

करने वाले प्रभु (आप) को भी अपने मङ्गलमय मनोहर विग्रहसे मुग्ध करनेवाली तथा चन्द्रमासे भी अनन्त गुण मनोहर मुखवाली (इन) श्रीकिशोरीजीका दर्शन करके ॥३०॥

प्रेमार्णवेऽगाधतरे तदानीं सर्वे ममज्जुः सुचिरं समागताः ।
पुनस्तु सञ्ज्ञां प्रतिलभ्य हर्षितोऽदाद्वेदरत्नस्रजमब्जसम्भवः ॥३१॥

उस समय सबके सब आये हुये अत्यन्त अगाध प्रेमरूपी सागरमें बहुत देरके लिये डूब गये। उसके पश्चात् अपनी सुधिको पाकर श्रीब्रह्माजीने वेद-रूपी रत्नोंकी माला हर्षपूर्वक श्रीकिशोरीजीकी सेवामें अर्पण की ॥३१॥

वाणी तथा गीतविभेदपङ्कजस्रजं ह्यदात्प्रीतिनिमग्नचेतसा ।
तेनेयमम्भोजमुखी व्यशोभत प्रोद्यद्दिनेशाभमुखी मृदुस्मिता ॥३२॥

तब गीतोंके प्रभेद रूपी कमलके फूलोंकी मालाको प्रेममें डूबे हुए चित्तसे श्रीसरस्वतीजीने श्रीकिशोरीजीको अर्पण की, जिसके धारण कराने पर ये मृदुमुस्कान वाली कमलमुखी श्रीकिशोरीजी उदय कालके सूर्यके समान मुख वाली हो विशेष शोभित हुईं ॥३२॥

विष्णुस्तदा समुत्थाय वेदतन्तुमयाम्बरम् ।
प्रादादस्यै महाभागः श्रियै श्रीः श्रीमणिस्रजम् ॥३३॥

तब महाभाग्यशाली श्रीभगवान् विष्णु उठ करके वेद-तन्तु मय वस्त्र (चादर) इन श्री (किशोरी) जीको अर्पण किये और श्रीलक्ष्मीजीने वैभव व शोभारूपी मणियोंकी माला इन श्री (किशोरी) जीको अर्पण की ॥३३॥

सदाशिवो नृत्यविभेदपङ्कजैः संशोभितं हारमदाद्धरित्प्रभम् ।
उमाऽपि देवी महताऽऽदरेण वै वासांसि नित्याभिनवान्यदान्मुदा ॥३४॥

भगवान् श्रीसदाशिवजीने नृत्यके प्रभेदरूपी कमलोंसे सुशोभित हरे प्रकाश वाले हारको समर्पण किया और देवी श्रीउमाजीने भी परम आदर-पूर्वक मुदित हो श्रीकिशोरीजीको नित्य नवीन रहने वाले वस्त्रोंको समर्पण किया ॥३४॥

प्रादात्सूर्यस्त्विषामीशः सूर्यकान्तमणिस्रजम् ।
अस्यै सोमस्तथा प्रीत्या चन्द्रकान्तमणिस्रजम् ॥३५॥

उस समय भगवान् सूर्यने सूर्यकान्तमणिकी माला और चन्द्रदेवजीने चन्द्रकान्तमणिकी माला श्रीकिशोरीजीको प्रेमपूर्वक अर्पण की ॥३५॥

कामधेनुः स्तनं प्रादात्सुधाक्षीरयुतं मुखे।
वारिमणिमयी माला वरुणेन तदाऽर्पिता ॥३६॥

कामधेनु गौने अपना सुधा (अमृत) के समान गुणकारी तथा स्वादिष्ट दुग्धसे युक्त स्तन श्रीकिशोरीजीके मुखमें दिया और वारिमणिकी माला श्रीवरुणजीने समर्पण की ॥३६॥

आगता ये च ते सर्वे ददुर्देयं स्वशक्तितः।
पुनः षष्ठ्युत्सवं द्रष्टुं बभूवुस्ते तदोद्यताः ॥३७॥

हे प्यारे! कहाँ तक कहा जाय? जो-जो उस उत्सवमें पधारे, उन सबों ने ही अपनी २ योग्यतानुसार भेंट श्रीकिशोरीजीकी सेवामें समर्पण की। पुनः उस छट्ठीके उत्सवको देखनेमें उद्यत हो गये ॥३७॥

तस्मिन्महोत्सवे पुण्ये राजा सीरध्वजाभिधः।
जाताह्लादस्तदा दानं विप्रेभ्यः समदापयत् ॥३८॥

उस समय उस पवित्र उत्सवमें श्रीसीरध्वज महाराजने आनन्दित होकर ब्राह्मणों को दान देना आरम्भ किया ॥३८॥

तत्समीक्ष्येति भीर्जाता सर्वेषां हृदि दुस्छिदा।
विदेहत्वं गतो राजा विदेहोऽथ न संशयः ॥३९॥

यह देखकर सभीके हृदयमें यह अनिवार्य भय उत्पन्न हो गया कि श्रीविदेहजी महाराज इस समय निस्सन्देह विदेह अवस्थाको प्राप्त हो गये हैं अर्थात् इन्हें इस समय अपने देहकी कुछ भी सुधि बुधि नहीं है ॥३९॥

द्रव्यप्रदानं तु यदैव कर्तुं समुद्यतो राजमणिस्तदानीम्।
भिया समादाय रमां रमेशः क्षीरोदधिं प्राविशदाशु देवः ॥४०॥

अतः जिस समय उन राजशिरोमणिने द्रव्यका दान करना आरम्भ किया, उसी समय श्रीलक्ष्मीजीको भी दान कर देनेके भयसे श्रीलक्ष्मीनाथजी अपनी श्रीलक्ष्मीजीको लेकर क्षीरसागरमें शीघ्र प्रवेश कर गये ॥४०॥

गजप्रदानं समुदीक्ष्य शक्रस्त्रिविष्टपं शीघ्रतया विवेश।
ऐरावतोऽसौ सुरलोकगोप्ता प्रशंसयंश्चापि मुहुर्मुहुस्तम् ॥४१॥

जब हाथियोंका दान आरम्भ हुआ तब देवलोककी रक्षा करने वाले इन्द्रदेव अपने ऐरावत

हाथीके दान हो जानेके भयसे उसके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रशंसा करते हुये अतिशीघ्र देवलोकमें प्रवेश कर गये ॥४१॥

गौरीपतिर्वीक्ष्य गवां प्रदानं कैलाशशृङ्गं सवृषो विवेश ।
दानं समालोक्य विहङ्गमानां ब्रह्मा सहंसोऽगमदात्मधाम ॥४२॥

भगवान् गौरीपति, सदाशिवजी गौओंका दान प्रारम्भ किये हुये देखकर अपने वृषभके दान हो जानेकी आशङ्कासे अपने वृषभके सहित उसी समय कैलाशके शिखर पर चले गये और पक्षियोंका दान होते देखकर अपने हंसके दान होजानेके भयसे हंसके समेत श्रीब्रह्माजी तत्क्षण अपने ब्रह्मलोक चले गये ॥४२॥

कोशप्रदानं समुदीक्ष्य तस्याविशत्कुबेरो ह्यलकापुरीं स्वाम् ।
अस्याः क्षमां वीक्ष्य धराऽचलाऽभूद्विसञ्ज्ञयाऽद्यापि न स प्रबुध्यते ॥४३॥

श्रीमिथिलेशजी-महाराजको कोष (खजाने) का दान करते हुये देखकर कुबेरने अपने कोषको दानकर देनेके भयसे अपनी अलका पुरीमें प्रवेश किया, श्रीकिशोरीजीकी क्षमाको देखकर पृथिवी मूर्छा वश अचल हो गयी सो आज तक सावधान नहीं हो पाती है ॥४३॥

कदापि यह्येव तु याति सञ्ज्ञां स्मृत्वा क्षमां सा पुनरात्मजायाः ।
विगाढभावेन विकम्पते च तदेव भूकम्प इहोच्यते वै ॥४४॥

और जब कभी सावधानताको प्राप्त होती है तब वह पुनः अपनी श्रीललीजीकीक्षमाको स्मरण करके अत्यन्त गाढ़ भावसे कँपने लगती है उसीको इस लोकमें भूकम्प कहा जाता है ॥४४॥

अस्याः शरीराङ्गरुचा विलज्जिता सौदामिनीमामभिवीक्ष्य मैथिलीम् ।
संस्थीयतेऽद्यापि तया न वै क्षणं स्वमानगुप्त्यै चपलाभिधानया ॥४५॥

इन श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूका दर्शन करके इनके श्रीअङ्गकी कान्तिसे विजुली लज्जित हो गयी अतः वह अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिये अभीतक क्षण मात्र भी स्थित नहीं होती, जिसके कारण इसका नाम चपला पड़ गया है ॥४५॥

सुधाकरो वीक्ष्य नखावलिप्रभां श्रीस्वामिनीश्रीचरणारविन्दयोः ।
हतात्मदर्पस्तु स चिन्तया तया क्षयं रुजं प्राप्य कलाक्षयोऽभवत् ॥४५॥

श्रीस्वामिनीजूके श्रीचरणकमलोंकी नख पङ्क्तिके प्रकाशका दर्शन करके चन्द्रदेवका भी

अभिमान नष्ट हो गया, अतः उसने अपने मान हानिकी महती चिन्तासे क्षय रोग को पाकर अपना नाम "कलाक्षय" रखवा लिया ॥४६॥

नखाग्ररूपेण हरोरुभाले निजां स्थितिं प्राप्य पुनः प्रहृष्टः ।
मेनेऽक्षिसाफल्यमवेक्ष्य कामं माधुर्यमस्याः परमाद्भुतं तत् ॥४७॥

पुनः श्रीकिशोरीजीके नखके अग्र भागके आकारमें भगवान् सदाशिवजीके विशाल भालमें अपनी स्थिति पाकर श्रीकिशोरीजीके उस परम आश्चर्यमय माधुर्यका इच्छानुसार दर्शन करके वे अपने नेत्रोंको सफल मानते हुये ॥४७॥

स्रग्वस्त्रभूषासमलङ्कृतानां प्रारम्भितं भोजनमेव यर्हि ।
देवैः सुलुब्धैर्नररूपमेत्य कृतं सुधाभोजनमेव मर्त्यैः ॥४८॥

पुनः वस्त्र भूषण मालाओंसे विभूषित जब सभी लोगोंका भोजन प्रारम्भ हुआ तब लोभी देवगण मनुष्यरूप धारण करके मनुष्योंके साथ ही अमृतके समान स्वादिष्ट भोजन करने लगे ४८

प्रशंसयन्तः किल भाग्यगौरवं स्वं स्वं कृपाजं दुहितुर्धरापतेः ।
आनन्दमापुस्त्रिदशा यमक्षयं शक्ष्यन्ति तेषां हृदयानि वेदितुम् ॥४९॥

पुनः श्रीकिशोरीजीकी कृपाजन्य अपने २ भाग्यकी गुरुताकी प्रशंसा करते हुये वे देव-गण जिस सुखको प्राप्त हुये उसे उनके हृदय ही जान सकते हैं ॥४९॥

हरोऽधरोच्छिष्टमथैत्य विह्वलः कथञ्चिदस्या भगवाँस्त्रिलोचनः ।
ननर्त चोन्मत्त इवान्तकान्तको दृग्गोचरोऽसौ प्रिय ! सर्वदेहिनाम् ॥५०॥

हे प्यारे ! भक्त दुख हारी त्रिलोचन सदाशिव भगवान् किसी युक्तिसे श्रीकिशोरीजीकी अधरोच्छिष्ट प्रसादी पाकर विह्वल होगये, पुनः कालके भी काल वे उन्मत्त (पागल) के समान सभी प्राणियोंके सामने अपने, प्रधानरूपसे ही नृत्य करने लगे ॥५०॥

तस्मात्तु सर्वे चकिता इवाभवन् भक्त्या प्रणेमुः पुनरम्बिकापतिम् ।
नमत्सु तेषु प्रयताञ्जलीष्वसौ तिरोदधे लब्धतनुस्मृतिर्द्रुतम् ॥५१॥

अतः सबके सब आश्चर्य युक्त होकर श्रद्धा व प्रेम-पूर्वक श्रीपार्वतीवल्लभजीको प्रणाम करने लगे । उन सबोंके हाथ जोड़कर प्रणाम करते ही भगवान् शिवजी सावधान हो तत्क्षण अन्तर्धान हो गये ॥ ५१ ॥

ततः समासाद्य सुभोजनान्ते ताम्बूलवीटीं परमादरेण ।
श्रीमौक्तिकागारगता विरेजुस्त्वां सर्वमध्ये सनृपं निवेश्य ॥५२॥

सुन्दर भोजनके बाद परम आदर पूर्वक पानकी बीरी पाकर मौक्तिकागार (मोतिमहल) में प्राप्त हो श्रीचक्रवर्तीजीके सहित आपको सबके मध्यमें विराजमान करके सभी विराजमान हुये ५२

राजा परानन्दनिमग्नचित्तः श्रीमौक्तिकागारमनुप्रविश्य ।
नृपोपविष्टं सहानुजैः परीतं त्वामीक्ष्य कामं कृतकृत्य आस ॥५३॥

परम आनन्दमें डूबे हुये चित्तसे श्रीमिथिलेशजी महाराज मौक्तिकागारमें जाकर श्रीदशरथजी महाराजके पासअपने भाइयोंके सहित बैठे हुये आपका भर इच्छा दर्शन करके,कृतकृत्य होगये ५३

पुनस्तु सत्कारविधिं च शेषं विधाय भक्त्या समुपस्थितानाम् ।
सम्प्रार्थितः प्रीतियुतैश्च तेषां विसर्जनं चारुयशाश्चकार ॥५४॥

पुनः उपस्थित लोगोंका प्रेमपूर्वक शेष सत्कार पूरा करके, सभी प्रेमियोंके प्रार्थना करने पर सुन्दर यशसे युक्त श्रीमिथिलेशजी महाराजने उनको विदा किया ॥५४॥

सहानुजैस्त्वामुरसा निगूह्य मुहुर्मुहुस्तुल्यवयः स्वरूपैः ।
आघ्रातभालो भवतां विदेहो बाष्पेक्षणस्तूर्विपतेर्विसृष्टः ॥५५॥

अवस्था और रूपमें तुल्य भाइयोंके सहित आपको हृदयसे लगाकर व आप चारो भाइयोंके मस्तकको सूँघकर श्रीविदेहजी महाराजके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे लबालब भर गये, पुनः वे श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके द्वारा विदा किये हुये ॥५५॥

विवेश हृष्टो भवनं स्वकीयं यत्रेयमम्बाङ्कविभूषणाऽऽसीत् ।
विप्रर्षिभूपादय एवमेव स्वं स्वं निवासं मुदिताश्च जग्मुः ॥५६॥

इति चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अपने भवनमें प्रवेश किये, जहाँ पर ये श्रीअम्बाजीकी गोदकी भूषण स्वरूपा श्रीकिशोरीजी उपस्थित थीं, इसी प्रकार वे सभी ब्राह्मण ऋषि, भूपगण आनन्द पूर्वक अपने अपने निवास स्थानको चले गये ॥५६॥

अथ पञ्चत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३५॥

श्रीचन्द्रकला जन्म तथा उनके द्वारा श्रीकिशोरीजीका ही आदि दर्शन
व आदि प्रसाद-ग्रहण लीला।

श्रीस्नेहपरोवाच।

वैशाखस्य चतुर्दश्यां चन्द्रभानुनिवेशने।
जज्ञे चन्द्रकला नाम्नी पुत्री परमसुन्दरी ॥१॥

वैशाख शुक्ला चतुर्दशीको श्रीचन्द्रभानु महाराजके महलमें श्रीचन्द्रकला नामकी परमसुन्दरी पुत्रीने जन्म ग्रहण किया ॥१॥

न च सोन्मीलयामास लोचनेऽपि कथञ्चन।
तदाऽऽसीन्महती चिन्ता किमर्थमिति वीक्ष्य ताम् ॥२॥

वे किसी प्रकारसे भी अपने नेत्र नहीं खोलती हुईं अतः उनको देखकर बड़ी भारी चिन्ता उत्पन्न हो गयी कि आँखें किस लिये नहीं खोलती है ॥२॥

शतानन्दो महातेजा ध्यानयोगेन योगिराट्।
अनुभूतं तदा भावं व्यञ्जयामास वै शिशोः ॥३॥

महातेजस्वी योगिराज श्रीशतानन्दजी-महाराज ध्यान योगके द्वारा उस शिशुका अनुभव किया हुआ भाव प्रकट करने लगे ॥३॥

श्रीशतानन्दउवाच।

सर्वेश्वरी महाभाग! यज्ञवेदिसमुद्भवा।
तस्याः सहचरीयं ते समुत्पन्ना निकेतने ॥४॥

हे महाभाग्यशाली! श्रीसर्वेश्वरीजी यज्ञवेदीसे प्रकट हुई हैं, उन्हींकी इन सहचरीजूने आपके [illegible]नमें जन्म ग्रहण किया है ॥४॥

तदादिदर्शनं तस्या इयं राजंश्चिकीर्षति।
तदुच्छिष्टपयः पानं हेतुरन्यो न विद्यते ॥५॥

सो हे राजन्! यह प्रथम दर्शन उन्हीं सर्वेश्वरीजूका करना चाहती है और उन्हींका उच्छिष्ट (प्रसादी किया हुआ) दूध पीनेकी इच्छा करती है इसी लिये यह न आँख खोलती है और न दूध पीती हैं, अन्य कोई कारण नहीं है ॥५॥

महाराज्ञ्याः समाह्वानमतः कार्यमिह त्वया ।
शोभिताया धरापुत्र्या सच्चिदानन्दरूपया ॥६॥

अत एव आपको सत्, चित्, आनन्द स्वरूपा भूमिनन्दिनीजूसे सुशोभित श्रीसुनयना महारानीजीको अपने महल बुलाना चाहिये ॥६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमाज्ञापितः श्रीमान् गुरुणा तत्वदर्शिना ।
चन्द्रभानुस्तथेत्युक्तो नृपागारमुपागमत् ॥७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं हे प्यारे ! इस प्रकार तत्त्वदर्शी श्रीगुरुदेवजीकी आज्ञा पाकर श्रीमान् चन्द्रभानुजी महाराज उनसे ऐसा ही होगा कह कर श्रीमिथिलेशजी महाराजके महलमें गये ॥७॥

तत्र दृष्ट्वा समासीनं सुप्रसन्नेन्द्रियव्रजम् ।
मिथिलानायकं भक्त्या प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥८॥

वहाँ प्रसन्न इन्द्रिय गणोंसे युक्त, श्रीमिथिलेशजी महाराजको विराजमान देखकर उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥८॥

आतुरं तमभिज्ञाय सादरं विनयान्वितम् ।
पप्रच्छ कुशलं राजा स तदुत्तरमब्रवीत् ॥९॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज विनयसे युक्त उन श्रीचन्द्रभानुजीको व्याकुल जानकर उनसे आदर-पूर्वक कुशल समाचार पूछे, श्रीचन्द्रभानुजी उसका उत्तर बोले ॥९॥

श्रीचन्द्रभानुरुवाच ।

अद्य मेऽन्तः पुरे जाता पुत्री परमसुन्दरी ।
नोन्मीलयति सा नेत्रे गतचेष्टेव दृश्यते ॥१०॥

हे राजन् ! आज मेरे अन्तः पुरमें एक परमसुन्दर लालीका जन्म हुआ है किन्तु वह नेत्र खोलती ही नहीं है और चेष्टा रहित सी दिखाई दे रही है ॥१०॥

शतानन्दस्तु भगवानब्रवीदिति मे वचः ।
आनीयतां महाराज्ञी त्वयाऽयोनिजयाऽन्विता ॥११॥

भगवान् श्रीशतानन्दजी महाराजने मुझे यह आज्ञा प्रदानकी है कि श्रीअयोनिजाजूके सहित श्रीमहारानीजीको अपने महल ले आओ ॥११॥

यावन्नागमनं तस्या महाराज्ञ्या भवेदिह ।
न तावत्ते सुता नेत्रे राजन्नुन्मीलयिष्यति ॥१२॥

-क्योंकि जब तक यहां उन महारानीजीका शुभागमन नहीं होगा तब तक हे राजन् ! आपकी पुत्री अपने नेत्रोंको नहीं खोलेगी ॥१२॥

एवमुक्तस्तु वै तेन शतानन्देन धीमता ।
आगतोऽहं तदाख्यातुमातुरेणान्तरात्मना ॥१३॥

इस प्रकार उन बुद्धिमान् श्रीशतानन्दजी महाराजके समझाने पर, उस समाचारको निवेदन करनेके लिये मैं व्याकुल हृदयसे आपके पास आया हूं ॥१३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

चन्द्रभानूदितं श्रुत्वा महाराज्ञ्यै व्यसूचयत् ।
सकलं तत्तु वृत्तान्तं सखीमाहूय दक्षिकाम् ॥१४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीचन्द्रभानुजीका कहा हुआ वचन सुनकर अपनी दक्षिका सखीको बुलाकर पिताजीने सारे वृत्तान्तको श्रीसुनयना अम्बाजीसे सूचित करवाया ॥१४॥

समाख्यातं दक्षिकया समाचारं निशम्य सा ।
महाराज्ञी सुनयना प्रससाद भृशं तदा ॥१५॥

तब दक्षिकाजीके कहे हुये समाचारको सुनकर वे श्रीसुनयना महारानीजी बड़ी प्रसन्न हुईं १५

अथोवाच सखीं वाच्यश्चन्द्रभानुस्त्वयेत्यसौ ।
गम्यतां भवताऽऽगारं शीघ्रं राज्ञ्यागमिष्यति ॥१६॥

पुनः अपनी उस सखीसे बोलीं:-तुम चन्द्रभानुजीसे कह दो कि, आप अपने महल पधारें श्रीमहारानीजी शीघ्र ही आपके यहाँ पधारेंगी ॥१६॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमुक्ता तया प्रोक्तं सखी सा चन्द्रभानवे ।
श्रावयामास वचनं भद्री मधुरया गिरा ॥१७॥

उस सखीने श्रीअम्बाजीकी आज्ञा पाकर तथा विनम्र होकर उनके कहे हुये वचनोंको, मधुर वाणी द्वारा श्रीचन्द्रभानुजी महाराजको श्रवण कराया ॥१७॥

ततो भूपतिना साकं चन्द्रभानुर्महामनाः ।
आजगामालयं तेन नागयानेन मन्त्रिभिः ॥१८॥

उसके बाद महामना श्रीचन्द्रभानुजी महाराज मन्त्रियोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके साथ गजयान से अपने महल गये ॥१८॥

ददर्श पुत्रिकां तस्य विदेहकुलभूषणः ।
महामाधुर्यसम्पन्नां मीलिताक्षीं मनोहराम् ॥१९॥

विदेहकुलभूषण श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीचन्द्रभानुजीकी महामाधुर्यगुण सम्पन्ना मीचे हुये (बन्द) आँख वाली मनोहर पुत्रीको अवलोकन किया ॥१९॥

आजगाम तदा तत्र राज्ञी सुनयना शुचिः ।
सेव्यमाना वयस्याभिर्विधायोत्सङ्गगां सुताम् ॥२०॥

उसी समय भीतर-बाहरसे परम पवित्र, श्रीसुनयना महारानीजी श्रीकिशोरीजीको अपनी गोदमें लेकर सखियोंके द्वारा छत्र चमार आदिसे सेवित होती हुई, वहाँ आ गयीं ॥२०॥

तां तु सर्वा नमस्कृत्य स्वागतेनाभिनन्दिताम् ।
सख्यश्चन्द्रप्रभायाश्च बभूवुर्मुदिताननाः ॥२१॥

श्रीचन्द्रप्रभाअम्बाजीकी सभी सखियाँ स्वागतके द्वारा प्रसन्नकी हुई उन श्रीसुनयनाअम्बाजीको प्रणाम करके प्रसन्न मुख हो गयीं ॥२१॥

चकार सत्कृतिं तस्याश्चन्द्रभानुप्रियोचिताम् ।
तां प्रणम्योर्विजां वीक्ष्य जगाम कृतकृत्यताम् ॥२२॥

श्रीचन्द्रप्रभाअम्बाजी उन श्रीसुनयनाअम्बाजीका उचित सत्कार करती हुईं, पुनः उन्हें प्रणाम करके श्रीअवनिकुमारीजीका दर्शन कर वे कृतकृत्य हो गयीं ॥२२॥

ततः सा दर्शयामास तनयां मीलितेक्षणाम् ।
चन्द्रप्रभा महाराज्ञ्यै साक्षाल्लक्ष्मीस्वरूपिणीम् ॥२३॥

तत्पश्चात् श्रीचन्द्रप्रभाअम्बाजीने श्रीसुनयनाअम्बाजीको लक्ष्मीजीके समान रूप वाली, बन्द आँखोंसे युक्त अपनी पुत्रीको दिखलाया ॥२३॥

तामुदीक्ष्याङ्कतो मातुर्नतदेहा धरासुता ।
पस्पर्श पाणिपद्मेन शीतलेन मृदुस्मिता ॥२४॥

श्रीकिशोरीजी चन्द्रकलाजीको देखकर अपनी अम्बाजीकी गोदसे अपने शरीरको नीचे झुकाकर मृदुमुस्काती हुई अपने शीतल कर कमलसे उनका स्पर्श करती हुई ॥२४॥

तयाऽयोनिजया स्पृष्टा संप्रहृष्टतनूरुहा ।
चन्द्रभानुसुता सीतां दृष्ट्वाऽभून्नियतेक्षणा ॥२५॥

उन श्रीअयोनिजा (श्रीकिशोरीजीके) कर स्पर्श करते ही उस कन्या (श्रीचन्द्रकलाजीके) रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठे और वह श्रीकिशोरीजीका दर्शन करके एकटक नेत्र रह गयी अर्थात् पलक गिराना भी छोड दिया ॥२५॥

आरुरुक्षुर्महाराज्ञ्या अथोत्सङ्गमदृश्यत ।
सखीभिर्लोकयन्तीभिः पश्यन्ती भूमिजाननम् ॥२६॥

इसके बाद सखियोंने देखा कि, श्रीकिशोरीजीके मुखारविन्दका दर्शन करती हुई श्रीचन्द्रकलाजी श्रीसुनयना महारानीजीकी गोदमें चढ़नेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो रही हैं ॥२६॥

तत्समालोक्य ताः सर्वाश्चेष्टितं चकिताः स्थिताः ।
भूषिताङ्गयो विशालाक्ष्यः स्मयमानशुभाननाः ॥२७॥

सो वे भृङ्गार किये हुए अङ्गवाली सभी विशाल-लोचना व मुस्कान युक्त मङ्गलमुखी सखियाँ कन्याकी भली भाँति उस चेष्टाको देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गयीं ॥२७॥

महाराज्ञी सुनयना तामुत्थाप्य मुदान्विता ।
स्वाङ्कमारोपयामास मैथिल्या समलङ्कृतम् ॥२८॥

श्रीसुनयना अम्बाजी हर्ष पूर्वक उस कन्या (श्रीचन्द्रकलाजी) को उठाकर श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू के द्वारा सुशोभितकी हुई, अपनी गोदमें ले लेती हुईं ॥२८॥

वामेतरस्तनं तस्या ददौ चन्द्रनिभानने ।
तन्न जग्राह वक्त्रेण करेणैव न्यवारयत् ॥२९॥

और उनके चन्द्रमाके तुल्य आह्लाद कारक मुखारविन्दमें पीनेके लिये अपना दाहिना स्तन देती हुईं किन्तु वे (श्रीचन्द्रकलाजी) उसे अपने मुखसे नहीं ग्रहण किये, बल्कि हाथसे ही हटा दिये २९

मैथिलीं दक्षिणाङ्के च कृत्वा तां दक्षिणेतरे ।
आशुपीतं स्तनं तस्याः पुनः प्रादान्मुखाम्बुजे ॥३०॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीकिशोरीजीको अपनी दाहिनी गोदमें और उन (चन्द्रकलाजी) को बाईं गोदमें करके श्रीकिशोरीजीका तुरतका पिया हुआ स्तन, उनके मुखारविन्दमें पुनः देती हुई ॥३०॥

तत्प्रहृष्टमुखी दोर्भ्यां गृहीत्वोत्कण्ठिताऽपिवत् ।
पश्यन्तीनां च नारीणां वर्द्धयन्ती कुतूहलम् ॥३१॥

उस स्तनको बड़े प्रसन्न मुख होकर अपने दोनों हाथोंसे पकड़ करके, देखती हुई सभी सखियोंके कौतूहल (आश्चर्य) को बढ़ाती हुई वे उत्कण्ठा पूर्वक पीने लगीं ॥३१॥

ततश्चन्द्रप्रभा दोर्भ्यां मैथिलीं मातुरङ्कतः ।
गृहीत्वा स्थापयामास निजोत्सङ्गे समुत्सुका ॥३२॥

श्रीचन्द्रप्रभा अम्बाजी उत्सुक होकर अपने दोनों हाथोंसे श्रीमिथिलेशदुलारीजूको श्रीसुनयना अम्बाजीकी गोदसे लेकर अपनी गोदमें बैठा लिये ॥३२॥

वस्त्रमन्तरतः कृत्वा पयः पानमकारयत् ।
पश्यन्ती तन्मुखं मुग्धा शरच्चन्द्रमनोहरम् ॥३३॥

और शरत् ऋतुके पूर्णचन्द्रके भी मनको हरण करने वाले श्रीकिशोरीजीके मुखारविन्दका दर्शन करती हुई वे मुग्ध हो वस्त्र ओट करके पय (दूध) पान कराने लगीं ॥३३॥

सुताभावपरीक्षार्थमङ्कमारोप्य तां पुनः ।
प्रादान्मुखे स्तनं तस्याः पश्यन्तीनां मृगीदृशाम् ॥३४॥

पुनः अपनी पुत्रीके भावकी परीक्षाके लिये उसे अपनी गोदमें लेकर मृगलोचना सखियोंके देखते हुये अपना स्तन उसके मुखमें देती हुईं ॥३४॥

सा पपौ परया प्रीत्या स्तन्यं चन्द्रनिभानना ।
तद्विलोक्य गता चिन्ता पुरोत्पन्ना बलीयसी ॥३५॥

वे चन्द्रके समान मुखवाली श्रीचन्द्रकलाजी, प्रेम पूर्वक स्तनपान करने लगीं, सो देखकर पूर्वकी अत्यन्त बलवती उत्पन्न, चिन्ता निवृत्त हो गयी ॥३५॥

महानन्दोत्सवो जातश्चन्द्रभानोर्निवेशने ।
पिबन्त्यां स्तन्यमौरस्यां सुतायां मानुरात्मदः ॥३६॥

उस अपनी औरसी पुत्री (श्रीचन्द्रकलाजी) के स्तनपान करने पर श्रीचन्द्रभानुजी महाराजके द्वारा महलमें आत्मदान देनेवाला महान् आनन्दोत्सव होने लगा ॥ ३६ ॥

सत्कृता विधिना राज्ञी विनयेन तया मुदा ।
जगाम स्वालयं भक्त्या वन्दिता चन्द्रभानुना ॥३७॥

पुनः श्रीचन्द्रप्रभा महारानीजी के द्वारा विनयपूर्वक सत्कृत होकर व श्रीचन्द्रभानु महाराजकी प्रेम पूर्वक प्रणाम की हुई श्रीसुनयना अम्बाजी अपने महलको चली गयीं ॥ ३७ ॥

लग्ने धने चन्द्रदिनेऽथ चित्राभे माधवे मासि च पूर्णिमायाम् ।
श्रीचारुशीलाऽम्बुजपत्रनेत्र ! जाता ततः शत्रुजितो मनोज्ञा ॥३८॥

हे कमलदललोचन ! वैशाखकी पूर्णिमामें चित्रा नक्षत्र सोमवारके दिन, धनलग्नमें श्रीशत्रुजित् महाराजसे मनोहरा श्रीचारुशीलाजीने जन्म ग्रहण किया ॥ ३८ ॥

श्रीलक्ष्मणा भौमदिने प्रजाता ज्येष्ठेऽसिते मे श्रवणे च मेषे ।
लग्ने यशः शालिन इन्दुवक्त्रा तिथौ वसौ शोभनलक्षणाढ्या ॥३९॥

ज्येष्ठकी कृष्णा अष्टमीको मङ्गलके दिन, श्रवण नक्षत्र और मेषलग्नमें श्रीयशःशालीजीसे चन्द्रमाके समान मुखवाली शुभ लक्षणोंसे युक्ता, श्रीलक्ष्मणाजीने जन्म ग्रहण किया ॥३९॥

लग्ने च सिंहे शशिवासरेऽथ हेमा सुताऽभूदरिमर्दनस्य ।
विद्याविनीता प्रिय ! रेवतीभे आषाढशुक्लानवमीतिथौ च ॥४०॥

हे प्यारे ! आषाढशुक्ला नवमीको सिंह लग्न, सोमवारके दिन, रेवती नक्षत्रमें श्रीअरिमर्दनजी महाराजके विद्याविनीता, श्रीहेमाजी पुत्री हुई ॥ ४० ॥

क्षेमा प्रजाता रिपुतापनस्य पुत्री शुभे श्रावणिके सुमासे ।
वसौ तिथौ शुक्लदले विशाखभे मीनलग्ने विधुवासरे च ॥४१॥

सुन्दर श्रावणके मासमें शुक्लपक्षमें अष्टमी तिथिको विशाखा नक्षत्र, मीनलग्न, चन्द्रवारके दिनमें श्रीरिपुतापनजी महाराजके श्रीक्षेमाजी नामकी पुत्रीने जन्म लिया ॥ ४१ ॥

भाद्रेऽसिते भानुदिने नवम्यां रोहा वरादिः चितिमङ्गलस्य ।
जज्ञे सुता वल्लभ ! मेपलग्ने सा पूर्वभाद्रस्य पदे शुभे मे ॥४२॥

हे वल्लभजू ! भादों कृष्णा नवमीमें रविवारके दिन पूर्वभाद्रपद नक्षत्र और मेषलग्नमें श्री महीमङ्गलजी महाराजके यहाँ श्रीवरारोहाजी जन्म लिये ॥ ४२ ॥

श्रीपद्मगन्धाऽऽश्विनशुक्लपक्षे तिथावृषौ श्रेष्ठ ! बलाकरस्य ।
जज्ञे गुरौ कामद ! मीनलग्नेऽसौ पूर्वभाद्रस्य पदे शुभर्क्षे ॥४३॥

हे श्रेष्ठ ! हे कामद ! आश्विनशुक्ला सप्तमी तिथिमें मीनलग्न, पूर्वभाद्रपद नक्षत्र और बृहस्पतिवारको श्रीवलाकरजीके यहाँ श्रीपद्मगन्धाजीका जन्म हुआ ॥४३॥

लग्ने वृषे चन्द्रदिने नवम्यां सा मार्गशीर्षे सितपक्षके च ।
प्रतापनस्य प्रिय ! सिद्धयोगे पुष्ये शुभे भे सुमंगा प्रजज्ञे ॥४४॥

हे प्यारे ! अगहनशुक्ला नवमी तिथिको पुष्य शुभ नक्षत्र, वृषलग्न और सोमवारके दिन, सिद्धयोगमें श्रीप्रतापनजी महाराजके महलमें सुभगाजीका जन्म हुआ ॥ ४४ ॥

प्रेमास्पदा त्वपत्यानामविच्छिन्नतया परा ।
बभूव मैथिली नित्यं जन्मतो निमिवंशिनाम् ॥४५॥

सभी निमिवंशी लोगोंकी पुत्री और पुत्रोंकी जन्मसे ही तैल धारावत् अटूट, नित्य परम प्रेमास्पदा श्रीमिथिलेशदुलारीजी हुई हैं ॥४५॥

मैथिलीजन्मवारे हि श्रीकुशध्वजवेश्मनि ।
माण्डवीसुनिधी जातौ श्रुतिकीर्त्तिनिधानकौ ॥४६॥

श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके जन्मके ही दिन, श्रीकुशध्वज महाराजके महलमें श्रीमाण्डवी व सुनिधिजी और श्रीश्रुतिकीर्त्ति व निधानकजी बहिन भाईयोंका जन्म हुआ ॥ ४६ ॥

दारात्मजाऽमेयविभूतियुक्तो योगेश्वरो ज्ञानविरागराशिः ।
अशेषसिद्धीशपदाधिकारी भूत्वाऽपि मुक्तिर्न कृपां विनाऽस्याः ॥४७॥

इति पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

स्त्री, पुत्र आदि अनन्त ऐश्वर्यसे युक्त, ज्ञान वैराग्यकी राशिस्वरूप, योगेश्वर, सम्पूर्ण सिद्धियों के स्वामीके पदका अधिकारी, कोई भलेही क्यों न हो जावे, किन्तु बिना इन श्रीकिशोरीजीके भजन किये हुए, शान्ति नहीं मिल सकती ॥ ४७ ॥

अथ षट्त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३६॥

श्रीचन्द्रकलाजीका सर्वेश्वरी पद प्राप्ति।

श्रीसूत उवाच।

इत्थं चन्द्रकलायाश्च भक्तिभावं निशम्य सा।
कात्यायनी सपुलकं याज्ञवल्क्यं वचोऽब्रवीत् ॥१॥

श्रीसूतजी बोले-हे शौनक आदि महर्षियों! इस प्रकारसे श्रीचन्द्रकलाजीके भक्ति भावको श्रवण करके श्रीकात्यायनीजी श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराजसे पुलकयुक्त (गद् गद्) वचन बोलीं ॥१॥

श्रीकात्यायन्युवाच।

सर्वेश्वरीपदं लब्धं तया प्रोक्तं त्वयैकदा।
तद्रहस्यमुपाख्याहि भगवन्! मे दयापरः ॥२॥

हे दयाप्रधान भगवन्! आपने एक समयमें कहा था कि, श्रीचन्द्रकलाजीको सर्वेश्वरी पद प्राप्त है, अतः उस (सर्वेश्वरी पद प्राप्ति) के रहस्यको आप कथन कीजिये ॥ २ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

साधु पृष्टं त्वया देवि! रहस्यं परमाद्भुतम्।
भवत्याः श्रद्धया तुष्टो गुह्य ते तद्वदाम्यहम् ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे देवि! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया, मैं आपकी श्रद्धासे प्रसन्न हूँ, अतः उस परम आश्चर्यमय गुप्त रहस्यको आपसे वर्णन करता हूँ ॥ ३ ॥

कैलाशशिखरे रम्ये समासीना शिवैकदा।
विरतध्यानयोगस्य शिवस्य मुखपङ्कजात् ॥४॥
सर्वेश्वरी! चन्द्रकले! प्रसीदेति शुभं वचः।
समाश्रुत्य मुहुर्देवी विस्मयं परमं गता ॥५॥

एक समय श्रीपार्वतीजी कैलाशके परम सुन्दर शिखरपर विराजमान हुईं, ध्यानयोगसे निवृत्त हुये, भगवान् शिवजीके मुख कमलसे ॥ ४ ॥ हे सर्वेश्वरी! हे श्रीचन्द्रकले! मुझपर प्रसन्न हूजिये, यह शुभ वचन बारम्बार श्रवण करके देवी परम आश्चर्यको प्राप्त हुईं ॥ ५ ॥

अपृच्छत्प्रणता देवं पार्वती पतिदेवता ।
सर्वेश्वरी चन्द्रकला किमर्थं गीयते त्वया ॥६॥

अतः वे पतिदेवता श्रीगिरिराज कुमारीजीने श्रीभोलेनाथजीको प्रणाम करके उनसे पूछा-हे नाथ! आप श्रीचन्द्रकलाजीको सर्वेश्वरी क्यों कह रहे हैं? ॥ ६ ॥

रहस्यं यदिवा गुह्यं किमप्यत्र भवेत्किल ।
समाख्यातुं हि मे नाथ ! तदिदानीं कृपां कुरु ॥७॥

हे नाथ! अथवा यदि इस विषयमें कोई छिपाने योग्य ही रहस्य हो, तो भी इस समय आप मुझसे कहने की कृपा करें ॥ ७ ॥

श्रीशिव वाच ।

यथा भरतशत्रुघ्नलक्ष्मणैर्भ्रातृभिस्त्रिभिः ।
पूर्णं परात्परं ब्रह्म श्रीरामः कथ्यते बुधैः ॥८॥

भगवान् शिवजी बोले-हे पार्वती! जैसे श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण, श्रीशत्रुघ्न इन तीन भाइयोंसे युक्त श्रीरामजी सरकारको बुधजन पूर्णपरात्परब्रह्म कहते हैं ॥ ८ ॥

लक्ष्मणासुभगाचन्द्रकलाभिः स्वसृभिस्त्रिभिः ।
पूर्णं परात्परं ब्रह्म श्रीसीताऽपि तथोच्यते ॥९॥

उसी प्रकार श्रीलक्ष्मणाजी, सुभगाजी, श्रीचन्द्रकलाजी इन तीनों बहिनियोंसे युक्ता, श्रीकिशोरीजी पूर्ण परात्परब्रह्म कहलाती हैं ॥ ९ ॥

निर्गुणं तन्निराकारं निरीहं सच्चिदात्मकम् ।
अखण्डं नित्यमजडं निराधारं निरञ्जनम् ॥१०॥

वह गुणातीत आकार रहित, चेष्टाशून्य, सदा एक रस रहनेवाला, चैतन्यस्वरूप, खण्ड रहित, नित्य, आधार रहित, मायिक विकारोंसे अछूता, पूर्ण परात्पर ब्रह्म ॥ १० ॥

इत्थं विशेषणीभूतं श्रीसीतारामविग्रहम् ।
उभयात्मकं चिद्ब्रह्म नित्यानन्दमयं परम् ॥११॥

इस प्रकारके विशेषणोंसे युक्त, श्रीसीताराम युगल मङ्गलमय विग्रहवान्, परमनित्य, आनन्दमय, चिद्ब्रह्मने ॥ ११ ॥

स्वाश्रितानन्दसिद्धयर्थं विशेषेण निजांशतः ।
दिव्यरूपां सखीमेकां जनयामास सुन्दरीम् ॥१२॥

अपने आश्रितोंके आनन्दकी सिद्धिके लिये अपने अंशसे, विशेष करके दिव्यरूप सम्पन्ना, एक सुन्दर सखी को उत्पन्न किया ॥ १२ ॥

तन्नामकरणं प्रीत्या कर्तुमारभतादरात् ।
उभाभ्यामेव रूपाभ्यां परब्रह्म सनातनम् ॥१३॥

पुनः उन सनातन परब्रह्मने अपने दोनों रूपोंके द्वारा प्रेमपूर्वक आदर सहित उसका नामकरण करना आरम्भ किया ॥ १३ ॥

आदौ श्रीरामचन्द्रोऽसौ स्वनाम्नोऽन्तं पदं जगौ ।
द्वितीयं मैथिली प्राह कलेति पदमुत्तमम् ॥१४॥

प्रथम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने नामका अन्तिमपद "चन्द्र" कहा, श्रीकिशोरीजी उसे अपनी कला स्वरूपा मानकर द्वितीय "कला" इस उत्तमपदका उच्चारण करती हुईं ॥१४॥

पुनर्निवेशयामास स्वकलां शक्तिरूपिणीम् ।
तस्याममेयरूपायां रामो ह्लादगुणं च सः ॥१५॥

पुनः उस असीम रूपा सखीमें श्रीकिशोरीजीने अपनी शक्तिरूपा कलाको निवेशित किया और श्रीरामजीने अपने आह्लाद गुणको ॥ १५ ॥

मदीयेति सखी प्रीत्या विवदन्तौ प्रणम्य सा ।
उवाच स्निग्धया वाचा दम्पती हृदयङ्गमौ ॥१६॥

तदनन्तर दोनों सरकार प्रेम पूर्वक विवाद करते हुये कहने लगे कि:-, यह सखी तो हमारी है, नहीं यह तो हमारी है, तब वह सखी श्रीचन्द्रकला बड़ी ही स्निग्धवाणी द्वारा, हृदयमें विराजमान उन दोनों सरकारसे बोलीं ॥ १६ ॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

अहं निरपक्षभावेन युवयोरेव किङ्करी ।
आज्ञानुवर्तिनी दासी सखी सेवापरायणा ॥१७॥

हे श्रीयुगल सरकार ! मैं निष्पक्ष भावसे आप दोनों ही सरकारकी किङ्करी आज्ञानुसार चलने वाली दासी और सेवापरायणा सखी हूँ ॥ १७ ॥

युवयोरंशसम्भूता युवाभ्यां प्रकटीकृता ।
सङ्कल्पविहितानन्तलोकालयभवाप्ययौ ! ॥१८॥

क्योंकि हे सङ्कल्पमात्रसे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले श्रीयुगल सरकार ! मैं आप दोनों ही सरकारके अंशसे जायमान और आप दोनों सरकारकी ही उत्पन्न की हुई हूँ ॥ १८ ॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तं वचः श्रुत्वा तस्यास्तौ सुषमानिधी ।
ओमित्यूचतुः प्रेम्णा मन्दस्मेरमुखाम्बुजौ ॥१९॥

भगवान् शिवजी बोले—हे गिरिराज कुमारी ! उस सखीके इस प्रकारके वचनोंको सुनकर उन अत्यन्त असीम शोभाकी राशि श्रीयुगल सरकारका मुखारविन्द, मन्द मुस्कानसे युक्त हो गया, अतः वे प्रेमपूर्वक बोले—अरी सखी ! बात तो ऐसी ही है ॥ १९ ॥

तया तयोः सुखाम्भोधितरङ्गवृद्धिसिद्धये ।
वयस्ये द्वे मनोज्ञाङ्ग्यौ द्रुतमुत्पादिते शुभे ॥२०॥

उन श्रीचन्द्रकलाजी ने श्रीयुगल सरकारके सुख सिन्धुकी तरङ्गोंकी वृद्धिके लिये तत्क्षण दो मनोहर सखियोंको प्रकट कर लिया ॥ २० ॥

तयोर्लक्षणसम्भूता लक्ष्मणेति प्रभाषिता ।
सौभगांशसमुद्भूता सुभगेति प्रकीर्त्तिता ॥२१॥

जो सखी दोनों सरकारके लक्षणोंसे प्रकटकी गयी, उसका नाम श्रीलक्ष्मणाजी और जो दोनों के सुभगताके अंशसे प्रकट हुई, उसका नाम श्रीसुभगाजी कहा गया ॥ २१ ॥

सख्यश्चैकैकयोत्पन्ना वयस्यानां तदा तयोः ।
चारुशीलोर्मिलादीनां भावितानां च कोटिशः ॥२२॥

तब श्रीलक्ष्मणाजी व सुभगाजीकी उत्पन्नकी हुई, श्रीचारुशीला व श्रीउर्मिलाजी आदि मुख्य सखियों में से एक २ से, करोड़ २ सखियाँ उत्पन्न हो गयी ॥ २२ ॥

ता वै हृदयभावज्ञाः प्रेमाम्भोमीनवृत्तिकाः ।
शशंसतुः प्रियौ वीक्ष्य प्रहृष्टां चन्द्रकलां सखीम् ॥२३॥

हृदयके भावको समझनेवाली, प्रेमरूपी जलके लिये मछलीके समान वृत्तिवाली उन प्रकट की हुई सभी सखियोंको अवलोकन करके श्रीयुगल सरकार दिव्यप्रभाव सम्पन्ना श्रीचन्द्रकला सखीजीसे बोले ॥ २३ ॥

श्रीसीतारामावूचतु ।

चन्द्रा चन्द्रकला ज्येष्ठा पूज्या ध्येयेष्टदा वरा ।
सर्वेश्वरी ध्यानगम्या आचार्यका च देशिका ॥२४॥

श्रीचन्द्राजी, श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीज्येष्ठाजी, श्रीपूज्याजी, श्रीध्येयाजी, श्रीइष्टदाजी, श्रीवराजी, श्रीसर्वेश्वरीजी, श्रीध्यानगम्याजी, श्रीआचार्याजी, श्रीदेशिकाजी ॥ २४ ॥

द्वादशैतानि नामानि तव नित्यं पठन्ति ये ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा यान्ति ते परमं पदम् ॥२५॥

आपके इन द्वादश (१२) नामोंको जो नित्य तीनों सन्ध्याओंमें अथवा एक ही सन्ध्यामें पाठ करते हैं, वे परमपदको प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥

आवां परमसन्तुष्टावनेनाद्भुतकर्मणा ।
भृशं चन्द्रकले ! विद्धि त्वयि चन्द्रोपमानने ! ॥२६॥

हे चन्द्रके समान मुखवाली श्रीचन्द्रकले ! इस आश्चर्य जनक कर्तव्यसे हम दोनोंको अपने प्रति परम प्रसन्न जानिये ॥ २६ ॥

सखीनामपि सर्वासां प्रधानानामुरीकुरु ।
आवयोराज्ञयेदानीं मुदा सर्वेश्वरीपदम् ॥२७॥

अतः हम दोनोंकी आज्ञासे प्रसन्नता पूर्वक इस समय आप समस्त मुख्य सखियोंका सर्वेश्वरी पद, स्वीकार करें ॥ २७ ॥

यतस्त्वमेव सर्वासां कारणं प्रथमं स्मृता ।
संगृहाणावयोर्दत्तमतः सर्वेश्वरीपदम् ॥२८॥

क्योंकि सभी सखियोंकी मुख्य कारण आपही हैं, अतः हम दोनोंके दिये हुये, इस सर्वेश्वरी पदको आप सब प्रकारसे ग्रहण कीजिये ॥ २८ ॥

निर्विकारान्विता बुद्धिरावयोः प्रीतिसाधनम् ।
नित्यमस्तु गृहाणेदं मुदा सर्वेश्वरीपदम् ॥२९॥

तुम्हारी बुद्धि अभिमान आदि, विकारोंसे रहित हम दोनोंकी सदा प्रसन्नता कारक होवे, अतः यह सर्वेश्वरी पद प्रसन्नताके साथ आप ग्रहण कीजिये ॥ २६ ॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं दत्त्वा वरं तस्यै नित्यापारसुखाकृती ।
अन्तरङ्गां तदा लीलां कुर्वन्तौ ययतुर्मुदम् ॥३०॥

भगवान् शिवजी बोले—हे पार्वती ! इस प्रकार नित्य अपार-सुखस्वरूप, वे श्रीयुगलसरकार श्रीचन्द्रकलाजीको विकार रहित बुद्धि पूर्वक सर्वेश्वरी पदका वरदान प्रदान करके अन्तरङ्ग लीला करते हुये, प्रसन्नताको प्राप्त हुये ॥ ३० ॥

तस्यां दृष्ट्वा न सौलभ्यं सर्वेषामिह देहिनाम् ।
वहिरङ्गां ततो लीलामपि तौ कर्तुमुद्यतौ ॥३१॥

परन्तु उस अन्तरङ्ग लीला में सभी प्राणियों की सुलभता न देखकर बाह्य (बाहरी) लीला भी करने को उद्यत हुए ॥ ३१ ॥

तयोर्ज्ञात्वा मनोभावं द्रुतं चन्द्रकला स्वयम् ।
बभूव तर्हि भरतो लक्ष्मणा लक्ष्मणोऽभवत् ॥३२॥

श्रीयुगल सरकारके इस मनोभावको जानकर श्रीचन्द्रकलाजी तत्क्षण स्वयं श्रीभरतलालजी बन गयीं, और श्रीलक्ष्मणाजी, लषणलालजी हो गयीं ॥ ३२ ॥

ततः कमलपत्राक्षी शत्रुघ्नः सुभगाऽभवत् ।
सर्वाः सख्योऽभवन्सद्यः पार्षदा हनुमन्मुखाः ॥३३॥

तत्पश्चात् श्रीकमलदललोचना सुभगाजी, श्रीशत्रुघ्नजी और सभी सखियाँ श्रीहनुमतलालजी आदि पार्षद बन गयीं ॥ ३३ ॥

तैस्तु साकं मुदा सर्वैः सीतारामौ सतां गती ।
वहिरङ्गां शुभां लीलां चक्रतुः कल्मषापहाम् ॥३४॥

सन्तोंके परम आधारस्वरूप वे श्रीसीतारामजी, उन सब पार्षदोंके सहित प्रसन्न होकर समस्त पापोंका विनाश करने वाली बहिरङ्ग लीलाको करने लगे ॥ ३४ ॥

इति माधुर्यलीलां तौ प्रीत्या विदधतुर्द्विधा ।
उक्तैश्वर्यमयी लीला मया पूर्वं हि ते प्रिये ! ॥३५॥

हे पार्वती ! इस तरह श्रीयुगलसरकार दो प्रकारकी (अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग) लीला करने लगे। उनकी ऐश्वर्यमयी लीलाको मैं, पूर्व में ही आपसे कथन कर चुका हूँ ॥ ३५ ॥

तस्मादप्यखिलैर्जीवैः सीतारामपरायणैः ।
तयोः प्रसादसिद्ध्यर्थं सेव्या चन्द्रकला सखी ॥३६॥

इसलिये सभी श्रीसीतारामजीके उपासकोंको श्रीयुगलसरकारकी प्रसन्नता प्राप्तिके लिये श्रीचन्द्रकला सखीजीकी आराधना करनी आवश्यक है ॥ ३६ ॥

सर्वेश्वरि ! चन्द्रकले ! प्रसीदेति पुनः पुनः ।
ममोक्तेरिदमेवास्ति रहस्यं श्रुतिपावनम् ॥३७॥

हे सर्वेश्वरि ! हे चन्द्रकलेजू ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें, इस तरह मेरे बारम्बार कहनेका श्रवणोंको पवित्र करने वाला यही रहस्य है ॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं प्राप्तं तया देवि ! प्रागपि सर्वेश्वरीपदम् ।
तस्मादिह स्वप्राधान्यं व्यञ्जितं नवजातया ॥३८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे देवि ! कात्यायनी ! इस प्रकार वे श्रीचन्द्रकलाजी पूर्वमें ही सर्वेश्वरी पदको प्राप्त हुई थीं अत एव जन्म लेते ही उन्होंने इस लोकमें अपनी प्रधानता व्यक्त करदी ॥३८॥

श्रीसूत उवाच ।

निशम्य सा हर्षितमानसा कथां बद्धाञ्जलिश्चन्द्रकलां समानता ।
नत्वा मुनिं वक्तुमुदारकीर्त्तनं प्रचोदयामास यशो महीभुवः ॥३९॥

श्रीसूतजी बोले-हे श्रीशौनकजी ! इस कथाको श्रवण करके श्रीकात्यायनीजी हर्षको प्राप्त हो अपने दोनों हाथ जोड़कर श्रीचन्द्रकलाजीको प्रणाम करती हुई । पुनः श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज को नमस्कार करके कीर्त्तन द्वारा लौकिक और पारलौकिक सभी सुख प्राप्ति कारक उन श्रीकिशोरीजीके चरितोंको कथन करनेके लिये उन्हें प्रेरणा करती हुई ॥३९॥

श्रद्धां स दृष्ट्वा महतीं मुनीन्द्रो विदेहजायाः श्रवणाय कीर्त्तेः ।
निजप्रियायास्तपसि स्थितायाः श्रीयाज्ञवल्क्यो मुदितो जगाद ॥४०॥

॥ इति षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३६॥

मुनियोंमें श्रेष्ठ वे श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकिशोरीजीके चरितोंके श्रवण करनेके लिये तपस्यामें लगी हुई अपनी प्रिया श्रीकात्यायनीजूकी महती श्रद्धाको अवलोकन करके सुखी हो बोले ॥४०॥

अथ सप्तत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३७॥

श्रीजनक भवनमें देवर्षि श्रीनारदजीका आगमन तथा उनके द्वारा श्रीकिशोरीजीके अड़तालिश चरणचिन्होंका रङ्ग व माहात्म्य वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

स्मृत्वाऽऽत्तभूपतनयाद्भुतबालरूपां स्रष्टुः सुतो विमलकीर्तिरनल्पतेजाः ।
प्रेमातुरस्त्वरितमेव हि तां दिदृक्षुर्भूपालयं स भगवान्नृपिराविवेश ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये ! राजपुत्रीके अद्भुत बालरूपको धारण किये हुई श्रीकिशोरीजीको स्मरण करके ब्रह्माजीके पुत्र, उज्वल कीर्ति, महातेजस्वी, ऋषि, भगवान् श्रीनारदजी महाराज प्रेमसे अधीर होकर श्रीकिशोरीजीके दर्शनोंके इच्छुक हो तुरत श्रीमिथिलेशजी महाराजके महलमें पधारे ॥१॥

दृष्ट्वैव तं तु मिथिलाधिपतिः सुरर्षिं विज्ञातवान् हि सहसा शुचिलक्षणाभिः ।
प्रेमाश्रुपूर्णनयनो भुवि सन्निपत्य प्रीत्या ननाम परया महनीयगाथः ॥२॥

प्रशंसनीय कीर्तिवाले श्रीमिथिलेशजी महाराजने दर्शन करके पहचाने जानेवाले उनके सभी चिन्होंको देखकर तुरत ही उन श्रीदेवर्षि नारद महामुनिको पहचान लिया और प्रेमाश्रु पूर्ण नेत्र हो जानेके कारण पृथ्वी पर गिरकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया ॥२॥

आनीय दिव्यनिजसद्मनि रत्नपीठे तुष्टाव चार्च्य मुनिपुङ्गवमासनस्थम् ।
राज्ञी शशाङ्कवदनासमलङ्कृताङ्का प्रेम्णा तदन्तिकमुपेत्य ननाम चाङ्घ्री ॥३॥

पुनः अपने दिव्य भवनमें उन्हें लाकर सम्यक् प्रकारसे पूजन करके, सुखपूर्वक विराजमान हुये उन श्रीनारदजीकी स्तुतिकी, उसी समय श्रीचन्द्रमुखी श्रीकिशोरीजीके द्वारा अलंकृत गोदवाली श्रीसुनयना अम्बाजीने पासमें आकर उनके श्रीचरण कमलोंको प्रणाम किया ॥३॥

पश्चादकारि तमुपेत्य च कान्तिमत्या भक्त्याऽभिवादनविधिर्मुनये शुभाङ्ग्या ।
ते संस्थिते स समुदीक्ष्य नृपेण सार्द्धं चन्द्राननापरमशोभिशुभाङ्ग आह ॥४॥

तत्पश्चात् मङ्गलमय अङ्गवाली श्रीकान्तिमती अम्बाजीने श्रीनारदजी महाराजके समीपमें आकर श्रद्धापूर्वक उनको प्रणाम किया। श्रीनारदजी महाराज चन्द्रमुखी श्रीकिशोरीजी व उर्मिलाजीसे सुशोभित गोदवाली श्रीसुनयना अम्बाजी व श्रीकान्तिमती अम्बाजीको महाराजाके सहित उपस्थित अवलोकन करके बोले:-॥४॥

श्रीनारद उवाच।

धन्योऽसि भूरिमहिमन्मिथिलामहेन्द्र ! किं वर्णयामि तव कीर्त्तिमतोऽत्यगाधाम्।
लब्धा तु येन तनयेयमुदाररूपा दिव्यानवद्यशुभलक्षणशोभमाना ॥ ५ ॥

हे बड़ीभारी महिमा वाले ! हे श्रीमिथिलामहेन्द्रजी ! जिन्होंने सुप्रशंसनीय मङ्गलमय लक्षणोंसे शोभायमान इस उदाररूपा पुत्रीको प्राप्त किया है वे, आप धन्य हैं अतः आपकी अत्यन्त अथाह कीर्त्तिको मैं क्या वर्णन करूँ ? ॥५॥

दृष्टेन्दिराद्रितनया च सरस्वती च रम्भोर्वशी च दयिता त्रिदशाधिपस्य।
मूर्त्तिर्हरेर्भगवतः खलु मोहिनी सा कामप्रिया वरुणलोकगताः स्त्रियश्च ॥६॥

मैंने श्रीलक्ष्मीजीका दर्शन किया श्रीसरस्वतीजीका किया और श्रीगिरिराजकुमारीजीका दर्शन किया, रम्भा, उर्वशी और देवराज वल्लभा श्रीशचीजीको भी देखा और दैत्योंको छलनेके लिये भगवान्ने जो अपना मोहनीरूप धारण किया था, उसे भी मैंने निश्चय करके अवलोकन किया है रतिको भी देखा है और वरुण लोककी सभी स्त्रियोंको भी अवलोकन किया है ॥ ६ ॥

सत्यं मयोदितमिदं त्वमवेहि राजन् ! नैतादृशी त्रिभुवने भ्रमता कदाचित्।
कुत्रापि काऽपि विदुषा चिरजीविनाऽपि दृष्टा श्रुता परमसुन्दररूपयुक्ता ॥७॥

हे राजन् ! परन्तु चिरकालीन जीवन व भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल व चौदहों भुवन की सभी बातोंके ज्ञानको पाकर सदा भ्रमण करता हुआ भी, कभी भी इस प्रकारकी परम सुन्दर रूपयुक्ता किसी भी कन्या आदिको न मैंने त्रिभुवनमें कहीं देखा ही है और न कहीं श्रवण ही किया है, यह मेरा कहा हुआ वचन आप सत्य जानिये ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

देवर्षिमूच इदमेव कृताञ्जलिः स श्रुत्वा तदुक्तममृतोपममुर्विनाथः।
अस्याः शुभाशुभगुणा भवता कृपालो ! वाच्या निरीक्ष्य सरसीरुहहस्तरेखाः॥८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले हे देवि ! श्रीनारदजी महाराजका अमृतके समान कहा हुआ ... श्रवण करके हाथ जोड़कर भूमिनाथ (श्रीमिथिलेश) जी महाराज उन देवर्षिजीसे यह बोले:-

हे कृपालो ! इन श्रीललीजीके कमलके समान हाथोंकी रेखाओंको देखकर इनके शुभ-अशुभ गुणोंको आप वर्णन कीजिये ॥८॥

राज्ञी तदा तमुपसृत्य च सव्यहस्तं तद्दर्शनाय निजहस्तगतं चकार ।
श्रीनारदस्तु भगवान् महतां महात्मा तद्वीक्ष्य पूर्णकुशलो नृपमित्युवाच ॥९॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीनारदजी महाराजके पास पहुँचकर श्रीकिशोरीजीका बायाँ हस्त-कमल उन्हें दिखानेके लिये अपने हाथ पर रख लेती हुईं । सो देखकर परम चतुर, महात्माओंके महात्मा भगवान् श्रीनारदजी श्रीमिथिलेशजी महाराज से बोले ॥९॥

श्रीनारद उवाच ।

पूर्वं विलोक्य सुमुखीमृदुलाङ्घ्रिरेखा द्रक्ष्यामि हस्तकमलं पुनरेव कामम् ।
भद्रं हि ते विधिरयं मतिमन्निदानीं वक्ष्यामि ते शुभगुणाञ्छृणु दत्तचित्तः॥१०॥

हे मतिमन् (विचार शील) ! आपका कल्याण हो, पहले श्रीसुमुखी (श्रीकिशोरी) जीके कोमल श्रीचरण-कमलोंकी रेखाओंको देखकरमें उनके शुभगुणोंको वर्णन करता हूँ आप एकाग्र चित्तसे उन्हें श्रवण कीजिये, पश्चात् हस्तकमलोंको भर इच्छा अवलोकन करूँगा क्योंकि इस समय कुछ ऐसी ही विधि है ॥१०॥

हे राज्ञि ! तुङ्गमिदमासनमादरेण त्यक्त्वा विचारमखिलं सुखदं गृहाण ।
उक्त्वेति तां समुपवेश्य महानुभावश्चन्द्राननाऽब्जमृदुपादतलं ददर्श ॥११॥

हे श्रीमहारानीजी ! आप सब प्रकारका विचार परित्याग करके (मेरी आज्ञामात्रसे) इस सुखद, ऊँचे आसन पर विराजमान हो जाइये । श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले-हे प्रिये ! वे महानुभाव (भगवत्तत्त्वका ही अनुभव करने वाले) श्रीनारदजी महाराज इतना कहकर श्रीसुनयना-महारानीजीको उस ऊँचे आसन पर बैठा कर, चन्द्रानना (श्रीकिशोरीजीके) कोमल चरण-कमलोंके तलवोंका दर्शन करने लगे ॥ ११ ॥

वीक्ष्यास मूक इव धैर्यमथो स धृत्वा प्रेमाश्रुपूर्णवदनो हृदि तां प्रणम्य ।
पाणौ निधाय मृदुले मृदुपादपद्मं रेखा निरीक्ष्य निजगाद सुतां विधातुः॥१२॥

वे उनके पादतलोंकी रेखाओंका दर्शन करके प्रेमाश्रु पूर्ण मुखारविन्द हो, श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीनारदजी महाराज अवाक् (मौन) से हो गये, पुनः धैर्य धारण कर, हृदयमें उन श्रीकिशोरीजीको प्रणाम करके अपने कोमल हाथपर उनके सुकोमल श्रीचरण कमलको रखकर बोले ॥१२॥

श्रीनारद उवाच।

राजंश्चन्द्रमुखीमनोज्ञमृदुलस्निग्धाम्बुजाङ्घ्रेस्तले
रक्ताश्मद्युतिहारिणी सुललिता ज्ञेयोर्ध्वरेखा त्वियम्।
सर्वामङ्गलवारिणी पदजुषां सर्वार्थसिद्धिप्रदा
ज्ञानाम्भोधिरुदारधीः सुखनिधिर्नूनं भवित्री प्रभो ॥१३॥

हे राजन्! श्रीचन्द्रमुखीजीके मनोहर, कोमल और चिक्कण कमलके समान चरणके तलवोंमें लालमणिकी कान्तिको हरण करने वाली अत्यन्त सुन्दर, यह जो लम्बी रेखा है उसे आप ऊर्ध्व रेखा जानिये, इस रेखाके प्रभावसे ये श्रीकिशोरीजी अपने श्रीचरणकमलोंकी सेवा करने वाले भक्तोंके समस्त अमङ्गलोंको दूर करने वाली और सभी प्रकारके मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करने वाली, ज्ञान की सिन्धु, उदार बुद्धि, सुखकी भण्डार स्वरूपा होवेंगी यह ध्रुव (निश्चय) है ॥१३॥

मूले स्वस्तिकलाञ्छनं शुभतरं श्रेयःपरं कारणं
दीव्यद्धेममणिप्रभं सुरुचिरं सौभाग्यसम्पत्करम्।
एषाऽलौकिकसर्वचिन्हनिलया ब्रह्मादिभिर्वन्दिता
सर्वात्मा परमेश्वरी त्रिजगतां भातीति मे ध्यायतः ॥१४॥

इस ऊर्ध्व रेखाके मूल भागमें परमङ्गलमय, समस्त मङ्गलोंका अद्वितीय कारण, सौभाग्यरूपी सम्पत्तिका उत्पन्न करने वाला, परम रमणीय-चमकती हुई सुवर्ण (सोना) रङ्गकी मणिके समान कान्तिवाला यह "स्वस्तिक" का चिन्ह है। हे राजन्! ध्यान करनेसे मुझे ये आपकी श्रीललीजी सभी अलौकिक चिन्होंका मन्दिर, ब्रह्मादि देवताओंसे प्रणामकी हुई, स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियों की आत्मा, त्रिलोकीकी सर्वोपरि शासन करने वाली प्रतीत हो रही हैं ॥१४॥

वामोर्ध्वं तु समुज्वलारुणमिदं पश्याष्टकोणं शुभं
रम्यं स्वस्तिकलाञ्छनस्य नृपते! सिद्धीश्वरत्वप्रदम्।
सर्वा एव हि सिद्धयश्च निधयः साष्टाङ्गयोगा ध्रुवं
पुत्र्यास्त्वत्परिचारिकाश्चरणयोः शश्वन्ममैतन्मतम् ॥१५॥

स्वस्तिक चिन्हके बायें और ऊपरकी ओर उज्वल व अरुण (लाल) रङ्गके मनोहर, सिद्धीश्वर का पद प्रदान करने वाले, मङ्गलमय, इस अष्ट कोणके चिन्हको अवलोकन कीजिये। इस चिन्हके देखनेसे मेरा तो मत यही है कि, अष्टाङ्ग योगके सहित समस्त सिद्धियाँ और सभी निधियाँ आपकी श्रीललीजीके श्रीचरणकमलोंकी सदा सेविका रहेंगी ॥१५॥

श्रीसुनयना अम्बाजीको आज्ञासे विनय करके ऊँचे सिंहासन पर विराजमान कर श्रीनारदजी महाराज श्रीललीजीके श्रीचरण चिन्होंका वर्णन कर रहे हैं।

स्वस्त्यूर्ध्वं हृदयङ्गमं सुललितं लक्ष्म्या इदं लाञ्छनं।
प्रोद्यद्धामनिधिप्रभं क्षितिपते! सौभाग्यपूर्णाकरम् ॥
तेनेयं सुषमाऽद्वितीयजलधिर्विख्यातकीर्तिः शुभा।
सम्भाव्याऽखिलसद्गुणैकनिलया सम्पूर्णकामा सुता ॥१६॥

स्वस्तिक चिन्हसे ऊपर मनोहरण अतीव सुन्दर, उदय होते हुये सूर्यके समान प्रकाशमान, सौभाग्यका पूर्ण आकर (भण्डार) यह श्रीलक्ष्मीजीका चिन्ह है। हे श्रिमिथिलेश-जी महाराज! इस चिह्नसे इन श्रीललिजीको निरतिशय (सबसे बढ़कर) सुन्दरताकी उपमा रहित समुद्र, प्रसिद्ध कीर्ति वाली, मङ्गलमयी, सम्पूर्ण सद्गुणोंकी मन्दिर स्वरूपा, सब प्रकारसे पूर्ण काम वाली विचारना चाहिये ॥ १६ ॥

लक्ष्म्या लक्ष्मण ऊर्दुर्ध्वमुज्वलमिदं चिन्हं हलस्याधिहं
कामक्रोधविदारणं स्मयहरं लोभादिमूलच्छिदम् ॥
सद्विज्ञानविरागभक्तिजननं त्वं पश्य चेतोहरं
वेद्म्येनां मिथिलामहेन्द्र! तनयां सच्चिन्मनोहारिणीम् ॥१७॥

श्रीलक्ष्मीजीके चिह्नसे ऊपर उज्वल वर्णका मानसिकताप हरण करने वाला काम, क्रोधको फाड़ डालने वाला अभिमानको नष्ट करदेने वाला, लोभादिकी जड़को ही काट डालने वाला और सद्विज्ञान (भगवत्तत्व महिमा रहस्यादिका विशेष ज्ञान) वैराग्य, भक्तिको उत्पन्न करने वाला यह हलका चितहारी चिह्न है, उसे आप अवलोकन कीजिये। हे श्रीमिथिलामहेन्द्रजी! इस चिह्नसे आपकी श्रीललीजीको सत्-चित (तीनों कालमें एक रस रहने वाले चैतन्य स्वरूप) ब्रह्मके भी मनको हरण करने वाली मैं जानता हूँ ॥ १७ ॥

एतद्भाति च धूम्रवर्णमसितं दुर्वासनाध्वंसनं
राजन्मूशललाञ्छनं दुरितहं पापाद्रिपुञ्जाशनिम्।
पूतेयं मनसा गिरा च वपुषा नित्यं सुता सर्वथा
तेनैवेति मतिर्मम श्रुतिनुता ज्ञेया महद्भाविता ॥१८॥

हे राजन्! धुयेंके रङ्गके समान श्याम रङ्गका, दुर्वासनानाशक, दुःखविनाशक, पाप रूपी पर्वत समूहोंको चूर करनेके लिये वज्र स्वरूप यह मूशलका चिह्न प्रतीत हो रहा है, इस चिह्नसे वो

मेरी मति यही है कि, आपकी इन श्रीललीजीको मन, वचन, काय(शरीर)से सब प्रकार पवित्र और नित्य ही वेदोंके द्वारा स्तुतिकी हुई महात्माओंकी भावनाका विषय स्वरूप ही जानना चाहिये १८

शेषाङ्कं परिपश्य रम्यमसितं द्वन्द्वच्छिदं शम्प्रदं
चेतोमूलविकारहं सुखकरं वाचस्पतित्वप्रदम् ।
सच्चिन्होपरि मूशलस्य तदतः सर्वार्थसिद्धामिमां
शीलक्षान्तिदयाऽनुरागसुषमासौभाग्यसीमां ब्रुवे ॥१६॥

मूशल चिन्हसे ऊपर सुख-दुःख, राग द्वेष आदि समस्त द्वन्द्वोंका विनाश करने वाले, मङ्गल-दायक तथा चित्तके मूल विकारको नष्ट करनेवाले, श्याम वर्णसे युक्त इस शेषजीके चिन्हका दर्शन कीजिये । हे राजन् ! इस चिन्हसे आपकी इन श्रीललीजीको मैं सभी प्रकारकी सम्पत्तियोंको प्राप्त (परिपूर्ण मनोरथ) शील, सहनशीलता, दया अनुराग, अनुपम सौन्दर्य, सौभाग्यकी सीमा कह रहा हूँ ॥ १६ ॥

नानावर्णमणिप्रभं प्रमथनं ह्यात्मातिमार्गद्विषां
शेषोदूर्ध्वं शरलाञ्छनं नृपमणे ! सर्वाभयप्रापकम् ।
तेनेयं विगताहिता तनुभृतां प्राणैः समा ज्ञायते
पुत्री चारुमृगाङ्कपूर्णवदना संध्यायमाना मया ॥२०॥

हे नृपमणि श्रीविदेहजी महाराज ! अनेक रङ्गकी मणियों के समान प्रकाशमान, भगवानकी प्राप्ति-मार्गके विरोधियोंका विनाश करने वाला, तथा सभीसे निर्भयताको प्रदान करने वाला, शेषचिन्हसे ऊपर, यह बाणका चिन्ह है । इस चिन्हके द्वारा सुन्दर पूर्णचन्द्रके समान आह्लाद प्रद प्रकाश युक्त, हृदय-ताप हारी मुखवाली आपकी श्रीललीजी मुझे सम्यक् प्रकारसे ध्यान करने पर सभी देह धारियोंको प्राणोंके समान प्रिय तथा शत्रुरहित ज्ञात हो रही हैं ॥२०॥

बाणादूर्ध्वमिदं प्रपश्य नृपते ! विद्युत्पयोदप्रभं
दिव्यं लाञ्छनमम्बरस्य सुभगं पुण्येक्षणं पावनम् ।
सर्वस्थावरजङ्गमात्मनिगताऽज्ञेयस्वरूपा हि तैः
सर्वज्ञा महनीयपुण्यचरिता लोके भवित्री ध्रुवम् ॥२१॥

हे नृपते ! बाण चिन्हसे ऊपर बिजली और मेघके समान प्रकाश युक्त, दिव्य, रमणीय

पवित्रकारी, पुण्यमय दर्शन वाले इस अम्बर (वस्त्र) के चिन्हको अवलोकन कीजिये इस चिन्हसे आपकी श्रीललीजी सभी स्थावर जङ्गममय प्राणियोंके हृदयमें निवास करती हुई भी स्वरूपसे इनके द्वारा न जानने योग्य, सभी देशका पूर्णज्ञान रखने वाली और लोकमें अपने गुणोंसे पूजने योग्य पुण्यमय चरित वाली होवेंगी ॥२१॥

राजन्नम्बरलाञ्छनोर्ध्वमरुणं नव्यं प्रपश्याम्बुजं
ध्यातानन्दविवर्द्धनं शिवकरं शुद्धानुरागप्रदम् ।
अस्माद्भातिसरोजनाभजननं यस्माद्विरिञ्चेर्भवः
किं तुभ्यं कथयाम्यतः शुभगुणानस्याः पराया धियः ॥२२॥

हे राजन् ! अम्बर-चिन्हसे ऊपर नवीन, ध्यान करने वालेके आनन्दकी वृद्धि करने वाले, मङ्गलकारी, निष्काम प्रेम प्रदान करनेवाले इस कमलके चिन्हका आप भली प्रकारसे दर्शन कीजिये, इस कमलके चिन्हसे पद्मनाभ भगवान्का जन्म प्रतीत हो रहा है, जिससे श्रीब्रह्माजीका जन्म हुआ है अतः बुद्धिसे परे रहनेवाली आपकी इन श्रीललीजीके मङ्गलगुणोंको मैं आपसे कहाँ तक वर्णन करूँ ? ॥२२॥

तस्मादूर्ध्वमिदं हि लक्ष्म जलजाद्यानस्य संशोभितं
श्वेताश्वैः श्रुतिसम्मितैः ससुपमैस्त्रैलोक्यराज्यप्रदम् ।
पुत्रीयं नृप ! तावकी दिविषदामाराध्यमाना हृदि
प्रोद्भूता रतिमाशिवा प्रभृतयो यस्याश्छवेः सीकरात् ॥२३॥

इस कमल-चिन्हसे ऊपर तीनों लोकका राज्य प्रदान करने वाला श्वेत रङ्गके अत्यन्त सुन्दर चार घोड़ोंसे युक्त रथका यह चिन्ह सब प्रकारसे शोभा देरहा है,जिनकी छवि सीकरसे श्रीलक्ष्मीजी श्रीगिरिजाजी व रति आदि परम सुन्दर शक्तियाँ प्रकट हुई हैं इस चिन्हके प्रभावसे ये आपकी ये श्रीललीजी देवताओंके द्वारा हृदयमें आराधित हो रही हैं ॥२३॥

कामक्रोधमदेषणाप्रशमनं सर्वत्र रक्षाकरं
चेतोऽकण्टकराज्यदं विजयदं यानोर्ध्वमेतत्पवेः ।
विद्युद्वर्णमिदं सुचिह्नमपरं ज्ञेयमस्मात्त्वया
ब्रह्माद्यैः परिभाव्यमानचरणा शक्तिप्रधानेश्वरी ॥२४॥

रथ चिन्हसे ऊपर काम, क्रोध, अभिमान, तथा सभी प्रकारकी वासनाओं नष्ट करने वाला,

सर्वत्र रक्षक चित्तको निष्कण्टक राज्य (भगवान्‌में चित्तवृत्तिकी संलग्नता) प्रदान करने वाला, भीतरी-बाहरी सभी शत्रुओं पर विजय कराने वाला बिजुलीके रङ्गका यह वज्रका चिन्ह है। हे नृपश्रेष्ठ ! इस चिन्हसे आप श्रीललीजीको ब्रह्मादि देवताओंसे चिन्त्यमान श्रीचरणकमल वाली तथा शक्तिप्रधान (उमा, रमा, ब्रह्माणी आदि) ओं की स्वामिनी जानिये ॥२४॥

अङ्गुष्ठे यवचिह्नमेतदमलं श्वेतारुणं सुन्दरं
सर्वार्थप्रदमात्मदोषहरणं विधाननेयं शुभा ।
ज्ञातव्या नृपसत्तम ! श्रुतिपराऽऽह्लादस्वरूपाऽनघा
सर्वोत्कृष्टविचित्रपुण्ययशसा लोकत्रये विश्रुता ॥२५॥

अंगूठेमें सभी मनोरथोंको प्रदान करने वाला तथा मनके दोषोंको दूर करने वाला सफेद और लाल रङ्गका सुन्दर स्वच्छ यह यवका चिन्ह है। हे राजाओंमें परम श्रेष्ठ ! इस यव चिन्हसे श्रीललीजीको वेदोंसे परे, आह्लादकी मूर्ति, सभी पापोंसे रहित, सबसे श्रेष्ठ और अपने अलौकिक पुण्यमय यशसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध जानना चाहिये ॥२५॥

दक्षे स्वस्तिकलाञ्छनोदूर्ध्वममलं लक्ष्मास्त्यदः स्वस्तरोः
सर्वार्थप्रदचिन्तनं सुहरितं मोक्षप्रदं भक्तिदम् ।
तस्यापीह च यत्फलं कथयतस्तच्छ्रूयतां मे नृप !
नानासादितमिन्दिराङ्कयुतया पुत्र्या मनाक्तेऽनया ॥२६॥

स्वस्तिक चिन्हसे ऊपर दाहिनी ओर चिन्तनसे सभी मनोरथोंको प्रदान करनेवाला, तथा मोक्ष व भक्तिको देनेवाला, हरे रङ्गका यह स्वच्छ कल्पवृक्षका चिन्ह है। इस चिन्हका जो फल श्रीललीजीके लिये है वह मेरे कहते हुये श्रवण कीजिये। हे राजन् ! श्रीलक्ष्मीजीके चिन्हसे युक्त आपकी इन श्रीललीजीके लिये किञ्चित् भी वस्तु बिना मिली अर्थात् अप्राप्त नहीं है ॥२६॥

स्वर्वृक्षोपरि चाङ्कुशाङ्कमतसीपुष्पोपमं पश्यता-
देतल्लोलमनोमतङ्गवशकृच्चिह्नं विकारापहम् ।
एषा नित्यनिवासिनी सुखनिधिः शम्भोर्मनोमन्दिरे
साक्षाद्ब्रह्ममयी विभाति सुमुखी धन्योऽसि राजन्नतः ॥२७॥

कल्पवृक्ष चिन्हसे ऊपर चञ्चल मनरूपी हाथीको वशमें करने वाले, सभी काम, क्रोध, वासना

आदि विकारोंको नष्ट करनेवाले अलसी(टीसी)केपुष्पके समान श्यामरङ्गके अंकुश चिन्हको देखिये इस चिह्नसे सुन्दर सुखवाली आपकी श्रीललीजी भगवान् शिवजीके मनरूपी मन्दिरमें नित्य निवास करने वाली, सुखकी निधि, साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा प्रतीत हो रही हैं, इस लिये हे राजन्! आप धन्य हैं २७

एतच्चारुसुलोहितं विजयकृद्देयं ध्वजालक्षणं
सुस्पष्टं नृवराङ्कुशोर्द्ध्वममलज्ञानप्रदं भक्तिदम्।
एषा शाश्वतधामदा त्रिभुवनश्रेयः परं कारणं
विज्ञेया श्रुतिगीतपुण्यमहिमा राज्ञ्याः शुभाङ्के स्थिता ॥२८॥

अङ्कुश चिन्हसे ऊपर भक्तिको प्रदान करने वाले अमल (ब्रह्म) ज्ञानको देनेवाले, विजय कारक, लाल वर्णके इस सुस्पष्ट चिन्हको ध्वजाका चिन्ह जानना चाहिये। इस चिन्हसे श्रीमहारानीजीकी गोदीमें विराजी हुई इन श्रीललीजीको आप नित्य धाम प्रदान करने वाली तीनों लोकोंकी परम-मङ्गल-कारिणी और वेदोंके द्वारा गायी हुई पुण्यमयी महिमा वाली जानिये ॥२८॥

तप्तस्वर्णकिरीटलाञ्छनमिदं भव्यं ध्वजाङ्कोर्ध्वगं--
सर्वैर्वन्द्यकरं मनोहरतरं सर्वेश्वरत्वप्रदम्।
यावन्त्यः खलु शक्तयः परतमा ब्रह्माण्डवृन्दे स्थिताः
दासीभावमुपाश्रिता हि सकलास्ता विद्धि चास्या धवैः ॥२९॥

ध्वजा चिह्नसे ऊपर तपाये हुये सोनेके समान इस परम मनोहर किरीट चिह्नको, सबके द्वारा प्रणाम करने योग्य बनाने वाला तथा सर्वेश्वरके पदकी योग्यता प्रदान करने वाला जानना चाहिये, इस चिह्नसे अपने पतियोंके सहित ब्रह्माण्ड वृन्दोंमें स्थित, सभी विशिष्ट शक्तियोंको आप इन श्रीललीजीके दासी भावका आश्रय ग्रहण किये हुई जानिये ॥२९॥

दीव्यत्काञ्चनवर्णमूर्जितयशः! स्पष्टं किरीटोर्ध्वगं
चक्राङ्कं परिपश्य धामनिचयं सर्वद्विषां सूदनम्।
साम्राज्यप्रदमस्ति लाञ्छनमिदं सर्वप्रभुत्वप्रदं
त्रैलोक्यस्य परेशपट्टमहिषीं मन्ये तदेनां ध्रुवम् ॥३०॥

हे उत्कृष्ट कीर्तिशाली राजन्! किरीट चिह्नसे ऊपर प्रकाश-पुञ्ज, चमकते हुये सोनेके रङ्गके इस स्पष्ट चक्रचिह्नका दर्शन कीजिये। यह चिह्न सभी शत्रुओंका संहार करने वाला, सम्राट्के

पदको देनेवाला तथा सभी प्राणियों पर प्रभुत्व प्रदान करने वाला है। इस चिह्नसे मैं इन श्रीललीजीको निःसन्देह तीनों लोकोंके परम (सर्वश्रेष्ठ) स्वामी (सर्वेश्वर प्रभु)की पटरानी मानता हूँ ॥३०॥

चक्रोर्ध्वं बहुमूल्यरत्नरचितं सिंहासनं सुन्दरं
योगज्ञानविरागभक्तिभवनं श्रीमन्निदं वीक्ष्यताम्।
तेनेमां सुरचिन्त्यमानचरणां सिंहासनस्थां शुभां
श्रीसाकेतविहारिणीमहमिमां मन्ये त्वदीयात्मजाम् ॥३१॥

हे श्रीमान्जी! चक्र चिन्हसे ऊपर योग, ज्ञान, वैराग्य भक्तिके भवन स्वरूप, बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुये इस सुन्दर सिंहासनके चिन्हको अवलोकन कीजिये, इस चिन्हसे मैं आपकी श्रीललीजीको सिंहासन पर विराजमान, देवताओंके द्वारा चिन्तन करने योग्य श्रीचरण कमल वाली, मङ्गलमूर्ति, श्रीसाकेतविहारिणीजी ही मानता हूँ ॥३१॥

चिह्नादूर्ध्वमतः समुज्ज्वलमिदं सिंहासनस्याद्भुतं
दिव्यं चामरलाञ्छनं शुभतरं मोहादिदोषापहम्।
एषा सर्वविकारमूलरहिता सच्चिज्जगन्मङ्गला
तेनोर्वीश। सुभाग्यदा तव सुता चिन्त्याऽस्मदा पश्यताम् ॥३२॥

इस सिंहासन चिन्हसे ऊपर मोह आदि दोषोंको दूर करने वाला, परम मङ्गलस्वरूप आश्चर्य कारक, दिव्य, अत्यन्त उज्वल यह चँवरका चिह्न है, इससे इन श्रीललीजीको आप समस्त विकारोंके मूल (जड़) से रहित, सदा एक रस रहने वाली, चैतन्य स्वरूप, जगत्की मङ्गल स्वरूपा, दर्शन करने वालोंके सौभाग्यको प्रदान करने वाली, एवं बुद्धिको देनेवाली निश्चय करें ॥३२॥

दक्षोर्ध्वे परमोज्ज्वलं क्षितिपते! सिंहासनस्याङ्कतो
रम्यं छत्रसुलक्ष्म शोभनतरं सर्वाधिपत्यप्रदम्।
सर्वाराध्यतमारविन्दचरणा राज्ञी त्रिलोकीपतेः
सर्वानन्दविवर्द्धिनी तव सुता तेनेयमावुध्यते ॥३३॥

हे महीप! इस सिंहासन-चिन्हके दाहिने ओर ऊपरको ओर सभीके प्रति परम स्वामित्व प्रदान करने वाला, अत्यन्त सुन्दर, रमणीक, परम उज्वल रङ्गका छत्र चिन्ह है, इस चिन्हसे आपकी श्रीललीजी सभीके द्वारा परम आराधना करने योग्य श्रीचरण कमल वाली, त्रिलोकीनाथकी महारानी तथा सभीके आनन्दको पूर्णरूपसे बढ़ाने वाली ज्ञात हो रही हैं ॥३३॥

छत्रोर्ध्वं जयमाललाञ्छनमिदं भद्रं परं पश्यतां
सर्वेभ्यो विजयप्रदाननिरतं ध्यातुर्मनः शान्तिदम्।
पुत्रीयं चिदचित्परा विजयते शश्वत्त्रिलोक्यामतः
प्रोत्फुल्लाम्बुजपत्रचारुनयना मन्दस्मिता पावनी ॥३४॥

छत्र-चिन्हसे ऊपर दर्शन करने वालोंका परम मङ्गलस्वरूप, सभीके लिये विजय प्रदान करनेमें संलग्न, ध्यान करने वालेके मनको शान्ति देने वाला यह जयमालका चिह्न है, इस चिह्नसे पूर्ण खिले हुये कमलके दलके समान सुन्दर नेत्र तथा मन्द मुस्कान वाली, चित् (जीव) अचित् (माया) से परे (ब्रह्मस्वरूपा), पवित्र करने वाली, आपकी ये श्रीललीजी तीनों लोकोंमें सर्वोत्कृष्टरूपसे सदा विराज रही हैं ॥३४॥

सव्योर्ध्वं यमदण्डचिह्नमसितं सिंहासनस्याद्भुतं
याम्यत्रासभयापहं सुललितं शुद्धानुरागप्रदम्।
एषा ब्रह्मविदां वरिष्ठ! तनया सर्वाभयप्रापिका
ज्ञातव्याऽनुगता पतिं पतिपरा कल्याणमूर्त्तिस्ततः ॥३५॥

सिंहासन चिन्हसे वायें ऊपरकी ओर यमराजके द्वारा प्राप्त होने वाले भयको दूर करने वाला परम सुन्दर, शुद्ध (निष्काम) अनुराग प्रदान करने वाला, श्याम वर्णका यह अद्भुत यमदण्डका चिन्ह है। हे ब्रह्मवेत्ताओंमे परम श्रेष्ठ ! इस चिन्हसे इन श्रीललीजीको सभीके लिये अभयकी प्राप्ति कराने वाली पतिका अनुगमन करने वाली, तथा पतिको ही सर्वश्रेष्ठ मानने वाली, कल्याणकी मूर्त्ति जानना चाहिये ॥३५॥

एतच्चामरलाञ्छनोर्ध्वमरुणश्वेतं नरस्याद्भुतं
विज्ञेयं मिथिलामहेन्द्र ! भवता यद्दृश्यते लक्ष्म तत्।
सद्विज्ञानविरागभक्तिजननं पापापहोद्वीक्षणं
तेनेयं भजदीप्सितार्थफलदा सद्भावमुख्यास्पदा ॥३६॥

हे श्रीमिथिलामहेन्द्रजी ! चँवर चिन्हसे ऊपर लाल और श्वेत रङ्गका जो यह चिह्न दिखाई दे रहा है, उसे आपको सद् (ब्रह्म) का विशेष ज्ञान, विषयोंसे वैराग्य तथा भक्तिका जन्मदायक दर्शनसे ही पापोंको हर लेने वाला अद्भुत नरका चिह्न जानना चाहिये। इस चिह्नसे आपकी श्रीललीजी

भजन करने वालोंके लिये मन चाहे मनोरथों का फल देनेवाली और समस्त सद्भावों की प्रधान पात्र हैं ॥३६॥

राजन्नेतदुदीक्ष्यते सुधवलं चिह्नं सरय्वाः शुभं
दक्षे चन्द्रनिभाननापदतले निःशेषतीर्थास्पदम् ।
प्रेमाभक्तिविवर्द्धनं नृप ! ततो विद्ध्यात्मजामात्मदाम्
प्रेमाम्भोनिधिविग्रहां निरुपमकान्तिस्वरूपामिमाम् ॥३७॥

हे राजन् ! श्रीचन्द्रनिभाननाजूके दाहिने श्रीचरण कमलके तलवेमें प्रेमा भक्तिको बढ़ाने वाला, सम्पूर्ण तीर्थोंका स्थान भूत, श्वेत रङ्गका यह श्रीसरयूजीका मङ्गलमय चिह्न देखनेमें आरहा है। हे नरेश ! इस चिह्नसे आप अपनी इन श्रीललीजीको प्रेमकी समुद्र स्वरूपा और कान्तिकी उपमा रहित मूर्त्ति जानिये ॥३७॥

मूले पादतलस्य रक्तधवलं गोष्पादसल्लाञ्छनं
गोष्पादेन समेति हन्त समतां ध्यानाद्भवाब्धिर्यतः ।
अन्तर्दृष्टिविकाशनं शुभमिदं तत्तेन सल्लक्ष्मणा
विज्ञेया तमसः पराऽऽदिप्रकृतेर्मूलस्वरूपा त्वियम् ॥३८॥

इस दाहिने पाँवके तलवेके मूल (जड़) में, लाल और श्वेत रङ्गका गौके चरणका शुभ चिह्न है, जिसके ध्यानसे भव (संसार) रूपी समुद्र गौके खुरके सदृश अनायास पार करने योग्य हो जाता है। यह मङ्गलमय चिह्न अन्तर्दृष्टिका विकाश करने वाला होता है अतः इस चिह्नसे इन श्रीललीजीको अविद्यासे परे, आदि मायाकी भी कारण स्वरूपा जानना चाहिये ॥३८॥

गोष्पादाध इदं सुलक्ष्म सरयूदक्षे सुपीतोज्ज्वलं
भूमेः शान्तिदयादिमङ्गलगुणप्रद्योतनं भुक्तिदम् ।
एषा तेन सुलक्ष्मणा नरवर ! ज्ञेया जगन्मङ्गला
कारुण्यादिगुणालया सुकृतिनां भावास्पदा योगिनाम् ॥३९॥

श्रीसरयूजीके दाहिनी ओर गोपादके नीचे शान्ति, दया आदि मङ्गलमय गुणोंको प्रकाशित तथा अनेक प्रकारके भोगोंको प्रदान करनेवाला, सुन्दर पीत व श्वेत रङ्गका यह भूमिका चिह्न है। हे नरश्रेष्ठ ! इस चिह्नसे आप इन श्रीललीजीको, जगत्की मङ्गल-स्वरूपा, कारुण्यादि गुणोंकी [illegible], श्रेष्ठकर्मा योगियोंके भावनाकी [illegible] [illegible]निये ॥३९॥

दीव्यत्स्वर्णघटस्य लाञ्छनमिदं भूमेर्यदूर्ध्वं स्थितं
तेनेयं परिभाव्यते हरिहरब्रह्मादिभिर्वन्दिता ।
शश्वन्मङ्गलविग्रहा शुभगतिर्ध्यातुः सदा शंप्रदा
जाताऽपारपराक्रमा शुभगुणग्रामा सुता तावकी ॥४०॥

भूमि चिह्नसे ऊपर यह जो चमकते हुये सोनेके घड़ेका चिन्ह बैठा हुआ है, इस चिन्हसे ये आपकी श्रीललीजी ब्रह्मा विष्णु महेशके द्वारा प्रणाम की हुई, सदा ही मङ्गलमय शरीर वाली, गजगामिनी, ध्यान करने वालोंको सदा मङ्गल प्रदान करने वाली, अनन्त पराक्रम सम्पन्ना, मङ्गलमय गुणोंकी ग्राम स्वरूपा प्रकट हुई है, ऐसा प्रतीत हो रहा है ॥४०॥

कुम्भोदूर्ध्वं तु विचित्रवर्णललिता ज्ञेया पताका त्वियं
तस्याश्चिह्नमवेहि मङ्गलनिधिं सौभाग्यसद्विग्रहम् ।
अस्याश्चातिपवित्रकीर्त्तिरमला गेया महासूरिभिः
पापघ्नी हृदयान्धकारदहनी लोकत्रये ख्यास्यति ॥४१॥

और घड़ेके चिन्हसे ऊपर विचित्र वर्ण "पताका" का मङ्गल निधि, सौभाग्यका उत्तम स्वरूप भूत यह चिन्ह है। इस चिन्हसे इन श्रीललीजीकी अत्यन्त पवित्र व उज्ज्वल कीर्ति, महासूरियों (महात्माओं) के द्वारा गाने योग्य, पापोंका नाश तथा हृदयके अन्धकारको निकालने वाली तीनों लोकमें विख्यात होगी ॥४१॥

एतज्जम्बुफलस्य चिह्नमसितं ह्यर्द्धेन्द्रधो दृश्यते
सुस्पष्टं सुषमाकरं सुललितं यद्वै पताकोपरि ।
तद्यस्याङ्घ्रितले भवेद्विधिवशात्सर्वार्थपूर्णो हि सः
सर्वज्ञो महनीयपुण्यमहिमा भूयादुपास्यः सताम् ॥४२॥

"पताका" चिन्हसे ऊपर और अर्धचन्द्रसे नीचे परम सुन्दर, उपमा रहित शोभाकी खानि, पूर्ण स्पष्ट, श्याम रङ्गका जो यह चिन्ह देखनेमें आरहा है, वह जामुनके फलका चिन्ह है। यह चिह्न सौभाग्यवश जिसके चरणमें होता है, वह सभी प्रकारके मनोरथोंसे निःसन्देह पूर्ण, सर्वकालदेशको परिस्थितिको जानने वाला, पूजने योग्य-पवित्र कीर्त्तिसे युक्त और सन्तोंके द्वारा आराधना करने योग्य होता है, अत एव इस चिन्हसे इन श्रीललीजीको, इन सभी कहे हुवे गुणोंसे सम्पन्न जानना चाहिये ॥४२॥

पश्यैनं नवपीतबिन्दुममलं जीवोर्ध्वमङ्गुष्ठगं
त्रैलोक्यैकमनोहरं रतिपतेर्योनिं पराभक्तिदम् ।
यस्येदं शुचिलाञ्छनं पदतले राजन्भवेच्छोभनं
प्रेमाम्भोधिरनङ्गजिन्मतिमतां मान्यो जगत्क्षेमकृत् ॥४९॥

जीव चिन्हसे ऊपर अँगूठे में, तीनों लोक में उपमारहित सुन्दरतासे युक्त, कामदेवके कारण, पराभक्ति प्रदान करनेवाले इस "पीत बिन्दु" के स्वच्छ चिन्हका दर्शन कीजिये। हे राजन्! यह सुन्दर पवित्र चिन्ह जिसके चरण-तलवे में होता है, वह प्रेमका सिन्धु, कामको विजय करनेवाला, बुद्धिमानोंके द्वारा सम्मान करने योग्य, और स्थावर-जङ्गम-मय समस्त प्राणियोंका कल्याण करने वाला सिद्ध होता है, अतः आपकी श्रीललीजी इन कहे हुये सभी गुणोंसे भी युक्त हैं ॥४९॥

गोष्पादोर्ध्वमिदं सुलक्ष्म विमलं श्वेतारुणश्यामलं
शक्तेर्भूप ! निरीक्ष्यतामपि यतो मूलप्रकृत्या भवः ।
तस्माद्ब्रह्ममयीयमक्षरपरा वाणी यदीया श्रुति-
र्भव्या धन्यतमोऽस्मि दृष्टिपथगेदानीमियं यस्य सा ॥५०॥

गो-पादसे ऊपर श्वेत-लाल, श्याम रङ्गके स्वच्छ और सुन्दर शक्ति चिन्हका आप दर्शन कीजिये, जिससे मूल प्रकृतिका प्राकट्य होता है। इस चिन्हसे आपकी इन श्रीललीजी को परमानन्द स्वरूपा, ब्रह्ममयी जानना चाहिये। जिनकी वाणी ही साक्षात् वेद है, वे येही इस समय मेरी दृष्टि मार्ग में विराज रही हैं अर्थात् दर्शन प्रदानकर रही हैं, अत एव मैं परम धन्य हूँ ॥५०॥

शक्त्यूर्ध्वं तु सुधाह्रदस्य धवलं श्वेतारुणं लाञ्छनं
पश्य त्वं नृपते ! ऽमृतत्ववरदं संध्यायतां शाश्वतम् ।
तेनेयं चिदचिद्विलक्षणपरा नित्यस्वरूपाऽनघा
ह्यस्याः सर्वमवेहि नित्यमजडं निर्मायिकं निश्चलम् ॥५१॥

शक्ति-चिन्हके ऊपर श्वेत और लाल रङ्गके इस अमृतकूपके स्वच्छ चिन्हका दर्शन कीजिये, यह सतत ध्यान करनेवालेको अमरत्वका वर देनेवाला है, इस चिन्हसे आपकी श्रीललीजी जड़-चेतनसे विलक्षण (ईश्वर) से परे, परमकल्याणी, स्वरूपसे सदा एकरस रहने वाली, नाश व हलचलसे रहित शुभस्वरूपा हैं। आप इन श्रीललीजीका सब कुछ, नित्य चैतन्य स्वरूप, मायासे परे, एकरस रहने वाला जानिये ॥ ५१ ॥

राजेन्द्र ! त्रिवलीसुलाञ्छनमिदं पश्य त्रिवेणीप्रभं
श्रीपीयूषसरोऽङ्कतोऽग्रममलं दृष्टेर्विकारापहम् ।
अस्मादेव सुलाञ्छनात्क्षितितले जाता त्रिवेणी सरित्
संजातो भगवांस्त्रिविक्रम इहेत्थं त्वत्सुता राजते ॥५२॥

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! अमृत कुण्डके चिन्हसे आगे त्रिवेणीके समान प्रकाशमान, दृष्टिके दोषको हरण करनेवाले, सुन्दर और स्वच्छ, इस "त्रिवली" के चिन्हका दर्शन कीजिये, इस चिन्हसे पृथिवीतल पर त्रिवेणी नदीका तथा इसी चिन्हसे भगवान् त्रिविक्रम (वामन) जीका अवतार हुआ है, इस प्रकार आपकी श्रीललीजी सर्वोत्कृष्ट रूपसे विराज रही हैं ॥ ५२ ॥

भातीदं त्रिवली - सुलक्षणपरं मीनस्य रौप्यप्रभं
निःश्रेयः शकुनप्रभावनकरं तद्ध्यायतामन्वहम् ।
चेतो मीनदशामुपैति नचिरान्मीनावतारोऽप्यतः
पुत्रीयं धृतमङ्गलाकरतनुर्नैसर्गिकी शम्प्रदा ॥५३॥

त्रिवली चिन्हसे आगे चांदीके समान कान्तिसे युक्त परम-मङ्गलमय शकुनोंकी सृष्टि करनेवाला यह "मीन" (मछली) का चिन्ह प्रतीत हो रहा है, उसका सदा ध्यान करनेवालोंका चित्त मीनकी दशाको शीघ्रही प्राप्त हो जाता है, अर्थात् अपने प्यारेके वियोगको क्षणभर भी न सहन करके तत्क्षण प्राण-विसर्जन करनेकी परिस्थितिको प्राप्तकर लेता है । इसी मत्स्य चिन्हसे मीन भगवान् का अवतार होता है, अतः आपकी श्रीललीजी समस्त मङ्गलोंकी खानिका विग्रह धारणकी हुई स्वाभाविक कल्याण-प्रदायिनी हैं ॥ ५३ ॥

मीनाङ्कोर्ध्वमिदं नरेन्द्र ! धवलं चेतः स्पृशं सुन्दरं
पूर्णेन्दोः शुचिलाञ्छनं सुखकरं ब्रह्माण्डचन्द्राकरम् ।
पूर्णा पूर्णवरप्रदाननिरता पूर्णैः सदाऽऽराधिता
पूर्णाब्रह्मसुविग्रहा तव सुता संलक्ष्यतेऽनेन वै ॥५४॥

हे नरेन्द्र ! मीन-चिन्हसे ऊपर सुन्दर, मनहरण, सुखकारी, अनन्त ब्रह्माण्डों के चन्द्रों की खानि स्वरूप, यह पूर्णचन्द्रका पवित्र चिन्ह है, इस चिन्हसे आपकी श्रीललीजी सब प्रकारसे पूर्ण, आश्रितों के लिये पूर्ण (भगवान्) का वर देनेमें संलग्न, पूर्णकामों (परमहंसों) के द्वारा उपासना की हुई, पूर्णब्रह्मकी सुन्दर मूर्त्ति ही सम्यक् प्रकारसे लक्षित हो रही है ॥५४॥

वीणालाञ्छनमेतदस्ति विमलं पूर्णेन्दुचिह्नोर्ध्वगं
पीतश्वेतसुलोहितं पदतले चन्द्राननायाः शुभे ।
तेनेमां धृतविग्रहा अहरहो रागैः समेताः प्रियै
रागिण्यः परिशीलयन्ति सकलाः प्रेम्णेति मे निश्चयः ॥५५॥

श्रीचन्द्रमुखीजूके मङ्गलमय पाँवके तलवेमें, पूर्णचन्द्रके चिन्हसे ऊपर यह वीणाका स्वच्छ पीत-श्वेत-लाल रङ्गका चिन्ह है, इस चिन्हके प्रभावसे समस्त रागिनियाँ अपने प्यारे रागोंके सहित मूर्त्तिमान् होकर, प्रेम पूर्वक इन श्रीललीजीकी सेवा कर रही हैं, ऐसा मेरा निश्चय है ॥५५॥

वंशीचिह्नमिदं प्रपश्य ललितं वीणाशुभाङ्कोर्ध्वगं
नेत्रानन्दकरं प्रमोदजनकं भव्यं विचित्रप्रभम् ।
अस्मादेव रसाश्च नादसहिताः सतस्वरा जज्ञिरे
किं तस्मान्नृप ! वर्णयामि कुमतिः पुत्रीं तवालौकिकीम् ॥५६॥

वीणाके शुभ-चिन्हसे ऊपर नेत्रोंको आदान प्रदान करनेवाले, सुन्दर, सुख-जनक विचित्र प्रकाशवाले इस श्रेष्ठ "वंशी" चिन्हका दर्शन कीजिये । इस वंशीके चिन्हसे नादके सहित नवो रस और सातो स्वर उत्पन्न होते हैं । हे नृप ! इसलिये मैं कुमति आपकी अलौकिक इन श्रीललीजीका क्या वर्णन करूँ ! ॥५६॥

पश्यातीवमनोहरं सुललितं वंशीशुभाङ्कोर्ध्वगं
सच्चिह्नं हरितारुणं सकनकं चापस्य संशोभनम् ।
ध्यानात्सर्वजयप्रदं च सततं सर्वत्र रक्षाकरं
सर्वैश्वर्यकृतालयाब्जचरणा तेनेयमाभाव्यते ॥५७॥

वंशीके शुभ चिन्हसे ऊपर परम सुन्दर, मनहरण, शोभायमान, ध्यानसे सभीको जय देनेवाले तथा सदा रक्षाकारी सुवर्ण (सोने) के सहित हरे और लालरङ्गसे युक्त, इस धनुषके चिन्हका दर्शन कीजिये, इस चिन्हसे आपकी श्रीललीजी समस्त ऐश्वर्योंके निवास-भवन रूपी श्रीचरणकमलों वाली प्रतीत हो रही हैं अर्थात् समस्त ऐश्वर्य आपकी श्रीललीजीके श्रीचरणकमलरूपी महलमें ही निवास कर रहे हैं, ऐसा मुझे पूर्णरूपसे ज्ञात हो रहा है ॥ ५७ ॥

चापस्याद्भुतलाञ्छनोर्ध्वममलं तूणीर - लक्ष्माद्भुतं
राजन् ! पश्य मनोहरं प्रियतरं सर्वाघहृद्दर्शनम् ।

शीलक्षान्तिदयादिधर्मसचिवा बाणस्वरूपान्विता

ह्यस्मिन्नेव वसन्ति विद्धि तदिमां धर्मप्रधानाश्रयाम् ॥५८॥

हे राजन्! धनुषके अद्भुत चिन्हसे ऊपर, स्वच्छ मनोहर, परमप्रिय, दर्शनसे समस्त पापोंका नाश करनेवाले इस आश्चर्यमय "तूणीर" (तरकस) के चिन्हका दर्शन कीजिये, इसी चिन्ह में बाण के स्वरूपसे युक्त हो, धर्मके मन्त्री शील, क्षमा, दया आदिक निवास करते हैं, अतः आप इन श्री ललीजीको धर्मकी प्रधान कारण जानिये ॥ ५८ ॥

पश्योर्ध्वंनृप ! राजहंससुभगश्वेतारुणं लाञ्छनं

तूणीरस्य सुलक्षणो विरतिदं विज्ञानधामप्रदम् ।

ध्यातृभ्यः प्रददाति चात्मसमतां हंसावताराश्रयं

विज्ञानाम्बुधिसीकरांशलवतोऽस्या ज्ञानिनो ये हि ते ॥५९॥

तूणीर चिन्हसे ऊपर वैराग्य देनेवाले, विज्ञान तथा भक्तिके प्रदाता, हंसावतारके कारण, श्वेत और लालरङ्गके सुन्दर राजहंसके चिन्हको देखिये, यह चिन्ह ध्यान करनेवालों को अपनी समता प्रदान करता है, अर्थात् अपने समान केवल सार-ग्रहण करने की सहज वृत्तिवाला बना देता है, अतः इस चिन्हसे मुझे तो यह निश्चय होता है कि सभी ज्ञानी, इन श्रीललीजीके विज्ञान-सागरके सीकर मात्र अंशसे ही ज्ञानवान् कहाते हैं ॥ ५९ ॥

संसिद्धिप्रदमस्ति लोचनवतां श्रीचन्द्रिकालाञ्छनं

पश्येदं नियतेक्षणः कलरुचिं हंसोर्ध्वमात्मप्रदम् ।

ध्यायद्भ्यः सविवेकभक्तिविरतित्रैलोक्यराज्यप्रदं

पुत्रीयं चिदचिद्विलक्षणपरमाऐश्वरी तावकी ॥६०॥

हे राजन्! ध्यान करनेवालेको ज्ञान, भक्ति, वैराग्यके सहित तीनों लोकोंका राज्य प्रदान करनेवाले आत्मज्ञान प्रदायक, मनोहर कान्तिसे युक्त, नेत्रवालोंके ससिद्धि (भगवत्प्राप्तिस्वरूपा कृतार्थता) प्रदान करनेवाले हंस चिन्हसे ऊपर श्रीचन्द्रिकाके इस चिन्हका एकाग्र दृष्टिसे दर्शन कीजिये, आपकी ये श्रीललीजी चेतन-मायासे विलक्षण, परब्रह्म सर्वेश्वर श्रीसाकेताधीश प्रभुकी प्रधान प्राणवल्लभा हैं ॥ ६० ॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

इत्युक्त्वाऽसौ द्रुहिणतनयो भावमत्तो नरेन्द्रं
स्वामिन्या मे चरणयुगलं लोचनाभ्यां च मूर्द्ध्ना।
भूयो भूयः सरसहृदयः संस्पृशन्साश्रुनेत्रः
प्रापानन्दं परममिति तद्वर्णितो भक्तिभावः ॥ ६१ ॥

इति सप्तत्रिंशत्तमोऽध्याय ।

—: मासपारायण दशवां विश्राम :—

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीब्रह्माजीके पुत्र भक्ति रस युक्त हृदयवाले वे श्रीनारद भगवान्, श्रीमिथिलेशजी महाराजसे इस प्रकार निवेदन करके अपने भाव में मस्त होकर हमारी श्री स्वामिनीजूके युगल श्रीचरणकमलोंको अपने नेत्रोंसे, शिरसे बार बार सम्यक् प्रकारसे स्पर्श करते हुये सजल नेत्र हो, परम आनन्द (भगवदानन्द) को प्राप्त हुये, हे प्यारे ! इस प्रकार मैंने श्रीनारद जीके भक्तिभावको आपसे वर्णन किया है ॥ ६१ ॥

अथाष्टत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३८॥

श्रीदेवर्षि नारदजीके द्वारा श्रीकिशोरीजी के ६४ हस्तकमल चिन्हों का वर्णन।

श्रीस्नेहपरोवाच।

अथ चित्तं समाधाय सुरर्षिर्लोकपूजितः।
हस्तरेखा मुदाऽपश्यत्सुताया मिथिलेशितुः ॥ १ ॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! उसके बाद समस्त लोकोंसे पूजित, देवर्षि श्रीनारदजी महाराज अपने चित्तको सावधान करके श्रीमिथिलेशललीजूके हस्तकी रेखाओंका दर्शन करने लगे १

पुनस्ता दर्शयन् भूपं हस्तरेखा मनोहराः।
कृतकृत्य उवाचासौ प्रेमनिर्भरचेतसा ॥२॥

पुनः कृतकृत्य होकर हस्त रेखाओंका दर्शन कराते हुये, वे प्रेम निर्भर चित्तसे श्रीमिथिलेशजी महाराजसे बोले ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच।

ऊर्ध्वरेखा त्वियं ज्ञेया सुतायाः सव्यहस्तके।
तस्या वामस्थितानां च नामानि वदतः शृणु ॥३॥

हे राजन्! श्रीललीजूके बायें हस्तकमलमें यह "ऊर्ध्वरेखा" का चिन्ह जानो, इस रेखाके बाईं ओर स्थित चिन्हों के नामोंको मेरे कथन द्वारा श्रवण कीजिये ॥३॥

मूले चिन्तामणेश्चेदं कामधेनोरिदं तथा।
हयस्य कुञ्जरस्येदं घटस्येदं च लक्ष्मणम् ॥ ४ ॥

इस ऊर्ध्वरेखाके मूल भागमें यह "चिन्तामणि" का चिन्ह है तथा यह कामधेनु का है और यह घोड़ेका, यह हाथीका तथा यह घड़ेका चिन्ह है ॥४॥

षट्कोणस्य लतायाश्च चक्रस्येदं च लक्षणम्।
ध्वजस्येदं शुभं चिह्नमिदं वज्रस्य लक्ष्मणम् ॥ ५ ॥

यह षट्कोणका और यह लताका तथा यह चक्रका, यह मङ्गलमय चिन्ह ध्वजका और यह चिन्ह वज्रका है ॥५॥

पञ्चकोणस्य पद्मस्य मन्दिरस्य शुभावहम्।
इदं चिह्नमदःपश्य महाभाग ! शरस्य च ॥ ६ ॥

हे महाभाग ! (परम भाग्यशाली!) यह चिन्ह पञ्चकोणका, यह कमलका, यह मङ्गल पहुँचाने वाला मन्दिरका चिन्ह है, इस बाणके चिन्हका दर्शन कीजिये ॥६॥

खड्गस्येदं शुभं चिह्नं त्रिकोणस्य तथैव च।
पश्य राजंस्त्रिशूलस्य ततो मीनस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥

यह चिह्न खड्गका और यह शुभ चिन्ह त्रिकोणका है। हे राजन्! तदनन्तर इस त्रिशूलके और इस मछलीके चिन्हका दर्शन कीजिये ॥ ७ ॥

नात ऊर्ध्वं मया कोऽपि दृश्यतेऽङ्कः प्रपश्यता।
दक्षिणस्योर्ध्वरेखायास्ततो लक्ष्माणि वर्णये ॥ ८ ॥

इस मीनके चिह्नसे आगे और कोई चिह्न मेरे देखने में नहीं आ रहा है, अत एव अब ऊर्ध्व रेखाके दाहिने भागके चिन्होंको वर्णन करता हूं ॥८॥

राजन्नेतद्रवेश्चिह्नमेतदिन्दोर्मनोहरम्।
इदं तु कुण्डलस्यास्ति पश्य भूपशिरोमणे ! ॥ ९ ॥

हे भूपशिरोमणि ! हे राजन् ! देखिये यह सूर्यका चिन्ह है, यह मनोहर चिन्ह चन्द्रमा का और यह कुण्डलका चिन्ह है ॥९॥

अष्टकोणस्य वै चेदं प्रसन्नस्य ततः शुभम् ।
तिलस्येदं च रम्भाया इदं पश्य सुलक्षणम् ॥ १० ॥

इस अष्टकोणके चिन्हको अवलोकन कीजिये पश्चात् मङ्गलमय फूल और रम्भा (केला) के सुन्दर चिन्हका दर्शन कीजिये ॥ १० ॥

ततश्चेदं किरीटस्य स्रजश्चिह्नमतः परम् ।
संप्रपश्य महाभाग ! फलस्येदं च लक्षणम् ॥ ११ ॥

हे महाभाग ! उसके बाद इस किरीटके चिन्हका, उसके आगे मालाके चिह्नका और इस फल के चिन्हका आप भली प्रकारसे दर्शन कीजिये ॥११॥

इदं भाति गिरीशस्य ग्रामस्येदं च लक्षणम् ।
पश्य पश्य शुभं लक्ष्म चन्द्रिकाया मनोहरम् ॥ १२ ॥

यह गिरिराजका चिन्ह और यह ग्रामका चिह्न प्रतीत हो रहा है । हे राजन् चन्द्रिकाके इस मनोहर मङ्गलकारी चिन्हका दर्शन कीजिये ॥१२॥

मध्यमा शङ्खचिह्नेन चक्रचिह्नेन चापराः ।
अङ्गुल्यो वामहस्तस्य शोभमाना मनोहराः ॥ १३ ॥

श्रीललीजीके इस बायें हाथकी मध्यमा शङ्ख चिह्नसे और बाकी ४ अङ्गुलियाँ चक्रचिह्नसे सुशोभित होती हुई, मनको हरण कर रही हैं ॥ १३ ॥

अथ त्वं दिव्यचिह्नानि सुतायाः सुमहामते !
वामतश्चोर्ध्वरेखायाः पश्य दक्षकराम्बुजे ॥ १४ ॥

हे सुमहामते ! अब आप श्रीललीजीके दाहिने हाथकी ऊर्ध्वरेखाके बायें भागकी ओरके दिव्य चिह्नोंका दर्शन कीजिये ॥ १४ ॥

मूले कङ्कणस्येदं कदम्बस्य च लक्ष्मणम् ।
ततश्चापस्य विज्ञेयमङ्कुशस्य ततः परम् ॥ १५ ॥

ऊर्ध्वरेखाके मूल भागमें यह कङ्कणका चिन्ह और यह कदम्बका चिन्ह है तत्पश्चात् धनुष का और उसके आगे अङ्कुशका चिन्ह जानना चाहिये ॥१५॥

मलिन्दस्य तुलायाश्च तथा केशस्य लाञ्छनम् ।
नृमुण्डस्य ततः पश्य स्यन्दनस्य ततः शुभम् ॥ १६ ॥

आगे भौंरेका चिन्ह और तुलाका चिन्ह है तथा केशका व नर मुण्डका चिन्ह है, उसके पश्चात् मङ्गलमय रथके चिन्हका दर्शन कीजिये ॥१६॥

घटस्येदं शुभं चिह्नं मणिमालस्य वै ततः ।
शक्तेस्तोमरस्येदं पयोधेर्भूपशेखर ! ॥१७॥

उसके आगे यह घड़ेका शुभ चिन्ह है उसके पश्चात् मणिमालाका चिन्ह है । हे भूपशेखर (राजशिरोमणे !) यह शक्तिका, यह तोमरका और यह समुद्रका चिन्ह है ॥१७॥

लाञ्छनं रत्नगर्भायाः शुकस्येदमतः परम् ।
केतोः शुभमिदं पश्य नलिन्याः पङ्कजस्य च ॥१८॥

यह चिन्ह पृथिवीका है इसके आगे यह तोतेका और यह ध्वजाका मङ्गलमय चिन्ह है, कमल समूहसे युक्त इस सरोवरके और इस कमलके चिन्हका आप दर्शन कीजिये ॥१८॥

दक्षिणे चोर्ध्वरेखायाः शुभं शङ्खस्य लक्षणम् ।
भानुविम्बस्य विज्ञेयमिदं तूर्ध्वं दरस्य च ॥१९॥

ऊर्ध्व रेखाके दाहिनी ओर यह शङ्खका चिन्ह है, और शङ्ख चिन्हसे ऊपरकी ओर इसे सूर्यके बिम्बका चिन्ह जानिये ॥१९॥

पारिजातस्य वै चेदं मञ्जर्या इदमेव च ।
अशोकस्य मृगस्येदं मीनस्य शुभलाञ्छनम् ॥२०॥

यह चिन्ह कल्पवृक्ष और यह मञ्जरीका चिन्ह है, यह मृगका और यह चिन्ह अशोकका है तथा यह शुभ चिन्ह मछलीका है ॥२०॥

पुनः इस सिंहके चिन्हका दर्शन कीजिये तदनन्तर तारेके चिन्हका और इस नदीके चिन्हका आप दर्शन कीजिये ॥२१॥

तत ऊर्ध्वं सुधाकुण्डमिदं पश्य मनोहरम् ।
बालग्लाव इदं तस्मात्परं चिह्नं न दृश्यते ॥२२॥

उस नदी चिन्हसे ऊपर इस मनोहर सुधाकुण्डका और इस बालचन्द्र (द्वितीया तिथिके चन्द्रमा) का आप दर्शन कीजिये। उस चिन्हसे आगे और कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता है ॥२२॥

अस्या दक्षकराङ्गुल्यश्चतस्रश्चक्रचिह्निताः ।
मध्यमा शङ्खचिह्नेन यथा वामकरस्य च ॥२३॥

इन श्रीललीजूके दाहिने हाथकी चारो अँगुलियाँ चक्रके चिह्नसे चिन्हित हैं और मध्यमा अँगुली बायें हाथ की मध्यमाके समान शङ्खके चिन्हसे चिन्हित है ॥ २३ ॥

आसां रुचिररेखानां फलं वक्तुं न शक्यते ।
शेषवाणीविरिञ्च्याद्यैर्यतद्भिः कल्पकोटिभिः ॥२४॥

श्रीललीजीके हस्तारविन्दकी इन रेखाओंके फलको करोड़ों कल्प तक प्रयत्न-शील रहकर हजारमुखवाले शेषजी, अनन्तमुखवाली सरस्वतीजी तथा चारमुखवाले ब्रह्माजी आदि भी वर्णन नहीं कर सकते ॥ २४ ॥

तदहं किं प्रवक्ष्यामि मुखेनैकेन मूढधीः ।
कालेनाल्पीयसा राजंस्त्वयैवैतद्विचार्यताम् ॥२५॥

सो मैं मूढ़ बुद्धि एक मुखसे स्वल्पकालमें क्या वर्णन करूं? हे राजन्! सो आप ही विचार कीजिये ॥ २५ ॥

सफलस्तव सङ्कल्पो नात्र कार्या विचारणा ।
इयं सर्वेश्वरी साक्षात्सुताभावमुपाश्रिता ॥२६॥

अत एव आपका सङ्कल्प सफल है, इसमें कुछ भी सन्देह करने की आवश्यकता नहीं। ये आपके "सुताभाव„ को ग्रहण किये हुई साक्षात् श्रीसर्वेश्वरीजी ही हैं ॥२६॥

सीतेति नाम विख्यातं प्रधानं यच्छ्रुतावपि ।
इयं तेनैव संस्कार्या नामसंस्कारकर्मणि ॥२७॥

एतदर्थ नाम संस्कारके समय इनका जो वेदमें विख्यात प्रधान "सीता" नाम है उसी नामसे इन श्रीललीजी का नाम संस्कार करना चाहिये ॥ २७ ॥

वैदेही जानकी सीता मैथिली जनकात्मजा ।
भूमिजाऽयोनिजा वीर्य-शुल्का सुनयनासुता ॥२८॥
यज्ञवेदिसमुद्भूता सीरध्वजप्रियात्मजा ।
मिथिलेशकुमारी च श्रीमिथिलेशनन्दिनी ॥ २९ ॥
निमिवंशसमुत्पन्ना विदेहतनया शुभा ।
पुण्यश्लोका परानन्दाऽऽह्लादिनी श्रीविदेहजा ॥३०॥

श्रीवैदेहीजी, श्रीजानकीजी, श्रीसीताजी, श्रीमैथिलीजी, श्रीजनकात्मजाजी श्रीभूमिजाजी, श्रीअयोनिजाजी, श्रीवीर्यशुल्काजी, श्रीसुनयनानन्दिनीजी, ॥ २८ ॥ श्रीयज्ञवेदिसमुद्भूताजी, श्रीसीरध्वजप्रियात्मजा (श्रीसुनयनात्मजा) जी, श्रीमिथिलेशकुमारीजी, श्रीमिथिलेशनन्दिनीजी ॥२९॥ श्रीनिमिवंश समुत्पन्नाजी, श्रीविदेहतनयाजी, श्रीशुभाजी, श्रीपुण्यश्लोकाजी, श्रीपरानन्दाजी, श्रीआह्लादिनी जी, श्रीविदेहजाजी, तथा श्रीजी ॥ ३० ॥

नामान्येतानि मुख्यानि सुतायास्तव सुव्रत ।
ऋषिभिः परिगीतानि भविष्यन्ति न संशयः ॥३१॥

हे सुव्रत (उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले)! आपकी ऋषिवृन्द श्रीललीजीको इन मुख्य नामों का दशो दिशाओंमें कथन करेंगे इसमें कुछभी सन्देह नहीं अर्थात् यह ध्रुव सिद्धान्त है ॥३१॥

त्वत्कीर्तिपताकेयं त्रिलोकीं मूकयिष्यति ।
प्रशंसां विद्धि नैवैतां सत्यमेव ब्रवीमि ते ॥३२॥

आपकी यह कीर्तिरूपी पताका तीनों लोकोंको अवाक् (आश्चर्य मुग्ध) कर देगी, इसे आप प्रशंसा मात्र न जानिये मैं आपसे सत्यही कह रहा हूँ ॥ ३२ ॥

देवास्तु सर्व एवेह ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।
अजस्रमागमिष्यन्ति गुप्तप्रकटरूपिणः ॥३३॥

और गुप्त व प्रकट रूपसे ब्रह्मा विष्णु आदि सभी देवगण, आपके यहाँ सदा ही आते रहेंगे ॥

प्रार्थयिष्यन्ति ते सर्वे त्वां सुदुर्लभदर्शनाः ।
दर्शनार्थं महाभाग ! सुमुख्या भिक्षुका इव ॥३४॥

हे महाभाग ! और वे अत्यन्त दुर्लभ दर्शन (ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि) देवगण आपकी सुन्दरमुखी श्रीललीजीके दर्शनोंके लिये भिखारियोंके सदृश दीनभाव पूर्वक (आपसे) प्रार्थना करेंगे ॥ ३४ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानां लोका नो रुचयेऽधुना ।
वरुणेन्द्रकुवेराणां तथा ते पश्यतां पुरीम् ॥३५॥

इस समय जिन्हें आपकी पुरीके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त है, उन्हें न ब्रह्म लोक रुचिकर है, न विष्णुलोक, न शिवलोक, न वरुण, न इन्द्र, न कुवेरका लोक ॥ ३५ ॥

नोत्सवे व्यग्रता जातेदृशी श्रीराम-जन्मनि ।
यथाऽस्या जनुपीदानीं चिन्मात्रायाः कृपादृशः ॥३६॥

हे राजन् ! जैसी ब्रह्मस्वरूपा, कृपापूर्ण कृपावलोकनी इन श्रीललीजीके जन्ममें इस समय दर्शनादिके लिये प्रेम भक्ति रसोत्पन्ना व्यग्रता(छटपटी)प्राणियोंमें हो रही है, उस प्रकारकी छटपटी श्रीरामलालजूके भी जन्मोत्सवमें न हुई थी ॥ ३६ ॥

भाग्योदयोऽस्ति नरदेव ! भवत्पुरस्य वृष्टिर्भविष्यनुदिनं खलु तत्सुखस्य ।
ध्यानास्पदं न यदभूद्यततामिदानीमप्यब्जनाभविधिशम्भुफणीश्वराणाम् ॥३७॥

हे नरदेव ! जो सुख प्रयत्नशील भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शिव, भगवान् शेष जीके ध्यानका विषय भी आजतक न हो सका, उसी सुखकी आपके यहाँ अत्यधिक रूपमें महान् वर्षा होवेगी। अतएव इस समय आपके ही पुरका सौभाग्य उदय है ॥ ३७ ॥

नूनं कृतार्थमिदमस्ति महीतलं वै त्वत्पुत्रिकापरममङ्गलजन्मनाऽद्य ।
लोका भवन्तु सकलाः ससुखं कृतार्था अस्यैव संस्तवनचिन्तनकीर्तनैश्च ॥३८॥

आज आपकी श्रीललीजीके परम मङ्गलमय प्राकट्यसे यह पृथिवीतल निःसन्देह कृतकृत्य हो गया है, अतः आपके इस पुरकी स्तुति, चिन्तन,कीर्त्तनके द्वाराही अन्य सभी लोक अनायास कृतार्थ हो जावें अर्थात् अपनी कृतार्थता प्राप्तिके लिये आपके इसी पुर (श्रीमिथिलाजी) की वे स्तुति करें, इसीका ध्यान करें, और इसीका गुणगान करें ॥ ३८ ॥

पुत्रो महीप ! सरसीरुहजन्मनोऽहं न स्यान्मृषा यदुदितं भवते मयैव ।
मन्दस्मिताऽस्तु शरणं मम वारिजाङ्घ्रिर्भद्रं हि तेऽस्तु नियताञ्जलये सदैव ३९

हे महीप ! मैं कमलसे प्रकट हुये श्रीब्रह्माजीका पुत्र हूँ, अतः जो आपसे कह चुका हूं, वह असत्य (झूठा) नहीं हो सकता। जिनके श्रीचरण, कमलके समान सुकोमल हैं और जो मन्द मन्द मुस्का रही हैं, वेही मेरी रक्षा करें तथा हाथ जोडे हुये आपके लिये सदा ही मङ्गल हो ॥३९॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

संस्पृश्य पादजलजाततलं स्वमूर्द्ध्नेत्युक्त्वा पुनस्तु भगवानृपिनारदोऽसौ।
कृत्वा विधिं सकलमेव यथावकाशं ह्यन्तर्दधे प्रिय ! विलोकयनो नृपस्य ॥४०॥

इत्यष्टत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३८॥

—: नवाह पारायण विश्राम ३ :—

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! वे ऋषि भगवान् नारदजी इस प्रकार (श्रीमिथिलेशजी महाराजसे) कहकर और अपने मस्तकसे श्रीकिशोरीजीके श्रीचरणकमलके तलवोंका सम्यक् प्रकारसे स्पर्श करके तथा अवकाशानुसार परिक्रमा स्तुति आदि सभी विधियोंको पूरी करके, श्रीमिथिलेशजी महाराजके दर्शन करते हुये वे अन्तर्हित हो गये ॥ ४० ॥

अथोनचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ॥३९॥

श्रीकिशोरीजीके दर्शनार्थ तान्त्रिक रूपसे श्रीभोलेनाथजीका श्रीमिथिलेशजी महाराजके नगरमें पदार्पण तथा श्रीकिशोरीजीकी रुदन-लीला :—

श्रीस्नेहपरोवाच।

पित्रोर्वीक्ष्य मुखाम्भोजं जानकी कुतुकान्वितम्।
मन्दं रुरोद भावज्ञा शरच्चन्द्रनिभानना ॥१॥

हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीके व श्रीपिताजीके आश्चर्य युक्त मुखचन्द्रको अवलोकन करके उनके भावको समझने वाली शरदृतुके समान प्रकाशमान जगदाह्लादवर्धक मुखवाली (श्रीकिशोरीजी उनके ऐश्वर्य भावको हरण करनेके लिये मन्द मन्द रोने लगीं ॥ १ ॥

अम्बा सुनयना तर्हि ध्वस्तैश्वर्यमतिर्द्रुतम् ।
विह्वला क्रोडमादाय ददौ तस्या मुखे स्तनम् ॥२॥

श्रीकिशोरीजीके इस रुदन लीला आरम्भ करतेही श्रीसुनयना अम्बाजीकी ऐश्वर्यबुद्धि नष्ट हो गयी, अतः विह्वला होकर श्रीकिशोरीजीको तुरत गोदमें ले, उनके श्रीमुखारविन्दमें अपना स्तन दे देती हुईं ॥ २ ॥

न पपौ क्षीरमिन्द्वास्या न च तत्याज रोदनम् ।
चिन्तामाप तदा राज्ञी कार्यमत्रेति किं मया ॥३॥

परन्तु श्रीचन्द्रमुखीजीने न दूधरा ही पान किया और न रोना ही बन्द किया इस हेतु श्रीसुनयना अम्बाजीको बड़ी चिन्ता प्राप्त हुई, कि श्रीललीजीको दूध पिलाने और हँसानेके लिये मैं क्या कर्त्तव्य करूँ ? ॥ ३ ॥

कान्तिमत्या कृतां युक्तिं निष्फलत्वमुपागताम् ।
अवलोक्य महाराज्ञी शुचा भूपमुवाच ह ॥४॥

श्रीकान्तिमती अम्बाजीकी युक्तिकोभी निष्फल हुई देखकर श्रीसुनयनाअम्बाजी शोक पूर्वक महाराजसे बोलीं ॥ ४ ॥

श्रीसुनयनोवाच ।

शरीरे दृश्यते व्याधिः पुत्रिकाया न मे प्रिय !
रुदत्येषा किमर्थं तु न चैव पिबति स्तनम् ॥५॥

हे प्यारे ! श्रीललीजीके शरीरमें कोईभी व्याधि नहीं दिखलाई दे रही है, तथापि ये किस लिये रो रही हैं, और क्यों स्तनपान नहीं कर रही हैं ? ॥ ५ ॥

दृष्टिदोषोद्भवो व्याधिर्हेतुरत्रावगम्यते ।
तत आनीयतां कोऽपि तान्त्रिको व्याधिशान्तये ॥६॥

इस विषयमें दृष्टि दोषसे उत्पन्न व्याधि ही कारण ज्ञात होरही है, इस हेतु व्याधि निवारणके लिये किसी तान्त्रिक (तन्त्र शास्त्रके विद्वान) को बुलवा लीजिये ॥ ६ ॥

न विलम्बोऽत्र कर्तव्यो भवता प्राणवल्लभ !
अर्द्धविक्षिप्तबुद्धिर्मे ह्यभूवाधुनैव हि ॥ ७ ॥

हे प्राणवल्लभ ! तान्त्रिकके बुलाने मे आपको विलम्ब करना उचित नहीं है, क्योंकि इतनी ही देर में मेरी बुद्धि आधी पागल हो गयी है ॥ ७ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

विह्वलात्स्तथेत्युक्त्वा नरदेवशिखामणिः ।
आजगाम बहिर्द्वारि तान्त्रिकान्वेषणेच्छया ॥८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीके इस कथनको सुनकर, उनसे ऐसा ही करेंगे कह कर तान्त्रिककी खोज करानेकी इच्छासे विह्वल नेत्र हो राजशिरोमणि श्रीमिथिलेशजी महाराज बाहर द्वारपर आ गये ॥ ८ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु शङ्करो भगवान् भवः ।
प्रविवेश पुरं तस्मिन् प्रस्थिते ब्रह्मसम्भवे ॥९॥

उसी समय उन श्रीनारदजीके चले जानेपर भगवान् श्रीशङ्करजी पुरमें प्रवेश किये ॥९॥

दर्शनार्थं ततो देवः सुताया मिथिलेशितुः ।
विग्रहं वेष्टितं चक्रे कन्थया वार्द्धकेन च ॥१०॥

तदनन्तर वे देव (श्रीभोलेनाथ) जी श्रीमिथिलेशदुलारीजीके दर्शनोंकी प्राप्तिके लिये गुदड़ीसे ढका हुआ और वृद्धावस्थासे युक्त अपना रूप बना लिये ॥१०॥

श्रीशिव उवाच ।

तान्त्रिको बहुकालीनः शिशूनां सर्वकष्टहा ।
आगतो दैवयोगेन व्रजाम्यद्यैव वै पुनः ॥११॥

पुनः भगवान् शिवजी बोले:–शिशुओंके समस्त कष्टोंका विनाश करने वाला मैं बहुत पुराना तान्त्रिक, आज दैवयोगसे इस नगरमें आगया हूँ और आज ही पुनः वापस चला जाऊँगा ॥११॥

अतोऽत्रत्यास्तु व लोका गुणेनैवाद्भुतेन मे ।
कुर्वन्तु शिशून्स्वान्स्वान्सर्वव्याधिविवर्जितान् ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति विज्ञापनं कुर्वन्वीथ्यां वीथ्यां पुरस्य मे ।
सप्तमावरणस्यैव समीपं विचचार सः ॥१३॥

अत एव यहाँ के निवासी मेरे उत्त (तन्त्रज्ञानरूपी) अद्भुत गुणसे अपने २ शिशुओंको समस्त व्याधियोंसे मुक्त करलेवें ॥ १२ ॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे भगवान् सदा शिवजी

इस प्रकार मेरे नगरकी गली गलीमें विज्ञापन करते हुए नगरके सातवें राजावरणके समीपमें ही विचरने लगे ॥ १३ ॥

दर्शितानां शिशूनां च सर्वबाधा व्यशोधयत् ।
कर्मणा तेन तत्ख्यातिः क्रमादन्तः पुरं गता ॥१४॥

पुनः अनेक व्याधि पीड़ित शिशुओंके माता पिता तान्त्रिक महाराजकी इस घोषणाको सुन कर, अपने अपने शिशुओंको दिखलाने लगे ! तान्त्रिक महाराज भी तुरत उनकी सभी बाधाओंको हरणकर लेते थे, उस आश्चर्यमय प्रभावके द्वारा उन श्रीतान्त्रिक महाराजकी प्रसिद्धि प्रथम आवरणसे दूसरेमें, दूसरेसे तीसरेमें तीसरेसे क्रमशः बढ़ती हुई सातवें आवरणमें पहुँचकर श्रीमिथिलेशजी महाराजके महलमें जा पहुँची ॥१४॥

तदाकर्ण्य महाराजः प्रेषयामास दक्षिकाम् ।
समानेतुं हि तं वृद्धं सखीं कार्यविशारदाम् ॥१५॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने यह बात श्रवण करके कार्य-कुशल दक्षिका नामकी सखी को उन बूढ़े (श्रीतान्त्रिक) महाराजको बुलानेके लिये भेजा ॥ १५ ॥

सा तमभ्येत्य पश्यन्ती परितः प्रणता सती ।
उवाचेदं वचः श्लक्ष्णं मुदिता नियताञ्जलिः ॥१६॥

वे श्रीदक्षिकाजी चारों ओर खोजती हुई श्रीतान्त्रिक महाराजके पास पहुँच कर उन्हें प्रणाम करती हुई, हाथ जोड़कर, मुदित हो यह प्रेम पूर्ण वचन बोलीं ॥ १६ ॥

श्रीदक्षिकोवाच ।

तान्त्रिकोऽसि यदि ब्रह्मन्शिशूनां सर्वकष्टहा ।
महाराजसुतां पश्य प्रयायान्तः पुरं मया ॥१७॥

हे ब्रह्मन् ! यदि वास्तवमें आप शिशुओंके सर्वकष्टको हरने वाले तान्त्रिक हैं तो, मेरे साथ अन्तः पुर पधारकर श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजीको देख लीजिये ॥१७॥

समाह्वयति राजा त्वां तदर्थं प्रेषिताऽस्म्यहम् ।
विलम्बो नात्र कर्तव्यस्त्वया लोकहितैषिणा ॥१८॥

श्रीललीजीको देखनेके लिये महाराज, आपको बुला रहे हैं और इसी लिये हमें वे आपके पास भेजे हैं, अतः आपको चलनेमें विलम्ब करना उचित नहीं है क्योंकि आप तो समस्त लोकका हित चाहनेवाले हैं इस हेतु शीघ्र अन्तःपुर पधारकर, आप श्रीमिथिलेशजी महाराजका हित सिद्ध कीजिये ॥१८॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

इति तस्या वचः श्रुत्वा ह्यमृतं दीनया गिरा।
प्रत्युवाच शुभां वाचं त्र्यक्षो लब्धमनोरथः ॥१६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे! श्रीदर्विकाजीकी दीन वाणी द्वारा अमृतके समान सुखद (आशापूरक) वचन श्रवण करके अपने मनोरथकी सिद्धि पाकर त्रिलोचन (श्रीभोलेनाथ) जी महाराज अपनी मङ्गलमयी वाणी बोले–॥ १६ ॥

श्रीशिव उवाच।

अहमाहूयमानोऽस्मि ? राजपुत्रीक्षणाय चेत्।
सत्यमेव त्वया सार्द्धं गम्यते गम्यतां मया ॥२०॥

अरी सखी! क्या श्रीमिथिलेश–दुलारीजीको देखनेके लिये मेरा बुलावा हो रहा है? यदि सत्य ही मुझे बुलाया जा रहा है तो मैं आपके साथ चलता हूँ आप (अन्तःपुर) चलिये ॥२०॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

इत्युक्त्वा तान्त्रिको वृद्धो मोदमानमनाः प्रिय!
तूर्णमेव तया साकमाजगाम नृपालयम् ॥२१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे! वे वृद्धे तान्त्रिक महाराज उस सखीजीसे इतना कहकर दर्शन प्राप्तिकी आशासे चित्तमें आनन्दित होते हुये वे उस सखीके सहित राजभवनमें आये ॥२१॥

राजा तं तु नमस्कृत्य कृताञ्जलिपुटः सुधीः।
स्वयमेवानयामास यत्र राज्ञी स्म चिन्तया ॥२२॥

श्रीमिथिलेशजी नमस्कार करके हाथ जोड़े हुये उन श्रीतान्त्रिक महाराजको स्वयं वहाँ ले गये जहाँ श्रीसुनयना अम्बाजी चिन्तासे युक्त विराज रही थीं ॥ २२ ॥

सा समुत्थाय तं वृद्धं स्वागतेनाभिनन्द्य च।
प्रणम्य शिरसा तस्मै दर्शयामास पुत्रिकाम् ॥२३॥

श्रीसुनयना अम्बाजी उठकर स्वागतके द्वारा उन वृद्ध श्रीतान्त्रिक महाराजको प्रसन्न करके, तथा सिरके द्वारा उन्हें प्रणाम कर श्रीकिशोरीजीका दर्शन कराया ॥ २३ ॥

स तु दृष्ट्वैव तद्रूपं स्वामिन्या मम शैशवम्।
तत्क्षणं शङ्करो देवः प्रेममूर्च्छामुपागमत् ॥२४॥

भगवान् शङ्कर (तान्त्रिक) जी महाराज मेरी श्रीस्वामिनीजूके उस शिशुरूपका दर्शन करते ही तत्क्षण प्रेममूर्च्छा को प्राप्त हो गये ॥ २४ ॥

तान्त्रिकस्यापि तद्रूपं दृष्ट्वा मे जननी तदा ।
समुवाच वचो भूयः पितरं मे शुभाक्षरम् ॥२५॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजी उन श्रीतान्त्रिक महाराजकी उस दशाको देखकर श्रीपितासे मङ्गलमय अक्षरोंसे युक्त वचन बोलीं–॥ २५ ॥

श्रीसुनयनोवाच ।

को व्याधिरत्र संजातः मद्गेहे सुमहान् बली ।
येन युक्ताऽस्ति मे पुत्री प्राणैरपि गरीयसी ॥ २६ ॥

हे नाथ ! यह कौन महाबलवान् व्याधि हमारे महलमें उत्पन्न हो गयी है, जिसने हमारी प्राणोंसे परम प्रिय श्रीललीजीको पकड़ लिया है ॥ २६ ॥

तां चिकित्सितुमायातो योऽधुना तान्त्रिको महान् ।
सोऽपि नूनं तदाक्रान्तो नष्टसञ्ज्ञ इवेक्ष्यते ॥२७॥

हा जो कि स्वयं समस्त व्याधियोंको क्षण-मात्रमें नष्ट कर देते थे वे महान् प्रसिद्ध ये श्रीतान्त्रिक जी महाराज उन श्रीललीजीका इलाज करनेके लिये पधारे, उन्हें भी इस दुष्ट व्याधिने पकड़ ही लिया जिससे ये मृतकके सदृश दिखाई दे रहे हैं ॥२७॥

क उपायोऽत्र कर्त्तव्यस्तान्त्रिकव्याधिशान्तये ।
न म्रियेत यथा चायं तथोपायो विधीयताम् ॥२८॥

अब इन श्रीतान्त्रिक महाराजकी व्याधि-निवृत्तिके लिये कौन उपाय किया जावे ? प्यारे ! जैसे यह महलमें ही न मर जावें, ऐसा उपाय विचारिये ॥ २८ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमेव ततस्तस्यां वदन्त्यां कृपणं वचः ।
लब्धदेहस्मृतिर्देवो बभूवोन्मीलितेक्षणः ॥२९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! इसके बाद उन श्रीअम्बाजीके इस प्रकारके दुःखपूर्ण वचनोंके कहते ही श्रीभोलेनाथजीको अपने देहकी सुधि प्राप्त हुई, अतः उन्होंने अपनी आँखें खोलीं ॥

तमपृच्छन्महाराज्ञी कच्चित्तान्त्रिकसत्तम !
सर्वव्याधिहरं व्याधिस्त्वामपि नैव मुञ्चति ॥ ३० ॥

तब महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जी ! श्रीतान्त्रिक महाराजसे बोलीं–हे श्रीतान्त्रिक शिरोमणि महाराज ! क्या सम्पूर्ण व्याधि हरनेवाले आपको भी, व्याधि नहीं छोड़ती है ? अर्थात् क्या आपको भी पकड़ लेती है ? । ३० ॥

दिष्टया व्याधिविमुक्तोऽसि दिष्टया पश्यामि जीवितम् ।
दिष्टया न च मृतोऽस्यत्र व्याधिपीडाप्रपीडितः ॥३१॥

बड़े सौभाग्य की बात है, जो आपको व्याधिने छोड़ तो दिया, और अपने सौभाग्य-वश ही आपको इस समय में जीवित देख रही हूँ, मेरे बड़े सौभाग्यकी बात है, जो आप व्याधिकी पीड़ासे पीड़ित होकर यहीं (महल में) मर नहीं गये ॥ ३१ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तन्निशम्य वचो वृद्धस्तान्त्रिको वाक्यकोविदः ।
महाराज्ञीमुवाचेदं शृणु मातर्वचो मम ॥३२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! वाणीका अर्थ समझने में परम चतुर, वृद्ध श्रीतान्त्रिक महाराज श्रीमहारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जी से यह बोले–माताजी ! मेरे वचनोंको श्रवण कीजियेः–

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

सर्वव्याधिविमुक्तोऽहं वृद्धः सर्वत्र सर्वदा ।
तन्त्रमन्त्रप्रभावेण गुरुदेवप्रसादतः ॥ ३३ ॥

अरी मइया ! मैं वृद्ध गुरुदेवकी कृपा और तन्त्र मन्त्रके प्रभावसे सदा सर्वत्र सम्पूर्ण व्याधियों से मुक्त हूँ, अतः मुझे कोई भी व्याधि पकड़ नहीं सकती ॥ ३३ ॥

ध्यानयोगेऽपि मे मातर्व्याधिशङ्का त्वया कृता ।
धन्यं तवास्ति माधुर्यं महासौभाग्यभूषिते ॥३४॥

श्रीअम्बाजी यह सुनकर उनकी ओर देखने लगीं कि अभी तो व्याधिकी पीड़ासे मर रहे थे और कहते हैं कि हमको कोई भी व्याधि पकड़ नहीं सकती । श्रीअम्बाजीके इस हृदयगत भावको समझकर श्रीतान्त्रिक महाराज (भोलेनाथ) जी बोलेः–हे महासौभाग्यभूषिते श्रीअम्बाजी ! आपके माधुर्य गुणको धन्यवाद है, जिसके कारण आप मेरे ध्यान-योगमें भी व्याधिकी शङ्का कर बैठीं ।

इसपर श्रीअम्बाजी पुनः शङ्का प्रकट करती हैं कि–हे महाराज ! मैंने आपको अपनी श्रीललीजीकी व्याधिहरण करनेके लिये बुलाया था न कि ध्यान करनेके लिये ? जो यहाँ आप ध्यान करने बैठ गये, अर्थात् इस समय ध्यान करनेका कोई प्रसङ्ग ही न था, इस पर श्रीभोलेनाथजी उत्तर देते हैं ॥३४॥

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

दृष्ट्वा त्वत्पुत्रिकाव्याधिं गुरुदेवः स्मृतो मया ।
तेन यद्दर्शितं तन्त्रं तत्तु मे शिरसि स्थितम् ॥३५॥

अरी मइया ! आपकी श्रीललीजीकी व्याधिको देखकर उसकी निवृत्तिके लिये उपायकी जिज्ञासासे मैंने अपने श्रीगुरुदेवका ध्यान किया था सो ध्यानमें उन्होंने जो तन्त्र मुझे दिखलाया है, वह मेरे शिरमें विराजमान है ॥ ३५ ॥

तेनेयं व्याधिनिर्मुक्ता क्रियते पश्य तत्क्षणम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाङ्गी मया तन्त्रविपश्चिता ॥३६॥

देखिये, तन्त्र-शास्त्रको जानने वाला मैं उस तन्त्रके प्रभावसे तपाये सुवर्णके समान गौर अङ्ग वाली आपकी श्रीललिजीको तत्क्षण अभी व्याधि मुक्त किये देता हूँ ॥ ३६ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युक्त्वा त्रिःपरिक्रम्य सोऽप्यस्या भगवाञ्छिवः ।
स्वशिरः पादपाथोजतलयोः संन्यवेशयत् ॥३७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! भगवान् शिव (तान्त्रिक) जी श्रीअम्बाजीसे इतना कह कर तथा तीन बार परिक्रमा करके इन श्रीकिशोरीजीके श्रीचरणकमलके तलवोंमें, अपना सिर रख दिये ॥ ३७ ॥

तन्निरीक्ष्य महाराज्ञी जगादेदं हि तं वचः ।
किमेतत्क्रियते कर्म त्वया योगिन्नशोभनम् ॥३८॥

सो देखकर महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जी उन श्रीतान्त्रिक महाराजसे बोलीं–हे योगीजी महाराज ! यह क्या आप अयोग्य कर्म कर रहे हैं ? ॥ ३८ ॥

त्वं वृद्धस्तान्त्रिको विद्वान् ब्राह्मणो योगिसत्तमः ।
अहं चात्रकुलोत्पन्ना मदीयेषा सुता यतः ॥३९॥

क्योंकि आप एक तो वृद्ध दूसरे तन्त्र-शास्त्रके विद्वान्, तीसरे ब्राह्मण,चौथे परम योगी हैं और मेरा जन्म क्षत्रिय वंशमें हुआ है अतः ये श्रीललीजी मेरी पुत्री होनेके कारण क्षत्रिय वंशकी हैं ३९

आशीर्वादप्रदानं हि तस्यै परमशोभनम् ।
त्वादृशां योगिनामस्या न तु पादाभिवादनम् ॥४०॥

एतदर्थ आप सरीखे योगियोंको इन श्रीललीजूके लिये आशीर्वाद प्रदान करनाही परम मङ्गलकारी व उत्तम है न कि चरणोंमें प्रणाम करना उचित है ॥ ४० ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तामुवाच ततो योगी मातरेतद्ब्रवीपि किम् ।
मया तन्त्रविधिश्चायं क्रियते नाभिवादनम् ॥४१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीको रुष्ट होते देखकर योगी (श्रीतान्त्रिक) महाराज उनसे बोले:-अरी मइया ! आप यह क्या कह रही हैं ? मैं श्रीललीजीके श्रीचरणकमलों को प्रणाम नहीं कर रहा हूँ, मैं तो अपने तन्त्र की विधी कर रहा हूँ ॥ ४१ ॥

प्रत्यवायकरं विद्धि कुर्वाणे तान्त्रिके विधौ ।
शब्दस्योचारणं मातस्ततस्तूष्णीमुपाव्रज ॥४२॥

मइया तन्त्रकी विधि करते समयमें बोलना विघ्नकारी जानिये, इस हेतु इस समय आप चोलिये, नहीं मौन रहें ॥ ४२ ॥

इदानीमेव संहृष्टा स्मयमानमुखाम्बुजा ।
कुलोद्योतकरीयं ते पयःपानं विधास्यति ॥४३॥

मेरे तन्त्रके प्रभावसे वंश उजागरी आपकी ये पूर्ण हर्षयुक्त, मुस्काते हुये मुखकमल वाली श्रीललीजी इसी समय पयः (दूध) पान करेंगी ॥ ४३ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वा ततो मौनी यतचित्तो महेश्वरः ।
तुष्टुवे मनसैवेनां वृद्धतान्त्रिवेषधृक् ॥ ४४ ॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! इस प्रकार श्रीअम्बाजीसे कहकर बूढ़े तान्त्रिकका वेष धारण किये हुये महेश्वर (श्रीभोलेनाथ) जी महाराज मौन व एकाग्रचित्त होकर मनकेही द्वारा श्रीकिशोरीजीकी स्तुति करने लगे ॥ ४४ ॥

श्रीतान्त्रिकउवाच ।

जय जय शिशुरूपे ! तप्तचामीकराभे ! विमलकमलनेत्रे ! पूर्णशीतांशुवक्त्रे ! निखिलभुवनजीवानन्दनिःश्रेयसे श्रीजनकनृपतिगेहे क्रीडमाने प्रसीद ॥४५॥

ततस्तस्मिन्महादेवे शिवे लब्धमनोरथे ।
उत्थिते स्वामिनीयं मे संप्रहृष्टमुखी बभौ ॥ ५४ ॥

इस हेतु उन प्राप्त-मनोरथ, देवश्रेष्ठ, श्रीभोलेनाथजीके उठते ही हमारी ये श्रीस्वामिनीजू पूर्ण-प्रसन्न मुखी हो गयीं ॥ ५४ ॥

तदुद्वीक्ष्य महाराज्ञीं तान्त्रिकोत्तमवेषधृक् ।
पश्यैतां व्याधिनिर्मुक्तां सुतां तन्त्रेण मेऽब्रवीत् ॥५५॥

सो देखकर उत्तम तान्त्रिकका वेष धारण किये हुये मङ्गल स्वरूप (श्रीभोलेनाथ) जी महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जीसे बोले:-हे मइया ! मेरे तन्त्रके द्वारा व्याधि निर्मुक्त हुई इन अपनी श्रीललीजीका दर्शन कीजिये ॥ ५५ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तन्निशम्य तथा दृष्ट्वा सुप्रसन्नाननात्मजाम् ।
ददौ स्तनं मुदा राज्ञी पुत्रिकायाः शुभानने ॥५६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! सो सुनकर तथा श्रीललीजीको पूर्ण प्रसन्नमुखी देखकर रानी (श्रीसुनयना अम्बा) जी श्रीललीजीके मुखमें अपना स्तन दे देती हुई ॥ ५६ ॥

गृहीत्वा पाणिना तत्तु पपाविन्दुनिभानना ।
प्रजहर्ष ततो राज्ञी राजा चास्तमनोज्वरः ॥५७॥

उस स्तनको अपने हाथसे पकड़कर श्रीचन्द्रमुखीजी पीने लगीं, उसके पीनेसे शोक रूपी रोगसे रहित हो श्रीसुनयना अम्बाजी तथा श्रीमिथिलेशजी महाराज परम हर्षको प्राप्त हुये ॥५७॥

महानन्दोत्सवो जातस्तदा भूपतिमन्दिरे ।
पिबन्त्यां दुग्धमप्यस्यां सुस्मितायामसुप्रिय ! ॥५८॥

हे प्राणप्यारे ! तब इन श्रीकिशोरीजीके मुस्काने और दूध पीने पर श्रीमिथिलेशजी महाराजके महलमें महान् आनन्दोत्सव प्रकट हुआ ॥५८॥

ततो राजा च राज्ञी च संप्रहृष्टान्तरात्मना ।
तं प्रणम्य महात्मानं तान्त्रिकं प्रशशंसतुः ॥५९॥

पश्चात् पूर्ण प्रसन्न हृदयसे श्रीमिथिलेशजी व श्रीसुनयनाअम्बाजी प्रणाम करके, उन महात्मा तान्त्रिकजी महाराजकी प्रशंसा करने लगे ॥५९॥

श्रीदम्पत्यूचतुः ।

आवयोर्भाग्यशीलत्वात्साम्प्रतं ते शुभागमः ।
नमस्ते योगिनां श्रेष्ठ ! महातान्त्रिकसत्तम! ॥६०॥

हे तन्त्रशास्त्रके सुयोग्य विद्वानों में परम श्रेष्ठ ! तथा योगियों में उत्तम ! हमारे भाग्य की विशेषतासे ही इस समय आपका शुभागमन हुआ है, अतः आपके लिये हम दोनों नमस्कार करते हैं ॥ ६० ॥

न मनुष्योऽसि देवोऽसि निश्चयो मे प्रजायते ।
कर्मणाऽनेन भो ब्रह्मन् ! यदृच्छयाऽऽगमनेन च ॥६१॥

हे ब्रह्मन् ! तन्त्रविद्या द्वारा श्रीललीजीको व्याधि निर्मुक्त कर देनेके इस कर्म द्वारा तथा आवश्यकता पड़ते ही अकस्मात् यहाँ आ जानेसे हमें पूर्ण निश्चय हो रहा है कि आप मनुष्य नहीं देवता हैं ॥ ६१ ॥

प्रार्थयाव इदं किं ते करवाव समर्चनम् ।
कृपया तद्भवान्प्रीतो ह्यनुज्ञां दातुमर्हति ॥६२॥

हम दोनों आपसे प्रार्थना करते हैं, कि आपकी क्या पूजा करें ? सो कृपा करके प्रसन्न हो आप हमें आज्ञा प्रदान कीजिये ॥ ६२ ॥

इदं राज्यं पुरं कोषो भवनं हेमनिर्मितम् ।
यदन्यदपि मे तत्तद् भवतेऽस्ति समर्पितम् ॥६३॥

यह राज्य, पुर, कोष, सुवर्णसे बना हुआ भवन तथा और भी जो कुछ है, सो आपके लिये हमने समर्पण कर दिया ॥ ६३ ॥

सोपहासं यदुक्तं स्यादप्रियं च तथैव ते ।
क्षन्तुमर्हसि योगेश ! तच्छोकातुरचेतसा ॥६४॥

तथा हे योगेश ! (योगपर पूर्णाधिकार रखनेवाले) श्रीतान्त्रिकजी महाराज ! शोक व्याकुल चित्तसे उपहास युक्त व अप्रिय वचन, जो मेरे कहनेमें आगये हों, उन्हें आप क्षमा ही करने के योग्य हैं ॥ ६४ ॥

श्रीरत्नेश्वरोवाच ।

एतदुक्तं वचः श्लक्ष्णं दम्पत्योर्गद्गदाक्षरम् ।
प्रत्युवाच समाश्रुत्य लक्ष्मवृद्धवपुः शिवः ॥६५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! इस प्रकारके विनम्रभाव युक्त दोनोंके गद्गद अक्षरमय कहे हुये वचनोंको सुनकर, बनावटी वृद्ध शरीरवाले श्रीभोलेनाथजी महाराज बोले:-॥६५॥

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

अहं तु तान्त्रिकः सिद्धो गुरुदेवानुकम्पया ।
यदृच्छया पुरं प्राप्तस्त्वयाऽऽहूतोऽत्र चागमम् ॥६६॥

श्रीगुरुदेवजी की कृपासे मैं सिद्ध तान्त्रिक हूँ, सो अकस्मात् आपके पुरमें चला आया था, पुनः आपके बुलाने पर, यहाँ आपके महल में आया हूँ ॥ ६६ ॥

प्राप्तया विद्यया पुत्री तावकीयं शुभानना ।
युवयोः पश्यतोरेव रोगमुक्ता मया कृता ॥६७॥

और आप दोनोंके देखते हुये, अपनी प्राप्त की हुई तन्त्रविद्याके द्वारा आपकी इन मङ्गलमुखी श्रीललीजीको मैंने व्याधिमुक्त कर दिया ॥ ६७ ॥

न काङ्क्षे युवयो राज्यं धनं कोषं पुरं गृहम् ।
युवाभ्यामर्प्यते कृत्स्नं यद् दत्तः स्म हि मे युवाम् ॥६८॥

मैं न आपके राज्यको चाहता हूँ न आपके धन कोष, पुर, महलकी ही इच्छा करता हूँ अत एव आप दोनोंने मुझे जो अर्पण किया, वह मैं आप ही दोनोंको प्रसादीके तौर पर वापस करता हूँ ॥ ६८ ॥

श्रीदम्पत्यूचतु ।

सन्तोषाय प्रभो ! ग्राह्यं भवता वस्तु किञ्चन ।
आवयोर्याचतोः पुत्रीमव्ययामव्यथाङ्कुरु ॥६९॥

दोनों बोले:-हे प्रभो ! हम याचकों के सन्तोषके लिये आपको कुछ वस्तु स्वीकार करना ही उचित है और श्रीललीजीको सदा एकरस रहनेवाली, सम्पूर्ण बाधाओंसे रहित कर दीजिये ॥६९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमाशंसितो भूयः पुनस्ताभ्यां कृताञ्जली ।
उवाच भावसन्तुष्टस्तान्त्रिकोऽसौ सुदम्पती ॥७०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! इस प्रकार बार बार दोनोंसे प्रार्थित होनेपर उनके भावसे सन्तुष्टहो, वे श्रीतान्त्रिक महाराज हाथजोड़े हुये उन दोनों (श्रीअम्बाजी व पिताजी)से पुनः बोले:-

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

यदि प्रदातुं हृदये स्पृहा वां देयं सुवस्त्रं सुतया धृतं मे ।
त्यक्त्वा विचारं सकलं युवाभ्यां वाग्गौरवेणैव च मत्प्रियाय ॥७१॥

यदि आप दोनोंके हृदय में मुझे कुछ देने की ही इच्छा है, तो आप दोनों ही और सब विचार छोड़कर, मेरी वाणीका गौरव मानकर, मेरी प्रसन्नताके लिये श्रीललीजीका धारण किया हुआ वस्त्र प्रदान कीजिये ॥ ७१ ॥

पुत्रीयमम्भोजदलायताक्षी सुकोमलैः पादकराम्बुजैः स्वैः ।
संस्पर्शनान्मे शिरसो नरेन्द्र ! नित्याऽन्यथा स्यान्मम तन्त्रयोगात् ॥७२॥

हे राजन् ! आपकी ये कमललोचना श्रीललीजी अपने कमलके समान सुकोमल दोनों हाथों व पावोंके द्वारा मेरे शिरको स्पर्श करनेसे तन्त्रके योगके प्रभावसे सदाके लिये रोग रहित हो जावेंगी ॥ ७२ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्येवमुक्तेन तदा नृपेण प्रादायि तस्मै तनयोत्तरीयम् ।
वृद्धाय तेनापि तदूरुभक्त्या नीतं शिरोमङ्गलमण्डनत्वम् ॥७३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! इस प्रकारकी आज्ञा पाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीललीजीकी ओढ़ी हुई चादर उन वृद्ध श्रीतान्त्रिक महाराजको दी, उन्होंने उस उत्तरीय वस्त्र (चादर) को बड़ी ही श्रद्धापूर्वक अपने शिरका भूषण बना लिया ॥ ७३ ॥

पुनः स चोत्थाय महानुभावः प्रदीयते तन्त्रमिति प्रभाष्य ।
त्रिःसपरिक्रम्य शिशुस्वरूपापादाब्जयुग्मे स्वशिरो दधार ॥७४॥

पुनः वे महानुभाव (श्रीतान्त्रिक) जी महाराज उठकर "मैं तन्त्र प्रदान करता हूँ" ऐसा कह कर, तीन बार परिक्रमा करके शिशु स्वरूपा (श्रीकिशोरी) जीके युगल श्रीचरणकमलोंमें अपना शिर रख दिये ॥ ७४ ॥

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

निधेहि पुत्र्या मृदुपाणिपद्मे मन्मूर्ध्नि तन्त्रस्य विधिः किलायम् ।
राज्ञ्या निशम्येति कृतं तथैव श्रेयोऽर्थमस्यास्तदनुग्रहाय ॥७५॥

पुनः वे बोले:—हे मइया ! श्रीललीजीके कोमल हस्त कमलोंको मेरे शिर पर रख दीजिये,

क्योंकि मेरे तन्त्रकी यही विधि है। श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे! महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जीने यह सुनकर श्रीकिशोरीजीके कल्याण और उन श्रीतान्त्रिक महाराजकी कृपा प्राप्तिके लिये श्रीकिशोरीजीके दोनों करारविन्दोंको श्रीतान्त्रिक महाराजके शिर पर रख दिया ॥ ७५ ॥

इत्थं स वै तान्त्रिकरूपधारी सम्पूर्णकामो भगवान्पुरारिः।
सुपूजितोऽस्याः शिशुरूपमाद्यं निधाय चेतस्यगमद्यथेष्टम् ॥७६॥

इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।

इस प्रकार तान्त्रिक रूप धारण किये हुये, वे पुर दैत्यको मारनेवाले भगवान् श्रीभोलेनाथजी महाराज सब प्रकारसे अपने मनोरथको पूर्ण करके श्रीअम्बाजी व श्रीपिताजीसे सम्यक् प्रकार पूजित होकर श्रीकिशोरीजीके सर्वश्रेष्ठ शिशुरूपको अपने चित्तमें विराजमान करके अपने इच्छानुकूल (स्थानको) चले गये ॥ ७६ ॥

अथचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ॥४०॥

ब्रह्मपुत्र सनकादिकों का दिग्दर्शनोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवनमें पदार्पण तथा उनकी अन्तर्धान लीला।

श्रीशिव उवाच।

एकदा नारदो योगी ब्रह्मलोकमुपागमत्।
दृष्ट्वा जनकजां सीतां सच्चिदानन्दविग्रहाम् ॥१॥

भगवान् शिवजी बोले-हे पार्वती! सत्, चित्, आनन्द (ब्रह्म) स्वरूपा श्रीकिशोरीजीका दर्शन करके, उनके श्रीचरणकमलों में अपनी चित्तवृत्तिको तल्लीन किये हुये श्रीनारदजी महाराज ब्रह्मलोकको पधारे ॥ १ ॥

कृतप्रणामं तं वेधाः सादरं विश्ववन्दितम्।
संप्रहृष्टेन्द्रियग्रामं पप्रच्छ स्निग्धया गिरा ॥२॥

वहाँ शिरके द्वारा प्रणाम किये हुये, पूर्णरूपसे प्रसन्न इन्द्रिय-समूहसे युक्त, प्रणाम करने वाले उन श्रीदेवर्षिजीसे श्रीब्रह्माजीने सादर पूर्वक स्नेहमयी वाणी द्वारा पूछा:-॥ २ ॥

श्रीब्रह्मोवाच।

वत्स। ते कुशलं ब्रूहि स्वाद्भुतानन्दकारणम्।
शृण्वतां सनकादीनामेषां त्वत्पूर्वजन्मनाम् ॥३॥

श्रीब्रह्माजी बोले:-हे वत्स! तुम्हारा कल्याण हो अपने इन बड़े भाई सनकादिकोंके सुनते हुये अपने इस अद्भुत आनन्दका कारण कहिये ॥ ३ ॥

श्रीशिव उवाच।

एवमुक्तो विधात्राऽसौ सुरर्षिः कमलोद्भवम्।
प्रत्युवाच मुदा युक्तः प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥४॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये! श्रीब्रह्माजीकी यह आज्ञा पाकर आनन्द युक्तहो, वे देवर्षि (श्रीनारद) जी महाराज कमल-सम्भव (श्रीब्रह्मा) जी को बार बार प्रणाम करके बोले ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच।

अद्याहं गतवानस्मि मिथिलां लोकविश्रुताम्।
यस्यां सर्वेश्वरी सीता बालरूपा विराजते ॥५॥

हे श्रीपिताजी! आज मैं लोक प्रसिद्ध उस श्रीमिथिलाजीको गया था, जिसमें सर्वेश्वरी (साकेत विहारिणी) श्रीसीताजी बालरूपसे विराज रही हैं ॥ ५ ॥

जन्मना सा पुरी तस्या महासौभाग्यभूषिता।
अनन्तवैभवा भाति तवाऽपि भ्रमदायिका ॥६॥

उन श्रीसर्वेश्वरीजीके प्राकट्यसे महासौभाग्यभूषिता वह श्रीमिथिलापुरी आपकोभी पूर्ण भ्रम प्रदान करने वाली, अनन्त ऐश्वर्यसे युक्तहो सुशोभितहो रही है ॥ ६ ॥

अवर्ण्या दर्शनीया च सच्चिदानन्दरूपिणी।
अवरश्रीहतेन्द्राणीवल्लभैश्वर्यजस्मया ॥७॥

और वह सत्, चित्, आनन्द (ब्रह्म) स्वरूपा, वर्णनशक्तिसे परे, दर्शन करने योग्य, अपने साधारण वैभवसे इन्द्रके ऐश्वर्य जन्य अभिमानको नष्ट करने वाली है ॥ ७ ॥

दृष्टा श्रीमैथिली सीता कोटिब्रह्माण्डनायिका।
शिशुभावं समाश्रित्य मातुरुत्सङ्गवर्तिनी ॥८॥

यहाँ शिशु भावको ग्रहण करके श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजमान, श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी बनी हुई, कोटि ब्रह्माण्ड नायिका, श्रीसीताजीका मैंने दर्शन प्राप्त किया ॥ ८ ॥

महामाधुर्यसम्पन्ना रतिकोटिमदापहा ।
लोकाभिरामा चिद्रूपा राजते साऽद्भुतेक्षणा ॥९॥

वे महामाधुर्यसे युक्त, करोड़ों रतियोंके अभिमानको नष्ट करने वाली, लोक सुन्दरी, चैतन्य-स्वरूपा, आश्चर्यमय दर्शनवाली, सर्वोत्कृष्टरूपसे सुशोभितहो रही हैं ॥ ९ ॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं कथयतस्तस्य समाधिस्थे स्वयम्भुवि ।
ब्रह्मपुत्राः समाजग्मुर्मिथिलां दर्शनातुराः ॥१०॥

श्रीशिवजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीनारदजीके इस प्रकारके कथनसे श्रीब्रह्माजीके समाधिस्थ हो जाने पर सनकादिक चारो भाई श्रीकिशोरीजीके दर्शनोंके लिये विह्वल हो श्रीमिथिलाजी आये॥१०॥

अवलोक्य पुरीं रम्यां जनकेनाभिपालिताम् ।
आनन्दं परमं याता वीतरागा जितेन्द्रियाः ॥११॥

-वे सब प्रकारकी आसक्तिसे रहित और अपनी सभी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुये चारो भइया श्रीजनकजी महाराजके द्वारा पाली (रक्षा की) हुई श्रीमिथिलापुरीका दर्शन करके परम (ब्रह्म) आनन्दको प्राप्त हुये ॥ ११ ॥

मैथिलीं द्रष्टुमिच्छन्तश्चत्वारो ब्रह्मणः सुताः ।
बालचेष्टामुपालम्ब्य चिक्रीडुः पुरबालकैः ॥१२॥

पुनः वे चतुरशिरोमणि चारो भाई श्रीमिथिलेशदुलारीजीके दर्शनोंकी इच्छा करते हुये बाल चेष्टाका अवलम्ब लेकर, नगरके बालकोंके साथ खेलने लगे ॥ १२ ॥

तेषां गवाक्षमार्गेण जनन्या कान्तदर्शनाः ।
उदीक्षिता हि ते काममकस्मात्मागलक्षिताः ॥१३॥

उन बालकोंकी माताने खिड़कीके द्वारा, पूर्वमें कभी न देखे हुये, उन मनोहर दर्शनों वाले श्रीसनकादिकोंका भली प्रकारसे दर्शन किया ॥१३॥

मुग्धा रूपश्रिया सा च सुतानां परमेष्ठिनः ।
बहिर्द्वारं समासाद्य ददर्शार्भकचेष्टितम् ॥१४॥

पुनः वे श्रीब्रह्माजीके पुत्रोंकी रूप-लक्ष्मीसे मोहित हो, द्वारके बाहर पहुँचकर, उनकी बाल चेष्टाओंको देखने लगीं ॥१४॥

ततः सा तानुपागत्य लालयन्ती ह्यनेकधा ।
सादरं परिपप्रच्छ विशदाक्षी द्विजाङ्गना ॥१५॥

उसके बाद वे ब्राह्मण पत्नी श्रीविशदाक्षीजी, उन कुमारोंके पास जाकर अनेक प्रकारसे दुलार करती हुई उनसे आदर पूर्वक पूछने लगीं-॥१५॥

श्रीविशदाक्ष्युवाच ।

के यूयं ? तनयाः कस्य ? कुत आगमनं हि वः ? ।
इति विज्ञातुमिच्छामि भद्रं वो वक्तुमर्हत ॥१६॥

श्रीविशदाक्षीजी बोलीं:-हे पुत्रो ! आपका कल्याण हो मैं यह जानना चाहती हूं कि आप चारो कौन हैं ? किसके पुत्र हैं ? और कहाँसे आये हैं ? सो आप लोगोंको कथन करना ही उचित है१६

श्रीशिव उवाच ।

तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा सादरं प्रणयान्वितम् ।
अपुष्टाक्षरया वाचा सनकाद्या वचोऽब्रुवन् ॥१७॥

भगवान् श्रीशिवजी बोले:-हे श्रीशैलकुमारीजी ! श्रीविशदाक्षीजीके प्रणय पूर्वक उस पूछे हुये प्रश्नको सुनकर चारो भइया श्रीसनकादिक, अपनी टूटी-फूटी (तोतली) वाणी द्वारा उनसे आदर पूर्वक यह वचन बोले :-॥१७॥

श्रीसनकाद्या ऊचुः ।

पद्मासनात्मजानस्मान् विद्धि क्रीडनतत्परान् ।
विस्मृतागारमार्गाश्च यदृच्छात इहागताः ॥१८॥

अरी मइया ! क्रीडा-परायण अर्थात् खेलमें लगे हुये हम चारोंको आप श्रीपद्मासनजीके पुत्र जानिये । हम लोग अपने घरका मार्ग भूल कर अकस्मात् यहाँ आ पहुँचे हैं ॥१८॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा कृपणं करुणान्विता ।
उवाच मधुरां वाचं वात्सल्यरसनिर्भरा ॥१९॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! इस प्रकार उन चारो भाइयोंके वचनोंको सुनकर श्रीविशदाक्षीजीको करुणा आगयी, अतः वे वात्सल्य रसमें डूबी हुई उनसे मधुर वाणी बोलीं:-॥१९॥

श्रीविशदाद्युवाच ।

अयं मे समयो वत्सा गन्तुं नृपतिमन्दिरम् ।
उपस्थितो हि भद्रं वः सुतैरेतैः समं शुभः ॥२०॥

हे वत्सो ! आप लोगोंका कल्याण हो, इन बालकोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवन को जानेके लिये यह मेरा निश्चित शुभ समय उपस्थित है ॥२०॥

अतो मद्भवनं गत्वा ससखाः कृतभोजनाः ।
रोचते यदि वः सार्द्धं मया यात नृपालयम् ॥२१॥

अतः यदि आप लोगोंको स्वीकार हो, तो मेरे महल पधारकर अपने इन सखाओं के साथ भोजन करके, मेरे साथ श्रीराजमहल पधारिये ॥२१॥

ततोऽहं प्रापयिष्यामि मार्गयित्वा पितुर्गृहम् ।
मातरं माऽस्तु वश्चिन्ता प्रतिजाने शुभेक्षणाः ! ॥२२॥

हे मङ्गल दर्शन वारो भइया ! वहाँ से वापस आकर मैं आपके पिताजीका भवन खोज कर आपकी माताजीके पास आप लोगोंको पहुँचा दूँगी, अतः चिन्ता न करिये यह मैं प्रतिज्ञा करके कहती हूँ ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

सानुरागमिदं वाक्यं समाकर्ण्य तयोदितम् ।
गमिष्यामस्त्वया साकमित्यूचुर्ब्रह्मसूनवः ॥२३॥

श्रीशिवजी बोलेः-हे प्रिये ! श्रीविशदावीजीके अनुराग पूर्वक कहे हुये वचनोंको श्रवण करके श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीसनकादिकजी बोलेः-भइया ! हम लोग आपके साथ-साथ राजभवन चलेंगे॥२३॥

स्वालयं तान्समादाय सा सुतैः परिवारितान् ।
भोजनैस्तर्पयामास स्वादुवद्भिः पृथग्विधैः ॥२४॥

वे विशदावीजी अपने बालकोंके सहित उनको भवनमें लाकर अनेक प्रकारके स्वादुमय भोजनोंके द्वारा उन्हें तृप्त करती हुई ॥२४॥

पुनस्तान्भूषयामास सुदिव्यैर्भूषणाम्बरैः ।
पुत्रानिव महाभागा सौरसान् विमलाशया ॥२५॥

पुनः वे शुद्ध भाव वाली महाभागा श्रीविशदावीजी अपने औरस पुत्रोंके सदृश उन ब्रह्म कुमारोंको, सुन्दर, दिव्य वस्त्र भूषणोंसे भूषित (श्रृङ्गारयुक्त) करती हुई ॥२५॥

तत्रस्ते हि तया साकं वार्यमाणा न केनचित् ।
विविशुर्मन्दिरं दिव्यं विदेहस्य मनोरमम् ॥२६॥

तत्पश्चात् उन चारो भाईयों ने किसीके भी द्वारा न रोके जाते हुये श्रीविशदाचीजीके सहित श्रीविदेह महाराजके दिव्य और मनोहर भवनमें प्रवेश किये ॥२६॥

राज्ञी सुनयना तेषां मुग्धा गाम्भीर्यसम्पदा ।
वहु सत्कारयामास लालयन्ती विलोक्य तान् ॥२७॥

श्रीसुनयना अम्बाजी चारो भाइयोंका दर्शन करके, उनकी गम्भीरता रूपी सम्पत्ति पर मुग्ध हो गयीं, पुनः दुलार करती हुई उन कुमारोंका उन्होंने बहुत सत्कार किया ॥२७॥

तेतु पद्मपलाशाक्षीं नीलकुञ्चितमूर्द्धजाम् ।
शरच्चन्द्रमुखीमात्तमनोज्ञशिशुविग्रहाम् ॥२८॥

वे चारो भइया (श्रीसनकादिक) कमल दलके समान सुन्दर विशाल लोचन,काले घुँघुराले केश, शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान आह्लादप्रद मुखारविन्द वाली,मनोहर, शिशुरूपको धारण किये हुई २८

श्रीसीतां योनिसम्भूतिं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
निरीक्ष्य क्षितिजां कामं मोदमीयुरनुत्तमम् ॥२९॥

पृथिवीकी पुत्री, उपादान प्रकृतिकी कारण, सत् चित् आनन्द (ब्रह्म) स्वरूपा, सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीका इच्छानुसार दर्शन करके, भगवदानन्दको प्राप्त हो गये ॥२९॥

प्रेक्ष्य ध्याननिमग्नांस्तान् राज्ञी कौतूहलान्विता ।
भृशं बभूव देवेशि ! क एते बालका इति ॥३०॥

हे देवेशि ! तब वे श्रीअम्बाजी चारोंकी ध्यानावस्थाका दर्शन करके अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हो गयीं कि, ये किसके बालक हैं, ॥३०॥

श्रीसुनयनोवाच ।

क एते कस्य पुत्राश्च कुत्रत्याः कुत आगताः ।
त्वया सार्द्धमिति श्रुत्वा चकिता साऽऽदितोऽब्रवीत् ॥३१॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीः—हे श्रीविशदाचीजी ! ये तुम्हारे साथ आने वाले कौन हैं ? और किसके पुत्र हैं ? तथा कहाँसे आये हैं ? यह सुनकर वे श्री चारों कुमारों) की ध्यानावस्थाका दर्शन करके आश्चर्य युक्त हो उनका आदिसे सब वृत्तान्त कहने लगीं ॥३१॥

श्रीविशदाद्युवाच।

स्वस्त्यस्तु ते महाभागे! मन्दिरे स्थितया मया।
इमे मद्बालकैः सार्कं क्रीडमाणा विलोकिताः ॥३२॥

श्रीविशदाक्षीजी बोलीः–हे महाभागे! (श्रीमहारानी) जी! आपका मङ्गल हो, अपने महल में बैठी हुई, बाहरकी ओर बालकोंके सहित खेलते हुए, इन चारो भाइयोंको मैंने देखा था ॥३२॥

एषां रूपश्रियाऽऽकृष्टा बहिर्द्वारमुपेत्य च।
बालचेष्टाः प्रपश्यन्तीं सन्निधिं मोहिताऽगमम् ॥३३॥

सो इनकी रूप लक्ष्मीने मुझे खींचहीतो लिया, अतः मैं द्वारके बाहर निकल कर इनकी बाल चेष्टाओंको देखती हुई, मुग्धहो, समीपमेंजा पहुँची ॥ ३३ ॥

अपृच्छं कस्य तनया? यूयं कुत इहागताः?।
इदं मद्वापितं श्रुत्वा तदोचुरिति मामिमे ॥३४॥

मैंने पूछा–आप लोग किसके पुत्रहैं? और कहाँसे पधारे हैं? तब ये मेरे इस प्रश्नको सुनकर, मुझसे इस प्रकार बोले: –॥ ३४ ॥

कुमारा ऊचुः।

पद्मासनः पिताऽस्माकं गृहमार्गो हि विस्मृतः।
यदृच्छया वयं प्राप्ता द्वारं तेऽम्ब! दयामयि! ॥३५॥

हे दयामयी! मइयाजी! हमारे पिताजीका नाम श्रीपद्मासनजी है, हमे अपने घरका मार्ग भुला गया है, अत एव संयोगवश हम लोग आपके दरवाजे पर आपहुँचे है ॥३५॥

श्रीविशदाद्युवाच।

एतद्वचनमाकर्ण्य मृदुलं दैन्यसंयुतम्।
अहमुक्तवतीत्येतान् कारुण्याप्लुतमानसा ॥३६॥

श्रीविशदाक्षीजी बोलीं हे श्रीमहारानीजी। इनके दीनता पूर्वक, ये कोमल वचन श्रवण करके मेरा मन करुणामें डूब गया, अतः मैंने इनसे यह कहा :–॥ ३६ ॥

भद्रं वः समयो ह्येष व्रजितुं दैनिको मम।
हे वत्सा! बालकैः सार्कं महाराजस्य मन्दिरम् ॥३७॥

हे वत्सो! आपका कल्याण हो, यह समय हमारा इन पुत्रोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराज के महल आनेका उपस्थित है ॥३७॥

अतो मन्मन्दिरं गत्वा मयेदानीं कृताशनाः ।
विदेहभवनं यात युष्मभ्यं यदि रोचते ॥३८॥

अतः इस समय आप लोग मेरे महल चलकर भोजन करें तत्पश्चात् यदि आप लोगोंकी रुचि हो तो मेरे साथ श्रीविदेहजी महाराजके महल पधारें ॥३८॥

तस्माच्च पुनरागत्य जनकस्य तवालयम् ।
समन्वेष्य जनन्या वः प्रापयिष्यामि सन्निधिम् ॥३९॥

वहाँ से वापस आकर आपके पिताजीके महलका पता लगाकर मैं निःसन्देह आपकी माताजी के पास आप लोगोंको पहुँचा दूँगी ॥३९॥

चिन्तां त्यजत भो वत्सा ! विस्मृतेर्हि रतिर्मम ।
दर्शनादेव संजाता भवत्सु स्वात्मजाधिका ॥४०॥

अतः हे वत्सो ! आप लोग अपने घरका मार्ग भूल जानेकी चिन्ता न करें, क्योंकि दर्शन मात्रसे ही मेरा प्रेम अपने पुत्रोंसे भी अधिक आप चारोंके प्रति हो गया है ॥४०॥

एवमुक्ता मया सार्कं समासाद्य गृहं मम ।
चक्रुरेतेऽशनं प्रेम्णा लाल्यमाना ह्यनेकधा ॥४१॥

इस प्रकार मेरे कहने पर, मेरे सहित मेरे महलमें आकर, अनेक प्रकारके दुलारको प्राप्त होते हुये, प्रेम पूर्वक इन्होंने भोजन किया ॥४१॥

ततः सम्भूषयित्वेमे मयानीता इहाधुना ।
सुतां ते सुषमाराशिं समाधिस्था निरीक्ष्य च ॥४२॥

तदनन्तर अपनी इच्छानुकूल श्रृङ्गार करके मैं इन्हें साथ ले आई थी, सो यहाँ इस समय आपकी उपमा रहित सौन्दर्यकी पुञ्ज स्वरूपा श्रीललीजीका दर्शन करके ये समाधिस्थ होगये है ४२

श्रीशिव उवाच ।

तस्यास्तदीरितं वाक्यं समाश्रुत्य नरेश्वरी ।
जगाम परमाश्चर्यं लालयन्ती निजात्मजाम् ॥४३॥

भगवान शिवजी बोले :—हे प्रिये ! श्रीविशदाजीजीके इन कहे हुये वचनको सुनकर महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जो अपनी श्रीललीजीको दुलार करती हुई परम आश्चर्यको प्राप्त हुई ॥४३॥

आजगाम तदा राजा विदेहःस्वनिवेशनम् ।
सोऽपि तांश्चिरमालोक्य विस्मयं परमं ययौ ॥४४॥

उसी समय श्रीमिथि-वंशी राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीजनकजी महाराज अपने महल आ पहुँचे, वे भी बहुत देर तक उन चारोंका दर्शन करके परम विस्मयको प्राप्त हुये ॥ ४४ ॥

निशम्य विशदादयोक्तं महाराज्ञ्या मुखाम्बुजात् ।
साद्भुतश्चिन्तयामास विदेहो यतमानसः ॥४५॥

पुनः उन्होने श्रीमहारानीजीसे जो उनका परिचय पूछा तो उन्होने विशदाक्षीजीका कहा हुआ सब वृत्तान्त कह सुनाया, उसे सुनकर आश्चर्ययुक्त हो देहकी सुधि बुधि भुला कर एकाग्र मन करके वे ध्यान करने लगे ॥४५॥

बालका देहमात्रेण योगिनां मौलिभूषणाः ।
एते वृत्त्या प्रतीयन्ते दिष्ट्या मे गृहमागताः ॥४६॥

देह मात्रसे तो ये चारो ही वास्तवमें बालक हैं, परन्तु अपनी इस वृत्तिसे तो योगियोंके शिरके भूषण प्रतीत हो रहे हैं, अतः बड़े सौभाग्यसेही मेरे यहाँ इनका पदार्पण हुआ है ॥४६॥

क एते किन्तु, नैवैतज्ज्ञायते बालरूपिणः ।
इति चिन्तासमायुक्तो दध्यौ नियतचेतसा ॥४७॥

किन्तु बालकोंका रूप बनाये हुये ये हैं कौन ? यह समझमें नहीं आता, इस चिन्तासे युक्त हो वे श्रीमिथिलेशजी महाराज ध्यान करने लगे ॥४७॥

तस्य ध्यानपथं गत्वा गिरिजे ! ऽहं दयान्वितः ।
अवोचं स्निग्धया वाचा रहस्यं हर्षयन्निव ॥४८॥

हे गिरिराज कुमारीजी ! मुझे दया आगयी, अतः मैंने ध्यान मार्गमें प्राप्त होकर उन मिथिलेशजी महाराजको हर्षित करता हुआ सा, रसमयी वाणी द्वारा उस रहस्य (गुप्त बात) को कह सुनाया ॥४८॥

ध्यानयोगसमासक्ताः किलैते बालका नृप ! ।
अवधार्या महाभाग ! त्वया श्रीसनकादयः ॥४९॥

हे राजन् ! हे महाभाग्यशाली ! ध्यान योगमें आसक्त हुये इन बालकोंको आप चारो भाई श्रीसनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार जानिये ॥४९॥

दर्शनार्थं सुतायास्ते सङ्गता ब्राह्मणार्भकैः ।
खेलन्तस्तैः समं दृष्ट्वा द्विजपत्न्या गवाक्षतः ॥५०॥

आपकी श्रीललीजीके दर्शनोंके लिये वे ब्राह्मण पुत्रोंमे मिल गये, तब खिड़कीके मार्गसे बालकोंके साथ खेलते हुये उन्हें ब्राह्मण पत्नी ने देखा ॥५०॥

एषां स्वरूपलावण्यविमुग्धा मृदुलाशया ।
बहिर्द्वारं समासाद्य ददर्शार्भकचेष्टितम् ॥५१॥

यह कोमल हृदया ब्राह्मणी इनके स्वरूपकी सुन्दरता पर विशेष मुग्ध होकर अपने घरके द्वारसे बाहर निकली और इनकी बालचेष्टा देखने लगी ॥५१॥

पुनः शनैः शनैर्गत्वा सकाशं प्रेमनिर्भरा ।
लालयन्ती च पप्रच्छ कस्य यूयं सुता इति ॥५२॥

पुनः प्रेमकी अधिकताके कारण धीरे धीरे वह पास जाकर, लाड करती हुई उनसे इसप्रकार पूछने लगीः-हे वत्सो ! आप किसके पुत्र है ? कहाँ से आये ह ? ॥५२॥

एतैर्निवेदितं सर्वं समाकर्ण्य प्रहर्षिता ।
समानीयात्मनो वेश्म भोजनैश्चावितर्पयत् ॥५३॥

इन कुमारोंने सब निवेदन किया, उसे सुनकर वह बड़े ही हर्षको प्राप्त हुई पुनः वे अपने महलके भीतर लेजाकर भोजनके द्वारा बड़ी सुन्दर रीतिसे इन्हें तृप्त करती हुई ॥५३॥

भूषयित्वा यथाकाम महाभागा त्वदालयम् ।
आनयामास सा प्रीत्या स्वात्मजैः परिवारितान् ॥५४॥

तत्पश्चात् वह बड़ भागिनी अपनी इच्छानुसार इनको वस्त्र भूषण पहना कर अपने बालकोंके सहित प्रेम पूर्वक आपके, महल ले आई ॥५४॥

सत्कृता विधिना राज्या लालयन्त्याऽशनादिभिः ।
अजानन्त्याऽन्ययैवैते वृत्तिगाम्भीर्यमुग्धया ॥५५॥

यहाँ श्रीमहारानीजी इन्हे न पहचानती हुई भी, इनकी वृत्तिकी गम्भीरता पर मुग्ध हो दुलार करती हुई, भोजन आदिके द्वारा इनका विधि पूर्वक सत्कार कर चुकी हैं ॥५५॥

दर्शनादिन्दुवक्त्रायाः पुत्रिकायास्तवाधुना ।
अमन्दानन्दमासाद्य ध्यानस्था अभवन्नमी ॥५६॥

इस समय ये चारो भइया आपकी चन्द्रमुखी श्रीललीजीका दर्शन करके अपार आनन्दको प्राप्त हो, ध्यानस्थ हो गये हैं ॥५६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमाभाष्य गौरीशो विदेहं ध्यानतत्परम् ।
अभूदन्तर्हितः शीघ्रं ततो ध्यानं नृपोऽत्यजत् ॥५७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले :—हे प्रिये ! ध्यान परायण श्रीविदेहजी महाराजसे गौरीपति श्रीभोलेनाथजी इसप्रकार कह कर अन्तर्धान होगये, तब महाराजने ध्यानको छोड़ा ॥५७॥

एते विधिसुता बोध्या ध्यानस्था हि तवालये ।
इत्याशंसति देवेशे चत्वारोऽपि तिरोहिताः ॥५८॥

हे राजन् ! आपके महलमें ये जो ध्यानस्थ हो रहे हैं, उन्हें आप श्रीब्रह्माजीके पुत्र (सनकादिक) जानिये, इस प्रकार देवताओंकी रक्षा करने वाले श्रीभोलेनाथजीके कहते ही, चारो भाई अन्तर्धान हो गये ॥५८॥

मुक्तध्यानो महीपालस्तानुदीक्ष्य न कुत्रचित् ।
क यातास्ते महाराज्ञीमिति पप्रच्छ विह्वलः ॥५९॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीसनकादिकका आगमन सुनते ही जब ध्यानसे निवृत्त हुये, तब कहीं भी उनका दर्शन न पाकर विह्वल हो उन्होंने महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जीसे पूछा:—॥५९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

इदानीं ध्यानमग्नास्ते मया दृष्टा अदृश्यताम् ।
प्रयाताः पद्मपत्राक्षाः कुमाराः प्रियदर्शनाः ॥६०॥

श्रीसुनयना महारानीजी बोलीं :—हे प्यारे ! उन प्रिय दर्शन, कमलदल लोचन चारों बालकों को मैंने अभी ध्यान मग्न देखा था, किन्तु अब वे अदृश्य हो गये हैं ॥६०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

महाराज्ञोदितं श्रुत्वा विदेहाधिपतिः प्रभुः ।
उवाच विस्मयाविष्टस्तामिदं गद्गदाक्षरम् ॥६१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले :-हे वल्लभे ! श्रीमहारानीजीका यह कथन सुनकर परम समर्थ विदेह कुलके स्वामी श्रीमिथिलेशजी महाराज आश्चर्यमग्न हो, श्रीसुनयना महारानीजीसे यह गद्गद अक्षर युक्त वाणी बोले ॥६१॥

श्रीमिथिलेश उवाच।

सनकाद्या हि चत्वारो ब्रह्मपुत्रा न बालकाः ।
दर्शनार्थं सुताया मे पितुर्लोकात्समागताः ॥६२॥

वे चारो ही सभीसे वृद्ध श्रीब्रह्माजीके श्रीसनकादिक पुत्र थे, बालक नहीं । हमारी श्रीललीजीके दर्शनोंके लिये अपने पिता (श्रीब्रह्मा) जीके लोकसे आये थे ॥६२॥

अभवन्ध्यानमग्नास्ते तदुपेत्य मनोहरम् ।
एतदाह महादेवो मम ध्यानपथिस्थितः ॥६३॥

सो श्रीललीजीका मनोहर दर्शन पाकर वे ध्यान मग्न हो गये, यह मेरे ध्यान-मार्गमें आकर श्रीभोलेनाथजी कह गये हैं ॥६३॥

सत्कर्तुं कृतसङ्कल्पोऽत्यजं ध्यानमहं द्रुतम् ।
सर्वज्ञा विगतेहास्ते पूर्वमेव तिरोहिताः ॥६४॥

चारो भाइयोंका सत्कार करनेका सङ्कल्प (विचार) करके मैंने तुरत अपने ध्यानका परित्याग किया, परन्तु सर्वज्ञ अर्थात् सबके भीतर बाहरकी जाननेवाले वे, उसके पूर्व ही अन्तर्धान होगये ६४

प्रिये ! त्वमेव धन्याऽसि यया ते चारुसत्कृताः ।
आगता बालरूपेण सर्वेषामेव पूर्वजाः ॥६५॥

अतः हे प्रिये ! आप ही धन्य हैं, जो बालक रूपमें आये हुये उन सभीके पूर्वजोंका सत्कार तो भली प्रकारसे कर लिये ॥६५॥

न जाने केन पापेन सत्कृतिं मुनिसत्तमाः ।
अङ्गीकर्तुमनिच्छन्तोऽभवन्नन्तर्हिता मम ॥६६॥

मैं नहीं जानता, मेरे किस पापके कारण मुनियोंमें परम, श्रेष्ठ वे श्रीसनकादिक चारो भइया, मेरे द्वारा अपने सत्कारको स्वीकार न करनेकी इच्छा रखते हुये, अन्तर्धान हो गये ॥६६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

व्याहरन्नेवमेवासौ बभूवातीवविह्वलः ।
भूसुतायाः प्रपश्यन्त्या विदेहो धर्मवित्तमः ॥६७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः–हे प्रिये ! धर्मवेत्ताओंमें शिरोमणि, श्रीविदेहजी महाराज श्रीभूमि नन्दिनीजूके देखते हुये इस प्रकार कहते-कहते अत्यन्त विह्वल हो गये ॥६७॥

विज्ञाय तन्मनोभावं सनकाद्या मुदान्विताः ।
ऊचुर्नभस्तले स्थित्वा मेघगम्भीरया गिरा ॥६८॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके मनोभावको जानकर श्रीसनकादिक चारो भइया, आकाशतलमें स्थित हो कर मेघके समान गम्भीरवाणीसे बोलेः–॥६८॥

श्रीसनकादय ऊचुः ।

धृतबालस्वरूपायाः स्वामिन्या नः पिता भवान् ।
सर्वेश्वर्याः सुविख्यातस्त्रिलोक्यां जगतीपते ! ॥६९॥

हे जगती (पृथिवी) पते ! बालस्वरूपको धारण किये हुई हमारी सर्वेश्वरी श्रीस्वामिनीजूके आप तीनों लोकोंमे पिता विख्यात हैं ॥६९॥

त्वत्तः कथं समिच्छेम पूजां स्वीकर्तुमात्मनः ।
स्वामिन्याः पुरतः स्थित्वा तत्रापि धर्मकोविद ! ॥७०॥

हे धर्म के रहस्यको जानने वाले महाराज ! तो आपसे, उसमें भी श्रीस्वामिनीजूके सामने स्थित होकर हम लोग अपनी पूजा स्वीकार करने की भला कैसे इच्छा करें ? ॥७०॥

तस्माद्विज्ञाय सङ्कल्पं भवतश्च मनोगतम् ।
अभूमान्तर्हितास्तूर्णं स्वभावमभिरक्षितुम् ॥७१॥

इस हेतु आपके मानसी सङ्कल्पको जानकर अपने भावकी सुरक्षाके लिये हम लोग तुरत अन्तर्धान हो गये ॥७१॥

चिन्तां मा स्म गमस्तात ! सर्वेषामस्ति वै भवान् ।
पूजाभाजनमेवेह समर्च्यैका सुता तव ॥७२॥

हे तात सो आप चिन्ता न करें, क्योंकि आप तो विश्वमें सभीके पूजापात्र स्वयं ही हैं, और आपकी श्रीललीजी सभीके ही द्वारा अद्वितीय पूजने योग्य हैं ॥७२॥

अस्यां प्रपूजितायां हि पूजितं भुवनत्रयम् ।
पत्रपुष्पादिकं सर्वं सिच्यते मूलसिञ्चनात् ॥७३॥

इन श्रीललीजीके पूजित होजाने पर तीनों लोकोंकी पूजा हो जाती है, जैसे जड़को सींचनेसे पत्र-पुष्प आदि सब सिञ्चित हो जाते है ॥७३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं नरेन्द्रं सनकादयस्ते माध्व्या गिरा ब्रह्मसुतप्रधानाः ।
प्रबोध्य भूयः क्षितिजामुदीक्ष्य प्रमोदपूर्णा विधिलोकमीयुः ॥७४॥

इति चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले :-हे प्रिये ! इस प्रकार वे श्रीब्रह्माजीके ज्येष्ठपुत्र श्रीसनकादिकजी मीठी वाणीसे श्रीमिथिलेशजी महाराजको सान्त्वना प्रदान करके तथा वारम्वार श्रीकिशोरीजीका दर्शन करके आनन्द निर्भर हो ब्रह्मलोक चले गये ॥७४॥

अथैकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजूका नामकरण-महोत्सव ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सुप्रसन्नहृदयोऽवनीश्वरो द्वादशाहपरमोत्सवोत्सुकः ।
दूतमानयनकर्मणे गुरोर्व्यादिदेश परमार्थवित्तमः ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः-हे प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके बारहवें दिनका उत्कृष्ट उत्सव मनानेके लिये उत्सुक हो पूर्ण प्रसन्न हृदय, परमार्थ वेत्ताओंमें शिरोमणि श्रीमिथिलेशजी महाराजने गुरुदेव-जीको अपने महल बुलानेके लिये दूत भेजा ॥१॥

आजगाम स तु गौतमीसुतस्तेन साकमविलम्बमालयम् ।
ह्लादपूर्णमनसो विलोकयन् सर्वशः पथि मुदा पुरौकसः ॥२॥

अहल्यानन्दन श्रीशतानन्दजी महाराज आनन्द पूर्वक उस दूतके साथ तुरत मार्गमें आह्लाद पूर्ण मन हुये सभी पुरवासियोंको देखते २ महलमें आये ॥२॥

पोडशेन विधिना समर्चितो द्वादशाहविधिमप्यकारयत् ।
गायतीषु किल मङ्गलात्मकं गीतमब्जनयनासु कालवित् ॥३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा पोडशोपचारसे पूजित होकर समयका ज्ञान रखने वाले श्रीशतानन्दजी महाराज, कमललोचना सखियोंके मङ्गल गीत गाते हुये जन्मके बारहवें दिनका महोत्सव करवाने लगे ॥३॥

स्नापिता सुनयना सुतान्विता पीतवाससी राज्यलङ्कृता ।
देशवंशसमयोचितं विधिं हर्षिता कुलगुरूदितं व्यधात् ॥४॥

श्रीललीजीके सहित श्रीसुनयना अम्बाजीको स्नान कराके पीतवस्त्र पहिराकर उनका शृङ्गार किया गया, तब वे हर्षयुक्तहो श्रीकुलगुरु शतानन्दजी महाराजके आदेशानुसार देश वंश और समय के योग्य सभी विधियोंको पूरी करने लगीं ॥४॥

मातरस्तु जननीमुपस्थिता वः पिता च पितुरन्तिके मम ।
पद्मयोनितनयेन संयुतोऽसौ भवद्भिरभिराजते भृशम् ॥५॥

हे प्यारे ! आपकी माताऐं मेरी श्रीसुनयना अम्बाजीके पास और आपके श्रीपिताजी श्रीवशिष्ठजी महाराज व आप चारो भाइयोंके सहित मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजके पास अत्यन्त सुशोभित हुये ॥५॥

सम्प्रवृत्त इति मङ्गलोत्सवे नृत्यगानकलवाद्यसङ्कुले ।
बालवृद्धतरुणस्त्रियो नरा निर्ययुः प्रतिगृहान्मुदातुराः ॥६॥

हे प्यारे ! इस प्रकार नृत्य गान व सुन्दर बाजोंसे युक्त मङ्गलोत्सवके प्रारम्भ हो जाने पर प्रत्येक घरसे आनन्दसे उतावले हो बालक, वृद्ध, तरुण, स्त्रियाँ, पुरुष निकलने लगे ॥६॥

राजवेश्मगमनस्पृहालुभिः संवृताः पुरपथास्तु कृत्स्नशः ।
स्वर्चिताः शुशुभिरे भृशं तदा निम्नगा इव जलैः प्रपूरिताः ॥७॥

उस समय राजमहल जानेके इच्छुक जनोंके द्वारा नगरके सभी स्वलङ्कृत (सजावट किये हुये) मार्ग सम्यक् प्रकारसे ढके हुये इस प्रकार अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे, जैसे जलसे पूर्ण नदियाँ बहती हुई सुशोभित होती हैं अर्थात् जैसे चातुर्मास्यमें वेगसे बहते हुये प्रर्याप्त जलसे नदियाँ शोभाको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार श्रीकिशोरीजीके बारहवें दिनका उत्सव देखनेकी इच्छावे

शीघ्रता पूर्वक चलते हुए जन समुदायसे पूर्ण ढकी हुई, नगरकी सभी सड़कें अत्यन्त सुन्दर लग रही थीं ॥७॥

स्वागताय बहुशो नियोजिता मन्त्रिणो नृपवरेण सानुजाः ।
श्रद्धयाऽभिचलतां निवेशनं क्षीणदर्पसदसद्विवेकिनः ॥८॥

महलमें आने वालोंका श्रद्धा पूर्वक स्वागत करनेके लिये श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपने भाइयोंके सहित अभिमान रहित सद्-असद् विवेकी मन्त्रियोंको नियुक्त किया ॥८॥

सोऽथ नामकरणातिशोभने पुण्यपुञ्जसमये गुरुस्मृतः ।
अन्तरालयमगात्क्षितीश्वरः श्रीमतां समुदयेन संयुतः ॥९॥

पुनः नाम करणके अति सुन्दर, पुण्य-पुञ्जमय अवसर पर वे श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीशतानन्दजीके स्मरण करने पर श्रीमानोंके समूहके साथ भीतर पधारे ॥९॥

सन्निवेश्य वसुधाधिपोचितेष्वासनेषु महताऽऽदरेण वः ।
कोशलाधिपतिना नराधिपैः स्वासने समविराड्गुरूनमन् ॥१०॥

वहाँ राजाओंके योग्य आसनों पर महान् आदरके साथ आप लोगोंको बैठाकर, अन्य राजाओंके सहित श्रीकोशलेन्द्र-महाराजके साथ गुरुवर्गोंको प्रणाम करते हुये अपने आसन पर विराजमान हुये ॥१०॥

भ्रातरस्तदुभयोर्हि पार्श्वयोर्मोदमानमनसो व्यवस्थिताः ।
उत्तराभिमुख आस्थितो गुरुः प्राङ्मुखी सुनयना सुतान्विता ॥११॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके दोनों बगलमें मुदितमनसे सब भाई विराजमान हुये। उत्तर मुख होकर श्रीशतानन्दजी महाराज और पूर्वमुख हो श्रीकिशोरीजी व श्रीलक्ष्मीनिधि भइयाके सहित श्रीसुनयना अम्बाजी विराजमान हुईं ॥११॥

पाणिपादतलदर्शनाद्भुतानन्दतृप्त इदमुक्तवान्शिशोः ।
ब्रह्मसूनुतनयः सुमङ्गलं नाम भूप ! शृणु शोधितं मया ॥१२॥

हे प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके हस्त व चरण कमलोंके तलवोंके दर्शनजन्य अद्भुत आनन्दसे तृप्त (कृतकृत्य) हो, श्रीब्रह्माजीके पौत्र (श्रीगोतमजीके पुत्र) श्रीशतानन्दजी महाराज बोले :-हे भूप! मेरे द्वारा शोधा हुआ श्रीललीजीका मङ्गलमय नाम श्रवण कीजिये ॥१२॥

सर्वदुःखभवभीतिहारिणी दुःस्वभावदुरदिष्टवारिणी ।
सर्वलोकपरमाश्रयः श्रियः श्रीरशेषसुखशर्मविभूतिदा ॥१३॥

आश्रितोंके सभी दुःख, तथा जन्म मरणका भय हरण करनेवाली, खोटा स्वभाव और दुर्भाग्य को हटाने वाली, समस्त लोकोंकी आधार स्वरूपा, श्रीकी भी श्री, सम्पूर्ण सुख, मङ्गल व ऐश्वर्यकी प्रदान करने वाली ॥१३॥

पुत्रिकेयमवनीश ! लक्षणैर्ज्ञायते किल मयेति पश्यता ।
स्यादितान्तयुगवर्णसंयुतं नामरत्नमत एव शोभनम् ॥१४॥

हे अवनीश ! लक्षणोंके द्वारा मुझ निश्चय करके आपकी ये श्रीललीजी इस प्रकार ज्ञात हो रही हैं अतएव इनका आदिमें "सी" और अन्तमें "ता" वाला यह दो वर्णका सुन्दर (सीता) नाम-रत्न हुआ ॥१४॥

श्रीर्द्वितीयमपि नाम ते शिशोः सर्वकामफलदं शुभावहम् ।
पूर्वमेतदुपसृत्य मुख्यकं तत्तृतीयमभवत्त्रिवर्णकम् ॥१५॥

आपकी श्रीललीजीका समस्त कामनाओंके फलको देनेवाला और मङ्गलवाहक दूसरा नाम "श्रीजी" हुआ और यह नाम उस पूर्व नाम (सीता) में मिलकर तीसरा श्रीसीता यह तीन वर्णोंका नाम हुआ ॥ १५ ॥

भूमितः प्रकटिता यतस्त्वियं भूमिजेति परिकथ्यते ततः ।
यज्ञवेदित इयं विनिर्गता यज्ञवेदिप्रभवाऽत उच्यते ॥१६॥

श्रीललीजी भूमिसे प्रकट हुई हैं अतः इनका नाम मैं भूमिजा कह रहा हूँ। पुनः ये यज्ञवेदीसे प्रकट हुई हैं, अतः इनका यज्ञवेदिप्रभवा नाम कहता हूँ ॥१६॥

योनिजा न च यतस्त्वियं ततो ऽयोनिजेति परिगीयते मया ।
त्वन्मनोरथफलाकृतिर्यतो जानकीति तदियं मयोच्यते ॥१७॥

श्रीललीजीका प्राकट्य किसी योनिसे नहीं हुआ, अतः मैं अयोनिजा इनका नाम कह रहा हूँ और आपके मनोरथकी फलस्वरूपा होनेसे इनका मैं जानकी नाम कहता हूँ ॥१७॥

लालनं च परिपालनं यतोऽस्या भवेदयितया तवानया ।
मङ्गलं सुनयनासुतेत्यतः कीर्त्यते नृवर ! नाम ते शिशोः ॥१८॥

इनका लालन-पालन आपकी इन श्रीसुनयना महारानीजीके द्वारा होगा, अतः हे नर श्रेष्ठ! आपकी श्रीललीजीका मैं "सुनयनासुता" ऐसा मङ्गलमय नाम कहता हूँ ॥१८॥

मैथिलीति मिथिवंशपावनश्लाघ्यकीर्त्तिपरमप्रकाशनात्।
प्रोच्यते परमशोभनं शुभं नाम सर्वदुरितौघवारणम् ॥१९॥

इनके द्वारा श्रीमिथि महाराजके वंशकी पावन व प्रशंसनीय कीर्तिका परम प्रकाश होगा अतः सकल आपत्तियोंको रोकने वाला परम मङ्गलमय इनका सुन्दर नाम मैथिलीजी कहता हूँ ॥१९॥

एवमेव गुणसूचकैः शुभैः कोटिशैरवनिनाथ! नामभिः।
ब्रह्मविष्णुगिरिशादिनाकिनां सत्सभासु कथयिष्यते त्वियम् ॥२०॥

हे अवनिनाथ! ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि देवताओंकी सत्सभाओंमें इस प्रकारके गुण सूचक करोड़ों शुभ नामोंके द्वारा इनका कथन हुआ करेगा ॥२०॥

श्रीनिधिः स तनयोऽगमूर्विजा यस्य पूर्वमुदितोच्यते गुणैः।
ऊर्मिलेति तनया तवौरसी ख्यातकीर्तिरियमत्र सद्गुणैः ॥२१॥

श्रीअवनिजा जिनकी बड़ी बहिन हैं, गुणोंके अनुसार मैं उन आपके लालजीका लक्ष्मी निधि नाम कहता हूं और आपकी यह औरसी पुत्री इस लोकमें अपने सद्गुणोंसे विख्यात कीर्तिवाली होवेगी, अतः इसका मैं ऊर्मिला नाम कथन करता हूं ॥२१॥

ऊर्मिलानुज उदार विक्रमः सञ्ज्ञयाऽयमपि वै गुणाकरः।
भण्यतेऽवनिप! भाग्यभाजनं त्वत्समस्त्वमिह नात्र संशयः ॥२२॥

ऊर्मिलाके छोटे उदार-पराक्रम भइया का नाम मैं गुणाकर कहता हूं। हे अवनि (पृथिवी) पाल! आपके समान भाग्य-भाजन इस जगत्में बस आपही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥२२॥

भूमिजाङ्घ्रिजलजार्चनोत्सुकाः शक्तयस्तु परमाः प्रजज्ञिरे।
त्वत्कुले च पुर इत्यृतं वचो योगिराज! भवताऽवधार्यताम् ॥२३॥

हे श्रीयोगीराजजी! श्रीभूमिजाजीके श्रीचरणकमलोंकी पूजा करनेको उत्सुक उमा, रमा, ब्रह्माणी, आदि सभी उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) शक्तियाँ आपके कुल व नगरमें जन्म लेचुकी हैं, आप मेरा यह वचन सत्य जानिये ॥२३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्तवति गोतमात्मजे शृण्वतां च भवतां सुतिष्ठताम् ।
संनिशम्य जयशब्दमुच्चकैः सादरं क्षितिपतिर्ननाम तम् ॥२४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! आप सबोंके ही श्रवण करते हुये श्रीशतानन्दजी महाराजके इस प्रकार कहने पर उच्च स्वरसे उपस्थित लोगोंका जयकारका शब्द सुनकर, पृथिवीपति श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीशतानन्दजी महाराजको आदर पूर्वक प्रणाम किये ॥२४॥

सोऽथ तेन निमिवंशिनां गुरुः पूजितः सविधमत्र भूभृता ।
भूयसीं समधिगम्य दक्षिणामाशिषा तमभिनन्द्य निर्ययौ ॥२५॥

वे निमिवंशियोंके कुलगुरु श्रीमिथिलेशजी महाराजसे विधि पूर्वक पूजित हो बहुत ही पर्याप्त दक्षिणा पाकर, आशीर्वादके द्वारा उन्हें अभिनन्दित करके चल दिये ॥२५॥

सर्व एवमवनीशतर्पिता भोजनांशुकविभूषणादिभिः ।
वैष्णवाश्च मुनयो द्विजातयो न्यासिनश्च मुदिताः प्रशंसिरे ॥२६॥

भोजन,वस्त्र, भूषण आदिसे श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा तृप्त किये गये सभी ब्राह्मण,मुनि, वैष्णव, सन्यासी वृन्द मुदित हो उनकी प्रशंसा करने लगे ॥२६॥

भोजनं च सह चक्रवर्तिना श्रीमता सकललोकभूभृताम् ।
शोभितेन भवदादिभिः सुखं चित्तहारिभिरभून्महानसे ॥२७॥

अपने दर्शन, चितवन, मुस्कान, व कोकिल भाषण आदिके द्वारा चित्तको हरण करनेवाले आप आदि चारो पुत्रोंके सहित श्रीमान् चक्रवर्तीजी महाराजके साथ समस्त राजाओंका भोजन महानस सदन (भोजनगृह) में हुआ ॥२७॥

एवमेव सह मातृभिस्तवाशेषराजकुलयोषितां प्रिय ! ।
मोदमानहृदयाभिरप्यभूद्भोजनं सुनयनानिकेतने ॥ २८ ॥

हे प्यारे ! इसी प्रकार आपकी माताओंके सहित, मुदित होते हुये हृदय वाली सभी राजकुल की स्त्रियोंका भोजन, श्रीसुनयना अम्बाजीके महलमें हुआ ॥२८॥

बालवृद्धतरुणाः स्त्रियो नराः सर्व एव पुरवासिनो मुदा ।
सार्द्धमन्यपुरवासिभिस्तदा पङ्क्तितो बुभुजिरे विभाजिताः ॥२९॥

तब सभी पुरवासी बालक, वृद्ध, युवक, स्त्री-पुरुष अन्य पुरवासी बाल, वृद्ध, तरुण स्त्री-पुरुषोंके सहित अपनी अपनी पंक्तिमें विभक्त होकर आनन्द पूर्वक भोजन करने लगे ॥२९॥

स्वर्णतन्तुपटरत्नभूषणस्रग्भिरीड्यमहिमा विभूष्य तान् ।
संविभूषितरथेभवाजिनां दानतश्च सकलानतोषयत् ॥३०॥

भोजनके पश्चात् स्तुति करने योग्य महिमा वाले वे श्रीमिथिलेशजी महाराज सोनेके धागोंसे बने हुये वस्त्र व रत्नोंके भूषण, मालाओंके द्वारा सभीको भूषित करके शृङ्गार किये हुये रथ, हाथी, घोड़ा आदिके दानसे सभी लोगोंको सन्तुष्ट किये ॥ ३० ॥

कोऽस्ति भूप उत कोऽस्ति निर्धनस्तर्हि नान्तरमिति स्म लक्ष्यते ।
द्रव्यमेत्य बहुपुष्कलं हि ते निर्धना अपि गता धनेशताम् ॥३१॥

बहुत पर्याप्त द्रव्यको पाकर निर्धन भी कुबेरके समान धनके स्वामीहो गये, अतः उस समय कौन राजा है ? और कौन निर्धन है ? यह भेद नहीं लक्षित होता था ॥ ३१ ॥

राजपट्टमहिषीनरेशयोः सर्व एव विधिना सुसत्कृतेः ।
तर्पिता ह्यतिशयेन तेऽगमन् प्राथ्यं वाससदनानि दम्पती ॥३२॥

वे सभी श्रीसुनयना अम्बाजी व श्रीमिथिलेशजी महाराजके विधिपूर्वक किये हुये सत्कारसे अतिशय तृप्त होकर, दोनों महाराज व महारानीजीसे प्रार्थना करके अपने अपने निवास महलों को चले गये ॥ ३२ ॥

एवमेव निजवाससद्मनो भूपतिर्जिगमिषां न्यवेदयत् ।
पित्र एव मम तेन सूचनाऽन्तः पुराय खलु सा समर्पिता ॥३३॥

तब उन सबोंके चले जानेके बाद श्रीचक्रवर्तीजीने अपने वास-भवन जानेकी इच्छा मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजसे निवेदन की, उन्होंने वह सूचना अन्तः पुरके लिये अर्थात् श्रीसुनयना अम्बाजीके लिये समर्पण की, ॥ ३३ ॥

मातरस्तु परिरभ्य भूयशो मैथिलीमुपगताः कृतार्थताम् ।
तामवाप्य गमनोद्यता हि वो मातरं समभिभाष्य मेऽभवन् ॥३४॥

हे प्यारे ! उस सूचनाको पाकर आपकी सभी मातायें श्रीमैथिलीजीको वारम्बार हृदयसे लगा कर कृतकृत्य हो, हमारी श्रीसुनयना अम्बाजीसे आज्ञा माँगकर वास-भवन जानेके लिये 'उद्यत हो गयीं ॥ ३४ ॥

भ्रातृभिस्तु समलङ्कृतं मुहुर्गन्तुकाममुरसोपगूह्य सा।
व्यादिदेश गमनाय मातृभिस्त्वां तदैव जननी कथञ्चन ॥३५॥

पुनः भाइयोंके सहित सम्पूर्ण शृङ्गार किये हुये, जानेकी इच्छासे युक्त आपको (श्रीसुनयना) अम्बाजी बारम्बार हृदयसे लगाकर बड़ीही कठिनतासे उस समय आपकी माताओंके साथ वास भवन जानेके लिये आज्ञा प्रदान कर सकीं ॥ ३५ ॥

प्राप्य चाशु डयनैर्नृपान्तिकं ता भवद्भिरभिसंयुक्ताः प्रिय !
संस्थिता निमिधवेन वन्दिताः सानुजोऽथ परिरम्भितो भवान् ॥३६॥

हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीसे विदा होकर आप चारो भाइयोंके सहित आपकी मातायें पालकियोंके द्वारा शीघ्र श्रीकोशलेन्द्रजी महाराजके पास पहुँच कर विराजमान हुईं, उन्हें श्रीनिमिवंशियोंके स्वामी (श्रीमिथिलेशजी) ने प्रणाम किया उसके बाद श्रीमिथिलेशजी महाराजने भाइयोंके सहित आपको हृदयसे लगाया ॥ ३६ ॥

भानुवंशगुरुमात्मजं विधेः श्रीवशिष्ठमभिसृत्य सत्कृतम्।
आननाम नृपतिस्तदाज्ञया भूपमश्रुनयनो व्यसर्जयत् ॥३७॥

सूर्यवंशके गुरु, श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीवशिष्ठजी महाराजके पास आकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने प्रणाम किया पश्चात् उनकी आज्ञासे साश्रुनेत्रहो निवास-भवन जानेके लिये श्रीचक्रवर्तीजीकी विदाई की ॥ ३७ ॥

इत्थं सर्व उपागताः प्रमुदिताः सम्बन्धिनो भूपतेः
स्वामिन्या मम शोभनं शिशुवपुः सञ्चिन्तयन्तो नृपाः।
केचिद्दैनिकमुत्सवं तदपरे युष्माकमेव च्छविं
ध्यायन्तस्तमथाभिभाष्य च ययुः स्वं स्वं निवासलयम् ॥३८॥

इत्येकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४१॥

—: मासपरायण विश्राम ११ :—

हे प्यारे ! इस प्रकार सभी आये हुये सम्बन्धी राजा मोद युक्तहो श्रीमिथिलेशजी महाराजसे आज्ञा लेकर हमारी श्रीस्वामिनीजीके सुन्दर शिशु रूपका चिन्तन और कोई उस दिनके नाम करणादि उत्सवका स्मरण और कोई अन्य आप लोगोंकी छविका ध्यान करते हुये अपने-अपने निवास-भवनोंको गये ॥ ३८ ॥

अथद्विचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ॥४२॥

महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीके भवनमें श्रीकोशलेन्द्रकुमारोंका आगमन—

श्रीस्नेहपरोवाच।

अथ तु प्रीतिरीतिज्ञा राज्ञी सुनयना रहः।
संविमृश्य महत्कार्यं प्रसन्नवदना बभौ ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! श्रीकिशोरीजीके नामकरण आदि उत्सवके हो जानेपर प्रीति की रीति जाननेवाली, रानी श्रीसुनयना अम्बाजी एकान्त में महान् आवश्यक कार्यकी सम्यक् प्रकार से विचार करके, प्रसन्नमुख हो गयीं ॥ १ ॥

सखीपाणिं करे धृत्वा पुनः प्रोवाच सादरम्।
श्रूयतामिति मे भद्रे! मनसा यद्विचारितम् ॥२॥

पुनः अपनी सखीका हाथ निज हाथमें रखकर आदरके सहित ऐसा बोलीं :-हे भद्रे (कल्याण स्वरूपे)! मैंने जो मनसे विचार किया है उसे तुम सुनो ॥ २ ॥

यस्य रूपसुधाम्भोधौ मग्नचित्ताः पुरौकसः।
त्यक्तकृत्या इवाभान्ति विह्वलाः पद्मलोचने! ॥३॥

हे कमललोचने! जिनके रूप सुधा-समुद्रमें डूबे हुये चित्त पुरवासी समस्त आवश्यक कर्मों को भी त्याग किये हुये, विह्वलसे प्रतीतहो रहे हैं ॥ ३ ॥

यस्य वै मोहिनी मूर्त्तिर्हृदयान्नापसर्पति।
विना दृष्ट्वा सुतां हन्त सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥४॥

अहह! जिनकी मोहिनी मूर्ति सत्, चित्, आनन्द-स्वरूपा श्रीललीजीके दर्शनोंके बिना मेरे हृदयसे हटती ही नहीं ॥ ४ ॥

गजगामीन्दुपूर्णास्यो मृदुभाषी स्मिताधरः।
चक्रवर्तिकुमारोऽसौ रामो राजीवलोचनः ॥५॥

वे हाथीके सदृश मस्त चलने वाले, पूर्ण चन्द्रमाके समान मनमोहन मुखारविन्द, कोमल शब्दोंको बोलने वाले, मुस्कान-युक्त अधर, कमलके समान सुन्दर व विशाल लोचन, चक्रवर्ती-कुमार श्रीरामललाजी ॥ ५ ॥

आगतस्तु समं पित्रा मातृभिर्भ्रातृभिर्युतः।
प्राणैरप्यधिको राज्ञः प्रेष्ठो निखिलदेहिनाम् ॥६॥

श्रीचक्रवर्तीजीके तथा सभी शरीर धारियोंके प्राणोंसेभी अत्यन्ताधिक प्यारे, अपने पिता, माता, बन्धुओंके सहित पधारे हुये हैं ॥ ६ ॥

तस्य कोऽपि न सत्कार इदानीमप्यभूदिह।
विशेषेण महाप्राज्ञे ! वहिरन्तर्निवासिनः ॥७॥

हे महाप्राज्ञे ! उन बाहर भीतर निवास करने वाले श्रीलालजीका आजतक यहाँ कोई भी विशेष सत्कार, नहीं हो सका ॥ ७ ॥

स आनीयात्र शोभाढ्यो रघुवंशप्रभाकरः ।
विशेषेणैव सत्कार्य्य इति मे निश्चला मतिः ॥८॥

उन रघुवंशके सूर्य, शोभाके धनी, श्रीचक्रवर्ती कुमारजीको अपने महलमें लाकर अवश्य विशेष रूपसे सत्कार करना चाहिये, मेरी यह अटल मति है ॥ ८ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मनोवाञ्छितसिद्धिदम्।
आहेति चन्द्रभद्राली संप्रहृष्टतनूरुहा ॥९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! वह चन्द्रभद्रा सखी अपने मनोरथकी सिद्धि प्रदान करने वाले श्रीअम्बाजीके उन वचनोंको श्रवण करके रोमाञ्चित हो उनसे इस प्रकार बोली ॥ ९ ॥

श्रीचन्द्रभद्रोवाच ।

जय जय महाराज्ञि ! महाभागे ! महामते !
चिरञ्जीवतु ते पुत्री श्रीमत्या साधु चिन्तितम् ॥१०॥

हे महाभागे ! हे महामते ! श्रीमहारानीजी ! आपकी जयहो जयहो, आपकी श्रीललीजी चिरकालतक जीवें, श्रीमतीने बहुतही अच्छा विचार किया है ॥ १० ॥

यदि तस्यैव सत्कारो न विशेषतया भवेत्।
सत्कारार्हस्य कोऽन्यस्तु सुसत्कर्त्तव्यतां व्रजेत् ॥११॥

सत्कारके योग्य श्रीरामलालजीका ही यदि विशेष रूपसे सत्कार न हुआ, तो फिर और कौन विशेष सत्कारकी योग्यता प्राप्त कर सक्ता है ? ॥ ११ ॥

अवश्यमेव सत्कार्यो भवत्याऽऽहूय मन्दिरम् ।
चक्रवर्तिकुमारोऽसौ रामो मदनमोहनः ॥१२॥

अत एव कामदेवको भी अपने छवि सौन्दर्यसे मुग्ध करलेने वाले चक्रवर्तीकुमार श्रीरामलालजी को अपने महल बुलाकर अवश्यमेव सत्कार करना चाहिये ॥ १२ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अनुमोदितमालोक्य सख्याऽपि स्वविचारितम् ।
प्रशस्य तमिदं भूयो व्याजहार शुभं वचः ॥१३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीअम्बाजी सखीके द्वारा अपने विचारे हुये कर्त्तव्यका अनुमोद न किया हुआ देखकर, उस सखीकी प्रशंसा करके पुनः यह मङ्गल वचन बोलीं ॥१३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

यदि त्वयाऽपि सिद्धान्तो मम चोरीकृतः शुभे !
प्रयायायमभिप्रायो निवेद्यो निमिभानवे ॥१४॥

हे शुभे ! यदि आप भी मेरे सिद्धान्तको अङ्गीकार करती हैं, तो मेरे इस अभिप्रायको निमिवंशके सूर्य (श्रीमिथिलेशजी) से जाकर निवेदन करें ॥ १४ ॥

इदानीमेव कर्त्तव्यः प्रयत्नस्तद्विधोऽनघे !
रामभद्र इहागत्य दर्शनानन्ददो भवेत् ॥१५॥

हे निष्पापे ! इस समय उस प्रकारका ही प्रयत्न करना चाहिये, जिससे श्रीरामभद्रजू यहाँ (महल में) आकर अपने दर्शनोका आनन्द प्रदान करें ॥ १५ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ता महाराज्ञ्या तथेत्याभाष्य साञ्जलिः ।
प्रणता निर्ययौ हृष्टा महीपाय निवेदितुम् ॥१६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा इस प्रकार कही हुई श्रीचन्द्रभद्रा सखी हर्षित हो उनसे दोनों हाथ जोड़कर "ऐसा ही करूँगी" यह कहकर, नतमस्तक हो श्रीमिथिलेशजी महाराजसे (श्रीअम्बाजीका) निश्चित विचार निवेदन करनेके लिये चल पड़ी ॥१६॥

आससाद तमुर्वीशं ध्यानावस्थितचेतसम् ।
गृहमाजगवस्येत्य नत्वा बद्धाञ्जलिः स्थिता ॥१७॥

उसने धनुषके स्थान (धनुर्भवन) में जाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजको ध्यानस्थित चित अर्थात् ध्यान करते हुये पाया, अतः उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी ॥१७॥

तत उन्मीलिताक्षेन नृपेण सहसाऽऽगता ।
कस्माद्द्रुतमिहायाता वीक्ष्य सा समपृच्छयत ॥१८॥

उसके बाद श्रीमिथिलेशजी महाराजने नेत्र खोलकर सहसा आई हुई उस सखीको देखकर उस से पूछाः– अरी सखी ! तुम इतना शीघ्र यहाँ किस लिये आई हो ? ॥१८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सा प्रणम्य मुदा पादौ नरदेवशिखामणेः ।
हेतोरागमनस्याङ्ग कथनायोपचक्रमे ॥१९॥

श्रीस्नेहपराजी बोली–हे अङ्ग ! वह सखी नृपतिचूडामणि श्रीमिथिलेशजी महाराजके श्रीचरण कमलोंको प्रणाम करके प्रसन्नता पूर्वक अपने अकस्मात् आनेका कारण कहने लगी ॥१९॥

श्रीचन्द्रभद्रोवाच ।

महाराज ! महाराज्ञ्या यदर्थं प्रेषिताऽस्म्यहम् ।
तन्निशम्य यथायोग्य विधत्तां भगवंस्तथा ॥२०॥

श्रीचन्द्रभद्राजी बोलीं:– हे महाराज ! श्रीमहारानीजीने हमें जिस लिये आपके पास भेजा है उसे श्रवण करके जैसा उचित हो वैसा आप करें ॥ २० ॥

श्रीमहाराज्युवाच ।

आगताः सहिताः भ्रात्रा मातृभिर्मोहनेक्षणाः ।
चक्रवर्तिकुमारा ये समाहूता महाक्रतौ ॥२१॥

श्रीमहारानीजीने कहा है :–कि इस महायज्ञमें निमन्त्रित हुये जो, मनमोहन-दर्शन श्रीचक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजू अपने भाइयों तथा माताओंके सहित यहाँ पिताजीके साथ आये हुये हैं २१

अद्यापि निवसन्तस्ते नो विशेषेण सत्कृताः ।
गन्तारः स्वपरं शीघ्रं सह पित्रा च मातृभिः ॥२२॥

एक वर्षसे भी अधिक निवास करते हुये उन्हें यहाँ हो गया और अब अपने पिताजी और माताओंके सहित अपनी पुरीको शीघ्र जानेवाले ही हैं, परन्तु आज तक उनका कोईभी विशेष सत्कार नहीं किया जा सका ॥ २२ ॥

स्यान्न युक्तं कुलस्यास्य तत्तु हन्त कथंचन।
इतो यदि गतास्ते स्युरविशेषेण सत्कृताः ॥२३॥

सो यदि वे श्रीचक्रवर्तीकुमार विना विशेष रूपसे सत्कार पाये हुये ही, यहाँ से चले गये तो यह बात इस कुलके लिये किसी प्रकारसेभी योग्य न होगी ॥ २३ ॥

अतस्ते वै समानीय राजपुत्रा मनोहराः।
सत्कारविधिभिर्नैकैः सत्कर्त्तव्या विशेषतः ॥२४॥

अतः उन मनोहर राजकुमारोंको अपने महलमें बुलाकर अनेक प्रकारके सत्कारों द्वारा उनका अवश्यही विशेष सत्कार करना उचित है ॥ २४ ॥

अन्यथा गमनं तेषामयोध्यायां भविष्यति।
पश्चात्तापाय वै राजन्नावयोः स्मरतोः सदा ॥२५॥

अन्यथा, विना विशेष सत्कार हुये ही उनका श्रीअयोध्याजी चले जाना हम लोगोंके लिये सदा स्मरण करने पर केवल पश्चात्ताप करनेका ही विषय होगा अर्थात् जब कभी स्मरण आयेगा कि श्रीचक्रवर्तीकुमारजी हमारे यहाँ इतने दिन रहकरके अपनी पुरीको चले गये, परन्तु हमसे उनका कोई भी विशेष सत्कार न बन सका तो उस समय सदा ही केवल पश्चात्ताप (पछिताना) ही हाथ रहेगा ॥ २५ ॥

सख्युवाच।

एतदर्थं महाराज्ञ्या प्रेषिताऽहमुपस्थिता।
भवतः स्मारणायैव यथा योग्यं तथा कुरु ॥२६॥

सखी बोली:-हे महाराज! आपके लिये इसी बातका स्मरण करानेके हेतु श्रीमहारानीजीकी भेजी हुई मैं आपके पास उपस्थित हुई हूँ, अब जैसा उचित हो वैसा कीजिये ॥ २६ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

तस्यास्तदुदितं वाक्यं समाकर्ण्य शुभाक्षरम्।
मोदमानमना राजा तामिदं समभाषत ॥२७॥

श्रीस्नेहपराजी बोली-हे प्यारे! उस सखीके मङ्गलमय अक्षरोंसे युक्त कहे हुये वचनोंको श्रवण करके श्रीमिथिलेशजी महाराज मुदित मन होते हुये, उससे यह बोले:-। २७ ॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

परमावश्यकं कार्यमिदं राज्ञ्या विचारितम् ।
शीघ्रमेव प्रकर्त्तव्यं सयत्नमविलम्बतः ॥२८॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोले–हे सखी ! श्रीमहारानीजीने यह परम आवश्यक कार्य विचारा है, अतः इसे विलम्ब न करते हुये, शीघ्रता पूर्वक ही कर लेना उचित है ॥२८॥

यतो जिगमिषा भूयः स्वपुर्यां चक्रवर्तिना ।
मह्यं निवेदिता भद्रे ! प्रीतेर्नाङ्गीकृता मया ॥२९॥

क्योंकि श्रीचक्रवर्तीजी महाराज अपने पुरको जानेकी इच्छा मुझसे बारंबार निवेदन कर चुके हैं, केवल मैंने ही उसे अपने प्रेमके कारण नहीं स्वीकार की है ॥ २९ ॥

तस्मादहं समानेतुमिदानीमेव बालकान् ।
नृपावासालयं क्षिप्रमभिगच्छामि शोभने ! ॥३०॥

हे शोभने ! इस हेतु मैं अभी श्रीचक्रवर्तीजीके बालकोंको लानेके लिये शीघ्र ही उनके निवास महलको जारहा हूँ ॥ ३० ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदुक्त्वा सखीं राजा तां विसृज्याङ्ग सादरम् ।
आजगामान्तिकं श्रीमत्पितुस्ते मन्त्रिभिर्युतः ॥३१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी महाराज सखीसे इतना कहकर उसे आदर पूर्वक वापस करके, मन्त्रियोंके साथ वे आपके श्रीयुक्त पिताजीके पास आगये ॥ ३१ ॥

तमायान्तं समालोक्य प्रातरेव पिता तव ।
अभ्युत्थानादिभिस्तस्य चकार स्वागतं स्वयम् ॥३२॥

आपके पिताजीने प्रातःकाल ही उन्हें आते हुये देखकर अभ्युत्थान (उठने) आदिके द्वारा उनका स्वयं स्वागत किया ॥ ३२ ॥

तयोः समागमस्तर्हि बभूवाद्भुतदर्शनः ।
पश्यतां प्रमदापुंसां सूर्यचन्द्रमसोरिव ॥ ३३ ॥

उस समय देखनेवाले स्त्री पुरुषोंको उन दोनों महाराजोंके मिलनेका दर्शन चन्द्र-सूर्यके समान अद्भुत (आश्चर्यमय) प्रतीत हुआ ॥ ३३ ॥

पुना रघुकुलाचार्यं प्रणनाम स दण्डवत् ।
तेन गाढं समुत्थाप्यालिङ्गितः परया मुदा ॥३४॥

पुनः उन श्रीमिथिलेशजी महाराजने रघुकुलके गुरु श्रीवशिष्ठजी महाराजको दण्डवत् प्रणाम किया, श्रीवशिष्ठजी महाराजने उन्हें उठाकर बड़े ही हर्ष पूर्वक हृदयसे लगाया ॥३४॥

कोशलेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां मिथिलेन्द्रं वरासने ।
उपवेश्य स्वकीयेऽथ तस्थिवान्प्रार्थितः स्वयम् ॥ ३५ ॥

श्रीकोशलेन्द्रजी महाराज दोनों हाथों से श्रीमिथिलेशजी महाराजको अपने श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर, उनके प्रार्थना करने पर वे स्वयं भी बैठ गये ॥३५॥

उवाच परया प्रीत्या पिता ते पितरं मम ।
कच्चित्कुशलवानस्ति भवान् सान्तः पुरादिकः ॥ ३६ ॥

बड़े प्रेम पूर्वक आपके पिताजी हमारे श्रीपिताजीसे बोले-हे राजन् ! आप अन्तःपुर आदिके सहित सकुशल तो हैं ? ॥ ३६ ॥

इदानीमुच्यतां प्रातरागतेराद्यकारणम् ।
श्रीमता निकटेऽस्माकं स्वकीय व्यक्तया गिरा ॥ ३७ ॥

श्रीमान्जी अब प्रातःकाल मेरे पास अपने आनेका मुख्य कारण स्पष्ट वाणीसे कथन करें ॥ ३७ ॥

तदहं श्रवणाकाङ्क्षाव्यग्रचितो नराधिप !
यतः श्रीमान्मया नूनमद्य प्रार्थिव लक्ष्यते ॥ ३८ ॥

हे नराधिप ! उसे सुनने की इच्छासे मेरा चित्त चञ्चल हो रहा है, क्योंकि आज श्रीमान्जी मुझे कुछ प्रार्थना करनेके लिये इच्छुकसे प्रतीत हो रहे हैं ॥ ३८ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्तो महीपालो महीपालेन सादरम् ।
बद्धाञ्जलिरुवाचेदं प्रेमसंरुद्धया गिरा ॥३६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीचक्रवर्तीजीके इस प्रकार कहने पर श्रीमिथिलेशजी महाराज, आदर पूर्वक प्रेम गद्गदवाणीसे यह हाथ जोड़ कर बोले ॥ ३९ ॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

सार्वभौम ! महाराज ! कुमारांस्तव सुव्रत !
समाहूयाद्य संद्रष्टुं ममान्तः पुरमिच्छति ॥४०॥

हे सुन्दर व्रतोंको धारण करनेवाले सार्वभौम (श्रीचक्रवर्तीजी) महाराज ! आज मेरा अन्तः पुर आपके चारो राजकुमारोंको बुलाकर देखने की इच्छा कर रहा है ॥ ४० ॥

एतदर्थमहं प्राप्तः पिनाकागारतः स्वयम् ।
विचार्य्य मनसा युक्तं रोचते यत्तदुच्यताम् ॥४१॥

इसी अभिप्रायसे इस समय धनुष भवनसे मैं स्वयं आया हूँ, सो मनसे उचित विचार करके जो आपकी रुचिहो उसे कह दीजिये ॥ ४१ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्थमाभाषितं वाक्यं वशिष्ठो भगवान्मुदा ।
अभ्यभाषत संश्रुत्य पितुर्मे कोशलेश्वरम् ॥४२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः-हे प्यारे ! हमारे पिताजीके इस वचनको श्रवण करके भगवान् श्रीवशिष्ठजी हर्ष पूर्वक श्रीकोशलेन्द्र महाराजसे बोले ॥ ४२ ॥

श्रीवशिष्ठ उवाच ।

एतत्प्रयोजनायैव दूतेऽप्यत्रागते सति ।
सत्वरं भवता प्रेष्या अविचारयता सुताः ॥४३॥

हे राजन् ! लालजीको श्रीमिथिलेशजी महाराजके अन्तःपुरको ले जानेके लिये इनके दूतके भी यहाँ आजाने पर राजकुमारोंको बिना कुछ विचार किये ही आपको तत्क्षण भेज देना उचित था ४३

किं पुनर्नृपशार्दूल ! स्वयमेवागते सति ।
आनेतुं नरदेवेऽस्मिन् कुमारान्प्रेषयाश्वतः ॥४४॥

फिर श्रीमिथिलेशजी महाराजके स्वय लेनेके लिये आने पर विचारही क्या ? अत एव शीघ्र राज कुमारोंको महल भेज दीजिये ॥ ४४ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं वदति विश्वास्यो भवान् मोहनविग्रहः ।
इनवंशगुरावार्येऽगमत्तत्र यदृच्छया ॥४५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीसूर्यवंशके गुरुदेवजीके इस प्रकार कहने पर ही अपने स्वरूपसे सभींको मोहित करने वाले, चन्द्रवदन, आप वहाँ अकस्मात् जा पहुँचे ॥ ४५ ॥

कृतप्रणाममाशीर्भिरभिनन्द्य प्रियोत्तम !
सुषमामाधुरीं सर्वे दृक्पुटाभ्यां च ते पपुः ॥४६॥

हे प्रियोत्तम ! प्रणाम किये हुये आपको वे सभी शुभाशीर्वादके द्वारा अभिनन्दित करके अपने नेत्र रूपी दोनोंसे आपकी अतुलित छविरूपी-माधुरीका रस पीने लगे ॥ ४६ ॥

तत आदृत्य हृष्टात्मा त्वां परिष्वज्य भूपतिः ।
यदाह मधुरं वाक्यं जनन्यास्तच्छ्रुतं ब्रुवे ॥४७॥

तत्पश्चात् श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने प्रसन्न हृदय हो, आदर करके जो आपसे मधुर वचन कहा था, श्रीसुनयना अम्बाजीके मुखसे श्रवण किया हुआ वह मैं आपको सुना रही हूँ ॥४७॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

वत्स ! श्रीराम ! भद्रं ते परीतस्त्वानुजैर्नृपः ।
आगतोऽयं महाराज्ञ्या प्रेरितस्ते निनीषया ॥४८॥

श्रीचक्रवर्तीजी महाराज बोले :-हे वत्स ! हे श्रीरामभद्रजू ! आपका कल्याण हो, ये श्रीमिथिलेशजी महाराज, श्रीमहारानीजीकी प्रेरणासे आपको भाइयोंके सहित अपने महल ले जानेकी इच्छा से आये हुये हैं ॥४८॥

अतोऽभिभाष्य जननीं गम्यतां त्वरया त्वया ।
महाराजालयस्तात ! राज्ञीसन्तोषहेतुवे ॥४९॥

अत एव अपनी अम्बाजीसे कहकर शीघ्र श्रीसुनयना महारानीजीके सन्तोषके लिये महाराजके महल पधारिये ॥४९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्याकर्ण्य पितुर्वाक्यं वशिष्ठानुमतं तदा ।
प्रणिपत्यागमस्तूर्णं मातरं निकषा ततः ॥५०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :-हे प्यारे ! तदनन्तर श्रीवशिष्ठजी महाराजकी अनुमति पूर्वक अपने पिताजीके इस प्रकारके वचनको श्रवण करके उन्हें प्रणामकर आप श्रीकौशल्या अम्बाजीके पास तुरत चले गये ॥५०॥

सा परिज्ञाय मे मातुरभिप्रायं मुदान्विता ।
संविभूष्य समालिङ्ग्य गन्तुमाज्ञापयत्सुधीः ॥५१॥

आपकी श्री अम्बाजीने मेरी सुनयना अम्बाजीके अभिप्रायको जानकर परम आनन्द युक्त हो, नखसे शिखा पर्यन्तका सब शृङ्गार धारण कराके आपको हृदयसे लगा, उनके यहाँ जानेकी आज्ञा प्रदान की ॥५१॥

ततोऽभिवाद्य जननीं परीतो बन्धुभिः प्रिय ! ।
समीपं पितुरुत्प्राप भवान्पङ्कजलोचनः ॥५२॥

श्रीअम्बाजीकी आज्ञा मिल जाने पर उन्हें प्रणाम करके, कमललोचन सरकार आप अपने भाइयोंके सहित अपने श्रीपिताजीके पास आये ॥५२॥

स त्वामुपगतं दृष्ट्वा लालयित्वोपगूह्य च ।
आघ्राय मस्तकं ह्याज्ञां गमनाय प्रदत्तवान् ॥५३॥

उन्होंने आपको अपने पासमें आये हुये देखकर लाड करके, हृदयसे लगाया और आपके मस्तकको सूंघकर (श्रीमिथिलेशजी महाराजके महल) जानेके लिये आज्ञा दी ॥५३॥

गुरुपित्रोः पदाब्जेषु तदा कृत्वाऽभिवादनम् ।
भ्रातृभिः सहितो हृष्टो गमनायाकरोर्मतिम् ॥५४॥

तब श्रीवशिष्ठजी महाराज व अपने श्रीपिताजीके चरण कमलोंमें प्रणाम करके भाइयोंके सहित हर्षपूर्वक गमन करनेकी आपने इच्छा की ॥५४॥

चलच्छैलप्रतीकाशमैरावतकुलोद्भवम् ।
समारुह्य महानागं सर्वालङ्कारशोभितम् ॥५५॥

अतः चलते हुये पहाड़के सदृश ऊँचे तथा विशाल समस्त शृङ्गारसे शोभायमान एरावतके वंशमें जन्म लिये हुये, श्रेष्ठ हाथी पर चढ़कर ॥५५॥

पितुरङ्कगतोऽस्माकं जगन्मोहनविग्रहः ।
अतीवशुशुभे तर्हि भवान् राजपथा व्रजन् ॥५६॥
परमानन्दसन्दोह ! पश्यतां पुरवासिनाम् ।
वर्षतां पुष्पवर्षाणि वदतां च जयेत्यपि ॥५७॥

पश्यन्तीनां गवाक्षेभ्यो मनोरत्नानि योषिताम् ।
षष्ठमावरणं प्राप भवान् गृह्णन्नुपायने ॥५८॥

उस समय हमारे श्रीपिताजीकी गोदमें प्राप्त हो, राजमार्ग द्वारा महल जाते हुए, अपने मङ्गलमय स्वरूपसे सभी चर-अचर प्राणियोंको मुग्ध करने वाले आपकी, बड़ी ही शोभा हो रही थी ॥५६॥ हे परमानन्द (ब्रह्मानन्द) सन्दोह ! पुनः फूलोंकी वर्षा बरसाते और जय जय कार करते हुये पुरवासियोंको दर्शन देते हुये ॥५७॥ तथा झरोखोंसे दर्शन करती हुई स्त्रियोंके मन रूपी रत्नों की भेंट ग्रहण करते हुए आप छठें आवरणमें जा पहुँचे ॥५८॥

तस्मादपि विनिष्क्रम्य सप्तमावरणे शुभे ।
प्राविशोऽन्तः पुरं रम्यं मनोज्ञं मिथिलेशितुः ॥५९॥

उस छठे आवरणसे भी निकलकर आपने नगरके सातवें शुभ आवरणमें, श्रीमिथिलेशजी महाराजके मनोहर, रमणीय अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥५६॥

पञ्चमावरणं यावद् गजेनाभ्येत्य वै भवान् ।
ततोऽवतारितः प्रागात् पष्ठमालिरथेन सः ॥६०॥

उस अन्तः पुरमें पञ्च आवरण तक हाथीसे जाकर, आपको उसपरसे उतार कर सखीयानमें बैठाया गया, अतः उस आलियानके द्वारा आप छठे आवरणमें पहुँचे ॥६०॥

तदाऽऽश्रुत्य समायान्तं मम माता यशस्विनी ।
सस्वागतं समानेतुं वत्सला त्वामुपागता ॥६१॥

तब मेरी यशस्विनी, वात्सल्यवती (श्रीसुनयना) अम्बाजी, आपको आते हुये सुनकर स्वागत पूर्वक अपने महलमें ले जानेके लिये आपके पास उपस्थित हुईं ॥६१॥

नीलेन्दीवरमव्याङ्गं राकाशशिनिभाननम् ।
शतपत्रपलाशाक्षं बिम्बोष्ठं मोहनस्मितम् ॥६२॥

नील-कमलके समान सुन्दर श्याम अङ्ग, शरद् पूर्णिमाके चन्द्रके सदृश मनोहर, आह्लाद-वर्द्धक मुखारविन्द, कमलदलके समान विशाल नेत्र, कुन्दुरू फलके तुल्य लाल ओठ, मोहन मुस्कान ॥६२॥

कम्बुग्रीवं महोरस्कं गूढजत्रुं सुनासिकम् ।
सुभ्रुवं स्वीक्षणं सुष्ठुकपोलं दीर्घमस्तकम् ॥६३॥

शङ्खके सदृश कण्ठ, विशाल हृदय, छिपी हुई कन्धेसे गले पर्यन्तकी हड्डी, सुन्दर नासिका, भौंह, सुन्दर चितवन, सुन्दर गाल विशालमस्तक ॥६३॥

आजानुबाहुमालोक्य सर्वाङ्गप्रियदर्शनम् ।
किरीटहारकेयूरनूपुरादिविभूषितम् ॥६४॥

घुटुने तक लम्बी बाँह, सर्वाङ्ग प्रिय दर्शन (जिनके सभी अङ्गोंका दर्शन प्रिय लगता है) किरीट, हार, बाजूबन्द, नूपुर आदि भूषणोंसे विभूषित (शृङ्गार किये हुवे) देखकर ॥६४॥

भवन्तं श्रुतिसिद्धान्तसारं बन्धुभिरन्वितम् ।
आलिलिङ्ग महाभागा माता सुनयना मुदा ॥६५॥

बन्धुओंसे युक्त वेदोंके सिद्धान्तके साररूप आपको बड़भागिनी श्रीसुनयनाअम्बाजीने आनन्द पूर्वक हृदयसे लगाया ॥६५॥

अवाप्य परमानन्दं गृहीत्वा त्वत्कराङ्गुलीम् ।
समानीयात्मनो वेश्म रत्नपीठे न्यवेशयत् ॥६६॥

श्रीअम्बाजीने आपको हृदयसे लगाकर परमानन्द (भगवदानन्द) को प्राप्त हो, आपके कर कमलकी अङ्गुली पकड़कर आपको अपने महलमें लाकर, रत्नमय सिंहासन पर विराजमान किया ॥

ततो नीराज्य सा शीघ्रं स्वर्णपात्रनिवेशितम् ।
घृतपक्वं पयःपक्वं मिष्टान्नं विविधं ह्यदात् ॥६७॥

पश्चात् आरती करके सुवर्णके थालमें सजाई हुई, घी तथा दूधके द्वारा पकाई हुई अनेक प्रकारकी मिठाइयाँ वे शीघ्र आप लोगोंको देती हुई ॥६७॥

भोजनार्थं महाराज्ञी हर्षविस्फारितेक्षणा ।
दत्वा दधिचिपिटान्नं सादरं पुनरब्रवीत् ॥६८॥

हर्षसे फैले हुये नेत्रवाली महारानी (श्रीसुनयनाअम्बाजी) पुनः भोजनके लिये दही चिउड़ा देकर आदर पूर्वक बोलीं:-॥६८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

भुज्यतां वत्स ! श्रीराम ! कौशल्यानन्दवर्द्धन ! ।
हे श्रीभरत ! सौमित्री ! भद्रं वः परमोदतः ॥६९॥

हे श्रीकौशल्यानन्दवर्धन ! वत्स ! श्रीराम ! हे श्रीभरतलालजी ! हे श्रीसुमित्रानन्दन श्रील लाल व श्रीरिपुसूदनजी ! आप चारों भाइयोंका कल्याणहो ! परमआनन्द पूर्वक भोजन कीजिये

न सङ्कोचो मनाकार्यो व इदं हि निकेतनम् ।
अंशुकावरणं चेद्वो रोचते करवाण्यहम् ॥७०॥

भोजन करनेमें किञ्चित भी सङ्कोच न करेंगे, क्योंकि यह महल आपही लोगोंका है। यदि आप लोगोंकी रुचि हो, तो मैं कपड़ेका पर्दा कर दूं ॥७०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतन्मे जननीवाक्यं पितृव्या सर्व एव हि ।
सम्बोध्य त्वां ततः प्रीता हर्षिताः समपूजयन् ॥७१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! आपको सम्बोधित करके कुशध्वज आदि सभी चाचा लो मेरी श्रीसुनयना अम्बाजीके इस वचनका अनुमोदन किया । अर्थात् वे बोले:-हे वत्स श्रीरा सङ्कोच निवारणके लिये श्रीमहारानीजूके विचारानुसार कपड़ेका परदा हो जाना ही ठीक है ॥

श्रीराम उवाच -

अंशुकावरणस्यास्ति किमम्बेह प्रयोजनम् ।
स्थितिरावरणोपेता मह्यमन्यत्र रोचते ॥७२॥

हे प्यारे ! आप बोले :-हे श्रीअम्बाजी ! कपड़ाके पर्दाकी यहाँ क्या आवश्यकता है ? से रहना मुझे अन्यत्र ही विशेष रुचिकर है । अर्थात् जिनका प्रेम मेरे प्रति न होकर सांसा विषय भोगोंमें ही है, उनके पास मायाका परदा डालकर मुझे रहना स्वाभाविक प्रिय है, प इस प्रेमी भक्त नगरमें जब मैं उस मायाका ही परदा नहीं रखना स्वीकार करता तब, किसी के परदेकी मुझे क्या आवश्यकता है ? सारांश यह है कि जगद्विमुखोन्मुख अभक्त-संसारमें तो माया रूपी परदाके भीतर रहने वाला हूँ, परन्तु भक्त मण्डलके लिये नहीं । अत एव कपड़े के परदेकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है ॥७२॥

श्रीस्नेह परोवाच ।

एदुक्तं वचः प्रेष्ठ ! त्वदीयममृतोपमम् ।
पीत्वा श्रुतिपुटाभ्यां ते परां शान्तिमुपागमन् ॥७३॥

श्रीस्नेहपराजी बोली-हे प्यारे ! अमृतके समान मृतकको जीवन दान देनेवाले आपके वचनको श्रवण (कान) रूपी दोनोंसे पीकर वे (हमारे सभी चाचा) परम शान्तिको प्राप्त हुये ॥

अथोचुर्हर्षपूर्णाचा वत्स ! राम ! वचस्तव ।
युक्तं निरुपमं जीव सुखेन शरदां शतम् ॥७४॥

उसके बाद हर्ष पूर्ण नेत्र हुये (वे हमारे चाचा) बोलेः-हे वत्स ! श्रीराम ! आपकी यह वाणी बहुत ही युक्त और उपमा रहित है अतः आप सैकड़ों (अनन्त) वर्षों तक जीवित रहें ॥७४॥

तस्मिन्नेव शुभे काले हेमादीनां च मातरः ।
आगता दर्शनार्थाय श्रुत्वा त्वां गृहमागतम् ॥७५॥

हे प्यारे ! उसी समय श्रीहेमाजी आदिकी मातायें, आपको महलमें आये हुये श्रवण करके, दर्शन करनेके लिये आगयीं ॥७५॥

ताः प्रणम्य महाराज्ञीं सुनयनां सुसत्कृताः ।
महार्घ्यविस्तरे रेजुर्दर्शनोत्सुकलोचनाः ॥७६॥

वे श्रीसुनयना अम्बाजीको प्रणाम करके उनके द्वारा समयानुसार सत्कृत हो आपके दर्शनोंके लिये उत्सुक नेत्रोंसे बहुमूल्य विछावन पर विराजमान हुईं ॥७६॥

सवत्साः पद्मपत्राक्ष्यो हिमांशुप्रतिमाननाः ।
वात्सल्यरससम्पूर्णहृदयेन सुशोभिताः ॥७७॥

(वे) अपने शिशुओंसे युक्त, कमल पत्रके समान विशाललोचना, चन्द्रमाके सदृश सुन्दर उज्वलमुख वाली और वात्सल्य रससे परिपूर्ण हृदयसे सुशोभित थीं ॥७७॥

तदा धात्री समाहूता विरहाकुलचित्तया ।
आनिन्ये कृत्रिमागारान्निमिवंशविभूषणाम् ॥७८॥

सभी देवरानियोंकी गोदमें शिशुओंको देखकर श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीकिशोरीजीके विरहसे व्याकुल चित्त हो धाईको बुला भेजा, तब वह निमिवंशकी विशिष्ट भूषण स्वरूपा श्रीकिशोरीजीको कृत्रिमागारसे ले आयी ॥७८॥

रुदन्तीमिन्दुपुञ्जाभां प्रभालज्जितदामिनीम् ।
ददावङ्क इमां राज्ञ्यास्ततः सा विरहं जहौ ॥७९॥

और चन्द्र समूहके सदृश कान्ति वाली, तथा अपने अङ्गोंकी प्रभासे बिजुलीको लज्जित करने वाली, इन रुदन करती हुई श्रीकिशोरीजीको अम्बाकी गोदमें दे दिया। गोदमें श्रीकिशोरीजीके बैठ जाने पर श्रीअम्बाजीने अपने विरहको परित्याग किया ॥७९॥

वस्त्रमन्तरतः कृत्वा पाययामास वै पयः ।
भोजयन्ती च सम्प्रीत्या त्वामिमामतुलच्छविम् ॥८०॥

पुनः अतिशय प्रेम पूर्वक आपको भोजन कराती हुई, वे उपमा रहित छवि- सम्पन्ना इन श्रीकिशोरीजीको वस्त्र ओट करके दुग्धपान कराने लगीं ॥८०॥

पुनः क्रोडे समारोप्य शरच्चन्द्रनिभाननाम् ।
लालनैर्बहुधा मात्रा तया संभोजितो भवान् ॥८१॥

पुनः शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, आह्लादवर्द्धक प्रकाश-मय मुख वाली (इन) श्रीकिशोरीजीको अपनी गोदमें लेकर श्रीअम्बाजीने बहुलालनके सहित आपको भोजन करवाया ८१

भगिन्यो मम वै सर्वास्त्यक्त्वाम्बाङ्कनिकेतनाः ।
उपगम्य विशालाक्षीमिमां तस्थुः समानताः ॥८२॥

मेरी सभी बहिनें अपनी २ अम्बाजीके गोदरूपी महलको परित्याग कर इन विशाल-लोचना (श्रीकिशोरी) जीको प्रणाम करके बैठ गयीं ॥८२॥

प्रीत्या चेष्टास्तदा तासां शैशवीर्हृदयङ्गमाः ।
भ्रातृभिर्भवता कान्त ! कृतं संपश्यताऽशनम् ॥८३॥

हे कान्त ! उन सबोंकी मनोहर शिशु-चेष्टाओंको देखते हुये आपने भाइयोंके सहित प्रेम-पूर्वक भोजन किया ॥८३॥

प्रदायाचमनं तुभ्यं पाययित्वाऽमृतं पयः ।
ताम्बूलवीटिका दत्ताश्चातिवत्सलयाऽमुया ॥८४॥

पुनः उनके अत्यन्त वात्सल्यवती श्रीअम्बाजीने आचमन कराकर तथा दूध पिला करके आपको पानका बीरा प्रदान किया ॥८४॥

मोहिनी सच्चिदानन्दमयी मूर्त्तिर्हि तावकी ।
चेतसां हन्त सर्वासां मातॄणां प्रबभूव नः ॥८५॥

हे प्यारे ! आपकी सत्-चित्-आनन्दमयी मूर्ति हमारी सभी माताओंके चित्तको मुग्ध करलेने वाली हो गयी अर्थात् उसने सभीके चित्तको मुग्ध कर लिया ॥८५॥

पटमन्तरतः कृत्वा पुरुषाणां विशेषतः ।
सुखोपविष्टमासाद्य लालयामासुरेव ताः ॥८६॥

पुरुषोंके बीचमें वस्त्रका ओट करके सुखपूर्वक बैठे हुये आपके पास वे सभी आकर दुलार करने लगीं ॥८६॥

यथा कामं तु ताः सर्वा लालयित्वा च मातरः ।
प्रीतिनिर्भरपद्माक्ष्यो हर्षमापुरनुत्तमम् ॥८७॥

वे सभी अम्बाजी, अपनी अपनी इच्छानुसार आप लोगोंका लाड़ करके प्रीतिसे लबालब नेत्र-कमलवाली हो अपार हर्षको प्राप्त हुईं ॥८७॥

अनुज्ञाप्य महाराज्ञीं नत्वा चोरसि ते छविम् ।
विनिवेश्य ययुः स्वं स्वं भवनं ता मनोहरम् ॥८८॥

इति द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४२॥

पुनः वे सभी श्रीअम्बाजीसे आज्ञा लेकर, अपने हृदयमें आपकी मनोहर छबिको बिठा करके अपने २ भवनोंको चली गयीं ॥८८॥

अथ त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४३॥

श्रीसुनयनाअम्बाजीका श्रीचक्रवर्तीकुमारोंको अपने कौतुकभवनका दर्शन कराके भोजनगृहमें ले जाना तथा भोजनके पश्चात् दिवा-विश्राम भवनमें उन्हें विश्राम देना ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

ततस्त्वां सा समानीय दक्षिणस्यां गृहाद् दिशि ।
कौतुकागारमम्बा मे प्रयाता भूरिभागिनी ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :-हे प्यारे ! हमारी सभी माताओंके अपने अपने महल चले जाने पर बड़भागिनी मेरी श्रीसुनयना अम्बाजी आपको लेकर अपने उस शयन महलसे दक्षिण दिशामें स्थित श्रीकौतुकागारमें जाती हुईं ॥१॥

यत्र नद्यब्धिदेशानां दर्शनं कौतुकान्वितम् ।
चलच्छैलवनादीनामञ्जसा जायते नृणाम् ॥२॥

जिसमें मनुष्योंको आश्चर्यमय नदी, समुद्र, देश और चलते हुये पहाड़ आदिकोंका दर्शन अनायास प्राप्त होता है ॥२॥

सवाद्यगानरासश्च निकुञ्जे पुष्पमण्डपे ।
कृत्रिमालिसमूहानां दृश्यते चित्तमोहनः ॥३॥

तथा निकुञ्जके पुष्पमण्डपमें नकली सखी-समूहोंका गान वाद्यके सहित चित्तको मुग्ध करलेने वाला रास देखनेको प्राप्त होता है ॥३॥

क्रीडतां वनजन्तूनां सानुरागं परस्परम् ।
दर्शनं कारितं तुभ्यं कान्तिमत्या महाद्भुतम् ॥४॥

परस्पर अनुरागपूर्वक क्रीडा करते हुये वनके जन्तुओंका परम आश्चर्यमय दर्शन आपको श्रीकान्तिमती अम्बाजीने जहाँ कराया था ॥४॥

दोलद्वालनिकुञ्जश्च प्रसूनफलमण्डितः ।
दर्शितो ज्येष्ठया मात्रा मनोनेत्रसुखावहः ॥५॥

तथा जहाँपर बड़ी श्रीअम्बाजीने मन व नेत्रको सुख पहुँचाने वाले पुष्पफलोंसे सुशोभित, बालकोंके कुञ्जका झूलते हुये दर्शन कराया था ॥५॥

उत्पतत्पशुमर्त्यानां विहरतां स्ववासिनाम् ।
दर्शनं कारितं तुभ्यं यत्र श्रीचन्द्रभद्रया ॥६॥

पुनः जहाँ आपको उड़ते हुये पशु और मनुष्योंका, क्रीडा करते हुये देववृन्दोंका दर्शन श्रीचन्द्रभद्राजीने कराया था ॥६॥

घनानां गर्जनं वृष्टिश्चपलायाः प्रकाशनम् ।
दृश्यते सर्वदा यस्मिन् परं विस्मयकारकम् ॥७॥

जिसमें महान् आश्चर्य-कारक मेघोंकी गर्जना, वर्षा तथा बिजुलीकी चमक सदा ही दिखलाई पड़ती है ॥७॥

तस्मिन् क्रोडात्समुत्तार्य दोलनेऽतुलितप्रभे ।
चिन्तामणिमये रम्ये पुत्रिकां स्वां न्यवेशयत् ॥८॥

वहाँ उन्होंने अपनी गोदसे श्रीकिशोरीजीको उतारकर अतुलित प्रकाश युक्त, सुन्दर, चिन्तामणिमय झूले पर उन्हें बैठाया ॥८॥

याम्यां भरतशत्रुघ्नावुदीच्यां लक्ष्मणस्तथा ।
सम्मुखे रत्नदोलायां त्वं तथा सुनिवेशितः ॥९॥

दक्षिण दिशामें श्रीभरतलाल व श्रीशत्रुघ्नलालजीको, उत्तरमें श्रीलक्ष्मणलालजीको और पूर्व भागमें सम्मुख श्रीअम्बाजीने रत्नमय झूले पर आपको बैठाया ॥९॥

ह्लादपूर्णान्तरात्माऽभूत्पश्यन्ती तत्कुतूहलम् ।
चतुर्दिक्षु महानन्दरसवृष्टिसमन्वितम् ॥१०॥

पुनः चारो दिशाओंमें महान् आनन्दरूपी रसकी वर्षासे युक्त कौतूहल देखती हुई वे आह्लाद परिपूर्ण अन्तरात्मा हो गयीं अर्थात् उनकी अन्तरात्मा आह्लादसे परिपूर्ण हो गयी ॥१०॥

अष्टवर्षोपमः श्रीमान् दृश्यते स्म तया भवान् ।
षट्वार्षिकीयमिन्द्वास्या सर्वाभरणभूषिता ॥११॥

हे प्यारे! उस समय आप श्रीअम्बाजीको आठ वर्षके समान और ये श्रीकिशोरीजी सम्पूर्ण भूषणोंके शृङ्गारसे युक्त ६ वर्षके सदृश दिखलाई देने लगीं ॥११॥

एकस्मिन्दोलने दृष्ट्वा त्वामिमां चात्मपुत्रिकाम् ।
साश्चर्यहृदया राज्ञी प्रतीचीं प्रत्यवेक्षत ॥१२॥

पूर्व भागके एक ही झूलेपर आपका और अपनी इन श्रीललीजीका दर्शन करके आश्चर्य युक्त हृदय हो रानी श्रीसुनयना अम्बाजीने पश्चिमकी ओर देखा, उधर देखनेका भाव यह हुआ कि श्रीलालजी तो इधर श्रीललीके ही झूलन पर आगये हैं अतः पश्चिमकी ओर सामने वाला उनका झूला शून्य ही लगता होगा ॥१२॥

तस्यामपि तया दृष्टा प्रफुल्लकमलेक्षणा ।
परीतेयं त्वया प्रेष्ठ ! यथा प्राच्यां पुरेक्षिता ॥१३॥

हे प्यारे! उस पश्चिम दिशामें भी उसी प्रकार खिले कमलके सरीखे नेत्रवाली श्रीकिशोरीजी का दर्शन आपके सहित श्रीअम्बाजीको प्राप्त हुआ जैसे पूर्व दिशामें हो चुका था ॥१३॥

युवां प्राच्यां प्रतीच्यां च पश्यन्ती सा मुहुर्मुहुः ।
एकरूपौ विशालाक्षौ शर्म सा नाभ्यपद्यत ॥१४॥

अब श्रीअम्बाजी पूर्व और पश्चिम दिशामें जिधर भी दृष्टि डालती थीं उधर बार-बार आप दोनों सरकारका ज्योंका त्यों, एक स्वरूपसे ही दर्शन होता था। अतः आप दोनो विशाल लोचन सरकारका दर्शन करती हुई मनकी स्थिरताको वे न प्राप्त कर सकीं ॥१४॥

पुनरेकामिमामेव यथा संस्थापितां किल ।
प्राच्यां दिशि समुद्वीक्ष्य प्रतीच्यां त्वामुदैक्षत ॥१५॥

पुनः पूर्व दिशामें जिस प्रकार इन श्रीकिशोरीजीको पहले श्रीअम्बाजीने विराजमान किया था, उसी प्रकारसे उनका दर्शन प्राप्त करके पश्चिमकी ओर आपका भी वैसाही दर्शन प्राप्त किया ॥

एतत्तु कौतुकं दृष्ट्वा युवाभ्यां विहितं प्रिय !
आश्चर्यसागरं तर्तुं कथञ्चित्सा न चाशकत् ॥१६॥

हे प्यारे ! श्रीसुनयना अम्बाजी आप युगलसरकार द्वारा किये हुये इस कौतुकको देखकर अपने आश्चर्य रूपी सागरको पार करनेमें समर्थ न हो सकीं ॥१६॥

दर्शयित्वेति वः कामं कौतुकागारमद्भुतम् ।
मज्जनागारमागच्छत्कौतुकासक्तमानसा ॥१७॥

इस प्रकार आप चारो भाइयोंको वे उस अद्भुत कौतुकागारका दर्शन कराके आप दोनों सरकारके किये हुये कौतुक (खेल) में आसक्त मन हुई श्रीअम्बाजी स्नान-भवनमें पधारीं ॥१७॥

सत्कृता सादरं राज्ञी मुख्यया तद्वयस्या ।
अन्तः प्रविश्य वस्त्राणि भूषणानि समत्यजत् ॥१८॥

वहाँकी मुख्य सखीजीसे आदर पूर्वक सत्कृत हो, भीतर प्रवेश करके उन्होंने वस्त्र व भूषणोंको उतारा ॥१८॥

उद्वर्तनविधिं कृत्वा स्नापयित्वा ततो हि वः ।
सस्नावागतास्वप्सु कमलाया मृगेक्षणा ॥१९॥

पुनः उबटनकी विधिको पूरी करके मृगके समान विशाल नयन वाली श्रीअम्बाजी श्रीकमलाजीसे आये हुये जलमें आप लोगोंको स्नान कराके स्वयं स्नान करने लगीं ॥१९॥

पुनः प्राकृतशृङ्गारालङ्कृता वो विभूष्य च ।
मण्डनाख्यं महद्वेश्म प्रायात्सुकृतविग्रहा ॥२०॥

पुनः आप लोगोंका शृङ्गार करके स्वयं भी साधारण शृङ्गारको धारण किये हुई सुकृतकी साक्षात् मूर्त्ति श्रीअम्बाजी मण्डन (शृङ्गार) नामके श्रेष्ठ भवनमें पधारीं ॥२०॥

यत्र गत्वैव देवानां लोभश्चित्तेषु जायते ।
तद्वर्णनं कृतं किं स्यान्मादृशीभिरबुद्धिभिः ॥२१॥

जहाँ देवताओंके चित्तमें भी जाते ही लोभ उत्पन्न हो जाता है, उस शृङ्गार-भवनका मेरी सरीखी बुद्धि हीन बालिकाके द्वारा भला क्या वर्णन हो सकता है ? ॥२१॥

अलङ्कृतास्तया यूयं स्वर्णसिंहासने पुनः ।
वेष्टिते मृदुवासोभिः सादरं सन्निवेशिताः ॥२२॥

वहाँ श्रीअम्बाजीने अपने हाथोंसे पूर्ण शृङ्गार धारण करा करके, आप लोगोंको कोमल बिछावन सुसज्जित सिंहासन पर आदर पूर्वक विराजमान कराया ॥२२॥

ततश्चालङ्कृता सा तु त्वामवेक्ष्य मनोहरम् ।
प्रीत्या नीराजयामास स्वानन्दोत्फुल्ललोचना ॥२३॥

तदनन्तर आनन्दसे पूर्ण खिले हुवे नेत्रोंवाली वे श्रीसुनयना अम्बाजी अलंकृत हो आप मन-हरण सरकारका दर्शन करके वहाँ प्रेम पूर्वक आप लोगोंकी आरती की ॥२३॥

आजगामालयं मुख्यं भोजनाख्यं मनोहरम् ।
सखीभिः प्रार्थिता प्रीत्या भवद्भिश्चानयाऽन्विता ॥२४॥

तदनन्तर दासियोंके प्रार्थना करने पर इन श्रीकिशोरीजीके तथा आप चारों भाइयोंके सहित भोजन नामके मनोहर महलमें पधारीं ॥२४॥

पूर्वमेवागतास्तत्र सर्वासां नो हि मातरः ।
भवतां दर्शनार्थाय महाभागाः सुतान्विताः ॥२५॥

हम सभी बहिनियोंकी बड़भागिनी मातायें पुत्र-पुत्रियोंके सहित उस भोजन सदनमें आपके दर्शनोंके लिये पूर्वमें ही आचुकी थीं ॥२५॥

तास्तु वै स्वागतं चक्रुर्भवतां प्रीतिपूर्वकम् ।
प्रणिपत्य महाराज्ञीं तयैव पुनरादृताः ॥२६॥

महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जीको प्रणाम करके, उनके द्वारा आदर पाकर, प्रेम-पूर्वक, उन सबोंने, आप चारो भाइयोंका स्वागत किया ॥२६॥

अधिष्ठात्र्या निकेतस्य कृत्वा नीराजनं पुनः ।
सेव्यमाना गृहं नीता सर्वाभिर्मम मातृभिः ॥ २७ ॥

उस भोजन सदनकी स्वामिनी सखीजी आरती करके, मेरी सभी माताओंसे सेवित श्रीसुयना अम्बाजीको अपने उस सदनमें ले गयीं ॥२७॥

क्षालयित्वाङ्घ्रियुगलं तासां तु भवतां तथा ।
यथायोग्येसु पीठेषु पुनः सर्वा निवेशिताः ॥ २८ ॥

वहाँ उस सखीजीने आप लोगोंके तथा सभी माताओंके चरण-कमलोंको धोकर यथायोग्य सुन्दर पीढ़ों पर विराजमान किया ॥२८॥

आज्ञप्ता विपुलाः सख्यः षड्रसं च चतुर्विधम् ।
भोजनं स्वर्णपात्रेषु धृत्वा चक्रुरथार्पितम् ॥ २९ ॥

पुनः उस सखीकी आज्ञासे बहुत सी सखियाँ चार प्रकारसे युक्त षट्रस (छ रस मय) भोजन सोनेके थालोंमें सजा, सजा कर अर्पण करने लगीं ॥२९॥

अम्बा सुनयना तत्तु भोजनं हरये यदा ।
कर्तुं समर्पितं दध्यौ तदा त्वं हि तयेक्षितः ॥३०॥

उस भोजनको श्रीसुनयना अम्बाजी जब भगवानको समर्पण करनेके लिये उनका ध्यान करने लगीं, तब आपही उनको ध्यानमें दिखाई देने लगे ॥३०॥

पुनस्तं चिन्तयामास श्रीपतिं यतमानसा ।
ततस्त्वमनया साकमभवो दृष्टिगोचरः ॥३१॥

पुनः श्रीअम्बाजी अपने मनको एकाग्र करके उन श्रीलक्ष्मीपति भगवानका ध्यान करने लगीं तब आप उन्हें ध्यानावस्थामें इन श्रीकिशोरीजीके सहित दृष्टिगोचर हुये ॥३१॥

न ध्यानविषयो यर्हि बभूवासौ रमापतिः ।
कयाचिदपि वै युक्त्या जहौ ध्यानं सुवत्सला ॥३२॥

जब किसी भी युक्तिसे वे लक्ष्मीपति भगवान् उनके ध्यानमें न आये तब सुन्दर वात्सल्य रस सम्पन्ना श्रीअम्बाजीने ध्यान करना स्थगित कर दिया ॥३२॥

नैतद्रहस्यं कस्यैचिद्व्यापितं कौतुकान्वितम् ।
भोजनायानुरक्त्यैव समाज्ञप्तस्तया भवान् ॥३३॥

परन्तु इस आश्चर्यमय रहस्यको उन्होंने किसीसे नहीं कहा, अनुरक्तिके कारण विवश होकर भोजन करनेके लिये आपको आज्ञा देदी ॥३३॥

समुवाच पुना राज्ञी प्रेमगद्गदया गिरा ।
क्रियतां भोजनं वत्सा ! भवद्भी रुचिपूर्वकम् ॥३४॥

पुनः महारानी (श्रीसुनयनाअम्बाजी) प्रेममयी गम्भीर वाणीसे बोलीं:–हे वत्सो ! आप लोग रुचि पूर्वक भोजन कीजिये ॥३४॥

प्रत्यहं जननीहस्तात्क्रियतेऽप्येव भोजनम् ।
अद्य भुक्त्वा तु मे हस्ताद्भवतानन्दवर्धनाः ॥३५॥

आप लोग अपनी श्रीअम्बाजीके हाथसे तो प्रतिदिन ही भोजन करते हैं, आज मेरे हाथसे पाकर हमारे आनन्द वर्द्धक बनें ॥३५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमाभाष्य मे माता प्रणयोत्फुल्ललोचना ।
तदेमां भगिनीनां तु सम्मुखे संन्यवेशयत् ॥३६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! इस प्रकार प्रणयसे पूर्ण खिले नेत्र वाली हमारी श्रीसुनयनाअम्बाजीने आप सबोंसे कहकर इन श्रीकिशोरीजीको सम्मुख बहिनियोंके बीचमें विराजमान किया

अस्यां क्रीडाप्रसक्तायां कमनीयतमद्युतौ ।
प्रीत्याऽथ भोजयामास कवलानि विरच्य च ॥३७॥

हे प्यारे ! इन अत्यन्त सुन्दर कान्तिवाली श्रीकिशोरीजीके खेलमें लग जाने पर श्रीअम्बाजी ग्रास बना-बना कर अत्यन्त प्रेम पूर्वक आप सबको भोजन कराने लगीं ॥३७॥

अम्बा सुनयना त्वां च भरतं श्रीसुदर्शना ।
शत्रुघ्नं श्रीसुभद्राम्बा लक्ष्मणं कान्तिमत्यपि ॥३८॥

श्रीसुनयना अम्बाजीने आपको, श्री सुदर्शना अम्बाजीने श्रीभरत लालजीको, श्रीसुभद्रा अम्बाजीने श्रीशत्रुघ्न लालजीको और श्रीकान्तिमती अम्बाजीने श्रीलक्ष्मणलालजीको भोजन कराना प्रारम्भ किया ॥३८॥

पुनर्ज्येष्ठा तु मे माता भरतं त्वां सुदर्शना ।
शत्रुघ्नं कान्तिमत्येवं सुभद्रा लक्ष्मणं तथा ॥३९॥

पुनः श्रीसुनयना अम्बाजी भरतलालजीको, श्रीसुदर्शना अम्बाजी, आपको शत्रुघ्न लालजीको श्रीकान्तिमती अम्बाजी तथा श्रीलषण लालजीको श्रीसुभद्रा अम्बाजी भोजन कराने लगीं ॥३९॥

पश्चात्तु लक्ष्मणं ज्येष्ठा शत्रुघ्नं च सुदर्शना ।
ततस्त्वां कान्तिमत्यम्बा सुभद्रा भरतं तथा ॥४०॥

उसके बाद श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीलषणलालजीको, श्रीसुदर्शना अम्बाजी श्रीशत्रुघ्नलालजीको और आपको श्रीकान्तिमती अम्बाजी तथा श्रीभरतलालजीको श्रीसुभद्रा अम्बाजी खिलाने लगीं ॥ ४० ॥

पुनर्ज्येष्ठा तु शत्रुघ्नं सुभद्रा त्वां प्रियोत्तम !
भरतं कान्तिमत्यम्बा लक्ष्मणं च सुदर्शना ॥४१॥

हे प्रियवर ! पुनः श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीशत्रुघ्नलालजीको, आपको श्रीसुभद्रा अम्बाजी, श्रीकान्तिमती अम्बाजी श्रीभरतलालजीको, श्रीसुदर्शना अम्बाजी श्रीलषणलालजीको भोजन कराने लगीं ॥४१॥

एवं प्रीत्या हि ताः सर्वा जनन्यो भावपूर्वकम् ।
क्रमशो भोजयामासुरानन्दापहतत्रपाः ॥४२॥

इस प्रकार भावपूर्वक-आनन्दसे सङ्कोच, रहित, हमारी वे सभी अम्बाजी पारी पारीसे आप चारो भाइयोंको प्रेम पूर्वक भोजन कराने लगीं ॥४२॥

भगिन्यश्चापि वै सर्वाः प्राप्य ज्येष्ठामिमां शुभाम् ।
सानन्दावेशहृदया मातॄणां स्मरणं जहुः ॥४३॥

और इन श्रीकिशोरीजीको प्राप्त करके आनन्दके आवेशसे युक्त हृदय हुई, मेरी सभी बहिनें अपनी २ अम्बाजीका स्मरण तो भूलही गयीं ॥ ४३ ॥

पश्यन्त्यो हि यथाकामं युष्मान् सौन्दर्यशालिनः ।
ज्येष्ठारूपसुधातृप्ता नेयुरातुरतां भृशम् ॥४४॥

हे प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके स्वरूपामृतसे तृप्त हुई वे बहिने आप रूपशाली चारो भाइयोंका यथेष्ट दर्शन करती हुई भी विशेष बेभान नहीं हुई अर्थात् सावधान ही बनी रहीं ॥४४॥

तास्तु पूर्णेन्दुसङ्काशवदनाः पद्मलोचनाः ।
श्रीअयोनिजयोपेतास्तडिद्दामसमप्रभाः ॥४५॥

किन्तु अयोनिजा (श्रीकिशोरी) जीसे युक्त पूर्णचन्द्रके समान मुख, कमलके समान नेत्र, बिजुलीकी मालाके समान प्रकाश वाली ॥ ४५ ॥

पश्यतामतिमृद्वङ्गीर्निमिवंशिसुबालिकाः ।
भवतां चित्तरत्नानि ह्यञ्जसाऽपहृतानि ह ॥४६॥

तथा अत्यन्त कोमल अङ्गोंवाली सुन्दर निमिवंशियोंकी बालिकाओंका दर्शन करते हुये आप लोगोंके चित्तरूपी रत्नोंका हरण अनायास ही हो गया ॥४६॥

ज्ञात्वेयं तृप्तिमापन्नान्सुधाकल्पाशनेन वः ।
रुरोद जननीचन्द्रवक्त्रमालोक्य निर्मलम् ॥४७॥

पुनः आप लोगोंको अमृतके समान स्वादिष्ट, गुणकारी, भोजनसे तृप्त हुये जानकर, ये श्रीकिशोरीजी अपनी श्रीअम्बाजीका निर्मल मुख-चन्द्र देखकर रोने लगीं ॥४७॥

तेन देहस्मृतिं लब्ध्वा भवद्भिर्जननी मम ।
संयताञ्जलिभिः प्रोक्ता श्लक्ष्णं पूर्णाश्चयं त्विति ॥४८॥

श्रीकिशोरीजीके रुदन प्रारम्भ करनेसे आप लोग अपने देहकी सुधि-बुधि प्राप्त करके मेरी श्रीसुनयनाअम्बाजीसे हाथ जोड़कर बोले :- हे अम्ब ! हम लोग भोजनसे पूर्ण हो गये, पूर्ण हो गये, परिपूर्ण हो गये ॥४८॥

संप्रदाय तदाचम्यं मुखपद्मानि वाससा ।
पीतपीयूषतोयेभ्यः प्रोञ्छयामास वो हि सा ॥४९॥

तब श्रीअम्बाजीने अमृतके समान जल पिये हुए आप लोगोंको आचमन करने योग्य जल प्रदान करके, आपके मुखरूपी कमलोंको झीनी साफीसे पोंछा ॥४९॥

प्रदाय वीटिकाः प्रीत्या नागवल्ल्याः स्वनिर्मिताः ।
अपूर्वस्वादुसंपृक्ता भवद्भ्यो मिथिलेश्वरी ॥५०॥

अपूर्व स्वादुसे युक्त अपने हाथसे बनाई हुई पानकी बीरियोंको मिथिलेश्वरी (श्रीसुनयनाअम्बा) जी प्रीतिपूर्वक आप सबोंके लिये, प्रदान करके ॥५०॥

तूर्णमुत्थाप्य पाणिभ्यामियं कातरचित्तया ।
जनन्या बाष्पपूर्णाक्ष्या गाढमालिङ्गितोरसा ॥५१॥

कातर (उतावल) चित्तवाली श्रीअम्बाजीने शीघ्रता पूर्वक अपने दोनों हाथोंसे उठाकर सजल नेत्र हो इन्हें अपने हृदयसे लगा लिया ॥५१॥

मातुरङ्कगतां दृष्ट्वा तदेमां स्वसृवत्सलाम् ।
रुदन्त्यो मे भगिन्यस्ताः स्वाम्बा एत्य शमं ययुः ॥५२॥

बहिनियों पर अनन्त वात्सल्य भाव रखने वाली इन श्रीकिशोरीजीको अपनी अम्बाजीकी गोदमें विराजमान देखकर, हमारी सभी बहिनें रोती हुई, अपनी २ अम्बाजीको पाकर शान्तिको प्राप्त हुईं ॥ ५२ ॥

लालयित्वा पुनः सर्वे पितृव्या मम कामतः ।
स्वं स्वं निकेतनं जग्मुस्त्वां मुदा कृतभोजनम् ॥५३॥

पुनः मेरे सभी पिताके भाई (चाचा) लोग इच्छानुसार भोजन, किये हुये आपका दुलार करके अपने-अपने महलको चले गये ॥ ५३ ॥

ततो राज्ञी महाभागा ययौ संवेशमन्दिरम् ।
शिबिकां सा समारुह्य भवद्भिः स्त्रीजनैर्वृता ॥५४॥

तत्पश्चात् बड़भागिनी श्रीसुनयना अम्बाजी आप लोगोंके सहित, स्त्रीजनोंसे घिरी हुई पालकी में बैठकर दिवा-शयन भवनमें पधारी ॥ ५४ ॥

राज्ञी तदागारमनुप्रविश्य मुदान्विता देवरसुन्दरीभिः ।
सुखाप्य सा वो मृदुलांशुकाढ्ये तल्पे प्रवृत्ता सुपमेक्षणाय ॥५५॥

अपनी देवरानियोंके सहित श्रीअम्बाजी उस दिवा-शयन-भवनमें जाकर कोमल वस्त्रोंसे सुशोभित पलङ्ग पर, आप चारो भाइयोंको शयन कराके आनन्द पूर्वक आप सबोंकी उपमा रहित छबिका वे दर्शन करने लगीं ॥५५॥

कपोलदेशेऽञ्जनलाञ्छनं सा व्यधाद्दृशोदोंषभिया तदानीम् ।
अतीववात्सल्यनिमग्नचित्ता सुताश्रिताङ्का भवतां शनैश्च ॥५६॥

इति त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४३॥

अत्यन्त वात्सल्य रसमें डूबा हुआ चित्त होनेसे, श्रीकिशोरीजीसे सुशोभित गोद वाली श्री सुनयना अम्बाजीने दृष्टि-दोषके (नजर लगनेके) भयसे आप सबोंके गालमें धीरेसे अञ्जनका चिन्ह लगा दिया ॥५६॥

अथचतुश्चत्वारिंशत्तितमोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

श्रीसुनयना अम्बाजीके साथ श्रीचक्रवर्तीकुमारोंका विहारकुण्डमें नौकाविहार करके ६० खण्ड ऊँचे हाटकभवनकी छतपर विराजमानहो उनसे नगरके मुख्य-मुख्य भवनोंका श्रवण तत्पश्चात् भोजनोत्तर उनके शयन-भवनमें शयन।

श्रीशिव उवाच।

विसृष्टनिद्रः श्रीरामो भ्रातृभिः परिवारितः।
ददर्श राज्ञीमव्यग्रां चलद्व्यजनपल्लवाम् ॥१॥

भगवान् शिवजी श्रीगिरिराज कुमारीजीसे बोले:–हे प्रिये ! अपने भाइयोंके सहित श्रीरामभद्रजूने निद्राको परित्याग करके, चलते हुये पङ्खेको अपने कर-कमलमें लिये हुई श्रीसुनयना महारानीको ज्यों का त्यों सावधान बैठी हुई देखा ॥१॥

सा तु राजकुमारांस्तांस्त्यक्तनिद्रालसाञ्छुभान्।
लालयामास विविधैर्लालनैर्मोदवृद्धये ॥२॥

वे श्रीसुनयना महारानीजी आनन्द वृद्धिके लिये निद्रा तथा आलस्य परित्याग किये हुये, मङ्गलमय, राजकुमारोंका अनेक प्रकारसे दुलार करने लगीं ॥२॥

कल्पयित्वाऽशनं तेभ्यो यथेच्छं स्वादुशीतलम्।
विहारकुण्डमगमदर्द्धयामे स्थिते दिने ॥३॥

पुनः शीतल स्वादिष्ट यथेच्छ भोजन कराके आध पहर दिनके शेष रहने पर वे विहार कुण्ड गईं ॥ ३ ॥

तत्तीरगतवेश्मानि चतुर्दिक्षु महान्ति च।
दर्शयित्वा सरःशोभावर्द्धकान्यद्भुतानि सा ॥४॥

सरोवरकी शोभा बढ़ाने वाले उस कुण्डके किनारे, अद्भुत व विशाल महलोंका दर्शन कराके॥४॥

धात्रीरम्भारसालैश्च पनसैर्बिल्वजम्बुकैः ।
केतकीयूथिकामल्लीचम्पकैरुपशोभिते ॥ ५ ॥

आँवला, केला, आम, कटहल, बेल, जामुन, केतकी, जूही, मालती, चम्पा आदि वृक्षोंसे पास में सुशोभित ॥५॥

तस्मिन् सरोवरे स्नात्वा नौविहारमकारयत् ।
राज्ञी राजकुमाराणां विनोदाय मनस्विनी ॥६॥

उस सरोवरमें स्नान करके श्रीसुनयना महारानीजीने, राजकुमारोंके विनोदके लिये नौका-विहार करवाया ॥६॥

ततः परं जगामाशु हाटकाह्वयमद्भुतम् ।
प्रोद्यद्दिनमणिद्योतं षष्ठिखण्डोच्चमन्दिरम् ॥७॥

उसके बाद उदय कालीन सूर्यके समान कान्तिवाले, साठ खण्ड ऊँचे, मद्भुत हाटक नामके महलमें पधारीं ॥७॥

कुम्भध्वजपताकाभिः शोभमानं नभःस्पृशम् ।
दर्शयामास सूनुभ्यो राज्ञो दशरथस्य तत् ॥८॥

और कलश, ध्वज, पताकासे शोभायमान आकाशको छूने वाले उस महलको, उन्होंने श्रीदशरथजी महाराजके राजकुमारोंको दिखलाया ॥ ८ ॥

दोलायां पुनरारोप्य निविश्याथ स्वयं हि तान् ।
क्षणार्द्धेनाप तत्सौमं यन्त्रेण विपुलायतम् ॥९॥

पुनः झूले पर उन चारो भइयोंको विराजमान करके उस पर आपभी बैठ कर, आधे क्षण-मात्रमें यन्त्रके द्वारा उस हाटकभवनकी अन्तिम, बड़ी लम्बी-चौड़ी छत पर पहुँचीं ॥ ९ ॥

तत्र मध्ये समासीना दिव्यसिंहासने शुभे ।
तान् पार्श्वयोश्च संस्थाप्य सवत्सोत्सङ्गशोभिता ॥१०॥

उस छतके मध्य भागमें दिव्य सिंहासन पर अपने दोनों बगलमें उन श्रीराजकुमारोंको बैठा कर श्रीललीजीसे युक्त गोदसे सुशोभित वे श्रीसुनयना महारानीजी विराजमान हुईं ॥१०॥

सेव्यमाना वयस्याभिः परीता ताभिरादरात् ।
आगताभिर्महाराज्ञी देवरस्त्रीभिरब्रवीत् ॥११॥

पुनः वहाँ आई हुई उन देवरानियोंसे युक्त, अपनी सखियोंके द्वारा छत्र, चवँर पङ्खा आदिसे सेवित होती हुई श्रीमहारानीजी आदरसे बोलीं:-॥११॥

श्रीसुनयनोवाच।

रामभद्र ! महाप्राज्ञ ! भरत ! प्रीतिनिर्भर ! ।
सौमित्रे ! भावगम्भीर ! शत्रुघ्न ! चपलेक्षण ! ॥१२॥

हे महाप्राज्ञ श्रीरामभद्रजू ! हे प्रेम निर्भर श्रीभरतलालजी ! हे गम्भीर भाव वाले श्रीलषणलाल जी ! तथा हे चञ्चलनयन श्रीशत्रुघ्नलालजी ॥१२॥

अस्मादट्टात्तु वै सर्वं पुरदृश्यमुदीक्ष्यताम् ।
विना श्रमेण भद्रं वो दिदृक्षा यदि वर्तते ॥१३॥

आप सभोंका कल्याण हो, यदि आप लोगोंको मेरे पुरका दृश्य देखने की इच्छा है, तो इस अटारी परसे विना किसी परिश्रमके बैठे २ ही, देख लीजिये ॥१३॥

श्रीराम उवाच।

पश्यामोऽम्ब ! वयं सर्वं दृश्यमत्यन्तसुन्दरम् ।
मनोनेत्रसमाकर्षि प्रसभं निर्जितात्मनाम् ॥१४॥

श्रीराम भद्रजी बोले ! हे अम्ब ! मनको अपने वशमें कर लेनेवाले, महात्माओंके भी मन तथा नेत्रोंको बलात्कार खींच लेनेवाला, पुरका अत्यन्त सुन्दर दृश्य तो हमलोग देख ही रहे हैं ॥१४॥

अद्वितीयः परिस्पन्दः पुरस्यास्ति मतिर्मम ।
विजिज्ञासामहे मातर्मुख्यस्थानानि साम्प्रतम् ॥१५॥

मेरी मतिसे नगरकी सजावट बड़ीही अद्वितीय है। अब हम इस पुरके मुख्य २ स्थानोंका परिचय जानना चाहते हैं ॥१५॥

मन्दं गन्धवहो वाति सुरभिस्पर्शशीतलः ।
इदानीं सुखवेलेयमृतावस्मिन्विशेषतः ॥१६॥

हे अम्ब ! सुगन्धसे युक्त स्पर्शमें शीतल, मन्द २ पवन इस समय बह रहा है, यह समय प्रायः सभी ऋतुओं में सुखकर होता है, उसमें भी इस ग्रीष्म ऋतुमें तो यह विशेष सुखद है ही ॥ १६ ॥

वर्तते दृश्यमानानां प्रधानानां हि पश्यताम् ।
पुरोगतानां स्थानानां जिज्ञासा हृदयेषु नः ॥१७॥

हे अम्ब ! हम सभी दर्शकोंके हृदयमें सामने दिखाई देनेवाले प्रधान २ स्थानोंके जानने की इच्छा है ॥१७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

चिरञ्जीवत भो वत्सा ! भद्रं वोऽस्तु समन्ततः ।
शृणुतावस्थितात्मानो यत्स्पृहा श्रवणाय वः ॥१८॥

श्रीसुनयनाअम्बजी बोलीं:—हे वत्सो ! आप लोगोंके लिये सब प्रकार दशो दिशाओंमें मङ्गलहो तथा आप सब अनन्त कालतक जीवित रहें, आप लोगोंकी इच्छा जो सुननेकी है उसे एकाग्र चित्तसे श्रवण कीजिये ॥१८॥

एषा वृन्दारकैर्वन्द्या कमला लोकपावनी ।
परमानन्दचिद्रूपा दृश्यते दिशि पूर्वके ॥ १९ ॥

यह पूर्व दिशामे जो नदी देखनेमें आरही है वह परम आनन्द और चैतन्य स्वरूपा, देवताओंके द्वारा प्रणाम करने योग्य तथा लोकोंको पवित्र करनेवाली श्रीकमलाजी हैं ॥१९॥

कल्याणेश्वर आग्नेये नैर्ऋत्यां च जलेश्वरः ।
सोमेश्वरस्तु वायव्य ऐशान्यां मिथिलेश्वरः ॥२०॥

पूर्वदक्षिण कोणमें श्रीकल्याणेश्वर महादेव, दक्षिण पश्चिम कोणमें श्रीजलेश्वर महादेव, पश्चिम उत्तरकोणमें श्रीसोमेश्वर महादेव और उत्तर पूर्वके कोणमें श्रीमिथिलेश्वर महादेवजीके ये मन्दिर दिखाई दे रहे हैं ॥२०॥

इदं तु वाटिकामध्ये महोच्चध्वजमन्दिरम् ।
विनायकस्य जानीत सर्वविघ्नघ्नदर्शनम् ॥२१॥

वाटिकाके वीचमें बड़ी ऊँची ध्वजासे युक्त, दर्शनसे ही सभी प्रकारके विघ्नोंको नष्ट करने वाला यह श्रीगणेशजीका मन्दिर है ॥२१॥

एतन्मनोहरं रम्यं सुविशालं महाप्रभम् ।
सुन्दराख्यं सदनं दृश्यते स्म शुकध्वजम् ॥२२॥

और यह विशाल, परम प्रकाश मान, सुन्दर, मनहरण शुक (तोताकी) ध्वजा वाला सुन्दर नामका महल दिखाई दे रहा है अर्थात् यह सुन्दर सदन नामका भवन है ॥२२॥

जयमानस्य सदनं मन्त्रिणस्तस्य दक्षिणे ।
सुदर्शनस्य विज्ञेयमिदं मुख्यस्य मन्त्रिणाम् ॥२३॥

यह महल जयमान मन्त्रीका है और उससे दक्षिण भागमें, इसे मुख्य मन्त्री श्रीसुदर्शनजीका महल जानिये ॥२३॥

एतत्तु दक्षिणे भागे कुञ्जपुञ्जसमावृतम् ।
गिरिजागृहमाख्यातं सद्भक्तिप्रददर्शनम् ॥२४॥

दक्षिण दिशामें कुञ्जपुञ्जोंसे घिरा हुआ, दर्शनसे ही भगवद्भक्ति प्रदान करने वाला यह श्रीगिरिराजकुमारीजीका मन्दिर है ॥२४॥

इदं ज्ञेयमनल्पाभं केकिध्वजमनुत्तमम् ।
सौमनागारमाख्यातं दर्शनीयं दिवौकसाम् ॥२५॥

अत्यन्त प्रकाश युक्त मोरकी ध्वजावाले, तथा देवताओंके भी दर्शन करने योग्य इस महलको प्रसिद्ध सौमन सदन जानिये ॥२५॥

इमे हर्म्ये पुनर्ज्ञेये मन्त्रिणोश्चारुदर्शने ।
विष्वक्सेनस्य पूर्वं तु सुदाम्नस्तस्य पश्चिमे ॥२६॥

पुनः ये दोनों सुन्दर दर्शन वाले भवन मन्त्रियोंके है, पूर्व भागमें श्रीविष्वक्सेनजीका और उनसे पश्चिममें श्रीसुदामा मन्त्रीका महल है ॥२६॥

दृश्यतां पश्चिमे भागे सरस्वत्या निकेतनम् ।
इदं परम शोभाढ्यं वाचस्पत्यप्रदर्शनम् ॥२७॥

पश्चिम भागमें दर्शनसे ही बुद्धि में श्रीबृहस्पतिजीकी योग्यता प्रदान करने वाले, परम शोभा-सम्पन्न इस श्रीसरस्वतीजीके मन्दिरका दर्शन कीजिये ॥२७॥

तस्मात्पूर्वं महद्धर्म्यं मरालध्वजमुच्छ्रितम् ।
सौफलागारमाख्यातं साफल्यप्रददर्शनम् ॥२८॥

उस सरस्वती भवनसे पूर्वमें हंसकी ध्वजासे सुशोभित, दर्शनसे ही सफलता अर्थात् जीवनकी कृतार्थता प्रदान करनेवाला यह ऊँचा सौफल नामका प्रसिद्ध महल है ॥२८॥

दृश्यमानमिदं वेद्यं सुनीलस्य निवेशनम् ।
विधिज्ञस्योत्तरे तस्य बुध्यतामयमालयः ॥२९॥

यह जो महल दिखाई दे रहा है, यह श्रीसुनील मन्त्रीजीका महल है, उनसे उत्तर भागके इस महलको श्रीविधिज्ञ मन्त्रीजीका भवन जानिये ॥२९॥

एवं दिशि तथोदीच्यां प्रथमं श्रीनिकेतनम् ।
अवधार्यमिदं रम्यं श्रीधामप्रददर्शनम् ॥३०॥

इसी प्रकार उत्तर दिशामें प्रथम, परम रमणीक, दर्शनसे ही श्रीधाम अर्थात् साकेतको प्रदान करने वाले इस भवनको, श्रीनिकेतन नामका महल जानिये ॥३०॥

एतच्छ्रीसद्मनो दक्षे गरुणध्वजमुच्यते ।
सौरभाख्यं महासद्म परधामददर्शनम् ॥३१॥

इस श्रीनिकेतनसे दक्षिणमें, दर्शनसे ही परम धामको प्रदान करने वाला, गरुणकी ध्वजासे युक्त यह सौरभ नामका सदन है ॥३१॥

सुमतस्येदमागारमिदं तस्य तु पूर्वके ।
श्रीसन्धिवेदनागारं दृश्यमानं निबोधत ॥३२॥

इस दिखाई देते हुये महलको श्रीसुमत मन्त्रीजीका और उनसे इस पूर्वके महलको श्रीसन्धिवेदनजीका भवन जानिये ॥३२॥

अस्यावरणधिष्ण्यानां किञ्चित्परिचयो मया ।
दीयते सुप्रसिद्धानां मुदे वः शृणुतानघाः ! ॥३३॥

हे अघ रहित वत्सो ! अब मैं आप लोगोंके सुखार्थ इस आवरणके सुप्रसिद्ध स्थानोंका कुछ परिचय दे रही हूँ (उसे) श्रवण कीजिये ॥३३॥

इमौ शत्रुजितश्चैव यशःशालिन आलयौ ।
नैर्ऋत्यां तत एवेदं श्रीयशध्वजमन्दिरम् ॥३४॥

यह श्रीशत्रुजितका और उनसे दक्षिणमें पूर्वकी दिशामें यह श्रीयशःशालीजी महाराजका महल है। उनसे दक्षिण पश्चिम दिशामें यह श्रीयशध्वज महाराजका भवन है ॥३४॥

इदं तत्पश्चिमे ज्ञेयं वीरध्वजनिकेतनम् ।
इदं तु पश्चिमे तस्माद्रिपुतापनमन्दिरम् ॥३५॥

श्रीयशध्वज महाराजसे पश्चिमवाले इस महलको श्रीवीरध्वज महाराजका महल जानिये, पुनः उनसे पश्चिम वाला यह श्रीरिपुतापनजीका शुभ भवन है ॥ ३५ ॥

ततो हंसध्वजस्यायं पश्चिमे निलयः शुभः ।
तस्माच्च पश्चिमे ज्ञेयं केकिध्वजनिवेशनम् ॥३६॥

उनसे भी पश्चिममें यह श्रीहंसध्वज महाराजका, पुनः उनसे भी पश्चिम वाले इस महलको श्रीकेकिध्वज महाराजका जानिये ॥ ३६ ॥

दिशीदं तस्य वायव्यां श्रीवलाकरमन्दिरम् ।
तस्मादथोत्तरे वोध्यं चन्द्रभानुनिवेशनम् ॥३७॥

श्रीकेकिध्वज महाराजके महलसे उत्तर-पश्चिम दिशामें इसे श्रीवलाकरजीका और उनसे उत्तरमें इसे श्रीचन्द्रभानुजी महाराजका महल जानिये ॥३७॥

ऐशान्यां तन्निकेतस्य महीमङ्गलमन्दिरम् ।
तस्मात्पूर्व इदं वेद्यं श्रीप्रतापनसद्म च ॥ ३८ ॥

श्रीचन्द्रभानु महाराजसे उत्तर-पूर्व की दिशामें श्रीमहीमङ्गलजीका और उनसे पूर्व में श्रीप्रतापनजी महाराजका यह महल जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

इदं पूर्वं ततो वेद्यं विजयध्वजमन्दिरम् ।
तस्मात्पूर्वं इदं वत्सा ! अरिमर्दनमन्दिरम् ॥३९॥

हे वत्सो ! श्रीप्रतापनजीके महलसे पूर्ववाले इस महलको श्रीविजयध्वज महाराजका और उनसे पूर्वके इस महलको श्रीअरिमर्दनजी महाराजका महल जानिये ॥ ३९ ॥

इदं पूर्वे ततो रम्यं भवनं दृश्यते तु यत् ।
वायव्यां शत्रुजिद्गेहात्तेजःशालिन एव तत् ॥४०॥

श्रीअरिमर्दनजीसे पूर्व में और श्रीशत्रुजित्जी महाराजके उत्तर-पश्चिम दिशामें यह जो मनोहर महल देख रहे हैं, वह श्रीतेजःशालीजी महाराजका भवन है ॥ ४० ॥

श्रीअरिमर्दनागारादाप्रतापनमन्दिरम् ।
राज्ञीहट्टमिदं ज्ञेयं समीपे मन्दिरस्य मे ॥४१॥

श्रीअरिमर्दनजीके महलसे लेकर श्रीप्रतापनजीके महल पर्यन्त मेरे महलके समीपमें, इसे आप लोग रानी बाजार जानिये ॥४१॥

इदं तु पश्चिमे हर्म्यं सुविशालं यदीक्ष्यते ।
ज्ञायतां परमं रम्यं कुशकेतोः श्रुतं हि तत् ॥४२॥

पश्चिममें सुविशाल व परम सुन्दर यह जो महल दिखाई देताहै, उसे श्रीकुशध्वज महाराजका महल जानिये ॥४२॥

अथेदं मन्त्रिकेते च पूर्वभागे यदीक्ष्यते ।
गङ्गासागरमाख्यातं तत्तु पुण्यतमं सरः ॥४३॥

अब मेरे महलमें पूर्वकी ओर जो सर (तालाब) दिखाई देता है, वह गङ्गासागर नामका परमपवित्र सर है ॥ ४३ ॥

तस्मात्पूर्वे शतानन्दो भगवान्कृतकेतनः ।
शिष्यैः परिवृतो नित्यं निवसत्यत्र वै मुनिः ॥४४॥

गङ्गासागरसे पूर्व भागमें अपने शिष्योंके सहित भगवान् श्रीशतानन्द मुनि आश्रम बनाकर यहाँ, निवास कर रहे हैं ॥ ४४ ॥

धनुर्गृहमिदं ज्ञेयं गङ्गासागरपश्चिमे ।
स्यामन्तकमुदीच्यां तन्मदिरं परमोच्चकम् ॥४५॥

गङ्गासागरसे पश्चिममें इस भवनको धनुर्भवन जानना चाहिये, उससे उत्तरमें अत्यन्त ऊँचा यह स्यमन्तकभवन है ॥ ४५ ॥

अथ मारकतं हर्म्यं बोध्यमेतत्तु दक्षिणे ।
पश्चिमे दृश्यते यत्तद्विज्ञेयः स्फाटिकालयः ॥४६॥

इसके बाद दक्षिणमें, इस परम विशाल व अत्यन्त ऊँचे महलको आप मरकतभवन जानिये और पश्चिममें जो यह सबसे ऊँचा तथा विशाल महल दिखाई दे रहा है, उसे स्फटिक-भवन जानिये ४६

इदं तु हाटकाख्यं हि यत्तले सम्प्रति स्थितिः ।
अस्माकं सह युष्माभिर्यत्र स्थानानि वच्मि वः ॥४७॥

और जिसकी छत पर इस समय आप प्रिय पुत्रोंके सहित मैं विराज रही हूँ तथा जहाँ (जिस महल में) मैं आप लोगोंसे अपने पुरके मुख्य २ स्थानोंका कथन कर रही हूँ, वह अत्यन्त ऊँचा तथा विशाल हाटक नामका यह महल है ॥४७॥

एतद्यद्दृश्यते वेश्म तन्महानससञ्ज्ञकम् ।
आग्नेय्यां परमं रम्यं तप्तचामीकरप्रभम् ॥४८॥

पूर्वदक्षिण दिशामें तपाये सोनेके समान प्रकाशमान, परम सुन्दर यह जो महल दिखाई दे रहा है, वह भोजन नामका भवन है ॥ ४८ ॥

नैर्ऋत्यामिदमेवास्ति कोशागारमनुत्तमम् ।
वायव्यां पुत्रका ! ज्ञेयो गृहारामोऽयमद्भुतः ॥४९॥

दक्षिण-पश्चिम कोणमें यह परम श्रेष्ठ कोशागार (कोश नामका महल) है और हे पुत्रो ! पश्चिम-उत्तर दिशामें यह आश्चर्यमय गृहबाग है ॥४९॥

ऐशान्यां दिशि वै चेदं सभागारमुदीक्ष्यते ।
तस्माज्ज्ञेयं हि नैर्ऋत्यां कृत्रिमागारमद्भुतम् ॥५०॥

उत्तर पूर्व कोणमें यह सभा भवन दिखाई दे रहा है, उससे दक्षिण पश्चिम में कृत्रिम नामका यह अद्भुत भवन है ॥ ५० ॥

तस्मात्तु कृत्रिमागाराद्दक्षिणे स्वस्तिकालयः ।
आग्नेय्यां कौतुकागारमिदं यद्वो विलोकितम् ॥५१॥

उस कृत्रिमागारसे दक्षिणकी ओर स्वस्तिक नामका भवन है और पूर्वदक्षिण कोणमें यह कौतुकभवन है, जिसका दर्शन आप लोगोंने किया ही है ॥ ५१ ॥

तत्पश्चिमे परिज्ञेयं दन्तधावनमन्दिरम् ।
इदं तु मज्जनागारं दृश्यते सुमनोहरम् ॥५२॥

उससे पश्चिममें दन्तधावन नामका महल जानना चाहिये और यह अत्यन्त मनोहर स्नान-भवन दिखाई दे रहा है ॥ ५२ ॥

तदुत्तरे विभातीदं कुड्मलाख्यनिकेतनम् ।
इदं तु कौशलागारं तत्पूर्वे मण्डनालयः ॥५३॥

स्नान-भवनके उत्तर में कुड्मल नामका महल सुशोभित हो रहा है और यह कौशल नामका भवन है, उसके पूर्व में शृङ्गार-भवन है ॥ ५३ ॥

समीपे पश्चिमे तस्य ह्यङ्गरागाभिधं सरः ।
निमित्तं निमिवंश्यानां निर्मितं विश्वकर्मणा ॥५४॥

भृङ्गार सदनके समीप पश्चिम दिशा में अङ्गराग नामका सर है, जिसे निमिवंशियोंके अङ्गराग आदि की सुविधाके लिये विश्वकर्माजीने निर्माण किया था ॥ ५४ ॥

दक्षिणे वह्निकुण्डाच्च विहाराख्यात्तु पश्चिमे ।
महाविद्यालयो ज्ञेयो ज्ञानपीठ इति श्रुतः ॥५५॥

अग्निकुण्डसे दक्षिण और विहारकुण्डसे पश्चिममें ज्ञानपीठ नामसे प्रसिद्ध यह महाविद्यालय है॥

वह्निकुण्डादिदं पूर्वे रत्नसागरकं सरः ।
प्रजानामर्थसिद्ध्यर्थं खानितं निमिभानुना ॥५६॥

अग्निकुण्डसे पूर्वमें यह रत्नसागर नामका सरोवर है, इसे निमिकुलमें सूर्यके समान परमप्रकाशमान्, श्रीमिथिलेशजीने अपनी प्रजाकी यथेष्ट धन प्राप्तिकी सुविधाके लिये खनाया है ॥५६॥

श्रीसौमित्रिरुवाच ।

पितुर्मे कुत्र संवासः क्व चेहागतभूभृताम् ।
तन्नो हि संशयं छिन्धि कृपया हेऽम्ब ! ते नमः ॥५७॥

इतनी कथा सुनकर श्रीलषनलालजी बोले–हे अम्ब ! मेरे पिताजीका किस महलमें वास है ? और यहाँ उत्सव मे आये हुये देश देशान्तरोंके सभी राजाओंका कहाँ निवास है ? आप कृपया इस मेरी शङ्काका छेदन कीजिये, एतदर्थ मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥५७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

पञ्चमावरणे त्वस्य पुरः सर्वमहीभृताम् ।
आगतानां निवासाय निलयाश्च पृथक्पृथक् ॥५८॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं–हे वत्स ! इस नगरके पाँचवें आवरणमें आगन्तुक सभी राजाओंके निवासके लिये, पृथक् पृथक् महल बने हुये हैं ॥५८॥

पूर्वभागे शुभागाराज्जयमानस्य मन्त्रिणः ।
इदं यद्दृश्यते भव्यं सुविशालं निवेशनम् ॥५९॥

जयमान मन्त्रीजीके महलसे पूर्व में यह जो विशाल और भव्य महल दिखाई देरहा है ॥५९॥

तत्पितुर्वो निवासाय कल्पितं परमोत्तमम् ।
भवनं रत्नखचितं सर्वभोगसमन्वितम् ॥६०॥

वह रत्न-खचित, समस्त भोग सामग्रियोंसे युक्त, परमश्रेष्ठ भवन आपके श्रीपिताजीके निवासके लिये है ॥ ६० ॥

श्रीरामवाच ।

इदं किं दृश्यते मातः ! सभागारात्तु पूर्वके ।
मन्दिरं चारुशोभाढ्यं तन्नो वक्तुमिहार्हसि ॥६१॥

श्रीरामजी बोले :—हे श्रीअम्बाजी ! सभा भवनसे पूर्व में यह कौन परम सुन्दर महल दिखाई दे रहा है ? उसे हम लोगोंसे आप कहनेके लिये योग्य हैं ॥६१॥

श्रीसुनयनोवाच ।

वत्स ! श्रीराम ! भद्र ते कौशल्यानन्दवर्द्धन ।
मौक्तिकागारमित्युक्तं यदभिज्ञातुमिच्छसि ॥६२॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:—हे श्रीकौशल्या महारानीजीके आनन्दको बढ़ाने वाले ! हे वत्स ! श्रीरामजू ! आपका कल्याण हो, आप जिस महलको जाननेकी इच्छा करते हैं, उसे मौक्तिकागार नामसे कहा जाता है ॥६२॥

चन्द्रसूर्यमणीनां च प्रकाशेर्भासितं पुरम् ।
पश्य तात ! प्रतीच्यां च रवावस्ताचलं गते ॥६३॥

हे तात ! देखिये पश्चिमकी ओर सूर्यभगवानके अस्ताचल पधारते ही, चन्द्र, सूर्य मणियोंके प्रकाशसे समस्त पुर प्रकाश युक्त हो गया है ॥६३॥

दूत्योऽप्यत्रागता एता निशाशननिकेतनात् ।
नेतुं वो भोजनार्थाय मत्सकाशं त्वराऽन्विताः ॥६४॥

ब्यारू सदनकी ये दूतियाँ भी भोजन करानेके लिये शीघ्रता पूर्वक आप लोगोंको अपने यहाँ ले जानेके हेतु मेरे पास आचुकी हैं ॥ ६४ ॥

गम्यतां वत्स ! मे साकमितो नैशाशनालयः ।
सर्वासां रुचिरेवैषा तव नात्र रुचिं विना ॥६५॥

अत एव हे वत्स ! इस हाटक-भवनसे अब ब्यारू भवन पधारें, यह सभीकी रुचि है, परन्तु आपकी बिना रुचिके नहीं ॥६५॥

श्रीराम उवाच ।

इदानीमत्र किं मातर्विलम्बेन प्रयोजनम् ।
गम्यतां शीघ्रमेवातो भवत्या भूरिवत्सले ! ॥६६॥

श्रीरामभद्रजी बोले :—हे श्रीमाताजी ! अब यहाँ विलम्ब करनेका क्या प्रयोजन है ? अत एव हे भूरिवत्सले (परम वात्सल्यवती श्रीअम्बा) जी ! अब आप शीघ्र उस ब्यारू सदनके लिये प्रस्थान करें ॥ ६६ ॥

श्रीशिव उवाच ।

तन्निशम्य महाराज्ञी दोलामारोप्य तांस्ततः ।
सर्वाभिः सा समारुह्य यन्त्रेणाप पुनर्महीम् ॥६७॥

भगवान् शिवजी बोले :—हे पार्वती ! श्रीरामभद्रजूके इस वचनको श्रवण करके महारानी श्रीसुनयना अम्बाजी उन राजकुमारोंको हिंडोलेमें बैठाकर सभी देवरानी व सखियोंके सहित स्वयं बैठकर, यन्त्रके द्वारा पुनः छतसे पृथ्वी पर आगयीं ॥६७॥

पुनः स्यन्दनमास्थाय सखीभिः परिवारिता ।
निशाशननिकेतं सा समवाप शुचिस्मिता ॥६८॥

इसके बाद वे पवित्र मुस्कान वाली श्रीसुनयना अम्बाजी सखियोंके सहित रथमें बैठकर अपनी ब्यारू भवन पहुँचीं ॥६८॥

तस्मिंस्तु रत्नाश्चितहेमपीठकेष्वाभूषितेषूज्ज्वलकोमलांशुकैः ।
वहत्सुगन्धाञ्चितशीतलानिले सुखेन गेहे तनयान्न्यवेशयत् ॥६९॥

सुगन्धसे युक्त, बहते हुये शीतल पवनसे सुशोभित, उस ब्यारू भवनमें उज्ज्वल, कोमल वस्त्रोंसे भूषित, रत्नखचित सुवर्णकी चौकियों पर उन चारो श्रीचक्रवर्ती राजकुमारोंको सुखपूर्वक विराजमान कराया ॥६९॥

तदाऽगमद्भ्रातृभिरुन्नतश्रीस्तदालयं श्रीमिथिलामहेन्द्रः ।
कृतप्रणामञ्छुभयाऽऽशिषा तान्नियोज्य भोक्तुं प्रददौ निदेशम् ॥७०॥

उसी समय श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने भाइयोंके सहित उस महलमें पधारे पुनः प्रणाम करनेवाले उन चारो भाइयोंको शुभ आशीर्वाद पूर्वक भोजन पानेकी आज्ञा प्रदानकी ॥७०॥

उवाच रामो विहिताञ्जलिः सन् विनम्रगात्रो नृपमार्द्रवाचा ।
साकं भवद्भिर्ह्यशनं विधातुं हे तात ! वाञ्छोरसि वर्तते नः ॥७१॥

श्रीरामभद्रजू उनसे बड़ी ही सरस वाणीसे बोलेः–हे तात ! आप लोगोंके साथ २ ही भोजन करनेकी मेरे हृदयमें अभिलाषा है ॥७१॥

इत्येवमुक्तो मुदिताननोऽसौ रामेण राजा मधुरस्मितेन ।
सर्वानुजैर्भोजनसंचिकीर्षुः समाविशत्पीठमुदीक्ष्य तच्च ॥७२॥

इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्रीमिथिलेशजी महाराज प्रसन्न हो मधुर मुस्कान वाले श्रीरामभद्रजूके सहित अपने सभी भाइयोंके साथ २ भोजन करनेके लिये चौकी पर बैठ गये सो देखकर ॥ ७२ ॥

पीयूषकल्पाशनमीप्सितं ते चक्रुर्महाप्रेमवशं प्रपन्नाः ।
राजाऽनुजैः साकमवेक्ष्य हृष्टो राज्यश्च सर्वा अभवन् कृतार्थाः ॥७३॥

चारो भइया अतीव प्रेम वशहो अमृतके समान, इच्छानुकुल भोजन पाने लगे। यह देख कर भाइयोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराज बड़े हर्षको प्राप्त हुये तथा सभी महारानियां देखकर कृतार्थ हो गयीं ॥ ७३ ॥

एवं च भुक्तामृतभोजनेषु पुत्रेषु तेष्वेव नृपोत्तमस्य ।
समादृतोऽशेषजनोऽहिवल्लीपलाशवीटीभिरगात्स्ववेश्म ॥७४॥

इस प्रकार उन श्रीचक्रवर्तीकुमारोंके अमृतमय भोजन कर लेनेपर, सभी लोग पानके बीरोंसे सत्कृत हो अपने महलको चले गये ॥७४॥

साकं तया राजकुलस्त्रियश्च नृपेन्द्रपुत्रैर्युतयाऽनुजग्मुः ।
नृपोऽनुजैः साकमथाचिरेण जगाम संवेशनिकेतनं स्वम् ॥७५॥

तब श्रीचक्रवर्ती कुमारोंके सहित श्रीसुनयना अम्बाजीके साथ, सभी राजकुलकी स्त्रियाँ शयन-भवनमें पधारीं। तथा श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने भाइयोंके सहित शीघ्र अपने शयनमहलमें चले गये ॥ ७५ ॥

ततस्तु संवेशगृहे कुमारान् प्रस्वाप्य मत्वा नृपतिं च राज्ञीम् ।
जग्मुर्निकेताननुजा नृपस्य कलत्रवन्तः शयनाय हृष्टाः ॥७६॥

तत्पश्चात् शयनभवनमें राजकुमारोंको शयन कराके, श्रीमिथिलेशजी व श्रीसुनयना महारानीको प्रणाम करके, हर्षको प्राप्त हुये वे राजभ्राता श्रीकुशध्वज आदि अपनी रानियोंके सहित शयन करने के लिये अपने २ महलको चले गये ॥७६॥

राज्ञी तदाऽऽदाय सुतां निजाङ्के तेषां समीपे ह्यसुभूतरूपाम् ।
सुष्वाप शीतांशुमणिप्रकाशेऽनिलैस्त्रिधाढ्ये निलये समन्तात् ॥७७॥

इति चतुश्चत्वारिंशतितमोऽध्यायः ॥४४॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजीने अपनी गोदमें प्राणस्वरूपा श्रीललीजीको लेकर चन्द्रमणिके प्रकाशसे युक्त, सब ओरसे शीतल, मन्द, सुगन्धमय वायुसे पूर्ण, उस शयन भवनमें राजकुमारों के समीपमें सो गईं ॥७७॥

अथ पञ्चचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ॥४५॥

श्रीसुनयना अम्बाजीका श्रीचक्रवर्ती-कुमारोंको स्वस्तिक, दन्तधावन, स्नान आदि भवनोंसे भृङ्गारभवनमें ले जाकर पूर्णशृङ्गार धारण कराके उन्हें राज-सभा-भवन भेजना।

श्रीशिव उवाच।

अथ रात्रौ व्यतीतायामुत्थाय महिषी मुदा।
बोधिता कलघोषैश्च वाद्यानां स्वालिभिर्जगौ ॥१॥

रात्रि समाप्त होजाने पर श्रीसुनयना अम्बाजी बाजोंके मनोहर शब्दोंसे सावधान हो, अपनी सखियोंके सहित मङ्गल गाने लगीं ॥१॥

श्रीसुनयनोवाच।

उत्तिष्ठताशु याता कृत्स्ना हि शर्वरीयम्।
रक्तांशुकावृताङ्गी नक्षत्रमालिनीयम् ॥२॥
लोकश्रमोऽपहर्त्री तेजोऽनुवृद्धिकर्त्री।
निःशेषदेहभाजां प्रेम्णा प्रपोषयित्री ॥३॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:—हे चारो वत्स! प्रेम पूर्वक समस्त प्राणियोंका पोषण और उनके तेजकी वृद्धि करनेवाली तथा लोगोंके श्रम (थकावट) की हरनेवाली, नक्षत्रोंकी माला धारण किये, लाल वस्त्र पहिने हुई भगवती रात्रि पूर्ण रूपसे चलीगयीं, अतः अब आप शीघ्र उठें ॥२॥३॥

वेलोदयस्य भानोः प्राप्ता मनोज्ञरूपाः !
द्रष्टुं हि वो मुनीन्द्राः स्तुन्वन्ति पक्षिरूपाः ॥४॥

हे मनोहर रूपवाले ! सूर्य उदय होनेकी वेला उपस्थित है, मुनीन्द्रगण पक्षियोंका रूप धारण करके आपका दर्शन करनेके लिये स्तुति कर रहे हैं ॥४॥

श्रीमत्कुलादियोनिर्भगवान्भगो दिनेशः ।
आयाति द्रष्टुकामश्छायाधवो ग्रहेशः ॥५॥

आपके कुलके प्रधान कारण, षड्ऐश्वर्य-पूर्ण, ग्रहोंके स्वामी, छाया पति, भगवान् सूर्य आपके दर्शनोंके लिये पधार रहे हैं ॥५॥

तद्वन्दनाय तन्द्रा तूर्णं विसर्जनीया ।
भद्रं हि वोऽस्तु वत्सा ! मन्मुद्विवर्द्धनीया ॥६॥

हे वत्सो ! आपका कल्याण हो, उन भगवान् भास्कर (सूर्य) को प्रणाम करनेके लिये आलस्यका परित्याग तथा मेरे आनन्दकी वृद्धि करनाही आप लोगोंको उचित है ॥६॥

माङ्गल्यवस्तुपूर्णान्यादाय भाजनानि ।
सख्यः स्थिताः सकाशं वः पश्यताशु तानि ॥७॥

माङ्गलिक द्रव्योंसे पूर्ण पात्रोंको लिये सखियाँ आप लोगोंके पासमें खड़ी हुई हैं, उनका (मङ्गल) दर्शन कीजिये ॥७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं प्रबोधितो रामस्त्यक्तनिद्रोऽनुजैः सह ।
उत्थाय चरणौ स्पृष्ट्वा तस्याश्चक्रेऽभिवादनम् ॥८॥

भगवान् श्रीशिवजी बोले:-हे पार्वती ! इस प्रकार अपने भाइयोंके सहित जगाये हुये श्रीरामभद्रजू, निद्राको परित्याग करके उठे और चरणोंका स्पर्श करके श्रीअम्बाजीको प्रणाम किये ॥८॥

माङ्गल्यवस्तुपात्राणि दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा यथारुचि ।
राज्ञ्याः सकाशमिन्द्वस्यो न्यषीदद्रुचिरासने ॥९॥

पुनः माङ्गलिक वस्तुओंके पात्रोंको यथा रुचि दर्शन, स्पर्शन करके श्रीअम्बाजीके पास उत्तम आसन पर बैठ गये ॥९॥

जलार्द्रकोमलस्निग्धसुचीनामलवाससा ।
मुखसंप्रोच्छणं कृत्वा मधुपर्कं समादिशत् ॥१०॥

तब उन श्रीअम्बाजीने जलसे गीले, कोमल, चिकने, झीने, स्वच्छ वस्त्रसे उनके मुखारविन्दोंको पोंछकर उन्हें मधुपर्क (,घी, मधु मिला हुआ दही) प्रदान किया ॥१०॥

दर्पणं दर्शयित्वा सा विहिताचमनेष्वथ ।
प्रीत्या नीराजयामास महानन्दपरिप्लुता ॥११॥

आचमन कर लेने पर दर्पण (आयना) दिखला कर आनन्दमें डूबी हुई पुनः वे प्रेमपूर्वक आरती उतारने लगीं ॥११॥

उन्मील्य नयनाम्भोजे दृष्ट्वाऽथेतस्ततस्तदा ।
मन्दं रुरोद तल्पस्था क्षिपत्यङ्घ्रिकरद्वयम् ॥१२॥
परमानन्दचिन्मूर्त्तिर्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
अयोनिजा सुता राज्ञःशिशुरूपा महाद्युतिः ॥१३॥

तब शिशुरूपको धारण किये हुई अयोनिसम्भवा, महा तेज सम्पन्ना, साकार-निराकार रूप वाली, आनन्दकी श्रेष्ठ चैतन्यमयी मूर्त्ति, श्रीमिथिलेशदुलारीजी पलङ्ग पर विराजमान हुई अपने नेत्रकमलोंको खोलकर इधर-उधर देखकर हस्त, पाद कमलोंको पटकती हुई, मन्द २ रोने लगीं १३

तां तदोत्थाप्य वात्सल्यपीयूषाम्बुधिसम्प्लुता ।
त्वरया विह्वला राज्ञी सुमुखीं क्रोडमाददे ॥१४॥

उस समय रानी (श्रीसुनयना अम्बा) जीने वात्सल्यरूपी अमृतके समुद्रमें डूबी हुई विह्वल होकर शीघ्रताके साथ उन श्रीसुमुखीजीको उठाकर अपनी गोदमें ले लिया ॥१४॥

साऽपि पीत्वा स्तनं मातुः संप्रहृष्टमुखी बभौ ।
भासयन्ती रुचा वेश्म ह्लादयन्त्यखिलं जगत् ॥१५॥

वे श्रीमिथिलेशदुलारीजीभी श्रीअम्बाजीका स्तन पान करके अपने श्रीअङ्गकी कान्तिसे महलको प्रकाशित और सारे जगत्को ह्लादित करती हुई सम्यक् प्रकारसे पूर्ण प्रसन्न मुखी हो गयीं ॥१५॥

एतस्मिन्नेव काले तु सख्यः सर्वा उपागताः ।
वैकाश्योऽन्यवयस्याभिः सह माङ्गल्यपाणयः ॥१६॥

उसी समय अन्य सखियोंके सहित विकाशापुरकी सभी सखियाँ मङ्गल थाल हाथमें लिये हुई वहाँ आगयीं ॥१६॥

ताः प्रणेमुर्महाराज्ञीं कुमारान्वीक्ष्य हर्षिताः ।
परमानन्दमापन्ना दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम् ॥१७॥

और उन्होंने श्रीचक्रवर्तीकुमारोंका दर्शन करके हर्षको प्राप्त हो महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जीको प्रणाम किया। पुनः श्रीजनक लडैतीजूका दर्शन करके भगवदानन्दको प्राप्त हो गयीं ॥१७॥

अथानीतानि पात्राणि माङ्गल्यानि यथाविधि ।
दर्शयित्वा महाराज्ञ्यै कुमारेभ्यस्तथैव च ॥१८॥

तदनन्तर लाये हुये मङ्गल थालोंको विधि पूर्वक श्रीसुनयना महारानीजीको तथा राजकुमारोंको दर्शन कराके ॥१८॥

अङ्गालङ्कारमाशोध्य मुदा नीराजनं कृतम् ।
ताभिः परमहृष्टाभिः प्रार्थनेति निवेदिता ॥१९॥

अङ्गोंके शृङ्गारको सुधार करके परम हर्षको प्राप्त हुई सखियोंने, आनन्दपूर्वक आरती करके उस समय यह प्रार्थना निवेदन की ॥१९॥

सख्य ऊचुः ।

सौभाग्यमस्तु ते नित्यं प्रजाकोपकुलादिभिः ।
चिरञ्जीवतु ते पुत्री सर्वदैव निरामया ॥२०॥

सखियाँ बोलीं :—हे श्रीमहारानीजी ! आप प्रजा, कोश कुलके सहित नित्य सौभाग्यवती होवें और आपकी श्रीललीजी सदाही समस्त रोगोंसे रहित रहें ॥२०॥

एते कमलपत्राक्षा राजपुत्रा मनोहराः ।
निरामयाः प्रपद्यन्तां चिराय भविकं मुदा ॥२१॥

और ये मनहरण कमलदलके सदृश विशाल नयन राजकुमार, सब प्रकारके रोगोंसे रहित, रहते हुये आनन्द पूर्वक चिरजीवनको प्राप्त करें ॥२१॥

सर्वदा सर्वकालेषु सर्वर्तुषु तथैव च ।
सर्वावस्थासु सर्वत्र भद्राण्येव प्रयान्त्वमी ॥२२॥

तथा सभी काल ऋतुओंमें, सभी जाग्रत् स्वप्नादि अवस्थाओंमें, सभी ठौर ये मङ्गलोंको ही प्राप्त होवें ॥२२॥

इदानीं स्वस्तिकागारसमयः समुपस्थितः ।
तत्कृतार्थयितुं राज्ञि ! कुमारैर्गम्यतां त्वया ॥२३॥

हे श्रीमहारानीजी ! यह समय स्वस्तिक भवन पधारनेका पूर्णरूपसे उपस्थित हो गया है इस हेतु उसे कृतार्थ करनेके लिये इन राजकुमारोंके सहित, आप शीघ्र उस स्वस्तिक भवनको पधारिये ॥ २३ ॥

श्रीशिव उवाच ।

तासां वचनमाकर्ण्य भृशमाप मुदं ततः ।
राजपुत्रैः समं तस्मात्स्वस्तिकागारमभ्यगात् ॥२४॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! उन सखियोंकी प्रार्थना श्रवण करके श्रीसुनयनाम्बाजी बड़े आनन्दको प्राप्त हुई पुनः उनकी प्रार्थनानुसार श्रीचक्रवर्तीकुमारोंके सहित वे स्वस्तिक भवनमें पधारीं ॥२४॥

तत्र स्वस्त्यासने रम्ये क्षालिताङ्घ्रिकराम्बुजा ।
निवेशिता वयस्याभी राजपुत्रैः समन्विता ॥२५॥

वहाँकी सखियोंने हाथ, पैर रूपी कमलोंको धोकर राजपुत्रोंके सहित उन्हें स्वस्तिक आसन पर विराजमान किया ॥२५॥

मधुपर्कादिविधिना राज्ञी नीराजिता मुदा ।
गीतैर्वाद्यैस्तथानृत्यैर्वत्सोरसङ्गा व्यराजत ॥२६॥

पुनः मधुपर्क समर्पण करके गीत, वाद्य, नृत्यके सहित उन सखियोंके द्वारा आरती उतारी हुई वे श्रीअम्बाजी गोदमें श्रीललीजीको लिये सुशोभित हुई ॥२६॥

तस्मात्तु स्वस्तिकागाराद्दन्तधावनमन्दिरम् ।
विहाय कौतुकागारमाससाद हरित्प्रभम् ॥२७॥

पुनः उस स्वस्तिकभवनसे बीचमें कौतुक भवनको छोड़कर हरे प्रकाशसे युक्त, दन्तधावन नामके भवनमें पहुँची ॥ २७ ॥

द्वाःस्थिताभिः समादृत्य भक्तिपूर्वाभिवन्दनैः ।
गृहान्तरालमानीता त्रिविधाऽनिलपूरितम् ॥२८॥

द्वार पालिका सखियाने भक्तिपूर्वक प्रणाम आदिके द्वारा सत्कार करके शीतल, मन्द, सुगन्ध युक्त वायुसे पूर्ण उन्हें भीतर महलम ले गयीं ॥ २८ ॥

तत्रारोप्य सुपीठेषु महति स्फटिकमण्डपे ।
वन्धूकजातिनिर्गुण्डीहेमपुष्पिद्रुमान्विते ॥२९॥

वहाँ नेवारी, पीली जूही, चमेली, दुपहरियाके पेड़ोंसे युक्त, विशाल स्फटिक मणिमय मण्डपमें सुन्दर चौकियों पर बैठा कर ॥ २९ ॥

राज्ञ्या सुनेत्रया प्रीत्या दान्तधानको विधिः ।
कारितो राजपुत्रैस्तैस्तयाऽपि विहितः स्वयम् ॥३०॥

श्रीसुनयना अम्बाजीने प्रेमपूर्वक उन राजकुमारोंको दन्तधावन कराया तथा स्वयं भी किया ॥ ३० ॥

प्रक्षालितकराङ्घ्रिभ्यः कुमारेभ्यो निवेदितम् ।
महिष्योरीकृतं तस्याः फलपात्रशतं तया ॥३१॥

हाथ पाँव धोकर राजकुमारोंके भोजनके लिये वहाँकी मुख्य सखीजीके समर्पण किये हुये सैकड़ों फलपात्रोंको श्रीअम्बाजीने स्वीकार किया ॥ ३१ ॥

अथोत्सृज्य तदागारमभ्ययान्मज्जनालयम् ।
स्नानार्थं च महाराज्ञी साकमुर्वीश्वरात्मजैः ॥३२॥

उसके पश्चात् उस भवनको छोड़कर श्रीचक्रवर्ती कुमारोंके सहित, स्नान करनेके लिये मज्जन नामके भवनमें पधारीं और ॥ ३२ ॥

ममज्ज सरसि प्रीत्या तस्मिंस्तु विमलाम्भसि ।
स्नापयन्ती नृपसुतान्कृतोद्वर्तनसद्विधीन् ॥३३॥

वहाँ उबटन लगाये हुये राजकुमारोंको स्वच्छ जलमय सरोवरमें स्नान कराया तथा श्रीसुनयना अम्बाजीने स्वयं स्नान किया ॥३३॥

चक्रवर्तिकुमारास्ते जलक्रीडापरायणाः ।
नैवाययुः समाहूता बालभावं समाश्रिताः ॥३४॥

वे श्रीचक्रवर्ती कुमार बालभावमें प्राप्त हो जल-क्रीडामें तन्मय हो गये अतः बुलाने पर भी न आये ॥ ३४ ॥

उवाच प्रश्रयेणेदं राज्ञी दृष्ट्वा मुदान्विता ।
रामं कमलपत्राक्षं ज्येष्ठं सुमुखि ! बन्धुषु ॥३५॥

हे सुन्दर मुखवाली श्रीगिरिराज-कुमारीजी ! यह रानी श्रीसुनयना अम्बा देखकर मुदित हुई पुनः वे भाइयोंमें श्रेष्ठ, कमलदललोचन श्रीरामभद्रजूसे यह बोलीं–॥ ३५ ॥

श्रीसुनयनोवाच ।

एहि मे वत्स ! श्रीराम ! वस्त्राण्याधत्स्व बन्धुभिः ।
अलमम्भोविहारेण कच्चित्क्षुद्धो न बाधते ॥३६॥

हे मेरे वत्स ! श्रीरामभद्रजू ! अब बहुत जलविहार हुआ, अतः आइये बन्धुओंके सहित सूखे वस्त्र धारण कीजिये, क्या अभी तक भूख नहीं लगी है ? ॥३६॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तस्तया देवि ! रामः सहजसुन्दरः ।
पार्श्वस्थसूनुसुभगः प्राज्ञो राज्ञीमुपागमत् ॥३७॥

भगवान् शिवजी बोले :–हे देवि ! इस प्रकार श्रीअम्बाजीके कहने पर, दोनों बगलमें अपने भाइयोंसे सुशोभित, सहज सुन्दर श्रीरामभद्रजू महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीके पास आये ॥३७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

विहायार्द्राणि वस्त्राणि धृताल्पांशुकभूषणः ।
सरस्तीरोपभवने समानीतस्ततस्तया ॥३८॥

तब गीले वस्त्रोंको उतार कर सूखे स्वल्प वस्त्र भूषणोंको धारण कर लेने पर वे श्रीअम्बाजी सरोवरके किनारेके भवनमें ले गयीं ॥३८॥

उपवेश्यासने दिव्ये तत्र केशप्रसाधनम् ।
विधाय विहितं भाले तिलकं केशरादिना ॥३९॥

वहाँ उन चारों भाइयोंको दिव्य आसन पर बैठा करके, बाल सवाँरके केशर आदिसे तिलक लगाती हुई ॥३९॥

प्रातराशाय मिष्टान्नं सखीसख्या निवेदितम् ।
भोक्तुमाज्ञापिता राज्ञ्या कुमारास्तदभुञ्जत ॥४०॥

पुनः वहाँकी सखीजीके द्वारा कलेऊके निमित्त अर्पण किये हुये मिष्टान्नको, श्रीअम्बाजीकी आज्ञा पाकर वे आरोगने (पाने) लगे ॥४०॥

पुनस्ते लब्धताम्बूलवीटिका हरिदम्बराः ।
नीराजिताः समानीतास्तस्माच्छ्रीमण्डनालयम् ॥४१॥

उसके पश्चात् पानका बीरा पाकर हरे वस्त्र धारण किये, आरती उतारे हुये उन श्रीकोशलेन्द्र-कुमारोंको श्रीअम्बाजी, उस महलसे शृङ्गार-सदनमें ले गयीं ॥४१॥

रुक्मतन्तुमणिव्रातरचितैर्वस्त्रभूषणैः ।
स्वलञ्चकार सा प्रेम्णा तत्र राज्ञी मुदा स्वयम् ॥४२॥

वहाँ सुवर्णके धागोंसे तथा मणि-समूहोंसे बने हुये वस्त्र-भूषणोंके द्वारा, महारानी श्रीसुनयना-अम्बाजी प्रेम-पूर्वक आनन्दके सहित, चारों श्रीचक्रवर्ती-कुमारोंका स्वयं शृङ्गार करती हुईं ॥४२॥

पुनर्नीराज्य तान् सर्वान् कृतस्वल्पामृताशनान् ।
आशु सा प्रापयामास सभागारं महीपतेः ॥४३॥

इति पञ्चचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ॥४५॥

पश्चात् अमृतके समान स्वल्प नैवेद्य पाये हुये उन चारों राजकुमारोंकी आरती करके उन्हें वे शीघ्र श्रीमिथिलेशजी महाराजके सभाभवनमें भेजती हुईं ॥४३॥

अथ षट्चत्वारिंशतितमोऽध्यायः ॥४६॥

श्रीकोशलेन्द्रकुमारोंका श्रीमिथिलेशजी-महाराजके सभा-भवनसे भोजनगृह-आगमन तथा भोजन करते समय उनके मनो-विनोदार्थ श्रीसुदर्शनअम्बाजी द्वारा श्रीशर्द्धीकाकी कथा-वर्णन—

श्रीमोदप्रोवाच ।

प्रेषयित्वा सकाशे तान् सभायां मिथिलापतेः ।
कुमारान् राजराजस्य ययावम्बाऽशनालयम् ॥१॥

उन श्रीचक्रवर्ती कुमारोंको श्रीमिथिलेशजी महाराजके पास, सभाभवनमें भेजकर श्रीसुनयना अम्बाजी भोजन-सदनमें पधारीं ॥१॥

सुप्रबन्धं समुद्वीक्ष्य भोजनस्य सविस्तरम् ।
तुतोष विहितं रात्रौ सखीभिर्भावपेशला ॥२॥

वहाँ भलीप्रकारसे भाव विषयका ज्ञान रखने वाली श्रीअम्बाजी सखियोंके द्वारा भोजनका विस्तारपूर्वक किया हुआ सुन्दर प्रबन्ध सम्यक् प्रकारसे अवलोकन करके बड़ी ही प्रसन्नताको प्राप्त हुईं ॥२॥

दृष्ट्वैवागमनं तेषां परीतानां दिदृक्षुभिः ।
सहसैवोत्थिताः सर्वे नरेन्द्रेण सभासदः ॥३॥

उधर दर्शनाभिलाषी बड़भागियोंसे युक्त चारों श्रीराजकुमारोंका आगमन देखकर सभामें बैठे हुये सभी सौभाग्यशाली लोग श्रीमिथिलेशजी महाराजके सहित सहसा उठ खड़े हुये ॥३॥

प्रेमाश्रुलोचनः श्रीमाँस्तान्समालिङ्ग्य चोरसा ।
सिंहासने निवेश्याथ तेषां मध्य उपाविशत् ॥४॥

श्रीमान् (मिथिलेशजी) महाराज चारों भाइयोंको हृदयसे लगाकर प्रेमाश्रुयुक्त नेत्र हो राज-सिंहासन पर उन्हें विराजमान करके उनके बीचमें बैठ गये ॥४॥

श्रीसभासद ऊचुः ।

कृतार्थाऽद्य सभाज्येयं सर्वथा नात्र संशयः ।
उपस्थित्या कुमाराणां पञ्चबाणमदच्छिदाम् ॥५॥

सभासद लोग बोले:-अपनी छवि-सौन्दर्यसे कामदेवके अभिमानको दूर करने वाले इन श्रीराजकुमारोंकी उपस्थितिसे आज यह सभा निःसन्देह कृतकृत्य है ॥५॥

जयत्यद्य दिनं भूरि मुहूर्तो घटिका पलम् ।
उपस्थित्या कुमाराणां कुसुमेषुस्मयच्छिदाम् ॥६॥

कामदेवके मानको चूर करनेवाले इन श्रीचक्रवर्तीकुमारोंकी उपस्थितिसे इस सभा-भवनके लिये आजका यह दिन, मुहूर्त, घड़ी, पल अत्यन्त उत्कर्षको प्राप्त हो रहा है ॥६॥

शीतांशुपूर्णरम्यास्याः स्निग्धकुञ्चितकुन्तलाः ।
पुण्डरीकविशालाक्षाः कम्बुग्रीवाः सुनासिकाः ॥७॥

पूर्णचन्द्रमाके सदृश आह्लादवर्द्धक सुन्दरमुख, स्निग्ध घुंघुराले केश, कमलके समान विशाल लोचन, शङ्खके समान तीन रेखा युक्त कण्ठ, सुन्दर नासिका ॥७॥

सुभ्रुवः कान्तकर्णाश्च पक्वबिम्बफलाधराः ।
मनोज्ञचिबुकाः श्रीलाः सुकपोलाः कलस्मिताः ॥८॥

सुन्दर भृकुटि, मनोहरकान, पके बिम्बाफलके सदृश लाल अधर, मनोहर ठोढ़ श्रीसम्पन्न, सुन्दर कपोल, मनोहर मुस्कान ॥८॥

निगूढजत्रवः पीनवक्षसो दीर्घबाहवः ।
तनुमध्याः सूरवश्च कोमलाम्बुरुहाङ्घ्रयः ॥९॥

छिपी पँसुली, पुष्टवक्षःस्थल, लम्बी बाहु, पतली कमर, सुन्दर जङ्घा, कमलके समान कोमल श्रीचरण ॥९॥

नीलाश्महेमवर्णाङ्गाः सुप्रभा वल्गुदर्शनाः ।
सुचारुकुन्ददशनाः सुकटाक्षाः सुभाषिणः ॥१०॥

नीलमणि व सुवर्णके समान श्याम गौर अङ्ग, सुन्दर, कान्ति, मनहरणदर्शन, सुन्दर कुन्दरू की पुष्पकलीके समान दन्तपङ्क्ति, सुन्दरकटाक्ष, सुन्दरवाणी बोलने वाले ॥१०॥

सर्वाभरणवस्त्राढ्या सुभगाः पुष्पमालिनः ।
सर्वसद्गुणसम्पन्नाः सर्वसल्लक्षणान्विताः ॥११॥

सम्पूर्ण भूषण-वस्त्रोंसे युक्त, फूलोंकी मालायें धारण किये, शोभायमान, समस्त उत्तम गुण सम्पन्न, सभी शुभलक्षणोंसे युक्त ॥११॥

सर्वे मनोहरा दिव्यास्त्रिलोक्यामसमाधिकाः ।
एतैरेते हि सदृशा महामाधुर्यसिन्धवः ॥१२॥

सभी मनके हरण करने वाले, त्रिलोकीमें समता व अधिकतासे रहित, ये इन्हींके सदृश, महा-माधुर्य सिन्धु, अलौकिक गुणरूप-सम्पन्न ॥१२॥

परमानन्दसन्दोहाः श्रुतितत्त्वैकविग्रहाः ।
कुमाराः परिदृश्यन्ते परब्रह्मस्वरूपिणः ॥१३॥

परमानन्दकी राशि, वेदके तत्त्वकी उपमारहित मूर्ति और परब्रह्मके स्वरूप ही ज्ञात हो रहे हैं ३॥१॥

सुता दशरथस्यैते विश्रुताश्चक्रवर्तिनः ।
चत्वारो रामभरतौ लक्ष्मणारिनिषूदनौ ॥१४॥

परन्तु लोकमें श्रीरामजी, श्रीभरतजी, श्रीलक्ष्मणजी श्रीशत्रुघ्नजी नामोंसे विख्यात ये चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराजके चारो पुत्र हैं ॥१४॥

लक्ष्मणो रामभद्रेण रिपुघ्नो भरतेन च ।
सङ्गत्या राजते नित्यमतीवप्रियदर्शनः ॥१५॥

श्रीरामभद्रजूके साथ श्रीलक्ष्मणजी तथा श्रीभरतजीके साथ श्रीशत्रुघ्नजी प्रिय दर्शन होते हुये नित्य सुशोभित होते हैं ॥१५॥

धन्योऽसौ श्रीमहाराजो धन्या ह्येषां च मातरः ।
धन्याऽयोध्यापुरी नूनं धन्या च सरयूःसरित् ॥१६॥

धन्य वे (इनके पिता श्रीदशरथजी) महाराज, धन्य इनकी (श्रीकौशल्यादि) मातायें, धन्य (इनकी जन्मभूमि) श्रीअयोध्यापुरी, और जिसमें ये स्नान आदि करते हैं वह धन्य श्रीसरयू नदी है ॥१६॥

धन्यं वनं प्रमोदाख्यं धन्याः सत्यानिवासिनः ।
धन्यास्ते सर्व एवेह पश्यन्त्येतानहर्निशम् ॥१७॥

धन्य प्रमोदवन, जिसमें ये नित्य विहार किया करते हैं, धन्य श्रीअयोध्यानिवासी, जिन्हें इनकी बालक्रीडा देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ करता है, कहाँ तक कहें ? वे सभी धन्य हैं, जिन्हें इनका दर्शन सतत प्राप्त होता है ॥१७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं पुलकितोरस्काः कथयन्तः परस्परम् ।
पूर्णानन्दाम्बुधौ मग्ना उपयाताः कृतार्थताम् ॥१८॥

भगवान् शिवजी बोले :–इस प्रकार कथन करते हुये, पुलकायमान हृदय वाले वे, समासद् वृन्द पूर्णआनन्दसमुद्रमें डूब कर कृतार्थ हो गये ॥१८॥

तदा पुत्रौ समायातौ विसृष्टौ भोजनालयात् ।
नेतुकामौ महाराज्या राजपुत्रान्मनोहरान् ॥१९॥

तब भोजन-सदनसे महारानी श्रीसुनयनाम्बाजीके भेजे हुये दोनों पुत्र मनहरण राजकुमारोंको भोजनभवन ले जानेके लिये, वहाँ आ पहुँचे ॥१९॥

तयोर्विज्ञापनं श्रुत्वा युक्तमावश्यकं नृपः ।
सान्त्वयित्वा जनान्सर्वाञ्जगामाशनवेश्म सः ॥२०॥

उन दोनोंका आवश्यक निवेदन श्रवण करके श्रीमिथिलेशजी महाराज सभी सभासद् आदि लोगोंको आश्वासन प्रदान करके भोजन सदनको पधारे ॥२०॥

तेषु गच्छत्सु पुत्रेषु भूपतेश्चक्रवर्तिनः ।
दर्शनातुरचित्तानां सङ्गमोऽभून्महान्पथि ॥२१॥

उन श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके राजकुमारोंके सभाभवनसे गमन करतेही मार्गमें उनके दर्शनोंके लिये विह्वल चित्तवाले सज्जनोंकी महती भीड़का समागम हुआ ॥२१॥

तेषामुत्फुल्लचक्षूंषि कुर्वाणाः सफलानि ते ।
आहृत्य चित्तरत्नानि गजयानेन संययुः ॥२२॥

उन दर्शनाभिलाषियोंके पूर्ण खिले नेत्रोंको, अपने दर्शनोंके द्वारा सफल करते हुये तथा उनके चित्त रूपी रत्नोंकी चोरी करके वे राजकुमार गजयानसे भोजनसदन पधारे ॥२२॥

निकेतानां गवाक्षेषु तत्पथः पार्श्ववर्तिनः ।
शिवे ! सर्वैरदृश्यन्त तदानीमिन्दुपङ्क्तयः ॥२३॥

हे शिवे ! उस मार्गके दोनों बगलके महलोंके झरोखोंमें सभी लोगोंको चन्द्र पंक्तियोंका ही दर्शन होता था अर्थात् माताओंके मुखचन्द्र ही दिखाई पड़ते थे ॥२३॥

माल्यैर्लाजैः प्रसूनैश्च पूज्यमानाः समन्ततः ।
एवमेवासदन्वेश्म भोजनाख्यं नृपेण ते ॥२४॥

इस प्रकार माला, लावा, फूलोंके द्वारा पूजित होते हुये वे श्रीमिथिलेशजी महाराजके सहित भोजन नामके भवनमें आये ॥२४॥

प्रत्युद्गम्यानयद्राज्ञी कृत्वाऽऽर्त्तिक्यविधिं हि तान् ।
अन्तर्गृहं सखीवृन्दैर्नरेन्द्रेण सहागतान् ॥२५॥

रानी श्रीसुनयना अम्बाजी आगे पधार कर, आरती करके, श्रीमिथिलेशजीके साथ पधारे हुये उन राजकुमारोंको, अपनी सखियोंके सहित भीतर महलमें ले गयीं ॥२५॥

क्षालिताङ्घ्रिकरास्यांस्तान् विनीतान्भूरिवत्सला ।
पीठेष्वास्थाप्य संत्यक्तसभाभूपानभोजयत् ॥२६॥

पुनः हाथ, पाँव, मुखारविन्द, धोये हुये सभा भवनका शृङ्गार उतारे उन विनीत श्रीराजकुमारोंको सुन्दर चौकियों पर बैठा करके भोजन कराने लगीं ॥२६॥

श्रीसुभद्रा विशालाक्षी तथा चन्द्रप्रभा प्रिये ! ।
सुचित्रा सुव्रताऽशोका मोदिनी क्षेमवर्द्धिनी ॥२७॥

हे प्रिय ! श्रीसुभद्राजी श्रीविशालाक्षीजी श्रीचन्द्रप्रभाजी, श्रीसुचित्राजी, श्रीसुव्रताजी, श्रीक्षेमवर्द्धिनीजी ॥२७॥

इमाश्चाष्टौ समादाय व्यजनानि चकाशिरे ।
अम्बा सुदर्शना तर्हि निजगाद मुदे कथाम् ॥२८॥

ये आठों रानियाँ पङ्खे लेकर सुशोभित हुई तब श्रीसुदर्शनाअम्बाजी आनन्दके लिये एक कथा कहने लगीं-॥२८॥

श्रीसुदर्शनोवाच ।

भद्रं वोऽस्तु सदा पुत्राः कथैका श्रूयतां शुभा ।
कुर्वद्भिर्भोजनं प्रीत्या भवद्भिः कौतुकान्विता ॥२९॥

श्रीसुदर्शनाअम्बाजी बोलीं-हे पुत्रो ! आप लोगोंका कल्याण हो। आप लोग प्रेम-पूर्वक भोजन करते हुये एक कौतुकमयी शुभ-कथा श्रवण कीजिये ॥२९॥

वसति स्म पुरा कश्चिन्महात्मा निर्जने वने ।
कृत्वोटजं कृपामूर्त्तिः सपुत्रोऽग्निनिभद्युतिः ॥३०॥

पूर्वकालमें कोई एक तपोमूर्त्ति, अग्निके समान कान्तिवाले महात्मा निर्जन वनमें कुटी बना कर, अपने पुत्रके सहित निवास करते थे ॥३०॥

स एकस्मिन्दिने प्रागात्फलान्याहर्तुकाम्यया ।
किञ्चिद्दूरं निजावासात्पुत्रमुत्सृज्य चोटजे ॥३१॥

किसी समय वे अपने पुत्रको कुटीमें अकेले छोड़कर आश्रमसे कुछ दूर फल लानेके लिये चले गये ॥३१॥

एतस्मिन्नेव काले तु वेश्या नृपहिते रताः ।
एकाकिनं तमाबुध्य पुत्रमापुस्तदाश्रमम् ॥३२॥

उसी अवसर पर अपने राजाका हित करनेमें कटिबद्ध वेश्यायें मुनिपुत्रको अकेले जानकर उस आश्रममें आगयीं ॥३२॥

अदृष्टस्त्रीस्वरूपोऽसौ दृष्ट्वा ताश्च वराङ्गनाः ।
अपूर्वर्षिवरान्मत्वा स्वागतायोपचक्रमे ॥३३॥

तब पूर्वमें कभी स्त्रीका स्वरूप न देखे हुये वे ऋषिकुमार उन वेश्याओंको देखकर उन्हें अपूर्व ऋषि शिरोमणि मानकर उनका स्वागत करने लगे ॥३३॥

ऋषिपुत्र उवाच ।

इदमर्घ्यमिदं पाद्यमिदमाचमनीयकम् ।
फलानीमानि मिष्ठानि नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥३४॥

ऋषिपुत्र बोले-हे पूज्य महर्षियो ! यह अर्घ्य, यह पाद्य, यह आचमनीय, यह मीठे फलोंका नैवेद्य स्वीकार कीजिये ॥३४॥

आस्यतामचिरेणैव गुरोरागमनं हि मे ।
भवेत्तेन मिलित्वा वै पुनः कामं प्रयास्यथ ॥३५॥

आप लोग विराजिये, अब शीघ्र ही मेरे पिताजीका आगमन होनेवाला है उनसे मिलकर इच्छानुसार पुनः आप लोग चले जाइयेगा ॥३५॥

श्रीसुदर्शनोवाच ।

तास्तथेति तमाभाष्य पूजनं प्रतिगृह्य च ।
मोदकांश्च तदा तस्मै समर्प्येदं वभाषिरे ॥३६॥

श्रीसुदर्शना अम्बाजी बोलीं-हे वत्सो ! वे वेश्यायें ऋषि पुत्रसे ऐसा ही होगा कहकर तथा उनके द्वारा किया हुआ पूजन स्वीकार करके, अपने साथ लाये हुये लड्डुओंको उन्हें अर्पण करके बोलीं-॥३६॥

वेश्या ऊचुः ।

उरीकृतानि सर्वाणि फलान्यस्माभिरेव ते ।
अस्मद्वनफलानि त्वं भुङ्क्ष्व नः प्रीतिवृद्धये ॥३७॥

हे ऋषिकुमार ! आपके फलोंको हम सबोंने स्वीकार किया । अब आप हमारी प्रसन्नताको बढ़ाने के लिये हमारे वनके इन फलोंको खा लीजिये ॥३७॥

श्रीसुदर्शनोवाच।

एवमुक्तस्तु वै ताभिर्मुनिपुत्रः स्वधर्मवित् ।
फलमत्योद्यतो भोक्तुं मोदकांश्च मनोहरान् ॥३८॥

हेमनहरण पुत्रो ! श्रीसुदर्शना अम्बाजी बोलीं:-उन वेश्याओंके इस प्रकार कहने पर, अपने धर्मको समझनेवाले वे मुनिपुत्र फलबुद्धिसे उन लड्डुओंको पाने (खाने) लगे ॥३८॥

तांस्तु जग्ध्वा महातेजाः पप्रच्छ विनयान्वितः ।
भवतां कुत्र संवासः क चेहागमनं किल ॥३९॥

उन लड्डुओंको पाकर वे विनयपूर्वक पूछने लगे, हे अपूर्व तेजस्वी महर्षियो ! आप लोग किस वनमें निवास करते हैं ? और यहाँ कहाँ पधारे हैं ? ॥३९॥

वने फलानि युष्माकं यथा स्वादुमयानि च ।
न सन्त्यस्मद्वने चात्र सत्यं वच्मि तपस्विनः ॥४०॥

हे तपस्वियो ! जैसे आपके वनमें स्वादिष्ट फल होते हैं, उस प्रकार मेरे इस वनमें नहीं, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥४०॥

वेश्या ऊचु ।

वसामो वै वनादस्मात्किञ्चिद्दूरं शुचिव्रत ! ।
दिदृक्षया वनं प्राप्ताः सुखितास्ते समागमात् ॥४१॥

वेश्यायें बोलीं:-हे पवित्रव्रतधारी मुनि-पुत्र ! इस वनसे थोड़ी ही दूरके वनमें हम लोग निवास करते हैं और यहाँ केवल दर्शनकी इच्छासे आगये थे सो आपके समागमसे हम लोगोंको बड़ा ही सुख प्राप्त हुआ ॥४१॥

अस्माकं तु वने सन्ति फलान्यत्युत्तमानि वै ।
इदानीं गम्यतेऽस्माभिः स्वाश्रमो भद्रमस्तु ते ॥४२॥

हमारे वनमें अत्युत्तम फल हैं इसमें कोई सन्देह नहीं। हे ऋषिकुमार ! आपका कल्याण हो इस समय हम लोग अपने आश्रमको जा रहे हैं ॥४२॥

ऋषिपुत्र उवाच।

अनुकम्पेदृशी कार्या भवद्भिर्मुनिसत्तमाः !
दर्शनं भवतां पुण्यं मनोज्ञं दुर्लभं हि मे ॥४३॥

ऋषिपुत्र बोले:-हे परम श्रेष्ठ मुनियो! आप लोग इसी प्रकारकी कृपा सदा मेरे प्रति करते रहियेगा क्योंकि आप लोगोंका मनोहर, पवित्र, दर्शन मेरे लिये निश्चयही दुर्लभ है ॥४३॥

श्रीसुदर्शनोवाच।

तथेत्युक्त्वा ऋषेर्भीताः समालिङ्गय पुनः पुनः।
अगमन् स्वाश्रमं तस्य चोरयित्वा मनोमणिम् ॥४४॥

श्रीसुदर्शना अम्बाजी बोलीं:- हे वत्सो! ऋषिकुमारकी इस प्रार्थनाको श्रवण करके वे वेश्यायें उनसे ऐसा ही होगा कहकर, उन्हें बारम्बार भली प्रकारसे हृदय लगा कर उनके पिताके भयसे घबड़ाई हुई ऋषि-कुमारकी मनरूपी मणिको चुरा कर, अपने आश्रमको चली गयीं ॥४४॥

तेन विह्वलतां प्राप्तः कथञ्चित्स्वास्थ्यमाययौ।
पितरि प्रस्थिते प्रातः पुनश्चिन्तापरोऽभवत् ॥४५॥

उस मनोमणिकी चोरी होजानेसे ऋषिपुत्र विह्वल हो गये, पुनः बड़ी कठिनतासे धैर्यको प्राप्त हुवे। पुनः प्रातः पिताजीके बाहर चले जानेपर वे उन वेश्याओंका चिन्तन करने लगे ॥४५॥

आगता वै पुनर्ज्ञात्वा स्वाश्रमान्निर्गतं मुनिम्।
ऋषिपुत्रहृदिस्थास्ता वारमुख्यस्तदाश्रमम् ॥४६॥

मुनिजीको आश्रमसे बाहर चले गये जानकर ऋषिपुत्रके हृदयमें विराजी हुई वे वेश्यायें पुनः उस आश्रममें आगयीं ॥४६॥

सन्तोषं परमं लब्ध्वा स तु मोहवशं गतः।
दर्शनान्मृदुलस्तासां पूर्ववत्सत्कृतिं व्यधात् ॥४७॥

वे मृदुल स्वभाव ऋषिपुत्र, उनके दर्शनसे परम सन्तोषको प्राप्त हो, मोह[illegible] पूर्ववत् ही उन (वेश्याओं) का सत्कार करने लगे ॥४७॥

तास्तु तं पूजितास्तेन गच्छन्त्यः स्वानुयायिनम्।
द्रष्टुमर्हसि नो ब्रह्मन्नाश्रमं प्राहुरित्यपि ॥४८॥

ऋषिकुमारसे पूजित हो अपने आश्रमको पधारती हुई वे अपने पीछे-पीछे आते हुवे उन ऋषि पुत्रसे बोलीं-हे ब्रह्मन्! [illegible] हमारा [illegible] देखना उचित है ॥४८॥

ऋषि पुत्र बोले:-हे परम श्रेष्ठ मुनियो ! आपका वचन मेरे लिये शिरोधार्य है क्योंकि पूर्वकालमें मुझे श्रीपिताजीने महर्षियोंका अज्ञाकारी रहनेकी ही आज्ञा प्रदानकी थी ॥४६॥

श्रीसुदर्शनोवाच ।

इत्युदीरितमाकर्ण्य वारमुख्यो मनोहराः ।
आदरेणानयामासुः स्वाश्रमं तमृपेः सुतम् ॥५०॥

हे प्रियवत्सो ! ऋषि पुत्रका यह वचन सुनकर वे मनहरण वेश्यायें आदर पूर्वक उन ऋषि पुत्रको अपने आश्रममें ले आई ॥५०॥

तत्र संपूजितस्ताभिः सादरं तनयो मुनेः ।
विसृष्टः शीघ्रमेवाप स्वाश्रमं भयसंयुतः ॥५१॥

उन वेश्याओंके द्वारा आदर पूर्वक पूजित होकर उनके द्वारा विदा किये हुये, पिताके भयसे युक्त, वे मुनिपुत्र अपने आश्रमको शीघ्र चले आये ॥५१॥

एवं रूपप्रसक्तात्मा वेश्यासु बद्धसौहृदः ।
यातायातात्मसम्बन्धं ताभिः सोऽपि दृढं व्यधात् ॥५२॥

इस प्रकार उन वेश्याओंके रूप आसक्त मन हो, उन्होंने अपनी सुहृदताका भाव बान्ध कर वे ऋषि कुमार, उनके यहाँ आने जानेका दृढ अभ्यास कर लिये ॥५२॥

अथ लब्धान्तरास्ताश्च वारमुख्यो विशारदाः ।
आश्रमागतमालोक्य तमूचुः सत्कृतं मुदा ॥५३॥

इसके बाद अवसर पाकर वे कार्य कुशल वेश्यायें, अपने आश्रममें पधारे हुये ऋषि-कुमार को देखकर उनका सत्कार करके हर्ष पूर्वक बोलीं:-॥५३॥

वेश्या ऊचुः ।

एहि पश्य फलानि त्वमस्मद्वनभवानि ह ।
यानि भुक्त्वा वयं प्राप्ता इदं तेजो दुरासदम् ॥५४॥

हे ऋषि,कुमार ! जिन फलोंको खाकर हम लोग इस दुर्लभ तेजको प्राप्त हैं, आइये हमारे वनमें उत्पन्न होने वाले, उन फलोंको देखिये ॥५४।

श्रीसुदर्शनोवाच।

एवमुक्त्वा विशालाक्ष्यो दर्शयन्त्यश्च सादरम्।
विविधान्मोदकान्वत्सास्तन्तुबद्धांश्च शाखिषु ॥५५॥

श्रीसुदर्शना अम्बाजी बोलीं:—हे वत्सो! इतना कहकर वे विशाललोचना (वेश्यायें) डालियोंमें तागोंसे बँधे हुये अनेक प्रकारके लड्डुओंको दिखलाती हुई ॥५५॥

नावा स्वदेशमानिन्युश्छद्मना तमृषेः सुतम्।
ववर्ष भूरिपर्जन्यो यदर्थमयमुद्यमः ॥५६॥

छलसे उन ऋषि पुत्रको नौकाके द्वारा अपने देशको ले गयीं। ऋषि-पुत्रके उस देशमें पहुँचते ही बड़ी भारी वर्षा हुई, जिसके लिये ही ऋषिकुमारको लानेके लिये यह छल पूर्वक सब प्रयत्न किया गया था ॥५६॥

राजा दुहितरं तस्मै परिभूतरतिच्छविम्।
समर्प्य विधिना वृत्तं सर्वमेव न्यवेदयत् ॥५७॥

वहाँके राजा श्रीरोमपादजीने, अपनी छविसे रतिका तिरस्कार करने वाली अपनी राजकुमारी को, विधि पूर्वक ऋषिकुमारको समर्पण करके अपने यहाँ छल-पूर्वक बुलानेका समस्त वृत्तान्त उनको निवेदन किया ॥५७॥

तत्तातक्रोधभीतात्मा तस्य नाम प्रतिद्रुम्।
अङ्कयामास शान्त्यर्थमालयादाश्रमावधि ॥५८॥

पुनः ऋषि पुत्रके पिताके क्रोध भयसे उनके क्रोध शान्तिके लिये, अपने राजमहलसे उनके आश्रम-पर्यन्तके प्रत्येक वृक्षोंमें ऋषिकुमारका नामलिखवा दिया ॥ ५८ ॥

फलान्याहृत्य तेजस्वी समासाद्याश्रमं निजम्।
विलोक्यानात्मजं खिन्नः पुनर्दध्यौ विलम्ब्य सः ॥५९॥

वे तेजस्वी ऋषि, उधर जब फलोंको लेकर अपने आश्रममें लौटे तो, अपने पुत्रसे उसे सूना देखकर दुखी हो गये, पुनः कुछ देरके बाद कहीं भी पता न पाकर वे ध्यान करने लगे ॥५९॥

ध्यानयोगेन त दृष्ट्वा नृपागारे सभार्यकम्।
तूर्णमेवागमत्क्रुद्धः सकाशं तन्महीपतेः ॥६०॥

ध्यान योगके द्वारा अपने पुत्रको राजमहलमें पत्नी (राजकुमारी) के सहित देखकर, क्रुद्ध हो तत्क्षण उन राजाके पास चल दिये ॥ ६० ॥

पुत्रनामान्वितं देशं दृष्ट्वा श्रुत्वा शशाम ह।
तस्य कोपाग्निरात्मस्थः शान्तचित्तोऽभवत्ततः ॥६१॥

मार्ग में वृक्ष वृक्षपर अपने पुत्रका नाम देखकर और लोगोंसे भी अपने पुत्रका ही सर्वत्र राज्य श्रवण करके उनके हृदयकी क्रोधाग्नि शान्त होगयी, उसके शान्त हो जानेसे वे ऋषि भी शान्तचित्त हो गये अर्थात् शाप आदि देनेके लिये उनकी भावना ही मिट गयी ॥६१॥

प्रणम्य शिरसा राजा प्रत्युद्गमनपूर्वकम् ।
सभार्यमग्रतः कृत्वा तत्सुतं शरणं ययौ ॥६२॥

वे महाराज राजकुमारीके सहित ऋषिकुमारको आगे करके, महर्षिजीका स्वागत करनेके लिये आगे जाकर, तथा शिरके द्वारा उन्हें प्रणाम करके उनकी शरणमें हो गये ॥६२॥

त्राहि त्राहीति जल्पन्तं पतितं पादपद्मयोः ।
भूयसाऽभयदानेन महर्षिस्तमनन्दयत् ॥६३॥

चरणोंमें पड़कर हे नाथ ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये कहते हुये, उन राजाको महान् अभय-दानके द्वारा उन महर्षि (ऋषि कुमारके पिता) विभाण्डकजीने आनन्दित कर दिया ॥६३॥

इयमानन्दसन्दोहाः ! कथा हि परमाद्भुता ।
ऋषिपुत्रस्य विख्याता विनोदाय मयाऽऽदितः ॥६४॥

हे आनन्द-राशि, प्रियपुत्रो ! यह परम विख्यात आश्चर्यमयी कथा आप लोगोंके विनोदके लिये मैंने श्रवण कराई है ॥६४॥

भुज्यतां परया प्रीत्या भोजनं यद्धि रोचते।
न ह्येतद्भवतां योग्यं यद्यप्यस्ति कथञ्चन ॥६५॥

यद्यपि यह भोजन आप लोगोंके योग्य किसी प्रकार भी नहीं है, तथापि जो आप लोगोंको रुचे, वह परम प्रेम पूर्वक पा लीजिये ॥६५॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तं वचः श्रुत्वा तस्याः प्रणयपूर्वकम् ।
सर्व एवोचुरम्बेति तां सम्बोध्य मुदान्विताः ॥६६॥

श्रीसुदर्शनोवाच।

एवमुक्त्वा विशालाक्ष्यो दर्शयन्त्यश्च सादरम्।
विविधान्मोदकान्वरसास्तन्तुबद्धांश्च शाखिषु ॥५५॥

श्रीसुदर्शना अम्माजी बोलीं-हे वत्सो! इतना कहकर वे विशाललोचना (वेश्यायें) डालियोंमें तागोंसे बँधे हुये अनेक प्रकारके लड्डुओंको दिखलाती हुईं ॥५५॥

नावा स्वदेशमानिन्युश्छद्मना तमृषेः सुतम्।
ववर्ष भूरिपर्जन्यो यदर्थमयमुद्यमः ॥५६॥

छलसे उन ऋषि पुत्रको नौकाके द्वारा अपने देशको ले गयीं। ऋषि-पुत्रके उस देशमें पहुँचते ही बड़ी भारी वर्षा हुई, जिसके लिये ही ऋषिकुमारको लानेके लिये यह छल पूर्वक सब प्रयत्न किया गया था ॥५६॥

राजा दुहितरं तस्मै परिभूतरतिच्छविम्।
समर्प्य विधिना वृत्तं सर्वमेव न्यवेदयत् ॥५७॥

वहाँके राजा श्रीरोमपादजीने, अपनी छविसे रतिका तिरस्कार करने वाली अपनी राजकुमारी को, विधि पूर्वक ऋषिकुमारको समर्पण करके अपने यहाँ छल-पूर्वक बुलानेका समस्त वृत्तान्त उनको निवेदन किया ॥५७॥

तत्तातक्रोधभीतात्मा तस्य नाम प्रतिद्रुम्।
अङ्कयामास शान्त्यर्थमालयादाश्रमावधि ॥५८॥

पुनः ऋषि पुत्रके पिताके क्रोध भयसे उनके क्रोध शान्तिके लिये, अपने राजमहलसे उनके आश्रम-पर्यन्तके प्रत्येक वृक्षोंमें ऋषिकुमारका नामलिखवा दिया ॥ ५८ ॥

फलान्याहृत्य तेजस्वी समासाद्याश्रमं निजम्।
विलोक्यानात्मजं खिन्नः पुनर्दध्यौ विलम्ब्य सः ॥५९॥

वे तेजस्वी ऋषि, उधर जब फलोंको लेकर अपने आश्रममें लौटे तो, अपने पुत्रसे उसे शून्य देखकर दुखी हो गये, पुनः कुछ देरके बाद कहीं भी पता न पाकर वे ध्यान करने लगे ॥५९॥

ध्यानयोगेन तं दृष्ट्वा नृपागारे सभार्यकम्।
तूर्णमेवागमत्क्रुद्धः सकाशं तन्महीपतेः ॥६०॥

ध्यान योगके द्वारा अपने पुत्रको राजमहलमें पत्नी (राजकुमारी) के सहित देखकर, क्रुद्ध हो तत्क्षण उन राजाके पास चल दिये ॥ ६० ॥

पुत्रनामान्वितं देशं दृष्ट्वा श्रुत्वा शशाम ह।
तस्य कोपाग्निरात्मस्थः शान्तचित्तोऽभवत्ततः ॥६१॥

मार्ग में वृक्ष वृक्षपर अपने पुत्रका नाम देखकर और लोगोंसे भी अपने पुत्रका ही सर्वत्र राज्य श्रवण करके उनके हृदयकी क्रोधाग्नि शान्त होगयी, उसके शान्त हो जानेसे वे ऋषि भी शान्तचित्त हो गये अर्थात् शाप आदि देनेके लिये उनकी भावना ही मिट गयी ॥६१॥

प्रणम्य शिरसा राजा प्रत्युद्गमनपूर्वकम् ।
सभार्यमग्रतः कृत्वा तत्सुतं शरणं ययौ ॥६२॥

वे महाराज राजकुमारीके सहित ऋषिकुमारको आगे करके, महर्षिजीका स्वागत करनेके लिये आगे जाकर, तथा शिरके द्वारा उन्हें प्रणाम करके उनकी शरणमें हो गये ॥६२॥

त्राहि त्राहीति जल्पन्तं पतितं पादपद्मयोः ।
भूयसाऽभयदानेन महर्षिस्तमनन्दयत् ॥६३॥

चरणोंमें पड़कर हे नाथ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये कहते हुये, उन राजाको महान् अभय-दानके द्वारा उन महर्षि (ऋषि कुमारके पिता) विभाण्डकजीने आनन्दित कर दिया ॥६३॥

इयमानन्दसन्दोहाः ! कथा हि परमाद्भुता ।
ऋषिपुत्रस्य विख्याता विनोदाय मयाऽऽदितः ॥६४॥

हे आनन्द-राशि, प्रियपुत्रो ! यह परम विख्यात आश्चर्यमयी कथा आप लोगोंके विनोदके लिये मैंने श्रवण कराई है ॥६४॥

भुज्यतां परया प्रीत्या भोजनं यद्धि रोचते।
न ह्येतद्भवतां योग्यं यद्यप्यस्ति कथञ्चन ॥६५॥

यद्यपि यह भोजन आप लोगोंके योग्य किसी प्रकार भी नहीं है, तथापि जो आप-लोगोंको रुचे, वह परम प्रेम पूर्वक पा लीजिये ॥६५॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तं वचः श्रुत्वा तस्याः प्रणयपूर्वकम् ।
सर्व एवोत्तरम्बेति तां सम्बोध्य मुदान्विताः ॥६६॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती ! श्रीसुदर्शना अम्बाजीके कहे हुये, इस वचनको श्रवणकर के सभी (चारो) राजकुमार मुदित हो प्रणय पूर्वक बोले:-हे श्रीअम्बाजी ! ॥६६॥

श्रीराजकुमारा ऊचुः ।

यद्यदास्वाद्यते वस्तु दुस्त्यजं तद्धि जायते ।
न सूक्ष्मोऽप्यवकाशोऽस्ति ह्यश्नतामुदरेषु नः ॥६७॥

हम लोग जिस-जिस वस्तुका आस्वादन, करने लगते हैं, उस-उसको छोड़ना, अत्यन्त कठिन हो जाता है, परन्तु करें क्या ? भोजन करते हुये हम लोगोंके पेटमें किञ्चित् भी अवकाश (जगह) नहीं रह गया है ॥६७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

चिरञ्जीवत भो वत्साः सुखिनो वाक्यकोविदाः ।
मयि चेद्भवतां प्रीतिर्ग्रास एकोऽपि भुज्यताम् ॥६८॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे वाक्यकोविद (बोलनेमें चतुर) वत्सो ! आप लोग सदा सुखी रहते हुये अनन्तकाल तक जीवनको प्राप्त हों, यदि मेरे प्रति आपलोगों का प्रेम है तो, एक ग्रास अवश्य और पा लीजिये ॥६८॥

श्रीशिव वाच ।

इत्युक्तास्ते तथा चक्रुरादरेणादरप्रियाः ।
सूनवो राजराजस्य विनीता मधुरस्मिताः ॥६९॥

भगवान् शिवजी बोले-हे पार्वती ! इस प्रकार श्रीसुनयना अम्बाजीके आदर पूर्वक कहने पर आदर-प्रिय ये चारो विनीत, मधुर मुस्कान, श्रीचक्रवर्तीकुमारोंने एक २ ग्रास और पाया ॥६९॥

ततः सर्वाः क्रमात्प्रीत्या प्रणयोत्फुल्ललोचनाः ।
कुमारांस्तर्पयामासुर्ग्रासेनैकेन भूपतेः ॥७०॥

उसके बाद प्रणयसे खिले हुये नेत्रवाली सभी मातायें क्रमशः एक २ ग्रास पवा-पवाकर उन राजकुमारोंको तृप्त करती हुईं ॥७०॥

प्रदाय पुनराचम्यं ददौ ताम्बूलवीटिकाः ।
राज्ञी सुनयना तेभ्यः पाययित्वाऽमृतं पयः ॥७१॥

उन्हें श्रीसुनयना अम्बाजी दूध पिलाकर पुनः आचमन प्रदान करके, पानकी खिल्ली (बीरा) प्रदान करती हुईं ॥ ७१ ॥

पुनः सिंहासनस्थांस्तान् महामाधुर्यमण्डितान् ।
स्वयं नीराजयामास मुखचन्द्रार्पितेक्षणा ॥७२॥

पुनः सिंहासन पर विराजमान हुये, महामाधुर्य युक्त उन राजकुमारोंकी आरती, उनके मुखचन्द्रपर दृष्टि दिये हुई श्रीसुनयना अम्बाजी स्वयं करती हुईं ॥७२॥

आससाद तदोर्वीशो द्रष्टुमिच्छन्नृपात्मजान् ।
परीतो बन्धुभिस्तत्र सताम्बूलमुखाम्बुजः ॥७३॥

उसी समय श्रीमिथिलेशजी महाराज राजकुमारोंके दर्शनकी इच्छासे अपने भाइयोंके सहित पानका बीरा पाते हुये वहाँ आये ॥ ७३ ॥

तं दाशरथयो नत्वा समुत्थाय नृपर्षभम् ।
प्रणेमुः सादरं सर्वान् राज्ञा साकमुपागतान् ॥७४॥

उन नृपश्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजको उठाकर वे चारो श्रीदशरथकुमारोंने प्रणाम करके उनके साथमें आये हुये सभी लोगोंको प्रणाम किया ॥७४॥

तैः समालिङ्ग्य ते भूयः प्रेपिताः स्वापमन्दिरम् ।
संवेशाय महाराज्ञ्या शीतलानिलपूरिते ॥७५॥

उन सबोंने बारं बार हृदयसे लगाकर चारो भाइयोंको शयन करनेके लिये महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीके साथ, शीतल वायुसे पूर्ण, शयन-भवनमें भेजा ॥७५॥

तत्रास्वपन्पद्मपलाशनेत्राः श्रीहंसवंशाम्बुजवृन्दहंसाः ।
नीलाश्महेमद्युतिकान्तवर्णास्तल्पे पयःफेननिभांशुकाढ्ये ॥७६॥

इति षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४६॥

—ः मासपारायण विश्राम १२ ः—

उस शयन भवन में दूधके फेनके सदृश कोमल व उज्ज्वल बिछावन युक्त पलङ्गपर नीलमणि तथा सुवर्णमणिके प्रकाशके समान सुन्दर श्याम गौर वर्ण, सूर्यवंश रूपी कमल समूहको प्रफुल्लित करनेके लिये भगवान् सूर्यके समान, वे श्रीकमलदललोचन चारो राजकुमारोंने शयन किया ॥

अथ सप्तचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ॥४७॥

स्यमन्तक भवनकी छतपर विराजमान हुये श्रीचक्रवर्ती कुमारोंके पूछनेपर श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा अपने नगरके २४ वन व पर्वतोंके सहित प्रत्येक आवरणके निवासियोंके महलोंका परिचय कराना।

श्रीशिव उवाच।

अपराह्णे मुदा राज्ञी कुमारान् विगतालसान्।
समादायालिभिः प्रायात्कमलां स्नानहेतवे ॥१॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये! तीसरे पहर रानी श्रीसुनयना अम्बाजी आलस रहित राज कुमारोंको लेकर स्नान करनेके लिये अपनी सखियोंके सहित श्रीकमलाजी पधारीं ॥१॥

तस्यां स्नात्वा चिरं साऽपि स्नापयन्ती रघूद्वहान्।
तैरुपेता वयस्याभी रराज समलङ्कृता ॥ २ ॥

उन श्रीकमलाजीमें रघुकुलमें श्रेष्ठ चारों भइयोंको विशेष देर तक स्नान करातीं हुईं श्रीसुनयना अम्बाजी स्वयं स्नान करके, अपनी सखियोंके द्वारा राजपुत्रोंके सहित, पूर्ण शृङ्गार युक्त हो सुशोभित हुईं ॥ २ ॥

विधायारामसदने सुतामुत्सङ्गगां पुनः।
जग्ध्वा फलानि काकुत्स्थैर्ययौ स्यामन्तकालयम् ॥३॥

पुनः बागके भवनमें फल भोजन करके अपनी श्रीललीजीको गोदमें लेकर ककुत्स्थ वंशी उन चारों भाइयोंके सहित वे स्यमन्तकभवनमें पधारीं ॥ ३ ॥

मुख्यया तन्निकेतस्य सत्कृता चारु पद्मया।
राजपुत्रैः समं नीता चौममत्युचकं परम् ॥४॥

वहाँकी मुख्य सखी श्रीपद्माजी, उचित सत्कारकी हुई श्रीअम्बाजीको राजपुत्रोंके सहित स्यमन्तक-भवनकी अत्यन्त ऊँची छत पर ले गयीं ॥ ४ ॥

तत्र सिंहासने रम्ये तप्तचामीकरप्रभे।
निवेशिता महाराज्ञ्या कुमारास्तामथाब्रुवन् ॥५॥

वहाँ श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा तपाये सुवर्णके सदृश प्रकाशमय सुन्दर सिंहासन पर विराजमान किये गये, वे राजकुमार बोले ॥ ५ ॥

राजकुमारा ऊचुः।

य एते परिदृश्यन्ते चतुर्दिक्षु धराधराः।
नामभिः कैस्त उच्यन्ते ब्रूहि तन्नो वनैर्युताः ॥६॥

हे अम्ब ! चारो दिशाओंमें जो ये पहाड़ दिखलाई दे रहे हैं, वे वनोंके सहित किस नामसे पुकारे जाते हैं ? सो आप हमसे कहें ॥ ६ ॥

श्रीसुनयनोवाच ।

श्रूयतामीप्सितं यद्वो वदन्त्या मम साम्प्रतम् ।
सावधानात्मना पुत्राः ! पद्मपत्रविलोचनाः ! ॥७॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं–हे कमलदललोचन पुत्रो ! मेरे कहते हुये अपना अभिलषित-विषय आप लोग सावधान चित्तसे श्रवण कीजिये ॥ ७ ॥

सन्तानाशोकयोर्मध्ये पटीरविपिने शुभे ।
विद्रुमाद्रिरयं वत्साः ! पूर्वस्यां विद्रुमप्रभः ॥८॥

हे वत्सो ! सन्तान व अशोक वनके बीच, चन्दन वनमें विद्रुमणिके समान प्रकाश वाला, पूर्व दिशामें यह विद्रुमणि, नामका पर्वत है ॥ ८ ॥

बिल्वाम्रवनयोर्मध्ये वने पुन्नागसञ्ज्ञके ।
वडूर्याद्रिरयं ख्यातो वैडूर्यमणिकान्तिमान् ॥९॥

बेल और आम्र वनके बीच, पुन्नाग नामक वनमें वैडूर्यमणिके समान कान्तिसे युक्त इस पर्वत को वैडूर्याद्रि, कहा जाता है । ९ ॥

अयं नीलाचलो याम्यां सश्रीवृन्दावने शुभे ।
समानो नीलमणिना मध्ये प्लक्षार्जुनाख्ययोः ॥१०॥

दक्षिण दिशामें प्लक्ष और अर्जुन वनके मध्य, श्रीवृन्दावनमें यह नीलमणिके समान प्रकाशमान नीलाचल, नामका पर्वत है ॥ १० ॥

रजताद्रिरयं मध्ये वकुलाख्यपलाशयोः ।
कदम्बविपिने भाति रौप्याख्यमणिनिर्मितः ॥११॥

मौलसरी और पलाश वन के बीच कदम्ब वनमें चाँदीसे बना हुआ यह रजताद्रि नामका पहाड़ है ॥ ११ ॥

पारिजातोत्तरे भागे मालतीवनदक्षिणे ।
श्रीमृङ्गाराचलो नीलः शृङ्गारविपिने त्वयम् ॥१२॥

पारिजात वनके उत्तर और मालती वनके दक्षिण भागमें श्रीशृङ्गार वनमें नीलमणि का बना हुआ यह शृङ्गाराद्रि, नामका पहाड़ है ॥१२॥

मधुनाम्नि वसन्ताद्रिर्वने कार्तस्वरप्रभः ।
प्रतीच्यां भ्राजते मध्ये केतकीमाधवीकयोः ॥१३॥

पश्चिम दिशामें केतकी और माधवीक वनके मध्यवाले मधुवनमें, तपाये सुवर्णके समान प्रकाशमान यह वसन्ताद्रि, नामका पहाड़ चमक रहा है ॥ १३ ॥

सञ्जीवनगिरिस्त्वेष कोविदारतमालयोः ।
सुरम्ये काञ्चनारण्ये चन्द्रकान्तमयोज्ज्वलः ॥१४॥

तमाल और कोविदार (कचनार) वनके मध्यवाले श्रीकाञ्चनवनमें, चन्द्रकान्त मणिके सदृश अत्यन्त रमणीय उज्ज्वल प्रकाश मय, यह सञ्जीवनाद्रि, नाम पहाड़ है ॥ १४ ॥

अश्वत्थवटयोर्मध्ये पद्माद्रिर्दिशि चोत्तरे ।
पद्मारण्ये विभात्येष पद्मरागमणिप्रभः ॥१५॥

पीपल और बरगद वनके मध्य वाले पद्मवनमें, पद्मराग मणिके सदृश प्रकाशमान उत्तर दिशामें यह पद्माद्रि, नामका पहाड़ सुशोभित है ॥ १५ ॥

भवद्भिः काङ्क्षितं यत्तन्मया संपृष्टयोदितम् ।
चिरञ्जीवत भो वत्साः ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥१६॥

हे वत्सो ! आप लोग अनन्त काल तक जीवें। आप लोगोंने जो कुछ जाननेकी इच्छाकी, पूछने पर मैंने वह सब वर्णन किया। अब आप लोग क्या श्रवण करना चाहते हैं ॥१६॥

श्रीराम उवाच।

नगरावरणं त्वेतद् रङ्गोद्यानसमावृतम् ।
यद्भवत्योदितं वाह्यमिदानीं परिपृष्टया ॥१७॥

श्रीरामजी बोले :-हे श्रीअम्बाजी ! मेरे पूछने पर आपने जिस आवरणका वर्णन किया है वह रङ्गोद्यान (विहार वाटिकाओं) से घिरा हुआ नगरका बाहरी आवरण है ॥१७॥

के कस्मिन्निवसन्त्यत्र मातरावरणे शुभे ।
इति विज्ञातुमिच्छामि सप्तावरणवासिनाम् ॥१८॥

अम्ब ! यहाँ इस श्रीजनकपुरीमें सातों आवरण निवासियोंमें कौन किस आवरणमें करते हैं ? यह मैं जानना चाहता हूँ ॥१८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

अत्रादौ सैनिकानां च निवासः प्रथमावृतौ ।
सान्त्यजानां सशूद्राणां निवासः क्रमतोऽनघ ! ॥१९॥

ीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे वत्स ! यहाँ प्रथम आवरणमें अन्त्यज (चाण्डल, भङ्गी आदि) वियोंके सहित सैनिकोंका क्रम पूर्वक निवास है ॥१९॥

अस्मिन् पूर्वे गणेशस्तु दक्षिणे गिरिनन्दिनी ।
उत्तरे श्रीरमादेवी पश्चिमे श्रीसरस्वती ॥२०॥

सी प्रथमआवरणमें पूर्वकी ओर श्रीगणेशजी, दक्षिणमें श्रीराजकुमारीजी, पश्चिममें तीजी, उत्तरमें श्रीरमा (लक्ष्मीजी) ॥२०॥

वाटिकास्वतिरम्यासु तत्तन्नाम्ना श्रुतासु च ।
राजन्ते देव्य एवैताः स्फाटिकावरणे शुभे ॥२१॥

न्हीं-उन्हीं नामोंसे विख्यात, परम सुन्दर वाटिकाओंमें ये देवियाँ, स्फटिक नामके आवरणमें रही हैं अर्थात् यह स्फटिक आवरण है ये देव देवियाँ अपने ही नामसे प्रसिद्ध वाटिकाओंमें न हैं ॥२१॥

वैश्यादीनां द्वितीये तु संवासोऽत्र तथैव च ।
गोवाजिनागमहिषीशस्त्रास्त्रगृहपङ्क्तयः ॥२२॥
सुन्दरं सदनं प्रोक्तं पूर्वेऽस्मिन्दक्षिणे तथा ।
सौमनं सदनं त्वेवं पश्चिमे सौफलालयः ॥२३॥
सौरभं सदनं नाम राजते दिशि चोत्तरे ।
नीलाश्मनिर्मिते दुर्गे द्वितीयावरणेऽनघ ! ॥२४॥

: अनघ ! इस नीलमणि निर्मित दूसरे आवरणमें वैश्यादिओं का निवास है तथा गौशाला, ला, गजशाला, महिषी (भैंस) शाला, शस्त्रास्त्र शालाओं की पङ्क्तियाँ हैं । इसमें पूर्वकी न्दर-सदन, दक्षिणमें सौमन-सदन (फूलोंका महल) पश्चिममें सौफल (फलोंका महल) में सौरभ, सदन (समस्त सुगन्धियों वाला महल) है ॥२२॥२३॥२४॥

तृतीये क्षत्रियाणां च निवासागारराजयः ।
चतुर्दिक्षु विराजन्ते वज्रास्यमणिशोभिते ॥२५॥

वज्रमणिसे सुशोभित, तीसरे आवरणमें क्षत्रियोंके निवास-महलोंकी पंक्तियाँ सुशोभित हैं ॥२५॥

चतुर्थे ब्राह्मणावासाः सर्वकालसुखावहाः ।
विद्यालयाश्च शोभन्ते वंशच्छदमणिप्रभे ॥२६॥

चौथे वंशच्छद (बांसकी पत्तीके समान हरित) मणिके सदृश प्रकाशमान आवरणमें सब समय सुखदायक ब्राह्मणोंके महल और विद्यालय शोभा दे रहे हैं ॥२६॥

शतानन्दो महातेजा आचार्यो निमिवंशिनाम् ।
ऐशान्यां शिष्यवर्गैश्च वसत्यत्र कृतालयः ॥२७॥

इसमें निमि वंशियोंके आचार्य, महान् तेजस्वी श्रीशतानन्दजी महाराज, अपने शिष्यवर्गोंके सहित पूर्व-उत्तर कोणमें निवास कर रहे हैं ॥२७॥

आगन्तुकमहीपानां निवासाय गृहाणि च ।
विशालानि कृतान्यस्मिन् पश्चिमे हेमनिर्मिते ॥२८॥

इस सुवर्णमय पाँचवें आवरणमें, बाहरसे आने वाले राजाओंके विशाल-भवन हैं ॥२८॥

षष्ठे तु मन्त्रिणां वासः प्रवालमणि शोभिते ।
तथैवान्यगृहाणि स्युः परेषां कर्मचारिणाम् ॥२९॥

प्रवाल (मूंगा) मणियोंसे सुशोभित छठे आवरणमें मन्त्रियोंके तथा अन्य कर्मचारियोंके महल हैं ॥२९॥

अस्मिन्पूर्वे विराजेते जयमानसुदर्शनौ ।
विष्वक्सेनः सुदामा च राजेते दिशि दक्षिणे ॥३०॥

इस आवरणमें पूर्वकी ओर मन्त्री श्रीजयमान व श्रीसुदर्शनजी, दक्षिणमें श्रीविष्वक्सेनजी व श्रीसुदामाजी विराजते हैं ॥३०॥

सुनीलश्च विधिज्ञश्च पश्चिमायां दिशि स्थितौ ।
उत्तरे परिराजेते सुमतः सन्धिवेदनः ॥३१॥

श्रीसुनीलजी व श्रीविधिज्ञजी, पश्चिम दिशामें उत्तरमें श्रीसुगतजी तथा दक्षिणमें श्रीसन्धिवेदन मन्त्रीजी विराजते हैं ॥३१॥

सप्तमे निमिवंश्यानां पद्मरागमणिप्रभे ।
सन्ति हर्म्याणि रम्याणि भ्रातॄणां मिथिलेशितुः ॥३२॥

पद्मराग मणिके प्रकाश वाले इस सातवें आवरणमें निमिवंशियों और श्रीमिथिलेशजी महाराज के भाइयोंके मनोहर महल हैं ॥३२॥

शत्रुजिच्च यशः शाली दिशि पूर्वे कृतालयौ ।
पश्चिमे परिराजेते चन्द्रभानुबलाकरौ ॥३३॥

इसमें पूर्वकी ओर श्रीशत्रुजित्‌जी व श्रीयशःशालीजी, पश्चिमकी ओर श्रीचन्द्रभानुजी व श्रीबलाकारजीके महल हैं ॥३३॥

राजा यशध्वजो वीरध्वजश्च रिपुतापनः ।
हंसध्वजो महातेजा केकिध्वज उदारधीः ॥३४॥

श्रीयशध्वजजी, श्रीवीरध्वजजी, श्रीरिपुतापनजी, श्रीहंसध्वजजी, श्रीकेकिध्वजजी ॥३४॥

पञ्चैते दक्षिणे भागे सप्तमावरणस्य तु ।
भ्रातरः सुविराजन्ते कृतपुण्या मनोहर ! ॥३५॥

हे श्रीमनहरणजी ! सातवें आवरणके दक्षिण भागमें, ये पुण्यशाली पाँचों भाई विराजते हैं ॥३५॥

तेजः शाली महाभागस्तथा श्रीविजयध्वजः ।
राजारिमर्दनश्चापि तथैव श्रीप्रतापनः ॥३६॥

श्रीतेजःशालीजी, श्रीअरिमर्दनजी, श्रीविजयध्वजजी तथा श्रीप्रतापनजी ॥३६॥

श्रीमहीमङ्गलश्चैव राजते भाग उत्तरे ।
एष क्रमो मया प्रोक्तः क्षितीशानुजसद्मनाम् ॥३७॥

और उत्तर दिशामें श्रीमहीमङ्गलजी विराजते हैं । यह श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंके महलोंका क्रम, मैंने वर्णन किया है ॥३७॥

अथास्य मन्निकेतस्य सप्तावरणवासिनाम् ।
विज्ञापनं क्रमादेव शृणु भानुमणिद्युतेः ॥३८॥

इसके पश्चात् सूर्यमणिकी कान्ति वाले मेरे इस महलके सातों आवरणके निवासियोंका विज्ञापन अब आप क्रम पूर्वक श्रवण कीजिये ॥३८॥

महारथप्रधानानां द्वाःस्थानां प्रथमावृतौ ।
निवासः कल्पितो राज्ञा तेषां नामानि मे शृणु ॥३९॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने, प्रथम आवरणम श्रेष्ठ महारथियोंका निवास निश्चित किया है, उनके नामोंको श्रवण कीजिये:–॥३९॥

प्रज्ञकः प्राज्ञको धीरो धराधार्मिक एव च ।
पूर्वद्वाःस्थाधिपतय इमे तु मम सद्मनः ॥४०॥

प्रज्ञक, प्राज्ञक, धीर, धराधार्मिकजी ये चार हमारे महलके पूर्वद्वारपालोंके स्वामी हैं ॥४०॥

दक्षिणे प्रकरः प्राशी नवानीकस्तु शीलकः ।
पश्चिमे भद्रको भव्यो भानुर्भाद्रिक एव च ॥४१॥

दक्षिण द्वारपालों पर नियमन करने वाले प्रकर, प्राशी, नवानीक, शीलकजी हैं और पश्चिमके भद्रक, भव्य, भानु, भाद्रकजी द्वारपालोंके शासक ह ॥४१॥

उत्तरे उद्वलश्चैव तथैव च घनाघनः ।
मेऽन्तः पुरस्य द्वाःस्थेशा वलायत्तावलोत्तरौ ॥ ४२ ॥

मेरे महलके उत्तर द्वारपालोंके नियामक श्रीउद्वल, घनाघन, अवलोत्तर, वलायत्तजी, ये चार हैं ॥ ४२ ॥

दासा अपि नृदेवस्य चतुर्दिक्षु कृतालयाः ।
प्रथमावरणे नित्यं निवसन्ति मुदान्विताः ॥४३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके दासवृन्द भी इसी प्रथम आवरणमें, आनन्दपूर्वक महलोंमें चारो ओर निवास करते हैं ॥ ४३ ॥

प्राक्केतकीवनं प्रोक्तं दक्षिणे चाम्पकं वनम् ।
पश्चिमे मालतीसञ्ज्ञमुत्तरे यूथिकावनम् ॥४४॥

इस आवरणमें पूर्वकी ओर केतकी-वन, दक्षिणमें चम्पक वन, पश्चिममें मालतीवन उत्तरमें जूहीका वन है ॥ ४४ ॥

विषहरोत्तरे चैव केतकीवनदक्षिणे ।
महालक्ष्म्यालयो ज्ञेयो मनोज्ञः पुण्यदर्शनः ॥४५॥

बिषहर-सरके उत्तरमें और केतकी वनके दक्षिणमें मनोहर पुण्यमय दर्शन वाला यह महालक्ष्मीजीका मन्दिर जानिये ॥ ४५ ॥

श्रीचम्पकवनात्पूर्वे विख्यातं मुरलीसरः ।
मालत्या उत्तरे वह्नेर्दक्षिणे द्रुमसङ्कुलः ॥४६॥
एष यो दृश्यते वत्स ! पश्चिमे निमिवंशिनाम् ।
स विशालः कुमारीणां महाविद्यालयः स्मृतः ॥४७॥

हे वत्स ! श्रीचम्पक-वनसे पूर्वमें मुरलीसर विख्यात है और मालती-वनके उत्तर व अग्नि कुण्डके दक्षिणमें पश्चिमकी ओर जो द्रुमोंसे परिपूर्ण यह महल दिखलाई देता है वह निमिवंशी कुमारियोंका महाविद्यालय है ॥४६॥४७॥

रत्नसागरतः पूर्वे विख्यातं यूथिकावनम् ।
निकुञ्जैश्च सरोभिश्च शोभमानमनुत्तमम् ॥४८॥

रत्नसागरसे पूर्वमें निकुञ्ज व सरोवरोंसे शोभायमान जूहीका विख्यात उत्तम वन है ॥४८॥

द्वितीये द्वाःस्थका वृद्धाः सर्वविद्याविशारदाः ।
तस्मिन् नृदेवकन्यानां विहारागारपङ्क्तयः ॥४९॥

दूसरे आवरणमें सभी विद्याओंके जानने वाले वृद्ध द्वारपाल विराजते हैं, उसमें राजकुमारियों के विहार करने (खेलने) योग्य भवनोंकी पङ्क्तियाँ बनी हुई हैं ॥४९॥

गङ्गासागर एवास्मिन् पूर्वके मुख्यकं सरः ।
पश्चिमे श्रीविहाराख्यं सर्वचित्तहरं सरः ॥५०॥

इसमें पूर्वकी ओर गङ्गासागर नामका मुख्य सरोवर है, पश्चिममें सभीके चित्तको हरण करने वाला विहार कुण्ड नामका सरोवर है ॥५०॥

अस्ति मोदस्वागारं श्रीगङ्गासागरोत्तरे ।
कुञ्जो ललितकेलिश्च कोणे दक्षिणपूर्वके ॥५१॥

इसमें गङ्गासागरके उत्तरमें मोदस्वागार और दक्षिण पूर्वके कोणमें ललितकेलिकुञ्ज है ॥५१॥

विहारसरसो दक्षे प्रावृट् कुञ्जस्तथोच्यते ।
निदाघाख्यो निकुञ्जश्च वायव्यां परिकीर्त्तितः ॥५२॥

विहार सरसे दाहिनी ओर प्रावृट् (वर्षाऋतुकी) कुञ्ज कही जाती है और विहार सरके उत्तर-पश्चिम कोणमें निदाघ (ग्रीष्मऋतुकी) कुञ्ज कही जाती है ॥५२॥

तृतीयो बालकेर्युक्तो द्वाःस्थकैः कामविग्रहैः ।
सेविकानां निवासाय मम पुत्र ! प्रकल्पितः ॥५३॥

तीसरे आवरणमें कामदेवके समान सुन्दर-शरीर वाले बालक लोग, द्वारपाली करते हैं। हे पुत्र ! यह आवरण, मेरी दासियोंके निवासके लिये माना गया है ॥५३॥

तत्पूर्वे तु महाशम्भोर्धनुरत्रावतिष्ठते ।
दक्षे मारकतं वेश्म पश्चिमे स्फटिकालयः ॥५४॥

इस आवरणमें पूर्वकी ओर भगवान् शिवजीका धनुष रक्खा है। दक्षिणकी ओर मरकत-भवन तथा पश्चिममें स्फटिक भवन है ॥५४॥

उत्तरे हाटकाख्यश्च स्यमन्ताख्योऽप्यमालयः ।
पूर्वे मरकतागाराद्वसनागार उच्यते ॥५५॥

उत्तरमें हाटक नामका यह महल है और यह पूर्वकी ओर स्यमन्तक नामक भवन है। तथा मरकत भवनके पूर्वके इस महलको वस्त्रागार कहते हैं ॥ ५५ ॥

स्फटिकागारतो दक्षे क्रीडोपकरणालयः ।
पूर्वे श्रीहाटकागारान्मुकुराख्यं निवेशनम् ॥५६॥
चतुर्थे योषितो वृद्धा द्वाःस्थका वामलोचनाः ।
अनेकविद्या कुशला रत्नवेत्रधराः स्थिताः ॥५७॥

स्फटिक-भवनसे दक्षिणमें क्रीडोपकरण (खेलने की वस्तुओं का) महल है, हाटक भवनसे पूर्वमें ग्यारहखण्ड ऊँचा विचित्र रचनासे युक्त यह मुकुर (शीशा) नामका महल है यह तीसरा आवरण हुआ, अब चौथेको कहती हूँ ॥५६॥

चौथे आवरणमें अनेक विद्याओंको जानने वाली, सोनेका बेंत हाथमें लिये हुई वृद्ध स्त्रियाँ द्वारपालिका हैं ॥५७॥

नृत्यशाला तथैवास्मिन् स्यमन्तात् किल पश्चिमे ।
नववादित्रशालेयमुत्तरे वस्त्रवेश्मनः ॥ ५८ ॥

तथा इसमें स्यमन्तक-भवनसे पश्चिममें नृत्यशाला और वस्त्रशालासे उत्तरमें वादित्रशाला है ५८

देवशाला तथा पूर्वे क्रीडोपकरणालयात् ।
दक्षिणेऽदृश्यशाला च विज्ञेया हाटकालयात् ॥५९॥

क्रीडोपकरणागारके पूर्वमें देवशाला है, तथा हाटक भवनसे दक्षिणमें अदृश्यशाला जानिये ५९

तत्पश्चिमे युवत्यश्च द्वाःस्थरूपधराः स्थिताः ।
अनेकशिल्पकुशलास्तथैवास्मिन् स्त्रियो वराः ॥६०॥

महलके पाँचवें आवरणमें, अनेक प्रकारकी शिल्पकारी जानने वाली, द्वारपालिकाका रूप धारण किये हुई युवा अवस्था वाली श्रेष्ठ स्त्रियाँ निवास करती हैं ॥६०॥

पूर्वेऽस्मिन् यन्त्रशाला च चित्रशाला तु दक्षिणे ।
पश्चिमे रत्नशाला च सत्रशाला तथोत्तरे ॥६१॥

इसमें पूर्वकी ओर यन्त्रशाला, दक्षिणकी ओर चित्रशाला, पश्चिमकी ओर रत्नशाला और उत्तरकी ओर सत्र (यज्ञ) शाला है ॥६१॥

पश्चिमे नृत्यशालायाः सभागारात्तु पूर्वके ।
मौक्तिकागारमाख्यातं लोकखण्डसमुच्छ्रितम् ॥६२॥

नृत्यशालासे पश्चिम और सभाभवनसे पूर्वमें १४ खण्ड ऊँचा मौक्तिकागार (मोतीमहल) विख्यात है ।६२॥

षष्ठे तु सन्ति मैथिल्यो वयस्या द्वाःस्थकाः शुभाः ।
अथागाराणि यान्यस्मिञ्छंसन्त्याः शृणु तानि मे ॥६३॥

छठे आवरणमें द्वार रक्षिका मिथिलाजीकी सखियाँ हैं । हे वत्स ! इस आवरणमें जो महल हैं, उन्हें मेरे कहनेके अनुसार, श्रवण कीजिये ॥६३॥

महानसाख्यमाग्नेये नैर्ऋत्यां कोपमन्दिरम् ।
वायव्ये तु गृहारामः सभैशान्यां प्रकीर्तिता ॥६४॥

पूर्वदक्षिणकोणमें महानस, (भोजनभवन) दक्षिण पश्चिममें कोपागार, (सजानागृह) पश्चिम-उत्तर में गृहाराम तथा उत्तर पूर्वकोणमें सभाभवन है ॥६४॥

कौशलादुत्तरे गेहाद्यथोपाशनमन्दिरम् ।
दन्तधावनतो दक्षे दिवास्वापनिकेतनम् ॥६५॥

कौशलभवनसे उत्तरमें जैसे उपाशन (कलेऊ) भवन है, उसी प्रकार दन्तधावन सदनसे दक्षिणमें दिवास्वापनिकेतन (दिनमें विश्राम करनेका महल) है ॥६५॥

सप्तमे द्वाःस्थकाः सख्यो नैकाश्यः पद्मलोचनाः ।
ता एवास्मिंश्चतुर्दिक्षु निवसन्ति कृतालयाः ॥६६॥

सातवें आवरणमें विकाशापुष्पोंकी कमल-लोचन सखियाँ द्वारपालिका हैं और वे चारों ओर महलोंमें निवास करती हैं ॥६६॥

पूर्वेऽस्मिन् स्वस्तिकागारं दक्षिणे दन्तधावनम् ।
पश्चिमे मज्जनागारमुत्तरे मण्डनालयः ॥६७॥

इसमें पूर्वकी ओर स्वस्तिक (मङ्गल) भवन, दक्षिणमें दन्तधावन, पश्चिममें मज्जन (स्नान) तथा उत्तरमें मण्डन (शृङ्गार) भवन है ॥६७॥

स्वस्तिकादुत्तरे भाति कौतुकागारमद्भुतम् ।
दन्तधावनतः पूर्वं कृत्रिमागारमुच्यते ॥६८॥

स्वस्तिकभवनसे उत्तरमें अद्भुत कौतुकभवन है और दन्तधावनसे पूर्वमें कृत्रिमागार कहा जाता है ॥ ६८ ॥

मज्जनाद्दक्षिणे गेहात्कुड्मलाख्यनिकेतनम् ।
मण्डनात्पश्चिमे ज्ञेयं कौशलाख्यनिवेशनम् ॥६९॥

स्नानभवनसे दक्षिणमें कुड्मल सदन और शृङ्गार भवनसे पश्चिममें कौशल नामक महल जानना चाहिये ॥ ६९ ॥

मध्ये मन्द्रयनागारं षोडशावरणोज्झितम् ।
विहितो यत्र ते स्वापो रजन्यां वत्स ! बन्धुभिः ॥७०॥

हे वत्स ! मध्यमें सोलह खण्ड ऊँचा मेरा शयन भवन है, जिसमें अपने भाइयोंके सहित आपने, रात्रिमें शयन किया था ॥ ७० ॥

यद्धि जिज्ञासितं पुत्र ! त्वया तद्वर्णितं मया ।
स्नेहात्त्वत्प्रीतयेऽनेकजन्मप्रोदितपुण्यया ॥७१॥

हे पुत्र ! आपने मुझसे जो कुछ विशेष जाननेकी इच्छा की, उसे अनेक जन्मोंके पूर्णरूप से उदय हुये पुण्यवाली मैंने स्नेहवश, आपकी प्रीति (प्रसन्नता) के लिये वर्णन किया ॥ ७१ ॥

चेत्त्वत्प्रीतिकरी प्राप्तमुखराकेशदर्शना ।
न काङ्क्षे जगतां वत्स ! प्रभुत्वं गतकण्टकम् ॥७२॥

हे वत्स ! यदि आपके मुखचन्द्र दर्शनकी प्राप्ति-पूर्वक मुझसे आपकी प्रसन्नताका साधन बनता रहे, तो मुझे त्रिलोकीकी निष्कण्टक प्रभुता भी नहीं चाहिये ॥७२॥

निशाशनस्य वेलेयं गच्छ वत्स ! मया सह ।
भ्रातृभिर्नेतुमायाते वयस्ये मोहनेक्षण ! ॥७३॥

इति सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४७॥

हे मोहनदर्शन वत्स ! यह ब्यारू करनेकी वेला उपस्थित हो गयी है, अत एव अब आप मेरे सहित ब्यारूभवन पधारिये । देखिये वहाँसे ले जानेके लिये दो सखियाँ भी आगयी हैं ॥७३॥

अथाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

ब्यारू-सदनके द्वितीय खण्डमें अपनी देवरानियोंके साथ विराजमान होकर सामने नीचे वाले खण्डमें श्रीमिथिलेशजी महाराजके साथ भोजन करते हुये सानुज श्रीरामभद्रजूकी छविको अवलोकन करकेश्रीसुनयना अम्बाजीका अपनी श्रीललीजीसे उनका सादृश्य वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

तथेत्युक्त्वा महाराज्ञीं रामो राजीवलोचनः ।
आसाद्य भूतलं चौमाद्भोजनायागमत्तया ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले :–हे प्रिये ! राजीव (कमल) लोचन श्रीरामभद्रजी महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जीसे ऐसा ही हो, कहकर, अटारीसे भूमितलमें आकर, ब्यारू करनेके लिये उनके सहित (ब्यारू भवन) जाती हुई ॥१॥

चत्वारस्ते समं राज्या स्वागतेनाभिनन्द्य च ।
सिंहासने समासीनाः कान्त्या नीराजिता मुदा ॥२॥

ब्यारूभवनकी सखी श्रीकान्तिजीने स्वागतके द्वारा अभिनन्दित करके रानी श्रीसुनयना अम्बा-जीके सहित चारो भाइयोंको सिंहासन पर बैठाकर उनकी आनन्द पूर्वक आरती उतारी ।२।

तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्तो मिथिलेन्द्रोऽनुजैर्वृतः ।
दत्ताशीः सादरं राजा प्रेयसस्तानलालयत् ॥३॥

उसी क्षण अपने भाइयोंसे घिरे हुये श्रीमिथिलेशजी वहाँ आपधारे । उन्हे चारो भाइयों ने प्रणाम किया । वे उन परम प्यारोंको आशीर्वाद देकर उनका दुलार करने लगे ॥३॥

भोजनाय पुना राजा प्रार्थितो गृहमुख्यया ।
उवाच मधुरं वाक्यं राघवं प्रति सादरम् ॥४॥

पुनः ब्यारूभवनकी मुख्य सखी श्रीशान्तिजीके द्वारा प्रार्थना करनेपर वे श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीरामभद्रजूसे भोजन करनेके लिये यह मधुर वचन आदर पूर्वक बोले॥ ॥४॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

वत्स ! राम ! समुत्तिष्ठ भोजनं क्रियतां त्वया ।
प्राणप्रियतरैः सार्कं स्वानुजैर्ममसन्निधौ ॥५॥

हे श्रीरामवत्सजू ! अब उठिये और प्राणोंके समान परम प्रिय बन्धुओंके सहित, मेरे समीपमें भोजन कीजिये ॥५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तः समुत्थायाशनशालामुपागमत् ।
स क्षालिताब्जहस्ताङ्घ्रिः पुनः पीठे निवेशितः ॥६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोले:–हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशजी-महाराजके इस प्रकार कहने पर श्रीरामभद्रजी वहाँसे उठकर ब्यारू शालामें पधारे, वहाँ सखीने चरण-कमलोंको धोकर उन्हें पीढ़ा पर बिठाया ॥ ६ ॥

ततो भूपाज्ञया रामो मन्दस्मेरमुखाम्बुजः ।
भ्रातृभिः सह पश्चात्तो भोजनं कर्तुमुद्यतः ॥७॥

पश्चात् श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञासे अपने भाइयोंके समेत वे कमललोचन, मन्द-मुस्कान युक्त मुखारविन्द वाले श्रीरामभद्रजू भोजन करनेके लिये उद्यत हुये ॥७॥

समाजग्मुस्तदा राज्ञ्यो भ्रातॄणां मिथिलेशितुः ।
द्रष्टुकामा विशालाक्ष्यः कुमारान् सुभगाः शुभाः ॥८॥

उस उसम श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंकी विशाललोचना परमसुन्दरी मङ्गलस्वरूपा रानियाँ (चारों भाइयोंका) दर्शन करनेके लिये आ गयीं ॥८॥

महाराज्ञीं नमस्कृत्य द्वितीयं खण्डमास्थिताः ।
दर्शनं राजपुत्राणां गवाक्षेभ्यः समालभन् ॥९॥

वे महारानियाँ (श्रीसुनयना अम्बा) जीको नमस्कार करके महलके दूसरे खण्डमें स्थित हो खिड़कियोंके द्वारा राजपुत्रोंका दर्शन प्राप्त करने लगीं ॥९॥

आजगाम तदा तत्र राज्ञी सुनयना स्वयम् ।
विधायोत्सङ्गगां पुत्रीं शरच्चन्द्रनिभाननाम् ॥१०॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजी शरद्-ऋतुके चन्द्रमाके समान मुखवाली श्रीललीजीको गोदमें लिये हुई वहाँ स्वयं आगयीं ॥१०॥

तस्याः क्रोडाद्विशालाक्षी निजे क्रोडे समाददे ।
जानकीं सुकुमाराङ्गीं बालिकां सुषमाकरीम् ॥११॥

उनकी गोदसे श्रीविशालाक्षीजीने सुषमा (अनुपम सौन्दर्य) की आकर (भण्डार-स्वरूपा,) शिशुविग्रहा सुकुमार अङ्गवाली श्रीललीजीको अपनी गोदमें ले लिया ॥११॥

प्रेरिता सा महाराज्ञ्या वामपार्श्वमुपागमत् ।
सर्वाग्रपङ्क्तौ स्थितया भद्रया श्रीसुभद्रया ॥१२॥

पुनः वे श्रीविशालाक्षीजी, मङ्गल स्वरूपा बैठी हुई श्रीसुभद्राम्बाजीकी प्रेरणासे सभी रानियोंकी आगे वाली पङ्क्तिमें श्रीसुनयनाम्बाजीके बायें भागमें जा विराजीं ॥१२॥

तामुवाच महाराज्ञी प्रेमगद्गदया गिरा ।
निरीक्ष्य तनयावक्त्रं श्रीतेजःशालिनः प्रियाम् ॥१३॥

अपनी श्रीललीजीके मुखारविन्दका दर्शन करके, महारानी श्रीसुनयनाअम्बाजी उन श्रीतेजःशालीजी महाराजकी प्रिया (श्रीविशालाक्षीजी) से प्रेम-मयी गद्गद्वाणीसे बोलीं-॥१३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

सर्वाङ्गसुन्दरीयं मे यथा पुत्री विलक्षणा ।
तथैव पश्य रामोऽपि भाति सर्वाङ्गसुन्दरः ॥१४॥

हे श्रीविशालाक्षीजी ! जैसी मेरी श्रीललीजी सर्वाङ्ग सुन्दरी और विलक्षण हैं, उसी प्रकार देखिये श्रीरामभद्रजू भी सर्वाङ्गसुन्दर प्रतीत हो रहे हैं ॥ १४ ॥

न चास्या दर्शनाच्चेतो न रामस्येह दर्शनात् ।
उपारमति वै जातु नवं नवमनुक्षणम् ॥१५॥

न श्रीललीजीके दर्शनसे ही चित्त कभी उपरामताको प्राप्त होता (ऊबता) है और न श्रीराम लाल जीके दर्शनोंसे, प्रत्युत इनके दर्शनोंके लिये चित्त क्षण २ नवीन ही बना रहता है ॥ १५ ॥

अयं कोशलसम्राज्ञीहृदयानन्दवर्द्धनः ।
इयं मद्धृदयानन्दसिन्धुराकाधवानना ॥१६॥

ये श्रीरामलालजी श्रीकोशलनरेशकी पटरानी (श्रीकौशल्यामहारानी) के हृदयके आनन्दको बढ़ानेवाले हैं, और ये श्रीललीजी मेरे हृदयके आनन्द-सिन्धुको बढ़ानेके लिये पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली हैं ॥ १६ ॥

अयं नीलोत्पलश्यामो रामो राजीवलोचनः ।
इयं बालार्कवर्णाङ्गी नीलेन्दीवरलोचना ॥१७॥

ये कमलनयन श्रीरामलालजी, नीलमणिके समान प्रकाशमान, श्यामवर्ण अङ्गवाले और हमारी ये श्रीललीजी, नीलकमलके समान श्यामता लिये हुये लोचनवाली तथा उदयकालके सूर्यके समान प्रकाशमान गौर-वर्ण अङ्गवाली हैं ॥ १७ ॥

अयं नवाब्दको बालः शिशुर्विंशाह्निकी त्वियम् ।
परमानन्दचिद्रूपा यथा रामश्चिदात्मकः ॥१८॥

जैसे श्रीरामललाजी चैतन्य विग्रह नववर्षकी अवस्थासे सम्पन्न इस समय हैं उसी प्रकार हमारी श्रीललीजी परमानन्द चैतन्य स्वरूपा आज २० दिन की हुई हैं॥ १८ ॥

इयं तुष्यति तं दृष्ट्वा स दृष्ट्वेनां च तुष्यति ।
वयं दृष्ट्वा तु तं चेमां प्रतुष्यामोऽनघे ! भृशम् ॥१९॥

हे अनघे (पापरहिते)! ये श्रीललीजी श्रीरामललाजीके दर्शनोंसे और श्रीरामललाजी इन श्रीललीजीके दर्शनोंसे सन्तुष्ट हो रहे हैं। और हम सब इन दोनोंका दर्शन करके अतिशय सन्तोषको प्राप्त हो रही हैं॥१९॥

कटाक्षयंस्तु सौमित्रिं रामोऽश्नाति निरीक्ष्य माम् ।
पश्य मन्दस्मितो भद्रे ! भूय एव मनोहरः ॥२०॥

हे कल्याणस्वरूपे! देखिये मनोहरण, मन्दमुस्कान श्रीरामललाजी बारम्बार मेरी ओर देखकर श्रीसुमित्रानन्दन (श्रीलषणलालजी) की ओर कटाक्ष करते हुये, भोजन कर रहे हैं॥२०॥

अस्य मन्दस्मितं श्लक्ष्णं भाषितं चारुवीक्षणम् ।
समालोक्य हि कस्याश्चिन्मनो नापहृतं भवेत् ॥२१॥

अरी सखी! श्रीरामललाजीकी मन्दमुस्कान, मधुरभाषण, सुन्दरचितवन, अवलोकन करके भला ऐसा कौन होगा? जिसका मन न हरण हो जावे॥२१॥

यथा रामस्तु रूपेण गुणैश्चैव विराजते ।
तथैव भ्रातरस्तस्य गुणरूपविभूषिताः ॥२२॥

जैसे श्रीरामललाजी रूप और गुणोंके द्वारा सर्वोत्कृष्ट रूपसे सुशोभित हो रहे हैं, उसी प्रकार उनके शेष तीनों भाई भी रूप और गुणोंसे भूषित, सर्वोत्कृष्ट रूपसे सुशोभित हो रहे हैं॥२२॥

स्वर्णवर्णौ च सौमित्री श्रीरामभरतावुभौ ।
नीलेन्दीवरवर्णाङ्गौ चत्वारोऽपि मनोहराः ॥२३॥

नीलकमलके समान श्यामवर्ण अङ्गवाले श्रीरामललाजी व श्रीभरतलालजी और सुवर्ण (सोना) के समान गौर अङ्ग वाले श्रीलषणलाल व श्रीशत्रुघ्नलालजी, ये चारों ही अत्यन्त मनहरण हैं॥२३॥

प्रीतिमन्तो मिथः सर्वे सर्वे राममनुव्रताः ।
सर्वे कुमारवयसः सर्वे नित्यसुखोचिताः ॥२४॥

ये सभी आपसमें प्रीतिमान, सभी श्रीरामलालजीके अनुयायी, सभी कुमार-अवस्था वाले और सभी नित्य सुखके योग्य हैं ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

कथयन्त्या तयेत्येवं महावात्सल्यरूपया ।
निवृत्तभोजना दृष्टाः प्रोञ्छनांशुकपाणयः ॥२५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले :—हे प्रिये ! इस प्रकार कथन करती २ महावात्सल्यरस रूपिणी श्रीसुनयना अम्बाजीने देखा, कि चारो राजकुमार भोजनसे निवृत्त हुये, रूमाल हाथमें लिये हुये हैं अर्थात् कुल्ला आदि करके मुख भी पोंछ चुके हैं ॥२५॥

महीपेन तदाऽऽज्ञप्ताः संवेशाय महात्मना ।
राज्ञ्याः सकाशमागत्य ताम्बूलादिभिरादृताः ॥२६॥

तब शयन करनेके लिये महात्मा श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञा पाकर वे चारो भाई श्रीसुनयना अम्बाजीके पास आकर पान आदिके द्वारा आदरको प्राप्त हुये ॥२६॥

भ्रातृभिः सहिते तस्मिन्प्रस्थिते मिथिलाधिपे ।
ततः स्वापालयं नीतास्तया ते रघुवल्लभाः ॥२७॥

बन्धुवर्गोंके सहित उन श्रीमिथिलेशजी महाराजके वहाँसे चले जाने पर श्रीसुनयना अम्बाजी उन रघुवंश दुलारोंको, शयन-भवनमें ले गयीं ॥२७॥

सर्वर्तुसुखसंवेशे सर्वभोगसमन्विते ।
सर्वालङ्कारसंयुक्ते तस्मिंस्तु भवने शुभे ॥२८॥

सभी ऋतुओंमें जिसमें शयन करना सुखद रहता है, तथा समस्त सेवन करने योग्य वस्तुओं से युक्त पूर्ण सजावटसे सुसज्जित किये हुए उस उत्तम शयनभवनमें ॥ २८ ॥

लालिता राजपुत्रास्ते सर्वाभिश्च यथासुखम् ।
मणितल्पगता रेजुर्भूमिजादर्शनोत्सुकाः ॥२९॥

सभी रानियोंके द्वारा स्वेच्छानुसार लालित (दुलार किए हुये) वे राजकुमार अवनिनन्दिनी (श्रीललो) जीके दर्शनोंके लिये उत्सुक हो, मणिमय पलङ्ग पर जाकर सुशोभित हुये ॥ २९ ॥

तदा सुनयना राज्ञी पाययित्वा पयः सुताम् ।
तथैव भूपतनयान् पयःपानमकारयत् ॥३०॥

तव श्रीसुनयना महारानी श्रीललीजीको दूध पिलाकर राजकुमारोंको दूध-पान कराती हुई ३०

प्रदाय पुनराचम्यं प्रोञ्छयास्यानि सुवाससा ।
स्वल्पभूपांशुकोपेतान् लब्धताम्बूलवीटिकान् ॥३१॥

पुनः आचमन देकर सुन्दर वस्त्रसे (उनके) मुखोंको पोंछकर, पानकी खिल्ली (बीरा) पाये हुये ॥ ३१ ॥

सुगन्धिभिः समासिच्य लालयन्ती मुहुर्मुहुः ।
प्रस्वाप्य तान्मृगाङ्कास्यान्सादरं स्वयमस्वपत् ॥३२॥

उन चन्द्रमाके समान प्रकाशमान, आह्लादकारक मुखों (राजकुमारों) को अनेक प्रकारकी सुगन्धियोंसे सींचकर वारम्वार दुलार करती हुई, उन्हें आदर पूर्वक शयन कराके स्वयं शयन करती हुई ॥३२॥

तस्मिञ्छयानेषु नृपार्भकेषु स्वापालये राजकुलाङ्गनाश्च ।
राज्ञीं प्रणम्योरसि सन्निवेश्य श्रीजानकीं ताः स्वगृहाणि जग्मुः ॥३३॥

इत्यष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४८॥

उस शयन-भवनमें राजकुमारोंके शयन कर जाने पर वे सभी रानियाँ श्रीसुनयनाअम्बाजीको प्रणाम करके, श्रीजनकनन्दिनीजीको अपने हृदयमें विराजमान कर, अपने २ महलको चली गईं ॥३३॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

श्रीसुमन्त्रजीके द्वारा श्रीरामवियोगसे अयोध्यावासी प्रजाके अत्यन्त दुखी होनेका समाचार सुनकर श्रीचक्रवर्तीजीका विशेषदुःखी होना तथा श्रीवशिष्ठजीके द्वारा इस समाचारको सुनकर श्रीसुनयना-अम्बाजीकी अनुमतिसे श्रीमिथिलालेशजी-महाराजका श्रीरामभद्रजीको श्रीचक्रवर्तीजीके पास भेजना॥–

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अथ रामे गृहं प्राप्ते मिथिलेन्द्रस्य बन्धुभिः ।
अयोध्यातः समायातः सुमन्तो मन्त्रिसत्तमः ॥१॥

बन्धुओंके सहित श्रीरामभद्रजूके श्रीमिथिलेशजी महाराजके महल में आजानेपर उधर मन्त्रियोंमें शिरोमणि श्रीसुमन्त्रजी महाराज श्रीअयोध्याजीसे पधारे ॥१॥

उपेत्य तं स राजानं नत्वा दशरथं ततः ।
वृत्तान्तं कथयामास पृष्टः सत्यानिवासिनाम् ॥२॥

पुनः वे श्रीदशरथजी महाराजको प्रणाम करके पूछनेपर उनके पास बैठकर अयोध्यावासियोंका समाचार कहने लगे ॥ २ ॥

श्रीसुमंत उवाच ।

स्वस्त्यस्तु ते महाराज ! सर्वदा धर्मशालिने ।
सपुत्रदारवंशाय महाभागोत्तमाय च ॥३॥

श्रीसुमन्तजी महाराज बोले:-हे महाराज ! पुत्र-कलत्र (रानी) कुलके सहित धर्मशाली महासौभाग्यवान शिरोमणि आपके लिये सदाही मङ्गल हो ॥ ३ ॥

सभद्रा अप्यभद्रास्ते सर्वेऽयोध्यानिवासिनः ।
मृतप्राया विना रामदर्शनेन मयेक्षिताः ॥४॥

प्रायः सभी अयोध्या निवासियोंको श्रीरामभद्रजूके दर्शनोंके बिना कुशलपूर्वक होते हुए भी मैंने कुशल रहित मृतकके समान चेष्टा रहित देखा है। अर्थात् यद्यपि वे सब प्रकारसे सुखी हैं तथापि श्रीरामभद्रजूके वियोगके कारण अत्यन्त दुखी ही वे मेरे देखनेमें आये हैं ॥४॥

तेषां व्याकुलताऽवाच्या सर्वथा वर्ततेऽधुना ।
इति ज्ञात्वा महाराज ! यथेच्छसि तथा कुरु ॥५॥

श्रीरामलालजूके दर्शनोंके बिना श्रीअयोध्यावासियोंकी व्याकुलता इस समय कैसी है ? यह कहा नहीं जा सकता। ऐसा जानकर आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये ॥ ५ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तन्निशम्य महीपालः प्रजादुःखेन दुःखितः ।
कथञ्चिद्द्विदिनं धीरो व्यतीत्याचार्यमुक्तवान् ॥६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजीमहाराज बोले :-हे प्रिये ! श्रीसुमन्तजीके द्वारा अपने नगर-वासियोंका समाचार श्रवण करके अपनी प्रजाके, दुःख से दुखी हो, किसी प्रकार दो दिन बिताकर, अपने गुरुदेव श्रीवशिष्ठजी महाराजसे बोले :- ॥ ६ ॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

सुमन्तेन समाख्यातः समाचारः पुरौकसाम् ।
अतिदुःखप्रदो मह्यं बभूवेह प्रतिक्षणम् ॥७॥

श्रीदशरथजी महाराज बोलेः-हे गुरुदेव ! सुमन्तजीके द्वारा पुरवासियोंका कहा हुआ वियोग समाचार इस समय मुझे प्रतिक्षण अत्यन्त दुःखप्रद हो रहा है ॥ ७ ॥

यस्य राज्ये प्रजादुःखं स याति नरकं ध्रुवम् ।
तद्रहस्यविदो दुःखं कृपया मेऽपसारय ॥८॥

जिसके राज्यमें प्रजाको दुःख होता है, वह राजा अवश्य नरकमें जाता है । इस रहस्यका ज्ञान मुझे प्राप्त है, अतः कृपा करके (नरक प्राप्तिकी शङ्का जनित) मेरे दुःखको आप दूर कीजिये ॥ ८ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तो नरेन्द्रेण वशिष्ठो भगवान्नृपम् ।
समुत्थाप्य वचोभिश्चाशमयद्विह्वलं हि तम् ॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः-हे प्रिये ! महाराजा श्रीदशरथजी महाराजके ऐसा कहने पर भगवान् श्रीवशिष्ठजी महाराज विह्वलताको प्राप्त हुये उन श्रीचक्रवर्तीजीको उठाकर स्वयं अपने वचनोंके द्वारा उन्हें सान्त्वना (धैर्य) प्रदान किये ॥९॥

पुनः श्रीमिथिलानाथमभिगम्य महामुनिः ।
विधिवत्पूजितस्तेन सादरं तमथाब्रवीत् ॥१०॥

उसके बाद वे महामुनि । भगवत्तत्त्वके मनन करने वाले श्रीवशिष्ठजी महाराज श्रीमिथिलेशजी महाराजके पास जाकर उनसे पूजित हो, आदर पूर्वक बोले ॥१०॥

श्रीवशिष्ठ उवाच ।

शृणु योगीन्द्रशार्दूल ! सर्वबुद्धिमतां वर ! ।
सुमन्तः कोशलात्प्राप्तः परश्वो हि नृपान्तिकम् ॥११॥

हे योगिराजोंमें शिरोमणि ! तथा सभी बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! श्रीमिथिलेशजी महाराज ! परसों सुमन्तजी अयोध्याजीसे श्रीचक्रवर्तीजीके पास आये हैं ॥११॥

स पृष्टो नरदेवेन समाचारं यमुक्तवान् ।
तमाकर्ण्य महीपालो न शान्तिमधिगच्छति ॥१२॥

वे सुमन्तजी श्रीचक्रवर्तीजीके पूछने पर वहाँका जो समाचार वर्णन किये हैं उसे श्रवण करके महाराजको अब चैन नहीं पड़ रही है ॥१२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यउवाच ।

इति गूढं वचः श्रुत्वा महर्षेर्व्यथितेन्द्रियः ।
क उक्तः पुर वृत्तान्तो मन्त्रिणेति स पृष्टवान् ॥१३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये ! महर्षि श्रीवशिष्ठजीके इन गूढ़ वचनोंको सुनकर श्रीमिथिलेशजी महाराजका मन बड़ा ही दुखी हुआ, अतः वे बोले:—हे प्रभो ! सुमन्तजीने पुरका समाचार क्या निवेदन किया है ? ॥१३॥

समाश्वास्य स राजानं वशिष्ठो नियताञ्जलिम् ।
सुमन्तेनावदद्वृत्तं यदुक्तं तन्नृपान्तिके ॥१४॥

श्रीवशिष्ठजी महाराज हाथ जोड़े हुये उन श्रीमिथिलेशजीको आश्वासन देकर, सुमन्तजीके द्वारा श्रीदशरथजी महाराजके पास कहे हुये वृत्तान्तको कथन करने लगे ॥१४॥

श्रीवशिष्ठ उवाच ।

कल्याणिनोऽप्यकुशलाः सर्वेऽयोध्यानिवासिनः ।
दर्शनेन विना राजन् ! रामभद्रस्य सोन्मदाः ॥१५॥

श्रीवशिष्ठजी महाराज बोले :—हे राजन् ! श्रीचक्रवर्तीजीके पूछनेपर श्रीसुमन्तजीने नगरका जो समाचार निवेदन किया था, वह यह है :—हे राजन् ! आपके श्रीअयोध्या निवासी सबप्रकार कुशल पूर्वक होनेपर भी, श्रीरामलालजीके दर्शनोंके विना उनके विरहरूपी उन्मादसे युक्त, कुशल रहित हैं, सकुशल नहीं ॥ १५ ॥

तेषां व्याकुलतेदानीमवाच्यैवेह वर्तते ।
इति ज्ञात्वा महाराज ! यथेच्छसि तथा कुरु ॥१६॥

हे महाराज ! इस समय उनकी व्याकुलता वर्णन शक्तिकी सीमाको दप गयी है । ऐसा जान करके, अब आप जैसा उचित समझें, वैसा ही करें ॥ १६ ॥

श्रीवशिष्ठ उवाच ।

एतदेव वचस्तस्य सुमन्तस्य नराधिपः ।
अवधार्य महावीर्यो न शान्तिमधिगच्छति ॥१७॥

श्रीवशिष्ठजी महाराज बोले:—हे राजन् ! सुमन्तजीके इस वचनको विचार करके महाशक्तिशाली श्रीअयोध्या नरेशजी, शान्तिको नहीं प्राप्त हो रहे हैं ॥ १७ ॥

त्वदीयप्रेमबद्धोऽसौ प्रजापालनतत्परः ।
मुढकृत्य इवाभाति निश्चयं नाधिगच्छति ॥१८॥

क्योंकि वे प्रजा-पालनमें तत्पर होनेपर भी आपके प्रेममें बँधे हुए हैं, अतः मुझे अब क्या करना उचित है ? यह वे निश्चय नहीं कर पा रहे हैं ॥१८॥

अत एव महाराज ! प्रजातापोपशान्तये ।
कुमारैः सह राजानं पुरं गन्तुं मुदाऽऽदिश ॥१९॥

इस हेतु प्रजाके श्रीराम विरहरूपी तापको निवृत्तिके लिये महाराजको राजकुमारोंके सहित, श्रीअयोध्याजी जानेके लिये हर्षपूर्वक आज्ञा प्रदान कीजिये ॥ १९ ॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच।

आज्ञा तव शिरोधार्या लोकपालैरपि प्रभो !
तामनादृत्य शं नेह प्रपश्यामि कदाचन ॥२०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोले, :-हे प्रभो ! आपकी आज्ञा इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि लोकपालों के लिये भी शिरपर धारण करने योग्य है, उस आज्ञाका निरादर करके मैं कभी भी, जगत्में कल्याण नहीं देखता ॥२०॥

प्रजातापोपशान्तिश्च यथा स्याद्रोचते तथा ।
प्रेममार्गो न कस्यास्ति दुर्गमः कष्टदायकः ॥२१॥

जिस साधनसे प्रजाकी ताप मिटे, मुझे वही रुचिकर है । भला प्रेम-मार्ग किसको कष्ट-साध्य और कष्टदायक नहीं होता ? ॥२१॥

हितहानिं य आलोक्य न स्यात्परहित रतः ।
तं न सन्तः प्रशंसन्ति दुर्धियं स्वार्थलम्पटम् ॥२२॥

जो अपने हितकी हानि देख कर दूसरके हितमें तत्पर नहीं होता है, उस स्वार्थ-लम्पट, दुर्बुद्धि की सन्तजन, कभी भी प्रशंसा नहीं करते ॥२२॥

पालयेत्स्वप्रजा राजा पुत्रबुद्ध्या निरन्तरम् ।
प्रजासुखेन सुखितः प्रजादुःखेन दुःखितः ॥२३॥

राजाको चाहिये, पुत्र बुद्धिसे वह अपनी प्रजाका निरन्तर (सतत काल) ही पालन करता रहे और वह सदा प्रजाके सुखसे ही सुखी और दुःखसे दुखी रहे ॥२३॥

प्रजापालनधर्मोऽयं नरेन्द्राणां मनूदितः ।
सर्वसिद्धिकरो लोके भगवद्धर्मसंयुतः ॥२४॥

यह भगवद्-धर्म (भक्ति) से युक्त, मनु महाराजका कहा हुआ प्रजापालन रूप धर्म, लोकमें राजाओं के लिये सर्वसिद्धि अर्थात् भोग-मोच दोनोंको ही प्रदान करने वाला है ॥२४॥

मिथिलावासिनोऽस्माकं यथाऽयोध्यानिवासिनः ।
पालनीयाः सदा नाथ ! प्राणैरपि कृतात्मना ॥२५॥

जैसे मेरे लिये, प्राणोंके द्वारा भी श्रीमिथिला वासियोंका पालन करना आवश्यक है, उसी प्रकार अयोध्या निवासियोंका। अर्थात् यदि प्रजाका सुख प्राणदेनेसे भी सिद्ध होता हो तो प्राण देना भी कर्त्तव्य ही है ॥२५॥

गम्यतेऽन्तः पुरं शीघ्रं समाचारनिवेदनम् ।
विधातुं च मया राज्ञ्या द्रुतं तत्स्याद्विसर्जनम् ॥२६॥

एतदर्थ मैं अभी यह सब समाचार महारानीजीसे निवेदन करनेके लिये शीघ्रही अन्तः पुर जा रहा हूँ, श्रीराजकुमारोंके सहित श्रीकोशलेन्द्र-महाराजकी विदाई यहाँसे शीघ्रही हो जायेगी ॥२६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तदेत्युक्त्वा विसृष्टश्च मुनिनाऽन्तः पुरं ययौ ।
तत्र श्रीभोजनागारे प्रियादर्शनमाप्तवान् ॥२७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये ! इस प्रकार कहकर श्रीवशिष्ठ मुनिके द्वारा विदा किये हुये तब वे अपने अन्तःपुर पधारे, और वहाँ भोजनभवनमें प्रिया (श्रीसुनयना अम्बा) जीका दर्शन प्राप्त किये ॥२७॥

सा तु पुत्रैर्नरेन्द्रस्य परीता पङ्कजेक्षणा ।
चकार स्वागतं भर्तुस्तूर्णमुत्थाय धर्मतः ॥२८॥

वे कमल-लोचना, धर्मपरायणा श्रीसुनयना अम्बाजीने तुरत राजपुत्रोंके सहित उठ कर पति-देवका स्वागत किया ॥२८॥

भोजनाय पुनस्तं सा त्वरयामास पार्थिवम् ।
अभिवाद्य मुदा राज्ञी प्रेमगद्गदया गिरा ॥२९॥

पुनः प्रणाम करके, प्रेममय गद्गदवाणीसे हर्ष पूर्वक भोजन करनेके लिये उन्हें शीघ्रता कराने लगीं ॥२९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

क्षुधिताः पुत्रका ह्येते तव नाथ ! प्रतीक्षया ।
रुचिं न चक्रिरे कर्तुं प्रेरिता अपि भोजनम् ॥३०॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं :-हेनाथ ! इन बालकोंको क्षुधा (भूख) लगी हुई है पर आप की प्रतीक्षासे, मेरे आज्ञा देने पर भी अभीतक इन्होंने भोजनकी रुचि नहीं की है ॥३०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तथेत्युक्त्वा महीपालः रोमाञ्चितशरीरकः ।
आत्मजादर्शनानन्द ऊचे दशरथात्मजान् ॥३१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले :-हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशजी महाराज, अपनी श्रीललीजीके दर्शनानन्दको प्राप्त हो ऐसाही होगा, अर्थात् अभीही हम भोजन करेंगे कहकर, पुलकायमान होते हुये श्रीदशरथ कुमारोंसे बोले: ॥३१॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

पुत्रकाः क्रियतां शीघ्रं भोजनं भद्रमस्तु वः ।
संप्रयाय मया साकं पाकस्य स्थानमीप्सितम् ॥३२॥

हे पुत्रो ! आप लोगोंका कल्याण हो । मेरे सहित रसोई-भवनमें पधारकर अब शीघ्र इच्छित भोजन कीजिये ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एतदाकर्ण्य तद्वाक्यं तथेत्युक्त्वा समुत्थिताः ।
त आनीयाशनस्थाने भोक्तुं राज्ञा प्रचोदिताः ॥३३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले :-हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशजी महाराजका यह वचन श्रवण करके तथा ऐसा ही हो कहकर चारो श्रीराजकुमारजू उठ पड़े, तब उन्हें भोजन सदनमें लाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने उनसे भोजन करनेके लिये आग्रह किया ॥३३॥

अकुर्वन् भोजनं तत्र यथा कामं यथा रुचि ।
उपविष्टा नरेन्द्रस्य मनोज्ञाः सर्वसम्मताः ॥३४॥

वे मनहरण चारो भइया, उस भोजन-भवनमें श्रीमिथिलेशजी महाराजके समीपमें ही बैठ करके अपनी रुचि व इच्छाके अनुसार भोजन करने लगे ॥३४॥

समाजग्मुः पुनः सर्वे लब्धताम्बूलवीटिकाः ।
स्वापवेश्म विशालाक्षा दम्पतीभ्यां हि ते मुदा ॥३५॥

पुनः भोजन करनेके बाद, पानका बीरा पाकर वे चारो विशालनयन राजकुमार आनन्दपूर्वक श्रीसुनयनाअम्बाजी व श्रीमिथिलेशजी-महाराजके सहित शयन-भवन में पधारे ॥३५॥

राममातुः समाज्ञप्ते सख्यौ तर्हि समागते ।
नत्वा गद्गदया वाचा पृष्टे प्रोचतुरादृते ॥३६॥

उसी समय, श्रीरामलालजीकी अम्बाजीकी भेजी हुई दो सखियाँ वहाँ जा पहुँचीं और वे प्रणाम करके श्रीसुनयनाअम्बाजीके द्वारा आदर पाकर उनके पूछनेपर गद्गदवाणीसे बोलीं-॥३६॥

सख्यावूचतुः ।

सौभाग्यमस्तु ते नित्यं जीयात्पुत्री शतं समाः ।
राममाताऽऽह ते प्रीत्या यत्तदेवोच्यतेऽधुना ॥३७॥

हे श्रीमहारानीजी ! आपका सौभाग्य अचल रहे, आपकी श्रीललीजी हजारों वर्ष जीवें । श्रीरामललाजीकी माता (श्रीकौशल्या-महारानी) जीने प्रेम-पूर्वक जो आपके लिये इस समय समाचार कहा है, उसे मैं आपसे निवेदन करती हूं ॥३७॥

श्रीकौशल्योवाच ।

स्वस्ति भूयान्महाराज्ञि ! सदा ते भाग्यभूषणे !
सात्मजायै सकान्तायै सान्वयायै हरीच्छया ॥३८॥

श्रीकौशल्या-महारानीजीने कहा है कि-हे सौभाग्यकी भूषणस्वरूपा श्रीमहारानीजी ! भगवान् श्रीहरिकी कृपा दृष्टिसे आपका पतिदेव, श्रीललीजी तथा वंशके सहित सदा ही मङ्गल हो ॥३८॥

कुमारानसमालोक्य नरेन्द्रो विरहाकुलः ।
निश्चेष्टोऽस्ति गतोत्साहः सुमन्त्रोक्तं निशम्य च ॥३९॥

सुमन्त्रजीका कहा हुआ समाचार श्रवण करके कुमारोंका, दर्शन न पाकर महाराज (श्रीचक्रवर्तीजी) विरह व्याकुल हो चेष्टा-रहित, उत्साहहीन हो गये हैं ॥३९॥

सुमन्त्रोक्तः समाचारो वशिष्ठेन महात्मना ।
श्रावितो निमिराजाय भवतीं स भवक्ष्यति ॥ ४० ॥

और सुमन्तजीका कहा हुआ समाचार, श्रीवशिष्ठजीके द्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजको श्रवण कराया गया है, उस समाचारको वे आपसे स्पष्ट कहेंगे ॥ ४० ॥

तदुपाकर्ण्य यत्कार्यं तद्भवत्या विधीयताम् ।
हिताय सर्वलोकानां महाभागे ! महाशये ! ॥ ४१ ॥

हे महासौभाग्यशालिनी, विशाल उद्देश्य सम्पन्ना श्रीमहारानीजी ! उस समाचारको सुनकर सभी लोगोंके हितके लिये आप जैसा उचित समझें, वैसा ही करें ॥ ४१ ॥

ममापि त्वरते चित्तं तं द्रष्टुं कमलेक्षणम् ।
अथैतैः कारणैः प्रेष्ये प्रेष्येते च मया त्विमे ॥४२॥

अब मेरा भी चित्त कमललोचन श्रीरामलालजीको देखने लिये शीघ्रता कर रहा है। अतः इन सब कारणोंसे मैं, आपके पास इन दूतियोंको भेज रही हूँ ॥ ४२ ॥

सख्यावूचतुः ।

एतदुक्त्वा महाराज्ञी वत्स ! वत्सेति वादिनी ।
राममाता पपातोर्व्यां तां सुमित्राऽप्रबोधयत् ॥४३॥

सखी बोलीं :–हे श्रीमहारानी जू ! इतना समाचार आपसे निवेदन करनेके लिये हम लोगोंसे कहकर श्रीकौशल्या महारानी, हे वत्स ! हे वत्स ! कहती हुई विह्वलहो भूमि पर गिर पड़ीं, तब उन्हें श्रीसुमित्रा महारानीजी सावधान करती हुईं। ४३॥

पुनर्नौ चातिशीघ्रेणागन्तुमाज्ञां दिदेश सा ।
सकाशं ते महाराज्ञि ! तत आवामुपस्थिते ॥४४॥

पुनः हम दोनोंको आपके पास अति शीघ्र आनेके लिये उन्होने आज्ञा प्रदानकी, श्रीमहारानीजी ! इसीलिये हम दोनों, आपके पास उपस्थित हुई हैं ॥४४॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच।

प्रिये ! वृत्तस्य तेऽस्यैव श्रावणाय महामते ।
प्रेरितः श्रीवशिष्ठेन त्वरयैवाहमागतः ॥४५॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोले :-हे महामते ! इसी समाचारको श्रीवशिष्ठजी महाराजकी प्रेरणासे आपको श्रवण करानेके लिये मैं शीघ्रता पूर्वक यहाँ आया था ॥४५॥

प्रिये ! किमत्र कर्त्तव्यं ब्रूहि सम्यग्विमृश्य मे ।
सावधानात्मना भद्रे ! सर्वश्रेयस्करं परम् ॥ ४६ ॥

हे प्रिये ! इसलिये, इस समाचारके विषयमें सभीके परम कल्याणके लिये, अब क्या करना उचित है ? सो आप एकाग्रचित्तसे भली प्रकार विचार कर, मुझसे कहें ॥४६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

विधातुः कीदृशी बुद्धिर्नाथ ! न ज्ञायते मया ।
संयोगसुखसक्तानां भवत्याशुवियोजकः ॥ ४७ ॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे नाथ ! विधाताकी कैसी बुद्धि है ? कुछ समझमें नहीं आता, क्योंकि संयोग-सुखमें आसक्त-प्राणियोंको वे शीघ्र ही वियोग करानेवाले हो जाते हैं संयोगकी पूर्णसुखानुभूति नहीं करने देते। यदि संयोग सुख देना उन्हें नहीं अभीष्ट रहता है, तो फिर ऐसा अवसर ही क्यों आने देते ? और जब अवसर बनाकर उपस्थित कर देते हैं तो, फिर स्थायी सुख क्यों नहीं लेने देते, अतः कुछ समझमें नहीं आता कि, उन विधाताकी यह कैसी बुद्धि है ॥४७॥

निजानन्दक्षयेनापि परेषां चेत्सुखं भवेत् ।
अवश्यमेव कर्त्तव्यं तत्तु कर्म यतात्मना ॥४८॥

यदि अपने सुखके नष्ट होनेपर भी औरोंका सुख सिद्ध होता हो तो, एकाग्र बुद्धिके द्वारा वह कार्य करना अवश्य ही उचित है ॥ ४८ ॥

यावच्च जीवनं लोके कुर्यात्परहितं सदा ।
अध्रुवेण ध्रुवं विद्वान् साधयेदिह निर्ममः ॥४६॥

जबतक लोकमें जीवन है, तबतक दूसरेका हित साधन सदा ही करे और सारासारके विवेकी को चाहिये कि अपने स्वार्थकी ममताको छोड़कर, वह इस क्षणभङ्गुर शरीरसे ही इसी जीवनमें अविनाशी पदको प्राप्त करले ॥ ४६ ॥

किमुक्तं श्रीवशिष्ठेन भवते ब्रह्मयोनिना ।
तत्समाख्याहि योगीन्द्र ! ततो युक्तं समाचर ॥५०॥

हे श्रीयोगीराज ! ब्रह्माजीके पुत्र श्रीवशिष्ठजी महाराजने आपसे क्या समाचार कहा है ? मुझे सो कह दीजिये, पश्चात् जो उचित हो सो कीजियेगा ॥५०॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

वशिष्ठो भगवानाह शृणु राजन् ! वचो मम ।
अयोध्यातः समायातः सुमन्तो मन्त्रिसत्तमः ॥ ५१ ॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोले:—हे प्रिये ! भगवान् श्रीवशिष्ठजी मुझसे बोले:—हे राजन् ! मन्त्रियोंमें परम-श्रेष्ठ, श्रीसुमन्तजी श्रीअयोध्याजीसे आये हैं ॥५१॥

स पृष्टः कोशलेन्द्रेण समाचारं पुरौकसाम् ।
यथा निवेदयामास तथा ते प्रवदाम्यहम् ॥ ५२ ॥

श्रीदशरथजी महाराजके पूछने पर उन्होंने जिस प्रकारसे पुरवासियोंका समाचार वर्णन किया है, उसी प्रकार मैं आपसे वर्णन करता हूँ ॥५२॥

श्रीसूत उवाच ।

राजन्नकुशलाः सर्वे क्षेमिणोऽपि पुरौकसः ।
रामभद्रमनालोक्य सोन्मदा इव लक्षिताः ॥ ५३ ॥

श्रीसुमन्तजी बोले :—हे राजन् ! आपके श्रीअयोध्यावासी सब प्रकार कुशलयुक्त होने पर भी बिना श्रीरामलालजीका दर्शन पाये कुशल रहित, पागलसे प्रतीत हो रहे हैं ॥५३।

अवाच्यं वर्तते तेषां व्याकुलत्वं नृपर्षभ !
इति ज्ञात्वा महाराज ! यथेच्छसि तथा कुरु ॥५४॥

हे नृपोंमें श्रेष्ठ ! महाराज ! पुर वासियोंकी व्याकुलता वर्णन करनेके योग्य नहीं है, ऐसा जान करके आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा ही कीजिये ॥५४।

श्रीवशिष्ठ उवाच।

सुमन्तोक्तं वचः श्रुत्वा राजा दशरथो वशी ।
मामद्य कथयामास प्रजादुःखेन दुःखितः ॥५५॥

श्रीवशिष्ठजी-महाराज बोले :—हे श्रीमिथिलेशजी-महाराज ! श्रीसुमन्तजीका वचन सुनकर महाराजदशरथ प्रजाके दुःखसे दुखी होकर आज यह समाचार मुझसे कहे हैं ॥५५॥

दुःसहं हि प्रजादुःखं तव स्नेहोऽति दुस्त्यजः ।
मैथिलेन्द्रेति जानीहि नृपस्य मम पश्यतः ॥५६

मेरे देखनेसे श्रीचक्रवर्तीजीके लिये यह मजाका दुःख सहन करना भी कठिन है और आपका स्नेह छोड़नाभी अत्यन्त कठिन है, आप एसा ही जानिये ॥५६॥

इदानीं यत्तु कर्त्तव्यं भवता तद्विधीयताम् ।
एतदर्थमहं प्राप्तः सकाशं ते महात्मनः ॥५७॥

अतः इस समय जो करना उचित है उसे आप कीजिये। इसी निमित्त मैं आप महात्मा (अर्थात् जिनकी बुद्धिमें केवल पर ब्रह्मपरमात्मा ही विहार करते हैं) उनके पास आया हूँ ॥५७॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच।

एवमुक्तस्तमाभाष्य विसृष्टस्तेन सत्वरम् ।
भोजनागारमागच्छं तन्निवेदयितुं प्रिये ! ॥५८॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोले-हे प्रिये ! श्रीवशिष्ठजी महाराजके द्वारा ऐसा कहकर विदा किया हुआ मैं, उनसे आज्ञा लेकर; सुमन्तजीके द्वारा कहा हुआ समाचार-निवेदन करनेके लिये ही, भोजन-भवनमें आया था ॥५८॥

तत्रालब्धावकाशेन न तुभ्यं श्रावितं मया ।
निवेदयितुमायाते स्वयं सख्यौ हि सत्वरम् ॥५९॥

वहाँ अवकाश न मिलनेके कारण मैंने आपको वह समाचार नहीं सुनाया, था अब यहाँ उसी समाचारको निवेदन करनेके लिये, श्रीकौशल्या महारानीजीकी वे सखियाँ स्वयं ही आगयीं हैं ॥

श्रीसुनयनोवाच।

श्रीरामदर्शनानन्दा धन्याः सत्यानिवासिनः ।
राजा दशरथो धन्यः सुशीलो धर्मकोविदः ॥ ६० ॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं-हे प्यारे ! जिन्हें श्रीरामलालजीके ही दर्शनों का आनन्द है, वे श्रीअयोध्यानिवासीजी धन्य हैं, श्रीदशरथजी महाराजके लिये धन्यवाद है, जो इस प्रकार धर्मके रहस्यको जानने वाले परम शीलवान् हैं, क्योंकि वे जिनके कारण दुःख सहन कर रहे हैं, आपके उस स्नेहको छोड़कर सहसा जाना नहीं चाहते बल्कि आपके आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हैं ॥६०॥

धन्या राज्ञी च कौशल्या यस्याःसुकृतिसम्भवः ।
लोकाभिरामः श्रीरामः सर्वभूतमनोहरः ॥६१॥

जिनके पुण्य-प्रतापसे त्रिभुवनसुन्दर, समस्त प्राणियोंके मनको हरण करनेवाले श्रीरामलाल जी प्रकट हुये हैं, वे श्रीकौशल्या महारानीजी धन्य हैं ॥ ६१ ॥

धन्या राज्ञी सुमित्रा च यस्याः पुत्राविमौ शुभौ ।
तप्तहाटकवर्णाङ्गौ लक्ष्मणारिनिषूदनौ ॥ ६२ ॥

तपाये सुवर्णके समान गौर अङ्गवाले श्रीलपणलाल व श्रीशत्रुघ्नलालजी दोनों ही जिनके पुत्र हैं, वे श्रीसुमित्रा महारानीजी धन्य हैं ॥ ६२ ॥

धन्या राज्ञी च कैकेयी यस्यास्तु भरतः सुतः ।
अतसीपुष्पसङ्काशः सुमतिः साधुसम्मतः ॥६३॥

और श्रीकैकेयी महारानीजी धन्य हैं, जिनके पुत्र तीसीके फूलके समान श्यामरङ्ग व सुन्दर-मति तथा सन्तोंसे सम्मानित श्रीभरतलालजी हैं ॥ ६३ ॥

धन्या राज्यस्तथा सर्वा राज्ञो दशरथस्य हि ।
श्रीरामदर्शनस्यास्ति यासां चानुत्तमो विधिः ॥ ६४ ॥

तथा श्रीदशरथजी महाराजकी सभी महारानियाँ धन्य हैं, जिन्हें श्रीरामलालजीके दर्शनोंका सर्वोत्तम सौभाग्य प्राप्त है ॥ ६४ ॥

प्रजानां च तथा राज्ञो महिषीणां तथैव च ।
सुखाय प्रियपुत्राणामितः प्रस्थापनं वरम् ॥ ६५ ॥

प्रजाओंके, श्रीचक्रवर्तीजीके तथा श्रीकौशल्या आदि महारानियोंके सुखके लिये, अब यहाँ से इन प्यारे पुत्रोंको विदाकर देना ही उत्तम है ॥६५॥

वत्स ! राम ! चिरञ्जीव भद्रं भरत ! ते सदा ।
अनामयं तु सौमित्री ! युवयोरस्तु सर्वदा ॥६६॥

हे वत्स ! हे श्रीरामजू ! आप अनन्तवर्ष तक जीवें । हे श्रीभरतलालजू ! आपका मङ्गल हो । हे श्रीसुमित्रानन्दन श्रीलपणलाल व श्रीरिपुसूदनलालजी आप दोनों भइया सदा ही निरोग रहें ॥६६॥

भवतां दर्शनं लब्धं मया पुण्येन केनचित् ।
तदभाग्योदयेनैव दुर्लभं मे भविष्यति ॥६७॥

हे वत्सो ! किसी पुण्यके प्रतापसे मुझे आप लोगोंका दर्शन प्राप्त हुआ था सो मेरे अभाग्यके उदयसे अब दुर्लभ हो जावेगा ॥६७॥

सख्यौ ! गत्वा महाराज्ञीं समाश्वासयतं शुभम् ।
अद्यैवासादितं रामं न चिराद्द्रक्ष्यसीति वै ॥६८॥

अरी सखियो ! जाओ, मङ्गलमयी श्रीकौशल्या महारानीजीको यह आश्वासन दो कि, आज शीघ्रही प्राप्त हुये श्रीरामलालजीका, आप अवश्य दर्शन करेंगी ॥६८॥

स्व एवेतो यथाकाममनिच्छन्त्याऽपि वै मया ।
प्रस्थापनं तु सर्वेषां कृतं स्यान्नात्र संशयः ॥६९॥

और कल ही न चाहती हुई भी मैं यहाँसे इच्छानुसार सभी लोगोंकी विदाई कर दूँगी, इस में किसी प्रकारका भी सन्देह, न रक्खें गी ॥६९॥

मदर्थे मर्पितं कष्टं विविधं यत्कृपानिधे !
क्षामयेऽहं च तत्सर्वं मन्दात्मा संयताञ्जलिः ॥७०॥

हे श्रीकृपानिधेजू ! मेरे लिये अनेक प्रकारका जो कष्ट आपको सहन करना पड़ा है, उस सबके लिये मैं मन्दबुद्धि, हाथ जोड़कर आपसे क्षमा चाहती हूँ ॥७०॥

एवं वाच्या महाराज्ञी कौशल्या श्लक्ष्णया गिरा ।
प्रणम्य बहुशः सख्यौ ! युवाभ्यां भद्रमस्तु वाम् ॥७१॥

हे सखियो ! आप दोनोंका कल्याण हो, आप लोग श्रीकौशल्या-महारानीजीको प्रणाम करके, इसी प्रकार स्नेहमयी वाणीसे (मेरी प्रार्थना) निवेदन करेंगी ॥७१॥

सख्यावूचतुः ।

यथोक्तं नो महाराज्ञि ! करवाव तथा द्रुतम् ।
इतो गत्वा तवागाराद्राममातुर्निकेतनम् ॥७२॥

सखियाँ बोलीं :-हे श्रीमहारानीजी ! आपने जिस प्रकार कहनेके लिये हमें आज्ञा प्रदान की है उसी प्रकार श्रीरामलालजीकी माताजीके पास जाकर हम शीघ्र अवश्य निवेदन करेंगी ॥७२॥

साविनयं त उक्तं चेदावाभ्यामल्पया धिया ।
किञ्चनापि महोदारे ! कृपया तत्क्षमस्व नौ ॥७३॥

अल्प बुद्धिके कारण हम लोगोंसे, ढिठाई पूर्वक जो कुछ कहनेमें आगया हो, हे उदार-शिरोमणे ! उसे आप कृपा करके क्षमा करेंगी ॥७३॥

सुमुखीं क्रोड आदातुं महोत्कण्ठाऽद्य वर्तते ।
आवयोर्हृदि सा शीघ्रं सफला कृपयाऽस्तु ते ॥ ७४ ॥

हम दोनोंके हृदयमें श्रीसुमुखी (श्रीललीजी) जी को अपनी गोदमें लेनेके लिये बड़ी अभिलाष है, वह आपकी कृपासे पूर्ण होवे ॥७४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

युवां सख्यौ महाराज्ञ्याः कौशल्याया महामतेः ।
ज्येष्ठायाः पङ्क्तियानस्याविनयो वां कथं स्पृशेत् ॥७५॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं :-आप लोग तो श्रीदशरथजी-महाराजकी विशालमति-सम्पन्ना बड़ी महारानी (श्रीकौशल्या)जूकी सखी हैं, अतः आप लोगोंको ढिठाई कैसे स्पर्श कर सकती है ? ७५

यथैषामिन्दुवक्त्राणां पुत्रिकायास्तथा मम ।
लालने पालने काममधिकारो हि वां ध्रुवम् ॥७६॥

जैसे अपनी इच्छानुसार इन चन्द्रमुखों (राजपुत्रों) के लालन, पालनमें आप लोगोंको अधिकार प्राप्त है, उसी प्रकार मेरी श्रीललीजीके लालन, पालनमें आप लोगोंको स्वतन्त्र अचल अधिकार है ॥७६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्ते प्रेमपूर्णाक्ष्यौ मैथिलीं स्वाङ्कगां मुदा ।
विधाय यततुर्भूयो लालयन्त्यौ कृतार्थताम् ॥७७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोले:-हे प्रिये ! श्रीसुनयनाअम्बाजीके इस प्रकार कहने पर प्रेम-पूर्णनेत्रा वे दोनों सखियाँ श्रीमिथिलेश-दुलारीजीको बार बार आनन्द-पूर्वक अपनी गोदमें लेकर, उनका लाड करती हुई, कृतार्थ होगयीं अर्थात् अपने जीवनकी सफलताका अनुभव करने लगीं ७७

प्रणम्य दम्पती भूयः कृतकृत्ये पुनर्द्रुतम् ।
सकाशमीयतुर्हृष्टे कौशल्यायाः कृताञ्जली ॥७८॥

पुनः वे सखियाँ कृतकृत्य हो बार बार श्रीसुनयनाअम्बाजी व श्रीमिथिलेशजी-महाराजको हाथ जोड़कर प्रणाम करके, शीघ्रही हर्ष-पूर्वक श्रीकौशल्या-महारानीजीके पास आयीं ॥७८॥

सख्यावूचतुः ।

द्रक्ष्यसीत्यद्य वै पुत्रं महाराज्ञि ! शुचिव्रते ! ।
श्व एव स्यात्तु सर्वेषामितः प्रस्थापनं ध्रुवम् ॥७९॥

सखियाँ बोलीं:—हे पवित्र व्रतोंके करनेमें तत्पर रहने वाली श्रीमहारानीजी ! आज अपने श्रीलाल-जीका आप निःसन्देह अवश्य दर्शन प्राप्त करेंगी । और कल यहाँ से सभीकी विदाई अवश्य हो जायेगी ॥७९॥

मदर्थं मर्षितं कष्टं विविधं यत्कृपानिधे ! ।
क्षामयेऽहं च तत्सर्वं मन्दात्मा संयताञ्जलिः ॥८०॥

हे श्रीकृपानिधेजू ! मेरे लिये जो अनेक प्रकारका कष्ट आपको, सहन करना पड़ा है उसके लिये मैं मन्दबुद्धि हाथ जोड़कर, आपसे क्षमा माँगती हूँ ॥८०॥

एवं वाच्या महाराज्ञी ! कौशल्या श्लक्ष्णया गिरा ।
प्रणम्य बहुशः सख्यौ युवाभ्यां भद्रमस्तु वाम् ॥८१॥

हे सखियो ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम दोनों श्रीकौशल्या महारानीजीको बारं बार प्रणाम करके इसी प्रकार स्नेहमयी वाणीसे मेरी इस प्रार्थनाको निवेदन करेंगी ॥८१॥

एवमाह तु नौ राज्ञी वाक्यं सुनयना स्वयम् ।
तयाऽऽदिष्टे मुदा नत्वा पुनरावामिहागते ॥८२॥

हे श्रीमहारानीजी ! इस प्रकार स्वयं श्रीसुनयना महारानीजीने हम दोनोंसे कहा है उनकी आज्ञा पाकर तथा उन्हें प्रणाम करके हम लोग पुनः आनन्द पूर्वक यहां आई हैं ॥८२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्ताऽऽह ते सख्यौ कौशल्या पुत्रवत्सला ।
निवेदयत मखिलं वृत्तमेव नृपाय वै ॥८३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये ! सखियोंके इसप्रकार कहने पर पुत्रवत्सला श्रीकौशल्या अम्बाजी, उन सखियोंसे बोलीं :—हे सखियो ! तुम दोनों ही जाकर यह समाचार श्रीमन्नृपतिजीको निवेदन कर दो ॥८३॥

तथेत्युक्त्वा च तां नत्वा कोशलेन्द्रस्य सत्वरम् ।
वृत्तान्तमूचतुः कृत्स्नं स निशाम्य मुदं ययौ ॥८४॥

वे सखियाँ श्रीकौशल्या महारानीजीसे "ऐसाही होगा" कहकर तथा उन्हें प्रणाम करके तुरत श्रीदशरथजी महाराजसे जाकर उस समस्त समाचारको सुनाती हुईं, उसे सुनकर वे आनन्दको प्राप्त हुये ॥८४॥

राज्ञी सुनयना तल्पे स्वापयित्वा नृपात्मजान् ।
न तृप्तिं याति सा तेषां पिबन्ती रूपमाधुरीम् ॥८५॥

श्रीसुनयना महारानीजी, पलङ्ग पर श्रीराजकुमारोंको शयन कराके, उनके स्वरूप-माधुरीका पान करती हुई, तृप्त नहीं हो रही थीं ॥८५॥

देवरस्त्रीसमाह्वानं कारयित्वा शुभेक्षणा ।
कथयामास वृत्तान्तं सखीभ्यामुदितं तथा ॥८६॥

पुनः अपने यहाँ अपने देवरोंकी रानियोंको बुलाकर श्रीकौशल्यामहारानीजीकी दोनों सखियों का कहा हुआ समाचार, उनसे कह सुनाया ॥८६॥

ततो वीतालसान् राज्ञी नवपङ्कजलोचनान् ।
चिरमालोक्य चक्षुर्भ्यां कार्यमन्यदचिन्तयत् ॥८७॥

तत्पश्चात् आलस्यसे निवृत्त हुये, नवीन कमलके समान नेत्र वाले उन राजकुमारोंका बहुत देर तक दर्शन करके, अपने दूसरे कर्त्तव्यका चिन्तन करने लगीं ॥८७॥

मज्जनं कारयित्वा सा तेभ्यः स्वादुमयं परम् ।
मिष्टान्नभोजनं प्रादात्स्वर्णपात्रनिवेशितम् ॥८८॥

पुनः चारो भइयोंको वे मज्जन कराके, सोनेके थालोंमें रक्खे हुये स्वादुमय अनेक प्रकारके मिष्टान्न-भोजन प्रदान करती हुईं ॥८८॥

श्रीशिव उवाच ।

राज्यः सर्वास्तयाऽऽज्ञप्ताः क्रमशः प्रेमनिर्भराः ।
भोजयन्त्यो विशालाक्ष्यःपूर्णकामाः कृताः शिवे ! ॥८९॥

भगवान् शङ्करजी बोले:-हे कल्याणस्वरूपे ! पुनः सभी देवरोंकी प्रेमविह्वल, विशाललोचना रानियोंने श्रीसुनयना अम्बाजीकी आज्ञा पाकर, उन श्रीराजकुमारोंको क्रमशः भोजन कराके अपने मनोरथको पूर्ण किया ॥८९॥

महिषी निमिराजस्य मैथिलेन्द्रस्य शोभना ।
स्नेहेन येन तान्कामं तर्पयामास भोजनैः ॥९०॥

जिस स्नेहसे उन श्रीराजकुमारोंको श्रीनिमिमहाराजके वंशमें सर्वोत्कृष्ट रूपसे विराजने वाले, श्रीमिथिमहाराजके वंशजमें श्रेष्ठ, श्रीमिथिलेशजी महाराजकी महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीने, भोजनसे तृप्त किया ॥९०॥

अवाच्यः स तु सर्वेषां ज्ञायतां भूधरात्मजे !
येन मुग्धाः कुमारास्तु मुमुचुर्नेत्रजं जलम् ॥ ९१॥

उसे सभीके द्वारा वर्णन करनेमें असम्भव ही जानिये, जिसके द्वारा प्रेमसे मुग्ध हुये चारो भाइयोंकेनेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा था ॥९१॥

पुनर्दत्वा च ताम्बूलं तेभ्यः कमललोचना ।
वैदेहीजननी सर्वान् यथाकामं व्यभूषयत् ॥९२॥

पुनः वे श्रीकमललोचना श्रीविदेहराजकुमारीजूकी अम्बाजी श्रीराजकुमारोंको पानका बीरा देकर अपनी इच्छानुसार, उनका शृंगार करने लगीं ॥९२॥

तांस्तु नीराजयामास कुमारान्दिव्यमालिनः ।
वस्त्राभूषादिभी राज्ञी दृष्ट्वा सा समलङ्कृतान् ॥९३॥

हे श्रीगिरिराजकुमारीजी ! पुनः वस्त्र भूषणोंसे सब प्रकार उन्हें अलंकृत देखकर महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीने दिव्यमालाओंको धारण किये हुये उन श्रीकोशलेन्द्र कुमारोंकी आरती की ९३

लालयित्वा यथा भावं समालिङ्ग्य पुनः पुनः ।
कथञ्चित्ते समाज्ञाप्ता गन्तुमावासमन्दिरम् ॥९४॥

तत्पश्चात् अपने भावानुसार उनका दुलार करके, उन्हें बारंबार अपने हृदयसे लगा कर, बड़ी कठिनतासे आराम भवन जानेके लिये आज्ञा प्रदान कर सकीं ॥९४॥

ते तु सर्वाः प्रणम्याथ राज्ञीश्चैव नृपानुजान् ।
विलोक्यायोनिजां कामं लालिताः परिरम्भिताः ॥९५॥

वे चारो भइया सभी महारानियोंको तथा सभी श्रीमिथिलेशजी-महाराजके भाइयोंको प्रणाम करके, सभीके द्वारा हृदयसे लगाये हुये तथा दुलार किये हुये, श्रीअयोनिजा (श्रीललीजी) जीका इच्छानुसार दर्शन करके ॥९५॥

आशीर्भिर्नन्दिता जग्मुः सह राज्ञा मनोहराः ।
सेनया रक्षिता नाग-यानेन पितुरन्तिकम् ॥९६॥

आशीर्वादके द्वारा सबोंसे अभिनन्दन पाकर, मनको हर लेने वाले, वे चारों रघुवंशी श्रीराजकुमार जू सेनासे सुरक्षित, श्रीमिथिलेशजी महाराजके सहित, गजरथके द्वारा अपने श्रीपिताजीके पास पधारे ॥९६॥

समर्प्य पुत्रान्मिथिलामहेन्द्रः श्रीपङ्क्तियानाय तदादृतस्तान् ।
पुनस्तमाभाष्य रघुप्रवीरं समागमत्तूर्णमसौ स्ववेश्म ॥९७॥

वहाँ श्रीमिथिलापुरीके सर्वोत्तम पालक श्रीमिथिलेशजी-महाराज, उनश्रीराजकुमारोंको श्रीचक्रवर्तीजीको समर्पण करके, उनके द्वारा आदर पाकर, रघुकुलमें श्रेष्ठवीर उन श्रीदशरथजी-महाराजसे आज्ञा लेकर वे तुरत अपने महल को वापस गये ॥९७॥

निरीक्ष्य रामस्य मनोहरास्यं प्रफुल्लकञ्जायतपत्रनेत्रम् ।
वियुक्ततापः प्रबभूव राजा तथा जनन्योऽप्यनुजैर्युतस्य ॥९८॥

इत्येकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

अपने छोटे भाइयोंसे युक्त श्रीरामललाजूके खिले कमलके समान विशालनयन वाले मनोहर श्रीमुखारविन्दका दर्शन करके राजा (श्रीदशरथजी-महाराज) तथा सभी मातायें भी विरह रूपी तापसे रहित हो गयीं, ॥९८॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा यज्ञमें पधारे हुये श्रीचक्रवर्तीजी आदि सभी लोगोंकी विदाई ।

श्रीशिव उवाच ।

अथ प्रभाते विमले नरेन्द्रो विसर्जने दत्तमतिर्महात्मा ।
चकार सत्कारविधिं समग्रं विशेषरूपेण चिरागतानाम् ॥१॥

इसके बाद निर्मल प्रभात समयमें, विदाई करनेकी मतिसे युक्त, महात्मा श्रीमिथिलेशजी महाराज, अपने यहाँ बहुत दिनोंसे पधारे हुये लोगोंकी विशेष रूपसे सम्पूर्ण सत्कारविधि करने लगे ॥१॥

पुनः समाहूय स कोशलेन्द्रं सदारपुत्रान्वयपूज्यवर्गम् ।
समस्तसम्बन्धिनृपानमात्यैः समाह्वयद्भोजयितुं निकेते ॥२॥

पुनः उन्होंने महारानियों, राजपुत्रों तथा वंशके पूज्य लोगोंके सहित श्रीदशरथजी महाराजको व मन्त्रियोंके समेत समस्त सम्बन्धी राजाओंको अपने महलमें भोजन करानेके लिये बुलाया ॥२॥

उपस्थितेष्वङ्ग नृपेषु तेषु प्रणम्य सत्कारविधिं विधाय ।
अन्तःपुरे पंक्तित एव तेषां प्रारब्धवान् भोजनमालिभिः सः ॥३॥

उन सब राजाओंके उपस्थित हो जाने पर श्रीमिथिलेशजी महाराजने उन्हें प्रणाम करके तथा उनकी सत्कार-विधि करके उन सबोंका भोजन सखियोंके द्वारा पङ्क्ति-पूर्वक अपने अन्तः पुरमें ही कराना प्रारम्भ किया ॥३॥

नृपाङ्गनानां विधिनाऽर्चितानां समन्वितानां दशयानपत्न्या ।
बभूव मातुर्जनकात्मजायाः सुधाशनं प्रीततया समक्षम् ॥४॥

उधर श्रीसुनयनामहारानीजीके समक्षमें श्रीकौशल्यामहारानीके सहित, समस्त राजकुलस्त्रियोंका प्रेमपूर्वक अमृतमय भोजन होने लगा ॥४॥

तत्रात्मजानां रघुपप्रियाणामशेषविश्वैकमनोहराणाम् ।
अत्यद्भुता भोजनचारुलीला सुखप्रदा नेत्रवतां बभूव ॥५॥

वहाँ समस्त विश्वके उपमा रहित, मनहरण, श्रीदशरथजीके चारों राजदुलारोंकी अत्यन्त आश्चर्य-मयी सुन्दर भोजनकी लीला सभी नयनवालोंके लिये विशेष सुख प्रद हुई ॥५॥

संतर्पिताभ्योऽमृतभोजनैश्च ताम्बूलवीटीः प्रददौ सुनेत्रा ।
राज्ञी स्वयं प्रेमपरायणा सा निवेश्य चामीकरचारुपीठे ॥६॥

अमृतमय भोजनोंके द्वारा तृप्त किये हुये, चारों श्रीराजकुमारोंको स्वयं प्रेमपरायणा (प्रेम ही जिनकी चित्त-वृत्तिके विहारके लिये मुख्य महल है वे) रानी श्रीसुनयना अम्बाजीने सुवर्णके सुन्दर सिंहासन पर बैठा कर पानके बीरों (खिल्लियों) को प्रदान किया ॥६॥

ततो महार्हाम्बरभूषणैश्च मुख्यालिभिः साऽलमकारयत्ताः ।
सुगन्धिनाऽऽसिच्य महोरुकीर्तिर्मनोहरैर्नित्यनवैः सुभक्त्या ॥७॥

उसके पश्चात् सुगन्धिसे सींच करके महाविशालकीर्ति, श्रीसुनयना महारानीजीने अतीव

योग्य, नित्यनवीन रहने वाले, मनोहर वस्त्र व भूषणोंसे अपनी प्रधान सखियोंके द्वारा नृप कुलकी उन स्त्रियोंका श्रद्धा पूर्वक पूर्ण-रूपसे शृङ्गार कराया ॥७॥

तथा कुमाराः स्वयमेव राज्ञ्या श्रीकोशलेन्द्रस्य मनोज्ञरूपाः ।
अपूर्वया प्रीततया विरेजुः सुस्रग्विणस्ते समलङ्कृता वै ॥८॥

स्वयं श्रीसुनयनाअम्बाजीके द्वारा अपूर्व ही प्रीति पूर्वक पूर्णशृङ्गार किये हुवे, सुन्दर मालायें पहिने वे श्रीकोशलेन्द्रजीके मन-हरण श्रीराजकुमार सर्वोत्कृष्ट रूपसे विराजमान हुवे ॥ ८ ॥

श्रीजानकीं पद्मपलाशनेत्रां शिशुस्वरूपां ललना नृपाणाम् ।
आनन्दवारां निधिमग्नचित्तास्ता लालयन्त्यः क्रमशो बभूवुः ॥९॥

अवसर पाकर कमलपत्रके समान सुन्दर विशाल लोचना, शिशु रूपवाली, श्रीजनकदुलारी जीको, अपनी पारी २ से दुलार करती हुई सभी राजाओंकी महारानियोंके चित्त आनन्दसागरमें डूब गये ॥९॥

रामस्य माता यदवाप शर्म प्राप्तं तया तन्न कदापि पूर्वम् ।
सुलालयन्ती नयनाभिरामामयोनिजां ह्लादतया कृतार्था ॥१०॥

श्रीरामलालजीकी माता श्रीकौशल्या अम्बाजी आह्लाद पूर्वक, श्रीअयोनिसम्भवा श्रीकिशोरीजी का भली प्रकारसे प्यार करती हुई, जिस अद्भुत सुखको प्राप्त हुईं उसको, वे कभी भी पहले नहीं प्राप्त हुई थीं, अत एव कृतार्थ हो गयीं ॥१०॥

अथाखिलोर्वीशगणेन सार्द्धं श्रीकोशलेन्द्रो मिथिलाधिपेन ।
सिंहासने रत्नमये सुतिष्ठन् सुतर्पितोऽपश्यदजात्मजं प्रति ॥११॥

उधर श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा भोजन आदिसे तृप्त हो, भूप वृन्दोंके सहित अयोध्यानाथ श्रीदशरथजी महाराजने रत्नमय सिंहासनपर विराजते हुवे, श्रीगुरुदेव महाराजकी ओर देखा ॥११॥

ज्ञात्वाऽऽशयं तस्य गुरुर्वशिष्ठो जगाद सप्रेमवचो विदेहम् ।
निधाय पाणाविदमेव पाणिं संक्षिप्तया चारुगिरा प्रबोध्य ॥१२॥

श्रीदशरथजी-महाराजका अभिप्राय जानकर, श्रीगुरुवशिष्ठजी महाराज देहकी सुधि बिसारे हुवे उन श्रीमिथिलेशजी-महाराजका हाथ अपने हाथमें रखकर, स्नेहमयी सुन्दर वाणीसे सावधान करके प्रेम-पूर्वक बोले :-॥ १२ ॥

श्रीवशिष्ठ उवाच ।

उपस्थितेयं शुभदा सुवेला प्रास्थानिकी योगिवर ! क्षितीश !
अतोऽतिशीघ्रं गमनाय देयः शुभो निदेशो भवताऽखिलेभ्यः ॥१३॥

हे योगियोंमें श्रेष्ठ ! हे पृथ्वीनाथ ! मङ्गल प्रदान करने वाली, प्रस्थानकी यह सुन्दर वेला उपस्थित होगयी है, अत एव अब आपको सभीके लिये जानेका शुभ आदेश अति शीघ्र प्रदान कर देना चाहिये ॥१३॥

वाच्येति राज्ञी भवता प्रिया ते राज्ञीः कुमारानचिरान्निकेतात् ।
प्रस्थापयस्वाशु मुदा सहर्षं विधाय धैर्यं हृदि योगमूर्ते ॥१४॥

और अपनी प्रिया श्रीसुनयना महारानीजीसे आपको ऐसा कहना चाहिये कि-हे योगमूर्ति ! आप हृदयमें धैर्य धारण करके अब आनन्दके सहित, हर्षपूर्वक समस्त रानियोंको तथा श्रीराजकुमारोंको अपने महलसे शीघ्र प्रस्थान करा दीजिये ॥१४॥

श्रीशिव उवाच ।

तथेति चोक्त्वा प्रणतो महर्षेर्वभाण राज्ञीं नियतस्तदाज्ञाम् ।
उदासचित्तो निमिवंशमौलिः संश्लक्ष्णया दीनगिरा महीपः ॥१५॥

भगवान् श्रीशङ्करजी बोले :-हे प्रिये ! ऐसाही होगा कहकर, श्रीनिमिवंशरूपी शरीरमें मस्तकके समान श्रेष्ठ, पृथ्वीका पालन करनेवाले उदास चित्त श्रीमिथिलेशजी महाराजने सम्यक् प्रकारसे स्नेहमयी दीनवाणी द्वारा, महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीसे भगवान् श्रीवशिष्ठजीकी आज्ञाको निवेदन किया ॥

संश्रुत्य तां शोकसमाकुलाऽपि कथञ्चिदालम्बितधैर्ययष्टिः ।
अलङ्घनीयां च विचार्य राज्ञी तथेति सम्भाष्य तमाह सर्वाः ॥१६॥

श्रीवशिष्ठजी महाराजकी उस आज्ञाको सुनकर और उसे उल्लङ्घन करने योग्य न विचार कर, शोकसे व्याकुल हुई श्रीसुनयना अम्बाजी, किसी प्रकार धैर्य रूपी छड़ीका अवलम्ब प्राप्त करके श्रीमिथिलेशजी महाराजसे "ऐसाही होगा" कहकर, निमन्त्रणमें पधारी हुई समस्त राजाओंकी महारानियों से बोलीं ॥१६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे सर्वभूमण्डलभूपपत्न्यः ! कृताञ्जलिर्वः शिरसा नमामि ।
यदत्र कष्टं भवतीभिराप्तं तत्क्षन्तुमेवार्हत मे कृपातः ॥१७॥

हे समस्त भूमण्डलके राजाओंकी प्यारियों! मैं हाथ जोड़कर आप लोगोंको नमस्कार करती हूँ। आप लोगोंको यहाँ आने व रहनेसे जो कुछ कष्ट प्राप्त हुआ हो, उसे कृपा करके आप लोग क्षमा कीजिये ॥१७॥

हे भानुवंशाम्बुजभास्करस्य प्राणप्रिया! लोकपगीयमानाः।
उदारकीर्त्तिप्रथितप्रभावाः किं स्तौमि वो मन्दमतिः सुभागाः ॥१८॥

हे सूर्य वंश रूपी कमलको सूर्यके समान प्रफुल्लित करने वाले श्रीकोशलेन्द्र-महाराजकी प्राण-प्यारियो! आप लोगोंका प्रभाव अपनी उदार कीर्त्तिसे ही प्रसिद्ध है, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि लोकपाल सब आप लोगोंका यश गा रहे हैं। अतः हे सुन्दर भाग्य-सम्पन्नाओ! मैं तुच्छ मति आप लोगोंकी क्या प्रशंसा करूँ? ॥१८॥

मदर्थमुत्सृज्य पुरं प्रजाश्च ह्यङ्गीकृतं नैकविधं च दुःखम्।
युष्माभिरत्रैव चिरेण राज्ञा प्रियात्मजैर्मन्त्रिभिरेव साकम् ॥१९॥

हा!! आप लोगोंने, मेरे लिये अपने नगर व प्रजाको छोड़कर, मन्त्रियों व प्यारे पुत्रोंके सहित, बहुत दिनों तक यहाँ महाराजके साथ साथ, अनेक प्रकारका कष्ट सहन किया है ॥१९॥

अहं न तत्प्रत्युपकर्तुमर्हा प्रयत्नशीला बहुजन्मभिर्वः।
नताऽस्मि मूर्ध्ना कृपयाऽत एव न मेऽपराधान्कुरुतात्मसंस्थान् ॥२०॥

उस उपकारका बदला पूर्ण यत्न करने पर भी मैं बहुत-जन्मोंमें भी नहीं चुका सकूँगी, इस लिये शिर झुका कर मैं आप लोगोंको प्रणाम करती हूँ, आप लोग मेरे अपराधोंको कृपा मनमें न रखियेगा ॥२०॥

प्रस्थानवेलासमुपागतेति श्रुत्वाऽस्मि भूपेन विमूढकृत्या।
इतः प्रयातेषु सुतेषु धैर्यं कथं ममैतेषु भवेत्स्वधाम ॥२१॥

यहाँ से आप लोगोंके प्रस्थान करनेकी शुभ घड़ी उपस्थित है, महाराजके द्वारा इस बातको सुनकर ही मैं, अपने कर्त्तव्यको विशेष रूपसे भूली जारही हूँ, तब यहाँ से इन चारो प्रिय पुत्रोंके अपने धाम (श्रीअवध) चले जाने पर, मुझे कैसे धैर्य होगा! ॥२१॥

नृपाङ्गना ऊचुः।

न राज्ञि! शोकाम्बुधिमग्नचित्तं विधेहि योगेश्वरपट्टकान्ते।
सुता तवेयं सकलेष्टदात्री शोकापहाऽऽह्लादवरैकमूर्त्तिः ॥२२॥

रानियाँ बोलीं:-हे योगविद्या पर पूर्ण अधिकार प्राप्त (श्रीमिथिलेशजी-महाराजजू) की पटरानीजू ! आपकी ये श्रीललीजी सम्पूर्ण वाञ्छित मनोरथोंको देने वाली, समस्त शोकोंको छीन लेनेवाली और आह्लादकी उपमा रहित मूर्ति हैं, इस लिये हे श्रीमहारानीजू ! आप अपना चित्त शोक रूपी सागरमें न डुबाइये ॥२२॥

वक्तुं न पद्मोऽप्यपराधयुक्तां त्वामर्हति ख्यातपवित्रकीर्त्ते ! ।
सिद्धाऽसि पुण्याऽसि शुचिव्रताऽसि सौभाग्यरत्नाम्बुधिविग्रहाऽसि ॥२३॥

हे अपनी पवित्र कीर्तिसे त्रिभुवन-विख्यात श्रीमहारानीजू ! भगवान् विष्णुकी नाभि-कमलसे प्रकट हुये श्रीब्रह्माजी भी आपको अपराध युक्त कहनेको समर्थ नहीं हैं, तब हम लोगोंमें क्या शक्ति है ? जो आपको अपराध युक्त मानकर क्षमाप्रदान करनेका साहस करें ? आप सम्पूर्ण साधनोंकी सिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं, पुण्य-स्वरूपा हैं, पवित्र व्रत वाली हैं और सौभाग्य रूपी रत्नोंके सागर की मूर्त्ति हैं ॥२३॥

दिनानि चैतानि गतानि येन सुखेन नित्योत्सवसंयुतेन ।
विस्मर्तुमर्हा न वयं कदाचित् तदित्यृतं विद्धि न च प्रशंसाम् ॥२४॥

हम लोगोंको यहाँ इतने दिवस जिस नित्योत्सव जन्य सुखसे व्यतीत हुये हैं उस सुखको हम कभी भी भुलानेको समर्थ नहीं हो सकतीं, आप यह सत्य जानिये, प्रशंसा नहीं ॥२४॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं गदन्त्यः सकलाः प्रजग्मुर्मिथो मिलित्वा पुनरेव भूयः ।
सुतान्नरेन्द्रस्य तदा सुनेत्रा समालिलिङ्गाश्रुमुखी सधैर्यम् ॥२५॥

भगवान शिवजी बोले:-हे प्रिये ! इस प्रकार प्रेमपूर्वक कथन करती हुई वे सभी रानियाँ परस्पर पुनःपुनः बार बार मिलकर प्रस्थान करती हुईं । तब अश्रुपूर्णमुखी श्रीसुनयना अम्बाजीने धैर्यपूर्वक श्रीचक्रवर्तिकुमारोंको हृदयसे लगाया ॥ २५ ॥

पश्यन्त्यथो गात्ररुचिं मनोज्ञामुत्सङ्ग आरोप्य सुलालयन्ती ।
वात्सल्यपूर्णेन हृदेदमूचे रामं प्रियं तच्चिकुरान्स्पृशन्ती ॥२६॥

तदनन्तर गोदमें लेकर, भली प्रकारसे लाड़ लड़ाती हुई व उनके श्रीअङ्गकी मनोहर छबिका दर्शन करती हुई तथा वात्सल्य पूर्ण हृदयसे उनके केशोंको स्पर्श करती हुई वे प्यारे श्रीराम भद्रजूसे बोलीं ॥

श्रीसुनयनोवाच ।

जानाम्यहं वत्स ! भवत्प्रसादात्त्वं योऽसि सच्चित्सुखराशिरूपः ।
श्रीरामभद्राम्बुजपत्रनेत्र ! स्वस्त्यस्तु ते गच्छ न विस्मरेर्माम् ॥२७॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं :-हे कमलनयन ! श्रीरामभद्रजू ! आप जो हैं, आपकी कृपासे मैं जानती हूँ। आप सत् (भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें एक रस रहने वाले) चित् (सब कुछ चैतन्यवान्) सुखराशि (आनन्द पुञ्ज) स्वरूप ब्रह्म हैं ना, आपका मङ्गल हो। आप जाइये पर मुझे भूलियेगा नहीं अर्थात् कृपा बनाये रहियेगा ॥२७॥

स्वस्त्यस्तु ते श्रीभरतोरुकीर्त्ते ! स्वस्त्यस्तु ते लक्ष्मण ! दीर्घबाहो ! ।
स्वस्त्यस्तु शत्रुघ्न ! च ते सदैव स्मृतिं न मुञ्चेत ममापि वत्साः ॥२८॥

हे विशाल कीर्त्ति श्रीभरत लालजी ! आपका मङ्गल हो। हे बड़ी-बड़ी भुजाओं वाले श्रीलखन लालजी ! आपका मङ्गल हो। हे श्रीशत्रुघ्नलालजी ! आपका सदा ही मङ्गल हो। हे सभी वत्सो ! (मेरा स्मरण अवश्य रखियेगा) भूलियेगा नहीं ॥२८॥

नेयं हि शङ्का हृदये विधेया श्रद्धत्स्व भावानुगता वयं तत् ।
अस्मासु गूढं सततं ममत्वं कार्यं नमो वो भवतीभिरम्ब ! ॥२९॥

चारो भइया बोले :-हे श्रीअम्बाजी ! आपको अपने हृदयमें यह शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि हम लोग सदा भावका ही अनुगमन करते हैं अर्थात् जो जिस भावसे हमारा भजन करता है, उसीके अनुकूल भावसे हम भी, उसका भजन करते हैं, यह आप विश्वास करें। और सदैव हम लोगोंके प्रति गुप्त ममता बनाये रक्खें, आप सभी माताओंके लिये हमारा नमस्कार है ॥२९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

त इत्थमाश्वास्य कुमारवर्या मुहुर्मुहुस्तामभिवाद्य ताश्च ।
नृपान्तिकं मातृभिरीयुरङ्गाप्रमेयकृच्छ्रेण तया विसृष्टाः ॥३०॥

चारो भइया, श्रीसुनयना अम्बाजीको इस प्रकार आश्वासन प्रदान करके वारं बार उन्हें और उन निमि (राजपत्नियों) को प्रणाम करके, श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा अनन्त कष्ट पूर्वक विदा किये हुये वे, अपनी माताओंके सहित श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके पास आये ॥३०॥

तेष्वागतेष्वम्बुजलोचनेषु प्रियेषु सार्द्धं जननीभिरेव ।
श्रीकोशलेन्द्रस्तु गुरोर्निदेशादुत्थाय योगीश्वरमालिलिङ्ग ॥३१॥

माताओंके समेत उन प्यारे कमललोचन राजकुमारोंके आजाने पर, श्रीवशिष्ठजी महाराज से आज्ञासे श्रीचक्रवर्तीजी महाराज उठकर योगीश्वर (योगियोंमें श्रेष्ठ) श्रीमिथिलेशजी महाराज को हृदय लगाकर मिले ॥३१॥

आश्वासयन्नूच इदं वचस्तं विदेहवंशाधिपतिं नृपेन्द्रः ।
श्रीजानकीतातमुदारकीर्त्तिं सुरेशसम्पूजितदीर्घबाहुः ॥३२॥

पुनः देवराज इन्द्रसे पूजनकी हुई जिनकी लम्बी भुजायें हैं, वे श्रीचक्रवर्तीजी-महाराज आश्वासन प्रदान करते हुये सर्वाभीष्ट प्रदायिनी कीर्तिवाले श्रीजनकनन्दिनीजूके पिता, विदेह वंशियोंके स्वामी, श्रीमिथिलेशजी महाराजसे यह वचन बोले ॥३२॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

प्रदीयतां मे भवता निदेशो गन्तुं ह्ययोध्यां निमिवंशभानो !
त्वं मा शुचो धर्मविदां वरिष्ठः प्रजापतीनां सुखमस्थिरं हि ॥३३॥

श्रीकोशलेन्द्र (दशरथजी महाराज) बोले:-हे निमिवंशियोंमें सूर्यके समान चमकने वाले राजन् ! आप हमें श्रीअयोध्याजी जानेके लिये आज्ञा प्रदान कीजिये, शोक न कीजिये क्योंकि आप धर्मका रहस्य जानने वालोंमें श्रेष्ठ हैं, अत एव आप स्वयं जानते ही हैं कि, प्रजापतियों (राजाओं) का सुख स्थिर नहीं रहता ॥३३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तथेति सम्भाष्य पुनर्यतात्मा तमब्रवीत्कोशलपालमुख्यम् ।
कृताञ्जलिः सन् प्रणिपत्य भूयो विवेकपाथोनिधिपूर्णचन्द्रः ॥३४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये ! श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके इन वचनोंको सुनकर, ज्ञान रूपी समुद्रको पूर्ण चन्द्रके समान बढ़ाने वाले, श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने मनको रोककर श्रीकोशलेन्द्रजी महाराजसे "ऐसा ही होगा" कहकर पुनः प्रणाम करके, हाथ जोड़े हुये बोले ॥३४॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

प्रजेश्वराणां च विचार्य धर्मं न वारणायाऽस्मि तवाहमर्हः ।
क्षमां प्रयाचे तदभूत्तु कष्टं यदत्र वासेन सुहृज्जनैस्ते ॥३५॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोले :-हे राजन् ! प्रजापतियों (राजाओं) के धर्मको विचारकर मुझे अब आपको रोकना उचित नहीं है, अत एव सुहृत्जनोंके सहित, यहाँ निवास करनेपर आपको जो कुछ कष्ट हुआ हो, उसके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ ॥३५॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

सुखं यदाप्तं वसता मयाऽत्र प्राप्तं न तन्नेन्द्रपुरं गतेन ।
अत्यद्भुताऽयोनिभवा सुपुत्री शं ते विधास्यत्यपि लाल्यमाना ॥३६॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी इस दीनता पूर्ण प्रार्थनाको सुनकर श्रीदशरथजी महाराज बोले हे राजन् ! आप यह क्या कह रहे हैं ? मैंने यहाँ रहते हुये जो सुख प्राप्त किया है वह इन्द्रलोक जाने पर भी मुझे न मिला था, अन्यत्रके लिये कहना ही क्या ? आपकी अयोनिसम्भवा (जो किसी के शरीरसे उत्पन्न नहीं हुई हैं वे) अद्भुत से परे परब्रह्म स्वरूपा श्रीललीजी, प्यार मात्र करनेसे आपका निश्चयही कल्याण करेंगी ॥ ३६ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्येवमुक्तो मिथिलाधिराजः सत्याधिराजेन च सानुरागम् ।
प्रणम्य तं दाशरथीनुपेत्य माहेति संश्लिश्य मुहुर्मुहस्तान् ॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-श्रीअयोध्यानाथजीके द्वारा इस प्रकार अनुराग पूर्वक सान्त्वनाको प्राप्त कराये हुवे वे श्रीमिथिलेशजी महाराज उन्हें प्रणाम करके, चारो राजकुमारोंके पास जाकर उन्हें बारम्बार हृदयसे लगाकर यह बोले:- ॥३७॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

भद्रं हि वो भानुकुलप्रदीपा लोकाभिरामाद्भुतदिव्यदेहाः ! ।
वत्साः सुखं गच्छत चाप्ययोध्यां सुखप्रदाः स्यात पुरौकसां वै ॥३८॥

हे सूर्यवंशरूपी भवनको विशाल दीपकके समान प्रकाशित करनेवाले ! हे आश्चर्यमय अप्राकृत, समस्तलोकोत्तर, सुन्दर शरीरधारी वत्सो ! आपलोगोंका मङ्गलहो ! आपलोग सुखपूर्वक श्रीअयोध्या जी पधारिये, और वहाँ के पुरवासियोंको सुख प्रदान कीजिये ॥३८॥

धन्यास्त एव श्रितपुण्यपुञ्जा येषां च वो दर्शनमन्वहं स्यात् ।
सुखं प्रदत्तं यदिहात्र मह्यं मनस्तदासक्तमथास्तु नित्यम् ॥३९॥

जिन्हें आपका दर्शन निरन्तर प्राप्त हो, वे श्रीअयोध्यानिवासी बड़े ही धन्य और पुण्यकी राशि हैं । आप लोगों ने यहाँ रहकर जो मुझे सुखप्रदान किया है, मेरा मन उसीमें सदाके लिये आसक्त होजावे ॥३९॥

श्रीराजकुमारा ऊचुः ।

मा तात ! शोकं व्रज सूक्ष्मदृष्टे ! न विस्मृता ते कृपया भवेम ।
चिन्तामणिर्यो भवतोपलब्धः स सर्वचिन्तापहरोऽवधार्यः ॥४०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी इस प्रार्थनाको सुनकर चारो श्रीराजकुमार बोले-हे तात ! आप

तो सूक्ष्य (ज्ञान) दृष्टि वाले हैं इस लिये दुखी न हों। कृपया हम लोगोंको विसारियेगा नहीं। आपको जो चिन्तामणि प्राप्त हुई है उसे आप सब चिन्ताओंकी हरने वाली समझिये ॥४०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

श्रीमैथिलेन्द्रो नृपसूनुभिश्च प्रोक्तस्तदैवं प्रणतश्च भक्त्या।
विष्टभ्य चात्मानममोघभावः प्रीत्याऽऽलिलिङ्गाथ पुनः पुनस्तान् ॥४१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज इतनी कथा सुनाकर बोले–हे प्रिये! जब श्रीचक्रवर्ती कुमारोंने इस प्रकार समझाया पुनः प्रेम पूर्वक प्रणाम किया, तब अमोघ भाव (जिनके सभी भाव सफल हैं, उन) श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपने हृदयको सम्हाल कर उन्हें बार बार प्रेमपूर्वक हृदयसे लगाया ४१

प्रणम्य भूयो नृपतिर्वशिष्ठं द्विजांश्च वृद्धानपि मन्त्रिणश्च।
सत्कृत्य सर्वान् विधिना स्तवैश्च प्रसादयित्वा स कृपां ययाचे ॥४२॥

तदनन्तर श्रीवशिष्ठजी महाराजको तथा श्रीअयोध्याजीके सभी ब्राह्मण, वृद्ध व मन्त्रियोंको प्रणाम करके, सभीका विधिपूर्वक सत्कार कर, उन्हें अपने प्रशंसा-पूर्ण वाक्योंसे प्रसन्न करके उन्होंने सभीसे कृपाकी याचना की ॥४२॥

तदा वशिष्ठेन महर्षिणाऽसौ नतः शतानन्द उदारतेजाः।
वियोगतापापहरो नृपस्य भवेरिति प्रोक्त उवाच नम्रः ॥४३॥

पुनः जब नमस्कार करने वाले उदार तेज युक्त, श्रीशतानन्दजी महाराजसे महर्षि श्रीवशिष्ठजी महाराज बोलेः–आप "श्रीमिथिलेशजी महाराजकी वियोग जनित तापको हरण करते रहियेगा" तब उन्होंने प्रणाम करके उनसे यह प्रार्थना की ॥४३॥

श्रीशतानन्द उवाच।

आज्ञानुकूलो भगवन्! सदा ते मुदाऽऽचरेयं भवतः प्रसादात्।
कृपा विधेया नृपतौ च राज्ञ्यां पुत्र्यां सदा ते च विदेहवंशे ॥४४॥

हे भगवन! आपकी कृपासे प्रसन्नतापूर्वक मैं सदा, आपके अनुकूल ही आचरणशील रहूंगा, पर आपभी श्रीमिथिलेशजी, श्रीसुनयना महारानी व श्रीललीजी तथा इस विदेहवंश के ऊपर अपनी सदैव कृपा बनाये रहियेगा ॥४४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

यैराधिताऽऽराध्यतमा परेषां कस्यानुकम्पाऽसुलभेह तेषाम्।
स बाढ़मुक्त्वा परिरभ्य भूपं ह्यालिङ्गयामास च तस्य बन्धून् ॥४५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले :–अहह ! जिनके ऊपर ब्रह्मादि देवताओंकी परम आराधना करने योग्य श्रीसर्वेश्वरीजी ही प्रसन्न हैं, उन निमि वंशियोंके लिये भला इस लोकमें किसकी कृपा दुर्लभ रहेगी अत एव उनकी इस प्रकारकी प्रार्थना सुनकर श्रीवशिष्ठजी महाराजने श्रीशतानन्दजी महाराज) से ऐसा ही होगा कहकर तथा श्रीमिथिलेशजी महाराजको बार बार हृदयसे लगाकर उनके भाइयोंको भी, आलिङ्गन प्रदान किया ॥४५॥

पुनर्विदेहः सह बन्धुभिर्वै श्रीकोशलेन्द्रं प्रणनाम भक्त्या ।
श्रीराजपुत्रानुरसा निगृह्य प्रेमातुरोऽभूत्पुनरेव राजा ॥४६॥

बारम्बार पृथ्वीपति श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपने भाइयोंके सहित श्रीदशरथजी महाराजको बड़े प्रेम पूर्वक प्रणाम किया । पुनः श्रीराजकुमारोंको हृदयसे लगाकर प्रेम विह्वल होगये ॥४६॥

सम्बन्धिनो लब्धधृतिः समर्च्य श्रीरामरूपाम्बुधिमग्नचित्तः ।
सभार्यकान् भूमिपतीनशेषान् प्रगन्तुकामान् स्तुतिभिः समीडे ॥४७॥

जब कुछ देर बाद उनके हृदयमें धैर्यकी प्राप्ति हुई, तब श्रीरामभद्रजूके रूप-समुद्रमें डूबे चित्त वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज, अपने सम्बन्धियोंका भी विधिपूर्वक, सत्कार करके अनेक प्रकारकी स्तुतियोंके द्वारा प्रस्थानके लिये उद्यत सभी सपत्नीक (महारानियोंके सहित) राजाओंको प्रसन्न करने लगे ॥४७॥

उपायनं नैकविधं प्रदाय श्रुतीडितः प्रीतितया ऽखिलेभ्यः ।
सुपुष्कलं वै बहुधानुरोधं संरक्तके राममसौ ददर्श ॥४८॥

जिनकी वेद भगवान् भी प्रशंसा करते हैं, वे श्रीमिथिलेशजी महाराज सभीको बड़ी प्रसन्नताके साथ हठपूर्वक पर्याप्त मात्रामें अनेक प्रकारकी भेट प्रदान करके श्रीराम भद्रजूका पुनः दर्शन करने लगे ॥४८॥

पुनः पुनः प्रार्थनयोरुभक्त्या स मन्त्रिभिर्भूमिपतिः किलोक्तः ।
प्रचोदितस्तर्हि महामुनिभ्यां कथञ्चिदाज्ञां प्रददौ हि गन्तुम् ॥४९॥

जब मन्त्रियोंने बारम्बार भक्तिपूर्वक प्रार्थनाकी, तब महामुनि श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीशतानन्दजी महाराजकी प्रेरणासे विवश होकर उन्होंने किसी प्रकार (बड़े कष्ट पूर्वक) प्रस्थान करनेकी आज्ञादी ॥

प्रबोध्य रामेण तदा नृपेन्द्रः पुरात्सुदूरं समुपागतोऽसौ ।
निवारितस्तं हृदि सन्निधाय सह प्रजाभिः पुरमाविवेश ॥५०॥

प्रजाके सहित श्रीमिथिलेशजी-महाराज जब अपने पुरसे बहुत दूर तक आगये, तब श्रीराम-भद्रजूने आश्वासन प्रदान करके जब उन्हें वापस लौटाया तब वे अपने हृदयमें उन्हें भली प्रकारसे विराजमान करके, पुरमें प्रवेश किये ॥५०॥

आश्वासयित्वा मधुरैर्वचोभिस्तं वै महायोगिनमात्मनिष्ठम् ।
समर्चितास्ते मुनयोऽपि सर्वे ह्यस्ताविषुः श्रीमिथिलां प्रणम्य ॥५१॥

ब्रह्मनिष्ठ, महायोगी उन श्रीमिथिलेशजी-महाराजको मधुर वचनोंके द्वारा आश्वासन प्रदान करके वे भगवत्तत्त्व-मनन शील उपस्थित महर्षिवृन्द भी, उनके द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजित हो, श्रीमिथिला-जीको प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥५१॥

ऋषय ऊचुः ।

जय जनकात्मजासुभगजन्मधरे ! मिथिले !
तव महिमानमीशहरिपद्मभवादिसुराः ।
यतमनसा गृणान्ति नितरामनुरागभरा
न त इह पारमीयुरमरास्तु कदापि शुभे ! ॥५२॥

ऋषि बोले:—हे श्रीजनकनन्दिनीजूकी सुन्दर जन्म भूमि श्रीमिथिलाजी ! आपकी महिमाको अनुराग-पूर्वक श्रीभोलेनाथजी, श्रीविष्णुभगवान्, श्रीब्रह्माजी आदि देव-वृन्द, एकाग्र मनसे सदा गाते हैं, तथापि वे कभी भी पार (अन्त) नहीं पाते, अतः हे मङ्गल स्वरूपे ! आपकी जय हो ॥५२॥

तव महिमानमीश इह को मिथिले ! गदितुं
तव जठरं यतोऽभिलषितं हि परात्परया ।
सुरनृपयोषितामनवलोक्य दृशाऽपि मुदा
गिरितनयारमाप्रभृतिपूज्यपदाम्बुजया ॥५३॥

हे श्रीमिथिलाजू ! श्रीपार्वतीजी, श्रीलक्ष्मीजी आदि महाशक्तियाँ ही वस्तुतः जिनके श्रीचरण-कमलोंकी पूजा करनेको समर्थ हैं, वे सर्वेश्वरी श्रीसाकेतविहारिणी श्रीकिशोरीजीने, देवताओं व राजाओंकी स्त्रियोंके जठर (पेट या गर्भ) को दृष्टि मात्रसे भी अपने ग्रहण करने योग्य न देखकर आपके उदरको ही योग्य समझकर प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया है, अत एव आपकी महिमा (परत्व) को भला इस जगत्‌में कौन वर्णन कर सकता है ? ॥५३॥

प्रतिपलमप्ययं हि विनयस्त्वयि चास्ति परो
दिश जनकात्मजाचरणपङ्कजयोः सुरतिम् ।
त्रिभुवन ईदृशं न सुखमम्ब ! कदापि जनैः
समयितमस्ति कर्णगतमेव न नो ह्यभवत् ॥ ५४ ॥

हे अम्ब ! आप, श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके श्रीचरण-कमलोंमें सुन्दर, अनुराग प्रदान कीजिये, यही हम लोगोंकी प्रतिपल आपसे मुख्य प्रार्थना है । इस प्रकारका सुख तीनों लोकोंमें कभी न किसी ने पाया है, न हम लोगोंने कभी, कानोंसे सुना है ॥५४॥

न हि तव यावदेव करुणा समुदेति परा
कथमपि तावदेव नहि राजसुताप्तिरिह ।
तव करुणैषिणो द्रुहिणविष्णुहरादिसुरा
अतिकुशला नमन्ति निवसन्ति गृणन्ति यशः ॥५५॥

जब तक आपकी महती कृपाका उदय नहीं होता, तब तक किसी प्रकारसे भी इस लोकमें श्रीमिथिलेश-राजकिशोरीजीकी प्राप्ति ही नहीं होती । इसी लिये परम चतुर ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवगण, आपकी कृपाकी अभिलाषासे सर्वदा आपको नमस्कार करते हैं, तथा आपमें निवास करते हैं । और सदा ही आप की महिमा गाते रहते हैं ॥५५॥

निमिकुलनन्दिनी यमनुपश्यति सार्द्रदृशा
स हि तव लब्धिमेति मिथिलेऽर्जितपुण्यचयः ।
असि जनकात्मजाप्रियतमा त्वममोघनुते !
मुहुरिह ते नमः सुखय नः सदये ! जननि ! ॥ ५६ ॥

हे श्रीमिथिलाजी ! निमि-कुलको आनन्द प्रदान करने वाली सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी, जिसको दयापूर्ण दृष्टिसे अवलोकन कर लेती हैं, उसी, सञ्चित पुण्य राशिसौभाग्यशाली, को आपकी प्राप्ति होती है, क्योंकि आप श्रीजनकनन्दिनीजूकी परम प्यारी हैं । हे दयालो ! माँ ! आपके लिये बारम्बार नमस्कार है । आपकी स्तुति व्यर्थ नहीं जाती, अत एव (पूर्वोक्त प्रार्थनानुसार श्रीकिशोरीजी के चरणकमलोंमें प्रेम प्रदान करके) हम लोगोंको सुखी कीजिये ॥५६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवं स्तुत्वा ससुखमगमन्यज्ञसंवीक्षणाय
प्राहूता ये परममुनयो ब्राह्मणा धर्मनिष्ठाः ।
राजानोऽन्ये विमलचरिताः शिल्पिनस्तद्वदेव
प्रागच्छंस्ते मुदितमनसः सत्कृता भावपूर्वम् ॥५७॥

इति पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

—ः मासपारायण-विश्राम १३ ः—

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले :–हे प्रिये ! इस प्रकार श्रीमिथिलाजीकी स्तुति करके भगवत्तत्व मनन शील वे महर्षि वृन्द सुखपूर्व विदा हुये । उसी प्रकार श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पुत्रीष्टि-यज्ञके दर्शनार्थ निमन्त्रणमें आये हुये, अन्य ब्राह्मण शुद्धाचरणशील धर्मात्मा राजा, शिल्पकारी आदि सभी लोग, श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा भाव पूर्वक सत्कार पाकर प्रसन्न, मनसे विदा हो, अपने-अपने देशोंको पधारे ॥५७॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

श्रीकिशोरीजीके दर्शनार्थ दैवज्ञा (ज्योतिषिनी) रूपमें श्रीब्रह्माजीका आगमनः —

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

प्रस्थितेषु च सर्वेषु विदेहनृपनन्दिनी ।
वियोगतापतप्तानां संबभूव परागतिः ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले :–हे प्रिये ! सपरिवार श्रीचक्रवर्तीजीके सहित सब लोगोंके विदा हो जाने पर–श्रीरामभद्रजूके वियोगतापसे तप्त लोगोंकेलिये, श्रीकिशोरीजी परम आधार हो गयीं ॥१॥

मासि मासि नवम्यां च तस्या जन्ममहोत्सवम् ।
कुर्वन्ती श्रद्धयोपेता न राज्ञी तृप्तिमृच्छति ॥२॥

श्रीसुनयना अम्बाजी प्रति मासकी शुक्ल नवमीके दिन परम श्रद्धा पूर्वक अपनी उन श्रीललीजी का जन्मोत्सव मनाती हुई तृप्त नहीं होती हैं । अर्थात् मैंने कुछ भी उत्सव नहीं मनाया, इस अतृप्तिकी भावनाही वे सदा बनाये रखती हैं ॥२॥

पञ्चमे मासि संप्राप्ते तदन्नप्राशनोत्सवः ।
विहितः सर्वलोकानां परमानन्ददायकः ॥३॥

पाँचवे मासमें, सभी लोकों का परम-आनन्द-प्रदायक श्रीललीजी का अन्न-प्राशन-महोत्सव मनाया गया ॥३॥

आजगाम तदा ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।
अशक्तः संस्तदा स्थातुं पुरीं श्रुत्वा जयध्वनिम् ॥४॥

सभी लोगोंके पिताके पिता (बाबा) श्रीब्रह्माजी उस समयके जयकारघोषको सुनकर आनन्दातिरेकके कारण जब ब्रह्म लोकमें विराजमान रहनेमें असमर्थ हो गये, तब श्रीमिथिला पुरीमें आपधारे ॥४॥

विदुषीरूपमास्थाय मनोज्ञं परमाद्भुतम् ।
प्रविवेश नृपागारं शतस्त्रीभिः समाकुलम् ॥५॥

और परम आश्चर्यमय ज्योतिषनी पण्डितानी का वेष धारण करके, सैकड़ों स्त्रियोंसे भरे हुये राजभवनमें जा घुसे ॥५॥

द्रष्टुमिच्छन् महाप्राज्ञो मैथिलीं शिशुविग्रहाम् ।
योषिद्रूपधरैर्देवैर्महाराज्ञ्या व्यदृश्यत ॥६॥

स्त्रियों का रूप बनाये हुये, देवताओंके समेत शिशु रूपमें विराजमान श्रीमिथिलेश ललीजूके दर्शनोंकी इच्छासे प्राप्त, उन महाबुद्धिमान् श्रीब्रह्माजी का दर्शन श्रीसुनयना महारानीजीने किया ॥६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

तस्य तेजोऽभिभूता सा सुचित्रामिदमब्रवीत् ।
केयं देवि ! प्रपश्याराऽऽदानयात्र च मेऽन्तिकम् ॥७॥

ब्रह्माजीके उस स्वरूपके तेजसे प्रभावित हो श्रीसुनयनामहारानीजी, रानी श्रीसुचित्राजीसे बोलीं:-हे देवि ! पासमें देखिये, यह कौन है ? पुनः इसे यहाँ मेरे समीपमें ले आइये ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्याज्ञप्तैत्य तां नत्वा सा पप्रच्छ कृताञ्जलिः ।
काऽसि त्वं कुत आयाता ह्यभिप्रायेण केन च ॥८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:- इस प्रकारकी आज्ञा पाकर श्रीसुचित्रारानीजीने ज्योतिषिनीजीके पास जाकर, प्रणाम करके हाथ जोड़कर पूछा :-आप कौन हैं? यहाँ कहाँसे और किस प्रयोजनसे पधारी हैं? ॥८॥

इति मां ज्ञातुमिच्छन्ती महाराज्ञी व्यसर्जयत् ।
तत्वं त्वं वद मे प्रीता कृपया त्वां नमाम्यहम् ॥९॥

इसीको जाननेके लिये हमें श्रीमहाराणीजीने आपके पास भेजा है। मैं आपको प्रणाम करती हूँ, आप प्रसन्न हो, कृपा पूर्वक (मेरे इस पूछे हुये) रहस्यको वर्णन कीजिये ॥९॥

श्रीब्रह्मोवाच।

नाभिपद्मभवेत्युक्ता दैवज्ञा कामरूपिणी ।
दर्शनार्थमहं प्राप्ता महाराज्ञ्या निजालयात् ॥१०॥

श्रीब्रह्माजी बोले:-मैं कामरूपिणी ज्योतिःशास्त्रको जानने वाली, "नाभिपद्मभवा" नामसे पुकारी जाती हूँ, श्रीमहारानीका दर्शन करनेके लिये यहाँ, अपने घरसे आई हूँ ॥१०॥

इमाः शिष्यास्तु मे विद्धि मन्निदेशानुवर्तिनीः ।
गच्छ तां सुभगे ! पृष्ट्वा कुरु नेतु कृपां हि माम् ॥११॥

और आज्ञानुसार चलने वाली, इन्हें मेरी शिष्यायें जानिये। हे सुन्दरी! जाइये, श्रीमहारानीजीसे पूछकर, उनके पास हमें ले चलने की कृपा कीजिये ॥११॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

राज्ञी श्रुत्वेप्सितं तस्याः सुप्रीता फुल्ललोचना ।
आनेतुं सा मुदाऽऽदेशं ददौ तामविलम्बतः ॥१२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये! श्रीसुनयना-महारानीजी, उन ज्योतिषिनीजीके अभिप्रायको जानकर बड़ी प्रसन्न हुई, उनके नेत्र खिल गये, और उन्हें शीघ्र ही लानेके लिये आनन्द-पूर्वक उन्होंने आज्ञा प्रदान की ॥१२॥

सुचित्रा तां पुनर्गत्वा महातेजःस्वरूपिणीम् ।
इदमाह वचो नत्वा सादरं सुप्रमाणिता ॥१३॥

परम सौन्दर्यसम्पन्ना, रानी श्रीसुचित्राजी, श्रीसुनयना महारानीकी आज्ञा पाकर, पुनः उन महातेजस्वरूपिणी नाभिपद्मभवाजीके पास जाकर, यह आदर पूर्वक बोलीं :-॥१३॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

एहि देवि ! मया सार्द्धं गच्छ सा त्वां दिदृक्षते ।
तयाऽऽज्ञप्ताऽस्मि सम्प्राप्ता भवती यां दिदृक्षते ॥१४॥

हे देवि ! आइये मेरे साथ चलिये, आप जिनका दर्शन करना चाहती हैं, वे भी आपका दर्शन करनेकी इच्छा कर रही है, एतदर्थ उनकी आज्ञासे मैं आपके पास (बुलाने) आई हूँ ॥१४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

महाकृपेति तामुक्त्वा दैवज्ञा सा प्रहर्षिता ।
शिष्याभिरावृता राज्ञीमुपागच्छत्तया सह ॥१५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये ! श्रीदैवज्ञाजी, श्रीसुचित्रारानीके वचनोंको सुनकर उनसे बडी कृपा है ऐसा कहकर, महान् हर्षको प्राप्त हो, शिष्याओंसे घिरी हुई, वे उनके सहित श्रीसुनयना महारानीजीके पास पधारी ॥१५॥

तां समुत्थाय धर्मज्ञा राज्ञी सुनयनाऽनघे !
विधाय स्वागतं तस्याः स्वासने संन्यवेशयत् ॥१६॥

धर्मके रहस्यको जानने वाली श्रीसुनयना महारानी उठकर, स्वागत करके भली प्रकारसे उन्हें अपने आसन पर, विराजमान करती हुईं ॥१६॥

विधिवत्पूजनं कृत्वा लालयन्ती पुनः सुताम् ।
उवाच परमोदारा विनीतेति च तां प्रति ॥१७॥

पुनः उनका विधि-पूर्वक पूजन करके, अपनी श्रीललीजीका दुलार करती हुईं, वे परम उदार स्वभाव सम्पन्ना, श्रीमहारानीजी उनसे यह विनय पूर्वक बोलीं :—॥१७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

इदं तेजस्तवाख्याति महत्वं ते दुरासदम् ।
स्वयमेव हि दैवज्ञे ! नापेक्षा श्रवणाय तत् ॥१८॥

हे श्रीदैवज्ञाजी ! आपका यह महान् तेज ही, स्वयं आपकी महिमाका वर्णन कर रहा है, इस लिये उसे सुननेकी हम आवश्यकता ही नहीं है ॥१८॥

मम भाग्योदयेनैव समाकृष्टा त्वमागता ।
अन्यथा मन्निकेते ते किमागन्तुं प्रयोजनम् ॥१९॥

आप मेरे भाग्यके उदय द्वारा ही यहाँ स्वयं खिचकर पधारी है, अन्यथा आप को मेरे भवनमें आनेका क्या प्रयोजन था ? ॥१९॥

पश्य मे पुत्रिकां देवि ! भविष्यं वक्तुमर्हसि ।
त्वयि मे महती श्रद्धा सञ्जाता दर्शनेन हि ॥२०॥

हे देवि ! आपके प्रति दर्शनमात्रसे ही मेरी बड़ी श्रद्धा हो गयी है, इस लिये आप श्रीललीजी को देखिये और इनके भविष्य का कथन कीजिये ॥२०॥

श्रीदैवज्ञोवाच ।

भद्रं तेऽस्तु महाभागे ! कल्याणीप्सितं तव ।
प्राङ्मुखी भव विस्तार्य सुतापादसरोरुहौ ॥२१॥

श्रीसुनयना महारानीकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीदैवज्ञाजी बोलीं :–हे महाभागे ! आपका कल्याण हो । मैं अवश्य आपकीइच्छा को पूरी करूँगी । आप अपनी श्रीललीजीके चरणकमलों को फैला कर (उन्हें गोदमें लिये हुई) अपना मुख पूर्वकी ओर कर लीजिये ॥२१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमाशंसितं वाक्यं वकाशी सा निशम्य तत् ।
बभूव प्राङ्मुखी हृष्टा प्रफुल्लकमलेक्षणा ॥ २२ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये ! श्रीदैवज्ञाजीके द्वारा इस प्रकारके कहे हुये वचनोंको सुनकर, विकाशा पुरीमें जन्मी हुई श्रीसुनयना महारानीजीके कमलके समान दोनों नेत्र पूर्ण खिल गये, और उन्होंने हर्ष युक्त हो, अपना मुख पूर्वकी ओर कर लिया ॥२२॥

चिरमालोक्य शिश्वङ्गीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
मातुरङ्कगतां दिव्यां दैवज्ञाऽऽसीत्सुविह्वला ॥ २३ ॥

श्रीअम्बाजीकी गोदमें, दिव्य शिशु अङ्गों वाली, सत् चित् आनन्दस्वरूपा, अनन्त ब्रह्माण्ड नायिका, सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी का दर्शन करके श्रीदैवज्ञाजी बहुत देर तक विह्वल रहीं ॥२३॥

संस्तभ्य पुनरात्मानं प्रेमसंरुद्धया गिरा ।
दत्तश्रीपादपाथोजतलदृष्टिस्तु साऽब्रवीत् ॥२४॥

पुनः अपने हृदयको सम्हालकर, श्रीललीजीके कमलवत् चरण-तलवोंमें दृष्टि रखकर वे प्रेम-रुद्ध (रुकी) वाणीसे बोलीं :–॥२४॥

श्रीदेवद्योवाच ।

वन्दे समस्तजगतां जननीं वरेण्यां सर्वेश्वरीं श्रुतिशिरोभिरुदीर्यमाणाम् ।
कारुण्यपूर्णसरसीरुहपत्रनेत्रां रामप्रियां प्रथितकीर्त्तिमतर्क्यरूपाम् ॥२५॥

जो समस्त चर-अचर प्राणियोंकी माता, सभीसे श्रेष्ठ, सभीपर शासन करनेवाली, करुणारससे पूर्ण कमलदलके समान विशाल लोचना हैं, जिनकी कीर्त्ति प्रसिद्ध है, स्वरूप तर्क शक्तिसे परे है, वेदान्त जिनका वर्णन कर रहे हैं, उन श्रीरामवल्लभाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२५॥

नाहं हरिर्न गिरिशो न सहस्रवक्त्रो वाणीगणेशगुरुशुक्रमहर्षयोऽपि ।
यस्याः प्रभावमनिशं कथयन्त आपुःपारं न तीव्रमतयो नम एव तस्यै ॥२६॥

जिनकी महिमाको रात्रिंदिवा वर्णन करते करते न मैं न भगवान् श्रीहरि, न शिवजी, न सहस्र मुख (शेष) जी, न सरस्वतीजी, न गणेशजी, न (देवाचार्य) श्रीबृहस्पतिजी, न (दैत्याचार्य) श्रीशुक्रजी न महर्षिवृन्द भी पार पासके, उन श्रीरामप्रियाजूकेलिये मेरा नमस्कार है ॥२६॥

यस्याः कलांशकलया किल माययेदं सञ्चाल्यते प्रबलसंसृतिचक्रमञ्जः ।
यन्नामसाररसिका भुवि भूरिभागा गच्छन्त्यनामयपदं प्रणता वयं ताम् ॥२७॥

जिनकी कला (शक्ति) कीअंशमात्र शक्ति रूपी माया, इस संसार रूपी प्रबल चक्रको अनायास चलाया करती है तथा जिनके नाम रूपी सारके रसास्वादन करने वाले, बड़ भागी लोग, सर्वव्याधि रहित, भगवद्धाम (श्रीसाकेत) को प्राप्त होते हैं, उन सर्वेश्वरी श्रीरामवल्लभाजूको हम प्रणाम करते हैं ॥२७॥

यस्या विना करुणया करुणाब्धिमूर्त्तेः प्राप्तिः कथञ्चिदिह दाशरथेर्न हि स्यात् ।
सा सर्वदाऽनुपमनित्यपवित्रकेलिः सच्चिन्मयी सुखनिधिः शरणं ममास्तु ॥२८॥

जिनकी कृपासे बिना करुणामूर्त्ति श्रीदशरथनन्दनजूकी प्राप्ति, किसी प्रकार भी नहीं होती। जिनकी क्रीडा सदा ही उपमा रहित, एक रस रहनेवाली व पवित्र है; वे सत्, चित्-मयी सुखोंकी निधि (भण्डार) सर्वेश्वरी श्रीरामवल्लभाजू मेरी रक्षा करें ॥२८॥

या चोदयाय जगतां मनसाऽप्यगम्या योगीश्वरक्रतुभिरात्तशिशुस्वरूपा ।
दृष्टिंगता समभवत्कृपया ममाद्य प्रीता निसर्गसदया मयि साऽस्तु नित्यम् ॥२९॥

जिनका मन भी मनन नहीं कर सकता, अन्य इन्द्रियोंकी बात ही क्या ? ऐसी होकर भी

जिन्होंने जगत्के कल्याणके लिए योगीश्वर (योगियोंके नियामक) श्रीमिथिलेशजी महाराजके बहानेसे शिशु रूप धारण किया है, और आज कृपाकरके मेरी आँखोंके सामने विराज रहीं हैं वे कारण-रहित, दयामयी, श्रीरामवल्लभाजू मेरे पर सदा प्रसन्न रहें ॥२९॥

नवनीतमृदुस्निग्धतनुध्येयाम्बुजाङ्घ्रये ।
स्वस्ति स्याच्च शशिश्रेणिविलसन्नखपङ्क्तये ॥३०॥

मक्खनके समान कोमल, चिकने, ध्यान करने योग्य, कमलके समान जिनके सुकोमल-मनोहर छोटे श्रीचरण हैं, चन्द्र पंक्तिके सदृश शोभायमान जिनके नखोंकी पंक्ति है, उन शिशुस्वरूप श्रीरामवल्लभाजूका मङ्गल हो ॥३०॥

मङ्गलं दिव्यचिह्नाय मङ्गलं पद्मपाणये ।
कम्बुकण्ठ्यै सुकर्णायै मङ्गलं शिशुमूर्त्तये ॥३१॥

जिनके सभी चिन्ह दिव्य हैं उनका मङ्गल हो। कमलके समान सुन्दर सुकोमल जिनके हाथ हैं उनका मङ्गल हो, शङ्खके सदृश तीन रेखाओं युक्त जिनका कण्ठ (गला) है उनका मङ्गल हो। सुन्दर कान व जिनका शिशुविग्रह है उन श्रीरामवल्लभाजूका मङ्गल हो ॥३१॥

पद्मपत्रपलाशाक्ष्यै तनुदत्यै च मङ्गलम् ।
मङ्गलं चारुबिम्बोष्ठ्यै सुनासायै च मङ्गलम् ॥३२॥

जिनके कमलदलके समान विशाल नेत्र व छोटे छोटे दान्त हैं, उनका मङ्गल हो। सुन्दर बिम्बा फलके समान अरुण (लाल) जिनके ओष्ठ व सुन्दर नासिका है, उन श्रीरामवल्लभा[illegible] मङ्गल हो ॥ ३२ ॥

मुकुराभकपोलायै सुस्मितायै च मङ्गलम् ।
दीर्घोन्नतसुभालायै सूक्ष्मकेश्यै सुमङ्गलम् ॥३३॥

शीशाके समान प्रतिबिम्ब ग्रहण करने वाले सचिक्कण (गोल) जिनके कपोल (गाल) हैं सुन्दर जिनकी मुस्कान है, उनका मङ्गल हो। जिनका विशाल व ऊँचा सुन्दर मस्तक तथा [illegible] कुंचित केश हैं उन श्रीसाकेताधीश्वरीजीका मङ्गल हो ॥३३॥

स्वस्ति वे मिथिलानाथगूढप्रेमैकमूर्त्तये ।
श्रीमत्सुनयनोत्सङ्गभूषणाय सुमङ्गलम् ॥३४॥

जो श्रीमिथिलेशजीमहाराजके गुप्त प्रेमकी उपमा रहित मूर्ति तथा श्रीसुनयनामहारानीजीके गोदकी भूषण हैं, उन श्रीसाकेतविहारिणीजू का मङ्गल हो ॥३४॥

मङ्गलं मृदुसर्वाङ्ग्यै स्वीक्षणायै सुमङ्गलम् ।
मङ्गलं कलहास्यायै मङ्गलं विधिपूर्त्तये ॥३५॥

जिनकेसभी अङ्ग कोमल व मनोहर चितवन हैं उनका मङ्गल हो। जिनका सुन्दर हास्य है, उनका मङ्गल हो। जो समस्त विधियोंकी पूर्त्ति स्वरूप हैं, उन श्रीरामवल्लभाजूका मङ्गल हो ॥३५॥

मङ्गलं रसरूपिण्यै भूमिजायै सुमङ्गलम् ।
मङ्गलं नृपनन्दिन्यै मङ्गलं मङ्गलाब्धये ॥३६॥

जो सभी रसोंकी मूर्त्ति हैं उनका मङ्गल हो, जो पृथ्वीसे प्रकट हुई हैं, उनका मङ्गल हो। जो नृप श्रीमिथिलेशजीमहाराजको आनन्द प्रदान करनेवाली हैं उनका मङ्गल हो, जो समस्त मङ्गलोंकी समुद्र स्वरूपा हैं, उन श्रीसाकेतविहारिणीजूका मङ्गल हो ॥३६॥

स्वस्ति वै मोदवर्षिण्यै जितमाधुर्यमूर्त्तये ।
स्वस्ति स्यान्महनीयानां गुणानामेकराशये ॥३७॥

जो आनन्दकी वर्षा करने वाली व अपनी छवि-माधुरीसे माधुर्यमूर्त्तिको पराजित करने वाली हैं, उनका मङ्गल हो। जो समस्त पूजनीय गुणोंकी उपमा रहित सर्वोत्तम राशि हैं, उन श्रीकिशोरीजी का मङ्गल हो ॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

इत्येवं मङ्गलं कृत्वा कृतार्थेनान्तरात्मना ।
दैवज्ञा श्रुतिसारज्ञा जगादेदं शुभं वचः ॥३८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये! इस प्रकार वेदतत्त्वको जानने वाली श्रीदैवज्ञाजी प्रसन्न अन्तः करणसे, श्रीमिथिलेश दुलारीजीका मङ्गल वाचन करके यह (पुनः) मङ्गल वचन बोलीं ॥३८॥

श्रीदैवज्ञोवाच।

इयं सर्वगुणोपेता सच्चिदानन्दविग्रहा ।
सुता तव महाभागे! सर्वमङ्गललक्षणा ॥३९॥

हे महासौभाग्य शालिनी श्रीमहारानीजी ! आपकी ये श्रीललीजी सब गुणोंसे युक्त सत्, चित् आनन्दस्वरूपा हैं; इनके सभी लक्षण मङ्गलमय हैं ॥३९॥

कर्त्री च कारयित्री च नियन्त्री परमाश्रयः ।
ब्रह्माण्डानामनन्तानामविज्ञातगतिः परा ॥४०॥

ये अनन्त ब्रह्माण्डोंकी ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि रूपोंसे उत्पत्ति, पालन व संहार करने वाली तथा अन्तर्यामी (ब्रह्म) स्वरूपसे उपर्युक्त अनेक रूपों द्वारा, कराने वाली हैं एवं विविध प्रकारके कार्योंका भार सभीको प्रदान करनेवाली, परम आधार स्वरूपा, सबसे परे हैं, इनकी महिमाको कोई भी आज तक नहीं जान पाया है ॥४०॥

सर्वसौभाग्यसम्पन्ना सर्वसौभाग्यदायिनी ।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्या सर्वदेवनमस्कृता ॥४१॥

ये सभी प्रकार सौभाग्यसे युक्त और सभी प्रकारका सौभाग्य-प्रदान करनेवाली हैं, सब मङ्गलोंकी मङ्गलस्वरूपा, तथा सभी देवताओंसे नमस्कार की हुई हैं ॥४१॥

शरण्या सर्वलोकानां पुण्यश्लोका परावरा ।
भूतादिमध्यनिधना मुनिध्येयपदाम्बुजा ॥४२॥

ये श्रीललाजी सभी प्राणियोंकी रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ, पुण्यचरित वाली, ब्रह्मस्वरूपा हैं इनका वास्तवमें न कहीं आदि है, न मध्य है, और न कहीं अन्त ही है, इनके श्रीचरण-कमल, मुनियों द्वारा ध्यान करने योग्य हैं ॥४२॥

अनन्तैश्वर्यसंयुक्ता जगदानन्दकारिणी ।
यज्ञवेदिसमुद्भूता सुतेयं कुलदीपिका ॥४३॥

यज्ञवेदीसे प्रकट हुई, निमिवंशको दीपके समान (अपनी महिमाके द्वारा) प्रकाश युक्त करने वाली, आपकी ये श्रीललीजी, चर-अचर मय समस्त प्राणियोंके लिये आनन्द करानेवाली, अनन्त-ऐश्वर्यसे युक्त हैं ॥४३॥

श्रुतिगीतयशोगाथा सर्वलोकेषु विश्रुता ।
सात्वतां परमाराध्या,सर्वज्ञा सर्वसिद्धिदा ॥४४॥

आपकी श्रीललीजी सभी लोकोंमें प्रसिद्ध, वैष्णवोंकी आराधना करने योग्य परम देवता,

सर्व काल व सर्व देशकी सभी बातोंको जानने वाली, तथा समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली हैं, इनके यश रूपी गाथाको भगवान् वेद गाते हैं ॥४४॥

सर्वभूतहिता नम्रा सर्वजीवानुकम्पिनी ।
शरच्चन्द्रमुखी चेयं परिभूतमहाच्छविः ॥४५॥

सभी प्राणियोंका वास्तविक हित करने वाली, परम सौशील्य-स्वभावसे युक्त, सभी जीवों पर दया करने वाली, अपनी सुन्दरतासे महाछविको लजावनहारी, शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान मुखारविन्द वाली येआपकी श्रीललीजी हैं ॥४५॥

अप्रमेयक्षमाम्भोधिरप्रमेयगुणाम्बुधिः ।
अप्रमेयाद्भुताशक्तिर्विलक्षणवैभवा ॥४६

इनकी क्षमा असीम समुद्रके समान अथाह है, ये गुणोंका अनन्त सागर और असीम आश्चर्य मयी शक्ति स्वरूपा सभीसे विलक्षण ऐश्वर्य वाली हैं ॥ ४६ ॥

भविष्यति सुतेयं तेऽप्रमेयानन्दवर्षिणी ।
ह्लादिनी जगतां नित्यमनवद्या यशस्करी ॥४७॥

आपकी श्रीललीजी वे प्रमाण आनन्दकी वर्षा करने वाली, स्थावर-जङ्गम-मय सभी प्राणियोंको नित्य आह्लाद प्रदान करनेवाली, प्रशंसा करने योग्य, यश कराने वाली होंगी ॥४७॥

नित्यनूतनचित्केलिः स्वसृभिः परिवारिता ।
वाटिकोपवनारामसरिच्छैलविहारिणी ॥४८॥

इनकी क्रीड़ा सदैव एक रस, नवीन, चैतन्य मयी होगी, ये अपनी बहिनोंसे घिरी हुई, वाटिका, उपवन, बगीचा नदी, पर्वतों पर विहार करने वाली हैं ॥ ४८ ॥

जनसम्मानदात्री च जनसम्मानतोषिता ।
रामस्य लोकरामस्य वल्लभेयं भविष्यति ॥४९॥

आपकी श्रीललीजी भक्तोंको सम्मान देने वाली, और भक्तोंके सम्मानसे प्रसन्न होने वाली हैं ये समस्त लोक तथा ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंको आनन्दित करनेवाले प्रभु श्रीरामजीकी वल्लभा (प्यारी) होवेंगी ॥४९॥

यैस्तोषिता न विधिना विविधोपचारैर्मंधक्रियास्त इह कोविदमानिनो वै ।
सेयं सदा कृपणभावपरप्रसन्ना येषां त एव खलु धन्यतमाः कृतार्थाः ॥५०॥

जिनके विधिपूर्वक अनेक प्रकारकी पूजन सामग्री रूप साधनोंसे आपकी श्रीललीजी प्रसन्न न हुई, उन्हें पण्डित बननेका अभिमान करना व्यर्थही है, क्योंकि उनकी क्रिया रूपी साधन निष्फल है। इससे यह निश्चित है, कि इनको रिझानेके साधनमें वे कुछ त्रुटि अवश्य कर रहे हैं, तब ज्ञानी वा चतुर कैसे ? जिनके दीन भावसे ये श्रीललीजी परम प्रसन्न है, वे ही निश्चय करके इस लोकमें धन्य और परम कृतकृत्य हैं ॥५०॥

बहुना किमिहोक्तेन भूरिभागा त्वमस्यसि ।
ययेदृशी सुता लब्धा लोकोत्तरगुणैर्युता ॥५१॥

इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? आप निश्चयही बड़भागिनी है, जिन्हें इस प्रकारकी अलौकिक गुणसम्पन्ना ये पुत्री रूपमें प्राप्त हैं ॥ ५१ ॥

धन्यमद्य दिनं राज्ञि ! धन्येयं घटिका शुभा ।
पावनं दर्शनं लब्धं मया तव सुदुर्लभम् ॥५२॥

आजका दिन धन्य है, मङ्गलमयी यह घड़ी धन्य है जिसके प्रभावसे मुझे आपका दुर्लभ व पावन दर्शन प्राप्त हुआ ॥५२॥

धन्यमस्ति हि मे भाग्यं शिशोस्ते चिरवाञ्छितम् ।
दर्शनं लभ्यते कामं यदिदानीं मया शुभम् ॥५३॥

मेरा भाग्य धन्य है, जो बहुत दिनोंसे इच्छित, आपकी शिशुके मङ्गलमय दर्शनोंको मैं इस समय प्राप्त कर रही हूँ ॥५३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

समाश्वास्य महाराज्ञी विदुषीं स्निग्धया गिरा ।
अमूल्यद्रव्यदानेन तर्पणार्थं मनोदधे ॥५४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले—हे प्रिये ! श्रीसुनयना महारानीजीने श्रीदैवज्ञाजीके इन प्रेम भरे वचनोंको सुनकर, अपनी सरस वाणी द्वारा आश्वासन प्रदान करके, मूल्य न कर सकने योग्य द्रव्योंके दान द्वारा उन्हें तृप्त करनेके लिये, मनमें विचार किया ॥५४॥

तन्निरीक्ष्याञ्जलिं बद्ध्वा प्राह सा गद्गदाक्षरम् ।
विदुषी विनयश्लाघ्या द्योतयन्ती नृपालयम् ॥५५॥

उनकी इस प्रवृत्तिको देखकर, प्रशंसाके योग्य विनय वाली, श्रीविदुषीजी निज तेजसे राजभवनको प्रकाशित करती हुई हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे बोलीं ॥५५॥

दैवज्ञोवाच ।

न चैतत्कामये राज्ञि ! प्राप्तमेव यदीप्सितम् ।
भद्रं ते परमोदारे ! सत्यमेतन्मयोच्यते ॥५६॥

हे परम उदार-स्वभाव वाली श्रीमहाराणीजू ! आपका कल्याण हो, हमें इस द्रव्यकी इच्छा नहीं है और जिसकी इच्छा थी, वह मिल गया, यह मैं आपसे सत्य कह रही हूं ॥५६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

तथाऽपि मम तोषाय भवत्या पूर्णकामया ।
प्रणतायाः कृपागारे ! काऽप्यनुज्ञा प्रदीयताम् ॥५७॥

दैवज्ञाजीकी लोभ रहित इस वाणीको सुनकर श्रीसुनयना महारानीजी बोलीं :-हे कृपाकी भवन स्वरूपा श्रीदैवज्ञाजी ! यद्यपि आप पूर्ण काम हैं, तथापि मेरे सन्तोषके लिये कुछ आज्ञा अवश्य प्रदान कीजिये ॥५७॥

श्रीदैवज्ञोवाच ।

अशनन्तीमहमिच्छामि द्रष्टुमेव तवात्मजाम् ।
सुमुखीं पद्मपत्राक्षीं किमन्यत्कथयामि ते ॥५८॥

श्रीअम्बाजीकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीदैवज्ञाजी बोलीं :-हे श्रीमहारानीजी ! कमलदलके समान विशाल, मनोहर जिनके नेत्र व सुन्दर मुखारविन्द हैं, उन आपकी सुन्दर मुखवाली श्रीललीजीको भोजन करते हुये मैं दर्शन करना चाहती हूँ, आपसे और दूसरी बात क्या कहूँ ॥५८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्ता महाराज्ञी सुनेत्रा संप्रहर्षिता ।
नानाविधं च मिष्टान्नं सद्यस्तत्र साऽऽनयत् ॥५९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले :-हे प्रिये ! यह सुनकर श्रीसुनयना महारानीने बड़े हर्षको प्राप्त हो, क्षणमात्रमें वहाँ अनेक प्रकारका मिष्टान्न मँगवा लिया ॥५९॥

विरच्यातिलघून् ग्रासान्दिशन्तीन्दुनिभानने ।
दैवज्ञायाः प्रपश्यन्त्याः सुताया विह्वलाऽभवत् ॥६०॥

पुनः अत्यन्त छोटे-छोटे कवल बनाकर, श्रीदैवज्ञाजीके दर्शन करते हुये, अपनी श्रीललीजीके चन्द्रमाके समान आह्लादकारी मुखारविन्दमें देती हुई विह्वल हो गयीं ॥६०॥

समाधायात्मनाऽऽत्मानं पनद्वाक्‌ पद्मनेत्रया ।
तृप्तायाः निमिभूषाया मुखप्रक्षालनं कृतम् ॥६१॥

तत्पश्चात् कमललोचना श्रीसुनयनाजी-महारानीने शीघ्र ही अपने आपको सम्हाल कर, भोजनसे तृप्त हुई, निमिवंशको भूषणके समान सुशोभित करने वाली श्रीललीजीके मुखारविन्दको धोया ॥६१॥

नाभिपद्मभवा तर्हि वाचा प्रेमनिरुद्धया ।
उवाच मधुरं वाक्यं महाराज्ञीं कृताञ्जलिः ॥६२॥

श्रीनाभिपद्मभवाजी तब प्रेमसे लड़खड़ाती हुई वाणी द्वारा हाथ जोड़कर श्रीमहाराणीजीसे मधुर (मीठे) वचन बोलीं :—॥६२॥

श्रीनाभिपद्मभवोवाच ।

अस्मिन् पात्रस्थमिष्टान्ने लोभो मे जायते महान् ।
अनेन पुण्यदानेन सत्कृता स्यां यथोचितम् ॥६३॥

हे श्रीमहाराणीजी ! इस थालमें रक्खे हुये मिष्टान्नके प्रति मेरे हृदयमें बहुत लोभ उत्पन्न हो गया है, अत एव यदि आप मेरा सत्कार करना ही चाहती हैं तो, इस शेष मिष्टान्नको हमें प्रदान कर दीजिये ! इस पुण्य मय दानके द्वारा मेरा पूर्ण समुचित सत्कार हो जावेगा ॥६३॥

न विचारोऽत्र कर्त्तव्यः कोऽपि मे ऽभीष्टसिद्धये ।
भवत्या प्रेमतत्त्वज्ञे ! प्रार्थयामि पुनः पुनः ॥६४॥

हे प्रेम तत्त्वको जानने वाली श्रीमहाराणीजी ! मैं बारम्बार आपसे प्रार्थना करती हूँ, मेरे अभिलापकी पूर्तिके लिये मैं श्रीललीजीका उच्छिष्ट इन्हें कैसे दूँ ! इस प्रकारका आप कोइ विचार न कीजिये अर्थात् सब तर्क वितर्क छोड़कर मेरी भावनाकी पूर्तिके लिये आप श्रीललीजीके थालका शेष मिष्टान्न-प्रसाद हमें अवश्य प्रदान कीजिये ॥६४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

दृष्ट्वाऽनुरोधमुत्फुल्लनवपङ्कजलोचना ।
प्रादिशत्तत्तु मिष्टान्नं विदुष्यै प्रेमनिर्भरा ॥६५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले :—हे प्रिये ! श्रीदेवज्ञाजीके इस अनुरोधको देखकर, श्रीसुनयना अम्बाजीके नेत्र रूपी नवीन कमल पूर्ण खिल गये, प्रेम निर्भर हो उन्होंने श्रीललीजीके थालका वह शेष (प्रसाद भूत) मिष्टान्न उन श्रीदेवज्ञाजीको प्रदान कर दिया ॥६५॥

मिश्रणेन तदखिलं विधायैकविधं हि सा ।
शिरःस्पृष्टं स्वशिष्याभ्यः प्रायच्छत्परया मुदा ॥६६॥

श्रीदैवज्ञाजी उस अनेक प्रकारके मिष्टान्नको मस्तकमें लगाकर तथा एकमें मिलाकर अपनी शिष्याओंको बड़े ही आनन्द पूर्वक प्रदान करने लगीं ॥६६॥

पुनस्तु शेषनैवेद्यं सुप्रणम्य पुनः पुनः ।
तदाश परया प्रीत्या नृत्यन्ती नृपमन्दिरे ॥६७॥

पुनः वितरणसे बचे हुए नैवेद्यको वे बारम्बार प्रणाम करके तथा राजभवनमें नाचती हुई बड़े ही प्रेम-पूर्वक, स्वयं पाने लगीं ॥६७॥

अथ चित्तं समाधाय राज्ञीमुपगता तु सा ।
मैथिलीपादपाथोजतलरेखा न्यवैक्षत ॥६८॥

तत्पश्चात् अपने चित्तको सावधान करके, श्रीसुनयना अम्बाजीके समीपमें जाकर, श्रीललीजीके चरण-कमलोंकी रेखाओंका दर्शन करने लगीं ॥ ६८ ॥

दर्शयन्ती निजाः शिष्याः कथयन्ती मनोहराः ।
कृतार्थाऽऽसीच्च नेत्राभ्यां स्पृशन्ती ता मुहुर्मुहुः ॥६९॥

पुनः अपनी शिष्याओंको उन मनोहर रेखाओंका दर्शन कराती तथा उनका वर्णन करती हुई वे अपने नेत्रोंसे बारम्बार उन्हें स्पर्श करती हुई कृतकृत्य हो गयीं ॥ ६९ ॥

कृपाकटाक्षमासाद्य वाचयित्वा च मङ्गलम् ।
सत्कृता विधिना राज्ञ्या गमनायोद्यताऽभवत् ॥७०॥

श्रीललीजीका मङ्गल-वाचन करके, श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा विधिपूर्वक सत्कार, तथा श्रीललीजीकी कृपाकटाक्षको प्राप्त होकर, श्रीदैवज्ञाजी चलनेको उद्यत हुईं ॥ ७० ॥

राज्ञी तर्हि महामतिःसुनयना सौभाग्यसंभूपिता ।
दैवज्ञां प्रणिपत्य दीनवचसा प्रीता स्तुतां सादरम् ॥
कृच्छ्रेणापि विसृज्य चन्द्रवदनासंशोभानाऽऽलिभि-
स्तस्तथौ सा तु सुविस्मया चकितधीः सौवर्णसिंहासने ॥७१॥

इत्येकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

—ः नवाहपारायण-विश्राम ४ ः—

तब महामति, सौभाग्यरूपी भूषणोंसे सुसज्जित, प्रसन्न हुई श्रीसुनयना महारानीजी, दीनवचनों से स्तुति करके, श्रीदैवज्ञजीको आदर सहित प्रणाम पूर्वक बड़ी कठिनतासे विदा करके, अपनी चन्द्र वदना (चन्द्रमाके समान मुख वाली) श्रीललीजीके द्वारा सुशोभित, श्रीसुचित्रा महारानीके साथ, अपनी सखियोंके सहित, सुन्दर सोनेके सिंहासन पर विराजमान हुईं, परन्तु श्रीललीजीकी महिमा व दैवज्ञजीके प्रेमको स्मरण करके उनकी बुद्धि आश्चर्य-युक्त हो गयी ॥७१॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

श्रीकिशोरीजीके दर्शनार्थ श्रीलक्ष्मीनारायण भगवानका ब्राह्मण रूपमें आगमन।

श्रीशिव उवाच।

अथ सर्वेश्वरी सीता शुक्लपक्षशशाङ्कवत् ।
ववृधे सर्वलोकनां परश्रेयोऽर्थसिद्धये ॥ १ ॥

तदन्तर भक्तोंके सब दुःख व पापोंको हरण करनेवाली, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिके नियामक भगवान् श्रीरामजीकी प्राणवल्लभा, श्रीमिथिलेशराजललीजी, समस्त लोकोंके परम कल्याण रूपी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये इस प्रकार बढ़ने लगीं, जैसे शुक्ल पक्षका चन्द्रमा, दिनानुदिन वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

जानुभ्यां करपद्माभ्यां रिङ्गमाणा नृपाजिरे ।
क्रीडन्ती शुशुभे सा वै स्वसॄणामधिकं गणे ॥२॥

अपनी बहिनियोंके झुण्डमें, दोनों घुटुनों और हाथोंके सहारे राजभवनमें, धीरे धीरे चलती हुई, बहुतही शोभाको प्राप्त होने लगीं ॥ २ ॥

माता सुनयना तस्या पश्यन्ती बालचेष्टितम् ।
महानन्दार्णवे मग्ना दिवारात्रं न बुध्यते ॥३॥

श्रीसुनयनाअम्बाजीने श्रीललीजूकी बालचेष्टाओंको देखती हुई, महान् आनन्दमें निमग्न रहनेके कारण, रात दिनकी सुधि भुला दी अर्थात् उन्हें दिन रातका भान ही मिट गया ॥३॥

अदृष्ट्वा ज्योनिजां वाम प्रत्यह निमिवंशजाः ।
कथञ्चिन्नाधिगच्छन्ति शम विस्फारितेक्षणाः ॥४॥

निमिवंशकी बालिकायें प्रति दिन बिना श्रीअयोनिजा (श्रीमिथिलेशललो) जीका इच्छानुसार दर्शन किये हुये, किसी प्रकार भी शान्तिको प्राप्त नहीं होतीं, उनके नेत्र दर्शनोंके लिये फैले ही रहते ४

तस्मादागमनं नित्यं विदेहकुलयोपिताम् ।
नृपागारे भवत्येव परमानन्दसिद्धये ॥ ५ ॥

इस हेतु श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवनमें, परम (भगवज्जनित दिव्य) आनन्दकी सिद्धिके लिये विदेहवंशकी सभी स्त्रियोंका नित्य ही आगमन होने लगा ॥५॥

तृतीयाब्द उपायाते कर्णवेधविधिं व्यधात् ।
राज्ञी सुनयना पुत्र्या महोत्सवसमन्वितम् ॥६॥

श्रीसुनयना महारानीजीने प्राकट्यके तीसरे वर्षमें, महान् उत्सवके साथ, अपनी श्रीललीजीके कर्णवेध (कान छेदन) नामक विधिको सम्पन्न किया ॥६॥

आससाद ततो विष्णुः सकान्तः कमलेक्षणः ।
विप्ररूपधरो देवो जनकेनाभिवादितः ॥७॥

तब अपनी प्रिया श्रीलक्ष्मीजीके सहित, कमलनयन श्रीविष्णु भगवान्, ब्राह्मण-रूपको धारण करके पधारे। उन्हें श्रीमिथिलेशजी महाराजने प्रणाम किया ॥७॥

सत्कृतो विधिना तेन विधिज्ञेन यथोचितम् ।
आह बद्धाञ्जलिं भूपं विनीतं तं स देवराट् ॥८॥

विधिको जानने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज, जब विधि पूर्वक उनका उचित सत्कार कर चुके तब वे, देवोंके सम्राट् प्रभु, विनम्र भावसे उपस्थित हाथ जोड़े हुये उन श्रीमिथिलेशजी महाराजसे बोले ॥ ८ ॥

ब्राह्मणोऽस्मि महाभाग ! पत्नीयं मम शोभना ।
चिरसंदर्शनाकाङ्क्षी पुत्र्यास्तव समागतः ॥९॥

हे महाभाग ! मैं ब्राह्मण हूँ और ये सुन्दरी मेरी धर्म पत्नी हैं, बहुत दिनोंसे आपकी श्रीललीजीके दर्शनोंकी इच्छा रखता हुआ मैं, (इस समय) आया हूँ ॥९॥

तदहं प्राप्तुमिच्छामि भद्र ते नृपसत्तम !
विलम्बं न क्षमः सोढुं तद्भवान् कुरुतात्कृपाम् ॥१०॥

हे नृपोंमें परम श्रेष्ठ! श्रीमिथिलेशजी महाराज! वही (श्रीललीजीका दर्शन) मैं प्राप्त करना चाहता हूं, आपका कल्याण हो, अब दर्शनोंका विलम्ब सहन करनेके लिये मैं असमर्थ हूं अतः आप कृपा कीजिये अर्थात् हमें शीघ्रही श्रीललीजीका दर्शन करा दीजिये ॥१०॥

श्रीजनक उवाच।

देवतुल्य! दयासिन्धो! भक्तानुग्रहकारक!
प्रविश्यान्तः पुरं शीघ्रं पुत्रीं मे द्रष्टुमर्हसि ॥११॥

यह सुनकर श्रीजनकजी महाराज बोले:—हे देवोंके समान! दयाके समुद्र, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले श्रीब्राह्मण देव! आप मेरे रनिवासमें पधारकर, मेरी श्रीललीजीका दर्शन कीजिये ॥११॥

प्रपुनीहि गृहं नाथ! मदीयं पादपांसुभिः।
देव्या सहाशिषं दातुं मम पुत्र्यै कृपां कुरु ॥१२॥

और अपने चरण-कमलोंकी धूलिसे राज-भवनको पूर्ण पवित्र कीजिये तथा श्रीदेवीजीके सहित हमारी श्रीललीजीको आप आशीष देनेकी कृपा करें ॥१२॥

त्वां समालोक्य विप्रेन्द्र! हृदयं मे प्रतुष्यति।
महतीं ते कृपां दृष्ट्वा सत्यमेतन्मयोच्यते ॥१३॥

हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ! आपका दर्शन करके तथा आपकी महती कृपाको देखकर, मेरा हृदय बहुत ही सन्तोषको प्राप्त हो रहा है, यह मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ, केवल प्रशंसा ही नहीं करता॥

श्रीशिव उवाच।

एवमुक्त्वा तमादाय स्वावरोधं समाविशत्।
पूज्यमानः सखीभिश्च द्वाःस्थिताभिर्मुदान्वितः ॥१४॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे श्रीपार्वतीजी! इतना कह कर श्रीमिथिलेशजी महाराज, ब्राह्मण वेषधारी उन भगवानको साथ लेकर, द्वार पाली करने वाली सखियों द्वारा पूजित होते हुये, हर्ष-पूर्वक अपने महलमें पधारे ॥१४॥

आगतं क्षितिपालेन परीतं भार्यया द्विजम्।
स्वयं तु स्वागतं चक्रे राज्ञी सुनयनाऽऽदरात् ॥१५॥

महाराजके साथ स्त्री-सहित ब्राह्मण देवको आये हुये देखकर, श्रीसुनयना अम्बाजीने आदर पूर्वक उनका स्वयं स्वागत किया ॥१५॥

सम्पूज्य विधिना भक्त्या श्रद्धया शोभमानया ।
तौ वयस्याभिरिन्द्वास्याऽऽजुहाव स्वयमात्मजाम् ॥१६॥

श्रद्धासे शोभायमान भक्तिके सहित, चन्द्रमुखी श्रीसुनयना अम्बाजीने अपनी सखियोंके समेत विधिपूर्वक, उन दोनों ब्राह्मणी-ब्राह्मणका पूजन करके स्वयं श्रीललीजीको बुलाया ॥१६॥

आजगाम तदा तत्र स्वसृभिः परिवारिता ।
सा जनन्या समाहूता मैथिली पद्मलोचना ॥१७॥

श्रीअम्बाजीके द्वारा बुलाने पर, कमलके समान सुन्दर नेत्रवाली, वे श्रीमिथिलेशललीजी अपनी बहिनियोंसे घिरी हुई, वहाँ आपधारीं ॥१७॥

तां परिष्वज्य बिम्बोष्ठीं चलत्कुञ्चितकुन्तलाम् ।
प्रणामं कारयामास दम्पत्योः पादपद्मयोः ॥१८॥

बिम्बाफलके समान लाल ओष्ठ और चलायमान घुंघुराले केश वाली, श्रीललीको हृदयसे लगाकर श्रीअम्बाजीने दम्पती (ब्राह्मणी ब्राह्मण) जीके चरण-कमलोंमें प्रणाम कराया ॥१८॥

तस्या दृष्ट्वैव तौ रूपं नेति नेतीति कीर्त्तितम् ।
वाष्पपूर्णविशालाक्षौ निःसञ्ज्ञौ तौ बभूवतुः ॥१९॥

ऐसा ही नहीं, इतना ही नहीं अर्थात् इससे भी विलक्षण, असीम कहे हुये श्रीललीजीके स्वरूपका दर्शन करके उनके नेत्रोंमें जलभर आया और वे क्षणमात्रमें मूर्छित हो गये ॥१९॥

अत्यन्तचकिता राज्ञी तदुद्वीक्ष्य नृपेण सा ।
बभूव तनयामङ्क उपवेश्य स्मिताननाम् ॥२०॥

मन्द मुस्कान युक्त श्रीललीजीको गोदमें बैठाकर, उन दोनोंकी उस प्रेम-मयी अवस्थाको देख कर श्रीमिथिलेशजी महाराजके सहित, श्रीसुनयना अम्बाजीको अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥२०॥

पुनरुन्मील्य नयने यतचित्तौ नृपात्मजाम् ।
अपश्यतां महोदारां दम्पती पूजितावुभौ ॥२१॥

पुनः वे दोनों ब्राह्मणी-ब्राह्मण अपने नेत्रोंको खोल कर, चित्तको अपने वशमें लाकर, महान् उदार स्वभावा श्रीललीजीका दर्शन करने लगे ॥२१॥

शारदिन्दुमुखीं नित्यमरालमृदुकुन्तलाम् ।
नीलपद्मपलाशाक्षीं सुभ्रुवं कीरनासिकाम् ॥२२॥

शरदऋतुके चन्द्रमाके समान जिनका मनोहर मुखारविन्द, घुंघुराले कोमल केश, नीलकमल-दलके समान विशाल नेत्र, सुन्दर भौंह, सुग्गाके समान नासिका (नाक) हैं। जो सदा एक रस रहने वाली हैं ॥२२॥

सुकपोलां सुदशनामरुणोष्ठाधरश्रियम् ।
अनिम्नचारुचिबुकां सुकर्णामुरुमस्तकाम् ॥२३॥

जिनके सुन्दर कपोल, मनोहर दान्त, लाल कान्तिसे युक्त अधर-ओष्ठ, ऊँची सुन्दर ठोढ़ी, मनोहर कान तथा विशाल मस्तक है। २३॥

महोदारकराम्भोजां कम्बुकण्ठीं कलस्मिताम् ।
सुसूक्ष्ममध्यमां सीतां गूढगुल्फपदाम्बुजाम् ॥२४॥

अत्यन्त उदार जिनके हस्तकमल, शङ्खके आकारका कण्ठ (गला), मनोहर मुस्कान, सुन्दर पतली कमर, छिपे हुये गुल्फों (पैरकी गाँठियां) वाले, कमलके समान सुकोमल चरण हैं ॥२४॥

चन्द्रिकांशूल्लसद्भालां कज्जलान्वितलोचनाम् ।
ताटङ्कविलसत्कर्णां मौक्तिकान्वितनासिकाम् ॥२५॥

चन्द्रिकाकी किरणोंसे, जिनका मस्तक सुशोभित है, काजल लगे हुवे नेत्र, कर्णफूलोंसे सुशोभित कान, और नासामणिके शृङ्गारसे युक्त जिनकी नासिका है ॥२५॥

निष्ककण्ठीमुरोभूषासंदीप्तहृदयस्थलीम् ।
कङ्कणान्वितहस्ताब्जां मेखलाद्युतिमत्कटिम् ॥२६॥

जिनके कण्ठमें मोतीकी कण्ठी है, तथा जिनका हृदयस्थल विविध प्रकारके हार आदि भूषणों द्वारा पूर्ण रूपसे प्रकाशमान है, जिनके हस्त-कमल कङ्कण (कँगना) से विभूषित हैं, जिनकी कमर करधनीसे प्रकाश युक्त है ॥२६॥

नूपुरान्वितपादाब्जां नीलशाटीसुशोभिताम् ।
अनन्यङ्कममार्गीनां मैथिलीं पुष्पमालिनीम् ॥२७॥

जिनके चरण-कमल नूपुरोंके शृङ्गारसे युक्त हैं, नीली साड़ीसे जो शोभायमान, फूलोंकी मालाको धारण किये हुये श्रीरामजीकी गोदमें विराजमान हैं उन श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीका ॥२७॥

भूयो भूयः समालोक्य तां मुदान्वितचेतनौ ।
ऊचतुर्हर्षपूर्णाङ्गौ कृपानन्दद्वया गिरा ॥२८॥

वारम्वार दर्शन करके वे दोनो श्रीनारायणी नारायणी आनन्द युक्त चित्त, व हर्ष पूर्ण नेत्र होकर गद्गद्वाणीसे बोले :-॥२८॥

श्रीद्विजदम्पत्यूचतु ।

सदेयं हेमाङ्गी विमलविधुसम्मोहिवदना
सुकेशी बिम्बोष्ठी तडिदमलकुन्दाभदशना ।
वयस्याभिः साकं नृपतिनिलये रिङ्गणपरा
विभाव्या नौ कामं भवतु निमिवंशेनतनया ॥२६॥

जिनका श्रीअङ्ग, सोनेके समान गौर वर्ण है, निर्मल (स्वच्छ) चन्द्रमाको मुग्ध करनेवाला जिनका मुखारविन्द है, सुन्दर जिनके केश है, बिम्बाफल (कुन्दरू) के समान लाल ओष्ठ और बिजुलीके सदृश चमकते हुये स्वच्छ जिनके कुन्दके समान दाँत हैं, वही ये निमिवंशको सूर्यके सदृश प्रकाशमान करनेवाले श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजी, सखियोंके सहित, राज भवनमें विहार करती हुई, इच्छानुसार भावना करनेके लिये हम दोनोंको सदा सुलभ होवें ॥२६॥

धरापुत्री प्रीता प्रणयवशगा प्रीतिजलधिः
कृपापारावारा स्वसुगणपरीता स्मितमुखी ।
जनन्याः क्रोडस्था निखिलशुभलक्ष्माङ्कितपदा
मुदा नौ ध्येयाङ्घ्रिर्भवतु निमिवंशेनतनया ॥३०॥

भक्त लोग प्रणय (नम्रतायुक्त प्रेम) के द्वारा जिन्हें अपने वशमें कर लेते है, जिनकी प्रीति समुद्रके समान अथाह है, कृपाकी जो सागर है, मुस्कान युक्त जिनका मुखारविन्द है, जिनके श्रीचरणकमल, सम्पूर्ण मङ्गलमय चिन्होंसे सुशोभित हैं, व भूमि देवीकी पुत्री, निमिवंशको सूर्यके समान प्रकाश युक्त करने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजी, प्रसन्न होकर हम दोनोंके ध्यानके लिये आनन्द पूर्वक सुलभ श्रीचरणकमल वाली होवें अर्थात् हम दोनोंके लिये उनके श्रीचरणकमलोंका ध्यान सदा सुलभ रहे ॥३०॥

चलत्सूक्ष्मस्निग्धभ्रमरसयनारालचिकुरा
विशालाक्षी सुभ्रूः सुभगतरभाला सुचिबुका ।
सुनासा सुग्रीवा सरसिजकराम्भोजचरणा
मदीये सच्चित्ते वसतु निमिवंशेनतनया ॥३१॥

जिनके डोलते हुये महीन, चिकने, भौंरोंके समान काले, सघन व घुंघुराले केश हैं, बड़े-बड़े जिनके नेत्र हैं, सुन्दर भौंहें हैं और जिनका मस्तक परम सुन्दरतासे युक्त है सुन्दर जिनकी ठोढ़ी है, जिनकी नासिका व ग्रीवा (कण्ठ) बड़ी सुहावनी है, कमलके समान जिनके हाथ व पैर हैं, वे निमिवंशको सूर्यके समान प्रकाश पूर्ण करने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजी, मेरे चित्तमें निवास करें ॥३१॥

सखीभिः क्रीडन्ती विविधमणिखेलोपकरणै-
गृहे रम्ये मातुः परमकमनीयेन्दुवदना ।
प्रवर्षन्मुद्रूपा ननु सुनयनाप्राणनिलया
सुखाराध्या ऽजस्रं भवतु निमिवंशेनतनया ॥३२॥

जिनका चन्द्रमाके समान परम सुन्दर मुखारविन्द है, बरसते हुये आनन्दकी जो स्वरूप और श्रीसुनयना अम्बाजीके प्राणोंकी निवास भवन हैं, वे निमिवंशको सूर्यके सदृश प्रकाशित करने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजी, मणियोंके अनेक प्रकारके खेलौनोंके द्वारा श्रीअम्बाजीके सुन्दर महलमें, सखियोंके साथ खेलती हुई श्रीललीजी, हम दोनोंके लिये सदा सुख-पूर्वक आराधना करनेको सुलभ होवें ॥३२॥

सदा ऽस्यै स्वस्त्यस्तु प्रथितचरितायै सुमतये
परश्रेयोदात्र्यै जगदखिलमाङ्गल्यनिधये ।
सुतायै ते राजन्नशिशुरशिमुख्यै सुरुचये
महाराज्युत्सङ्गे विहरणपरायै सुनतये ॥३३॥

हेराजन् ! जिनके चरित प्रसिद्ध हैं, सुन्दर जिनकी मति है, जो भक्तोंके लिये परम कल्याणको प्रदान करने वाली व जगतके सम्पूर्ण मङ्गलोंकी भण्डार हैं । जिनकी सुहावनी कान्ति है, मङ्गल व (सुखमय जिनका नमस्कार है) पूर्ण चन्द्रमाके समान जिनका आह्लादवर्द्धक, श्रीमुखारविन्द है, श्रीसुनयना अम्बाजीकी गोदमें विहार करनेवाली आपकी उन श्रीललीजीका सदाही मंगल हो ३३

चिरं जीयादेषा सकलसुखसन्दोहचरणा
निराधिर्निर्व्याधी रचितजनकल्याणनिचया ।
शरत्पूर्णेन्द्वास्या विमलजलजाक्षी जितरतिः
प्रपश्यन्ती कामं सततमिह भद्राणि परितः ॥३४॥

जिनके श्रीचरणकमल समस्त सुखोंके पुञ्ज हैं, जो भक्तोंके लिये कल्याणके समूहोंकी रचना करने वाली, शरद ऋतुके चन्द्रमाके समान परम आह्लाद कारी प्रकाशमय श्रीमुख व स्वच्छ कमलके समान नेत्रवाली हैं, जिनके सौन्दर्यसे रतिभी हार मानती है, वही ये श्रीललीजी मानसिक-शारीरिक सभी रोगोंसे रहित होकर अपनी इच्छानुसार चारों ओर सदा मंगलही मंगल देखती हुई, अनन्तकाल तक जीवें ॥३४॥

अयोगी वा योगी द्रविणनिधिर्वा गतधनः
सुधीर्वा मूर्खो वा कथमपि कदाचिद्दरमपि ।
अनिच्छन्तीच्छन्ती सपदि यमियं पश्यति दृशा
कृतार्थोऽसौ नूनं परमसुदृढेयं मम मतिः ॥३५॥

चाहे योगी हो, चाहे भोगी हो, चाहे धनके खजानेका स्वामी (कुबेर) हो अथवा निर्धन (रङ्क) हो, बुद्धिमान हो, या मूर्ख, जिसको ये ललीजी इच्छा पूर्वक चाहे विना इच्छाके ही किसी प्रकारसे भी कभी भी थोड़ासा भी अपनी दृष्टिसे अवलोकन कर लेती हैं, वह निश्चयही अविलम्ब कृतार्थ हो जाता है अर्थात् उसे जीवनकी सफलता अवश्यमेव प्राप्त हो जाती है, यह मेरा परम अटल निश्चय है ॥३५॥

महाभागानां वै विशदचरितानां शुभधिया-
मनन्या संप्रीतिर्निगमगदिताऽपीह भविता ।
सुतायां ते राजन्निरतिशयमाधुर्यजलधौ
न चान्येषामस्यामकृतसुकृतानामघवताम् ॥३६॥

हे राजन् ! इस लोकमें जिनके चरित उज्वल (विकार रहित निष्पाप) हैं, बुद्धि पवित्र है, उन्हीं महाभाग्यशालियोंकी वेदोंमें कही हुई अनूठी (अनन्य) प्रीति समुद्रके समान, सबसे अधिक अथाह-माधुर्यगुण वाली आपकी श्रीललीमें होती है, परन्तु अन्य अर्थात् जिन्होंने पुण्यसञ्चय नहीं किया है, उन पापियोंकी नहीं होती ॥३६॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा शुभां वाचं लक्ष्मीनारायणौ प्रभू ।
मैथिलीपादपाथोजसक्तदृष्टी बभूवतुः ॥३७॥

भगवान शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! इस प्रकारकी मङ्गलमयी वाणी बोलकर, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रभूने अपनी दृष्टिको श्रीमीथिलेशललीजीके श्रीचरण कमलोंमें आसक्त कर दी ॥३७॥

गन्तुं कृतधियौ दृष्ट्वा पाणिभ्यां परया मुदा।
उपायनानि भूरीणि ·पुत्र्या राज्ञी व्यदापयत् ॥३८॥

जब श्रीसुनयना महारानीजीने देखा, कि अब ये दोनों (दम्पती) यहाँसे चलनेका निश्चय कर लिये हैं, तब उन्होंने बड़े आनन्द पूर्वक, श्रीललीजीके कर कमलों द्वारा उन्हें बहुतसे भेंट दिलाई॥

ब्राह्मणी तां निधायाङ्के ऽधीरा मिष्टान्नभाजनम्।
प्रदाय हस्तयोः पत्युर्भोजयामास जानकीम् ॥३९॥

तब प्रेमसे अधीर हुई वे श्रीब्राह्मणीजी, श्रीललीजीको अपनी गोदमें ले करके, मिठाईके थाल-को अपने पति (ब्राह्मण) देवके हाथोंमें देकर, उन (श्रीललीजी) को भोजन कराने लगीं ॥३९॥

परित्यक्तं तया भुक्त्वा तदन्नममृतोपमम्।
धृत्वा रत्नमये पीठे चकार मुखधावनम् ॥४०॥

भोजन करके, श्रीललीजीके छोड़े हुये उस अमृतके समान, प्रसाद भूत मिष्टान्नको, रत्नोंकी चौकीपर रखकर उनका मुखचन्द्र धोया ॥४०॥

चुम्बयित्वा दृशाऽऽलिङ्ग्य लालयन्ती पदाम्बुजे।
शिरोदेशे प्रतिष्ठाप्य जग्मतुस्तौ कृतार्थताम् ॥४१॥

पुनः वे दोनों श्रीललीजीके श्रीचरण-कमलोंका दुलार करते हुये चुम्बन करके, उन्हें अपने नेत्रोंसे लगाकर तथा शिर पर रखकर कृतार्थ हो गये ॥४१॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

कथञ्चिद्धैर्यमालम्ब्य पुनस्तौ श्रीविदेहजाम्।
अर्पयामासतुर्मात्रे प्रिय ! पङ्कजलोचन ! ॥४२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे कमलनयन ! प्यारे ! इस प्रकार श्रीललीजीके श्रीचरण-कमलोंके स्पर्श आदि सुखसे विह्वल होकर, जब वे पुनः कुछ सावधान हुये, तब किसी प्रकार धीरजका सहारा लेकर, श्रीविदेहमहाराजकी श्रीललीजीको (उनकी) श्रीअम्बाजीको अर्पण कर दिये ॥४२॥

प्रशस्य तौ परया प्रीत्या प्रसादं पश्यतोस्तयोः।
भावविह्वलतां यातौ रत्नपीठे निवेशितम् ॥४३॥

पुनः रत्नमयी चौकीके ऊपर रक्खे हुये प्रसादको श्रीमिथिलेशजी व श्रीअम्बाजी (दोनोंके) देखते हुये बड़े प्रेम पूर्वक खाकर, हमारा (आज परम सौभाग्य है इस) भावसे वे विह्वल हो गये ४३

द्विजदम्पत्यूचतु ।

कृतार्थौ भृशमद्यावामावयोः सफलं जनुः ।
कृपाकटाक्षमासाद्य देवैरपि सुदुर्लभम् ॥४४॥

वे दोनो ब्राह्मणी ब्राह्मणरूपधारी, श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान बोले:-देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ आपकी श्रीललीजीकी कृपा कटाक्षको पाकर, आज हम दोनो ही पूर्ण कृतार्थ हुये तथा आज हम दोनोंका ही जन्म सफल है ॥४४॥

आवां विद्धः सतां वेद्यां किञ्चिदेनां समाश्रितौ ।
अतोऽत्र साम्प्रत प्राप्तौ दर्शनार्थं महामते ! ॥ ४५॥

सब प्रकारसे इनके शरणमें होनेके कारण हम दोनों प्राणी, सन्तोंके लिये जिनका जानना परम आवश्य कर्त्तव्य है, उन आपकी इन श्रीललीजीको कुछ थोड़ा सा जानते हैं। हे महामते! अर्थात् अपनी मतिको ब्रह्ममय बनाने वाले! इसी (ज्ञानके) कारण हम दोनो ही (इनका) दर्शन करनेके लिये यहाँ इस समय आये हैं ॥४५॥

ये नृपैनां विजानन्ति सुतां ते सुरसत्तमाः ।
तेषामागमन भूतं भविष्यत्यधुनाऽस्ति च ॥४६॥

हे राजन! जो देवश्रेष्ठ आपकी श्रीलीजी (की महिमा) को भली प्रकार जानते हैं, उन का आगमन (आना) हो भी चुका है और आगे भी होवेगा तथा इस समय भी है ॥४६॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा नृप देवः परिक्रम्य मुदान्वितः ।
दम्पत्योः पश्यतोरेव तत्रैवान्तरधीयत ॥४७॥

भगवान् शिवजी बोले-हे श्रीपार्वतीजी! इस प्रकार भगवान् श्रीहरि श्रीमिथिलेशजी महाराज से (सब समाचार) कह कर, अपनी प्रिया श्रीलक्ष्मीजीके सहित श्रीललीजीकी परिक्रमा करके, दोनों (महाराज-महारानी) के देखते ही, वहीं अन्तर्धान हो गये ॥४७॥

राजा राज्ञी तथा सर्वा वयस्याः कौतुकान्विताः ।
शतानन्दं समाहूयाकारयन्स्वस्तिवाचनम् ॥ ४८ ॥

इस लीलाको देखकर श्रीमिथिलेशजी महाराज, श्रीसुनयना महारानीजी व सभी सखियाँ बड़े आश्चर्यसे युक्त हो, श्रीशतानन्दजी महाराजको बुलवाकर स्वस्तिवाचन (मङ्गलानुशासन) करवाने लगीं ॥४८॥,

ज्ञात्वा नारायणं देवं सह देव्या समागतम् ।
अतीव मुदितो राजा चक्रे तदभिवादनम् ॥४६॥

श्रीशतानन्दजी महाराजके द्वारा श्रीलक्ष्मीजीके समेत श्रीनारायण भगवान्‌को ब्राह्मणी व ब्राह्मणवेषमें आये हुये जानकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजने महान् आनन्दको प्राप्त हो, उन श्रीहरिको प्रणाम किया ॥४९॥

समालिङ्गय सुतां भूयो मोदमानान्तरात्मना ।
जगाम मन्त्रिभिः सार्द्धं दर्शनार्थं महात्मनाम् ॥५०॥

इति द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥४६॥

तदनन्तर, परम हर्षित अन्तःकरणसे श्रीललीजीको वारम्बार हृदयसे लगाकर, मन्त्रियोंके सहित वे, महात्माओंका दर्शन करनेके लिये पधारे ॥५०॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

श्रीकिशोरीजीकी चन्द्रखिलौनालीला ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एकदा मे विनोदाय रुदन्त्या बालभावतः ।
अवादील्लालयन्ती मामम्बा मधुरया गिरा ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! एक दिन बाल स्वभावसे मैं रो रही थी सो, श्रीअम्बाजी दुलार करती हुई मेरे विनोदार्थ मीठी वाणी द्वारा, मुझसे बोलीं :-॥१।

श्रीसुचित्रोवाच ।

शृणु वत्से ! प्रवक्ष्यामि चरित्रं परमाद्भुतम् ।
सुनेत्रायाः सुतायाश्च तव प्रीतिकरं महत् ॥२॥

हे वत्से ! सुनो, मैं तुम्हें श्रीसुनयनानन्दिनीजूका यह परम आश्चर्यमय चरित्र सुनाती हूँ, जो तुम्हारी बड़ी ही प्रसन्नता कारक होगा ॥२॥

शुक्लपक्षचतुर्दश्यां गताऽहं राजमन्दिरम् ।
समीपुदर्शनार्थाय तदानीं कुलयोषितः ॥३॥

शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी (की रात) थी उसमें मैं राजभवन गयी थी, उसी समय श्रीकिशोरी-जीका दर्शन करनेके लिये वहाँ और भी कुलकी स्त्रियाँ आगयीं ॥३॥

तासां मध्यगता राज्ञी महामाधुर्यमण्डिता ।
निधायाङ्के सुबिम्बोष्ठीं रराज तनयां मुदा ॥४॥

उन सबोंके बीचमें आनन्द पूर्वक, महामाधुर्यसे भूषित, श्रीसुनयना महारानीजी, बिम्बाफलके समान लाल ओष्ठ (होठ) वाली अपनी श्रीललीजीको गोदमें लिये हुई बड़ी शोभाको प्राप्त होरहीं थीं॥

पश्यन्तीषु शुभं रूपं रतिमानविमर्दनम् ।
तासु तुष्टेन मनसा मैथिली चन्द्रमैक्षत ॥५॥

उधर वे सभी स्त्रियाँ, रतिके अभिमानको चूरन्चूर करने वाले श्रीललीजीके मङ्गलमय स्वरूप के दर्शन करनेमें तल्लीन हो रही थी, इधर श्री ललीजीने प्रसन्न मनसे चन्द्रदेवको देखा ॥५॥

सा पुनर्मृदुसर्वाङ्गी सर्वचित्तविमोहिनी ।
भुजमालां गले मातुर्निधाय श्लक्ष्णमब्रवीत् ॥६॥

जिनके सभी अङ्ग कोमल हैं तथा जो सभीके चित्तको मुग्धकर लेती हैं, वे श्रीललीजी अपनी भुजारूपी मालाको अम्बाजीके गलेमें डालकर, बड़ी मधुरतासे बोलीं ॥६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

दृश्यते किमिदं मातर्नयनानन्दवर्द्धनम् ।
आकारो वर्तुलाकारं मे तदाख्यातुमर्हसि ॥७॥

हे श्रीअम्बाजी ! नेत्रोंके आनन्दको बढ़ाने वाला यह गोल आकारका, आकाशमें क्या दिखाई दे रहा है ? हमें उसको बता दें ॥७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

अहो पुत्रि ! शशाङ्कोऽयं दृश्यते विमलप्रभः ।
नक्षत्रगणमध्यस्थः शर्वरीशः सुधाकरः ॥८॥

श्रीललीजीके इन तोतले शब्दोंको सुनकर, श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे पुत्रिके ! नक्षत्रोंके झुण्डमें विराजमान, यह उज्ज्वल प्रकाश वाला सुधा (अमृत) की खानि स्वरूप रात्रिके पति, चन्द्र, दिखाई देता है ॥८॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

खेलोपकरणं चन्द्रमिमं मह्यं प्रदीयताम् ।
महत्यस्मिन्स्पृहा जाता सत्यमम्ब ! वदामि ते ॥९॥

श्रीजनकललीजी बोलीं :—हे श्रीग्रम्बाजी ! मुझे यह चन्द्र खिलौना देदें, क्योंकि इसको पाने के लिये मेरी बड़ी इच्छा हो गयी है आपसे यह मैं सत्य कह रही हूँ॥९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

अलभ्यं विद्धि तद्वत्से ! मर्त्यलोकनिवासिनाम् ।
औषधीशो मनोरम्यः स्वर्गलोकविभूषणः ॥१०॥

यह सुनकर श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं :—हे वत्से ! आप मनुष्यलोकमें निवास करने वालोंके लिये उस चन्द्र खिलौनाको अलभ्य जानिये, क्योंकि वह औषधियोंका स्वामी, मनको आह्लादित करनेवाला, स्वर्गलोकका भूषण है, अत एव वह नहीं मिल सकता ॥१०॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

न तल्लाभं विना तुष्टिः कथञ्चिन्मेऽम्ब ! वुच्यताम् ।
देहि मह्यमतः शीघ्रं समानीय दिवि स्थितम् ॥११॥

श्रीअम्बाजीके वचनोंको सुनकर श्रीललीजी बोलीं :—हे अम्ब ! विना चन्द्र खिलौना पाये, मेरेको किसी प्रकार भी सन्तोष नहीं है, इस लिये स्वर्गलोकमें विराजमान इस चन्द्र खिलौनाको, मुझे शीघ्रही मंगा दें ॥११॥

न यावत्प्राप्यते चन्द्रो मया मातरयं खलु ।
न पास्यामि तव स्तन्यं तावदेव कथञ्चन ॥१२॥

और हे श्रीअम्बाजी ! जब तक हमें यह चन्द्रखिलौना नहीं मिलेगा, तब तक निश्चय ही मैं किसी प्रकारभी तेरा स्तन-पान नहीं करूँगी ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति दृष्ट्वा हठं तस्याः स्वपुत्र्या दुर्निवारणम् ।
महाचिन्तामुपागच्छद्राज्ञी कार्यमिहेति किम् ॥१३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :—हे प्यारे ! अपनी श्रीललीजीके, निवारण करनेमें कठिन इस हठको देखकर श्रीसुनयना अम्बाजी बड़ी चिन्ताको प्राप्त हुई, कि श्रीललीजीके इस कठिन हठके विषयमें, मुझे अब, क्या करना चाहिये ॥१३॥

सुदर्शना तदा माता चन्द्रं चायोनिजाननम् ।
पश्यन्ती तामुपायज्ञा राज्ञीं प्रत्यवैक्षत ॥१४॥

तब श्रीसुदर्शना अम्बाजी, श्रीललीजीके मुखारविन्द व चन्द्रदेवको अवलोकन करती हुई श्रीललीजीको मनानेका उपाय निश्चय करके, उन श्रीसुनयना अम्बाजीकी ओर देखने लगीं ॥१४॥

बुद्ध्वा सुनयना राज्ञी तस्याः करतलेङ्गितम् ।
दर्पणं सम्मुखे कृत्वा जगादेन्दुरुदीक्ष्यताम् ॥१५॥

श्रीसुनयना अम्बाजी, उनके हथेलीके सङ्केतको समझकर श्रीललीजीके सामने दर्पण (शीशा) करके, आनन्दपूर्वक बोलीं–हे श्रीललीजी ! लो चन्द देखिये ॥१५॥

सा तस्मिन् कोटिशीतांशुमोहनं वल्गुदर्शनम् ।
पद्मपत्रपलाशाक्षं सुभ्रवं स्निग्धवीक्षणम् ॥१६॥

श्रीअम्बाजीके इतना कहने पर, श्रीललीजी उस शीशेमें, अपनी छटासे करोड़ो चन्द्रमाओंको मुग्ध करने वाले, सुन्दरदर्शन, कमलपत्रके समान विशाल सुन्दर नेत्र, सुन्दर भौंह, रसीली चितवन ॥ १६ ॥

सुनासं चारुचिबुकं बिम्बोष्ठमरुणाधरम् ।
वर्तुलाकारमुकुरकपोलयुगशोभितम् ॥१७॥

सुन्दर नासिका, सोहावनी ठोढ़ी, बिम्बाफलके सदृश लाल ओठ व लाल अधर, गोल शीशे के समान (छाया ग्रहण करने वाले) दोनों कपोलोंसे शोभायमान ॥१७॥

पृथुभालं सुदशनं नीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ।
सुकर्णं वर्णनातीतं सुषमासारमीप्सितम् ॥१८॥

विशाल मस्तक, सुन्दर दाँत, काले घुंघुराले केश, सुन्दरकान, वर्णनसे परे, अतिशय सुन्दरताके सार, सभीके (दर्शनोंकी) इच्छाके पात्र ॥१८॥

अनवद्यं सुधावर्षि सुस्मितं ह्लादकारणम् ।
मनोज्ञं सर्वलोकानां ध्यायतामाशुपावनम् ॥ १९ ॥

प्रशंसाके योग्य, अमृतकी वर्षा करने वाले, सुन्दर मुस्कान युक्त, आह्लादके कारण (उत्पत्ति स्थान,) सभी लोकोंके मनको हरण करनेवाले तथा ध्यान करने वालोंको शीघ्रही पवित्र करनेवाले ॥

महामाधुर्यसम्पन्नमुज्ज्वलं समलङ्कृतम् ।
मुखचन्द्रं समालोक्य परां तृप्तिमुपागमत् ॥२०॥

महामाधुर्यसे युक्त, स्वच्छ, शृंगार किये हुये, मुख चन्द्रका दर्शन करके वे पूर्ण तृप्त होगयीं २०

मत्वा स्वर्गादुपानीतं तं स्पृशन्त्यमृतत्विषम् ।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रपश्यन्ती हृदिस्पृशम् ॥२१॥

पुनः स्वर्ग लोकसे लाया हुआ मानकर, उस हृदय-लुभावन मुखचन्द्र (की छाया) को स्पर्श करती, व भली प्रकारसे देखती हुई उससे, मीठे वचन बोलीं :-॥२१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अहो परमरम्योऽसि दर्शनीयोऽसि सुव्रत !
त्वां दृष्ट्वा खलु शीतांशो ! हृदयं मे प्रसीदति ॥२२॥

हे चन्द्र ! तुम्हारा व्रत बड़ा अच्छा है, तुम बड़े ही सुन्दर और देखने योग्य हो । तुम्हारा दर्शन करके मेरा हृदय निश्चय ही बहुत प्रसन्नताको प्राप्त हो रहा है ॥२२॥

क्रीडन्नत्र मया सार्कं क्रीड़ा बहुविधाः सुखम् ।
निवस त्वं मया जातु न भविष्यस्यनादृतः ॥२३॥

अब तुम मेरे साथ अनेक प्रकारके खेलोंको खेलते हुये यहीं सुखपूर्वक निवास करो । मैं तुम्हारा कभी भी निरादर नहीं करूँगी ॥२३॥

त्वया तुल्य न पश्यामि सुभगं पद्मलोचन !
धन्यास्ते दर्शनप्राप्तविभयः पार्श्ववर्तिनः ॥२४॥

हे कमलनयन ! तेरे समान में, किसीको भी सुन्दर नहीं देखती, अत एव जिन्हें तुम्हारा दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त है, वे पासमें रहने वाले धन्य हैं ॥२४॥

स्वीकृतं मे वचो नोरीकृतं वेति त्वयोच्यताम् ।
निर्भयेनास्तशङ्केन सत्यमेव यथेप्सितम् ॥२५॥

अच्छा अब, भय तथा सन्देहको छोड़कर जैसी तुम्हारी इच्छा हो, सत्य-सत्य बताओ:-मेरे वचन, तुम्हें स्वीकार हैं या नहीं ॥२५॥।

न ददासि ददासीव विधो ! प्रत्युत्तरं हि मे ।
पृच्छन्त्यै सादरं कस्मात्किमप्यानन्दमन्दिर ! ॥२६॥

चन्द्र खिलौनाके निमित्त हठ करने पर श्रीसुनयना अम्बाजीने श्रीललजीके हाथमें दर्पण (आइना) दिया है उसमें अपने श्रीमुखारविन्दके प्रतिबिम्बको ही चन्द्र खिलौना मानकर उससे वे वार्तालाप कर रही हैं।

हे आनन्दके मन्दिर ! चन्द्र ! मैं तुमसे आदर पूर्वक पूछती हूँ पर आप किस लिये उत्तर देते हुये प्रतीत होने पर भी, कुछ नहीं उत्तर देते हैं ? ॥२६॥

परमाह्लादरूपोऽसि त्वं मूकोऽपि मनोहरः ।
अतुल्यं त्रिपु लोकेषु दृष्ट्वा त्वां चकिताऽस्म्यहम् ॥२७॥

हे चन्द्र ! तुम्हारी उपमाके लिये त्रिलोकीमें कोइ नहीं है । तुम्हें देखकर मैं चकित (आश्चर्य-युक्त) हो रही हूं। तुम आह्लादके स्वरुप हो, अतः गूंगे होने पर भी मनको हरणकर रहे हो ॥२७॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

विह्वलन्तीं तमुक्त्वैवं सुतां प्राणगरीयसीम् ।
जननी तर्हि हेतुज्ञा परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥२८॥

श्रीसुचित्राम्बाजी बोलीं:-इस प्रकार जब श्रीललीजी अपने श्रीमुकरके प्रतिबिम्ब रूपी चन्द्रसे प्रेमपूर्ण वचनोंको कहकर, विभोरताको प्राप्त होने लगीं, तब उस (विह्वलता) का कारण समझने वाली श्रीसुनयना महारानीजी, अपने प्राणोंसे अधिक प्यारी श्रीललीजीको हृदयसे लगाकर (उनसे) यह बोलीं :-॥२८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे वत्से ! दीयतां चन्द्र इदानीं भद्रमस्तु ते ।
मञ्जूषायां प्रयत्नेन स्थापयिष्याम्यहन्तु तम् ॥२९॥

हे वत्से ! तुम्हारा कल्याण हो, अब चन्द्र दे दीजिये । मैं उसको प्रयत्न-पूर्वक सन्दूकमें रख देती हूँ ॥२९॥

यदा ते द्रष्टुमिच्छा स्यात्तदा द्रक्ष्यसि तं पुनः ।
पलायिता स्वभावेन नोचेदेष हि कथ्यते ॥३०॥

पुनः जब तुम्हारी देखनेकी इच्छा हो तब उसे देख लेना, अभी रख दें । नहीं तो यह स्व-भावसे ही भागने वाला है, अत एव भाग जायेगा ॥३०॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं जनन्या स्निग्धया गिरा ।
आदर्शस्तत्कराम्भोजादधृत्वा न्यस्तः समुद्गके ॥३१॥

श्रीसुचित्राअम्बाजी बोलीं:- इस प्रकार श्रीसुनयना-महारानीजीने श्रीललीजीको अपनी सरस वाणीसे समझाकर, उनके हस्तकमलसे उस दर्पण (शीशा) को हरण करके सन्दूकमें रख दिया ३१

तततो लब्धधृतिर्वत्से ! मातरं मैथिली मुदा ।
दृष्ट्वा प्रसन्नयाऽऽलोक्य मुखं चेतांसि नोऽहरत् ॥३२॥

हे वत्से ! जब श्रीललीजीके हाथोंसे वह शीशा ले लिया गया, तब धैर्यको प्राप्त हुई उन श्रीललीजीने, अपनी प्रसन्नतापूर्ण दृष्टिसे, श्रीअम्बाजीको देखकर बिना किसी प्रकारका प्रयत्न किये आनन्द-पूर्वक, केवल उसी प्रसन्न दृष्टिसे देख करके हम सभीके चित्तोंको हरण कर लिया है ३२

माता सुनयना तस्याः पाययामास वै पयः ।
मुखचन्द्रं समाचुम्ब्य लालयन्ती मुहुर्मुहुः ॥३३॥

श्रीललीजीकीमाता श्रीसुनयनामहारानीजी, बारम्बार मुख रूपी चन्द्रको चूमकर, दुलार करती हुई, उन्हें दूध पिलाने लगीं ॥३३॥

ततः सर्वाः प्रमुदिता राज्ञ्यः श्रीमिथिलेश्वरीम् ।
प्रणिपत्य स्मरन्त्यस्तां भगिनीं ते गृहं ययुः ॥३४॥

तत्पश्चात्पूर्ण प्रसन्नताको प्राप्त, सभी रानियाँ श्रीमिथिलेशजी महाराजकी महारानीजीको प्रणाम करके, तुम्हारी बहिन (श्रीललीजी) जी को स्मरण करती हुई, घर गयीं ॥३४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

लीलामिमां मञ्जुलमङ्गलप्रदां श्रुत्वा ऽत्यजं रोदनमञ्जसा प्रिय ! ।
उक्तां जनन्या सुखिता मनोहरामाह्लादितश्रीमिथिलेशजास्मृतिः ॥३५॥

इति त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! अपनी सुखिता अम्बाजीके द्वारा श्रीमिथिलेशललीजीकी कही हुई, सुन्दर मङ्गलोंको प्रदान करनेवाली, इस मनोहर लीलाको सुनकर मुझे बड़ा सुख हुआ, अब मैंने अनायास ही रोना छोड़ दिया और श्रीमिथिलेशललीजीके स्मरणमें लग गयी ॥३५॥

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

गायिकारूपमें, श्रीसरस्वतीजीका आगमन तथा उनके द्वारा श्रीसुनयना अम्बाजीकी प्रेमपरीक्षा-पूर्वक, श्रीकिशोरीजीका मधुर-गान—

श्रीस्नेहपरोवाच ।

संस्थितया सभागारे योषिदेका व्यदृश्यत ।
आनजन्ती जनन्या मे स्वसुरस्या मनोरमा ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी, प्यारे श्रीरामभद्रजूसे बोलीं:-हे प्यारे ! सभामें विराजती हुई हमारी बहिन (श्रीलली) जूकी माता, श्रीसुनयनाअम्बाजीने देखा, एक मनोहर स्त्री आरही है ॥१॥

दिव्यरूपा ऽनवद्याङ्गी वीणावादनतत्परा ।
बालकैर्बालिकाभिश्च लोकदुर्लभदर्शना ॥२॥

उसका रूप अलौकिक है, सभी अङ्ग प्रशंसनीय हैं, कुछ बालक-बालिकायें साथमें हैं, वह वीणा को बजा रही हैं, उसका दर्शन लोगोंके लिये दुर्लभ है ॥२॥

विधाय स्वागतं पृष्टा वाण्या विनयपूर्वया ।
आगमार्थप्रबोधाय विनीता साऽऽहतामिति ॥३॥

उसके आने पर स्वागत करके श्रीसुनयनाअम्बाजीने आनेका कारण जाननेके हेतु जब विनय युक्त वाणीसे पूछा, तब वे श्रीअम्बाजीसे बड़ी नम्रता-पूर्वक इस प्रकार बोलीं :-॥३॥

श्रीवाग्देव्युवाच ।

समाख्याता ऽस्मि वाग्देवी सदा स्वच्छन्दचारिणी ।
सङ्गीतशास्त्रकुशला दर्शनार्थं तवागता ॥४॥

हे श्रीमहारानीजी, मेरा नाम वाग्देवी है, मैं स्वतन्त्र विचरने वाली, सङ्गीतशास्त्र में चतुर हूँ, आपके दर्शनोंके लिये आई हूँ ॥४॥

अनुज्ञां प्राप्नुयां चेत्ते दर्शयामि स्वकं गुणम् ।
गुणज्ञायै सुविज्ञायै धर्मोत्तमप्रवृत्तये ॥५॥

हे श्रीमहारानीजी ! आप गुणोंको समझने वाली व परम चतुर हैं । आपकी धर्म में उत्तम प्रवृत्ति है, इसलिये यदि आज्ञा पाऊँ तो आप को मैं अपना गुण दिखाऊँ ॥५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

आज्ञापयामि सन्तुष्टमनसा त्वां शुभेक्षणे !
आत्मनो दर्शय प्रीत्या सुभगे ! गुणकौशलम् ॥६॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं—हे मङ्गलमय दर्शनी वाली ! हे सुन्दरी ! मैं तुम्हें संतुष्ट मनसे आज्ञा प्रदान करती हूँ, तुम प्रेम पूर्वक अपने गुणोंकी चतुराई दिखाओ ॥६॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्ता सा महाराज्ञ्या सभामध्यगता सती ।
गानं प्रवर्तयामास वादयन्ती स्वकच्छपीम् ॥७॥

भगवान् शिवजी बोले :—हे श्रीपार्वतीजी ! श्रीसुनयना अम्बाजीकी आज्ञा पाकर, सभाके बीचमें विराजमान हो, वे अपनी कच्छपी नामकी वीणाको बजाने लगीं ॥७॥

विभिन्नरागान् बालास्ते रागिणीर्बालिकास्तथा ।
यथारूपं तु विधिना व्यञ्जयामासुरुत्सुकाः ॥८॥

तब उनके साथके उत्सुक बालकोंने अनेक प्रकारके राग और उत्सुक बालिकाओंने, विविध प्रकारकी रागिनियोंको, जैसा जिन का स्वरूप है, उसी प्रकार विधिपूर्वक उन्हें (गाकर) प्रकट कर दिखाया ॥८॥

रागिणीं यां च यं रागं श्रोतुमैच्छद्यशस्विनी ।
श्रावयामास वाग्देवी तां च तं विधिपूर्वकम् ॥९॥

पुनः यशस्विनी श्रीसुनयना महारानीजी, जिस जिस राग और रागिनीको सुननेकी इच्छा करती हुईं, उन उन राग और रागिनियोंको श्रीवाग्देवीजी उन्हें विधिपूर्वक श्रवण कराती हुईं ॥९॥

तस्या गानेन तालेन संमुग्धा मिथिलेश्वरी ।
अन्याभिरपि राज्ञीभिरागताभिस्तदालयम् ॥१०॥

उस सभा-भवनमें पधारी हुई सभी रानियोंके सहित, मिथिलेश्वरी श्रीसुनयना महारानीजी, उन वाग्देवीजीके गान तथा तालके द्वारा, पूर्ण रूपसे मुग्ध हो गयीं ॥१०॥

तां प्रशस्य प्रशंसार्हां प्रसन्नेनान्तरात्मना ।
अयुतामूल्यरत्नानि ददौ तत्प्रीतिहेतवे ॥११॥

अत एव प्रशंसाके योग्य, उन वाग्देवीजीकी प्रशंसा करके, उन्हें सतुष्ट करने के लिये प्रसन्न हृदय से उन्होंने, अमूल्य (जिनका मूल्य न किया जासके ऐसे) दश सहस्र रत्नोंको प्रदान किया ॥११॥

प्रणम्य शिरसा तानि प्रत्युवाच प्रजेश्वरीम् ।
नेमानि मम तोषाय प्रदत्तानि शिवोऽस्तु ते ॥१२॥

श्रीवाग्देवीजी उन रत्नोंको शिरसे प्रणाम करके, श्रीमहारानीजीसे बोलीं:—हे श्रीमहारानीजी ! आपका कल्याण हो । इन रत्नोंसे मुझे सन्तोष नहीं हो सकता ॥१२॥

अन्यद्रत्नमहं काङ्क्षे तत्प्रदातुं कृपा यदि ।
तव स्यात्परमोदारे ! कृतार्था स्यामहं तदा ॥१३॥

मैं और ही रत्नको पाना चाहती हूं, हे परम-उदार ! यदि उसे प्रदान करनेके लिये आपकी कृपा हो, तो मेरा मनोरथ अवश्य ही पूर्ण तथा सफल हो जावे ॥१३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

इमान्यपि गृहाण त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम् ।
ध्रुवं ददामि संप्रीता गानेनास्मि भृशं तव ॥१४॥

उनकी इस प्रार्थनाको सुनकर, श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं:—अच्छा इन रत्नोंको लो, पुनः और आपके मनमें जिस रत्नके पानेकी इच्छा हो उसे भी कथन कीजिये । मैं तुम्हारे गानसे प्रसन्न हूँ, अत एव उसे भी अवश्य प्रदान करूँगी ॥१४॥

श्रीवाग्देव्युवाच ।

अप्रकाश्यं भवत्या तद्रत्नमुक्तमनुत्तमम् ।
अप्रदाय विशेषज्ञे ! याचेऽस्तूरीकृतं यदि ॥१५॥

श्रीसुनयनाअम्बाजीकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर वाग्देवीजी बोलीं:—हे विशेष (रहस्योंको) समझने वाली श्रीमहारानीजी ! मेरे कहे (मांगे) हुये सबसे उत्तम रत्नको, आप बिना हमें प्रदान किये, किसीसे भी प्रकट न करेंगी । यदि आपको (यह) स्वीकार हो, तो मैं मांगू ॥१५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

मयि शङ्कान्विता मा भूः प्रतिजाने तदर्पितम् ।
यत्त्वया काङ्क्षितं भद्रे ! कथ्यतामुक्तया मया ॥१६॥

श्रीसुनयनाम्बाजी बोलीं:-हे कल्याण स्वरूपे ! आप मेरे प्रति सन्देह मत कीजिये, मैं प्रतिज्ञा करती हूं, आप जिस रत्नको चाहती हैं, मैंने उसे प्रदान किया ॥१६॥

नाहं प्रकाशयिष्यामि त्वया रत्नमभीप्सितम् ।
अप्रदाय महाप्राज्ञे ! तुभ्यं याहीति निश्चयम् ॥१७॥

तुम जिस रत्नको लेना चाहती हो, बिना तुम्हें प्रदान किये उसे मैं, किसीसे भी नहीं प्रकट करूँगी, ऐसा विश्वास करो ॥१७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्ता महाराज्ञ्या संशुद्धमृदुलात्मना ।
असौम्यं सौम्यवदना वचो वक्तुं प्रचक्रमे ॥१८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले—हे श्रीकात्यायिनीजी ! जिनका हृदय पूर्ण शुद्ध और कोमल है, उन श्रीसुनयना महारानीजीसे ऐसा वचन पाकर, वे सौम्य मुख वाली वाग्देवीने असौम्य (टेढ़े, दु:खकर) वचनोंको बोलना प्रारम्भ किया ॥१८॥

वाग्देव्युवाच ।

दातॄणां यद्यपि क्लेशो याचद्भिर्नानुभूयते ।
वदान्यैरापादि गतैः स्वभावो नातिवर्त्यते ॥१९॥

वाग्देवी बोलीं—हे श्रीमहारानीजी ! यद्यपि याचक (माँगने वाले) लोग, देने वालोंके कष्टका अनुभव नहीं रखते, फिर भी दाता लोग आपत्ति कालमें भी कभी अपने दान करनेके स्वभावका त्याग नहीं करते, अर्थात् चाहे उनपर बारम्बार कितनी भी, आपत्तियाँ क्यों न आती जावें फिर भी माँगने वालेको बिना दिये, उनसे रहा ही नहीं जासकता ॥१९॥

भवती धर्मविन्मान्या सर्वलोकेषु विश्रुता ।
कुलीना पट्टमहिषी जनकस्य महात्मनः ॥२०॥

फिर आपतो धर्मका रहस्य जाननेवालोंके द्वारा भी सम्मान पाने योग्य, सभी लोकोंमें प्रसिद्ध, उत्तम कुलमें उत्पन्न महात्मा श्रीजनकजी महाराजकी महारानी ही ठहरीं ॥२०॥

किमदेयं त्वया राज्ञि ! महासौभाग्यभूषिते !
विष्यत्या याच्यतेऽभीष्टं महाकार्पण्यशीलया ॥२१॥

इस हेतु भला आपको किस रत्नके प्रदान करनेमें सङ्कोच हो सकता है ? हे महासौभाग्यसे सुशोभित श्रीमहारानीजी ! तथापि दरिद्र होनेके कारण डरती हुई मैं आपसे अपने अभीष्ट (चाहे हुये) रत्नको मांग रही हूँ ॥२१॥

यदि दित्ससि मे रत्नं सुतारत्नमिदं खलु ।
अभागिन्या ममोत्सङ्गभूषणाय प्रदीयताम् ॥२२॥

यदि आप निश्चय ही मुझे रत्न देना चाहती हैं तो, मुझ अभागिनीकी गोदके शृङ्गारके लिये अपनी पुत्री (श्रीललीजी) रूपी रत्न हमें प्रदान कीजिये ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एतदुक्तं वचः श्रुत्वा राज्ञी परमदारुणम् ।
विह्वलन्ती गतोत्साहा विललापातिदुःखिता ॥२३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले—हे प्रिये ! वाग्देवीके कहे हुये दारुण (भयङ्कर) वचनोंको सुनकर अत्यन्त दुखी तथा उत्साहनष्ट हुई श्रीसुनयना महारानीजी विह्वलताको प्राप्त होकर विलाप करने लगीं ॥२३॥

श्रीसुनयनो वाच ।

हा विधातरिदमेव किं कृतं वालिशेन भवता धियाऽधुना ।
वञ्चिताऽस्मि धृतदिव्यरूपया धूर्त्तया यदनया नृशंसया ॥२४॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं—हे विधाता ! बुद्धिमें सर्वथा अबोध (नासमझ) बालकसे बनकर हाय यह आपने क्या किया ? जो दिव्य रूपको धारण किये, हुई, दयारहित इस ठगिनीने हमें ठग लिया ॥२४॥

हा नृपेण किमशोभनं कृत योऽधिगम्य तनयामिव श्रियम् ।
मोघकाम इह कृच्छ्रसाधनैर्मां निशाम्य मुषितां मरिष्यति ॥२५॥

हाय श्रीमिथिलेशजी महाराजने ऐसा कौन खोटा कर्म किया था। जो बड़े कष्टपूर्ण साधनोंके द्वारा श्रीलक्ष्मीजीके समान सुन्दरी श्रीललीजीको पाकर भी, अपने मनोरथको बिना सफलता पाये ही इस प्रकार मुझे ठगी हुई सुनकर शरीरको छोड़ देंगे ॥२५॥

भ्रातृभिस्तदनुगैः कुलाङ्गनाकन्यकासुतैश्चानया विना ।
श्रीविदेहशुचिवंशजैः क्षणं जीवितं कथं धारयिष्यते ॥२६॥

उनके अनुयायी भाई, कुलकी स्त्रियाँ तथा श्रीविदेह-महाराजके पवित्रवंशमें उत्पन्न हुये बालिका व बालक वृन्द भी विना इन श्रीललीजीके, क्षणमात्र भी, हाय कैसे जीवित रहेंगे! अर्थात् ये सब भी अपने अपने प्राण छोड़ देंगे ॥२६॥

हन्त ये च खलु दर्शनाशया सन्त्यपेतगृहकृत्यसञ्चयाः ।
तैर्विना परमरम्यया ऽनया का दशा पुरजनैरुपैष्यते ॥२७॥

और जिन्होंने केवल श्रीललीजीके दर्शनोंकी आशासे, अपने अपने घरोंके कार्यसमूहोंकी परित्याग कर दिया है, हाय वे पुरवासी लोग, इन परम मनोहरस्वरूपा श्रीललीजीके विना, किस दशाको प्राप्त होवेंगे ? ॥२७॥

अद्य हन्त मिथिलापुरी मया दुर्धिया विरहिता श्रिया कृता ।
अञ्जसा रसिकगानमुग्धया मां धिगस्ति सहसा पणोद्यताम् ॥२८॥

हाय, रसीले गानसे मुग्ध होकर आज मुझ दुर्बुद्धिने अनायास ही श्रीमिथिला पुरीको श्रीहीन कर डाला, अत एव विना सोचे विचारे प्रण प्रतिज्ञा करने वालीको वार वार धिक्कार है ॥२८॥

जीवितेन दुरदृष्टकेन तन्मेऽलमेव विपुलार्तिदायिना ।
तत्क्षणं हि मरणं शिवप्रदं मेऽस्त्वतो न तु हितं किलान्यथा ॥२९॥

ऐसा दुर्भागी, महान् कष्टदायक जीवन मेरा व्यर्थ ही है, अब तो मुझे कल्याणप्रद मरण ही प्राप्त होवे, नहीं तो जीवित रहनेमें मेरी भलाई नहीं है ॥२९॥

हे त्रिदेव ! विबुधा ! महर्षयः ! पूज्यपादकमलाः शरीरिणाम् ।
सर्व एव मिथिलानिवासिनामापदो हरत मच्छिरोनताः ॥३०॥

हे शरीरधारियोंके पूजने योग्य श्रीचरणकमल वाले, तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) देवताओं ! हे तेंतीस करोड देवो ! हे अट्ठासी हजार महर्षियो ! मैं आप लोगोंको, शिरके द्वारा प्रणाम करती हूँ, सभी आप लोग ! मिथिला निवासियोंकी इस महान् आपत्तिको हरण कीजिये ॥३०॥

हे समस्तमिथिलापुरौकसो मानवाद्यखिलवर्गयोनयः !
वो निपात्य भृशदुःखसागरे जीवितुं न च पलं मयेष्यते ॥३१॥

मनुष्यसे लेकर पशु-पक्षी आदि सभी वर्गमें उत्पन्न हुये, हे समस्त श्रीमिथिला-पुरवासियो ! आप लोगोंको महान् दुःख रूपी समुद्रमें गिरा कर, मैं पलभर भी नहीं जीवित रहना चाहती ३१

क्षम्यतां च तदभद्रया मया निन्दितं कृतमशोभनं परम् ।
दुष्कृतं सकलघातकारणं नौमि वो मुहुरतो यदृच्छया ॥३२॥

मुझ अमङ्गल-स्वरूपाने दैव संयोगसे सर्वनाशक, निन्दित, परम अमङ्गल, मय जो बिना विचारे देनेकी प्रतिज्ञा रूपी यह पापकर लिया हैं, उसको आप लोग क्षमा करें, एतदर्थ आप लोगोंको मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ ॥३२॥

दीयतेऽसुदयितेयमुर्विजा न प्रतिश्रुतमहो विसृज्यते ।
पान्तु सर्व इह लोकपालका मत्सुताविरहदग्धचेतसः ॥३३॥

अहो ! मैं अपनी प्राण-प्यारी, भूमिसे प्रकट हुई इन-श्रीललीजीको प्रदान करती हूँ, किन्तु प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ रही हूँ, अतः अब सभी लोकपाल लोग, मेरी श्रीललीजीके विरहसे जले चित्त वाले मेरे मिथिला-निवासियोंकी रक्षा करें ॥३३॥

नोत्सहे सुमुखि ! कर्तुमन्यथा प्रोदितं स्वनिगमं कथञ्चन ।
दत्तमेव हि गृहाण हर्पिता रत्नमीप्सितमिमां मदङ्कतः ॥३४॥

हे सुन्दरमुखवाली ! अपनी की हुई प्रतिज्ञाको मैं किसी प्रकार भी नहीं टाल सकती, इस लिये मेरी गोदसे अपने इच्छित इन श्रीललीजी रूपी रत्नको, लेलो, क्योंकि प्रतिज्ञानुसार मैं तुम्हें दे चुकी हूँ ॥३४॥

वञ्चिकेति विदितं पुरा न मे गायिके ! त्वमसि चेदृशी खलु ।
निर्मलेन हृदयेन ते वचो दातुमुक्तमविमृश्य याचितम् ॥३५॥

हे गायिके ! माँगनेके पहिले मैं नहीं जानती थी, कि तुम इस प्रकारकी सर्वस्व-ठगने वाली हो, इसी लिये अपने शुद्ध हृदयके कारण, बिना कुछ सोच विचार किये ही मैंने, तुमसे मुख-माँगे हुये रत्नको देनेका वचन कह दिया ॥३५॥

श्रीवाग्देव्युवाच ।

राज्ञि ! धैर्यमुपयाहि मा शुचः कृच्छ्रमेव महतां विभूषणम् ।
नेयमस्ति तव नेयमस्ति मे केवलं सकलदेहिनां निधिः ॥३६॥

श्रीसुनयना-महारानीजीके अधैर्यमय इन वचनोंको सुनकर, श्रीवाग्देवीजी बोलीं:—हे श्रीमहा-रानीजी ! आप खेद न करें, धैर्यको प्राप्त हों, महापुरुषोंको भूषणके समान सुशोभित करनेवा ला

दुःसहकष्ट ही है। ये श्रीललीजी न एक आपकी ही हैं, और न केवल मेरी ही, बल्कि सम्पूर्ण देहधारियोंकी सम्पत्तिका भण्डार हैं ॥३६॥

नानया विरहितं हि शक्यते वक्तुमीषदपि वस्तु जातुचित् ।
क्वापि सत्यमिति विद्धि तत्कथं कर्तुमेव बत बोधवारिधे ! ॥३७॥

हे समुद्रके समान अथाह ज्ञानवाली श्रीमहारानीजी! ऐसी कहीं भी, कभी भी, किंचित् भी वस्तु नहीं है, जिसको श्रीललीजीसे रहित कहा भी जासके, फिर उस अल्पसे अल्प वस्तुको भी, श्रीललीजीसे पृथक् किस प्रकार किया जासकता है? अर्थात् किसी प्रकारसे भी नहीं। जब अल्प वस्तुको भी आपकी श्रीललीजीसे पृथक् नहीं किया जासकता, तब आपको या श्रीमिथिला-निवासियोंको इनसे किसप्रकार पृथक् किया जा सकेगा? जिसके लिये आप इतना दुःखमान रही हैं, अत एव आप अपने ज्ञान-सागर स्वरूपको स्मरण करके धैर्यको प्राप्त हों, खेद न करें ॥३७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सैवमेव परिबोधिता तया प्राणनाथ ! तनयामयोनिजाम् ।
चुम्बितां च परिरभ्य भूयशो विह्वलाऽप्यथ तदङ्कगां व्यधात् ॥३८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे श्रीप्राणनाथजू! इस प्रकार वाग्देवीजीके द्वारा ज्ञानको प्राप्त हुई श्रीसुनयना अम्बाजीने, विह्वल होने पर भी स्वेच्छासे प्रकट हुई, श्रीललीजीका चुम्बन करके तथा उन्हें बारम्बार हृदयसे लगाकर, वाग्देवीकी गोदमें दे दिया ॥३८॥

श्रीशिव उवाच ।

उद्यतां च गमनाय तां पुनर्निर्दयां सजलकञ्जनेत्रया ।
संनिरीक्ष्य निजबालकन्यया श्रीमती सुनयना रुरोद ह ॥३९॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे श्रीपार्वतीजी! रोती हुई श्रीललीजीके सहित, दयासे हीन उन वाग्देवीको चलनेके लिये उद्यत देखकर, श्रीमती सुनयना महारानी रोने लगीं ॥३९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हा प्रिये ! निमिकुलप्रदीपिके वारिजाक्षि ! मृगलाञ्छनानने !
ह्लादिनि ! प्रकृतिमोहनस्मिते ! त्वां विना धिगसुधारिणीं हि माम् ॥४०॥

श्रीसुनयना महारानीजी बोलीं—हे निमिकुलको दीपकके समान सुशोभित करनेवाली! हे कमलकेसदृश नेत्र वाली! हे चन्द्रमाके समान सुन्दर प्रकाश युक्त मुखवाली! हे आह्लाद प्रदान करने

वाली ! हे स्वाभाविक मोहक मुस्कान वाली ! हे प्यारी श्रीललीजी ! आपके बिना मुझ जीवन-धारण करने वाली को धिक्कार है ॥४०॥

श्रीशिव उवाच ।

एतदाशु वचनं निगद्य सा कृत्तमूलकदलीद्रुमोपमा ।
संपपात पृथिवीतलेऽसुखं निर्गतासुरिव राड्यदृश्यत ॥४१॥

भगवान् शिवजी बोले-हे प्रिये ! इतना कहकर श्रीसुनयना महारानीजी, दुःख-पूर्वक जड़ कटे हुये केलेके वृक्षके समान, तुरत पृथिवी तलपर गिरपड़ीं और प्राणरहितसी दिखाई पड़ीं ॥४१॥

गायिका त्वरितमेव मैथिलीं संविधाय तदनिन्दिताङ्कगाम् ।
प्राब्रवीत्सुनयनां प्रबोधितां संप्रशस्य खलु हंसवाहना ॥४२॥

तत्क्षण उन गायिकाजीने उनकी प्रशंसाप्राप्त गोदमें श्रीमिथिलेशललीजीको विराजमान करके, सावधान की हुई उन श्रीसुनयना अम्बाजीकी भली प्रकारसे प्रशंसा करके हँसके ऊपर विराजमान होकर वे बोलीं:-॥४२॥

श्रीसरस्वत्युवाच ।

क्षम्यतां त्वदनुरागमीक्षितुं धृष्टता सुविहिता मयाऽधुना ।
भूमिजाम्ब ! मिथिलेशवल्लभे ! तेऽस्तु भद्रमनिशं यशोधने ! ॥४३॥

श्रीसरस्वतीजी बोलीं-हे यशरूपी धनसे सम्पन्ना ! श्रीमिथिलेश महाराजकी प्यारी ! हे श्रीभूमि-नन्दिनीजूको अम्बाजी ! आपका सदाही कल्याण हो । आपके प्रेमको देखनेके लिये जो मैंने इस समय आपके साथ ढिठाईकी है, उसे क्षमा करें ॥ ४३ ॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमेव नतया तयोदिता प्राप्तभूमितनयास्यदर्शना ।
शारदेयमवधार्य लक्षणैः सोत्थिता च सहसा ननाम ताम् ॥४४॥

भगवान् शिवजी बोले :-हे प्रिये ! इस प्रकार नमस्कार करके श्रीसरस्वतीजीके प्रार्थना करने पर, श्रीललीजीके मुखारविन्दका दर्शन प्राप्त करती हुई, श्रीसुनयना महारानीजीने हंस, वीणादि लक्षणोंके द्वारा उन्हें "ये भगवती शारदा (श्रीसरस्वती) जी हैं" ऐसा निश्चय करके उठकर सहसा प्रणाम किया ॥

श्रीसुनयनोवाच ।

जाड्यघोरतिमिरप्रणाशिनीं पुण्यशीलशुचिबुद्धिदायिनीम् ।
ब्रह्मविष्णुगिरिशादिवन्दितां त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति ! ॥४५॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-जो जड़ता (अज्ञान) रूपी घोर अन्धकारका पूर्णनाश करनेवाली, पवित्र स्वभाव वालोंको शुचि (भगवद्)-बुद्धिप्रदान करनेवाली ब्रह्मा, विष्णु महेश आदिकोंसे प्रणाम को प्राप्त हैं, हे श्रीसरस्वती महारानी! उन आपको मैं शतशः (सौवार) नमस्कार करती हूँ ॥४५॥

अज्ञराजमपि बोधभास्करं कर्तुमेव सबलां विपश्चिताम्।
आभुजादिकटिसक्तकच्छपीं त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति! ॥४६॥

हे श्रीसरस्वती महारानीजी! मूर्खोंके राजाको भी विद्वानोंके लिये, ज्ञानको सूर्यके समान प्रकाशमें लानेवाला बनानेकी सामर्थ्य वाली! भुजासे लेकर कमर तक अपनी कच्छपी नामकी वीणाको सटाये हुई आपको, मैं सैकड़ों बार प्रणाम करती हूं ॥४६॥

सीति तेति खलु रेति मेत्यथो तुर्यवर्णरसनाग्रशोभिताम्।
भावनीयकमनीयविग्रहां त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति! ॥४७॥

हे श्रीसरस्वती महारानी! जिनको जिह्वा का अग्रभाग सी, ता, रा, म इनचार वर्णों से सुशोभित है, जिनका सुन्दर शरीर ध्यान करने योग्य है, उन आपको मैं सैकड़ोंबार प्रणाम करती हूं ४७

पूर्णचन्द्रवदनां तडित्प्रभां सुस्मितां सरसिजायतेक्षणाम्।
स्फाटिकस्रगभियुक्तहस्तकां त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति! ॥४८॥

जिनका मुख चन्द्रमाके समान प्रकाशमान है, जिनकी कान्ति बिजुलीके समान है, सुन्दर जिनकी मुस्कान है तथा जिनके विशाल नेत्र, कमलके समान सुन्दर हैं और जिनका हाथ स्फटिक-मणिकी मालासे युक्त है, हे सरस्वती महारानी! उन आपको मैं सैकड़ों बार नमस्कार करती हूं ४८

देवकार्यकटिबद्धमेखलां ध्यायतामशुभमूलहारिणीम्।
वाञ्छितप्रदनतिस्मृतिस्तुतिं त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति! ॥४९॥

हे श्रीसरस्वती महारानी! जो देवताओंका कार्य-सिद्ध करनेके लिये, सदा ही कमरमें करधनी कसे रहती हैं और ध्यान करने वालोंके अमङ्गलों को जड़को ही हरण कर लेती हैं तथा जिनका नमस्कार, स्मरण व गुणगान मनोरथोंको पूरा करनेवाला है, उन आपको मैं अनन्त बार प्रणाम करती हूँ ॥४९॥

या च मामनुगृहीतुमागता तुष्टिदाऽऽस निजगानविद्यया।
भर्त्सिताऽप्यकुपितेक्षणप्रदा तां नताऽस्मि शतशः सरस्वति! ॥५०॥

जो मुझपर दया करनेके लिये आईं और अपनी गानविद्याके द्वारा मुझे प्रसन्न करती हुईं पुनः प्रेमपरीक्षा करते समय मेरे बुरा, भला कहने पर भी, कोप न करके जिन्होंने मुझे अपने वास्तविक स्वरूपका दर्शन प्रदान किया, उन आपको मैं अनन्तवार प्रणाम करती हूँ ॥५०॥

संप्रसीद मयि संयताञ्जलौ क्षम्यतां मदपराधसञ्चयः ।
मत्सुतां गमय भद्रयाऽऽशिषा त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति ! ॥५१॥

हे श्रीसरस्वतीजी महारानी ! मुझ हाथ जोड़े हुई पर आप पूर्ण प्रसन्न हूजिये और मेरे अपराध समूहोंको क्षमा कीजिये, एतदर्थ मैं आपको अनन्तवार प्रणाम करती हूँ ॥५१॥

श्रीसरस्वत्युवाच ।

न क्षमाऽस्मि तव भाग्यवर्णने न क्षमा हरिविरिञ्चिशङ्कराः ।
नो सहस्रवदनः षडाननश्चेतरः क इह वै प्रभुर्भवेत् ॥५२॥

श्रीसरस्वतीजी बोलीं—हे श्रीमहारानीजी ! आपके सौभाग्यका वर्णन करनेके लिये न मैं समर्थ हूँ, न ब्रह्मा, विष्णु, महेश समर्थ हैं, न हजार मुखवाले शेषजी समर्थ हैं और न षट् (छः) मुख वाले श्रीकार्तिकेय ही समर्थ हैं, फिर इस लोकमें इनसे इतर कौन समर्थ हो सकता है ? ॥५२॥

दुर्धिया कृतमशोभनं मया निर्दयेन हृदयेन युक्तया ।
श्रीविदेहकुलकीर्तिमण्डने ! तत्क्षमस्व कृपया सतां मते ! ॥५३॥

हे सन्तोंके द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त, श्रीविदेह महाराजके कुलकी कीर्ति (यश) को भूषणके समान सुशोभित करनेवाली श्रीमहारानीजी ! दयारहित हृदयसे युक्त होकर जो मैंने दुर्बुद्धिके कारण आपके साथ अनुचित व्यवहार किया है, आप उसे कृपा करके क्षमा करें ॥५३॥

कर्तुमेव निजवाक्कृतार्थतां गानमेकमनघे ! विधयीते ।
श्रीविदेहकुलनन्दिनीपुरः श्रूयतां तदधुनाऽऽत्मना त्वया ॥५४॥

हे पापरहिते ! अपनी वाणीको कृतार्थ करनेके लिये ! अब मैं श्रीविदेहकुलको आनन्द-प्रदान करने वाली श्रीललीजीके सामने, एक गाना गारही हूँ उसे आप मनसे श्रवण कीजिये ॥५४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदेव वचनं निगद्य सा मैथिलीचरणकञ्जयोर्नता ।
संयताञ्जलिपुटा प्रचक्रमे गातुमङ्ग रसपूर्णया गिरा ॥५५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :-हे प्यारे ! श्रीसरस्वतीजी श्रीसुनयना अम्बाजीसे यह कहकर श्रीललीजीके चरण-कमलोंमें मस्तक झुकाकर, दोनों हाथोंको जोड़े हुई अपनी रसमयी वाणीसे गाने लगीं ॥५५॥

श्रीशारदोवाच ।

चिकुराः कुटिलाः सघना मधुराः श्रवणे मधुरे मणिपुष्पयुते ।
अलिकं मधुरं शशिविन्दुयुतं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥५६॥

श्रीसरस्वतीजी बोलीं :-हे श्रीमहारानीजी ! श्रीललीजीके सघन घुंघुराले केश, रेशमसे भी मधुर (कोमल) है, मणिपुष्प (कर्णफूल) से युक्त मधुर (सुन्दर) कान हैं, अष्टमीके चन्द्रमासे भी मधुर (श्रेष्ठ) चन्द्रविन्दुसे युक्त विशाल मस्तक है, कमलसेभी अधिक सुन्दर विशाल नेत्र हैं, यही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशललीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रद) है ॥५६॥

भृकुटी मधुरे स्मरचापनिभे पृथुनेत्रयुगं सदयं मधुरम् ।
सुनसं शुकतुण्डपरं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥५७॥

श्रीललीजीकी दोनों भौंहें, कामदेवके धनुषके समान मधुर (सुन्दर) हैं, आपके दयापूर्ण दोनों विशाल नेत्र, हरिणके बच्चा व कमलसे भी (श्रेष्ठ) हैं और आपकी सुन्दर नासिका, उत्तम तोतेकी नासिकासे भी अधिक मधुर (आनन्द प्रद) है, यही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजीका सभी कुछ मधुर यानी आनन्द प्रदान करने वाला है ॥५७॥

ललितं मुकुरप्रतिमं मधुरं सुकपोलयुगं दशना मधुराः ।
अधरो मधुरश्चिबुकं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥५८॥

श्रीललीजीके दोनो गोल कपोल, (गाल) शीशाके समान मधुर (उत्तम) छाया ग्रहण करने वाले हैं । आपके दाँत, कुन्दकली तथा अनारके दानोंसे भी मधुर (सुन्दर) हैं ! आपका अधर, पके हुये विम्बाफलसे भी लालिमामें मधुर (बढ़कर) है, आपकी गोल ठोढ़ी भी मधुर (आनन्द प्रदायक) है, इतना ही नहीं, श्रीमिथिलेश राजदुलारीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रदान करने वाला) है ॥५८॥

कलकम्बुगलो मधुरोंऽसयुगं मधुरं करपद्मयुगं मधुरम् ।
करजं मधुरं हृदयं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥५९॥

श्रीललीजीका गला (कण्ठ) सुन्दर शङ्खके समान मधुर (मनोहर) है, आपके दोनों कन्धे भी मधुर (उत्तम) हैं ! आपके हाथों के नख भी मधुर (हृदयाकर्षक) हैं, आपका मक्खनसे भी मधुर (कोमल) हृदय है, यही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजीका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रद) है ५९

उदरं मधुरं त्रिवली मधुरा मधुरा सुकटी रशनोल्लसिता ।
मधुरे जघने घुटिके मधुरे मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६०॥

श्रीललीजूका मधुर (मनोहर) छोटासा उदर (पेट) है। आपकी त्रिवली त्रिवेणी, (गंगा, यमुना सरस्वतीजी) से मधुर (श्रेष्ठ) है, करधनीसे शोभायमान सिंहसेभी मधुर (बढ़कर) आपकी पतली कमर है तथा आपके दोनों जङ्घे केलेके खम्भों से मधुर (श्रेष्ठ) सुडोल, चिकने, गोल बिना रोम (रोंवों) के हैं और आपके दोनो घुटने भी मधुर (सुन्दर) हैं यही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजू का सभी कुछ मधुर (आनन्द) प्रदायक है ॥६०॥

चरणाम्बुरुहं युगलं मधुरं शुकवृन्दगतं प्रपदं मधुरम् ।
पदजं तिमिरैकहरं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६१॥

श्रीललीजीके कमलसे भी मधुर (सुकोमल) श्रीचरण हैं, शुक (जीव) वृन्दोंसे सेवित आपके मधुर (मनोहर) पैरोंके पञ्जे हैं, और चन्द्रमाकी कान्तिसे मधुर (बढ़कर) अज्ञानरूपी घोर अन्धकारको दूर करने वाले आपके श्रीचरण-कमलोंके नख हैं, इतना ही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशललीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रदान करने वाला) है ॥६१॥

विमलं मृदुलं वसनं मधुरं मधुरं मधुरं सकलाभरणम् ।
कमनं शिशुसंहननं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६२॥

श्रीललीजूके वस्त्र, कोमल, स्वच्छ तथा बिजुलीकी कान्तिसे मधुर (उत्तम) हैं, मधुर, मधुर (मोतियोंको भी स्वच्छ करने वाले) आपके भूषण हैं, चन्द्रमाकी कान्तिसे मधुर (उत्तम) परम सुन्दर आपका शिशु स्वरूप है, बस इतना ही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजीका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रदान करने वाला) है ॥६२॥

मधुरं मधुरं गमनं मधुरं मधरं मधुरं स्खलनं मधुरम् ।
मधुरं भ्रमणं कलनं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६३॥

श्रीललीजूका जो मधुर (मधु-विद्या) यानी उपासना द्वारा प्राप्त होने योग्य रहस्य है वहसी सब तत्त्वोंकी अपेक्षा मधुर (श्रेष्ठ) है, आपकी चाल मतवाले हाथीसे भी मधुर (उत्कृष्ट) है, आपका मधुविद्या (उपासना) प्रदान करनेवालाजो नाम है, वह भी सब साधनोंकी अपेक्षा मधुर (श्रेष्ठ) है, आपका फिसलना, भी मधुर (आनन्द प्रद) है, आपका भ्रमण (टहलना) हँसियोंसे भी मधुर मनमोहक है तथा आपका स्वर, वीणा व कोयल आदिसे भी मधुर (मीठा) है, इतना ही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्ददायक) है ॥६३॥

अयनं मधुरं चयनं मधुरं शयनं मधुरं श्रयणं मधुरम्।
अशनं मधुरं हसनं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६४॥

श्रीललीजीका स्थान जो श्रीसाकेत धाम है, वह सभी धामोंसे मधुर (आनन्द-प्रद) है, योगी लोग अपनी मनोवृत्तियोंका निरोध करके आपके जिस तेजको एकत्रित करते हैं, वह विश्वके सब तेजोंसे मधुर यानी उत्कृष्ट है। आपकी शय्या दुग्धफेनसे भी मधुर (कोमल) है, सभी जीवोंका रक्षास्थान-स्वरूप आपका श्रीचरणकमल, ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि रक्षकोंसे भी मधुर (उत्कृष्ट) है। भाव प्रधान होनेके कारण आपका भोजन भी अमृत से मधुर (श्रेष्ठ) स्वादिष्ट है। चन्द्रमाकी किरणोंसे भी मधुर (मनमोहक) आपका मुस्कराना है, यही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजू का सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रदायक) है ॥ ६४ ॥

स्वनितं मधुरं श्वसितं मधुरं विहितं मधुरं निहितं मधुरम्।
प्रथितं मधुरं कणितं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६५॥

श्रीललीजीका श्रीचरणकमल, वेदोंका मधुर (उत्तम) निवास स्थान है। आपकी श्वास (प्राणवायु) शीतल, मन्द, सुगन्ध इन तीनों वायुओंसे मधुर (आनन्द प्रद) है। आपके किये हुये चरित, सभीसे मधुर (श्रेष्ठ) है, आपमें स्थित जो यह जगत् है, वह भी मधुर (आनन्द प्रद) है और आपका यश भी सभीकी अपेक्षा मधुर (विशेष) प्रसिद्ध है। आपके नूपुर आदि भूषणोंका शब्द, अनहद नाद से भी अधिक मधुर (आनन्द प्रदायक) है, इतना ही नहीं अपितु श्रीमिथिलेश दुलारीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रदान) करने वाला है ॥६५॥

मृगितं मधुरं विदितं मधुरं गलितं मधुरं वलितं मधुरम्।
श्रुतिगं मधुरं मुखगं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६६॥

श्रीललीजीका सत्,चित, आनन्द स्वरूप भी सबसे मधुर (श्रेष्ठ) है। आपका ज्ञान भी सर्वापेक्षा मधुर (विशेष) है, प्रकृतिके, तीनों गुण सत्व, रज, तमसे रहित आपका दिव्यसाकेत धाम भी सबसे अधिक मधुर (आनन्द प्रदान करनेवाला) है, भक्तोंके द्वारा सेवन किया हुआ आपका नाम भी सबसे मधुर (आनन्द प्रद) है, आपका ऐश्वर्य-चरित, जो वेदोंके द्वारा जानने योग्य है, वह भी सब शक्तियोंसे अधिक मधुर (श्रेष्ठ) है तथा आपका माधुर्य-चरित जो कृपाप्राप्त परमहंस महाभागवतोंके द्वारा ही जानने योग्य है वह भी सबसे अधिक मधुर (आनन्द प्रदायक) है, इतना ही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रदान करने वाला है ॥६६॥

मधुरं मधुरं चरितं मधुरं मधुरं मधुरं भणितं मधुरम् ।
मधुरं मधुरं मिलनं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६७॥

श्रीललीजीका जीवोंके योगक्षेमके लिये जो कर्म है वह भी तीनों कालमें मधुर (श्रेष्ठ) है आपका जीवोंके लिये जो उपदेश है वह भी भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें मधुर (आनन्द प्रद) है तथा मधुर (मधुविद्या यानी उपासना) के द्वारा जीवोंका जो आपसे मिलन है, वह भी मधुर-मधुर (उत्तम-आनन्द-प्रद) है, इतना ही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रदान करने वाला) है ॥६७॥

श्रवणं मधुरं स्मरणं मधुरं कथनं मधुरं मननं मधुरम् ।
वरणं मधुरं भरणं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६८॥

श्रीललीजीकी लीलाओंका श्रवण करनाभी मधुर (आनन्द प्रद) है, आपके स्वरूप, गुण, महिमा आदिका स्मरणभी मधुविद्या (प्रेमा भक्ति) को प्रदान करने वाला है, जीवोंके प्रति आपके जो वाक्य-प्रबन्ध हैं, वे भी सबसे मधुर (उत्तम) हैं, भक्तोंके लिये जो आपके विचार हैं, वे भी सबसे मधुर (श्रेष्ठ) हैं, उपासकोंके द्वारा स्तुति किये हुये जो आपके गुण समूह हैं, वे भी मधुर (आनन्द प्रदायक हैं। जो आपका जीवमात्रके लिये पोषण कर्म है, वह भी मधुर (श्रेष्ठ) है, यही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रदान करने वाला) है ॥६८॥

प्रणता मधुराः प्रणतिर्मधुरा प्रणयो मधुरः करुणा मधुरा ।
सरणिर्मधुरा ग्रहणं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६९॥

श्रीललीजूके जो भक्त हैं वे भी सबकी अपेक्षा मधुर (आनन्द प्रदान करनेवाले) हैं, आपका प्रणाम भी सबयज्ञों की अपेक्षा मधुर (श्रेष्ठ) है, आपके (श्रीचरण कमलों) का प्रेम भी सब फलोंसे मधुर (मीठा) है, आपकी दयालुता भी मधुर (प्रेमाभक्तिको प्रदान करने वाली तथा सबसे श्रेष्ठ) है। आपका मार्ग (उपासना) ज्ञान-कर्मादिकोंसे भी मधुर (आनन्द प्रद) है, जीवोंको अङ्गीकार करके उन्हें भगवान् श्रीरामजी से अङ्गीकार करानेका जो आपका कर्म है वह भी सबसे मधुर (श्रेष्ठ) है, यही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रदान करनेवाला) है ॥६९॥

निगमो मधुरः प्रकृतिर्मधुरा जघनं मधुरं रदनं मधुरम् ।
महितं मधुरं रसितं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥७०॥

श्रीललीजी की सर्वव्यापकता भी सबसे मधुर (श्रेष्ठ) है, आपका वात्सल्यमय स्वभाव श्रीराम भद्रजूसे भी मधुर (बढ़कर) है, आपकी जयशीलता भी सबसे मधुर (कोमल व उत्कृष्ट) है, आपके नामकी रटन मधुर (आनन्दस्वरूप श्रीरामलालजीको ही प्रदान कर देनेवाली) है, ब्रह्मादिकोंके द्वारा आपका पूजित-स्वरूप, सबकी अपेक्षा मधुर (श्रेष्ठ) है। कृपा प्राप्त, सौभाग्यशाली, परम हंसोंके द्वारा आस्वादन किया हुआ आपका युगल चरणारविन्द भी मधुर (उपासक जीवोंके योगक्षेमका विधान करने वाला) है, इतना ही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्द प्रदान करने वाला) है ॥७०॥

जनको मधुरो जननी मधुरा मधुरा अनुजा अनुगा मधुराः ।
सुकुलं मधुरं नगरं मधुर मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥७१॥

श्रीललीजूके पिताजी, सब ज्ञान योगियोंसे मधुर (श्रेष्ठ) हैं, आपकी श्रीअम्बाजी, सौभाग्यमें सभी माताओंसे मधुर (विशेष) हैं, आपकी बहिनें, मधुर (मधुविद्या यानी उपासनाको प्रदान करने वाली) हैं और आपकी अनुचरियां, देव, गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर-कुमारियोंसे भी सौभाग्यमें मधुर (श्रेष्ठ) हैं, आपका सुन्दर कुल सबसे मधर (उत्तम) है, आपका श्रीमिथिला नामका यह नगर भी सबसे अधिक मधुर (आनन्द प्रद) है, कहाँ तक कहें श्रीमिथिलेशललीजूका सभी कुछ मधुर (आनन्दको प्रदान करने वाला है ॥७१॥

श्रीमैथिलीमधुरमोदकषोडशीं यो भक्त्या त्विमां पठति वै विमलान्तरात्मा ।
ध्यायन् हृदि प्रतिदिनंमम तुष्टिहेतुं सोऽभ्येति भक्तिममलां मुनिभिर्विमृग्याम् ७२

हे श्रीमहारानीजी ! मेरी प्रसन्नता कारक श्रीमिथिलेशललीजूकी उपासना प्रदान करने वालोंको भी मोदक (लड्डू) के समान प्रिय लगने वाली इस षोडशी (सोलह श्लोकों वाली रचना) को श्रद्धापूर्वक, हृदयमें श्रीललीजीका ध्यान करते हुये जो नित्यप्रति पाठ करता है, उसका अन्तस्करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) विकारोंसे रहित हो जाता है और वह मुनि वृन्दोंके भी विशेष खोजनेके योग्य विशुद्ध (सकलवासनाओंसे रहित) परा भक्तिको प्राप्त होता है ॥७२॥

धन्याऽसि राज्ञि ! जननीं जगतोऽखिलस्य
क्रोडे निधाय सुसुखं परिपश्यसि त्वम् ।
यां न स्पृशन्ति मुनिमानसराजहंसा
यां नात्मनि स्थितवतीं खलु वेद चात्मा ॥७३॥

हे श्रीमहारानी जी ! जिन श्रीललीजीका स्पर्श, मुनियोंके मन रूपी राजहंसोंको भी नहीं प्राप्त होता और अपने भीतर विराजती हुई को भी जिन्हें आत्मा नहीं जानती है, उन समस्त चर-अचर प्राणियोंकी माताजीको, अपनी गोदमें विराजमान करके इच्छानुसार सुखपूर्वक, आप दर्शन करती हैं अतएव आप धन्य है ॥७३॥

श्रीशिव उवाच ।

बद्धाञ्जलिः प्रणयतः परिगीयमाना देव्या गिरेति निजगाद विदेहराज्ञी ।
भक्त्या प्रणम्य वचनं मृदुलस्वभावा भाग्याभिभूतसकलामरपट्टकान्ता ॥७४॥

भगवान् शिवजी बोले :-हे श्रीपार्वतीजी ! श्रीसरस्वतीदेवीके द्वारा प्रेमपूर्वक इस प्रकार, पूर्णरूपसे वर्णनकी हुई तथा अपने सौभाग्यसे समस्त देव पटरानियोंपर विजयको प्राप्त, कोमल स्वभाव वाली श्रीसुनयना महारानीजी उन्हें श्रद्धा-पूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथोंको जोड़े हुई इस प्रकार वचन बोलीं ॥७४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

दिष्ट्याऽऽगताऽसि वरदेऽखिललोकवन्द्ये
मां वै कृतार्थयितुमेव नमोऽस्तु तुभ्यम् ।
त्वत्सत्क्रिया न मम बुद्धिचरी विभाति
स्यां त्वां प्रसादयितुमद्य यया समर्था ॥७५॥

हे समस्त देवताओंके द्वारा प्रणाम करने योग्य श्रीसरस्वती महारानीजू ! मेरे बड़े सौभाग्यसे ही, मुझे कृतार्थ करनेके लिये आपका शुभागमन हुआ है, अतः इस कृपाके लिये मैं आपको नमस्कार करती हूँ । आपको जिसके द्वारा मैं निश्चय ही प्रसन्न करनेमें समर्थ हो सकूँ, वह आपका सत्कार मेरी समझमें नहीं आता जिसे करके आपको प्रसन्न कर लूँ ॥७५॥

तस्मात्त्वमेव कृपया वद मे प्रसन्ना कर्त्तव्यतां मदुचितामधुनाऽऽशु पृष्टा ।
तुष्टिर्हि ते भवतु पूर्णतया मयीशे! कामं यथा भगवति ! प्रणताऽस्म्यहं त्वाम्॥७६

हेभगवती ! हे ईशे ! इसलिये आप अपनी निर्हेतुकी कृपासे ही मेरे प्रति प्रसन्न होकर, इस समय मेरे पूछने पर, मुझे शीघ्र वह कर्त्तव्य बतलाइये, जिसके द्वारा मेरे ऊपर आपकी इच्छानुसार पूर्ण रूपसे प्रसन्नता हो जावे, एतदर्थ आपको मैं प्रणाम करती हूँ आप मुझे अपनी प्रसन्नता का साधन बतला दीजिये ॥७६॥

श्रीवाग्देव्युवाच ।

पूज्ये ! नताऽस्मि खलु ते चरणारविन्दं मैवं ह्रिया च परिपूरयितुं यत त्वम् ।
मामम्ब ! चेत्करुणया वरदाऽसि मह्यं भुक्तावशिष्टमनघे ! दुहितुः प्रयच्छ ॥७७॥

श्रीसरस्वतीजी बोलीं ! हे पूज्ये ! (पूजनीयगुणसौभाग्यादियुक्त) श्रीमहारानीजी ! मैं आपके चरण कमलों को नमस्कार करती हूँ, आप हमें इस प्रकार लज्जाके द्वारा सब प्रकारसे पूर्ण करनेके लिये प्रयत्न न कीजिये । हे पापरहिते श्रीअम्बाजी ! और यदि आप अपनी कृपावश मेरा प्रसन्नताके लिये कुछ देना ही चाहती हैं, तो श्रीललीजीका पाकर (भोजन करके) छोड़ा हुआ प्रसाद, मुझे प्रदान कीजिये, इस साधनसे मेरी पूर्ण सन्तुष्टि हो जावेगी ॥७७॥

श्रीशिव उवाच ।

वाण्या निशम्य वचनं चकिताऽपि राज्ञी तस्यै दिदेश तनयापरिभुक्तशेषम् ।
लब्ध्वा ननर्त तदुमे ! पुलकाञ्चिताङ्गी वागीश्वरी परमभाग्यवती कृतार्था ॥७८॥

भगवान् शिवजी बोले :—हे श्रीपार्वतीजी ! श्रीसुनयना महारानीजी श्रीसरस्वती महारानीके इस प्रकारके वचनोंको सुनकर उनकी इस भाव पूर्ण याचना पर आश्चर्य युक्त हो गयीं, तथापि उनकी प्रसन्नता प्राप्तिके लिये श्रीललीजीका भोजन करके छोड़ा हुआ (उच्छिष्ट) प्रसाद उन्हें प्रदान कर दिये । हे पार्वती ! उस प्रसादको प्राप्त करके, अपने मनोरथसिद्ध होनेके कारण परम सौभाग्यवती श्रीसरस्वती महारानीके रोमाञ्च हो आया और वे आनन्द मग्न हो नाचने लगीं ७८

संचुम्ब्य पादकमले जनकात्मजायः प्रेमोन्मदान्धहृदया नयनाम्बुजाभ्याम् !
नत्वाऽभितश्च सुषमानिधिनिर्मिताङ्गीमन्तर्दधे स्मितमुखीं परिदृश्यमानाम् ॥७९॥

इति चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

—ः मासपारायण विश्राम १४ ः—

पुनः प्रेमके उन्मादसे अन्धी (लौकिक मर्यादा भावसे रहित) हुई, वे श्रीसरस्वती महारानी श्रीजनकललीजूके श्रीचरणकमलोंको अपने नयन कमलों द्वारा सम्यक् प्रकारसे चूमकर, उन मुस्कान युक्त मुखचन्द्र वाली तथा सुषमा (उपमा रहित सौन्दर्य) के भण्डार द्वारा रचे हुए सभी अङ्गोंवाली श्रीललीजीको चारों ओरसे प्रणाम करके अन्तर्धान (गुप्त) हो गयीं ॥७९॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

स्वर्णकारिणी (सोनारिनी) रूपमें श्रीपार्वतीजीका आगमन तथा उनके भावकी पूर्ति ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

ततः पञ्चदिनेऽतीते पार्वती पतिदेवता ।
आजगाम महाभागा नृपद्वारमनावृतम् ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजीसे बोले-हे प्रिये ! श्रीसरस्वती महाराणीके जानेके पाश्च दिनव्यतीत होने पर (छठे दिन) पतिदेवको ही अपना इष्टदेव माननेवाली बड़भागिनी श्रीपार्वतीजी श्रीमिथिलेशजी महाराजके खुले द्वारपर आईं ॥१॥

द्वाःस्थकान् समुवाचेदं हे महाराजकिङ्कराः !
प्रार्थनां कृपया राज्ञ्यै निवेदयितुमर्हत ॥२॥

पुनः द्वारपालोंसे बोलीं:-हे श्रीमिथिलेशजी महाराजके सेवको ! आप लोगोंको मेरी प्रार्थना श्रीमहारानीजीसे निवेदन कर देना उचित है ॥२॥

श्रूयतां सावधानेन चेतसा सूक्ष्मदर्शिनः !
उच्यमाना मयेदानीं सा भवद्भिः कृपालुभिः ॥३॥

हे ज्ञानदृष्टि वाले द्वारपालो ! अब मैं उस प्रार्थनाको निवेदन करती हूँ, आप कृपालु लोग स्थिर चित्त से श्रवण कीजिये-॥३॥

अमूल्याभूषणादीनि विशालानि लघूनि च ।
दूरदेशादहं प्राप्ता समादाय पुरं तव ॥४॥

हे श्रीमहाराणीजी ! मैं दूर देशसे छोटे बड़े सभी प्रकारके अमूल्य भूषणादिकोंको लेकर आपके पुरमें आई हूँ ॥४॥

सङ्केता प्राप्यते नैषां धनाढ्यः कोऽपि मोहितः ।
श्रुत्वा मूल्यं मया प्रोक्तं नृपार्हाणामुदीक्ष्य च ॥५॥

इन राजाओं के योग्य भूषणों को देखकर सभी लोग लालायित हो जाते हैं, परन्तु मेरे बतलाये हुये मूल्यको सुनकर कोई भी खरीदने वाला धनी नहीं मिलता ॥५॥

तान्यभीष्टानि चेत्ते स्युः समालोक्याहृतानि मे ।
क्रेतुमर्हसि सर्वाणि यदि वा स्वेप्सितानि हि ॥६॥

मेरे लाये हुये भूषणोंको देखकर, यदि वे पसन्द आवें तो आप चाहे सभी भूषणोंको खरीदलें अथवा अपनी इच्छानुसार ॥६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति विज्ञापितं तस्याः श्रावयामासुरालिभिः ।
द्वाःस्थकाः श्रीमहाराज्ञी तन्निशम्याह सा च ताः ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले—हे प्रिये ! द्वारपालोंनेउनकी इस प्रार्थनाको सखियोंके द्वारा श्रीसुनयना महारानीजीको श्रवण कराया, उसको सुनकर श्रीसुनयना महारानीजी उन सखियोंसे बोलीं ॥७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

सा न कस्मात्समानीता भवतीभिर्ममान्तिकम् ।
सादरं तामिहादाय तूर्णमागच्छताधुना ॥८॥

श्रीसुनयना महारानी बोलीं–आप लोग उसे मेरे पास क्यों नहीं ले आईं ? अच्छा अब उसे आदर पूर्वक शीघ्र लेकर आओ ॥७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अनुज्ञप्ताभिरित्येवं तथेत्युक्त्वा प्रणम्य च ।
दर्शिताऽऽनीय शर्वाणी छद्मना स्वर्णकारिणी ॥९॥

श्रीस्नेहपराजी श्रीरघुनन्दन प्यारेजूसे बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीसुनयना अम्बाजीकी इस प्रकारकी आज्ञाको पाकर उन सखियोंने "ऐसा ही करेंगी" कह कर उन्हें प्रणाम करके, कपटसे स्वर्णकारिणी (सोनारी) बनी हुई उन श्रीपार्वतीजीको लाकर श्रीअम्बाजीको दिखाया ॥९॥

धरण्यां न्यस्तमञ्जूषा प्रणता परया मुदा ।
पृष्टा सा सादरं राज्ञ्या विनयानतलोचना ॥१०॥

श्रीपार्वतीजी अपने वेषानुकूल, भूषणोंकी पेटीको भूमिपर रखकर श्रीसुनयना अम्बाजीको प्रणाम करके, नम्रतावश अपने नेत्रोंको नीचेकर लेतीं हुईं, तब श्रीअम्बाजीने बड़ी आदरके साथ प्रसन्नता पूर्वक उनसे पूछा–॥१०॥

श्रीसुनयनोवाच ।

केन नाम्ना त्वमाख्याता कुत्रत्या पितरौ च कौ ।
इति मह्यं समाख्याहि विश्रम्य विहिताशना ॥११॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-आप किस नामसे विख्यात हैं ? आपका निवास कहाँ रहता है ? आपके माता-पिता कौन हैं ! यह आप मुझे भोजन करके विश्राम करनेके पश्चात् बतलाइयेगा ११

श्रीपार्वत्युवाच ।

जयतात्त्वं कृपागारे ! भोजनं विहितं मया ।
विक्रयादेव भूषणां विश्रामो मे ऽवधार्यताम् ॥१२॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं:-हे कृपाकी निवासस्वरूपा श्रीमहारानीजी ! आपकी जयहो ! जय हो ! मैं भोजन कर चुकी हूँ और इन भूषणोंके बिक जानेपर ही आप मेरा विश्राम जानिये ॥१२॥

अपर्णा नामविख्याता मेनकातनयाऽस्म्यहम् ।
पिता गिरीन्द्रदेवो मे यत्र कुत्र निवासिनी ॥१३॥

मैं अपर्णा नामसे विख्यात श्रीमेनका मइयाकी पुत्री हूँ, मेरे पिता श्रीगिरीन्द्रदेवजी हैं और मेरा निवास जहाँ-तहाँ रहता है ॥१३॥

गङ्गाधरस्य मां पत्नीं विद्धि वै स्वर्णकारिणीम् ।
विक्रयो भूषणादीनां वृत्तिर्मे जीवनस्य वै ॥१४॥

मुझ स्वर्णकारिणी (सोनारिनी) को आप श्रीगङ्गाधरजीकी पत्नी जानिये, भूषणों को बेचना ही मेरी जीवन-वृत्ति (जीविका) है ॥१४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

कामं दर्शय मे भद्रे ! भूषणानि पृथक्पृथक् ।
लघूनि च विशालानि यदर्थं त्वमिहागता ॥१५॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे कल्याणि ! अच्छा तुम अपने छोटे बड़े भूषणोंको अलग अलग करके मुझे दिखलाइये, जिसलिये यहाँ आई हो ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमाशंसिता राज्ञ्या मोदमानेन चेतसा ।
मञ्जूषां तामपावृत्य भूषणानि व्यदर्शयत् ॥१६॥

हे प्यारे ! श्रीसुनयना अम्बाजीके इस प्रकार कहने पर वे श्रीअपर्णाजी प्रसन्न होते हुये चित्तसे उस सन्दूक को खोलकर भूषणोंको दिखाने लगीं ॥१६॥

श्रीअपर्णोवाच ।

दृश्यन्तां चन्द्रिका एता निन्दितेन्दुचयप्रभाः ।
कुमारीणां शिरोदेशभूषणानि मनोहराः ॥१७॥

श्रीअपर्णाजी बोलीं:-हे श्रीमहाराणीजी ! चन्द्रसमूहके प्रकाशको अपनी प्रभाके द्वारा निन्दित करने वाली, कुमारियोंके शिरके चन्द्रिका नामके मनोहर भूषणोंका अवलोकन कीजिये ॥१७॥

शिरोरत्नानि चेमानि वालपाश्या इमास्तथा ।
एताश्च कर्णिकाःपश्य पत्रपाश्यास्तथैव च ॥१८॥

इन शिरोरत्नों (चूडामणियों) को, चोटी में गूथने की मोतीकी लड़ियोंको देखिये। सोने की इन वालियों व माथेके भूषणोंको आप अवलोकन कीजिये ॥१८॥

ग्रैवेयकानि चेमानि पश्य चैव ललन्तिकाः ।
इमाः प्रालम्बिकाः पश्य तथोरःसूत्रिका इमाः ॥१९॥

इन कण्ठोंको देखिये, लम्बी मालाओं व इन सोनेके हारों तथा वक्षःस्थल तक आनेवाले इन मोतियोंके हारोंका निरीक्षण कीजिये ॥१९॥

एते हाराः प्रदृश्यन्तां देवच्छन्दा मनोहराः ।
गुच्छास्तथैव गच्छार्द्धा गोस्तना दिव्यरश्मयः ॥२०॥

हे श्रीमहारानीजी इन मनोहर सौलड़े हारोंको तथा ३२ लड़, २४ लड़, ४ लड़ एवं इन ५६ लड़वाले मोतियोंके हारोंको देखिये ॥२०॥

पश्य चैकावलीमाला न्नक्षमाला इमास्तथा ।
वलयानङ्गदानीत्थं कङ्कणानि विलोकय ॥२१॥

इन १ लड़ और २७, लड़ वाली मोतियोंकी मालाओंको देखिये तथा इन कड़ाओं और बाजू बन्दोंको निहारिये, इसी प्रकार इन पहुँचियों (कँगनों) को अवलोकन कीजिये ॥२१॥

काञ्च्यश्च मेखला एते कलापा रशना इमाः ।
पादाङ्गदानि चेतानि प्रदृश्यन्तां त्वया शुभे ! ॥२२॥

हे श्रीमहारानीजी! इसी प्रकार घुंघुरू लगी हुई एक लरकी, ८ लरकी, २५ लड़ व १६ लड़ वाली इन अनेक प्रकारकी करधनियों तथा नूपुरोंको आप देखिये ॥२२॥

पश्यैताः किङ्किणी रम्याः पश्य चैवोर्मिका इमाः।
साक्षराङ्गुलिमुद्राश्च महाराज्ञि! विलोकय ॥२३॥

इन मनोहर घुघुरुओं और अगूठियोंको अवलोकन कीजिये। हे श्रीमहारानीजी! और अक्षर खुदी हुई इन अंगूठियोंको देखिये ॥२३॥

किरीटांश्च प्रपश्यैतांस्तरुणार्कसमप्रभान्।
कुण्डलान् विविधान् दृष्ट्वा पश्य नासामणीनिमान् ॥२४॥

मध्याह्न समयके सूर्यके समान प्रकाशमान इन किरीटोंको देखिये, पुनः अनेक प्रकारके इन कुण्डलों को देखकर इन सुन्दर नासामणियोंको अवलोकन कीजिये ॥२४॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

तेषां सा रोचिषा सर्वं भवनं सुप्रकाशितम्।
भूषणानां समालोक्य परं विस्मयमाययौ ॥२५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे! श्रीसुनयना अम्बाजी उन भूषणोंके प्रकाशसे अपने समस्त भवनको पूर्ण प्रकाश युक्त देखकर, बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुई ॥२५॥

श्रीसुनयनोवाच।

अपूर्वाण्येव ते भद्रे! भूषणानि विभान्ति मे।
एषां क्रेता कथं लभ्यो विशेषश्रममन्तरा ॥२६॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीः–हे कल्याणि! आपके ये भूषण मुझे अपूर्व ही प्रतीत हो रहे हैं, अतः बिना विशेष परिश्रम किये हुये, इन भूषणोंको मोल लेने वाला भला कैसे मिल सकता है? २६

क्रेष्याम्येतानि सर्वाणि मा शुचो मुदमावह।
दत्वा मूल्यं त्वया प्रोक्तं पुरस्कारसमन्वितम् ॥२७॥

किन्तु आप अपने हृदयमें चिन्ता न करें, प्रसन्नता लावें। इन भूषणों के लिये आपजो मूल्य मागेंगी उसे आपको पुरस्कार पूर्वक प्रदान करके, एक दो को ही नहीं, अपितु मैं सभी भूषणोंको मोल ले लूँगी ॥२७॥

श्रीअपर्णोवाच ।

भूषयानि विशालाक्षीं विदेहकुलनन्दिनीम् ।
स्वसृभिर्बन्धुभिः साकं पुरा क्रेतुं यदीच्छसि ॥२८॥

श्रीअपर्णाजी बोलीं—हे श्रीमहारानीजी ! यदि आप मेरे भूषणोंको मोल लेनेकी इच्छा कर रही हैं, तो मैं पहिले भाई-बहिनोंके सहित, श्रीविदेहकुलको आनन्द प्रदान करने वाली, विशाललोचना श्रीललीजीका (इन भूषणोंके द्वारा) शृङ्गार करलूँ ॥२८॥

दृष्ट्वा मूल्यं प्रवक्ष्यामि तदनुज्ञातुमर्हसि ।
एतदर्थं शिरोभृङ्गः पतितस्त्वत्पदाब्जयोः ॥२९॥

दर्शन करने के पश्चात्, आपको इनका मूल्य बतलाऊँगी, सो आप श्रीललीजीका शृङ्गार करने के लिये मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, इस मनोरथकी सिद्धिके लिये मेरा यह शिररूपी भौंरा आपके श्रीचरण कमलोंमें पड़ा है ॥२९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

युक्तमेवानया प्रोक्तं कान्तिमत्येति चोदिता ।
व्यादिदेश मुदाऽसौ तां संविभूषयितुं सुताम् ॥३०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! तब श्रीकान्तिमती अम्बाजी श्रीसुनयना अम्बाजीसे बोलीं:-हे श्रीमहाराणीजी ! ये ठीक ही तो कह रही हैं, यह सुनकर श्रीसुनयना अम्बाजीने प्रसन्नता पूर्वक, श्रीअपर्णाजीको श्रीललीजीका शृङ्गार करनेके लिये आज्ञा प्रदान कर दी ॥ ३० ॥

अनुज्ञां सा तदा लब्ध्वा महाराज्ञ्या विधेर्वशात् ।
प्रेम्णा विभूषयाञ्चक्रे जन्मनां पुण्यजन्मना ॥३१॥

तब सौभाग्यवश श्रीसुनयना अम्बाजीकी आज्ञा पाकर, श्रीअपर्णाजी अनेक जन्मोंके पुण्यसे उत्पन्न हुये प्रेम पूर्वक, उनका शृङ्गार करने लगीं ॥३१॥

मैथिलीं सा तु मृद्वङ्गीमसिताम्भोजलोचनाम् ।
भूषयित्वा ततः प्रेष्ठ ! लक्ष्मीनिधिमभूषयत् ॥३२॥

श्याम कमलके समान जिनके नेत्र तथा सभी अङ्ग कोमल हैं, उन श्रीमिथिलेशदुलारीजीका शृङ्गार करके वे श्रीलक्ष्मीनिधि भइयाका शृङ्गार करने लगीं ॥३२॥

ऊर्मिलां माण्डवीं चैव श्रुतिकीर्त्तिं सुलोचनाम् ।
चन्द्रकलां विभूष्याथ चारुशीलां व्यभूषयत् ॥३३॥

श्रीऊर्मिलाजी, श्रीमाण्डवीजी श्रीश्रुतिकीर्तिजी, श्रीसुलोचनाजी तथा श्रीचन्द्रकलाजीका पूर्ण शृङ्गार करके श्रीचारुशीलाजीका विविध प्रकारसे शृङ्गार किया ॥३३॥

ततो हेमां वरारोहां क्षेमां कमललोचन ! ।
सुभगां पद्मगन्धां च भूषयामास पद्मिनीम् ॥३४॥

हे श्रीकमललोचन प्यारे ! श्रीचारुशीलाजीके पश्चात् श्रीहेमाजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीक्षेमाजी, श्रीसुभगाजी, श्रीपद्मगन्धाजी, तथा श्रीपद्मिनीजीका शृङ्गार किया ॥३४॥

एवमेव तथा सर्वाः कुमार्यो निमिवंशजाः ।
भूषिता रेजिरे सर्वैर्भ्रातृभिः संविभूषितैः ॥३५॥

इसी प्रकार श्रीअपर्णाजीके द्वारा सभी शृंगार युक्तकी हुई निमिवंश- कुमारियाँ अपने पूर्ण शृङ्गार-युक्त भाइयोंके सहित देदीप्यमान (सुशोभित) हुई ॥३५॥

मातुरङ्कगतांस्तांस्ताः कुमारांश्च कुमारिकाः ।
दृष्ट्वा नीराजनं चक्रे नृत्यमाना नृपाजिरे ॥३६॥

उन सभी कुमार-कुमारियोंको अपनी-अपनी अम्बाजीकी गोदमें विराजमान देखकर, श्रीअपर्णाजी श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्राङ्गणमें नाचती हुई, उनकी आरती करने लगीं ॥३६॥

वद मूल्यमिति श्रुत्वा भाषितं श्रीसुभद्रया ।
अञ्जलिं मस्तके कृत्वा सा ऽऽह गद्गदया गिरा ॥३७॥

तब श्रीसुभद्राजीने कहा—"अच्छा अब तो इन भूषणोंका मूल्य बतलाइये" यहसुनकर श्रीअपर्णा जी दोनों हाथोंकी बँधी हुई अंजुरीको अपने मस्तक पर रखकर गद्गद्वाणीसे बोलीं ॥३७॥

श्रीअपर्णोवाच ।

लब्धं मूल्याधिकं मूल्यं महाराज्ञ्यधुना मया ।
दर्शनादधिकं मूल्यं भूषणानां न विद्यते ॥३८॥

हे श्रीमहाराणीजी ! इस समय मुझे भूषणोंके मूल्यसे अधिक मूल्य मिल चुका है, क्योंकि इन भूषणोंकी न्योछावर श्रीलालजीके दर्शनोंसे अधिक न थी अर्थात् कम ही थी सो दर्शनकी

कौन कहे ? भृङ्गारके बहानेसे, मैंने इनका भली प्रकारसे स्पर्श-सुख भी प्राप्तकर लिया। और आरती करती हुई श्रृङ्गार-युक्त भाई बहिनोंके सहित श्रीललीजीकी अनुपम छटाका भी दर्शन कर लिया ३८

अद्य मे सफलं जन्म ह्यद्य मे सफला गुणाः।
अद्य मे फलवान्सम्यग्जन्मनां पुण्यसञ्चयः ॥३९॥

आज श्रीललीजीका दर्शन करके मेरा जन्म सफल हुआ, आज मेरे सभी गुण सफल हुये, तथा आज अनेक जन्मोंका इकट्ठा हुआ मेरे पुण्यका सञ्चय (ढ़ेर) भी पूर्ण सफल होगया ॥३९॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एतदुक्त्वा वचोऽपर्णा निपपात महीतले।
प्रेमावेशाद्विशुद्धात्मा पश्यन्त्यवनिजाननम् ॥४०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! शुद्ध हृदय वाली श्रीअपर्णाजी यह वचन श्रीअम्बाजीसे कहकर, भूमिसे प्रकट हुई श्रीललीजीके मुखारविन्दका दर्शन करती हुई, प्रेमावेशसे पृथिवी पर गिर पड़ीं ॥४०॥

तां तदोत्थापयामास महाराज्ञी विशुद्धधीः।
बोधयित्वा गिरा माध्व्या सादरं प्रत्यभाषत ॥४१॥

तब निर्मल (छल-कपट-रहित) बुद्धि वाली श्रीसुनयना अम्बाजी उन्हें उठा लेती हुईं और सावधान करके आदर-पूर्वक बड़ी मीठी वाणीसे बोलीं ॥४१॥

श्रीसुनयनोवाच।

हेऽपर्णे! सुप्रसन्नाऽस्मि वरं ब्रूहि हृदीप्सितम्।
अकृतार्थां च भवतीमकृत्वा नास्ति मे सुखम् ॥४२॥

हे श्रीअपर्णाजी! मैं आपपर बहुत प्रसन्न हूं, अतः आप अपना हृदयसे चाहा हुआ वर माँगलो, आज आपको बिना कृतार्थ (पूर्ण मनोरथ) किये हुये, मुझे सुख (सन्तोष) नहीं है ॥४२॥

श्रीअपर्णोवाच।

देहि पादोदकं प्रीत्या तदुच्छिष्टं च भोजनम्।
भूषणं नूपुरं देहि नान्यदेवेप्सितं वरम् ॥४३॥

श्रीअपर्णाजी बोलीं:—हे श्रीमहारानीजी! यदि आप मेरे हृदयकी इच्छित वस्तुयें देना चाहती हैं, तो श्रीललीजीका एक तो चरणामृत, दूसरे पूर्ण भोजन कर लेनेपर, उनके थालका

बचा हुआ भोजन (प्रसाद) तीसरे श्रीलल्लीजीके श्रीचरणकमलका एक नूपुर हमें प्रेम पूर्वक प्रदान कीजिये । इन तीन वरोंको छोड़कर मैं और कुछ भी नहीं चाहती हूँ ॥४३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

सुभगे ! काङ्क्षितं यत्तत्प्रदास्यामि न संशयः ।
उच्यतां तत्त्वयेदानीं मया श्रोतुं यदिष्यते ॥४४॥

यह सुनकर श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे सुन्दरी ! इसमें सन्देह नहीं है, जो आप प्राप्त करना चाहती हैं, उसे मैं आपको अवश्य प्रदान करूँगी, परन्तु इस समय (अपने सन्तोषार्थ) जो मैं आपसे सुनना चाहती हूँ, उसे आप कथन कीजिये ॥४४॥

किममूल्यान्यमूल्येन भूषणानि प्रदाय मे ।
अपूर्वाणि महाभागे ! स्वभर्तारं प्रवक्ष्यसि ॥४५॥

हे महाभागे ! अपूर्व (पूर्वमें न प्राप्त हुये) व अमूल्य (मूल्य न देसकने योग्य) इन भूषणों को विना मूल्य (दाम) के ही हमें देकर, जब आप अपने पतिदेव के पास पहुँचेगी तो उनसे क्या कहेंगी ? ॥ ४५ ॥

श्रीअपर्णोवाच ।

हस्तसाफल्यसंप्राप्तिर्मूल्यमेषां विनिश्चितम् ।
भूषणानाममूल्यानां तन्मया समुपार्जितम् ॥४६॥

श्रीअपर्णाजी बोलीं:-हे श्रीमहारानीजी ! हमारे पतिदेव जीने इन अमूल्य भूषणोंका मूल्य (न्यौछावर) हाथोंकी सफलता-प्राप्ति ही, विशेष रूपसे निश्चित किया था, सो उसे मैंने सम्यक् प्रकारसे ही प्राप्त कर लिया ॥४६॥

विश्वासार्थं च मे पत्युः प्रमाणं नूपुरं भवेत् ।
याचितं मृगशावाक्ष्यास्तव पुत्र्यास्ततो मया ॥४७॥

यदि आप शङ्का करें, कि आपके पतिदेवको यह कैसे विश्वास होगा कि आपने अपने हाथों की सफलता प्राप्तकर ली है ? सो, उनके विश्वासके लिये ही मैंने मृगके छौनेके समान सुन्दर व विशाल नेत्र वाली आपकी श्रीललीजीका नूपुर माँगा है, वही इस विषयमें प्रमाण (साक्षी) होगा, इस नूपुरका दर्शन करा देनेपर, हमें उनसे कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी ॥४७॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमुक्ता तया राज्ञी महाश्चर्यसमन्विता।
अनुज्ञामददत्तस्यै ह्यादातुं चरणोदकम् ॥४८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्राण-प्यारे! जब अपर्णाजीने श्रीअम्बाजीसे इस प्रकारका रहस्य निवेदन किया, तब उन्होंने परम आश्चर्ययुक्त होकर, उन (श्रीअपर्णाजी) को श्रीललीजीका चरणामृत लेने की आज्ञा प्रदान करदी ॥ ४८ ॥

श्रीसुनयनोवाच।

सुताया मम कल्याणि! गृहाण चरणोदकम्।
क्षालयित्वाङ्घ्रियुगलं भव पूर्णमनोरथा ॥४९॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:—हे कल्याणस्वरूपे! हमारी श्रीललीजीके दोनों चरणकमलोंको धोकर चरणामृत ले लेवें, और अपने इस मनोरथको पूर्ण करें॥ ४९ ॥

अधरोच्छिष्टमन्नं ते तनया मे प्रदास्यति।
प्रसन्नेयं तव प्रेम्णा नूपुरं तदनन्तरम् ॥५०॥

हमारी श्रीललीजी, आपको अपने अधरकी जूठन (प्रसाद) प्रदान करेंगी, तत्पश्चात् नूपुर भी प्रदान कर देंगी, क्योंकि ये आपके प्रेमसे प्रसन्न हैं॥ ५० ॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमुक्ता मुदा राज्ञा वाढमित्यभिभाष्य ताम्।
मैथिलीपादपाथोजक्षालनाय मनोदधे ॥५१॥

इस प्रकार श्रीसुनयना अम्बाजीके आश्वासन देनेपर, श्रीअपर्णाजी हर्षपूर्वक उनसे बहुत अच्छा कहकर, श्रीमिथिलेशललीजीके चरणकमलोंको धोनेके लिये मन देती हुईं अर्थात् उद्यत हो गयीं॥ ५१ ॥

सरोजवज्रध्वजशङ्खचक्रगदेन्दुमाच्छत्रकिरीटहंसैः।
चापेषुशेषामृतकुण्डयानस्वस्त्यष्टकोणाम्बरचन्द्रिकाढ्यम् ॥५२॥
त्रिकोणषट्कोणहलार्द्धचन्द्रस्रग्भूमिदेवद्रुमशक्तिजीवैः।
वंशीत्रिवल्यादिमनोज्ञचिह्नैस्तथेतरैरप्युपशोभमानम् ॥५३॥
निरीक्ष्य सा पादसरोजयुग्मं मुनीन्द्रचेतोभ्रमराभिजुष्टम्।
सुकोमलं पद्मविलोचनाभ्यां स्पृष्ट्वाऽऽलिलिङ्गोदितसद्विपाका ॥५४॥

कमल, वज्र, ध्वजा, शङ्ख चक्र, गदा, चन्द्र लक्ष्मी, छत्र, किरीट हंस व धनुष, बाण, शेष अमृत-कुण्ड, रथ, स्वस्तिक, अष्टकोण, अम्बर, चन्द्रिका चिन्हसे युक्त ॥५२॥ त्रिकोण, षट्कोण, हल, अर्धचन्द्र, जयमाल, पृथिवी, कल्पवृक्ष, शक्ति, जीव चिह्नोंके सहित वंशी, त्रिवली तथा और भी मनोहर चिह्नोंसे शोभायमान ॥५३॥ मुनियोंके चित्तरूपी भौंरोंसे सेवित, सुकोमल, उन श्रीचरण कमलोंका दर्शन करके उन्हें अपने नेत्र रूपी कमलोंसे स्पर्श करके हृदयसे लगाया क्योंकि उनके शुभ कर्म्मोंका भोग निश्चय ही उदय था ॥५४॥

पुनः समाधाय मनः कथञ्चित् तत्क्षालयामास परानुरक्त्या ।
निपीय पादामृतमम्बुजाक्ष्या राज्ञीमुखं चैक्षत रुद्धकण्ठा ॥५५॥

उन्होंने किसी प्रकार अपने मन को एकाग्र करके, बड़े अनुरागपूर्वक उन श्रीचरण कमलोंको धोया पुनः कमललोचना (श्रीलली) जी का चरणामृत पीकर गद्गद् कण्ठ हो, श्रीसुनयना अम्बाजीके मुखकी ओर देखने लगीं ॥५५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे पुत्रि ! मिष्टान्नमिदं च भुक्त्वा शेषं किलास्यै कृपया प्रयच्छ ।
सरोजकल्पेन मनोहरेण करेण शोभामयि ! भद्रमस्तु ॥५६॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे शोभामयि ! श्रीललीजी ! आपका मङ्गल हो, इस मिष्टान्न को आप खाकरके जो बचे उसे कृपा करके अपने कमलके समान मनोहरहाथ द्वारा इन श्रीअपर्णाजी को प्रदान कर दीजिये ॥५६॥

वत्से ! त्वयीयं परमानुरक्ता हृद्वाग्वपुर्भिः सहजस्वभावात् ।
अनेकरत्नाञ्चितनूपुरस्य प्रदानमात्रेण कृतार्थयैनाम् ॥५७॥

इन श्रीअपर्णाजीका आपके प्रति सहज स्वभावसे हृदयसे वाणीसे, शरीरसे बड़ा ही प्रेम है, अतएव अनेक रत्नोंसे सुशोभित अपना एक नूपुर (पायजेब) प्रदान करके इन्हें कृतार्थ कर दीजिये ॥ ५७ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्येवमुक्ता ऽवनिनाथपुत्री प्रेम्णा जनन्या स्मितमित्युवाच ।
तां सादरं मङ्गलपुञ्जमूर्त्तिः प्रकाशयन्ती भवनं स्वदीप्त्या ॥५८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-जब श्रीअम्बाजीने प्रेम पूर्वक इस प्रकारका भाव प्रगट किया, तब अपनी कान्तिसे सारे भवनको प्रकाश युक्त करती हुई, मङ्गल समूहों की विग्रह स्वरूपा श्रीललीजी मन्द मुस्कराती हुई श्रीअम्बाजीसे यह आदर पूर्वक बोलीं ॥ ५८ ॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

उच्छिष्टमस्य च किमर्थमेव प्रदातुमाज्ञां प्रददासि मह्यम् ।
दानेन किं केवलनूपुरस्य कस्मान्न सर्वाभरणानि दद्याम् ॥५९॥

हे श्रीअम्बाजी ! आप इन अपर्णाजीको उच्छिष्ट ही देनेकेलिये हमें क्यों आज्ञा प्रदान कर रहे हैं ? केवल एक नूपुरके ही दानसे क्या प्रयोजन है ? इन्हें मैं अपने सभी भूषण क्यों न दे दूं ॥५९

श्रीसुनयनोवाच ।

स्वस्त्यस्तु ते सौम्यमुखारविन्दे ! विना त्वदुच्छिष्टमियं न किञ्चित् ।
स्वीकर्तुमिच्छां हृदये करोति न नूपुराद्भूषणमन्यदेव ॥६०॥

श्रीललीजीके उदारता पूर्ण इन वचनों को सुनकर श्रीअम्बाजी बोलीं :-हे सौम्य (सुमन यानी फूलके समान प्रफुल्लित) मुखकमल वालीजी ! आप का मङ्गल हो। ये आपके उच्छिष्टके अतिरिक्त कुछ भी हृदयमें स्वीकार करनेकी इच्छा नहीं कर रही हैं; और न नूपुरके अतिरिक्त कोई अन्य भूषण ही ग्रहण करना चाहती हैं, अत एव यही दोनों वस्तुयें इन्हें प्रदान करना आवश्यक है ॥६०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

संश्रूय चैतद्वचनं जनन्याः सौवर्णपात्रे विनिवेशितं तत् ।
मिष्टान्नमाशाद् विविधं यथेच्छं ह्यपर्णया तत्त्वनुलाल्यमाना ॥६१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीके इन वचनों को सुनकर श्रीअपर्णाजीके प्यार करते हुये वे सुवर्णके थालमेंरक्खे हुये अनेक प्रकारके मिष्टान्न (मिठाइयों) को अपनी इच्छा भर पा लिये ॥६१॥

निपीय तोयं च पुनस्तदन्नं जलं च तस्यै करपङ्कजाभ्याम् ।
पीतावशिष्टं प्रददौ प्रसन्ना स्वनूपुरं चाशु पदाङ्घ्रिसृष्टम् ॥६२॥

जल पीकरके पुनः थालका वह प्रसाद तथा पीनेसे बचे हुये जलको और शीघ्र ही प्रसन्न

हुई श्रीललीजीने अपने चरण कमलसे निकाले हुये नूपुरको, अपने कर कमलों द्वारा श्रीअपर्णाजीको प्रदान कर दिया ॥६२॥

कृत्वा शिरोभूषणमासकामा तन्नूपुरं सत्वरमम्बुजाक्ष्याः ।
तया प्रदत्तं मुदिताऽऽश साऽन्नं पपौ सुधास्वादधिकं जलं च ॥६३॥

श्रीललीजीके प्रदान किये हुये अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट प्रसादी मिष्ठानको श्रीअपर्णाजीने आनन्दमग्न हो खाया तथा जलको पी लिया और उन कमल-लोचना श्रीललीजीके प्रसादी नूपुरको अपने शिरका भूषण बनाकर वे तत्क्षण कृत कृत्य हो गयीं ॥६३॥

उवाच राज्ञीं परयाऽनुरक्त्या बद्धाञ्जलि सा पुलकान्विताङ्गीः ।
सगद्गदं वाक्यमिदं ह्यपर्णा प्रणम्य भूयो मुदितान्तरात्मा ॥६४॥

पुनः श्रीअपर्णाजी मुदित हृदयसे रोमाञ्चयुक्त होकर हाथ जोड़े हुई, परम अनुराग, पूर्वक बारम्बार श्रीअम्बाजीसे प्रणाम करके बोलीं:—

श्रीअपर्णोवाच ।

कृतार्थिताऽहं खलु ते प्रसादान्न जातु तत्प्रत्युपकर्तुमीशा ।
नमामि भूयस्तव पादपद्मं कृपेदृशी मय्यनिशं विधेया ॥६५॥

हे श्रीमहाराणीजी ! आपकी कृपासे मैं निश्चय ही कृतार्थ होगयी, आपके इस उपकारका बदला मैं कभीभी चुकानेके लिये समर्थ नहीं हूँ, अत एव आपके श्रीचरणकमलोंमें मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ, आप सदा मेरे प्रति ऐसीही कृपा करती रहेंगी ॥ ६५ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

ततः परिक्रम्य मुहुर्नताङ्गी सुतां विदेहस्य मनोऽभिरामाम् ।
आनन्दबाष्पाश्रितपङ्कजाक्षी तिरोदधे तावलोकयन्ती ॥६६॥

इति पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

तत्पश्चात् परिक्रमा करके, मनको चारो ओरसे आनन्द प्रदान करने वाली, श्रीविदेह राजदुलारीजी को बारम्बार प्रणाम करके आनन्दके अश्रुओंसे पूर्ण कमल समान नेत्र वाली वे (श्रीअपर्णाजी) उनका दर्शन करती हुई अन्तर्धान हो गयीं ॥६६॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

श्रीसुनयना-अम्बाजीके द्वार बन्द भवनमें श्रीकिशोरीजीकी आगमन-लीला

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सुनयनागृहमेत्य मनोरमं स्वसृगणैरनया सह खेलनम् ।
कृतवती तु कदाचिदशैशवे पुनरगामरिमर्दनमन्दिरम् ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—जब मेरी शिशु अवस्था व्यतीत हो गयी तब एक समय श्रीसुनयना-अम्बाजीके मनोहर भवनमें जाकर मैं अन्य बहिनियोंके सहित श्रीललीजीके साथ खेलती हुई पुनः श्रीअरिमर्दनजी-महाराजके महलको गयी ॥१॥

तदविलोक्यमब्जविलोचन ! सुदृढबद्धकपाटमतिप्रभम् ।
इदमशङ्कि कवाटवृतं कथं पुनरदर्शि सुरन्ध्रतयेप्सितम् ॥२॥

हे कमल नयन (श्रीप्राणप्यारेजू!) जब मैं उनके भवन पहुँची, तो क्या देखती हूँ कि उस भवनके कपाट (किवाड़) बड़े मजबूतीसे बन्द हैं और भवन अत्यन्त प्रकाशसे युक्त है, यह देख कर मुझे सन्देह हुआ कि इस समय ये किवाड़ किस लिये बन्द हैं ? इस आशङ्काके बाद खलनेके कारण, भीतरकी बात जाननेके उपायमें लग जानेपर, मैंने एक छोटे छिद्रसे अपनी इच्छानुसार सब कुछ देख लिया ॥२॥

जनकलाननचन्द्रदिदृक्षया मुनिसमाहितमानसमानसा ।
रहसिगा तु कुरङ्गविलोचना प्रिय ! मया सुनयनाऽप्यवलोकिता ॥३॥

हे प्यारे ! श्रीजनकललीजूके मुखचन्द्रकी दर्शनाभिलाषासे मुनियोंके एकाग्र मनके सदृश एकाग्र मन तथा हरिणके समान विशाल नेत्र वाली श्रीसुनयना अम्बाजी मुझे एकान्तमें बैठी हुई दिखाई पड़ीं ॥३॥

विधिमयाचत बद्धकराञ्जलिः सुनयनातनया मम सन्निधौ ।
मम निकेतमनावयतां विधे ! द्युतिविलज्जितकोटिविधुच्छविः ॥४॥

पुनः वे दोनों हाथ जोड़ कर याचना करने लगीं—हे विधाता ! अपनी कान्तिसे करोड़ों चन्द्रमाकी छविको लज्जित करनेवाली श्रीसुनयनानन्दिनीजू मेरे पास महलमें आ जावें ॥४॥

प्रलपतीति नराधिपनन्दिनि ! प्रणयशीलसुखैकसुविग्रहे !
स्मितमुखि ! प्रिय ! कोकिलभाषिणि द्रुतमिहैत्य मदङ्कमुपाविश ॥५॥

हे प्यारे ! वे प्रेम विभोर होकर इस प्रकार प्रलाप करने लगीं–हे श्रीमिथिलेशजी महाराजको आनन्द प्रदान करनेवाली ! हे प्रणय, शील, सुखकी उपमा रहित मूर्ति ! हे मुस्कान युक्त मुखवाली ! हे कोयलके समान सुरीले कण्ठवाली श्रीललीजी ! आप शीघ्र ही भवनमें आकर मेरी गोदमें विराज जाइये ॥५॥

सफलतां च मनोरथवल्लरी व्रजतु चेन्मम चाद्य यदृच्छया।
मम तु जीवनमस्ति सुजीवनं न तु वृथेदमिदं गतमन्यथा ॥६॥

आज दैवयोगसे यदि यह मेरी मनोरथ रूपी लता (बेल) फलवाली हो गयी तब तो मेरा जीवन सुन्दर जीवन है, नहीं तो मेरा यह जीवन व्यर्थ ही नष्ट हुआ ॥६॥

विधिसुतेन भविष्यविपश्चिता सुमुखि ! सर्वगता चिदचित्परा ।
सकलदेहभृतां हृदयेशया निखिलशक्तिशिरोमणिनायिका ॥७॥

हे सुन्दर मुखी श्रीललीजी ! भविष्यके जानने वाले ब्रह्माजीके पुत्र, श्रीनारदजी महाराजने आपको सर्वत्र व्याप्त, जड़ चेतनसे परे, (परब्रह्म स्वरूपा) समस्त देहधारियोंके हृदयमें शयन करने वाली, (आत्मा) तथा सम्पूर्ण शक्तियोंकी सबसे श्रेष्ठ नियन्त्रण करने वाली ॥७॥

त्रिजगतां जननी परमा गतिः परमकारुणिका जगदीश्वरी ।
निगदिताऽप्यखिलेप्सितवर्षिणी सुखविधित्सतया धृतचित्तनुः ॥८॥

तीनों लोकोंकी माता, जीवोंकी सबसे श्रेष्ठ रक्षास्थान, सबसे अधिक करुणा-वाली, चर-अचर सभी प्राणियों की स्वामिनी, सम्पूर्ण मनोऽभिलषित सिद्धियोंकी वर्षा करने वाली, समस्त विश्वके सुख प्रदानकी इच्छासे चैतन्यमय विग्रह को धारण करने वाली बतलाया है ॥८॥

सुगणकैस्त्वमसीत्यमपीरिता सकलदेहभृतां सुखदा त्वियम् ।
भुवि भवित्र्यसमा समदर्शिनी निखिलभावगणास्पदविग्रहा ॥९॥

इसी प्रकार उत्तम ज्योतिषियोंने भी आपके लिए कहा है, कि ये श्रीललीजी सम्पूर्ण देहधारियों को सुखप्रदान करनेवाली, सभी भाव-समूहोंकी स्थानस्वरूपा, सभी प्राणियों पर समान कृपा दृष्टि रखने वाली, पृथिवी पर अपनी समानतासे रहित होवेंगी ॥९॥

तदिदमस्ति यथार्थमिहेरितं यदि समाव्रजताद्द्रुतमत्र सा ।
जनकराजसुता विपुलेक्षणा कनकदामतडिद्द्युतिभृत्तनुः ॥१०॥

सो यह उन सबोंका कहा हुआ यदि सत्य है, तो विशाल लोचना, सुवर्णकी मालाके समान गौरवर्णा, व बिजुली की कान्तिको धारण किये श्रीअङ्गवाली, श्रीजनकराजदुलारीजी मेरे पास यहाँ शीघ्र आजावें ॥१०॥

अयि नराधिपनन्दिनि ! जानकि ! प्रणयतोषित ! आर्त्तजनप्रिये ।
सुनयनातनये कुलदीपिके ! सपदि नन्दय मां मुखदर्शनात् ॥११॥

हे श्रीमिथिलेशजी महाराजको आनन्द-प्रदान करने वाली ! हे श्रीजनकदुलारीजू ! हे प्रणय (विनीतप्रेम) से प्रसन्न होने वाली ! हे आर्त्तभक्तोंसे प्रेम करने वाली ! हे श्रीसुनयनाललीजू ! हे कुलको दीपकके समान प्रकाशयुक्त करने वाली श्रीललीजू ! अपने मुखचन्द्रका दर्शन कराके मुझे आनन्दित कीजिये ॥११॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति निगद्य रुरोद शनैः शनैर्जनकजापरिरम्भणकातरा ।
तदजिरे परमं किल कौतुकं दयित ! दृष्टमदः शृणु यन्मया ॥१२॥

हे प्यारे ! इतना कहकर श्रीसुवृता-अम्बाजी श्रीललीजीको हृदयसे लगानेके लिये अधीर हो धीरे-धीरे रोने लगीं, उस समय उनके आङ्गनमें जो परम आश्चर्यमय खेल हुआ, उस मेरे देखे हुयेको, आप श्रवण कीजिये ॥१२॥

अविदितात्पथ एव समागमन्मदनमोहनहेमनिभद्युतिः ।
स्मितलसच्छरदिन्दुनिभानना निविशते सुवृताङ्क इनप्रभा ॥१३॥

कामदेवको भी मुग्ध करने वाली, सुवर्णके समान गौर कान्ति, मुस्कान युक्त शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रके सदृश मुख व बाल सूर्यके समान प्रकाश वाली श्रीललीजी, वहाँ अज्ञात मार्गसे आपहुँची और श्रीसुवृता अम्बाजीकी गोदमें विराज गयीं ॥ अज्ञात मार्ग इस लिये कहा गया है कि श्रीसुवृता अम्बाजी श्रीललीजी की सर्वव्यापकताकी परीक्षाके लिये अपने महलके सभी मार्ग बन्द करके बैठी थीं फिरभी श्रीकिशोरीजी उनके पास पहुँच गयी, पर किस मार्गसे पहुँचीं, यह बुद्धिके परेकी बात थी अतएव अज्ञात मार्गसे पधारना कहा जाना युक्त है ॥१३॥

समधिगम्य दुरापमभीप्सितं जनकजातनुसङ्गमलौकिकम् ।
सुखदशीतलमाप्ततनुस्मृतिर्द्रुतमवेक्षत साऽङ्कगतामिमाम् ॥१४॥

अतः वे श्रीसुवृता अम्माजी श्रीललीजीके शरीरका दुर्लभ,मनोभिलषित दिव्य,सुखदाई तथा शीतल स्पर्शको प्राप्त करके सावधान हो, अपनी गोदमें विराजी हुई इनश्री लालीजीका दर्शन करने लगीं ॥

सघनकुञ्चितचिक्कणकुन्तलां कनकशुक्तिसुकुण्डलसुश्रवाम् ।
विमलफुल्लसरोजदलेक्षणां स्मितसमुल्लसदिन्दुनिभाननाम् ॥१५॥

जिनके घने, घुंघुराले चिकने सुन्दर केश, सुवर्णकी शुक्तिके सदृश कुण्डलोंसे युक्त सुन्दर कान, खिले हुये निर्मल कमल दलके समान नेत्र व मुस्कानसे पूर्ण शोभायमान चन्द्रमाके तुल्य आह्लाद कारी जिनका श्रीमुखारविन्द है ॥ १५ ॥

मुकुरसूक्ष्मकपोलमनोहरां शुकविमोहविधायकनासिकाम् ।
लघुदती नवबिम्बफलाधरामसितबिन्दुलसच्चिबुकोत्तमाम् ॥१६॥

जिनके शीशाके समान सूक्ष्म, छाया ग्रहण करने वाले मनोहर कपोल (गाल), सुगाको मुग्ध करनेवाली सुन्दर नासिका, छोटे छोटे दाँत, नवीन पके हुये बिम्बाफलके समान लाल अधर तथा मसि बिन्दुसे सुशोभित जिनकी उत्तम चिबुक (ठोड़ी) है ॥ १६ ॥

स्मितविलज्जितचन्द्रकरव्रजां करिकराभभुजां करपङ्कजाम् ।
दरवराभगलां तनुमध्यमां सुजघनां ललिताङ्घ्रिनखप्रभाम् ॥१७॥

मुस्कानसे पूर्णचन्द्रमाकी किरण समूहोंको जो लज्जित कर रही है, जिनकी भुजायें हाथीकी सूंड़के समान गोल व क्रमशः पतली है जिनके कमलके समान सुकोमल हाथ, श्रेष्ठ शङ्खके सदृश रेखाओंसे युक्त कण्ठ व कदली (केला) के खम्भके समान गोल, रोम रहित सुन्दर अङ्ग, और जिनके कमलके समान चरणोंके नखोंकी सुन्दर प्रभा है ॥ १७ ॥

कुलिशचक्रयवाङ्कुशपङ्कजध्वजसुरद्रुमशक्तिशरादिभिः ।
बहुभिरुत्तमलक्ष्मभिरुल्लसत्पदसरोजयुगां समलङ्कृताम् ॥१८॥

जिनके दोनों कमलके समान अत्यन्त कोमल अरुण चरणों में वज्र, चक्र, यव, अङ्कुश कमल ध्वजा कल्पवृक्ष, शक्ति, बाण आदि बहुतसे उत्तम चिह्न शोभायमान हैं ॥१८॥

मुदमवाच्यमवाप्य निरीक्ष्य तां प्रणयतः परिरभ्य चुचुम्ब सा ।
विधुमुखं नयनोत्सवविग्रहं तदमलं जगदेकविमोहनम् ॥१९॥

वे श्रीसुवृता अम्माजी श्रीललीजीका दर्शन करके अकथनीय आनन्दको प्राप्त होकर, उन्हें

हृदयसे लगाकर उनके चन्द्रमाके समान आह्लादकारी, उत्सवके सदृश नेत्रोंको नूतन आनन्द प्रदान करने वाले, स्थावर जङ्गम सभी प्राणियोंको उपमा रहित मुग्ध करने वाले स्वच्छ, मुखारविन्दको चूमती हुईं ॥१६॥

अथ शिरः परिचुम्ब्य मुहुर्मुहुः स्तनमदाद्वदने स्मितशोभिते ।
प्रिय इति ब्रुवती प्रणयान्मुहुश्चिकुरमस्पृशदम्बुजपाणिना ॥२०॥

तदनन्तर, वारम्बार उन्होंने श्रीललीजीके मस्तकको सूंघ करके मुस्कानसे उनके शोभायमान श्रीमुखारविन्दमें अपना स्तन दिया और हे प्यारी! हे प्यारी! ऐसा वारम्बार कहती हुई प्रेम पूर्वक अपने कमलवत् हाथोंसे केशोंका स्पर्श किया ॥२०॥

बहुश एवमलालयदादरादवनिनाथसुतां निजभावतः ।
सुमृदुलांशुकवेष्टितपीठके मणिमये सुनिवेश्य ततो हि सा ॥२१॥

इस प्रकार भूमि महारानीके पति श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजीका, अपने भावानुसार बहुत प्रकारसे दुलार किया तत्पश्चात् उन्होंने श्रीललीजीजीको अत्यन्त कोमल वस्त्रोंसे ढकी हुई मणि मय चौकी पर भली प्रकारसे बिठाया ॥२१॥

अमृतभोज्यमथार्प्य चतुर्विधं रचितमात्मकरेण ससौरभम् ।
निजशुभाङ्कगतां तु विधाय तां सुखमभोजयदिन्दुनिभाननाम् ॥२२॥

पुनः अपने हाथसे बनाये हुये सुगन्ध युक्त भक्ष्य, भोज्य, लेह्य चोष्य चारों प्रकारके अमृततुल्य स्वादिष्ट भोजनों को अर्पण करके, चन्द्रमाके समान प्रकाश युक्त आह्लादकारक मुखारविन्द वाली उन श्रीललीजी को अपनी गोदमें विराजमान कर वे सुख पूर्वक भोजन कराने लगीं ॥२२॥

कमपि केन सुधौतमुखाम्बुजे चितिभुवः प्रदिदेश सुवीटिके ।
रुचिरगन्धमलेपयदंशुके कुसुमहारमुरस्यभिभूष्य च ॥२३॥

पुनः श्रीसुहृता अम्बाजीने पृथ्वीसे उत्पन्न हुई श्रीललीजीको जल पिला कर, जलसे धोये हुये मुखकमलमें पानके दो बीरोंको प्रदान करती हुईं, सुन्दर गन्धको उनके कपड़ोंमें लगाती हुईं और पुष्पहारको हृदयस्थल पर अलंकृत करके ॥२३॥

अविमुदीक्ष्य तदा कृतकृत्यतामगमदम्बुजपत्रनिभेक्षणा ! ।
स्पृशति गूहति धत्त उदीक्षते वदति चुम्बति लालयति स्म ताम् ॥२४॥

तब वे कमलदलके समान नेत्रवाली श्रीसुवृता अम्बाजी श्रीललीजीकी मनोहर छविका दर्शन करके पूर्ण कृतकृत्य हो गयीं, पुनः उन्हें कभी अपनी गोदमें लेतीं कभी उनकी मनोहर छवि का दर्शन करतीं, कभी उनके मुखका चुम्बन करतीं, कभी हे प्यारी! हे श्रीललीजी! हे वत्से! हे कमललोचने! हे चन्द्रमुखी! आदिक शब्द, उनसे बोलतीं, कभी उनके पीठ व शिर आदि का स्पर्श करतीं, कभी हृदय लगातीं और कभी उनका दुलार करती थीं ॥२४॥

मृदुगिराऽथ जगाद विधुस्मिते! ममहिते! अक्षिहिमे! महिमेडिते!।
सघनवारिदशोभिनभस्तलं सुखकरं प्रियवत्स! उदीक्ष्यताम् ॥२५॥

पुनः वे अपनी मधुरवाणीसे बोलीं:–हे चन्द्रमाके समान मुस्कानवाली! हे मेरा हित करने वाली! हे नेत्रोंको शीतलता-प्रदान करने वाली! हे प्रभावशाली ब्रह्मादिकोंसे स्तुतिकी हुई! हे प्यारी वत्से! हे श्रीललीजी! देखिये सघन मेघोंसे आकाश सुशोभित हो रहा है ॥ २५ ॥

वहति वायुरतीवसुशीतलः सुरभिसंवलितात्मसुखप्रदः।
छविनिधे! नवदोलमहोत्सवो निजगृहे क्रियतां यदि रोचते ॥२६॥

हे छविकी भण्डार स्वरूपा श्रीललीजी! इस समय शीतल, मन्द, सुगन्ध मय सुखद वायु (बयार) बह रही है अत एव यदि आपकी रुचिहो तो,अपने इस महलमें ही हृदयको सुख प्रदान करने वाले झूलेका नवीन उत्सव कीजिये ॥ २६ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

इति वचस्तु निशाम्य विदेहजा शिवविरिञ्चिदुरूहपदाम्बुजा।
जनकजा जनवाञ्छितसिद्धिदा सुखयती सुवृताहृदयं शुभम् ॥२७॥
धृतगलाम्बुजमञ्जुकरद्वयी विपुलहर्षयुताऽऽह पिकस्वना।
अनुपमं भवने तव दोलनं परमशोभनमस्ति मया श्रुतम् ॥२८॥

शिव ब्रह्मादिकों के द्वाराभी जिनके श्रीचरणकमलोंका चिन्तन कठिन है, वे भक्तों की भावना को पूर्ण करने वाली, विदेहकुलमें प्रकट हुई श्रीजनकदुलारीजू श्रीसुवृता अम्बाजीके पवित्र हृदय को सुखी करती हुई ॥२७॥ कोमलके समान श्रवणसुखद शब्द बोलने वाली श्रीललीजी बड़े हर्ष पूर्वक अपने दोनों मनोहर कर-कमलोंको उनके गलेमें डालकर बोलीं–हे श्रीअम्बाजी मैंने सुना है–आपके भवन में बड़ा ही सुन्दर, अनुपम झूला है ॥२८॥

तदनुदर्शय मे ऽम्ब! दयानिधे! यदवलोकितुमागमनं हि मे।
वच इदं च निशम्य तयेप्सितं दयित! दर्शितमद्भुतदोलनम् ॥२९॥

हे दयानिधे। श्रीअम्बाजी! हमें उस झूले को दिखा दीजिये, क्योंकि उसे देखनेके लिये ही यहाँ हमारा आना हुआ है। श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे! श्रीसुव्रता अम्बाजीने श्रीललीजीके अपने इच्छानुकूल इन वचनों को श्रवण करके, उन्हें अपने यहाँ के सुसज्जित आश्चर्य-जनक झूलन को दिखाया ॥२९॥

तमदधिवेश्य प्रसन्नमुखाम्बुजा पुनरियेष च दोलयितुं हि ताम्।
सुसमदोलदियं नृपनन्दिनी चलदरालकवालयुतानना ॥३०॥

पुनः उस झूलेपर श्रीललीजीको विराजमान करके प्रसन्न मुखी श्रीसुव्रता अम्बाजीने उन्हें झुलानेकी इच्छाकी, उनके इसभावको समझकर रमा व ब्रह्माणीके द्वारा अलङ्कृत तथा हिलते हुये सुन्दर घुंघराले केशों से युक्त मुखचन्द्रवाली, श्रीविदेह महाराजको आनन्द प्रदान करनेवाली, श्रीललीजी सुखपूर्वक झूलने लगीं ॥३०॥

प्रमदमेत्य न वाच्यमपीहया सजलकञ्जदृशा समवेक्षती।
दयित! दोलयती वदनश्रियं ह्यसुधनं तदवारयदञ्जसा ॥३१॥

हे प्यारे! झूलती हुई श्रीललीजीके मुखारविन्द का दर्शन करती हुई, उनकी बालचेष्टा से अवर्णनीय सुखको प्राप्त करके श्रीसुव्रता अम्बाजीने, अनायास अपने प्राणरूपी धनको न्यौछावर करदिया अर्थात् उनके लिये अपने को न्यौछावर समझने लगीं ॥३१॥

रसिकशेखर! चैतदवेक्षितं चरितमद्ध तमल्पकरन्ध्रतः।
निगदितं भवते खलु पृच्छते पुनरुपासदमार्यनिकेतनम् ॥३२॥

हे रसिक-शेखर (भक्तोंको अपने शिरका भूषण मानने वाले) प्यारे! इस आश्चर्य मय चरितको मैंने, एक छोटेसे छिद्र द्वारा स्वयं देखा, पुनः अपने पिताजीके भवनको चली गयी, आप के पूछने पर मैंने उस चरितका आपसे वर्णन किया है॥ ३२ ॥

कुत इयं च कथं समुपागता रहसि वै सुव्रताङ्कमुदारधीः।
स्थितवतीव मनोहरदर्शना न तु रहस्यमिदं मतिगोचरम् ॥३३॥

इति पट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

वहीं विराजमान हुई सी, मनोहरदर्शना, उदारबुद्धि, ये श्रीललीजी, किस मार्गसे और किस प्रकार, श्री सुव्रता अम्बाजीकी गोदमें पूर्ण एकान्त स्थलमें आगयीं? यह रहस्य मेरी बुद्धिका विषय नहीं है अर्थात् समझसे बाहर है॥ ३३ ॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

श्रीकञ्चन वनमें अनन्तब्रह्माण्डके ब्रह्मा विष्णुमहेशादि देवोंके द्वारा श्रीकिशोरीजीकी स्तुति तथा झूलनोत्सव के लिये सखियोंकी प्रार्थना ॥५७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

प्राणनाथ ! मिथिलेशनिकेतं क्रीडितुं समगमं तु कदाचित् ।
काञ्चनाख्यविपिनं च तदानीं स्वामिनी मम गता हि विहर्तुम् ॥१॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! किसी समय में श्रीमिथिलेशजी महाराजके महलमें खेलनेके लिये गयी थी, उस समय मेरी श्रीस्वामिनीजू भी कञ्चन वनमें विहार करने के लिये पधारी थीं ॥१॥

दिव्यहेमतरुपङ्क्तिभिराढ्यं हाटकाभधरयाऽद्भुतशोभम् ।
कुञ्जपुञ्जमलिकोकिलजुष्टं क्रौञ्चहंसशुकबर्हिसुघुष्टम् ॥२॥

जो अप्राकृत सुवर्णके समान वृक्षोंकी पङ्क्तियोंसे युक्त, मणियोंकी चित्रकारी मय, दिव्यसुवर्णकी भूमिसे शोभायमान हैं, जिसमें बहुत सी कुञ्जें बनी हुई हैं, कोयल और भौंरोंसे जो सेवित है, तथा जिसमें क्रौञ्च हंस, तोता, तथा मोरों का सुन्दर शब्द होता है ॥२॥

पुष्पभारनतपादपशाखं सर्वकालसुखदं मुनिवन्द्यम् ।
आलिपुञ्जरतिदं रसवर्षं जन्तुवैररहितं श्रुतिगीतम् ॥३॥

जहाँ पुष्पोंके भारसे वृक्षोंकी डालियाँ पृथ्वीकी ओर लटक रही हैं, जो सदा सुख प्रदान करने वाला, मुनियों द्वारा प्रणाम करने योग्य, सखी समूहोंको प्रीति प्रदान करने वाला और रस (आनन्द) की वर्षा करने वाला है, जहाँके सभी जीव वैर-भाव रहित हैं, जिसकी महिमाको वेद भगवान गाते हैं ॥३॥

तद्वनं च सहसा प्रमुदाऽहं प्राव्रजं दयित ! तत्र तदानीम् ।
कौतुकं यदवलोकितमाराच्चद्वदन्तमनुवच्मि समग्रम् ॥४॥

उस (कञ्चन) वनमें हर्षपूर्वक मैं तुरत पहुँची । हे प्यारे ! उस समय मैंने वहाँ जो सहसा आश्चर्य देखा था उसे मैं पूर्णतया आपसे कहती हूँ । ४।

ब्रह्मविष्णुहरषड्मुखदेवा भिन्नभिन्नधृतकोटिकरूपाः ।
संस्तुवन्ति परिवृत्य च भक्त्या बद्धपाणिपुटका नतभालाः ॥५॥

अनन्त ब्रह्माणोंके ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेयजी आदि-आदि देवता पृथक्-पृथक्, करोड़ों स्वरूपोंको धारण करके श्रीललीजीके चारो ओर खड़े होकर, श्रद्धा पूर्वक हाथ जोड़े तथा शिर झुकाये हुये, इनकी स्तुति कर रहे थे ॥ ५ ॥

कोटिचन्द्रसमसस्मितवक्त्रामङ्गकान्तिपरिभूतसुवर्णाम् ।
विद्युदोघशतसन्निभदेहां फुल्लपङ्करुहशोभननेत्राम् ॥६॥

उस समय इनका मुखारविन्द करोड़ों चन्द्रमाओंके समान मुस्कान-युक्त था, अपने अङ्गकी कान्तिसे ये सुवर्णको लज्जित कर रही थीं, सैकड़ों बिजुलीकी राशियोंके समान इनके शरीरका तेज था, तथा विकसित कमलके समान सुन्दर नेत्र थे ॥६॥

दर्पणाभपरिसूक्ष्मकपोलां नासिकाग्रगजमौक्तिकशोभाम् ।
स्निग्धनीलमृदुकुञ्चितकेशीं न्यस्तपाणितलनीरजगुच्छाम् ॥७॥

दर्पण (शीशा) के समान अत्यन्त सूक्ष्म छाया ग्रहण करने वाले इनके कपोल तथा नासिकाके अग्रभागमें गजमुक्ता (गज मोती) की शोभा थी चिकने काले, कोमल, घुंघुराले केश थे कमलके फूलोंका गुच्छा श्रीकिशोरीजीकी हथेलीमें था ॥७॥

नित्यदिव्यनवभूषणवस्त्रां शर्मभर्ममणिचम्पकवर्णाम् ।
पद्मपादनखजिन्मणिचन्द्रां मीनकेतुदयितामितभव्याम् ॥८॥

नित्य (सदा) एक रस रहने वाले दिव्य (प्रकाशयुक्त) वस्त्र व भूषणोंको धारण किये हुये इनका उत्तमोत्तम सुवर्ण-मणि तथा चम्पाके पुष्पके समान गौर वर्ण शरीर था, अपने श्रीचरण कमलके नखोंकी कान्तिसे ये मणि व चन्द्रमाको तुच्छ कर रही थीं, अनन्त रतियोंके सौन्दर्यसे सम्पन्ना इन श्रीकिशोरीजीको ॥८॥

पुष्पवर्षमनुनेमुरभिज्ञाः प्रेमवारिपरिपूर्णशुभाक्षाः ।
शीघ्रमेत्य हृदयेप्सितकामान् निर्ययुश्च निजपालितलोकान् ॥९॥

इनकी महिमाको जाननेवाले प्रेम-जल-भरे हुये शुभ नेत्रोंसे युक्त देववृन्द फूलोंकी वर्षा करते हुए अनेकानेक, बार नमस्कार किये पुनः मन इच्छित वरोंको प्राप्त करके अपने द्वारा पालित लोकोंको चले गये । ९ ॥

निर्गतेषु किल तेषु समीपं क्षीणभीतिरगमं दयितास्याः ।
न त्वपृच्छमपि सस्मितमुग्धा कौतुकं च तदहं प्रविवक्तुः ॥१०॥

हे प्यारे ! जब वे देव वृन्द वहाँ से चले गये तब मैं निडर होकर उन श्रीललीजीके पास पहुँची परन्तु उस कौतुकके विषयमें उनसे पूछनेकी इच्छा रखती हुई भी, मैं उनकी सुन्दर मुस्कानसे मुग्ध हो गयी, अतः पूछ न सकी ॥१०॥

निष्प्रफुल्लकुसुमाम्बरभूषाभिःसुसज्य दयितां हि तदानीम् ।
आलय ऊचुरयि जीवनरूपे ! श्रूयतां च कृपया विनयोऽयम् ॥११॥

उस समय सखियाँ बिना खिले हुये फूलोंकी कलियोंके बनाये हुये शोभायमान वस्त्र एवं भूषणोंके द्वारा श्रीकिशोरीजीका शृङ्गार करके प्रार्थना करने लगीं-हे हमारी जीवन स्वरूपा श्रीललीजी ! कृपा करके हम लोगोंकी इस प्रार्थनाको सुन लीजिये ॥११॥

तं तु कान्त ! शृणु मे कथयन्त्याश्चेद्रुचिस्तव हृदि श्रवणाय ।
विश्रुतं न खलु चान्यजनोक्तं वारिजाक्ष मनसा नियतेन ॥१२॥

हे कमल-नयन ! प्यारे ! आपके हृदयमें यदि श्रवण करनेकी इच्छा है तो मेरे कहते हुये उसे एकाग्रचित्तसे श्रवण कीजिये, यह प्रार्थना किसी दूसरेके द्वारा कही हुई मैंने श्रवण नहीं की थी अर्थात् अपने कानोंसे सुनी थी ॥१२॥

सख्य ऊचुः ।

सुखस्पर्शो वायुर्वहति शुचिसौगन्ध्यमिलितो
हरिद्दिव्यक्षोणी सहजनयनानन्दजननी ।
पिकादीनां रावः परमललितः कर्णसुखदो
मयूराणां नृत्यं स्पृशति हृदयं प्राणनिलये ! ॥१३॥

सखियां बोलीं:-हे प्राणनिलये (प्राणोंकी निवासस्थान स्वरूपा) श्रीललीजी ! इस समय पवित्र सुगन्धसे युक्त, स्पर्शसे सुखदेने वाली वायु बहर रही है, सहज (अनायास) ही आनन्द कराने वाली हरी-हरी दिव्य पृथिवी हो रही है, कोयल आदि पक्षियोंका श्रवण-सुखद परम सुन्दर शब्द सुनाई पड़ रहा है, तथा मोरों का नृत्य हृदयको अतीव आकर्षित कर रहा है ॥१३॥

लताकुञ्जं दिव्यं परमरमणीयं च सघनं
प्रसूनैः सङ्कीर्णं विविधरचनायुक्तमनघे ।

विशालं पश्योच्चैः शुकपिकमयूरादिलसितं
घनैर्व्याप्तं व्योम प्लवगनिनदं मोदजनकम् ॥१४॥

अत एव ! हे सम्पूर्ण दुःख रहित (आनन्द स्वरूपे) श्रीललीजी ! देखिये ऊँची और विशाल, तथा तोता, कोयल, मयूर (मोर) आदि पक्षियोंसे शोभायमान, अनेक प्रकारकी सजावटसे युक्त, फूलोंसे परिपूर्ण, घनी, एवं दिव्य (प्रकाश युक्त) परम रमणीय (विहार करनेके लिये अत्यन्त उपयुक्त) लताकुञ्ज है, आकाश मेघों से आच्छादित है, तथा मेढ़कों का आनन्दकारी शब्द हो रहा है ॥१४॥

इदानीमिन्द्वास्ये ! परमसुखदान्दोलसमयो
रुचिश्चेत्त्वत्कार्यो द्रुततरमपीहोत्सववरः ।
तदोमित्युक्त्वा ताः प्रियतम ! लताकुञ्जभवनं
समं ताभिर्हृष्टा प्रणतसुखदात्री समविशत् ॥१५॥

हे श्रीपूर्णचन्द्रमुखीजू ! इन सब कारणोंसे अत्यन्त सुखदाई यह झूलनका समय है, अत एव यदि आपकी रुचि हो तो इस श्रेष्ठ उत्सवको शीघ्र मनावें । श्रीस्नेहपराजी बोलीं :-हे परमप्यारेजू ! सखियों की इस प्रार्थनाको श्रवण करके अपने आश्रितोंको मनःपूर्तिके द्वारा सुखप्रदान करने वाली श्रीललीजीने, उन (अपनी सखियों) से "ऐसा ही करें" कहकर उनके साथ हर्षपूर्वक लताकुञ्ज भवनमें पधारीं ॥१५॥

लताकुञ्जेश्वर्या पुलकितहृदा प्रेमधनया
तदा त्वाहृत्येयं निजभवनमानीय महिता ।
प्रसूनैः शृङ्गारं प्रियवर ! विधायाम्बुजदृशः
परिस्पन्दैर्दोलो बहुभिरचिराद्वै विरचितः ॥१६॥

तब प्रेमधनसे युक्त उस लता-कुञ्जकी मुख्य सखीने गद्गद हृदयसे आदर करके, श्रीललीजीको अपने उस लताभवनमें लाकर उनका पूजन किया, तत्पश्चात् उन श्रीकमल लोचनाजीका उसने फूलों का शृङ्गार किया और शीघ्रही अनेक प्रकारकी सजावट पूर्वक झूलनकी तय्यारीकी ॥१६॥

तमारुह्यान्दोलं परमललितं चन्द्रवदना
सखीयूथे कामं चपलचिकुराऽऽन्दोलदनया ।

अवर्षन् पुष्पाणि त्रिदशनिकरा मोदसहिता
स्तडित्वान्नै मन्दं विधुमुख ! ववर्षामृतमयम् ॥१७॥

हे चन्द्रवदन प्यारे ! उस अत्यन्त सुन्दर फूलन पर चढ़कर सखियोंके झुण्डमें डोल केश वाली, सब दोषोंसे रहित, शुद्धब्रह्म स्वरूप, चन्द्रमुखी श्रीललीजी इच्छानुसार झूलने लगीं उनका दर्शन करके देववृन्द आनन्दसे ओत-प्रोत होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे, मेघ अमृतम नन्हीं नन्हीं बूंदें बरसाने लगे ॥१७॥

ततः काश्चित्सख्यश्छविरसविमुग्धा हि ननृतु-
स्तथा काश्चिद्बालातरुणपिककण्ठोपमगिरा ।
कलं चक्रुर्गानं सुरमुनिमनोहारि सरसं
जयं प्रोचुः प्रेम्णा कुसुममनुवर्षं रसरताः ॥१८॥

इधर श्रीललीजीके झूलन पर विराजमान हो जानेके बाद, कुछ सखियाँ उनके दर्शन रूप रससे पगलीही नाचने लगीं तथा कुछ युवाअवस्थासम्पन्न कोयलसी कण्ठवाली, सखियाँ अमृ मय वाणी द्वारा देवता, मुनियोंके मनको वशमें करने वाले रसपूर्ण सुन्दर अत्यन्त मधुर गानेक प्रारम्भ करती हुई,कुछ आनन्द मग्न हो फूलोंकी वर्षा करती हुई जय-जयकार करने लगीं ॥१८॥

सवाद्यं नृत्यन्त्यो विविधगतिभिः स्फारितदृशो
जगुस्ता मल्हारं मुनिहृदयकर्षं रसमयम् ।
उपागच्छन्मत्ता मधुपनिवहा गात्रसुरभिं
तदा ऽभ्राम्यन् घ्रात्वा रसिक ! शुचिमेतां हि परितः ॥१९॥

हे भक्तोंके पाप रूपी रसका आस्वादन करनेवाले श्रीप्राणप्यारेजू ! बाजाओंके सहित अनेक प्रकारकी गतियोंसे नृत्य करती हुई, तथा आँखें फाड़कर एकटक दृष्टिवाली वे सखियाँ मुनियोंके हृदयको खींचने वाला आनन्दमय मल्हार-रागको गाने लगीं। उस समय इन श्रीकिशोरीजीके श्रीअङ्गकी पवित्र सुगन्धको सूंघकर भौंरोंके समूह इन पासमें आगये और सुगन्धसे मस्तहो चारो ओर उड़ने लगे ॥१९॥

मृगा गावो नागाः कनकविपिने तर्ह्युपगताः
स्थिताः शोभासक्ता ह्यचलगतयो ऽमीलितदृशः ।

चकोरा निर्दोषं वदनरजनीशं च चकिता
निरीक्षन्ते प्रीत्या प्रिय ! गतनिमेषाः स्म मुदिताः ॥२०॥

हरिण तथा हाथी उस समय कञ्चनवनमें आगये और श्रीललीजीकी झूलन-झाँकीकी शोभा पर आसक्त (मुग्ध) हो टकटकी लगाये हुये बिल्कुल चित्तसे स्थिरहो गये, टकटकी लगाए हुए चकोर, घटने बढ़ने व विष आदि दोषोंसे रहित मुखचन्द्रकाहर्षितहो प्रेमपूर्वक दर्शन करने लगे २०

नवाम्भोदभ्रान्त्या नवविमलशाटीं सुचपलां
प्रियाङ्गह्लादिन्या सजलजलदाभामुपगताः ।
मयूरा मैथिल्याः सुखमचिरमालोक्य ननृतुः
स्वनै रम्यैस्तेषामजनि हृदये हर्षनिवहः ॥२१॥

हे प्यारे! श्रीमिथिलेशललीजीके श्रीअङ्गकी कान्ति रूपी बिजुलीसे युक्त उनकी स्वच्छ, नूतन, सजल, मेघोंके समान श्याम तथा झूलनेसे अत्यन्त हिलती हुई साड़ीका दर्शन करके नवीन मेघकी भावनासे मोर समीपमें आकर सुखपूर्वक नाचने लगे, उनके सुन्दर शब्दोंसे हृदयमें हर्ष-समूह उत्पन्न होगया ॥२१॥

तथाऽन्ये कीराद्या द्विजगणवरा नैकविधिभिः
स्वनं चक्रुर्दिव्यं श्रुतिसुखदमाङ्गल्यनिलयम् ।
स्वयं रागे रक्तानिमिकुलसुतानां मतिहरै-
रभूद्वृष्टिर्भूयः सुरतरुसुमानाञ्च सुखदा ॥२२॥

इसी प्रकार तोता आदि उत्तम पक्षी-गण निमिकुलकी कन्याओंके मतिहारी रागोंसे स्वर आसक्त हो रसोंसे सुख देनेवाला, मङ्गल धाम अनेक प्रकारका शब्द करने लगे। और बारम्बार आकाशसे कल्पवृक्षके फूलोंकी सुखदायिनी वर्षा हुई ॥२२॥

प्रियेयं हेमाङ्गी ससुखमनुजाभिश्च सहिता
लताकुञ्जागारे विशदचरिताऽऽदोल्य सुभगा ।
सखीवृन्दैः सार्कं विपिनमनुद्रष्टुं पुनरगा-
ल्लसद्विध्वास्येयं निजगतिविलज्जीकृतकरिः ॥२३॥

हे प्यारे ! इस प्रकार सुवर्णके समान प्रकाशमान गौर अङ्ग तथा उज्ज्वल चरित्रवाली, चन्द्रमा के समान सुशोभित आह्लादकारी मुखवाली परम सौन्दर्य युक्ता ये श्रीललीजी अपनी बहिनियोंके

सहित लताकुञ्ज भवनमें सुखपूर्वक झूलकर, सखी-वृन्दोंके समेत, अपनी चालसे हाथियोंको विशेष लज्जित करती हुई वनको देखने पधारीं ॥२३॥

छत्रं ततः काचिदतिप्रकाशं विचित्रचित्रं ससुवर्णदण्डम् ।
काश्चित्पयःफेनसुचामराणि सख्यः समादाय करे प्रयाताः ॥२४॥

इसलिये कोई सखी अत्यन्त प्रकाश युक्त, अनेक प्रकारकी चित्रकारी बने हुये सोनेके दण्डा-वाले छत्रको लेकर तथा कुछ सखियाँ दुग्धफेनके समान उज्वल चवँरोंको अपने हाथोंमें लेकर श्रीललीजीके साथ चलीं ॥२४॥

काश्चिन्मुदा बर्हिसुपिच्छगुच्छान् वेत्राणि काश्चिद्व्यजनानि काश्चित् ।
पाणौ समादाय सरोजकल्पे दक्षे च वामेऽनुययुःशुभाङ्ग्यः ॥२५॥

मङ्गलमय अङ्गवाली कुछ सखियाँ आनन्दसे ओत प्रोत होकर, मोरछल, कुछ, बेंत तथा कुछ अपने-अपने कमलवत् कोमल हाथोंमें पङ्खोंको लेकर श्रीललीजीके दाहिने तथा बायें भागमें चलीं ॥

धृतासिहस्ता धृतकन्दुकाश्च गृहीतचामीकरवारिपात्राः ।
काश्चित्तथा मङ्गलपात्रहस्ता मिष्टान्नपात्राब्जकराश्च काश्चित् ॥२६॥

कुछ सखियाँ हाथमें तलवार लिये हुई, कुछ गेंद और कुछ सुवर्णके बने हुये जलपात्रोंको लेकर, तथा कुछ मङ्गलथाल हाथमें लेकर कुछ सखियाँ अपने कर-कमलोंमें मिष्टान्नपात्र लिये हुई ॥२६॥

काश्चित्सुरत्नाञ्चितहेमदण्डान् काश्चित्समादाय सुपुष्पगुच्छान् ।
काश्चित्तु चामीकररत्न पात्रे फलानि मिष्टानि निधाय याताः ॥२७॥

कुछ सखियाँ सुन्दर रत्नोंसे जटित सुवर्णकी छड़ी और कुछ फूलोंके गुच्छों (गुलदस्तों) को लेकर तथा कुछ सुवर्णमय रत्न पात्रोंमें अनेक प्रकारके मिष्टान्न रखकर चलीं ॥२७॥

सर्वा विदुष्यो निमिवंशजाता दिव्यांशुका दिव्यविभूषणाढ्याः ।
स्रग्विण्य इन्दुप्रतिमाननाश्च कलाविदःखञ्जनचञ्चलाक्ष्यः ॥२८॥

अत्यद्भुताः कात्स्न्यगुणैरुपेता मनोहराङ्ग्यो नवला वयस्याः ।
प्राणेश ! साङ्केतिकभावविज्ञा मन्दस्मितास्ता मनुसंप्रयाताः ॥२९॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! निमिवंशकी सभी कुमारियाँ, सब विद्याओंको जानने वाली, विनय भाव सम्पन्ना, दिव्य (प्रकाशपूर्ण) वस्त्रोंको धारण कीये हुईं, दिव्य-भूषणोंसे युक्त, मालाओंसे सुशोभित,

चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मुख तथा खञ्जन (खिड़रिच) पक्षीके सदृश चञ्चलनेत्रवाली, सभी कलाओंमें निपुणता प्राप्त ॥२८॥ अत्यन्त विलक्षण, सभी गुणोंसे सम्पन्ना, मनोहर अङ्गवाली ! मन्द मुस्कानसे युक्त, इशारोंके भावको जानने वाली, नई अवस्था वाली वे सखियाँ श्रीललीजीके पीछे-पीछे चली ॥२९॥

एवं सखीमध्यगता प्रसन्ना प्रफुल्लपङ्केरुहपत्रनेत्रा ।
तारौघमध्ये शुशुभे यथेन्दुरबालताराधिपशोभिवक्त्रा ॥३०॥

खिले कमलके समान विशालनेत्र तथा पूर्णचन्द्रके सदृश शोभायमान मुख वाली श्रीललीजी प्रसन्नता युक्त सखियोंके बीचमें इस प्रकार सुशोभित हुईं, जैसे सुन्दर तारोंके बीचमें स्वच्छ चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥३०॥

स्वरूपमाधुर्य्यमवेक्ष्य कान्त ! सर्वाणि भूतानि सुविस्मितानि ।
गता तु दृष्टिर्न पुनर्निवृत्ता तेषां प्रियायाः सुभगाङ्गदेशात् ॥३१॥

हे प्यारे ! श्रीप्रियाजूके स्वरूप-माधुर्यका दर्शन करके सभी प्राणी आश्चर्यमें पूर्ण निमग्न हो गये। इन (श्रीललीजी) के जिन सुन्दर अङ्गों पर उन सौभाग्य-शालियोंकी दृष्टि पहुँची, उनसे फिर लौट न सकी अर्थात् सदाके लिये उसीमें तन्मय हो गयी ॥३१॥

रासस्थलीं मानवदेवपुत्री दृष्ट्वा सुरम्यां प्रससाद भक्त्या ।
तन्मुख्ययाऽथो सत्कृत्य दिव्ये सिंहासने चारु निवेशितेयम् ॥३२॥

क्रीड़ाके सुयोग्य रासस्थली को देखकर श्रीललीजी प्रसन्न हुईं, पुनः उन कुञ्जकी मुख्य सखीने श्रद्धा पूर्वक सत्कार करके इन (श्रीललीजी) को दिव्य सिंहासन पर विराजमान किया ॥३२॥

विराजमाना मणिमण्डपे च प्रियाः सखीर्वल्लभ ! वीक्षमाणा ।
त्वया विना रासरसप्रपूर्त्तिं मत्वा न किञ्चिद्विमना बभूव ॥३३॥

हे प्यारे ! मणिमय रासमण्डपके सिंहासन पर विराजमान हुई श्रीललीजी, अपनी प्यारी सखियोंकी ओर देखती हुई, आपके बिना विराजे हुये रास-रस (भगवदानन्द) की पूर्ण पूर्ति न मानकर, कुछ उदास हो गयीं ॥३३॥

ज्ञात्वा त्वभिप्रायमुरःस्थितं त्वं युक्त्याऽसि नीतो विहरंस्तदाऽऽल्या ।
इतस्ततो मिथिलावनान्तं तत्कौतुकं संस्मर दृष्टिदृष्टम् ॥३४॥

तब इन श्रीललीजीके भावको जानकर, प्रमोद-वनमें विहार करते हुये आपको श्रीचन्द्रकला सखीजी युक्तिपूर्वक इस श्रीअयोध्यापुरीसे श्रीमिथिलाजीके वन (श्रीकञ्चन वन) में तुरत ही ले गयीं हे प्यारे! आँखोंसे देखे हुये उस कौतुकको स्मरण कीजिये ॥३४॥

श्रीजानकीबाहुवलाश्रितानां सखीजनानामपि नीरजाक्ष ! ।
नृत्यैश्च गानैर्गतिभिश्च वाद्यैः संमोहितोऽभूः स्मर विस्मृतं किम् ॥३५॥

हे कमलनयन ! श्रीजनकलड़ैतीजूके बाहु बलके अवलम्ब पर (सहारे) रहने वाली सखियोंके अनेक प्रकारके गति पूर्वक नृत्य, गान और बाजाओंसे उस समय आप मुग्ध होगये थे, स्मरण कीजिये क्या वह भूल गये? ॥३५॥

श्रीशिव उवाच।

सस्मृत्य रामोऽश्रुजलाकुलाक्षः सखीगिरा तच्चरितं मनोज्ञम् ।
निरीक्ष्य कान्ताननमिन्दुमोहं सनिद्रमम्भोजदलायिताक्षम् ॥३६॥

श्रीभोलेनाथजी बोले:—हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजीकी वाणीके द्वारा श्रीरामभद्र जू पूर्वके उस आश्चर्यपूर्ण मनोहर चरितको स्मरण करके अपनी श्रीप्रियाजूके चन्द्र-विमोहन तथा निद्रायुक्त कमलके समान विशाल नेत्रवाले मुखारविन्दको भलीभाँति देखकर सजल नेत्र होगये, अर्थात् उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर गये ॥३६॥

गाढं हृदाऽऽलिङ्गितुमूरुबाहुस्तदैव कान्तां चकमे सकामम् ।
संवेशभग्नोद्भवकष्टभीत्या मनः समाधाय निवर्तते स्म ॥३७॥

विशाल भुजावाले श्रीरामभद्रजू ! मारावेशके कारण श्रीप्रियाजूको उस समय हृदयसे लगानेके लिये आतुर हो उठे परन्तु निद्रा-भङ्ग होनेसे श्रीप्रियाजूको कष्ट होगा, इस भयसे अपने मनको स्थिर करके आलिङ्गनकी इच्छाका दमन कर लिये ॥३७॥

श्रीराम उवाच।

उवाच पादाम्बुजसक्तहस्तां पयोदगम्भीरगिरा मृगाक्षः ।
प्रीतोऽस्म्यहं ते नलिनायताक्षि ! संस्मारणाद्दिव्ययशः प्रियायाः ॥३८॥

चरणकमलों पर हाथ रक्खी हुई उन स्नेहपराजीसे मृगके समान विशाल-नयन श्रीरामभद्रजू मेघके समान गम्भीरवाणीसे बोले:—हे कमलके सदृश विशाल लोचनवाली ! श्रीप्रियाजूके दिव्य यशके स्मरण करानेसे मैं तुम पर प्रसन्न हूँ ॥३८॥

चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मुख तथा खञ्जन (खिड़रिच) पक्षीके सदृश चञ्चलनेत्रवाली, सभी कलाओंमें निपुणता प्राप्त ॥२८॥ अत्यन्त विलक्षण, सभी गुणोंसे सम्पन्ना, मनोहर अङ्गवाली। मन्द मुस्कानसे युक्त, इशारोंके भावको जानने वाली, नई अवस्था वाली वे सखियाँ श्रीललीजीके पीछे-पीछे चलीं ॥२९॥

एवं सखीमध्यगता प्रसन्ना प्रफुल्लपङ्केरुहपत्रनेत्रा ।
तारौघमध्ये शुशुभे यथेन्दुरवालताराधिपशोभिवक्त्रा ॥३०॥

खिले कमलके समान विशालनेत्र तथा पूर्णचन्द्रके सदृश शोभायमान मुख वाली श्रीललीजी प्रसन्नता युक्त सखियोंके बीचमें इस प्रकार सुशोभित हुईं, जैसे सुन्दर तारोंके बीचमें स्वच्छ चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥३०॥

स्वरूपमाधुर्य्यमवेक्ष्य कान्त ! सर्वाणि भूतानि सुविस्मितानि ।
गता तु दृष्टिर्न पुनर्निवृत्ता तेषां प्रियायाः सुभगाङ्गदेशात् ॥३१॥

हे प्यारे ! श्रीप्रियाजूके स्वरूप-माधुर्यका दर्शन करके सभी प्राणी आश्चर्यमें पूर्ण निमग्न हो गये। इन (श्रीललीजी) के जिन सुन्दर अङ्गों पर उन सौभाग्य-शालियोंकी दृष्टि पहुँची, उनसे फिर लौट न सकी अर्थात् सदाके लिये उसीमें तन्मय हो गयी ॥३१॥

रासस्थलीं मानवदेवपुत्री दृष्ट्वा सुरम्यां प्रससाद भक्त्या ।
तन्मुख्ययाऽऽर्यो सत्कृत्य दिव्ये सिंहासने चारु निवेशितेयम् ॥३२॥

क्रीड़ाके सुयोग्य रासस्थली को देखकर श्रीललीजी प्रसन्न हुईं, पुनः उस कुञ्जकी मुख्य सखीने श्रद्धा पूर्वक सत्कार करके इन (श्रीललीजी) को दिव्य सिंहासन पर विराजमान किया ॥३२॥

विराजमाना मणिमण्डपे च प्रियाः सखीर्वल्लभ ! वीक्षमाणा ।
त्वया विना रासरसप्रपूर्त्तिं मत्वा न किञ्चिद्विमना बभूव ॥३३॥

हे प्यारे ! मणिमय रासमण्डपके सिंहासन पर विराजमान हुई श्रीललीजी, अपनी प्यारी सखियोंकी ओर देखती हुई, आपके बिना विराजे हुये रास-रस (भगवदानन्द) की पूर्ण पूर्ति न मानकर, कुछ उदास हो गयीं ॥३३॥

ज्ञात्वा त्वभिप्रायमुरःस्थितं त्वं युक्त्याऽसि नीतो विहरंस्तदाऽऽल्या ।
इतस्तताज्ञो मिथिलावनान्तं तत्कौतुकं संस्मर दृष्टिदृष्टम् ॥३४॥

तब इन श्रीललीजीके भावको जानकर, प्रमोद वनमें विहार करते हुये आपको श्रीचन्द्रकला सखीजी युक्तिपूर्वक इस श्रीअयोध्यापुरीसे श्रीमिथिलाजीके वन (श्रीकञ्चन वन) में तुरत ही ले गयीं है प्यारे! आँखोंसे देखे हुये उस कौतुकको स्मरण कीजिये ॥३४॥

श्रीजानकीवाहुवलाश्रितानां सखीजनानामपि नीरजाक्ष!।
नृत्यैश्च गानैर्गतिभिश्च वाद्यैः संमोहितोऽभूः स्मर विस्मृतं किम् ॥३५॥

हे कमलनयन! श्रीजनकललीजूके वाहु-बलके अवलम्ब पर (सहारे) रहने वाली सखियोंके अनेक प्रकारके गति-पूर्वक नृत्य, गान और बाजाओंसे उस समय आप मुग्ध होगये थे, स्मरण कीजिये क्या वह भूल गये? ॥३५॥

श्रीशिव उवाच।

सस्मृत्य रामोऽश्रुजलाकुलाक्षः सखीगिरा तच्चरितं मनोज्ञम्।
निरीक्ष्य कान्ताननमिन्दुमोहं सनिद्रमम्भोजदलायिताक्षम् ॥३६॥

श्रीभोलेनाथजी बोले:-हे प्रिये! श्रीस्नेहपराजीकी वाणीके द्वारा श्रीरामभद्र जू पूर्वके उस आश्चर्यपूर्ण मनोहर चरित्रको स्मरण करके अपनी श्रीप्रियाजूके चन्द्र विमोहन तथा निद्रायुक्त कमलके समान विशाल नेत्रवाले मुखारविन्दको भलीभांति देखकर सजल नेत्र होगये, अर्थात् उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर गये ॥३६॥

गाढं हृदाऽऽलिङ्गितुमुरुबाहुस्तदैव कान्तां चकमे सकामम्।
सवेशभग्नोद्भवकष्टभीत्या मनः समाधाय निवर्तते स्म ॥३७॥

विशाल भुजावाले श्रीरामभद्रजू! भावावेशके कारण श्रीप्रियाजूको उस समय हृदयसे लगानेके लिये आतुर हो उठे परन्तु निद्रा-भङ्ग होनेसे श्रीप्रियाजूको कष्ट होगा, इस भयसे अपने मनको स्थिर करके आलिङ्गनकी इच्छाका दमन कर लिये ॥३७॥

श्रीराम उवाच।

उवाच पादाम्बुजसक्तहस्तां पयोदगम्भीरगिरा मृगाक्षः।
प्रीतोऽस्म्यहं ते नलिनायताक्षि। संस्मारणाद्दिव्ययशः प्रियायाः ॥३८॥

चरणकमलों पर हाथ रक्खी हुई उन स्नेहपराजीसे मृगके समान विशालनयन श्रीरामभद्रजू मेघके समान गम्भीरवाणीसे बोले:-हे कमलके सदृश विशाल लोचनवाली! श्रीप्रियाजूके दिव्य यशके स्मरण करानेसे मैं तुम पर प्रसन्न हूँ ॥३८॥

न खल्विदानीमपि तच्चरित्रं स्मर्तुर्हि मे चित्रमुरो जहाति ।
संस्मृत्य संस्मृत्य मुहुर्मुहुस्तत्स्वाश्चर्यमग्नोऽस्मि यथा मृगोऽब्धौ ॥३९॥

अरी सखी ! अभी तक वह चरित्र, स्मरण करने पर मेरे हृदयके आश्चर्यको दूर नहीं होने, बल्कि बारम्बार उसे स्मरण करके मैं इस प्रकार आश्चर्यमें पड़कर विवश होजाता हूँ जैसे मृग द्रमें ॥३९॥

कथं तया चन्द्रदिनेशपुत्र्या प्रियाहितायेत उदारबुद्धया ।
नीतोऽस्म्यहं वै सवनाधिराजो निगूढ़रूपेण विहारसक्तः ॥४०॥

बड़े आश्चर्यकी बात है, कि किसप्रकार श्रीप्रियाजूकी भाव-पूर्तिके लिये उन उदारबुद्धि श्रीचन्द्र-तु कुमारी श्रीचन्द्रकलाजी अत्यन्त गुप्त रूपसे प्रमोद-वनमें विहार करते हुये मुझको यहां (अयोध्याजी) से, अपने यहाँ (श्रीमिथिलाजीमें) ले गई ॥४०॥

समागमं मे प्रियया विधाय वशं विनीतोऽस्मि तया मृगाक्ष्या ।
सिन्दूरबिन्दुश्च विशालभाले दत्तस्त्वया रासविहारिणो मे ॥४१॥

वहाँ श्रीप्रियाजूसे मेरा समागम कराके उन्होंने हमें अपने वशमें कर लिया । पुनः जब मैं स (भगवदानन्द परायण भक्तोंके साथ क्रीड़ा) करनेमें तत्पर हुआ तब तुमनेभी मेरे विशालभाल मस्तक) पर सिन्दूरका बिन्दु लगाया था ॥४१॥

गीतं च वाद्यं च तथैव नृत्यं वस्तुल्यमेवास्ति हि वो विचित्रम् ।
अन्यूनरूपादिगुणा भवत्यो माधुर्य्यशीला रसिकोत्तमाश्च ॥ ४२ ॥

अरी सखी ! आप लोगोंका विचित्र गाना बजाना तथा नाचना आप लोगोंके ही समान है, सकी तुलनाके लिये कोई अन्य है ही नहीं, आप लोगोंमें न रूपकी कमी है न गुणोंकी । आप लोग, क्ति प्रदान करने वाली तथा भगवदानन्द प्रेमिकाओंमें उत्तम है ॥४२॥

द्विसप्तविद्यानिपुणा विनीता सर्वेङ्गितज्ञा रसलोलुपाश्च ।
शचीविधात्रीगिरिजारमाभी रूपेण तुल्या रमणीवरिष्ठाः ॥४३॥

आप लोग चौदहो विद्याओंको जाननेवाली, विनयभाव-सम्पन्ना, सब इङ्गितों (इशारों) को समझने वाली रस (आनन्द-स्वरूपा श्रीप्रियाजू)की प्राप्तिके लिये आतुर, सुन्दरतामें इन्द्राणी ब्रह्माणी, रुद्राणी व श्रीलक्ष्मीजीके समान तथा श्रीप्रियाजूके प्रसन्नतार्थ क्रीड़ा करने वालियोंमें परम श्रेष्ठ हैं ॥

चन्द्रानना बिम्बफलाधरोष्ठयो रासप्रवीणा रतिशास्त्रविज्ञाः ।
लब्धा मया भाग्यवशेन यूयं प्राणप्रियायाः कृपया ऽनवद्याः ॥४४॥

आप लोग चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मुख और बिम्बा फलके समान लाल अधर (ओंठ) हैं, भावरक्षमर्में चतुर, प्रेमशास्त्रका विशेष ज्ञान रखने वाली प्रशंसाके योग्य हैं। श्रीप्राणप्रियाजूकी कृपासे सौभाग्यवश आप लोगोंकी मुझे प्राप्ति हुई है ॥४४॥

विलासदक्षा नवनित्ययौवनाः प्रेमाब्धिमीना दयितैकजीवनाः ।
मनोहराः पद्मपलाशलोचना भुजङ्गवेण्यो निमिवंशदीपिकाः ॥४५॥

आप लोग कमल-दलके समान सुन्दर बड़े २ नेत्रवाली भुजङ्ग (सर्प) के सदृश (वेणीवाली), निमिवंशको दीपकके समान प्रकाशित करनेवाली, अपने गुण-रूपादिसे मनको हरण करने वाली, श्रीप्रियाजूकी प्रसन्नता कारक-क्रीड़ाओंको जानने वाली, नित्यनवीन किशोर अवस्था-सम्पन्ना, प्रेम-रूपी समुद्रकी मछली हैं तथा श्रीप्रियाजू ही आप लोगोंकी जीवन हैं ॥४५॥

सर्वाभ्य एवेह विदेहवंश्या यूयं सखीभ्योऽप्यधिकाः प्रिया मे ।
सर्वापराधान्ममरासकेलौ कर्तुं क्षमामर्हत भूरिभागाः ॥४६॥

आप सभी विदेह-वंश-कुमारियाँ मुझे अन्य सखियोंकी अपेक्षा अधिक प्रिय हैं, इस लिये श्रीप्रियाजूको सर्वस्व मानने वाली बड़भागिनियों ! भक्तोंके साथ क्रीड़ा करते समय मुझसे जो अपराध हो जावें, उन्हें आप लोग क्षमा करना, क्योंकि भक्त मेरे आनन्दमें विभोर हो जाते हैं मैं भक्तोंके आनन्दमें विभोर हो जाता हूँ ॥४६॥

अहो प्रियाया मम गूढ़भावप्रेमस्मितक्षान्तिसुशीलताश्च ।
वक्रेक्षणं कोकिलभाषणञ्च रासप्रवीणत्वमुदारशक्तिः ॥४७॥

अहो ! हमारी श्रीप्रियाजूका कैसा सुन्दर गूढ़ (गुप्त) भाव, कैसा ही प्रेम, कैसी मनोहर मुस्कान कैसी ही अनुपम सहनशीलता, कैसी मनोहर तिरछी चितवन, कैसी सुन्दर कोयलके समान सुरीली बोली, कैसी अद्वितीय भगवद्धर्म (भक्ति) की ज्ञानकारी तथा क्या ही निरुपम चिन्तनातीत (जहाँ तक बुद्धि पहुँच नहीं सकती ऐसी) शक्ति है ? ॥४७॥

अहो प्रियाया मम रूपमाधुरी दिव्यप्रभावोऽमितनित्यवैभवः ।
उदारभावः सुयशानहङ्कृतिर्वयोमृदुत्वं च निकुञ्जगुणाः ॥४८॥

अहो, श्रीप्रियाजूकी कैसी ही उपमातीत रूप माधुरी है ? कैसा दिव्य प्रभाव तथा क्या ही अद्भुत अनन्त नित्य वैभव है ? कैसा सुन्दर उदार भाव है ? कैसी उपमा-रहित सुन्दरता है ? कैसी अपूर्व निरभिमानिता है ? कैसी कोमल अवस्था है ? कभी कुण्ठित न होने वाली आपकी क्या ही विचित्र सुन्दर तीक्ष्ण बुद्धि है ? ॥४८॥

गाम्भीर्यसौन्दर्यदयानुरागाशेषप्रियत्वादिगुणा निसर्गः ।
मत्तेभहंसेशवधूगतिश्च दयार्द्रभावः स्मितमोहनत्वम् ॥४९॥

अहो श्रीप्रियाजूकी कैसी सुन्दर गम्भीरता है ? क्या ही अनुपम सौन्दर्य है, कैसी विचित्र दया है ? कैसा अथाह प्रेम है ? क्या ही सर्वप्रियत्व आदि आपके अनुपम गुण हैं ? क्याही विलक्षण स्वभाव है ? कैसी सुन्दर मस्त हाथी व हंसिनीकी सी गति (चाल) है ? क्याही उपमारहित आपका दयार्द्रभाव है ? और क्याही अद्वितीय मुस्कान की मनोहरता है ? ॥४९॥

वाह्लीकसच्चर्चितचारुभालो मुक्ताप्रसूनोद्ग्रथिताहिवेणी ।
दिव्यप्रसूनाञ्चितचारुचूडः सुकुञ्चितस्निग्धशिरोरुहाश्च ॥५०॥

केशरकी रचनासे युक्त क्याही श्रीप्रिया जू का मस्तक है ? मोतियों तथा पुष्पोंसे गुथी हुई कैसी मनोहर सर्पिणीके समान लम्बी वेणी है ? कैसा सुन्दर फूलोंसे अलङ्कृत आपका जूड़ा है ? कैसे मनोहर, घुंघराले, चिकने, श्रीप्रियाजूके केश हैं ॥५०॥

अहो प्रियाया मम शुक्तिकर्णौ मत्यञ्जिते पद्मविलोचने द्वे ।
मनोजबाणासनशोभनभ्रू सुवर्तुलादर्शसमौ कपोलौ ॥५१॥

अहो श्रीप्रियाजूके कान दोनों सुवर्ण शुक्तिके समान कैसे सुन्दर हैं ? क्याही आनन्दकी वर्षा करने वाले कज्जल लगे हुये कमलके समान विशाल आपके नेत्र हैं ? कैसी सुन्दर कामदेवके धनुष के समान भौंहें हैं ? कैसे मनोहर गोल दर्पणके सदृश शोभायमान आपके दोनों कपोल हैं ॥५१॥

सुनासिका कीरविमोहयित्री मुक्ताञ्चिता बिम्बफलाधरोष्ठौ ।
सुदन्तपङ्क्तिः स्मितशोभमाना सश्यामबिन्दुं चिबुकं मनोज्ञम् ॥५२॥

अहो क्या ही सुन्दर नासामणिसे युक्त सुग्गा को मुग्ध करने वाली श्रीप्रियाजूकी नासिका है ? क्या ही बिम्बा फलके समान अरुण श्रीप्रियाजूके अधर (ओष्ठ) हैं ? मुस्कानसे शोभायमान दान्तोंकी पङ्क्ति कैसी मन लोभावनी है? श्रीप्रियाजूकी श्याम बिन्दुसे युक्त ठोड़ी कितनी मनोहर है?॥५२

ग्रैवेयकैर्भूषितकम्बुकण्ठो हारावलीशोभिदयामयोरः ।
सकङ्कणस्निग्धकणिप्रकोष्ठौ करारविन्दे वृतजत्रुणी च ॥५३॥

गलेके भूषणोंसे भूषित श्रीप्रियाजू का शङ्खके समान कण्ठ कैसा ही सुन्दर है ? अनेक प्रकारके हारोंसे शोभायमान दयामय हृदय स्थल, क्या ही मनोहर है ? कङ्कणों को धारण किये हुये चिकने पहुँचे आपके क्या ही सुहावने ह ? लालकमलके समान आपके क्या ही सुन्दर वरद-हस्त हैं ? और क्या ही सुन्दर आपके छिपे हुये जत्रु (भुज मूल व गलेके बीचकी हड्डी) ह ॥५३॥

काञ्च्यावृता सूक्ष्मकटिर्मनोज्ञा रम्भोरुयुग्मं सजलाम्बुजाक्षि ! ।
अहो प्रियाया मम गूढगुल्फौ सयावकाभूषितपादपद्मे ॥५४॥

हे सजल कमलके समान नेत्रवाली स्नेहपराजी ! श्रीप्रियाजूकी करधनीसे युक्त पतली कमर कैसी मनोहर है ? केलाके खम्भोंके समान श्रीप्रियाजूके क्याही सुन्दर रोम रहित,चिकने गोल जंघे हैं? अहो श्रीप्रियाजूके पांवकी छिपी हुई गाठे कैसी मनोहर हें, महावर लगे हुये नूपुर आदिसे अलंकृत श्रीप्रियाजूके चरणकमल कितने सुन्दर हैं ॥५४।

अहो प्रियाया मम नीलशाटी वस्त्राणि दिव्यानि च भूषणानि ।
सर्वं वशीभूतकर तदीयमदृष्टपूर्वं मम किं बहूक्त्या ! ॥५५॥

अहो हमारी श्रीप्रियाजूकी नीली साड़ी कैसी मनोहर है ? प्रकाशयुक्त, आपके और भी वस्त्र व भूषण क्या ही सुन्दर हैं ? बहुत कहनेसे क्या ? श्रीप्रियाजूका जो कुछ भी है, सभी वशीभूत करलेने वाला अदृष्टपूर्व (नव दर्शन) ही है ॥५५॥

अम्भोविहारश्च सदा प्रियायाः स्मृतो हरत्यालि ! तनुस्मृतिं मे ।
उरः परिष्वङ्गवियोगतापं सोढुं क्षणार्द्धं न हि रोचते मे ॥५६॥

अरी सखी ! श्रीप्रियाजूका जल विहार ऐसा था कि जिसको स्मरण करनेपर मुझे कभी अपने शरीर का भान नहीं रहता। अपने मनकी दशा क्या कहूँ ? श्रीप्रियाजूके हृदयालिङ्गनके वियोग-जन्य तापका आधाक्षण भी सहन करना मुझे नहीं जचता ॥५६॥

न कज्जलं मां तु चकार धात्रो सुखेन नेत्रे दयिता विधत्ते ।
कपोलसंस्पर्शनिबद्धकामं न चादिशत्कर्णविभूषणत्वम् ॥५७॥

हा ! विधाताने मुझे कज्जल नहीं बनाया, जो श्रीप्रियाजू सुखपूर्वक मुझे अपने नेत्रोंमें लगातीं,

न वे मुझे कानका भूषण ही बनाये जो श्रीप्रियाजूके कपोलों का स्पर्श-सुख, सदैव प्राप्त होता ॥५७॥

कान्ताधरोच्छिष्टनिबद्धभावं नासामणिं मे न चकार वेधाः ।
ग्रैवेयको नास्मि कृतो विधात्रा श्रीवल्लभाकण्ठसुलग्नकामः ॥५८॥

अहो श्रीप्रियाजूके अधरोच्छिष्टके सुख लोभीको विधाताने नासामणि नामका आभूषणका नहीं बनाया। हा, श्रीप्रियाजूके कण्ठमें लगे रहनेकी इच्छा वाले मुझको विधाताने कण्ठ का भूषण भी न बनाया ॥५८॥

वक्षःप्रदेशाधिनिवासतृष्णं न रत्नहारं व्यदधात्स को माम् ।
न चाङ्गरागं हि चकार वेधा यतोऽङ्गसङ्गाद्भुतशातमीयाम् ॥५९॥

श्रीप्रियाजूके हृदयस्थल पर निवास करनेकी मेरी सदा ही इच्छा बनी रहती है पर क्या करूँ? उस ब्रह्माने मुझे रत्नों का हार ही न बनाया और न उन्होंने मुझे अङ्ग राग ही बनाया, जिसके द्वारा हमें श्रीप्रियाजूके अङ्गसङ्गका अद्भुत सुख प्राप्त रहता ॥५९॥

अहं सदा प्राणपरप्रियायाः श्रीयोगिराजेन्द्रविदेहपुत्र्याः ।
अहो न चोलाऽभवमालि ! चास्या उरः समालिङ्गनलोलचित्तः ॥६०॥

हा सखी! प्राणोंसे भी परम प्यारी, योगिचक्रवर्ती श्रीविदेहनन्दिनीजूके हृदय को सदा सम्यक् प्रकारसे आलिङ्गन करनेके लिये चञ्चल चित्त रहने वाला मैं (राम) उनका (अँगिया) भी न हुआ ६०

न वालपाश्या न तथा ललाटिका व तालपत्रं तरलो ललन्तिका ।
प्रालम्बिका नाङ्गदमङ्गुलीयकं प्राणप्रियार्थं विधिना कृतोऽस्म्यहम् ॥६१॥

हा विधाताने श्रीप्राण प्रियाजूकेलिये मुझे न वालपाश्या (चोटीमें गूथनेकी मोतीकी) लड़ी न ललाटिका (माथेका तिलकाकार भूषण) न तालपत्र न तरल न ललन्तिका न प्रालम्बिका हार न बाजूबन्द न अङ्गूठी आदि ही बनाया ॥६१॥

न मेखलां नूपुरमग्रजन्मा न चोपधानं न तथोत्तरीयम् ।
न प्रावृतं नालि ! तथा हि मद्य प्राणाधिकार्थं वत मां चकार ॥६२॥

हा विधाताने श्रीप्रियाजूकेलिये मुझे न करधनी बनाया, जो मुझको वे अपनी कमरमें धारण करतीं। न नूपुर ही मुझे बनाया जो श्रीप्रियाजूके श्रीचरणकमलोंका मुझे स्पर्शसुख अनायास प्राप्त होता रहता। उसी प्रकार मुझे ब्रह्माजीने उत्तरीय (चद्दर) भी नहीं बनाया जो श्रीप्रियाजू

अपने ओढ़नेकी सेवामें ही मुझे स्वीकार करतीं। अरी सखी! उन ब्रह्माजीने मुझे चादर भी न बनाया, जो मुझे श्रीप्रियाजूकी सेवा तो प्राप्त होती। हा विधाताने मुझे पलङ्ग भी नहीं बनाया, जो शयन करनेके समय श्रीप्रियाजू मुझे अपनी सेवामें स्वीकार करतीं ॥६२॥

श्रीशिव उवाच।

एवं यथेष्टं लपतोऽङ्कम्पात् प्राणप्रिया प्राणधनेति चोक्त्वा।
ईषज्जगाराथ शशाङ्कवक्त्राऽऽलिलिङ्ग रामो विरहातुरस्ताम् ॥६३॥

भगवान्‌शिवजी बोले:-हे प्रिये! इस प्रकार अपनी इच्छानुसार कहते हुये श्रीरामभद्रजूको आनन्दातिरेकके कारण अङ्ग हिल जानेसे उनकी चन्द्रमाके समान प्रकाशमान आह्लादकारी मुखकमल वाली, प्राणप्रिया श्रीमिथिलेशराज किशोरीजी, हे प्राणधन! इतना सम्बोधित करके कुछ थोड़ा सा जगीं, तब उन्हें विरह-व्याकुल श्रीरामभद्रजूने अपने हृदयसे लगालिया ॥६३॥

आलिङ्ग्य तामात्मरतैकगम्यः स्वात्मस्वरूपामनुरागमुग्धः।
भृशं मुमोदाशु यथा दरिद्रो महाधनं प्राप्य विना श्रमेण ॥६४॥

जिन्हें लौकिक शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि छओं विषयोंसे पूर्ण विरक्त हो आत्म (अपने इष्ट देवके ही शब्द, स्पर्श, रूप, गन्धादि विषयोंमें) रत (आसक्त) हुआ केवल भक्त ही प्राप्त कर सकता है, वे योगेश्वर सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामभद्रजू अपनी आत्मस्वरूपा, प्राणप्रिया, श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीको उनके अनुरागसे मुग्ध (मोहित) हो जानेके कारण हृदयसे लगाकर इस प्रकार अकथनीय आनन्दको प्राप्त हुये, जैसे एक दरिद्र प्राणी बिना परिश्रम किये ही महती सम्पत्ति को पाकर हो जाता है ॥६४॥

सुखेन सुष्वाप सुखैकमूर्तिर्भर्तुः परिष्वङ्गसुलब्धकामा।
तस्यां स्वपत्यां रघुराजसूनुः सप्रेमवाचोच इदं वचस्ताम् ॥६५॥

प्यारेके आलिङ्गनसे भली प्रकार पूर्ण मनोरथ हुईं, सुखकी उपमा-रहित मूर्ति, श्रीविदेहराज नन्दिनीजू सुखपूर्वक सो गयीं। उनके सो जाने पर रघुवंशको सुशोभित करने वाले श्रीचक्रवर्तीजीके पुत्र श्रीरामभद्रजू उन (स्नेहपराजी) से यह प्रेम पूर्वक वचन बोले- ॥६५॥

श्रीराम उवाच।

इदमाकर्ण्य वचः श्रुतिप्रियं सखि! पीयूषनिभं तवाननात्।
न हि संतृप्यत एव मे मनः सुखदं श्रावय तत्प्रियायशः ॥६६॥

अरी सखी ! तेरे मुखसे श्रवणोंको सुख देनेवाले, अमृतके समान वचनोंको श्रवण करके मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है, अत एव श्रीप्रियाजू का सुखद यश मुझे श्रवण कराइये ॥६६॥

अयमेव हि मे मनोरथः सुलभः स्यात्कृपया तवाधुना ।
न विलम्बय तत्र सुन्दरि ! प्रवदानुग्रहतो दयान्विते ! ॥६७॥

इस समय मेरा यह मनोरथ तुम्हारी ही कृपासे सुलभ हो सकता है, अत एव हे दयायुक्ते ! सुन्दरी ! अनुग्रह (दया) करके श्रीप्रियाजूके चरितों को वर्णन कीजिये, उस (चरित कथन करनेके विषयमें विलम्ब न कीजिये ॥६७॥

श्रीशिव उवाच ।

इति शसति साश्रुलोचने परमप्रेयसि दीनया गिरा ।
व्यथिता चकिता निरीक्ष्य सा दयितप्रेमदशां बभूव ह ॥६८॥

भगवान् शङ्करजी बोले-हे श्रीगिरिराज कुमारीजू ! सजल नेत्र वाले परम प्यारेजूकी दीनता-पूर्ण वाणी द्वारा इस प्रकारकी आज्ञा पाकर, प्यारेकी उस प्रेम-दशाको देखकर वे श्रीस्नेहपराजी व्याकुल तथा चकित (आश्चर्य युक्त) हो गयीं ? ॥६८॥

एतादृशं सर्वसुखस्वरूपं प्राणप्रियं प्रेमपरैकगम्यम् ।
भजेन्न रामं जनकात्मजां वा नृदेहमासाद्य स वै पशुघ्नः ॥६९॥

इति सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५७॥

मासपरायणः विश्रामः-१५

हे पार्वती ! मनुष्य शरीरको प्राप्त होकर केवल अनुरागी भक्तोंके लिये सुलभ, समस्त सुखोंके स्वरूप, ऐसे प्रेमाधीन, प्राणोंसे प्रिय (आत्मस्वरूप), योगियोंके क्रीडा स्थान, घट घटमें रमण करने वाले प्यारे श्रीरामभद्रजूका तथा उन्हें (श्रीरामभद्रजूको) भी अपने भाव-प्रेमसे अधीन करलेने वाली उनकी आत्मस्वरूपा सर्वेश्वरी श्रीजनकराजदुलारीजूका जो भजन नहीं करता वह निश्चय ही पशु (आत्मा) को हनन करने वाला (कसाई) है ॥६९॥

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

श्रीकिशोरीजीके प्रसन्नतार्थ श्रीरामभद्रजीको अयोध्याजीसे कञ्चनवनमें तुरत ले आनेके लिये श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा सखियोंको आदेश तथा श्रीरामभद्रजूका स्वप्न-दर्शन।

श्रीकात्यायन्युवाच।

कस्मात्कदा कुतः सख्या कथं श्रीमिथिलापुरीम्।
आनीतः प्रीतये रामः पुत्र्याः श्रीमिथिलेशितुः ॥१॥

इस रहस्य को सुनकर श्रीकात्यायिनीजी महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजीसे बोलीं:-हे महात्मन्! श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीके प्रसन्नतार्थ श्रीराम भद्रजीको कब? व किस लिये? कहाँ से? तथा किस प्रकार? सखी (श्रीचन्द्रकलाजी) श्रीमिथिलापुरीमें लाईं॥१॥

गुह्यं रहस्यमाख्याहि दासीं प्रति कृपाकर!
एतदर्थं महाराज! मयेयं रचिताञ्जलिः ॥२॥

हे कृपाखानि! इस गुप्त रहस्यको आप कृपा करके मुझ दासीके प्रति वर्णन कीजिये! हे महाराज! इस हेतु मैं हाथ जोड़ रही हूँ॥२॥

श्रीसूत उवाच।

श्रुत्वा तस्याः प्रियं वाक्यं याज्ञवल्क्यो महानृषिः।
विलोक्य महतीं श्रद्धां कथनायोपचक्रमे ॥३॥

श्रीसूतजीमहाराज इतनी कथा सुनाकर शौनक आदि महर्षियोंसे बोले-हे महर्षि वृन्दो! महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज उन (श्रीकात्यायनीजी) के प्यारे वचनों को श्रवण करके तथा चरित सुननेमें उनकी महती श्रद्धा देख कर उस गुप्त चरित को कथन करने लगे॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

शृणु देवि? महत्पुण्यं रहस्यमिदमद्भुतम्।
मुनिना लोमशेनोक्तं पुरा शम्भुमुखाच्छ्रुतम् ॥४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज तपस्विनी श्रीकात्यायनीजीसे बोले-हे देवि! इस आश्चर्यजनक, महान् पुण्यदायक रहस्यको आप श्रवण कीजिये। भगवान् भोले नाथके मुखसे सुने हुये इस रहस्यको महर्षि श्रीलोमशजीने हमें पूर्वमें श्रवण कराया था॥४॥

एकदा मिथिलानाथहृदयानन्दवर्द्धिनी ।
सार्द्धं सखीसमूहैश्च जगाम स्वर्णकाननम् ॥५॥

एक समय श्रीमिथिलेशजी महाराजके हृदयका आनन्द बढ़ाने वाली श्रीसुनयनानन्दिनीजू अपने सखीसमूहके साथ कञ्चन वन पधारीं ॥५॥

दोलयित्वा लतागारे श्रीकञ्चनवनश्रियम् ।
बभ्राम सुमुखी द्रष्टुं सेव्यमाना सखीजनैः ॥६॥

वहाँ लताभवनमें झूला झूलकर, श्रीकञ्चनवनकी शोभा अवलोकन करनेके लिये वहाँ विचरने लगीं ॥६॥

सा ऽथ रासस्थलीं गत्वा पूजिता विधिना तदा ।
लालिता बहुशः सख्या जनन्या भोजनादिभिः ॥७॥

तत्पश्चात् वे रासस्थली (भगवदानन्द प्राप्तिके लिये नियतकी हुई स्थली) पर पधारीं, तब वहाँ पर श्रीसुनयनाअम्बाजीकी सखीने विधिपूर्वक आपका पूजन किया पुनः भोजन आदिके द्वारा उनका बहुत प्रकारसे वह दुलार करने लगी ॥७॥

रासशृङ्गारसम्पन्ना परमाद्भुतदर्शना ।
शरच्चन्द्रप्रतीकाशमुखमण्डलशोभिता ॥८॥

तदनन्तर जब उनका उस सखीने रासोचित शृङ्गार किया तब शरद्-ऋतुके पूर्णचन्द्रमाके समान उनके मुख-मण्डलकी शोभा हुई तथा उनका दर्शन परम आश्चर्य-मय हो गया ॥ ८ ॥

नीलेन्दीवरपत्राक्षी नीलकुञ्चितमूर्द्धजा ।
नीलवस्त्रधरा श्यामा नीलाम्भोजकराम्बुजा ॥९॥

नीले कमलदलके समान नेत्र व काले, घुंघुराले, केशोंसे युक्त, नीले वस्त्रोंको पहिने हुई, अपने करकमलमें नील-कमलको धारण किये बारह वर्षोचित अवस्था सम्पन्न ॥ ९ ॥

सर्वाभरणवस्त्राढ्या चन्द्रिकाशोभिमस्तका ।
तथा विभूषिताभिश्च सखीभिः परिवेष्टिता ॥१०॥

सभी वस्त्र व भूषणोंसे युक्त, चन्द्रिकासे सुशोभित मस्तक वाली, श्रीकिशोरीजी उसी प्रकारका शृङ्गार किये हुई अपनी सखियोंसे घिर गई ॥ १० ॥

यथा तारागणे चन्द्रो राजते सत्प्रभान्वितः ।
तथा सखीगणे देवि ! सा च ताराधिपानना ॥११॥

हे देवि ! उस समय जैसे तारागणोंके बीचमें प्रकाशमान चन्द्रमा सुशोभित होता है, उसी प्रकारसे सखी गणोंके बीचमें चन्द्रमुखी श्रीमिथिलेशदुलारीजी सुशोभित हुईं ॥ ११ ॥

यथा छविसमूहे तु राजते वै महाछविः ।
तथालिगणमध्यस्था सा श्रीजनकनन्दिनी ॥१२॥

जैसे छविसमूहमें महाछवि प्रकाशमान होती है, उसी प्रकार सखीगणोंके बीचमें उपस्थित हुई वे श्रीजनकनन्दिनीजू चमक रही थीं ॥१२॥

यथा देवाङ्गनामध्ये राजते मन्मथप्रिया ।
तथा सखीगणे ज्ञेया पुत्रिका मिथिलापतेः ॥१३॥

जैसे देवस्त्रियोंके बीचमें कामदेवकी प्राणवल्लभा (रति) सबसे अधिक उत्कर्षको प्राप्त होती है, उसी प्रकार सखी वृन्दाके बीचम श्रीमिथिलेशललीजी सबसे उत्कृष्टतया विराज रही थीं ॥१३॥

यथैवाप्सरसां मध्य उर्वशी वै विराजते ।
तथा स्वालिसमूहे तु जनकस्य प्रियात्मजा ॥१४॥

जैसे अप्सराओंके बीचमें उर्वशीकी सबसे विलक्षण शोभा रहती हैं उसी भाँति अपनी सखी समूहमें श्रीजनकजी महाराजकी प्यारी पुत्री श्रीकिशोरीजीकी शोभा सबीसे विलक्षण थी ॥१४॥

दिव्यसिंहासनारूढा महामाधुर्यमण्डिता ।
सानुरागकटाक्षेण नोदयामास सा सखीः ॥१५॥

पुनः महामाधुर्य्य रससे सुशोभित, दिव्य सिंहासनपर विराजमान होकर श्रीजनकराजलड़ैतीजूने अनुरागपूर्ण कटाक्षके द्वारा सखियोंको नृत्यादिके लिये प्रेरित किया ॥१५॥

कृतयूथास्तदा सख्यश्चक्रुर्गानमनिन्दिताः ।
सरसं मोहनं चैव श्रोतृणां योगिनामपि ॥१६॥

तब वे प्रशंसित सखियाँ यूथ बनाकर, योगी श्रोताओं को भी मुग्ध करलेने वाले सरस (भगवत्सम्बन्धी) गान को गाने लगीं ॥१६॥

रसाप्लुताशयाः सर्वाः पुनर्नृत्यं प्रचक्रिरे ।
तुतोष तेन वैदेही सहजानन्दरूपिणी ॥१७॥

पुनः रस (ब्रह्मस्वरूपा श्रीजनकललीजू) में तल्लीन इच्छाओं वाली, सभी सखियाँ नृत्य करने लगीं, उस (नृत्य) से सहज (स्वाभाविक) आनन्द-स्वरूपा श्रीविदेहराजकुमारीजू प्रसन्न हो गयीं ॥१७॥

पाणौ पाणिं निधायाथ यदा सख्यः परस्परम् ।
रासमारम्भयामासुरसिताम्भोजलोचनाः ॥१८॥

तत्पश्चात् नीले कमलके समान श्याम नेत्रवाली उन सखियोंने जब परस्पर हाथमें हाथ रखकर रास (रसस्वरूपा श्रीकिशोरीजीकी प्रसन्नता कारक, नृत्य रूपी साधन) आरम्भ किया ॥१८॥

दृष्ट्वा व्यचिन्तयत्तत्सा रासानन्दविवर्द्धिनी ।
विद्युन्मालेव मे सख्यो नृत्यन्त्यो भान्ति शोभनाः ॥१९॥

उसे देखकर रास-रसस्वरूप, ब्रह्मके उपासकोंके आनन्दकी वृद्धि करने वाली वे श्रीजनकराज-दुलारीजू अपने मनमें विचार करने लगीं, कि ये मेरी नाचती हुई सखियाँ बिजुलीकी मालाके समान प्रतीत हो रही हैं ॥१९॥

किन्त्वासां श्याममेघेन विना वै मध्यवर्तिना ।
न्यूनत्वं लक्ष्यते हन्त शोभायां दुर्निवारणम् ॥२०॥

किन्तु मध्यमें बिना श्याम-मेघके विराज हुये इनकी शोभामें निवारण करनेको कठिन - कमी दिखाई पड़ रही है ॥ २० ॥

श्याममेघप्रतीकाशः कोटिकन्दर्पसुन्दरः ।
वल्लभो मम विध्वास्यो ह्यासां शोभाप्रपूरकः ॥२१॥

किन्तु जैसे काले बादलोंके बीचमें होनेसे आकाश वाली बिजुलीकी शोभा होती है, उसी प्रकार बिजुलीके समान कान्ति वाली नाचती हुई सखियोंकी इस अपूर्ण शोभाको पूर्ण करने वाले, करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर, श्याममेघके सदृश श्रीअङ्ग तथा चन्द्रमाके समान आह्लादकारी मुखारविन्द वाले हमारे श्रीप्यारेजूही हैं ॥ २१ ॥

स इदानीमयोध्यायां वर्तते दृष्टिगोचरः ।
स्वभाववालवत्श्रेष्ठः मुदा क्रीडन् रसाश्रयः ॥२२॥

इस समय सभी रसोंके कारण स्वरूप वे (श्रीप्यारेजू) श्री अयोध्याजीमें प्राकृत बालकोंके समान प्रत्यक्ष क्रीड़ा कर रहे हैं ॥२२॥

विना तेन न वै चेयं रासलीला सुशोभते ।
असाध्यागमनं मत्वा तस्य सा विमना बभौ ॥२३॥

बिना उनके प्रत्यक्ष हुये आनन्दमय भक्तके उपासकोंकी यह नृत्यादि लीला, भली प्रकारसे शोभित नहीं होसकती । श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले-हे प्रिये ! सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी इतना विचार करके तथा श्रीअयोध्याजीसे तत्क्षण प्यारेका आना असाध्य मानकर उदास हो गयीं ॥२३॥

दृष्ट्वा चिन्ताहिनीग्रस्तां तामचिन्त्यां सुखाकृतिम् ।
विह्वलत्वं निवार्याथ स्वात्मनश्च कथञ्चन ॥२४॥
बद्ध्वाञ्जलिपुटं चेदं प्रेमगम्भीरया गिरा ।
सखी चन्द्रकला प्राह विनयानतकन्धरा ॥२५॥

समस्त चिन्ताओंसे रहित, सुखकी विग्रह, उन श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू को चिन्ता रूपी सर्पिणीसे ग्रसित हुई देखकर, अपने हृदयकी विह्वलताको किसी प्रकारसे हटाकर श्रीचन्द्रकलाजी अपने दोनों हाथों को जोड़ कर, कन्धे झुकाये हुई यह, प्रेमपूर्वक गम्भीर वाणीसे बोलीं--॥२४॥२५॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

किं शोचसि वृथैव त्वं कथं च विमना ह्यसि ।
असाध्यमपि यत्कार्यं करिष्ये त्वत्प्रसादतः ॥२६॥

हे श्रीललीजू ! आप क्या सोच रही हैं ? और वास्तवमें किस लिये उदास हैं ? आपकी चिन्ता-निवारणके लिये जो कार्यसाधनसे परे भी होगा, उसे भी आपकी कृपासे करूँगी ॥२६॥

ब्रूहि मे कृपया सर्वं यथा ते शोकसङ्गमः ।
शापिताऽसि मम प्राणैर्ह्लादिनि ! प्रेमवारिधे ! ॥२७॥

अत एव जिस प्रकारसे आपको शोकसे भेंट हुई है, वह सब मुझे कृपा करके बतलाइये हे समुद्रके समान प्रेमवाली श्रीआह्लादिनीजू ! एतदर्थ आपको मेरे प्राणोंकी शपथ है ॥ २७ ॥

त्वयि प्रेयसि खिन्नायां खिन्नः सर्वसखीजनः ।
यतस्त्वमेव सर्वासां प्राणभूताऽसि शोभने ! ॥२८॥

हे श्रीप्यारीजू ! आपके खिन्न होनेसे सभी सखीजन खिन्न हुई जारही हैं, क्योंकि हे शोभने ! आप ही सबोंकी प्राणस्वरूपा हैं ॥ २८ ॥

ब्रह्मादयो न जानन्ति प्रभावं ते कुतोऽपरः ।
बाललीलां करोषि त्वं सर्वशक्तिमहेश्वरी ॥२६॥

हे श्रीललीजी ! आपके प्रभाव (महिमा) को ब्रह्मादिक देव श्रेष्ठभी नहीं जानते हैं, फिर और कौन जान सकता है ? आप समस्त शक्तियोंकी महेश्वरी (परमनियामिका) हैं, यह तो आप केवल बाल लीला कर रही हैं ॥२९॥

तथापि खेदकालोऽयं नात्र रासमहोत्सवे ।
दूरतोऽपास्य तं ब्रूहि कारणं प्राणवल्लभे ! ॥३०॥

फिरभी सर्वोपास्य ब्रह्मानुरागी, अपने भक्तोंके इस भगवत्सम्बन्धी महोत्सवमें यह खेद करनेका समय नहीं है। अत एव हे श्रीप्राणवल्लभेजू उसे दूर फेंककर अपनी चिन्ताका कारण बतलाइये॥३०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्ता सा विशालाक्षी कारणं तामभाषत ।
तच्छ्रुत्वा सहसा साऽऽह गृहीत्वा पादपङ्कजे ॥३१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोलेः—हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्रीविदेहराजकुमारीजीने, अपनी चिन्ताका कारण कह सुनाया, श्रीचन्द्रकलाजी उसे सुनकर तुरत चरणकमलोंको पकड़कर बोली ॥३१॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

इदानीमेव तं युक्त्या ह्यानयिष्ये तवान्तिकम् ।
पादसेवाप्रभावेण तव नास्त्यत्र संशयः ॥३२॥

हे श्रीप्रियाजू ! आपके श्रीचरणकमलोंकी सेवाके प्रभावसे युक्ति-पूर्वक मैं उन श्रीप्राणप्यारे जीको, आपके पास ले आऊँगी, इसमें कोईभी सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

लब्धवत्या यतेत्याज्ञां शक्तयः प्रकटीकृताः ।
तयाऽऽदिष्टा यथा श्रेष्ठ ! वदन्त्या मे तथा शृणु ॥३३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः-हे प्यारे ! श्रीचन्द्रकलाजीके इस प्रकार प्रार्थना करने पर, श्रीकिशोरीजीने याज्ञादी-अरी-सखी ! यदि तुम प्यारेको इस समय ला सकती हो, तो लानेका यत्न करो। इस आज्ञा

को पाकर उन श्रीचन्द्रकलाजीने अपने अंशसे प्रकटकी हुई शक्तियोंको जिस प्रकारसे आज्ञादी उसको मैं वर्णन करती हूँ, आप श्रवण कीजिये ॥ ३३ ॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

इतो गच्छत वै सर्वा अयोध्यां लोकविश्रुताम् ।
गुप्तरूपेण चादाय राममायात सत्वरम् ॥३४॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:-हे शक्तियो ! आप लोग शीघ्र यहाँसे लोक-प्रसिद्ध श्रीअयोध्याजी पधारें और गुप्त रूपसे श्रीरामभद्रजीको लेकर तुरत आजावें ॥३४॥

यत्र कुत्र स्थितं रामं काममोहनविग्रहम् ।
शयानं क्रीड़मानं वाऽऽनयध्वमविलम्बतः ॥३५॥

जहाँ कहीं भी हों, चाहे सो रहे हों अथवा खेल ही क्यों न रहे हों पर आप लोग, अपनी छविसे काम देवको भी मुग्ध कर लेने वाले, तुरत प्यारे श्रीरामलालजीको ले ही आओ ॥३५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तथेत्युक्त्वा तु ता गत्वा मार्गमाणा महापुरीम् ।
श्रीप्रमोदवने रामं ददृशुस्तं मनोहरम् ॥३६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोले:-हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजीकी इस आज्ञाको श्रवण करके उन शक्तियोंने, ऐसा ही करेंगी कहकर, महा (ब्रह्म) पुरी श्रीअयोध्याजीमें जाकर, वहाँ खोजती हुई श्रीप्रमोदवनमें उन मनोहरण प्यारे श्रीरामजूका दर्शन प्राप्त किया ॥३६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

मोहितास्तस्य रूपेण कथञ्चित्स्वस्थतां ययुः ।
महाचिन्तां समापन्ना इतो नेयः कथन्त्विति ॥३७॥

उनके रूपसे मुग्ध हो जाने पर वे किसी प्रकारसे सावधान हुईं, किन्तु इस महती चिन्ता में पड़ गयीं, कि इन्हें अपनी श्रीमिथिलाजीमें कैसे ले चलें ? ॥३७॥

वनशोभां प्रपश्यन्तं महामत्तेभगामिनम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं राजराजेन्द्रनन्दनम् ॥३८॥

क्योंकि ये तो महान् मस्तहाथीके समान चलनेवाले, समस्त लोकोंकी सुन्दरताके राशिस्वरूप, श्रीचक्रवर्तीजीको आनन्द-प्रदान करनेवाले श्रीरामभद्रजू श्रीप्रमोदवनकी शोभाको देख रहे हैं ॥३८॥

विनोत्पाट्य वनं चैतत्साचलं नैव शक्नुमः ।
छद्मनाऽपि वयं नेतुमिति निश्चित्य राघवम् ॥३६॥

अत एव पृथिवीके सहित श्रीप्रमोदवनको विना उखाड़े हुये छलसेभी, इन श्रीरघुवंशी श्रीरामभद्र सरकारको हम लोग श्रीमिथिलापुरीले जानेको समर्थ नहीं हैं, ऐसा निश्चय करके ॥ ३६ ॥

ता ध्यात्वा हृदि कल्याणीं परितश्च वनोत्तमम् ।
सोर्विमुत्पाटयामासुः सदृग्जातीरवालुकम् ॥४०॥

उन सखियोंने कल्याणस्वरूपा श्रीचन्द्रकलाजीका हृदयमें ध्यान करके, श्रीसरयूजीके किनारेकी वालुकासे युक्त, पृथिवी सहित, श्रीप्रमोदवनको चारों ओरसे उखाड़ लिया ॥ ४० ॥

न कम्पो ऽभूत्तु वृक्षाणां दलानामपि वै द्रुम् ।
युक्त्येदृश्या तु वै ताभिर्वनस्योत्पाटनं कृतम् ॥४१॥

परन्तु उन शक्तियोंने ऐसी युक्तिसे उस (वन) को उखाड़ा, कि वहाँके वृक्षोंके पत्तेभी किञ्चित् न हिल सके ॥ ४१ ॥

सावधानतया क्षिप्रं पुनस्ता मिथिलापुरीम् ।
आनीय रोपणं चक्रुर्वने कञ्चनसञ्ज्ञके ॥४२॥

पुनः उन्होंने बड़ी सावधानी पूर्वक उसे श्रीमिथिलाजीमें लाकर कञ्चन वनमें रख दिया ॥४२॥

न तावदपि वै चैतद्रहस्यं नृपतेः सुतः ।
ज्ञातवान् वनराजस्य शोभासक्तमृगेक्षणः ॥४३॥

श्रीप्रमोदवनकी शोभामें आसक्त, हरिणके समान विशाल नेत्र, वे श्रीचक्रवर्तीकुमार प्यारे श्रीरामभद्रजू , तबतक इस रहस्यको न जान सके ॥४३॥

स्वप्नस्मृतिस्ततो जज्ञे हृदि तस्य यदृच्छया ।
चिन्तयोदासचित्तोऽभून्निषसाद शिलोपरि ॥४४॥

तदनन्तर अकस्मात् उनके हृदयमें स्वप्नका स्मरण हो आया, अत एव चिन्तासे वे उदासचित्त हो गये और एक शिला पर जा विराजे ॥४४॥

श्रीसूत उवाच ।

इति गूढं वचः श्रुत्वा महर्षेर्विदितात्मनः ।
आत्मशङ्कानिवृत्यर्थं तमुवाच तपस्विनी ॥४५॥

श्रीसूतजी बोलेः-हे महर्षियो ! आत्मज्ञान-प्राप्त महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराजके इस प्रकारके गूढ़ (छिपे हुये) वचनोंको सुनकर, अपनी शङ्का-समाधानके लिये तपस्विनी श्रीकात्यायनीजी श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराजसे बोलीं :-॥४५॥

श्रीकात्यायन्युवाच ।

स्वप्नस्तु कीदृशो दृष्टस्तेन राजेन्द्रसूनुना ।
कस्मिन् काले कदा वाऽथ कथ्यतां कृपया प्रभो ! ॥४६॥

श्रीकात्यायनीजी बोलीं:-हे प्रभो ! चक्रवर्तीकुमार श्रीरामजी-सरकारने कब ? किस प्रकारका स्वप्न देखा था ? कृपा करके आप उसे कथन कीजिये ॥४६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

यस्मिन्दिने प्रिया पुत्री जनकस्य महीपतेः ।
खेलनाय वनं प्रागाच्छ्रीमत्कञ्चनकाह्वयम् ॥४७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोलेः-हे प्रिये ! जिस दिन श्रीजनकजी महाराजकी प्यारी श्रीललीजी खेलनेके लिये कञ्चन वन पधारी थीं ॥४७॥

तस्मात्पूर्वक्षपासुप्तः प्रातःकाल उपागते ।
शृणु स्वप्नं यथाऽपश्यन्नचिरात्सिद्धिदायकम् ॥४८॥

उस दिनके पूर्वकी रातमें सोये हुये प्रातः कालकी उपस्थितिमें उन (श्रीरामभद्रजू) ने शीघ्र सिद्धि-प्रदान करने वाला स्वप्न जैसे देखा था उसे आप श्रवण कीजिये ॥४८॥

क्रीडमानं निजात्मानं दृष्ट्वा बालैः स राघवः ।
ददर्श द्विजमायान्तं शुक्लगन्धानुलेपिनम् ॥४९॥

रघुवंशियोंमें प्रधान उन श्रीरामभद्रजूने, अपने आपको बालकोंके साथ खेलते हुये देखकर, श्वेतचन्दन लगाये एक ब्राह्मणको आते देखा ॥४९॥

गृहीतपुस्तिकाहस्तं शुक्लवस्त्रसमावृतम् ।
तवास्मि गणकः पाणं वीक्षे वत्सेहि वादिनम् ॥५०॥

वह ब्राह्मण हाथमें पोथीको लिये है और श्वेत वस्त्रोंको धारण कर रक्खा है तथा हे वत्स! मैं ज्योतिषी हूँ। आओ तुम्हारा हाथ देखूँ, यह कह रहा है ॥५०॥

स स्मितास्योऽन्तिकं गत्वा प्रणनाम कृताञ्जलिः।
आशीर्भिरभिनन्द्याथ लालयामास तं द्विजः ॥५१॥

तब मन्द मुस्कान युक्त मुखारविन्द वाले श्रीरामभद्रजू उनके समीपमें जाकर, हाथ जोड़कर प्रणाम किया, उन्हें ब्राह्मण अनेक आशीर्वादके द्वारा प्रसन्न करके, उनका दुलार करने लगा ५१

दृष्ट्वाऽप्राकृतलावण्यं प्रत्यङ्गेषु पुनः पुनः।
भालरेखाः समालोक्य विस्मयं परमं ययौ ॥५२॥

उस ब्राह्मणने श्रीरामभद्रजूके प्रत्येक अङ्गोंमें दिव्य सौन्दर्यका बारम्बार दर्शन करके मस्तककी रेखाओंको देखकर, परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥५२॥

यानि चिह्नानि देवेशे विश्रुतानि रमापतौ।
तानि सर्वाणि दृश्यन्ते ह्यस्मिन्नेव नृपार्भके ॥५३॥

देवताओंके स्वामी, लक्ष्मीपति, श्रीविष्णुभगवान्में जो-जो चिन्ह, प्रसिद्ध हैं, वे सभी चिन्ह, इन श्रीराजपुत्रमें दिखाई दे रहे ह ॥५३॥

अतो ऽयं भगवान् साक्षादिति निश्चित्य हर्षितः।
उवाच तद्भविष्यं स निजं भाग्यं प्रशस्य च ॥५४॥

अत एव ये श्रीरामलालजी, षडैश्वर्य सम्पन्न साक्षात् भगवान् हैं, ऐसा निश्चय करके वह ब्राह्मण अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करके श्रीरामभद्रजूके भविष्य को कहने लगा ॥५४॥

श्रीद्विज उवाच।

रामभद्रारविन्दाक्ष ! कौशल्यानन्दवर्द्धन ! ।
आत्मनो यतचित्तेन भविष्यं श्रूयतां त्वया ॥५५॥

श्रीकौशल्या अम्बाजीके आनन्द को बढ़ाने वाले कमलनयन, हे श्रीरामभद्रजू ! एकाग्र चित्तसे आप अपने भविष्यको श्रवण कीजिये ॥५५॥

विज्वरो निर्जयो जेता सर्वविद्याविशारदः।
सर्वज्ञः कुशलो दान्तो गुणज्ञो धर्मवित्तमः ॥५६॥

सब प्रकारके ज्वरोंसे रहित, जीतनेमें अशक्य, सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले, समस्त विद्याओंके पूर्ण विद्वान(भूत, भविष्य वर्तमान) व सर्वत्र (सभी भीतरी बाहरी स्थलों) की सभी बातों का पूर्ण ज्ञान रखने वाले, भक्तोंके रक्षण कार्यमें परम चतुर, जितेन्द्रिय, सभीके गुणों को समझने वाले तथा धर्म का रहस्य जानने वालोंमें परम श्रेष्ठ ॥५६॥

भावज्ञः सर्वभूतानां सर्वभावप्रपूरकः ।
शरण्यश्च वरेण्यश्च मितभाषी प्रियं वदः ॥५७॥

सभी प्राणियोंके भावोंकी जानकारी रखने वाले, सभी भक्तोंके भावकी पूर्ति करने वाले, सभी चर-अचर प्राणियोंकी रक्षा करनेको पूर्ण समर्थ, सबसे श्रेष्ठ, थोड़ा बोलने वाले व प्रिय बोलने वाले ५७

अर्चकः साधुविप्राणां सर्वेषां च हिते रतः ।
सर्वभूतान्तरस्थश्च सर्वगो निरहङ्कृतिः ॥५८॥

सन्त व ब्राह्मणोंके पुजारी,सभी प्राणियोंके हितमें तत्पर,अन्तर्यामी रूपसे सभी जीवोंके अन्तःस्करणमें विराजमान रहने वाले, सर्व व्यापक (सभीमें ओत-प्रोत), अभिमानसे रहित ॥५८॥

रक्षिता सर्वलोकस्य स्वधर्मस्य च रक्षिता ।
साधुगोद्विजदेवानां विशेषेण च रक्षिता ॥५६॥

सभी लोकोंकी रक्षा करनेवाले तथा अपने भगवत्--धर्मकी रक्षा करनेवाले और विशेष करके साधु, गौ, ब्राह्मण, देवताओंकी रक्षा करने वाले ॥५६॥

ईश्वरः सर्वभूतानां प्रणयी प्रणयप्रियः ।
मृदुः सुशीलः कारुण्यवात्सल्यादिगुणाकरः ॥६०॥

सम्पूर्ण प्राणियोंके नियामक,भक्तोंसे परम प्रेम करने वाले तथा प्रेमसे ही प्रसन्न होनेवाले,शरीर व स्वभावसे परम-कोमल, सौशील्यगुणयुक्त, समुद्रवत् अथाह करुणा व वात्सल्य आदि गुणोंसे विभूषित ॥६०॥

क्षमया पृथिवीतुल्यो गाम्भीर्ये सागरो यथा ।
वीर्ये चैवाप्रतिद्वन्द्वे यथा नारायणो हरिः ॥६१॥

क्षमामें पृथिवीके समान, गम्भीरतामें समुद्रके सदृश अथाह, अनुपम (बेजोड़) पराक्रममें भक्त दुःखहारी श्रीनारायण भगवान् जैसे हैं ॥६१॥

दयालुर्दयया स्तुत्यो निश्चलो हिमवानिव ।
महेन्द्र इव भोगेषु योगे च कपिलो यथा ॥६२॥

दयाके द्वारा प्रशंसनीय दयावान्, हिमालय पर्वतके समान अचल, भोगमें देवराज इन्द्रके सदृश और योगमें जैसे भगवान श्रीकपिलजी हैं ॥६२॥

स्रष्टा च ब्रह्मणा तुल्यः संहारे ऽत्र्यम्बकोपमः ।
द्रविणे च कुबेरेण शासने यमसन्निभः ॥६३॥

सृष्टि करनेमें ब्रह्माजीके समान, संहार करनेमें भगवान रुद्रके सदृश, धनमें कुबेर और शासनमें धर्मराजके समान ॥६३॥

आत्मवत्सर्वभूतानां वल्लभैको भविष्यसि ।
कतिचिद्दिनानि वासस्तव राजर्षिणेक्ष्यते ॥६४॥

सभी प्राणियोंको आत्माके समान आप सबसे अधिक प्रिय होवेंगे, आपका कुछ दिनोंका वास एक राजर्षिके साथ दिखाई देता है ॥६४॥

पुनस्ते मिथिलायात्रा भवित्री सह तेन वै ।
पथि काचिन्मुनेर्भार्य्या त्वया शापात्तरिष्यते ॥६५॥

पुनः उनके सहित आपकी श्रीमिथिला यात्रा होगी, उस समय मार्गमें आपके द्वारा एक मुनि-पत्नी शापसे मुक्ति (छुटकारा) प्राप्त करेगी ॥ ६५ ॥

मिथिलादर्शनं कृत्वा महानन्दं प्रयास्यसि ।
तत्र श्रीमिथिलेशेन सङ्गमस्त्वद्भविष्यति ॥६६॥

श्रीमिथिलाजीका दर्शन करके, आपको महान् आनन्द प्राप्त होगा, वहाँ श्रीमिथिलेशजीमहाराज से आपका मिलन होगा ॥ ६६ ॥

दर्शनार्थं पुरीं तस्य सानुजस्त्वं प्रयास्यसि ।
तत्रस्थवासिनां वत्स ! प्रेमपात्रं भविष्यसि ॥६७॥

हे वत्स ! पुनः अपने छोटे भइयाके सहित आप पुरीका दर्शन करने पधारेंगे, जिससे उन पुरी-निवासियोंके आप प्रेमपात्र बन जावेंगे ॥ ६७ ॥

पुत्रीं जनकराजस्य समुद्रतनयामिव ।
दृष्ट्वा त्वं वाटिका मध्ये ऽयिष्यसे कृतकृत्यताम् ॥६८॥

फुलवारीमें श्रीलक्ष्मीजीके समान सर्वलक्षण-सम्पन्ना श्रीजनकराजकिशोरीजीका दर्शन करके आप कृतकृत्य हो जावेंगे ॥ ६८ ॥

उद्वाहोऽपि तया सार्द्धं धनुर्भङ्गे भविष्यति ।
दर्शनं जामदग्न्यस्य सरोषस्य करिष्यसि ॥६९॥

धनुष टूट जाने पर उन्हीं श्रीजनकलड़ैतीजूके साथ आपका विवाह भी होगा पुनः क्रुद्ध हुये श्रीपरशुरामजीका आप दर्शन करेंगे ॥६९॥

पुनस्त्वं भ्रातृभिः पित्रा ससैन्यः पुरमेष्यसि ।
मैथिलीदर्शनं ते ऽद्य लिखितं पद्मयोनिना ॥७०॥

पुनः अपने भाइयोंके सहित पिताजीके साथ, सेना समेत आप श्रीअवधमें पधारेंगे, विधाताने आपके लिये श्रीमिथिलेशललीजू का दर्शन होना आज ही लिखा है ॥७०॥

श्रीप्रमोदवनस्यापि मिथिलागमनं ध्रुवम् ।
दृश्यते भवितव्यं च त्वया ऽद्य नृपनन्दन ! ॥७१॥

हे नृपनन्दन (श्रीदशरथजी महाराजीको आनन्द प्रदान करने वाले) श्रीराम भद्रजू ! आपके सहित श्रीप्रमोदवनका मिथिला-गमन भी आज अवश्य होना ही दिखाई, पड़ रहा ॥७१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं समाभाष्य नरेन्द्रसूनुं ज्योतिर्विदां मान्यतमो द्विजेन्द्रः ।
गाढं तमाश्लिष्य हृदा मनोज्ञं यथेप्सितं मार्गमथार्चितोऽगात् ॥७२॥

इत्यष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोले:-हे प्रिये ! इस प्रकार ज्योतिः शास्त्र जानने वालोंमें सम्माननीय उस ब्राह्मणने श्रेष्ठ श्रीचक्रवर्तीकुमारजीसे सब भविष्य कहकर तथा उन मनोहरण-सरकारको भर इच्छा अपने हृदयसे लगाकर, उनसे पूजित हो अपना इच्छित मार्ग लिया ॥७२॥

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

स्वप्नकी परीक्षाके लिये प्रमोदवन गये हुये श्रीरामभद्रजीको गुप्त रूपसे सखियोंका श्रीमिथिलाजीमें ले जाना तथा वहाँकी भूमिका सम्पर्क होते ही प्रसङ्गानुसार श्रीकिशोरीजीका स्मरण करके उनका विरहः–

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

उत्क्षिप्तं कन्दुकं स्निग्धाः पाणौ रोधयताञ्जसा।
इति शंसति वै तस्मिन् कौशल्या तमबोधयत् ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:–हे सखाओ! मेरे उछाले हुये गेंदको हाथमें रोक लो" स्वप्न में उन श्रीरामभद्रजूके इतना कहते ही, रहिरङ्गमें उन्हे श्रीकौशल्या अम्बाजीने जगा दिया ॥१॥

श्रीकौशल्योवाच।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मे वत्स! प्रातः सन्ध्या प्रवर्तते।
कृतकृत्य इहैह्याशु भ्रातृभिर्भोजनं कुरु ॥२॥

श्रीकौशल्या अम्बाजी बोलीं:–हे वत्स! अब उठो, उठो, प्रातः कालकी सन्ध्या वर्त रही है अतः प्रातः कालीन कृत्योंको पूरा करके, शीघ्र भवनमें आकर अपने भाइयोंके समेत भोजन कीजिये ॥२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

स विबुध्य महाबाहुर्नीलाम्भोजदलच्छविः।
वन्दित्वा चरणौ मातुर्नित्यकृत्ये मनोऽदधत् ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:–हे प्रिये! श्रीअम्बाजीके जगाने पर नीलकमलदलके समान श्याम छविसे युक्त, श्रीरामभद्रजू जागकर तथा श्रीअम्बाजीके चरणकमलोंको प्रणाम करके नित्य अपने मनको कृत्यमें लगा दिये ॥३॥

सायं सन्ध्योपकालेऽथ सस्मार द्विजभाषितम्।
श्रीप्रमोदवनस्यासौ गमनं मिथिलां प्रति ॥४॥

पुनः जब सायंकालकी सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ तब, आज "आपके सहित प्रमोद वनको श्रीमिथिलाजी अवश्य जाना होगा" स्वप्नमें ब्राह्मणके कहे हुये, इस वचनको वे स्मरण करने लगे ॥४॥

तस्मात्स प्रययौ शीघ्रं वनराजदिदृक्षया ।
गतं वा नेति निश्चेतुं विस्मयाकृष्टमानसः ॥५॥

उनके चित्तको आश्चर्यने खींच लिया, कि आज किस प्रकार प्रमोदवन श्रीमिथिलाजी जायेगा? क्योंकि, इसकी गणना तो स्थावरों में है यह, चेतनका व्यवहार कैसे करेगा? अत एव स्वप्नमेंजो ब्राह्मणने इस विषयमें कहा था सो झूठही है, क्योंकि उसने मेरे सहित प्रमोदवनको श्रीमिथिलाजी जानेका भविष्य बताया था सो मैं तो अपने राजमहलमें ही हूँ परन्तु, कहीं मेरा प्रमोद वनही अकेले न चला गया हो। ऐसा भाव आने पर श्रीप्रमोदवन श्रीमिथिलाजी गया या नहीं? यह निश्चय करनेके लिये श्रीरामभद्रजू उस प्रमोदवनको देखनेकी इच्छासे तुरत राज भवनसे चल दिये ॥ ५ ॥

विपिनं सुस्थितं दृष्ट्वा प्रजहर्ष रघूद्वहः ।
असत्यं स्वप्नमाज्ञाय विचचार यथा सुखम् ॥६॥

जब ये वहाँ पहुँचे, तो प्रमोदवनको ज्योंकानत्यों भली प्रकारसे स्थित देखकर श्रीरघुनन्दन प्यारेजीको बड़ा हर्ष हुआ और वे स्वप्नको असत्य (मिथ्या) समझकर, उसमें सुखपूर्वक टहलने लगे ॥६॥

तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्ताः शक्तयस्तन्निनीषया ।
दृष्ट्वा तं सवनं निन्युः स्वामिन्याः प्रीतिकाम्यया ॥७॥

उसी क्षण वहाँ पर श्रीचन्द्रकलाजीकी भेजी हुई शक्तियाँ, श्रीरामभद्रजूको श्रीमिथिलाजी ले जानेकी इच्छासे वहाँ पहुँच गयीं और वहाँ टहलते हुये देखकर श्रीचन्द्रकलाजीकी प्रसन्नताके लिये उन श्रीरामलालजीको प्रमोदवनके सहित, लेकर चल पड़ीं ॥७॥

मिथिलाभूमिसम्पर्काद्वल्लभाया ह्यनुस्मृतिः ।
तारुण्यं सम्यगासाद्य हृदयं तत्तुतोद ह ॥८॥

श्रीप्रमोदवनकी भूमिका श्रीमिथिलाजीकी भूमिसे सम्पर्क (मिलन) होते ही श्रीरामभद्रजूको श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूका बारम्बारका स्मरण, नवीनताको प्राप्तहो उनके हृदयको व्यथित करने लगा ८

तस्माच्चिन्तासमापन्नः स्थित्वा स च शिलोपरि ।
ध्यायमानः प्रियां चित्ते जगादात्मानमात्मना ॥९॥

इस लिये चिन्तित, हो शिला पर विराजमान हुये वे श्रीरामभद्रजू चित्तमें अपनी श्रीप्रियाजूका ध्यान करते हुये स्वयं अपने आपसे बोले ॥९।

श्रीराम उवाच ।

चिरकालेन मे तस्या दर्शनं नैव लभ्यते ।
मिथिलासंप्रजाया हि वल्लभाया महाद्युतेः ॥१०॥

श्रीमिथिलाजीमें अवतीर्ण ब्रह्ममय कान्तिवाली हुई श्रीप्रियाजूका मुझे बहुत समयसे दर्शन नहीं प्राप्त हो रहा है ॥१०॥

हा विधातर्न वै कश्चिद् दृश्यते यन्त्रतन्त्रकृत् ।
प्रापयेत्प्रियया यो मां तृषार्त्तमिव वारिणा ॥११॥

हे विधाता ! यन्त्र-तन्त्र करने वाला भी मुझे कोई ऐसा नहीं दिखाई देता, जो प्यासेको जलके समान मुझे श्रीप्रियाजूसे मिला दे ॥११॥

तामदृष्ट्वा मनो मेऽद्य प्रवृत्तिं नाधिगच्छति ।
कस्मिंश्चिदपि कर्त्तव्ये मुह्यमानं शनैः शनैः ॥१२॥

आज बिना श्रीप्रियाजूका प्रत्यक्ष दर्शन किये धीरे-धीरे मूर्च्छाको प्राप्त होता हुआ मेरा मन किसीभी कार्यमें प्रवृत्त नहीं हो रहा है ॥१२॥

विलम्बो मे भवत्यत्र न गन्तुं शक्तिरालयम् ।

तीक्षमाणस्य प्रियासमागमं प्रतिक्षणं मेऽद्य गतश्च वासरः।
ा सा मृगीशावकसाञ्जनेक्षणा परन्तु मे दृष्टिपथं गता विधे ! ॥१६॥

याजूके मिलनकी क्षण क्षण प्रतीक्षा करते हुये आज मुझे सारा दिन व्यतीत हो गया
विधाता ! मृगी (हरिणी) के बच्चेके समान विशाल, श्याम चञ्चल, अञ्जित लोचना
ाजू का मुझे दर्शन नहीं हुआ ॥१६॥

तया विना पूर्णशशाङ्कमुख्या सुखाय मे नो वनराजमेतत्।
न सार्वभौमत्वसुखं सुखाय न चाप्ययोध्या सुखदायिनी मे ॥१७॥

द्रमाके समान प्रकाशमान, आह्लादकारी मुखवाली उन श्रीप्रियाजूके बिना, न यह वनोंका
प्रमोदवन ही मुझे सुख दाई है, न चक्रवर्ती पदका सुख हो मेरे लिये सुखद है, न यह
याजी ही मुझे सुख देने वाली है ॥१७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

एवं च सस्मृत्य मुहुर्मुहुस्तां भावानुसारी भगवान् स रामः।
सबाष्पनेत्रो विललाप तत्र प्राणेश्वरीदर्शनकामसक्तः ॥१८॥

गियोंके अन्तस्करणमें रमण करनेवाले, सम्पूर्ण ऐश्वर्य, समग्रतेज, सकल यश, समस्त
अशेष ज्ञान व सम्पूर्ण वैराग्यके निधि वे श्रीरामभद्रजू, भावके अनुसार आचरण शील होनेके
श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके भावानुसार ही उनका इस प्रकारसे बारम्बार स्मरण करके तथा उन्हीं
। (प्राणप्रिया) जूके दर्शनोंकी इच्छामें आसक्त हो, नेत्रोंसे आँसुओंको बहाते हुये उसी
बैठकर विलाप करने लगे ॥१८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अरालकेशान्वितचन्द्रवक्त्रं सवारिपङ्केरुहपत्रनेत्रम् ।
बिम्बाधरं नीलसरोजकान्तिं सचिन्तमालोक्य न कस्तताप ॥२१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी ! महाराज बोलेः—हे प्रिये ! घुँघुराले केशोंसे युक्त, चन्द्रवत् आह्लादकारी मुख, कमलदलके समान विशाल आँसू भरे नेत्र, बिम्बाफलके सदृश सुन्दर लाल अधर, नीले कमलके समान श्रीअङ्गकी कान्ति वाले श्रीराम-भद्रजू को चिन्तासे युक्त देखकर, भला किसे नहीं दुःख हुआ ? अर्थात् सभी व्याकुल हो गये ॥२१॥

पुस्फोर वामेतरकञ्जनेत्रं भुजश्च तीव्रं प्रियसूचनायै ।
धैर्यं समालभ्य ततः स किञ्चिद्यप्राप्यमाज्ञाय हताश आस ॥२२॥

इत्येकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

उसी क्षण प्रियसूचना देनेके लिये उनका दाहिना नेत्र व दाहिनी भुजा वेगसे फड़कने लगी । उन शुभ शकुनसे वे कुछ धैर्य को प्राप्त होकर, श्रीविदेहराजनन्दिनीजूका दर्शन अप्राप्य (न प्राप्त होने वाला) समझ कर हताश हो गये अर्थात् उनका दर्शन हमें आज नहीं हो सकता, ऐसी भावना कर लिये क्योंकि वे विचारते हैं—कहाँ श्रीमिथिलाजी और कहाँ श्रीअयोध्याजी ? पहुँचनेमें जहाँ कई दिनोंकी आवश्यकता है वहाँ एक दिनका भी समय नहीं है, शाम होने जारही है अत एव मैं तो किसी प्रकारसे भी आज श्रीमिथिलाजी नहीं पहुँच सकता, और श्रीप्रियाजूका यहाँ पधारना असम्भव ही है अत एव आशा करना ही व्यर्थ है, यह आकाश वाणी भी केवल मेरी सान्त्वनाके लिये ही हुई है, पर इसका कोई तथ्य नहीं है ॥२२॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

श्रीरामभद्र-श्रीचन्द्रकलासखी-सम्वाद—

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

शक्तयोऽपि ततो गत्वा नत्वा चन्द्रकलां सखीम् ।
आनीतो रामभद्रोऽसावित्याभाष्य नताः स्थिताः ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोलेः—हे प्रिये ! उधर वे शक्तियाँ भी प्रमोदवनसे श्रीकनकभवनके पास जाकर श्रीचन्द्रकला सखीके पास गयीं प्रणाम करके तथा उनसे हमलोग श्रीरामभद्रजीको ले आई हैं, ऐसा कहकर नम्रता पूर्वक खड़ी हो गयीं ॥१॥

स क्वास्ते कथमानीत इत्युक्ता जगदुश्च ताः ।
विचरन्वनराजे स्वे ह्यानीतः सवनः प्रभुः ॥२॥

पुनः वे प्यारे श्रीरामभद्रजू कहाँ हैं ? और उन्हें किस प्रकार यहाँ लाईं ? इस प्रकार श्रीचन्द्रकलाजीके पूछने पर वे बोलीं:-श्रीप्रमोदवनमें विचरते हुये, उन सर्वसमर्थ श्रीरामभद्रजीको प्रमोदवनसे हम लोग यहाँ ले आई हैं ॥२॥

नीलेन्दीवरभव्याङ्गो हिमांशुप्रतिमाननः ।
खञ्जनाक्षो बृहद्वक्षा अरुणोष्ठः स्मिताधरः ॥३॥

वे नीले कमलके समान सुन्दर श्याम अङ्ग व चन्द्रमाके सदृश सुन्दर मुखारविन्द, खञ्जनपक्षी के समान चञ्चल नयन, चौड़े वक्षस्थल, लाल ओठ व मुस्कान युक्त अधर वाले ॥३॥

सालकादर्शगण्डश्रीः साक्षादिव मनोभवः ।
सन्निधौ श्रीवनस्यास्य सवनः स विराजते ॥४॥

अलकावलीसे युक्त, दर्पणके समान स्वच्छ कपोलोंकी शोभासे सम्पन्न, साक्षात् कामदेवके समान वे श्रीरामभद्रजू अपने प्रमोद-वनके सहित इस कञ्चनवनके समीपमें विराज रहे हैं ॥४॥

इत्युक्त्वा तास्तयाऽऽज्ञप्ता अन्तर्धानमगुर्द्रुतम् ।
प्राप सेन्दुकला शीघ्रं श्रीप्रमोदवनं प्रति ॥ ५ ॥

वे शक्तियाँ ऐसा कहकर श्रीचन्द्रकलाजीकी आज्ञा ले तुरत अन्तर्धान होगयीं और वे श्रीचन्द्रकलाजी शीघ्र ही श्रीप्रमोदवनमें पहुँची ॥५॥

तस्मिन्प्रविश्य चिन्वन्ती प्रतिकुञ्जेषु राघवम् ।
आससाद शिलापृष्ठे निविष्टमिव योगिनम् ॥६॥

उस प्रमोद वनमें प्रवेश करके, वहाँकी प्रत्येक कुञ्जोंमें खोजती हुई, उन्होंने शिलाके ऊपर योगीके समान बैठे हुये, उन श्रीरामभद्रजूका दर्शन किया ॥६॥

पादन्यासध्वनिं तस्याः श्रुत्वा राघवसुन्दरः ।
उत्तस्थौ युगपद्धृष्टः प्रेष्ठागमनशङ्कितः ॥७॥

श्रीचन्द्रकलाजीके पास पहुँचने पर, उनके चरण रखनेका शब्द सुनकर रघुवंशियोंमें सर्वसुन्दर श्रीरामभद्रजू, प्रिया श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके पधारनेकी शङ्कासे युक्त हो झटपट हर्षपूर्वक उठ खड़े हुये ।७॥

अनिमेषेक्षणौ तौ च क्षणं तत्र बभूवतुः ।
ततो धैर्यमुपालम्ब्य राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥८॥

ये दोनों क्षण-मात्रके लिये परस्पर एक दूसरे का दर्शन करते हुये पलक रहितसे नेत्र वाले हो गये अर्थात् एक-टक दर्शन करते ही रह गये। पुनः जब यह निश्चय हो गया, कि ये वे श्रीविदेहराज-नन्दिनीजू नहीं हैं, यह तो कोई और ही सुन्दरी है, तब धैर्य धारण करके श्रीरामभद्रजू, श्रीचन्द्रकला-जीसे यह वचन बोले:- ॥८॥

श्रीराम उवाच ।

काऽसि त्वं श्यामकञ्जाक्षी कस्मात्कुत्रनिवासिनी ।
संप्राप्ता मत्सकाशं हि रहसीवाभिसारिका ॥९॥

अरी सखी! श्याम कमलके समान सुन्दरनेत्र वाली आप कौन हैं? कहाँकी रहने वाली हैं? और प्रियतम कीखोजमें व्याकुल स्त्रीके समान किस कारणसे, मेरे पास एकान्तमें आई हो॥९॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

त्वमसि कस्तनयो ननु कस्य वै वससि कुत्र कुतोऽत्र समागतः ।
प्रवरराजकुमारवदीक्षया प्रिय ! विभासि सरोजदलेक्षण ! ॥१०॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं-हे प्यारे! आप कौन हैं? और किनके पुत्र हैं? तथा कहाँ निवास करते हैं? यहाँ किस लिये पधारे हैं? हे कमलनयन! देखनेसे तो आप कोई बहुत बड़े राजकुमार प्रतीत हो रहे हैं ॥१०॥

न तु नरेन्द्रसुता हि भवादृशो ह्यनुचरै रहिताः परराष्ट्रकम् ।
परिविशन्ति विहारवनं कुतस्तदनवाप्यनिदेशमिति प्रथा ॥११॥

परन्तु आपके सरीखे राजकुमार, बिना अनुचरोंको साथ लिये और बिना आज्ञा प्राप्त किये दूसरे राजाके राज्यमें भी प्रवेश नहीं करते हैं, फिर बिना आज्ञा, उनके विहारवनमें भला कैसे प्रवेश कर सकते हैं? प्रथा (प्रसिद्धि) तो ऐसी ही है ॥११॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

चकित आह स पङ्क्तिरथात्मजः कमललोचन इन्दुनिभाननः ।
जनकराजसुताप्रियकाङ्क्षिणीमिनकुलाब्जविभाकरभास्वरः ॥१२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले—हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजीके इन वचनोंको सुनकर चन्द्रमाके समान हृदयाह्लादक मुख व कमलके समान सुन्दर विशालनेत्र, अपने पवित्र यश रूपी सूर्यसे सूर्यवंश-रूपी कमलको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्य स्वरूप, दशरथ नन्दन श्रीरामभद्रजूश्रीजनकराज-दुलारीजूका प्रिय चाहने वाली, श्रीचन्द्रकलाजीसे बोले ॥१२॥

श्रीराम उवाच ।

सुमुखि ! मे किमिदं परिकथ्यते यत समुन्मदयेव वचस्त्वया ।
यत इयं हि पुरी मम वर्त्तते वनमिदं च प्रमोदसुसञ्ज्ञकम् ॥१३॥

अरी सुन्दरमुख वाली सखी ! तू पूर्ण पागल हुई सी,मुझसे यह क्या बात कह रही है ? क्योंकि मेरी यह श्रीअयोध्या पुरी है और प्रमोद नाम का यह हमारा वन भी है तब तू क्यों दूसरेके राज्यमें ही नहीं, अपितु विहारवनमें आने का हमें मिथ्या कलङ्क लगा रही है, अत एव तू अवश्य पागल हो गयी सी प्रतीत हो रही है ॥१३॥

त्वमसिका ? मिथिलापुरवासिनी सखि ! किमर्थमिहास्य दिदृक्षया ।
त्वमसि कः ? प्रिय ! पङ्क्तिरथात्मजः क नु ? प्रमोदवने निज आस्थितः॥१४॥

प्रश्न—अरी सखी ! दूसरे राजके राज्य व विहार बनमें बिना आज्ञा आनेका हमें
मिथ्या कलङ्क लगाने वाली आप कौन हैं ? उत्तर—श्रीमिथिला पुर निवासिनी ।
प्रश्न—यहाँ किस लिये (आई हैं) ? उत्तर—इस कञ्चनबनको देखनेके लिये ।
प्रश्न—श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं—अच्छा अब बताइये- आप कौन हैं ?
उत्तर—श्रीदशरथजी महाराजके पुत्र राम ।
प्रश्न—आप इस समय कहाँ विराज रहे हैं ? उत्तर—अपने श्रीप्रमोदवनमें ॥१४॥

त्वमसि कुत्र ? वने कनकाह्वये नगरमस्ति तु कस्य ? पितुर्मम ।
नगरनाम च किं मिथिलाभिधं तदहमस्मि च कुत्र ? पुरे मम ॥१५॥

प्रश्न—अच्छा सखी ! इस समय तुम कहाँ विराज रही हो ? उत्तर—श्रीकञ्चनबनमें ।
प्रश्न—यह नगर किसका है ? उत्तर—हमारे श्रीपिताजी का ।
प्रश्न—इस नगर का नाम क्या है ? उत्तर—श्रीमिथिलाजी ।
प्रश्न—तो मैं कहाँ हूँ ? उत्तर—मेरीश्रीमिथिला पुरीमें ॥१५॥

श्रीराम उवाच ।

शशिमुखि ! त्वमसत्यमपीदृशं वदसि हन्त समेत्य पुरं मम ।
जगति नापरपापमिवानृतं व्रज यथेष्टमितो विपिनान्मम ॥१६॥

श्रीचन्द्रकलाजीके इन प्रश्नोत्तरों को सुनकर श्रीरामभद्रजू बोले-हे चन्द्रमुखी ! बहुत खेदकी बात है, जो आप मेरी श्रीअयोध्यापुरीमें आकर इस प्रकारसे झूठ बोल रही हैं। देखिये जगतमें झूठ बोलनेके समान और कोई पाप नहीं है, अत एव आप मेरे प्रमोदवनसे जहाँ चाहें चली जावें ॥१६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

नवललाल ! मृषा त्वमपीदृशं भणसि चौरवदेत्य वनं मम ।
तदुचितं न करोषि नृपात्मज ! प्रभुतया परिहासमुपैष्यसि ॥१७॥

श्रीरामभद्रजूके इन वचनोंको सुनकर श्रीचन्द्रकलाजी उनसे बोलीं:-हे श्रीनवललालजू ! चोरके समान हमारे विहार-वनमें आकर आप इस प्रकार झूठ बोल रहे हैं। हे श्रीराजपुत्रजू ! यह आप उचित नहीं कर रहे हैं। यदि यहाँ अपनी प्रभुता दिखायेंगे, तो केवल उपहासको ही प्राप्त होंगे और वश कुछ भी न चलेगा ॥१७

श्रीराम उवाच ।

सुमुखि चौरपदेन तु मां कथं त्वमभिभूषयसे तदनर्थकृत् ।
व्रज मया न तु वै परिदण्ड्यसे ह्यविनयं न सहे तदतः परम् ॥१८॥

श्रीचन्द्रकलाजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीरामभद्रजू बोलेः-अरी सुमुखी ! अहो आप मुझको चोरके पदसे किस प्रकार विभूषित कर रही हैं यह बात आपकी अनर्थकृत (हानिकारक) है अब भी आप यहाँसे चली जावें, नहीं तो दण्ड पावेंगी, क्योंकि इससे अधिक ढिठाई अब मैं सहन नहीं कर सकता हूँ ॥१८॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

त्वमसि किं मम देशनराधिपो ह्यनुचितं कथितं प्रिय ! मन्यसे ।
यदि वनं खलु चास्ति तवैव तन्निजपुरीमनुदर्शय मे द्रुतम् १९॥

श्रीरामभद्रजूके इन वचनोंको सुनकर श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:-हे प्यारे ! क्या आप मेरे देशके राजा हैं ? जो मेरे कहेको अनुचित मान रहे हैं, यदि आपका ठीक ही यह श्रीप्रमोद-वन है, तो हमें शीघ्र अपनी श्रीअयोध्याजीका दर्शन कराइये ॥१९॥

"हमारा प्रमोद वन है" इस बातका खण्डन करनेके लिये श्रीचन्द्रकलाजी प्यारे श्रीरामभद्रजीको सीमाके बाहर ले जाकर अपनी श्रीमिथिलाजीका दृश्य दिखाकर कह रही हैं—"क्या यही आपकी श्रीअयोध्याजी है ?"

अपि तवैव पुरी प्रिय ! चेद्भवेदनुसरामि सदा तव दास्यताम् ।
मम पुरी नृपनन्दन ! चेत्तदा मम वशो भवितव्यमिह त्वया ॥२०॥

हे प्यारे ! यदि ठीक ही यह आपकी पुरी श्रीअयोध्याजी हुई, तो मैं सदा आपकी दासी होकर रहूंगी और हे श्रीनृप (चक्रवर्तीजी)को आनन्द-प्रदान करने वाले प्यारेजू ! यदि यह पुरी कदाचित् मेरी ही हुई तो आपको भी सदा मेरे अधीन होकर रहना पड़ेगा ॥२०॥

श्रीशिव उवाच ।

वच इदं गिरिजे ! वनजेक्षणः श्रुतिगतं च विधाय रघूद्वहः ।
सकलवादविवादनिकृन्तनं विधुमुखीवदनोद्गलितं जगौ ॥२१॥

भगवानशिवजी बोले:-हे श्रीपार्वतीजी ! कमल-नयन श्रीरघुनन्दनप्यारेजू चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मनोहर मुखवाली श्रीचन्द्रकलाजीके मुखारविन्दसे सारे वाद विवादको खण्डन करनेवाले निकले हुये इन वचनोंको श्रवण करके बोले :-॥२१॥

श्रीराम उवाच ।

चल पुरीं मम पश्य मनोहरां क्वथमियं तव दर्शय शोभने !
यदि तवैव पुरी तव वश्यतामहमुपैमि न चेत्त्वमपीह मे ॥२२॥

अरी सुन्दरी ! चल, देख, मेरी मनको हरण करने वाली पुरी (श्रीअयोध्याजी) यह तुम्हारी पुरी (श्रीमिथिलाजी) कैसे है ? दिखाओ ! यदि कदाचित् यह तुम्हारी ही पुरी श्रीमिथिलाजी हुई, तो मैं तुम्हारे अधीन होकर रहूँगा, नहीं तो तुम्हें सदा मेरी दासी होकर रहना पड़ेगा ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति निगद्य मिथो वनराजतो बहिरुपेयतुरात्मजिगीषया ।
रघुकुलेनमुवाच मृदुस्मिता तव पुरीयमहो प्रिय ! कथ्यताम् ॥२३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोले:-हे प्रिये ! इस प्रकार वे दोनों श्रीरामभद्र व श्रीचन्द्रकलाजी आपसमें वचन-बद्ध होकर अपनी २ पुरीका दर्शन कराके, विजय पानेकी इच्छासे श्रीप्रमोद-वनसे बाहर प्राप्त हुये । तब मन्द-मन्द मुस्कराती हुई श्रीचन्द्रकलाजी रघुकुलको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले उन श्रीरामभद्रजूसे बोलीं:- हे प्यारे ! कहिये आपकी यह पुरी श्रीअयोध्याजी है ? ॥२३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

भृशमगात्स तु विस्मयतां स्थितः समवलोक्य तदा मिथिलापुरीम् ।
नतसरोजदलायतलोचनो मम न चेयमिदं समुवाच ताम् ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये ! श्रीप्रमोदवनसे बाहर स्थित होकर श्रीमिथिलाजी का भली भांतिसे दर्शन करके, अपने कमलदलके समान सुन्दर विशाल नेत्रों को नीचे किये वे श्रीचन्द्रकलाजीसे यह बोले– अरी सखी ! यह मेरी पुरी श्रीअयोध्याजी नहीं है ॥२४॥

कथमिहागममित्यनुशंस मे सवन आलि ! वने तव चित्रवत् ।
त्वमसि का ननु शंस यथातथं तव चिराय वशं गतवानहम् ॥२५॥

अरी सखी ! आप मुझे यह बतलाइये-मैं चित्र (फोटू)के समान आपके श्रीकुञ्जवनमें श्रीप्रमोद-वनके सहित किस प्रकार आ गया ? और यह भी बताइये, आप वास्तवमें हैं कौन ? (प्रतिज्ञानुसार) मैं सदाके लिये आपके अधीन हो गया ॥२५॥

सखि ! यथा मिथिलापुरवासिनां विदितमस्तु ममागमनं न हि ।
सकरुणा मयि बद्धकराञ्जलौ त्वमसि सत्यमुपायविदग्रणीः ॥२६॥

अरी सखी ! आप वास्तवमें सब उपायोंके जानने वालियोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, इस लिये मुझ हाथ जोड़े हुये पर आप कृपायुक्त हो ऐसा उपाय करें, जिससे श्रीमिथिला निवासियों को मेरे यहाँ आने का पता न चले ॥२६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति निशम्य मनोहरभाषितं स्मितमुखी तमथेन्दुकलाऽब्रवीत् ।
सकलमेव रहस्यमुदारधीर्वनमवाप्तिविधेः खलु तस्य सा ॥२७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये ! इस प्रकार मनहरण प्यारे श्रीरामभद्रजूके द्वारा कहे हुये वचनोंको सुनकर,सुन्दर मुस्कान युक्त मुखवाली, उदारबुद्धि श्रीचन्द्रकलाजीने उन श्रीरामभद्रजूसे अपने कुञ्जवनमें, उनके आनेके सम्पूर्ण रहस्यको कह सुनाया ॥२७॥

पुनरुवाच शृणु प्रिय ! तत्त्वतो यदनुपृच्छसि निश्चलचेतसा ।
दुहितुरस्मि सखी मिथिलापतेरभिधया किल चन्द्रकला स्मृता ॥२८॥

पुनः बोलीं:–हे प्यारे ! आप जो पूछ रहे हैं, उसे एकाग्रचित्तसे श्रवण कीजिये, मैं वास्तवमें श्रीमिथिलेशदुलारीजीकी सखी चन्द्रकला नामसे प्रसिद्ध हूँ ॥२८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

स निजगाद यदि त्वमसि ध्रुवं जितरते ! मिथिलेशसुतासखी ।
शरणमस्मि गतः पदपङ्कजं सपदि सुन्दरि ! दर्शय मे हि ताम् ॥२९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोलेः–हे प्रिये! श्रीचन्द्रकलाजीके मुखसे सब वृतान्त व उनका परिचय सुनकर श्रीरामभद्रजू बोलेः–अपनी शोभासे रतिको परास्त करनेवाली हे श्रीचन्द्रकलाजी! यदि आप वास्तवमें श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूकी सखी हैं, तो मैं आपके चरण-कमलोंकी शरण हूँ, अरी सुन्दरी! मुझे उन श्रीकिशोरीजीका शीघ्र दर्शन करादें ॥२९॥

गमय मामसुया सखि! सत्वरं विरहवह्निसमाकुलचेतसम्।
त्वरयतो मम लोचन ईक्षितुं नृपसुतामलचन्द्रनिभाननम् ॥३०॥

अरी सखी! मेरे नेत्र उनके स्वच्छ चन्द्रमाके समान आह्लादकारी मुखारविन्दके दर्शनोंके लिये बड़ी शीघ्रता कर रहे हैं, इस लिये विरह रूपी-अग्निसे मुझ व्याकुल चित्तको उन श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजूसे शीघ्र मिलादें ॥३०॥

श्रीचन्द्रकलोवाच।

भुवनसुन्दर! दास्यसि किं हि मे तदनुशंस हितं करवाणि ते।
यदपि कार्यमिदं भृशदुष्करं त्वमपि वेद तदम्बुजलोचन! ॥३१॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:–हे भुवनसुन्दर (सारे विश्वकी सुन्दरताके पुञ्ज), कमलनयन प्यारे! यद्यपि यह आप स्वयं ही जानते हैं, कि यह (श्रीप्रियाजूसे मिलानेका) कार्य बहुत ही दुष्कर (कठिन) है, फिर भी यदि मैं उसे कर दिखाऊँ तो आप मुझे क्या पुरस्कार देंगे? सो कहिये मैं अवश्य आपका हित करूँगी अर्थात् आपको श्रीकिशोरीजूसे मिला दूँगी ॥३१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

वच इदं श्रुतिगं स विधाय तां प्रति जगाद रघोः कुलभूषणः।
सखि! मनोधनमेव दिशामि ते परमगोप्यमदेयमहं निजम् ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोलेः–हे प्रिये! श्रीचन्द्रकलाजूके इन वचनोंको सुनकर रघुकुलको भूषणके सदृश सुशोभित करनेवाले वे श्रीरामभद्रजू उनके प्रति बोलेः–अरी सखी! श्रीप्रियाजूके दर्शन करानेके प्रत्युपकारमें और तुम्हें लौकिक क्या वस्तु दूं? अत एव अत्यन्त छिपाने और न देने योग्य मैं अपने मन रूपी धनको ही तुम्हें प्रदान करता हूँ ॥३२॥

कलुषरूपमपीह तवाश्रितं न हि हिनोमि नयामि निजं पदम्।
तव कृपावलहीननरः क्वचित्कथमपीह न चेष्यति यन्मम ॥३३॥

अरी सखी! इस जगत्में आपका आश्रित यदि पापकी मूर्त्ति भी होगा, तो भी मैं उसे नहीं

त्याग करूँगा, बल्कि अपने उस दिव्य धामको ले जाऊँगा जिसे आपकी कृपा रूपी बलसे रहित प्राणी भी कभी किसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता ॥३३॥

यमनुपश्यसि सार्द्रदृशा सखि ! प्रभविता स च मे परमप्रियः ।
वरमिदं प्रदिशामि च ते सुखं न च मृषा त्वमवेहि मयोदितम् ॥३४॥

अरी सखी ! आप दयापूर्ण दृष्टिसे, जिस जीव को भी देख लेंगी वह मुझे परम प्रिय हो जावेगा । यह वरदान, मैं तुम्हें सुखपूर्वक प्रदान कर रहा हूँ, मेरे इस कथनको तुम असत्य न जानना ॥३४॥

चन्द्रकले ! कृपया न विलम्बय दर्शय मे दयितानन्चन्द्रं
धैर्यमपेति मनो मम सीदति वीक्ष्य परीं मिथिलां निजदृष्ट्या ।
हा चिरकालमतीतमिह स्वदृशाऽनवलोक्य भजत्सुखकामां
भाग्यवशात्कृपया तव सुन्दरि ! दर्शनमाप्तममोघमिदं ते ॥३५॥

हे श्रीचन्द्रकलाजी ! कृपा करके अब विलम्ब न करें, श्रीकिशोरीजूके मुखचन्द्रका दर्शन हमें शीघ्र कराइये, क्योंकि अपनी आँखोंसे अब श्रीमिथिलाजीका दर्शन करके मेरा मन उनके दर्शनों के लिये व्याकुल हो धैर्यको छोड़ रहा है । हा केवल भक्तोंके ही एक सुखकी इच्छा रखने वाली उन श्रीकिशोरीजूका अपने नेत्रोंसे दर्शन किये हुये बहुत समय व्यतीत हो गया । हे सुन्दरी ! सौभाग्य वश तथा आपकी कृपासे ही यह आपका अमोघ दर्शन मुझे प्राप्त हुआ है ॥३५॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

धैर्यमुपेहि किशोर ! शुभेक्षण ! मद्विनयं शृणु चेति शुचो मा ।
स्यात्तु यथाऽपि करोमि तथा मनसेप्सितपूर्तिमहं प्रतिजाने ॥
शीघ्रमितो ह्यधिगम्य निवेद्य तवागमनं मिथिलेशसुतायै
त्वां गमयामि तयाऽऽशु मयोदितमेतदृतं प्रिय ! विद्धि सुयुक्त्या ॥३६॥

इतिपष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

प्यारेके करुणारसपूर्ण, अतिविनीत वचनोंको सुनकर श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं—हे सुन्दरनयन प्यारे श्रीराजकिशोरजी ! धैर्य धारण करें, चिन्ता न करें और मेरी प्रार्थनाको श्रवण करें—मैं प्रतिज्ञा करती हूँ जिस उपायसे आपका मनोरथ सफल होगा, वह मैं अवश्य करूँगी । अब मैं यहाँ से शीघ्र जाकर आपके शुभागमनकी सूचना श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूको देकर, सुन्दर युक्ति-पूर्वक उनसे शीघ्रही आपका मिलन कराऊँगी, यह मेरा कहा हुआ आप सत्य जानिये ॥ ३६ ॥

अथैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

श्रीकिशोरीजीके द्वारा श्रीचन्द्रकलाजीकी वर-प्राप्ति तथा श्रीसीताराम-मिलन–

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य त्वरितं वायुवेगतः ।
आययौ यत्र वैदेही सेव्यमाना सखीजनैः ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजी इस प्रकार श्रीरामभद्रजूसे सान्त्वना-मय वचन कहकर, तुरत वायुके समान वेगसे जहाँ सखियोंसे सेवित श्रीविदेहराजनन्दिनीजू देहकी सुधि भुलाये हुई प्यारेके ध्यानमें तल्लीन होकर विराजमान थीं, वहाँ पहुँचीं ॥ १ ॥

तां दृष्ट्वा विह्वला प्राह नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ।
समाधायात्मनाऽऽत्मानं प्रश्रयेण क्षितेः सुताम् ॥२॥

श्रीचन्द्रकलाजी श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूकी उस विरहपूर्ण अवस्थाको देखकर स्वयं विह्वल हो गयीं, पुनः अपने चित्तको विचार द्वारा सावधान करके, हाथ जोड़कर, बड़ी ही नम्रता-पूर्वक प्रणाम करके उन श्रीभूमिनन्दिनीजूसे बोलीं ॥ २ ॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

आनीतो रघुवंशेनो मयेन्दुप्रियदर्शनः ।
त्वद्वियोगाग्निसंतप्तस्त्वामसौ द्रष्टुमर्हति ॥३॥

चन्द्रमाके समान प्रियदर्शन श्रीप्राणप्यारेजूको मैं ले आई। इस समय वे आपके विरह-रूपी अग्निसे अत्यन्त तपे हुये हैं अत एव उन्हें आपका दर्शन अवश्य प्राप्त होना चाहिये ॥ ३ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

कान्तागमनमाकर्ण्य प्रसन्नमुखपङ्कजा ।
प्रशशंस विशालाक्षी बहुशस्तां पिकस्वना ॥४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू, प्यारेका शुभागमन सुनकर प्रसन्न मुखवाली हो गयीं अर्थात् उनका मुख प्रसन्न हो गया और वे अपनी कोयलके समान रसीली वाणीके द्वारा उन श्रीचन्द्रकलाजूकी बहुत बहुत प्रशंसा करने लगीं:– ॥ ४ ॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अहो आलि ! महाबुद्धे ! कृतं ते कर्म दुष्करम् ।
प्रीताऽस्मि ते भृशं तस्माद्वरं ब्रूहि सुदुर्लभम् ॥५॥

श्रीकिशोरीजी बोलीं-हे विशालबुद्धिसम्पन्ने ! सखी ! आपने यह बड़ा ही दुष्कर (कठिन) कार्य किया है अतएव आपके प्रति मैं बहुत प्रसन्न हूँ, आप दुर्लभसे दुर्लभ वरदान माँग लीजिये ५

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

प्रत्युवाच वचस्तस्या निशम्य मधुराक्षरम् ।
चन्द्रभानुसुता सा ऽऽत्मश्लाघासङ्कुचितेक्षणा ॥६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोले:-हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके बड़े मनोहर अक्षरोंसे युक्त इस वचनको सुनकर, अपनी प्रशंसासे सङ्कोच युक्त नेत्रवाली वे श्रीचन्द्रभानु-दुलारी श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं :-॥६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

दुष्करं किं कृतं कर्म प्रसन्नायां त्वयि प्रिये ! ।
यस्या भ्रूभङ्गमात्रेण ब्रह्माण्डानां भवाप्ययौ ॥७॥

हे श्रीप्रियाजू ! जिनके भौंह मात्र घुमा देनेसे ही अत्यन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति व प्रलय होता है, उन आपके प्रसन्न होने पर, भला यह कौनसा मैंने दुष्कर (कठिन) कार्य किया है ॥७॥

यदि दित्ससि मे नूनं कृपया वरमीप्सितम् ।
सदा प्रीतिकरं देहि स्वभावं करुणानिधे ! ॥८॥

हे करुणानिधे ! श्रीकिशोरीजी ! यदि आप अपनी सहज कृपावश मुझे वर निश्चय ही देना चाहती हैं, तो सदैव आपकी प्रसन्नताकारक स्वभाव ही मुझे प्रदान कीजिये ॥८॥

नान्यद्वरं च मे किञ्चित्काङ्क्षितं त्वत्प्रसादतः ।
सत्यं वदामि सर्वज्ञे ! पुनस्त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥९॥

इसके अतिरिक्त आपकी कृपासे और कोई वरदान मुझे अभीष्ट नहीं है, यह मैं सत्य कहती हूँ पुनः आप सर्वज्ञ हैं, अत एव स्वयं जान सकती हैं ॥९।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

आकर्ण्येतत्सखीवाक्यं प्रससाद सुधेक्षणा ।
पुत्री जनकराजस्य तामुवाच कृताञ्जलिम् ॥१०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:- हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजीके इन वचनोंको सुनकर अमृत-मय दृष्टिवाली श्रीकिशोरीजी बड़ी प्रसन्न हुईं और उन हाथ जोड़े हुये श्रीचन्द्रकलाजीसे बोलीं:-॥१०॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

मम प्रीतिकरोऽस्त्येव स्वभावस्तव सन्मते !
तथा मद्वचनाचापि सर्वदैव भविष्यति ॥११॥

हे पवित्रमति वाली श्रीचन्द्रकलाजी ! आपका स्वभाव तो योंही मेरी प्रसन्नता कारक है तथा मेरे वरदानसे वह और भी विशेष सदा मेरी ही प्रसन्नताकारक होवेगा ॥११॥

यावन्त्यो मम सख्यश्च तवैव वशगा हि ताः ।
भविष्यन्ति न सन्देहो यथा वै मम शोभने ! ॥१२॥

हे शोभने (कल्याणस्वरूपे) ! मेरी जितनी सखियाँ हैं, उन सबों पर मेरा जैसा अधिकार है, वैसा ही निःसन्देह आप का रहेगा ॥१२॥

त्वयाऽनुकम्पिता एव जन्तवः परमं पदम् ।
मम यास्यन्ति वै नित्यं योगिनोऽयोगिनस्तथा ॥१३॥

जिनपर आपकी कृपा होवेगी, वेही जीव मेरे परमपद (श्रीसाकेत-धामान्तर्गत श्रीकनकभवन) को प्राप्त होंवेगे, चाहे वे योगी (पूर्ण साधन सम्पन्न) हों या अयोगी (साधन रहित) ॥ १३ ॥

याहि शीघ्रं ममादेशात्प्रापय त्वं प्रियं हि मे ।
विना तेन क्षणं चापि कोटिकल्पसमं भवेत् ॥१४॥

अरी सखी ! मेरी आज्ञासे तुम जाओ, और शीघ्र मुझे श्रीप्यारेजीकी प्राप्ति कराओ। बिन श्रीप्यारेजूके, उनके विरह रूपी अग्निके तापसे एक क्षणभी मुझे करोड़ों कल्पके समान भारी हो रहा है ॥ १४ ॥

न विलम्बोऽत्र कर्त्तव्यस्त्वया कार्यविशारदे ! ।
प्रियोऽपि ! सखि मां द्रष्टुं विह्वलोऽस्ति यथा ह्यहम् ॥१५॥

हे सखी ! तुम कार्य करनेमें चतुरी हो, अत एव श्रीप्यारेजूसे भेंट करानेमें विलम्ब न करो, क्योंकि जैसे मैं श्रीप्यारेजूके दर्शनोंके लिये व्याकुल हूँ, उसी प्रकार मेरे दर्शनोंके लिये प्यारे भी विह्वल हैं १५

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्याज्ञप्ता विशालाद्या श्रीमच्चन्द्रकला सखी ।
आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वा नमस्कृत्य ततोऽभ्यगात् ॥१६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले हे प्रिये ! सखी श्रीचन्द्रकलाजी विशाल लोचना श्रीकिशोरीजी की यह आज्ञा पाकर उनसे जो आज्ञा, ऐसा कहकर तथा उन्हें प्रणाम करके वहाँसे चल दीं ॥१६॥

तं समेत्य विशालाक्षं रमणीयकलेवरम् ।
प्रियाया ध्यानसंसक्तं सुखदं सा वचोऽब्रवीत् ॥१७॥

वे श्रीचन्द्रकलाजी मनोहर शरीर, विशालनयन, तथा श्रीप्रियाजूके ध्यानमें पूर्ण निमग्न श्रीरामभद्रजूके पास जाकर उनसे सुखदायक वचन बोलीं :-॥१७॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

यां ध्यायसि हृदि प्रेष्ठ ! सा त्वामाह्वयति प्रिया ।
दिदृक्षुरासु वैदेही संस्थिता रासमण्डले ॥१८॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! जिनका आप हृदयमें ध्यान कर रहे हैं, वे आपके दर्शनोंकी इच्छासे देहकी सुधि-बुधि भुलाकर रास (आप दोनों सरकारको ही सर्वस्व माननेवाले भक्त) मण्डल में सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं ॥१८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति तस्या वचः श्रुत्वा मधुरं मधुरादपि ।
तूर्णमुत्थाय तां दोर्भ्यां परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥१६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले-हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजीका यह मधुरसे भी मधुर वचन सुन करके तुरत, उठकर उन्हें वे दोनों हाथोंसे हृदय लगाकर बोले:-॥१६॥

श्रीराम उवाच ।

यदुक्तं ते वचः सत्यमिदं चन्द्रकले ! द्रुतम् !
नय मां यत्र मे कान्ता सदा भक्तसुखेरता ॥२०॥

हे श्रीचन्द्रकलाजू ! सुनिये, श्रीप्रियाजू आपको बुला रही हैं" यह आपकी वाणी यदि सत्य है, तो मुझे वहाँ तुरत ले चलो जहाँ पर केवल भक्तोंके सुखसाधनमें ही सदैव तत्पर रहने वाली हमारी वे श्रीप्रियाजू विराज रही हैं ॥२०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तयेत्युक्त्वा ऽऽह सैवेति मया साकमितः प्रिय ! ।
मायपिष्यामि ते कान्ता त्वया चन्द्रनिभाननाम् ॥२१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजी उनसे ऐसा ही करती हूँ कह कर, बोलीं-हे प्यारे ! आप यहाँसे मेरे साथ चलें, मैं पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाश मान, आह्लादकारी श्रीमुखकमल वाली आपकी श्रीप्रियाजीका मिलन आपसे कराऊँगी ॥२१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तस्तया सार्कं भाववश्यो वशी प्रभुः ।
धावन्निव चचालासौ कोटिब्रह्माण्डनायकः ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजीके इस प्रकार कहने पर अनन्त ब्रह्माण्डनायक, सर्वसमर्थ लोकपालोंके सहित समस्त लोकोंको अपने वशमें रखने वाले श्रीरामभद्रजू, भक्तोंके भावाधीन होने के कारण, श्रीचन्द्रकलाजूके साथ दौड़ते से चले ॥२२॥

आयान्तं दूरतो दृष्ट्वा मैथिली रघुनन्दनम् ।
प्रत्युज्जगाम सा प्रेम्णा सेव्यमाना सखीजनैः ॥२३॥

श्रीरघुनन्दन प्यारेको दूरसे ही आते हुये देखकर श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू अपनी सखियोंसे सेवित होती हुई, उनका स्वागत करनेके लिये, आगे बढ़ीं ॥२३॥

तौ समीपमथोऽभ्येत्य शरच्चन्द्रनिभाननौ ।
दामिनीघनसङ्काशावनिमेषमृगेक्षणौ ॥२४॥

समीपमें प्राप्त हो, शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान मुख, बिजुली तथा मेघके समान गौर श्याम, वर्ण, पलकरहित हरिणके समान विशाल नेत्रोंवाले दोनों सरकार ॥२४॥

बाहू प्रसार्य वै तत्र चक्रतुः परिरम्भणम् ।
मिथो लोकहितायैव भावाधीनत्वव्यक्तये ॥२५॥

केवल प्राणियोंके प्रोत्सहन रूप हितके लिये एक दूसरेकी भावाधीनता प्रकट करनेके हेतु दोनों सरकारने अपनी २ भुजाओंको फैलाकर एक दूसरेको हृदय लगाया । श्रीकिशोरीजी प्यारे को हृदयसे लगाती हुई जीवोंको यह प्रोत्सहन देती है, कि यदि मेरे समान तुम प्रभुसे प्रेम करोगे, तो इसी प्रकार तुम भी प्रभुको हृदयसे लगा सकते हो, अतः प्रभुसे प्रेम करो । श्रीरामभद्रजू श्रीकिशोरीजीको हृदयसे लगाते हुये जीवोंको यह प्रोत्सहन देते हैं, कि यदि श्रीकिशोरीजीके समान तुम मुझसे अनन्य प्रेम करोगे, तो जैसे श्रीकिशोरीजीको विह्वल होकर तथा किसी प्रकारकी लौकिक मर्यादाको स्मरण न रखकर मैं हृदयसे लगा रहा हूँ, उसी प्रकार तुमको भी मैं लगा सकता हूँ अतः मुझसे प्रेम करो ॥ २५ ॥

संयोगसंन्यस्तवियोगतापौ श्रीमैथिलीश्रीरघुनन्दनौ तौ ।
प्रसन्नपूर्णामलचन्द्रवक्त्रौ प्रजग्मतू रासनिकुञ्जमाद्यम् ॥२६॥

पुनः संयोगके द्वारा विरह-तापसे रहित हो, पूर्णिमाके निर्मल चन्द्रमाके समान प्रसन्न मुखवाले दोनो श्रीमिथिलेशनन्दिनी तथा श्रीरघुनन्दनप्यारेजू रास (रसस्वरूप, मधुरोपासक-भक्तों) की श्रेष्ठ कुञ्जमें पधारे ॥२६॥

परस्परं चौ च निधाय कण्ठे भुजं तदा रेजतुरालिवृन्दे ।
सिंहासनस्थौ चपलाघनाभौ निरीक्ष्य सख्यो मुदितास्तदोचुः ॥२७॥

(वहाँ) परस्पर एक दूसरेके गलेमे बांह डाले हुये, सखियोंके समूहमें सिंहासन पर विराज मान हुये बिजुली व सघन मेघकी कान्ति वाले, उन युगलसरकारका दर्शन करके सखियाँ हर्षित हो बोलीं ॥२७॥

सख्य ऊचु ।

निमिवंशसमुद्भूता हंसवंशसमुद्भवः ।
सीरध्वजसुता सीता रामो दशरथात्मजः ॥२८॥

निमि-वंश रूपी कमलसे प्रकट हुई श्रीसीरध्वज महाराजकी लली श्रीसीताजी व सूर्य वंशमें अवतीर्ण हुये दशरथनन्दन श्रीरामभद्रजी ॥२८॥

इन्दीवरविशालाक्षी पुण्डरीकनिभेक्षणः ।
कोटिचन्द्रोल्लसद्वक्त्रा कोटिराकाधवाननः ॥२९॥

एवं नीले कमलके समान विशाल नेत्र व करोड़ों चन्द्रमाओंके समान शोभायमान मुखवाली श्रीललीजी तथा श्वेत कमलके सदृश नेत्र व करोड़ो पूर्णचन्द्रमाओंके तुल्य मुखवाले श्रीप्यारेजी २९

पक्वबिम्बाधरोष्ठी च पक्वबिम्बफलाधरः ।
विद्युद्दामप्रतीकाशा सान्द्रकन्दनिभप्रभः ॥३०॥

पके बिम्बाफलके समान ओठ व बिजुलीकी मालाके समान प्रकाशवाली श्रीप्रियाजी तथा पके बिम्बाफलके सदृश अधर व सजल मेघके सदृश प्रकाशवाले श्रीप्यारेजी हैं ॥३०॥

तप्तहाटकगौराङ्गी नीलाम्भोजदलच्छविः ।
लावण्यैकमहाम्भोधिः सौन्दर्याद्वयसागरः ॥३१॥

एव तपाये हुये देवसुवर्णके समान गौर अङ्ग व महासागरके समान उपमा-रहित अवर्णनीय सौन्दर्यवाली श्रीललीजी तथा नीले कमलपत्रके तुल्य श्यामस्वरूप सागरके समान उपमा-रहित सौन्दर्य वाले श्रीलालजी हैं ॥३१॥

सर्वसद्गुणसम्पन्ना सर्वसद्गुणमन्दिरः ।
मिथिलाप्राणसंप्राणा सत्यायाः प्राणवल्लभः ॥३२॥

इसी प्रकार समस्त सद्गुणोंसे युक्त व श्रीमिथिलाजीकी प्राणोंकी प्राणस्वरूपा श्रीप्रियाजू तथा समस्त सद्गुणोंके मन्दिर, श्रीअयोध्याजीके प्राणोंसे प्यारे श्रीप्यारे जू ॥३२॥

वेदिगर्भसमुद्भूता यज्ञपायससम्भवः ।
कोटिकामाङ्गनोत्कृष्टा कोटिमीनध्वजोत्तमः ॥३३॥

एवं यज्ञवेदीके मध्यसे उत्पन्न व करोड़ों रतियोंसे अधिक सुन्दरी श्रीललीजी तथा यज्ञकी खीरसे उत्पन्न, करोड़ों कामदेवोंसे बढ़कर श्रीलालजी हैं ॥३३॥

प्रणिपातैकसन्तुष्टा शरणागतपालकः ।
पद्मालङ्कृतहस्ताब्जा कञ्जशोभिकराम्बुजः ॥३४॥

केवल प्रणाम-मात्रसे ही पूर्ण प्रसन्नता को प्राप्त व नीलकमलसे सुशोभित हस्तकमल वाली श्रीप्रियाजी तथा शरणागत-जीवोंके रक्षक, कमलसे शोभायमान हस्तकमल वाले श्रीप्यारेजू ॥३४॥

ईश्वरी सर्वलोकानां सर्वलोकमहेश्वरः ।
रासकेलिरसाभिज्ञा रासलीलारसाश्रयः ॥३५॥

एवं समस्त लोकों पर शासन करने वाली व अपने इष्ट भगवान् को ही सर्वेश्वर मानने वाले भक्तोंकीलीलाके रस (आनन्द) को समझने वाली श्रीललीजू तथा समस्त लोकोंके नियामकोंके भी नियामक, भगवद्भक्तोंकी लीलाके सुखके कारण स्वरूप श्रीलालजू ॥३५॥

निर्व्याजकरुणामूर्त्तिर्निर्व्याजकरुणालयः ।
मैथिली मृदुसर्वाङ्गी राघवो मृदुविग्रहः ॥३६॥

इसी प्रकार-साधनादि कारण अपेक्षा रहित, करुणाकी मूर्त्ति व सभी कोमल अङ्ग वाली श्रीमिथिलेशललीजी तथा साधनादि कारण अपेक्षा रहित करुणा (दया)के स्थान, कोमल शरीर वाले श्रीरघुनन्दनजू ॥३६॥

महामाधुर्यसम्पन्नौ दिव्यसिंहासनस्थितौ ।
दिव्याभरणसम्पन्नौ द्वौ स्रग्विणौ चन्दनार्चितौ ॥३७॥

दोनों सरकार चन्दनकी खौरसे अलङ्कृत, दिव्य भूषण वस्त्रों को धारण किये, गलेमें पुष्पमाला पहिने, महान् कोमलतापूर्ण-सौन्दर्यसे युक्त, दिव्यसिंहासन पर विराजमान ॥३७॥

सालकौ विधुपूर्णास्यौ मनोदृष्टिधनापहौ ।
सुकुमारौ यशः पात्रे शुचिसम्मोहनस्मितौ ॥३८॥

एवं दोनों घुँघुराले केशोंसे युक्त, चन्द्रमाके सदृश आह्लादकारी मुखसे सुशोभित, मन व दृष्टि रूपी धनकी चोरी करने वाले, सुकुमार अवस्थामें प्राप्त, सम्पूर्ण यशके पात्र, निर्मल अन्तःस्करण वाले महर्षि-वृन्दोंको अपनी मुस्कानसे मुग्ध कर लेने वाले ॥३८॥

अन्योऽन्यसदृशावेतावन्योऽन्यप्रेक्षणोत्सुकौ ।
जानकीराघवावाल्यः शरण्यावाश्रयामहे ॥३९॥

अरी सखियो ! दोनों निश्चय ही उपर्युक्त आदि अनेक प्रकारसे, एक दूसरेके सदृश व एक दूसरेके दर्शनोंके लिये उत्सुक हैं, अत एव सभी प्रकारसे रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ इन्हीं, श्रीयुगल-हम लोग सरकारकी शरणमें प्राप्त हैं ॥३९॥

एतौ न पश्यतो यं च यश्च नैतौ प्रपश्यति ।
तावद्वद्यौ त्रिलोकेषु ह्यात्माऽपि तौ विगर्हते ॥४०॥

जिस प्राणी पर ये दोनों सरकार अपनी दृष्टि नहीं डालते और जो इन दोनोंका दर्शन प्राप्त नहीं करता वे दोनों ही त्रिलोकीमें निन्दाके पात्र हैं,स्वयं उनकी आत्मा भी उन्हें धिकारती है ॥४०॥

अद्य पुण्यदिनं चैतत्क्षणं सौभाग्यदायकम् ।
उभावेतौ प्रपश्यामो दत्तकण्ठकराम्बुजौ ॥४१॥

आजका दिन बड़ा ही पुण्यमय है तथा यह क्षण भी बड़े सौभाग्यको प्रदान करने वाला है परस्पर एक दूसरेके गलेमें करकमल दिये हुये, जो इन श्रीयुगलसरकारका हम लोग भली प्रकारसे दर्शन प्राप्तकर रही हैं ॥४१॥

इमौ हि लोककर्तारौ जननीजनकौ तथा ।
श्रुतिसारौ सुराधीशौ स्वेच्छयात्तनराकृती ॥४२॥

ये ही दोनों सरकार, समस्त लोकोंकी रचना करने वाले माता पिता, देवताओं (दैवी सम्पद् विशिष्टोंको अपनी इच्छानुसार चलाकर उन) की रक्षा करने वाले, चारो वेदोंके सार, अपनी इच्छासे मनुष्य शरीर धारण किये हुये हैं ॥४२॥

मैथिलीयं यथाऽस्माकं राघवोऽयं तथाविधः ।
सुनयनानन्दिनीयं कौशल्यानन्दनस्त्वयम् ॥४३॥

जैसे श्रीमिथि महाराजके वंशमें प्रकट हुई हमारी श्रीसुनयनानन्दिनीजू सब प्रकारसे सुन्दरी हैं, उसी प्रकार ये सब प्रकारसे सुन्दर, श्रीरघुकुलमें अवतीर्ण श्रीकौशल्यानन्दनजू हैं ॥४३॥

अस्या योग्यः पतिश्चैष प्रियैषा सदृशाऽस्य च ।
न ह्यसामान्यमनयोरस्ति केनापि हेतुना ॥४४॥

हमारी श्रीललीजूके योग्य ये ही पति हैं और इन श्रीप्यारेजूके ये योग्य प्रिया श्रीललीजू हैं, क्योंकि इन दोनों सरकारमें गुण-रूपादि किसी भी कारणसे न्यूनता-विषमता नहीं है अर्थात् गुण रूप, तेज, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि सभीके द्वारा परस्पर ये दोनों एक समान हैं ४४

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवं ता वर्णयन्त्यश्च तौ श्रीप्राणप्रियाप्रियौ ।
प्रहर्षं लेभिरे सख्यो ह्यवाङ्मनसगोचरम् ॥४५॥

इत्येकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

—ः मासपारायण विश्राम–१६ ः—

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये ! इस प्रकार वे सखियाँ, श्रीयुगलसरकार का वर्णन करती हुई, उस अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुईं, जिस को न मन मनन कर सकता है न वाणी ही कथन कर सकती है ॥४५॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

सखियोंके सुखार्थ श्रीयुगलसरकारकी भगवदानन्द-प्रापक रास, जलविहार
तथा नौकाविहारलीला ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अथ श्रीप्रेयसोः पूजां चक्रुः सख्यश्च षोडशीम् ।
दिव्यधामात्मभावस्था हर्षनिर्भरमानसाः ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोले:–हे प्रिये ! तत्पश्चात् हर्षनिर्भर चित्त हो, अपने दिव्यधामके भावमें स्थित होकर, उन सखियोंने षोडशोपचारसे श्रीयुगल-सरकारका पूजन किया ॥१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

स्वागतं तेऽस्तु प्राणेश ! दिष्ट्या पश्यामि ते मुखम् ।
पुण्यपुञ्जप्रभावेण सहचर्य्यनुकम्पया ॥ २ ॥

श्रीजनकनन्दिनीजू श्रीरामभद्रजूसे बोलीं:-हे श्रीप्राणप्यारेजू ! आपका आगमन बड़ा ही सुखद होवे, अनेक पुण्य समूहसे तथा श्रीचन्द्रकलाजीकी कृपासे मैं, इस समय परम सौभाग्य वश आपके श्रीमुखारविन्दका दर्शन कर रही हूँ ॥२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्याकर्ण्य प्रियावाक्यं प्रेमगद्गदया गिरा ।
साश्रुनेत्रो ऽब्रवीत्तस्याः संस्पृश्य चिबुकं प्रियः ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले: हे प्रिये ! श्रीप्रियाजूके इस प्रकारके वचनों को श्रवण करके, सजल नेत्र हो, श्रीरघुनन्दनप्यारेजू श्रीप्रियाजूकी ठोड़ी को स्पर्श करके, गद्गदवाणी से बोले ३

श्रीराम उवाच ।

वल्लभे ! त्वत्कृपादृष्ट्या भवत्या दर्शनं मया ।
लब्धं स्वभूरिभाग्येन तव सख्याः प्रसादतः ॥४॥

हे श्रीप्रियाजू ! आज अपने परम सौभाग्यसे, आपकी कृपा दृष्टिके द्वारा तथा आपकी सखी श्रीचन्द्रकलाजीकी कृपासे मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है ॥४॥

क्व चैव मम सवासः क्व चेयं मिथिलापुरी ।
तया ऽऽनीतः प्रयत्नेनाचिन्त्यशक्त्याऽहमागतः ॥५॥

क्योंकि कहाँ मेरा निवास श्रीअयोध्याजीमें और कहाँ यह श्रीमिथिलापुरी ? सो कल्पनासे परे सामर्थ्य वाली उन श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा यहाँसे लाये हुये हम, आज यहाँ अनायास ही प्राप्त हैं ॥५॥

सामर्थ्यं तव प्राणेशे ! मयाऽपि ज्ञायते न हि ।
अपरः कथं विज्ञातुं त्रिषु देवेष्वपि क्षमः ॥६॥

हे श्रीप्रियाजू ! आपकी सामर्थ्य को जब मैं ही स्वयं नहीं जान पाता, तब ब्रह्माविष्णु, महेश आदि देवोंमें भी, भला कौन जानने के लिये समर्थ है ? दूसरोंकी बात ही क्या ॥६॥

यस्याः सख्यामचिन्त्या हि प्रेक्षिता शक्तिरीदृशी ।
को नु तां वर्णितुं शक्तस्त्रिषु लोकेषु वल्लभे ! ॥७॥

हे श्रीप्रियाजू ! जिनकी सखीमें ही इस प्रकार, कल्पनासे परेकी शक्ति देखी गयी है, भला साक्षात् उन (आप) का, त्रिलोकीमें कौन वर्णन कर सकता है ? ॥७॥

इदानीं तद्धि कर्त्तव्यं यतः सर्वाः सखीजनाः ।
प्राप्नुवन्तु सुखं कामं दिव्यधामधियाऽन्विताः ॥८॥

इस समय वही लीला करनी चाहिये-जिसके द्वारा ये सभी सखियाँ अपने दिव्य धामवाली बुद्धिसे युक्त होकर अपने भावानुसार सुखको प्राप्त हो जावें ॥८॥

श्रीलोमश उवाच ।

प्रेयसोक्तं समाकर्ण्य सर्वासां प्रियकाम्यया ।
व्यादिदेशानुरागेण सखीर्नृत्यादिहेतवे ॥९॥

श्रीलोमशजी महाराज बोले-हे श्रीयाज्ञवल्क्यजी ! श्रीप्राण प्यारेजूके इस विचारको श्रवण करके, सभी सखियोंको प्रसन्नता प्रदान करनेकी इच्छासे उन्हें अनुराग पूर्वक नृत्यादि करनेके लिये श्रीकिशोरीजीने आज्ञा प्रदानकी ॥९॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अहो सख्यः सर्वा शृणुत सुखदं मे वच इदं
प्रियं पूर्णानन्दं परमरसिकं प्रेमवशगम् ।
मिलित्वा वै यूयं मुदितहृदयाः केलिकुशलाः
स्वकैर्नृत्यैर्वाद्यैरतिसरसगानै रमयत ॥१०॥

श्रीजनकराजदुलारीजी बोलीं:-हे अनेक प्रकारकी क्रीडाओंमें परम चतुरी सभी सखियो ! मेरे सुखद वचनोंको श्रवण करें, आज पूर्ण आनन्द स्वरूप, प्रेमसे विवश होजाने वाले (रसिक अपने उपासक भक्तोंकी सभी चेष्टाओंका रसास्वादन करने वाले) इन श्रीप्यारेजीको आप सभी मिलकर अपने नृत्य वाद्य और अति रसीले गानके द्वारा आनन्दित करें ॥१०॥

श्रीलोमश उवाच ।

इति तस्या वचः श्रुत्वा सख्यः प्रेमपरिप्लुताः ।
कृतयूथास्तदा सर्वा आदौ वाद्यान्यवादयन् ॥११॥

श्रीलोमशजी महाराज बोले-हे मुने ! उन श्रीमिथिलेशदुलारीजूके इन वचनोंको सुनकर, सखियाँ प्रेम निमग्न हो, यूथ बनाकरके प्रथम बाजाओंको बजाने लगीं ॥११॥

नृत्यमारम्भयामासुः सवाद्यं कान्तमोहनम् ।
पुनस्ताः पद्मपत्राक्ष्यो गतितालादिभेदतः ॥१२॥

पुनः वे कमल-दललोचना सखियोंने गति-ताल आदिके भेदसे बाजोंको बजाती हुई प्यारेको मुग्ध कर लेने वाले, नृत्य को आरम्भ किया ॥१२॥

मूकयन्त्यः पिकान् रावैर्गानं प्रचक्रिरे तदा ।
गन्धर्व्यो यन्निशम्यैव चित्रमापुः स्वचेतसि ॥१३॥

उस समय वे, सखियाँ अपने मधुरशब्दके द्वारा कोयलोंको मुग्ध करती हुई गान करने लगीं, जिसे सुनकर गन्धर्वकन्यायें भी अपने चित्तमें बड़े विस्मयको प्राप्त हुईं ॥१३॥

ह्लादाकृष्टौ तदानीं तौ दत्तांसेकभुजौ मिथः ।
सिंहासनात्समुत्तीर्य्य सखीमण्डलमीयतुः ॥१४॥

उस समय आह्लादके प्रवाहसे खिंचे हुये, वे श्रीयुगलसरकार परस्पर एक दूसरेके कन्धे पर, अपना एक कर-कमल रक्खे हुये सिंहासनसे उतर कर, सखीमण्डलमें आगये ॥१४॥

ताभ्यां ततः सर्वसखीनिकायो रराज तारागणचन्द्रशिभ्याम् ।
अत्यन्तहर्षाप्लुतमानसाश्च बभूव तौ मध्यगतौ विलोक्य ॥१५॥

उन श्रीयुगलसरकारके पधारने पर, यह सम्पूर्ण सखीमण्डल इस प्रकारसे सुशोभित हुआ जैसे दो चन्द्रमाओंके उदयसे तारा-गण सुशोभित होता है। अपने मध्यमें श्रीयुगलसरकारको उपस्थित हुए देखकर उन सखियोंका मन हर्षमें डूब गया । १४॥

पुनश्च हस्ताङ्घ्रिपदेङ्गितैश्च स्वलाघवं ताः खलु दर्शयन्त्यः ।
नृत्यं प्रचक्रुर्मृगपोतनेत्रा विसृष्टदेहस्मृतयस्त्रपाश्च ॥१६॥

पुनः अपने शरीरकी सुधि-बुधि भूली हुई, मृगके बच्चेके समान चञ्चलनेत्रवाली वे सखियाँ, श्रीयुगल सरकारके हाथ, नेत्र व पद-कमलोंके सङ्केतोंके साथ-साथ अपनी शीघ्रता (फुर्ती) दिखाती हुई नृत्य करने लगीं ॥१६॥

तेनापि तौ ह्लादनिमग्नचित्तौ व्यनृत्यतां विश्वविमोहनाङ्गौ ।
वृन्दारका वीक्ष्य सभार्यकाः स्वान्मन्दारपुष्पाणि मुहुर्व्यकारन् ॥१७॥

सखियोंके उस नृत्यके द्वारा आह्लादमग्न चित्त तथा अपने श्रीअङ्गकी परम छटासे समस्त

श्यामघन वर्ण श्रीराघवेन्द्र सरकार सखियोंके बीच-बीचमें उपस्थित होकर श्रीकिशोरीजीकी दृष्टिमें प्राप्त हुये नाचती हुई सखीगण रूपी विद्युन्मालाकी शोभाका अभाव दूर करते हुये सखियोंको भगवदानन्द प्रदान कर रहे हैं।

विश्वको मुग्ध करनेवाले वे श्रीयुगल-सरकार भी नृत्य करने लगे। उस अवस्थामें उन दोनों सरकार का दर्शन करके देववृन्द, अपनी शक्तियोंके सहित आकाशसे, कल्पवृक्षके फूलोंकी वारम्वार वर्षा करने लगे ॥१७॥

तयोः प्रसादाय समाप तत्र शरत्सपूर्णेन्दुरपि क्षणेन।
सुगन्धमादाय मरुच्चचाल नभस्तलं निर्मलमावभूव ॥१८॥

श्रीयुगल-सरकारको प्रसन्न करनेके लिये क्षणमात्रमें वहाँ पूर्णचन्द्रमाके सहित शरद ऋतु भी आगयी और सुगन्धको लिये हुये मन्द-मन्द पवन चलने लगा तथा आकाशने पूर्ण स्वच्छताको धारण किया ॥१८॥

प्राफुल्लयच्चारुवनं समग्रं समभ्रमन्मत्तमधुव्रताश्च।
खे दुन्दुभीनां तुमुलश्च शब्दो व्यश्रूयताह्लादतरङ्गवृद्ध्यै ॥१९॥

समग्र कञ्चनवन भली प्रकार फूलोंसे युक्तहो गया, मतवाले भौंरे इतस्ततः भ्रमण करने लगे, और आकाशमें, आह्लादके तरङ्गोंकी वृद्धि करनेके लिये देवनगाड़ोंका शब्द सुनाई पड़ने लगा १९

मृगेक्षणानां कलगानवाद्यैः सर्वं ततं विश्वमिदं बभूव।
सम्पूरितं झङ्कृतिभिर्वनं तत्तासां तदा दिव्यविभूषणानाम् ॥२०॥

कहाँ तक कहें ? उन मृग-लोचना सखियोंके सुन्दर गान, वाद्यका शब्द समस्त विश्वमें व्याप गया तथा उन सखियोंके दिव्य भूषणोंकी झङ्कारसे पूर्ण कञ्चनवन गूञ्ज उठा ॥२०॥

मध्ये सखीनां निवहस्य भूयः श्रीजानकीश्रीदशरथानसूनू।
मिथः कराभ्यां स्वकरौ नियोज्य प्रानृत्यतां केलिकलापदक्षौ ॥२१॥

पुनः सखी सुमूहके बीचमें क्रीड़ा समूहोंके ढङ्गको भली प्रकार जानने वाले श्रीजनकनन्दिनी व श्रीदशरथनन्दनजू आपसमें एक दूसरेके हाथोंसे अपने हाथोंको मिलाकर नृत्य करने लगे ॥२१॥

देवाङ्गना देवतरुप्रसूनान्युपेत्य चक्षुष्फलमप्यवर्षन्।
उच्चैः प्रियाभ्यां भुवि खे च ताभ्यां जयेति शब्दः समभूत्तदानीम् ॥२२॥

देव स्त्रियोंने अपने नेत्रोंका फल प्राप्त करके कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं, उस समय श्रीयुगल-सरकारकी जयकारका ऊँचा शब्द आकाश व पृथ्वी तलपर परिपूर्ण होगया ॥२२॥

पुनश्च रामो रमणप्रवीणो नैकस्वरूपाणि विधाय तत्र।
विवेश तास्वात्मन एव तुल्यान्येतद्रहस्यं न तु तास्त्वजानन् ॥२३॥

पुनः उस स्थल पर भक्तोंको आनन्द प्रदान करने वालोंमें चतुर, योगियोंके अन्तःस्करणमें विहार करने वाले श्रीरामभद्रजू, अपने समान अनन्त रूपोंको धारण करके उन सखियोंके बीच बीचमें घुस गये, परन्तु इस रहस्य (गुप्तलीला) को वे न समझ सकीं अर्थात् उन्हें यही, निश्चय हुआ कि प्यारे हमारे ही बीचमें हैं एतदर्थ उनकी सर्वोपरि (सबसे अधिक) कृपाको अपने-अपने प्रति अनुभव करके वे सभी सखियाँ अवर्णनीय सुखको प्राप्त हुईं, अत एव प्यारेको रमण प्रवीण कहा गया है ॥२३॥

एकोऽथ भूत्वा विरराज रामो मध्ये सखीनां दयितेङ्गितेन ।
तेनान्वितास्ताश्च तदा विरेजुः सौदामिनीनां स्रगिवाम्बुदेन ॥२४॥

तत्पश्चात् श्रीप्रियाजूका सङ्केत पाकर श्रीप्यारेजू सखियोंके बीचमें निज मुख्य स्वरूपसे सुशोभित हुये । उस समय श्रीप्यारेजूसे युक्त हुई वे सखियाँ इस प्रकार सुशोभित हुईं, जैसे सघन मेघसे युक्त बिजुलीकी माला सुशोभित होती है ॥२४॥

पर्याप्तकामा नवमोहनश्रियश्चक्रुर्महारासमरालकुन्तलाः ।
नैकप्रभेदं रसकेलिलोलुपा दृष्ट्वा तुतोषावनिनाथकन्यका ॥२५॥

भगवत्-लीलाओंमें पूर्ण उत्सुक रहने वाली, मुग्धकारी नवीन शोभासे युक्त, परिपूर्णमनोरथ हुई घुंघुराले केश वाली वे सखियाँ, भगवत्सम्बन्धी उत्सव (नृत्य गानादिको) अनेक प्रकारसे करती हुई अर्थात् सर्वव्यापक भगवान् श्रीभद्रजूके पधारने का उत्सव अनेक प्रकारके नृत्य, गान, वाद्य आदिके द्वारा करती हुई, जिससे अपने मन, वचन शरीर, इन तीनोंको ही श्रीप्यारेजीकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त होवे । अत एव श्रीअवनि नाथ श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजी प्रसन्न होगयीं २५

ता वल्गुवाक्यस्मितवीक्षणैश्च श्रीप्रेयसा प्रेमवशेऽनुनीताः ।
चुम्बन्ति काश्चिच्च कटाक्षयन्त्यः काश्चिदधत्यैव भुजं निजांसे ॥२६॥

उन सखियोंको अपनी मधुर वाणी, मन्दमुस्कान तथा कटाक्षपूर्ण चितवनसे श्रीप्यारेजूने प्रेमवश कर लिया, अत एव कुछ सखियोंने उनके चरण व हस्त कमलोंका चुम्बन करने लगीं, कुछने उन्हें कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखती हुई उनकी भुजाको अपने कन्धेपर रखने लगी ॥२६॥

काश्चित्स्म पश्यन्ति तदास्यमाधुरीं निमेषहीना इव हेममूर्त्तयः ।
काश्चित्समाघ्राय तदङ्गसौरभं काश्चित्तमालिङ्गय सुनिर्वृताः स्थिताः ॥२७॥

कुछ सखियाँ उनके श्रीमुखारविन्दकी मनोहरताका इस प्रकार एकाग्र दृष्टिसे दर्शन करने लगीं, मानो वे पलक हीन सोनेकी केवल निर्जीव मूर्त्ति ही हों। कुछ सखियाँ श्रीप्यारेजूके श्रीअङ्गकी सुगन्धको सूँघकर और कुछ उन्हें हृदय लगाकर अन्तर्वृत्ति को प्राप्त हो गयीं ॥२७॥

काश्चित्तु कान्तांसधृतैकहस्ता वाणीर्द्विजानामवदन्विचित्राः।
नीराजयन्त्यः पुनरेव कामं सर्वा ययुर्हर्षमपारपारम् ॥२८॥

कुछ सखियाँ प्यारेजूके कन्धे पर अपना एक हाथ रक्खे हुई पक्षियोंकी अनेक प्रकारकी विचित्र बोलियोंको बोलने लगीं पुनः सिंहासन पर श्रीकिशोरीजीके समीपमें श्रीप्यारेजूके विराजमान हो जाने पर, वे सभी सखियाँ, अपनी इच्छानुसार दोनों श्रीयुगल सरकारकी आरती करती हुई, असीम सुख को प्राप्त हुई ॥२८॥

एवं राससुखं दत्वा रघुवंशविभूषणः।
अतोषयत्प्रियां भक्तभावानुग्रहविग्रहः ॥२९॥

इस प्रकार भक्तोंके भावानुसार अनुग्रह-मय दिव्यस्वरूपको धारण करने वाले, रघुवंशको भूषणके समान, सुशोभित करने वाले प्रभु श्रीराम भद्रजूने सखियोंको भगवत् (अपनी) लीलाका सुख प्रदान करके, अपनी प्रिया श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूको सन्तुष्ट किया ॥२९॥

श्रीलोमश उवाच।

तमुवाच विशालाक्षी प्रेमनिर्भरया गिरा।
प्रार्थितं शृणु प्राणेश ! नाहमाज्ञापयामि ते ॥३०॥

श्रीलोमशजी-महाराज बोले:-हे मुने ! विशाल-लोचना श्रीमिथिलेशराज दुलारीजू प्रेम भरी वाणीके द्वारा, उन श्रीप्यारेजूसे बोलीं:-हे श्रीप्राणनाथजू ! मैं आपको आज्ञा दे नहीं रही हूँ, बल्कि कुछ प्रार्थना करती हूँ, उसे आप श्रवण कीजिये ॥३०॥

जलक्रीडाऽपि कर्त्तव्या रोचते यदि ते प्रिय !
रासानन्दप्रसक्तानां वयस्यानां सुखाय च ॥३१॥

हे श्रीप्यारेजू ! यदि आपकी रुचि हो, तो आपकी लीला जनित आनन्दमें आसक्त रहने वाली इन सखियोंको और भी सुख-प्रदान करनेके लिये जल-क्रीडा भी करना उचित है ॥३१॥

यथा क्रीडासु मे चेतः प्रसक्तं भवति प्रिय !
न तथा मम संवेशे न चैव भोजनादिषु ॥३२॥

हे प्यारे ! जैसा मेरा चित्त क्रीड़ाओं में आसक्त होता है, वैसा न शयन करने में और न भोजनादिकमें ॥३२॥

अत एव रमस्वात्र प्राणनाथ ! यथेप्सितम् ।
रासकेलिकलाज्ञाभिः सखीभिर्विरजाम्भसि ॥३३॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! इस लिये आपकी लीलाकी कलाओंको जानने वाली इन सखियोंके सहित आप श्रीविरजाजीके जलमें इच्छानुसार खेल कीजिये ॥३३॥

श्रीराम उवाच ।

एवं भवतु भावज्ञे ! भवत्या साधु चिन्तितम् ।
त्वद्गाम्भीर्योत्तरं पारं न गन्तुं कोऽपि शक्नुयात् ॥३४॥

श्रीप्रियाजूकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीरामभद्रजू बोलेः–हे सभीके भावको समझने वाली श्रीप्रियाजू ! आपकी गम्भीरताका पार कोई भी पानेमें समर्थ नहीं हो सकता, आपने यह बहुत ही अच्छा विचार किया है ॥३४॥

श्रीलोमश उवाच ।

सिंहासनादथोत्तीर्य गौरश्यामौ महाछवी ।
दत्तकण्ठैकबाहू तौ भूतले रेजतुर्भृशम् ॥३५॥

श्रीलोमशजी-महाराज बोलेः–हे मुने ! इस प्रकारका परस्पर निश्चय हो जाने पर सिंहासनसे पृथिवीतल पर उतर कर, वे दोनों महान् छवि (सौन्दर्य) सम्पन्न, गौर-श्याम वर्ण, श्रीयुगल-सरकार श्रीसीतारामजी-महाराजने परस्पर एक दूसरेके कण्ठ पर अपनी एक बाँह रक्खे हुये अतीव शोभाको प्राप्त हुये ॥३५॥

छत्रचामरहस्ताभिः सेव्यमानौ गती सताम् ।
कुञ्जात्कुञ्जान्तरं गत्वा विरजातटमीयतुः ॥३६॥

पुनः सन्तोंके एक ही आधारस्वरूप वे दोनों प्रभु, हाथोंमें छत्र-चँवर आदि लिये हुई सखियों से सेवित होते, हुये एक कुञ्जसे दूसरी कुञ्जमें जाकर श्रीविरजाजीके किनारे पहुँचे ॥३६॥

नदीं नीलारुणश्वेतपीतपद्मैर्विशोभिताम् ।
मणिबद्धतटीं रम्यां निष्पङ्कां च सुधाजलाम् ॥३७॥

नील, पीत, लाल, श्वेत वर्णके कमल पुष्पोंसे जो नदी सुशोभित है और दोनों किनारे

मणियोंसे बँधे हुये हैं,जिसमें कीचका नाम भी नहीं, अमृतके समान जल भरा हुआ है और क्रीड़ा करनेके लिये भी उपयुक्त है ॥३७॥

हेमसद्मोल्लसत्कूलां नानाकुञ्जोपशोभिताम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णां जलकुक्कुटसङ्कुलाम् ॥३८॥

जिसके दोनों ही किनारे, सुवर्णमय भवनोंसे चमक रहे हैं, जो समीपमें बहुत सी कुञ्जोंसे सुशोभित है, हंस, बत्तख आदि पक्षियोंसे युक्त और जलकुक्कुटोंसे जो पूर्ण है ॥३८॥

मितप्रवाहां चिन्मूर्त्तिं दृष्ट्वा पापघ्नदर्शनाम् ।
अतिप्रसन्नतां यातौ हंसमत्तेभगामिनौ ॥३९॥

बहाव जिनका अनुकूल है, जो दर्शनसे ही सभी पापों का नाश करती हैं, उन नदीस्वरूपा चैतन्यमूर्त्ति श्रीविरजाजीका दर्शन करके हंस व मतवाले हाथीके समान मस्त चलने वाले श्रीयुगल सरकारकी बहुत ही प्रसन्नता हुई ॥३९॥

दोलयित्वा ततः कुञ्जे किञ्चित्कालं स राघवः ।
सार्कं जनकनन्दिन्या पुष्पालङ्कारशोभितः ॥४०॥

तत्पश्चात् कुछ देर तक फूलोंका शृङ्गार धारण किये हुये, उन श्रीरघुनन्दजूने श्रीजनकनन्दिनी-जूके सहित कुञ्जमें झूला झूल कर ॥४०॥

तासां केलिश्रमोत्सृत्यै सखीनां निकरैर्युतः ।
विवेशाखिलतापघ्नं विरजायाः सुधाजलम् ॥४१॥

सखीवृन्दोंके सहित उनके क्रीड़ाजनित श्रमको दूर करनेके लिये, तीनों तापोंका नाश करने वाले श्रीविरजाजीके अमृत समान जलमें प्रवेश किया ॥४१॥

तस्मिन्नर्के हंसवंशेनः सत्रा पुत्र्या महीपतेः ।
रमयन्निमिसुताः सर्वा रेमे रमयतां वरः ॥४२॥

उस जलमें सूर्यके समान सूर्यवंशको विख्यात करनेवाले खिलाड़ियोंमें परम श्रेष्ठ, वे श्रीरामभद्रजू पृथिवीके पति श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके सहित निमिवंश-कुमारियोंको अपनी लीला द्वारा आनन्दित करते हुये उनके सुखसे सुखी हुये ॥४२॥

ताडनोत्क्षेपणाकर्षैः प्रससादाम्भसो भृशम् ।
जलसिञ्चनलीलायां मैथिली विजयं गता ॥४३॥

जल सिञ्चन लीलामें विजय को प्राप्त हुई श्रीमिथिलेश नन्दिनीजू जलको हाथोंसे पीटने व उछालने तथा खींचने आदिके द्वारा बड़ी प्रसन्न हुईं ॥४३॥

परिचायकभागं च पुनः कृत्वा सुदम्पती ।
अर्द्धमर्द्धं समादाय तस्थतुः केलिसस्पृहौ ॥४४॥

पुनः वे श्रीयुगल-सरकार अपनी अनुचरियोंके दो भाग करके एक एक भाग लेकर, खेलनेकी इच्छासे खड़े हो गये ॥४४॥

अभूद्यूथेश्वरी मुख्या श्रीमच्चन्द्रकला सखी ।
श्रीमज्जनकनन्दिन्याः प्रेयस्याः प्रेयसः प्रधीः ॥४५॥
चारुशीलापि कान्तस्य दशस्यन्दनजस्य च ।
अभूद् यूथेश्वरी मुख्या श्यामरूपविमोहिता ॥४६॥

तब अत्यन्त तीक्ष्ण-बुद्धि श्रीचन्द्रकलाजी, परमप्यारेकी भी परमप्यारी श्रीमिथिलेश-दुलारीजूके सखीयूथकी प्रधान प्रेरिका हुईं ॥४५॥ और श्रीचारुशीलाजी श्यामरूप पर मुग्ध हो श्रीदशरथनन्दन प्राणप्यारेजूके सखीयूथकी मुख्य प्रेरिका बनीं ॥४५॥४६॥

प्रारम्भिता तदा केलिः परमानन्ददायिनी ।
गुप्तप्रकटभेदेन द्विविधा ध्यानमङ्गला ॥४७॥

तब ध्यानसे मङ्गल करनेवाली तथा मगरचन्चलता रूपी आनन्द-प्रदान करनेवाली, गुप्त प्रकट भेदसे दो प्रकारकी जल-क्रीड़ा आरम्भ हुई ॥४७॥

न चचालाचलापुत्रीदशस्यन्दनपुत्रयोः ।
अपि धारा तरङ्गिण्यास्तामुदीक्षितुमुत्सुका ॥४८॥

श्रीभूमिनन्दिनीजू व श्रीदशरथनन्दनजूकी उस जल क्रीड़ाका दर्शन करनेके लिये उत्सुक हुई, श्रीगिरजाजीकी धारा भी स्थिर हो गयी ॥४८॥

वारिजानां परागैश्च पानीयमतिशोभनम् ।
केशप्रसूनगन्धैश्च सखीनां मिश्रितं बभौ ॥४९॥

कमलके पुष्पोंके पराग व सखियोंके केशोंमें गुथे हुवे फूलोंकी सुगन्धसे मिला हुआ, श्रीगिरिराजजीका जल अतीव सोहावन हो गया ॥४९॥

अद्भुता बालिका सखियोंके सुखार्थ श्रीकिशोरीजीकी अनुमतिसे बालक
श्रीरामभद्रजू श्रीविरजाजीमें जल विहार कर रहे हैं।

सीतारामप्रधानानां सखीनां पक्षयोस्तयोः ।
मिथः क्रीडा समारब्धा स्वं स्वं विजयमिच्छतोः ॥५०॥

अपनी अपनी जयकी इच्छा वाले उन श्रीसीताराम-प्रधानासखियोंके दोनों पक्षमें परस्पर जल क्रीडा प्रारम्भ हुई ॥५०॥

ततः कञ्जैर्मृणालैश्च सलिलोत्क्षेपणादिभिः ।
अभिभूतस्तदा यूथः सखीनां राघवस्य च ॥५१॥

तत्पश्चात् कमल पुष्प व कमलके डण्ठल तथा जल उछालने आदिके द्वारा श्रीरामभद्रजूकी सखियोंका यूथ हार गया ॥५१॥

विमला चारुशीलां च जग्राहावर्त्तरूपया ।
स आनीतः स्वके यूथे शशाङ्ककलया प्रियः ॥५२॥

श्रीविमलाजीने श्रीचारुशीलाजीको पकड़ लिया और श्रीचन्द्रकलाजी भँवर रूपके द्वारा प्यारे जीको अपने यूथमें खींच कर ले आईं ॥५२॥

आत्मरूपं समास्थाय स्रजा बद्ध्वा रसेश्वरम् ।
दर्शयामास सर्वेशं प्रियायै मुक्तमूर्द्धजम् ॥५३॥

पुनः वे अपने श्रीचन्द्रकला स्वरूपमें आकर, समस्त रसोंके कारणस्वरूप सभी नियामकोंके नियामक, खुले केशवाले श्रीप्यारेजीको पुष्प मालासे बाँधकर श्रीप्रियाजूको दिखलाया ॥५३॥

प्रियोपस्थ प्रियं प्रेक्ष्य प्रियाजयमघोषयन् ।
मुदा कटाक्षयन्त्यो हि प्रियाल्यो हास्यपण्डिताः ॥५४॥

श्रीप्रियाजूके समीपमें मालासे बँधे हुये श्रीप्राणप्यारेजूका दर्शन करके, हास्यरसमें तीक्ष्ण-बुद्धिवाली वे श्रीप्रियाजूके पक्षकी सखियाँ बडी प्रसन्नता पूर्वक, श्रीप्यारेजूकी ओर कटाक्ष करती हुई, श्रीप्रियाजूका जय घोष करने लगीं ॥५४॥

उक्तप्रियाजयं रामं सखीभिरथ ! मोचितम् ।
आज्ञानुगं निदेशेनालिलिङ्गोत्थाय सा स्वयम् ॥५५॥

आज्ञानुसार श्रीप्रियाजूकी जय बोलनेवाले, योगियोंके हृदयविहारी श्रीप्यारेजीको सखियोंने (श्रीप्रियाजूकी) आज्ञासे बन्धन मुक्त कर दिया और वे श्रीप्रियाजूने स्वयं उठकर उन्हें अपने हृदयसे लगाया ॥५५॥

हर्म्याण्यारुह्य निर्भर्य्या कूर्दनं च निमज्जनम् ।
गुप्तप्रकटरूपाभ्यां तरणं चक्रतुः पुनः ॥५६॥

पुनः किनारेके बने हुये महलों पर चढ़कर श्रीविरजाजीमें कूदने, डुबकी लगाने व गुप्त प्रकट रूपोंसे तैरने की लीला करने लगे ॥५६॥

इत्थं नानाविधं कृत्वा श्रीरामः प्रिययाऽन्वितः ।
पाथोविहारमालीनां प्रमोदाय रसात्मकः ॥५७॥

इस प्रकार रसोंके आत्मस्वरूप प्रभु श्रीरामजी सखियोंके विनोदके लिये, अनेक प्रकारका जल विहार करके ॥५७॥

बहिर्निष्क्रम्य सर्वाभिर्दुहित्रा भूपतेः समम् ।
तटोपरुक्मभवने आर्द्रवस्त्राण्यमुञ्चत ॥५८॥

सब सखियोंके सहित, श्रीकिशोरीजीके समेत विरजाजीसे बाहर निकल कर उन्होंने किनारेके स्वर्ण भवनमें गीले वस्त्रोंको उतारा ॥५८॥

परिधाय सुवस्त्राणि कोमलानि प्रियाप्रियौ ।
केशप्रसाधनं तत्र चक्रतुस्तौ परस्परम् ॥५९॥

पुनः दोनों सरकार, सुन्दर कोमल वस्त्रों को धारण करके परस्पर केशोंको सजाये ॥५९॥

छविशृङ्गारसङ्काशौ जनदृष्टिमनोहरौ ।
सर्वाभरणवस्त्राढ्यौ रेजतू रत्नमण्डपे ॥६०॥

छवि-शृङ्गारके सदृश, अतुलनीय सौन्दर्य युक्त, दर्शन करने वालोंके नेत्र व मनको हरण करने वाले, सभी वस्त्र भूषणोंसे युक्त, वे दोनों ही सरकार रत्नमय मण्डपमें विराजमान हुये ॥६०॥

सख्यस्तथाविधास्तत्रालङ्कृताः कनकप्रभाः ।
स्वसेवावस्तुहस्ताश्च विरजापार्श्वयोर्द्वयोः ॥६१॥

उसी प्रकार वस्त्र भूषणादिका शृङ्गार धारणकी हुई, सुवर्ण के समान कान्तिवाली वे सखियाँ अपने हाथोंमें सेवाकी वस्तुयें लीहुई श्रीयुगलसरकारके दाहिने-बायें भागमें सुशोभित हुईं ॥६१॥

शृङ्गारार्तिक्यमथ ता विधाय परमादरात् ।
भोज्यं चतुर्विधं ताभ्यामयच्छन्नपड्रसैर्युतम् ॥६२॥

तदनन्तर शृङ्गार आरती करके उन सखियोंने बड़े ही आदर पूर्वक, श्रीयुगल सरकारको छः रसोंसे युक्त, चारो प्रकारके भोजनोंको अर्पण किया ॥६२॥

मणिपीठे समास्थाय कोमलांशुकवेष्टिते ।
भोजयामासतुः प्रेम्णा मिथः श्रीदिव्यदम्पती ॥६३॥

कोमल वस्त्र बिछी हुई मणिमय चौकी पर विराजमान होकर दिव्यदम्पती (अप्राकृत श्रीसाकेत-धाम-विहारी, अनन्त ब्रह्माण्डनायक युगलसरकार श्रीसीतारामजी महाराज) परस्पर एक दूसरेको अलौकिक प्रेमपूर्वक भोजन कराने लगे ॥६३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

सुषमामाधुरीमाराद्वीक्षमाणास्तयोः सुखम् ।
महानन्दरसं नेत्रपुटाभ्यां तृषिताः पपुः ॥६४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये ! दर्शनोंकी अत्यन्त प्यासी सखियाँ, श्रीयुगल-सरकारकी सबसे श्रेष्ठ छवि-माधुरीका समीपसे दर्शन करती हुई अपने नेत्ररूपी दोनोंसे उस महान आनन्द रसको पान करने लगीं ॥६४॥

अलभ्यो दर्शनानन्दो ह्येष तत्कृपया विना ।
प्रतिश्रुत्येत्यहं वच्मि भुजमुत्थाय वल्लभे ! ॥६५॥

हे प्रिये ! मैं भुजा उठाकर प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि श्रीयुगल सरकारका यह दर्शन-सुख बिना उनकी कृपाके अलभ्य ही है ॥६५॥

चन्द्रकलोपसंस्था तु सव्ये स्नेहपरा द्वयोः ।
धृत्वा करेण भृङ्गारं पश्यन्त्यमितसौभगम् ॥६६॥

श्रीचन्द्रकलाजीके समीपमें श्रीस्नेहपराजी दोनों सरकारके बायें भागमें सुवर्णका जलपात्र लिये, उनके असीम सौन्दर्य का दर्शन करती हुई खड़ी हो गयीं ॥६६॥

चारुशीला तथा दक्षे पार्श्वके सुमहाद्युतिः ।
सुकर्करीं करे धृत्वा संस्थिताऽलिव्रजान्विता ॥६७॥

और अत्यन्त कान्तिसे युक्ता श्रीचारुशीलाजी अपने कररूमलमें सुवर्णकी झारी लेकर सखी-वृन्दोंके सहित विराजमान हुईं ॥६७॥

हर्म्याण्यारुह्य निर्झर्यां कूर्दनं च निमज्जनम् ।
गुप्तप्रकटरूपाभ्यां तरणं चक्रतुः पुनः ॥५६॥

पुनः किनारेके बने हुये महलों पर चढ़कर श्रीविरजाजीमें कूदने, डुबकी लगाने व गुप्त प्रकट रूपोंसे तैरने की लीला करने लगे ॥५६॥

इत्थं नानाविधं कृत्वा श्रीरामः प्रियया‌ऽन्वितः ।
पाथोविहारमालीनां प्रमोदाय रसात्मकः ॥५७॥

इस प्रकार रसोंके आत्मस्वरूप प्रभु श्रीरामजी सखियोंके विनोदके लिये, अनेक प्रकारका जल विहार करके ॥५७॥

वहिर्निष्क्रम्य सर्वाभिर्दुहित्रा भूपतेः समम् ।
तटोपरुक्मभवने आर्द्रवस्त्राण्यमुञ्चत ॥५८॥

सब सखियोंके सहित, श्रीकिशोरीजीके समेत विरजाजीसे वाहर निकल कर उन्होंने किनारेके स्वर्ण भवनमें गीले वस्त्रोंको उतारा ॥५८॥

परिधाय सुवस्त्राणि कोमलानि प्रियाप्रियौ ।
केशप्रसाधनं तत्र चक्रतुस्तौ परस्परम् ॥५९॥

पुनः दोनों सरकार, सुन्दर कोमल वस्त्रों को धारण करके परस्पर केशोंको सजाये ॥५९॥

छविशृङ्गारसङ्काशौ जनदृष्टिमनोहरौ ।
सर्वाभरणवस्त्राढ्यौ रेजतू रत्नमण्डपे ॥६०॥

छवि-शृङ्गारके सदृश, अतुलनीय सौन्दर्य युक्त, दर्शन करने वालोंके नेत्र व मनको हरण करने वाले, सभी वस्त्र भूषणोंसे युक्त, वे दोनों ही सरकार रत्नमय मण्डपमें विराजमान हुये ॥६०॥

सख्यस्तथाविधास्तत्रालङ्कृताः कनकप्रभाः ।
स्वसेवावस्तुहस्ताश्च विरजापार्श्वयोर्द्वयोः ॥६१॥

उसी प्रकार वस्त्र भूषणादिका शृङ्गार धारणकी हुई, सुवर्ण के समान कान्तिवाली वे सखियाँ अपने हाथोंमें सेवाकी वस्तुयें लीहुई श्रीयुगलसरकारके दाहिने-वायें भागमें सुशोभित हुईं ॥६१॥

शृङ्गारार्तिक्यमथ ता विधाय परमादरात् ।
भोज्यं चतुर्विधं ताभ्यामयच्छनपड्रसैर्युतम् ॥६२॥

तदनन्तर शृङ्गार आरती करके उन सखियोंने बड़े ही आदर पूर्वक, श्रीयुगल सरकारको छ रसोंसे युक्त, चारो प्रकारके भोजनोंको अर्पण किया ॥६२॥

मणिपीठे समास्थाय कोमलांशुकवेष्टिते ।
भोजयामासतुः प्रेम्णा मिथः श्रीदिव्यदम्पती ॥६३॥

कोमल वस्त्र बिछी हुई मणिमय चौकी पर विराजमान होकर दिव्यदम्पती (अप्राकृत श्रीसाकेत-धाम-विहारी, अनन्त ब्रह्माण्डनायक युगलसरकार श्रीसीतारामजी महाराज) परस्पर एक दूसरेको अलौकिक प्रेमपूर्वक भोजन कराने लगे ॥६३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

सुषमामाधुरीमाराद्वीक्षमाणास्तयोः सुखम् ।
महानन्दरसं नेत्रपुटाभ्यां तृषिताः पपुः ॥६४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये ! दर्शनोंकी अत्यन्त प्यासी सखियाँ, श्रीयुगलसरकारकी सबसे श्रेष्ठ छवि-माधुरीका समीपसे दर्शन करती हुईं अपने नेत्ररूपी दोनोंसे उस महान आनन्द रसको पान करने लगीं ॥६४॥

अलभ्यो दर्शनानन्दो ह्येष तत्कृपया विना ।
प्रतिश्रुत्येतदहं वच्मि भुजमुत्थाय वल्लभे ! ॥६५॥

हे प्रिये ! मैं भुजा उठाकर प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि श्रीयुगल सरकारका यह दर्शन-सुख बिना उनकी कृपाके अलभ्य ही है ॥६५॥

चन्द्रकलोपसंस्था तु सव्ये स्नेहपरा द्वयोः ।
धृत्वा करेण भृङ्गारं पश्यन्त्यमितसौभगम् ॥६६॥

श्रीचन्द्रकलाजीके समीपमें श्रीस्नेहपराजी दोनों सरकारके बायें भागमें सुवर्णका जलपात्र लिये, उनके असीम सौन्दर्य का दर्शन करती हुई खड़ी हो गयीं ॥६६॥

चारुशीला तथा दक्षे पार्श्वके सुमहाद्युतिः ।
सुकर्करीं करे धृत्वा संस्थिताऽऽलिव्रजान्विता ॥६७॥

और अत्यन्त कान्तिसे युक्त श्रीचारुशीलाजी अपने करकमलमें सुवर्णकी झारी लेकर सखीवृन्दोंके सहित विराजमान हुईं ॥६७॥

एवं च भोजनं तत्र कारयित्वा यथेप्सितम् ।
पाययित्वा सुधातोयं ताभ्यां वीटीरथार्पयन् ॥६८॥

इस प्रकार सखियोंने अपनी इच्छानुसार श्रीयुगलसरकारको भोजन कराके तथा अमृतके समान लाभकारी सुन्दर जल पिलाकर, उन्हें पानके बीरा अर्पण किये ॥६८॥

इङ्गितं प्रेक्ष्य मैथिल्याः श्रीमल्लक्ष्मीनिधेः स्वसुः ।
अचिरादानयामासू राजनौकां सुविस्तृताम् ॥६९॥

श्रीमान् लक्ष्मीनिधिभइयाजूकी बहिन श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके सङ्केतको देखकर उन्होंने शीघ्र लम्बी-पर्याप्त (काफी) चौड़ी राजनौका मँगाई ॥६९॥

तां नानारचनोपेतां मणिरत्नविभूषिताम् ।
मृदुपरिच्छदैः स्निग्धैः शोभमानां ध्वजोच्चकाम् ॥७०॥

अनेक प्रकारकी रचनाओं (सजावटों) से युक्त, मणि व रत्नोंसे अलंकृतकी हुई, कोमल तथा सचिक्कण वस्त्रों से शोभायमान, ऊँची ध्वजावाली उस नौका पर ॥७०॥

आरुरोहानवद्याङ्गी मैथिली प्रेयसा सह ।
संवृता स्वसखीवृन्दैरमरीभिर्यथा शची ॥७१॥

जैसे इन्द्राणी (शची) देवाङ्गनाओंके सहित नौकापर चढ़ती हुई उत्कर्षको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार सर्वाङ्गसुन्दरी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी श्रीप्राणप्यारेजूके समेत, अपनी सखियोंके साथ नौका पर चढ़ते हुये, शोभाको प्राप्त हुईं ॥७१॥

छत्रचामरहस्ताश्च काश्चिद्व्यजनपाणयः ।
मयूरपिच्छगुच्छांश्च रत्नदण्डोपशोभितान् ॥७२॥
आदायाङ्ककरे काश्चिद्दर्पणांस्तावरीलयन् ।
काश्चिद्राजोपचारांश्च गृहीत्वा सम्मुखे स्थिताः ॥७३॥

कुछ सखियाँ छत्र-चामर हाथमें ली हुई कुछ पङ्खोंको हाथमें धारण की हुई, कुछ जवाहर (बहुमूल्य चमकीले पत्थरोंके) बनी हुई दण्डियोंसे सुशोभित मोरछलोंको ॥७२॥ कुछ सखियाँ शीशाओंको अपनी हथेलीमें ली, हुई उन दोनों सरकारकी सेवा करने लगीं, कुछने और, राजोचित सेवोपयोगी सामग्रियोंको ली हुई उनके सम्मुख विराजीं ॥७३॥

नाना गत्या च वाद्यानि काश्चित्ता वादयन्ति हि।
अदृष्टपूर्वं विविधं चक्रिरे नृत्यमङ्गनाः ॥७४॥

कुछ सखियाँ नाना प्रकारकी गतिसे वाजाओंको बजाने लगीं, और कुछ, कभी पूर्व में न देखा हुआ अनेक प्रकारका नृत्य करने लगीं ॥७४॥

तयोरेव स्वरूपं च लीलां धाम च नाम च।
ननृतुस्ता हि गायन्त्यः सुपद्यैः स्वरचनात्मकैः ॥७५॥

पुनः दोनों सरकारके नाम, रूप, लीला धामोंको, अपने रचे हुये पदोंके द्वारा गाती हुई नृत्य करने लगीं ॥७५॥

तत्परास्तद्गतप्राणास्तत्पदाम्भोजषट्पदाः।
मिथिलायां समुत्पन्नाः सूरयोऽभीष्टयोनिषु ॥७६॥

हृदयमें एक श्रीमिथिलेशनन्दनीजूकी प्रधानता रखने वाले, उन्हींमें अपने प्राणोंको अर्पण किये हुये तथा उन्हींके श्रीचरणकमलोंमें भँवरेके समान अपनी चित्तवृत्तिको लगाये हुये, उनकी महिमा को जानने वाले, दिव्यधाम-निवासी, भक्तवृन्द, श्रीमिथिलाजीमें अपनी इच्छामयी योनियोंमें उत्पन्न ॥

द्रष्टुं पुत्र्या विदेहस्य विहारं परमाद्भुतम्।
आविर्भूतास्तदानीं ते मृगपक्ष्यादिरूपिणः ॥७७॥

श्रीविदेहनन्दिनीजूके उस परम-आश्चर्यमय विहारका दर्शन करनेके लिये, उस समय मृग-पक्षी आदिके स्वरूपों में प्रकट हो गये ॥७७॥

दम्पत्योस्ते विहारं चापश्यन्ननिमिषेक्षणाः।
तेषां भाग्योदयं दिव्यं न शेषो वक्तुमर्हति ॥७८॥

और वे पलक तक मारना छोड़कर, श्रीयुगलसरकारके विहारका दर्शन करने लगे। उनके इस दिव्य भाग्योदयका शेष (सहस्रमुख तथा दो सहस्र जिह्वावाले) भी वर्णन करनेको समर्थ नहीं हैं ७८

येषां प्रिये! विहारोऽयं तयोः स्याद्दृष्टिगोचरः।
स्यान्मनोगोचरो यद्वा त एव पुण्यकृत्तमाः ॥७९॥

हे प्रिये! जिन सौभाग्यशालियोंको श्रीयुगल-सरकारके इस विहारका प्रत्यक्षमें अथवा ध्यानमें भी दर्शन प्राप्त होवेगा, वे निश्चय ही सभी पुण्यशालोंमें परम श्रेष्ठ हैं ॥७९॥

अप्राकृतजनैर्भाव्यो विहारश्चायमद्भुतः ।
स्वप्नेऽपि च न वै द्रष्टुं शक्यतेऽधमजन्तुभिः ॥८०॥

क्योंकि इस विहारका ध्यान भी अप्राकृत (दिव्य साकेतधाम निवासी भक्त) जन ही कर सकते हैं अधम जीवोंको इस दिव्य विहारका दर्शन स्वप्नमें भी होना असम्भव है ॥८०॥

सोऽयं ते कथितो देवि ! यथा शक्त्या यथा श्रुतम् ।
भावयन्ती सदा तं त्वं जीवन्मुक्ता भविष्यसि ॥८१॥

इति द्विषष्टितमोऽध्याय ॥६२॥

हे देवि ! (दिव्य मति युक्ते) उसी विहारको मैंने जिस प्रकार श्रीलोमशजी-महाराजके मुखार-विन्दसे श्रवण किया था, उसी प्रकार तुम्हारे प्रति यथा शक्ति कथन किया है, उसे सदा ध्यान करती हुई तुम, जीतेजी मुक्त हो जाओगी ॥८१॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

अपनी सखियों के नित्यसंयोग-सुख प्रदानार्थ श्रीकिशोरीजीकी प्यारेसे प्रार्थना तथा उनकी आज्ञासे लीलादेवी द्वारा श्रीरामभद्रजीको प्रमोदवनके समेत श्रीअयोध्याजी भेजकर, उस लीलाको स्वप्नवत् करना—

श्रीलोमश उवाच ।

बहुरात्रि गतां वीक्ष्य सख्यश्चैव प्रियाप्रियौ ।
सालसाम्भोजपत्राक्षौ नित्यनूतनदम्पती ॥१॥
सुकुमारौ सुभाङ्गौ च जृम्भमाणौ मुहुर्मुहुः ।
उभौ तौ प्रार्थयामासुर्बद्धाञ्जलिपुटा नताः ॥२॥

श्रीलोमशजी महाराज बोले—हे मुने ! सखियाँ अधिक रात्रि व्यतीत हुई जानकर, कमलदलके समान सुन्दर नयन, सदा एक रस नवीन रहनेवाले, युगल सरकारको आलस्य युक्त देखकर ॥१॥ सुकुमार अवस्थासे युक्त सुन्दर प्रकाशमान सभी अङ्गोंवाले तथा बारम्बार जम्हुआई लेते हुये उन दोनोंसे हाथ जोड़े हुये नमस्कार करके, प्रार्थना करने लगीं ॥२॥

सख्य ऊचु ।

अहो ! वल्लभ ! रासेश ! रसज्ञे ! प्राणवल्लभे ! ।
दृश्यतां द्विजराजोऽयं नैर्ऋतीं दिशामाश्रितः ॥३॥

सखियाँ बोलीं:-हे रासेश ! (भक्तों को अपना स्वामी मानने वाले) हे ! प्यारे ! हे रसज्ञे (श्रीप्यारेजूके स्वरूपको वस्तुतः जानने वाली) श्रीप्राणप्यारीजू ! देखिये चन्द्रदेव ! दक्षिणपश्चिमकी दिशामें अब पहुँच गये हैं अर्थात् अब अर्द्ध रात्रिसे ऊपर समय जारहा है ॥३॥

विसृज्यतामयं तस्मान्नौविहारो मनोहरः ।
इदानीमालिभिश्चैव संवेशायाधिगम्यताम् ॥४॥

अत एव अब इस मनोहर नौका-विहारको विश्राम दीजिये और सखियोंके समेत शयन करनेके लिये पधारनेकी कृपा कीजिये ॥४।

श्रीलोमश उवाच।

तथेत्युक्त्वा विशालाक्षौ मुक्तालकशिरोरुहौ ।
न्यस्तान्योन्यभुजौ नाव आगत्योत्तेरतुस्तटम् ॥५॥

श्रीलोमशजी महाराज बोले:-हे मुने ! सखियोंकी इस प्रार्थनाको सुनकर, खुले घुंघुराले केश वाले, वे विशाल नयन श्रीयुगलसरकार "ऐसा ही करेंगे" कहकर, एक दूसरेकी भुजाओंको अपने कन्धे पर रक्खे हुये, किनारे आकर नावसे उतरे ॥५॥

सर्वाभिर्मौक्तिकागारे पयःपानं विधाय च ।
पर्यङ्कोपरि भव्याङ्गावशयातामुशच्छवी ॥६॥

पुनः सब सखियोंके सहित मौक्तिकागार नामके महलमें पधार कर, वहाँ दुग्धपान करके मनोहर छबिसे युक्त ध्यान करने योग्य श्रीअङ्गवाले उन दोनों सरकारोंने पलङ्गपर शयन किया । ६॥

शनैराह तदा रामः प्रणयात्प्रणयप्रियाम् ।
स्पृष्ट्वा चिबुकमब्जाक्षो मुखासक्तविलोचनः ॥७॥

तब घट-घटमें रमण करने वाले प्यारे श्रीरामभद्रजू, प्रेमपर है प्यार जिनका उन अपनी श्रीप्रियाजीके श्रीमुखारविन्दका टकटकी लगाकर दर्शन करते हुये तथा अपने कमलदलके समान हाथकी सुकोमल अङ्गुलियोंसे उनकी थोढ़ीका स्पर्श करके बड़े प्रेम पूर्वक धीरेसे बोले ॥ ७ ॥

श्रीराम उवाच ।

आवयोर्न हि भेदोऽस्ति न वियोगश्च वस्तुतः ।
प्राणभूताऽसि मे त्वं च प्राणभूतोऽस्मि ते यतः ॥८॥

हे श्रीप्रियाजू ! हमारे और आपमे कुछ भेद है नहीं, न हमारा और आपका कभी वियोग ही हो सकता है, क्योंकि आपतो मेरी प्राण स्वरूपा है और मैं आपका प्राणस्वरूप हूँ ॥८॥

आवयोरवतारश्च सुखार्थं सर्वदेहिनाम् ।
मर्यादाशिक्षणार्थाय चरित्रैर्लोकवेदयोः ॥९॥

हमारा और आपका अवतार अपने शील स्वभाव, आचरणादिकोंके द्वारा सभी प्राणियों को सुखदेनेके लिये तथा अपने आदर्शमय चरित्रोंके द्वारा लोक और वेदकी मर्यादाकी शिक्षा देनेके लिये है ॥९॥

तस्मात्प्रत्यक्षरूपेण मयीहस्थे त्वया सह ।
लोकापवादो भविता मर्यादोल्लङ्घनं तथा ॥१०॥

इस लिये आपके सहित प्रत्यक्षरूपमे यहाँ मेरे रह जाने पर, लोक निन्दा भी होगी और मर्यादा का उल्लङ्घन भी होगा ॥१०॥

इतोऽहं यदि गच्छामि वियोगाग्निं कथं त्विमाः ।
क्षमिष्यन्ते प्रिये ! सख्यो रञ्जिता ये यथेप्सितम् ॥११॥

और यदि मैं यहाँ से चला ही जाता हूँ, तो मेरे द्वारा इस प्रकारका इच्छानुसार आनन्द प्राप्त कराई हुई ये सखियाँ, वियोगके कष्टको किस प्रकार सहन कर सकेंगी ? ॥११॥

पश्य कीदृङ् निरीक्षन्ते शयानौ नौ मृगीक्षणाः ।
सौकुमार्यं समीक्ष्यास्यां क्लेष्टुमुत्सहते तु कः ॥१२॥

हे श्रीप्रियाजू ! देखिये हरिणीके समान नेत्रवाली, ये सखिया शयन किये हुये हम दोनोंका किस प्रकार उत्सुकता पूर्ण दृष्टिसे दर्शन कर रही है ? भला इनकी सुकुमारताको देखकर, कौन इन्हें कष्ट देनेका उत्साह करेगा ? ॥ १२ ॥

मर्यादोलङ्घनभयात्केवलं गन्तुमिच्छते ।
कृपयोपायमाचक्ष्व यतो नैताः स्पृशेदघम् ॥१३॥

मेरे यहाँ रहजानेसे लोकमर्यादा भङ्ग हो जायेगी, केवल इसी भयसे मैं श्रीअयोध्याजी जाना चाहता हू, इस लिये कृपा करके मुझे वह उपाय बतलाइये, जिससे मेरे वियोगका दुःख इन आपकी ... छू भी न सके ॥१३॥

न परोक्षोऽस्मि ते जातु निमिषार्द्धमपि प्रिये !
नानारूपैश्च सन्तोषतत्परस्तव चानिशम् ॥१४॥

हे प्रिये ! और आपके लिये तो मैं आधे पलके लिये भी दृष्टिसे ओझल नहीं होता, बल्कि अनेक रूपोंसे रात दिन आपको सन्तुष्ट रखनेमें ही तत्पर रहता हूँ ॥१४॥

स्वविचारो मया प्रोक्तो भवत्विल्येव तन्न तु ।
अत एव यथा योग्यं भवती वक्तुमर्हति ॥१५॥

यह केवल अपना विचार मैंने आपसे निवेदन किया है, परन्तु ऐसा ही हो अर्थात् हम यहाँ से चले ही जावें, यह हमारा भाव नहीं है। इस लिये मुझको अब जो उचित हो, वही आप कहनेकी कृपा करें ॥१५॥

अहं ते सर्वदा कान्ते ! केवलं कार्यसूचकः ।
त्वं कर्त्री कारयित्री च नात्र कार्या विचारणा ॥१६॥

हे श्रीप्रियाजू ! मैं तो सदा आपको केवल कार्यकी सूचना ही देनेवाला हूँ, किन्तु कराने, करने वाली तो आपही हैं, अतएव मेरे कहने पर आप किसी प्रकारका सन्देह न करेंगी, जो उचित हो वही कहें, आप जो कहेंगी मैं वही करूँगा ॥१६॥

श्रीलोमश उवाच ।

श्रुत्वा प्राणप्रियस्यैतद्वाक्यं वाक्यविशारदा ।
धैर्यमालम्ब्य तं श्लक्ष्णमवोचत्साश्रुलोचना ॥१७॥

श्रीलोमशजी बोले-हे मुने ! श्रीप्राणप्यारेजूके इस वचनको सुनकर, शब्दके भावको पूर्ण समझने वाली, श्रीमिथिलेशराज दुलारीजूके नेत्रोंमें आँसू भर आये, तथापि धीरज धारण करके श्रीप्यारेजूसे, बड़ी कोमलतासे बोलीं ॥१७॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

यदुक्तं भवता प्रेष्ठ ! तत्सत्यं कार्यमेव हि ।
आसां सुखाय कर्त्तव्यमावाभ्यामपि चिन्तनम् ॥१८॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! आपने जो कहा है वह सत्य है और वही करना भी उचित है, परन्तु हम और आप दोनों को ही इन सखियोंके सुखके लिये कुछ विचार करना भी आवश्यक है ॥१८॥

मम प्राणप्रिया ह्येताः सर्वाः सख्यः सुलक्षणाः ।
धर्मज्ञा रतिमोहिन्यो विदुष्यः प्रेमविग्रहाः ॥१६॥

क्योंकि ये सभी सखियाँ प्रेमकी मूर्त्ति, सब रहस्योंको जानने वाली, अपने सौन्दर्य से रतिको भी मुग्ध करने वाली और धर्मके रहस्यकी भली भाँति जाननेवाली, सुन्दर लक्षणोंसे युक्त मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं ॥१६॥

सेवानन्दाः स्वभावज्ञा इङ्गितज्ञा मृगीदृशः ।
श्रेष्ठाः कारुण्यपात्राणां नोपेक्ष्या जातुचित्त्वया ॥२०॥

ये मेरी सेवामें ही आनन्द माननेवाली तथा मेरे स्वभाव व इशारों को समझने वाली, सभी कृपा पात्रोंमें श्रेष्ठ हैं, अत एव इनकी आप कभी उपेक्षा न कीजियेगा ॥२०॥

सुखं ह्यासां सुखेनैव दुःखं दुःखेन मे प्रिय !
एतद्विचार्यं कर्त्तव्यं कर्त्तव्यं विदुषा त्वया ॥२१॥

हे प्यारे ! इन सखियोंके सुखसे ही मुझे सुख और दुःखसे दुःख है, यह विचार करके सब उपायों को जानने वाले आप इन सबों को जैसा करनेमें सुख समझें वैसा ही कीजिये ॥२१॥

संयोगसुखमेवासां यथा स्यात्प्राणवल्लभ !
चिराय नचिरादेव तथा कर्तुं समुद्यताम् ॥२२॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! इन सखियोंको आपका संयोग सुख, जिस प्रकार सदाके लिये शीघ्र ही प्राप्त हो जावे, वैसा ही करनेके लिये उद्यत होवें ॥२२॥

श्रीलोमश उवाच ।

प्रिययोक्तं निशम्याच इदं रघुकुलोद्वहः ।
धन्या अहो इमा आल्यो यासु त्वचेदृशी कृपा ॥२३॥
मम मान्यतमा ह्येताः सम्बन्धात्तव शोभने !
आसां प्रियं करिष्यामि यथा शक्त्या तु सर्वदा ॥२४॥

श्रीलोमशजी बोले:-हे मुने ! श्रीप्रियाजूके इन वचनोंको सुनकर, श्रीरघुकुलनन्दनजी बोले-हे सर्वगुणसुन्दरी श्रीप्रियाजू ! ये सखियाँ धन्य है जिनके प्रति आपकी ऐसी असीम कृपा है । आपके सम्बन्धसे ये निश्चय ही, मेरे द्वारा सबसे अधिक सम्मान पानेके योग्य हैं, अत एव मैं यथा शक्ति अवश्य इन सबका सदा ही प्रिय (प्रसन्नता कारक कार्य) करता रहूँगा ॥२३॥२४॥

शृणु वक्ष्यामि ते स्वप्नं निशान्तेऽद्यावलोकितम् ।
भविष्यं तेन बुद्ध्वैहि सन्तोषं भक्ततत्परे ! ॥ २५॥

हे भक्तोंके हित चिन्तनमें तत्पर रहने वाली श्रीप्रियाजू ! आज प्रातः कालके समयमें मैंने जो स्वप्न देखा था, उसे आपके प्रति निवेदन करता हूँ आप श्रवण कीजिये और उस स्वप्नसे भविष्य की वार्तोको समझकर सन्तोषको प्राप्त होइये ॥२५॥

अहं क्रीडासमासक्तः सखिभिर्धृतकन्दुकः ।
दृष्टो ज्योतिर्विदा तर्हि पथिकेनाग्रजन्मना ॥ २६ ॥

हे श्रीप्रियाजू ! मैं गेन्दको अपने हाथमें लिये हुये सखाओंके साथ खेलमें लगा हुआ था, उस समय एक यात्री ज्योतिषी ब्राह्मण पण्डितने हमें देखा ॥२६॥

उक्तोऽस्मि तेन विदुषा एहि पश्यामि ते करम् ।
ब्राह्मणो गणको ह्यस्मि भद्रं ते नृपनन्दन ! ॥ २७ ॥

उन पण्डितजीने मुझसे कहा हे नृपनन्दन श्रीवत्सजू ! आपका कल्याण हो, मैं ब्राह्मण ज्योतिषी हूँ, आओ आपका हाथ देखूँ ॥२७॥

इत्युक्तस्तमुपागम्य प्रणम्याहं पुरःस्थितः ।
आशीर्भिरभिनन्द्यासौ हस्तचिन्हान्युदैक्षत ॥ २८ ॥

उस ब्राह्मणकी आज्ञाको सुनकर मैं उसके पास जाकर प्रणाम करनेके बाद सामने खड़ा हो गया, वह ज्योतिषी ब्राह्मण अनेक प्रकारके आशीर्वाद द्वारा हमें प्रसन्न करके, मेरे हाथोंके चिन्हों को देखने लगा ॥२८॥

पुनराह भविष्यं मे शृणु वत्स ! निगद्य सः ।
सार्कं महर्षिणा त्वत्स्याद्गमनं परराष्ट्रकम् ॥ २९ ॥

पुनः वह, हे वत्स ! सुनिये-ऐसा मुझसे कहकर भविष्य बताने लगा । आप किसी महर्षिजीके साथ दूसरे राजाके राज्यमें पधारेंगे ॥२९॥

तत्रत्यराजपुत्र्या च तवोद्वाहो भविष्यति ।
ततः कीर्त्तिस्त्रिलोकेषु तव वत्स ! तनिष्यति ॥३०॥

वहाँकी श्रीराजपुत्रीजूसे आपका विवाह होगा । हे वत्स ! उस विवाहसे आपका यश तीनों लोकोंमें फैल जावेगा ॥३०॥

अद्यैव मिथिलायात्रा श्रीप्रमोदवनेन च ।
तव राजकुमार्य्या च सङ्गमोऽपि विलोक्यते ॥३१॥

हे श्रीलालजी ! आज ही श्रीप्रमोदवनके सहित आपकी यात्रा श्रीमिथिलाजी को होगी और आपका उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूसे आज ही मिलन भी होगा ॥३१॥

श्रीराम उवाच ।

एवं भविष्यमाभाष्य भविष्यज्ञो द्विजोत्तमः ।
निर्जगाम बहिर्दृष्ट्यास्तदा मात्राऽस्मि बोधितः ॥३२॥

श्रीरामभद्रजू बोले:-हे श्रीप्रियाजू ! भविष्य को जानने वाला वह श्रेष्ठ ब्राह्मण, इस प्रकार मेरे भविष्यको बताकर, मेरी आँखोंसे ओझल हो गया, तब श्रीअम्बाजीने भी मुझे जगा दिया ३२

दिनचर्यानिमग्नस्तु सायं स्वप्नमथास्मरम् ।
सत्यासत्यपरीक्षार्थं प्रमोदवनमाप्तवान् ॥३३॥

शयनसे उठकर मैं दिनचर्या में लग गया। सायंकाल समय में, पुनः मुझे स्वप्न का स्मरण हो आया, तब उसके सत्य-झूठकी परीक्षाके लिये मैं प्रमोद वनमें पहुँचा ॥३३॥

तद्दृष्ट्वा निष्फलं मत्वा मुदा तस्मिन्वनेऽचरम् ।
तदानीमेव त्वत्सख्या समानीतो वनेन च ॥३४॥

श्रीप्रमोदवन को अपनी श्रीअयोध्याजीमें पाकर, स्वप्न को सर्वथा झूठ मानकर, उसमें आनन्द पूर्वक विचरने लगा। उसी समयमें आपकी सखी श्रीचन्द्रकलाजी प्रमोदवनके सहित मुझे यहाँ ले आई ॥३४॥

इत्थं प्राणेश्वरि ! स्वप्नः सत्यमेव विभाति मे ।
यतोऽस्मि सवनः प्राप्तो मिथिलामद्य पावनीम् ॥३५॥

हे श्रीप्राणेश्वरीजू ! इस प्रकार वह स्वप्न मुझे अब सत्य ही प्रतीत हो रहा है, क्योंकि तदनुसार ही मैं इस समय श्रीप्रमोदवनके सहित सर्वाङ्गपावनी श्रीमिथिलाजीमें विराजमान हूँ ॥३५॥

पुनः समागमोऽप्येव भवत्या साम्प्रतं मम ।
दुर्लभो मनसा चापि संप्राप्तो रसवर्षिणि ! ॥३६॥

हे रस (आनन्द) की वर्षा करनेवाली श्रीप्रियाजू ! पुनः मनसे भी दुर्लभ जो मुझे इस समय आपसे मिलना था, वह भी प्राप्त हो है ॥३६॥

अतो महर्षिणा सार्द्धमायातं मे भविष्यति ।
वाटिकायां तदा मां त्वं द्रक्ष्यसि स्वालिभिः पुनः ॥३७॥

इन दो बातोंके सत्य हो जानेसे मुझे विश्वास है, कि किसी महर्षिजीके साथ मेरा यहाँ अवश्य आगमन होगा, उस समय आप सखियोंके समेत फुलवारीमें मेरा पुनः दर्शन प्राप्त करेंगी ॥३७॥

तदाप्रभृति संयोग आसां नित्यं भविष्यति ।
वियोगः प्रेमवृद्ध्यर्थं मनागेव भविष्यति ॥३८॥

तबसे इन सखियोंको मेरा नित्य संयोग प्राप्त होगा और यदि वियोग होगा भी तो स्वल्प ही प्रेम वृद्धिके लिये ॥३८॥

मिथिलावासिनामर्थे वियोगाक्षमचेतसाम् ।
त्वया सार्द्धं सदाऽत्रैव विहरिष्यामि चालिभिः ॥३९॥

जिन श्रीमिथिलानिवासियोंका चित्त आपका वियोग सहन करनेमें असमर्थ होगा, उनके लिये मैं सखियोंके सहित सदा आपके साथ यहीं विहार करता रहूँगा ॥३९॥

यास्याम्यपररूपेण त्वामुद्वाह्य निजां पुरीम् ।
सन्तोषाय हि सर्वेषामयोध्यापुरवासिनाम् ॥४०॥

और दूसरे स्वरूपसे श्रीअयोध्यानिवासी तथा अन्य सभीको सन्तोष करानेके लिये मैं आपको विवाह करके अपनी श्रीअयोध्या पुरीको जाऊँगा ॥४०॥

एवं कृते हि सर्वेषां भविष्यति हितं सदा ।
मर्यादा पालनं चैव तथाऽपि लोकवेदयोः ॥४१॥

हे श्रीप्रियाजू ! ऐसा करनेसे निःसन्देह सभीका हित होगा तथा लोक वेदकी मर्यादाका पालन भी ॥४१॥

मिथिलावासिभिर्जन्मबाललीला तवेक्षिता ।
चक्षुष्फलं प्रपद्यन्तां दृष्ट्वोद्वाहमहोत्सवम् ॥४२॥

हे श्रीप्रियाजू ! श्रीमिथिला निवासियोंने आपके जन्म व बाल्यावस्थाकी लीलाओंके दर्शनोंका अपूर्व सौभाग्य प्राप्त किया है, इस लिये वे आपके विवाहोत्सवका भी दर्शन प्राप्त करके, अपने नेत्रोंको पूर्ण सफल करें ॥४२॥

अनुमोदस्व मे वाक्यमिदमानन्ददित्सया ।
अहो प्राणप्रिये ! धैर्यं समालम्ब्य विचक्षणे ! ॥४३॥

हे दिवाहितका पूर्ण ज्ञान रखने वाली श्रीप्राणप्यारीजू ! श्रीमिथिला निवासियोंके लिये इस आनन्दको भी प्रदान करनेकी इच्छासे मेरे कहे हुये वचन (विचार) का अनुमोदन कीजिये ॥४३॥

उपायं वै विधत्तां तं यतोऽहं सवनः प्रिये !
अयोध्याममिगच्छामि रहस्यं वेत्तु नोऽपि कः ॥४४॥

हे श्रीप्रियाजू ! और वह उपाय करें जिससे मैं श्रीप्रमोद वनके सहित श्रीअयोध्याजी पहुँच जाऊँ, पर मेरे यहाँ इस प्रकार आने आदिका यह रहस्य किसीको ज्ञात न हो सके ॥४४॥

स्वप्नवच्च प्रतीयेत ममेहागमनं किल ।
आसां चित्ते कृपारूपे ! तथोपायो विधीयताम् ॥४५॥

हे कृपारूपे श्रीप्रियाजू ! और जिस प्रकारसे इन सखियोंके चित्तमें मेरा यहाँ आना स्वप्नके समान ही प्रतीत हो, वैसा ही उपाय करनेकी कृपा करें ॥४५॥

श्रीलोमश उवाच ।

एवमस्त्विति सम्भाष्य दृष्ट्वा सा किङ्करीर्मुहुः ।
अतृप्ता एव मुदिताः पिबन्तीः सुषमामृतम् ॥४६॥

श्रीलोमशजी बोले:–हे मुने ! श्रीप्यारेजूके इस प्रस्तावको सुनकर, वात्सल्य सिन्धु, श्रीमिथिलेश नन्दिनीजू उनसे ऐसा ही होगा कहकर, आनन्दपूर्वक उपमारहित छवि रूपी अमृतका पान करते हुये भी अपनी किङ्करियोंको अतृप्त ही देखकर ॥४६॥

कृपापूर्णविशालाक्षी भविष्यज्ञानसान्विता ।
प्राणेशमुरसाऽऽलिङ्ग्य तन्मुखेन्दुमवेक्षत ॥४७॥

उनके विशालनयन कृपापूर्ण (सजल) हो आये, पर भविष्यके ज्ञानसे वे धैर्य को प्राप्त हो, श्रीप्राणनाथजीको हृदयसे लगाकर, उनके मुख चन्द्रका दर्शन करने लगीं ॥४७॥

लीलादेवी स्मृताऽभ्येत्य स्वामिनीप्राणनाथयोः ।
पुलकाञ्चितगात्रा सा ववन्दे चरणाम्बुजे ॥४८॥

पुनः उनके स्मरण करते ही श्रीलीला देवीजीने, तत्क्षण वहाँ पहुँच कर, अपनी उन श्रीस्वामिनी व श्रीप्राणनाथजूके श्रीचरणकमलोंको रोमाञ्चित शरीर होकर प्रणाम किया ।४८॥

हर्षगद्‌गदया वाचा प्राह बद्धकराञ्जलिः ।
धन्याऽहं भूरिभागाऽहं यद्धि वां कृपया स्मृता ॥४६॥

पुनः वे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे बोलीं:-हे श्रीयुगल सरकार मैं धन्य हूँ और बड़भागिनी हूँ, जो आप दोनों सरकारने कृपा करके मुझे स्मरण किया है ॥४६॥

उपस्थिताऽस्मि वां दासी सेवार्थे करुणानिधी !
क्षमाध्वस्तधरादर्पौ निदेशं दातुमर्हथः ॥५०॥

हे करुणाके निधि तथा अपनी क्षमासे पृथिवीके सहन शीलताके अभिमानका नष्ट करने वाले श्रीप्रियाप्रियतमजू ! मैं दासी आप दोनों सरकारकी सेवाके लिये उपस्थित हूँ, अतः आज्ञा प्रदान कीजिये ॥५०॥

श्रीलोमश उवाच ।

तस्यास्तु प्रश्रितं वाक्यं श्रुत्वा ताविति भाषितम् ।
गम्भीरयोचतुर्वाचा सुप्रसन्नारुणाधरौ ॥५१॥

श्रीलोमशजी महाराज बोले:-हे मुने ! श्रीलीलादेवीके इस प्रकार नम्रता-पूर्वक कहे हुये वचनोंको श्रवण करके, अत्यन्त प्रसन्न अरुण अधर हुये, वे श्रीयुगलसरकार गम्भीरता पूर्ण वाणी-से बोले ॥५१॥

श्रीनित्यदम्पतीऊचतुः ।

स्वप्नदृष्टोपमा लीला क्रियतां ह्यावयोरियम् ।
आसां वियोगजन्याग्निर्हृदयं न प्रतापयेत् ॥५२॥

हे लीले ! हम दोनोंकी इस लीलाको तुम स्वप्नमें देखी हुई के समान कर दो, जिससे वियोग जनित आग इन सखियोंके हृदयको विशेष न तपा सके ॥५२॥

श्रीलोमश उवाच।

तथेत्युक्त्वा ज्वलत्कान्तिरन्तरिक्षस्वरूपिणी ।
चन्द्रकलां समामन्त्र्य निद्रां तत्राजुहाव सा ॥५३॥

श्रीलोमशजी बोले:-हे मुने ! श्रीयुगलसरकारकी इस आज्ञाको सुनकर, जलती हुई कान्ति वाली, उन आकाशस्वरूपा श्रीलीला देवीजीने उनसे "ऐसा ही करूँगी" कहकर तथा श्रीचन्द्र-कलाजीसे सम्मति लेकर निद्रा देवीको बुला लिया ॥५३॥

कुर्वन्त्यः प्रेयसोराल्यो भव्यं शयनदर्शनम् ।
निद्रया ग्रसिता आसंस्तया प्रेरितयाऽखिलाः ॥५४॥

उस निद्रादेवीने श्रीलीलादेवीकी प्रेरणासे, श्रीयुगलसरकारके शयन-समयका मनोहर दर्शन करती हुई सभी सखियोंको ग्रसित कर लिया ॥५४॥

आज्ञां चन्द्रकला प्राप्य प्रियाय आलिसत्तमा ।
प्रापयामास विश्वास्यमयोध्यां प्रति तत्क्षणम् ॥५५॥

श्रीलोमशजी महाराज बोले-हे मुने ! तब श्रीप्रियाजूकी आज्ञा पाकर सभी सखियोंमें श्रेष्ठा श्रीचन्द्रकलाजीने चन्द्रवदन (श्रीप्राणप्यारे) जू को तत्क्षण श्रीअयोध्याजी पहुँचाया ॥५५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सवनस्त्वं यथाऽऽनीतस्तथैव प्रेषितस्तया ।
ततोऽपि निद्रा तास्त्यक्त्वा जगाम कृतशासना ॥५६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! जैसे श्रीप्रमोद वनके सहित आपको यहाँसे श्रीचन्द्रकलाजी ले गयी थीं उसी प्रकार वे श्रीमिथिलाजीसे आपको पुनः यहाँ भेज दिये, उसके पश्चात् लीला देवीकी आज्ञा पूरी करके, निद्रा देवी भी विदा हो गयी ॥५६॥

गतनिद्रा न चापश्यंस्त्वां प्रियातल्पशायिनम् ।
न तं कुञ्जं न तल्पं च न तं कालमृतुं न तम् ॥५७॥

निद्राके चली जाने पर उन सखियोंने श्रीप्रियाजूके पलङ्ग पर शयन किये हुये न आपको, न उस पलङ्गको, न उस कुञ्जको, न उस तीसरी पहरकी रातके समयको, न उस शरद् ऋतुको ही देखा ॥५७॥

अपाश्यन्नपि की सीतामेकां सिंहासने स्थिताम् ।
सायं सन्ध्योपकालं च रासकुञ्जमनुत्तमम् ॥५८॥
नृत्ये प्रवृत्तिमालीनां वर्षर्तुं च सुखावहम् ।
विस्मिता ददृशुः सर्वा मृगशावकलोचनाः ॥५९॥

मृगछौनेके समान विशाल व चञ्चल नेत्रवाली सभी सखियाँ देखती हैं, कि सायं कालकी सन्ध्या का समय है, उत्तम रास कुञ्ज है, पांच वर्ष से भी कम अवस्थासे युक्त अकेली श्रीललीजी

सिंहासन पर विराज मान हैं ॥५८॥ सुखदाई वर्षाकी ऋतु है, और नृत्य केलिये सखियोंकी प्रवृत्ति हो रही है अतः यह देखकर वे बड़े ही आश्चर्यमें पड़गयीं ॥५९॥

तत्सत्यं किमिदं सत्यं शेकुर्निश्चयितुं न हि ।
न प्रवृत्तिं गता वाणी तासां प्रष्टुं परस्परम् ॥६०॥

अभीजो इतना आनन्द हम देख रही थीं वह सत्य था ? अथवा अब जो देख रही हैं सो सत्य है ? यह वे निश्चय नहीं कर सकीं, एक दूसरेसे पूछनेकी इच्छा होने पर भी, पूछनेके लिये उनकी वाणी ही प्रवृत्त नहीं हुई ॥६०॥

तदानीमेव सख्यौ द्वे मात्रा प्रेषित ईयतुः ।
ते प्रणम्योचतुर्वाक्यं जनन्या भाषितं यथा ॥६१॥

उसी समय श्रीसुनयना अम्बाजीकी भेजी हुई दो सखियाँ, वहाँ आगयीं और जिस प्रकार श्रीअम्बाजीने, कहा था, उसी प्रकार उन्होंने प्रणाम करके निवेदन किया ॥६१॥

मातुः समाकर्ण्य तदा निदेशं सूर्यास्तवेलामभिवीक्ष्य चैव ।
मन्दस्मिता दृष्टिसुधानुवर्षं कृत्वा ययौ तासु गृहं च ताभिः ॥६२॥

इति त्रिषष्टितमोऽध्याय ॥६३॥

श्रीअम्बाजीकी आज्ञाको श्रवण करके तथा सूर्यास्त होनेका समय देखकर मन्दमुस्कान वाली श्रीललीजीने सब सखियोंके ऊपर अपनी चितवन रूपी अमृतकी वर्षा करके उन सबोंके सहित अपने भवनको पधारीं ॥६२॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

श्रीकिशोरीजीके कनकवनसे किञ्चित् विलम्बसे महलमें लौटनेके कारण विरह-व्याकुला श्रीसुनयना अम्बाजीका अपनी श्रीराजदुलारीजीके प्रति प्रेममय सम्वाद ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आगतेऽत्र त्वयीत्थं प्रिय ! प्रेषिते द्वे वयस्ये तदानीमुपाजग्मतुः ।
मातुरादेशमालोक्य मे स्वामिनीमूचतुस्तां प्रणम्याथ ते सादरम् ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! आपके श्रीअवध चले आने पर, श्रीअम्बाजीकी आज्ञासे

उनकी भेजी हुई दो सखियाँ, हमारी श्रीस्वामिनीजूके पास आईं और दर्शन करके उन्होंने आदर पूर्वक उन्हें श्रीअम्बाजीकी आज्ञा कह सुनाई ॥१॥

तं समाश्रुत्य ता लीलया मोहिता दृष्टिपीयूषवर्षैर्विबोध्याञ्जसा ।
ताभिरम्भोजपत्रार्द्रचार्वीक्षणा मध्यगा सेव्यमाना जगामालयम् ॥२॥

श्रीअम्बाजीकी उस आज्ञाको सुनकर, श्रीलीला देवीजीके द्वारा भ्रममें डाली हुई, उन सखियोंको अपनी दृष्टि रूपी अमृतकी वर्षासे सावधान करके, सबके बीचमें विराजमान हुई, कमलदलके समान दयायुक्त सुन्दर नेत्रोंवाली श्रीललीजू, उन सबोंसे सेवित होती हुई महलको पधारीं ॥२॥

काञ्चनारण्यशोभाप्रसक्तेक्षणा राजहंसाभगत्या ततः प्रस्थिता ।
लीलयाऽऽह्लादयन्ती हि ता नैकया किञ्चिदस्माद् विलम्बोऽभवद्वर्त्मनि ॥३॥

श्रीकञ्चनवनकी शोभामें आसक्त नेत्र किये हुई श्रीमिथिलेश राजदुलारीजू, उन सखियोंको अपनी अनेक प्रकारकी बाल-लीलाओंके द्वारा आह्लाद युक्त करते हुये, राज हंसके समान मस्तचाल पूर्वक, उस रासकुञ्जसे प्रस्थान कर रही थीं, इस लिये मार्गमें कुछ विलम्ब हो गया ॥३॥

तेन मात्रा पुनः शङ्कया प्रेपितामालिमानेतुमेणार्भकालोचना ।
वीक्ष्य दूरात्प्रहर्षान्विता भक्तितः साञ्जलिस्तां प्रणम्य स्थिता सुस्मिता ॥४॥

उस विलम्बके कारण सन्देह वश, श्रीसुनयना अम्बाजीने उन्हें बुलानेके लिये अपनी सखीको भेजा। उस सखीको दूरसे ही आते देखकर मृगछौनीके समान सुन्दर नेत्र वाली श्रीललीजीने हर्ष युक्त हो, हाथ जोड़े श्रद्धा पूर्वक उसे प्रणाम करके मन्द मुस्काते हुये खड़ी हो गयीं ॥४॥

संगृहीताङ्गुलि प्रेमपूर्णाशया तां परिष्वज्य चाशीर्भिरानन्द्य सा ।
वाक्यमूचे त्विदं साश्रुनेत्रा प्रिये ! श्रूयतां चेति सम्भाष्य मेऽक्ष्युत्सवे ! ॥५॥

जब वह सखी समीपमें पहुँची, तो श्रीललीजीने उसकी अङ्गुलीको पकड़ लिया, तब प्रेम पूर्ण हृदय वाली श्रीअम्बाजीकी वह सखी उन्हें हृदयसे लगाकर तथा मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान करके अपने नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरे हुये बोली:—हे मेरे नेत्रोंको उत्सवके समान सदा नूतन आनन्द प्रदान करने वाली प्यारी (श्रीललीजी ! सुनिये ॥५॥

सख्युवाच ।

पुत्रिके ! त्वद्दिदृक्षातुरा ते प्रसूर्मार्गमन्वीक्षते प्रेक्ष्य चास्तं रविम् ।
त्वं तु लीलासमासक्तचित्ताऽसि संत्यज्य तस्याः स्मृतिं बाल्यनैसर्गतः ॥६॥

हे पुत्रिके ! सूर्य भगवान्को अस्त हुये देखकर आपके दर्शनोंकी इच्छासे अत्यन्त व्याकुला, आपकी श्रीअम्बाजी वारम्बर आपके मार्गको देख रही हैं, परन्तु बाल्यावस्थाके स्वभावके कारण आप उनकी सुधि भुलाकर अपने चित्तको खेलमें तल्लीन कर रक्खे हैं ॥६॥

मा विलम्बं विधत्स्वेन्दुपूर्णानने ! क्रीडयाऽलं द्रुतं गच्छ तां स्वलिताः ।
हन्त वत्से ! हि नोचेत्तु माताऽधुना सद्य एवैष्यति प्रान्विता चिन्तया ॥७॥

हे पूर्णचन्द्रमाके समान आह्लादकारी प्रकाशमय मुखवाली श्रीललीजी ! अब बहुत खेल हुआ, अब शीघ्र यहाँसे अम्बाजीके पास पधारिये, विलम्ब न कीजिये । हे वत्से ! नहीं तो आपकी माताजी भी विशेष चिन्तित होकर अभी शीघ्र आजावेंगी ॥७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युपाकर्ण्य सख्याः स्वमातुर्वचश्चारु विस्मेरबिम्बाधरा ह्यब्रवीत् ।
गच्छ गच्छामि मातर्भवत्या समं मे विलम्बोऽभवद्भूरि संक्रीडने ॥८॥

अपनी श्रीअम्बाजीकी सखीके इस वचनको सुनकर, सुन्दर मुसकान युक्त, बिम्बाफलके सदृश लाल अधर वाली श्रीललीजी बोलीं-हाँ, मइया खेलने मुझे अवश्य विशेष विलम्ब हो गया है, चलो मैं आपके साथ चलती हूँ ॥८॥

एतदुक्त्वा वचः शर्वरीशानना राजवीणास्वना ! हृच्चिदानन्ददम् ।
अभ्यगादालयं तद्वनात्सत्वरं मातुरन्तःपुरं सर्वलोकेश्वरी ॥९॥

राजवीणाके समान सुन्दर स्वरवाली, समस्त लोकोंकी स्वामिनी वे श्रीचन्द्रमुखी श्रीललीजी श्रीअम्बाजीकी सखीसे हृदयको भगवदानन्द प्रदान करने वाला यह वचन कह कर, बड़ी शीघ्रता पूर्वक श्रीकञ्चनवनसे, श्रीअम्बाजीके अन्तः पुर को पधारीं ॥९॥

आससादान्तिकं यर्हि सा वेश्मनो विह्वलाम्बा बहिः स्वागतायागता ।
शीघ्रगत्याऽङ्कमारोप्य साम्ब्वीक्षणा संस्थिता मूर्त्तिकल्पेव भूमौ सुताम् ॥१०॥

जब वे श्रीअम्बाजीके महलके समीपमें पहुँचीं, तब विह्वल हुई श्रीअम्बाजी उनका स्वागत करने के लिये बाहर आगयीं । और सजलनेत्र हो दौड़ कर, उन्हें गोदीमें लेकर भूमि पर मूर्त्तिके समान खड़ी हो गयीं ॥१०॥

धैर्यमालम्ब्य राज्ञी गृहीताङ्गुलीमभ्यगान्मन्दिरं सावरोधं पुनः ।
मञ्चमास्थाय तामङ्कमादाय सा वाक्यमूचे त्विदं बाष्पपूर्णेक्षणा ॥११॥

पुनः श्रीअम्बाजी धीरज धारण करके, श्रीललीजीकी अङ्गुलीको पकड़ कर, अपने अन्तः पुरके भीतर पधारीं, वहाँ उन्हें गोदमें लेकर सिंहासन पर विराज मान हो, नेत्रोंसे आँसू बहाते हुये उनसे वे यह वचन बोलीं:-॥११॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे प्रिये ! त्वं तु विस्मृत्य मां सर्वथा बाललीलाप्रसक्ता भवस्यालिभिः ।
त्वां विना शान्तिमाप्नोति चेतो न मे धैर्यमुत्सृज्य वत्से ! भवत्यार्तिगम् ॥१२॥

हे प्यारी ! आप तो सब प्रकारसे मुझे भुलाकर अपनी सखियोंके सहित बाला-क्रीड़ामें आसक्त हो जाती हैं, परन्तु हे वत्से ! मेरे चित्तको विना आपके शान्ति होती नहीं, अतः वह आपके विना धीरजको छोड़कर बहुत ही दुखी हो जाता है ॥१२॥

पूर्णचन्द्रानने ! त्वामदृष्ट्वा हि मे कल्पतुल्यः क्षणो भाति कृच्छ्रप्रदः ।
त्वां समालोक्य शातं यथा जायते तन्न शक्नोमि वक्तुं कथञ्चित्प्रिये ! ॥१३॥

हे पूर्णचन्द्रानने ! विना आपका दर्शन किये, मुझे एक क्षण मात्रका समय भी कल्पके समान भारी दुख दाई हो जाता है । और हे प्रिये ! आपका दर्शन करके जो मुझे सुख होता है, उसे किसी प्रकार भी कहनेको मैं समर्थ नहीं हूँ ॥१३॥

त्वन्मुखाम्भोजसंद्रष्टुमेणेक्षणे ! लोचने सर्वदा स्तः सतृष्णे मम ।
किं करोमि प्रिये ! मोहिता मे मतिस्तत्र कस्मै न्वहं दूषणं दद्मि वै ॥१४॥

हे हरिणके समान सुन्दर विशाल नेत्रवाली प्यारी श्रीललीजी ! आपके श्रीमुखकमलके दर्शनों के लिये मेरी ये आँखें सदाही तरसती रहती हैं, मैं करूँ क्या ? मेरी मति ही इस प्रकार मोहग्रस्त है, अतः इस विषय में मैं किसको दोष दूँ ? ॥१४॥

पुत्रिके ! त्वं हि तारासि मे नेत्रयोः प्राणभूतास्यसूनां धनं सत्प्रियम् ।
त्वं हि सौभाग्यभूषासि वत्से ! मम त्वां विना जीवितं मे क्षणं दुःसहम् ॥१५॥

हे पुत्रिके ! आप मेरी आँखोंकी पुतली, मेरे प्राणोंकी प्राण और मेरा परम प्रिय धन हैं । हे वत्से ! मेरे सौभाग्यका भूषण भी आप ही हैं, अत एव विना आपके क्षणभर भी मुझे जीवित रहना असह्य (बहुत ही कष्ट कर) हो जाता है ॥१५॥

त्वं ममैवासि न प्रेमदेवालयः किन्तु सर्वस्य विश्वस्य संदृश्यसे ।
आत्मवत्त्वां प्रिये ! सर्व एवेह वै लालयन्त्यूरुभावैर्हि ते जन्मतः ॥१६॥

हे श्रीललीजी! केवल मेरे ही एक प्रेम रूपी देवताका आप मन्दिर नहीं है, बल्कि आप सभी विश्वमात्रके प्राणियोंके प्रेम रूपी देवताका मन्दिर दीखती है, हे प्रिये! क्योंकि सभी चर-अचर प्राणी अपनी आत्माके समान अनेक प्रकारके उच्च भावोंके द्वारा आपका जन्मसे ही लालन करते हैं ॥१६॥

जन्मना त्वत्पुरं चैतदस्त्युज्ज्वलं सर्वलक्ष्म्या युतं निष्कलं शोभनम् ।
रोगदोषादिसंवर्जितं कीर्त्तिमच्छक्रदर्पापहं तापहीनं परम् ॥१७॥

हे श्रीललीजी! जबसे आपका प्राकट्य हुआ है, तबसे यह हमारा नगर अत्यन्त शोभामय, सब प्रकारकी लक्ष्मीसे युक्त, रोग दोषादिकोंसे रहित, कीर्त्तिशाली, इन्द्रके अभिमानको दूर करनेवाला, दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापोंसे पूर्ण रहित, शुद्ध, अखण्ड (ब्रह्मस्वरूप) तथा सर्वोत्कृष्ट है ॥१७॥

ईदृशी नैव शोभा पुरा विश्रुता नेदृगानन्दकालः कदा वा श्रुतः ।
नेदृशी प्रीतिरासीन्मिथो नाभवन्न हन्त नोदीक्षिताश्चित्रलीला अपि॥१८॥

हे प्रिये! जैसी शोभा इस समय मेरे पुर की है, वैसी कभी भी मैंने नहीं सुनी थी, न ऐसा कभी आनन्दका समय भी सुना था, न ऐसी सबोंकी परस्पर कभी प्रीति ही हुई थी, जैसी कि इस समय है। और न ऐसी पहिले कभी आश्चर्यमयी लीलायें ही हुई थीं जैसी इस समय आपके प्राकट्यसे हो रही हैं ॥१८॥

यत्र यत्रानुपश्यामि सर्वत्र हि प्रेमदेवापगा सम्प्रवाहेक्ष्यते ।
बालिका बालका दिव्यरूपान्विता दर्शनाह्लाददाः सद्गुणैरर्चिताः॥१६॥

हे श्रीललीजी! मैं जिधर २ दृष्टि डालती हूँ, उधर उधर सर्वत्र प्रेमकी गङ्गा ही बहती हुई, दिखाई दे रही है, सभी बालक व बालिकायें अपाञ्चभौतिक (पृथिवी, जल, अग्नि, हवा, आकाश तत्व से रहित) स्वरूपसे युक्त, दर्शनसे ही आह्लाद प्रदान करने वाले सद्गुणोंसे विभूषित हो रहे हैं १६

त्वत्परा जन्मतो निर्ममास्त्वद्धियः सच्चिदानन्दरूपा लसन्ति प्रिये !
त्वत्समालोकनानन्दमत्ता हि ते सन्ति सर्वप्रिया आत्मजा वै यथा ॥२०॥

वे जन्मसे ही आपके अनुरागी, सब प्रकारकी ममतासे रहित, केवल आपको जाननेवाले, सत्-चित् आनन्द स्वरूप, आपके दर्शनोंके आनन्दमें मस्त हुए शोभायमान हैं तथा वे सभीको अपने पुत्र-पुत्रीके समान अत्यन्त प्रिय लग रहे हैं ॥२०॥

त्वां जनाः सर्व एवाद्रियन्ते भृशं नाम कीर्त्तिश्च सर्वत्र ते श्रूयते।
मूर्त्तयो देवतानां नमन्ति प्रिये ! लान्ति मत्वा प्रसादं मुदा तेऽर्पितम् ॥२१॥

सभी प्राणी आपका अत्यधिक आदर करते हैं तथा सर्वत्र जिधर देखो उधर आपका ही नाम व यश सुनाई पड़ रहा है। मन्दिरों में पधारने पर देवताओंकी मूर्त्तियाँ भी आपको प्रणाम करती हैं और आपके अर्पण किये हुए पत्र-पुष्पादिकोंको आपके करकमलका प्रसाद मानकर वे बड़े हर्ष-पूर्वक स्वीकार करती हैं ॥२१॥

शाखिनः पत्रपुष्पादिभिः सत्फलैः स्वागतं ते प्रकुर्वन्ति सर्वर्तुषु।
क्षीरमेवं गवां प्रस्रवत्यञ्जसा सीति याते श्रुतौ गोपिकाभ्यः श्रुतम् ॥२२॥

हे श्रीललीजी ! वृक्ष भी पत्र, पुष्प आदिकोंके द्वारा आपका सभी ऋतुओंमें स्वागत करते हैं अर्थात् जिस वृक्षके समीपमें आप पधारती हैं, वह ऋतुका नियम छोड़कर अपने २ योग्य पत्र, पुष्प फलादिकोंके समर्पण द्वारा आपका सत्कार करते हैं, इसी प्रकार मैंने गोपियोंके भी मुखसे यह सुना है कि गाइयोंके कानमें "सी" शब्द पड़ते ही वात्सल्याधिक्यके कारण उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लग जाती है ॥२२॥

अत्र दिव्याङ्गना भूयशो वल्लभे ! लोकबाह्यस्वरूपा विशालेक्षणाः।
प्रागदृष्टाः समायान्ति गच्छन्ति चोपायनानीप्सितान्येव संगृह्य ह ॥२३॥

हे प्यारी ! हमारे यहाँ अलौकिक सुन्दरस्वरूप वाली विशाल-लोचना दिव्य स्त्रियाँ, जिनका पहिले कभी दर्शन नहीं हुआ था, वे अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकारकी भेंट लेकर यहाँ बारम्बार आती जाती रहती हैं ॥२३॥

योगिसिद्धर्षयो वह्निकल्पा मुहुर्नारदाद्यास्तथा क्षीणमोहाः प्रिये !।
भिक्षुका वै यथा ऽऽयान्ति च प्रत्यहं पुष्पवृष्टिः पतत्यत्र भूयश्च खात् ॥२४॥

हे प्यारी ! अग्निके समान तेजस्वी, मोहरहित, श्रीनारदजी आदि बड़े-बड़े योगी, सिद्ध, महर्षि वृन्द भी भीख माँगने वालोंके सदृश, बारम्बार प्रति-दिन आते रहते हैं, तथा आकाशसे बारम्बार यहाँ फूलोंकी वर्षा भी होती रहती है ॥२४॥

चेतनास्त्वां जडत्वं जडा वीक्ष्य वै चेतनत्वं व्रजन्तीह चन्द्रानने !।
किं बहूक्त्या ममाशेषमेतज्जगत्त्वन्मयीरं त्वमात्मास्य भातीति मे ॥२५॥

हे श्रीचन्द्रमुखीजू ! आपका दर्शन करके चेतन,जड़ताको और जड़, चेतनताको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् चेतन पशु, पक्षी, नर, मुनि, योगि, सिद्ध देव आदिक यदि आपका दर्शन करते हैं, तो वे देहकी सुधि-बुधि भुलाकर वृक्ष व पत्थर आदिकी मूर्त्तियोंके समान जड़ प्रतीत होने लगते हैं और जड़ (वृक्ष पत्थर आदि) जब आपका दर्शन करते हैं, तो वे चेतन प्राणियोंके सदृश सेवा परायण होजाते हैं, अधिक कहाँ तक कहें ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि यह सारा चर-अचर मय जगत् ही आपका शरीर है और आप इस जगत् रूपी शरीरकी आत्मा हैं ॥२५॥

काऽसि चैतन्न वै तत्त्वतो ज्ञायते स्याद्यदि श्राव्यमेतत्तु मे कथ्यताम् ।
नासि पुत्रीति मन्येऽसि शक्तिः परा यज्ञभूमेः कृपातोऽवतीर्णा स्वयम् ॥२६॥

हे श्रीललीजी ! आप मेरी पुत्री तो हैं नहीं । मैं तो ऐसा मानती हूं कि आप प्रकृतिसे परे आदि शक्ति ही मेरी यज्ञभूमिसे कृपा करके स्वयं प्रकट हुई हैं, पर वास्तवमें आप कौन हैं ? यह मुझे ज्ञात नहीं हो रहा है, यदि यह विषय मेरे सुनने योग्य हो अर्थात् इसे सुननेका मुझे अधिकार हो, तो आप कृपा करके श्रवण कराइये ॥२६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सेत्युपाकर्ण्य वाचं जनन्योदितां सस्मितं प्राह बिम्बाधरा सुस्वना ।
किं प्रजल्पस्यहो मेऽम्ब ! नो रोचते त्वं हि माता ममैवास्मि पुत्री तव ॥२७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! बिम्बाफलके समान जिनके अरुण अधर हैं, वे सुन्दरस्वर वाली, ये श्रीललीजी श्रीअम्बाजीके कहे हुये वचनको सुनकर, मन्द मुस्काती हुई उनसे बोलीं :—हे श्रीअम्बाजी ! अहो आप यह व्यर्थ क्या बक रही हैं, मुझे अच्छा नहीं लगता । क्योंकि मैं आपकी लाली और आप मेरी मां हैं ॥२७॥

अम्ब ! लीलासमासक्तचित्ताऽभवं तेन चात्रागताऽहं विलम्बादरम् ।
त्वं विशेषानुरागिस्वभावाद्धृशं विह्वलत्वं समायास्यदृष्ट्वा हि माम् ॥२८॥

हे श्रीअम्बाजी ! मेरा चित्त खेलमें तल्लीन हो गया था इसी लिये मैं कुछ विलम्बसे आपके पास आई, आप तो विशेष अनुरागी स्वभावके कारण क्षण मात्र भी मुझे न देखकर विह्वलताको प्राप्त हो जाती हैं ॥२८॥

श्रीशिव उवाच ।

संवादो ऽयं धरणितनयाभूमिकन्याजनन्यो-
र्भक्त्या नित्यं सरसहृदयैः पठ्यते श्रूयते वा ।

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! प्रेमपूर्वक श्रीपिताजीको तथा हमारी श्रीस्वामिनीजीको श्रद्धापूर्वक पहिले समर्पण करके, हम सबोंमें वितरण किया ॥९॥

लक्ष्मीनिध्यादयः सर्वे बान्धवो मम तत्र हि ।
रेजिरे रूपसम्पन्नाः पार्श्वयोमें पितुर्द्वयोः ॥१०॥

श्रीलक्ष्मीनिधिजी आदि हमारे सभी मनोहर भाई भी वहाँ श्रीपिताजीके दोनों बगलमें विराजमान थे ॥ १० ॥

समर्प्य हरये सर्वं भोक्तुमाज्ञां प्रदाय नः ।
आचम्यापः स धर्मात्मा स्वयमारभताशितुम् ॥११॥

श्रीपिताजी थालमें सजे हुए उस भोजनको प्रथम भगवान् श्रीहरिको समर्पण करके तथा हम सबोंको भोजन करनेके लिये आज्ञा प्रदान करके धर्मात्मा श्रीपिताजीने जलका आचमन लेकरस्वयं भोजन करना प्रारम्भ किया ॥११॥

ग्रासान् विधाय वै भूयो दिशन्नस्या मुखाम्बुजे ।
महानन्दं प्रयाति स्म रूपशोभानुवीक्षणात् ॥१२॥

श्रीपिताजी बारम्बार कवल (गस्सा) बनाकर,इन श्रीकिशोरीजीके कमलके समान मुखमें देते हुए बारम्बार उनके रूपकी सुन्दरताके दर्शनोंसे महान् आनन्दको प्राप्त हो रहे थे ॥१२॥

अम्बा सुनयना तर्हि समागत्य स्वपाणिना ।
मुदा नः भाशयामास नीलशाटीसुशोभिता ॥१३॥

उसी समय नीली साड़ीसे शोभायमान श्रीसुनयना अम्बाजी आकर, प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथोंसे हम सबोंको पवाने लगीं ॥१३॥

यच्च यच्चेप्सितं वस्तु दिशन्ती विपुलं हि तत् ।
सानुरोधैश्च मानैश्च कारयामास भोजनम् ॥१४॥

जो जो वस्तु हम लोगों को रुचिकर प्रतीत होती थी, उसे बड़े सम्मान व आग्रहपूर्वक प्रचुर मात्रामें देकर उन्होंने सबों को भोजन कराया ॥१४॥

पाययित्वा जलं पश्चात्ततः क्षीरमपाययत् ।
पाचितं वसुयामैश्च सा सपौष्टिकभेषजम् ॥१५॥

पीछे जल पिला कर २४ घण्टे पकाये हुये पुष्टि-कारक, औषधियोंसे युक्त दूध को पिलाया ॥ १५ ॥

प्रदाय पुनराचम्यं नानासौरभमिश्रितम् ।
पक्वताम्बूल वीटीं च दिव्यस्वादुयुतां ददौ ॥१६॥

पुनः आचमन देकर अनेक प्रकारकी सुगन्धिसे युक्त दिव्य स्वादुवाला पानका बीरा प्रदान किया ॥१६॥

एवं संतर्पिताः सर्वा वयं सम्मानपूर्वकम् ।
निवेशिता महारत्नमण्डपे च तया पुनः ॥१७॥

हे प्यारे! इस प्रकार सम्मान पूर्वक श्रीअम्बाजीने हम सबोंको तृप्त करके विशाल रत्न-मय मण्डपमें विराजमान किया ॥१७॥

भ्रमराख्यां शुभां क्रीडां स्वामिन्या त्वनया समम् ।
विक्रीडामःस्म हे कान्त ! पश्यन्त्योऽस्या मनोरुचिम् ॥१८॥

हे प्यारे! वहाँ इन श्रीस्वामिनीजूके सहित इनके मनकी रुचिको देखते हुये हम सभी बहिनें भ्रमर नाम का खेल खेलने लगीं ॥१८॥

तदा माताऽपि सा भुक्त्वा भोजनं च सुधोपमम् ।
वीटीं चर्वन्त्यथोवाच समागत्येति नो वचः ॥१९॥

उसी समय श्रीसुनयना अम्बाजी भी अमृतके समान सुन्दर भोजनको पाकर, पानके बीराको चबाती हुई आकर, हम लोगोंसे यह बात बोलीं ॥१९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

पुत्र्यो यात गृहं स्वं स्वं प्रातरायात सत्वरम् ।
विगताभ्यधिका रात्रिः स्वापायास्तु शिवो हि वः ॥२०॥

हे पुत्रियो ! आप लोगों का कल्याण हो, अब विशेष रात्रि व्यतीत हो गयी है, अतः आप सभी शयन करने केलिये अपने अपने महलोंको पधारो, और प्रातः शीघ्र ही यहाँ श्रीललीजीके पास आजाना ॥२०॥

श्रीस्नेहपरो वाच ।

तदित्याज्ञां समाकर्ण्य वैह्वल्येनाधिकेन ताः ।
विसञ्ज्ञकाश्च निष्पेतुः कोमलास्तरणेऽमले ॥२१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीकी इस आज्ञाको सुनकर वे बहिनें अधिक विह्वलताके कारण मूर्च्छित हो कर, उस कोमल स्वच्छ बिछावन पर गिर पड़ीं ॥२१॥

दृष्ट्वैवं पतिताः सर्वा भगिनीः प्रेमपालिताः ।
स्वामिनीयमिमां वाचमवोचज्जननीं प्रति ॥२२॥

प्रेमसे पाली हुई बहिनियों को इस प्रकार पड़ी हुई देखकर ये श्रीस्वामिनीजू श्रीअम्बाजीसे यह वाणी बोलीं ॥२२॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

पश्य पश्य त्वमम्बैताः संपतिताः पृथिवीतले ।
व्यथया वै कयाऽऽक्रान्ता दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥२३॥

हे श्रीअम्बाजी ! देखो, देखो किस व्यथासे ग्रसित हो मेरी बहिनें पृथ्वीतल पर पड़ी हुई हैं, इन्हें इस प्रकार पड़ी हुई देखकर मेरा मन बहुत ही दुखी हो रहा है ॥२३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

मा खिदः पुत्रि ! भद्रं ते ह्यविमृश्योदितं वचः ।
आसां खलु व्यथामूलं मया हृद्यवधार्यते ॥२४॥

श्रीललीजीके इस वात्सल्य पूर्ण वचन को सुनकर श्रीनयना अम्बाजी बोलीं–हे श्रीललीजी ! आपका मङ्गल हो । आप खेद न करें, इन सबोंकी बीमारीका कारण मैंने हृदयमें निश्चयकर लिया है अर्थात् बिना, भाव विचारे, इनके प्रति–हे पुत्रियो ! रात बहुत हो गयी है अतः शयन करने के लिये अब, अपने अपने महलोंको पधारो, यह मेरा कहा हुआ वचन ही इन सबोंकी मूर्छा आदिका कारण है । २४।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वात्मजामम्बा कौतुकासक्तमानसा ।
ऊचे मधुरया वाचा वचोऽस्माकं सगद्गदम् ॥२५॥

श्रीस्नेह पराजी बोलीं–हे प्यारे ! अपनी श्रीललीजी को इस प्रकार समझाकर, मनमें अतीव आश्चर्य करती हुई वे बड़ी मधुरी वाणीसे, हम सबोंके प्रति, गद्गद वचन बोलीं ॥२५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

यूयं खलु महाभागा मम पुत्र्यः सुलक्षणाः ।
शोकं त्यजत मोहं च दृष्ट्वा सीदति वोऽग्रजा ॥२६॥

हे सुन्दर लक्षणोंसे युक्त मेरी पुत्रियो ! आप सभी बड़भागिनी हो ! अपने हृदयके शोक व घबड़ाहट को दूर करो; क्योंकि इस प्रकारसे आप लोगोंको दुखी देखकर आप सबोंकी जेठी (बड़ी) बहिन श्रीललीजी बहुत ही दुखी हो रही है ॥२६॥

अविचार्य हि वः प्रीतिं मयैतदभिभाषितम् ।
तदपास्य मनोदेशाद्यथेष्टं क्रीडतानया ॥२७॥

आप लोगोंके गूढ़ प्रेमको न विचार करके मैंने जो कुछ आप सबोंके लिये आज्ञा दी है, उसे अपने मन-रूप देशसे भगाकर अपनी इच्छानुसार इन श्रीललीजीके साथ खेलिये ॥२७॥

अस्याः सुखं सुखं वश्च सुखमस्या हि वः सुखम् ।
इयं वो यूयमस्या वै काप्यकार्या विचारणा ॥२८॥

अब मैंने अनुभव कर लिया कि श्रीललीजीका सुख ही आप लोगोंका सुख है और आप लोगोंका सुख ही श्रीललीजीका सुख है तथा श्रीललीजी आप लोगोंकी और आप श्रीललीजीकी हैं, अत एव किसी प्रकारका भी विचार करना ही उचित नहीं है ॥२८॥

स्वातन्त्र्यं वो मया दत्तं यथेष्टं क्रीडतानया ।
उत्तिष्ठत सुताः सर्वा युष्माभिः पावितं कुलम् ॥२९॥

हे पुत्रियो ! उठो, आप लोगोंने इस कुलको पवित्र कर दिया, अत एव मैंने आप लोगोंको स्वतन्त्रता दे दी, अब आप लोग जिस प्रकारसे चाहें श्रीललीजीके साथ खेलें ॥२९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युक्त्वा स्पर्शिताः प्रेम्णा जहुस्ता भयमात्मनः ।
उत्थायास्या मनोज्ञास्यं दृष्ट्वाऽऽसन्विगतव्यथाः ॥३०॥

श्रीअम्बाजीके इस प्रकार आश्वासन देनेपर उनके कर (हाथ) का प्रेमपूर्वक स्पर्श पाकर अपने हृदयमें आये हुये भयको उन्होंने छोड़ दिया । पुनः उठकर इन श्रीकिशोरीजीके मनोहर मुख-चन्द्र का दर्शन करके सभी तापोंसे रहित हो गयीं ॥३०॥

ततोऽस्या दर्शनस्पर्शभाषितैस्तु यथेप्सितम् ।
सन्तोषं परमं गत्वा पूर्ववत्सुखिताः स्थिताः ॥३१॥

तत्पश्चात् इन श्रीप्रियाजूके दर्शन, स्पर्श व वाणीके द्वारा सन्तोषको प्राप्त हो, वे सभी पूर्ववत् सुखपूर्वक विराजमान हो गयीं ॥३१॥

अनयैवैकया सर्वाः कथं सन्तोषिता वयम् ।
युगपत्क्षणमात्रेण तदवेद्यं मया प्रिय ! ॥३२॥

हे प्यारे ! एक ही साथ क्षणमात्रमें इन श्रीकिशोरीजीने किस प्रकार हम सबोंको सन्तुष्ट कर दिया, इस रहस्यको समझनेकी मुझमें योग्यता ही नहीं है ॥३२॥

निशीथोपगते काले जनन्या स्वापमन्दिरम् ।
नीताः सर्वा वयं प्रेष्ठानया सार्द्धं हि सादरम् ॥३३॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! जब अर्द्ध रात्रिका समय उपस्थित हुआ, तब श्रीअम्बाजी इन श्रीललीजूके सहित हम सबोंको आदरपूर्वक शयन वाले मन्दिरमें ले गयीं । ३३॥

तस्मिन्नेकासने सर्वाः स्वापिताः प्राणवल्लभ !
मध्यगा साऽनया चासीत्पार्श्वयोः पङ्क्तितो वयम् ॥३४॥

हे प्राणप्यारे ! उस शयनभवनमें एक ही आसनपर हम सबोंको श्रीअम्बाजीने शयन कराया पुनः सबोंके बीचमें इन श्रीललीजूके समेत श्रीअम्बाजी स्वयं लेट गयीं, उनके दाहिने तथा बायें भागमें पङ्क्ति (कतार) पूर्वक हम सबोंने शयन किया ॥३४॥

ज्येष्ठा भगिन्यो दक्षे च कनिष्ठा वामभागके ।
दक्षे चन्द्रकलायाश्च प्रियेयं सर्ववाञ्छिता ॥३५॥

बड़ी बहिनें श्रीअम्बाजीके दाहिने भागमें और छोटियोंने बायें भागमें शयन किया, यद्यपि सभीकी इच्छा थी कि श्रीललीजी हमारी दाहिनी ओर रहें परन्तु ये उपर्युक्त क्रमानुसार श्रीचन्द्रकलाजीके ही दाहिने भागमें हो सकीं ॥३५॥

तस्माच्चन्द्रकलैवैका वाञ्छितं प्राप्य हर्षिता ।
अन्याः सन्तप्तहृदया भवामः स्म वियोगतः ॥३६॥

इस लिये एक श्रीचन्द्रकलाजी ही अपनी इच्छाकी पूर्ति पाकर हर्षयुक्त थीं, किन्तु अन्य हम सभी बहिनोंका हृदय श्रीकिशोरीजीसे अलग रह जानेके कारण जल रहा था ॥३६॥

अश्रुभिः पूरिते नेत्रे मम यर्हि बभूवतुः ।
दृष्टा दक्षे स्त्रियं श्यामा स्मयमानमुखाम्बुजा ॥३७॥

जब मेरे नेत्र आँसुओंसे लबालब भर गये, तब मुझे अपने ही दाहिने भागमें मन्द मुस्कानयुक्त मुखकमल वाली इन श्रीकिशोरीजीका दर्शन प्राप्त हुआ ॥३७॥

आलिङ्गनं पुनर्दत्त्वाऽनयाऽहं परितोषिता ।
कृतार्थत्वं गताऽऽश्लिष्टा ह्यपूर्वानन्दमासदम् ॥३८॥

पुनः इन श्रीललीजीने अपने हृदयसे लगाकर मुझे बड़ा ही सुख प्रदान किया। श्रीकिशोरी जीके हृदयसे चिपटनेका सौभाग्य प्राप्त हो जानेसे मैंने कृतार्थ हो अपूर्व ही आनन्द प्राप्त किया ३८

पार्श्वस्थास्तु तदा दृष्ट्वा भगिन्यो हर्षनिर्भराः ।
मुक्तशोका विशालाद्यः सर्वा दक्षाङ्गदृष्टयः ॥३९॥
अहं साश्चर्यहृदया लालिताऽथ कटाक्षिता ।
मृदु-स्निग्धकराम्भोजच्छायायां सुखमस्वपम् ॥४०॥

तब मैंने अपने बगलकी बहिनियोंकी ओर जो दृष्टि डाली तो उन्हें भी शोकसे रहित, हर्षमें डूबी हुई पाया, वे सभी विशाल नेत्रवाली मेरी बहिनें दाहिनी ओर दृष्टिकी हुई थीं। यह देख कर मेरे हृदयमें बड़ा आश्चर्य हुआ, कि अभी तो ये सभी रो रही थीं अब ये क्यों इस प्रकार प्रसन्न हैं ? और क्यों अपनी दाहिनी ओर ही दृष्टिकी हुई है ? क्योंकि श्रीकिशोरीजी तो केवल अब मेरे ही समीपमें दाहिनी ओर विराज रही हैं, अतः ये क्यों मेरे समान ही दाहिनी ओर दृष्टिकी हुई हैं ? और बायें ओर क्यों नहीं ? ॥३९॥ इसके बाद जब मेरा हृदय आश्चर्यसे युक्त होगया तब श्रीललीजी मेरे प्रति लाड़ व कृपा-कटाक्ष करने लगीं, अतः मैं इनके कोमल चिकने हस्त-रूपी कमल की छायामें सुखपूर्वक सो गयी ॥४०॥

अनुभूतं सुखं तर्हि मया यत्प्राणवल्लभ ! ।
वाचा वाच्यं न तद्विद्धि कृपयाऽऽसादितं यतः ॥४१॥

हे श्रीप्राणवल्लभजू ! उस समय मैंने जिस सुखका अनुभव किया था, उसका वर्णन आप वाणी के द्वारा अशक्य ही जानिये अर्थात् उसका वर्णन वाणी नहीं कर सकती, क्योंकि वह ऐकान्तिक सुख मुझे इन श्रीकिशोरीजीकी कृपासे ही प्राप्त हुआ था ॥४१॥

एवं सदाऽस्या ह्यनुरागपालिताः सर्वा वयं श्रीरघुवंशनन्दन !
नैसर्गिकी प्रीतिरतो न एव हि श्रीस्वामिनीपादसरोजयोः प्रिय ! ॥४२॥

इति पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

—: मासपारायण विश्राम—१७ :—

हे श्रीरघुवंशको आनन्द प्रदान करनेवाले श्रीप्राणप्यारेजू ! इसी प्रकार हम सभी बहिनें इन श्रीललीजूके अनुराग द्वारा सदा ही पाली हुई हैं, अत एव हम सबों का स्वाभाविक प्रेम श्रीस्वामिनी-जूके श्रीचरण-कमलोंमें है ॥४२॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

श्रीकिशोरीजीकी धनुष उठावन-लीला—

श्रीस्नेहपरोवाच ।

भूय एव प्रवक्ष्यामि चरित्रं परमाद्भुतम् ।
अपि दृष्टया स्वयं दृष्टं श्रूयतां प्राणवल्लभ ! ॥१॥

हे श्रीप्राणवल्लभजू ! अब मैं स्वयं अपनी आँखोंसे देखे हुये श्रीललीजीके एक विलक्षण चरित्र को कहती हूँ, उसे आप श्रवण कीजिये ॥१॥

अहं चन्द्रकला चैव चारुशीला सुधामुखी ।
हेमा, क्षेमा, वरारोहा, सुभगा, पद्मगन्धिनी ॥२॥

मैं, श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीचारुशीलाजी, श्रीसुधामुखीजी, श्रीहेमाजी, श्रीक्षेमाजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीसुभगाजी, श्रीपद्मगन्धाजी ॥२॥

लक्ष्मणा, शोभना, शान्ता सुशीला सुखवर्द्धिनी ।
श्रीप्रसादा सुविद्याद्या निमिवंश-विभूषया ॥३॥
क्रीडितुं प्रययुः प्रातर्भगिन्यो राजमन्दिरम् ।
दर्शनोद्विग्नहृदयाः कथञ्चिद्वीतरात्रिकाः ॥४॥

श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीशोभनाजी, श्रीशान्ताजी, श्रीसुशीलाजी, श्रीसुखवर्द्धिनीजी, श्रीप्रसादाजी, श्रीसुविद्याजी आदि सखियाँ निमिवंशके भूषणके समान अधिक शोभायमान करनेवाली श्रीललीजीके

सहित खेलनेके लिये प्रातः काल ही राजमन्दिरमें पधारीं क्योंकि सबोंका हृदय दर्शनोंके लिये अत्यन्त व्याकुल था और बड़ी कठिनतासे किसी प्रकार रात्रि व्यतीतकी थी ॥४॥

अत्यादृता महाराज्ञ्या प्रणताः श्लक्ष्णभाषितैः ।
दर्शनातुरतां प्राप्ता गताः श्रीमैथिलीं द्रुतम् ॥५॥

वहाँ सभी बहिनोंने श्रीअम्बाजीको प्रणाम किया, श्रीअम्बाजी अपने मधुर वचनोंसे सभीका सत्कारकी, तब दर्शनार्थ व्याकुल हुई हम सभी तुरत श्रीमिथिलेशदुलारीजूके पास पहुँचीं ॥५॥

भावनिर्भरचेतांसि सर्वा एव नता वयम् ।
अस्याः सुस्निग्धकञ्जातपादयोः प्रीतिपूर्वकम् ॥६॥

और विविध भावोंसे भरे हुये चित्तवाली हम सभी बहिनोंने इन श्रीललीजूके अत्यन्त चिकने, कमलके समान सुकोमल श्रीचरणोंमें प्रेमपूर्वक प्रणाम किया ॥६॥

प्रीत्या निपात्य हृदयेश ! कृपाकटाक्षं चेतोऽपहार्यमितमोदरसैकवर्षम् ।
वाण्या वयं मधुरया ह्यनया तदानीमाह्लादिता रसिकशेखर ! वीतसञ्ज्ञाः ॥७॥

हे रसिकशेखर (भक्तोंको अपना शिरोमणि माननेवाले) हे हृदयेश ! श्रीप्राणप्यारेजू ! उस समय इन श्रीकिशोरीजीने प्रेमपूर्वक अमित मोद (भगवदानन्द) रसकी वर्षा करने तथा चित्तको हरण करनेवाली, कृपामयी दृष्टि डालकर अपनी अत्यन्त मीठी वाणीसे हम सबोंको आह्लादित किया अतः हम सभी अचेत हो गईं ॥७॥

सा नास्ति यां प्राणपरप्रिया नो श्रीस्वामिनीयं मम च प्रकृत्या ।
अस्यास्तु सम्प्राप्यदुरापसङ्गा किञ्चिन्न रुच्यं मनसः प्रविद्मः ॥८॥

हे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे ! वह कोई ऐसी है ही नहीं, जिसे ये श्रीस्वामिनीजू सहज-स्वभावसे ही प्राणोंसे बढ़कर प्यारी न हों, इन श्रीललीजूके दुर्लभ सङ्गको पाकर, ऐसी कोई भी अन्य वस्तु हम लोग नहीं मानती हैं, जिसको पानेके लिये मन लालायित हो सके ॥८॥

नेयं प्रिया प्राणसमा हि तासां याभिर्न दृष्टा श्रुतिमागता वा ।
ताः पूर्णदुर्भाग्यवशोऽनुनीतास्ताभ्यः परा मन्दविधिर्न लोके ॥९॥

हे प्यारे ! ये श्रीकिशोरीजी भलेही उन्हें प्राणोंके समान प्रिय न हों, जिन्होंने या तो इन श्रीविश्वविमोहनमोहिनीजूका दर्शन ही नहीं किया हो अथवा हृदयहारी इनके मङ्गल गुणोंके

सहित खेलनेके लिये प्रातः काल ही राजमन्दिरमें पधारीं क्योंकि सबोंका हृदय दर्शनोंके लिये अत्यन्त व्याकुल था और बड़ी कठिनतासे किसी प्रकार रात्रि व्यतीतकी थी ॥४॥

अत्यादृता महाराज्या प्रणताः श्लक्ष्णभाषितैः ।
दर्शनातुरतां प्राप्ता गताः श्रीमैथिलीं द्रुतम् ॥५॥

वहाँ सभी बहिनोंने श्रीअम्बाजीको प्रणाम किया, श्रीअम्बाजी अपने मधुर वचनोंसे सभीका सत्कारकी, तब दर्शनार्थ व्याकुल हुई हम सभी तुरत श्रीमिथिलेशदुलारीजूके पास पहुँचीं ॥५॥

भावनिर्भरचेतांसि सर्वा एव नता वयम् ।
अस्याः सुस्निग्धकञ्जातपादयोः प्रीतिपूर्वकम् ॥६॥

और विविध भावोंसे भरे हुये चित्तवाली हम सभी बहिनोंने इन श्रीललीजूके अत्यन्त चिकने, कमलके समान सुकोमल श्रीचरणोंमें प्रेमपूर्वक प्रणाम किया ॥६॥

प्रीत्या निपात्य हृदयेश ! कृपाकटाक्षं चेतोऽपहार्यमितमोदरसैकवर्षम् ।
वाण्या वयं मधुरया ह्यनया तदानीमाह्लादिता रसिकशेखर ! वीतसञ्ज्ञाः ॥७॥

हे रसिकशेखर (भक्तोंको अपना शिरोमणि माननेवाले) हे हृदयेश ! श्रीप्राणप्यारेजू ! उस समय इन श्रीकिशोरीजीने प्रेमपूर्वक अमित मोद (भगवदानन्द) रसकी वर्षा क[illegible] चित्तको हरण करनेवाली [illegible]

[illegible] आह्लादित किया [illegible] दलायताक्षी स्मितानना गन्तुमना समूचे ॥१६॥

[illegible] सा [illegible] शिराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीकी इस प्रकारकी आज्ञाको सुनकर उनसे "ऐसा [illegible]" कहकर, चन्द्रमाके समान प्रसन्न आह्लादकारी मुख, कमल-दलके समान विशाल [illegible] ये श्रीललीजी, हम सबोंके सहित धनुष-भूमि लीपनेके लिये चलनेकी भावना मनमें लाकर [illegible] हुई बोलीं-॥१६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

हो भगिन्यो जननीनिदेशान्महेशकोदण्डगृहं प्रयात ।
भूमिसम्मार्जनकामयेतो मया धनुर्दर्शनलाभहेतोः ॥१७॥

अहो बहिनों ! यहाँसे आप लोग श्रीअम्बाजीकी आज्ञासे श्रीधनुषजीकी भूमिकी सफाई करने इच्छावाली, मेरे सहित श्रीधनुषजीके दर्शनोंका लाभ प्राप्त करनेके लिये इस समय श्रीधनुष-गृहमें पधारें ॥१७॥

श्रीभगिन्य ऊचुः ।

हे मैथिलि ! प्रेमनिधे ! स्मितास्ये ! न नो धनुर्दर्शनलाभतृष्णा ।
त्वत्पादपद्मार्पितशेमुषीणां त्वद्दर्शनासक्तदृशो व्रजामः ॥१८॥

बहिनें बोलीं:-हे प्रेमकी भण्डारिनी ! हे मुस्कान युक्त मुखवाली ! हे श्रीमिथिलेशदुलारीजू ! आपके श्रीचरणकमलोंमें सम्यक् प्रकारसे अर्पणकी गई बुद्धिवाली हम सबोंको, श्रीधनुषजीके दर्शनोंके लाभकी तृष्णा नहीं है, किन्तु हम लोगोंके नेत्रोंको आपके दर्शनोंमें अत्यन्त आसक्ति है, अत एव आपके दर्शनोंके लोभसे अवश्य चलेंगी ॥१८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्येवमुक्ताऽवनिनाथपुत्री प्रहर्षितात्मा भगिनीभिरङ्ग ।
प्रणम्य सा मातरमम्बुजाक्षी संवीज्यमाना भवनात्प्रतस्थे ॥१९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! बहिनियोंके द्वारा इसप्रकार अपने हृदयका भाव निवेदन करनेपर, इन कमललोचना श्रीमिथिलेशदुलारीजीका हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ, पुनः उन्होंने श्रीअम्बाजीको प्रणाम करके अपनी बहिनियोंके द्वारा छत्रचामरादिके द्वारा अनेक प्रकारसे सेवित होती हुई महलसे प्रस्थान किया ॥१९॥

सपुष्पवस्त्रावृतवर्त्मनाऽऽप प्राणेश ! कोदण्डनिकेतनं सा ।
तद्द्वाःस्थकैर्दुन्दुभिशब्द उच्चैः कृतस्तदीयागमनप्रहर्षात् ॥२०॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! पुष्पोंके सहित वस्त्र बिछे हुए मार्गके द्वारा श्रीललीजी धनुष भवनको गयीं, उनके आगमनके अत्यन्त हर्षसे द्वारपालोंने नगाड़ेका बहुत ऊँचा शब्द किया ॥२०॥

सस्वागतं सा परिलालिता तैरन्तर्गता शैवधनुर्निरीक्ष्य ।
महाविशालं महितं स्वपित्रा ननाम सर्वाभिरुदारकीर्त्तिः ॥२१॥

उन द्वारपालोंके द्वारा स्वागतपूर्वक प्यारकी हुई, उदार (सब कुछ प्रदान करनेवाली) कीर्त्तिवाली श्रीललीजीने भीतर मन्दिरमें प्रवेश करके श्रीपिताजीके द्वारा पूजित भगवान् शङ्करजीके विशाल धनुषका दर्शन करके, सब बहिनोंके सहित उन्हें प्रणाम किया ॥२१॥

पुनस्तु तद्भूमिसुमार्जनादिषु श्रद्धान्विता दत्तमतिर्धरासुता ।
अतीव सुस्निग्धसरोजपाणिना गृहीतचापाऽऽस मनोहरा हि नः ॥२२॥

धनुप भूमि लीपने के लिये श्रीकिशोरीजी अपनी बहिनो के समेत धनुप भवनमें पधारी हैं, वे उनकी कमरसे भी धनुषको ऊँचा देखकर आश्चर्य चकित हैं।

पुनः श्रद्धा युक्त हुई उस धनुषकी भूमिके मार्जन आदि कार्योंमें अपनी बुद्धि लगाकर ये श्रीभूमिनन्दिनीजूने अपने अत्यन्त चिक्कने कमलके समान कोमल हाथसे धनुषको ग्रहण करके हम सबोंके मनको हर लिया ॥२२॥

संमार्जनीपाणिरवेक्ष्य सुद्युतिः संस्थापितं वक्रतया परेश्वरी ।
उत्थाप्य सव्येन सरोजपाणिना ह्यलेपयत्तद्धनुषोऽध उर्वीम् ॥२३॥

हे प्यारे ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि विश्वनायकोंके ऊपर भी शासन करनेवाली ये श्रीललीजी हाथमें झाड़ू लिये हुये उस धनुषको तिरछा रक्खे हुए, देखकर उसे अपने बायें हस्त कमलसे उठाकर दाहिने हाथसे उसके नीचेकी भूमिको लीपने लगीं ॥२३॥

प्रसूनवृष्टिर्विबुधद्रुमाणां कृता निलिम्पैर्जयशब्दपूर्वा ।
अस्या उपर्य्यम्बुजपत्रनेत्र ! कृत्वा कलं दुन्दुभिचारुनादम् ॥२४॥

हे कमललोचन श्रीप्यारेजू ! उस समय देवताओंने नगाड़ोंका मनोहर शब्द करके इन श्रीललीजीके ऊपर जयकार पूर्वक कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा की ॥२४॥

विलोक्य तत्कौतुकमग्नचित्ताः किमेतदित्येव विमर्शमानाः ।
स्थिताः स्म सर्वा धनुषः समीपे यथा हि चामीकरमूर्त्तयश्च ॥२५॥

हे प्यारे ! धनुषको उठाकर, लीपनेकी लीलाको देखकर चित्त आश्चर्यमें डूब गया पुनः हम लोग "यह क्या देख रही हैं ? इस बातपर विचार करती हुई हम सभी उस धनुषके समीपमें इस प्रकार स्थिर खड़ी हो गयीं, मानों सुवर्णकी बनी हुई मूर्त्तियाँ ही खड़ी हों ॥२५॥

क्षणेन संमार्ज्य पिनाकभूमिं सस्थाप्य कोदण्डमजिह्मरेखम् ।
विस्मेर बिम्बारुणमोहनौष्ठी जगाविदं कोमलया गिरेति ॥२६॥

इधर मुसुकान युक्त, बिम्बाफलके समान लाल तथा मुग्धकारी ओठोंवाली ये श्रीललीजी, क्षण मात्रमें भूमिको लीप करके, धनुषको सीधी रेखामें स्थापित करके कोमलवाणीसे इस प्रकार बोलीं ॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

आज्ञाप्रपूर्त्तिं विहितां जनन्यै निवेदयित्वा कृतभोजनास्तु ।
अयामहे खेलयितुं स्वगेहाद्द्रुतं भगिन्यो ! मुदिता मतं मे ॥२७॥

श्रीललीजी बोलीं:-हे बहिनो! श्रीअम्बाजीसे उनकी आज्ञा-पालन करनेकी सूचना देकर तथा भोजन करके हम सभी आनन्दपूर्वक अपने भवनसे खेलनेके लिये शीघ्र चलें, यही मेरा विचार है ॥२७॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एतावदुक्त्वेयमथो तदानीमस्माभिरम्बाभवनं प्रतस्थे ।
अनुष्ठिताज्ञा परिरभ्य मात्रा संचुम्बिता मोदपरिप्लुताक्ष्या ॥२८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! तब इतना कहकर हम सबोंके सहित ये श्रीललीजी श्रीअम्बाजीके भवनमें पधारीं, वहाँ आज्ञा पालन करके आई हुई इन श्रीललीजीको आनन्द भरे हुए नेत्रों वाली श्रीसुनयनाअम्बाजीने हृदयसे लगाकर उनके मुखचन्द्रको चूमा ॥२८॥

सम्भोजिता मोदभरेण चेतसा पुनर्यथेच्छं प्रणयप्रवीणया ।
सार्कं तयेयं स्वसृभिः शुभेक्षणा लोकोत्तरानन्दघनस्वरूपिणी ॥२९॥

प्रेमके स्वरूपको भली प्रकारसे समझनेवाली श्रीअम्बाजीने हर्ष-निर्भर चित्तसे बहिनियोंके समेत दिव्य आनन्दघन (ब्रह्म) स्वरूपा इन मङ्गलमय दर्शनवाली श्रीललीजीको, इच्छानुसार भोजन कराया ॥२९॥

आसादिताज्ञा पुनरद्भुताकृतिः क्रीडां व्यधात्तां हि सुखानुदित्सया ।
अस्माभिरम्भोजदलायतेक्षणा सा श्रूयतां प्रेष्ठ ! मयोच्यतेऽधुना ॥३०॥

इति षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

हे प्यारे! पुनः आश्चर्यमय स्वरूप तथा कमलदलके समान विशाल नेत्रवाली ये श्रीललीजीने श्रीअम्बाजीकी आज्ञा पाकर सबोंको सुख प्रदान करनेकी इच्छासे जो क्रीडा की, उसे मैं कहती हूँ आप श्रवण कीजिये ॥३०॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

श्रीकिशोरीजीकी आँखमिचौनी लीला तथा श्रीचन्द्रकलाजी द्वारा छिपानेमें असमर्थ कहकर हँसी करनेपर उनकी अन्तर्धान लीला—

श्रीस्नेहपरोवाच ।

श्रीमच्चन्द्रकलोर्मिला च विमला श्रीचारुशीला सखी,
श्रीमद्विश्वविमोहिनी प्रिय ! वरारोहा सुशीला श्रुतिः ।
भद्रा पद्मविलासिनी च सुषमा श्रीमाण्डवी सानुजा
मुख्याश्चान्यसखीनिकायसहिताः श्रीजानकीं सङ्गताः ॥१॥

हे प्यारे ! मुख्य श्रीमती चन्द्रकलाजी, श्रीऊर्मिलाजी, श्रीविमलाजी, श्रीचारुशीलाजी श्रीविश्वविमोहिनीजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीसुशीलाजी श्रीश्रुतिजी, श्रीभद्राजी, श्रीपद्मविलासिनीजी, श्रीसुषमाजी, श्रीमाण्डवीजी तथा श्रीश्रुतिकीर्त्तिजी, अन्य सखियोंके झुण्डके सहित श्रीजनकराजदुलारीजूके साथ लगीं ॥१॥

श्रीचम्पकाङ्गी सुभगा च हेमा श्रीलक्ष्मणा सुन्दर ! पद्मगन्धा ।
क्षेमा प्रसादा परमा तथैव सुलोचनाद्याः सकलाः समेताः ॥२॥

श्रीचम्पकाङ्गीजी, श्रीसुभगाजी, श्रीहेमाजी, श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीपद्मगन्धाजी श्रीक्षेमाजी, श्रीप्रसादाजी, श्रीपरमाजी, श्रीसुलोचनाजी, आदि सभी मुख्य यूथेश्वरी वहिनें साथ हुईं ॥२॥

ताः संस्थिताः प्रेक्ष्य नृपेन्द्रपुत्री प्रोवाच संश्लक्ष्णगिरेति वाक्यम् ।
दृङ्मीलनाख्यां कुरु चारुलीलां ममाज्ञया चन्द्रकले ! मिथो वै ॥३॥

हे प्यारे ! उन सभीको उपस्थित देखकर राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजी बड़ी ही मधुर वाणीसे इस प्रकार बोलीं—हे श्रीचन्द्रकले ! आज मेरी आज्ञासे परस्पर-दृङ्मीलन (आँखमिचौनी) नामकी लीला करें ॥३॥

स्थिताऽस्म्यहं त्वं व्रज चारुशीलया संगम्य दूरं युगपत्सलाघवम् ।
संस्प्रष्टुकामे निजशक्तितो हि मामागच्छतं मे पुनरेव सन्निधिम् ॥४॥

मैं खड़ी हूँ तुम श्रीचारुशीलाजीके सहित दूर तक जाओ पुनः मेरे छूनेके लिये अपनी शक्ति-भर, एकही साथ शीघ्रतापूर्वक दौड़कर मेरे पास में आजाओ ॥४॥

पश्चात्तु याऽऽयास्यति मत्सकाशं तयैव दृङ्मीलनमस्ति कार्यम् ।
अदृश्यतां चाभिगतासु सर्वास्मीलय नेत्रे परिमार्गणं च ॥५॥

पीछेसे जो मेरे पास आयेगी, उसीको अपनी आँखें मीचनी पड़ेगी और सभीके छिप जाने पर आँखें खोलकर उसीको खोजना आवश्यक होगा ॥५॥

श्रीस्नेहपरो उवाच ।

प्राणप्रियाचन्द्रमुखाद्विनिःसृतं वचोऽमृतं ताः परिपीय हर्षिताः ।
नत्वोचुरम्भोजदलायतेक्षणां हे वल्लभे ! नो विनयं निशाम्यताम् ॥६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः—हे प्यारे ! श्रीप्राणप्यारीजूके पूर्णचन्द्रके समान आह्लादकारी श्रीमुखारविन्दसे निकले हुये इस वचन रूपी अमृतको पान करके, वे सभी कमललोचन सखियें हर्षित हो प्रणाम करके बोलीः—हे प्यारी (श्रीलली) जू ! हम लोगोंकी प्रार्थना को श्रवण कीजिये ॥ ६ ॥

स्वसार ऊचु ।

चिकीर्षितं ते मनसा समीहितं ह्यस्माभिरेणाक्षि ! भवत्यहर्निशम् ।
तदद्भुतं नः परम प्रतीयते सत्यं वदामो निमिवंशभूषणे ॥७॥

हे श्रीनिमि वंश को भूषणके समान सुशोभित करने वाली मृगलोचना श्रीललीजू ! हम लोगोंके मनमें जिन-जिन बातोंकी भावना उठती है, आप उसी को रात दिन (सदा सर्वदा) करनेकी इच्छा करती हैं, सो हम सभी को इस बात का बड़ा ही आश्चर्य प्रतीत होता है, सो हम सत्य कहती हैं॥

कच्चित्प्रिये ! कल्पलताऽसि जाता त्वं वस्तुतो नो मनसेष्टसिद्ध्यै ।
आज्ञा शिरोधार्यतमा भवत्या उक्त्वेति नेमुः पुनरेव सर्वाः ॥८॥

हे श्रीप्यारीजू ! क्या हम लोगोंकी मनोभावना को पूरी करने के लिये वास्तवमें आप कल्पलता तो नहीं प्रकट हुई हैं ? आपकी आज्ञा परमशिरोधार्य है अर्थात् उसका पालन करना सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, एतदर्थ आँखमिचौनी लीला प्रारम्भ करती हैं ऐसा कह कर उन सभीने श्रीललीजू को पुनः प्रणाम किया ॥८॥

श्रीचारुशीलेन्दुकले मिलित्वा दूरं ततोऽभ्येत्य यथा निदेशम् ।
सार्द्धं पुनर्दुद्रुवतुः स्वशक्त्या संस्पष्टुकामे युगपत्प्रियेनाम् ॥९॥

हे प्यारे ! तब श्रीचारुशीलाजी व श्रीचन्द्रकलाजी दोनों मिलकर श्रीललीजूकी आज्ञानुसार दूर जाकर अपनी अपनी शक्तिके अनुसार इन्हें छूनेके लिये, पुनः वे दोनों एक साथ दौड़ीं ॥९॥

पस्पर्श वै चन्द्रकला पदाब्जे ह्यस्याश्च पूर्वं त्वरया समेत्य ।
निमीलिताक्ष्यास च चारुशीला सर्वास्तदाऽदृष्टिपथं प्रयाता ॥१०॥

हे प्यारे! श्रीचन्द्रकलाजीने शीघ्रता पूर्वक आकर पहिले इन श्रीललीजूके श्रीचरणकमलों को स्पर्श किया, इस लिये पूर्वोक्त आज्ञानुसार श्रीचारुशीलाजीने विना कहे सुने ही अपनी आँखें मीच लीं, तब सभी बहिनें छिप गयीं ॥१०॥

गतास्वदृष्टिं पुनरेव तासून्मील्येक्षणेऽन्वेषणमाशु चक्रे ।
इतस्ततः सा मृगशावकाक्षी सर्वावकाशेषु विलोकितेषु ॥११॥

उन सबोंके छिप जाने पर मृग छौनाके समान वे विशाल चञ्चल नेत्र वाली श्रीचारुशीलाजी नेत्रों को खोलकर, तुरत अपने देखे हुये सभी स्थानोंमें उनको खोजने लगीं ॥११॥

दृष्टा तया श्रीविमला च कोणे कोष्ठान्तरे सङ्कुचिताङ्गयष्टिः ।
प्रगृह्यतां शोभन! चारुशीला व्यघोषयत्स्वात्मजयं मुरल्या ॥१२॥

एक कमरेके कोनेमें अपने अङ्ग रूपी छड़ीको सिकोड़ कर खड़ी हुई श्रीविमलाजी उन्हें दिखाई पड़ीं। हे शोभन (सुन्दर)जू! उन्होंने उसे पकड़कर मुरलीके द्वारा अपनी जीतकी घोषणा करदी १२॥

श्रुत्वा विनिष्क्रम्य पुनः समेताः सर्वा भगिन्यो ललितं हसन्त्यः ।
निमीलिताक्षी विमला यदाऽऽसीद् विनिर्ययुस्ता अपि यत्र तत्र ॥१३॥

वंशीका शब्द सुनकर सभी बहिनें सुन्दर हँसी करती हुई निकल कर एकत्रित हो गयीं, पुनः जब श्रीविमलाजीने नेत्र बन्द किया तब फिर सब यत्र तत्र जाकर छिप गयीं ॥१३॥

सोन्मील्य नेत्रे श्रुतिकीर्त्तिमाप कपाटपृष्ठे घननीलशाटीम् ।
इतस्ततो रत्नगृहे विशाले विचिन्वती सुन्दर! नीरजाक्षीम् ॥१४॥

हे सुन्दर! तब श्रीविमलाजीने अपने नेत्रोंको खोलकर उस विशालरत्नमय भवनमें इधर-उधर खोजती हुई मेघके समान नीली साड़ी पहिने हुये नीलकमलके समान नेत्र वाली श्रीश्रुतिकीर्त्तिजी को किवाड़ेके पीछे खड़ी हुई पाया। १४॥

एवं तया चन्द्रकलाऽपि लब्धा तयोर्मिला चोर्मिलया च हेमा ।
श्रीमाण्डवी श्रेष्ठ! तया प्रसादा तया तयाऽनुत्तम! पद्मगन्धा ॥१५॥

हे सर्वश्रेष्ठ! परमप्यारेजू! इसी प्रकार श्रीश्रुतिकीर्त्तिजीने श्रीचन्द्रकलाजीको, श्रीचन्द्रकला-

जीने, श्रीऊर्मिलाजीको, श्रीऊर्मिलाजीने श्रीहेमाजीको, श्रीहेमाजीने श्रीमाण्डवीजीको, श्रीमाण्डवीजीने श्रीप्रसादाजीको, श्रीप्रसादाजीने श्रीपद्मगन्धाजीको छुआ ॥१५॥

श्रीपद्मगन्धा सुभगां समस्पृशत् स्पृष्टा तया तीव्रधियाऽऽशु लक्ष्मणा ।
सा चास्पृशच्चन्द्रकलां तदोर्विजां जगौ वचश्चन्द्रकलेति सादरम् ॥१६॥

श्रीपद्मगन्धाजीने सुभगाजीको स्पर्श किया, तीक्ष्णबुद्धि श्रीसुभगाजीने श्रीलक्ष्मणाजीको छुआ दूरदर्शिनी श्रीलक्ष्मणाजीने श्रीचन्द्रकलाजीका स्पर्शकर लिया, तब श्रीचन्द्रकलाजी आदरपूर्वक श्रीललीजूसे बोलीं ॥१६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

हे वल्लभे ! त्वं व्रज सद्म कच्चिद् गुप्ता भवाहं परिमार्गयामि ।
तथेति सम्भाष्य मृदुस्वभावा तमोवृतं सा सदनं विवेश ॥१७॥

हे श्रीप्यारीजू ! आप किसी भवनमें जाकर छिपिये और मैं आपको खोजूँ । श्रीचन्द्रकलाजीकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीललीजी उनसे "ऐसा ही होगा" कहकर, एक अँधेरे भवनमें छिपने गयीं ॥ १७ ॥

प्रकाशरूपं भवभूव तत्र ह्यगात्ततोऽन्यद्गृहमाशु गुप्त्यै ।
तदप्यभूद्वल्लभ ! सुप्रकाशं विहाय तत्रान्यदियाय हर्म्यम् ॥१८॥

श्रीललीजूके पधारनेसे वह अँधेरा भवन सुन्दर प्रकाशमय हो गया, अतः एव वे छिपनेके लिये पुनः दूसरे अँधेरे गृह (घर) में पधारीं ॥१८॥

तडित्प्रकाशेन बभूव युक्तं तदप्यदोऽभूत्कुतुकं विचित्रम् ।
निरीक्ष्य तच्चन्द्रकलाऽपि दूराज्जहास साश्चर्यकुशाग्रबुद्धिः ॥१९॥

वह महल भी बिजुलीके प्रकाशसे युक्त हो गया, सो यह सभीके लिये बड़ा ही आश्चर्य जनक खेल हुआ। कुशके अग्रभागके समान प्रखर बुद्धिवाली श्रीचन्द्रकलाजी, इस लीलाको दूरसे देखकर आश्चर्य युक्त हो हँसने लगीं ॥१९॥

गृहीतपादाऽऽह पुनः समेत्य तां विदेहजां यासभयेन विह्वला ।
निसृज्यतामेष समुद्यमस्त्वया सूर्य्योऽपि कच्चित्तमसि प्रलीयते ॥२०

पुनः उनके परिश्रमके भयसे विह्वल हुई श्रीचन्द्रकलाजी, छिपनेके लिये देहकी सुधिबुधिको भूली हुई इन श्रीविदेह नन्दिनीजूके पास आकर, श्रीचरणकमलोंको पकड़कर बोलीं:—हे श्रीललीजी !

आप छिपने के लिये यह पूरा उद्योग करना छोड़ दीजिये, क्योंकि उसकी सफलता हो नहीं सकती है, यदि कहें क्यों ? तो मैं आपसे यह पूछती हूँ कि क्या सूर्यदेव अँधेरेमें छिप सकते हैं ? जैसे सूर्य भगवान् के लिये अँधेरेमें छिपना उनकी शक्तिसे बाहर का विषय है, उसी प्रकार किसी भी अँधेरे घरमें छिपने को आप भी समर्थ नहीं हैं ॥२०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सहास्यमुक्त्वा स्मितपूर्वभाषिणी तयेति तन्मोहनिवृत्तयेऽब्रवीत् ।
तिरोहिता किं प्रभवामि खल्वहं वदेति मे चन्द्रकले ! परिस्फुटम् ॥२१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! इस प्रकार श्रीचन्द्रकलाजीके हास्य पूर्वक कहने पर मुस्कान युक्त बोलने वाली ये श्रीललीजी, "अन्धकारमें आप छिपने को समर्थ नहीं हैं" श्रीचन्द्रकलाजीके इस मोहको दूर करनेके लिये बोलीं:-हे श्रीचन्द्रकले ! आप मुझसे यह स्पष्ट बतलाइये क्या मैं निश्चय ही छिप जाऊँ ? ॥२१॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

इच्छेदृशी मे हृदि संप्रजाता त्वां प्रार्थये यासभिया निचूलै ।
किं गोपयामि प्रियदर्शनेऽद्य त्वत्तो मनोभावमतुल्यरूपे ! ॥२२॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:-हे निरुपम रूप तथा प्रियदर्शनवाली श्रीललीजी ! मैं अपने हृदयके भाव को क्या छिपाऊँ ? मेरे हृदयमें इच्छा तो ऐसीही थी, कि आप छिपें और मैं खोजूं, परन्तु छिपनेमें आपको, कष्ट होरहा है क्योंकि आप जिस अँधेरे कमरेमें पधारती हैं, वह आपकी स्वाभाविक कान्तिसे प्रकाशित हो जाता है, अत एव छिपने के लिये आप को इच्छानुकूल न कोई स्थल मिल रहा है और न मिल सकेगा, परन्तु आप अपने श्रीअङ्गके प्रकाश पर ध्यान न देकर केवल अँधेरा खोजनेमें व्यस्त हो इधर उधर दौड़ रही हैं, अत एव आपको यह व्यर्थ ही कष्ट उठाना पड़ रहा है, इसलिये मैं प्रार्थना करती हूँ, कि आप छिपनेके लिये अब प्रयत्न न कीजिये ॥२२॥

इमामुपाकर्ण्य गिरं कलस्मिता निमीलयोभे नयनेऽब्रवीदिदम् ।
अन्तर्हिता चात्र भवामि मार्गय प्रीतिर्यथा ते करवाणि सत्वरम् ॥२३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीचन्द्रकलाजीकी इस प्रार्थनाको सुनकर, मनोहर मुसुकान वाली श्रीललीजी बोलीं:-हे श्रीचन्द्रकले ! अच्छा अब जिसमें आपकी प्रसन्नता है वही मैं तुरत करती हूँ, आप अपनी आँखें मीचें, मैं यहीं छिपती हूँ, खोजिये ॥२३॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एतन्निगद्याशु निमीलितेक्षणां विलोक्य तामिन्दुकलां हि लीलया।
अन्तर्दधे तत्र मनोहरद्युतिः प्राणप्रियेयं स्वसॄणां स्वभावतः ॥२४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! सभी बहिनियों को स्वाभाविक प्राणोंके समान प्यारी, अपनी सुन्दरतासे मन को हरणकर लेनेवाली ये श्रीललीजी इतना कह कर, इन श्रीचन्द्रकलाजी को आँखें मीचे हुये देखकर खेल पूर्वक वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥२४॥

सोन्मील्य नेत्रे समभूत्प्रवृत्ता ह्यन्वेष्टुमेनां परमप्रहृष्टा।
स्थानानि सर्वाणि विमार्गमाणा प्राणप्रियां नाथ ददर्श नाथ! ॥२५॥

हे नाथ! श्रीचन्द्रकलाजीके हृदयमें यह भावना बनी हुई थी कि ये अपने श्रीअङ्गकी कान्तिके कारण कहीं भी छिप नहीं सकतीं मैं तुरत खोज लूँगी, इसलिये बड़े हर्ष पूर्वक आँखोंको खोलकर इन्हें खोजनेके लिये प्रवृत्त हुईं, किन्तु सभी स्थानोंमें खोजती हुई भी जब इनका दर्शन इन्हें न हुआ ॥

जगाम चिन्तां महती तदानीमभूदिदं किं कुतुकं विचित्रम्।
निगूहितुं यैत्य गृहाद्गृहं प्राक्शशाक नैषेति मयाऽनुदृष्टम् ॥२६॥

तब वे बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हुईं, कि यह क्या विचित्र लीला हुई? क्योंकि मैंने अभी बारंबार देखा था कि ये श्रीललीजी एक गृहसे दूसरे गृहमें जाकर भी, छिपनेको समर्थ न हो रही थीं ॥२६॥

अस्मिन्निकेते क नु सा विलीना विपर्ययितोऽयं समयो विभाति।
न सोऽवकाशो न गताऽस्मि यस्मिन् विचेतुमार्यामसिताम्बुजाक्षीम् ॥२७॥

वे ही श्रीललीजी, इस भवनमें कहाँ छिप गयीं? हाय कहाँ तो वे ही छिपनेमें असमर्थ हो रही थीं, कहाँ अब उलटे मैं ही उन्हें नहीं खोज पारही हूँ, अत एव यह समय ही प्रतिकूल दिखाई देरहा है, क्योंकि यह कोई भी जगह नहीं शेष है, जिसमें उन नील कमलदल लोचनाजीको खोजनेके लिये मैं न गयी होऊँ ॥२७॥

चेदन्यदागारमवाप गुप्त्यै दृष्टा मदन्याभिरुतालिभिः स्यात्।
विचार्य चैतन्मनसि प्रयाय प्रोवाच ता दीनवचो यथार्थम् ॥२८॥

यदि कदाचित् वे दूसरे ही भवनमें छिपनेके लिये पधारी हों, तो मेरेसे अन्य सखियोंने उन्हें अवश्य ही देखा होगा। श्रीचन्द्रकलाजी मनमें ऐसा विचार कर, उन सबोंसे जाकर दीनता पूर्ण यथार्थ वचन बोलीं:-॥२८॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

कच्चिद्भगिन्यो भवतीभिरार्या दृष्टा व्रजन्ती वदतान्यगेहम् ।
न दृश्यतेऽस्मिन्नयनाभिरामा विचिन्वती चास्मि गता निराशाम् ॥२६॥

हे बहिनों ! बतलाइये, क्या आप लोगोंने श्रीललीजीको दूसरे भवनमें जाते हुये देखा है ? क्योंकि नेत्रोंको आनन्द प्रदान करने वाली वे श्रीललीजी इस भवनमें कहीं भी दिखाई नहीं पड़ रही हैं, मैं उन्हें खोजते २ निराश हो गयी ॥२६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

निशाम्य ताः कौतुकसिन्धुमग्नाः प्रोक्तं तया वाक्यमशातपूर्णम् ।
विष्टभ्य चेतांसि समूचुरार्या दृष्टा न हर्म्याद्बहिरागतेति ॥३०॥

श्रीचन्द्रकलाजीके दुःख पूर्ण इन कहे हुये वचनोंको सुनकर वे सभी आश्चर्य सागरमें डूब गयीं, पुनः अपने चित्त को सावधान करके इस प्रकार बोलीं:-"श्रीललीजीको भवनसे बाहर आई" यह हम लोगोंने नहीं देखा है ॥३०॥

भयप्रदं किं वचनं ब्रवीषि श्रोतुं न शक्याम इति प्रियोक्त्वा ।
श्रीचारुशीलादिसमस्तसख्यो गता विचेतुं भवनं तदेनाम् ॥३१॥

हे श्रीचन्द्रकलाजी ! आप क्या भय दायक वचन बोल रही हैं ? हम लोग इन्हें सुननेको समर्थ नहीं हैं । ऐसा कहकर श्रीचारुशीलाजी आदि सभी सखियाँ उस विशाल भवनमें इन श्रीललीजीको खोजनेके लिये पधारीं ॥३१॥

ताश्चापि सर्वत्र पुनः पुनश्च प्रचक्रुरन्वेषणमिन्दुमुख्याः ।
प्रस्वेदधाराऽनुचचाल तासां गात्रेषु तूद्विग्नतयाऽम्बुजाक्ष ! ॥३२॥

हे कमललोचन ! वे चन्द्रमुखी सखियाँ भी उन्हें बारम्बार सभी स्थानोंमें खोजने लगीं, घबड़ाहटके कारण उन सबोंके अङ्गोंसे पसीनेकी धाराबह चली ॥३२॥

परं न शेकुर्नलिनायताक्षीं विचेतुमेनामपि कोटियत्नैः ।
चक्रुर्विलापं सुदृशो हताशा अस्या गुणान्वल्लभ ! वर्णयन्त्यः ॥३३॥

इति सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

परन्तु करोड़ों उपाय करनेपर भी इन कमललोचना श्रीललीजीको वे खोजनेमें समर्थ न हुईं । अत एव हताश हो श्रीललीजीके गुणोंका वर्णन करती हुई, वे सभी सुन्दर नेत्रवाली बहिनें बिलख २ कर रोने लगीं ॥३३॥

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

विरह व्याकुला सखियोंका आर्त्त-विलाप तथा उन्हें किशोरीजीका दर्शन—

सख्य ऊचुः ।

क नु गता प्रिये ! पङ्कजेक्षणे ! वनरुहानने ! नो विहाय ह ।
अनवलोकिता स्वप्रियालिभिर्जनकनन्दिनि ! द्वारिगाऽगणैः ॥१॥

सखियाँ बोलीं:-हा कमलके समान विशाल नेत्रों वाली ! हा प्रफुल्लितकमलके सदृश मुखचन्द्रवाली ! हा प्रिये ! हा श्रीजनकनन्दिनीजू ! द्वारपर उपस्थित अपनी प्रिय सखियोंकी दृष्टि बचाकर, हम सबोंको छोड़कर आप कहाँ चली गयीं ॥१॥

सहजमोहिनि ! प्रेमविग्रहे ! गृहमिदं त्वया हीनमीक्ष्यते ।
अहह वर्त्मना केन निर्गता न हि तदद्य नो बुद्धिगोचरम् ॥२॥

हे प्रेमकी मूर्त्तिस्वरूपा ! हे सहजमोहिनी ! (अनायास ही चित्तको मुग्धकर लेने वाली) श्रीललीजू ! ऐसा अनुमान हो रहा है कि आप इस भवनमें हैं नहीं । अहह !! परन्तु किस मार्गसे आप निकल गयीं ? यह हम लोगोंकी समझमें नहीं आ रहा है ॥२॥

असमयेऽधुना स्वांहसावृता रसिकवत्सले ! केन हा वयम् ।
असितलोचने त्वत्समुज्झिता ह्यसि बहिश्च वा किं तिरोहिता ॥३॥

हे भक्तोंपर वात्सल्यभाव रखने वाली ! हे श्यामनेत्रवाली श्रीललीजी ! हाय हमारे किस अपराधसे इस आनन्दमय खेलके समयमें, हमें आपने परित्याग किया है अथवा यदि ऐसा नहीं तो क्या बाहर छिपी हैं ? ॥३॥

इयमपीश्वरी सर्वसाक्षिणां जयति सर्वगाऽमेयविक्रमा ।
इयममोघदृग्भक्ततत्परा भयनिवारिणी सर्वदेहिनाम् ॥४॥

पार न पाने योग्य पराक्रम (शक्ति) से युक्त, सभी साक्षी इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंका नियमन करनेवाली, सर्व व्यापिनी, अमोघ दृष्टिवाली (अर्थात् जिनकी प्रसन्नतापूर्ण दृष्टि होनेपर प्राणियोंके लिये सभी प्रतिकूल अनुकूल, असम्भव सम्भव हो जाते हैं और जिनकी अप्रसन्नता युक्त दृष्टि होनेपर प्रत्येक सम्भव भी असम्भव और अनुकूल भी प्रतिकूल हो जाते हैं ऐसी) भक्तोंको रिझानेमें लगी हुई, सभी प्राणियोंके भयको दूर करने वाली, ये श्रीललीजी सर्वोत्कृष्ट रूपसे विराज रही हैं ॥ ४ ॥

इति पुरोदितं ब्रह्मयोनिना ऋतमवेक्षितं साम्प्रतं हि तत् ।
न तु पुरेति नः प्रत्ययो हृदि स्थितिमवाप वै तदशेदृशी ॥५॥

इस प्रकार ब्रह्मपुत्र श्रीनारदजीने पहिले श्रीललीजीकी महिमा कही थी, सो आज सत्य देखी। पूर्वमें हम लोगोंके हृदयमें इस प्रकारका विश्वास ही नहीं स्थिर हुआ था, इसी लिये तो हम लोगोंकी ऐसी दशा है ॥५॥

सुनयनासुता त्वं किलासि नो जनकतोषिता प्रोदिता ह्यसि ।
अनवधिक्षमावैभवान्विते ! मनस एव नो ऽघं व्यपाकुरु ॥६॥

हे श्रीललीजी ! आप केवल श्रीसुनयनाअम्बाजीकी पुत्री तो हैं नहीं, आप तो श्रीजनकजी-महाराज पर प्रसन्न होकर प्रकट हुई हैं ! हे असीम-वैभव सम्पन्ना श्रीललीजी ! हमलोगोंके अपराध को अपने मनसे हटा दीजिये ॥६॥

प्रकटिता यथा सत्कृपान्विता पिककलस्वने ! ऽस्मिन्नृपान्वये ।
सकलवेदविन्मौलिवन्दिते सत्कृपमेव नः पाहि भूमिजे ! ॥७॥

हे कोयलके समान मधुर भाषिणी, सम्पूर्ण वेदवेत्ता-प्रमुखोंके द्वारा प्रणाम की हुई श्रीललीजी ! जैसे आप अपनी निर्हेतुकी कृपासे युक्त हो इस विदेहकुलमें प्रकट हुई हैं, उसी प्रकार कृपा पूर्वक हम लोगोंकी अब रक्षा कीजिये ॥७॥

अपि यथा त्वया जन्मतो वयं चपलबुद्धयश्चारुलालिताः ।
सपदि नः कृपानिर्मलेक्षणे ! कृपणवत्सले ! लालयान्वहम् ॥८॥

हे श्रीललीजी ! जैसे जन्मसे ही हम चञ्चल-बुद्धियोंका भली भकारसे आप सदा दुलार करती आई हैं, हे साधनादि सकल कलिमल रहित प्राणियोंपर वात्सल्य भाव रखने वाली हे कृपापूर्णलोचने ! उसी प्रकार अब शीघ्र हम सबोंका दुलार कीजिये ॥ ८ ॥

शरणमेव नस्त्वत्पदाम्बुजं धरणिमङ्गलं सर्वतापहम् ।
हरिहरार्चितं मुक्तजीवनं करसरोरुहस्पर्शनाक्षमम् ॥९॥

पृथिवीके मङ्गल स्वरूप, सर्वतापोंको हरण करने वाले, विष्णु महेशादिकोंसे पूजित, मुक्तजीवों के जीवनस्वरूप, करकमलोंका स्पर्श भी न सहन कर सकने योग्य, कोमल, आपके श्रीचरणकमल ही अब हम सबोंकी बिगड़ी हुई को सम्हालने वाले हैं ॥९॥

शशिनिभाननं कीरनासिकं विशदवारिजस्मेरवीक्षणम् ।
दशनशोभनं चारुणाधरं कुशलभावितं चारु दर्शय ॥१०॥

तत्त्वदर्शियोंके द्वारा भावना किये जाने वाले सुग्गाके समान नासिकासे युक्त, कमलके समान मुसुकान युक्त नेत्र, दन्तपङ्क्तिसे शोभायमान, लाल अधर, युक्त अपने मनोहर, मुखचन्द्रका शीघ्र दर्शन प्रदान कीजिये ॥१०॥

विरहपावकस्त्वद्धि साम्प्रतं परिदहत्युरोमन्दिराणि नः ।
कुरु कृपामतो न ह्युपेक्षणं धरणिजे ! कृपाक्षान्तिविग्रहे ! ॥११॥

हे कृपा व क्षमाकी स्वरूपे ! हे भूमिसे प्रकट होने वाली (अगाध सहनशीलतासे युक्त) श्रीललीजी ! आपकी वियोगजनित अग्नि इस समय हम लोगोंके हृदयरूपी मन्दिरोंको चारो ओर से जला रही है, अत एव अब आप कृपा ही कीजिये, उपेक्षा नहीं ॥११॥

त्वमसि सम्भवा नः सुखाप्तये विमलभाविते ! भूयशः श्रुतम् ।
भ्रमत एव तन्नो मनो भृश समवलोक्य ह्य त्वां तिरोहिताम् ॥१२॥

हे विशुद्ध-अन्तस्करणवाले महात्माओं द्वारा भावनाकी जाती हुई श्रीललीजी ! मैंने वारम्वार यह सुना है, कि आप हम सबोंको सुख प्राप्ति करानेके लिये ही अवतीर्ण हुई हैं, इस लिये आपको इस प्रकार अन्तर्धान हुये देखकर हम लोगोंका मन भ्रम (सन्देह) में पड रहा है, कि यदि लोगोंके कथनानुसार हम लोगोंके सुखार्थ ही श्रीललीजीका अवतार हुआ होता, तो आज इस असह्य दुःखका अनुभव हमें क्यों करना पड़ता ॥१२॥

दयस एव नास्मासु वै कथं भयसमाकुलासु स्मितानने ! ।
दयित ! उर्विजे ! दीनवत्सले ! वयमुपेक्षिताः सत्यमेव किम् ॥१३॥

हे प्यारी ! आपतो क्षमाशीलोंमें अग्रगण्या श्रीभूमिदेवीको भी अपने इस गुणसे आनन्दित करनेवाली तथा सब साधन रहित प्राणियों पर वात्सल्य भाव रखनेवाली हैं, अत एव आपके द्वारा अपने त्यागभयसे व्याकुल हुई हम सबोंको, अपने खोजनेमें साधन रहित समझकर, हमारे सभी अपराधोंको क्षमा करके दर्शन देनेके लिये क्यों नहीं कृपा करती हैं अथवा क्या वास्तवमें ही आपने हमारी उपेक्षा कर दी है ? ॥१३॥

यदि नु दुर्विधेरिष्टमित्यृतं वद प्रयोजनं जीवितेन किम् ।
पदसरोरुहं किल्बिषौघहं मदनमोहनं तेऽस्तु नो गतिः ॥१४॥

यदि हम लोगोंके दुर्भाग्य वश सत्य ही आपको यही (हमें रुलाना ही) अभीष्ट हो, तो आप ही कहें हम लोगोंको ऐसे अभागे जीवनसे क्या प्रयोजन है ? हे श्रीललीजी ! पापपुञ्जोंको नाश करने वाले तथा काम देवको भी मुग्ध कर लेने वाले, आपके श्रीचरणकमल ही अब हमारे सहायक बनें ॥१४॥

तुदसि नः किमर्थं दयानिधे ! तदनुशंस वै स्वास्यगोपनात् ।
इदमपीक्ष्यते चाद्भुतं परं न दयिते ! स्वभावः सुखत्यजः ॥१५॥

हे श्रीदयानिधेजू ! बतलाइये अपने श्रीमुखचन्द्रका दर्शन न देकर हम सबोंको क्यों पीड़ित कर रही हैं ? हे परमप्रिये ! यह बड़ा ही आश्चर्य दीख रहा है, जो हम लोग इस प्रकार आपके दर्शनों के लिये व्याकुल हो रो रही हैं और उसे आप सहन कर रही हैं, क्योंकि स्वभाव किसीके लिये भी त्यागना सहज नहीं होता, फिर आप अपने अनन्तकरुणा, वात्सल्य, सौशील्यमय स्वभावको किस प्रकार छोड़कर तथा कठोरता धारण करके हम लोगोंकी इस व्याकुल दशाको देखकर भी, प्रकट नहीं हो रही हैं ॥१५॥

जलरुहेक्षणे ! चेन्मनागघि नः कलयसे त्वं जातुचिद्ध्रुवम् ।
मलहृदां भवेत्तर्हि पादयोर्नलिनकल्पयोर्नार्चनार्हता ॥१६॥

हे कमललोचने ! यदि आप हम लोगोंके अपराधों पर किञ्चित् भी ध्यान देंगी, तो निश्चय ही हम मलिन हृदय वालियों को आपके कमल समान सुकोमल श्रीचरणोंकी सेवाका अधिकार ही कभी न प्राप्त होगा ॥१६॥

न च मृषोच्यते तद्धृदिस्थिते ! वच इदं हि ते ज्ञातुमर्हति ।
अचिरकालतस्तुष्यतां त्वया विचर चक्षुषोः सानुकम्पया ॥१७॥

हे हृदयमें विराजने वाली श्रीललीजी ! यह बात हम आपसे झूठ, असत्य नहीं कह रही हैं, फिर आप उसे स्वयं ही जाननेको समर्थ हैं । हे श्रीललीजू ! अब आप शीघ्र ही प्रसन्न होइये और हमारे दोनों नेत्रोंमें विचरण कीजिये ॥१७॥

कमललोचने ! मा विलम्बय समधुरस्मितं दर्शयाधुना ।
विमलशर्वरीवल्लभाननं नम उशाच्छवे ! ते मुहुर्मुहुः ॥१८॥

हे मनोहर कान्तिवाली ! हे कमललोचने ! श्रीललीजू ! हम सब आपको वारम्वार नमस्कार

कर रहीं हैं, अब विलम्ब न कीजिये मनोहर मुसुकान युक्त, स्वच्छ चन्द्रमाके समान प्रकाश-मय, अपने आह्लादकारी श्रीमुखारविन्दका शीघ्र दर्शन कराइये ॥१८॥

ततमिदं त्वया चाखिलं जगत् विति न बोधतो नः प्रयोजनम् ।
सततमेव ते दर्शनोत्सुका जितमहाच्छवे विद्धयृतं वयम् ॥१९॥

हे महाछविको भी अपनी मनोहरताके द्वारा जीत लेने वाली श्रीललीजी! यद्यपि हम लोग जानते हैं, कि यह सारा विश्व ही आपके द्वारा व्याप्त है अर्थात् आप सर्वत्र सभी स्वरूपोंमें विराजमान हैं, परन्तु इस ज्ञानसे हमें कोई प्रयोजन ही नहीं है, क्योंकि हम लोग तो सततकाल आपके दर्शनोंके लिये ही उत्सुक हैं, यह आप सत्य जानिये ॥१९॥

नवरदा नवमारुणाधरो नवकरद्वयं चाभयप्रदम् ।
यवदराब्जवज्रादिलक्ष्मभिस्तव पदाम्बुजे शोभिते ऽर्चिते ॥२०॥

हे श्रीललीजी! आपकी यह नवीन अवस्था, व आपके नवीनसुन्दर केश, मनोहर जूड़ा, नवीन कान व युगल कपोलोंसे युक्त मुखारविन्द नवीन कमलके समान नेत्र व सुगाके सदृश आपकी सुन्दर नासिका ॥२०॥

तव नवं वयो मञ्जुकुन्तला नवसुधम्मिल्लो मोहनश्रुती ।
नवकपोलसंशोभिताननं नवसुनासिका कीरमोहिनी ॥२१॥

कुन्दपुष्पकी कलीके समान आपके दान्त, नवीन विशेष अरुण (लाल) अधर, अभयदायक आपके दोनों हस्तकमल, यव, शङ्ख कमल, वज्र आदि चिन्होंसे शोभायमान, सखियोंसे पूजित आपके दोनों श्रीचरण-कमल ॥२१॥

द्युतिरुरस्तमोराशिहारिणी स्मितमनोहरप्रेमवीक्षणम् ।
रतिसमूहसंमोहनच्छविर्गतिरिभेन्द्रकन्याविमोहिनी ॥२२॥

हृदयका अन्धकार दूर करनेवाली, उपमारहित आपके श्रीअङ्गकी कान्ति, मुसुकानसे मनको हरण करनेवाली प्रेमपूर्वक चितवन, रतिसमूहों की छविको लज्जित करने वाली आपकी सुन्दरता, मस्त हथिनीके अभिमानको दूर करनेवाली आपकी सुन्दर चाल ॥२२॥

सरणिमेत्य नः संस्मृतेर्मुहुर्विरहपावकं दुःसहं परम् ।
कुरुत एधितं ते प्रतिक्षणं हरिणलोचने! ऽद्यानुकम्पय ॥२३॥

हम लोगोंके स्मरण पथमें बारम्बार आकर आपके वियोग जनित, परम दुःसह अग्निको क्षण क्षणमें बढ़ा रही हैं, इस लिये हे मृगके समान नेत्रवाली श्रीललीजी! अब अपराधोंको क्षमा करके दर्शन देनेके लिए कृपा कीजिये ॥२३॥

रसनिधे! त्वया हा समुज्झिता ह्यसुखसागरे पातिता वयम्।
प्रसभमेव दुर्दिष्टरक्षसा न समुदीक्ष्यते त्वां विना गतिः ॥२४॥

हे समस्त रसोंकी स्थानस्वरूपा श्रीललीजी! हा आपसे त्यागी हुई हम सबोंको दुर्भाग्य रूपी राक्षसने बलात्कार दुःख रूपी समुद्रमें पटक दिया है, इस लिये अब बिना आपके और कोई भी अपनी रक्षा करनेवाला नहीं दीख पड़ता ॥२४॥

निहतकण्टके! भूपनन्दिनि! द्रुहिणमाधवत्र्यक्षभाविते!
अहह तुष्यतां नोऽमृतेक्षणे! मुहुरनुग्रहादेव ते नमः ॥२५॥

हे समस्त बाधाओंसे रहित श्रीमिथिलेश महाराजको आनन्द-प्रदान करनेवाली! हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश द्वारा ध्यानकी जाती हुई! हे अमृतमयी दृष्टि वाली! अहह!! श्रीललीजी! हम सबों पर अपनी निर्हेतुकी कृपासे ही प्रसन्न होइये, आपको नमस्कार है ॥२५॥

सरलताकृपाक्षान्तिपूजिते! कुरु कृपां प्रिये! चोद्धराशु नः।
करुणया दृशा प्रेक्ष्यकिङ्करी र्विरहवेदनामुह्यतीर्भृशम् ॥२६॥

हे सरलता, कृपा, सहनशीलता शक्तियोंसे पूजनकी हुई! हे प्यारी श्रीललीजी! आपके वियोग-जनित पीडाके कारण अत्यधिक मूर्च्छित होती हुई दासियोंको अपनी करुणामयी दृष्टिसे देखकर, अब कृपा कीजिये और हम सबोंको अपने इस वियोग-जनित दुःख रूपी सागरसे ऊपर निकाल लीजिये अर्थात् दर्शन प्रदान करके कृतार्थ कीजिए ॥२६॥

शमितमन्मथप्रेयसीस्मये! श्रममुपागतास्तावका बहु।
गमय सत्वरं पङ्कजाङ्घ्रिणा समधिगम्य नः सुप्रसन्नताम् ॥२७॥

हे रतिके अभिमानको दूर करनेवाली श्रीललीजी! अब हम सभी आपकी दासियाँ बहुत थक गयी हैं, अत एव अब पूर्ण प्रसन्न हो करके सुकोमल अपने श्रीचरणकमलोंकी शीघ्र प्राप्ति कराइये ॥२७॥

यश उदाहृतं नारदादिभिर्ह्यशुभनाशनं पापिपावनम्।
अशरणात्मनां नोऽस्तु निर्मलं सुशरणं प्रिये! कामदं गतिः ॥२८॥

हे प्यारी श्रीललीजी! सम्पूर्ण अमङ्गलोंका नाशक, पापियोंको पवित्र करनेवाला, सभी प्रकारके मनोरथोंकी पूर्ति करने वाला, श्रीनारद आदि महर्षियोंके द्वारा वर्णित, भली प्रकारसे रक्षा करनेवाला, आपका निर्दोष यश, हम उपाय रहित आत्माओंकी सहायता करे ॥२८॥

हृदयमस्ति नो वज्रसन्निभं मदसमाकुलं दुर्भिदं परम्।
यदनुदीक्ष्य ते पादपङ्कजं न दयिते! द्रुतं संस्फुरत्यहो ॥२९॥

अहो प्यारी श्रीललीजी! हम लोगोंका हृदय अभिमानसे भरा हुआ वज्रके समान फोड़नेमें कठिन है, जो कि आपके श्रीचरण-कमलोंका दर्शन न पाकर टुकड़े २ नहीं हो रहा है ॥२९॥

दरसुकण्ठि! तेऽलं परीक्षया करुणयाऽऽर्द्रया पश्य नो दशा।
चरणपङ्कजं नूपुरान्वितं शिरसि धेहि नः श्रीमदर्चितम् ॥३०॥

हे शङ्खके समान सुन्दर कण्ठवाली श्रीललीजी! परीक्षा बहुत हुई, अब करुणासे द्रवित हुई दृष्टिसे हम सबोंको देखिये और नूपुरसे सुशोभित, ब्रह्मादि देवताओंसे पूजित श्रीचरण-कमलको हम लोगोंके शिर पर रखने की कृपा कीजिये ॥३०॥

यदि न चाधुना सङ्गता प्रिये! सदयमेव हाऽस्माभिरग्रजे!।
गदितमप्यृतं ज्ञायतामिदं तदसुवर्जिता द्रक्ष्यसीह नः ॥३१॥

हे हमारी जेठी बहिन प्यारी श्रीललीजी! यदि दयापूर्वक आप इस समय हम लोगोंको पूर्ण रूपसे प्राप्त नहीं होती हैं, हम सबोंको मरी हुई ही देखोगी, यह हम लोगोंका कहा हुआ भी आप सत्य जानिये ॥३१॥

अधिकमद्य ते किं ब्रुवामहे विधिरहो प्रिये! दुर्निवारणः।
निधिरुपेक्षसे ऽनुग्रहस्य नो बुधसमर्चिता, स्वात्मकिङ्करीः ॥३२॥

हे श्रीललीजी! अब इससे अधिक और क्या आपसे निवेदन करूँ? जब दयाका खजाना व तत्त्ववेत्ताओंसे पूजित होकर भी आप अपनी किङ्करियों (दासियों) की ओरसे दयादृष्टि हटाई हुई हैं तो प्रारब्ध ही अनिवार्य (अटल) है ॥३२॥

श्रीलेढ्यपरोवाच।

इत्थं विलप्य बहुशो रुरुदुर्भृशार्त्ताः
प्राणप्रिये! जनकनन्दिनि! मैथिलीति।
हे रूपशीलकरुणासुधर्मैकसिन्धो
नो दर्शनं दिश सकृत्प्रणतिप्रसन्ने! ॥३३॥

हे रूप, शील, करुणा, तथा उपमा रहित सौन्दर्यकी सागर स्वरूपे ! हे प्राणप्यारी ! श्रीजनकनन्दिनीजू ! हे श्रीमैथिलीजू ! एक बारके प्रणाम मात्रसे ही प्रसन्न होनेवाली ! हे श्रीललीजू ! अब दर्शन दीजिये, इस प्रकार बहुत विलाप करके अत्यधिक व्याकुल हुई वे सभी बहिनें रोने लगीं ३३

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आविरभूत्तु तदा सदया ऽवनिजा निमिवंशविभूषणकीर्त्तिः
स्मेरसुधांशुनिकायमनोहरचारुमुखी सुषमामयमूर्त्तिः ॥
वृत्तमनोज्ञकपोलयुगा सुरुचिः सुदती युगपत्प्रिय ! तासां
तीव्रवियोगसुवेदनया परिवर्जितसाधनपङ्क्तिमतीनाम् ॥३४॥

इत्यष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! तब श्रीललीजीके वियोगकी प्रचण्ड पीड़ाके कारण साधनरहित मति वाली उन बहिनोंमें ही, सुन्दरदान्त, मनोहरकान्ति, गोल मनोहर दोनों कपोलों वाली, सबसे अधिक सुन्दरतासे भरी मूर्त्तिवाली, मुसुकान युक्त, अनन्त चन्द्रमाओंके सदृश मनहरण, सुन्दरमुख व अपने सुयश रूपी भूषणसे निमिवंशको सुशोभित करने वाली, भूमिसे जायमान श्रीललीजी दयायुक्त हो प्रगट हो गयीं ॥३४॥

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥६९॥

श्रीचन्द्रकला-श्रीजनकलली-संवाद :–

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीं विस्मेरेन्दुनिभाननाम् ।
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वा मृताः प्राण इवागते ॥१॥

हे प्यारे ! हरिणके बच्चेके समान सुन्दर नेत्रवाली व मुसुकाते हुये पूर्ण चन्द्रमाके समान आह्लादकारी मुखवाली श्रीललीजू का दर्शन करके वे सभी एक साथ इस प्रकार उठ खड़ी हुईं, जैसे प्राण आजाने पर मुर्दे ॥१॥

काश्चिज्जगृहुरस्याश्च पादौ सरसिजोपमौ ।
काश्चित्करारविन्दे च भुजौ च काश्चिदातुराः ॥२॥

कुछ सहिने इन श्रीललीजूके कमलसमान सुकोमल अरुण श्रीचरणों को, कुछ दोनों हस्त कमलों को, कुछ विरहसे पीडित सहिनें इनकी भुजाओं को पकड़ लीं ॥ २ ॥

काश्चित्कराङ्गुलीरस्या जगृहुः प्रीतिनिर्भराः ।
अपरा सम्मुखे तस्थुर्मुखचन्द्रार्पितेक्षणाः ॥३॥

कुछने श्रीललीजूके करकमलोंकी अङ्गुलियों को प्रेम निर्भर होकर ग्रहण कर लिया तथा अन्य अपने नेत्रोंको श्रीललीजूके मुखचन्द्र पर समर्पण करके सामनें खड़ी हो गयीं ॥३॥

उवाच मधुरं यच्च तदेयं सस्मितं वचः ।
श्रूयतां रघुवंशेन ! त्वया तत्संयतात्मना ॥४॥

तब ये श्रीललीजी मुसुकान पूर्वक जो वचन बोलीं, उसे रघुकुल को सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले हे श्रीप्यारेजू ! आप एकाग्र चित्तसे श्रवण कीजिये ॥४॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

उपहासं करोषि स्म नार्हसीति निगूहितुम् ।
कस्मात्परन्तु मां गुप्तामन्वेषितवती न हि ॥५॥

श्री जनकदुलारी बोलीं—हे श्रीचन्द्रकले ! आप मेरी हँसी करती थी कि आपको छिपनेकी सामर्थ्य ही नहीं है, सो मेरे छिप जानेपर आपने क्यों नहीं मुझे खोज लिया ॥५॥

वद पृष्टा मया सुभ्रु ! यथार्थं चाधुनोत्तरम् ।
अयि चन्द्रकले ! कस्माद्दृग्भ्यामश्रूणि मुञ्चसि ॥६॥

हे सुन्दर भौंह वाली श्रीचन्द्रकलाजी ! मेरी पूछी हुई बातका अब ठीक जवाब दीजिये । अहो नेत्रोंसे आँसू क्यों बहा रही है ॥ ६ ॥

त्वया सम्प्रार्थिता गुप्ता त्वन्मनोऽभीष्टसिद्धये ।
कस्मादधैर्यतां प्राप्ता दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥७॥

आपकी प्रार्थनासे ही तो मैं आपका भाव पूरा करनेके लिये छिपी थी, तब आप अधीर क्यों हो रही हैं ? आपकी इस अवस्थाको देखकर मेरा मन बड़ा दुःखी हो रहा है ॥७॥

उच्यतां कारणं मह्यं विषादस्यात्र सुव्रते !
भूयः प्रियं करिष्यामि तव नास्त्यत्र संशयः ॥८॥

हे सुन्दर सेवाव्रत लेनेवाली श्रीचन्द्रकलाजी ! अपने दुःख माननेका कारण बतलाइये, मैं पुनःपुनः आपकी प्रसन्नताका ही कार्य करूँगी, इसमें शङ्काकी कोई बात नहीं है ॥८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युक्ता वीतशोका सा प्राह बद्धकराञ्जलिः ।
नत्वा मुहुर्मुहुः पादौ प्रश्रयानतलोचना ॥९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :-हे प्यारे ! श्रीललीजूके इतना कहने पर शोक-रहित हो श्रीचन्द्रकलाजी हाथ जोड़ी, हुई उनके श्रीचरण कमलोंको बारम्बार प्रणाम करके, नम्रताके कारण नेत्रोंको नीचे की हुई बोलीं :-॥९॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

दुर्विभाव्यं च ते रूपं मनोवाचामगोचरम् ।
दृष्टोऽप्यचिन्त्यशक्तेस्त्वत्प्रभावोऽप्रागुदीक्षितः ॥१०॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:-हे श्रीललीजी ! आपका स्वरूप समझमें नहीं आसकता, क्योंकि वह मन तथा वाणीसे परे है अर्थात् न उसे वाणी वर्णन करनेमें ही समर्थ है न मन मनन करनेमें। चिन्तनमें न आसकने योग्य शक्तिवाली हे श्रीललीजी ! आपका वह प्रभाव जिसे मैंने पूर्वमें कभी नहीं देखा था खूब देख लिया ।१०॥

मिथिलेयं पुरी धन्या यस्यां जाताऽसि शोभने !
धन्या भूमिस्त्वियं नूनं क्रीडाभूमिस्त्वया कृता ॥११॥

हे शोभने (कल्याणकारिणी) ! श्रीललीजी ! आप जहाँ प्रकट हुई हैं, वह यह श्रीमिथिलापुरी धन्य है तथा श्रीमिथिलाजीकी यह भूमि धन्य है, जिसे आपने अपनी जन्मभूमि बनाई हुई हैं ॥११॥

धन्यं कुलं तथाऽस्माकं ब्रह्मविष्ण्वादिभिः स्तुतम् ।
यत्रोद्भवा प्रसिद्धाऽसि परमाह्लादरूपिणि ! ॥१२॥

हे आह्लादस्वरूपा श्रीललीजी ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिसे प्रशंसित हमारा यह [illegible] धन्य है, जिसमें आप प्रकट हुई प्रसिद्ध है ॥१२॥

नः प्रपितामहो धन्यः स्वर्णरोमा प्रतापवान् ।
यत्पौत्री त्वमस्माकं भगिनी सद्विरर्चिते ॥१३॥

हमारे प्रतापी परबाबा श्रीस्वर्णरोमाजी महाराज धन्य हैं, जिनके पौत्रकी पुत्री और हम सखोंकी बहिन, आप सन्तोंके द्वारा बखानी जाती हैं ॥१३॥

धन्यः पितामहोऽस्माकं ह्रस्वरोमा महोदयः ।
यस्य पौत्री त्वमाख्याता सर्वलोकमहेश्वरी ॥१४॥

हमारे उन्नतिशाली बाबा श्रीह्रस्वरोमाजी महाराज धन्य हैं, समस्त लोकोंके स्वामियोंकी स्वामिनी आप जिनकी पौत्री (पुत्रकन्या) कहलाती हैं ॥१४॥

धन्यः खलु पिताऽस्माकं यस्य त्वं गीयसे सुता ।
अम्बा सुनयना धन्या यस्याश्चाङ्के विवर्द्धिता ॥१५॥

हमारे पिता श्रीसीरध्वज महाराज धन्य हैं, जिनकी आप पुत्री कहलाती हैं और जिनकी गोदमें आप इतनी बड़ी हुई हैं, वे श्रीसुनयनाअम्बाजी परम धन्य हैं ॥१५॥

लब्धसेवकसौभाग्या धन्या निमिसुता वयम् ।
मिथिलावासिनो धन्यास्त्वद्दर्शनविधिं गताः ॥१६॥

उपमारहित आपकी सेवाका सौभाग्य-प्राप्त हम सभी निमिवंश कुमारियाँ धन्य हैं तथा श्रीमिथिला-निवासी धन्य हैं, जिन्हें आपकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त है एवं जिन्हें आपके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त है, वे सभी धन्य हैं ॥१६॥

धन्यास्त एव लोकेऽस्मिन्विहिताशेषसाधनाः ।
येषां त्वदङ्घ्रिकमले सदा भृङ्गायते मनः ॥१७॥

वे प्राणी धन्य हैं और वे समस्त साधनोंको कर चुके हैं, जिनका मन आपके श्रीचरणकमलोंमें भौंराके समान सदैव आसक्त बना रहता है ॥१७॥

भावानुसारिणी येषां भवत्यच्युतहृत्स्थिता ।
धन्यधन्यतमास्ते वै विश्ववन्द्यपदाम्बुजाः ॥१८॥

सदा एक रस रहनेवाले, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् प्यारे श्रीरामललाजूके हृदयमें विराजमान रहनेवाली, आप जिनके भावका अनुसरण करती हैं अर्थात् जिनके भावानुसार ही सब व्यवहार करती हैं, वे आपके अनुरागी भक्त धन्योंमें भी परम धन्य हैं, उनके श्रीचरणकमल समस्त विश्वके द्वारा प्रणाम करने योग्य हैं ॥१८॥

काऽसि त्वं तत्त्वतो ब्रूहि प्रवृत्तिं त्वन्न विद्महे ।
भवत्या दर्शनानन्दं सर्वस्वं कलयामहे ॥१६॥

हे श्रीललीजी ! आप वास्तवमें हैं कौन ? सो बतलाइये, आपके भावको हम लोग नहीं जानती हैं, परन्तु आपके दर्शनों को ही सर्वस्व समझ रही हैं ॥१६॥

असङ्ख्यका विशालाक्षि ! समेतास्त्वां दिदृक्षवः ।
चतुर्मुखाष्टवक्त्राश्च षोडशास्यास्तथा प्रिये ! ॥२०॥
अनन्तवदनाश्चापि बहुरूपाः सशक्तिकाः ।
ब्रह्मविष्णवीश्वरा दृष्टा भिन्नब्रह्माण्डवर्तिनः ॥२१॥

हे विशाललोचने ! हे प्रिये श्रीललीजी ! आपके दर्शनाभिलाषी आये हुये चार मुख, आठ मुख तथा सोलह मुख ॥ २० ॥ और अनन्त मुखोंसे युक्त बहुत रूपवाले शक्तियोंके सहित अलग-अलग ब्रह्माण्डोंमें रहने वाले असङ्ख्य ब्रह्मा, विष्णु, महेशोंको मैंने देखा है ॥२१॥

सर्वे त्वां हि नमस्यन्ति संस्तुवन्ति गृणन्ति च ।
सर्वे कृपाकटाक्षं ते समीहन्ते सुरेश्वराः ॥२२॥

सभी आपको नमस्कार करते हैं, सभी स्तुति करते हैं और सभी आपके गुणोंको गाते हैं इतना ही नहीं बल्कि सभी दिव्यदर्शन देव वृन्दादि आपकी कृपा कटाक्षको चाहते हैं ॥२२॥

सा गृहेषु त्वमस्माकं क्रीडसे प्राकृता यथा ।
सर्वं रसमयं विश्वं कृतं ते जन्ममात्रतः ॥२३॥

इस प्रकारकी महिमा सम्पन्ना-आप हम लोगोंके महलोंमें साधारण बालिकाओंके समान खेलती रहती हैं, विशेष क्या कहूँ ? जन्म मात्रसे ही आपने इस सम्पूर्ण विश्वको आनन्दमय कर दिया है २३

नापराधांस्त्वमस्माकं वीक्षसे चेतसाऽप्यहो ।
लीलया विहितो लोकः स्वर्गादपि शताधिकः ॥२४॥

हम लोगोंके अपराधोंको तो आप चित्तसे भी नहीं देखती हैं, अपितु विश्व-सुखविस्मारक, मनोहारिणी लीलाके द्वारा आपने इस मनुष्य लोकको स्वर्ग (दिव्य धाम) से भी बढ़कर बना दिया है ॥२४॥

सुखे सुखं त्वमस्माकं दुःखे दुःखं तथैव च ।
मन्यसे तद्वयं सर्वा जानीमो दीनवत्सले ! ॥२५॥

हे दीनों (साधनाभिमान रहितों) पर वात्सल्य भाव रखनेवाली श्रीललीजी ! हम सो जानती हैं, कि आप हम लोगोंके सुखमें सुख और दुःखमें दुःख मानती हैं ॥२५॥

इदनीं निश्चयो ऽस्माकं सञ्जातः करुणानिधे !
यत्कृतं क्रियते यच्च यत्करिष्यसि तद्धितम् ॥२६॥

हे करुणानिधे श्रीललीजी ! अब हमें निश्चय हो गया, कि आपने जो कुछ किया है, जो कर रही हैं, अथवा आगे भी जो कुछ करेंगी, वह यथार्थमें हित (भला) ही होगा ॥२६॥

अनभिज्ञाः प्रमत्ताश्चाकृतज्ञा बालिका वयम् ।
कथं त्वां वै विजानीमो मनोवाग्बुद्ध्यगोचराम् ॥२७॥

हे श्रीललीजी ! आपको वस्तुतः न मन, मनन कर सकता है, न बुद्धि, निश्चय कर सकती है, न वाणी, कथन कर सकती है, तब ज्ञानरहित बालक्रीडामें मस्त रहनेवाली व, आपके उपकारोंको न समझने वाली हम बालिकायें, भला किस प्रकार आपको निश्चय पूर्वक समझ सकती हैं अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं ॥२७॥

याऽसि साऽसि किमस्माभिः सर्वदैवं मृदुस्मिते !
रमयास्मान्स्वलीलाभिरेतदेवेप्सितं हि नः ॥२८॥

अच्छा आप जो कोई भी हों, हम लोगोंको उससे क्या प्रयोजन ? हे मन्दमुसुकानवाली श्रीललीजी ! हमें तो आप सदैव इसी प्रकार अपनी मनोहारिणी लीलाओंके द्वारा आनन्द-प्रदान करती रहें, बस यही हमें चाहिये ॥२८॥

चिरञ्जीव सुखं भुङ्क्ष्व सर्वदा जयमाप्नुहि ।
अस्मांस्त्वत्किङ्करीर्विद्धि वारिजाक्षि ! दयानिधे ! ॥२९॥

आप अनन्त काल तक जीवें, सदा सुखी रहें, सदा ही आपकी जय हो ! हे कमलके समान सुन्दर विशाल नेत्रवाली ! हे दयानिधि श्रीललीजी ! हम सबोंको सदा ही अपनी दासी जानती रहें ॥२९॥

वयं धन्यासुधन्याश्च यासां त्वमसि पूर्वजा ।
न वियोज्या भवत्याऽस्मो जातुचिच्चरणाम्बुजात् ॥३०॥

हम लोग धन्याओंमें भी परम धन्या हैं, जिनकी आप बड़ी रहिन हैं। हे श्रीललीजी! हम लोग आपके द्वारा कभी भी श्रीचरणकमलोंसे अलग करनेके योग्य नहीं हैं अर्थात् हमें कभी अपने श्रीचरणकमलोंसे अलग (विमुख) न कीजियेगा ॥३०॥

यथास्मस्ते हि किङ्कर्यस्त्वामेव शरणं गताः।
नान्याऽस्ति नो गतिः काऽपि तत्सत्यं त्वां ब्रुवामहे ॥३१॥

हे श्रीललीजी! हम सभी भली-बुरी जैसी भी हैं, आपकी शरणमें आई हुई आपकी दासियाँ हैं, हमलोगों का आपके अतिरिक्त और कोई भी सहायक नहीं है, सो हम आपसे सत्य कह रही हैं ३१

अभीतिदे कराम्भोजे सुस्निग्धे वरदायके।
सदा दीनहिते भव्ये मनोज्ञे शीर्षिणि धेहि नः ॥३२॥

हे श्रीललीजी! अभयदायक अत्यन्तचिकने, वरदायक, दीनहितकारी, भावना करने योग्य, मनोहर, अपने हस्त रूपी कमलों को हम सबोंके शिर पर निवेशित कीजिये ॥३२॥

देहि तां शक्तिमस्मभ्य शक्तीनां परमेश्वरी।
यथा त्वच्चरणाम्भोजे वासयामो हृदालये ॥३३॥

हे समस्त शक्तियोंको अपने वशमें रखने वाली श्रीललीजी! हम वह शक्ति प्रदान कीजिये, जिसके द्वारा आपके श्रीचरणकमलोंको अपने हृदय रूपी मन्दिरमें बसा लें ॥३३॥

त्वत्प्रसादो हि सर्वस्वमस्माकं कमलेक्षणे!
वीक्ष्याः पाल्या नियोज्याश्च वय दास्य इवानिशम् ॥३४॥

हे कमललोचने! आपकी प्रसन्नता ही हम सबा के लिये सर्वस्व (सारी सम्पत्ति) है। हे श्रीललीजी! हम सबों को दासियोंके समान कृपा दृष्टिसे देखिये, दासियोंके सदृश उदार भावसे पालन कीजिये और दासियोंके समान ही निःसङ्कोच भावसे अपनी इच्छानुकूल सदैव सेवामें लगाये रहिये ॥३४॥

श्रीवेदव्यासोवाच।

प्रणतायाः समाकर्ण्य विनयं प्रीतिवर्द्धनम्।
चन्द्रभानुसुतायाश्च मैथिली मुदिता ऽभवत् ॥३५॥

अपनी दासी श्रीचन्द्रकलाजीकी प्रसन्नता बढ़ाने वाली प्रार्थनाको सुनकर श्रीमिथिलेशराज दुलारीजी प्रसन्न हो गयीं ॥३५॥

ततः सा प्रीतिसन्तुष्टा करुणावरुणालया ।
मुदा चन्द्रकलायै हि दोर्भ्यामालिङ्गनं ददौ ॥३६॥

श्रीचन्द्रकलाजीके प्रेमसे पूर्ण प्रसन्न हुई, करुणासागरा श्रीललीजीने हर्ष-पूर्वक श्रीचन्द्रकलाजीको दोनों हाथोंसे उठाकर हृदयसे लगाया ॥ ३६ ॥

उवाच वचनं श्लक्ष्णं गिरा कोकिलतुल्यया ।
श्रूयतामिति सम्बोध्य श्रीसीरध्वजनन्दिनी ॥३७॥

पुनः श्रीसीरध्वज-महाराजके आनन्दको बढ़ानेवाली श्रीललीजी कोयलके समान सुरीली वाणीसे हे श्रीचन्द्रकले ! सुनो" इस प्रकार सावधान करके उनसे मधुर वचन बोलीं :-॥३७॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच।

यदात्थ मे चन्द्रकले ! यथार्थं तदेव नासत्यमवेहि किञ्चित् ।
परन्तु मे विश्वसिहि ब्रुवन्त्याः श्रद्धस्व चेन्मद्वचनेषु भक्तिः ॥३८॥

हे श्रीचन्द्रकलाजी ! आप जो कह रही हैं वह यथार्थ ही है, झूठ किञ्चित् भी नहीं है, परन्तु आपकी यदि मेरे वचनोंमें निष्ठा है, तो मेरे कहनेपर विश्वास कीजिये ॥३८॥

ह्यधैर्यतां चेतस उत्सृजध्वं त्यजामि वो नैव हि जातुचिच्च ।
यूयं यथा प्रेष्ठतमा हि सर्वास्तथाऽसवो नेत्यपि वित्त सत्यम् ॥३९॥

यह सत्य जानिये, आप लोग मुझे जैसी परम प्यारी हैं, वैसे प्राण भी मुझे प्रिय नहीं हैं अत एव मैं कभी भी आप लोगोंको छोड़ नहीं सकती, इस विश्वास पर आप लोग अपने चित्तकी अधीरताका परित्याग कीजिये ॥३९॥

ममाखिलं योऽर्थममन्दभागा ! ऐश्वर्यमाधुर्यदयादिसञ्ज्ञम् ।
क्रीडासहाया भवतीर्विना मे सुखं क्षणार्द्धं न कथञ्चनैव ॥४०॥

हे बड़भागिनियों ! मेरा ऐश्वर्य, माधुर्य, दया आदि नामके जो कुछ भी हैं, वे सभी आप लोगोंके ही लिये हैं। मेरी क्रीडाओंमें सहायक होनेवाली, आप लोगोंके बिना मुझे आधा क्षण भी किसी प्रकारसे सुखमय नहीं है ॥४०॥

ममांशभूता मयि सक्तचित्ताः सुखाय मे पुण्यकुलेऽवतीर्णाः ।
मयैव सार्द्धं सकलं विहारं कृत्वा सदा स्थास्यथ मत्सकाशम् ॥४१॥

क्योंकि आप लोग मेरी ही अंश भूता है, मेरे ही में आप लोगोंका चित्त आसक्त है, और मेरे सुखके लिये ही इस पवित्र कुलमें प्रकट हुई हैं, अत एव मेरे ही साथ सब लीलाओंको करके सदा मेरे ही पासमें निवास करोगी ॥४१॥

मया विना नेह यथा सुखं वो युष्माभिरेवं न विना सुखं मे ।
अन्तर्हिता प्रीतिविवर्द्धनाय पश्यामि चेष्टाः स्म तु वः समग्राः ॥४२॥

जैसे मेरे विना आप लोगोंको सुख नहीं है, उसी प्रकार आप लोगोंके विना मुझे भी सुख नहीं है। कदाचित् आप लोग यह सन्देह करें, कि यदि ऐसी ही बात होती, तो आप इतनी देरके लिये अन्तर्धान क्यों हो जातीं ? उसका उत्तर है-प्रेम बढ़ानेके लिये। गुप्त होने पर भी मैं आप लोगोंकी सभी चेष्टाओंको देखती थी ॥४२॥

तिरोहितायां मयि मीलिताक्षी विमार्गितुं चन्द्रकले ! यथा त्वम् ।
उन्मीलिताक्षी भवनं प्रविष्टा यथा छरार्पीः परिमार्गणं च ॥४३॥

हे श्रीचन्द्रकलाजी आँखें बन्द करके तुम जैसे मेरे छिप जाने पर आखें खोल कर मुझे खोजने के लिये भवनमें घुसी, पुनः जैसे-जैसे हमे ढूढ़ती थीं ॥४३॥

यथा त्वनासाद्य पदं मदीयं चिन्ताकुला विह्वलतां प्रयाता ।
यथा च मां पृष्टवती सखीभ्यस्ताभिर्यथोक्ता त्वमुदारबुद्धे ! ॥४४॥

हे उदार बुद्धिवाली श्रीचन्द्रकलाजी ! पुनः मेरा पता न पाकर जैसे आप चिन्तासे व्याकुल हो विह्वलताको प्राप्त हुईं तथा जैसे आप मुझे सखियोंसे पूछती थीं, जैसा उन सखियोंने आपसे कहा ४४

अन्वेषणं मे च कृतं यथा वै सर्वाभिरागारमनुप्रविश्य ।
न मां समासाद्य पुनर्यथैव कृतो विलापो भवतीभिरेव ॥४५॥

जैसे आप सबोंने उस भवनमें आकर मेरी खोज किया, पुनः जैसे मुझे न पाकर आप लोगों ने विलाप किया ॥४५॥

पश्यामि सर्वं स्म कृतं ममाग्रे यूयं न मां शोकसमाकुलाश्च ।
द्रष्टुं प्रयत्नावधिमाप्तिहेतोर्युष्माकमेवाक्षिपथं न याता ॥४६॥

यह सभी मैं देखती थी, क्योंकि यह सब किया तो मेरे ही सामने गया था, पर आप लोग शोकसे व्याकुल होनेके कारण मुझे नहीं देख रही थीं, केवल आप लोग मेरी प्राप्तिके लिये कहाँ तक प्रयत्नकर सकेंगी, यह देखनेके लिये ही मैं अभीतक आप लोगोंकी दृष्टिसे ओझल रही ॥४६॥

ततो निराशा समुपागतानां मदङ्घ्रिलग्नैकसुरोमुषीणाम् ।
मादर्शयं रूपमिदं प्रियं वो ह्यशेषशोकापहरं सुखाय ॥४७॥

जब आप लोग सब साधनोंको करके निराश हो गयीं और आप लोगोंकी सुन्दर बुद्धि केवल मेरे ही चरणोंमें लीन हो गयी, तब मैंने समस्त शोकोंको हरण करनेवाला, आप लोगोंके सुखार्थ यह आप लोगोंका प्रिय स्वरूप दिखाया ॥४७॥

यथा प्रियेयं मिथिलापुरी मे तथा न चान्येति विनिश्चिनु त्वम् ।
ममैव साक्षात्तनुरस्ति रम्या पूज्या महद्भिः श्रुतिवन्दिता च ॥४८॥

जैसी मुझे यह श्रीमिथिलापुरी प्यारी है, वैसी और कोई भी पुरी प्रिय नहीं है, यह तुम सत्य मानो, क्योंकि यह साक्षात् मेरा ही शरीर है अत एव महात्माओंके द्वारा पूजने योग्य और वेदोंसे प्रणामकी हुई है ॥४८॥

अस्यास्तु सर्वेऽधमयोनयोऽपि ये मम प्रियाः प्राणसमाः शुचिस्मिते ।
स्वाभाविकानन्दविवर्द्धना यतो ममोरसस्ते मयि सक्तचेतसः ॥४९॥

हे पवित्र मुस्कानवाली श्रीचन्द्रकलाजी ! इस पुरीके अधम अन्त्यज-चाण्डाल आदि सभी जीव मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं, क्योंकि वे स्वाभाविक मेरे हृदयके आनन्दको बढ़ानेवाले मेरेमें ही चित्तको आसक्त किये हुए हैं ॥४९

आलिङ्गनस्पर्शसुभाषितस्मितैः स्रग्रत्नवस्त्राभरणादिदानकैः ।
ताः प्रेक्षणैः प्रेमभरेण चक्षुषा विहीनशोका विहिताः प्रियानया ॥५२॥

हे प्यारे! किसीको हृदयसे लगाकर, किसीको स्पर्श करके, किसीको अपने सुन्दर वचनोंके द्वारा किसी को मन्द मुसुकान से, किसी को माला, किसीको रत्न, किसी को वस्त्र, किसीको भूषण आदिके दान द्वारा, तथा किसीको प्रेमभरी दृष्टिसे देखकर उन्हें शोकरहित कर दिया ॥५२॥

पाणौ तदाऽऽदाय च पुष्पकन्दुकं चिक्रीड भूयो नवशातदित्सया ।
सखी न वै काऽप्यवशेपिताऽनया न क्रीडया या सुखिता कृता भवेत् ॥५३॥

पुनः नवीन सुख प्रदान करनेकी इच्छासे वे फूल का गेंद हाथमें लेकर खेलने लगीं, उस समय कोई भी सखी ऐसी शेष नहीं रही, जिसे इन्होंने उस लीलाके द्वारा सुखी न किया हो ॥५३॥

धन्या हि ताः पुण्यकृतां वरिष्ठास्तुल्यास्तुताभिस्त्रियुगे न जाताः ।
तासां कृपोदेति यदैव यस्मिन् व्रजेत्तदाऽसौ कृतकृत्यतां वै ॥५४॥

इत्येकोन सप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

हे प्यारे! वे श्रीललीजीकी सखियाँ धन्य हैं और पुण्यसञ्चय करनेवालोंमें भी परमश्रेष्ठ हैं, उनके समान बड़भागिनी तीनों युगोंमें भी न हुई हैं न होंगी। उनकी कृपा जिस समय जिस प्राणी पर उदय हो जायेगी उसी समय वह निःसन्देह कृतार्थ हो जावेगा ॥५४॥

अथ सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

मरकत-भवनमें श्रीकिशोरीजीकी भोजन-लीला—

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथ सर्वेश्वरी सीता जगन्मङ्गलमङ्गला ।
आत्मजा मिथिलेन्द्रस्य श्रीमल्लक्ष्मीनिधेः स्वसा ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :—हे प्यारे! तत्पश्चात् जगत्के मङ्गलोंकी मङ्गल स्वरूपा श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी पुत्री व श्रीमान् लक्ष्मी निधि भइयाकी बहिन सर्वेश्वरीजी, भक्तोंके अनेक अनिष्टकारक दोषोंको नाश करने वाली ॥१॥

नीलेन्दीवरपत्राक्षी विस्मेरेन्दुनिभानना ।
बिम्बोष्ठी पिकवाणीयं प्राह चन्द्रकलां प्रति ॥२॥

नीले कमलके समान नेत्र तथा मुसुकान युक्त चन्द्रमाके सदृश मुख, बिम्बफलके सरीखे लाल होंठ, कोयलके समान वाणी वाली ये श्रीललीजी श्रीचन्द्रकलाजीके प्रति बोलीं ॥२॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

विरतिः क्रियतामालि ! क्रीडायाः श्रमशान्तये ।
प्रारम्भोऽशनलीलाया महानन्दरसप्रदः ॥३॥

हे सखी ! श्रम दूर करने के लिये गेंदकी क्रीड़ाका विश्राम व महान् आनन्द रसको प्रदान करनेवाली भोजन लीलाका प्रारम्भ किया जाय ॥३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ता प्रहृष्टात्मा प्रणता विनयान्विता ।
महाकृपेति सम्भाष्य प्रेरयामास सानुजाः ॥४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीललीजीकी इतनी आज्ञा होने पर श्रीचन्द्रकलाजी बड़ी प्रसन्न हुई तथा विनयपूर्वक प्रणाम करके उनसे "बड़ी कृपा हुई" ऐसा कहकर बहिनोंको भोजन लीलाकी तय्यारीके लिये प्रेरणा की ॥४॥

इङ्गितं प्राप्य ताः सर्वाः प्रसन्नवदनाः शुभाः ।
चक्षणेनाशनसामग्रीरेकत्रीचक्रुरीप्सितम् ॥५॥

श्रीचन्द्रकलाजीका सङ्केत पाकर प्रसन्नमुख हुई उन सभी सखियोंने इच्छानुसार भोजनकी सामग्रियोंको क्षणमात्रमें एकत्रित कर दिया ॥५॥

शतविधानि वस्तूनि प्रचुराणि पृथक्पृथक् ।
प्रत्येकैकरसस्यापि प्रत्येकैकविधैस्तथा ॥६॥
कूटतुल्यानि दृश्यन्ते परितस्तानि पङ्क्तितः ।
मध्यभागे विशालाक्षी नवतिमा ललितच्छविः ॥७॥

प्रत्येक रस तथा प्रत्येक प्रकारके भोजन-वस्तुओंके ढेरों-ढेरों अलग-अलग ढेर ॥६॥ पङ्क्ति

के पद्धति पहाड़के शिखरके समान ऊँचे चारों ओर दिखाई देते थे, बीच भागमें विशाललोचना, मनोहरण-छवि वाली, सभी प्राणियोंकी आत्म-स्वरूपा ॥७॥

सहस्रदलपाथोजे वनमालाविभूषिता ।
सर्वशृङ्गारसम्पन्ना श्रीमतीजनकात्मजा ॥८॥
निवेशिताऽऽलिभिर्भक्त्या स्वर्णपात्रधृतानि च ।
सर्वाभ्यः सर्ववस्तूनि प्रेम्णा ताभ्योऽभ्यदापयत् ॥९॥

सम्पूर्ण शृङ्गारोंसे भरी, वन मालासे सुशोभित, श्रीमती जनकराजदुलारीजीको सहस्र (हजार) दल वाले कमल पुष्पके ऊपर ॥ ८ ॥ प्रेम-पूर्वक सखियोंने विराजमान किया, वे श्रीकिशोरीजी सुवर्णके पात्रोंमें रक्खी हुई सभी वस्तुयें उन सभी सखियोंको प्रदान करवाने लगीं ॥९॥

ताश्चतुःपर्श्वतस्तस्याः संविष्टा बद्धपङ्क्तयः ।
पश्यन्त्यो रूपमाधुर्यं प्रहर्षं परमं ययुः ॥१०॥

वे सभी बहिनें श्रीललीजीके चारो ओर पङ्क्ति (कतार) बाँध कर विराज गयीं, पुनः उनके स्वरूपकी हृदयाकर्षक सुन्दरताका दर्शन करती हुई परम हर्ष को प्राप्त हुई ॥१०॥

जानक्या दर्शनं स्पष्टं भगिनीभ्यश्च सर्वतः ।
स्वसॄणां मुकुरैस्तस्यै मनोज्ञं सुलभीकृतम् ॥११॥

शीशोंके द्वारा चारो ओरसे श्रीजनकललीजूके मनोहर तथा स्पष्ट दर्शन बहिनियोंके लिये, और बहिनियोंका दर्शन श्रीललीजूके लिये सुलभ कर दिया गया ॥११॥

समागतं तु सर्वासां समीपेऽशनभाजनम् ।
स्वयं समुत्थिता ताभ्यो विशेषानन्ददित्सया ॥१२॥

पुनः सभी बहिनोंके पास भोजनथाल पहुँचे हुये देखकर उन्हें विशेष आनन्द देनेकी इच्छासे वे श्रीललीजी स्वयं उठीं ॥१२॥

अपूर्वस्वादुयुक्तानि व्यञ्जनानि प्रियाणि च ।
आनीय किङ्करीभ्यस्तु स्वयं पङ्कजपाणिना ॥१३॥
स्वसृभ्य एव सर्वाभ्यश्चक्रे वितरणञ्च सा ।
मुदा मधुररूपेण कृपाविस्फारितेक्षणा ॥१४॥

कृपासे फैले हुये नेत्रों वाली, श्रीललीजी अपूर्व स्वादु युक्त प्रिय (अभीष्ट) व्यञ्जनोंको सखियों से मँगाकर, स्वयं अपने करकमल द्वारा ॥१३॥ सभी बहिनियोंके लिये प्रचुर (अत्यधिक) रूपसे प्रसन्नता-पूर्वक वितरण करने लगीं ॥१४॥

तदभाष्यं सुखं विद्धि सर्वथा नः सुखाकर ।
अनुभूतं हि नेत्राभ्यां केवलं ते त्वजिह्वके ॥१५॥

हे कृपाके पुञ्जश्रीप्राणप्यारेजू ! हम सबोंके लिये उस सुखको अकथनीय यानी कहनेमें असम्भव ही जानिये, क्योंकि उस सुखका अनुभव तो केवल नेत्रोंको प्राप्त हुआ और उन नेत्रोंके जिह्वा है नहीं, जो वे कह सकें ॥१५॥

कृपासाध्यसुखं तत्तु ह्यसाध्यं साधनैः शतैः ।
ताभ्यो धन्यतमा काः स्युर्या इदं सुखमाप्नुयुः ॥१६॥

हे प्यारे ! यह सुख केवल श्रीललीजीकी कृपासे ही प्राप्य है, अन्यथा सैकड़ों साधनोंसे भी नहीं प्राप्त हो सकता। उनसे बढ़कर और कौन परम भाग्य शाली होंगी ? जिन्होंने इस दिव्य सुख को प्राप्त किया है ॥१६॥

अलं वितरणेनेकं निशम्य वचनं मुदा ।
सर्वासां मुखतश्चेयं प्रसन्नामुखपङ्कजा ॥१७॥

हे श्रीललीजी ! अब बहुत वितरण हुआ, बहुत वितरण हुआ" सभीके मुखसे इसी एक शब्दको सुनकर श्रीललीजी आनन्दसे प्रसन्न मुख हो गयीं ॥१७॥

प्रार्थिता सादरं ताभिः पुनः स्वासनमाविशत् ।
मुख्ययूथेश्वरीभिश्च सेव्यमाना मयाऽपि सा ॥१८॥

पुनः वे सबोंके आदरपूर्वक प्रार्थना करने पर अपने आसन पर विराजमान हो गयीं और सहित मुख्य यूथेश्वरी-सखियोंके द्वारा सेवित हुईं ॥१८॥

चकार भोजनं प्रेम्णा लाल्यमानोरुभावतः ।
महामधुर्यसम्पन्ना प्राणभूताऽखिलात्मनाम् ॥१९॥

अत्यन्त भावसे सखियों द्वारा सेवित होती हुई महामाधुर्य से युक्त, सभी प्राणियोंकी प्राण-स्वरूपा श्रीललीजी भोजन करने लगीं ॥१९॥

दृष्ट्वाऽदन्तीस्तु ताश्चक्रे भोजनं श्रीनृपात्मजा ।
ताश्चतां सम्मुखेऽश्नन्तीमकुर्वन् भोजनं सुखम् ॥२०॥

श्रीमिथिलानृपतिनन्दिनी श्रीललीजी अपनी सखियों को भोजन करती हुई देखकर सुख पूर्वक भोजन करने लगीं और वे सखियाँ श्रीललीजीको सम्मुख भोजन करते हुये दर्शन करके आनन्द पूर्वक भोजन करने लगीं ॥२०॥

अधरोच्छिष्टवृत्तीनां पात्रेषु भोजनस्य सा ।
निजभोजनपात्राच्च व्यञ्जनानि ददात्यलम् ॥२१॥

पुनः वे श्रीकिशोरीजी अपनी जूठन-जीविका वाली सखियोंके भोजन-पात्रोंमें अपने भोजन थालसे बहुत बहुत व्यञ्जनोंको देने लगीं ॥२१॥

ह्लादिनीकरसंस्पर्शादधरामृतयोगतः ।
अवाच्यस्वादुयुक्तानि बभूवुस्तानि वल्लभ ! ॥२२॥

हे प्यारे वे व्यञ्जन आह्लादस्वरूपा श्रीललीजीके हस्तकमलके स्पर्श व उनके अधरामृतके योगसे ऐसे स्वादु युक्त हो गये, कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता ॥२२॥

आस्वाद्यास्वाद्य वै तानि पुलकाङ्गतनूरुहाः ।
जय मुद्वर्षिणीत्युच्चैः प्रेममत्ता व्यघोषयन् ॥२३॥

उन व्यञ्जनोंको वारम्वार आस्वादन करके पुलकाय मान रोम वाली, प्रेममतवाली वे सभी बहिनें, हे आनन्दकी वर्षा करने वाली श्रीललीजी ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो" इस प्रकार उच्च स्वरसे जयकारकी ध्वनि करने लगीं ॥२३॥

व्याप्तिं चकार तच्छब्दः सर्वलोकेषु शंप्रदः ।
ह्लादयन् सर्वचेतांसि ववाह त्रिविधोऽनिलः ॥२४॥

वह मङ्गलमय शब्द स्वर्ग, भूमि, पातालादि सभी लोकोंमें, सभी प्राणियोंके चित्तोंको आह्लाद युक्त करता हुआ व्याप गया और शीतल, मन्द, सुगन्ध मय तीनों प्रकारकी वायु (हवा) बहने लगी ॥२४॥

कृपापात्राणि सर्वाणि सर्वयोनिगतान्यपि ।
त्यक्तधैर्याणि चाजग्मुरातुराणि दिदृक्षया ॥२५॥

उस समय श्रीललीजूके जयकारका कर्ण सुखद शब्द सुनकर सभी योनियोंमें प्राप्त सभी कृपापात्र, भक्त श्रीललीजूके दर्शनकी इच्छासे व्याकुल होकर वहाँ अधीर हो आगये ॥२५॥

दृष्ट्वा तत्परमानन्दं जानक्याः करुणोद्भवम् ।
प्रणेमुः प्रीतियुक्तानि हर्षाप्लुतमनांसि ताम् ॥२६॥

श्रीललीजूकी कृपासे प्राप्त हुये उस परम आनन्दका दर्शन करके, उनके चित्त हर्षमें डूब गये पुनः सावधान होने पर उन्होंने श्रीललीजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम किया ॥२६॥

तेषां तु स्वागतं प्रेम्णा गुप्तरूपेण मैथिली ।
अविज्ञातस्वरूपाणां चकार स्वयमेव हि ॥२७॥

छिपे हुये स्वरूप वाले उन कृपापात्र-भक्तोंका स्वागत स्वयं श्रीललीजीने गुप्त रूपसे प्रेम-पूर्वक किया ॥२७॥

ईदृशी न कृपा दृष्टा न श्रुता जातुचिन्मया ।
सत्यं वदामि प्राणेश ! स्वयं तज्ज्ञातुमर्हति ॥२८॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! मैं सत्य कहती हूँ, और उसे आप स्वयं भी जान सकते हैं, ऐसी विचित्र वात्सल्यपूर्ण, निर्हेतुकी कृपा न कभी मैंने किसीमें देखी ही है, न सुनी ही है ॥२८॥

सर्वाभ्यो वाञ्छितं दत्वा भोजयित्वा निजाः सखीः ।
निवृत्ताशनलीलाऽभूत्पीत्वा वारि सुधोपमम् ॥२९॥

सभीको इच्छानुकूल सुख प्रदान करके, तथा अपनी सखियोंको भोजन कराके, अमृतके समान जलको पीकर वे भोजन-लीलासे निवृत्त हुईं ॥२९॥

पद्मगन्धेङ्गितं ज्ञात्वा मयाऽऽचम्यं प्रदाय च ।
प्रोञ्छितं सूक्ष्मवस्त्रेण प्रीत्या तत्सिन्धुजाननम् ॥३०॥

श्रीपद्मगन्धाजीका सङ्केत समझकर श्रीललीजीको आचमन प्रदान करके, मैंने अत्यन्त पतले वस्त्रसे प्रेमपूर्वक उनके श्रीमुखारविन्दको पोंछा ॥३०॥

स्वर्णपत्रावृता वीट्यस्ताम्बूलस्य सुपात्रके ।
अपूर्वस्वादुसंयुक्ता निधायास्ये समर्पिताः ॥३१॥

तत्पश्चात् (उसकेबाद) सोनेके पत्रसे ढ़के हुये अपूर्वस्वादुयुक्त पानके बीड़ोंको सुन्दर पात्रमें रखकर इन श्रीललीजीको समर्पण किया ॥३१॥

अथ रक्तांशुकाशोभिमुक्तादामचमत्कृते ।
श्यामैर्मणिगणैर्युक्ते पुष्पमालासुशोभिते ॥३२॥
सिंहासनेमहारम्ये नानाऽलङ्कारसंयुते ।
निवेशितोरुमानेन मैथिली चारुशीलया ॥३३॥

तत्पश्चात् लालवस्त्रसे सुशोभित, मोतियोंकी मालाओंसे चमकते हुये, पुष्पमालाओंसे शोभायमान नीलमणिमय ॥३२॥ अनेक प्रकारकी सजावटसे सब प्रकार युक्त, अत्यन्त मनोहर, सिंहासन पर बड़े सम्मानपूर्वक श्रीललजीको श्रीचारुशीलाजीने विराजमान किया ॥३३॥

आज्ञप्तास्तु महासख्यश्चाष्टौ भोजनहेतवे ।
प्रियोच्छिष्टं प्रसादान्नं विभज्याशुः सुधाधिकम् ॥३४॥

तब प्रसादसेवन करनेके लिये आज्ञापाकर वे आठो यूथेश्वरी सखियाँ श्रीललीजीसे छोड़े हुए अन्नप्रसादको परस्पर वितरण करके भोजन करने लगीं ॥३४॥

शंसन्त्य आत्मनो भाग्यं कृपां निर्हेतुकीं तथा ।
पश्यन्त्यो दृष्टिसम्पातं पिबन्त्यो रूपमाधुरीम् ॥३५॥

वे सभी अपने सौभाग्यकी तथा श्रीललजीकी स्वार्थ रहितकृपाकी बड़ाई एवं उनकी कृपा कटाक्षको देखती हुई रूपकी माधुरीका पान करने लगीं ॥३५॥

क्षणेन भोजनं कृत्वा पीत्वोच्छिष्टपयोऽमृतम् ।
सत्कृता अनुजाभिश्च ताम्बूलादिसमर्पणैः ॥३६॥

क्षणमात्रमें भोजन करके अमृतके समान श्रीललीजीका प्रसादी जल पीकर पानादिक समर्पणके द्वारा छोटी बहिनोंसे सत्कारको प्राप्त हो ॥३६॥

स्वसेवातत्पराः सर्वा अभवंस्तुष्टमानसाः ।
स्पृष्ट्वा श्रीचरणाम्भोजे कोमले कमलेडिते ॥३७॥

प्रसन्न मन हुई वे सखियाँ श्रीललीजूके कोमल श्रीचरणकमलोंको स्पर्श करके, अपने-अपने योग्य श्रीललीजूकी सेवामें तत्पर हो गयीं ॥३७॥

छत्रं जग्राह श्रीहेमा नाना चित्रविचित्रितम् ।
ऊर्मिला माण्डवी चैव क्षेमा चन्द्रकला तथा ॥३८॥

श्रीहेमाजी अनेक चित्रोंसे विचित्र प्रतीत होने वाले छत्रको ग्रहण करती हुई, श्रीऊर्मिलाजी श्रीमाण्डवीजी, श्रीक्षेमाजी, तथा श्रीचन्द्रकलाजी ॥३८॥

चारुशीला प्रसादा च लक्ष्मणा विश्वमोहिनी ।
मयूरपिच्छगुच्छांश्च लसुरेता हि सादरम् ॥३६॥

श्रीचारुशीलाजी, श्रीप्रसादाजी, श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीविश्वमोहिनीजी, ये आठों सखियाँ आदर पूर्वक मोरपङ्खके गुच्छों (मोरछलों) को हाथमें लेती हुई ॥३९॥

सुभगा श्रुतिकीर्तिश्च वरारोहा सुलोचना ।
पद्मगन्धा मनोज्ञाङ्गी माधुर्य्या च मियोत्तम ! ॥४०॥

हे श्रीपरमप्यारेजू ! श्रीसुभगाजी, श्रीश्रुतिकीर्त्तिजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीसुलोचनाजी, श्रीपद्मगन्धाजी, श्रीमनोज्ञाङ्गीजी, श्रीमाधुर्य्याजी ॥४०॥

योगमुद्रा त्विमाश्चाष्टौ चामराञ्चितपाणयः ।
रूपलावण्यसम्पन्ना गुणरत्नचमत्कृताः ॥४१॥

श्रीयोगमुद्राजी ये आठों रूपकी मनोहरतासे युक्त, गुणरूपी रत्नोंसे चमकती हुई सखियोंने अपने हाथोंको चवँरसे सुशोभित किया ॥४१॥

चित्रा विहारिणी पद्मा ह्लादिनी पद्मलोचना ।
गौराङ्गी क्षेमदात्री च कर्पूराङ्गी त्विमाः शुभाः ॥४२॥
अष्टौ पाणौ गृहीत्वा च व्यजनानि चकाशिरे ।
उभयोः पार्श्वयोरस्याः शरच्चन्द्रनिभाननाः ॥४३॥

श्रीचित्राजी, श्रीविहारिणीजी श्रीपद्माजी, श्रीह्लादिनीजी श्रीपद्मलोचनाजी गौराङ्गीजी, श्रीक्षेमदात्रीजी, श्रीकर्पूराङ्गीजी ये सौभाग्यवती ॥४२॥ आठों शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली, सखियां, अपने हाथमें पङ्खोंको लेकर श्रीललीजूके दाहिने व बायें भागमें सुशोभित हुई ॥४३॥

विमलोत्कर्षणा भक्तिः क्रियेशाना च पार्वती ।
ज्ञाना तत्त्वा त्विमाश्चाष्टौ पुष्पवेत्रधराः स्थिताः ॥४४॥

श्रीविमलाजी, श्रीउत्कर्षणाजी, श्रीभक्तिजी, श्रीक्रियाजी, श्रीईशानाजी, श्रीपार्वतीजी श्रीज्ञानाजी, श्रीतत्त्वाजी ये आठों सखियाँ फूलोंके बेंत हाथमें धारण करके श्रीललीजीके दोनों बगलमें खड़ी हुई ॥४४॥

स्वानन्दा माधवी हंसी प्रहंसी चारुलोचना।
वागीशा शोभना रम्भा पुष्पगुच्छलसत्कराः ॥४५॥

श्रीस्वानन्दाजी, श्रीमाधवीजी, श्रीहंसीजी, श्रीप्रहंसीजी, श्रीचारुलोचनाजी, श्रीवागीशाजी, श्रीशोभनाजी, श्रीरम्भाजी, इन आठ सखियोंके हाथ फूलोंके गुच्छों (गुलदस्तों) से सुशोभित हुये अर्थात् ये आठ गुलदस्तों को हाथमें लेकर दोनों बगलमें उपस्थित हुईं ॥४५॥

अहं योगा सुचित्रा च विशदाक्षी हरिप्रिया।
हंसी सुदर्शिका धात्री धृतताम्बूलभाजनाः ॥४६॥

मैं (स्नेहपरा), श्रीयोगाजी, श्रीसुचित्राजी, श्रीविशदाक्षीजी, श्रीहरिप्रियाजी, श्रीहंसीजी, श्रीसुदर्शिकाजी, श्रीधात्रीजी, ये आठो सखियाँ हाथोंमें पानदानके पात्रोंको लेकर खड़ी हो गयीं ॥४६॥

हेमाङ्गी चम्पकाङ्गी च सन्तोषा मानिनी रतिः।
शान्ता सुविद्या विद्या च रत्नदण्डकराम्बुजाः ॥४७॥

श्रीहेमाङ्गीजी, श्रीचम्पकाङ्गीजी, श्रीसन्तोषाजी, श्रीमानिनीजी, श्रीरतिजी, श्रीशान्ताजी, श्रीसुविद्याजी, श्रीविद्याजी, ये आठो सखियाँ रत्नोंकी बनाई छड़ियों को हाथमें धारण करती हुईं ॥४७॥

काञ्चना चित्ररेखा च चन्द्रभद्रा सुधामुखी।
अतिशीला सुशीला च कूटरूपा विशारदा ॥४८॥
एताश्चाष्टौ मनोज्ञाङ्ग्यः क्रीडावस्तुसुहस्तकाः।
संस्थिताः पार्श्वयोरस्याश्छविदर्शनलालसाः ॥४९॥

श्रीकाञ्चनाजी, श्रीचित्ररेखाजी, श्रीचन्द्रभद्राजी, श्रीसुधामुखीजी, श्रीअतिशीलाजी, श्रीसुशीलाजी, श्रीकूटरूपाजी श्रीविशारदाजी, ॥४८॥ ये मनोहर अङ्गवाली आठो सखियाँ, खेलनेकी वस्तुओं को सुन्दर हाथोंमें लेकर स्थित हुईं इन श्रीललीजूकी छबिके दर्शनोंके लिये अत्यन्तउत्सुकतासे भरी, दोनों बगलमें विराजमान हुईं ॥४९॥

एवं हि सर्वाभिरुदारकीर्त्तिः संसेव्यमाना रतिमोहनश्रीः।
रराज तत्रातिसुनिष्ककण्ठी मन्दस्मिता बिम्बफलाधरोष्ठी ॥५०॥

इति सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

—: मासपारायण-विश्राम-१८ :—

हे प्यारे! इस प्रकार उदार (सनकुछ प्रदान करनेवाली) कीर्त्ति व रतिको मुग्ध करनेवाली शोभासे सम्पन्न, कण्ठमें सोनेके भूषणोंको धारणकी हुई, मन्द मुसुकान व बिम्बाफलके सदृशलाल अधर व ओठवाली श्रीललीजी, सभी बहिनोंसे सेवित होती हुई उस समय सुशोभित हुई ॥५०॥

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

श्रीमिथिलाजीकी कभी भी उपेक्षा न करनेके लिये श्रीकिशोरीजीसे सखियों द्वारा प्रार्थना—

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सुनीराज्य भक्त्याऽऽर्घ्यं पुष्पाञ्जलिं तास्ततःस्तोत्रयामासुरम्भोरुहाक्षीम् ।
निबद्धाञ्जलिं प्रेमपीयूषसिन्धुं धरानाथपुत्रीममन्दाभिरामाम् ॥ १ ॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! वे सखियां श्रीललीजूकी सुन्दर आरती करके प्रेमपूर्वक उन्हें पुष्पाञ्जलि दे, समुद्रके समान अथाह प्रेमरूपी अमृतकी खानि, कमललोचना, अपार सौन्दर्यसम्पन्ना श्रीभूमिनन्दिनी श्रीललीजूकी हाथजोड़कर स्तुति करने लगी। १॥

सख्य ऊचु ।

प्रफुल्लकञ्जलोचने ! समस्त दुःखमोचने ! निरस्तसर्वदूषणे ! विदेहवंशभूषणे ! ।
महामुनीन्द्रभाविते ! रमाशिवादिसेविते ! सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि २

सखियां बोलीं—हे खिले कमलके समान विशालनेत्र वाली! हे समस्त दुखोंको छुड़ाने वाली! हे समस्त दोषोंसे पूर्ण स्वच्छ रहने वाली! हे विदेह वंशको भूषणके समान सुशोभित करनेवाली! हे भगवत्तत्वके महामनन करने वाले मुनि श्रेष्ठोंके द्वारा भावनाकी जाती हुई! हे लक्ष्मी, पार्वती आदिसे सेवित, हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजू! आप सदाही मङ्गलोंका दर्शन करती रहें ॥२॥

जगद्धितार्थसम्भवे ! सुदूषणान्विते भवे सुदिव्यनित्यवैभवे ! परात्परे ! सुगौरवे !
अनन्तशक्तिसेविते! ऽविचिन्त्यशक्तिसंयुते ! सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि३

हे चर, अचर समस्त प्राणियों के हितार्थ इस अत्यन्त दोषमय संसारमें अवतीर्ण होने वाली! हे लोकोत्तर अनन्त ऐश्वर्य वाली! हे परमात्मस्वरूपे! हे सुन्दर गौरव (प्रतिष्ठा) वाली! हे अनन्त शक्तियों से सेविते! हे अनुमानसे अति परे शक्तिवाली! हे विदेहराज नन्दिनी श्रीललीजी! आप सदा मङ्गल ही मङ्गल देखें ॥३॥

निरामये ! निरञ्जने ! समग्रलोकरञ्जने !
स्वभावशातविग्रहे ! गुणौघरत्नसङ्ग्रहे ! ।
महाप्रभावसंयुते ! महाप्रभे ! महाद्युते !
सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥४॥

हे सब प्रकारके रोगोंसे रहित ! हे मायिक विकारों से परे ! हे समस्त लोकोंको अपने शील स्वभाव, चरितादिके द्वारा प्रसन्न करने वाली ! हे स्वभावसे ही सुखकी मूर्ति ! हे गुण-समूहरूपी रत्नोंकी राशि स्वरूपे ! हे महती महिमासे युक्ते ! हे महती प्रभाव तथा महती कान्ति वाली ! हे विदेहराजनन्दिनि श्रीललीजी ! आपके लिये सदा मङ्गल ही मङ्गलका दर्शन हो ॥४॥

नवीनकेलितत्परे ! सतां महासुखाकरे !
शरत्सुधाकराननेे ! महाकृपानिकेतने ! ।
महाक्षमामृतोदधे ! सुशीलतामहावधे !
सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥५॥

हे नवीन-नवीन क्रीड़ाओंमें तत्पर रहने वाली ! हे सन्तोंके महान् सुखकीखान-स्वरूपे ! हे शरदऋतुकेपूर्ण चन्द्रमाके सदृश प्रकाशमानमुखवाली ! हे कृपाकी भवनस्वरूपे ! हे समुद्रके समान अथाह महती क्षमा वाली ! हे सुशीलताकी महती सीमा स्वरूपे ! हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजी ! आपको मङ्गल ही मङ्गलका निरन्तर दर्शन हो ॥५॥

जगद्विमोहनस्मिते ! सुभूषणैर्विभूषिते !
विभूषणैकभूषणे ! स्वभावशून्यदूषणे ।
महामृदुप्रभाषिते ! महामनोहराकृते !
सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥६॥

हे अपनी मन्द मुसुकानसे सारे चर-अचर प्राणियोंको मुग्धकर लेने वाली ! हे भूषणोंको भी अपने श्रीअङ्गकी प्रभासे भूषित (शोभा युक्त) करने वाली । हे स्वभावसे ही समस्त दोषोंसे अछूते ! हे अतीव कोमल वचन बोलने वाली ! हे मनकी महती चोरी करने वाली ! हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजी ! आप सदा मङ्गल ही मङ्गलका दर्शन करती रहें ॥६॥

मृदुस्वभावसंयुते ! ऽनृजुस्वभाववर्जिते !
सुचन्द्रिकाञ्चिमस्तके ! सरोजशोभिहस्तके ।

अरालसूक्ष्मकुन्तले ! सुपावितावलातले !
सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥७॥

हे अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली ! हे कुटिल स्वभावसे रहिते ! हे सुन्दर चन्द्रिकासे अलंकृत मस्तक वाली ! हे कमलपुष्पसे शोभायमान हस्तवाली ! हे घुंघुराले मिहीन बालों वाली ! हे पृथिवीतलको अपने श्रीचरणकमलोंके स्पर्शसे परम पवित्रकर देनेवाली ! हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजी ! आप सतत काल मङ्गल ही मङ्गलका दर्शन करती रहें ॥७॥

अकारणानुकम्पिनी प्रगुप्तबोधदीपिनी !
तडिन्निकायसुद्युते सदागमश्रुतिस्तुते !
महानुरागपण्डिते ! महार्हहारमण्डिते !
सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥८॥

हे बिना किसी साधनादि कारणके ही प्राणियों पर दया करने वाली ! हे छिपे हुये ज्ञानका प्रकाश करने वाली ! हे वेद शास्त्र-सन्तों द्वारा स्तुतिकी हुई ! हे महान् अनुरागके स्वरूपको भली प्रकारसे समझने वाली ! हे अमूल्य हारोंके शृङ्गारको धारण की हुई, हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजी ! आप सब समयमें मङ्गलही मङ्गलका दर्शन करती रहें ॥८॥

रतिस्मयापहारिके ! कुभाग्यतानिवारिके !
सकृत्प्रणामतोषिते ! महानुरक्तिपोषिते !
सतां परात्परा गते ! न आत्मदे महामते !
सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥९॥

हे अपने सौन्दर्यसे रतिके अभिमानको पूर्ण रूपसे दूर करने वाली ! हे खोटे भाग्य हटा देने वाली ! हे एकबारके प्रणाम मात्रसे ही प्रसन्न हो जाने वाली ! हे महान् अनुराग पूर्वक पोसी (पोषणकी) हुई ! हे सन्तोंकी सर्वोत्तम उपाय स्वरूपे ! हे हम लोगोंके लिये अपने आपको भी दे डालने वाली ! हे ब्रह्ममय बुद्धि वाली ! हे श्रीविदेहराजनन्दिनि श्रीललीजी ! आप सदैव मङ्गल ही मङ्गलका दर्शन करें ॥९॥

जय प्रपन्नवत्सले ! मुखारविन्दुमण्डले !
सुयावकाञ्चिताङ्घ्रिके प्रतप्तकाञ्चनाङ्गिके ! ।

अशेषलोकनायिके ! महत्सुखप्रदायिके !

त्वमेव नः परागतिः प्रदीयतां परा रतिः ॥१०॥

हे शरणागत भक्तों पर वात्सल्य भाव रखनेवाली ! हे अपने मुखारविन्दकी शोभासे चन्द्र-मण्डलको तुच्छ करनेवाली ! हे सुन्दर महावरसे अलङ्कृत श्रीचरण-कमल वाली ! हे तपाये हुये सुवर्णके समान गौर अङ्गवाली ! हे समस्त लोकों पर शासन करने वाली ! हे महात्माओंके सुखको प्रदान करने वाली ! हे श्रीललीजी ! आपकी जय हो । हम लोगोंकी रक्षाका स्थान आपही हैं,हमें अपने श्रीचरण-कमलोंमें उत्कृष्ट प्रेम प्रदान कीजिये ॥१०॥

विना न जानकि ! त्वया सुखं सुखस्वरूपया

कथञ्चनापि नःकचित्प्रविद्धयु त्तं हि जातुचित् ।

क्षणार्द्धमप्यतः प्रिये ! न नस्त्यजाखिलाश्रये !

त्वमेव नः परागतिः प्रदीयतां परा रतिः ॥११॥

हे श्रीजनकलडैतीजू ! आप सत्य जानिये, आप सुखस्वरूपाजीके बिना हम लोगोंको कभी कहीं, किसी प्रकार, आधा क्षण मात्र भी सुख नहीं है । हे प्यारी ! हे सभी प्राणी मात्रकी आधार-स्वरूपा श्रीललीजी ! इस हेतु हम लोगोंका त्याग न कीजियेगा क्योंकि हम लोगोंकी रक्षा करने वाली एक आप ही हैं, अतः अपने श्रीचरण-कमलोंमें श्रेष्ठ अनुराग प्रदान कीजिये ॥११॥

तवोदयात्सर्वसुखोपपन्ना पुरीप्रधानातिकलाऽनवद्या ।

पूज्या महद्भिः श्रुतिगीतकीर्त्तिर्नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१२॥

हे श्रीललीजी ! आपके जन्मसे यह श्रीमिथिलापुरी सब सुखोंसे युक्त, सभी पुरियोंमें श्रेष्ठा (श्रीअयोध्यापुरी) की तिलक स्वरूपा, प्रशंसाके योग्य महापुरुषोंके द्वारा पूजने योग्य हैं, वेद भगवान् भी इसकी कीर्त्ति (यश) को गा रहे हैं, अत एव आप श्रीमिथिलाजीकी ओरसे अपनी दृष्टि न हटाइयेगा ॥१२॥

शक्तिप्रधानाः कमलादयोऽत्र भूत्वाऽऽपगाश्चारु वसन्त्यजस्रम् ।

सेवानिमित्तं तव चन्द्रमुख्या नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१३॥

हे श्रीललीजी ! शक्तियोंमें मुख्य श्रीकमला (लक्ष्मी) जी आदि यहाँ पर नदियाँ होकर आप श्रीचन्द्रमुखीजीकी सेवाके लिये अहर्निश (रात दिन सतत काल) सुख पूर्वक निवास कर रही हैं, अत एव आप कभी इस श्रीमिथिलापुरीजीकी उपेक्षा न कीजियेगा ॥१३॥

वदाति ! सीता नृपनन्दिनीति श्रीजानकीचन्द्रमुखी प्रियेति ।
द्विजाः सुगायन्त्यधिरुह्य शाखां नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१४॥

हे श्रीललीजी ! यहाँ (श्रीमिथिलापुरीमें) पक्षी लोग सखि ! सीता कहो, सखि ! नृपनन्दिनी कहो, सखि ! श्रीजानकी कहो ! सखि ! श्रीचन्द्रमुखी कहो ! सखि ! श्रीप्यारी कहो ऐसा गा रहे हैं, अत एव आप ऐसी श्रीमिथिलाजीकी कभी उपेक्षा न करेंगी ॥१४॥

अशेषसन्मङ्गलवस्तुपूर्णा सुपावनीभूमिरलौकिकाभा ।
असाधनागम्यपदप्रदात्री नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१५॥

हे श्रीललीजी ! हमारी यह श्रीमिथिलापुरी समस्त शुभ माङ्गलिक पदार्थोंसे परिपूर्ण है, यहाँकी भूमि अत्यन्त पवित्र करने वाली, दिव्य प्रकाशमयी, बिना किसी जप, तपादि साधनके ही साधनोंसे भी प्राप्त न हो सकने योग्य पद श्रीसाकेत धामको प्रदान करने वाली है, अत एव ऐसी विलक्षण महिमा वाली इस श्रीमिथिलाजीकी, आप कभी उपेक्षा न कीजियेगा ॥१५॥

रसालरम्भापनसादिवृक्षैर्विशेषतः सर्वत एव कीर्णा ।
सस्यप्रधानाऽखिललोकवन्द्या नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१६॥

हे श्रीललीजी ! आम, केला, कटहल आदि वृक्षोंसे यह श्रीमिथिलापुरी विशेष करके सभी ओरसे परिपूर्ण, सस्य की प्रधानतासे युक्त, सभी लोकोंसे प्रणाम करने योग्य है, अत एव आप इस श्रीमिथिलापुरीकी कभी भी उपेक्षा न कीजियेगा ॥१६॥

ह्रस्वापगाकूपतडागवाप्यः सुधाम्बुपूर्णा मणिकूलरम्याः ।
क्रीडासहायास्तव चोल्लसन्ति नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१७॥

हे श्रीललीजी ! यहाँकी नदियाँ, कूप, तालाव, वापियाँ (बावडियाँ) अमृतके समान जलसे पूर्ण, मणिमय किनारासे मनोहर, आपके खेलमें सहायता पहुँचाने वाली सुशोभित हो रही हैं, अत एव आप इस श्रीमिथिलाजीकी कभी भी कृपया उपेक्षा न कीजियेगा ॥१७॥

पादारविन्दाङ्कितसर्वभूमिर्ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च वन्द्या ।
लोकोत्तराशेषगुणाभियुक्ता नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१८॥

यहाँकी सभी भूमि आपके श्रीचरण कमलके चिह्नोंसे चिह्नित, ब्रह्मादि देवों तथा चारो वेदों के द्वारा प्रणाम करने योग्य, सभी अलौकिक गुणोंसे सब प्रकार पूर्ण है, अत एव आप कभी भी इस श्रीमिथिलाजीकी उपेक्षा न कीजिये गा ॥१८॥

निष्कण्टकातीवसुकोमला भूः सुश्यामला पुष्पफलादिवृत्तैः ।
देदीप्यमाना मणिहर्म्यजालैर्नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१६॥

हे श्रीललीजी ! यहाँकी भूमि काँटोसे सर्वथा रहित, अत्यन्त कोमल, पुष्पफलादि वाले वृक्षों से सुन्दर श्याम रङ्गकी, मणिमय भवन समूहोंसे चम चम कर रही है, अत एव ऐसी श्रीमिथिलाजी की आप कभी भी उपेक्षा न कीजियेगा ॥१६॥

त्वमसि शरणमेका नापरा काऽपि चास्या निगदितमृतमेतद्विद्धि कारुण्यमूर्त्ते ।
इयमिह तव हेतोः सर्वसौभाग्यपूर्णा शशिमुखि ! मिथिला ते सच्चिदानन्दरूपा२०

इत्येकसप्ततितमोऽध्याय ॥७१॥

हे करुणामूर्त्ति श्रीललीजी ! इस श्रीमिथिलाजीकी सब प्रकारसे रक्षा करने वाली आप ही हैं और कोई नहीं । हे श्रीचन्द्रमुखीजी ! कहाँ तक कहूं ? यह सत्, चित्, आनन्दस्वरूपा श्रीमिथिलाजी आपके लिये सभी सौभाग्यसे युक्त है, मेरा यह निवेदन सत्य जानिये । अत एव हे श्रीललीजी ! इस श्रीमिथिलाजीकी आप कभी भी उपेक्षा न कीजियेगा ॥२०॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

धनुष पूजनसे आये हुये श्रीमिथिलेशजी महाराजको चिन्तित देखकर, श्रीसुनयना-अम्बजीका उसका कारण श्रीकिशोरीजीके द्वारा धनुष भूमि लीपनेमें कुछ त्रुटिका अनुमान करके, भगवन शिव व धनुषसे क्षमा याचना एवं उनकी त्रुटि भी अमङ्गल कारी नहीं है, यह सिद्ध करना

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमभ्यर्थिता पुत्री मिथिलेशस्य भूपतेः ।
प्रसन्ना ऽभूद्दृशं तासु पूर्णकामाश्चकार ताः ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! इस प्रकारकी प्रार्थना निवेदन करने पर श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजीने उन बहिनोंके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो उनके मनोरथोंको पूर्ण कर दिया १

अथ सीरध्वजो राजा विदेहानां शिरोमणिः ।
निमज्य कमलातोये कृतसन्ध्यादिकक्रियः ॥२॥

इसके पश्चात् विदेह वंशियोंमें शिरोमणि (सर्व श्रेष्ठ) श्रीसीरध्वज महाराज श्रीकमलाजीके जलमें स्नान करके प्रातः सन्ध्यादिक कृत्यों को सम्पन्न कर ॥२॥

माहेशचापपूजायै संवृतो मुख्यकिङ्करैः ।
दत्वा दानं द्विजातिभ्यो योगिराजः सदक्षिणम् ॥३॥

योगिराज श्रीमिथिलेशजी महाराज ब्राह्मणों को दक्षिणा युक्त दान देकर, अपने प्रधान सेवकोंके समेत श्रीभोलेनाथजीके धनुष (पिनाक) की पूजा करने के लिये ॥३॥

जयेति जयसन्छब्दं घोष्यमाणं जनव्रजैः ।
पूज्यमानः प्रसूनैः स शृण्वन्हृष्टमना ययौ ॥४॥

जन समूहों द्वारा पुष्पोंसे पूजित होते हुये तथा श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी जय हो जय हो, इस उच्च स्वरसे कहे जाते हुये मङ्गलमय शब्दको श्रवण करते हुये प्रसन्न मन हो, धनुष भवनको गये ॥४॥

समासाद्य धनुर्वेश्म लताभिश्च चमत्कृतम् ।
ददर्श महितं चापं पूर्वजैः संयतेक्षणः ॥५॥

लताओंसे सुशोभित उस धनुष भवनमें प्राप्त हो, पूर्वजोंसे पूजित धनुषको एकाग्र-दृष्टिसे देखने लगे ॥५॥

तद्वक्रमृजुतां नीतं मार्जितं चाप्युपर्यधः ।
अपूर्वप्रभया युक्तं दृष्ट्वाऽऽश्चर्याम्बुधिप्लुतः ॥६॥

उसे टेढ़े धनुषको सीधा, ऊपर नीचेसे साफ किया हुआ, अपूर्व प्रकाश युक्त देखकर वे आश्चर्य सागरमें डूब गये ॥६॥

पुनश्चित्तं समाधाय नियतात्मा कथञ्चन ।
विधिवत्पूजनं चक्रे कौतुकोद्विग्नमानसः ॥७॥

कौतुकसे चञ्चल चित्त हुये श्रीमिथिलेशजी-महाराजने अपने चित्तको किसी प्रकार (बड़ी कठिनता) से सावधान करके, एकाग्र-बुद्धि होविधि-पूर्वक श्रीधनुषजीका पूजन किया ॥७॥

प्रणम्य शिरसा भक्त्या हरकोदण्डमद्भुतम् ।
कृतार्थोऽगान्महाराजो महाराज्या निकेतनम् ॥८॥

पूजनसे निवृत्त हुये श्रीमिथिलेशजी-महाराज श्रीशिवधनुषको शिर झुकाकर, प्रेम-पूर्वक प्रणाम करके श्रीसुनयनाअम्बाजीके महलको पधारे ॥८॥

सम्भ्रान्तमनसं दृष्ट्वा राज्ञी सम्पुटिताञ्जलिः ।
प्रत्युज्जगाम चोत्थाय स्वागतार्थमनिन्दिता ॥९॥

उन्हें घबड़ाये मन देखकर जिनकी देव व मुनि श्रेष्ठ स्तुति करते हैं वे श्रीसुनयनाअम्बाजी उठकर स्वागत करनेके लिये हाथ जोड़े हुये आगे पधारीं ॥९॥

सेवाविधिमजानन्त्या मम पुत्र्या त्रुटिः कृता ।
तस्मात्सम्भ्रान्तचित्तोऽयं धर्मज्ञः सेत्यमन्यत ॥१०॥

उन्होंने यह निश्चय किया, कि सेवा विधि कोन जानने वाली हमारी श्रीललीजीने धनुषभूमि लीपनेमें कोई त्रुटि (भूल) कर दिये होंगी, उसी लिये ये धर्मका रहस्य समझनेके कारण चित्तमें भयभीत हो रहे है ॥१०॥

पुनः पप्रच्छ राजानं भीता बद्धकराञ्जलिः ।
कुतस्ते कृतकृत्यस्य चिन्तया ऽभूत्समागमः ॥११॥

पुनः (पतिके भयसे) डरी हुई श्रीसुनयना अम्बाजीने हाथ जोडकर उनसे पूछा :– हे प्यारे ! इस समय आप प्रातः कालीन नित्य नियम रूपी अपने आवश्यक कार्यको ही पूर्ण करके आ रहे हैं, अत एव चिन्तासे भेंट होनेके लिये आपको कहाँसे अवसर मिला ? ॥११॥

तन्नाथ ! कारणं मन्ये सेवायां धनुषस्त्रुटिः ।
क्षन्तुं कृपां करोत्वीशस्तां तु मे बालिकाकृताम् ॥१२॥

हे नाथ ! धनुषजी महाराजकी सेवामें कुछ त्रुटिको ही मैं आपके चिन्ता युक्त होनेका कारण मान रही हूँ, सो मेरी श्रीललीजूके द्वाराकी हुई उस त्रुटि (भूल) को श्रीभोलेनाथजी क्षमा करनेके लिये कृपा करें ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्तो महाराजो विस्मयं परमं गतः ।
राज्ञीं पप्रच्छ वृत्तान्तं बालिकेर्युक्तिकारणम् ॥१३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं – हे प्यारे ! श्रीसुनयनाअम्बाजीसे ऐसा निवेदन करने पर परम

आश्चर्यको प्राप्त हो, श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीअम्बाजीसे श्रीललीजीके किये हुये अपराधको श्रीभोलेनाथजी क्षमा करें" उनके इस कथनका कारण पूछा ॥१३॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

मम पुत्र्या कृतञ्चैतद्वचनं तव वल्लभे !
चकार मम सन्देहं पूर्वादपि शताधिकम् ॥१४॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोले :–हे प्रिये ! मेरी श्रीललीजीकी की हुई त्रुटिको श्रीभोलेनाथजी क्षमा करें" आपका यह वचन मेरे सन्देहको पहिलेसे भी सौ (अनन्त)गुणा अधिक कर दिया है१४

तच्छिन्धि संशयग्रन्थिं सुदृढां तत्त्ववित्तमे !
सर्वं निवेद्य वृत्तान्तं निर्भयेनामलात्मना ॥१५॥

हे तत्त्ववेत्ताओंमें परम श्रेष्ठे ! इस लिये अत्यन्त दृढ़ताको प्राप्त हुई मेरी इस संशय रूपी गाँठको, निर्भय तथा शुद्ध मनसे सारे वृत्तान्तको निवेदन करके आप खोल दीजिये ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

पत्याऽऽज्ञप्ता विशालाक्षी राज्ञी सुनयना ऽब्रवीत् ।
बद्ध्वाञ्जलिपुटं श्लक्ष्णं पुण्यश्लोका जनाधिपम् ॥१६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं – हे प्यारे ! श्रीपतिदेवकी आज्ञा होने पर विशाल लोचना, पवित्र कीर्ति, महारानी श्रीसुनयनाअम्बाजी हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक महाराजसे बोलीं ॥१६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

मया चन्द्रमुखी मातरशनोद्योगसक्तया ।
आदिष्टा सुकुमारी सा मार्जनाय धनुः क्षितेः ॥१७॥

हे प्यारे ! मैं श्रीललीजीके लिये कलेऊ बनानेके प्रयत्नमें तल्लीन थी, अतः सेवामें विलम्ब न हो जाय, इस भावनासे मात्र मैंने धनुषकी भूमिको स्वच्छ करनेके लिये उन श्रीसुकुमारीजीको ही आज्ञा प्रदानकी थी ॥१७॥

स्वसृभिश्च सखीभिश्च साकमत्यन्तहर्षिता ।
पालितः कृतकृत्याऽसौ ततश्चाप्येत्य मां नता ॥१८॥

तदनुसार वे अपनी बहिनियों तथा सखियोंके सहित अतीव हर्ष पूर्वक चलीं गयीं और वहाँकी सम्मार्जना कार्य सम्पन्न करके पुनः आकर मुझे प्रणाम किये ॥१८॥

गाढ़मालिङ्ग्य तां दोर्भ्यां कृतकृत्यां विभूषिताम् ।
संतर्प्य भोजनैराज्ञां क्रीडनायार्थिताऽदिशम् ॥१६॥

धनुष-भूमि लीपनेका कार्य करके आई हुई उन श्रीललीजीको दोनों भुजाओंसे अपने हृदयमें भली भाँति लगाकर मैंने भोजनसे तृप्त किया, पुनः शृङ्गार करके प्रार्थना करने पर मैंने उन्हें खेलने के लिये आज्ञा प्रदानकी है ॥१६॥

प्रागादित इदानीं सा गेहं मरकताह्वयम् ।
का त्रुटिर्विहिता नाथ ! तया सेवानभिज्ञया ॥२०॥

इस समय वे श्रीललीजी यहाँसे मरकत-भवन पधारी हैं, हे नाथ ! सेवाके ढङ्गको न जानने वाली उन श्रीललीजूसे क्या त्रुटि (भूल) हुई है ? ॥२०॥

क्षन्तुमर्हसि तत्त्वज्ञ ! ह्यपराधं कृतं मम ।
तया कृता त्रुटिश्चापि नाशिवायेति निश्चयः ॥२१॥

हे सेवा तत्त्वको समझने वाले श्रीप्राणनाथजू ! मैंने अपनी अबोध श्रीललीजीको जो धनुष भूमिकी सफाईके लिये आज्ञा देकर भेजा था, सो उनसे जो कुछ त्रुटि हुई हो वह मेरा ही अपराध है, उसे आप अब क्षमा करनेकी ही कृपा करें। हे प्यारे ! आप यह निश्चय कीजिये कि इन श्रीललीजीकी की हुई त्रुटि भी, अमङ्गल कारी नहीं हो सकती ॥२१॥

अत्यन्तविधिना ये च लान्ति देवा न चार्पितम् ।
हस्तौ प्रसार्य गृह्णन्ति तेऽमुयाऽविधिनार्पितम् ॥२२॥

क्योंकि जो देवता अत्यन्त विधिपूर्वक अर्पण किये हुये पदार्थोंको भी हाथ पसार कर नहीं ग्रहण करते, वे ही इन श्रीललीजूके अविधि (खेल) पूर्वक अर्पण किये हुये पदार्थोंको हाथ पसार कर ग्रहण करलेते हैं ॥२२॥

वीतरागा यतीन्द्रा ये परब्रह्मानुचिन्तकाः ।
त्यक्तकृत्याः समायान्ति भूयशोऽस्या दिदृक्षया ॥२३॥

जिन्हें अपने शरीर, प्राणों तकमें आसक्ति नहीं है, जो अपने मनको वशमें रखने वालोंमें श्रेष्ठ, पर-ब्रह्मका ही चिन्तन करने वाले हैं, वे भी अपने-अपने कृत्योंको तिलाञ्जलि देकर, श्रीललीजीके दर्शनोंके लिये यहाँ बारम्बार आते रहते हैं ॥२३॥

अस्याः प्रभावमतुलं मुनिसङ्घमुख्यैः संवर्ण्यते बहुविधं घटसम्भवाद्यैः ।
पारं न लभ्यत उदारमते ! प्रयत्नैर्न स्या त्रुटिस्त्रुटिरपि त्वनया कृता या ॥२४॥

इति द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

हे उदारबुद्धि, श्रीप्राणनाथजू ! इन श्रीललीजीके तुलना रहित प्रभावको मुनि-समूहोंमें प्रधान श्रीअगस्त्यजी आदि महामुनि बहुत प्रकारसे वर्णन करते हैं, पर उसका वे पार (छोर) नहीं पाते, अत एव यह निश्चय है, कि श्रीललीजीके द्वाराकी हुई त्रुटि भी अमङ्गलकारी नहीं है, बल्कि वह कल्याणकारी विधि ही है ।२४।

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीसुनयनाअम्बाजी द्वारा यह ज्ञात करके, कि आज श्रीललीजी धनुष-भूमि लीपनेको पधारीथीं, बड़े ही आश्चर्यमें पड़गये पुनः उनसे सब वृत्तान्त निवेदन करके अपनी पूर्ण वाञ्छा निवृत्तिके लिये श्रीकिशोरीजीके पास उनका सरकत-भवन प्रस्थान—

श्रीविदेहराजोवाच ।

वाक्यमिदं च निशम्य तयोक्तं प्राह वचो मिथिलाधिपमौलिः ।
राज्ञि ! शृणुष्व कुतूहलमाद्यं येन मनोऽन्वितमस्ति ममैतत् ॥१॥

श्रीविदेहराजजी बोले:-हे प्यारे ! श्रीसुनयनाअम्बाजीके कहे हुये वचनको श्रवण करके सभी मिथिलेशोंमें शिरोमणि धर्मधुरन्धरजी-महाराज बोले:-हे रानी ! मेरा यह मन जिस सर्वोपरि आश्चर्यसे युक्त है उसे आप श्रवण कीजिये ॥१॥

पूजनदत्तमना धनुषोऽहं तद्भवनं मुदितः समगच्छम् ।
तत्तु मयाऽद्भुतकान्तिमुदीप्तं दृष्टमपूर्वमुमार्जितमेव ॥२॥

मैं श्रीधनुषजीकी पूजामें और मन लगा कर हर्ष पूर्वक धनुष मन्दिरमें पहुँचा, वहाँ भगवान् शिवजीके उस धनुषको विलक्षण कान्तिसे भली भाँति प्रकाशित और अपूर्व ही स्वच्छ किया हुआ देखा ॥२॥

नकनवकतया मसृणत्वं मेऽत्र शुभाङ्गि ! महाचकितोऽहम् ।
भ्रान्तिरियं किमु सत्यमपीदं मेऽत्रत एव मया विदितं नो ॥३॥

हे मङ्गलमय अङ्गों वाली प्रिये ! उस तिरछे धनुषको सीधा हुआ देखकर मैं चकित हो गया, कि यह मैं जो देख रहा हूँ वह ज्ञात नहीं, कि सत्य है अथवा भ्रम मात्र है ॥३॥

स्वात्मनि सुष्ठुतया परिपश्यन् तद्धनुरप्यविचारयमद्य ।
यच्छृणु तद्यतनिर्मलचित्ता बोधनिधे ! दयिते ! वदतो मे ॥४॥

हे ज्ञाननिधे ! श्रीप्रियाजू ! आज उस धनुष का बारम्बार दर्शन करते हुये अपने हृदयमें जो मैंने विचार किया है, उसे मेरे कहनेसे आप अपने एकाग्र तथा निर्मल चित्तसे श्रवण कीजिये ॥४॥

यद्भुवनत्रयभारसमेतं केन धनुर्ऋजतामनुनेयम् ।
कश्च निधाय करे नु तदेके मार्ष्टुमिहार्हति दक्षकरेण ॥५॥

जो तीनो लोकोंके भारसे युक्त भगवान् शिवजीका धनुष है, उसे इस त्रिलोकीमें भला कौन सीधाकर सकता है ? कौन एक हाथमें उसे धारण करके दाहिने हाथसे मार्जन करने को समर्थ है ? ५

एतदुमाधवचण्डपिनाकं संक्रियते प्रियया प्रतिवारम् ।
सा किल सम्प्रति पूरितकृत्या भागमदालयमाशु मतिर्मे ॥६॥

भगवान श्रीउमापति (भोलेनाथ) जीके इस कठोर पिनाक धनुषकी सफाईका काम प्रतिदिन श्रीप्रियाजी किया करती हैं, वे इस समय शीघ्र ही अपनी सेवाको पूरी करके महल गयी हैं, मेरी ऐसी धारणा है ॥६॥

नैव परन्तु तया भवचापं चालयितुञ्च कथञ्चिच्छक्यम् ।
येन कृतेयमुतादभुतलीला हे विध आत्मनि याति न बोधः ॥७॥

परन्तु वे किसी प्रकार भी श्रीभोले नाथजीके इस धनुषको हिलानेके लिये भी समर्थ नहीं हैं फिर उठानेकी बात ही क्या ? हे विधाता ! तब किसने यह आश्चर्य मयी लीलाकी है ? इसकी हृदयमें जानकारी नहीं हो रही है ॥७॥

एवमतर्क्यमवेत्य कृतं तत्कृत्यमहं चकितोऽकरवं वै ।
अर्चनमादिविधानसमेतं त्वां पुनरागत आशु ततोऽत्र ॥८॥

इस प्रकार अनुमानमें भी न आने योग्य उस कृत्यको किया हुआ देखकर मैंने आश्चर्य युक्त होकर, मुख्य विधानके सहित श्रीधनुषजीकी पूजाकी पुनः वहाँसे शीघ्र ही आपके पास यहाँ आगया ॥ ८ ॥

त्वत्त इदं विदितं भवति स्म त्वं न गताऽद्य गता सुकुमारी ।
मार्जयितुं भवचापधरित्रीं कृत्यमिदं तु ततःकिल तस्याः ॥९॥

यहाँ आपसे यह ज्ञात होता है, कि आज शिव-धनुषभूमिका मार्जन करने के लिये आप नहीं बल्कि सुकुमारी (श्रीलली) जी पधारी थीं, इस लिये तिरछे धनुष को उठाकर भूमिकी सफाई करके उसे सीधा रखना निःसन्देह उन्हींका कर्त्तव्य है ॥९॥

सा च कथं लघुकोमलपाणौ न्यस्तवती भुवनत्रयभारम् ।
दक्षकरेण सुमार्ज्य सलीलं स्थापितवत्यृजु तन्नु यथेच्छम् ॥१०॥

परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है, कि भला वे श्रीललीजी अपने छोटेसे कोमल बायें हाथमें किस प्रकार तीनों लोकोंके भार-स्वरूप उस धनुषको रखकर, दाहिने हाथसे भूमिकी सफाई करके पुनः खेल पूर्वक उसे सीधा रख दिये हैं ॥१०॥

सा तु चकार न चेदपि चान्या तच्चरितं कथयिष्यति पृष्टा ।
नूनमसौ परिवेत्ति यथार्थं तामधिगम्य विबोध्यमतः स्यात् ॥११॥

यदि वह कार्य श्रीललीजीने नहीं, किसी औरने ही किया है, तो भी पूछने पर वे उस चरित को अवश्य कहेंगी क्योंकि वे उस चरितको अवश्य ही भली भाँति जानती होंगी, अत एव उनके पास जाकर ही इस रहस्यको समझा जा सकेगा ॥११॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति निमिकुलकैरवामृतांशुर्निजहृदि निहितं विचारमुक्त्वा ।
त्वरितमभिजगाम कान्तयाऽसौ मरकतभवनं सुतादिदृक्षुः ॥१२॥

इति त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! निमिकुल रूपी कोकावेली (श्वेत कमल) को चन्द्रमाके समान खिलाने वाले वे श्रीसीरध्वजजी महाराज अपने हृदयमें स्थित हुये इस प्रकारके विचारको कहकर श्रीसुनयनाअम्बाजीके समेत श्रीललीजूके दर्शनोंके इच्छुक हो मरकत भवनको पधारे १२

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

श्रीमिथिलेशजीमहाराजके पूछनेपर श्रीचारुशीलाजी द्वारा श्रीकिशोरीजीको धनुषभूमि-लीपन-लीला वर्णन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथ यत-बुद्धिर्निमि-कुलभानुः ।
क्षणमभिलेभे मरकतवेश्म ॥ १ ॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :-हे प्यारे ! तत्पश्चात् एकाग्रबुद्धि, निमिकुलको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाले श्रीमिथिलेशजी-महाराज क्षणमात्रमें उस मरकत भवनमें पहुँच गये ॥१॥

रसिक ! सुशीला जनकसुताली ।
परम-विदग्धा जितरतिरूपा ॥ २ ॥

हे प्यारे ! रतिके सौन्दर्यको जीतनेवाली परम चतुरा श्रीललीजूकी सखी श्रीसुशीलाजीने ।२॥

अवदद्वार्तिं तदवनिजाताम् ।
ससुनयनस्य प्रजनितहर्षा ॥ ३ ॥

अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुई श्रीसुनयनाअम्बाजीके समेत, श्रीमिथिलेशजी-महाराजके आगमनकी सूचना भूमिनन्दिनी श्रीललीजीको दी ॥३॥

तन्निशम्य मनोज्ञाङ्गी रत्नगर्भासमुद्भवा ।
महर्षं परमं लेभे पित्रोः सन्दर्शनोत्सुका ॥४॥

उनके आगमनका समाचार सुनकर माता एवं पिताजीके दर्शनाके लिये उत्सुक हुई पृथिवीके गर्भसे प्रकट मनोहर अङ्गोवाली श्रीललीजी परम हर्षको प्राप्त हुईं ॥४॥

सर्वासामपि चेतांसि मार्गसंप्रेक्षणे तदा ।
तयोरागमनस्यासंस्तत्पराणि प्रियोत्तम ! ॥५॥

हे श्रीपरमप्यारेजू ! उसी समय श्रीसुनयना अम्बाजी व श्रीमिथिलेशजी महाराजका मार्ग (रास्ता) देखनेमें सभी बहिनोके चित्त तत्पर होगये ॥५॥

तावुभावपि वै तर्हि मण्डपं प्राप्य भास्वरम् ।
कृतप्रणामां वैदेहीं समालिङ्ग्य चुचुम्बतुः ॥६॥

उसी समय उन दोनोंने उस प्रकाश पूर्ण मण्डपमें पहुँचकर प्रणामकी हुई श्रीललीजीको हृदयसे लगा कर, हाथोंको चूमा ॥६॥

लालयामासतुः कामं लालनैर्विपुलैः सुताम् ।
युक्तौ परानुरक्त्या तौ रूपमाधुर्यमोहितौ ॥७॥

पुनः श्रीललीजूके रूपकी सुन्दरतासे मुग्ध हुये दोनोंव्यक्तियोंने अपने इच्छानुसार अनेक प्रकारके दुलारोंसे परम अनुरागपूर्वक श्रीललीजीका प्यार किया ॥७॥

अम्बा सुनयना तर्हि क्रोडमारोप्य जानकीम् ।
चीरान्ते पूर्णचन्द्रास्यां मुदा चीरमपाययत् ॥८॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजीने अपनी गोदमें पूर्ण-चन्द्रमुखी श्रीललीजीको बैठाकर वस्त्रके भीतर दूध पिलाने लगीं ॥८॥

पुना रेजे विशालाक्षी कन्यां लावण्य-संयुताम् ।
अङ्कमादाय सा राज्ञी सव्ये श्रीमिथिलेशितुः ॥९॥

पुनः विशाल-लोचना श्रीसुनयना अम्बाजी उपमासे परे सौन्दर्यवाली श्रीललीजीको गोदमें लेकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजके बायें भागमें जा विराजीं ॥९॥

उभौ राज्ञी तथा राजा सर्वभूतमनोहरम् ।
लोकाभिरामं चिद्रूपं वीक्ष्य-वीक्ष्य जहर्षतुः ॥१०॥

श्रीपिताजी तथा माताजी दोनों ही (श्रीललीजूके) समस्त प्राणियोंको मुग्ध करने वाले लोक-सुखदाई, चैतन्य (ब्रह्म) मय रूपको देख देखकर अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुये ॥१०॥

यं यं च पश्यतो गात्रं सच्चिदानन्दमोहनम् ।
तस्मिंस्तस्मिंश्च गात्रे हि तयोर्दृष्टिर्विलीयते ॥११॥

वे दोनों श्रीललीजीके सत्-चित्-आनन्दमय (ब्रह्म) को भी मुग्धकरनेवाले जिन-जिन अङ्गोंका दर्शन करते थे उन्हीं-उन्हींमें उनकी दृष्टि पूर्ण अचल हो जाती थी ॥११॥

न वक्तुं तौ चमौ किञ्चिद्रुद्धकण्ठौ बभूवतुः ।
चक्षुर्भ्यां प्रेमजं तोयं मुञ्चन्तौ तत्र तस्थतुः ॥१२॥

प्रेमके उफानसे गद्गद होनेके कारण उनका गला रुक गया अत एव बोलनेको वे कुछ भी समर्थ न हुये, केवल नेत्रोंसे आँसू बहाते हुये वहाँ विराजमान थे ॥१२॥

तदृष्ट्वा मृदुसर्वाङ्गी सर्वशक्तिमहेश्वरी ।
सुकुमारी ददौ धैर्यं चेतोभ्यामुभयोरपि ॥१३॥

दोनोंकी उस अवस्थाको देखकर सभी शक्तियोंकी सर्वोत्कृष्ट नियामिका (शासन करने वाली) तथा कोमल अङ्गों वाली सुकुमारी श्रीललीजीने उन दोनोंके ही चित्तोंको धैर्य प्रदान किया ॥१३॥

नेमुः सर्वास्तदागत्य तयोः श्रीपादपङ्कजम् ।
आशीर्भिर्नन्दितास्ताभ्यां पुनः स्वासनमाविशन् ॥१४॥

तब सभी आलिकायें आकर उन दोनोंके श्रीचरण-कमलोंको प्रणाम किये पुनः उनके आशीर्वाद द्वारा आनन्दको प्राप्त हुई वे अपने-अपने आसनोंपर जा विराजीं ॥१४॥

अत्यादृता विशालाक्ष्यः पुत्र्यश्चन्द्रकलादयः ।
प्रसन्नवदना रेजुः सम्मुखे वद्धपङ्क्तय ॥१५॥

तथा विशाललोचना श्रीचन्द्रकला आदि पुत्रियाँ उन दोनोंसे अत्यन्त आदर पाकर प्रसन्नमुख होकर पङ्क्ति बाँधकर सामने विराजमान हुईं ॥१५॥

एवं सुखोपविष्टास्ताः पुत्रीर्वीक्ष्य महीपतिः ।
सर्वाः प्रति जगादेदं वाक्यं मधुरया गिरा ॥१६॥

इसप्रकार पुत्रियोंको सुख पूर्वक बैठी हुई देखकर भूमिपति (श्रीमिथिलेशजी-महाराज) उन सभीके प्रति बड़ी कोमल वाणीसे इस प्रकार बोले—॥१६॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

पुत्र्यो वदत वै तथ्यं यच्च संपृच्छयते मया ।
भद्रं वो मृगपोताक्ष्यो ! धनुरुत्थापितं कया ॥१७॥

हे मृग-शिशुके समान सुन्दर विशाल चञ्चल नेत्रोंवाली पुत्रियों ! आप सबोंका मङ्गल हो, मैं जो पूछ रहा हूँ, उसे सत्य-सत्य कहो; आज भगवान शिवजीके धनुषको किसने उठाया ? ॥१७॥

देवासुरमनुष्यैश्च यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ।
यन्नोत्थापयितुं शक्यं सम्मिलित्वाऽपि कोटिशः ॥१८॥

करोड़ों देवता, राक्षस, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर भी सम्यक् प्रकारसे मिलकर जिस शिव-धनुषको उठानेके लिये समर्थ नहीं हैं ॥१८॥

विश्वभारभरं तत्तु धनुरुत्थाप्य मार्जितम् ।
कया नु सरलीकृत्य लीलयाऽशङ्कि मे मनः ॥१६॥

उस विश्वके बोझ-राशि-स्वरूप धनुषको खेल में ही उठाकर किसने सफाई की ? और उसे सीधा करके मेरे मनमें सन्देह प्रकट किया है ? ॥१९॥

जिज्ञासा महती पुत्र्यो ! मम चेतसि वर्तते ।
तन्निगद्य यथातथ्यं मम शङ्का निवार्यताम् ॥२०॥

हे पुत्रियो ! मेरे चित्तमें इस रहस्यको जाननेकी बड़ी ही इच्छा है, अत एव उसे सत्य-सत्य कहकर मेरी शङ्का दूर करें ॥ २० ॥

कच्चित्काऽपि समायाता योषित्प्रागनुदीक्षिता ।
यया कौतूहलं चैतद्विहितं बुद्धयगोचरम् ॥२१॥

जिसे तुम लोगोंने कभी पूर्वमें न देखा हो क्या ऐसी कोई स्त्री तो उस समय नहीं आई थी, ? जिसने कि बुद्धिसे परे इस आश्चर्यमयी घटना की हो ॥२१॥

वत्से ! तत् कथ्यतां मह्यं मार्जयन्त्यां ननु त्वयि ।
मिलिता त्वामुपागम्य काऽपि पूर्वमलक्षिता ॥२२॥

हे वत्से श्रीजानकीजी ! मुझे बताइये, जिस समय आप धनुष भूमिकी सफाई कर रही थीं उस समय कोई पहिलेकी न देखी (अपरिचित) स्त्री तो आपके पास आकर नहीं मिली थी ? ॥२२॥

नाद्भुतं विद्यते कार्यं महाशक्तिभिरेव तत् ।
मुहुरागमनं तासां तासु काऽपि तदाकृतिः ॥२३॥

यदि कोई अपरिचित स्त्री उस समय आई हो तो निःसन्देह उसीने धनुषको उठाने और सीधा करनेका कार्य किया होगा, तब तो कोई विशेष आश्चर्यकी बात ही नहीं, क्योंकि आपके दर्शनोंके लिये रमा, उमा ब्रह्माणी आदि महाशक्तियोंका भी शुभागमन बारंबार ही होता रहता है, हो सकता है उन्हीं-मेंसे कोई महाशक्ति उस (स्त्री) रूपमें आकर आपकी सहायताकी हो । उन लोगोंके लिये यह कोई असम्भव बात नहीं है और यदि उनमेंसे कोई नहीं आई है, तब तो आश्चर्यकी कमी ही क्या ? ॥२३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति पृष्टा नरेन्द्रेण जनकेन महात्मना ।
बभूव चारुशीला तत्सविवक्षुः शुभानना ॥२४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः–हे प्यारे! महात्मा, पिता राजा श्रीजनकजी महाराजके इस प्रकार पछने पर मनोहर मुसवाली श्रीचारुशीलाजीने उस रहस्यको, पूर्णतया कहनेकी इच्छाकी ॥२४॥

हे पितरित्विति सम्बोध्य वीक्ष्य श्रीमुखपङ्कजम् ।
प्रणमन्ती च हर्षन्ती प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२५॥

हे पिताजी! यह सम्बोधन करके भी श्रीललीजीका बिना रुख (सङ्केत) प्राप्त किये उसे कहना अनुचित मानकर उनके श्रीमुखारविन्दको देखा, पुनः उनका सङ्केत समझकर हर्षित हो, प्रणाम करके कहना प्रारम्भ किया ॥२५॥

श्रीचारुशीलोवाच ।

अहं चन्द्रकला चैव माण्डवी चोर्मिला तथा ।
श्रुतिकीर्त्तिर्वरारोहा सुभगा विश्वमोहिनी ॥२६॥

श्रीचारुशीलाजी बोलीं:–हे श्रीपिताजी! मैं तथा श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीमाण्डवीजी, श्रीऊर्मिलाजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीसुभगाजी, श्रीविश्वमोहिनीजी ॥२६॥

लक्ष्मणा, पद्मगन्धा च हेमा चम्पकला तथा ।
विमला ह्लादिनी क्षेमा, रङ्गा मदनवर्द्धिनी ॥२७॥

श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीपद्मगन्धाजी, श्रीहेमाजी, श्रीचम्पकलाजी, श्रीविमलाजी, श्रीह्लादिनीजी, श्रीक्षेमाजी, श्रीरङ्गाजी, श्रीमदनवर्द्धिनीजी ॥२७॥

विहारिणी सुशीलाद्या मातुरेव निदेशतः ।
सर्वा हर्षाकुलस्वान्ताः सङ्घीभूय च सर्वतः ॥२८॥

श्रीविहारिणीजी, श्रीसुशीलाजी, आदि सभी हर्ष पूर्ण-हृदय हो, श्रीअम्बाजीकी आज्ञा द्वारा सब ओरसे झुण्ड बनाकर ॥२८॥

श्रीमतीं मैथिलीं प्राप्तास्तया साकं धनुर्गृहम् ।
शीलयन्त्यो यथाभावं क्षणेनैव सुशोभनम् ॥२९॥

श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजूके पास पहुँचीं, पुनः अपने अपने भावानुसार सेवा करती हुईं उनके साथ क्षणमात्रमें अत्यन्त शोभायुक्त श्रीधनुष-भवनमें पधारीं ॥२९॥

चक्रिरे स्वागतं द्वाःस्था विधिज्ञास्तत्सुखात्मनः ।
अद्य राजकुमारी हि समियायेति सत्त्वणाः ॥३०॥

आज श्रीराजकुमारीजी सेवाके लिये पधारी हैं, इसलिये परम-हर्षित हो विधिपूर्वक द्वारपालोंने उन सुखस्वरूपा श्रीललीजीका स्वागत किया ॥३०॥

पुनः समादरेणैव सत्कृता स्वागतादिभिः ।
लाल्यमानाऽऽलिभिर्नीता त्रियं पैनाकमन्दिरम् ॥३१॥

पुनः स्वागतादिके द्वारा सत्कारकी हुई इन श्रीललीजीको सखियोंके सहित पूर्ण आदर पूर्वक प्यार करते हुये वे शिव-धनुष मन्दिरमें ले गये ॥३१॥

तत्र गत्वा विशालाक्षी तात ! सर्वाभिरावृता ।
सेव्यमाना पराभक्त्या छत्रव्यजनचामरैः ॥३२॥

हे तात ! वहां छत्र, पङ्खा, चवँर आदिके द्वारा बड़े ही प्रेम पूर्वक सेवित होती तथा सभी सखी बहिनोंसे घिरी हुई विशाल-लोचना श्रीललीजी पहुँच कर ॥३२॥

शरदिन्दुमुखी प्रातरसमग्रविभूषणा ।
ददर्श शाम्भवं चापं कट्या अप्यधिकोच्छ्रितम् ॥३३॥

प्रातःकाल थोड़ेसे भूषणोंको धारण की हुई शरद् ऋतुके पूर्ण-चन्द्रके सदृश मुखवाली श्रीललीजी, अपनी कमरसे भी अधिक ऊँचे (मोटे) शिव-धनुषका दर्शन करती हुई ॥३३॥

देवरातादिभिः सर्वैर्विदेहैः क्रमशोऽर्चितम् ।
ननाम तत्तु बिम्बोष्ठी स्निग्धकुञ्चितकुन्तला ॥३४॥

पुनः बिम्बाफलके समान लाल ओष्ठ व चिकने घुँघुराले केश वाली श्रीललीजीने श्रीदेवरातजी महाराज आदि सभी मिथिला-नरेशों द्वारा क्रमशः पूजन किये हुये उस धनुषको प्रणाम किया ॥३४॥

तत् किञ्चित्कालमेवं तु कौतुकासक्तमानसाः ।
उपर्य्यधस्तथा पार्श्वे समपश्याम हे पितः ! ॥३५॥

हे श्रीपिताजी ! धनुषके दर्शनोंसे हम लोगोंका चित्त आश्चर्यमें डूब गया, अत एव कुछ देर तक हम सभी उसके ऊपर नीचे इधर-उधर (दाहिनें बायें) देखने लगीं ॥३५॥

तदा श्रीशम्भुकोदण्डं मार्जनायोपचक्रमे ।
निमिवंशकुमारीयमुपर्य्यादौ ममार्ज ह ॥३६॥

उसी समय वे निमिवंशकुमारी श्रीललीजीने श्रीशिवजीके धनुषको स्वच्छ करनेके लिये तत्पर होकर, पहिले उसके ऊपरके भागकी शुद्धि (सफाई) की ॥३६॥

पिनाकाधोधरां चापि करपद्मेन मैथिली ।
मार्जनाय मनश्चक्रे समवेक्ष्य पुनः पुनः ॥३७॥

पुनः श्रीललीजीने वारम्बार अच्छी प्रकारसे देखकर अपने कर कमलसे धनुषके नीचेकी भूमिको स्वच्छ करनेकी इच्छा की ॥३७॥

कथमुत्थापितं क्षिप्रमनायासेन तद्धनुः ।
अनया तन्न मे दृष्टं यद्दृष्टं तु वदाम्यहम् ॥३८॥

परन्तु इन्होंने किस प्रकार शीघ्रतापूर्वक उस धनुषको, बिना किसी प्रकारका परिश्रम किये ही (सुख-पूर्वक) उठा लिया ? सो मैं नहीं देख सकी, और जो देख सकी वह कह रही हूँ ॥३८॥

गौरवे शैलसङ्काशं विशालं चाद्भुतं परम् ।
अस्या नवीननलिनवामहस्ते स्थितं धनुः ॥३९॥

पहाड़के समान गरुआ (भारी) परम आश्चर्य मय वह विशाल धनुष इन श्रीललीजूके नवीन कमलके समान सुन्दर सुकोमल हाथपर विराजमान था ॥३९ ।

दृष्ट्वा तन्महती शङ्का संजाता हृदयेषु नः ।
रुष्टमेतद्धतोत्थाय ह्लादिनीं नो जिघांसति ॥४०॥

ऐसा देखकर हम लोगोंके हृदयमें बड़ी भारी पूर्णतया शङ्का उत्पन्न हो गयी, कि ये धनुष-देवता मानों रुष्ट हो गये है, इसी लिये अपनी शक्तिसे उठकर हमारी आह्लादिनी श्रीललीजीको अपने बोझसे दबाकर मार देना चाहते हैं ॥४०॥

तस्माद्यदा हि संत्रातुं निर्दोषां वयमुद्यताः ।
वाष्पनेत्राश्च तातैनां तर्हि कर्णसुखावहम् ॥४१॥

अतः नेत्रोंमें जल भरे हुये हम सभी, अपराधरहित इन श्रीललीजीको बचानेके लिये जिस समय उद्यत हुईं, उसी समय श्रवणोंको सुख देनेवाला ॥४१॥

जय श्रीमैथिलीत्येष पुष्पवृष्टिसमन्वितम् ।
सुघोषं नाकिनां श्रुत्वा मनाग्धैर्यं वयं गताः ॥४२॥

पुष्प वर्षाके समेत देव-वृन्दोंका "हे श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजू ! आपकी जय हो-जय हो-जय हो" इस सुन्दर जय जयकार ध्वनिको सुनकर उस शुभ शकुनसे हम लोगोंको कुछ धैर्यकी प्राप्ति हुई ॥४२॥

एतस्मिन्नेव काले हि चापाधः पृथिवीं मुदा ।
दक्षहस्तेन संमार्ज्य त्वियं वेदीमलेपयत् ॥४३॥

इसी बीचमें ये श्रीललीजीने अपने दाहिने कर-कमलसे धनुषके नीचेकी भूमिको लीपकर, वेदी को लीपने लगीं :-॥४३॥

जलं चन्द्रकला दातुं लेपनीयं तथोर्मिला ।
क्षेपणीयमपाकर्तुं माण्डवी तत्पराऽभवत् ॥४४॥

उस समय श्रीचन्द्रकलाजी जल तथा श्रीउर्मिलाजी चन्दनादि देनेमें तथा फेंकने योग्य, (अनावश्यक) वस्तुओंको हटानेमें श्रीमाण्डवीजी तत्पर थीं:-॥४४॥

पश्यन्तीषु च सर्वासु तदेषा पुनरेव तत् ।
ऋजु संस्थापयामास मृणालमिव लीलया ॥४५॥

पुनः हम सबोंके देखते हुये ही इन श्रीललीजीने कमल-नालके समान खेल पूर्वक उस (धनुष) को भली भाँति सीधे रूपमें स्थापित कर दिया ॥४५॥

न काऽप्युत्थापने चक्रे साहाय्यं च मृगीदृशः ।
यदि मे नैव विश्वासो ह्यन्याभ्यः प्रष्टुमर्हसि ॥४६॥

इति चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

हे श्रीपिताजी ! जल आदि देनेमें तो उपर्युक्त बहिनियोंने इन श्रीमृगलोचनाजीकी कुछ सहायता अवश्यकी थी, परन्तु धनुषको उठानेमें किसीने भी नहीं । अब यदि आपको मेरा विश्वास न हो तो अन्योंसे भी पूछ सकते हैं ॥४६॥

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

श्रीचारुशीलाजी आदि सभी पुत्रियोंकी बातोंसे धनुषको श्रीकिशोरीजीके द्वारा ही उठाया हुआ सिद्ध होनेपर, श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रतिज्ञा "जो धनुष तोड़ेगा उसीके साथ हमारी श्रीललीजूका विवाह होगा"।

श्रीमहेश्वरोवाच ।

एकमुक्तो महाराजो निमिवंशप्रभाकरः ।
अन्वयुङ्क्तादराच्छ्लक्ष्णं सर्वाः प्रति विलोक्य च ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :-हे प्यारे ! श्रीचारुशीलाजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर निमिवंशको सूर्यके सदृश प्रकाशित करनेवाले, महाराज श्रीमिथिलेशजीने आदरपूर्वक सबकी ओर देखकर कोमल शब्दों द्वारा पूछा-॥१॥

श्रीविदेह उवाच ।

पुत्र्यः ! श्रुतं मयेदानीं चारुशीलासमीरितम् ।
यूयं वदत यज्ज्ञातं नानृतं च ममाज्ञया ॥ २ ॥

हे पुत्रियो ! इस समय श्रीचारुशीलाजीने जो कहा उसे मैंने श्रवण किया, अब आप लोग जो जानती हों, उसे मेरी आज्ञासे सत्य-सत्य कहो ॥२॥

तन्निशम्य पितुर्वाक्यं प्राहुश्चन्द्रकलादयः ।
सत्यमेव हि तत्तात ! चारुशीला बभाण यत् ॥३॥

पिताजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीचन्द्रकलाजी आदि सभी पुत्रियाँ बोलीं :-हे तात ! श्रीचारुशीलाजीने जो कहा है, वही सत्य है ॥३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अनुमोदितं तु सर्वाभिश्चारुशीलावचो नृपः ।
यदा प्रेष्ठ ! तदोत्थाय व्याजहार गिरं प्रियाम् ॥४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :-हे प्यारे ! जब सभी पुत्रियोंने श्रीचारुशीलाजीके वचनोंका अनुमोदन किया, तब श्रीपिताजी उठकर श्रीअम्बाजीसे यह वचन बोले-॥४॥

श्रीविदेह उवाच ।

लीलयोत्थापितं चापं सव्येनाम्बुजपाणिना ।
अनयाऽपञ्चवर्षिक्या ह्याश्चर्यं किमतः परम् ॥५॥

हे श्रीप्रियाजू ! श्रीललीजी अभी पाँच वर्षकी भी नहीं हुई हैं, इसी अवस्थामें इन्होंने अपने कमलके समान कोमल बायें हाथसे खेलपूर्वक श्रीशिवजीके धनुषको उठा लिया है, भला इससे बढ़कर और आश्चर्य ही क्या होगा ? ॥५॥

शारीरसौकुमार्यं च यस्याः प्रेक्ष्य प्रियेऽतुलम् ।
बिभेति पादकमले संस्प्रष्टुं सुकुमारता ॥ ६ ॥

हे श्रीप्रियाजू ! जिनके शरीरकी उपमारहित कोमलताको देखकर श्रीकोमलताजी भी

श्रीचरणकमलोंका स्पर्श करनेमें भय मानती है कि कहीं मेरे कठोर हाथोंका स्पर्श श्रीललीजीको कष्ट प्रद न होजाय ॥६॥

पादन्यासप्रवृत्तायां काठिन्यक्लेशसाध्वसात् ।
यस्यां वज्रमयी भूमिर्नवनीतायते भृशम् ॥ ७ ॥

जिस समय श्रीललीजी अपने श्रीचरणकमलोंको पृथिवीपर रखनेके लिये तय्यार होती हैं उस समय श्रीचरणोंमें अपनी कठोरताके कारण कष्ट हो जानेके भयसे हमारे यहाँकी वज्रमयी भूमि भी मक्खनके समान अत्यन्त कोमल हो जाती है ॥७॥

चन्द्रायते दिवानाथो वह्निश्च शीतलायते ।
उच्छ्रितं निम्नतां याति कुटिलं सरलायते ॥८॥

जिनके लिये भगवान् सूर्य भी चन्द्रमाके समान शीतल और अग्नि पालाके समान ठण्डी हो जाती है ऊँचे वृक्षादि आवश्यकतानुसार नीचे हो जाते हैं तथा सभी कुटिल स्वभाववाले भी अनुकूल बन जाते हैं ॥८॥

सर्वेषां विपरीतानि यानि सर्वाणि वल्लभे ।
मार्दवं प्रेक्ष्य वै यस्या व्रजन्त्येवानुकूलताम् ॥९॥

हे प्रिये ! कहाँ तक कहें ? जो सभीके लिये प्रायः विपरीत माने गये हैं वे भी जिनकी कोमलताको देखकर अनुकूल हो जाते हैं ॥९॥

अत्यन्तकोमलौ स्निग्धौ नागपोतकरोपमौ ।
परिभूतारविन्दाभौ यस्या हन्त लघू करौ ॥१०॥

हाथीके शिशुकी सूंड़के समान गोल और क्रमशः पतले जिनके अत्यन्त कोमल तथा चिकने कमलकी शोभाको लज्जित करनेवाले छोटे छोटे हाथ हैं ॥१०॥

मुक्तायुक्तशिरोभागशतपत्रदलोपमैः ।
मृद्वङ्गुल्यः सुशोभाढ्यैर्नखैरत्यन्तशोभनाः ॥११॥

तथा सिरके भागमें मोतियोंसे अलङ्कृत कमलदलोंके सदृश नखोंसे सुशोभित कोमल अङ्गुलियाँ हैं ॥११॥

पादौ सुशोभनौ यस्याः पद्माभौ तूलकोमलौ ।
सुस्निग्धौ हस्तसंस्पर्शाक्षमौ हस्तौ मनोहरौ ॥१२॥

एवं कमलके समान सुन्दर सुगन्धमय रूई के सदृश सुकोमल अत्यन्त चिकने हाथका, स्पर्श भी न सहन करने योग्य, जिनके छोटे-छोटेसे मनोहर श्रीचरण हैं ॥१२॥

मुखं चन्द्रप्रतीकाशं नीलेन्दीवरलोचने ।
बिम्बाधरः सुबिम्बोष्ठं कपोलौ दर्पणोपमौ ॥१३॥

पूर्ण चन्द्रमाके समान आह्लाद-वर्द्धक, जिनका मनोहर प्रकाशमय श्रीमुखारविन्द हैं, नीले कमलके समान सुन्दर विशाल दोनों नेत्र, बिम्बाफलके सदृश लाल अधर वा ओठ तथा शीशाके समान छाया ग्रहण करने वाले जिनके दोनों कपोल (गाल) हैं ॥१३॥

स्वर्णशुक्तिसमौ कर्णौ भ्रमराराालकुन्तलाः ।
कम्बुग्रीवा सुनासा च चिबुकं चारुदर्शनम् ॥ १४ ॥

सोनेके सीपीके समान जिनके सुन्दर कानोंकी बनावट है, भौंरोंके सदृश काले घुँघुराले केश हैं, शङ्खके सदृश कण्ठ व सुगाकी चोंचके समान मनोहर दर्शनों वाली जिनकी नासिका है ॥१४॥

सर्वसचिह्नसम्पन्नं विशालं सुशुभमस्तकम् ।
सर्वचित्तहरं हास्यं कमनीयतरच्छविः ॥१५॥

सभी शुभसूचक (अच्छे) चिन्होंसे युक्त, जिनका विशाल व मनोहर मस्तक है तथा जिनकी मुसुकान सभीके चित्तको हरण करलेने वाली तथा छवि अत्यन्त ही सुन्दर है ॥१५॥

सर्वतापहरं पुण्यं परमाह्लाददायकम् ।
सहजैकवशीकारं मन्त्रं यस्याः सुवीक्षणम् ॥१६॥

सभी दैहिक, दैविक, तापोंको हरण करने वाली, आह्लाद जिनकी प्रदायक-सुन्दर चितवन ही सभी स्त्री-पुरुष, नर, मुनि, हंस-परम हंस, सुर, असुरों तथा जड़-चेतनोंको वशमें करनेवाली सर्वोपरि मन्त्र है ॥१६॥

भाषणं सूनृतं श्लक्ष्णं कोकिलानां विमोहनम् ।
पीयूषादधिकं मिष्टं मनोज्ञं श्रुतिपावनम् ॥१७॥

जिनकी सत्य व कोमल वाणी कोयलों को भी मुग्ध करने वाली अमृतसे भी अधिक मीठी व श्रवणों को पवित्र करने वाली है ॥१७॥

हंसमाणवकानां च शिशूनां मत्तहस्तिनाम् ।
गमनं शोभनं यस्याः सुगतिस्मयवारणम् ॥१८॥

जिनकी सुन्दर चाल हंसके बालकों व मतवाले हाथियोंके बच्चोंकी सुन्दर चालके अभिमान को, दूर करने वाली है ॥१८॥

सेयं प्रतप्तहेमाङ्गी मम प्राणाधिकप्रिया ।
विशुद्धहृदयानन्दसुधासिन्धूडुपानना ॥१९॥

तपाये सुवर्णके समान जिनके गौर अङ्ग हैं, जो मुझे प्राणोंसे अधिक प्रिय हैं, तथा विशुद्ध हृदय वालोंके आनन्द रूपी अमृत सागरको चन्द्रमाके समान लहरानेवाला जिनका श्रीमुखारविन्द है १९॥

अभूमितलसञ्चारा त्वदुत्सङ्गविहारिणी ।
दर्पणाङ्गी सुबिम्बोष्ठी सर्वानन्दप्रवर्षिणी ॥२०॥

भूमि तलपर चरण न रखकर आपकी गोदमें विहार करने वाली, दर्पण (शीशा) के सदृश प्रतिबिम्ब (छाया) ग्रहण करने वाले अङ्गो वह सुन्दर बिम्बा फलके सदृश लाल ओष्ठ तथा सभीके आनन्दकी वर्षा करने वाली ॥२०॥

हस्तेनैकेन वामेन लोकत्रयभराधिकम् ।
धनुरुत्थाप्य दक्षेन सलीलं चक्र ईप्सितम् ॥२१॥

श्रीललीजीने तीनों लोकोंके भारसे भी अधिक बोझ वाले श्रीशिवधनुष को एक, सो भी बायें हाथसे, खेलपूर्वक उठाकर दाहिने हाथके द्वारा इच्छानुसार भूमि लीपने पोतने आदिका कार्य सम्पन्न किया है ॥ २१ ॥

आधुनिकं रहस्यं हि चिन्तयेत्यावृणोत्युरः ।
अनया सदृशो लोके वरः कुत्र मिलिष्यति ॥२२॥

हे श्रीमिपाद्! आजका यह वृत्तान्त मेरे हृदयको इस प्रकारकी चिन्तासे युक्त कर रहा है कि ऐसी सामर्थ्य सम्पन्ना श्रीललीजूके योग्य वर कहाँ मिलेगा ? ॥२२॥

स रूपगुणवीर्येषु कन्याया अधिको मतः ।
चेन्नाधिकः समोऽपि स्यादभावे नोनको वरः ॥२३॥

क्योंकि वर, कन्याकी अपेक्षा रूप गुण पराक्रममें अधिक ही उत्तम माना गया है, यदि

कदाचित् अधिक नहीं मिल सके, तो अभावमें समान अवश्य ही होना चाहिये, कन्यासे न्यून तो किसी प्रकार भी नहीं होना चाहिये सो इनके समान भी कोई नहीं दीखता, तब अधिककी बात ही क्या ? ॥२३॥

अत एव प्रिये ! यश्च लोकत्रयनिवासिनाम् ।
बलीयांस्त्र्यम्बकस्येदं धनुर्भङ्गं करिष्यति ॥२४॥

इस लिये, हे प्रिये ! तीनों लोक निवासियोंमें जो कोई बलशाली भगवान त्रिलोचन (शिवजी) के इस धनुषको तोड़ेगा ॥२४॥

सुतां मेऽयोनिजां सीतां त्रैलोक्यविजयश्रिया ।
इमां सर्वगुणोपेतां स एव वरयिष्यति ॥२५॥

वही तीनों लोकोंकी विजय लक्ष्मीके सहित स्वयं प्रकट हुई, सब गुणोंसे युक्त, (सर्व दुःख शोकोंको हरनेवाली) हमारी इन श्रीललीजीका वरण करेगा अन्य नहीं ॥२५॥

नेयं प्रकृतिसम्भूता सच्चिदानन्दविग्रहा ।
सर्वशक्तीश्वरी राजन् सर्वलोकमहेश्वरी ॥२६॥

हे राजन् ! यह श्रीललीजी आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पाँच तत्व व सत्व, रज, तम तीन गुण वाली प्रकृतिसे उत्पन्न नहीं है, बल्कि अविद्या जनित सभी विकारोंसे रहित, सदासे सदाके लिये एक रस रहनेवाली चैतन्य व आनन्दमय शरीर वाली हैं, तथा सभी शक्तियाँ जिनके आधीन हैं, जो सभी लोकोंकी सर्वोपरि शासन करने वाली हैं, ॥२६॥

इति सत्यं वचोदृष्टं सूनोः पद्मभवस्य वै ।
अज्ञानादेव वै चास्यां पुत्रीभावो मया कृतः ॥२७॥

हे प्रिये ! श्रीमन्नारायण भगवानके नाभि-कमलसे उत्पन्न ब्रह्माजीके पुत्र श्रीनारदजीकी कही हुई इस बातको आज मैंने अच्छी तरहसे सत्य देखा, मैंने अपनी ना समझीसे ही इस श्रीललीजीमें पुत्री-भाव कर रक्खा है ॥२७॥

हन्त कस्येह पुत्रीयं जननी सर्वदेहिनाम् ।
क्षम्यतामपराधो मे कृपयाऽस्तद्विदः कृतः ॥२८॥

-- नहीं तो ये सभी प्राणी मात्रकी माता, इस त्रिलोकीमें भला किसकी पुत्री हो सकती हैं ?

इस लिये इस रहस्यका ज्ञान न रखने वाला जो मैं हूँ, उस मेरे पुत्री-भाव करनेके अपराधको, ये (श्रीजगज्जननीजी) क्षमा ही करनेकी कृपा करें ॥२८॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

इत्युक्त्वा पादयोरस्या निपपात सुविह्वलः।
श्रीमान्सीरध्वजो राजा महायोगीन्द्रसत्तमः ॥२९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! इसप्रकार श्रीअम्बाजीसे कहकर वे योगियोंमें परम श्रेष्ठ पिता श्रीसीरध्वजजी महाराज इन श्रीललीजूके श्रीचरण कमलोंमें पड़ गये ॥२९॥

समुत्पत्याङ्कतो मातुरियं शम्पेव तत्क्षणम्।
भूपमुत्थापयामास कथयित्वा पितस्त्विति ॥३०॥

उसी समय श्रीअम्बाजीकी गोदसे बिजुलीके समान उछल कर श्रीललीजीने, हे पिताजी! ऐसा कह कर उन्हें उठा लिया ॥३०॥

करपल्लवसंस्पर्शाच्छ्रवणात्तद्वचोऽथ सः।
लब्धधैर्यः समुत्तस्थौ बाष्पाकुलितलोचनः ॥३१॥

पुनः वे श्रीपिताजी, श्रीललीजूके करकमलके स्पर्श तथा उनके कोकिलके समान मनोहर शब्द के श्रवणसे धैर्य को प्राप्त हो, नेत्रोंसे आँसुओं को बहाते हुवे खड़े हो गये ॥३१॥

उपतस्थे सुनयना तत्राभ्येत्य कृताञ्जलिः।
प्रणम्य सादरं राज्ञी साश्रुपङ्कजलोचना ॥३२॥

तब प्रेमाश्रु युक्त नेत्र वाली श्रीसुनयना अम्बाजी भी, सिंहासनसे नीचे उतर कर श्रीललीजी को आदर पूर्वक प्रणाम करके, हाथ जोड़कर श्रीमिथिलेशजी महाराजके समीपमें खड़ी हो गयीं ॥३२॥

तयोः प्रेमदशां दृष्ट्वा करुणावरुणालया।
विस्मेरेन्दुमुखी वाचमुवाच कोकिलस्वना ॥३३॥

हे प्यारे! श्रीपिताजी व श्रीअम्बाजी दोनोंके प्रेमकी इस दशा को देखकर, कोयलके समान सुरीले शब्द व मुसुकान युक्त चन्द्रमाके समान आह्लाद कारी प्रकाशमान मुख वाली, करुणा सागरा श्रीललीजी बोलीं ॥३३॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच।

हे तात! हेऽम्ब भवथोऽद्य किमर्थमेव संविह्वलौ ननु युवां मयि संस्थितायाम्।
पुत्रीं विचार्य युवयोरिह मां च सर्वे त्यक्त्वा स्वभावमनुकूलतया भजन्ति ॥३४॥

हे श्रीपिताजी ! हे श्रीमाताजी ! आप लोग मेरे सामने रहते हुये क्यों इस भाँति पूर्ण विह्वल हो रहे हैं। मुझे आपकी ही पुत्री विचार कर सभी (लता वृक्षादिक) अपने स्वभावका नियम छोड़कर मेरी अनुकूलता पूर्वक सेवा करते हैं ॥३४॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एतावदेव वचनं विपुलार्थयुक्तं वागीश्वरीमहितयुग्मपदाब्जरेणुः।
सम्भाष्य चन्द्रवदना स्मितपूर्ववाणी ह्यैश्वर्यभावमहरद्धृदयस्थमाशु ॥३५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! जिनके श्रीचरण-कमलकी धूलीका श्रीसरस्वतीजी पूजन करती हैं,वे पूर्णचन्द्रमाके समान आह्लाद वर्द्धक श्रीमुखकमल तथा मुसुकान पूर्वक बोलने वाली श्रीललीजीने बहुत अर्थसे युक्त उनसे वचन बोलकर, तुरत दोनोंके हृदयमें स्थिर हुये ऐश्वर्य भावको हर लिया ३५

माधुर्यभाव उदिते सति भूमिनाथः क्रोडे निधाय सुमुखीमविशत्स्वपीठम्।
सा वै पितुर्ललितबालविहारमङ्के कृत्वा क्षणं स्वजननी पुनराह मिष्टम् ॥३६॥

ऐश्वर्यभावके हरण करते ही माधुर्य भावका उदय हुआ, अत एव पृथिवीपति श्रीमिथिलेशजी महाराज, उन सुमुखी श्रीललीजीको गोदमें लेकर सिंहासन पर विराजमान हुये तब वे श्रीललीजी अपने पिताजीकी गोदमें क्षण मात्र मनोहर बाल-लीला, करके अपनी श्रीअम्बाजीसे मीठी वाणी बोली-३६

श्रीजनकनन्दिन्युवाच।

मातर्विलम्ब इह वै क्रियते किमर्थं क्षुत्संयुताऽस्मि गमनाय मतिं कुरुष्व।
क्रीडातुरेण मनसा न हि चास्मि पूर्वं पूर्णाशनं कृतवती भगिनीभिरम्ब ! ३७

हे श्रीअम्बाजी ! यहाँ विलम्ब क्यों कर रही हैं ? मुझे भूख लगी है, अत एव शीघ्र चलनेका विचार करें, क्योंकि मेरा चित्त तो खेलमें लगा हुआ था अतः अपनी बहिनियोंके सहित उस समय मैं पूर्ण भोजन नहीं कर सकी ॥३७॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

इति गदितं वचनं शुभ सुमुख्याः श्रुतिसुखमिन्दुमुखीमुखाम्बुदूक्तम्।
निजभवनं त्वरितं निशम्य पत्या निखिलसुतासहिता गृहं प्रतस्थे ॥३८॥

इति पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीसुमुखीजूके चन्द्रमाके समान मुखारविन्दसे इस मङ्गलमय वचनको श्रवण करके, पतिदेवके सहित, तथा सभी पुत्रियोंके साथ श्रीसुनयनाअम्बाजी अपने भवन को पधारी ॥३८॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

श्रीकमलाजीके तटपर देवर्षि श्रीनारदजीके सहित श्रीसनकादिकोंका आगमन तथा श्रीकिशोरीजीके द्वारा उनकी भावपूर्त्तिः—

श्रीस्नेहेश्वरोवाच ।

कदाचिदम्बा निजकिङ्करीगणैः संसेव्यमाना मिथिलाधिपेश्वरी ।
स्नातुं गता श्रीकमलां सरिद्वरां श्रुत्वाऽनुजग्मुः क्षितिपानुजस्त्रियः ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! किसी समय श्रीसुनयनाअम्बाजी अपनी सखी वृन्दोंसे सेवित, सभी नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीकमलाजीमें स्नान करनेके लिये पधारीं, सो सुनकर श्रीमिथिलेशजी-महाराजके भाइयोंकी रानियाँ भी उनके पीछे लगीं । १॥

श्रीरत्नगर्भातनयाजनन्या सस्नुः समं श्रीकमलां प्रविश्य ।
सर्वा भगिन्योऽपि धरादुहित्रा मुदा रमन्त्यः प्रिय ! वै ममज्जुः ॥२॥

वहाँ पहुँचकर वे सभी रानियाँ श्रीअवनिकुमारीजूकी अम्बाजीके सहित श्रीकमलाजीमें प्रवेश करके स्नान करने लगीं, इधर सभी बहिनोंने भी श्रीललीजीके साथ आनन्द पूर्वक क्रीडा करती हुई श्रीकमलाजीमें स्नान किया ॥२॥

पीतारुणश्वेतविनीलवर्णैःसरोरुहैस्तां परिशोभमानाम् ।
नरेन्द्रपुत्र्याऽप्यवगाह्यमानां प्रपश्यतां नेत्र उभे कृतार्थे ॥३॥

पीले, लाल, श्वेत, नीलवर्णके कमलोंसे अत्यन्त शोभायमान, श्रीललीजूके द्वारा स्नानकी जाती हुई (उन श्रीकमलाजी) का जिन्होंने दर्शन प्राप्त किया उनके दोनों ही नेत्र कृतार्थ हो गये ॥३॥

देवर्षिणा ब्रह्मकुमारमुख्याः श्रीमैथिलीदर्शनलब्धुकामाः ।
तत्राययुः श्रीसनकादयोऽपि प्राणेश ! भक्त्या पुलकायमानाः ॥४॥

उधर श्रीब्रह्माजीके पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ये चारों श्रीनारदजीके सहित श्री-मिथिलेशराज-दुलारीजूके दर्शनोंकी प्राप्तिकी इच्छासे पुलकायमान होते हुये वहाँ प्रेम पूर्वक आगये ॥४॥

तदा तटोपस्थविशालमन्दिरे समं दुहित्रा सुविराजमानया ।
राज्या व्यलोक्यन्त विरिञ्चिसूनवो मनोहरा दर्शनलोलुपेक्षणाः ॥५॥

उस समय श्रीकमलाजीके किनारे पर सुशोभित विशाल मन्दिरमें, श्रीललीजूके सहित विराजी हुई श्रीसुनयना अम्बाजीने, दर्शन लोभी नेत्र वाले ब्रह्माजीके उन मनोहर सनकादिक पुत्रोंको देखा ५

आहूय भक्त्या महताऽऽदरेण तानपृच्छदानम्य समुज्झितासना ।
के यूयमाख्यात महर्षिपुत्रका ! हितं हि वः किं करवाणि चेप्सितम् ।६।

पुनः उन्हें बुलाकर अपना आसन छोड़कर बड़े आदर तथा प्रेम-पूर्वक प्रणाम करके पूछने लगीं:–हे महर्षिपुत्रो ! बतलाइये-आप लोग कौन हैं ? और मैं आप लोगों का क्या हित करूँ ? ॥६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

शेकुर्न वक्तुं परमानुरागिणःश्रीमैथिलीपादविलीनमानसाः ।
एवं समुक्ता अपि ते यदादरात् किंचिद्गिरा संयतपाणिपल्लवाः ॥७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :–हे प्यारे ! आदर-पूर्वक पूछने पर भी, श्रीललीजूके श्रीचरण-कमलोंमें मन लीन हो जानेके कारण, कमलके समान कोमल दोनों हाथोंको जोड़े हुये वे परम अनुरागी चारों भाई, जब वाणीसे कुछ भी बोलनेको समर्थ न हुये ॥७॥

उपेत्य तानम्बुजपत्रलोचना तदा महाराजसुता मुदाऽन्विता ।
कृतार्थयन्ती स्मितपूर्वया गिरा जगाविर्यं मातरमित्युदारधीः ॥८॥

तब उदारबुद्धि, कमलदलके समान विशाल नेत्र वाली ये श्रीललीजी आनन्द-पूर्वक उनके समीपमें जाकर, उन्हें कृतार्थ करती हुई अपनी मुसुकान पूर्वक वाणी द्वारा श्रीअम्बाजीसे इस प्रकार बोलीं ॥८॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

एते सुशीला मृदुलाः सुबालकाः प्रेमाप्लुताक्षाः कमनीयदर्शनाः ।
संतर्पणीया ज्वलनत्विषोऽधुना सुधाशनैः सादरमम्ब ! ते नमः ॥९॥

हे श्रीअम्बाजी ! मैं आप को प्रणाम करती हूँ, ये चारों भाई सुन्दर स्वभाव, कोमल शरीर, सुन्दर दर्शन, प्रेम भरे नेत्र व अग्निके सदृश कान्तिसे युक्त हैं, इस समय इनको आदर पूर्वक अमृत मय भोजनके द्वारा तृप्त करना चाहिये ॥९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

यथेप्सितं नन्दय चारुदर्शनान् वत्से ! यदृच्छोपगतान्प्रियातिथीन् ।
एतांश्च बालान्महनीयशेमुषि ! स्पृहा ममापीत्यनघे । विभाव्यताम् १०

श्रीललीजीकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीअम्बाजी बोलीं–हे प्रशंसनीय बुद्धि वाली, समस्त दोष

रहिते श्रीललीजी ! दैव-योगसे पधारे हुये सुन्दर दर्शन, इन प्रिय-अतिथि बालकोंको आप, अपनी इच्छानुसार सुखी करें, यही मेरी इच्छा है, सो जानिये ॥१०॥

इत्येवमुक्ता मृदुले शुभासने निवेश्य दोर्भ्यां नतचारुकन्धरान् ।
भोज्यानि तेभ्यो विविधानि भक्तितः सौवर्णपात्रेषु धृतानि साऽदिशत् ११

श्रीअम्बाजीके ऐसा कहने पर श्रीललीजीने कन्धा झुकाये हुये उन चारो भाइयोंको दोनों हाथोंसे सुन्दर सुकोमल आसन पर विराजमान करके सोनेके पात्रोंमें सजाये हुये अनेक प्रकारके भोजनोंको उन्हें प्रेमपूर्वक प्रदान किया ॥११॥

तस्याः समालोक्य कृपामपीदृशीं गता विदेहत्वमरं कुमारकाः ।
उद्बोधिता मैथिलराजकन्यया राज्ञीं निबद्धाञ्जलयो मुदाऽब्रुवन् ॥१२॥

श्रीललीजूकी ऐसी महती कृपाको देखकर ब्रह्माजीके चारों कुमार विदेह (देहानुसन्धान शून्य) अवस्थाको प्राप्त हो गये, तब श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके सावधान करने पर वे हाथ जोड़ कर श्रीअम्बासे हर्ष-पूर्वक बोले-॥१२॥

कुमारा ऊचुः ।

अनुग्रहोऽस्मासु कृतस्त्वया महान् बालेषु मातस्त्वयि नो तदद्भुतम् ।
असङ्ख्यविश्वालयलोकमातृसूर्यतस्त्वमेव प्रथितोरुवत्सले ! ॥१३॥

हे महावात्सल्यमयी-श्रीअम्बाजी ! आपने हम बालकोंके प्रति बड़ी दयाकी, सो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि आप अनन्त ब्रह्माण्डोंके अम्बाजीकी भी अम्बा प्रसिद्ध हैं ॥१३॥

कृपा विधेया त्वधुना त्वयाऽपि सा सत्कर्तुमिच्छा यदि ते प्रवर्तते ।
इयं कृपामूर्तिरमोघदर्शना प्रपश्यतां नः कुरुताद्यथाऽशनम् ॥१४॥

हे श्रीअम्बाजी ! यदि हम बालकोंके सत्कार करनेकी आपकी इच्छा है, तो इस समय आपको हम लोगोंके प्रति वह कृपा करनी चाहिये, जिससे कभी भी न निष्फल दर्शनों वाली, कृपाकी स्वरूपा, ये श्रीललीजी हम लोगोंके दर्शन करते हुये स्वयं भी भोजन करें ।१४॥

नैवान्यथा भोजनमीप्सितं हि नः सत्यं वदामो जननीति ते वचः ।
यथेप्सितं कार्यमतोऽम्ब ! शोभनं नमोऽस्तु ते मर्षय बालधृष्टताम् ॥१५॥

हे श्रीअम्बाजी ! बिना ऐसा हुये हम लोगोंको भोजन करनेकी इच्छा ही नहीं है, सो हम आपसे सत्य कह रहे हैं, हे श्रीअम्बाजी ! आप जैसा उचित समझें, वैसा ही करें । हम लोग आप को नमस्कार करते हैं, आप हम बालकोंकी ढिठाईको क्षमा करेंगी ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इतीरितं वालहठं विचार्य सा निशम्य वाचं प्रणयोदितां मुदा ।
जगाद पुत्री क्रियतां त्वयाऽशन समक्षमेषामभिलापपूर्त्तये ॥१६॥

श्रीस्नेहपराजी बोली-हे प्यारे ! सनकादिक चारो भाइयोंकी प्रेम पूर्वक इस प्रार्थनाको सुनकर तथा उनका बालहठ विचार करके श्रीअम्बाजी श्रीललीजीसे बोलीं—हे श्रीललीजी ! इन कुमारोंकी भाव पूर्त्तिके लिये, आप इनके समक्षमें भोजन कर लीजिये ॥१६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

एते कुमाराः सुधियोऽनुरागिणो जितेन्द्रियार्था मुनयो विभान्ति व ।
अवश्यमेवास्यमनोरथास्ततः कार्या ममाम्बेति विनिश्चिता मतिः ॥१७॥

श्रीअम्बाजीकी इस आज्ञाको सुनकर श्रीललीजी बोलीं-हे श्रीअम्बाजी ! ये कुमार सुन्दर बुद्धिवाले, अत्यन्त प्रेमी, इन्द्रियों और उनके विषयोंको जीते हुये निःसन्देह मुनि प्रतीत होते हैं, अत एव इन लोगोंके भावको अवश्य पूरा करना चाहिये, ऐसा मेरा निश्चित विचार है ॥१७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

विराजमानाः स्मितशोभिताननाः निशम्य वाक्यं क्षितिपानुजस्त्रियः ।
मुदान्विताश्चन्द्रमुखीमुखोदितं तां साधु साध्वित्यखिलाः समब्रुवन् ॥१८॥

चन्द्रमाके समान मुखवाली श्रीललीजीके मुखसे इस कहे हुये वचनको सुनकर मुसुकान युक्त मुख हुई, वहाँ पर विराजी हुई वे सभी श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंकी रानियाँ उनसे बोलीं:-हे श्रीललीजी ! आपका विचार बहुत ही उत्तम है, बहुत ही उत्तम है ॥१८॥

श्रीनिमिकुलाङ्गनाऽऊचु ।

सुबालिका त्वं वयसाऽसि पुत्रिके ! न वालिका हन्त सरस्वती तव ।
ब्रह्मादयो देववराः सुमङ्गलं कुर्वन्तु ते सर्पिमहर्षिपुङ्गवाः ॥१९॥

हे श्रीललीजी ! अवस्थासे तो आप वास्तवमें ही पूर्ण वालिका हं, परन्तु आपकी वाणी वालकोंकी नहीं (वृद्धोंकी) है । अत एव देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीब्रह्मादि देवता व सभी श्रेष्ठ ऋषि-महर्षि वृन्द आपका मङ्गल करें ॥१९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

ताभिस्तदानीमभिनन्दिता सती मृदुस्वभावा मिथिलेशनन्दिनी ।
श्लिष्टा जनन्या प्रणयप्रवीणया साऽन्तुं मुदेषे कुमारकैरिति ॥२०॥

सभी माताओंके द्वारा इस प्रकार प्रसन्नकी हुई तथा प्रेमके रहस्यको जानने वाली श्रीअम्बाजी के द्वारा हृदयमें लगाई हुई, अत्यन्त कोमलस्वभाव वाली इन श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीने उन कुमारोंके साथ भोजन करनेकी इच्छाकी ॥२०॥

तदैव दृष्ट्वा नलिनीदलेक्षणा माधुर्य्यसाराद्भुतदिव्यविग्रहा ।
तान् विह्वलाक्षानशनासने स्थितान् सग्रासहस्ताम्बुरुहान्दयामयी ॥२१॥

उसी समय सौन्दर्यकी सारभूत, आश्चर्यमयी, दिव्य-मूर्ति, कमलदललोचना श्रीललीजीने भोजनके आसन पर विराजे हुये, हाथमें कवल लिये, विह्वल नेत्र, उन कुमारोंको देखकर ये दयामयी हो गईं ॥२१॥

स्वोच्छिष्टमन्नं तु विधाय पात्रगं पीयूषकल्पं सकलान्तरात्मना ।
प्रादायि तेभ्योऽखिलभावविज्ञया विमूढकृत्येभ्य उदारशीलया ॥२२॥

हैं ! हम क्या करें ? (अब तो हमारी प्रार्थनानुसार श्रीललीजी अपनी अम्बाजीकी आज्ञासे हमारे सम्मुख भोजन भी करनेको विराज गयी हैं, अब बिना पाये भी निर्वाह नहीं है और सुअवसर प्राप्त होजाने पर बिना श्रीललीजीका प्रसाद प्राप्त करके भोजन करें तो कैसे ? ऐसी) चिन्तामें पड़े हुये उन चारो भाइयोंको, सभीके भावको पूर्णतया समझनेवाली, उदार स्वभाव युक्ता, सभीकी आत्मामें निवास करने वाली श्रीललीजी, उनके भावको समझ कर, अमृतकेसमान दिव्य अपने थालके भोजनको प्रसादी बना कर गुप्त रूपसे उन्हें प्रदान कर दिया ॥२२॥

कयाऽपि दृष्टं न चरित्रमद्भुतं कृतं तया पद्मपलाशनेत्रया ।
सुगन्धिमात्रेण सुताः स्वयंभुवो बभूवुराज्ञाय तदाप्तवाञ्छिताः ॥२३॥

परन्तु कमल लोचना श्रीललीजूके किये हुये इस अद्भुत चरितको किसीने भी नहीं देखा, केवल उन महापुरुषोंने विलक्षण सुगन्धमात्रसे ही उस (लीला) को समझ कर पूर्णमनोरथ हो गये ॥२३॥

समाशुरानन्दसुधाब्धिसंप्लुताः समीक्षमाणाश्चरणाम्बुजच्छविम् ।
सुपुत्रिकाया मिथिलामहेशितुस्तामप्यदन्तीं मुदितां विलोक्य ते ॥२४॥

अतः एव वे प्रसन्नता पूर्वक श्रीललीजीको पाती हुई देखकर आनन्द रूपी अमृत-सागरमें डूब गये। पुनः श्रीललीजीके श्रीचरण-कमलकी छविका दर्शन करते हुये प्रसाद पाने लगे ॥२४॥

नृपाङ्गना ऊचुः ।

अहो विचित्रंसुमुखीमहत्त्वं संदृश्यते नित्यमजस्रमेव ।
त्वया तथाऽस्माभिरुदारबुद्धे ! सर्वाभिरासादितदर्शनाभिः ॥२५॥

रानियाँ बोलीं:-हे उदार बुद्धि वाली श्रीमहारानीजी ! दर्शनों को प्राप्त कर हम, आप तथा सभी, सुन्दर मुख वाली श्रीललीजीकी नित्य निरन्तर कैसी विचित्र महिमा देख रही हैं ! ॥२५॥

अज्ञातदेशान्वयपितृसञ्ज्ञा एते समागत्य यदत्र बालाः ।
प्रदर्शितप्रेमदशैकरूपाः सर्वप्रिया नेत्रचरा बभूवुः ॥२६॥

हे श्रीमहारानीजी ! क्योंकि देखिये ये बालक जिनके न देशका, न वंशका न पिताका न नामका ही पता है, वे यहाँ आकर प्रेमकी अवस्थाके उपमा रहित स्वरूपको भली भाँति दिखाकर, सभी को प्रिय हो गये हैं ॥२६॥

सर्वे त एते नवनीतमृद्व्यथः पादाम्बुजासक्तदृशो विनीताः ।
दासत्वभावं समनुप्रपन्ना अबालबोधा धृतबालरूपाः ॥२७॥

नम्रता युक्त दास भावको ग्रहण किये हुये, वृद्धोंके समान ज्ञानी, बालकरूपको धारण किये हुये इन सभी भाइयोंने श्रीललीजीके मक्खनके समान कोमल, श्रीचरण-कमलोंमें अपनी दृष्टिको आसक्त कर रक्खा है ॥२७॥

तथेत्तरे सस्मितवीक्षणाया अस्याः कृपाकामनया जिताशाः ।
उच्छिष्टलुब्धाः सुविशुद्धचित्ता उपागता प्रेमपरा हि दृष्टाः ॥२८॥

उसी प्रकार मुसुकान युक्त चितवन वाली इन श्रीललीजूकी कृपा-प्राप्तिकी इच्छासे सम्पूर्ण आशाओं को जीते (वशमें किये) हुये, तथा और भी इनके प्रसादके आये हुये लोभी स्वच्छ अन्तः करणवाले, प्रेम-प्रधान महापुरुषोंका दर्शन हुआ है ।.२८।

प्रीयन्त इन्दुप्रतिमाननायामस्यां निरस्ताखिलरागपाशाः ।
तपस्विनो ब्रह्मपरा यतीन्द्रा महामुनीन्द्राः कवयो महान्तः ॥२९॥

हे श्रीमहारानीजी ! समस्त आसक्ति रूपी बंधनसे मुक्त, तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ यतियोंमें श्रेष्ठ, महामुनिराज, कवि, और अपने हृदयमें एक ब्रह्म को ही अवकाश देने वाले, चन्द्रमाके समान मुख वाली इन श्रीललीजीके प्रति प्रेम करते हैं ॥२९॥

देवाश्च देव्योऽखिलयोनिजाता मूर्खा बुधाः स्थावरजङ्गमाख्याः ।
प्रीतिं प्रकुर्वन्ति समस्तजीवा अस्यां यथैवात्मनि बद्धभावाः ॥३०॥

हे श्रीमहारानीजी ! इन श्रीललीजीमें अपनी आत्माके समान भाव बाँधकर देवता भी प्रेम करते हैं और देवियाँ भी, तथा स्थावर (अचल) एवं जङ्गम (चल) नामकी सभी योनियोंमें उत्पन्न हुये मूर्ख भी प्रेम करते हैं और विद्वान् भी ॥३०॥

रतिर्न तेषां खलु जायतेऽस्यां येषां मनोवाग्दृगगोचरीयम् ।
आत्मद्विषां किल्बिषभूधरेन्द्रैः संपिष्यमानाल्पधियां हि राज्ञि ! ॥३१॥

हे श्रीमहारानीजी ! श्रीललीजीमें उन्हीं अभागोंकी प्रीति नहीं होती, जिनकी ओछी बुद्धि, पापरूपी भारी पर्वतोंसे पूर्ण पिस रही है । अत एव वाणी द्वारा जिन्हें इनके नाम सङ्कीर्तन व यशो गानका अवसर नहीं मिलता, नेत्रोंसे दर्शन भी नहीं प्राप्त होता और मनमें भी लानेका सौभाग्य नहीं होता । ३१॥

अपुण्यशीलस्य कुतः सुबुद्धिः सद्बुद्धिहीनस्य च सत्प्रवृत्तिः ।
असत्प्रवृत्तेः क्व च भूमिजायां प्रीति र्महाराज्ञि ! निबोध सत्यम् ॥३२॥

हे श्रीमहारानीजी ! आप सत्य जानिये, जिसका आचरण पुण्य मय नहीं है, उसे सुन्दर (कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य को समझने वाली, बुद्धि कहाँसे प्राप्त हो सकती है ? और जिसे ऐसी विवेक-मयी बुद्धि ही नहीं प्राप्त है, उसे एक रस रहने वाले सत् (ब्रह्म) के विषयमें प्रवृत्ति कहाँसे होगी ? और विना ब्रह्मकी ओर प्रवृत्ति हुये भला इन भूमिजा श्रीललीजीमें प्रीति कहाँसे हो सकती है ? ३२

असत्प्रवृत्तेरपि रक्तिरस्यां संजायते प्रीतिरसद्धियोऽपि ।
पशुद्रुहश्चापि हि जातु भक्तिर्न जायते वामविधेःक्वदाचित् ॥३३॥

हे श्रीमहारानीजी ! असत् (ब्रह्मसे इतर जगत्) में प्रवृत्ति वाले प्राणियोंकी भी श्रीललीजीमें समय पाकर आसक्ति हो सकती है, केवल असत् (अनित्य जगत्के पदार्थों) में ही बुद्धि लगानेवाले का भी संयोग पाकर कभी श्रीललीजीमें अनुराग हो सकता है, कहाँ तक कहें ? पशु-हत्यारे कसाई की भी श्रीललीजीमें कभी श्रद्धा उत्पन्न हो सकती है, पर जिससे विधाता विपरीत होता है, उसी की प्रीति श्रीललीजीमें कभी नहीं होती है ॥३३॥

तदश्मसारं हृदयं बतास्याः परानुरक्त्या रहितं यदेव ।
संस्फोटनं तस्य वरं हि विद्मो निरर्थकं येन कृतं सुजन्म ॥३४॥

हे श्रीमहारानीजी ! जो हृदय इन श्रीललीजीकी उत्कृष्ट प्रीतिसे युक्त नहीं है, वह लोहेके समान कठोर है, जिसके ,कारण यह सुन्दर (मानव) जन्म व्यर्थ गया, उस हृदयका टुकड़े-टुकड़े हो जाना ही हम अच्छा समझती हैं ॥३४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं वदन्तीषु शुचिव्रतासु नरेन्द्रकान्तां निमिजाङ्गनासु ।
पादाम्बुजश्रीजितकामकान्ता तांस्तर्पयामास विधेः कुमारान् ॥३५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! पवित्र व्रतवाली उन रानियोंके श्रीअम्बाजीसे इस प्रकार कहते हुये, अपने चरण-कमलोंकी शोभासे रतिको जीतने वाली श्रीललीजीने, ब्रह्माजीके, उन कुमारोंको तृप्त कर दिया ॥३५॥

पुनस्तु सा स्मेरमुखी जनन्या उत्सङ्गसिंहासनमाविवेश ।
निरीक्ष्य तत्पूर्णमनोभिलाषा राज्ञीं कुमाराः प्रणताःस्त ऊचुः ॥३६॥

पुनः मन्द-मन्द मुसुकाती हुई श्रीललीजी, श्रीअम्बाजीके गोद रूपी सिंहासनमें जाकर बैठ गयीं, सो देखकर वे कुमार, पूर्णमनोरथ हो प्रणाम करके श्रीसुनयनाअम्बाजीसे बोले-॥३६॥

कुमारा ऊचुः ।

गुरोरधीतां स्तुतिमम्ब ! तुभ्यं संश्रावयेमाप्रतिमप्रभावे !
श्राव्या हि वात्सल्यनिधेऽधुनेयं साऽपुष्टशब्दार्थयुता भवत्या ॥३७॥

हे उपमा रहित प्रभाव वाली, वात्सल्य निधे ! श्रीअम्बाजी ! श्रीगुरुदेवजीसे पढ़ी हुई स्तुति को, अब हम आप को सुनाते हैं, उस अपुष्ट (तोतले) शब्दार्थ से युक्त स्तुतिको आप श्रवण कीजिये ॥३७॥

यत्कृपाभिकामा महर्षयो योगिनश्च सिद्धास्तपस्विनः ।
अप्रमत्तचित्ता जितेन्द्रियास्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥३८॥

इन्द्रियों को वशमें किये हुये, सावधान चित्त योगी, तपस्वी, सिद्ध, महर्षिवृन्द जिनकी कृपा-की प्राप्ति चाहते हैं, उनके श्रीचरण कमलोंमें हमारा शिर भौंरा हो जाय ॥३८॥

यत्कृपा हृताशेप्सितार्थदा प्राणिनामिहैकप्रियङ्करी ।
पद्मजादिनित्याभिवाञ्छिता तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥३९॥

ब्रह्मादिदेवोंसे चाही हुई जिनकी कृपा निराशोंके भी मनोरथको पूर्ण करनेवाली व प्राणी मात्रको एक ही प्रिय करनेवाली है, उनके श्रीचरण कमलोंमें हमारा शिर भौंराके समान वृत्ति ग्रहण करे अर्थात् जैसे भौंरा कमल पर दौड़-दौड़कर वारम्बार बैठा करता है और अपूर्व सुखकी अनुभूति करता है, उसी प्रकार हमारा शिर वारम्बार उनके श्रीचरण-कमलों पर बैठता रहे और उसके सुकोमल स्पर्शके सुखसे मस्त रहे ॥३९॥

या त्र्यधीश्वरस्वामिनी सती वेदवन्दिता भावपण्डिता।
स्वेच्छयात्तकान्तार्भकाकृतिस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४०॥

वेद भगवान् जिनकी वन्दना करते हैं, जो प्राणियोंके भावको पूर्णतया समझने वाली तथा ब्रह्मा,विष्णु, महेशादिकी स्वामिनी होकर भी, अपनी इच्छासे कन्याका मनोहर स्वरूप धारण करने-वाली हैं, उनके श्रीचरण-कमलमें हमारा शिर भौंरा हो जावे ॥४०॥

सर्वलोकशर्मप्रदेक्षणा पापिपावनानुत्तमस्मिता ।
मातुरङ्कगा या विराजते तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४१॥

जिनका दर्शन सभी लोकोंको सुखदेने वाला तथा जिनकी उपमा रहित श्रेष्ठ मुसुकान पापियों को भी पवित्र करने वाली है, जो श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराज रही हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा शिर भौंरेके समान आसक्त हो जावे ॥४१॥

पूर्णचन्द्रवक्त्रा तडित्प्रभा पद्मलोचना कुञ्चितालका ।
सद्गतिप्रदा या ऽरुणाधरा तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४२॥

पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाशमान आह्लाद कारी मुखारविन्द, बिजुलीके सदृश प्रकाश व कमलके समान विशाल नेत्र तथा घुंघुराले केश, लाल २ अधरोंसे युक्त, एवं सन्तोंकी जो आधार-स्वरूपा हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा शिर भौंरेके समान सदैव आसक्त बना रहे ॥४२॥

मूर्द्धिन चन्द्रिकांशुः सुकुण्डले कर्णयोश्च हारा उरः स्थले ।
नूपुरौ यदम्भोजपादयोस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४३॥

जिनके मस्तक पर चन्द्रिका (भूषण विशेष) की किरण, कानोंमें सुन्दर कुण्डल, हृदय-स्थल पर हार व श्रीचरण-कमलोंमें नूपुर सुशोभित हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा शिर भौंरेके समान लोलुप हो जावे ॥४३॥

यत्करारविन्दे भयापहे शीतले जगत्क्षेमतत्परे ।
कङ्कणाञ्चिते सन्छिरोधृते तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४४॥

जिनके कर-कमल भयको दूर करनेवाले, शीतल, जगत्‌का कल्याण करनेमें तत्पर, सन्तोंके शिर पर रक्खे हुये कङ्कणोंसे विभूषित हैं, उन श्रीचरण कमलोंका रसास्वादन करनेके लिये हमारा शिर भौंरोंके समान सदैव लालायित रहे ॥४४॥

यत्कृपामृते शान्तिसाधनं तत्त्वपारगैर्नैव दृश्यते ।
दृष्टिगोचरी हन्त साऽद्य नस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४५॥

तत्त्व को भली प्रकारसे समझने वाले महापुरुषोंको जिनकी कृपाके विना शान्तिका और कुछ साधन दीखता ही नहीं अहह वे ही आज मेरी दृष्टिके सामने विराज रही हैं, अतः उनके श्रीचरण कमलोंमें हमारा शिर भौंरेके समान सदा अतृप्त ही बना रहे ॥४५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं हि ते बुद्धिमतां वरिष्ठा मातुस्तदोत्सङ्गविराजमानाम् ।
संस्तूय भक्त्या परया परीताः श्रीजानकीमिन्दुमुखीं प्रणेमुः ॥४७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! बुद्धिमानोंमें परम श्रेष्ठ, परम श्रद्धा युक्त, श्रीब्रह्माजीके पुत्र सनकादिकोंने, श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजती हुई, चन्द्रमाके सदृश आह्लाद-पद्धके प्रकाश युक्त मुखवाली श्रीजनकराज-दुलारीजूकी इस प्रकारकी स्तुति करके प्रणाम किया ॥४६॥

पुनः परिक्रम्य महाश्रियः श्रियं स्वमातुरंसार्पितपाणिपल्लवाम् ।
सवाष्पपङ्केरुहपत्रलोचनाः कथञ्चिदारोप्य हृदि प्रतस्थिरे ॥४७॥

इति पट्सप्ततितमोऽध्याय. ॥७६॥

—: मासपारायण विश्राम–१६ :—

पुनः परिक्रमा करके महालक्ष्मीकी भी लक्ष्मी स्वरूपा, अपनी श्रीअम्बाजीके कन्धे पर कर-कमल रक्खी हुई, श्रीललीजीको अपने हृदयमें विराजमान करके, नेत्रोंमें जल भरे हुये, उन्होंने बड़ी कठिनतासे प्रस्थान किया ॥४७॥

ब्रह्मादिदेवोंसे चाही हुई जिनकी कृपा निराशोंके भी मनोरथको पूर्ण करनेवाली व प्राणी मात्रकी एक ही प्रिय करनेवाली है, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा शिर भौंराके समान वृत्ति ग्रहण करे अर्थात् जैसे भौंरा कमल पर दौड़-दौड़कर बारम्बार बैठा करता है और अपूर्व सुखकी अनुभूति करता है, उसी प्रकार हमारा शिर बारम्बार उनके श्रीचरण-कमलों पर बैठता रहे और उसके सुकोमल स्पर्शके सुखसे मस्त रहे ॥३९॥

या त्र्यधीश्वरस्वामिनी सती वेदवन्दिता भावपण्डिता ।
स्वेच्छयात्तकान्तार्भकाकृतिस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४०॥

वेद भगवान् जिनकी वन्दना करते हैं, जो प्राणियोंके भावको पूर्णतया समझने वाली तथा ब्रह्मा,विष्णु, महेशादिकी स्वामिनी होकर भी, अपनी इच्छासे कन्याका मनोहर स्वरूप धारण करनेवाली हैं, उनके श्रीचरण-कमलमें हमारा शिर भौंरा हो जावे ॥४०॥

सर्वलोकशर्मप्रदेक्षणा पापिपावनानुत्तमस्मिता ।
मातुरङ्कगा या विराजते तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४१॥

जिनका दर्शन सभी लोकोंको सुखदेने वाला तथा जिनकी उपमा रहित श्रेष्ठ मुसुकान पापियों को भी पवित्र करने वाली है, जो श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराज रही हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा शिर भौंरेके समान आसक्त हो जावे ॥४१॥

पूर्णचन्द्रवक्त्रा तडित्प्रभा पद्मलोचना कुञ्चितालका ।
सद्गतिप्रदा या ऽरुणाधरा तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४२॥

पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाशमान आह्लाद कारी मुखारविन्द, बिजुलीके सदृश प्रकाश व कमलके समान विशाल नेत्र तथा घुंघुराले केश, लाल २ अधरोंसे युक्त, एवं सन्तोंकी जो आधार-स्वरूपा हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा शिर भौंरेके समान सदैव आसक्त बना रहे ॥४२॥

मूर्ध्नि चन्द्रिकांशुः सुकुण्डले कर्णयोश्च हारा उरः स्थले ।
नूपुरौ यदम्भोजपादयोस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४३॥

जिनके मस्तक पर चन्द्रिका (भूषण विशेष) की किरण, कानोंमें सुन्दर कुण्डल, हृदय-स्थल पर हार व श्रीचरण-कमलोंमें नूपुर सुशोभित हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा शिर भौंरोंके समान लोलुप हो जावे ॥४३॥

यत्करारविन्दे भयापहे शीतले जगत्क्षेमतत्परे ।
कङ्कणाञ्चिते सच्छिरोधृते तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४४॥

जिनके कर-कमल भयको दूर करनेवाले, शीतल, जगत्‌का कल्याण करनेमें तत्पर, सन्तोंके शिर पर रक्खे हुये कङ्कणोंसे विभूषित हैं, उन श्रीचरण-कमलोंका रसास्वादन करनेके लिये हमारा शिर भौंरोंके समान सदैव लालायित रहे ॥४४॥

यत्कृपामृते शान्तिसाधनं तत्त्वपारगैर्नैव दृश्यते ।
दृष्टिगोचरी हन्त साऽद्य नस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४५॥

तत्त्व को भली प्रकारसे समझने वाले महापुरुषोंको जिनकी कृपाके विना शान्तिका और कुछ साधन दीखता ही नहीं अहह वे ही आज मेरी दृष्टिके सामने विराज रही हैं, अतः उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा शिर भौंरेके समान सदा अतृप्त ही बना रहे ॥४५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं हि ते बुद्धिमतां वरिष्ठा मातुस्तदोत्सङ्गविराजमानाम् ।
संस्तूय भक्त्या परया परीताः श्रीजानकीमिन्दुमुखीं प्रणेमुः ॥४७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! बुद्धिमानोंमें परम श्रेष्ठ, परम श्रद्धा युक्त, श्रीब्रह्माजीके पुत्र सनकादिकोंने, श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजती हुई, चन्द्रमाके सदृश आह्लाद-वर्द्धक प्रकाश युक्त मुखवाली श्रीजनकराज-दुलारीजूकी इस प्रकारकी स्तुति करके प्रणाम किया ॥४६॥

पुनः परिक्रम्य महाश्रियः श्रियं स्वमातुरंसार्पितपाणिपल्लवाम् ।
सबाष्पपङ्केरुहपत्रलोचनाः कथञ्चिदारोप्य हृदि प्रतस्थिरे ॥४७॥

इति षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

—: मासपारायण विश्राम-१६ :—

पुनः परिक्रमा करके महालक्ष्मीकी भी लक्ष्मी स्वरूपा, अपनी श्रीअम्बाजीके कन्धे पर कर-कमल रक्खी हुई, श्रीललीजीको अपने हृदयमें विराजमान करके, नेत्रोंमें जल भरे हुये, उन्होंने बड़ी कठिनतासे प्रस्थान किया ॥४७॥

ब्रह्मादिदेवोंसे चाही हुई जिनकी कृपा निराशोंके भी मनोरथको पूर्ण करनेवाली व प्राणी मात्रकी एक ही प्रिय करनेवाली है, उनके श्रीचरण कमलोंमें हमारा शिर भौंराके समान वृत्ति ग्रहण करे अर्थात् जैसे भौंरा कमल पर दौड़-दौडकर बारम्बार बैठा करता है और अपूर्व सुखकी अनुभूति करता है, उसी प्रकार हमारा शिर बारम्बार उनके श्रीचरण-कमलों पर बैठता रहे और उसके सुकोमल स्पर्शके सुखसे मस्त रहे ॥३९॥

या त्र्यधीश्वरस्वामिनी सती वेदवन्दिता भावपण्डिता ।
स्वेच्छयात्तकान्तार्भकाकृतिस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४०॥

वेद भगवान् जिनकी वन्दना करते हैं, जो प्राणियोंके भावको पूर्णतया समझने वाली तथा ब्रह्मा,विष्णु, महेशादिकी स्वामिनी होकर भी, अपनी इच्छासे कन्याका मनोहर स्वरूप धारण करने-वाली हैं, उनके श्रीचरण कमलमें हमारा शिर भौंरा हो जावे ॥४०॥

सर्वलोकशर्मप्रदेक्षणा पापिपावनानुत्तमस्मिता ।
मातुरङ्कगा या विराजते तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४१॥

जिनका दर्शन सभी लोकोंको सुखदेने वाला तथा जिनकी उपमा रहित श्रेष्ठ मुसुकान पापियों को भी पवित्र करने वाली है, जो श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराज रही हैं, उनके श्रीचरण कमलोंमें हमारा शिर भौंरेके समान आसक्त हो जावे ॥४१॥

पूर्णचन्द्रवक्त्रा तडित्प्रभा पद्मलोचना कुञ्चितालका ।
सद्गतिप्रदा या ऽरुणाधरा तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४२॥

पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाशमान आह्लाद कारी मुखारविन्द, बिजुलीके सदृश प्रकाश व कमलके समान विशाल नेत्र तथा घुंघुराले केश, लाल २ अधरोंसे युक्त, एवं सन्तोंकी जो आधार-स्वरूपा हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा शिर भौंरेके समान सदैव आसक्त बना रहे ॥४२॥

मूर्ध्नि चन्द्रिकांशुः सुकुण्डले कर्णयोश्च हारा उरः स्थले ।
नूपुरौ यदम्भोजपादयोस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४३॥

जिनके मस्तक पर चन्द्रिका (भूषण विशेष) की किरण, कानोंमें सुन्दर कुण्डल, हृदय स्थल पर हार व श्रीचरण-कमलोंमें नूपुर सुशोभित हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंम हमारा शिर भौंराके समान लोलुप हो जावे ॥४३॥

यत्करारविन्दे भयापहे शीतले जगत्क्षेमतत्परे ।
कङ्कणाञ्चिते सज्जिरोधृते तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४४॥

जिनके कर-कमल भयको दूर करनेवाले, शीतल, जगत्‌का कल्याण करनेमें तत्पर, सन्तोंके शिर पर रक्खे हुये कङ्कणोंसे विभूषित हैं, उन श्रीचरण कमलोंका रसास्वादन करनेके लिये हमारा शिर भौंरोंके समान सदैव लालायित रहे ॥४४॥

यत्कृपामृते शान्तिसाधनं तत्त्वपारगैर्नैव दृश्यते ।
दृष्टिगोचरी हन्त साऽद्य नस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४५॥

तत्त्व को भली प्रकारसे समझने वाले महापुरुषोंको जिनकी कृपाके बिना शान्तिका और कुछ साधन दीखता ही नहीं अहह वे ही आज मेरी दृष्टिके सामने विराज रही हैं, अतः उनके श्रीचरण कमलोंमें हमारा शिर भौंरेके समान सदा अतृप्त ही बना रहे ॥४५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं हि ते बुद्धिमतां वरिष्ठा मातुस्तदोत्सङ्गविराजमानाम् ।
संस्तूय भक्त्या परया परीताः श्रीजानकीमिन्दुमुखीं प्रणेमुः ॥४७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! बुद्धिमानोंमें परम श्रेष्ठ, परम श्रद्धा युक्त, श्रीब्रह्माजीके पुत्र सनकादिकोंने, श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजती हुई, चन्द्रमाके सदृश आह्लाद-वर्द्धक प्रकाश युक्त मुखवाली श्रीजनकराज-दुलारीजूकी इस प्रकारकी स्तुति करके प्रणाम किया ॥४६॥

पुनः परिक्रम्य महाश्रियः श्रियं स्वमातुरंसार्पितपाणिपल्लवाम् ।
सबाष्पपङ्केरुहपत्रलोचनाः कथञ्चिदारोप्य हृदि प्रतस्थिरे ॥४७॥

इति षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

—: मासपारायण विश्राम—१६ :—

पुनः परिक्रमा करके महालक्ष्मीकी भी लक्ष्मी स्वरूपा, अपनी श्रीअम्बाजीके कन्धे पर कर-कमल रक्खी हुई, श्रीललीजीको अपने हृदयमें विराजमान करके, नेत्रोंमें जल भरे हुये, उन्होंने बड़ी कठिनतासे प्रस्थान किया ॥४७॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

श्रीमिथिलाजी पधारती हुई सप्तपुरियोंके समेत श्रीमुक्ति-महारानीसे श्रीसनकादिकों की भेंट, पुनः उनके द्वारा अपने-अपने विविध भावोंका वर्णन

श्रीस्नेहपरोवाच ।

पथि प्रियैकां युवतीमुदीक्ष्य स्त्रीभिश्च ते-पावनदर्शनां ताम् ।
पप्रच्छुरानम्य विधेः कुमारा का कुत्र वै गच्छसि सत्वरं त्वम् ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! मार्गमें स्त्रियोंसे युक्त, पवित्र दर्शनों वाली एक युवतीका दर्शन करके श्रीब्रह्माजीके उन कुमारोंने उसे प्रणाम करके पूछा—हे देवि ! आप कौन हैं ? और शीघ्रता पूर्वक जा कहाँ रही हैं ? ॥१॥

युवत्युवाच ।

अहं तु मुक्तिः खलु भक्तिकिङ्करी पुर्यस्त्विमाः सप्त ममोपलब्धिदाः ।
श्रीधामसेवाभिरता निरन्तरं वामस्वरूपिण्य उदारकीर्त्तनाः ॥२॥

वह युवती बोलीः—हे पुत्रो ! मैं श्रीभक्ति, महारानीकी सेविका मुक्ति हूँ और ये मेरी प्राप्ति कराने वाली श्रीकिशोरीजीकेधाम श्रीमिथिलाजीकी सेवामें तत्पर रहने वाली, कीर्त्तनसे सभी मनोरथोंको प्रदान करनेमें अति उदार, इच्छानुसार स्वरूप धारण करने वाली स्त्री रूपमें ये मेरे साथ सातो पुरी हैं ॥२॥

सा गम्यते श्रीमिथिला कुमारा मया सहैताभिरतीवशीघ्रम् ।
निषेवणार्थं श्रिय आद्यधाम्नो निवासिचित्तस्थविशुद्धभक्तेः ॥३॥

मैं इनके समेत श्रीजीके श्रेष्ठ श्रीमिथिलाधाम-निवासियोंके चित्तमें विराजमान श्रीविशुद्ध भक्ति महारानीकी सेवाके लिये शीघ्रता पूर्वक वहीं जा रही हूँ ॥३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युच्चरन्त्यां त्वरया गतायां मुक्तौ तदा सप्त वराङ्गनाभिः ।
श्रीनारदं प्रेमपरिप्लुताक्षः शनैरवादीत्सनको महात्मा ॥४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! इस प्रकार कहते हुये उन श्रीमुक्ति देवीके शीघ्रता पूर्वक उन सातो उत्तम ललनाओंके सहित चली जानेपर, प्रेम जल भरे नेत्रवाले, महात्मा श्रीसनक कुमारजी श्रीनारदजीसे धीरेसे बोले—॥४॥
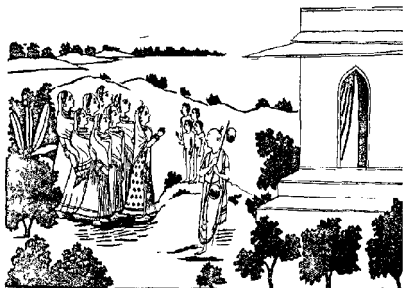
श्रीमिथिलाजी जाती हुई सप्त पुरियोंके समेत श्रीमुक्ति महारानीसे
सनकादिकों की भेंट तथा परिचय प्राप्ति ।

श्रीशनक उवाच ।

विरिञ्चिविष्णवीशशिरोऽभिवन्दितां ब्रह्मर्षिदेवर्षिवरैरुपासिताम् ।
सिद्धीन्द्रयोगीन्द्रगणैः समाकुलां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥५॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जिसको शिर झुकाकर प्रणाम करते हैं, तथा श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि, देवर्षि, वृन्द जिसकी उपासना करते हैं, बड़े-बड़े सिद्ध व योगियोंसे भरी हुई श्रीजीके धामोंमें मुख्य श्रीमिथिलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

वैडूर्यशैलादिमनोज्ञदर्शनैः श्रीपारिजातादिवनैः समावृताम् ।
स्वधामदीप्तां कमलोपशोभितां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥६॥

दर्शनसे मनको हरण करनेवाले श्रीवैडूर्य आदि पर्वत व पारिजातादि वनोंसे घिरी हुई, अपने प्रकाशसे प्रकाशित श्रीकमलाजीसे शोभायमान, श्रीजीके मुख्य धाम, श्रीमिथिलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६॥

अप्राकृताशेषविभूतिभूषितां पुरीं चिदानन्दमयस्वरूपिणीम् ।
नित्यानवद्यां मृदुमेदिनीतलां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥७॥

समस्त दिव्य ऐश्वर्यसे सुसज्जित, चेतन्य आनन्दमय (ब्रह्म) स्वरूपा, नित्यो (दिव्य-धाम निवासी भक्तों)के द्वारा प्रशंसाके योग्य, अत्यन्त कोमल भूतल वाली, श्रीजीके मुख्य धाम श्रीमिथिलाजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥७॥

महोच्चसप्तावरणैः परिष्कृतां ध्वजापताकाघटदूरदर्शिताम् ।
अपारविख्यातमहायशस्ततिं श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥८॥

बड़े ऊँचे ऊँचे सात आवरणोंसे सुशोभित, ध्वजा पताका व कलशके द्वारा बहुत दूरसे दर्शन देने वाली, अनन्त विख्यात महायश समूहसे युक्त श्रीजीके धामोंमें मुख्य श्रीमिथिला-धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

मणिप्रवालाञ्चितकाञ्चनालयैर्भव्यैर्विशालैर्गगनस्पृशैर्युताम् ।
महारथैः सर्वत एव रक्षितां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥९॥

अनेक प्रकारकी मणि व मूँगोंसे भूषित किये हुये आकाश को छूने वाले सोनेके मनोहर विशाल भवनोंसे युक्त व चारों ओरसे महारथियोंके द्वारा सुरक्षित, श्रीजीके सभी धामोंमें मुख्य श्रीमिथिलाधाम को मैं प्रणाम करता हूँ ॥९॥

शरीरसंस्पर्द्धिरतिस्मरव्रजैर्नारीनरैः सङ्कुलराजपद्धतिम् ।
गजाश्वगोस्यन्दनवृन्दनिर्भरां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१०॥

अपने शरीरकी सुन्दरतासे अनन्त रति व काम देवोंको डाह युक्त करनेवाले स्त्री-पुरुषोंसे भरे हुये राजमार्ग वाली, हाथी, घोड़ा, गौ, रथ समूहोंसे पूर्ण श्रीजीके धामोंमें प्रधान, श्रीमिथिला-धामको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

अदीर्घगम्भीरसरिद्गणाञ्चिता द्रुमैश्चपुष्पावनतैः सुशोभिताम् ।
समस्तमाङ्गल्यपदार्थसंयुतां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥११॥

छोटी-छोटी व कम गहरी नदी वृन्दोंसे विभूषित, नीचेकी ओर विशेष झुकी हुई सुन्दर-पुष्प वाले वृक्षोंसे सुशोभित तथा सभी माङ्गलिक पदार्थोंसे सम्पन्न, श्रीजीके धामोंमें मुख्य श्रीमिथिला-धामको मैं नमस्कार करता हूँ ॥११॥

श्रीमैथिलीप्रेमपरिप्लुतात्मभिः संशोभमानामखिलैर्निवासिभिः ।
माधुर्य्यवात्सल्यरसप्रवर्षिणीं श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१२॥

श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीके प्रेममें डूबे हुये हृदयवाले सभी पुर वासियोंसे पूर्ण शोभायमान, माधुर्य व वात्सल्यरसकी पर्याप्त वर्षा करनेवाली, श्रीकिशोरीजीके सभी धामोंमें प्रधान श्रीमिथिला-धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१२॥

अनन्तलोकालयलोकपप्रभुप्राणप्रियाया जनिभूमिमात्मदाम् ।
अयोनिजानुग्रहलभ्यदर्शनां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१३॥

अनन्त लोकालय (ब्रह्माण्डों) के लोकपाल-ब्रह्मादिकोंके प्रभु (श्रीरामभद्रजू) की श्री-प्राणप्यारीजूकी जन्मभूमि, आत्मा (भगवान् श्रीराम) को प्रदान करनेवाली, बिना किसी कारण द्वारा (स्वयं) प्रकट हुई श्रीजनकराज-दुलारीजूकी अनुग्रहसे सुलभ-दर्शनोंवाली, श्रीजीके धामोंमें मुख्य श्रीमिथिलाधामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१३॥

अमुख्यलोकालयविभूतिमूर्च्छितत्रिविष्टपाधीशविभूतिवल्लरीम् ।
पुरीप्रधानातिलकस्वरूपिणीं श्रीधाममुख्यं मिथिलां नमाम्यहम् ॥१४॥

अपने यहांके साधारण लोगोंके अल्प ऐश्वर्यसे इन्द्रके ऐश्वर्य रूपी लताको मूर्च्छित करने वाली, पुरियोंमें प्रधान मानी हुई श्रीअयोध्याजीका तिलक स्वरूप, श्रीजीके सभी धामोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिला-धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१४॥

शुभां भजत्संसृतिवन्धनच्छिदां दुरासदां सेव्यतमामभीष्टदाम् ।
श्रीमैथिलीपादयुगलाञ्छनाङ्कितां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१५॥

मङ्गलस्वरूपा, सेवन करने वालोंके जन्म-मरणके बन्धनोंको काट देने वाली तथा कठिनतासे प्राप्त होने वाली, सेवन करनेके लिये परम योग्य, इच्छित मनोरथोंको देने वाली, श्रीमिथिलेशराज दुलारीजी के श्रीचरण कमलोंके सुन्दर चिन्होंसे अङ्कित, श्रीजीके धामोंमें श्रेष्ठ, श्रीमिथिला-धामकोमैं प्रणाम करता हूँ॥१५।

विहारभूमिं वहुधाऽभिराजितां श्रीभूमिजाया निगमाभिशंसिताम् ।
संध्यायमानामृषिभिर्यतात्मभिः श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१६॥

वेदोंके द्वारा वर्णित हुई, अनेक प्रकारसे उत्कृष्टताको प्राप्त, श्रीभूमिसुताजूके विहार (बालक्रीड़ादि) करनेकी भूमि, एकाग्रमन वाले ऋषियों द्वारा ध्यानकी जाती हुई, श्रीजीके सभी धामोंमें उत्तम श्रीमिथिला-धामको मैं नमस्कार करता हूँ। १६॥

श्रीरामसन्तुष्टिकरप्रपत्तिदां प्रपन्नजीवाखिलभीतिहारिणीम् ।
निजस्वरूपानुभवप्रकाशिनीं श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१७॥

श्रीरामभद्रजूकी प्रसन्नता-कारक शरणागतिको प्रदान करने वाली व शरणागत जीवोंके सभी भयोंको हरण करने वाली, एवं अपने वास्तविक (आत्म) स्वरूपके अनुभवका प्रकाश करने वाली, श्रीजीके सभी धामोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिला-धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१७॥

योगक्रियाज्ञानविरागभक्तिभिः सर्वप्रधानां जितवादिमण्डलाम् ।
अशेषसंसारनिधिस्वरूपिणीं श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१८॥

योग, क्रिया, ज्ञान वैराग्य, भक्तिके द्वारा सभी धामोंसे श्रेष्ठ, वादी-मण्डलको परास्त करने वाली, समस्त कल्याणोंकी खान-स्वरूपा, श्रीजीके सभी धामोंमे उत्तम, श्रीमिथिलाधामको मैं प्रणाम करता हूँ ।१८॥

निवासमात्रेण कृतार्थकारिणीमयोगिनां स्वार्थधियां दुरात्मनाम् ।
नसर्गिकेलातनयारतिप्रदां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१९॥

दुष्ट मन तथा स्वार्थको ही बुद्धि रखने वाले भोग लोलुप जीवोंको भी, निवास मात्रसे कृतार्थ करने वाली एवं श्रीभूमि-कुमारीजूके प्रति स्वाभाविक प्रीतिको प्रदान करने वाली, श्रीजी के सभी धामोंमें प्रधान श्रीमिथिला-धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१९॥

अतुल्यसौभाग्यबलेन संयुतामतुल्यकीर्त्तिं हरिदम्बरावृताम् ।
हरेण भक्त्या परितोऽभिरक्षितां श्रीधामसुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥२०॥

न तौल सकने योग्य, सौभाग्य रूपी बलसे पूर्णतया युक्त, उपमा रहित कीर्त्तिवाली, हरे वस्त्रों से ढकी हुई तथा श्रद्धा पूर्वक भगवान् श्रीभोलेनाथजीके द्वारा चारों ओरसे सुरक्षित श्रीजीके सभी धामोंमें श्रेष्ठ, श्रीमिथिलाधामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२०॥

इमं ममोक्तं मिथिलास्तवं सदा पठन्ति शृण्वन्ति लिखन्ति ये जनाः ।
प्रसादलाभस्त्वचिरेण जायते तेषां धराया दुहितुः सदीप्सितः ॥२१॥

हे श्रीनारदजी ! मेरे कहे हुये इस श्रीमिथिलाजीके यश-कथनको जो प्राणी सदा पढ़ते सुनते, और लिखते हैं, उन्हें सन्तोंकी अभिलषित, श्रीभूमिसुताजीकी प्रसन्नता शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है ॥२१॥

श्रीसनन्दन उवाच।

परिपूतसुपावनमिष्टजलां बहुवर्णसरोजसमुल्लसिताम् ।
मणिबद्धमनोहरयुग्मतटीं प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२२॥

श्रीसनन्दन कुमारजी बोले: हे श्रीनारदजी ! जिनमें जल अत्यन्त पवित्र, मीठा तथा पापियोंको पवित्र करने वाला है अनेक प्रकारके कमलोंसे पूर्ण शोभायमान, मणियोंसे बँधे हुये दोनों मनोहर किनारों वाली, नदियों में परम श्रेष्ठ, श्रीकमलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२२॥

मुनिवृन्दनिषेवितकूलयुगां सुरनायकनाथमनोमहिताम् ।
मिथिलेशसुतापदपद्मरतां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२३॥

मुनि-वृन्दोंसे भली भाँति सेवित, दोनों किनारों वाली, देव-नायक इन्द्र, ब्रह्मादिकोंके नाथ भगवान् श्रीरामजीके मन द्वारा पूजित, श्रीमिथिलेशललीजूके श्रीचरण-कमलोंमें आसक्त हुई, सभी नदियोंमें परम श्रेष्ठा श्रीकमलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२३॥

कलिकल्मषपुञ्जविनाशकरीमखिलेप्सितदामतिपुण्यतमाम् ।
बहुकुञ्जनिकाययुतां शुभदां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२४॥

कलियुगके कल्मष (काम, क्रोध, लोभ, मोहादि) समूहोंको नाश करने वाली, भक्तोंके सभी प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली, अत्यन्त पवित्र, बहुतसे कुञ्ज वृन्दोंसे युक्त, मङ्गलोंको देने वाली, सभी नदियोंमें श्रेष्ठा श्रीकमलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२४॥

यमभीतिहरीं सुखपुञ्जकरीं भवपावनदर्शननामनतिम् ।
रघुवीरविदेहसुतामतिदां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२५॥

यमराजके द्वारा प्राप्त होनेवाले यातनादि-भयोंको दूर करनेवाली सुख-समूहको देनेवाली, तथा को पवित्र करनेवाले दर्शन नाम व प्रणाम वाली, एवं रघुवीर श्रीरामभद्रजू तथा श्रीविदेह-लीजू मयी अर्थात् श्रीसीताराममयी बुद्धिको प्रदान करनेवाली, नदियोंमें परम श्रेष्ठ श्रीकमला-ो मैं प्रणाम करता हूँ ॥२५॥

परिपूरितभक्तमनोरथगां कलिजह्नुसुतां मिथिलाभिगताम् ।
मिथिलापुरवासिगणैर्महितां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२६॥

भक्तोंके मनोरथको परिपूर्ण करने वाली कलियुगकी गङ्गा श्रीमिथिलाजीमें प्राप्त, श्रीमिथिला ासियोंसे पूजित, नदियोंमें परम श्रेष्ठ श्रीकमलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२६॥

य इमं प्रतिवारमलोलमतिः पठति स्तवमादरतो मनुजः ।
समेति विदेहसुतासङ्घ्रिरतिं मुन एतदृतं मम विद्धि वचः ॥२७॥

जो निश्चल-बुद्धिवाले प्राणी, श्रीकमलाजीकी इस स्तुतिको आदर-पूर्वक प्रतिदिन पाठ करता ह श्रीविदेहनन्दिनीजूके श्रीचरण-कमलोंके प्रेमको भली भाँतिसे प्राप्त होता है । हे मुने ! मेरे वचनको आप सत्य जानिये अर्थात् केवल प्रशंसा ही मात्र न समझिये ॥२७॥

श्रीसनातन उवाच ।

सर्वलोकवरमङ्गलप्रदा मङ्गलैकशुचिपात्रमात्मदा ।
मङ्गलैकजननी सतां मता वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥२८॥

सभी लोगोंको उत्तम मङ्गल प्रदान करने वाली तथा समस्त मङ्गलोंकी सर्वश्रेष्ठ, पवित्र-पात्र सकोंको आत्मा (भगवान् श्रीरामजी) को ही दे डालने वाली, समस्त मङ्गलोंमें अद्वितीय पमा रहित) मङ्गल स्वरूपा श्रीसाकेत-विहारिणीजीको जन्म देने वाली, सन्तों द्वारा बहुमान्य नी हुई श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२८॥

श्रीविदेहनृपमौलिपालिता क्षालिताघनिचयानघस्मृतिः ।
श्रीपदारविन्दाङ्कलाञ्छिता वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥२९॥

श्रीविदेह-वंशके नरेशोंमें शिरोमणि श्रीसीरध्वज महाराज द्वारा पालित, पुण्यमय स्मरण मात्र ही पाप समूहोंको धो देने वाली, श्रीजीके चरणारविन्दके चिन्हों से चिन्हित, श्रीमिथिलाजीकी मिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२९॥

अतुल्यसौभाग्यवलेन संयुतामतुल्यकीर्त्तिं हरिदम्बरावृताम् ।
हरेण भक्त्या परितोऽभिरक्षितां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥२०॥

न तौल सकने योग्य, सौभाग्य रूपी बलसे पूर्णतया युक्त, उपमा रहित कीर्त्तिवाली, हरे वस्त्रों से ढकी हुई तथा श्रद्धा पूर्वक भगवान् श्रीभोलेनाथजीके द्वारा चारों ओरसे सुरक्षित श्रीजीके सभी धामोंमें श्रेष्ठ, श्रीमिथिलाधामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२०॥

इमं ममोक्तं मिथिलास्तवं सदा पठन्ति शृण्वन्ति लिखन्ति ये जनाः ।
प्रसादलाभस्त्वचिरेण जायते तेषां धराया दुहितुः सदीप्सितः ॥२१॥

हे श्रीनारदजी ! मेरे कहे हुये इस श्रीमिथिलाजीके यश कथनको जो प्राणी सदा पढ़ते सुनते, और लिखते हैं, उन्ह सन्तोंको अभिलषित, श्रीभूमिसुताजीकी प्रसन्नता शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है ॥२१॥

श्रीसनन्दन उवाच।

परिपूतसुपावनमिष्टजलां बहुवर्णसरोजसमुल्लसिताम् ।
मणिबद्धमनोहरयुग्मतटीं प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२२॥

श्रीसनन्दन कुमारजी बोलेः हे श्रीनारदजी ! जिनमें जल अत्यन्त पवित्र, मीठा तथा पापियोंको पवित्र करने वाला है अनेक प्रकारके कमलोंसे पूर्ण शोभायमान, मणियोंसे बँधे हुये दोनों मनोहर किनारों वाली, नदियों म परम श्रेष्ठ, श्रीकमलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२२॥

मुनिवृन्दनिषेवितकूलयुगां सुरनायकनाथमनोमहिताम् ।
मिथिलेशसुतापदपद्मरतां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२३॥

मुनि-वृन्दोंसे भली भाँति सेवित, दोनों किनारों वाली, देव-नायक इन्द्र, ब्रह्मादिकोंके नाथ भगवान् श्रीरामजूके मन द्वारा पूजित, श्रीमिथिलेशललीजूके श्रीचरण कमलोंमें आसक्त हुई, सभी नदियोंमें परम श्रेष्ठ श्रीकमलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२३॥

कलिकल्मषपुञ्जविनाशकरीमखिलेप्सितदामतिपुण्यतमाम् ।
बहुकुञ्जनिकाययुतां शुभदां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२४॥

कलियुगके कल्मष (काम, क्रोध, लोभ, मोहादि) समूहोंको नाश करने वाली, भक्तोंके सभी प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली, अत्यन्त पवित्र, बहुतसे कुञ्ज वृन्दोंसे युक्त, मङ्गलोंको देने वाली, सभी नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीकमलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२४॥

यमभीतिहरीं सुखपुञ्जकरीं भवपावनदर्शननामनतिम् ।
रघुवीरविदेहसुतामतिदां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२५॥

यमराजके द्वारा प्राप्त होनेवाले यातनादि-भयोंको दूर करनेवाली सुख समूहको देनेवाली, तथा जन्मको पवित्र करनेवाले दर्शन नाम व प्रणाम वाली, एवं रघुवीर श्रीरामभद्रजू तथा श्रीविदेहनन्दिनीजू मयी अर्थात् श्रीसीताराममयी बुद्धिको प्रदान करनेवाली, नदियोंमें परम श्रेष्ठ श्रीकमलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२५॥

परिपूरितभक्तमनोरथकां कलिजह्नसुतां मिथिलाभिगताम् ।
मिथिलापुरवासिगणैर्महितां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२६॥

भक्तोंके मनोरथको परिपूर्ण करने वाली कलियुगकी गङ्गा श्रीमिथिलाजीमें प्राप्त, श्रीमिथिला निवासियोंसे पूजित, नदियोंमें परम श्रेष्ठ श्रीकमलाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२६॥

य इमं प्रतिवारमलोलमतिः पठति स्तवमादरतो मनुजः ।
समेति विदेहसुतासङ्घ्रिरतिं मुने एतदृतं मम विद्धि वचः ॥२७॥

जो निश्चलबुद्धिवाले प्राणी, श्रीकमलाजीकी इस स्तुतिको आदर-पूर्वक प्रतिदिन पाठ करता है वह श्रीविदेह नन्दिनीजूके श्रीचरण-कमलोंके प्रेमको भली भाँतिसे प्राप्त होता है। हे मुने! मेरे इस वचनको आप सत्य जानिये अर्थात् केवल प्रशंसा ही मात्र न समझिये ॥२७॥

श्रीसनातन उवाच।

सर्वलोकवरमङ्गलप्रदा मङ्गलैकशुचिपात्रमात्मदा ।
मङ्गलैकजननी सतां मता वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥२८॥

सभी लोगोंको उत्तम मङ्गल प्रदान करने वाली तथा समस्त मङ्गलोंकी सर्व श्रेष्ठ, पवित्र पात्र उपासकोंको आत्मा (भगवान् श्रीरामजी) को ही द इालने वाली, समस्त मङ्गलोंमें अद्वितीय (उपमा रहित) मङ्गल स्वरूपा श्रीसाकेत विहारिणीजीको जन्म देने वाली, सन्तों द्वारा बहुमान्य समझी हुई श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२८॥

श्रीविदेहनृपमौलिपालिता क्षालिताघनिचयानघस्मृतिः ।
श्रीपदारविन्दाङ्कलाञ्छिता वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥२९॥

श्रीविदेह वंशके नरेशोंमें शिरोमणि श्रीसीरध्वज महाराज द्वारा पालित, पुण्यमय स्मरण मात्र से ही पाप समूहोंको धो देने वाली, श्रीजीके चरणारविन्दके चिन्होंसे चिन्हित, श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२९॥

भास्वदद्रिवननिम्नगाश्रिता कूपवापिसरसां गणैर्युता ।
वाटिकोपवनपङ्क्तिसङ्कुला वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३०॥

प्रकाशमान पर्वत, वन, नदियोंसे विभूषित, कुआं, बावड़ी, सर (तालाव) वृन्दोंसे युक्त, वाटिका, उपवनोंकी पङ्क्तिसे पूर्ण, श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३०॥

पञ्चसप्तनवखण्डमन्दिरश्रेणिभिश्च परितो विराजिता ।
द्योतयन्त्यमलरोचिषा जगद् वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३१॥

पाञ्च, सात, नव आदि खण्डों वाले मन्दिरोंकी पङ्क्तियों द्वारा चारों ओरसे सुशोभित, अपनी निर्मल कान्तिसे सारे जगत्को प्रकाशित करने वाली श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥

कोमला कमलजादिवन्दिता सेविता त्रिदशपुङ्गवैः सदा ।
भाविता परमहंससत्तमैर्वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३२॥

जो अत्यन्त कोमल, ब्रह्मादि देवताओंसे प्रणामकी हुई, देव श्रेष्ठों द्वारा सेवित तथा परमहंस शिरोमणियों द्वारा ध्यानकी जाती है, उस श्रीमिथिला भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३२॥

मैथिलीरघुवरस्वरूपिभिर्वासिभिर्भृशमतीवशोभिता ।
चिन्मयी निरुपमा गतक्लमा वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३३॥

श्रीसीतारामजीके स्वरूपमय-निवासियों द्वारा अत्यन्त सुशोभित, चैतन्य (ब्रह्म) मयी, उपमा व श्रमसे रहित, श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३३॥

श्रीविदेहतनयानुरक्तिदा निश्चला परमपावनाकरी ।
सर्वदिव्यरचनासमन्विता वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३४॥

श्रीविदेह राज कुमारीजूमें अत्यन्त प्रेम प्रदान करने वाली, सदा अचल, पवित्र करने वालों-की सबसे उत्तम खान स्वरूपा, सभी दिव्य (अप्राकृत) रचनासे पूर्ण युक्त, आज श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३४॥

शंस्मृतिः परमपुण्यदर्शना पापिपुञ्जशरणं श्रुतीडिता ।
स्वर्निवासिमृगणीयधूलिका वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३५॥

जिसका स्मरण मङ्गलमय, दर्शन परमपुण्यको देने वाला, धूलि देवताओंके द्वारा खोजने योग्य है, पापियोंकी रक्षा करने वाली, तथा वेदों द्वारा प्रशंसित उस श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३५॥

स्तोत्रमेतदृषिवर्य ! योऽन्वहं श्रद्धया पठति वा शृणोति वै ।
याति श्रीजनकजापदाम्बुजं सोऽञ्जसा मदुदितं शुभावहम् ॥३६॥

हे ऋषियोंमें श्रेष्ठ श्रीनारदजी ! मेरे कहे हुये मङ्गलदायक इस स्तोत्रको जो कोई प्रति दिन श्रद्धापूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है वह अनायास ही श्रीजनकलल्लीजूके श्रीचरण कमलोंको प्राप्त होता है, अर्थात् जो इसे नित्य प्रति पढ़ेगा या सुनेगा उसे विना परिश्रमके ही श्रीजनक-दुलारीजूके श्रीचरण-कमलोंकी प्राप्ति होगी ॥३६॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

ओमादिसीतां जनकप्रसूतां सखीपरीतां त्रिगुणैरतीताम् ।
श्रुत्यन्तगीतां सुमुखीं विनीतां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥३७॥

श्रीसनत्कुमारजी बोले:—हे श्रीनारदजी ! जो ॐकार स्वरूपा, आदि (साकेतविहारिणी) श्रीसीताजी श्रीजनकजी-महाराजके पुत्रीभावको प्राप्त हो सखियोंसे युक्त तीनो गुणोंसे परे हैं, और जो वेदान्त (उपनिषदोंम) गाई हुई, नम्रता-युक्त, सुन्दर मुखवाली हैं, उन श्रीरामवल्लभाजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ॥३७॥

चन्द्रोपमास्यां शरदिन्दुहास्यां दुरापदास्यां कृपया प्रकाश्याम् ।
सिद्धै रुपास्यां नियमाप्रकाश्यां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥३८॥

चन्द्रमाके समान परम आह्लादकारी जिनका श्रीमुखारविन्द व शरद् ऋतुके पूर्ण-चन्द्रमाके सदृश जिनकी मुसुकान तथा दुर्लभ दास्यभाव है। जो अपनी कृपासे ही प्रकाशमे आनेयोग्य, सिद्धोंके द्वारा उपासना योग्य और किन्ही भी साधनोंसे बन्धनम आकर प्रकाशमें न आसकने वाली हैं, उन श्रीरामकान्ताजीकी शरणमें मैं प्राप्त हूँ ॥३८॥

भक्तेष्टदात्रीं करुणाविधात्रीं भावानुयात्रीं जनगीतगात्रीम् ।
विश्वैकशास्त्रीं कमलाम्बुपात्रीं श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥३९॥

जो भक्तोंके अभिलषित मनोरथोंको देनेवाली तथा प्राणीमात्र पर कृपा करनेवाली हैं, जो भक्तोंके भावानुसार उनसे व्यवहार करनेवाली व भक्तोंके स्तोत्रोंको गानेवाली हैं, जो समस्त विश्वकी उपमारहित (सर्वश्रेष्ठ एकमात्र) शासन करनेवाली एवं श्रीकमलाजीके जलको पीनेवाली हैं उन श्रीरामप्रियाजूके शरणम मैं हूं ॥३९॥

लोकैकनेत्रीं जनदुःखभेत्त्रीं श्रीखण्डलेप्त्रीं शुचिभावसेक्त्रीम् ।
अन्यायजेत्रीं स्वपथप्रणेत्रीं श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥४०॥

जो समस्त लोकोंकी सर्वोत्कृष्ट सञ्चालिका व आश्रित भक्तोंके दुखोंका नाश करनेवाली, तथा मस्तकादिमें श्रीखण्ड चन्दनका लेप करनेवाली एवं भक्तोंके पवित्र भावोंका जो सिंचन, श्रुतिशास्त्र प्रतिकूल अधर्मका पराजय, तथा अपने श्रुतिस्मृति-विहित धर्मका विशेष कर सञ्चालन करनेवाली हैं, उन श्रीरामकान्ताजूकी शरणमें मैं प्राप्त हूँ । ४०॥

लोकाभिरामां परिपूर्णकामां कृपाविरामां जितमारवामाम् ।
गुणैर्ललामां कृतभक्तकामां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥४१॥

जो समस्त लोकोंको सुख व स्वाश्रित भक्तोंको अपनी कृपाद्वारा विश्राम प्रदान करनेवाली हैं, जो अपने सौन्दर्यसे रतिको विजय करनेवाली तथा अपने वात्सल्य सौशील्य, कारुण्यादि दिव्यगुणों द्वारा जो परमसुन्दरी हैं, भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली उन श्रीरामवल्लभाजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ॥४१॥

गतावसानां शरणं जनानां निजाश्रितानां च्यपितोरुमानाम् ।
शक्तिप्रजानां प्रभवाममानां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥४२॥

जिनके यहाँ अन्तका ही अन्त है अर्थात् जिनका अन्त नहीं है, जो भक्तोंकी रक्षा करने वाली तथा अपने आश्रितोंके अभिमानको दूर करनेवाली समस्त शक्तियोंको उत्पन्न करनेवाली, मानकी इच्छासे रहित उन श्रीरामवल्लभाजूकी शरणमें मैं प्राप्त हूँ ॥४२॥

विदेहकन्यां जगदेकधन्यां स्थितां विशन्यां निरतां जनन्याम् ।
नित्यामनन्यां प्रभुणा वरेण्यां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥४३॥

श्रीविदेहमहाराजके पूर्व तपके प्रभावसे पुत्रीभावको प्राप्त, जगत्में सर्वोपरि धन्यवादके योग्य, कुर्सी पर विराजी हुई, श्रीअम्बाजीकी प्रसन्नतामें तत्पर, सदा एकरस रहनेवाली प्रभु श्रीरामजीके साथ एक (अभिन्न), सबसे श्रेष्ठ, श्रीरामवल्लभाजीकी शरणमें मैं प्राप्त हूँ ॥४३॥

दयार्द्रपन्थां कृतभक्तरक्षां प्रेमैकदक्षां शुचिपथ्यशिक्षाम् ।
श्रेयः समीक्षां ग्रहणीयदीक्षां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥४४॥

जिनका पक्ष दयासे युक्त है, भक्तोंकी जो रक्षा करनेवाली, प्रेमके रहस्यको समझनेमें कुशला

रहित, चलने योग्य पवित्र शिखावाली हैं, तथा जिनका विचार व चिंतन परम मङ्गल-स्वरूप और दीक्षा (उपदेश) ग्रहण करने योग्य है उन श्रीरामवल्लभाजूकी शरणमें मैं प्राप्त हूँ ॥४४॥

श्रीरामकान्ताष्टकमेतदन्वहं पठन्ति ये संयतशुद्धचेतसः।
पापापहं प्रीतिकरं शुभावहं व्रजन्ति कामान् सकलांस्त ईप्सितान् ॥४॥

'श्रीरामवल्लभाजूके मङ्गलमय, प्रसन्नता कारक, पापनाशक इस अष्टक का जो नित्य-प्रति पूर्ण एकाग्र व शुद्धचित्त हो पाठ करते हैं वे सभी अभिलषित मनोरथोंको प्राप्त होते हैं ॥४५॥

श्रीनारद उवाच।

नतोऽस्मि नित्यं जनकात्मजायाः क्रीडासहायान्निमिवंशिबालान्।
स्मराभरूपान्नलिनीदलाक्षाञ्छ्रीमैथिलीप्रेमरतान् नगर्याः ॥४६॥

श्रीनारदजी बोले:—श्रीजनकललीजूकी बालक्रीडामें सहायता करनेवाले, कामदेवके समान सुन्दर, कमलदलके सदृश नेत्र वाले श्रीमिथिलेश ललीजूके प्रेममें आसक्त श्रीमिथिलापुरीके निमि-वंशी बालकोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४६॥

श्रीसनक उवाच।

तुच्छीकृतानङ्गसहस्रजाया बिम्बाननाः पद्मपलाशनेत्राः।
दास्येऽनुरक्ताः प्रणमामि कन्याः श्रीमैथिलप्रेमरता पुरोऽस्याः ॥४७॥

श्रीसनकजी महाराज बोले:—अपनी शोभासे हजारों रतियोंको तुच्छ करने वाली, चन्द्रमाके समान शोभायमान मुख व कमल-दलके सदृश विशाल नेत्र वाली, दास्य-भावमें आसक्त, श्रीमिथिलेश ललीजूके प्रेममें तत्पर, इस पुरीकी समस्त कन्याओंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४७॥

श्रीसनन्दन उवाच।

नमामि पुर्याः खलु सर्ववर्णाश्रमस्थनारीनरनीरजाङ्घ्रीन्।
पुण्याकरान्पुण्यचयाभिवीक्ष्यान्छ्रीमैथिलीभक्तिविभूतिदोहान् ॥४८॥

श्रीसनन्दनजी बोले:—श्रीमिथिलापुरीके सभी वर्ण व आश्रमोंमें रहने वाले स्त्री पुरुषोंके कमलके समान कोमल, पुण्यकी खानस्वरूप, भक्ति रूपी सम्पत्ति को पूर्ण करने वाले, पुण्य समूहके द्वारा दर्शन पाने योग्य श्रीचरणों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४८॥

श्रीसनातन उवाच।

नमाम्यशेषान् परिदृश्यमानानदृश्यमानञ्जगरस्थ जीवान्।
कृपावतीर्णांस्तु विदेहजायाः सौभाग्यसंस्पर्द्धिसमस्तलोकान् ॥४९॥

दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले श्रीविदेहनन्दिनीजूके कृपासे उत्पन्न अपने सौभाग्यसे, सभी लोकों को डाह युक्त करने वाले सभी पुरवासी जीवों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४६॥

श्रीसनत्कुमार उवाच।

विदेहवंशाम्बुरुहोष्णरश्मिं श्रीजानकीतातमुदारभावम्।
विवेकपाथोनिधिपूर्णचन्द्रं नमामि भक्त्या मिथिलामहेन्द्रम् ॥५०॥

श्रीसनत्कुमारजी बोलेः—श्रीविदेहवंश रूपी कमल को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्यके समान, श्रीजनकललीजूके पिता, उदार भाव सम्पन्न, ज्ञान रूपी समुद्र को पूर्णचन्द्रमाके सदृश आह्लाद द्वारा तरङ्ग युक्त करने वाले, श्रीमिथिलाजीके सर्व श्रेष्ठ राजा श्रीमिथिलेशजी को मैं प्रणाम करता हूँ ५०

श्रीनारद उवाच।

वात्सल्यवारांनिधिमग्नचित्तां श्रीमैथिलीमातरमम्बुजाक्षीम्।
देवाङ्गनावन्दितपादपद्मां नमामि सीरध्वजपट्टकान्ताम् ॥५१॥

श्रीनारदजी बोलेः—वात्सल्य भावरूपी समुद्रमें डूबी हुई चित्तवाली, कमल लोचना, देवताओंसे प्रणाम किये हुये श्रीचरण-कमलोंसे युक्त श्रीमिथिलेशललीजूकी अम्बा, श्रीसीरध्वज-महाराजकी पटरानी, श्रीसुनयनामहारानीजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५१॥

श्रीसनक उवाच।

अयोनिजाबालविहारसक्ता हताशुभा मङ्गलपुञ्जरूपाः।
विदेहभूपान्वयसंप्रविष्टा नतोऽस्मि नित्यं ललना ललामाः ॥५२॥

श्रीसनकजी-महाराज बोलेः—बिना किसी कारणसे (स्वयं) प्रकट हुई श्रीललीजीके बाल्यावस्थाकी क्रीडाओंमें आसक्त, सभी नष्ट हुये अशुभों (पापों) वाली, मङ्गल राशि-स्वरूपा श्रीविदेह-महाराजके कुलमें प्रवेशको प्राप्त हुई, सभी सुन्दर सौभाग्यवती, स्त्रियों (रानियों) को मैं प्रणाम करता हूँ ॥५२॥

श्रीसनन्दन उवाच।

श्रीमैथिलेन्द्रस्य समस्तबन्धून् नमामि वात्सल्यरसप्रधानान्।
उपार्जितश्रीक्षितिजेक्षणार्थान् पुण्यस्तवान् प्राणभृतां वरिष्ठान् ॥५३॥

श्रीसनन्दनजी बोलेः—श्रीभूमि-सुताजूके दर्शनोंका लाभ प्राप्त, वात्सल्य रस प्रधान, पवित्र स्तुति वाले, प्राणधारियोंमें परम श्रेष्ठ, श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५३॥

श्रीसनातन उवाच ।

श्रीजानकीरूपपयोधिमीनान् निकृन्तिताशाद्रुमकृत्स्नमूलान् ।
तन्नामसङ्कीर्त्तनलुब्धजिह्वान् नतोऽस्मि धामैकनिवासिभक्तान् ॥५४॥

श्रीसनातनजी बोलेः-जिनके इच्छा रूपी वृक्षकी सभी जड़ें कट चुकी हैं और जिह्वा नाम सङ्कीर्त्तन करनेके लिये सदा ललचाती रहती है, उन श्रीजनकललीजूके सुन्दरस्वरूप रूपी समुद्रमें मछलीके समान आनन्द मग्न, धाम-निवासी श्रेष्ठ भक्तोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५४॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

श्रीमैथिलीदर्शनलब्धितृष्णात्यक्ताखिलैश्वर्यपदाधिकारान् ।
अमानिनो भक्तिविशुद्धचित्तान्नतोऽस्मि तद्भावनया प्रमत्तान् ॥५५॥

श्रीसनत्कुमारजी बोलेः-जिन सौभाग्यशालियोंने श्रीमिथिलेशललीजूके दर्शनोंकी प्राप्तिकी इच्छासे अपने ऐश्वर्यमय पदोंको परित्याग किया है, अभिमान रहित, भक्तिसे पूर्ण मलरहित चित्त, तथा श्रीललीजूकी भावनासे मस्त रहने वाले उन भक्तोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५५॥

श्रीनारद उवाच ।

नतोऽहं सदा श्रीधरानाथपुत्रीं महामोदरूपां प्रपन्नार्त्तगोप्त्रीम् ।
कृपाशीलवात्सल्यगाम्भीर्यमूर्त्तिं क्रियाज्ञानवैराग्ययोगादिपूर्त्तिम् ॥५६॥

श्रीनारदजी बोलेः-जो महाआनन्दकी स्वरूप, शरणागत, आर्त्त-भक्तोंकी रक्षा करने वाली कृपा, शील, वात्सल्य व गम्भीरताकी मूर्त्ति एवं क्रिया, ज्ञान वैराग्य योग आदि विविध प्रकारके साधनोंकी पूर्त्ति स्वरूपा हैं, उन श्रीपृथिवीजीके पति श्रीसीरध्वज महाराजकी श्रीललीजीको मैं सदा प्रणाम करताहूँ ॥५६॥

शरण्यां वरेण्यां त्र्यधीशैरुपास्यामजां निर्विकल्पां निरीहां स्मितास्याम् ।
चिदानन्दरूपां प्रकृष्टां प्रगल्भां भजे मैथिलीं चारुविद्युच्चयाभाम् ॥५७॥

अनन्त-ब्रह्माण्डोंके सभी जीवोंकी रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ, सबसे श्रेष्ठ, ब्रह्मा, विष्णु, महेशके लिये भी उपासना करनेको आवश्यक, जन्मसे रहित, कल्पनासे परे, सम्पूर्ण इच्छाओंसे रहित, मुसुकान युक्त मुख तथा चैतन्य व आनन्दमयस्वरूप वाली, सभीसे श्रेष्ठ, अपनी प्रतिज्ञामें अटल, सुन्दर बिजुली समूहके समान कान्तिवाली श्रीविदेहराजनन्दिनीजूका मैं भजन करता हूँ ॥५७॥

शरच्चन्द्रवक्त्रां लसत्कञ्जनेत्रां मनोहारिहास्यामुपास्यैरुपास्याम् ।
अमोघानुरक्तिं महापुण्यकीर्तिं सदा चिन्तये मैथिलीं चित्रगुप्तिम् ॥५८॥

जिनका श्रीमुखारविन्द शरदृतुके चन्द्रमाके समान प्रकाश युक्त आह्लादकारी है, कमलके सदृश सुशोभित दोनों आँखे व, मनको हरण करने वाली जिनकी मुसुकान हैं, उपासना-योग्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, शक्ति, गणेशादिकोंके लिये भी जिनकी उपासना करना आवश्यक है, जिनके प्रति अनुराग कभी भी विफल नहीं होता, जीवोंकी रक्षाका उपाय जिनका विलक्षण (आश्चर्य-मय) है उन महापुण्यमयी-कीर्तिवाली श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूका मैं निरन्तर चिन्तन करता हूं ॥५८॥

भवार्थप्रदात्रीं महाशंविधात्रीं मनोज्ञस्वभावां महोदारभावाम् ।
भवस्वप्नहर्त्रीं जगत्क्षेमकर्त्रीं भजे जानकीं ब्रह्म वेदान्तवेत्त्रीम् ॥५९॥

जो भक्तोंको जन्मका अर्थ परमात्मतत्त्व-प्राप्तिको प्रदान करने व महान् कल्याण करने वाली मनोहर स्वभावसे युक्त हैं, जिनके प्रति किया हुआ भाव भक्तोंको सभी प्रकारकी इच्छाओंको प्रदान करनेमें अत्यन्त उदार है, जो संसार प्रपञ्च या मैं, मेरा आदि भावना रूपी स्वप्नको हरण तथा चर-अचर सभी प्राणियोंका कल्याण करने वाली हैं, उन वेदान्तको पूर्णतया समझने वाली ब्रह्म-स्वरूपा श्रीजनकनन्दिनीजूका मैं भजन करता हूँ ॥५९॥

अनुच्छिष्टभक्त्या प्रसन्नां प्रणत्या दुरापां प्रकृत्या सदोच्छिष्टभक्त्या ।
अनाथाश्रयेशां त्र्यधीशां परेशां प्रपद्ये धरानन्दिनीमात्मनेशाम् ॥६०॥

जो अनूठी (अनन्य) भक्तिके द्वारा केवल प्रणाम मात्रसे प्रसन्न हो जाती हैं परन्तु जूठी (व्यभिचारिणी) भक्तिसे सदा स्वभावसे ही दुर्लभ रहती हैं, अनाथोंके रक्षा स्थानों (ब्रह्मा विष्णु-महेश आदिकों) को अपने शासन में रखने वाली तीनों लोकोंकी स्वामिनी, सभी उत्कृष्ट शक्ति यों को अपने अधीन रखने वाली, चर, अचर प्राणियों को अन्तर्यामिनी रूपसे शासन करने वाली, तथा पृथिवी देवी को आनन्द-प्रदान करने वाली श्रीललीजूकी मैं हृदयसे शरणमें प्राप्त हूँ ॥६०॥

कृतज्ञां गुणज्ञां मनोभावविज्ञां कृपासिन्धुरूपां महाशक्तिभूपाम् ।
अखण्डामभेयामतर्क्यामजेयां भजे जानकीं योगिभिर्नित्यगेयाम् ॥६१॥

जो जीवोंके एक भी उपकारको कभी नहीं भूलतीं, तथा गुणोंको समझने व मनके भावोंको जाननेवाली, कृपासिन्धु भगवान् श्रीरामजीकी स्वरूप, महाशक्तियोंकी रानी एवं सब प्रकारसे पूर्ण,

नाम रहित, कल्पनासे परे, जीतनेमें अशक्य, योगियोंके द्वारा नित्य ही गान करनेके योग्य हैं, उन श्रीजनकराज-दुलारीजूका मैं भजन करता हूँ ॥६१॥

सखीवृन्दयुक्तां प्रपन्नानुरक्तां सुवर्णाभवर्णां सताटङ्ककर्णाम् ।
समालोकयन्तीं मनोह्लादयन्तीं भजे भूमिजामम्बुजं भ्रामयन्तीम् ॥६२॥

[सखियोंसे युक्त, अपने आश्रितों पर अनुराग रखनेवाली, सोनेके समान गौर वर्ण, कानोंमें कर्णफूल धारण किये, मनको आह्लादित करती तथा सम्यक् प्रकारसे अवलोकन करती हुईं, अपने करकमलोंमें कमलके पुष्पको घुमाती हुईं, भूमिसुता श्रीललीजूका मैं भजन करता हूँ ॥६२॥

महाभावगम्यां महद्भिः प्रणम्यां महार्हासनस्थां कृताहेयसंस्थाम् ।
धृताम्भोजमालां मनोहारिभालां भजे भूमिजां भव्यरूपां सुबालाम् ॥६३॥

महाउत्कृष्ट (तदाकार) भावसे प्राप्त होनेमें सुलभ, महात्माओंके द्वारा प्रणाम करने योग्य बहुमूल्य आसन पर विराजमान, भक्तोंकी कृतिको कभी न भूलनेवाली, कमलकी मालाओंको धारण की हुई, मनोहर मस्तक और भावना करने योग्य स्वरूप तथा सुन्दर बाल्यावस्था-सम्पन्ना श्रीललीजीका मैं भजन करता हूँ ॥६३॥

पठन्तीह ये स्तोत्रमेतन्मयोक्तं नराः श्रद्धया प्रत्यहं युक्तचित्ताः ।
ददाति श्रियं पुत्रपौत्रांस्तथान्ते धरानन्दिनी धाम नित्यञ्च तेभ्यः ॥६४॥

मेरे इस कहे हुये स्तोत्रका जो श्रद्धा पूर्वक नित्य-प्रति एकाग्रचित्त हो पाठ करते हैं उन्हें श्रीभूमिनन्दिनीजी धन, पुत्र, पौत्र तथा अन्तमें नित्य धामको प्रदान करती हैं ॥६४॥

श्रीसनक उवाच ।

कदा वा ऽहं दिव्ये महति मिथिलानाथनगरे
समाशृण्वन् पुण्यं पथि पथि यशः पावनपरम् ।
मुदा प्रेमोन्मत्तो जनकदुहितुर्लोकगदितं
निरस्ताशेषाशः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥६५॥

श्रीसनकजी बोले:—कब मैं श्रीमिथिलेशजी-महाराजके विशाल नगरमें सम्पूर्ण तृष्णाओंसे रहित हो, पुरवासियोंके द्वारा कहे हुये पवित्रकारी सभी साधनोंमें श्रेष्ठ श्रीजनकराज दुलारीजूके मङ्गलमय यशको गली गलीमें प्रेमपागल हो आनन्द-पूर्वक भली प्रकारसे श्रवण करता हुआ, मैं अपने जन्म की सुख पूर्वक सफलता प्राप्त करूँगा ॥ ६५ ॥

श्रीसनन्दन उवाच ।

कदा भूत्वा कीरोऽनघसुनयनाङ्के स्थितवतीं
जितास्येन्दुव्रातां क्रतुधरणिजातां छविनिधिम् ।
मुदा भूयो दृष्ट्वा "कथय सखि ! सीतेति" निगदन्
द्रुमाट्टस्तम्भस्थः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥६६॥

श्रीसनन्दनजी बोले ! कब मैं सुग्गा (तोता) होकर श्रीसुनयना अम्बाजीकी पवित्र गोदमें बैठी, अपने मुखकी छविसे चन्द्र समूहोंकी जीतने वाली, यज्ञ भूमिसे प्रकट हुई श्रीजनकदुलारीजू का बारम्बार दर्शन करके वृक्ष, अटारी, व खम्भों पर बैठा हुआ सखि ! सीता कहो, सखि ! सीता कहो" ऐसा कहता हुआ सुख पूर्वक अपने जीवनकी सफलता प्राप्त करूँगा ॥६६॥

श्रीसनातन उवाच ।

कदा भिक्षावृत्तिर्जनकपुरवीथीषु विचरन्
सखीभिः क्रीडन्तीं शुचिमतिरनेकस्थलगताम् ।
प्रपश्यन्निन्द्वास्यां विजितसुषमासारजलधिं
धरापुत्रीं मौनी स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥६७॥

कब भिक्षावृत्तिको धारण किये हुये श्रीजनकपुरकी गलियोंमें विचरते हुये, अनेक स्थलोंमें पधारी हुई सखियोंके साथ, अनेक प्रकारकी भक्त-सुखद लीलाओं को करती हुई, चन्द्रमाके सदृश प्रकाशमान, आह्लादकारी मुख वाली, निरुपम सौन्दर्य सिन्धुको अपने रूप माधुर्यसे जीतने वाली, श्रीभूमि-नन्दिनीजूका दर्शन करते हुये, मैं पवित्र बुद्धि, आनन्दातिरेकसे मौन-व्रतको धारण किये हुये, सुखपूर्वक कब अपने जीवनकी सफलता प्राप्त करूँगा ॥६७।

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

कदा हस्तीभूत्वा जनकतनयाम्भोजपदयो-
र्मनोज्ञाङ्कैर्युक्ते परमरमणीयेऽवनितले ।
क्षिपन्स्नात्वा धूलिं निजवपुषि तद्ध्यानिरतो
रजः संजुष्टाङ्गः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥६८॥

श्रीसनत्कुमारजी बोलेः—कब हाथी होकर श्रीजनक ललीजूके कमल-कोमल श्रीचरणोंके मनोहर चिह्नोंसे युक्त, परम सुन्दर भूमितलमें नहाकर भी शरीर पर धूलि फेंकता हुआ श्रीललीजूके ध्यानमें तत्पर रहकर धूलिसे पूर्ण रंजित अङ्गों वाला मैं सुखपूर्वक अपने जीवनकी सफलताको प्राप्त करूँगा ॥

श्रीनारद उवाच ।

कदा वैणी भूत्वा जनकनृपगेहस्य कृतिनी
तृणाहारा शश्वत्प्रणयनिपुणोद्विग्ननयना ।
बृहन्नेत्रा प्राप्तक्षितिपतिसुतादर्शनविधि-
स्तदीया तच्चित्ता स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥६९॥

श्रीनारदजी बोले:—कब श्रीजनकजी महाराजके महलकी सौभाग्यशालिनी हरिनी होकर तृणका आहार करनेवाली, प्रेम परायणा, दर्शनों के लिये चञ्चल हृदय, बडी बडी आँखवाली श्रीललीजूके दर्शनों के सौभाग्यको प्राप्त हुई मै उन्हीमें अपने चित्तको लगाकर अनायास ही अपने जीवनको सफल करूँगा ॥६९॥

श्रीसनक उवाच ।

कदा हेमारण्ये विमलविरजापुण्यपुलिने
चरन्तीं श्रीसीतां स्वसृगणपरीतां स्मितमुखीम् ।
भ्रमद्धस्ताम्भोजां मृदुलतरपाथोजचरणां
निरीक्ष्य क्षुद्रात्मा स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥७०॥

श्रीसनकजी महाराज बोले:—कब श्रीकञ्चन वनमें स्वच्छ श्रीविरजाजीके पवित्र किनारे पर मन्द मुसुकान युक्त मुख, व कमलके समान अतीव कोमल श्रीचरणों वाली, हाथमें कमल पुष्पको घुमाती हुई, अपनी सखियों सहित विचरती (टहलती) हुई श्रीसीताजीका दर्शन करके विशाल (ब्रह्म) बुद्धिको प्राप्त हो, मै सुखपूर्वक अपने जीवनकी सफलता करूँगा ? ॥७०॥

श्रीसनन्दन उवाच ।

कदा नौकारूढां शरदमलपूर्णेन्दुवदनां
विशालाक्षीं सीतां निमिजतनुजावृन्दसहिताम् ।
विहाराख्ये रम्ये सरसि मुनिसंजुष्टपुलिने
समीक्ष्याप्तानन्दः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥७१॥

श्रीसनन्दनजी बोले :—कब मुनियोंसे सेवित श्रीविहार नामके सरोवरमें निमिवंशी कन्याओंके सहित, शरद् ऋतुके पूर्ण स्वच्छ चन्द्रमाके समान मुख व विशाल नेत्रों वाली नौका पर विराजी हुई श्रीसीताजीका दर्शन करके आनन्दको प्राप्त हुआ, मैं सुखपूर्वक अपने जन्मको सफल बनाऊँगा ॥७१॥

श्रीसनातन उवाच ।

कदा प्रेमोन्मत्तो जनकतनयापादकमले
हृदि ध्यायं ध्यायन्तदमृतयशः शोकहरणम् ।
मुदा गायं गायन्निगमगदितं साश्रुनयनो
जितात्मा निर्द्वन्द्वः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥७२॥

श्रीसनातनजी बोलेः–कब मनको विजय करके राग, द्वेष्य, सुख-दुःखादि अनेक प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित, प्रेममें पागल हो, श्रीजनकललीजूके चरण कमलों को अपने हृदयमें बारम्बार ध्यान करता तथा सभी शोकों को हरण करने वाले वेदोंके द्वारा गाये हुये अमृके समान अमर कर देने वाले उनके यश को सजल नेत्र हो आनन्द पूर्वक बारम्बार गान करता हुआ मैं अपने जन्मकी सफलताको प्राप्त करूँगा ? ॥७२॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

कदा ब्रह्मेशादित्रिदशवरसंमृग्यरजसा
विलिप्ताङ्गो दान्तो जनकनृपकन्याजनिभुवः ।
तदङ्घ्र्यासक्तात्मा समनृपतिरङ्कास्मकनको
जपंस्तस्या मन्त्रं स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥७३॥

श्रीसनत्कुमारजी बोलेः–कब श्रीजनकराज दुलारीजूकी जन्म भूमिकी ब्रह्मा, शिव आदि देव श्रेष्ठों द्वारा खोजने योग्य रज (धूलि) से विशेष लेप किये हुये अङ्ग व उनके श्रीचरणकमलोंमें आसक्त मन वाला राजा-रङ्क, पत्थर सोनामें सम भावको प्राप्त हो, श्रीजनकललीजूके मन्त्र-राजको जपता हुआ मैं अपने जीवनकी सफलता प्राप्त करूँगा ? ॥७३॥

श्रीनारद उवाच ।

कदा वीणावादी जनकपुरवीथीष्वभिसरन्
प्रपश्यंश्चित्केलिव्रजमवनिजाया दुरितहम् ।
रटन्च्छ्लक्ष्णं नाम श्रुतिनिकरसारं तदमृतं
सवाष्पाक्षो मत्तः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥७४॥

श्रीनारदजी बोले :–कब श्रीजनकपुरीकी गलियों में वीणा बजाते चलते हुये, श्रीभूमिसुताजीके पाप व सङ्कट-नाशक, चैतन्य मयी लीला समूहों का दर्शन करते हुये मस्त हो, सजल नेत्र हुआ,

उनके अमृतके समान अमरत्वदायक सभी वेदोंके सारभूत "श्रीसीता" इस नामको मधुर स्वरसे रटता हुआ मैं अपने जीवनको सफल करूँगा ॥७४॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

इत्थं प्रेमपरायणा विधिसुताः सञ्जातकौतूहला
भक्ताः श्रीसनकादयो मुनिवरा देवर्षिणा सङ्गताः।
दृष्ट्वा श्रीजनकात्मजामवनिजां स्तुत्वा तदीयांश्च तां
प्रागच्छन्हृदये स्थितार्थमुदितं ते व्यञ्जयन्तो मिथः ॥७५॥

इति सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! इस प्रकार (मुनियोंमें) श्रेष्ठ, प्रेमपरायण, ब्रह्माजीके पुत्र श्रीसनकादिक भक्त, देवर्षि श्रीनारदजीके सहित, भूमिसे प्रकट हुई श्रीजनकराजदुलारीजूका दर्शन करके तथा उनकी और उनके सम्बन्धियोंकी स्तुति करके, अपने हृदयमें उदय हुये भावोंको परस्पर प्रकट करते हुये, आश्चर्य युक्त हो विदा हुये ॥७५॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

फाग-लीला-

श्रीस्नेहपरोवाच।

ततो दानं द्विजातिभ्यो दत्वा सुनयना ऽऽदरात्।
सुतापाणितलस्पृष्टं विविधं गृहमाययौ ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे! श्रीसनकादिकोंके विदा हो जाने पर श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीललीजीकी हथेलीसे स्पर्श कराई हुई अनेक प्रकारकी वस्तुओं का दान, ब्राह्मणों को देकर अपने महलको वापस हुईं ॥१॥

तस्मिन्दिने तु सर्वासां योषितां निमिवंशिनाम्।
महाराज्ञी निकेते ऽभूद्भोजनं निर्वृतिप्रदम् ॥२॥

उस दिन सभी निमिवंशियों की स्त्रियोंका भोजन, महारानी श्रीसुनयनाअम्बाजीके महलमें ही परम शान्तिको देनेवाला हुआ ॥२॥

पुनः स्वं स्वं गृहं जग्मुर्नत्वा क्षितिपतिप्रियाम् ।
जानकीरूपपाथोधिमग्नचित्ता वराङ्गना ॥३॥

पुनः श्रीजनकललीजूके रूप-सागरमें डूबी हुई चित्तवाली वे सभी उत्तम (सौभाग्यवती) स्त्रियाँ श्रीमहारानीजीको प्रणाम करके अपने अपने महलको पधारीं ॥३॥

स्वसारो भ्रातरश्चैव मैथिलीं समनुव्रताः ।
न गत्वा निलयं स्वं स्वं बभूवुर्मोदहेतवः ॥४॥

परन्तु श्रीमिथिलेशललीजूके अनुयायी बहिन भाई वृन्दोंने अपने अपने भवनोंको न जाकर विशेष आनन्दके कारण बने ॥४॥

चारुशीलामुखं दृष्ट्वा लक्ष्मणा लक्षणान्विता ।
अभिवाद्य भुवः पुत्रीं गिरा माध्व्येदमब्रवीत् ॥५॥

श्रीचारुशीलाजीके मुखारविन्दकी ओर देखकर सभी लक्षणोंसे युक्त, श्रीलक्ष्मणाजी श्रीराजदुलारीजीसे नम्रता पूर्वक यह बड़ी मधुर वाणीसे बोलीं— ॥५॥

श्रीलक्ष्मणोवाच ।

अयि स्वसः कृपाशीले ! सर्वशर्मप्रवर्षिणि ! ।
को ऽद्य पूतो भवेत्कुञ्जो भवत्याः पादपांसुभिः ॥६॥

हे सभी सुखोंकी सुन्दर वर्षा करनेवाली ! कृपा मय स्वभाव वाली ! श्रीबहिनजी ! आज आपके श्रीचरण-कमलोंकी धूलिसे कौन कुञ्ज पवित्र होवेगी ? ॥६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

उच्यतामीप्सिता केलिर्भवतीभिः सुखप्रदा ।
ततो वक्ष्याम्यहं कुञ्जं तदहं हृदि निश्चितम् ॥७॥

श्रीजनक-दुलारीजी बोलीं:—हे बहिनो ! पहिले आप लोग अपने सुख देनेवाली अभीष्ट लीलाको बतावें, तब मैं हृदयमें निश्चयकी हुई उसके योग्य कुञ्जको बताऊँगी ॥७॥

स्वसार ऊचुः ।

वासन्तिकी शुभा केलिः सुविमृश्याभिवाञ्छिता ।
अस्माभिः सुमुखीदानीं मन्यसे चेद्धिधीपताम् ॥८॥

बहिने बोलीं—हे मनोहरण मुखवाली श्रीललीजी ! भली भाँति सोच-विचार करके हम लोग आज वसन्त ऋतु महोत्सव (फाग लीला) के लिये उत्सुक हैं, सो यदि स्वीकार हो, तो वहीं लीला करनेकी कृपा करें ॥८॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच।

यूयं ममेप्सितार्थज्ञाः सर्वदा मत्परायणाः।
स्वभावप्रियसङ्कल्पाः सर्वाः शुभगुणालयाः ॥९॥

श्रीललीजी बोलीं—हे बहिनो ! आप लोग मेरे अभिप्रायको जानने वाली, सदा मेरे ही अनुकूल रहने वाली स्वभावसे ही मेरी प्रसन्नता कारक सङ्कल्पों को करने वाली, शुभलक्षणों की मन्दिर हैं ॥ ९ ॥

अद्य मोदसखागारं मया साकमनुत्तमम्।
भुक्त्वा विहितविश्रामा व्रजतामन्दबुद्धयः ॥१०॥

इस लिये आज फागके उत्सवकीलीला करनेके लिये मेरे सहित आप लोग प्रसाद पाकर, विश्राम करके श्रीमोदसखागारनामको अत्युत्तम कुञ्जमें पधारें ॥१०॥

सख्यार ऊचुः।

अनुगाः सर्वदैवास्मो मनोवाग्बुद्धिकर्मभिः।
कल्पद्रुमस्वभावायास्तव श्रीराजनन्दिनि ! ॥११॥

बहिने बोलीं—हे कल्पद्रुमके सदृश स्वभाव वाली श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू ! हम सभी मन, वाणी, बुद्धि तथा शरीरसे सदा ही आपकी अनुगामिनी (पीछे-पीछे चलने वाली) हैं, अत एव जहाँ आप पधारेंगी वहीं हम सब चलेंगी ॥११॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमुक्त्वा विनीताङ्ग्यो हर्षविस्फारितेक्षणाः।
क्षिप्रं विहितविश्रामास्ततोऽम्बामभ्यवादयन् ॥१२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीललीजूसे इस प्रकार कहकर उनकी आज्ञानुसार थोड़ी देर विश्राम करके, हर्षसे फैले हुये नेत्रों वाली उन सभी बहिनोंने, श्रीअम्बाजीको प्रणाम किया ॥१२॥

राज्ञ्याऽभिनन्द्य ता दृष्ट्वा प्रपश्यन्त्यः परस्परम्।
पुत्र्यः ! किमिच्छयायातुं पृष्टा इति मुदाऽब्रुवन् ॥१३॥

श्रीअम्बाजी सभीकी प्रशंसा करके, उन्हें एक दूसरेकी ओर देखती हुई देखकर, उनसे हे पुत्रियो ! आप लोग क्या कहना चाहती हैं ? इस प्रकार श्रीअम्बाजीके पूछने पर वे, प्रसन्न हो बोलीं :-॥१३॥

कुमार्य ऊचु ।

अद्य मोदस्वागारगमनेच्छान्विता स्वसा ।
वर्तते नस्ततो मातरनुज्ञां दातुमर्हसि ॥१४॥

हे श्रीअम्बाजी ! आज श्रीबहिनजी ! मोदस्वागार पधारनेकी इच्छा कर रही हैं, इस लिये आपको उन्हें वहाँ जानेकी आज्ञा देनी चाहिये ॥१४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

न चेयं दृक्चकोरेन्दुवदना मे तथा सुता ।
यथा यूयं हि काङ्क्षिण्यो गतुं मोदस्वालयम् ॥१५॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं:-अरी पुत्रियो ! मोदस्वागार जानेके लिये जैसी तुम लोग इच्छा कर रही हो, वैसी ये मेरे नेत्र रूपी चकोरोंको चन्द्रमाके समान, आह्लादवर्द्धक मुखवाली श्रीललीजी नहीं॥

श्रीरमेदपरोवाच ।

एवमुक्त्वा सुतामाह हसन्ती परिरभ्य सा ।
कच्चिन्मोदस्वागारंगन्तुमिच्छसि हे प्रिये ! ॥१६॥

इस प्रकार उन पुत्रियोंसे कह कर हँसती हुई श्रीअम्बाजी, हृदयसे लगाकर श्रीललीजीसे बोलीं-हे प्रिये ! क्या आपकी ठीक ही मोदस्वागार पधारनेकी इच्छा है ? ॥१६॥

अथवैता हि काङ्क्षन्ति भगिन्यः केलिलोलुपाः ।
तत्तु गन्तुं वदेदानीं वत्से ! कुशलमस्तु ते ॥१७॥

सो बताइये । हे वत्से ! आपका कल्याण हो, अथवा क्रीडामासे कभी तृप्त न होने वाली आपकी ये बहिनें ही वहाँ जानेकी केवल इच्छुक हैं ? ॥१७॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अम्ब ! तद्दर्शनोत्कण्ठा हृदि जाता ममैव हि ।
मदभिप्रायविज्ञाभिर्विद्यतः सत्यमीरितम् ॥१८॥

श्रीललीजी बोलीं-हे श्रीअम्बाजी ! श्रीमोदसदनागारको देखनेकी इच्छा, मेरे ही हृदयमें उत्पन्न हुई है इस लिये मेरे अभिप्रायको जानने वाली इन बहिनोंने आपसे जो कुछ कहा है, उसे सत्य जानिये ॥१८॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमाशंसिता माता जगदानन्दरूपया।
स्मयमानमुखी राज्ञी गन्तुमाज्ञां दिदेश ह ॥१९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! इस प्रकार चर अचर प्राणियोंके आनन्दकी मूर्त्ति श्रीललीजूके द्वारा समझाई हुई, रानी श्रीसुनयना अम्बाजीने श्रीललीजीके वात्सल्यभाव पर मुग्ध हो,मन्द मुसुकाती हुई उन श्रीललीजी को (मोद सदनागार) पधारनेकी आज्ञा प्रदानकी ॥१९॥

मातुराज्ञां समासाद्य स्वसृभिः परिवारिता।
जगाम भवनं दिव्यं तच्छ्रीमोदसदनाभिधम् ॥२०॥

श्रीअम्बाजीकी आज्ञा पाकर बहिनियोंसे घिरी हुई श्रीललीजी, मोदसदन नामके उस दिव्य भवनमें पधारीं ॥२०॥

तदग्निमणिसङ्काशं रुद्रखण्डसमुच्छ्रितम्।
विद्युत्पुञ्जाभकलशं वालकैः परिरञ्जितम् ॥२१॥

अग्निके रङ्गकी मणिके समान प्रकाश युक्त, ग्यारहखण्ड ऊंचे, बिजुली समूहके समान परम प्रकाशमय कलशवाले, चारों ओर वालकासे सुरचित ॥२१॥

सालिचित्रगृहद्वारं मुक्तादामविभूषितम्।
निरीक्ष्य मुमुदे वेश्म पीतपङ्केरुहध्वजम् ॥२२॥

सखियोंके चित्रसे युक्त, मोतियोंकी मालाओंसे सजे हुये द्वार तथा पीत कमलकी ध्वजावाले उस भवनको देखकर श्रीललीजी प्रसन्न हुईं ॥२२॥

आगतया वहिर्द्वारि भवनात्पुण्यशीलया।
नीराज्य स्वालिभिर्नीता प्रीतिमत्या निवेशनम् ॥२३॥

श्रीललीजीका शुभागमन जानकर उस भवनसे श्रीपुण्यशीलाजी वाहर द्वारपर आकर, प्रेम पूर्वक आरती करके, सखियोंके सहित उन्हें भवनमें ले गयीं ॥२३॥

तत्र सिंहासने रम्ये कोमलांशुकसंयुते ।
तप्तहेमप्रतीकाशे सादरं सन्निवेशिता ॥२४॥

और वहाँ कोमल वस्त्रोंसे युक्त तपाये सुवर्णके समान प्रकाश वाले, सुन्दर सिंहासन पर उन्हें आदर पूर्वक विराजमान किया ॥२४॥

उक्ता मधुरया वाचा सवद्गुप्तानुरागया ।
दिष्ट्याऽऽगताऽसि भद्रं ते वत्स ! इत्याह मैथिली ॥२५॥

पुनः कहते हुये गुप्त अनुरागवाली, मधुरी वाणीसे "हे वत्से ! आपका कल्याण हो । मेरे बड़े सौभाग्यसे आप यहाँ पधारी है" ऐसा उन पुण्यशीलाजीके कहने पर श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी बोलीं—॥२५॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अद्य मातररोचन्त भगिन्यः केलिमुत्तमाम् ।
वासन्तिकीमतः प्राप्ता सर्वाभिरहमत्र वै ॥२६॥

हे श्रीमइयाजी ! आज मेरी ये बहिनें वसन्त ऋतुकी उत्तम (फाग) क्रीडा करनेकी इच्छुक हुई हैं, अत एव इनकी इच्छा पूर्त्तिके लिये मैं यहाँ आई हूँ ॥२६॥

श्रीपुण्यशीलोवाच ।

धन्याः कुमारिका ह्येता धन्या पुत्रि ! च ते कृपा ।
महावात्सल्यसंयुक्ता यया त्वं मे प्रदर्शिता ॥२७॥

श्रीपुण्यशीलाजी बोलीं:-हे श्रीललीजी ! इन कुमारियों को धन्य वाद है, जिनकी इच्छा-पूर्त्ति के लिये आपने यहाँ पधारनेकी इच्छा की और महान् वात्सल्य रससे युक्त आपकी इस उपमा रहित कृपाको धन्यवाद है, जिसने मुझे आपका दर्शन कराया ॥२७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युक्त्वा सा समालिङ्ग्य मैथिलीं भुवनेश्वरीम् ।
तर्पयामास विविधैर्भोजनैः स्वसृभिर्युताम् ॥२८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! इस प्रकार वे (श्रीपुण्यशीलाजी) कहकर, समस्त लोकोंकी स्वामिनी -श्रीमिथिलेशललीजीको भली प्रकार हृदयसे लगाकर अनेक प्रकारके भोजनों द्वारा बहिनोंके सहित उन्हें तृप्त किया ॥२८॥

प्रदाय पुनराचम्यं कृतो नीराजनोत्सवः ।
वादित्रकलघोषैश्च तया वात्सल्यलीनया ॥२९॥

पुनः आचमन करने योग्य जल प्रदान करके वात्सल्य भावमें लीन हुई उन्होंने अनेक प्रकार के मनोहर घोषोंके सहित श्रीकिशोरीजीका आरती-उत्सव सम्पन्न किया ॥२९॥

पुनस्तत्केलिसाहित्यमर्पयामास सादरम् ।
विधिनाऽवश्यकं सर्वं दुहित्रे मिथिलापतेः ॥३०॥

पुनः उन्होंने श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीको आदरके सहित विधि-पूर्वक उस फागउत्सवकी सभी आवश्यक सामग्रियोंको अर्पण किया ॥३०॥

समाज्ञया तया पुण्यशीलया जनकात्मजा ।
चिक्रीडे स्वसृभिः साकं ह्लादयन्ती जगत्त्रयम् ॥३१॥

श्रीपुण्यशीलाजीकी आज्ञासे श्रीललीजी सखियोंके तीनों लोकोंको आह्लादित करती हुई फाग खेलने लगीं ॥३१।

स्वसृणां भ्रातृभिः क्रीडां पश्यन्त्यारम्भितां मुदा ।
मन्दं जहास वैदेही भ्रमत्कञ्जकराम्बुजा ॥३२॥

भाइयोंके सहित बहिनियोंकी उस आरम्भकी हुई क्रीड़ाको देखती तथा कमल-पुष्पको अपने कमलवत् कोमल हाथमें घुमाती हुई, श्रीविदेहराजकुमारीजू मन्द मन्द मुसुकाने लगीं ॥३२॥

ताः प्रविश्य महाभागा आनन्दाकृष्टमानसा ।
सुचिरं क्रीडयामास क्रीडन्ती प्रकृतेः परा ॥३३

पुनः प्रकृतिसे परे (परब्रह्मस्वरूपा) श्रीविदेहनन्दिनीजू, आनन्दसे मनका आकर्षण हो जानेसे पर बड़ भागिनी बहिनियोंमें प्रवेश करके खेलती हुई उन्हें बहुत देर तक खेलाने लगीं ३३

बुक्कादिपुञ्जसंव्याप्ताः प्राणनाथ ! दिशो दश ।
शोभां प्रपेदिरेऽत्यर्थं श्रीविदेहसुतेक्षया ॥३४॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! उस क्रीड़ाके कारण श्रीविदेहराजकुमारीजूकी दृष्टि मात्रसे ही दशों दिशायें अबीर-गुलाल आदिसे व्याप्त हो अत्यधिक शोभाको प्राप्त हुई ॥३४॥

जयेति नाकिनां शब्दध्वनिराकर्णितो मुहुः ।
वर्द्धयन् हृदयोत्साहं पुष्पवृष्टिपुरः सरः ॥३५॥

उस समय बारम्बार हृदयके उत्साहको बढ़ाती हुई पुष्प वर्षाके सहित, देवताओंके जयकार की शब्द ध्वनि सुनाई पड़ने लगी ॥३५॥

प्रससाद भृशं तर्हि मैथिली जनकात्मजा ।
स्वसॄणां क्रीडया मृद्वी सहजानन्दरूपिणी ॥३६॥

उस समय स्वाभाविक आनन्दकी मूर्त्ति, परम कोमल शरीर व स्वभाव वाली श्रीमिथिलेश-ललीजी बहिनियोंकी क्रीड़ासे अत्यधिक प्रसन्न हुई ॥३६॥

सख्या तदा प्रेषितया जनन्या प्रेम्णा समाभाष्य नरेन्द्रकन्या ।
नीता गृहं पद्मपलाशनेत्रा समावृता स्वसृभिरिन्दुवक्त्रा ॥३७॥

इत्यष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

तब श्रीअम्बाजीकी भेजी हुई सखी प्रेम पूर्वक उनका सन्देश बोल कर, कमलके समान नेत्र व चन्द्रमाके सदृश मुख वाली, श्रीराजकुमारीजीको बहिनोंके सहित राज महलमें ले गई ॥३७॥

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

श्रीकिशोरीजीका श्रीसुचित्रा अम्बाजीके भावपूर्त्यर्थ उनके गृह प्रस्थानः—

श्रीस्नेहपरोवाच ।

मातुरङ्के समासीना सुषमां नतमस्तकाम् ।
स्वसृभ्यां सहसा वीक्ष्य जगादेषत्स्मितानना ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजी हुई, मन्दमुसकान युक्त मुख वाली श्रीललीजी, दोनों बहिनियोंके सहित, श्रीसुषमाजीको शिर झुकाये हुये देखकर बोलीं–॥१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अद्य यूयं प्रथमतो मत्सकाशमिहागताः ।
अभिप्रायेण येनाग्रे मातुः स विनिवेद्यताम् ॥२॥

श्रीललीजी बोलीं:–हे सुषमाजी ! आज आप लोग सबसे पहिले जिस कारणसे आई हो, उसे श्रीअम्बाजीके सामने निवेदन करें ।२॥

श्रीसुषमोवाच ।

अद्य मे जननीत्युक्त्वा प्रैषयत् खलु सत्वरम् ।
पुत्र्यो ! राज्ञीं समाभाष्यानीयतां जनकात्मजा ॥३॥

श्रीसुषमाजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! आज माताजीने हम लोगोंको यह कहकर भेजा है पुत्रियों ! तुम लोग श्रीमहारानीजीसे कहकर श्रीजनकराज-दुलारीजीको अपने यहाँ बुलालाओ ॥३॥

एतदर्थं वयं प्राप्ता जनन्याऽम्ब ! प्रचोदिताः ।
सानुकम्पं भवत्याऽऽशु ततोऽनुज्ञा प्रदीयताम् ॥४॥

हे श्रीअम्बाजी ! इस लिये माताजीकी प्रेरणासे हम तीनों आई हैं, सो आप कृपा करके श्रील-लीजीको, हमारे यहाँ पधारनेकी आज्ञा प्रदान कीजिये ॥४॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अम्ब ! तां द्रष्टुमिच्छन्त्या त्वरितं गम्यते मया ।
मयि तन्महती प्रीतिरेताभ्योऽपि गरीयसी ॥५॥

श्रीललीजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! मैं उन श्रीसुचित्राअम्बाजीको देखनेकी इच्छासे शीघ्रही जाती हूँ क्योंकि इन पुत्रियोंसे भी बढ़कर उनका प्रेम मेरे प्रति है ॥५॥

देह्यनुज्ञां कृपारूपे ! गमनाय तदालयम् ।
आगमिष्यामि तेऽभ्याशे तामुदीक्ष्योरुवत्सलाम् ॥६॥

हे कृपारूपे श्रीअम्बाजी ! अत एव कृपा करके आप उनके यहाँ जानेकी हमें आज्ञा प्रदान कीजिये मैं परम वात्सल्य मयी श्रीसुचित्रा अम्बाजी का दर्शन करके आपके पास आजाऊँगी ॥६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे वत्से ! गम्यतां कामं सुषमामातृमन्दिरम् ।
तस्यास्तु दर्शनं कृत्वा पुनरायाहि सत्वरम् ॥७॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे वत्से ! बहुत अच्छा, आप सुषमाकी माताजीके भवनमें पधारें, परन्तु उनका दर्शन करके वापस शीघ्र ही आजाइयेगा ॥७॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

त्वदाज्ञां प्राप्य गच्छामि सुचित्राम्बानिकेतनम् ।
तदाज्ञया विना मातः कथमागनं हि मे ॥८॥

श्रीजनकदुलारीजी बोलीं-हे श्रीअम्बाजी ! आपकी आज्ञा पाकर मैं सुचित्रा मइयाजीके यहाँ जाती हूँ, पर वहाँसे बिना उनकी आज्ञा पाये कैसे शीघ्र वापस आऊँगी ? ॥८॥

उस समय बारम्बार हृदयके उत्साहको बढ़ाती हुई पुष्प वर्षाके सहित, देवताओंके जयकार की शब्द ध्वनि सुनाई पड़ने लगी ॥३५॥

प्रससाद भृशं तर्हि मैथिली जनकात्मजा ।
स्वसॄणां क्रीडया मृद्वी सहजानन्दरूपिणी ॥३६॥

उस समय स्वाभाविक आनन्दकी मूर्त्ति, परम कोमल शरीर व स्वभाव वाली श्रीमिथिलेश-ललीजी बहिनियोंकी क्रीडासे अत्यधिक प्रसन्न हुईं ॥३६॥

सख्या तदा प्रेषितया जनन्या प्रेम्णा समाभाष्य नरेन्द्रकन्या ।
नीता गृहं पद्मपलाशनेत्रा समावृता स्वसृभिरिन्दुवक्त्रा ॥३७॥

इत्यष्टसप्ततितमोऽध्याय ॥७८॥

तब श्रीअम्बाजीकी भेजी हुई सखी प्रेम पूर्वक उनका सन्देश बोल कर, कमलके समान नेत्र व चन्द्रमाके सदृश मुख वाली, श्रीराजकुमारीजीको बहिनोंके सहित राज महलमें ले गई ॥३७।

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

श्रीकिशोरीजीका श्रीसुचित्रा अम्बाजीके भावपूर्त्यर्थ उनके गृह प्रस्थानः—

श्रीस्नेहपरोवाच ।

मातुरङ्के समासीना सुपमां नतमस्तकाम् ।
स्वसृभ्यां सहसा वीक्ष्य जगादेषत्स्मितानना ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजी हुई, मन्दमुसकान युक्त मुख वाली श्रीललीजी, दोनों बहिनियोंके सहित, श्रीसुपमाजीको शिर झुकाये हुये देखकर बोलीं-॥१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अद्य यूयं प्रथमतो मत्सकाशमिहागताः ।
अभिप्रायेण येनाग्रे मातुः स विनिवेद्यताम् ॥२॥

श्रीललीजी बोलीं:-हे सुपमाजी ! आज आप लोग सबसे पहिले जिस कारणसे आई हो, उसे श्रीअम्बाजीके सामने निवेदन करें । २॥

श्रीसुषमोवाच ।

अद्य मे जननीत्युक्त्वा प्रैषयत् खलु सत्वरम् ।
पुत्र्यो ! राज्ञीं समाभाष्यानीयतां जनकात्मजा ॥३॥

श्रीसुषमाजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! आज माताजीने हम लोगोंको यह कहकर भेजा है पुत्रियों ! तुम लोग श्रीमहारानीजीसे कहकर श्रीजनकराज-दुलारीजीको अपने यहाँ बुलालाओ ॥३॥

एतदर्थं वयं प्राप्ता जनन्याऽम्ब ! प्रचोदिताः ।
सानुकम्पं भवत्याऽऽशु ततोऽनुज्ञा प्रदीयताम् ॥४॥

हे श्रीअम्बाजी ! इस लिये माताजीकी प्रेरणासे हम तीनों आई हैं, सो आप कृपा करके श्रीललीजीको, हमारे यहाँ पधारनेकी आज्ञा प्रदान कीजिये ॥४॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अम्ब ! तां द्रष्टुमिच्छन्त्या त्वरितं गम्यते मया ।
मयि तन्महती प्रीतिरेताभ्योऽपि गरीयसी ॥५॥

श्रीललीजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! मैं उन श्रीसुचित्राअम्बाजीको देखनेकी इच्छासे शीघ्रही जाती हूँ क्योंकि इन पुत्रियोंसे भी बढ़कर उनका प्रेम मेरे प्रति है ॥५॥

देह्यनुज्ञां कृपारूपे ! गमनाय तदालयम् ।
आगमिष्यामि तेऽभ्याशे तामुदीक्ष्योरुवत्सलाम् ॥६॥

हे कृपारूपे श्रीअम्बाजी ! अत एव कृपा करके आप उनके यहाँ जानेकी हमें आज्ञा प्रदान कीजिये मैं परम वात्सल्य मयी श्रीसुचित्रा अम्बाजी का दर्शन करके आपके पास आजाऊँगी ॥६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे वत्से ! गम्यतां कामं सुषमामातृमन्दिरम् ।
तस्यास्तु दर्शनं कृत्वा पुनरायाहि सत्वरम् ॥७॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे वत्से ! बहुत अच्छा, आप सुषमाकी माताजीके भवनमें पधारें, परन्तु उनका दर्शन करके वापस शीघ्र ही आजाइयेगा ॥७॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

त्वदाज्ञां प्राप्य गच्छामि सुचित्राम्बानिकेतनम् ।
तदाज्ञया विना मातः कथमागमनं हि मे ॥८॥

श्रीजनकदुलारीजी बोलीं-हे श्रीअम्बाजी ! आपकी आज्ञा पाकर मैं सुचित्रा मइयाजीके यहाँ जाती हूँ, पर वहाँसे बिना उनकी आज्ञा पाये कैसे शीघ्र वापस आऊँगी ? ॥८॥

उस समय बारम्बार हृदयके उत्साहको बढ़ाती हुई पुष्प वर्षाके सहित, देवताओंके जयकार की शब्द ध्वनि सुनाई पड़ने लगी ॥३५॥

प्रससाद भृशं तर्हि मैथिली जनकात्मजा ।
स्वसॄणां क्रीडया मूर्त्ती सहजानन्दरूपिणी ॥३६॥

उस समय स्वाभाविक आनन्दकी मूर्त्ति, परम कोमल शरीर व स्वभाव वाली श्रीमिथिलेश-ललीजी बहिनियोंकी क्रीड़ासे अत्यधिक प्रसन्न हुईं ॥३६॥

सख्या तदा प्रेषितया जनन्या प्रेम्णा समाभाष्य नरेन्द्रकन्या ।
नीता गृहं पद्मपलाशनेत्रा समावृता स्वसॄभिरिन्दुवक्त्रा ॥३७॥

इत्यष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

तब श्रीअम्बाजीकी भेजी हुई सखी प्रेम पूर्वक उनका सन्देश बोल कर, कमलके समान नेत्र व चन्द्रमाके सदृश मुख वाली, श्रीराजकुमारीजीको बहिनोंके सहित राज महलमें ले गई ॥३७॥

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

श्रीकिशोरीजीका श्रीसुचित्रा अम्बाजीके भावपूर्वार्थ उनके गृह-प्रस्थानः—

श्रीस्नेहपरोवाच ।

मातुरङ्के समासीना सुषमां नतमस्तकाम् ।
स्वसृभ्यां सहसा वीक्ष्य जगादेषत्स्मिताननना ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजी हुई, मन्दमुसकान युक्त मुख वाली श्रीललीजी, दोनों बहिनियोंके सहित, श्रीसुषमाजीको शिर झुकाये हुये देखकर बोलीं-॥१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अद्य यूयं प्रथमतो मत्सकाशमिहागताः ।
अभिप्रायेण येनाग्रे मातुः स विनिवेद्यताम् ॥२॥

श्रीललीजी बोलीं:-हे सुषमाजी ! आज आप लोग सबसे पहिले जिस कारणसे आई हो, उसे श्रीअम्बाजीके सामने निवेदन करें । २॥

श्रीसुषमोवाच ।

अद्य मे जननीत्युक्त्वा प्रैषयत् खलु सत्वरम् ।
पुत्र्यो ! राज्ञीं समाभाष्यानीयतां जनकात्मजा ॥३॥

श्रीसुषमाजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! आज माताजीने हम लोगोंको यह कहकर भेजा है पुत्रियों ! तुम लोग श्रीमहारानीजीसे कहकर श्रीजनकराज-दुलारीजीको अपने यहाँ बुलालाओ ॥३॥

एतदर्थं वयं प्राप्ता जनन्याऽम्ब ! प्रचोदिताः ।
सानुकम्पं भवत्याऽऽशु ततोऽनुज्ञा प्रदीयताम् ॥४॥

हे श्रीअम्बाजी ! इस लिये माताजीकी प्रेरणासे हम तीनों आई हैं, सो आप कृपा करके श्रीललीजीको, हमारे यहाँ पधारनेकी आज्ञा प्रदान कीजिये ॥४॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अम्ब ! तां द्रष्टुमिच्छन्त्या त्वरितं गम्यते मया ।
मयि तन्महती प्रीतिरेताभ्योऽपि गरीयसी ॥५॥

श्रीललीजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! मैं उन श्रीसुचित्राअम्बाजीको देखनेकी इच्छासे शीघ्रही जाती हूँ क्योंकि इन पुत्रियोंसे भी बढ़कर उनका प्रेम मेरे प्रति है ॥५॥

देह्यनुज्ञां कृपारूपे ! गमनाय तदालयम् ।
आगमिष्यामि तेऽभ्याशे तामुदीक्ष्योरुवत्सलाम् ॥६॥

हे कृपारूपे श्रीअम्बाजी ! अत एव कृपा करके आप उनके यहाँ जानेकी हमें आज्ञा प्रदान कीजिये मैं परम वात्सल्य मयी श्रीसुचित्रा अम्बाजी का दर्शन करके आपके पास आजाऊँगी ॥६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे वत्से ! गम्यतां कामं सुषमामातृमन्दिरम् ।
तस्यास्तु दर्शनं कृत्वा पुनरायाहि सत्वरम् ॥७॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे वत्से ! बहुत अच्छा, आप सुषमाकी माताजीके भवनमें पधारें, परन्तु उनका दर्शन करके वापस शीघ्र ही आजाइयेगा ॥७॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

त्वदाज्ञां प्राप्य गच्छामि सुचित्राम्बानिकेतनम् ।
तदाज्ञया विना मातः कथमागमनं हि मे ॥८॥

श्रीजनकदुलारीजी बोलीं-हे श्रीअम्बाजी ! आपकी आज्ञा पाकर मैं सुचित्रा मइयाजीके यहाँ जाती हूँ, पर वहाँसे बिना उनकी आज्ञा पाये कैसे शीघ्र वापस आऊँगी ? ॥८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

सत्यमुक्तं त्वया वत्से ! चिरञ्जीव सदा सुखम् ।
सर्वतः पश्य भद्राणि हृदयानन्दवर्द्धिनि ! ॥६॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं:–हे हृदयके आनन्द को बढ़ाने वाली ! हे वत्से ! श्रीललीजी ! आप सभी दिशाओंमें मङ्गल हो मङ्गल का दर्शन करें और सुख-पूर्वक बहुत (अनन्त) काल तक जीवें। आप बिल्कुल ठीक कह रही हैं ॥६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अभिनन्द्य जनन्यैवं समालिङ्गय पुनः पुनः ।
विसृष्टा तामिरिन्द्वास्या पूर्णापारसुखाकृतिः ॥१०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! इस प्रकार श्रीअम्बाजीने चन्द्रमाके समान मुख वाली पूर्ण-अनन्त (अनिर्वचनीय) सुखस्वरूपा श्रीललीजीके वचनोंका स्वागत करके तथा उन्हें बारंवार हृदयसे लगाकर, उन पुत्रियोंके सहित विदा किया ॥१०॥

प्रणम्य मातरं भक्त्या प्रसन्नेनान्तरात्मना ।
इयेष स्वसृभिर्गन्तुं श्रीयशध्वजमन्दिरम् ॥११॥

तब श्रीललीजी प्रसन्न हृदयसे बहिनियोंके सहित प्रेमपूर्वक प्रणाम करके, श्रीयशध्वज महाराजके मन्दिरको पधारनेकी इच्छाकी ॥११॥

स्वसृभ्रातृगणं दृष्ट्वा समवेतमशेषतः ।
ह्लादयन्ती बभाणेदं विनतं सस्मितं वचः ॥१२॥

पुनः सम्पूर्ण बहिन और भाइयोंके दलको एकत्रित हो, प्रणाम किये हुए देखकर, श्रीललीजी उसे आह्लादित करती हुई मुसुकान युक्त वाणीसे बोलीं ॥१२॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

भ्रातरो हे भगिन्यो मे श्रूयतां यदिहोच्यते ।
इदानीं श्रीसुचित्राम्बाऽऽजुहाव स्वालये हि माम् ॥१३॥

हे समस्त भाई, बहिनो ! जो मैं कहती हूँ, उसे श्रवण कीजिये। इस समय श्रीसुचित्रा अम्बाजीने हमें अपने भवनमें बुलाया है ॥१३॥

अतो गच्छत गच्छन्त्या तन्निकेतं मया सह ।
नूतनानन्दसन्दोहं तदाज्ञापालनं भवेत् ॥१४॥

अत एव आती हुई आप लोग भी मेरे सहित उनके भवनको पधारिये। श्रीसुचित्रा अम्बाजीकी आज्ञा का पालन, नवीन ही सुख का समूह होवेगा ॥१४॥

स्वसृभ्रातृगण उवाच।

वयं तत्रानुगच्छामो यत्र यत्र गमिष्यसि।
आरामं वा वनं वेश्म शैलं सरितमम्बुधिम् ॥१५॥

श्रीललीजूकी आज्ञा को श्रवण करके भाई और बहिनोंका दल बोला:—हे श्रीललीजी! आप वाटिका, वन, भवन, नदी, समुद्रमें जहाँ-जहाँ पधारेंगी वहाँ हम चलेंगे ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

वाक्यमेतत्समाकर्ण्य हर्षविस्फारितेक्षणा।
कृपादृष्टिनिपातेन बभूवाद्भुतशर्मदा ॥१६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! बहिन भाइयोंके दलका यह निश्चय सुनकर श्रीललीजीके नेत्र-कमल प्रफुल्लित हो उठे। अत एव उन्होंने अपनी कृपापूर्ण दृष्टि फेंककर उसे विलक्षण सुख प्रदान किया ॥१६॥

आव्रजन्तीं सुतां श्रुत्वा स्वसृभिः परिवारिताम्।
जनकस्यावनीशस्य सुचित्रा द्वारमागमत् ॥१७॥

श्रीजनकजी महाराजकी श्रीललीजी को बहिनियोंके समेत आती हुई श्रवण करके श्रीसुचित्रा अम्बाजी द्वार पर आगयीं ॥१७॥

प्रत्युद्गम्य विशालाक्षी सीतां सुनयनासुताम्।
प्रणतामुरसा ऽऽलिङ्ग्य क्रोडमारोप्य हर्षिता ॥१८॥

पुनः आगे बढ़कर वे प्रणामकी हुई श्रीसुनयना-महारानीजीकी विशाल-लोचना लली श्रीकिशोरीजी को हृदयसे लगाकर, गोदमें लेकर, हर्ष युक्त हो गईं ॥१८॥

ततो राजेन्द्रनन्दिन्या गृहीत्वा मृदुलाङ्गुलीम्।
पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं न तृप्तिमुपगच्छति ॥१९॥

तत्पश्चात् राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी नन्दिनी श्रीललीजीकी कोमल अङ्गुलीको पकड़कर उनके श्रीमुखकमलका दर्शन करती हुई, भी वे सन्तोषको नहीं प्राप्त कर सकीं ॥१९॥

पुनश्चित्तं समाधाय स्वसृभ्रातृगणान्विता ।
प्रविवेश समादाय सीतामन्तः पुरं प्रति ॥२०॥

पुनः अपने प्रेमविह्वल चित्तको सावधान करके, भाई-बहिनोंसे युक्त भूमिकुमारी श्रीललीजीको लेकर उन्होंने अपने अन्तः पुरमें प्रवेश किया ॥२०॥

विधिमुद्वर्तनस्याथ कृत्वा सा स्नानवेश्मनि ।
स्नापयित्वा तया साकं तांश्च तान् हर्षनिर्भराः ॥२१॥

वहाँ स्नान गृहमें उबटन लगाकर श्रीललीजीके समेत उनके सभी भाई-बहिनोंको स्नान कराके वे हर्षनिर्भर हो गयीं ॥२१।

कृतस्नाना स्वयं साऽपि समलङ्कृत्य मैथिलीम् ।
मम प्राणेश ! जननी लेभे सुखमनुत्तमम् ॥२२॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! वे मेरी मइया श्रीसुचित्राजी भी स्नान करके श्रीललीजूका सम्यक् प्रकार से शृङ्गार करके सर्वोत्तम (भगवत्सेवानन्द रूपी) सुखको प्राप्त हुई ॥२२॥

नवीनवस्त्राभरणैः कुमारांश्च कुमारिकाः ।
अभूषयत्प्रहृष्टात्मा सीताप्रीतिविवृद्धये ॥२३॥

तत्पश्चात् श्रीललीजीकी विशेष प्रसन्नता बढ़ानेके लिये वे नवीन वस्त्र भूषणोंके द्वारा सभी बालक तथा बालिकाओंका शृङ्गार करने लगीं ॥२३॥

पुनः सिंहासनस्थां तां विधायेन्दुनिभाननाम् ।
मुदा नीराजयाञ्चक्रे ह्लादयन्ती जनव्रजम् ॥२४॥

पुनः पूर्णचन्द्रमाके सदृश मुखवाली श्रीललीजीको सिंहासन पर विराजमान करके, उपस्थित जन समूहको आह्लादित करते हुये आनन्द पूर्वक उनकी आरती करने लगीं ॥२४॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

राकापतिवदनायै पद्मपत्राम्बकायै लीलाशिशुचरितायै पक्वबिम्बाधरायै ।
मन्दस्मितजितशोभाक्षीरनिध्यात्मजायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै॥२५॥

श्रीसुचित्राअम्बाजी बोलीं:-पूर्ण चन्द्रमाके समान जिनका आह्लाद-वर्द्धक प्रकाशमान मुख, कमलदलके सदृश विशाल नेत्र, पके बिम्बाफलके समान लाल अधर, लीलासे शिशु चरित करने

वाली, अपनी मन्द-मुसकानसे शोभा रूपी चीरसागरकी पुत्री श्रीलक्ष्मीजीको जीतनेवाली, निमि कुलके स्वामी श्रीसीरध्वज-महाराजकी प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥२५॥

नित्यापरिमितरूपस्नेहशीलक्षमायै नीलाम्बरवृतगात्र्यै दीप्तिमद्भूषणायै ।
सर्वासुभृदविचिन्त्यप्रेममोदालयायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥२६॥

जिनका रूप, स्नेह, शील, क्षमा सदा एक रस रहने वाली और असीम है, श्रीअङ्ग, नीलाम्बर (नीली साड़ी) से ढँका हुआ है तथा जिनके सभी भूषण प्रकाश-मय हैं, जो सभी प्राण धारियोंके चिन्तनकी शक्तिसे परे प्रेम और आनन्दकी भवन स्वरूपा हैं, उन निमिकुलके नाथ श्रीमिथिलेश-जी-महाराजकी परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥२६॥

शश्वत्प्रकृतिमनोज्ञाशेषबालक्रियायै योगीन्द्रमुनिसुरेन्द्रैर्मृग्यमाणेक्षणायै ।
दीनोद्धरणरतायै स्वालिभिः सेवितायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै २७

जिनकी समस्त बाल क्रीड़ायें सदा सहज स्वभावसे ही मनको हरण करनेवाली हैं, तथा बड़े २ योगीन्द्र, मुनि, सुरेन्द्र भी जिनके दर्शनोंकी खोज कर रहे हैं, जो अभिमान रहित प्राणियोंके उद्धार करने के लिये सदैव तत्पर और अपनी सखियों द्वारा सेवित हैं, उन निमिकुलनायक श्रीमिथिलेश जी महाराजकी परम प्यारी पुत्री श्रीललीजू का मङ्गल हो ॥२७॥

चामीकरनिभचेतोमोहनाङ्गप्रभायै प्रीत्या परिजनवर्गं कृत्स्नमालोकयन्त्यै ।
दिव्ये जगदभिरामे स्वर्णपीठे स्थितायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥२८॥

सुवर्णके सदृश चित्तको मुग्ध कर लेने वाली जिनके श्रीअङ्गकी कान्ति है, जो प्रेम-पूर्वक अपने सम्पूर्ण परिकरको देखती हुई चर-अचर सभी प्राणियोंको आनन्द प्रदान करने वाले दिव्य सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान हैं, उन निमिकुलके स्वामी श्रीविदेह महाराजकी परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥२८॥

मत्तुष्टिनिरतमत्यै मन्निदेशे स्थितायै स्वातीवमृदुनिसर्गाशेषभूतार्चितायै ।
प्रह्व्यै गलदनुरागस्निग्धसंवीक्षणायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥२९॥

मेरी प्रसन्नताके कार्योंमें जिनकी बुद्धि लगी रहती है, तथा जो मेरी आज्ञामें सदा स्थित, अपने अतीव कोमल स्वभावसे सभी प्राणियों द्वारा पूजित तथा जो अत्यन्त नम्रतायुक्त टपकते हुये अनुराग मय हृदयाकर्षक चितवन वाली हैं, उन निमिकुलनायक श्रीजनकजी महाराजकी परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥२९॥

भद्रं छविविजितरत्यै भद्रमम्भोजमुख्यै भद्रं पदजितमृद्व्यै भद्रमुर्वीशपुत्र्यै ।
भद्रं जनकसुतायै शाश्वतं भूमिजायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥३०॥

अपनी छवि (सौन्दर्य) से रतिको विजय करने वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, कमल-मुखी श्रीललीजूका मङ्गल हो, अपने चरण कमलोंसे कोमलताको विजय करने वाली श्रीललीजी का मङ्गल हो, भूपति-पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो, जनकसुता श्रीललीजूका मङ्गल हो, भूमि सुता श्रीजनकदुलारीजूका सदा सर्वदा मङ्गल हो, निमिकुल नायक श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्राण-प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥३०॥

भद्रं निमिकुलजायै भद्रमीषत्स्मितायै भद्रं जितसुषमायै भद्रमार्द्रालकायै ।
भद्रं हृतदुरितायै पूरितार्त्तेप्सितायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥३१॥

निमिकुलमें प्रकट हुई श्रीललीजूका मङ्गल हो, मन्द मुसुकान वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, असीम सौन्दर्य को जीतने वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, इत्र आदिसे गीली अलकों वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, समस्त सङ्कटोंको हरण करने वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, व्याकुल भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करने वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, निमिकुलनायक श्रीविदेह महाराज-की परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥३१॥

भद्रं कलपिकवाण्यै हंसगत्यै सुदत्यै भद्रं च सुनयनाहृन्नीरनाथेन्दुमुख्यै ।
भद्रं सततमिहास्तु प्राणिनां प्राणमूर्त्यै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥३२॥

कोयलके समान मधुर वाणी बोलने वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, हंसके सदृश मनोहर चाल वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, कुन्दके सदृश सुन्दर दान्तो वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, श्रीसुनयना महारानीजूके हृदय रूपी समुद्रको उछालनेके लिये पूर्णचन्द्रके समान मुख वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, समस्त प्राण धारियोंके प्राणोंकी मूर्ति श्रीललीजूका सदा ही मङ्गल हो, निमि कुलके स्वामी श्रीमिथिलेशजी महाराजकी परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥३२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्येवं सा प्रहृष्टात्मा कृत्वा भद्रानुशासनम् ।
सस्वजे मैथिलीं दोर्भ्यां स्रवदश्रुमुखाम्बुजा ॥३३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! इस प्रकार आँसू बहते हुये मुखकमलवाली वे श्रीसुचिना-

अम्बाजीने मङ्गलानुशासन करके मिथिलेशदुलारी श्रीललीजीको अपने दोनों भुजाओंसे हृदयसे लगा लिया ॥३३॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

अद्य पुत्रि ! मया ऽऽहूता त्वं चिराहूतिकामया ।
दिष्ट्याऽऽगतासि भद्रं ते हृदयानन्दवर्द्धिनि ! ॥३४॥

श्रीसुचित्राअम्बाजी बोलीं:-हे पुत्रि ! बहुत दिनोंसे बुलानेकी इच्छा रखती हुई मेरे द्वारा आज बुला सकने पर आप बड़े सौभाग्यसे पधारी हैं, अत एव हृदयके आनन्दकी वृद्धि करने वाली हे श्रीललीजी ! आपका मङ्गल हो ॥३४॥

भुङ्क्ष्व भोज्यानि दिव्यानि भ्रातृभिः स्वसृभिर्युता ।
चतुर्विधानि चन्द्रास्ये ! षड्रसैर्विहितानि हि ॥३५॥

हे चन्द्रमुखीजी ! अब आप अपने सभी भाई-बहिनोंके साथ छः रसोंसे युक्त, चारों प्रकारके दिव्य भोजनोंको पाइये ॥३५॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अम्ब ! त्वत्पाणिसंस्पृष्टं भोजनं रोचते यथा ।
न तथाऽन्यकरस्पृष्टमिति सत्यं वदामि ते ॥३६॥

श्रीजनकदुलारीजी बोलीं:-हे अम्बाजी ! आपके करकमलोंका स्पर्श किया हुआ भोजन जैसा मुझे रुचिकर प्रतीत होता है, वैसा और किसीके हाथका नहीं। यह मैं आपसे यथार्थ कह रही हूँ केवल बड़ाई ही नहीं करती ॥३६।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ताऽनवद्याङ्गी सुचित्रा हर्षगद्गदा ।
मैथिलीमुरसाऽऽलिङ्ग्य भोक्तुमाज्ञां मुदाऽदिशत् ॥३७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीललीजीके ऐसा कहने पर दोष-रहित अङ्गोंवाली श्रीसुचित्राअम्बाजीने श्रीमिथिलेशललीजीको हृदयसे लगाकर भोजन करनेके लिये हर्ष पूर्वक आज्ञा प्रदान की ॥३७॥

सुभर्णीतैः पुनर्ग्रासैः स्वपङ्केरुहपाणिना ।
सीरकेतुसुतां सीतां तर्पयामास भोजनैः ॥३८॥

पुनः अपने हस्त कमलोंसे बनाये हुये फलोंके द्वारा उन्होंने श्रीललीजीको आदर-पूर्वक तृप्त किया ॥३८॥

कुमार्य्योऽपि कुमाराश्च निमिवंशसमुद्भवाः ।
आसन् प्रमुदिताः सीतामुखचन्द्रार्पितेक्षणाः ॥३९॥

निमिवंशी-कुमार और कुमारिकाओंने श्रीललीजीके मुख चन्द्रको अपने अपने युगलनेत्र कमलोंको अर्पण करके, अतीव आनन्द प्राप्त किया ॥३९॥

पीततोयां धरापुत्रीं फलैः पुनरतर्पयत् ।
प्रदायाचमनं पश्चात् मुखप्रक्षालनं व्यधात् ॥४०॥

भूमिसुता श्रीजनकललीजूके जल पीलेने पर श्रीसुचित्रा अम्माजीने उन्हें फलोंसे तृप्त कराया, तत्पश्चात् आचमन कराके उनका श्रीमुखारविन्द धोया ॥४०॥

सुगन्धलेपनं कृत्वा ददौ ताम्बूलवीटिकाम् ।
स्वर्णपत्रावृतां तस्यै स्वयं पङ्कजपाणिना ॥४१॥

पुनः इत्र आदि सुगन्धित द्रव्योंका लेपन करके स्वय अपने कर-कमल द्वारा सोनेके पत्रसे लपेटे हुये पानके बीराको वन श्रीललीजूके लिये अर्पण किया ॥४१॥

स्वसृभिर्भ्रातृभिः साकं तर्पितेत्थं विदेहजा ।
जगाद श्लक्ष्णया वाचा सुचित्रां प्रणता सती ॥४२॥

इस प्रकार बहिन भाइयोंके सहित तृप्त की हुई विदेह राजकुमारी श्रीललीजी श्रीसुचित्रा अम्माजीको प्रणाम करके, बड़ी मीठी वाणीसे बोलीं ॥४२॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

शीघ्रमायाहि पुत्रीति जनन्याऽहं प्रभाषिता ।
त्वन्निदेशं समाकर्ण्य भवतीं समुपस्थिता ॥४३॥

हे श्रीअम्माजी ! आपकी आज्ञा सुनकर मैं आपके पास आगयी हूँ, परन्तु माताजीने मुझसे कह दिया था कि "हे पुत्रि ! आप शीघ्र ही चली आना ॥४३॥

इदानीं पूरिताज्ञायास्तव प्रीतिवशं गता ।
मातुरप्यन्तिके गन्तुं जायते नो मतिर्मम ॥४४॥

यद्यपि इस समय मैं आपकी आज्ञाको भी पूरी कर चुकी हूँ तथापि आपके प्रेमके अधीन होने के कारण श्रीअम्बाजीके पास जानेके लिये मेरा विचार ही नहीं हो रहा है ॥४४॥

लालनं पालनं प्रीत्या यथा मे कुरुषे सदा ।
न तथा निजपुत्रीणां न पुत्राणां कदाचन ॥४५॥

हे श्रीअम्बाजी ! जैसे प्रेमपूर्वक आप मेरा लाड़ (प्यार) और पालन सदा करती रहती हैं, वैसे न अपनी पुत्रियोंका और न पुत्रोंका ही कभी करती हैं ॥४५॥

यद्यदेवोत्तमं वस्तु भाति शंदं मनोहरम् ।
तत्तत्प्रदीयते मह्यमेकस्यै युक्तितस्त्वया ॥४६॥

और जो जो वस्तु आपको सबसे श्रेष्ठ, कल्याणकारी व मनोहर प्रतीत होती है, उस-उसको युक्तिपूर्वक, केवल हमें ही आप प्रदान किया करती हैं ॥४६॥

अयि वत्से ! चिरञ्जीव सर्वदा ते ऽस्त्वनामयम् ।
गोचराण्येव भद्राणि सर्वतः सन्त्वहर्निशम् ॥४७॥

श्रीसुचित्रा अम्बाजी बोलीं:-हे वत्से ! आप अनन्त काल तक जीवें और सदा ही स्वस्थता को प्राप्त हों तथा सभी ओरसे आपकी सभी इन्द्रियोंको रात-दिन सतत काल मङ्गल ही मङ्गल विषयोंकी प्राप्ति रहे ॥४७॥

अवाच्यं मे सुखं दत्तं त्वया पुत्रि ! स्वभाषितैः ।
तव रक्षाविधानं हि कुर्युः सर्वसुरेश्वराः ॥४८॥

हे श्रीजानकीजी ! अपने अपने सुन्दर अमृत-मय वचनोंके द्वारा मुझे जो सुख प्रदान किया है, उसे मैं वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सुरेश आदि सभी देवताओंके स्वामी, सदैव आपकी रक्षा करें ॥४८॥

इदानीं गम्यतां वत्से ! मातुरन्तःपुरं त्वया ।
दिदृक्षयाऽऽकुला राज्ञी यतस्ते शान्तिमाप्नुयात् ॥४९॥

हे वत्से ! अब आप अपनी श्रीअम्बाजीके अन्तःपुरको पधारें, जिससे आपके दर्शनके लिये व्याकुल हुई श्रीमहरानीजीको शान्ति प्राप्त होवे ॥४९॥

श्रीसुचिरोवाच ।

महाराज्ञी महाभागा कृतकृत्या न संशयः ।
तव मातृपदं लब्ध्वा सर्वलोकनमस्कृतम् ॥५०॥

हे श्रीलल्लीजी ! श्रीसुनयनामहारानीजी निःसन्देह (वास्तवमें) सभी लोकोंसे नमस्कृत आपकी माताका पद प्राप्त कर, परम सौभाग्यसे युक्त तथा कृतार्थ हैं ॥५०॥

महोदारस्वभावा सा महावात्सल्यनिर्भरा ।
सर्वभूतहिते रक्ता सर्वजीवानुकम्पिनी ॥५१॥

वे बड़े ही उदार स्वभाव वाली, वात्सल्य भावसे अतिशय भरी हुई, सभी प्राणियोंके हितमें तत्पर और सभी जीवों पर दया करने वाली हैं ॥५१॥

सर्वदोत्तानहस्ता च धर्मज्ञा धर्मचारिणी ।
अपराधिजनप्रीता निर्व्याजकरुणापरा ॥५२॥

उनका हस्त कमल सदा ही (दान देनेमें तत्पर रहनेके कारण) उठा रहता है, वे धर्मके रहस्यको पूर्णरूपसे समझने वाली तथा धर्मको आचरणमें लाने वाली हैं, वे अपराधी जनों पर भी प्रसन्न रहती हैं, और बिना किसी कारणके ही दया करनेवाली हैं ॥५२॥

तस्यास्त्वं जीवनाधारा तपोदानक्रियाफलम् ।
त्वददर्शनजं दुःखं न सोढुं शक्ष्यति क्षणम् ॥५३॥

हे श्रीललीजी, !, उन श्रीसुनयना महारानीजीकी आप जीवनकी आधार तथा तप, दान, क्रियाओंकी फलस्वरूपा हैं, अत एव वे क्षण भर भी आपके वियोगजनित दुःखको सहन करनेके योग्य नहीं हैं ॥५३॥

यया कान्तिमती चैव सुभद्रा च सुदर्शना ।
दृश्यन्ते स्निग्धया दृष्ट्या तया दृश्यामहे वयम् ॥५४॥

हे श्रीलली आप जिस स्नेहमयी दृष्टिसे श्रीकान्तिमतीजी, श्रीसुभद्राजी और श्रीसुदर्शनाजीको अवलोकन करती हैं, उसी प्रेम मयी दृष्टिसे हम सबोंको अवलोकन करती रहें ॥५४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वाऽश्रुपूर्णाक्षी समालिङ्ग्य विदेहजाम् ।
लालनैर्विविधैर्भूयो लालयित्वा व्यसर्जयन् ॥५५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! इस प्रकार अश्रुपूर्ण नेत्र हुई श्रीसुचित्रा अम्बाजीने अनेक प्रकारसे बारंबार प्यार करके भली भाँति हृदयसे लगा कर श्रीविदेह महाराजकी पुत्री श्रीललीजीको विदा कर दिया ॥५५॥

श्रीशिव उवाच।

य इमां नित्यमव्यग्रः कथां परमपावनीम्।
पठतीह नरो भक्त्या स याति पदमव्ययम् ॥५६॥

इत्येकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती ! जो इस परम पावनी कथाको एकाग्रचित्त हो प्रेम पूर्वक नित्य पाठ करता है, वह श्रीललीजीके अविनाशी परम पद श्रीसाकेत धामको प्राप्त होता है ॥५६॥

अथाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

श्रीचम्पकवनमें श्रीकिशोरीजीकी गेंदलीला तथा श्रीमुरलीसरकी उत्पत्ति एवं उसका माहात्म्य-

श्रीस्नेहपरोवाच।

मैथिली स्वालयं गत्वा विह्वलां निज मातरम्।
अभिवाद्य प्रहृष्टात्मा बभूवाद्भुतदर्शना ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी श्रीसुचित्रा अम्बाजीके यहाँ से विदा हो अपने महलमें पधारीं और अपनी विह्वलता युक्त श्रीअम्बाजीको बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रणाम करके विलक्षण-दर्शन वाली हो गयीं ॥१॥

श्रीपार्वत्युवाच।

विह्वलां तां समालोक्य मातरं जनकात्मजा।
अभिप्रायेण वै केन मुदा चक्रेऽभिवादनम् ॥२॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं:-हे प्यारे ! अपनी श्रीअम्बाजीको विह्वल देखकर श्रीजनकराजदुलारीजीने उन्हें किस लिये प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम किया ? ॥२॥

एतद्रहस्यमाख्याहि कृपया चन्द्रशेखर !
दुःखे प्रसन्नताभावः किमर्थं व्यज्यते तया ॥३॥

हे श्रीचन्द्रशेखर (चन्द्रमाको अपने शिर धारण करने वाले) जू ! आप कृपया इस रहस्यको बतलाइये, कि श्रीललीजी दुःखमें प्रसन्नताका भाव क्यों प्रकट करती हैं ॥३॥

श्रीशिव उवाच ।

इयमात्मा समाख्याता सर्वेषामेव देहिनाम् ।
वल्लभः खलु सर्वस्मात्स एव परिकीर्तितः ॥४॥

श्रीशिवजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीललीजी सभी देह धारियोंकी आत्मा कही गयी हैं और आत्मा को ही निश्चय करके सबसे अधिक प्रिय कहा जाता है ॥४॥

तस्मिंस्तुष्टे ऽखिलं तुष्टं मुखनेत्रादिकं भवेत् ।
अप्रसन्ने ऽप्रसन्नं हि तस्मिन्नेवात्मनि ध्रुवम् ॥५॥

आत्माके प्रसन्न होने पर मुख, नेत्र आदि सभी अङ्ग प्रसन्न हो जाते हैं और उसकी अप्रसन्नतामें सभी अङ्ग निश्चय ही दुखी रहते हैं ॥५॥

तस्मात्सा किल सर्वात्मा प्रसन्नमुखपङ्कजा ।
दृग्गोचरी भवत्यग्रे दुःखितानां विशेषतः ॥६॥

इस हेतु से सभीकी आत्मस्वरूपा श्रीललीजी, विशेष करके दुखी लोगोंको प्रसन्न मुखकमल होकर ही दर्शन प्रदान करती हैं ॥६॥

तत्प्रसन्नं समालोक्य मुखचन्द्रं कृपानिधेः ।
सर्वाणि दुःखजालानि नाशमायन्ति तत्क्षणम् ॥७॥

उन श्रीकृपानिधि श्रीललीजूके प्रसन्न मुखचन्द्रमाका दर्शन करके, सम्पूर्ण दुःख-समूहोंका नाश तत्क्षण ही हो जाता है ॥७॥

अप्रसन्नं मुखं दृष्ट्वा तस्याश्चन्द्रमनोहरम् ।
ब्रह्मानन्दो ऽपि विलयं तूर्णमेवाधिगच्छति ॥८॥

और उनके चन्द्रमाके समान आह्लादकारी, प्रकाशमय मुखारविन्दका अप्रसन्न मुद्रामें दर्शन करके भगवदानन्द भी तत्क्षण लापता हो जाता है ॥८॥

एतस्मात्कारणाद्भद्रे ! दुःखितानां विशेषतः ।
दृग्गोचरी भवत्यग्रे प्रसन्नवदना सती ॥९॥

हे कल्याण-स्वरूपे ! इसी कारण दुखी लोगोंके सामने विशेष करके श्रीललीजी प्रसन्न मुख होकर ही दृष्टि गोचरी होती हैं अर्थात् दर्शन प्रदान करती हैं ॥९॥

तां तु सोत्सङ्गमादाय व्यपास्तविरहव्यथा ।
आचुचुम्ब मुखाम्भोजं परमानन्दनिर्भरा ॥१०॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी उन श्रीललीजीके प्रसन्न मुखारविन्दका दर्शन करके, वियोग-जनित पीड़ा से रहित हो, परमानन्द (भगवदानन्द) से परिपूर्ण हुई उनके श्रीमुखकमलको चूमने लगीं । १०॥

सत्कृतिं मम सा मातुर्वर्णयित्वा सविस्तराम् ।
श्रीचम्पकवनं गन्तुं स्वाभिलाषां न्यवेदयत् ॥११॥

उन श्रीललीजीने हमारी माता श्रीसुचित्रा अम्बाजीके सत्कारको विस्तार पूर्वक श्रीअम्बाजीसे वर्णन करके चम्पक पधारनेके लिये अपनी इच्छा निवेदन की ॥११॥

परिरभ्य महाराज्ञ्या सुनयनासमाख्यया ।
श्रीचम्पकवनं सीता समाज्ञप्ता ततो ययौ ॥१२॥

हर्ष पूर्वक हृदय लगाकर महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा आज्ञा प्राप्त करके, श्रीललीजी वहाँसे श्रीचम्पक-वनको पधारीं ॥१२॥

अनुजग्मुस्तदा तां वै स्वसारो भ्रातरस्तथा ।
इन्द्रियाणि यथा चित्तं यथा छाया शरीरिणम् ॥१३॥

जैसे इन्द्रियाँ चित्तका और छाया शरीरका अनुगमन करती हैं उसी प्रकार सभी भाई व बहिनें श्रीललीजूके पीछे पीछे गयीं ॥१३।

चन्द्रवक्त्रा विशालाक्षा रतिकामस्मयापहाः ।
अबोधवयसोपेता महामाधुर्यमण्डिताः ॥१४॥

वे सभी चन्द्रमाके समान प्रकाश मय मुख, विशालनेत्र, रति और काम देवके अभिमान को दूर करने वाले, लौकिक ज्ञान रहित अवस्थासे युक्त, महान् सौन्दर्यसे भूषित ॥१४॥

दिव्याभरणवस्त्राढ्या दिव्याङ्गा दिव्यरोचिषः ।
दिव्यरूपगुणोपेता दिव्यमालाविभूषिताः ॥१५॥

दिव्य भूषण वस्त्रोंसे युक्त दिव्य शरीर, दिव्यकान्ति, दिव्यरूप गुणसे संयुक्त, दिव्यमालाओं-से अलंकृत ॥१५॥

अनवद्याः सुखागाराः सर्वभूतमनोहराः ।
निमिवंशकुमार्यश्च निमिवंशकुमारकाः ॥१६॥

सब दोषों (त्रुटियों) से रहित, सुखके मन्दिर, सभी प्राणियोंके मनको मुग्ध कर लेने वाले वे निमि वंशी कुमारी और कुमार ॥१६॥

जानकीचरणाम्भोजमत्तचित्तषडङ्घ्रयः ।
बालक्रीडासमासक्ताः पतितोद्धरणेक्षणाः ॥१७॥

श्रीजनकदुलारीजूके श्रीचरण-कमलामें भौंराके समान मतवाले, बालक्रीडामें अत्यन्त आसक्त अपने दर्शन मात्रसे पतित जीवोंका उद्धार कर देने वाले ॥१७॥

त्रिविधानिलसञ्जुष्टं कृष्णसारमृगान्वितम् ।
द्विजैरनेकवर्णैश्च परितः परिकूजितम् ॥१८॥

शीतल, मन्द, सुगन्ध तीनों प्रकारकी वायुओंसे पूर्णसेवित, काले रङ्गके मृगोंसे युक्त, अनेक प्रकार के पक्षियों द्वारा चारों ओरसे शब्दायमान ॥१८॥

संप्राप्य चम्पकारण्यं रुक्मप्राकारवेष्टितम् ।
सद्मश्रेणिभिराकीर्णं वर्तुलाकारचत्वरम् ॥१९॥

सुवर्णके कोटसे घिरे हुये, महलोंकी पङ्क्तियोंसे व्याप्त (फैले हुये) गोल चबूतरों वाले श्रीचम्पक वनमें पहुँच कर ॥१९॥

तत्रत्याभिः सखीभिश्च सत्कृताः परया मुदा ।
लालिताः सह जानक्या रक्षिकाभिः सुरक्षिताः ॥२०॥

रक्षा करने वाली सखियों द्वारा, जनकदुलारी श्रीललीजूके समेत रक्षित तथा वहाँ (श्रीचम्पक वन) की सखियों द्वारा परमहर्षपूर्वक सत्कार और प्यारसे प्राप्त किये हुये ॥२०॥

चिन्तामणिमये रम्ये चत्वरे सन्निवेशिताः ।
निरीक्षमाणा वैदेहीं मध्यभागे विराजिताम् ॥२१॥

चिन्तामणि मय चबूतरे पर भली भाँतिसे बैठाये हुये, वे मध्य भागमें विराजमान हुई श्रीविदेह राजनन्दिनीजूका दर्शन करने लगे ॥२१॥

ऊचुः करपुटं बद्ध्वा सादरं श्लक्ष्णया गिरा ।
पश्यन्त्यः स्निग्धया दृष्ट्या सुखराशिमिदं वचः ॥२२॥

प्रेममयी दृष्टिसे अवलोकन करती हुई सुखराशि (सम्पूर्ण सुखोंकी ढेर स्वरूपा) श्रीललीजीसे वे निमिवंशी कुमारी-कुमार आदर पूर्वक, मधुर वाणी द्वारा यह हाथ जोड़ कर बोले ॥२२॥

कुमारीकुमारा ऊचुः ।

सरसिजायतलोचने ! चन्द्रबिम्बानने ! सुनयनाप्रियनन्दिनि ! प्रेमवारांनिधे ! करुणयाऽद्य विधीयतां कोऽपि लीलोत्सवो ह्यभिनवो भवमोचनो मोदपुञ्जस्त्वया२३

हे कमलके समान विशाल मनोहर नेत्र और चन्द्र बिम्बके सदृश प्रकाशमय, उज्ज्वलमुख वाली, प्रेमकी समुद्र-स्वरूपा श्रीललीजी ! आज आपको कृपा करके संसाराकार वृत्तिको छोड़ा देने वाला, आनन्दका पुञ्ज स्वरूप-कोई नवीन ही लीला-उत्सव करना चाहिये ॥२३॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

शृणुत संयतचेतसा भ्रातरश्चानुजा वच इदं मम शोभनं वाञ्छितार्थप्रदम् । कुरुत खल्विह साम्प्रतं कन्दुलीलोत्सवोमम मतं यदि रोचते वो मदीहापराः । २४

श्रीजनकराज-दुलारीजी बोलीः—मेरी इच्छाको ही प्रधान माननेवाले हे समस्त भाई-बहिनों ! आप लोग वाञ्छित-मनोरथको प्रदान करनेवाले मेरे शुभ वचनोंको एकाग्रचित्त हो श्रवण कीजिये, यदि मेरी सम्मति आप लोगोंको स्वीकार हो तो आज इस चम्पक वनमें गेन्द लीलाका उत्सव कीजिये ॥२४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदुक्तं वचः श्रुत्वा तनया निमिवंशजाः ।
हर्षपूरितसर्वाङ्गा मातृदासीर्व्यलोकयन् ॥२५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:- हे प्यारे ! श्रीललीजूके कहे हुये इस वचनको श्रवण करके हर्षसे सभी अङ्ग पूर्ण हुये, वे निमि वंशके कुमारी कुमार श्रीअम्बाजीकी दासियोंकी ओर देखने लगी २५

ताभिश्च कन्दुकान् रम्यान् प्रदाय मुदितात्मना ।
विशाले चत्वरे नीताः स्फाटिके चारुचित्रिते ॥२६॥

श्रीअम्बाजीकी वे दासियाँ उन्हें सुन्दर गेंदोंको प्रदान करके मनोहर चित्रकारी किये हुये स्फटिक-मणिके चबूतरे पर ले गयीं ॥२६॥

एकभागे स्वसारश्च द्वितीये भ्रातरः स्थिताः ।
सम्मुखे मैथिली पीठे रराजेन्दीवरप्रभे ॥२७॥

एक भागमें बहिनें और दूसरे भागमें भाई खड़े हुये तथा सम्मुख नीलकमलके समान श्याम प्रकाशमय सिंहासन पर मिथिलेश-दुलारी श्रीललीजी विराजमान हुईं ॥२७॥

अनुज्ञाता धरापुत्र्या तास्ते प्रकृतिशोभनाः।
विचक्रुः कान्दुकीं लीलां वीक्षमाणास्तदिङ्गितम् ॥२८॥

भूमिपुत्री श्रीललीजूकी आज्ञा पाकर, सहज स्वभावसे ही शोभायमान वे सभी भाई और बहिनें, उनका सङ्केत देखते हुये गेंद खेलने लगीं ॥२८॥

श्रीलक्ष्मीनिधिरुवाच।

एताभिर्निर्जिताः सर्वे वयं कन्दुकलीलया।
सोपहासं कृपाशीले ! तत्र सोढ्वा सुखं हि मे ॥२९॥

श्रीलक्ष्मीनिधि भइया बोले:—हे कृपा-मय स्वभाव वाली श्रीललीजी ! इन बहिनियोंने उपहास-पूर्वक गेंद लीलाके द्वारा हम सबोंको जीत लिया है, उस अपनी हार और इनकी जीतको सहन करके मुझको सुख नहीं है ॥२९॥

अत एव समासाद्य पक्षमस्माकमद्य वै।
स्वसृपक्षं पराजित्य पूर्णकामान्विधत्स्व नः ॥३०॥

अत एव आज हमारे पक्षमें प्राप्त हो, बहिनियोंके पक्षको विजय करके हम लोगोंके मनोरथको पूर्ण कीजिये ॥३०॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमुक्तं तदा सीता सुस्मिता ऽनुजभाषितम्।
समाकर्ण्य वचः श्लक्ष्णं सादरं तमथाब्रवीत् ॥३१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! अपने छोटे भइया श्रीलक्ष्मी-निधिजूके इस प्रकार कहे हुये वचनको श्रवण करके सुन्दर, मुस्कान वाली श्रीललीजी, आदर पूर्वक उनसे यह मधुर-वचन बोलीं ३१

श्रीजनकनन्दिन्युवाच।

यथेष्टं ते विधास्यामि भ्रातस्त्वं धैर्य्यवान्भव।
हसिष्यसि तथैवैता यथेदानीं हसन्ति वः ॥३२॥

हे भइया ! धैर्य को धारण कीजिये, जैसा तुम चाहते हो वैसा ही मैं करूँगी, जैसे इस समय ये बहिनें हरा देनेके कारण तुम्हारी हँसी कर रही हैं, उसी प्रकार इनको हरा देने पर तुम भी हँस लेना ॥३२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वाऽनवद्याङ्गी श्रीसीता भ्रातृवत्सला ।
भ्रातॄणां पक्षमाविश्य चिक्रीड स्वसृभिर्मुदा ॥३३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :—प्यारे ! भाई पर वात्सल्य रखने वाली सर्वाङ्गसुन्दरी श्रीललीजी इसप्रकार आश्वासन देकर भाइयोंके पक्षमें प्रविष्ट हो बहिनियोंके साथ आनन्दपूर्वक गेंद खेलने लगी ॥३३॥

क्रीडन्तीं तां समालोक्य विमानस्थाः सुरात्मजाः ।
गर्हयन्त्यः स्वमात्मानं सशंसुर्निमिवंशजाः ॥३४॥

विमानोंमें बैठी हुई देवकन्यायें निमिवंशकुमारियोंके साथ गेंद खेलती हुई उन श्रीललीजीका दर्शन करके अपने आपको धिक्कारती हुई उन निमिवंश-कुमारियोंकी प्रशंसा करने लगीं ॥३४॥

पारिजातप्रसूनानां वृष्टिं चक्रुः सुराङ्गनाः ।
परमाह्लादसंयुक्ता वभूवुः प्राप्तदर्शनाः ॥३५॥

देव-स्त्रियाँ उनका दर्शन करके परम आह्लादसे पूर्ण युक्त हो गयीं और कल्प-वृक्षके फूलोंकी उनपर वर्षा करने लगी ॥३५॥

अजयत्स्वसृपक्षं सा वन्धुसन्तोषसिद्धये ।
क्रीडया कन्दुकस्याथ सर्वभूतात्मसाक्षिणी ॥३६॥

अपने भाइयोंके सन्तोषके लिये सम्पूर्ण प्राणियोंकी आत्माकी साक्षी (अन्तर्यामिनी) स्वरूपा श्रीललीजीने, गेंद-लीलाके द्वारा बहिनियोंकी पार्टीको जीत लिया ॥३६॥

ततः प्रहर्षिताः सर्वे भ्रातरः कामविग्रहाः ।
वादयन्तः करतालं जहसुस्ता दरस्वनाः ॥ ३७ ॥

तब कामदेवके समान सुन्दर स्वरूप तथा शङ्खके सदृश स्वरवाले, परम हर्षको प्राप्त हुये वे सभी भइया हाथोंकी तालियाँ बजाते हुये बहिनियोंकी हँसी उड़ाने लगीं ॥३७॥

नृत्यलीलामकुर्वन्त पुनस्ते स्वसृभिर्युताः ।
वादयन्त्यां धरापुत्र्यां मुरलीं विश्वमोहिनीम् ॥३८॥

पुनः विश्वमात्रको मुग्ध करलेनेवाली मुरलीको भूमिपुत्री श्रीललीजूके बजाते हुये सभी भइया, बहिनोंके सहित नृत्य-लीला करने लगे ॥३८॥

स्वसृभ्रातृव्रजं दृष्ट्वा पिपासासम्प्रपीडितम् ।
दासीश्च विह्वलाः सर्वास्तर्हि चिन्तासमन्विताः ॥३९॥
किञ्चित्पूर्वं ततो गत्वा प्राक्षिपन्मुरली भुवि ।
नित्याभिनवचित्केलिः स्वहस्ताज्जनकात्मजा ॥४०॥

उस समय बहिन भाइयोंके दलको प्याससे पूर्ण पीडित और दासियोंको चिन्तायुक्त हुई देखकर ॥३९॥ नवीन चेतन्यमयी लीलावाली श्रीजनकजी महाराजके यहाँ पुत्री भावको प्राप्त हुईं श्रीललीजीने, वहाँ से कुछ पूर्वकी ओर जाकर अपने हस्त-कमलसे मुरलीको पृथिवीपर छोड़ दिया ॥४०॥

तन्मुखाच्छिद्रमेवाभूद्धरण्यां चतुरस्रकम् ।
तस्मात्किलोत्थितं तोयं निर्मलं सुधयोपमम् ॥४१॥

उस मुरलीकी नोकसे भूमिमें चार कोण वाला एक छिद्र हो गया, पुनः उस छिद्रसे अमृतके समान प्रभावशाली स्वच्छ जल निकल आया ॥४१॥

पश्यन्तीनां च स्वसृणां भ्रातृणां पश्यतां क्षणात् ।
अम्बुपूर्णं सरो दिव्यं प्रबभूव मनोहरम् ॥४२॥

बहिन भाइयोंके देखते-देखते मुरलीकी नोकसे बना हुआ छिद्र क्षण मात्रमें लोकोत्तर (लोकसे विलक्षण) प्रभावसे युक्त, मनोहर, जलपूर्ण सरोवर हो गया ॥४२॥

तज्जलेन पिपासार्त्तिं जहुस्ते ता मुदान्विताः ।
मैथिलीदर्शनानन्दा अनुजाः कौतुकान्विताः ॥४३॥

श्रीमिथिलेशललीजूके दर्शनोंमें ही आनन्द माननेवाले वे सभी भाई बहिन आश्चर्ययुक्त हो, उस सरोवरके जलसे अपनी प्यासकी पीड़ाको दूर करने लगे ॥४३॥

श्रीशिव उवाच ।

देवा ब्रह्मान्तिकं गत्वा पप्रच्छुर्विनयान्विताः ।
किं नाम सरसस्तस्य सीतया यद्विनिर्मितम् ॥४४॥

भगवान् शिवजी बोले :—हे पार्वती ! श्रीललीजूकी मुरली द्वारा उस सरोवरके बन जाने पर देवता श्रीब्रह्माजीके पास जाकर विनयपूर्वक पूछने लगे :—हे श्रीविधाताजी ! श्रीजनकदुलारीजूके निर्माण किये हुये उस सर (तालाव) का नाम क्या प्रसिद्ध होगा ? ॥४४॥

किं महत्त्वं च किं धातस्तदाचक्ष्व कृपामय !
एतदर्थं वयं प्राप्ताः सकाशं ते पितामह ! ॥४५॥

और उसकी महिमा किस प्रकारकी होगी, सो आप वर्णन कीजिये। हे कृपामय, श्रीविधाताजी! इसी रहस्य को जानने के लिये हम लोग आपके पास आये हैं ॥४५॥

ब्रह्मोवाच।

मुरल्या सम्भवो यस्मात्तस्मात्तन्मुरलीसरः।
नाम्नाऽनेनैव विबुधास्त्रिलोक्यां ख्यातिमेष्यति ॥४६॥

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर श्रीब्रह्माजी बोलेः—यह सरोवर श्रीललीजीकी मुरलीसे प्रकट हुआ है, अत एव यह तीनों लोकोंमें इसी "मुरलीसर" नामसे ही प्रसिद्ध होगा ॥४६॥

सुपुण्यं दर्शनं तस्य स्पर्शनं पापनाशनम्।
मज्जनं हृत्तमोहारि पानं प्रेमप्रभावनम् ॥४७॥

उसके दर्शनोंसे उत्तम पुण्यकी प्राप्ति होगी, और स्पर्श करनेसे समस्त पापों का नाश होगा, तथा उसमें स्नान करनेसे हृदय का अन्धकार दूर होगा एवं उस का जल पीनेसे भगवच्चरणारविन्दोंमें प्रेमकी उत्पत्ति होगी ॥४७॥

नित्यं निषेवणं तस्य पराभक्तिप्रदायकम्।
लब्धायां नेह वै यस्यां दुर्लभं चास्ति किञ्चन ॥४८॥

और उस सरोवर का नित्यसेवन पराभक्ति को प्रदान करने वाला होगा, कि जिस भक्ति को प्राप्त हो जाने पर इस त्रिलोकीमें और भी कुछ दुर्लभ नहीं रहता ॥४८॥

श्रीशिव उवाच।

एवं बहुविधं श्रुत्वा माहात्म्यं द्रुहिणोदितम्।
त्रिदशास्तस्य सरसो देवलोकमथागमन् ॥४९॥

भगवान् शिवजी बोले—हे पार्वति! इस भाँति श्रीब्रह्माजीके द्वारा उस सरोवरकी अनेक प्रकारसे कही हुई महिमाको सुनकर देवता, देवलोकको पधारे ॥४९॥

बह्वादरेण वैदेही पूजिता स्वसृबन्धुभिः।
मातृदासीभिरानीता गीयमाना ततो गृहम् ॥५०॥

इत्यशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

—: मासपारायण-विश्राम २० :—

इधर बहिन-भाइयोंके द्वारा बहुत ही आदर पूर्वक पूजित तथा यशोगानकी जाती हुई विदेहराजदुलारी श्रीललीजीको श्रीसुनयना अम्बाजीकी दासियाँ, उस चम्पकवनसे महलको ले गयीं ५०

अथैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

श्रीकिशोरीजीका विद्यारम्भ तथा उनके जन्मोत्सवमें

इन्द्राणी (शची) का आगमन

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथ स्वयं पुण्यमये मुहूर्ते तिथौ शुभायां सुदिने शुभर्क्षे ।
पुरोहितो भूषयितुं कुलस्य समस्तविद्याभिरियेष सीताम् ॥१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! तदनन्तर कुलपुरोहित श्रीशतानन्दजी महाराजने श्रीललीजी को समस्त विद्याओंसे भूषित करनेकी स्वयं इच्छा की तदनुसार पुण्य-मय शुभमुहूर्त, शुभ तिथि, शुभ दिन, तथा शुभ नक्षत्रमें ॥१॥

हूत्यागते सर्वसुहृत्समाजे विप्रर्षिवृन्दे परिमोदमाने ।
मुदा शतानन्द उदारतेजा वाण्यादिपूजां समकारयत्सः ॥२॥

आमन्त्रणके द्वारा आये हुये समस्त सुहृद-समाज और ब्राह्मण ऋषि वृन्दोंके मुदित होनेपर उदारतेज वाले श्रीशतानन्दजी महाराजने हर्षपूर्वक श्रीसरस्वतीजी आदिकोंकी पूजा करवायी ॥

ततोऽक्षरारम्भविधिं विधाय प्रवर्तमाने कलगानवाद्ये ।
गुरुर्गृहीत्वा क्षितिजाकराब्जं जग्राह लक्ष्मीनिधिपाणिपद्मम् ॥३॥

तत्पश्चात् मनोहर मङ्गलमय गान-वाद्यके प्रारम्भ हो जाने पर गुरु श्रीशतानन्दजी महाराजने सर्व प्रथम भूमि-सुता श्रीललीजूका हस्तकमल पकड़कर उनके द्वारा अक्षरारम्भ विधिको कराके श्रीलक्ष्मी निधि भइयाका भी अक्षरारम्भ कराया ॥३॥

विधिं स तेनापि च कारयित्वा प्रचक्रमे कारयितुं कृतार्थः ।
सुतैः सुताभिश्च महामुनीन्द्रो नृपानुजानां तममोघसेव ! ॥४॥

कभी निष्फल न जाने वाली सेवा वाले, हे श्रीप्राणनाथजी ! श्रीलक्ष्मीनिधि भइयासे भी अक्षरारम्भ विधि कराके, कृतार्थता को प्राप्त हुये वे श्रीशतानन्दजी महाराज श्रीविदेहमहाराजके भाइयोंके पुत्र-पुत्रियोंसे भी उस (अक्षरारम्भ) विधिको कराने लगे ॥४॥

गृहं समासादितदक्षिणोऽसौ जगाम तुष्टेन हृदा महात्मा ।
राज्ञ्या समभ्यर्चितपादपद्मो गुरुर्विदेहाधिपवंशजानाम् ॥५॥

श्रीसुनयना अम्बाजीसे पूजित चरण-कमल, श्रीनिदेह महाराजके कुलमें उत्पन्न राजाओंके गुरु, महात्मा श्रीशतानन्दजी महाराज दक्षिणा प्राप्त करके बड़े प्रसन्न हृदयसे अपने मन्दिरको पधारे ॥५

दानेन मानेन समर्चनेन स्तवेन भक्त्या ह्यभिवादनेन ।
आबालवृद्धाः पुरुषाः स्त्रियश्च प्रतोषितास्तुर्यविधा नृपेण ॥६॥

बालकसे लेकर वृद्ध-पर्यन्त चारों प्रकारकी (जातियों) और आश्रमोंके स्त्री-पुरुषोंको, दान, मान, पूजन, स्तवन (स्तुति) अभिवादन (प्रणाम) के द्वारा प्रेम पूर्वक श्रीमिथिलेशजी महाराजने बहुत ही सन्तुष्ट किया ॥६॥

जयेति शब्दध्वनिरन्तरिक्षे पातालुलोके भुवि संप्रविष्टा ।
तेषां तदाऽऽह्लादकरी जनानामभूद्भृशं स्थावरजङ्गमानाम् ॥७॥

इस लिये उन सभी सन्तुष्टजनोंके जयकारकी ध्वनि उस समय स्वर्ग, भूमि, पाताल इन तीनों लोकोंमें पूर्ण प्रवेश कर, वहाँके स्थावर-जङ्गम दोनों प्रकारके प्राणियोंको अतिशय आह्लादकारी हुई ॥७॥

स्वल्पेन कालेन विदेहपुत्र्याः समस्तविद्याखनिकौशलं सः ।
निरीक्ष्य पद्मोद्भवसूनुसूनुर्मुग्धोऽपतद्दुस्तरकौतुकाब्धौ ॥८॥

स्वल्पकालमें श्रीविदेहनन्दिनीजूकी समस्त विद्याओंमें अत्यन्त निपुणता देखकरके वे श्रीब्रह्माजीके पौत्र श्रीशतानन्दजी महाराज मुग्ध हो कठिनतासे पार जानेवाले आश्चर्यरूपी समुद्रमें गिर पड़े ॥ ८ ॥

श्रीशिव उवाच ।

न चित्रमेतच्छृणु शैलपुत्रि! श्रीभूमिजायां जनकात्मजायाम् ।
वेदास्तु निःश्वासमया हि यस्यास्तस्यां परेषां परवल्लभायाम् ॥९॥

भगवान् शिवजी बोले :—हे देवि! वेद जिनके श्वासमय हैं उन परात्पर प्रभुकी परमप्यारी भूमिसुता, श्रीजनकललीके विषयमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥९॥

वाचस्पतित्वं यदपाङ्गदृष्ट्या संप्राप्यते देवि ! निरक्षरैश्च ।
विडम्बनं तत्पठनं मुनीनां मतेन मर्यादनिबन्धनाय ॥१०॥

हे देवि जिनके। कटाक्षमात्रसे ही निरक्षर (मूर्ख) भी श्रीबृहस्पतिजीकी योग्यताको पूर्ण-

तया प्राप्त करलेते हैं, उनका विद्या पढ़ना मुनियोंकी सम्मतिसे नकल करना (अथवा) पढ़नेकी मर्यादा बाँधनेके लिये है ॥१०॥

अवाच्यमानन्दमवाप राजा नैपुण्यमालोक्य तदात्मजायाः ।
दानं दिशन्ती विपुलं द्विजेभ्यो न हर्षपारं जननी जगाम ॥११॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीललीजीकी विद्या-निपुणता देखकर अवर्णनीय सुखको प्राप्त किया, श्रीसुनयनाअम्बाजी ब्राह्मणोंको दान देती हुई हर्षका पार ही नहीं प्राप्त कर सकीं, अर्थात् उसी आनन्दमें डूबी रह गयीं ॥११॥

जन्मोत्सवं वार्षिकमात्मजाया विधातुमिच्छां विधिना चकार ।
हृदा महोत्साहमयेन राज्ञी ततो जगन्मङ्गलमङ्गलायाः ॥१२॥

तत्पश्चात् महान् उत्साहभरे हृदयसे श्रीसुनयनाअम्बाजी समस्त जगत्‌के मङ्गलोंकी मङ्गल-स्वरूपा अपनी श्रीललीजीके वार्षिक-जन्मोत्सवको विधिपूर्वक मनानेकी इच्छा करने लगीं ॥१२॥

तद्दर्शनाशापरिलोलचित्ता पुलोमजा वज्रधरस्य जाया ।
दृष्ट्वाऽवकाशं गृहमाजगाम विदेहराजस्य तदाऽप्सरोभिः ॥१३॥

उस उत्सवको देखनेकी इच्छासे अत्यन्त चञ्चल-चित्त हुई पुलोमजीकी पुत्री श्रीइन्द्राणीजी, अप्सराओंके समेत अवसर देखकर श्रीविदेहमहाराजके महलमें आ पधारीं ॥१३॥

तां नर्तकीवेषधरां सुनेत्रा मनोऽभिरामां विबुधेन्द्रवामाम् ।
समागतां दिव्यतनुं सखीभिः सकाशमानीय मुदा बभाण ॥१४॥

श्रीसुनयना अम्बाजी नर्तकी-वेषको धारण किये हुये मनको सुख देनेवाली, देवराज इन्द्रकी प्यारी, श्रीशचीजीको आई हुई देखकर, सखियोंके द्वारा अपने पास बुलाकर उनसे हर्ष पूर्वक बोलीं-॥ १४ ॥

श्रीसुनयनोवाच ।

का त्वं विनीते ! स्थितिरत्र कुत्र ? प्रब्रूहि तत्स्वागतमस्तु तुभ्यम् ।
दिष्ट्याऽऽगता त्वं मम पुत्रिकाया जन्मोत्सवे सम्प्रति संप्रवृत्ते ॥१५॥

हे नम्र स्वभाववाली ! मैं आपका स्वागत करती हूँ, बतलाइये आप कौन हैं ? और कहाँ ठहरी हैं ? बड़े सौभाग्यसे मेरी श्रीललीजीके जन्मोत्सव (वर्षगांठ) के मनाये जाते समयमें आपका शुभागमन हुआ है ॥१५॥

श्रीशच्युवाच ।

अहं महाभागतमे निशम्य त्वदात्मजाजन्ममहोत्सवं वै ।
समागता शीघ्रतयाऽनुगाभिस्तवालयं नृत्यकलाप्रवीणा ॥१६॥

श्रीशचीजी बोलीं:-हे बड़ भागिनियोंमें परम श्रेष्ठे ! श्रीमहारानीजी ! आपकी श्रीललीजूके जन्मोत्सवका समाचार श्रवण करके, नृत्यकलाको भली भाँतिसे जानने वाली मैं, अपनी दासियों-सहित शीघ्रता पूर्वक आपके महलको आई हूँ ॥१६॥

नास्ति स्थितिः काप्यधुनाऽपि मेऽम्ब ! स्यात्सोचिता यत्र तदेव शंस ।
महोत्सवालोकनसस्पृहायास्त्वदङ्घ्रिकञ्जद्वयमागतायाः ॥ १७ ॥

हे श्रीअम्बाजी ! अभी तक मेरा कहीं भी डेरा नहीं हुआ है, अत एव जन्म-महोत्सवके दर्शनोंकी इच्छा वाली, तथा आपके युगल श्रीचरण कमलोंमें झुकी हुई मेरे लिये वह (निवास) जहाँ उचित हो, सो बतलाइये ॥१७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

संस्थीयतामत्र हि मन्निदेशात्त्वयालये नर्तकि ! मे समोदम् ।
जन्मोत्सवं पश्य ममात्मजाया यथाभिलाषं शुचिभावयुक्ते ! ॥१८॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे पवित्रभाव वाली श्रीनर्तकीजी ! मेरी आज्ञासे आप मेरे महलमें ही आनन्द पूर्वक डेरा कीजिये और मेरी श्रीललीजूके जन्मोत्सवको अपनी इच्छाके अनुसार अवलोकन कीजिये ॥१८॥

श्रीशच्युवाच ।

महाकृपाऽस्त्यम्ब ! मयि त्वदीया करोम्यतः किं स्वविधेः प्रशंसाम् ।
अहं कृतार्था प्रभवाम्यसंशयं तव प्रसादात्क्षितिजाङ्घ्रिदर्शनात् ॥१९॥

श्रीशचीजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! आपकी मेरे प्रति बड़ी ही कृपा है-अत एव मैं अपने सौभाग्यकी कहाँ तक प्रशंसा करूँ ? आपकी कृपासे भूमिसुता श्रीललीजूके श्रीचरणकमलोंके दर्शनोंसे मैं निःसन्देह ही कृतार्थ हो जाऊँगी ॥१९॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं तयोक्ता सुरनाथपत्न्या प्रहर्षितात्मा मिथिलाधिपेश्वरी ।
कार्येष्वनेकेषु च दत्तचित्ता महोत्सवस्य प्रबभूव वल्लभे ! ॥२०॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती ! इन्द्रकी प्राणप्रिया श्रीशचीजीके इस प्रकार कहने पर अत्यन्त हर्षित मनसे मिथिलेश्वरी श्रीसुनयना अम्बाजी उत्सवके अनेक कार्योंमें दत्त चित्त होगईं २०

कार्यावसाने महिषीसभायां विराजमाना दयिता नृपस्य ।
नृत्याय तस्यै प्रददौ निदेशं नृत्योचितालङ्कृतिशोभितायै ॥२१॥

पुनः कार्योंकी समाप्तिमें रानियोंकी सभामें विराजी हुई श्रीसुनयना महारानीजीने, नृत्योपयोगी शृङ्गार किये हुये शचीजीको नृत्य करनेके लिये आज्ञा प्रदान की ॥२१॥

मुदा निदेशं प्रतिलभ्य राज्या गातुं प्रवृत्तास्वखिलालिषु द्राक् ।
साऽनृत्यदग्रे जनकात्मजाया मातुस्तदोत्सङ्गविराजितायाः ॥२२॥

श्रीसुनयना अम्बाजीकी आज्ञा पाकर, वे श्रीशचीजी हर्षपूर्वक सभी सखियोंके गान करते हुये श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजी हुई, श्रीजनकललीजूके सामने नाचने लगीं ॥२२॥

श्रीशच्युवाच ।

नमामि दीनवत्सलां दयार्णवां सुकोमलां
ललाममङ्गलस्तुतिं पशुघ्नपावनस्मृतिम् ।
प्रपन्नभीतिहारिणीं त्रिधैषणानिवारिणीं
नमामि वेदवन्दितां वरप्रदां शुचिस्मिताम् ॥२३॥

श्रीशचीजी बोलीं:-जिनका दीन (अभिमान रहित) प्राणियोंके प्रति वात्सल्य भाव रहता है जिनकी दया समुद्रके समान है, जो अत्यन्त ही कोमल है, जिनकी स्तुति सुन्दर मङ्गलमयी है तथा जिनका सुमिरण पशु हत्या करनेवाले (कसाइयाको) भी पवित्र कर देने वाला है, मैं उन्हें प्रणाम करती हूँ। जो शरणमें आये हुये प्राणियाके सभी प्रकारके भयोंको दूर करने वाली तथा स्त्री, पुत्र, धनकी गादी इच्छाको हटा देने वाली, पवित्र मुसुकानसे युक्त, वेदोंके द्वारा प्रणाम की हुई, वर (अभिलषित मनोरथोंको देने वाली हैं, उनको मैं प्रणाम करती हूँ ॥२३॥

कुभाग्यलक्ष्मशोधिनीं स्मरन्मतिप्रबोधिनीं
भजज्जनेष्टदायिकां भजे त्रिलोकनायिकाम् ।
दयार्द्रनेत्रपङ्कजां कराम्बुजां पदाम्बुजां
श्रये सुधाकराननां गतिं परां महात्मनाम् ॥२४॥

खोटे भाग्यके चिह्नोंका सुधार करनेवाली और स्मरण करनेवालोंके ज्ञानको हर प्रकारसे जगाने

वाली तीनों लोकोंकी स्वामिनी, दयासे आर्द्र कमलके समान नेत्र, कमलके समान हाथ व कमल के सदृश सुकोमल चरण तथा चन्द्रमाके समान आह्लादकारी प्रकाश युक्त मुख वाली, महात्माओं यानी अपने हृदयमें एक सच्चिदानन्दघन भगवानको ही स्थान देने वालोंकी सबसे प्रधान रक्षा करनेवाली हैं, मैं उनकी शरणमें प्राप्त हो रहा हूँ ॥२४॥

विदेहवंशसम्भवां चिदप्रमेयवैभवां
नता निसर्गसुन्दरीं हृदा स्वनेत्रगोचरीम् ।
महामुनीन्द्रभावितां रमाशिवादिसेवितां
प्रणौम्यनाथपालिकां विदेहराजबालिकाम् ॥२५॥

श्रीविदेहमहाराजके वंशमें जो प्रकट हुई हैं, जिनका ऐश्वर्य चैतन्यमय और असीम है तथा जो स्वाभाविक ही सुन्दरी और मेरे नेत्रोंके सामने विराजमान हैं, उनको मैं प्रणाम करती हूँ। बड़े-बड़े मुनि-शिरोमणि जिनकी भावना करते हैं, श्रीलक्ष्मीजी श्रीपार्वतीजी जिनकी सेवामें रहती हैं, जो भगवानको ही एक अपना रक्षक समझनेवालोंका विशेष पालन करनेवाली और श्रीविदेह महाराजकी बालिका कहाती, हैं मैं उनका स्तवन करती हूं ॥२५॥

स्वरूपनिर्जितश्रियं परावरां महाधियं
प्रपन्नकल्पवल्लरीं भजे त्रिलोकसुन्दरीम् ।
शिशुस्वरूपधारिणीं सतां मनोविहारिणीं
स्वमातुरङ्कशोभितां समानताऽस्मि भूसुताम् ॥२६॥

अपनी सुन्दरतासे पूर्णतया श्री (शोभा) को विजय करने वाली, परात्पर स्वरूपा, सबसे बड़ी कल्पनासे युक्त, भक्तोंकी अभीष्ट पूर्तिके लिये जो कल्पलता हैं उन त्रिलोकसुन्दरीजू का, मैं भजन करती हूँ। जो शिशुस्वरूपको धारण किये हुई सन्तोंके मनमें विहार करने वाली, अपनी श्रीअम्बाजीकी गोदमें सुशोभित हैं, उन भूमिसुता श्रीललीजूको मैं (तन, मन, वचनसे) सम्यक् प्रकार प्रणाम करती हूँ ॥२६॥

श्रीशिव उवाच ।

इमं स्तवं पठन्ति ये नराः स्त्रियश्च भावतो
भवन्ति ते सदा शिवे ! तदाश्रिताः स्वभावतः ।

अरोगतां च विज्ञतां कृतज्ञतामनन्यतां
सुखं तथस्य मानतां मनोरथैश्च पूर्णताम् ॥२७॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे मङ्गलस्वरूपे ! इस स्तोत्रका जो मनुष्य या स्त्रियाँ भावसे नित्य पाठ करते हैं, वे अरोगता, विज्ञता, कृतज्ञता अनन्यता, सम्मान तथा मनोरथोंके द्वारा पूर्णताको सुखपूर्वक प्राप्त करके, स्वभावसे ही श्रीललीजूके हो जाते हैं ॥२७॥

श्रीलेइवरोवाच।

इदं सुतास्तोत्रमयं सुगानं तन्नृत्यमुग्धा हि निशम्य राज्ञी ।
अपृच्छदादत्य शचीं तदानीं तां नर्तकीवेषधरां सभावम् ॥२८॥

श्रीललीजूके स्तोत्र-मय इस गानको श्रवण करके उनके नृत्य पर मुग्ध हुई श्रीअम्बाजी, नर्तकी वेष धारण किये हुई उन शचीजीसे भावपूर्वक पूछने लगीं ॥२८॥

श्रीसुनयनोवाच।

भद्रं हि ते नर्तकि ! सर्वदाऽस्तु त्वयोक्तमेतन्मम पुत्रिकायाः ।
स्तोत्रं शुभं गानमिषेण कस्मादत्युक्तिपृक्तं परयाऽनुरक्त्या ॥२९॥

हे श्रीनर्तकीजी ! आप का सदा कल्याण हो परम श्रद्धा-पूर्वक आपने गानेके बहानेसे हमारी श्रीललीजूके अत्युक्ति-पूर्ण इस सुन्दर स्तोत्रको किस कारणसे कथन किया है ? ॥२९॥

श्रीशच्युवाच।

नेदं मया स्तोत्रधिया मुदोक्तं गानं महाराज्ञि ! ऋतं यदुक्तम् ।
अत्युक्तियुक्तं कुत एव तत्र तथ्यं न वक्तुं खलु शक्यते यद् ॥३०॥

श्रीशचीजी बोलीं:-हे श्रीमहारानीजी ! मैंने स्तोत्र बुद्धिसे यह गान नहीं गाया है और जो कुछ गाया है, वह सत्य ही है क्योंकि जिनका यथार्थ भी कोई वर्णन नहीं कर सकता, भला उनका अत्युक्ति-मय कथन कोई कहाँसे कर सकेगा ? ॥३०॥

इमां सुतां दृष्टिचरीं विधाय स्वभावतो रुद्धमनोजवाऽहम् ।
शृणोमि तत्तां च विलोकयामि वदामि तामेव तथा स्मरामि ॥३१॥

हे श्रीअम्बाजी ! आपकी श्रीललीजूका दर्शन करके मेरे मनकी गति स्वाभाविक रुक गयी है अत एव मैं उन्हींके नाम वार्तादि श्रवण करती हूँ और चारो ओर उन्हींका दर्शन कर रही हूँ, तथा

मेरे मुखसे भी उन्हींका नाम-यश आदि स्वाभाविक उचरित हो रहा है, एवं स्मरण पथमें भी वे ही आरही हैं ॥३१॥

मनो मदीयं खलु रूपलीनं मिलिन्दवृत्तिं शिर आससाद।
त्वदात्मजायाः पदपद्मयुग्मे वाणी यशोवारिधिमीनवृत्तिम् ॥३२॥

मेरा मन श्रीललीजूके रूपमें लीन है, शिर उनके श्रीचरण-कमलोंमें भौंरेकी वृत्तिको प्राप्त हो रहा है, वाणी श्रीललीजूके यश रूपी समुद्रके लिये मछलीकी वृत्तिको प्राप्त है ॥३२॥

हे भूमिजे ! स्वामिनि ! दीनवत्सले ! कृपानिधे ! श्रीमिथिलेशनन्दिनि ! ।
कृपात्तराजेन्द्रसुताद्भुताकृते ! प्रसीद मे त्वां शरणं गताऽस्म्यहम् ॥३३॥

हे भूमिसे प्रकट होने वाली ! हे श्रीस्वामिनीजू ! हे सब अभिमान रहित प्राणियों पर वात्सल्य-भाव रखने वाली ! हे कृपानिधे ! श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू ! हे अपनी निर्हेतुकी कृपासे अद्भुत राजकुमारीका स्वरूप धारण किये हुई श्रीललीजी ! मैं आपकी शरणमें प्राप्त हूँ, मुझ पर प्रसन्न हूजिये ॥३३॥

श्रीशिव उवाच।

एतत्समाभाष्य मनोज्ञदर्शनां पश्यन्त्यसौ राजसुतां शुचिस्मिताम्।
निरोद्धुमाह्लादजवं न साऽशकत्पपात भूमौ सहसेन्द्रवल्लभा ॥३४॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे श्रीपार्वतीजी ! इन्द्रवल्लभा श्रीशचीजी ऐसा कहकर पवित्र मुसुकान और मनोहर दर्शनों वाली श्रीराजकुमारीजूका दर्शन करती हुई आह्लादके वेगको न सम्हाल सकीं, अतः सहसा पृथिवी पर गिर पड़ीं ॥३४॥

तस्या विसञ्ज्ञामपहर्तुकाम्यया कृता उपाया बहुशो यथामति।
राज्ञ्या विदेहस्य महामहात्मनस्तेषां न चैकोऽपि बभूव सार्थकः ॥३५॥

उनकी मूर्च्छाको निवारण करने के लिये महात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीविदेह महाराजकी महारानी श्रीसुनयना अम्बाजी अपनी जानकारी भर बहुतसे उपायोंको किये, परन्तु उनमेंसे एक भी सफल न हुआ ॥३५॥

तदा हि संभ्रान्तमतिर्नरेश्वरी गुरुं समाहूय नता कृताञ्जलिः।
तां दर्शयित्वा चरितं तदादितो निवेद्य तस्मै कुतुकान्विता स्थिता ॥३६॥

उस समय पूर्ण चकर खाई हुई मति वाली श्रीअम्बाजी, गुरु श्रीशतानन्दजी महाराजको

बुलाकर प्रणाम किये और हाथ जोड़ कर शचीजीको दिखाकर तथा उन्हें आदिसे ही उनके समस्त वृत्तान्तको निवेदन करके आश्चर्य युक्त हुई खड़ी हो गयीं ॥३६॥

श्रीशतानन्द उवाच ।

अस्या महारोगनिवर्तिकौषधिः सीताकराम्भोजतले तिरोहिता ।
त्वं मा शुचो वेद्मि महीसुताम्बिके नान्यः प्रयत्नः सुलभोऽत्र दृश्यते ॥३७॥

श्रीशतानन्दजी महाराज बोलेः–हे भूमिसुता श्रीललीजूकी अम्बाजी ! इन नर्तकीजीके महारोग को दूर करने वाली औषधि श्रीललीजूकी कमलके समान सुन्दर सुकोमल हथेलीमें छिपी हुई है, उसे मैं जानता हूँ। अत एव आप चिन्ता न करें। उस औषधिको छोड़कर और कोई भी उपाय इनको सचेत करने के लिये सुलभ नहीं दीखता ॥३७॥

चन्द्रानने ! पद्मपलाशलोचने ! विमूढसञ्ज्ञां परिपश्य नर्तकीम् ।
भद्रं हि ते पुत्रि ! सरोजपाणिना स्पृष्ट्वा क्लिन्नां कुरु मूर्च्छयोज्झिताम् ॥३८॥

हे चन्द्रमाके समान स्वाभाविक आह्लाद प्रदान करनेवाले, प्रकाशयुक्त मुख और कमलदलके सदृश मनोहर नेत्रवाली श्रीललीजी ! आपका मङ्गल हो। मूर्छाको प्राप्त हुई इस नर्तकीको आप भलीभाँति देखिये, और अपने कर-कमलोंका स्पर्श प्रदान करके इसे मूर्छा रहित (सावधान) कीजिये ३८

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं तदोक्ता नरनाथनन्दिनी माधुर्य्यपाथोनिधिपूजिताङ्घ्रिका ।
प्रवर्षदानन्दकलस्मितेक्षणा पस्पर्श भार्य्यां कृपयाऽमरेशितुः ॥३९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीशतानन्दजी-महाराजके इस प्रकार कहने पर, परम आनन्द की प्रचुर वर्षा करते हुये मनोहर मुसुकान युक्त चितवन वाली, राजनन्दिनी श्रीललीजीने कृपा करके देवराज इन्द्रकी प्राणप्रिया श्रीशचीजीको, अपने कर-कमलसे स्पर्श किया ॥३९॥

सा लब्धसञ्ज्ञा क्षितिजापदाब्जयोर्धृत्वा शिरः पुण्यतमं मुहुर्मुहुः ।
आनन्दबाष्पाप्लुतपङ्कजेक्षणा स्वकिङ्करीभिः समगाददृश्यताम् ॥४०॥

उस स्पर्शके प्रभावसे श्रीशचीजी सावधान हो, श्रीअवनि-कुमारीजूके श्रीचरणकमलोंमें अपना अति पवित्र शिर बारंबार रखकर, कमलके समान नेत्रोंमें आनन्दमय अश्रुओंको भरे हुई वे अपनी दासियोंके समेत अन्तर्हित हो गयीं ॥४०॥

राज्य ऊचु ।

हे देवि ! केयं समुपागता सती प्रियंवदा प्रेमदशाप्रदर्शिका ।
अगादविज्ञातगतिः क सत्वरं निरीक्षमाणास्वखिलासु सुद्युतिः ॥४१॥

रानियाँ बोलीं:-हे देवि ! अज्ञात मार्गवाली प्रियभाषिणी प्रेमकी दशाको भली भाँति दिखाने वाली यह आई हुई कौन थी ? और हम सबोंके देखते हुये तुरत कहाँ चली गयी ॥४१॥

श्रीसुनयनोवाच ।

न वेद्मि तां दृष्टवती न तां पुरा क संगयातेति च सा न वेद्म्यहम् ।
आश्चर्यमग्नाऽस्मि वदामि किं हि वो विलोकयन्ती चरितानि भूभुवः ४२

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं:-हे बहिनों ! न मैं उन नर्तकीजीको जानती ही हूँ न पहिले कभी उन्हें देखा ही था, और वे कहाँ गयीं ? यह भी मैं नहीं जान रही हूँ, अधिक आप लोगोंसे कहूँ क्या ? पृथिवीसे प्रकट हुई अपनी श्रीललीजूके चरित्रोंको देखती २ मैं स्वयं आश्चर्यमें डूब रही हूँ ४२

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्थं निगद्याथ महोत्सवेऽखिलान् समागतान्मोदभरेण चेतसा ।
नृपोचितस्रक्पटभूषणोत्तमैर्विभूष्य राज्ञी सुचकार सत्कृतान् ॥४३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! इस प्रकार श्रीअम्बाजी सभी देवरानियोंसे कहकर श्रीलली-जीके जन्म-महोत्सवमें पधारे हुये सभी लोगोंका राजाओंके योग्य उत्तम माला, वस्त्र, भूषणोंके द्वारा हर्षपूर्ण चित्तसे शृङ्गार कराके भली भाँति सत्कार किया ॥४३॥

द्विजाङ्गनाश्चैव तथा कुलाङ्गनाः सर्वाङ्गनाः प्रीतितया समर्चिताः ।
सपुत्रकन्या मिथिलेन्द्रकान्तया ययुर्दिशन्त्यः शुभमाशिषं हि ताः ॥४४॥-

अत एव ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ और कुलकी स्त्रियाँ तथा सभी स्त्रियाँ पुत्र पुत्रियोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रिया श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा प्रेम पूर्वक भली भाँति पूजित होकर शुभ आशीर्वाद देती हुईं, प्रस्थान करने लगीं ॥४४॥

तथा नरेन्द्रेण विदेहमौलिना द्विजातयः सर्व उपस्थिता जनाः ।
सुसत्कृताः प्रेमपरिप्लुतात्मना ययुर्गृहं स्वं स्वमुदाहृताशिषः ॥४५॥

इत्येकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

—: नवाह्न पारायण-विश्राम ६ :—

उसी प्रकार श्रीमिथिलेशजी-महाराजके द्वारा प्रेम-पूर्ण हृदयसे भलीभाँति सत्कारको प्राप्त हो ब्राह्मणादि उपस्थित पुरुष वर्ग मङ्गलमय आशीर्वाद कहकर अपने-अपने घरोंको पधारा ॥४४॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

दासी-पुत्री-श्रीसुशीलाजीको श्रीकिशोरीजीके सखीपदकी प्राप्ति–

श्रीशिव उवाच ।

विष्णुदत्त इति ख्यातः क्षत्रियो धनधान्यवान् ।
वङ्गदेशनिवासी स सतां परमपूजकः ॥१॥

भगवान् शिवजी बोले–हे पार्वती ! धन-धान्यसे युक्त, सन्तोंके परम पुजारी, विष्णुदत्त इस नामसे विख्यात एक क्षत्रिय भक्त वङ्ग (बङ्गाल) देशमें निवास करते थे ॥१॥

तदन्तःपुरदास्येका सकलानामविश्रुता ।
तस्याः पुत्री सुशीलाऽऽसीद्वयसा पञ्चवार्षिकी ॥२॥

उनके अन्तः पुर (हवेली) में सकला नामसे प्रसिद्ध एक दासी थी। उसकी पाँचवर्षकी अवस्था वाली एक सुशीला नामकी पुत्री थी ॥२॥

सा कदाचित्सशुश्राव वैष्णवानां सुसंसदि ।
सीतायाश्चरितं दिव्यं सुतायाः स्वसृबन्धुभिः ॥३॥

वैष्णवोंकी उस श्रेष्ठ समाजमें, उस सुशीला नामकी पुत्रीने बहिन-भाइयोंके सहित श्रीजनकराज-दुलारीजूके दिव्य चरितोंको सुना ॥३॥

मातरं तदुपागम्य प्रहृष्टवदना सती ।
वाचा संश्लक्ष्णया प्रोचे प्रपश्यन्ती तदाननम् ॥४॥

इस लिये वह प्रसन्न मुख होती हुई अपनी माँके पास गयी और उसके मुखकी ओर देखती हुई बड़ी मीठी वाणीसे बोली:–॥४॥

श्रीसुशीलोवाच ।

अहो अम्ब ! मयेदानीं समज्यायां महात्मनाम् ।
गतवत्या श्रुतं दिव्यं रहस्यं यदनुत्तमम् ॥५॥

सरोजमृदुहस्ता च जलजातपदद्वया ।
सुकेशी पक्वबिम्बोष्ठी सुभाला तनुमध्यमा ॥१२॥

उनके कमलके समान कोमल हाथ और कमलके सदृश युगल चरण, सुन्दर केश, पके बिम्बाफलके समान लाल ओष्ठ और अधर हैं, सुन्दर मस्तक तथा सिंहके सदृश उनकी पतली कमर है ॥ १२ ॥

सुभ्रूः सर्वानवद्याङ्गी सर्वभूतमनोहरा ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना सुदती वल्गुदर्शना ॥१३॥

उनकी भौंह बड़ी ही सुन्दर हैं, सभी अङ्ग दोषों (त्रुटियों) से रहित हैं। वे सभी प्राणियोंके मनको हरण करने वाली, समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, सुन्दर दान्त व मनोहर दर्शनोंवाली हैं १३

दिव्याभरणवस्त्राढ्या सुकटाक्षा सुभाषिणी ।
दृष्टिनिर्धूतसर्वाधिव्याधिरानन्दवर्षिणी ॥१४॥

उनके भूषण वस्त्र सब दिव्य हैं, उनकी कटाक्ष और वाणी बड़ी ही सुन्दर है, चितवन मात्रसे ही, वे सभी आधिव्याधियों (मानसिक व शारीरिक बीमारियों) को धो डालने वाली तथा आनन्द की वर्षा करने वाली हैं ।१४

अकोपा शीलसम्पन्ना दीनपक्षपरायणा ।
धराधिकक्षमायुक्ता दयाधिकदयापरा ॥१५॥

वे क्रोधसे रहित, शीलगुण युक्त, सदा दीन (अभिमान रहित) प्राणियोंका पक्षग्रहण करने वाली, पृथिवीसे भी अधिक क्षमा गुण युक्ता, दयासे भी अधिक दयाकरनेमें तत्पर रहने वाली १५

ऋजुस्वभावा भावज्ञा सर्वभावप्रपूरिका ।
मानदाऽमानिनी प्रह्वी गाम्भीर्यजितसागरा ॥१६॥

सरल स्वभाव सम्पन्ना, सबके भावोंको समझने वाली तथा भक्तोंके सभी भावोंकी पूर्ति करने वाली एवं आश्रितोंको मान (प्रतिष्ठा) प्रदान करनेवाली, स्वयं मानकी इच्छासे रहित, नम्रता युक्त,अपनी गम्भीरतासे समुद्रको विजय करने वाली ॥१६॥

वात्सल्यादिगुणाम्भोधिः पिकवाणी गतस्मया ।
परेषामुपकारज्ञा नतिसन्तुष्टमानसा ॥१७॥

वात्सल्यादि गुणोंकी वे समुद्र हैं, कोयलके सदृश वे सुरीली वाणी वाली तथा अभिमान रहित हैं। दूसरोंके किये हुये उपकारको वे सदा स्मरण रखती हैं और प्रणाम मात्रसे ही प्रसन्न मन हो जाती हैं ॥१७॥

क्वचिन्नृत्यति सर्वाभिः क्वचिद् गायति धावति ।
क्वचिन्मन्दं च हसति क्वचित्प्रेम्णा प्रपश्यति ॥१८॥

वे कभी अपनी बहिनियोंके समेत नृत्य करती हैं कभी गान करती हैं, कभी दौड़ती हैं, कभी मन्द मन्द हँसती हैं, कभी प्रेम पूर्वक देखने लगती हैं ॥१८॥

क्वचिन्मातुः शुभोत्सङ्गं क्वचित्सिंहासनं पुनः ।
समविशत्याप्तसर्वेहा क्वचिच्च वल्गुभाषणे ॥१९॥

वे पूर्ण-काम, कभी श्रीअम्बाजीकी गोदमें, कभी सिंहासनमें बैठ जाती हैं, तो कभी मनोहर वाणी बोलने लगती हैं ॥१९॥

क्वचित्सर्वाभिरालीभिः समेता कुरुते ऽशनम् ।
क्वचिन्मातुर्गले दत्वा भुजमालां च तिष्ठति ॥२०॥

कभी वे सब सखियोंके सहित भोजन करती हैं, तो कभी अम्बाजीके गलेमें भुजमाला देकर बैठ जाती हैं ॥२०॥

अपूर्वाभिश्च लीलाभिः सुखयन्ती निजानुगाः ।
सेव्यमाना सदा ताभिः पित्रोरानन्दवर्द्धिनी ॥२१॥

अपनी अपूर्व लीलाओंके द्वारा अपनी अनुचरियोंको सुख प्रदान करती हुई तथा उनसे सेवित होती हुई अपने माता पिताजीके आनन्दको बढ़ाती हैं ॥२१॥

स्वसृभिर्भ्रातृभिश्चेत्थमतीवप्रियदर्शना ।
क्रीडन्ती राजभवने राजते जनकात्मजा ॥२२॥

इस प्रकार वे अतीव प्रिय दर्शनवाली श्रीजनकराज-दुलारीजी अपनी भाई बहिनोंके सहित खेलती हुई, राजभवनमें सर्वोत्कृष्ट रूपसे सुशोभित होती हैं ॥२२॥

क्रीडितुं मे तया सार्कं जायते महती स्पृहा ।
सत्यमम्ब ! विजानीहि श्रुतवत्या हि तद्यशः ॥२३॥

हे अम्ब ! आप सत्य जानिये, श्रीललीजूके यशको श्रवण करनेसे उनके साथ खेलनेके लिये मेरी बड़ी इच्छा उत्पन्न हो रही है ॥२३॥

कदा तच्चरणाम्भोजे निरीक्षे भृशकोमले ।
कदा मां पद्मपत्राक्षी कृपादृष्ट्या नु वीक्षिता ॥२४॥

कब उनके अत्यन्त कोमल श्रीचरणकमलोंका मैं दर्शन प्राप्त करूँगी ? कब कमलदलके समान नेत्रों वाली श्रीललीजी अपनी कृपा दृष्टिसे मुझे अवलोकन करेंगी ? ॥२४॥

कदा तद्दर्शनानन्दा विलुठिष्ये पदाब्जयोः ।
कदा पास्याम्यहं कर्णपुटाभ्यां तद्वचो ऽमृतम् ॥२५॥

कब उनके दर्शनों का आनन्द प्राप्त करके, मैं उनके श्रीचरण कमलोंमें लोटूँगी ? कब अपने कान रूपी दोनासे उनके वचनामृत का पान करूँगी ? ॥२५।

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्त्वा सा ययौ मूर्छा मातरं प्रेमविह्वला ।
तां प्रबोध्य सुतां भद्रे ! सक्लेदमभाषत ॥२६॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे कल्याण स्वरूपे ! अपनी अम्माजीसे ऐसा कहकर वे श्रीसुशीलाजी प्रेम विह्वल हो मूर्छाको प्राप्त हो गयीं, उन्हें सावधान करके सक्लाजी यह बोलीं :–॥२६॥

श्रीसक्लोवाच ।

अहो पुत्रि ! महाभागे ! दासीपुत्र्याः कथं तव ।
श्रीमिथिलेशनन्दिन्या घटते वत सङ्गतिः ॥२७॥

हे बड़ भागिनी ! पुत्रि ! कहाँ तुम दासी पुत्री, और कहाँ वे श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीराजदुलारीजी, अत एव उनसे तुम्हारी सङ्गति कैसे मेल खायेगी ? ॥२७॥

श्रीशिव वाच ।

तदुपाकर्ण्य सेत्युक्त्वा नान्यथा जीवितं मम ।
पपात सहसा भूमौ निर्गतासुरिव प्रिये ! ॥२८॥

श्रीशिवजी बोले:–हे प्रिये ! इस वचनको सुनकर वे श्रीसुशीलाजी अपनी उन मइयाजीसे "यदि उनकी और मेरी सङ्गतिका मेल नहीं हो सकता" तो, मेरा जीवन ही नहीं है ऐसा कहकर भूमि पर प्राण निकले हुये (मुर्दे) के समान एक बारगी गिर पड़ीं ॥२८॥

तच्च वृत्तान्तमाश्रुत्य विष्णुदत्तो महामनाः ।
सकलामब्रवीद्धर्षपुलकाङ्कितनूरुहः ॥२९॥

एक भगवान्को ही अपने मनमें स्थान देनेवाले श्रीविष्णुदत्तजी उस समाचारको सुनकर हर्षसे रोमाञ्च युक्त अङ्ग हुये वे श्रीसकलाजीसे बोले :- ॥२९॥

श्रीविष्णुदत्त उवाच ।

सकले ! भूरिभागाऽसि यया लब्धेयमात्मजा ।
यस्या विनिश्चला प्रीतिर्भूमिजायां शुभाऽभवत् ॥३०॥

श्रीविष्णुदत्तजी बोले :-हे सकले ! आप बड़े भाग्यवाली हैं जो इस पुत्रीको आपने प्राप्त किया है, जिसकी मङ्गलमयी प्रीति भूमिजा श्रीजनकललीजीमे, निश्चल हो गयी है ॥३०॥

तत एनां समादाय मिथिलां गच्छ शोभने !
दर्शनं राजनन्दिन्याः प्रापयास्यै प्रयत्नतः ॥३१॥

अत एव हे सुन्दरी ! तुम इस पुत्रीको लेकर श्रीमिथिलाजी जाओ और पूर्ण यत्नपूर्वक राजनन्दिनी श्रीजनकललीजूका इसे दर्शन प्राप्त कराओ ॥३१॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमाज्ञापिता तेन विष्णुदत्तेन सा सुताम् ।
वारिसिक्तमुखाम्भोजां परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥३२॥

भगवान् शिवजी बोले :-हे प्रिये ! श्रीविष्णुदत्तजीके ऐसी आज्ञा देनेपर मुख कमल पर जल का छींटा दी हुई अपनी पुत्रीको हृदयसे लगाकर यह बोलीं । ३२॥

श्रीसकलोवाच ।

वत्से ! जनकनन्दिन्याः प्रापयिष्यामि दर्शनम् ।
तुभ्यं भव प्रहृष्टात्मा प्रयाय मिथिलापुरीम् ॥३३॥

हे वत्से ! मैं आपको श्रीजनकनन्दिनीजूका दर्शन श्रीमिथिलाजी चलकर कराऊंगी । अतः प्रसन्न हो जाओ ॥३३॥

तदर्थं विष्णुदत्तेन समादिष्टा दयालुना ।
त्वां समादाय मिथिलामितोऽहं गन्तुमुद्यता ॥३४॥

तुम्हें श्रीललीजूका दर्शन करानेके लिये मुझे दयालु श्रीविष्णुदत्तजीने भी मिथिलाजी जानेकी आज्ञा देदी है, अत एव मैं तुमको साथमें लेकर यहाँसे श्रीमिथिलाजी चलनेको तय्यार हूँ ॥३४॥

श्रीशिव उवाच ।

मातुराकर्ण्य तद्वाक्यं सुशीला हर्षनिर्भरा ।
गम्यतां गम्यतां मातर्मिथिलेति त्वयाऽब्रवीत् ॥३५॥

भगवान् शिवजी बोले :-हे प्रिये ! अपनी मइयाके इस वचनको सुनकर हर्षसे पूर्ण भरी हुई श्रीसुशीलाजी बोलीं:-हे मइया ! श्रीमिथिलाजीको आप चलें, चलें ! ॥३५॥

सकलाऽथ तया पुत्र्या मिथिलां पुण्यदर्शनाम् ।
गत्वा विवेशावरणं कथञ्चित्सप्तमं प्रिये ! ॥३६॥

हे शुभे ! तत्पश्चात् वे श्रीसकलाजी अपनी उस पुत्रीके सहित पुण्यमय दर्शन वाली, श्रीमिथिला जीमें पहुँचकर किसी प्रकारसे उसके सातवें आवरणमें पहुँच गयीं ॥३६॥

तत्र चिन्तामुपागच्छत्सा भृशं श्रीविदेहजा ।
सुतादृष्टिचरी मे स्यात्कथमित्येव दुस्तराम् ॥३७॥

उस सातवें आवरणमें वे श्रीसकलाजी इस महती दुस्तर चिन्ताको प्राप्त हुईं, कि यहाँ तक आजाने पर भी मेरी पुत्रीको श्रीविदेहराजदुलारीजूका दर्शन किस प्रकारसे प्राप्त होगा ? क्योंकि इसके आगे अब मेरे बढ़ सकनेकी कोई आशा ही नहीं दीखती, और वे इसके भी आगे सात आवरण वाले श्रीजनकभवनके मध्यभागमें विराजती होंगी अतः उनके दर्शनोंका संयोग लगना असम्भव सा ही प्रतीत होता है !"" ॥३७॥

राज्ञीहट्टाभिगमनं समं मात्रा निशम्य सा ।
श्रीमज्जनकनन्दिन्या जनेभ्यो मोदमाययौ ॥३८॥

उसी समय लोगोंके द्वारा यह समाचार सुननेमें आया, कि आज श्रीजनकराजदुलारीजी अपनी अम्बाजीके समेत "रानी बाजार" पधारी हैं, इस समाचारको सुनकर वे सकलाजीने बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त किया ॥३८॥

दृष्ट्वा तां राजकिङ्कर्यो मलिनाम्बरधारिणीम् ।
कार्यार्थिनीं परिज्ञाय पप्रच्छुरिदमादरात् ॥३९॥

मैले वस्त्रोंको पहिने हुई सकलाजीको देखकर उन्हें कार्य्यार्थिनी (किसी असाध्यकार्यकी सिद्धि के लिये श्रीसुनयना महारानीजीके पास आई हुई) जानकर, राजमहलकी दासियोंने उनसे यह आदर पूर्वक पूछा ॥३९॥

राजकिङ्कर्य ऊचु ।

किमर्थमागतास्यत्र ब्रूहि नस्त्वद्धितैषिणीः ।
निर्भयेनात्मना भद्रे ! साधयामो हितं तव ॥४०॥

हे कल्याणि ! इस राजावरणमें तुम किस लिये आई हो ? सो हम हित चाहने वालियोंसे निर्भय मनसे कह दो, हम लोग अवश्य तुम्हारे कार्यको सिद्ध करायेंगी ॥४०॥

सकलोवाच ।

का यूयं धर्मसारज्ञा मनोज्ञाः करुणापराः ।
सुशीलाः पृच्छिका हेतोः शंसतागमनस्य मे ॥४१॥

श्रीसकलाजी बोलीं:—धर्मके तत्त्वको समझने और मनको हरण करनेवाली, दया करनेमें तत्पर तथा सुन्दर स्वभाव वाली आप लोग कौन हैं ? ॥४१॥

राजकिङ्कर्य ऊचु ।

मिथिलाया महेन्द्रस्य किङ्करीर्विद्धि नः शुभे ।
तव दीनदशां दृष्ट्वा करुणापूर्णमानसाः ॥४२॥

सकलाजीके इस प्रश्नको सुनकर वे दासियाँ बोलीं:—आपकी दीन दशाको देखकर दया पूर्ण मन हुई, हम लोगोंको आप श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी दासियाँ जानिये ॥४२॥

सकलोवाच ।

सौभाग्यमस्तु वो नित्यं श्रूयतां यदि रोचते ।
भवतीभिर्यथातथ्यं मदागमनकारणम् ॥ ४३ ॥

श्रीसकलाजी बोलीं:—हे राजकिङ्करियो ! आप लोगोंका सौभाग्य नित्य (सदा एक रस रहने वाला) होवे। यदि मेरे यहाँ आनेके वास्तविक कारणको जाननेकी रुचि है, तो श्रवण कीजिये४३

सुतेयं मम कल्याणी समज्यायां महात्मनाम् ।
मैथिलीबालचरितं शृणोति स्म यदृच्छया ॥४४॥

मेरी इस कल्याणी पुत्रीने दैव संयोगसे एक बार सन्तोंकी समाजमें श्रीमिथिलेशललीजूके बाल-चरित्रको श्रवण किया ॥४४॥

ततो विह्वलतां प्राप्ता जानकीदर्शनाशया ।
मयाऽऽनीता प्रयत्नेन कथञ्चिद्वो महापुरीम् ॥४५॥

और चरितोंके श्रवण मात्रसेही जब यह श्रीजनकराजदुलारीजूके दर्शनोंकी इच्छासे विह्वल हो गयी, तब मैं बड़े प्रयत्नके साथ किसी प्रकारसे इसे आप लोगोंकी पुरीमें ले आई हूँ ॥४५॥

पुनरत्रागता दिष्ट्या दिष्ट्या लब्धो हि सङ्गमः ।
मया वो मृगपोताक्ष्यः कार्यसिद्धिविधायकः ॥४६॥

पुनः सौभाग्यसे इस सातवें आवरणमें भी पहुँच गयी, और सौभाग्य वश कार्य। सिद्धि कराने वाला, आप लोगोंका समागम भी मुझे प्राप्त हो गया ॥४६॥

तदुपायं कृपापूर्णाविशुद्धहृदया हि मे ।
मैथिलीदर्शनस्याप्त्यै कृपणायै प्रशंसत ॥४७॥

हे कृपापूर्ण विशुद्ध (निर्मल) हृदय वालियों ! इस लिये श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके दर्शनोंकी प्राप्तिका उपाय मुझ दरिद्राको बताइये ॥४७॥

राजकिङ्कर्य ऊचुः

अनेनैवाशु मार्गेण राज्ञीहट्टमितो द्रुतम् ।
आगच्छ कन्यया सार्द्धं राजते तत्र साऽधुना ॥४८॥

राजकिङ्करियाँ बोलीं :-इसीमार्गसे आप अपनी कन्याके सहित शीघ्र रानीबाजार चली आओ, इस समय श्रीललीजी अपनी अम्बाजी आदि समेत वहाँ विराज रही हैं ॥ ४८ ॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा ययुः शीघ्रं तास्तु पद्मदलेक्षणाः ।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्ना विनीतां सकलां प्रति ॥ ४६॥

श्रीशिवजी बोले:-कमल-दलके समान विशाल लोचना, नम्रस्वभाव वाली, सौन्दर्य तथा चतुराईसे पूर्ण, वे राज-दासियाँ, इस प्रकार श्रीसकलाजीसे कहकर शीघ्रता-पूर्वक चली गयीं ॥४६॥

सा वै सुशीलया पुत्र्या गच्छन्ती तेन वै पथा ।
वस्तुविक्रयव्याजेन हट्टयात्रामरोचत ॥ ५०॥

तब पुत्री सुशीलाजीके सहित वे श्रीसकलाजी उसी मार्गसे जाती हुई कोई वस्तु बेचनेके बहानेसे ही उस बाजारमें पहुँचना अच्छा समझा ॥५०॥

आहृत्य जम्बुवृक्षाणां फलानि स्वादुवन्ति च ।
प्रविवेश शुभं हट्टं सर्वलोकमनोहरम् ॥५१॥

अत एव वे जामुनके मीठे स्वादिष्ट फलोंको लेकर समस्त लोकोंको मुग्ध कर लेने वाले उस रानी बाजारमें पहुँची ॥५१॥

वस्तूनां विक्रयागारैरनेकेषां च पङ्क्तितः।
सहस्रैः शोभमानं तत्सकला पर्य्यवैक्षत ॥५२॥

उन्हें वह बाजार पङ्क्तिके पङ्क्ति अनेक प्रकारकी बिकाऊ वस्तुओंकी हजारों (अनगिनित) दूकानोंसे द्वारा चारो ओरसे शोभायमान दिखाई दी ॥५२॥

तत्र वस्तु जगत्यां वै विधात्रा निर्मितं खलु।
अपूर्वं लभ्यते नैव तद्धट्टे गिरिकन्यके ! ॥५३॥

हे गिरिराजकुमारीजू ! विधाताकी बनाई हुई वह कोई भी अपूर्व वस्तु जगत्‌में नहीं है, जो उस बाजारमें न मिलती हो ॥५३॥

राज्ञीनां राजकन्यानां कुमाराणां महीभृतः।
किङ्करीणां हि सर्वत्र दर्शनं तत्र लभ्यते ॥५४॥

उस बाजारमें सर्वत्र केवल रानियों का, राजकन्याओं का तथा राजदासियों का ही दर्शन प्राप्त होता है ॥५४॥

नराणां नो गतिस्तत्र न सर्वासां हि योषिताम्।
रक्षिकाणां तु साहस्रैः सर्वतः परिरक्षिते ॥५५॥

हजारों रक्षा करनेवाली सखियों द्वारा चारो ओरसे सुरक्षित, उस बाजारमें पुरुषोंका प्रवेश नहीं है, और न सभी सामान्य स्त्रियोंका ही है ॥५५॥

तदुदीक्ष्य समं पुत्र्या कौतुकासक्तमानसा।
गत्वोपहट्टं सकला न्यषीदत्परया भिया ॥५६॥

सो देखकर आश्चर्यमें लीन मन हुई सकलाजी, पुत्री सुशीलाजीके सहित अत्यन्त भयसे उस बाजारके समीपमें ही बाहर बैठ गयीं ॥५६॥

सुशीलोवाच।

अम्ब ! हट्टमिदं रम्यं सुविशालं महत्प्रभम्।
वाद्यानां कलघोषैश्च नादितं परिदृश्यते ॥५७॥

श्रीसुशीलाजी बोलीं:-हे अम्मा! यह बाजार बहुत ही बड़ा, सुन्दर, महान् प्रकाशसे युक्त, बाजाओंकी मनोहर उच्च ध्वनिसे शब्दायमान दिखाई दे रहा है ॥५७॥

वद्धयूथा विशालाक्ष्यो राजकन्या मनोहराः।
भ्रमन्त्यः परिदृश्यन्ते मातॄणां मोदवर्द्धनाः ॥५८॥

इसमें अपनी माताओंके आनन्दको बढ़ाने वाली, विशाललोचना, मनोहर राजकन्यायें यूथ (भुण्ड) बाँधे हुई चारो ओर घूमती दिखाई दे रही हैं ॥५८॥

किन्तु साऽयोनिजा सीता वैदेही नैव दृश्यते।
मया संदृश्यमानानां कुमारीणां प्रयत्नतः ॥५६॥
यथा रूपं श्रुतं तस्याः स्वभावाचरणादिकम्।
न तथाऽहं प्रपश्यामि कस्यामपि तु पूर्णतः ॥६०॥

किन्तु इन दिखाई देनेवाली कुमारियोंमें मुझे प्रयत्नसे भी, अपनी इच्छासे स्वयं प्रकट हुई, उन श्रीविदेहराजकुमारी श्रीललीजूका दर्शन नहीं प्राप्त हो रहा है, यदि आप सन्देह करें कि जब तुमने उन्हें कभी देखा ही नहीं,तब इतनी राजकन्याओंमें उन्हें कैसे पहिचान सकोगी ? तो उसका समाधान यही है ॥५६। मैंने उनका जैसा रूप, जैसा स्वभाव, जैसा आचरण आदि सुना है, वह पूर्णतया सुने हुये जब सभी लक्षण मुझे एक ही में दिखाई देंगे, तब मैं समझ लूंगी कि ये ही श्रीललीजू हैं, अभी तक वे सुने हुए लक्षण किसीमें भी मुझे नहीं दिखाई दिये, अत एव मैं उनका दर्शन अभी तक अपने लिये अप्राप्तही मानती हूँ ॥६०॥

अस्मिन्प्रसारिते चीरे फलान्याधत्स्व सत्वरम्।
यूथ एकः समायाति कुमारीणां मनोहरः ६१॥

अरी मइया! मेरे इस पसारे हुये वस्त्रमें जल्दीसे इन फलोंको धर दे, क्योंकि कुमारियोंका एक बड़ा ही मनोहर भुण्ड आ रहा है ॥६१॥

अद्य श्रीमैथिलीं मातरवश्यं दृष्टिगोचरीम्।
विधाय जन्मसाफल्यं समेष्यामि न संशयः ॥६२॥

हे मइया! इसमें कोई सन्देह नहीं, कि आज श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीका मैं अवश्य ही दर्शन करके अपने जन्मकी पूर्ण सफलता प्राप्त करूँगी ॥६२॥

रानी बाज़ारके फाटक बाहर अपनी अकिञ्चना माँके पास विरह व्याकुला
श्रीसुशीलाजी बैठी हैं, श्रीकिशोरीजी अपनी अम्माजीके साथ
उनके पास जाकर कुछ पूछ रही हैं।

प्रपश्यैनं समायान्तं निवहं राजयोषिताम्।
नूनमस्मिंस्तु सा भूयाच्छ्रीमज्जनकनन्दिनी ॥६३॥

भइया देख, यह यूथ रानियोंका आ रहा है, इसमें वे श्रीजनकराजनन्दिनीजू अवश्य ही होवेंगी ॥६३॥

श्रीशिव उवाच।

प्रलपन्ती सुशीलैवमदृष्ट्वा जनकात्मजाम्।
मुमूर्च्छ विरहापन्ना श्रीसीतेति वदन्त्यपि ॥६४॥

भगवान् श्रीभोले नाथजी बोले:—हे पार्वती! इस प्रकार प्रलाप करती हुई जब श्रीसुशीलाजीने उस यूथमें भी श्रीललीजूका दर्शन न पाया तब उनके विरहसे युक्त हो, हे श्रीसीते! हे श्रीसीते! ऐसा कहती हुई वे बेहोश हो गयीं ॥६४॥

आजगाम तदा तत्र मैथिली दीनवत्सला।
पश्यन्ती हट्टमखिलं समं मात्रा यदृच्छया ॥६५॥

उसी समय दीनों पर वात्सल्य-भाव रखने वाली श्रीमिथिलेश राज दुलारीजी अपनी श्रीअम्बाजीके समेत उस समस्त बाजारको देखती हुई, अकस्मात् वहाँ आपधारीं ॥६५॥

तदङ्गसौरभं घ्रात्वा श्रुत्वा नूपुरझङ्कृतिम्।
वीतमूर्च्छा समुत्तस्थौ सुशीला संयताञ्जलिः ॥६६॥

श्रीललीजूके नूपुरोंकी झङ्कारको सुनकर तथा उनके श्रीअङ्गकी सुगन्धिको सूँघ कर मूर्च्छा रहित हुई वे श्रीसुशीलाजी हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयीं ॥६६॥

निरीक्ष्य जानकीं सीतां यथोक्तलक्षणान्विताम्।
अवधार्य महाभागा ववन्दे तत्पदाम्बुजे ॥६७॥

सन्तोंके द्वारा कहे हुये सभी लक्षणोंसे युक्त देखकर उन्हें जनकराजदुलारी श्रीसीताजी निश्चय करके, बड़भागिनी श्रीसुशीलाजीने उनके श्रीचरण कमलोंको प्रणाम किया ॥६७॥

पुना राज्ञ्याः पदाम्भोजे नमस्कृत्य मुदान्विता।
सर्वा ननाम महिषीः किङ्करीः पुनरेव सा ॥६८॥

पुनः उन्होंने हर्ष-पूर्वक श्रीसुनयना अम्बाजीके श्रीचरण-कमलोंको प्रणाम करके सभी रानियोंको नमस्कार किया, तत्पश्चात् सभी दासियोंको प्रणाम किया ॥६८॥

तामुवाच प्रसन्नात्मा सुशीलां जनकात्मजा ।
निधाय पाणिकमलं तदंसे स्निग्धया गिरा ॥६६॥

श्रीजनकराजदुलारीजी प्रसन्न मन हुई उन श्रीसुशीलाजीके कन्धे पर अपना कर-कमल रखकर बड़ी प्रेम भरी वाणी द्वारा उनसे बोलीं ॥६६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

मूल्येन कियता भद्रे ! फलानीमानि दास्यसि ।
उच्यतां तत्त्वयेदानीं किमर्थं नतलोचना ॥७०॥

हे कल्याणी ! इन फलोंको तुम कितने मूल्यमें दोगी ? सो बताओ । अरे इस समय तुम अपने नेत्रोंको नीचे क्यों किये हुई हो ? ॥७०॥

श्रीशिव उवाच ।

सैवमुक्तं, वचः श्रुत्वा पपात श्रीपदाब्जयोः ।
देवा जय जयेत्यूचुस्तद्दृष्ट्वा मुदान्विताः ॥७१॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे श्रीपार्वती ! वे श्रीसुशीलाजी अनन्त ब्रह्माण्ड-नायिका, अपने हृदय-विहारिणी सर्वेश्वरी श्रीललीजूके इस प्रकारके परमसुखद वचनोंको सुनकर उनके श्रीचरण-कमलोंमें गिर पड़ी, सो देखकर देव वृन्द हर्ष-युक्त हो जय-जय बोलने लगे ॥७१॥

सकलाऽऽनम्य ताः सर्वा वाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
उवाच दीनया वाचा मैथिलीं गद्गदाक्षरम् ॥७२॥

सभीको प्रणाम करके श्रीसकलाजी आनन्दातिरेकके कारण नेत्रोंमें आँसू भरे हुए उन श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूसे दीनतापूर्ण वाणी द्वारा गद्गद अक्षरोंसे युक्त वचन बोलीं:-॥७२॥

श्रीसकलोवाच ।

आवां धन्ये महाभागे कृतकृत्ये न संशयः ।
दर्शनादेव ते वत्से ! श्रीमद्राजेन्द्रनन्दिनि ! ॥७३॥

श्रीसकलाजी बोलीं:-हे श्रीजनकजी-महाराजको आनन्द-प्रदान करनेवाली श्रीललीजी ! आपके दर्शनोंसे हम दोनों ही माँ, बेटी वड़ भागिनी, धन्यवादके योग्य तथा निःसन्देह कृत-कृत्यहो गयीं ७३

फलानां चैव सर्वेषां सुमूल्यं दर्शनं तव ।
आसादितं कृपारूपेऽनया मे बालकन्यया ॥७४॥

हे कृपारूपे! इन सभी फलोंका सुन्दर मूल्य आपका दर्शन था, सो उसको मेरी इस बालकन्याने प्राप्त ही कर लिया, अतः इनका और क्या मूल्य बतावे ॥७४॥

निशम्य त्वद्यशोगाथां कीर्त्यमानां महात्मभिः।
इयं बाल्यस्वभावेन तव ध्यानपराऽभवत् ॥७५॥

हे श्रीलालीजी! महात्माओंके द्वारा वर्णन की हुई आपकी यशोगाथाको श्रवण करके मेरी यह कन्या बाल स्वभावके कारण आपके ध्यानमें तत्पर हो गयी ॥७५॥

क्वचित्सीतेति वदति क्वचिद्गायति नृत्यति।
क्वचिद्ध्यानसमासक्ता क्वचिन्मूर्च्छां निगच्छति ॥७६॥

चरितोंके श्रवण मात्रसे ही यह आपके दर्शनाकी इच्छासे विह्वल हो लीलाओंको गाती, और कभी आपकी महिमाको स्मरण करके नाचती तो कभी आपके ध्यानम तल्लीन होती, तो कभी मूर्छित हो जाती ॥७६॥

ईदृशीं वृत्तिमापन्नामभिवीक्ष्य दयालुना।
उक्ताऽस्मि विष्णुदत्तेन स्वामिनेति शुचान्विता ॥७७॥

मेरी इस पुत्रीको इस प्रकारकी अवस्थामें प्राप्त हुई देखकर दयालु स्वामी श्रीविष्णुदत्तजी मुझ चिन्तायुक्तासे यों बोले ॥७७॥

श्रीविष्णुरुवाच।

सकले! याहि मिथिलां त्वमिदानीं हि सत्वरम्।
समादाय निजां पुत्रीं सुशीलां वचनान्मम ॥७८॥

हे सकले! इस समय तुम मेरे वचना (यानी आदश) से अपनी इस सुशीला पुत्रीको साथ लेकर शीघ्र ही श्रीमिथिलाजी जाओ ॥७८॥

प्रापयास्यै प्रयत्नेन मङ्गलानां च मङ्गलम्।
श्रीमज्जनकनन्दिन्या दर्शनं शोककर्षणम् ॥७९॥

और प्रयत्न पूर्वक श्रीमान् जनकजी महाराजकी श्रीराजदुलारीजूका समस्त मङ्गलोंका भी मङ्गल स्वरूप, तथा सभी दुःखोको नष्ट करदेने वाला दर्शन, इसे प्राप्त कराइये ॥७९॥

ऋते तद्दर्शनादस्या जीवितं न भविष्यति ।
एतद्विचार्य सत्यं त्वमितः श्रीमिथिलां व्रज ॥८०॥

विना उन श्रीराजदुलारीजूके दर्शनोंके अब यह जीवित रह नहीं सकती, ऐसा सत्य विचार करके तुम यहाँसे श्रीमिथिलाजी चली जाओ ॥८०॥

सकलोवाच ।

तदाज्ञां संपुरस्कृत्यानयाऽहं समुपागता ।
सप्तमावरणं रम्यं मिथिलायाः कथञ्चन ॥८१॥

यह वृत्तान्त सुनाकर सकलाजी श्रीललीजीसे बोलीः-हे श्रीललीजी ! अपने मालिक श्रीविष्णुदत्तजीकी आज्ञाको स्वीकार करके, अपनी इस पुत्रीके सहित किसी प्रकारसे अर्थात् बहुत ही कठिनतासे मैं आपकी इस श्रीमिथिलाजीके सातवें आवरणमें आसकी ॥८१॥

भवत्याः श्रीमहागङ्गया निशम्यागमन पुनः ।
राज्ञीहट्टे पथि स्त्रीभिर्हर्षचिन्तान्विताऽभवम् ॥८२॥

मार्गमें कुछ स्त्रियोंके द्वारा आपका श्रीमहारानीजीके समेत रानी बाजारम शुभागमन श्रवण करके मैं हर्ष और चिन्ता, दोनोंसे युक्त हो गयी ॥८२॥

सुलभं दर्शनं हट्टे विचार्य्यैव मुदान्विता ।
हट्टप्रवेश मावुध्य ह्यसाध्यं चिन्तयाऽन्विता ॥८३॥

महलकी अपेक्षा बाजारमें आपका दर्शन सुलभ होगा" ऐसा विचार करके तो मैं हर्षसे युक्त हुई, और उस बाजारके प्रवेशको भी साधनसे परे जानकर चिन्तित हो उठी ॥८३॥

जम्बूफलानि चेमानि कथञ्चित्सञ्चितानि मे ।
हट्टप्रवेशनार्थाय विक्रयस्य मिषेण वै ॥८४॥

फिर भी बेचनेके बहानेसे बाजारमें प्रवेश करने के लिये मैंने इन जामुनके फलोंको किसी प्रकारसे इकट्ठा किया ॥८४॥

साहसो न प्रवेशस्य यदा मेऽभूत्कथञ्चन ।
विलोक्य परमैश्वर्यं हट्टस्यास्य तव प्रिये ! ॥८५॥

हे प्यारी ! श्रीललीजी ! किन्तु जब आपके इस बाजारके महान् ऐश्वर्यको देखा, तब मुझे भीतर प्रवेश करने का किसी भी प्रकार साहस न हुआ ॥८५॥

अत्रैव कन्यया सार्द्धमरोचे संस्थितिं स्विकाम् ।
नेतोऽपसारयेत्काऽपि चिन्तयेति समन्विता ॥८६॥

तब मुझे "यहाँसे भी कोई भगा न दे" इस चिन्तासे युक्त होती हुई भी मैंने कन्या सुशीलाके समेत इसी स्थल पर अपना बैठना उचित समझा ॥८६॥

दिष्ट्या त्वद्दर्शनं लब्धं मया चन्द्रनिभानने ।
राज्ञीनां दीनया पुण्यं भिक्षुक्या हि त्वदात्मनाम् ॥८७॥

हे चन्द्रमाके समान परम आह्लादकारी प्रकाशमय मुखवाली श्रीललीजी ! जो बड़े ही सौभाग्यसे मुझ दीन भिखारिनीको आपके तथा आपमें आत्माके समान अनुरक्त रहने वाली इन रानियों और राजकुमार-कुमारियों का पवित्र दर्शन प्राप्त हुआ है ॥८७॥

इदानीं प्रार्थये पुत्रि ! त्वामिति प्रणयप्रियाम् ।
गृहाणेमां सुतां दीनां पादसेवाभिलाषिणीम् ॥८८॥

हे पुत्री श्रीललीजी ! अपने श्रीचरण-कमलोंकी सेवाकी इच्छा रखने वाली, मेरी इस दीन पुत्रीको आप स्वीकार कीजिये, यही प्रेम,प्रिय आपसे अब मैं प्रार्थना करती हूँ ॥८८॥

तव प्रेमनिमग्नेयं तव ध्यानपरायणा ।
समर्पिता मया तस्मादियं त्वत्पादपद्मयोः ॥८९॥

यह मेरी बेटी आपके प्रेममें डूबी हुई, आपके ही ध्यानमें तल्लीन रहती है, इस हेतु इसे मैं आपके श्रीचरणकमलोंमें ही सब प्रकारसे अर्पण करती हूँ ॥८९॥

शिव उवाच ।

एवमुक्तं वचस्तस्याः समाकर्ण्य विदेहजा ।
तूर्णमुत्थाप्य तां दोर्भ्यां सस्वजे परया मुदा ॥९०॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीशत्रुमाताजीके द्वारा इस प्रकारसे कहे हुये वचनोंको श्रवण करके श्रीविदेहराजदुलारीजीने तुरत उन सुशीलाजीको, अपने दोनों हाथोंसे उठाकर बड़े प्रेम पूर्वक हृदयसे लगा लिया ॥९०॥

तां समाश्वासयन्ती सा मातरं जनकात्मजा ।
उवाच मधुरां वाणीं मृतजीवनदायिनीम् ॥९१॥

पुनः वे श्रीललीजी श्रीसुशीलाजीको आश्वासन प्रदान करती हुई अपनी श्रीअम्बाजीसे मृत (मरे हुये) को जीवन दान देने वाली मधुर वाणी बोलीं ॥६१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच।

एनां महार्हवासोभिर्भूषणैश्च विभूषिताम् ।

कारयाम्ब ! मम प्रीत्यै सखीभावेन स्वीकृताम् ॥६२॥

अरी मइया ! मैंने इन श्रीसुशीलाजीको अपनी सखी भावसे स्वीकार कर लिया है, अत एव इन्हें बहुमूल्य वस्त्र तथा भूषणोंसे भूषित कराइये ॥६२॥

अस्या मात्रेऽपि संवासो दीयतां राजसद्मनि।

भूषयित्वाऽम्बरैर्भूषैर्मम सन्तोषहेतवे ॥६३॥

और श्रीसुशीलाजीकी इन मइयाको भी वस्त्र भूषणोंसे अलंकृत कराके मेरे सन्तोष के लिये राजभवनमें ही वास प्रदान कीजिये ॥६३॥

अदृष्ट्वा मातरं जातु दुःखिताऽस्तु न मे सखी।

नादृष्ट्वा पुत्रिकां माता कदाचिद्दुःखमश्नुयात् ॥६४॥

जिससे अपनी मइयाको न देखकर कभी मेरी यह सखी दुखी न हो जावे, और इसकी मइया भी अपनी पुत्रीको न देखकर कभी दुःखको न प्राप्त हो ॥६४॥

श्रीशिव उवाच।

एवमुक्ता महाराज्ञी महानन्दस्वरूपया ।

बाढमाभाष्य वैदेहीं सखीं पुनरुवाच ह ॥६५॥

महान्-आनन्दकी स्वरूपा ललीजीके इस प्रकार कहने पर महारानी श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीललीजीसे "ऐसा ही होगा" कहकर अपनी सखीसे बोलीं :-॥६५॥

श्रीसुनयनोवाच।

सादरं स्नापयित्वैनां भूषयित्वा विभूषणैः।

कन्यया सहितां शीघ्रं नीत्वाऽऽव्रज ममान्तिकम् ॥६६॥

अरी सखी ! इन श्रीसकलाजीको श्रीसुशीलाजीके सहित, स्नान कराके भूषणोंसे भूषित करके शीघ्र ही मेरे पास ले आओ ॥६६॥

श्रीशिव उवाच।

तथेत्युक्त्वा सखी राज्ञी नीत्वा तां च सरोवरे।
स्नापयित्वा विनीताङ्गी भूषयाञ्चक्र उत्सुका ॥९७॥

भगवान् श्रीशिवजी बोले:-हे पार्वती! उस सखीने श्रीमहारानीजीसे जो आज्ञा कह कर नम्रता युक्त अङ्ग वाली श्रीसरूलाजीको श्रीसुशीलाके सहित सरोवरमें ले जाकर स्नान कराके शृङ्गार युक्त किया ॥९७॥

पुनः सा तामुपादाय महाराज्ञ्यै व्यदर्शयत्।
सर्वालङ्कारसंयुक्तां दीनभावमुपाश्रिताम् ॥९८॥

पुनः उस सखीने भली भाँति पूर्ण शृङ्गारकी हुई दीनभावमें प्राप्त उन श्रीसरूलाजीको लेजाकर श्रीमहारानी सुनयनाजीको दिखाया ॥९८॥

सुशीलायास्तु सङ्गृह्य मुदा सव्यकराङ्गुलीम्।
स्वसृबन्धुसखीभ्योऽसौ दर्शयन्ती मनोहरा ॥९९॥

पुनः वे श्रीललीजी श्रीसुशीलाजीके बायें हाथकी अङ्गुलीको पकड़ कर हर्ष पूर्वक उसे अपने बहिन भाई तथा सखियोंको दिखाती हुई सबके मनको हरण करने लगीं ॥९९॥

ततस्तस्यै कृपामूर्त्तिर्दर्शयन्ती मनोहरम्।
हट्टमप्राकृतं मात्रा जगाम पुनरालयम् ॥१००॥

तत्पश्चात् कृपाकी मूर्त्ति श्रीजनकराज दुलारीजी उन श्रीसुशीलाजीको उस मनोहर, अप्राकृत (दिव्य) बाजारको दिखाती हुई, अपनी श्रीअम्बाजीके समेत महलको वापस पधारीं ॥१००॥

क्व चासौ किङ्करीपुत्री क्व श्रीजनकनन्दिनी।
सा तया स्वीकृता प्रीत्या सखीभावेन सादरम् ॥१०१॥

हे पार्वती! कहाँ वह सुशीला! दासी पुत्री और कहाँ वे (अनन्त ब्रह्माण्डनायिका सर्वेश्वरी) श्रीजनकराजदुलारीजी? फिर भी उन्होंने उसे आदर पूर्वक सखी भावसे प्रेमपूर्वक स्वीकार किया ॥१०१॥

धन्या कृपाऽस्ति वै तस्या धन्यं भाग्यमहो खलु।
सुशीलाया मुनिश्लाघ्यं याभ्यां लाभोऽयमद्भुतः ॥१०२॥

इस लिये श्रीलालीजीकी यह निर्हेतुकी विलक्षण कृपा धन्य है तथा मुनियोंसे प्रशंसनीय श्रीसुशीलाजीका निश्चय ही अहो सौभाग्य है, जिन दोनोंके योगसे यह अद्भुत चरित रूपी लाभ जीवोंको प्राप्त हुआ है ॥१०२॥

इति ते कथिता देवि ! सुशीलायाः शुभा कथा ।
भक्तिप्रदायिनी नित्यं पठतां ध्यानपूर्वकम् ॥१०३॥

इति द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

हे देवि इस प्रकार नित्य-प्रति ध्यान पूर्वक पाठ करानेवालोंको भक्ति-प्रदान करनेवाली श्रीसुशीलाजीकी इस मङ्गलमयी कथाको मैंने आपके लिये कही है अर्थात् इस कथाको जो ध्यान पूर्वक नित्य-नियमसे पाठ करेंगे, उन्हें अवश्यमेव श्रीजनकराज-दुलारीजीके श्रीचरण-कमलोंमें भक्ति (अटूट श्रद्धा प्रेम) की प्राप्ति होगी ॥१०३॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

श्रीमिथिलेशजी-महाराजसे उनके राजकुमारोंके साथ अपनी राजकुमारियोंके विवाह सम्बन्धकी स्वीकृति प्राप्त करके राजा श्रीधरमहाराजका अपने कुल पुरोहित श्रीध्रुवशीलजीको जन्मकुण्डलियोंको देकर श्रीमिथिलाजी भेजना:—

श्रीशिव उवाच ।

दक्षिणस्यां दिशि श्रीमान् कीर्त्तिमान् वीर्यवान्नृपः ।
विडालिकापुरीभर्ता श्रीधरो नामविश्रुतः ॥१॥

भगवान् शङ्करजी बोले:-हे प्रिये ! दक्षिण दिशामें एक विडालिका नामकी पुरी थी, उसके स्वामी बड़े ही यशस्वी, श्रीमान् तथा पराक्रमी, श्रीधरनामसे विख्यात राजा हुये हैं ॥१॥

तस्य धर्मात्मनो राज्ञी श्रीसुकान्तिः पतिव्रता ।
अजायेतां सुतौ तस्याः कान्तिधरयशोधरौ ॥२॥

उन धर्मात्मा-राजा श्रीधरमहाराजकी पतिव्रता महारानी श्रीसुकान्तिजी थीं, उनके श्रीकान्तिधर और श्रीयशोधरनामके दो पुत्र हुये ॥२॥

चतस्रः पुत्रिकाश्चैव गुणरूपविभूषिताः ।
सिद्धिर्वाणी च नन्दोपा बाला अशिशुदर्शनाः ॥३॥

और गुण रूपसे अलंकृत (शोभायमान) श्रीसेद्धिजी, श्रीराखीजी, श्रीनन्दाजी, श्रीउपाजी, ये उनके चार पुत्रियाँ हुईं जो बाल्यावस्थामें ही कुमारियोंसी प्रतीत हो रही थीं ॥३॥

स वात्सल्यरसक्लिन्नो जानकीं द्रष्टुमुत्सुकः ।
कदाचित्पुरमागच्छज्जनकेनाभिपालितम् ॥४॥

वात्सल्य रसमें डूबे हुये वे महाराज श्रीधरजी एक समय श्रीजनकराजदुलारीजीके दर्शनकी उत्सुकतासे श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा पालित पुर (श्रीमिथिलाजी) में पधारे ॥४॥

चकार स्वागतं तस्य विधिना मिथिलेश्वरः ।
भूमिजादर्शनोत्कण्ठासमतीततनुस्मृतेः ॥५॥

श्रीभूमिसुताजीके दर्शनकी उत्कण्ठासे जिन्हें अपने शरीरका भान बिल्कुल नहीं रह गया था उन श्रीधर महाराज का श्रीमिथिलेशजी महाराजने विधिपूर्वक स्वागत किया ॥५॥

वाष्पसिक्तमुखाम्भोजो व्याहरन्स शनैः शनैः ।
सीतेति मधुरां वाणीं लब्धसंज्ञस्ततोऽब्रवीत् ॥६॥

तब श्रीधरजी महाराज हे सीते ! हे सीते ! इस मधुर (आनन्द प्रदायिनी) वाणीको बोलते हुए धीरे धीरे विह्वलताको प्राप्तकर गये और उनका मुखकमल अश्रुओंसे भीग गया पुनः वे सावधान होने पर बोले ॥६॥

श्रीधर उवाच ।

अयि क्षितेः पुत्रि ! विदेहनन्दिनि ! त्वदङ्घ्रिपङ्केरुहलाञ्छनाङ्कितम् ।
अद्य प्रपश्यामि शुभं महीतलं श्लाघ्यः सतां भाग्यमहोदयो मम ॥७॥

हे श्रीपृथ्वीपुत्रि ! हे श्रीविदेहनन्दिनीजू ! आप पृथ्वीके समान क्षमाकी मूर्ति और भक्तोंके हित चिन्तनमें अपने पिता श्रीविदेहजी महाराजको भी आनन्दित करने वाली हैं, आज आपके श्रीचरणकमलके चिन्होंसे सुशोभित इस मङ्गलमय भूमितलके दर्शनको मैं भली भाँति प्राप्त कर रहा हूँ अत एव मेरा यह भाग्यका महान् उदय सन्तोंके द्वारा भी प्रशंसनीय है ॥७॥

त्वयाऽन्वितं कान्तमनन्तवैभवं पितुस्त्वाकुण्ठमतेर्निकेतनम् ।
अद्य प्रपश्यामि महर्षिभावितं श्लाघ्यःसतां भाग्यमहोदयो मम ॥८॥

जिनकी मति (बुद्धि) कभी भी कुण्ठित नहीं होती, ऐसे आपके श्रीपिताजी मनोहर, अनन्त वैभव सम्पन्न, आपसे युक्त, जिस महलका महर्षि लोग ध्यान करते हैं, उसीका आज मैं प्रत्यक्ष दर्शनकर रहा हूँ अत एव यह मेरा महान् भाग्यका उदय सन्तोंके द्वारा भी प्रशंसाके योग्य है ॥८॥

अब्जातमत्स्यहलफणीश्वरार्चितं वज्रादिशंधामसुलक्षणान्वितम् ।
द्रक्ष्यामि ते पादतलद्वयं सुखं श्लाघ्यः सतां भाग्यमहोदयो मम ॥९॥

श्रीब्रह्माजी, श्रीशङ्करजी श्रीशेषजी जिनका पूजन करते हैं, तथा जो वज्रादि मङ्गलधाम सुन्दर चिन्होंसे युक्त हैं; आपके उन श्रीचरण-कमलोंके तलवोंका आज मैं सुखपूर्वक दर्शन करूँगा अत एव यह मेरे भाग्यकी महान् जागृति सन्तोंके द्वारा भी प्रशंसा योग्य है ॥९॥

अद्य त्वदास्यं शरदिन्दुनिर्मलं विशालभालं मृदुजिह्मकुन्तलम् ।
बिम्बाधरं पद्मदृशं सुनासिकं विलोक्य साफल्यमियां स्वजन्मनः ॥१०॥

हे श्रीललीजी ! जिसका मस्तक विशाल (बड़ा) कोमल घुँघुराले केश, बिम्बाफलके समान लाल अधर तथा ओंठ, प्रफुल्लित कमलके सदृश बड़े-बड़े नेत्र तथा सुन्दर नासिका है, आपके उस शरदृतुके समान निर्मल, पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य उज्ज्वल प्रकाशमान, परम-आह्लादकारी श्रीमुखारविन्दका दर्शन करके आज मैं अवश्य अपने नर जन्मकी सफलताको प्राप्त करूँगा ॥१०॥

श्रीशिव उवाच ।

तस्मिन्वदत्येवमुदारदर्शना श्रीजानकी पद्मपलाशलोचना ।
यदृच्छया तत्र पितुर्दिदृक्षया स्वबन्धुभिः स्वसृभिराजगाम ह ॥११॥

भगवान् शङ्करजी बोले:-हे पार्वती ! इस प्रकार उन श्रीधरमहाराजके कहते ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सभी प्रकारके अभीष्टको प्रदान करनेवाला जिनका दर्शन है, वे कमलदल-लोचना श्रीजनकराज-दुलारीजी उसी समय दैव-संयोगसे अपने बहिन-भाइयोंके सहित पिताजीका दर्शन करनेके लिये वहाँ पर आ पधारीं ॥११॥

तामागतामिन्दुमुखीं मृदुस्मितां प्रकाशयन्तीं स्वरुचा दिशो दश ।
वात्सल्यपूर्णेन हृदा स सस्वजे विदेहवंशाधिपतिर्निजात्मजाम् ॥१२॥

पूर्ण-चन्द्रमाके समान सहजाह्लादकारी श्रीमुखारविन्द और मनोहर मुस्कानसे युक्त अपनी स्वाभाविक कान्तिसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई श्रीललीजीको वे श्रीमिथिलेशजी-महाराज वात्सल्यपूर्ण हृदयसे लगाकर अतीव बेसुध हो गये ॥१२॥

उन्मीलिताक्षस्तु विडालिकेश्वरो ददर्श हृत्स्थां निजनेत्रगोचरीम् ।
अयोनिजां रम्यरुचिं दरस्मितां प्रवर्षदानन्द रसाब्जलोचनाम् ॥१३॥

श्रीविडालिकापुरीके स्वामी श्रीधरजी महाराज ज्योंही आँखें खोलते हैं त्यों ही हृदयमें

विराजीं हुई मनोहर कान्ति, मन्दमुस्कान, आनन्द रसकी वर्षा करते हुयेमेघवत् श्यामनेत्र वाली तथा बिना किसी कारणके प्रकट हुई उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ १३

सहानुजां स्वमृगणैर्विराजितां तामानतामप्रतिमैकबालिकाम् ।
अतीवमाधुर्यवयः समाश्रितां वात्सल्यलीनोरुमतिः स्वलालयत् ॥१४॥

अतीव माधुर्य अवस्थासे युक्त, बहिन भाइयोंसे सुशोभित, नमस्कारार्थ झुकी हुई उन उपमारहित अद्वितीय बालिका (श्रीजनकराजदुलारीजी) का वात्सल्यभावमें लीन हुई महामति वाले वे श्रीधरजी महाराज भली भाँति दुलार करने लगे ॥१४॥

स मूकवत्सौख्यमवर्ण्यमद्भुतं ह्यास्वादयन्भूमिसुतेक्षणोद्भवम् ।
अवाप्य मूर्च्छां निपपात भूतले विलोकयन्त्या दुहितुर्धरापतेः ॥१५॥

पुनः श्रीकिशोरीजीके दर्शनोंसे प्राप्त तथा वर्णन करनेमें अशक्य उस अद्भुत सुख का गूँगेके समान आस्वादन करते हुये वे श्रीधरजी महाराज श्रीभूमिसुताजीके देखते देखते ही मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥१५॥

विदेहराजोऽपि जगाम विस्मयं निरीक्ष्य तत्प्रेमदशां विचक्षणः ।
प्रयत्नशीलोऽपि न तं प्रबोधितुं शशाक यर्हीति तदाह पुत्रिकाम्॥१६॥

जिन्हें स्वयं ही आनन्द सागरमें लीनताके कारण शरीरकी सुधि बुधि नहीं रहती वे सारासार विवेकी श्रीमिथिलेशजीमहाराज भी उनके प्रेमकी उस स्थितिको देखकर चकित रह गये, पुनः प्रयत्न करने पर भी जब किसी प्रकारसे उनको सावधान (बहिर्वृत्ति) करनेमें समर्थ नहीं हुये तब श्रीललीजीसे बोले:—॥१६॥

श्रीजनक उवाच ।

वत्से ! त्वयि प्रीतियुतो नराधिपो भृशं किलायं समुदीक्ष्यते मया ।
अतस्त्वमेव स्पृश पद्मपाणिना श्रीखण्डशीतेन मुदेनमात्मदे ! ॥१७॥

हे वत्से ! मैं भली भाँति देख रहा हूँ, कि इन राजा श्रीधर महाराजका आपके प्रति बहुत ही प्रेम है, इस लिये हे बुद्धिप्रदे ! श्रीललीजी ! आप ही श्रीखण्डचन्दनके समान शीतल अपने करकमलके द्वारा इन्हे प्रसन्नता पूर्वक स्पर्श कर दीजिये ॥१७।

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्तया पद्मपलाशनेत्रया स्पृष्टः कराम्भोजतलेन बोधितः ।
स श्रीधरः प्राप्य घृतिं तदीक्षया कृतार्थमात्मानममन्यत प्रिये ! ॥१८॥

भगवान् शङ्करजी बोले हे प्रिये ! पिताजीके इस प्रकार कहने पर उन कमलदललोचना श्रीकिशोरीजीने, अपने कमलवत् सुकोमल हाथकी हथेलीसे स्पर्श करके श्रीधर महाराजको सावधान कर दिया, तब वे श्रीकिशोरीजीकी दृष्टि-मात्रसे धैर्यको प्राप्त हो अपने आपको कृतार्थ मानने लगे॥

लक्ष्मीनिधिं वीक्ष्य तथा गुणाकरं निधानकं श्रीनिधिमङ्ग मोहितः ।
निश्चित्य सौख्यप्रदकृत्यमात्मना स्वपुत्रिकानां सुकृतिप्रसिद्धये ॥१९॥

पुनः श्रीधरजी महाराज श्रीलक्ष्मीनिधिजी श्रीगुणाकरजी, श्रीनिधानकजी तथा श्रीनिधि भइयाको देखकर मुग्ध हो गये फिर सावधान होनेपर अपनी बुद्धिके द्वारा सुखप्रद एवं अपनी पुत्रियोंके पुण्यकी पूर्ण सिद्धि प्राप्तिकराने वाला कर्त्तव्य निश्चय करके ॥१९॥

एकाकिनं श्रीमिथिलानरेश्वरं प्रणम्य भूयो विहिताञ्जलिर्नृपः ।
उवाच संश्लक्ष्णगिरा मनोज्ञया श्रीजानकीतातमिदं शुभं वचः ॥२०॥

अकेले श्रीकिशोरीजीके पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजको बारंबार प्रणाम करके हाथ जोड़े हुये वे श्रीधरजी महाराज बड़ी ही कोमल तथा मनोहर वाणीसे यह मङ्गल वचन बोले ॥२०॥

श्रीधर उवाच ।

हे पुण्यराशे ! मिथिलामहेन्द्र ! हे बोधवारांनिधिपूर्णचन्द्र ! ।
अहं कृतार्थः खलु नात्र संशयस्त्वत्पुत्रिकामङ्गलमूलदर्शनात् ॥२१॥

हे समस्त पुण्योंकी राशिस्वरूप ! हे श्रीमिथिलाजीके सर्वप्रधान स्वामी, हे समुद्रके समान अथाह ज्ञान वाले महर्षियोंके आनन्दकी पूर्ण चन्द्रमाके समान सहज वृद्धि करने वाले राजन् ! आज आपकी श्रीललीजीके समस्त मङ्गलोंके कारण भूत दर्शनासे मैं कृतार्थ हो गया, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥२१॥

अत्रत्य यात्रा सफला हि मेऽभूद्दिष्ट्या प्रसादात्परमात्मनो हरेः ।
विशेषतः स्यामनुकम्पितस्त्वया सम्बन्धिनो मे पदमर्पयेर्यदि ॥२२॥

परमात्मा श्रीहरिकी कृपासे सौभाग्यवश यहाँकी मेरी यात्रा सफल हो गयी तथापि यदि मुझे आप सम्बन्धी बनालें, तो और भी मेरे पर आपकी बड़ी कृपा हो ॥२२॥

पुत्र्यश्चतस्रो मम चारुदर्शना गुणाभिरामा अनवद्यलक्षणाः ।
यथा कुमारा भवतः सुशोभनाः सम्बन्ध एषाममुकाभिरर्हति ॥२३॥

जैसे आपके ये चारो राजकुमार सब प्रकारसे सुन्दर हैं, उसी प्रकार मेरी भी चारों राजकुमारियाँ गुण तथा रूपसे परम सुन्दरी, अपने लक्षणोंसे ही प्रशंसनीय हैं, अत एव इन राजकुमारों का वैवाहिक सम्बन्ध मेरी उन राजकुमारियोंके साथ होना सब प्रकारसे युक्त है ॥२३॥

ता मे सुताः कर्णगतं यशोऽमलं विधाय पुत्र्यास्तव विप्रभाषितम् ।
तद्दर्शनाशापरमातुरेक्षणाः सर्वाः कृशाङ्ग्यो व्रतशुष्कशोणिताः ॥२४॥

ब्राह्मणोंके द्वारा कहे हुये आपकी श्रीललीजीकी उज्वल कीर्त्तिको श्रवण करके इनके दर्शनोंकी आशासे मेरी उन पुत्रियोंके नेत्र अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं तथा श्रीललीजीकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके व्रतोंके कारण उनके शरीरका खून भी सूख गया है, अत एव वे बहुत ही दुर्बला हो गयी हैं ॥२४॥

तासां मया जीवनगुप्तयेऽधुना सुप्रार्थनेयं भवते समर्प्यते ।
स्वयं समागत्य पुरं हि तावकं यद्रोचते तत्क्रियतां कृपानिधे ! ॥२५॥

हे कृपानिधे ! इस समय उन पुत्रियोंकी जीवन रक्षाके अभिप्रायसे ही मैं स्वयं आपके नगरमें आकर इस उचित प्रार्थनाको आपसे निवेदन कर रहा हूँ, अब आपकी जैसी रुचि हो करनेकी कृपा करें ॥२५॥

श्रीशिव उवाच ।

तदुक्तमाकर्ण्य स धर्मवित्तमः प्रसन्नचेतास्तमुवाच सादरम् ।
तथास्तु राजन् भवता यथेप्सितं नास्वीकृतिस्ते वचसो हि रोचते ॥२६॥

भगवान् शिवजी बोलेः-हे पार्वती ! धर्म वेत्ताओंमें परम श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीश्रीधर-महाराजकी उस प्रार्थनाको सुनकर प्रसन्न चित्त हो उनसे आदर पूर्वक बोलेः-हे राजन् ! आपने जैसी इच्छाकी है, वैसा ही हो, क्योंकि आपत्कालमें मर्यादा नास्ति यह कहावत प्रसिद्ध ही है अत एव अपनी ज्येष्ठ पुत्रीके बिना विवाह किये ही उनके छोटे भाइयोंका, असङ्गत मर्यादा विरुद्ध होने पर भी "प्राण-रक्षा गरीयसी" इस नीतिके अनुसार मैं आपकी इस प्रार्थनाको अस्वीकार करना नहीं चाहता अर्थात् इसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ ॥२६॥

श्रीलेद्रपरोवाच ।

स एवमुर्वीशवरेण नन्दितो सुधागिरा प्रेष्ठ ! विडालिकेश्वरः ।
दिनानि हृष्टः कतिचित्पुरि प्रिय ! तातस्य चोवास ममेनवंशज ! ॥२७॥

श्रीस्नेहपरानी बोलीं:-हे सूर्य वंशमें उत्पन्न श्रीप्राणप्यारेजू ! पृथ्वीपतियोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपनी मीठी वाणी द्वारा उन सिद्धाश्रम पुरीके स्वामी श्रीधरजी महाराजको आनन्दित किया, तब वे कुछ दिन मेरे पिताजीके पुर (श्रीजनकपुर) में हर्षपूर्वक निवास करते हुये ॥२७॥

ततस्तु संस्मृत्य निजात्मजानां विदेहजादर्शनलालसानाम् ।
दशां दयार्हां जनकात्मजाया उवाच तातं जलजायताक्ष ! ॥२८॥

हे कमलनयन श्रीप्यारेजू ! श्रीविदेहनन्दिनीजूके दर्शनोंकी लालसा वाली अपनी पुत्रियोंकी दयनीय दशाको सम्यक् प्रकारसे स्मरण करके श्रीधरजी महाराज, श्रीकिशोरीजीके पिताजीसे बोले-॥२८॥

श्रीधर उवाच ।

सुखं विसृज्येदमहं स्वदेशं भवत्सुतादर्शनजं दुरापम् ।
नोत्साहवान् गन्तुमितः कथञ्चन ब्रवीमि सत्यं मिथिलामहेन्द्र ! ॥२९॥

हे श्रीमिथिलाजीके सर्वप्रधान महाराज ! मैं सत्य कहता हूँ, आपकी श्रीललीजीके दर्शन जनित इस दुर्लभ सुखको छोड़कर, मुझे यहाँसे अपने देशको जानेके लिये किसी प्रकार भी उत्साह नहीं हो रहा है ॥२९॥

तथाऽपि संस्मृत्य सुताः स्वकीयाः श्रीजानकीदर्शनतृष्णयार्त्ताः ।
आज्ञां प्रयाचे गमनाय देशं योक्तुं ह्यनेनैव सुखेन ताश्च ॥३०॥

फिर भी श्रीललीजीके दर्शनोंकी तृष्णासे व्याकुल हुई अपनी उन पुत्रियोंको स्मरण करके उन्हें इसी अभीष्ट सुखसे युक्त करनेके लिये, मैं आपसे अपने देशको जानेके लिये, आज्ञा माँगता हूँ ॥३०॥

दृष्ट्वाऽधुनाऽहं क्षितिगर्भजातां स्वबन्धुभिः स्वमृगणैः परीताम् ।
तां लालयित्वा पुनरस्तपुण्यो महीप ! गन्तुं स्वपुरं समीहे ॥३१॥

हे भूपते ! बहिन भाई वृन्दोंके सहित भूमिसे प्रकट हुई श्रीललीजीका दर्शन करके उनका लाड़ लड़ाके पुण्य समाप्त हो जानेके कारण अब मैं अपने नगरको जाना चाहता हूँ ॥३१॥

श्रीजनक उवाच ।

त्वं मा शुचोऽवेद्य सुतां हि मामकीं स्वबन्धुभिः स्वमृगणैः समन्विताम् ।
यथास्पृहं सर्वमनोज्ञदर्शनां सुखं स्वदेशं व्रज ताः सुमान्दय ॥३२॥

श्रीजनकजी-महाराज बोले:-हे राजन्! आप शोक न करें, जिनका दर्शन चर-अचर प्राणियोंके मनको हरण कर लेता है, बहिन-भाइयोंके समेत उन हमारी श्रीललीजीका अपनी इच्छाके अनुसार दर्शन करके सुख-पूर्वक अपने देशको जाइये और अपनी पुत्रियोंको श्रीललीजीके दर्शनोंका आश्वासन प्रदान करके शान्त कीजिये ॥३२॥

श्रीशिव उवाच।

तथास्तु तस्मिन् गदति क्षितीश्वरे श्रीमैथिलेन्द्रस्तनयामयोनिजाम्।
समावृतां स्वसृगणैश्च बन्धुभिर्देदीप्यमानां स्वरुचाऽऽजुहाव ह ॥३३॥

भगवान शिवजी बोले:-हे पार्वती! श्रीधर महाराजके ऐसा कहते ही श्रीमिथिलेशजी-महाराजने विना किसी योनि (कारण) से प्रकट हुई, भाई-बहिनोंसे युक्त अपनी कान्तिसे चमकती हुई, उन श्रीललीजीको बुलाया ॥३३॥

आहूयमाना क्षितिपेन मैथिली द्रुतेन तत्सन्निधिमभ्यपद्यत।
उदीक्ष्य तां पद्मदलायतेक्षणां विडालिकेशोऽपि ययौ विदेहताम् ॥३४॥

महाराजके बुलाने पर श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी तुरत उनके पास आ पधारीं, उन कमलदलके समान विशाल मनोहर नेत्रवाली श्रीललीजीका दर्शन करके विडालिकापुरीके स्वामी श्रीधरजी-महाराज भी बेसुध हो गये ॥३४॥

मनः समाधाय पुनः कथञ्चन प्रहृष्टरोमा गमनोद्यतो मुहुः।
हृदा परिष्वज्य सबाष्पलोचनः श्रीजानकीमिन्दुमुखीं नृपं नतः ॥३५॥

पुनः किसी प्रकार अपने मनको सावधान करके हर्षसे रोमाञ्चको प्राप्त, नेत्रोंसे अश्रु बहाते हुये पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशपूर्ण, आह्लाद प्रदायक मुखवाली श्रीजनकराज-दुलारीजीको बारम्बार हृदयसे लगाकर श्रीमिथिलेशजी-महाराजको प्रणाम करके, बड़ी ही कठिनतासे अपने देशको चलनेको तैयार हुये ॥३५॥

निधाय तां चेतसि सानुजानुजां स भूमिपालः स्वपुरं जगाम ह।
अभ्येत्य तं वीरभटैः सुरक्षितं विवेश रम्यं निजराजमन्दिरम् ॥३६॥

पुनः अपने चित्तमें भाई-बहिनोंके समेत उन श्रीललीजीको विराजमान करके वे (श्रीधर महाराज) अपनी विडालिका पुरीको पधारे। और वहाँ पहुँच कर उन्होंने वीर योद्धाओंसे सुरक्षित अपने मनोहर अन्तः पुरमें प्रवेश किया ॥३६॥

कृताशनस्तल्पगतो निवेदयाञ्चकार राज्ञै मिथिलापुरस्य यत्।
वृत्तान्तमम्भोजविलोचनादितो निशामयन्तीषु सुतासु तन्नृपः ॥३७॥

हे कमलदललोचन श्रीप्राणप्यारेजू ! भोजन करनेके पश्चात् जब वे विश्रामार्थ पलङ्गपर विराजमान हुये, तब अपनी पुत्रियोंके सुनते हुये श्रीमिथिलापुरीका सारा वृत्तान्त आदिसे अन्त तक उन्होंने श्रीसुकान्ति महारानीजीसे निवेदन किया ॥३७॥

श्रीसुकान्तिरुवाच ।

इदं हि भाग्योदयकालसूचकं श्रुतं मया वृत्तमपूर्वसौख्यदम् ।
पुरोधसं प्रेषय भूपसन्निधिं विनिश्चितोद्वाहमुहूर्तलग्नकम् ॥३८॥

श्रीसुकान्तिजी बोलीं:- हे प्यारे ! निश्चय ही भाग्यके उदय समयकी सूचना देने वाला अपूर्व सुखदायक यह वृत्तान्त मैंने श्रवण किया, अब आप विवाहके लग्न मुहूर्तका निश्चय रखने वाले श्रीकुलपुरोहितजीको श्रीमिथिलेशजी महाराजके पास भेज दीजिये ॥३८॥

श्रीशिव उवाच ।

तथेति सम्भाष्य स तां क्षितीश्वरः प्रेम्णा समाहूय समर्च्य सादरम् ।
गुरुं तदाज्ञात उवाच तं नतो वचो निजाभीष्टकरं स्फुटाक्षरम् ॥३९॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीसुकान्ति महारानीकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीधरजी महाराज (उनसे) ऐसा ही होगा, कहकर श्रीकुलगुरुजीको आदर-पूर्वक बुलवाकर षोडशोपचारसे पूजन करके, उनकी आज्ञाको पाकर प्रणाम-पूर्वक अपना अभीष्ट प्रदान करनेवाला वचन स्पष्ट अक्षरोंमें बोले ॥३९॥

श्रीधर उवाच ।

हे नाथ ! पुत्रा मिथिलेशितुर्मया निरीक्ष्य जामातृपदाय रोचिताः ।
अतस्तदुद्वाहशुभाहभादिकं विचार्य शीघ्रं मिथिलां व्रज प्रभो ! ॥४०॥

हे नाथ ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके राजकुमारोंको देखकर मैंने उन्हें अपने जमाई बनाने के लिये इच्छाकी है, इसलिये हे प्रभो ! उनके विवाहका शुभ दिन, नक्षत्र आदि विचार करके आप शीघ्र ही श्रीमिथिलाको पधारिये ॥४०॥

पुत्र्यो मदीयाः किल भूरिभागाः श्रीमैथिलीदर्शनपूर्णलाभम् ।
गच्छन्तु कामं न चिरेण चैतास्तद्भ्रातृपत्नीपदमभ्युपेत्य ॥४१॥

जिससे हमारी ये बड़भागिनी पुत्रियाँ श्रीमिथिलेशदुलारीजूके भाइयोंकी पत्नियाँ होकर शीघ्र ही भर इच्छा उनके दर्शनोंका पूर्णलाभ प्राप्त करें ॥४१॥

श्रीश्रुतशील उवाच ।

भद्रं हि ते धर्मभृतं धरापते ! स्वयं समायान्त्यखिलाः सुसम्पदः ।
सर्वं शुभं भूमिसुतास्मृतिप्रदं मासर्क्षतिथ्यादिकमित्यवेहि तत् ॥४२॥

श्रीश्रुतशीलजी महाराज बोले—हे राजन् ! आपका मङ्गल हो, धर्मपरायण व्यक्तिके पास अपने आप ही सभी प्रकारकी उत्तम तथा हितकर सम्पत्तियाँ आती रहती हैं। जो मास, नक्षत्र तिथि आदि भूमिसुता श्रीजनकनन्दिनीजूका स्मरण प्रदान करे वह सभी मङ्गलमय है ॥४२॥

तथाऽपि वैशाखसिते विधौ दिने संवत्सरेऽस्मिन्नपि पञ्चमीतिथौ ।
प्रशस्तयोगो विदुषां विचारतो वैवाहिको मानवदेव ! वर्तते ॥४३॥

हे नरदेव ! फिर भी इस वर्षमें विद्वानोंके विचारसे वैशाखशुक्ला पञ्चमी सोमवारको विवाहके लिये बहुत ही उत्तम योग है ॥४३॥

प्रदेहि शीघ्रं शुभजन्मपत्रिका निजात्मजानां स्वकराक्षरान्विताः ।
प्रदातुमुर्वीपतये महात्मने श्रीभूमिजाया जनकाय पार्थिव ! ॥४४॥

हे राजन् ! इस लिये श्रीजनकनन्दिनीजूके महात्मा (श्रीभगवान्को ही अपनी बुद्धि और मनमें बसानेवाले) पिताजीको देनेके लिये अपने हस्ताक्षरके सहित राजकुमारियोंकी शुभजन्मपत्रिका मुझे शीघ्र दीजिये ॥४४॥

श्रीशिव उवाच ।

महाकृपेत्युक्तवता द्विजोत्तमो विडालिकेशेन निशाम्य तद्वचः ।
स प्रेषितः श्रीमिथिलां मनोरमां प्रदाय पत्रीर्महितो यथाविधि ॥४५॥

भगवान् शिवजी बोले—हे पार्वती ! श्रीगुरुदेवके उस वचनको सुनकर विडालिका पुरीके नरेश (श्रीधर) जी महाराजने "बड़ी कृपा है" ऐसा कहकर विधिपूर्वक उनका पूजन करके जन्मपत्रियोंको दे, उन्हें मनोहारिणी श्रीमिथिलाजी भेज दिया ॥४५॥

पुरीं समासाद्य विदेहपालितां पुरोहितोऽसावनुरागनिर्भरः ।
द्रक्ष्ये कदाऽहं नृपजामयानिजासुत्कण्ठयेत्याकुलमानसोऽभवत् ॥४६॥

श्रीविदेहजी महाराज जिस पुरीका पालन कर रहे हैं, उस श्रीमिथिलापुरीमें पहुँचकर वे श्रीधरजी महाराजके पुरोहित श्रीश्रुतशीलजी महाराज अनुरागमें भर गये, "मुझे कब अयोनि सम्भवा (बिना कारण) अपनी इच्छासे प्रकट हुई श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका दर्शन होगा" इस चिन्तासे उनका चित्त व्याकुल हो उठा ॥४६॥

वज्रादिचिह्नानि धराङ्कितान्यथो निरीक्ष्य पुत्र्या नृपतेः पदाब्जयोः।
दृशा स्पृशन्विस्मृतसर्वकृत्यको ययौ विसञ्ज्ञां धुतसर्वकिल्बिषः ॥४७॥

तत्पश्चात् पृथिवीपति श्रीजनकजी महाराजकी श्रीराजनन्दिनीजूके भूमिमें अङ्कित श्रीचरणकमलके वज्रादि चिन्हींका दर्शन करके, उनके सब पाप धुल गये, अतः वे उन चिन्होंको अपने नेत्रोंसे स्पर्श करते हुये सभी प्रकारके कर्त्तव्यकी सुधि-बुधि भूल कर, प्रेममूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥४७॥

तदाऽऽगता सा नरनाथनन्दिनी विहृत्य कामं कमलापगातटात्।
सीता परीता स्वसृभिः स्वबन्धुभिः प्रसाद्यमाना च जयेति निःस्वनैः ॥४८॥

उसी समय जयघोषके द्वारा प्रसन्नताका साधन करते हुये अपने भाई बहिनोंके साथ राजनन्दिनी श्रीकिशोरीजी, भर इच्छा विहार करके श्रीकमला नदीके किनारेसे वहाँ आ पधारीं ॥४८॥

पथि च्युतं तर्हि जनैः समावृतं ददर्श सर्वान्तरभाववित्तमा।
नेत्राम्बुसिक्ताननकण्ठभूतलं ब्रह्मर्षिमाराच्छ्रुतशीलमार्द्रधीः ॥४९॥

चर-अचरमय सभी प्राणियोंके भावको समझनेवाली शक्तियोंमें परम-श्रेष्ठ दयामयी श्रीराजदुलारीजीने पाससे देखा कि महर्षि श्रुतशीलजी मार्गमें बेसुध पड़े हुये हैं लोगोंने आश्चर्यवश उन्हें घेर रक्खा है। अश्रुओंसे उनका मुख, गीला, और पृथिवी भीग गयी है ॥४९॥

तया स संस्पृष्टपदो महामुनिर्विस्फारिताक्षोऽभिमुखे विराजिताम्।
दृष्ट्वा जगन्मङ्गलमोदविग्रहां निमेषशून्येक्षण आस विह्वलः ॥५०॥

उन श्रीकिशोरीजीने ज्यों ही उनके चरणोंका स्पर्श किया, त्यों ही महान् (परमात्मतत्वस्वरूपा उन श्रीललीजीका ही) मनन करनेवाले श्रीश्रुतशीलजी-महाराजने अपनी बन्द आँखोंको फैला दिये परन्तु सम्मुख चर-अचर सभी प्राणियोंके मङ्गल तथा सुखकी मूर्ति श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूका एकटक दर्शन करके वे व्याकुल हो गये ॥५०॥

सम्प्राप्तसञ्ज्ञेऽथनिदेवसत्तमे तस्मिन्पुनः सा मिथिलेश्वरात्मजा।
जगाम मातुर्भवनं मुदान्विता प्रणम्य तं भ्रातृगणैः स्वसृव्रजैः ॥५१॥

पुनः जब वे ब्राह्मणशिरोमणि श्रीश्रुतशीलजी महाराज सावधान हुये तब श्रीकिशोरीजी अपने भाई बहिनोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम करके अपनी माता श्रीसुनयना महारानीके महल को पधारीं ॥५१॥

स चापि संप्राप्तधृतिर्महामनाः प्रसन्नचेता मिथिलेशितुः सभाम् ।
प्रविश्य विप्रर्षिजनैः समाकुलां ददर्श भूपं तमुदारदर्शनम् ॥५२॥

और वे श्रीश्रुतशीलजी महाराजने श्रीकिशोरीजीको अपने मनमें विराजमान किये हुये पूर्ण धैर्यको प्राप्त, प्रसन्नचित्त हो ऋषि ब्राह्मणोंसे भरी हुई श्रीमिथिलेशजी महाराजकी सभामें पहुँचकर उन उदार दर्शन श्रीजनकजी महाराजका दर्शन किया ॥५२॥

राज्ञा समुत्थाय नमस्कृतो द्विजः संस्थाप्य पीठे विधिना समर्चितः ।
प्रादात्स पाणौ नृपतेः सुपत्रिकां विडालिकेशस्य कराक्षराङ्किताम् ॥५३॥

पुनः जब राजा श्रीजनकजीने खड़े होकर नमस्कार किया और सिंहासन पर बिठाकर उनका विधिपूर्वक पूजन कर लिया, तब श्रीश्रुतशीलजी महाराजने श्रीविडालिका पुरीके नरेश श्रीधरजी महाराजके हस्ताक्षरसे युक्त उनकी पत्रिकाको श्रीमिथिलेशजी महाराजके करकमलमें दे दिया ॥५३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

प्रशंसयंस्तं निजभाग्यमप्यसौ विदेहराजं मुदितेन चेतसा ।
समूचिवान्वाक्यमिदं कृताञ्जलिः सभान्तरस्थैः परितुष्टसत्कृतः ॥५४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! सभासदोंके द्वारा भली भाँति सत्कारको पाकर, वे श्रीश्रुतशील जी महाराज मुदितचित्त हो, हाथ जोड़े हुये श्रीविदेहमहाराजसे उनकी तथा अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुये यह वचन बोले ॥५४॥

श्रीश्रुतशील उवाच ।

प्रदर्श्य कन्याशुभजन्मपत्रिका एताः सुतानां च पुरोधसे त्वया ।
विडालिकेशात्मभुवां प्रदीयतां सम्बन्धस्वीकारदलं सहार्भकैः ॥५५॥

हे राजन् ! इन कन्याओंकी जन्म पत्रिकाओंको तथा अपने राजकुमारोंकी जन्म पत्रियोंको अपने कुल पुरोहित श्रीशतानन्दजी महाराजको दिखलाकर प्रसन्नता पूर्वक अपने पुत्रोंके साथ श्रीविडालिका नरेशकी राजकुमारियोंका सम्बन्ध स्वीकार पत्र प्रदान किजिये ॥५५॥

श्रीशिव उवाच ।

तथेति सम्भाष्य विदेहभास्करो ददौ शतानन्दकरे सुपत्रिकाः ।
नृपार्भकाणामपि जन्मपत्रिकास्तदा समानीय विनम्रकन्धरः ॥५६॥

भगवान शिवजी बोले–हे पार्वती ! यह सुनकर विदेह कुलको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाले श्रीमिथिलेशजी महाराजने उनसे "ऐसा ही हो" कह कर उन पत्रिकाओंको तथा अपने राजकुमारोंकी जन्म पत्रियोंको मँगाकर अपने कन्धोंको झुकाते हुये श्रीशतानन्दजी महाराजके हाथमें अर्पण किया ॥५६॥

स गौतमीसूनुरुदारनिश्चयो विचार्य पत्रीर्वरकन्ययोर्जगौ ।
अयं विवाहस्तु नरेन्द्र सत्तम ! विचार्यतां मङ्गलमूलमेव हि ॥५७॥

वे उदार निश्चय वाले अहल्या पुत्र श्रीशतानन्दजी महाराज वरकन्याओंकी जन्मपत्रिकाओंको देखकर बोलेः–हे राजाओंमें परम श्रेष्ठ ! इस विवाहको आप सभी मङ्गलों का मूल ही समझिये ५७

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्तवत्येव मुनौ सभासदां मतेन दत्ता श्रुतशीलहस्तके ।
स्वीकारपत्री लिखिता स्वपाणिना राज्ञा विदेहेन नतेन सादरम् ॥५८॥

भगवान् शिवजी बोलेः–हे प्रिये ! श्रीशतानन्दजी महाराजके इस प्रकार कहने पर सभासदोंकी सम्मतिसे श्रीविदेहजी-महाराजने अपने हाथसे सम्बन्ध स्वीकार-पत्र लिखकर आदर-पूर्वक प्रणाम करके, उसे श्रीश्रुतशीलजी महाराजके हाथमें अर्पण किया ॥५८॥

पुनस्तु तं विप्रवरं नृपोत्तमः सुखप्रदं वासमतीवशोभनम् ।
प्रदाय नानाद्विजवृन्दसेवितं मृगान्वितं प्राप नृपो निजालयम् ॥५९॥

तत्पश्चात् राजाओंमें उत्तम श्रीजनकजी महाराज, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ उन श्रीश्रुतशीलजी महाराजको पक्षी समूहोंसे सेवित, मृगोंसे युक्त अत्यन्त सुन्दर, सुखद निवास प्रदान करके अपने महलको पधारे ॥५९॥

राज्ञ्यै हि तद्वृत्तमसौ यथातथं निवेद्य रात्रौ च तयोपशोभितः ।
अयोनिजोत्सङ्गकया सपुत्रकः प्रातर्मुदाऽगच्छदपेदिदृक्षया ॥६०॥

रातमें जैसा का तैसा वह वृत्तान्त श्रीसुनयना महारानीजीसे निवेदन करके बिना किसी कारण अपनी इच्छासे प्रगट हुई श्रीललीजीको गोदमें लिये हुई श्रीसुनयना महारानीजीसे

पृष्ठ ६९६

श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीसुनयना महारानी के सहित अपनी श्रीललीजूके साथ खड़े हैं और महर्षि श्रुतशीलजी श्रीकिशोरीजीके ध्यान में मग्न हैं।

सुशोभित, श्रीलक्ष्मीनिधि आदि पुत्रोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक श्रीमिथिलेशजी महाराज प्रातः काल ऋषि (श्रुत शीलजी महाराज) के दर्शनकी इच्छासे (उनके निवासस्थानपर) गये ॥६०॥

तं वै महात्मानमनल्पतेजसं निमीलिताक्षं विरहाब्धिसंप्लुतम् ।
सीतेति वाचं मधुरां शनैः शनैः प्रव्याहरन्तं नृपमौलिरैक्षत ॥६१॥

राजा शिरोमणि श्रीजनकजी महाराजने वहाँ पहुँचकर देखा, कि वे महान् तेजस्वी श्रीश्रुतशीलजी महाराज आँखें बन्द किये विरहसागरमें भली भाँति डूबे हैं और धीरे धीरे हे सीते ! हे सीते, यह मधुर (सुखदायिनी) वाणी बोल रहे हैं ॥६१॥

क्रोडात्समुत्तार्य्य तदा निजात्मजां जगाद बाष्पाप्लुतकञ्जलोचनः ।
स्पृशाङ्घ्रिपद्मे मम पुत्रि ! सादरं महात्मनोऽस्य प्रवरस्य शोभने ! ॥६२॥

तब अश्रुभरे कमलके समान नेत्र श्रीजनकजी महाराज अपनी श्रीललीजीको, अम्बाजीकी गोदसे उतार कर उनसे बोलेः-हे सहज सोहावनी हमारी श्रीललीजी ! इन महान् श्रेष्ठ महात्माजीके चरणकमलोंका आदर पूर्वक स्पर्श कीजिये ॥६२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथर्षिपादाम्बुजयोर्नतायां स्वपुत्रिकायां वच एतदूचे ।
यन्नामसङ्कीर्त्तनतत्परोऽसि तां पश्य ते पादयुगं नमन्तीम् ॥६३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! आज्ञानुसार श्रीश्रुतशीलजी महाराजके चरणकमलों में श्रीकिशोरीजीके झुकने पर श्रीमिथिलेशजी महाराज उनसे बोलेः-महाराज ! आप जिनका नाम लेने में तत्पर हैं, वे श्रीललीजी आपके दोनों चरणोंमें प्रणाम कर रही हैं उनका दर्शन कीजिये ॥६३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

स एवमुक्तोऽवनिपेन विप्रराडुन्मील्य नेत्रे सुददर्शभूमिजाम् ।
नवीनकञ्जायतपत्रलोचनां निजानुजाभ्यां युगपार्श्वशोभिताम् ॥६४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी-महाराजके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मणोंमें परम-श्रेष्ठ वे श्रीश्रुतशीलजी-महाराज नेत्रोंको खोलकर श्रीलक्ष्मीनिधि और श्रीगुणाकारजी, अपने इन दोनों भाइयोंके द्वारा दाहिने बायें दोनों बगलसे शोभायमान, नवीनकमलदलके समान मनोहर विशाल नेत्रवाली भूमिकुमारी श्रीजनकराज-दुलारीजीका भलीभाँतिसे दर्शन करने लगे ॥६४॥

मातापितृभ्यां विहिताञ्जलिभ्यां विराजमानां प्रिय ! पृष्ठतस्ताम् ।
निजानुजाभिः परितः परीतां सीतामतीतां त्रिगुणैर्मुमूर्च्छ ॥६५॥

पुनः माता श्रीसुनयना-महारानी तथा पिता श्रीमिथिलेशजी-महाराज हाथ जोड़े हुये जिनके पीछे विराजमान हैं, बहिनें चारो ओरसे घेरे हुई हैं, सत्त्व,रज,तम तीनों गुणोंसे परे उन श्रीकिशोरीजीका दर्शन करके वे मूर्छित होने लगे ॥६५॥

तं चेतयामास चराचरात्मा चतुर्गतिश्चन्द्रचयोपमास्या ।
स्वपाणिना तापहरेण पूर्णा संहृत्य सा तद्विरहोद्भवाग्निम् ॥६६॥

उन्हें सालोक्य, सारूप्य, समीप्य, सायुज्य इन चार प्रकारकी मुक्तियोंकी उपाय और चर-अचर समस्त प्राणियोंकी आत्मस्वरूपा अनन्तचन्द्रमाओंके समान परम आह्लादकारी श्रीमुखारविन्द वाली, परमब्रह्मस्वरूपा श्रीकिशोरीजीने उनकी विरहसे उत्पन्न हुई अग्निको सम्यक् प्रकारसे हरण करके दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकारके तापोंको दूर करनेवाले श्रीकरकमलसे सावधान किया :-॥ ६६ ॥

तदा त्वसौ लब्धधृतिर्महात्मा शुभाशिषा स्वागतमाचकार ।
तस्याः सकान्तेन नृपेण नत्वा सम्प्रार्थितः प्रोच इदं वचस्तम् ॥६७॥

तब महात्मा श्रुतशीलजी महाराजने धैर्यको प्राप्त कर अपने मङ्गलानुशासनके द्वारा श्रीकिशोरीजी का स्वागत किया, पुनः श्रीसुनयना महारानीजीके समेत श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रणाम करके प्रार्थना करने पर उनसे वे यह वचन बोले ॥६७॥

श्रीश्रुतशील उवाच ।

युवां महाभागतमौ जगत्यां ययोः सुतेयं जननी त्रिलोक्याः ।
बालस्वरूपाऽस्तसमस्तदोषा स्वदर्शनादिप्रमदप्रदा हि ॥६८॥

समस्त दोषोंसे रहित तीनों लोकोंकी जननी, पुत्री बनकर बालस्वरूपसे जिनको अपने दर्शन आदि का महान आनन्द प्रदान करने वाली हैं, वे आप दोनों ही निश्चय करके पृथ्वी पर भाग्यशालियोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ॥६८॥

पुत्रास्तु सर्वे गुणरूपयुक्ताः श्रीभूमिजापादसरोजसक्ताः ।
एते स्वभावात्तविशेषबोधा मनोहरस्मेरगतीक्षणेहाः ॥६९॥

आपके ये पुत्र भी सभी गुण, रूपसे सम्पन्न, भूमिसे प्रकट हुई श्रीललीजीके श्रीचरणकमलों-

में अटल प्रेम रखने वाले, स्वतः विशेष ज्ञानी तथा मनोहर मुस्कान, मनोहर चाल, मनोहर चितवन एवं मनोहर चेष्टा वाले हैं ॥६९॥

युवां महाभागवतप्रधानावतुल्यराशी सुकृतिव्रजानाम् ।
सद्गीयमानाप्रतिमोरुकीर्त्ती महर्षिवृन्दैः स्मरणीयनाम्नी ॥७०॥

आप दोनों ही प्रभुके महान् भक्तोंमें भी परमश्रेष्ठ, समस्त सत्कर्मोंकी उपमा रहित राशि स्वरूप हैं आप दोनोंकी अनुपम महती कीर्त्तिको सन्त लोग भी गान करते हैं कहाँ तक कहें आप दोनों का नाम महर्षि वृन्दोंके द्वारा भी स्मरण करने ही योग्य है ॥७०॥

पुरी च धन्या भवतः किलेयं सौभाग्यसंमोहितसर्वलोका ।
यस्यां विहारो जगतां जनन्या ह्यभोऽस्ति भूतो भविता विचित्रः ॥७१॥

हे राजन् ! अपने सौभाग्यसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि समस्तलोकोंको आश्चर्यमें डालने वाली आपकी यह पुरी भी धन्यवादके योग्य है जिसमें इन जगज्जननी श्रीकिशोरीजीका अनेक प्रकारका विहार हुआ है, हो रहा है और आगे भविष्यमें भी होगा ॥७१॥

पुरौकसश्चापि तथैव धन्याः पुण्यात्मनां पूज्यतमप्रधानाः ।
येषामियं दृष्टिचरी मुनीनां वाणीमनोबुद्धिभिरप्यगम्या ॥७२॥

मुनिगण जिनका अपनी वाणीसे वर्णन, मनसे मनन और बुद्धिसे निश्चय नहीं कर पाते हैं, वे आपकी ये श्रीललीजी जिनको प्रत्यक्ष-दर्शन प्रदान कर रही हैं वे आपके पुरवासी परम धन्य हैं तथा सभी पुण्यात्माओंके भी परम पूजनीयोंमें श्रेष्ठ हैं ॥७२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं वदत्येव मुनौ च तस्मिन् राजा सकान्तश्च तदीक्षमाणः ।
निगूढभावो निपपात भूमौ श्रीभूमिजापादविलीनदृष्टिः ॥७३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं: हे प्यारे ! श्रीश्रुतशीलजी महाराजके इस प्रकार वर्णन करने पर अत्यन्त छिपे भाव वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीअम्बाजीके सहित श्रीभूमिसुताजीके चरणकमलोंमें विलीन दृष्टि हो उनके देखते देखते भूमिपर गिर पड़े ॥७३॥

तमातुरं वीक्ष्य महामुनीन्द्रो द्रुतं समुत्थाप्य नृपं विदेहम् ।
आश्वसयन् वाचमिमां तदोचे निशामयन्त्या अवनेः सुतायाः ॥७४॥

देहानुसन्धान भूले हुये, मिथिलेशजी महाराजको अधीर देखकर परमात्म-स्वरूपा श्रीकिशोरी

जीके स्वरूपका मनन करने वालोंमें श्रेष्ठ श्रीश्रुतशीलजी महाराज, उन्हें तुरत उठाकर तथा आश्वासन प्रदान करते हुये श्रीभूमिसुताजीके श्रवण करते हुये यह वचन बोले ॥७४॥

श्रीश्रुतशील उवाच ।

भद्रं हि ते राजमणे ! सदाऽस्तु सापत्यदारक्षितिजादिकाय ।
धर्मात्मनां श्रेणिविभूषणाय ममाज्ञयेतो व्रज भोजनाय ॥७५॥

हे राजाओंमें मणिके समान चमकने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज ! आपतो धर्मात्माओंकी पङ्क्तिके प्रधान भूषण हैं अतः श्रीमहारानीजी श्रीराजकुमारजी तथा श्रीभूमिकुमारीजी आदि परिवार के सहित आपका सर्वदा ही मङ्गल हो, मेरी आज्ञासे अब आप यहाँ से भोजन करनेके लिये पधारिये ॥ ७५ ॥

बुभुक्षुरेषा स्वसृबन्धुभिश्च प्रतीयते पूर्णशशाङ्कवक्त्रा ।
मुहुर्मुहुः पश्यति पद्मनेत्रा मातुर्मुखाम्भोजमुदारभावा ॥७६॥

क्योंकि उदार (विशाल) भाववाली ये पूर्णचन्द्रमुखी, कमललोचना श्रीकिशोरीजी अपनी श्रीअम्बाजीके मुखकमलको बारम्बार अवलोकन कर रही हैं, इससे मुझे ये अपने भाई बहिनोंके सहित भोजनकी इच्छुक प्रतीत हो रही हैं ॥७६॥

श्रीजनक उवाच ।

विधीयतां नाथ ! मुदाऽशनं त्वया मयाऽऽहृतं चेदममोघदर्शन ! ।
त्वदाज्ञया सत्वरमालयो मया सापत्यदारावनिजेन गम्यते ॥७७॥

श्रीमिथिलेशजी-महाराज उनकी इस आज्ञाको सुनकर बोले:-हे अमोघ (सफलता प्रदायक) दर्शन ! हे नाथ ! मेरे मँगाये हुये इस भोजनको आप प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कीजिये, आपकी आज्ञासे पुत्र, रानी तथा श्रीभूमिकुमारीजीके सहित मैं शीघ्र ही अपने महलको जा रहा हूँ ॥७७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तदिङ्गितं वीक्ष्य नृपो मुहुर्मुहुः प्रणम्य तं प्राञ्जलिरङ्ग सादरम् ।
निवेशनं स्वं प्रविवेश भास्वरं स भोजनाख्यं परमं मनोहरम् ॥७८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्राणप्यारे सरकार ! पुनः हाथ जोड़े हुये श्रीमिथिलेशजीमहाराज, महल जानेके लिये उनका सङ्केत देखकर आदर पूर्वक उन्हें बारबार प्रणाम करके वे अपने प्रकाशमान परममनोहर भोजन भवनमें पधारे ॥७८॥

स तत्र नृपसत्तमो निजसुतां धरासम्भवां
युतामखिलबन्धुभिः स्वसृगणैः समाराधिताम् ।
सुतर्प्य सुधयोपमैर्विविधभोजनैः सादरं
चकार स च भोजनं स्वयमपि स्वराज्ञ्या समम् ॥७९॥

इति चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

—: मासपारायण-विश्राम २१ :—

वहाँ वहिनोंके द्वारा भली भाँति प्रसन्न की हुई अपनी श्रीललीजीको समस्त भाइयोंके सहित अनेक प्रकारके अमृतके समान हितकर, स्वादिष्ट भोजनोंके द्वारा भली प्रकार तृप्त करके श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीसुनयना अम्बाजीके सहित भोजन करने लगे ॥७९॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

महया 'श्रीलक्ष्मीनिधिका' 'विराह' तथा विरहव्याकुला 'श्रीसुकान्ति-महारानी' एवं 'श्रीकिशोरीजीका' 'सवाद'

श्रीशिव उवाच ।

श्रुतशीलो महातेजाः सभामासाद्य भूभृता ।
सत्कृतो विधिना प्रोचे शृण्वतां तं सभासदाम् ॥१॥

भगवान शङ्करजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीश्रुतशीलजी महाराज श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी सभामें पहुँचे तथा उनके द्वारा विधि पूर्वक सत्कारको प्राप्त कर, सभी सभासदोंके सुनते हुये उनसे इस प्रकार बोले ॥१॥

श्रीश्रुतशील उवाच ।

स्वस्त्यस्तु नृपशार्दूल ! विज्ञानाम्भोजभास्कर ।
सर्वदा ते महाराज ! श्रूयतां यदिहोच्यते ॥२॥

हे महाराज ! आप राजाओंमें श्रेष्ठ और विज्ञान रूपी कमलको सूर्यके समान खिलाने वाले हैं, आपका सदा ही मङ्गल हो ! इस समय जो मैं कह रहा हूँ, उसे आप श्रवण कीजिये ॥२॥

अनुज्ञां देहि मे गन्तुं मत्पुरीमद्य मा चिरम् ।
कन्याचिन्तानुचिन्तार्त्तः श्रीधरो मां दिदृक्षुकः ॥३॥

अब आप मुझे अपनी पुरीको जानेके लिये शीघ्र आज्ञा प्रदान कीजिये, क्योंकि कन्याओंकी चिन्ताकी अनुचिन्तासे व्याकुल श्रीधरजी महाराजको मुझे देखनेकी इच्छा हो रही है ॥३॥

वैशाखस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां नृपतेः सुताः ।
पुत्रेभ्यो भवता ग्राह्याः प्रयायेतः पुरीं मम ॥४॥

वैशाख शुक्ल पञ्चमी तिथिको आप हमारी त्रिढालिकापुरीमें पहुँचकर श्रीधर महाराजकी कन्याओंको अपने राजकुमारों के लिये ग्रहण करें ॥४॥

दुर्लभं दर्शनं मह्यं स्वपुरं गन्तुमिच्छते ।
स्वपुत्र्याः कारयेदानीं ब्राह्मणाय नरर्षभ ! ॥५॥

हे नरोत्तम ! इस समय अपने नगरको जानेकी इच्छा वाले मुझ ब्राह्मणको अपनी श्रीललीजी के दुर्लभ दर्शन करा दीजिये ॥५॥

श्रीशिव उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महर्षेर्भावितात्मनः ।
आजुहाव सुतां राजा स्वभृत्यबन्धुभिरन्विताम् ॥६॥

भगवान शिवजी बोले :—हे प्रिये ! भावितात्मा अर्थात् परमात्म स्वरूपका चिन्तन करने वाले उन महर्षि श्रुतशीलजी महाराजके स्नेहभीने वचनको सुनकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने बहिन भाइयों के सहित अपनी श्रीललीजीको वहाँ बुला लिया ॥६॥

तां दृष्ट्वा मृगपोताक्षीं महामाधुर्यवर्षिणीम् ।
प्रणम्य मनसा भूयो मुनिः स्तोतुं प्रचक्रमे ॥७॥

उनके आने पर मनन परायण श्रीश्रुतशीलजी महाराज, अपने महान् सौन्दर्यके आनन्दकी वर्षा करने वाली, मृगशिशुके समान विशाल मनोहर लोचना उन श्रीमिथिलेश-राजललीजूका दर्शन प्राप्त कर उन्हें बारंबार मानसिक प्रणामकरके स्तुति करने लगे ॥७॥

श्रीश्रुतशील उवाच ।

अहो नरेन्द्रनन्दिनि ! प्रपन्नदीनरञ्जिनि ! प्रशस्तवंशसम्भवे ! पदाभिभूतमार्दवे ।
सुबालकेलितत्परे ! श्रुतीडिते ! परात्परे ! कदा विधास्यसीह मां दयार्द्रदृष्टिभाजनम् ॥८॥

श्रीश्रुतशीलजी महाराज बोले :—हे नरेन्द्र-नन्दिनी श्रीलली ! जो परात्पर ब्रह्म स्वरूपा हैं, भगवान् वेद जिनकी स्तुति करते हैं, अपने श्रीचरण-कमलोंकी कोमलतासे जो कोमलताको भी लज्जित कर रही हैं, तथा जो साधनाभिमान रहित शरणागत जीवोंको आनन्द प्रदान करने वाली, विख्यात वंशमें प्रकट हुई, सुन्दर बालकेलि कर रही हैं, वे आप मुझे कब अपनी दयासे द्रवित हुई दृष्टिका पात्र बनायेंगी ॥८॥

जगद्विमोहनस्मिते ! हृताखिलाघभाषिते ! महामनोज्ञदर्शने! करीन्द्रपोतसर्पणे ! स्वमातृभाग्यभूषणे ! सुविस्मृतार्त्तदूषणे ! कदा विधास्यसीह मां दयार्द्रदृष्टिभाजनम् ९

जिनकी मुस्कान सभी चर अचर प्राणियोंको सहजहीमें मुग्ध करने वाली तथा जिनकी वाणी समस्त दुःखोंको हरण करनेवाली है, जिनकी चाल गजराजके शिशुके समान और दर्शन महामनोहर है, जो अपनी श्रीअम्बाजीके भाग्यको भूषणके समान सुशोभित करने वाली तथा अपने आश्रित भक्तोंके सभी दोषोंको सब प्रकारसे भूल जाने वाली हैं, वे आप कब मुझे अपनी दया द्रवित दृष्टिका पात्र बनायेंगी ॥९॥

सुयोगिनामदूरगे ! कुयोगिनां सुदूरगे ! प्रपन्नकल्पपादपे ! सतां गते ! महाकृपे ! कृपाप्रपूर्णवीक्षणे! हितप्रदैकशिक्षणे ! कदा विधास्यसीह मां दयार्द्रदृष्टिभाजनम् १०

अपने मन,बुद्धि,चित्त, अहङ्कारादि जो इन्द्रियोंको हर प्रकारसे आपके श्रीचरण-कमलोंमें ही लगाते हैं, उन भक्तों के लिये तो आप बिल्कुल सन्निकट (पासमें) हैं और जो इन्हें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इत्यादि पञ्च विषयोंमें ही लगाते हैं उन आपसे विमुख विषयी प्राणियों के लिये आपकी प्राप्ति बहुत ही दूर है । आप शरणागत जीवोंके सकल मनोरथोंको सिद्ध करनेके लिये कल्पवृक्ष एवं सन्तोंकी परम रक्षा करने वाली, महाकृपास्वरूपा हैं, जिनकी दृष्टि कृपासे परिपूर्ण और शिक्षा उपमारहित हित प्रदान करने वाली है, वे आप कब मुझे अपनी दया द्रवित दृष्टिका उत्तमपात्र बनायेंगी ॥१०॥

अरालकान्तकुन्तले ! पवित्रिताचलातले ! विशालसुष्ठुमस्तके ! प्रदीप्तरत्नचन्द्रिके ! धृताब्जपाणिपङ्कजे ! विदेहभूपवंशजे ! कदा विधास्यसीह मां दयार्द्रदृष्टिभाजनम् ११

जो श्रीविदेह-महाराजके वंशमें प्रकट हुई हैं और भक्तोंको कमलके समान सदा खिले रहनेका उपदेश देनेके लिये अपने कर-कमलमें कमलका पुष्प धारण किये हुई हैं, जिनका ललाट चौड़ा व मनोहर है, जिनकी रत्न जटितचन्द्रिका जगमगा रही है, मनोहर घुँघुराले जिनके केश हैं,

जो अपने चरणोंके स्पर्शसे इस पृथ्वीतलको पवित्र कर दिये हैं, वे आप अपनी नूतन कृपा दृष्टिका मुझे कब उत्तम पात्र बनानेकी कृपा करेंगी ? ॥११॥

इयं मनोहरच्छविः सदा दृगम्बुजालये
वसत्वजस्रमात्मदे ! ममाम्बुजाक्षि ! तावकी ।
तवाप्यदर्शनेन मे न रोचते हि किञ्चन
कदा विधास्यसीह मां दयार्द्रदृष्टिभाजनम् ॥१२॥

हे आत्मा (इष्टमयी बुद्धि) को प्रदान करनेवाली कमललोचना श्रीललीजी ! आपकी यह मनोहर छवि सदा मेरे नयनमकलरूपी मन्दिरमें निवास करे, क्योंकि आपके दर्शनोंके विना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता, अत एव कब आप मुझे अपनी दयासे द्रवित दृष्टिका उत्तम पात्र बनायेंगी १२

श्रीशिव उवाच ।

एवं सस्तूय विप्रेन्द्रः श्रीसीतां स्तुत्यसंस्तुताम् ।
प्रणम्य शिरसा भक्त्या कथञ्चित्स्वपुरीं ययौ ॥१३॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! स्तुति करने योग्य ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी जिनकी स्तुति करते हैं, शरणागत जीवोंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाली तथा सभी आपत्तियोंसे उद्धार करनेवाली उन श्रीललीजीकी वे ब्राह्मणश्रेष्ठ श्रीश्रुतशीलजी महाराज इस प्रकार स्तुति करके पुनः श्रद्धा-पूर्वक शिरके द्वारा उन्हें प्रणाम करके बड़ी कठिनतासे अपनी 'विशालिका पुरी'को गये ॥१३॥

तत्र श्रीधरमासाद्य ददौ स्वीकारपत्रिकाम् ।
तस्माच्छ्रुतवती राज्ञी सुतानां समुपस्थितौ ॥१४॥

वहाँ वे 'श्रीधर महाराज'के पास पहुँचकर उन्हें श्रीमिथिलेशजी-महाराजका, अपने राज पुत्रोंके विवाहके लिये दिया हुआ स्वीकार पत्र दिए, उसे महारानी 'श्रीसुकान्तिजी' ने अपनी पुत्रियोंकी उपस्थितिमें ही 'श्रीधर महाराज'के द्वारा श्रवण किया ॥१४॥

महानन्दोत्सवो जातस्तदानीं नृपमन्दिरे ।
पुनर्वैवाहिके कृत्ये नियुक्तास्तेन मन्त्रिणः ॥१५॥

उस समय उस समाचारको सुनकर राजमहलमें महान् उत्सव मनाया गया पुनः विवाह सम्बन्धी कार्योंको पूर्ण करनेके लिये श्रीधरमहाराजने अपने मंत्रियोंको नियुक्त किया ॥१५॥

तैः कृतं कृत्यमखिलं विवाहार्हं विचक्षणैः ।
पर्यवेक्ष्य महाराजः प्रहर्षं परमं ययौ ॥१६॥

उन बुद्धिमान मन्त्रियोंके द्वारा आज्ञानुसार, विवाहोचित सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न किया हुआ देखकर, महाराज श्रीधरजीने अतिशय हर्षको प्राप्त किया ॥१६॥

अमायां स तिथौ पुण्ये माधवे मासि शोभने ।
विदेहो वरपक्षेण पुरीं प्राप विडालिकाम् ॥१७॥

सुन्दर वैशाख मासमें अमावस्याकी पुण्य तिथिमें बरातके सहित श्रीमिथिलेशजी-महाराज विडालिकापुरीमें जा पहुँचे ॥१७॥

सहस्रैरन्वितो भृत्यैर्ब्राह्मणैश्च सुहृज्जनैः ।
बन्धुभिर्मन्त्रिभिश्चैव निमिवंश्यैः पुरोधसा ॥१८॥
सपुत्रो निमिवंशेनो विधिना श्रीधरेण सः ।
स्वागतेनाभिनन्द्याङ्ग भक्त्या परमयाऽर्चितः ॥१९॥

श्रीधरजी महाराजने हजारों सेवक, मित्र, ब्राह्मण, बन्धु, मन्त्री, निमिवंशीवृन्द तथा श्रीशतानन्दजी-महाराजके सहित श्रीमिथिलेशजीमहाराजका स्वागतके द्वारा विधि-पूर्वक अभिनन्दन करके महती श्रद्धाके साथ पूजन किया ॥१८॥१९॥

वासं प्रदाय सर्वेभ्यो लोकरीतौ मनो दधे ।
विडालिकाप्रजाधीशो मुदितेनान्तरात्मना ॥२०॥

पुनः श्रीविडालिकापुरीके राजा श्रीधरजीने सभीके लिये निवासस्थानप्रदान करके बड़े प्रसन्न चित्तसे लोक व्यवहारकी ओर अपना मनोयोग दिया ॥२०॥

अथाग्निं साक्षिणं कृत्वा कन्यादानं चकार सः ।
पञ्चम्यां राजपुत्रेभ्यो राज्ञ्या शास्त्रविधानतः ॥२१॥

तत्पश्चात् वैशाखशुक्ला पञ्चमीको उन्होंने श्रीसुकान्तिमहारानीके सहित शास्त्रोक्त-विधिके अनुसार राज पुत्रोंके लिये कन्या-दान करना प्रारम्भ किया ॥२१॥

श्रीधर उवाच ।

इमां मम सुतां "सिद्धिं" गृहाण कुलनन्दन ? ।
वत्स लक्ष्मीनिधे ! हृष्टो दीयमानां मयाऽधुना ॥२२॥

श्रीधरजीमहाराज बोले:-कुलको आनन्द-प्रदान करनेवाले हे वत्स श्रीलक्ष्मीनिधिजी ! अब मैं अपनी सिद्धिनामकी यह पुत्री आपको दानकर रहा हूँ, इसे आप हर्षपूर्वक ग्रहण कीजिये ॥२२॥

सुतेयं मम कल्याणी वाणी नाम्नेति विश्रुता ।
गुणाकराख्य ! भवते दीयते गृह्यतां मुदा ॥२३॥

हे वत्स ! गुणाकरजी ! इस वाणी नामकी शुभकन्याको आप प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कीजिये, मैं आपको अर्पण करता हूं ॥२३॥

नन्दाख्येयं सुता वत्स ! श्रीनिधे ! गृह्यतां त्वया ।
इयं धर्मरहस्यज्ञा भवते दीयते मया ॥२४॥

हे वत्स ! श्रीनिधिजी ! यह नन्दा नामकी पुत्री धर्मके रहस्यको जानने वाली है, इसे मैं आपको अर्पण कर रहा हूँ, आप अङ्गीकार कीजिये ॥२४॥

उषेयं तनया तुभ्यं पत्न्यर्थं वामलोचना ।
दीयमाना मया वत्स ! श्रीनिधानक ! गृह्यताम् ॥२५॥

हे वत्स श्रीनिधानकजी ! उषा नामकी यह कन्या मैं आपको दानकर रहा हूँ आप इसे ग्रहण कीजिये ॥२५॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं समर्प्य ताः पुत्रीर्मैथिलेभ्यो मुदान्वितः ।
प्रीत्या परमया नत्वा प्राह स मैथिलेश्वरम् ॥२६॥

भगवान् शिवजी बोले :-हे प्रिये ! इस प्रकार श्रीधरजी महाराज, अपनी चारो पुत्रियाँ श्रीमिथिलेशराजदुलारोंको अर्पण करके, हर्षयुक्त, बड़े प्रेमपूर्वक प्रणाम करके श्रीमिथिलेशजी महाराज से बोले :- ॥२६॥

श्रीधर उवाच ।

अद्याहमृणमुक्तोऽस्मि स्वपुत्रीणां महीपते ! ।
समर्प्यैताः सुविधिना कुमारेभ्यो न संशयः ॥२७॥

आज मैं अपनी ये पुत्रियाँ आपके राजकुमारोंको विधिपूर्वक अर्पण करके, इनके ऋणसे निःसन्देह मुक्त हो गया ॥२७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा नरपतिं श्रीधरो मिथिलापतिम् ।
पारिबर्हं बहुविधं पुष्कलं प्रददौ मुदा ॥२८॥

भगवान् शङ्करजी बोले :–हे प्रिये ! इस प्रकार श्रीधरजी महाराजने श्रीमिथिलेशजी महाराजसे कहकर बड़ी प्रसन्नता के साथ उन्हें अनेक प्रकारके बहुतसे दहेज दिये ॥२८॥

रहस्यागारतोऽभ्येत्य सुकान्त्याः पुनरेव ते ।
नेमुः परमया भक्त्या पादयोर्निमिवंशजाः ॥२९॥

उधर कोहवर कुंजसे लौटकर श्रीनिमिवंशीराजकुमारोंने बड़ी श्रद्धापूर्वक श्रीसुकान्ति महारानी के चरणोंमें प्रणाम किया ॥२९॥

तांस्तु सा प्राशयामास पीयूषोपमभोजनैः ।
दिव्यैश्चतुर्विधैश्चैव षड्रसैः सौरभान्वितैः ॥३०॥

श्रीसुकान्ति महारानीने अपने उन चारों जामाताओं (जमाइयों) को सुगन्ध युक्त षट्रस-मय भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य इनचारों प्रकारके अमृततुल्य स्वादिष्ट तथा हितकारी दिव्य भोजन करवाया ॥३०॥

प्रादात्तेभ्यश्च ताम्बूलं पीतदुग्धेभ्य आदरात् ।
जनावासं ततो गन्तुं प्रार्थिताऽऽज्ञां मुदाऽदिशत् ॥३१॥

पुनः श्रीसुकान्ति महारानीने उन राजकुमारोंके दुग्धपान करलेने पर, उन्हें आदर पूर्वक पान की बीड़ा दिया, तत्पश्चात् जब राजकुमारोंने जनवास भेजनेके लिये प्रार्थनाकी, तब उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक उन्हें वहाँ जानेकी आज्ञा दी ॥३१॥

निर्गतेषु ततस्तेषु सुताः क्रोडे निधाय सा ।
प्रेमगद्गदया वाचा ता उवाच शुभं वचः ॥३२॥

उन श्रीराजकुमारोंके जनवास चले जाने पर, श्रीसुकान्ति महारानी अपनी पुत्रियोंको गोदमें बिठाकर प्रेमसे गद्गद हुई वाणी द्वारा उनसे यह मङ्गल वचन बोलीं ॥३२॥

श्रीसुकान्तिरुवाच ।

धन्या यूयं महाभागा भद्रं वो मम पुत्रिकाः ।
पातिव्रत्यं हि युष्माभिः समासेव्यं निरन्तरम् ॥३३॥

हे मेरी पुत्रियों! तुम्हारा कल्याण हो, तुम वास्तवमें बड भागिनी और धन्यवादके योग्य हो अब तुम पतिव्रता स्त्रियोंके धर्मका ही निरन्तर सेवन करती रहो ॥३३॥

मैथिली भूमिजा सीता सर्वभावेन सर्वदा।
समाराध्या प्रयत्नेन मनोवाक्कायकर्मभिः ॥३४॥

और मन, वाणी, शरीर, तथा कर्मके द्वारा भूमिसे प्रकट हुई श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी श्रीसीताजूकी सभी भावोंसे सब समय, पूर्ण उपाय पूर्वक, भलीभाँति सेवा करना ॥३४॥

सा ध्रुवं जीवनस्यार्थः सत्स्वार्थः पर एव हि।
पुंसां प्रयत्नतः प्राप्या मैथिली जनकात्मजा ॥३५॥

क्योंकि वास्तवमें श्रीमिथिलाजीमें प्रकट हुई श्रीजनकराज-दुलारीजी ही निश्चय करके मनुष्य जीवनकी उद्देश्य स्वरूपा है तथा वही अपनी वास्तविक सर्वोत्तम धन (स्वरूपा) हैं अत एव इस मनुष्य शरीरको पाकर अपने उस सर्वश्रेष्ठ धनकी प्राप्ति अवश्य कर लेनी चाहिये ॥३५॥

दुर्लभं दर्शनं यस्या मनसाऽपि यतात्मनाम्।
यूयं तयाऽयतात्मानो यथेच्छं विहरिष्यथ ॥३६॥

हे पुत्रियों! जिनका दर्शन मनको एकाग्र करने वाले महात्माओंको मनसे भी दुर्लभ है, उन्हींके साथ मनका संयम न करने वाली तुम लोग, अपनी इच्छाके अनुसार विहार करने का सौभाग्य प्राप्त करोगी ॥३६॥

भवतीनां तु सम्बन्धान्मां स्मरन्त्यां धराभुवि।
स्यादवश्यं चणं तस्यां साफल्यं मम जन्मनः ॥३७॥

किन्तु आप लोगोंके सम्बन्धसे यदि कभी भूमिसे प्रकट हुई श्रीललीजी, मुझको क्षणमात्रभी स्मरण कर लेंगी तो, मेरा भी जन्म अवश्य सफल हो जावेगा ॥३७॥

श्रीशिव उवाच।

निशम्यागमनं राज्ञी जामातॄणां तदा द्रुतम्।
स्वागतार्थं च सा तेषां बहिर्द्वारमुपागमत् ॥३८॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये! उसी समय श्रीसुकान्ति महारानीने जामाताओंको अपने यहाँ आते हुये सुनकर, उनका स्वागत करने के लिये तुरत बाहर द्वार पर पहुँची ॥३८॥

ततो नीराज्य भवनमानयामास सादरम् ।
मिथिलेशकुमारांस्तानतीव प्रियदर्शनान् ॥३९॥

और अत्यन्त प्रिय-दर्शन श्रीमिथिलेशजी महाराजके उन राजकुमारोंको आरती करके बड़े सत्कार पूर्वक वे द्वारसे अपने महलके भीतर ले आईं ॥३९॥

सत्कृता विधिना-प्रीत्या सुकान्त्या प्रीतिरूपया ।
सिंहासनसमासीनास्त ऊचुस्तां नतेक्षणाः ॥४०॥

वहाँ प्रीतिस्वरूपा श्रीसुकान्ति महारानीने प्रेमपूर्वक पूर्णविधिसे सत्कार करके जब उन्हें सिंहासनपर बिठाया तब अपनी दृष्टिको नीचे किये हुये वे राजकुमार उनसे बोले:-॥४०॥

राजकुमारा ऊचुः ।

अम्ब ! संप्रेषिताः पित्रा वयं त्वां समुपस्थिताः ।
मिथिलागमनादेशप्राप्तयेऽनुमतेर्गुरोः ॥ ४१ ॥

हे अम्ब ! गुरुदेव श्रीशतानन्दजी महाराजकी अनुमतिसे श्रीपिताजीके भेजे हुये हम लोग श्रीमिथिलाजी जानेकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये आपके पास आये हैं ॥४१॥

अनुजानीहि नः प्रीत्या पितुराज्ञानुवर्तिनः ।
इयं नः प्रार्थना तस्मात्स्वीकार्य्याऽम्ब ! त्वया द्रुतम् ॥४२॥

इस लिये आप प्रसन्नता पूर्वक पिताजीके आज्ञाकारी हम लोगोंके लिये श्रीमिथिलाजी जाने की आज्ञा प्रदान करें । हे माताजी ! हम लोगोंकी इस प्रार्थनाको आप शीघ्रही स्वीकार कीजिये ४२

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तं वचस्तेषां निशम्य विरहातुरा ।
श्वश्रूर्धैर्यं समालम्ब्य कुमारान्प्रत्युवाच ह ॥४३॥

भगवान् शिवजी बोले :-हे पार्वती ! वरोंकी इस प्रकारकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीसुकान्ति महारानी विरहसे व्याकुल हो गयीं पुनः धैर्यका सहारा लेकर उनसे वे बोलीं ॥४३॥

क्षणं तिष्ठत भोवत्सा ! श्रूयतां विनयो मम ।
आज्ञापयामि त्वरया सर्वदा भद्रमस्तु वः ॥४४॥

हे वत्सों ! आप लोगोंका सदा ही मङ्गल हो मैं शीघ्र ही आज्ञा दूंगी, क्षणभर ठहरिये और मेरी प्रार्थनाको सुन लीजिये ॥४४॥

सुता एता महाभागा मयि जाताः सुलक्षणाः ।
न जाने केन पुण्येन दिष्ट्या कुलप्रदीपिकाः ॥४५॥

कुलको दीपकके समान प्रकाशमें लानेवाली, सुन्दर लक्षणोंसे सम्पन्ना, महासौभाग्यशालिनी ये पुत्रियाँ दैव योगसे न जाने किस पुण्यके प्रभावसे मेरे गर्भसे प्रकट हुईं ॥४५॥

आसां तु शैशवादेव प्रीतिरासीदनुत्तमा ।
शृण्वन्तीनां यशः पुण्यं धरापुत्र्यां विधेर्वशात् ॥४६॥

सौभाग्यवश पृथ्वीसे प्रकट हुई श्रीललीजीके पवित्र यशको सुनती हुई इन पुत्रियोंकी बहुत ही प्रीति उनके प्रति हो गयी है ।४६॥

अतो मयाऽपि सुप्रीत्या श्रद्धया परया त्विमाः ।
पालिता धन्यमात्मानं निश्चयन्त्या नृपेण च ॥४७॥

इस लिये इनके पिताजीके सहित बड़ी श्रद्धा और प्रीतिके साथ अपनेको धन्यवादके योग्य निश्चय करती हुई ही मैंने भी इनका पालन किया है ॥४७॥

जीवितं त्यक्तुमिच्छन्तीरनासाद्यावनेः सुताम् ।
विमृश्य प्राणरक्षार्थं सम्बन्धोऽयं विनिश्चितः ॥४८॥

श्रीकिशोरीजीका दर्शन न मिलनेके कारण जब इन पुत्रियोंने अपना जीवन त्याग कर देनेकी इच्छा करली, तब इनकी प्राणरक्षाके लिये इस सम्बन्धका निश्चय किया गया ॥४८॥

तदेता वो हि सम्बन्धात्समेष्यन्ति ध्रुवं हि ताम् ।
पूर्णकामा भविष्यन्ति विहरन्त्यस्तया समम् ॥४९॥

सो ये अब आप लोगोंके सम्बन्धसे निश्चय ही श्रीललीजीको सब प्रकारसे प्राप्त होंगी और उनके साथ विविध प्रकारके खेल खेलती हुइ अपने सभी मनोरथोंको पूर्ण करके लोकमें निष्कामताको प्राप्त करेंगी ॥४९॥

न ददर्शनसौभाग्यं मातुरासां धिगस्तु माम् ।
अपि दर्शनपुण्येन तद्वन्धूनां हि नो बत ॥५०॥

मैं इनकी माता हूँ और आप लोग श्रीललीजूके भइया हैं, फिर भी आश्चर्य है कि आप लोगोंके दर्शन जनित पुण्यके प्रतापसे भी मुझे श्रीललीजीके दर्शनाका सौभाग्य नहीं, अत एव मुझमें धिक्कार है !" ॥५०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदाभाष्य वचनं सुकान्तिर्गद्गदाक्षरम् ।
जगाम महतीं मूर्च्छां तेषामेव प्रपश्यताम् ॥५१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीसुकान्तिअम्बाजी श्रीकिशोरीजीके श्रीलक्ष्मीनिधि आदि भाइयोंसे यह गद्गद वचन कहकर उनके देखते-देखते गहरी मूर्च्छाको प्राप्त हुईं ॥५१॥

तदानीमेव सर्वज्ञा प्रियेयं जनकात्मजा ।
नीलपद्मपलाशाक्षी शरच्चन्द्रनिभानना ॥५२॥

हे प्यारे ! उसी समय सबके हृदयके सभी भावोंको जानने वाली, नील कमलदल-लोचना, शरदृतुके पूर्णचन्द्रके समान प्रकाशमय आह्लादकारी श्रीमुखारविन्दवाली ये श्रीजनकराज-किशोरीजी ॥५२॥

रोमनिर्जितशोभाब्धिर्जगत्संमोहनस्मिता ।
श्रियः श्रीस्तप्तहेमाङ्गी नीलकुञ्चितकुन्तला ॥५३॥

जिनके एक रोमकी छविसे, सौन्दर्य-सागर भी हारको प्राप्त है, जिनकी मुस्कान चर-अचर सभी प्राणियोंको पूर्ण मुग्ध कर लेती है, जो शोभाकी शोभा, सुवर्णके समान गौर अङ्ग तथा नीले घुँघुराले केश वाली हैं ॥५३॥

सर्वाभरणवस्त्राढ्या नित्यापारसुखाकृतिः ।
प्रादुरासीद्धरापुत्री द्योतयन्ती रुचा गृहम् ॥५४॥

वे सदा एक रस रहने वाले अनन्त-सुख (ब्रह्मानन्द या भगवदानन्द) की मूर्ति पृथ्वीसे प्रकट हुई श्रीललीजी, सभी वस्त्र भूषणोंका शृङ्गार धारण किये हुईं, अपनी दिव्य कान्तिसे राजमहल को प्रकाशित करती हुईं, वहाँ प्रकट हो गयीं ॥५४॥

तां समुत्थापयामास सुकान्तिं श्रीधरप्रियाम् ।
कराभ्यां कञ्जकल्पाभ्यां वरदाभ्यामयोनिजा ॥५५॥

और बिना किसी कारण अपनी इच्छाशक्तिसे प्रकट हुईं, श्रीकिशोरीजीने श्रीधर महाराजकी उन महारानी श्रीसुकान्तिजीको अपने वरद (अभीष्ट प्रदायक) कमलवत् सुकोमल तथा सुगन्धियुक्त हाथोंसे उठा लिया ॥५५॥

लब्धसञ्ज्ञा च सा राज्ञी दृष्ट्वा सुनयनासुताम् ।
अम्बाम्बेति वदन्तीं तां निजोत्सङ्गे समाददे ॥५६॥

पुनः जब श्रीसुकान्ति-महारानी सावधान हुईं, तब उन्होंने अम्माजी-अम्माजी ऐसा कहती हुईं श्रीसुनयनानन्दिनी श्रीललीजूका दर्शन करके, उन्हें अपनी गोदमें उठा लिया ॥५६॥

चुचुम्ब तन्मुखाम्भोजमुपाघ्राय सुमस्तकम् ।
सा वात्सल्यरसासक्ता स्रवत्क्षीरस्तनद्वया ॥५७॥

और वात्सल्यभावमें आसक्त हो, अपने दोनों स्तनोंसे दूध बहाती हुई, उन्होंने श्रीललीजीके सुन्दर मस्तकको सूंघकर उनके मुखकमलका चुम्बन किया ॥५७॥

पुनरालिङ्ग्य तां प्रेम्णा साश्रुपङ्कजलोचना ।
आनन्दार्णवसंमग्ना बभूवास्ततनुस्मृतिः ॥५८॥

पुनः अपने कमलवत् नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंको बहाती हुई, प्रेमपूर्वक श्रीललीजीको हृदयसे लगाकर देहकी सुधि भूलकर आनन्द सागरमें डूब गयीं ॥५८॥

ततो विष्टम्भ्य चात्मानं राज्ञी कौतूहलान्विता ।
उवाच स्निग्धया वाचा तामिदं मधुरं वचः ॥५९॥

तत्पश्चात् अपने मनको सावधान करके, आश्चर्य वश अपनी कोमल वाणीद्वारा वे श्रीकिशोरीजी से यह मधुर (सुखदाई) वचन बोलीं ॥५९॥

श्रीसुकान्तिरुवाच ।

पुत्रि ! धन्याऽस्मि लोकेऽस्मिंल्लब्धं ते कान्तदर्शनम् ।
अलभ्यं योगिमुख्यानामनायासेन यन्मया ॥ ६० ॥

हे पुत्री ! आज मैं लोकमें धन्य हूँ क्योंकि श्रेष्ठ योगीयोंके लिये भी अलभ्य आपका मनोहरण दर्शन, बिना किसी यत्नके ही मुझे प्राप्त है ॥६०॥

कथं त्वं मे गृहं प्राप्ता कुतः काऽसि च वस्तुतः ।
तन्मे कथय हे वत्से ! सहजानन्दरूपिणि ! ॥६१॥

हे सहज-आनन्द-मूर्ति ! श्रीललीजी ! मुझे यह तो बताइये, कि आप वास्तवमें हैं कौन ? कहाँ से ? किस प्रकार, मेरे महलमें प्राप्त हुई हैं ? ॥६१॥

कच्चित्त्वमसि कल्याणि ! मिथिलाधीशनन्दिनी ।
अयोनिजा धरापुत्री सीता सुनयनासुता ॥६२॥

क्या आप बिना किसी कारण (अपनी इच्छासे) प्रकट हुई श्रीसुनयना महारानीजीकी लली हे समस्त मङ्गलोंकी मूर्ति ! श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी श्रीसीताजी तो नहीं हं ? ॥६२॥

लक्षणैर्भासि सा त्वं मे सर्वैः श्रवणगोचरैः ।
मद्वियोगव्यथाशान्त्यै प्रादुर्भूता ध्रुवं यतः ॥६३॥

जो-जो लक्षण में ने उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूमें श्रवण किये हैं, उन सभी लक्षणोंसे मुझे आप वे ही प्रतीत हो रही हैं, क्योंकि इस समय मेरे हृदयमें उन्हींकी विरह-जनित व्यथा बढ़ी थी उसीकी शान्तिके लिये निःसन्देह आप प्रकट हुई हं, इससे मुझे प्रतीत होता है, कि आप वे ही श्रीमिथिलेशदुलारीजी हैं ॥६३॥

वत्से ! निवार्यतां शङ्का यदि मे साधु मन्यसे ।
अद्य दर्शनदानेन भवत्याऽहं कृतार्थिता ॥६४॥

हे वत्से ! यदि आप उचित समझें, तो मेरी इस शङ्काको दूर कर दीजिये ! वैसे तो आपने आज मुझे अपने दर्शनोंका दान देकर कृतार्थ कर ही दिया है ॥६४॥

श्रीसीतोवाच ।

अम्ब यद्विरहाम्भोधौ निमग्ना मूर्च्छिताऽभवः ।
साहमेव समानीता प्रीतिदेव्या तवान्तिकम् ॥६५॥

श्रीजनकराजदुलारीजी बोलीः–हे अम्ब ! आप जिनके विरह-सागरमें डूब कर मूर्च्छित हो गयी थीं, वे ही मैं हूँ, मुझे श्रीप्रीतिदेवीजी इस समय आपके पास ले आई हैं ॥६५॥

तस्यामपारसामर्थ्यमनुभूतं महात्मभिः ।
अजस्रं वाङ्मनःकायैः सा भवत्या निषेव्यते ॥६६॥

इस पर यदि आप यह शङ्का करें, कि कहाँ श्रीमिथिलाजी और कहाँ मेरी विशालिका पुरी ? यहाँ इतनी दूर वह किस प्रकार ला सकीं ? और किस रीकसे वे प्रसन्न होकर लाईं उसका कारण क्या है ? उसका समाधान यह है, कि उस प्रीति देवीमें अनन्त सामर्थ्य है, उसका अनुभव महात्माओंने किया है, इसलिये यदि वे श्रीमिथिलाजीसे मुझे यहाँ आपके पास ले आईं, तो कौन आश्चर्य की बात हुई ? अर्थात् कुछ भी नहीं ! उस प्रीति देवीकी ही तो आप वाणीसे मनसे और

शरीरसे निरन्तर सेवा करती है, इसी रीझसे वह आपको मेरे विरहमें अत्यन्त व्याकुल देखकर श्रीमिथिलाजीसे मुझे यहाँ ले आई है ॥६६॥

पुत्र्यस्तवापि तामेवाराधयन्ति हि नित्यशः ।
अतस्तया समानीता प्रीतिदेव्याऽस्मि ते गृहे ॥६७॥

आपकी पुत्रियाँ भी केवल उसी प्रीति देवीकी नित्य उपासना करती हैं, इसी रीझके कारण उस प्रीति देवीने मुझे यहाँ आपके महलमें ला उपस्थित किया है ॥६७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा तस्या लोमप्रहर्षणम् ।
निपेतुः पादयोस्तूर्णं सिद्ध्याद्याः श्रीधरात्मजाः ॥६८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे श्रीप्राणप्यारेजू ! श्रीललीजूके रोमाञ्चकारी इन वचनोंको श्रवण करके श्रीधर महाराजकी श्रीसिद्धिजी आदि चारों राजपुत्रियाँ श्रीकिशोरीजीके श्रीचरणकमलोंमें गिर पड़ीं । ६८॥

गतत्रपा विशालाद्यो दासीभावमनुव्रताः ।
भृशं विह्वलतां प्राप्ता वयं का इति विस्मृताः ॥६९॥

उन विशाललोचनाओंकी लज्जा चली गयी, दासीभावमें स्थित हुई, वे इस प्रकार विह्वलता प्राप्त कर गयीं, कि उन्हें यह भी भान न रहा कि हम कौन हैं ? बालिका या वधू ? ॥६९॥

ताः समुत्थाप्य सा ताभ्यो ददावालिङ्गनं तनोः ।
कृपानिर्भरया दृष्ट्या प्रपश्यन्ती स्मितानना ॥७०॥

मन्द-मन्द मुस्कान जिनकी है, उन श्रीकिशोरीजीने सिद्धि आदि पुत्रियोंको उठाकर कृपा परिपूर्ण दृष्टिसे अवलोकन करती हुई, उन्हें अपने श्रीअङ्गका आलिङ्गन प्रदान करनेकी कृपाकी ७०

विधूयाधीरतां तासां हृदिस्थां योगमायया ।
पुनरूचे सुधावाणी ह्लादयन्ती चराचरम् ॥७१॥

पुनः उनके हृदयमें बैठी हुई अधीरताको अपनी योगमायाके द्वारा दूर करके चर-अचर (स्थावर-जङ्गम) सभी प्राणियोंको आह्लादित करती हुई, अमृतके तुल्य प्रभावशालिनी, हितकर वाणीवाली श्रीकिशोरीजी बोलीं:—॥७१॥

श्रीसीतोवाच ।

भवत्यो धैर्यमायान्तु वाञ्छितं वो भविष्यति ।
प्रीत्या संतोषिताऽहं वः प्राभवं दृष्टिगोचरी ॥७२॥

आप लोग धैर्यको धारण करें, जो इच्छाकी है उसे प्राप्त होगी; क्योंकि आप लोगोंकी प्रीतिसे ही सन्तुष्ट होकर यहाँ दर्शन दे रही हूँ ॥७२॥

अनुजानीहि मामम्ब ! माता मे विरहाकुला ।
इदानीं वर्तते गेहे मामदृष्ट्वोरुचिन्तया ॥७३॥

हे श्रीअम्बाजी ! अब मुझे आज्ञादें, क्योंकि इस समय हमारी माताजी हमको न देखकर विरहसे व्याकुल हो महलमें बड़ी ही चिन्ता कर रही हैं ॥७३॥

श्रीसुकान्तिरुवाच ।

यदि गन्तुं कृता बुद्धिरितो मातुर्निकेतनम् ।
स्वासुभिः प्रेषयामि त्वां नैकां तिष्ठ क्षणं ततः ॥७४॥

श्रीसुकान्ति अम्बाजी बोलीं:-हे वत्से ! यदि आपने यहाँ से अपनी माताजीके महलको जाने का निश्चय ही कर लिया है, तो मैं आपको अभी अपने पाँचो प्राणोंके साथ भेजती हूँ पर अकेले नहीं; इस लिये आप क्षणभर और ठहर जाइये ॥७४॥

यतो वै त्वामपश्यन्त्या विधाय स्वाक्षिगोचरीम् ।
पुनः प्रयोजनं किं स्याज्जीवितेनाधमेन मे ॥७५॥

क्योंकि आपका इन नेत्रोंसे दर्शन करके आपके दर्शनोंके अभावमें मुझे इस अधम जीवनसे क्या लाभ ? ॥७६॥

श्रीसीतोवाच ।

अम्ब ! त्वयि प्रसन्नाऽस्मि प्रीत्या परमया तव ।
न चाव्यक्ता भविष्यामि त्वया ऽहं जातु संस्मृता ॥७६॥

श्रीकिशोरीजी बोलीं:-हे अम्बाजी ! आपकी प्रगाढ़ प्रीतिसे मैं आपके प्रति प्रसन्न हूँ "अब मुझे ललीजीका दर्शन नहीं होगा इस लिये मैं प्राण छोड़ दूं" आप यह विचार छोड़दें, आप जब जिस समय स्मरण करेंगी तभी मैं प्रकटहो जाऊँगी, कभी स्मरण करने पर आपको मेरे दर्शनोंका अभाव नहीं रहेगा ॥७६॥

प्रत्ययः क्रियतां मातर्मम वाचि दृढस्त्वया ।
अनुज्ञा दीयतां मह्यं प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥७७॥

हे श्रीअम्बाजी ! आप मेरी वाणी पर पूर्ण विश्वास करें और उसी विश्वासके आधार पर मुझे प्रसन्नता-पूर्वक श्रीमिथिलाजी जानेकी आज्ञा प्रदान कीजिये ॥७७।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सुकान्तिर्धैर्यमाययौ ।
भावपूर्त्तिं पुनः कृत्वा मैथिलीमभ्यभाषत ॥७८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं हे प्यारे ! श्रीललीजीके अभीष्ट-प्रदायक उन वचनोंको सुनकर श्रीसुकान्ति महारानीको धीरज बँधा, तब वे श्रीललीजीके यथोचित स्वागत करनेका अपना भाव पूरा करके श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूसे बोलीं ॥७८॥

श्रीसुकान्तिरुवाच ।

वत्से याचे भवत्येदं दत्तवाचा कृतार्थिता ।
अकुमार्य इमाः पुत्र्यस्त्वय्यासक्तमनोधियः ॥७६॥

हे वत्से ! आपने अपनी इस प्रतिज्ञारूपी हुई वाणीके द्वारा मुझे तो पूर्ण कृतार्थ कर दिया, इस लिये अब कोई भी अर्थ मेरा शेष ही नहीं रहा, फिर भी अपना कर्त्तव्य विचार कर यह एक और याचना करती हूँ, कि ये मेरी पुत्रियाँ अभी बालिका हैं फिर भी इनका मन और बुद्धि आपमें ही आसक्त है ॥७६॥

समर्पिता मया सर्वा अनुजेभ्यस्त्वदाप्तये ।
तासु ते करुणादृष्टिर्विधेया किङ्करीष्विव ॥८०॥

इस लिये इनके प्राणरक्षार्थ आपकी प्राप्ति करानेके लिये ही इन्हें आपके छोटे भाइयोंको अर्पण किया गया है, सो आप अपनी "करुणादृष्टि" जैसी निज दासियोंके प्रति करती रहती हैं उसी प्रकार इनपर भी बनाये रहेंगी ॥८०॥

श्रीसीतोवाच ।

त्वदाज्ञां पालयिष्यामि नानृतं विद्धि मे वचः ।
इदानीं प्रार्थ्यते यत्तच्छ्रूयतां यतचेतसा ॥८१॥

श्रीकिशोरीजी बोलीं:–हे अम्बाजी ! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगी अर्थात् इनके प्रति अपनी कृपा दृष्टि अवश्य बनाये रहूँगी, मेरी वाणीको सत्य जानिये, अब मैं जो प्रार्थना कर रही हूँ उसे आप एकाग्रचित्तसे श्रवण कीजिये ॥८१॥

आवयोः सङ्गमो जातः प्रीतिदेव्याः प्रसादतः ।
गोपनीयः प्रयत्नेन न प्रकाश्यः कदाचन ॥८२॥

हमारा और आपका यह मिलन प्रीति देवीकी ही कृपासे प्राप्त हुआ है इसे पूर्ण यत्नके साथ छिपाये रहिये, कभी भी प्रकट न कीजियेगा ॥८२॥

भ्रातॄणामयमज्ञातो ममाभिमुखतिष्ठताम् ।
अनिच्छया हि मे मातः कुतोऽन्येषामतिष्ठताम् ॥८३॥

हे अम्माजी ! देखो मेरे भाई सम्मुख विराज रहे हैं, पर मेरी इच्छा न होनेसे उन्हें भी हमारे आपके इस मिलनका ज्ञान नहीं हो रहा है, फिर जो मुझसे विमुख हैं वे इस रहस्यको क्या जान सकेंगे ? ॥ ८३ ॥

श्रीशिव उवाच ।

व्याहरन्ती हि तामित्थं स्मयमानशुभानना ।
तस्या एव प्रपश्यन्त्यास्तत्रैवालक्षिताऽभवत् ॥८४॥

भगवान् शङ्करजी बोले :–हे पार्वती ! मुस्कान युक्त मनोहर मुख वाली श्रीललीजी श्रीसुकान्ति महारानीसे इस प्रकार कहती हुई, उनके देखते देखते वहीं पर अदृश्य हो गयीं ॥८४॥

कुमारा ऊचुः ।

अम्ब धैर्यं समाधाहि वाञ्छितं ते भविष्यति ।
वयमासाद्य मिथिलां जनन्यै ते मनोव्यथाम् ॥८५॥
निवेदयामो रहसि श्रुत्वा सा सदया ध्रुवम् ।
अम्बाऽभीष्टकरीं युक्तिं प्रीतिज्ञा सविधास्यति ॥८६॥

तब श्रीसुकान्ति महारानीको मूर्च्छासे सावधान हुई समझकर, उन्हें सान्त्वना प्रदान करनेके लिये श्रीनिमिवंशी राजकुमार बोले :–हे श्रीअम्बाजी ! आपकी इच्छा पूरी अवश्य होगी, धीरज रक्खें, हम मिथिलाजी पहुँच कर अपनी श्रीअम्बाजीसे आपकी इस मानसिक व्यथाको ॥ ८५ ॥ एकान्तमें निवेदन करेंगे अम्बा दयालु हैं और प्रीतिके रहस्यको भी भली प्रकारसे समझती हैं, इस लिये वे निश्चय ही सब प्रकारसे वह युक्ति करेंगी जो आपके इन मनोरथको पूर्णकर सकेगी ८६

अस्माकं पूर्वजां मातर्ध्रुवं त्वं लालयिष्यसि ।
नात्र ते संशयः कार्यो यतः सा भावसिद्धिदा ॥८७॥

हे अम्बाजी! आप निश्चय ही हमारी श्रीरहिनजीका लाड करेंगी, इसमें आप कुछ भी सन्देह न कीजिये, क्योंकि वे श्रीललीजी दृढ़ भावनाकी सिद्धि अवश्य प्रदान करती हैं ॥८७॥

श्रीशिव उवाच।

एवमुक्ता सुतास्तेभ्यो वरेभ्यो विरहान्विताः।
राज्ञी समर्पयाञ्चक्रे सर्वालङ्कारसंयुताः ॥८८॥

भगवान शिवजी बोले:—हे प्रिये! श्रीलक्ष्मीनिधि आदि वराने अपनी ओरसे आश्वासन देनेके लिये जब यह कहा, तब वे श्रीसुकान्ति महारानीने सर्वशृङ्गार सम्पन्ना अपनी विरह-युक्त पुत्रियोंको उन्हें अर्पण कर दिया ॥८८॥

भूयो भूयः समालिङ्ग्य रुदतीः साश्रुलोचना।
शिविकासु समारोप्य चक्रे प्रास्थानिकं विधिम् ॥८९॥

पुनः रोती हुई उन पुत्रियोंको बारंबार हृदयसे लगाकर, सजल नेत्र हो, श्रीसुकान्ति महारानी उन्हें पालकियोंमें बिठाकर, विदाईकी विधि करने लगीं ॥८९॥

पारिवर्हेण महता राज्ञा ते वरसत्तमाः।
पितुः सकाशमागच्छन्नतीवपरितोषिताः ॥९०॥

तब श्रीश्रीधर महाराजके द्वारा बहुत बड़े दहेज द्वारा अत्यन्त सन्तुष्ट किये हुये, वे श्रीलक्ष्मीनिधि आदि उत्तम चारों दूलह अपने पिताजीके पास गये ॥९०॥

पुत्रान्सभार्यकान् दृष्ट्वा मिथिलेन्द्रः समागतान्।
श्रीधरं नृपमाश्वास्य प्रस्थानमकरोत्ततः ॥९१॥

वधुओंके सहित अपने पुत्रोंको आये हुये देखकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीधर महाराजको आश्वासन देकर, वहाँसे प्रस्थान किया ॥९१॥

वाद्यप्रघोषः सुमहान्प्रजातः सम्प्रस्थिते श्रीमिथिलामहीपे।
वेदध्वनिः कर्णसुखो मुनीनामजायतास्येभ्य उरोमलघ्नः ॥९२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रस्थान करते समय बाजाओंका बहुत बड़ा शोर मच गया और मुनियोंके मुखसे श्रवण सुखद, हृदयके विकारोंको नष्ट करने वाली वेदध्वनि प्रकट हो गयी ॥९२॥

सुताः समाश्वास्य स लालयंस्ताः प्रादादनुज्ञां मिथिलां प्रयातुम्।
प्रणम्य भूयो मिथिलामहेन्द्रं पुरोधसं विप्रगणं सवृद्धम् ॥९३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीशतानन्दजी महाराज तथा वृद्धोंके समेत ब्राह्मण समाजको वारंवार प्रणाम करके श्रीधरजी महाराजने अपनी उन पुत्रियाको प्यार करते हुये उन्हें सम्यक् प्रकारसे आश्वासन देकर श्रीमिथिलाजी जानेकी आज्ञा प्रदान की ॥६३॥

कृतार्थितोऽहं भवता कृपालो न जातु ते प्रत्युपकर्तुमर्हः ।
अलं बहूक्त्या त्रुटिमाक्षमस्व विदेहमाहेति गतः पुरस्तात् ॥६४॥

पुनः श्रीमिथिलेशजी महाराजके सामने जाकर बोले:-हे कृपालो ! आपने अपनी अभूत पूर्व कृपाके द्वारा मुझे कृतार्थ कर दिया, आपने मेरे प्रति जो अनुपम उपकार किया है, उसका बदला मैं कभी भी चुकानेको समर्थ नहीं हूँ, बहुत कहनेसे क्या ? ॥६४॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

कर्त्तव्यमेवाचरतोपकारः कृतो मया को वचसेति तस्य ।
आश्वस्त आलिङ्गय वरान् प्रतुष्टः सर्वैर्नुतोऽगात्स गृहं निवृत्तः ॥६५॥

यह सुनकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने कहा:-मैंने तो केवल अपने कर्त्तव्यका पालन किया है, इसमें आपका क्या उपकार किया ? उनकी इस वाणीके द्वारा आश्वासन पाकर श्रीलक्ष्मीनिधि आदि वरोंको हृदयसे लगाकर पूर्ण सन्तोषकी, प्रातः वे श्रीधरजी महाराज श्रीमिथिलानिवासियोंकी प्रार्थनासे लौटकर अपने महलको गये ॥६५॥

महर्षयः शास्त्रविदो द्विजातयो महीभुजश्चोरुभवाः पदोद्भवाः ।
विदेहराजेन समं समागता विडालिकाभूमिभृता समर्चिताः ॥६६॥
आश्वासयन्तो जयमुद्गृणन्तः शुभं वदन्तो ह्यभिवाद्यमानाः ।
प्रशंसयन्तः किल मुक्तकण्ठाः सर्वे तमीयुर्मिथिलां नृपेण ॥६७॥

इति चतुरशीतितमोऽध्याय ॥-४॥

श्रीविडालिकापुरी नरेश श्रीधरजी महाराजके द्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजके साथ आये हुये महर्षि, शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र समुचित सत्कारको पाकर (६६) सभी गला खोलकर (उच्च स्वरसे) उनको आश्वासन देते हुये (महर्षि वृन्द) मङ्गल उच्चारण करते हुये (शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण गण) जयकारका घोष करते हुये (क्षत्रिय यूथ) प्रणाम करते हुये (वैश्य वर्ग) प्रशंसा करते हुये (शूद्र सङ्घ) श्रीमिथिलेशजी महाराजके साथ श्रीमिथिलाजी गये ॥६६॥

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

श्रीधरमहाराजकी श्रीसिद्धिजी आदि राजकुमारियोंका

श्रीकिशोरीजीसे मिलन तथा संवाद !

श्रीशिव उवाच ।

वधूभिरागतिं श्रुत्वा स्वपुत्राणां च मातरः ।
गृहप्रवेशनार्थाय चक्रिरे मङ्गलोत्सवम् ॥१॥

बहुओंके समेत अपने पुत्रोंके आनेका समाचार सुनकर सुनयना अम्बाजी आदि मातायें उनके गृह प्रवेशके लिये मङ्गलोत्सव करने लगीं ॥१॥

गायन्तीभिश्च योषिद्भिर्देवरस्त्रीभिरन्विताः ।
श्रीसुनयनादिराज्ञ्यो द्रुतं द्वारमुपाययुः ॥२॥

पुनः अपनी देवरानियोंके सहित मङ्गल गीत गाती हुई सौभागिनी स्त्रियोंके साथ श्रीसुनयना महारानी आदि रानियाँ तुरत द्वार पर आ गयीं ॥२॥

ततो नीराजितान्पुत्रान् वधूभिः परिशोभितान् ।
सादरं गृहमानीय सुपीठेषु न्यवेशयन् ॥३॥

और आरती करके वधुओंसे पूर्ण शोभायमान अपने पुत्रोंको आदर पूर्वक द्वारसे महलके भीतर लेजाकर सिंहासनों पर बिठाया ॥३॥

लौकिकेन विधानेन पटग्रन्थिं विमोच्य च ।
प्रणता लालयन्त्यस्ता वधू राज्ञ्यो मुदं ययुः ॥४॥

पुनः लौकिक रीति पूर्वक वर-वधुओंके पटकी गाँठ खोलकर, प्रणाम करने वाली उन वधुओं का प्यार करती हुई, सभी रानियोंने आनन्द प्राप्त किया ॥४॥

सिद्ध्याद्या मीनखञ्जाक्ष्यो मैथिलीं समुपागताम् ।
विलोक्य सम्भ्रमैः साकं निपेतुः पादपद्मयोः ॥५॥

वे श्रीसिद्धिजी आदि चारों बहिनें श्रीकिशोरीजीके दर्शनोंके लिये मछली और खञ्जन पक्षीके समान अपने नेत्र चञ्चल कर रही थीं, उनके इस भावसे प्रसन्न हो श्रीमिथिलेश राजदुलारीजी अपनी बहिनोंके साथ वहाँ पहुँच गयीं, उन्हें पास में आई हुई देखकर श्रीसिद्धिजी आदि चारों बहिनें उनके श्रीचरण-कमलोंमें आ गिरीं ॥५॥

सा मुदा ताः समुत्थाप्य सान्त्वयामास वीक्षणैः ।
कृपापूर्णविशालाक्षी मनोहारिमृदुस्मिता ॥६॥

जिनके विशाल नेत्रोंमें कृपा पूर्ण भरी हुई है, उन मनोहर मुस्कान वाली श्रीललीजीने उन चारोंको उठाकर अपनी चितवनके द्वारा आश्वासन प्रदान किया ॥६॥

अनुरक्तिं समालोक्य भूमिजायां स्वभावजाम् ।
वधूनां चकिता राज्यो बभूवुर्मोदनिर्भराः ॥७॥

श्रीसुनयना अम्बाजी आदि महारानियाँ श्रीललीजूके प्रति बहुओं का स्वाभाविक अनुराग देखकर आश्चर्य युक्त हो गयीं और उनके हृदयसे आनन्द उछलने लगा ॥७॥

दानं बहुविधं दत्वा ब्राह्मणान्समतोषयत् ।
महाराज्ञी सुनयना प्रजा अर्थेन चैव हि ॥८॥

श्रीसुनयना महारानीने ब्राह्मणोंको अनेक प्रकार का दान देकर और प्रजाको धनके द्वारा पूर्ण सन्तुष्ट किया ॥८॥

दास्यो दासा वयस्याश्च पुरनार्यः कुलाङ्गनाः ।
सर्वाः सर्वेऽनुगा राज्ञ्या सान्त्वयाः परितोपिताः ॥९॥

पुनः परिवार समेत सभी दासी, सभी दास, सभी सखा, सभी सखी, सभी नगरकी स्त्री, सभी निमि वंशकी स्त्री, सभी अनुचरी, सभी अनुचर वर्गको उन्होंने पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया ॥९॥

सत्कृताः सविधिं वध्वो जानकीमभिवाद्य ताः ।
सुखमेकान्त आसीनां सिद्ध्याद्याः परितुष्टुवुः ॥१०॥

सासुओंसे विधि-पूर्वक सत्कार पाकर, श्रीसिद्धिजी आदि चारों बहुएँ एकान्तमें सुख-पूर्वक विराजीं हुई श्रीजनकराज-दुलारीजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगीं ॥१०॥

सिद्ध्याद्या ऊचुः ।

जय भूमिसुते ! सुरसिद्धनुते ! मुनिहंसनिपेवितपादयुगे ! ।
मिथिलावनिमण्डनपद्मपदे ! जय विश्वविमोहिनि ! शीलनिधे ॥११॥

श्रीसिद्धिजी आदि बोलीं—हे पृथ्वी माताकी पुत्री श्रीललीजी ! जिनकी देवता, सिद्ध स्तुति करते हैं, हंसके समान-सारग्राही केवल भगवत्तत्त्वका मनन करने वाले मुनि लोग जिनके श्रीचरण-

कमलोंका सम्यक् प्रकारसे सेवन करते हैं, उन आपकी जय हो। जिनके कमलवत् सुकोमल श्रीचरण श्रीमिथिलाभूमिके भूषण हैं, तथा जो अपनी लीलासे समस्त विश्वको मुग्धकर लेनेवाली अर्थात् आश्चर्यमें डाल देनेवाली, सौन्दर्यकी खान हैं, उन आपकी सदा जय हो ॥११॥

प्रणताः स्म वयं वपुषा मनसा वचसा तव पावनपद्मपदम्।
दुरितौघहरं शरणं भजतां जलजासनविष्णुमहेशनुतम् ॥१२॥

हे श्रीललीजी! ब्रह्माविष्णुमहेश जिनकी स्तुति करते हैं, जो विपत्तियोंके ढेर की चोरी करने वाले और भक्तोंके रक्षक हैं, आपके उन श्रीचरणकमलोंको हम प्रणाम करती हैं ॥१२॥

जनभूतिकरी भवतापहरा पतितैकगतिः शुचिभावजनिः।
द्रुहिणादिसुरैर्दुरवाप्यकणा क्रियतां करुणा सकृपे! सततम् ॥१३॥

हे कृपालु श्रीललीजी! हम सबों पर अपनी सदैव वह कृपा कीजिये, जो भक्तोंकी सम्यक् प्रकारसे उन्नतिकारी और संसारके तापोंको हरण करने वाली तथा पवित्र (अज्ञानकी उपाधि से रहित भगवान् श्रीरामजीमें) भाव (अनुराग) पैदा करने वाली है, एवं जो अपने कर्मोंसे पतित प्राणियोंके कल्याणका एक मात्र ही अवलम्ब है तथा जिसका एक कण भी ब्रह्मादि देववृन्दों के लिये दुर्लभ है ॥१३॥

परिदेहि धियं न उदारमते! पदपङ्करुहद्वयभक्तिरताम्।
विमलामखिलाघचयै रहितामनिशं तव तुष्टिविधानकरीम् ॥१४॥

हे उदारमते (सर्वोत्कृष्ट विशाल भाव वाली) श्रीललीजी! हम सबोंको वह शुद्ध बुद्धि प्रदान कीजिये, जो आपके श्रीयुगलचरणकमलोंमें आसक्त हो तथा समस्त पापोंसे रहित रहकर आपकी प्रसन्नता का उपाय करने वाली बने ॥१४॥

भवती जगदुद्धरणाय महीतलतोऽभ्युदिता श्रुतिमृग्यपदा।
भुवनालययूथपतेर्दयिता श्रुतवत्य इति स्म वयं च मुहुः ॥१५॥

वेदोंके द्वारा जिनकी महिमा खोजने योग्य है, वे आप ब्रह्माण्ड समूहोंके स्वामी श्रीरामचन्द्र की प्राणवल्लभा, चराचर जङ्गम सब समस्त प्राणियोंका उद्धार करनेके लिये पृथ्वीसे प्रकट हुई हैं, इस बातको हम लोगोंने बार बार श्रवण किया था ॥१५॥

अत एव दयामयि! दीनहिते! तव दर्शनकामविमत्तधियः।
तव लब्धय आर्यसुतान्जकरार्पितगाणय एव वयं सकलाः ॥१६॥

सभी अभिमान रहित प्राणियोंका हित करने वाली हे दयामयी श्रीललीजी ! इस लिये जब आपके दर्शनोंकी इच्छासे हम लोगोंकी बुद्धि पागल हो उठी, तब आपकी प्राप्तिके लिये ही हम लोगोंका पाणिग्रहण आपके भाइयोंके साथ कर दिया गया ॥१६॥

विधियोगत एव न ते कृपया तव दर्शनमाप्तममोघमिदम् ।
मुनिसिद्धसुरेशदुरापतरं नयनैकफलप्रदमीड्यतमम् ॥१७॥

सो कभी भी निष्फल न जाने वाला, मुनि सिद्ध ही क्या देव नायकोंके लिये भी परम दुर्लभ, नेत्रोंकी उपमा रहित सफलता प्रदान करने वाला, परम प्रशंसाके योग्य, आपका यह दर्शन हमें सौभाग्यसे नहीं, बल्कि आपकी कृपासे ही प्राप्त हुआ है । १७॥

विनयोऽयमनुग्रहपूर्णदृशा भवती परिपश्यतु नः सततम् ।
पतिता भवभीममहाजलधौ शरणागतिमाप्तवतीः पदयोः ॥१८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! अब आपसे यही विनय है कि आप संसार रूपी भयङ्कर महासागरमें पड़ी हुई तथा आपके श्रीचरण कमलोंकी शरणागतिको प्राप्त हुई, हम सभी को अपनी कृपा पूर्ण दृष्टिसे सदा अवलोकन करती रहें ॥१८॥

श्रीसीतोवाच ।

एवं भवतु कल्याण्यो ! मय्यनुरक्तचेतसः ।
अनुधावति मे नित्यं कृपा गौः स्वात्मजं यथा ॥१६॥

हे कल्याणियो ! ऐसा ही होगा । जिनका चित्त मुझमें अनुरक्त रहता है उनके पीछे मेरी कृपा इसप्रकार दौड़ती है, जैसे अपने नवजात बछड़ेके पीछे गाय ॥१६॥

युष्मास्वतीवसंसक्ता प्रसभं तुष्टये हि वः ।
अनयत्सन्निधौ मां सा युष्माकं दूरदेशतः ॥२०॥

वह मेरी कृपा आप लोगोंके प्रति अत्यन्त आसक्त है, अत एव आप लोगोंके सन्तोषके लिये वह मुझे दूर देशसे आप लोगोंके पास विशालिकापुरीको ले गयी थी ॥२०॥

तच्च किं विस्मृतं ब्रूत भवतीभिः शुभाननाः ।
कस्यामपीदृशी शक्तिरपरस्यामवेक्षिता ॥ २१ ॥

हे मङ्गल मुखियो ! सो क्या आप लोग भूल गयीं ? क्या ऐसी विलक्षण शक्ति और किसीमें भी आपने देखी है ? ॥२१॥

सा यामनुगता नित्यं प्रीतिः सा हि निषेव्यताम् ।
कायेन मनसा वाचा भवतीभिरभीष्टदा ॥२२॥

यह मेरी कृपा जिसके पीछे चलती है, उस अभीष्ट प्रदायिनी प्रीतिका तन, मन, वचनसे आप लोग सदैव सेवन करती रहें ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्त्वा ताः समालिङ्ग्य सान्त्वयन्ती नृपात्मजाः ।
विशेषानन्दवृद्ध्यर्थं जहारैश्वर्यशेमुषीम् ॥ २३ ॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! इस प्रकार कहकर अश्वासन देती हुई श्रीकिशोरीजी नेउन राजकुमारियोंको हृदयसे लगाकर विशेष आनन्दकी वृद्धिके लिये उनकी ऐश्वर्य बुद्धिको खींच लिया २३

तया पद्मपलाशाक्ष्या स्नुषाभिः सेव्यमानया ।
सह राज्ञी सुनयना कमलामेकदा ययौ ॥२४॥

एक समय श्रीसिद्धिजीआदि पुत्रवधुओंसे सेवित होती हुई, कमलदल लोचना उन श्रीललीजीके साथ श्रीसुनयना महारानी श्रीकमलाजी पधारीं ॥२४॥

अर्द्धयोजनविस्तीर्णे नदीतोये मनोरमे ।
अंशुकावरणै रम्यैः सर्वतो ऽलभ्यदर्शने ॥२५॥

सुन्दर वस्त्रोंके परदोंके द्वारा चारों ओरसे दो कोसके विस्तारमें, दर्शन न मिलने योग्य नदीके सुन्दर जलमें ॥२५॥

कृतस्नानविधी राज्ञी सखीभिः समलङ्कृता ।
ददर्श दुहितू रम्यां जलकेलिमनुत्तमाम् ॥२६॥

स्नान करके सखियोंके द्वारा शृङ्गार धारण कर श्रीमहारानीजी श्रीललीजीकी मनोहर जल क्रीड़ाका दर्शन करने लगीं ॥२६॥

मैथिलीं स्वसृभिः साकं दृष्ट्वा मज्जनतत्पराम् ।
निमज्ज्य दूरतस्तस्याः सिद्धिर्नूपुरमाहरत् ॥२७॥

सखियोंके साथ श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीको स्नानमें तत्पर हुई देखकर श्रीसिद्धिजीने दूरसे डुबकी लगाकर उनका नूपुर खींच लिया ॥२७॥

तत्परिज्ञाय चातुर्यं सिद्धेर्जनकनन्दिनी ।
जहार कुण्डले तस्या निमज्जन्त्याः सलाघवम् ॥२८॥

श्रीजनकराजदुलारीजीने सिद्धिजीकी इस चातुरीको जानकर, उनके डुबकी लगाते ही शीघ्रताके साथ उनके दोनों कुण्डलोंको हरण कर लिया ॥२८॥

तद्वीक्ष्य स्वसृभिः सिद्धिर्विस्मयं परमं गता ।
प्रदाय नूपुरं प्रीत्या सीतायै तामभाषत ॥२९॥

श्रीसिद्धिजी अपनी वाणी उपा आदि बहिनोंके समेत उनकी उस लीलाको देखकर बहुत ही आश्चर्यको प्राप्तकर गयीं पुनः प्रेम पूर्वक श्रीकिशोरीजीको नूपुर अर्पण करके उनसे बोलीं ॥२९॥

श्रीसिद्धिरुवाच ।

दर्शयन्त्या स्वचातुर्यं दृष्टं ते पाटवं परम् ।
अद्भुतं मनसाऽतीतं सुकुमारि ! कलानिधे ! ॥३०॥

हे समस्त कलाओंकी निधि श्रीसुकुमारीजू ! आपको अपनी चतुराई दिखानेको उद्यत हुई मैंने, आपके सर्वोत्कृष्ट, अद्भुत, मनसे परे चातुर्यका दर्शन प्राप्त किया ॥३०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ता तु वैदेही तया चन्द्रनिभानना ।
चकार विधिना ध्येयां जलकेलिमनुत्तमाम् ॥३१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः-हे प्यारे ! श्रीसिद्धिजीके इस प्रकार कहने पर पूर्णचन्द्र तुल्य परमाह्लादकारी श्रीमुखारविन्द वाली, श्रीविदेहराजनन्दिनीजूने अत्युत्तम, ध्यान करने योग्य विधिपूर्वक जल क्रीड़ा करने लगीं ॥३१॥

तां तु राज्ञी गवाक्षेभ्यः पश्यन्ती सम्प्रहर्षिता ।
बभूवोत्फुल्लनयना स्नुषाभिर्दुहितुः सह ॥३२॥

अपनी पुत्र वधुओंके साथ श्रीललीजूकी उस जल-केलिको जालदारोंसे अवलोकन करती हुई महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीने परम हर्षको प्राप्त किया उनके नेत्र कमल खिल उठे ॥३२॥

निवृत्तजलकेलिं तामागतां पुनरन्तिके ।
समालोक्यातिहर्षेण सस्वजे जनकात्मजाम् ॥३३॥

जलके लिये निवृत्त होकर जब श्रीललीजी उनके पासमें आईं तब श्रीअम्बाजी भलीभाँति श्रीजनकराजनन्दिनीजूका दर्शन करके, अत्यन्त हर्ष पूर्वक, उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया ॥३३॥

ताः स्नुषा लालयित्वा ऽथ सादरं परया मुदा।
दत्वा दानं द्विजातिभ्यो राज्ञी स्वालयमाययौ ॥३४॥

और अपनी उन पतोहुओंका आदरके साथ श्रीसुनयना अम्बाजी प्यार करके, बड़ी प्रसन्नता पूर्वक ब्राह्मणोंको दान देकर अपने महलको वापस पधारीं ॥३४॥

एवं तया पूर्णशशाङ्कवक्त्रया विद्यालिकानाथसुता महीभुवा।
क्रीडां दधानाः सुखमन्तरात्मना न तृप्तिमीयुः सुधियो हि जातुचित् ॥३५॥

इति पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

इस प्रकार परमात्मस्वरूपा उन पूर्ण चन्द्रमुखी भूमि-कुमारी श्रीललीजीके साथ सदा विहार करती हुई, वे विद्यालिका नरेशकी बुद्धिमती राजकुमारियाँ, कभी भी तृप्तिको न प्राप्त हुईं अर्थात् लालायित ही बनी रहीं ॥३५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

चातुर्मास्य व्रतके लिये ऋषियोंके पधारने पर भगवान् शिवजीका स्वप्नमें धनुष यज्ञ करनेके लिये श्रीमिथिलेशजी महाराजको आदेश तथा नवयोगेश्वरोंका आगमन

श्रीशिव उवाच।

द्वितीये मासि सम्प्राप्ते लक्ष्मीनिधिविवाहतः।
आजग्मुर्ऋषयो देवि ! मिथिलां कुम्भजादयः ॥१॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती ! श्रीलक्ष्मीनिधि भइयाके विवाहके दूसरे मासमें श्रीअगस्त्य जी महाराज आदि महर्षिगण श्रीमिथिलाजी पधारे ॥१॥

पूजिता विधिना राज्ञा मिथिलेन्द्रेण सादरम्।
तोषिताः परया भक्त्या तत्रोषुस्ते मुदान्विताः ॥२॥

उन सबोंका श्रीमिथिलेशजी महाराजने आदर पूर्वक षोडशोपचारसे पूजन किया, महाराजकी श्रद्धासे सन्तुष्ट होकर वे महर्षिवृन्द बड़ी प्रसन्नता पूर्वक वहीं निवास करने लगे ॥२॥

चातुर्मास्यव्रतं चक्रुः सर्वे एव यथेप्सितम् ।
लब्ध्वा सुखप्रदं स्थानं सर्वबाधाविवर्जितम् ॥३॥

और सभी प्रकारकी बाधाओंसे रहित, सुखप्रदायक, उस स्थानको पाकर उन्होंने अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार चार महीनोंका नियम ले लिया ॥३॥

अतीते श्रावणे मासि शयानं मिथिलेश्वरम् ।
अहमासाद्य तं देवि ! सम्बोध्येति वचोऽब्रुवम् ॥४॥

हे देवि ! जब श्रावण मास व्यतीत हुआ, तब शयनकी अवस्थामें श्रीमिथिलेशजी-महाराजके पास पहुँचकर उन्हें सम्बोधित करके मैंने यह बात कही:-॥४॥

धनुर्यज्ञेन संसिद्धिं यतस्वाप्तुमभीप्सिताम् ।
तस्यामेव हि साफल्यं दृशां सर्वासुधारिणाम् ॥५॥

हे राजन् ! आप धनुषयज्ञके द्वारा अपनी इष्ट-सिद्धिकी प्राप्तिके लिये उपाय कीजिये, क्योंकि उसी सिद्धिमें सभी प्राणधारियोंके नेत्रोंकी सफलता है ॥५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तस्ततस्तेन जनको योगभास्करः ।
त्यक्तनिद्रो महाराज्ञ्यै सकलं तन्न्यवेदयत् ॥६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजीसे कहते हैं कि हे प्रिये ! भगवान् शिवजीके द्वारा इस प्रकार आदेश करने पर योगको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले श्रीजनकजी महाराजने जाकर श्रीसुनयना महारानीजीसे उस वृत्तान्तको सूचित किया ॥६॥

साऽपि कौतुकयुक्तात्मा हरिध्यानपरायणा ।
निशान्तसमयं बुद्ध्वा नित्यकृत्यपराऽभवत् ॥७॥

श्रीसुनयना महारानीजी भी मनमें आश्चर्य युक्त हो, भगवान् श्रीहरिका ध्यान करने लगीं, पुनः प्रातःकाल हुआ जानकर वे अपने दैनिक कर्त्तव्यमें लग गयीं ॥७॥

तदेव कथितं राज्ञा कुम्भजाय महात्मने ।
रहस्यं रहसि स्थित्वाऽभिवाद्य मुदितात्मने ॥८॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने महात्मा श्रीअगस्त्यजी महाराजसे एकान्तमें बैठकर तथा प्रणाम करके, प्रसन्न चित्तसे भगवान् शिवजीके बताये हुये उस रहस्यको निवेदन किया ॥८॥

चिन्तया ग्रस्तमालोक्य किं कर्त्तव्यं मयेति सः ।
उवाच नृपतिं प्रह्वं कुम्भजन्मा तमादरात् ॥९॥

श्रीअगस्त्यजी महाराज नम्रता युक्त श्रीमिथिलेशजी महाराजको, मुझे इसआज्ञाके विषयमें क्या करना चाहिये इस चिन्तासे युक्त देखकर उनसे आदर पूर्वक बोले ॥९॥

श्रीअगस्त्य उवाच ।

धनुर्यज्ञेन संसिद्धिं यतस्वाप्तुमभीप्सिताम् ।
तस्यामेव हि साफल्यं दृशां सर्वासुधारिणाम् ॥१०॥

हे राजन् ! "धनुष यज्ञके द्वारा अपनी अभीष्ट सिद्धिको पाने के लिये उपाय कीजिये, क्योंकि उस सिद्धिमें सभी प्राणियोंके नेत्रोंकी सफलता है ।" ॥१०॥

अस्यार्थः श्रूयतां राजन् ! हरवाक्यस्य संस्फुटम् ।
कथ्यमानो मया सम्यग्विमृश्य स्थिरचेतसा ॥११॥

हे राजन् ! भली भाँति विचार कर मेरे कहते हुये श्रीभोलेनाथजीके इस वाक्यका स्पष्ट अर्थ आप एकाग्र चित्तसे श्रवण कीजिये । ११॥

यदर्थं भवता पूर्वं समाहूता महर्षयः ।
सर्वेश्वर्याश्च संप्राप्तिः सुतारूपेण चे कृता ॥१२॥

आपने पूर्वमें जिस कारणसे सभी महर्षियोंको अपने यहाँ बुलाया था, तथा जिस कारणसे आपने पुत्री रूपमें श्रीसर्वेश्वरीजूकी प्राप्तिकी ॥१२॥

रामो भवतु जामाता मम सर्वेश्वरः प्रभुः ।
चक्रवर्तिकुमारोऽसाविति सिद्धिस्तवेप्सिता ॥१३॥

वही आपकी अभीष्ट सिद्धि है, कि सर्वेश्वर प्रभु श्रीचक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजू हमारे जमाई बनें ॥

तन्निमित्त धनुर्यज्ञं कुरु भूपालपुङ्गव !
धनुर्भङ्गाद्विवाहस्ते यतः पुत्र्या विनिश्चितः ॥१४॥

हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! उन श्रीरामभद्रजीको अपना जमाई (दामाद) बनानेके लिये अब आप धनुषयज्ञ कीजिये, क्योंकि आपने प्रतिज्ञाकी है, कि जो इस शिव धनुषको तोड़ेगा उसकी साथ हमारी श्रीललीजीका विवाह होगा ॥१४॥

सर्वेषां प्राणिनामेव लोचनानां नृपोत्तम ।
स्यादवश्यं हि साफल्यं तस्या उद्वाहदर्शनात् ॥१५॥

हे नृपोत्तम ! और आपकी श्रीललीजीके विवाह दर्शनोंसे समस्त प्राणियोंके नेत्रोंकी सफलता अवश्य होगी, यह निश्चय है,इसलिये ॥१५॥

विधीयते धनुर्यज्ञो मयेदानीं हरीच्छया ।
विवाहार्थं स्वदुहितुः कृपयाऽऽयान्तु भूमिपाः ॥१६॥

हे राजाओ ! भगवान श्रीहरिकी इच्छासे इस समय मैं, अपनी श्रीराजदुलारीजीके विवाह के लिये धनुषयज्ञ कर रहा हूँ, उसमें आप लोग पधारनेकी कृपा करें ॥१६॥

वीर्याभिमानिनः सर्वे भवन्तो मे निमन्त्रिताः ।
साम्प्रतं समुपागम्य दातुमर्हन्तु दर्शनम् ॥१७॥

अपने अपने पराक्रम का अभिमान रखने वाले, हे शूर वीरो ! मेरे द्वारा निमन्त्रित हुये आप सभी लोग आकर, इस समय दर्शन प्रदान कीजिये ॥१७॥

इति पत्रं त्वयाऽऽलिख्य प्रेष्यतां स्तुतिसंयुतम् ।
सर्वदेशेषु भूपालान् प्रति विश्रुतविक्रमान् ॥१८॥

इस प्रकार का प्रार्थना युक्त निमन्त्रण पत्र लिखकर आप प्रत्येक देशके राजाओं तथा प्रसिद्ध पराक्रमियोंके पास भेजिये ॥१८॥

निमन्त्र्यन्तां महात्मानो मुनयश्चर्षिसत्तमाः ।
सर्वं इन्द्रादयो देवा राक्षसोरगकिन्नराः ॥१९॥
गन्धर्वा गुह्यका यक्षाः सत्यधर्मपरायणाः ।
दर्शनार्थं क्रतोरस्य त्वया भक्त्योरुश्रद्धया ॥२०॥

पुनः सत्य एवं धर्मका पालन करने वाले महात्मा, मुनि, ऋषि सभी इन्द्रादिदेव, राक्षस, सर्प, किन्नर, गन्धर्व, गुह्यक, यक्षोंको इस धनुयज्ञ दर्शन करनेके लिये आप बड़ी श्रद्धा और प्रेमके साथ निमन्त्रित कीजिये ॥१९॥२०॥

आगतेभ्यो यथायोग्यं प्रदायावासमन्दिरम् ।
सर्वभोगयुतं रम्यं भव कार्यपरायणः ॥२१॥

आगन्तुकोंको यथायोग्य सभी आवश्यक वस्तुओंसे युक्त सुन्दर निवासस्थान देकर अपना आवश्यक कार्य करें ॥२१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तं वचस्तस्य महर्षेः सन्निशम्य सः ।
सर्वदेशमहीपेभ्यः प्रेषयामास पत्रिकाम् ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले हे प्रिये ! महर्षि श्रीअगस्त्यजी महाराजके इस प्रकारके कहे हुये वचनोंको सुनकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजने सभी देशोंके राजाओंके पास निमन्त्रण पत्र भेजे ॥२२॥

समाजग्मुस्ततो भूपा वलिनः श्रुतविक्रमाः ।
अनेकलाभलाभाय सोत्साहाः शतभृत्यकाः ॥२३॥

उस निमन्त्रण पत्रसे बड़े-बड़े विख्यात पराक्रमी बलवान् राजा, उत्साह पूर्वक अनेक प्रकारके लाभ लेनेकी इच्छासे सैकड़ों सेवकोंके साथ आये ॥२३॥

नाजगाम महाराजो मिथिलां कोशलेश्वरः ।
निमन्त्रितोऽपि सन् राज्ञः पुत्रयोर्विरहातुरः ॥२४॥

किन्तु निमन्त्रित होने पर भी, श्रीदशरथजी महाराज, अपने दोनों पुत्र (श्रीराम, लक्ष्मण) के विरहसे व्याकुल होनेके कारण श्रीमिथिलाजी में नहीं पधारे ॥२४॥

तेषां स स्वागतं कृत्वा निलयांश्च पृथक्पृथक् ।
प्रदाय परया प्रीत्या ऋषिवाटमुपागमत् ॥२५॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज उनका सम्यक् प्रकारसे स्वागत करके, सबको अलग अलग बड़े प्रेमके साथ महल प्रदान करके ऋषियोंके घेरेमें गये ॥२५॥

यदृच्छया तदा तत्र सिद्धा दीप्तानलोपमाः ।
प्रादुर्बभूवुः सदया नवयोगेश्वराः श्रुताः ॥२६॥

उसी समय दैव-संयोगसे कृपालु श्रीकविजी, श्रीहरिजी, श्रीअन्तरिक्षजी, श्रीद्रुमिलजी, श्रीचमसजी, श्रीकरभाजनजी आदि प्रसिद्ध नव योगेश्वर वहाँ प्रकट हो गये ॥२६॥

उत्तस्थुस्तान्समालोक्य सर्व एव महर्षयः ।
राजा ननाम साष्टाङ्गं भूमौ सञ्जातसम्भ्रमः ॥२७॥

उनका दर्शन करके सभी महर्षिवृन्द उठकर खड़े हो गये, श्रीमिथिलेशजी महाराजने बड़ी उत्सुकताके साथ भूमिपर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥२७॥

विधिवत्पूजनं कृत्वा निवेश्य परमासने ।
पुनस्तान्स्तोत्रयामास वाण्या कण्ठनिरुद्धया ॥२८॥

पुनः सुन्दर आसनोंपर विराजमान करके, विधि-पूर्वक पूजन कर, कण्ठमें रुकी (गद्गद) वाणीसे उनकी वे स्तुति करने लगे ॥२८॥

ततस्तैः करुणादृष्ट्या दृश्यमानो महीपतिः ।
पप्रच्छ प्रणतो भूत्वाऽनुमत्या कुम्भजन्मनः ॥२९॥

तत्पश्चात् जब उन योगेश्वरोंने, उन्हें अपनी कृपापूर्ण दृष्टिसे देखना प्रारम्भ किया तब, श्रीअगस्त्यजी महाराजकी अनुमतिसे श्रीमिथिलेशजी महाराजने उनसे प्रणाम करके पूछा ॥२९॥

श्रीजनक उवाच ।

का सेव्या संविभाव्या च समाराध्या मुमुक्षुभिः ।
मानुषं देहमासाद्य भवद्भिः साऽधुनोच्यताम् ॥३०॥

मनुष्य देहको पाकर मोक्षाभिलाषियोंको किसकी सेवा ? किसका ध्यान ? और किसकी उपासना करनी चाहिये ? उसे अब आप लोग बताइये ॥३०॥

भवन्तः सर्वधर्मज्ञा महाभागवतोत्तमाः ।
अतो रहस्यं पृच्छामि चित्ते भागवतैर्धृतम् ॥३१॥

क्योंकि आप लोग सभी धर्मोंके जानने वाले और प्रधान भक्तोंमें भी उत्तम हैं, अत एव जिस रहस्यको आप सब भक्तोंने हृदयमें धारण किया है, उसीको मैं आप लोगोंसे पूछ रहा हूँ ३१

योगेश्वरा ऊचुः ।

चक्षुषी ते सुतां द्रष्टुं वर्तेते भृशचञ्चले ।
कुतो वाच्यं रहस्यं नस्ताभ्यां सञ्चालितात्मनः ॥३२॥

नवयोगेश्वर बोलेः—हे राजन् ! हम लोगोंके नेत्र आपकी श्रीललीजीके दर्शनके लिये अत्यन्त चञ्चल हो रहे हैं और उन दोनोंने हमारे मनको भी पूर्ण चञ्चल बना दिया है, इस अवस्थामें हम लोग, इस रहस्यको भला किस प्रकार वर्णन करनेको समर्थ हो सकते हैं ? ॥३२॥

अत एव महाराज कारयादौ शुभं हि नः ।
दर्शनं पावनं तस्या भूमिजायाश्चिरेप्सितम् ॥३३॥

हे महाराज ! इस लिये पहिले हमें बहुत दिनोंसे चाहे हुये, अपनी भूमिसे प्रकट हुई श्रीललीजी का मङ्गलकारी, पावन दर्शन करा दीजिये ॥३३॥

अस्मत्तस्तु ततः सर्वं शृणु यद्यद्दीप्सितम् ।
अदृष्ट्वा तां न शक्ष्यामो वक्तुं किमपि मानद ! ॥३४॥

हे सभीको मान देने वाले राजन् ! उसके बाद हम लोगोंसे आप जो जो चाहें श्रवण कीजिये, किन्तु बिना उनका दर्शन किये हुये हम लोग कुछ भी कथन करने को समर्थ नहीं है ॥३४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तो विदेहेन्द्रो मैथिलीं त्वरया मुदा ।
आजुहाव महाराज्या स्वसृभिर्भ्रातृभिर्युताम् ॥३५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे कात्यायनी ! जब उन योगेश्वरोंने श्रीमिथिलेशजी महाराजसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक भाई-बहिनोंसे युक्त श्रीललीजीको शीघ्र ही वहाँ श्रीसुनयना महारानीजीके सहित बुलाया ॥३५॥

सा च पित्रा समाहूता जनन्या स्वसृबन्धुभिः ।
आजगामाविलम्बेन मुनिवाटमयोनिजा ॥३६॥

अपने पिताजीके बुलाने पर वे बिना कारण (भक्त-सुखदायिनी निज इच्छासे) प्रकट हुई श्रीललीजी तुरत भाई बहिनोंके सहित अपनी अम्बाजीके साथ मुनियोंके उस घेरेमें पधारीं ॥३६॥

कृताभिवादनां सीतां विद्युद्दामसमप्रभाम् ।
कृपापूर्णविशालाक्षीमरालमृदुकुन्तलाम् ॥ ३७ ॥

जब वे प्रणाम कर चुकीं, तब बिजुलीकी माला (समूह) के समान प्रकाशसे युक्त, कृपासे परिपूर्ण विशाल नेत्र एवं घुँघुराले कोमल केश वाली ॥३७॥

नृपपार्श्वसमासीनां स्वमात्रा स्वसृबन्धुभिः ।
कृतार्थास्तां समालोक्य नवयोगेश्वरा हि ते ॥३८॥

अपनी श्रीअम्बाजीके साथ भाई बहिनोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके बगलमें विराजमान, भक्तोंके सुख एवं प्रेमका विस्तार तथा पाप तापोंका निवारण करने वाली उन श्रीललीजूका दर्शन करके वे नव योगेश्वर कृतार्थ हो गये ॥३८॥

अमूर्च्छंस्तेऽङ्घ्रिगन्धेन हृष्टलोमा विकल्मषाः ।
पुनर्धैर्य्यं समालम्ब्य कथञ्चित्स्वस्थतां ययुः ॥३९॥

आनन्दकी अधिकतासे उन पाप रहित योगेश्वरोंके रोंगटे खडे हो गये, पुनः उनके श्रीचरणकमलोंकी सुगन्धिसे उन्हें प्रेम मूर्छा आगयी, तब धैर्यका अवलम्ब लेकर, वे किसी प्रकार सावधान हुये ॥ ३९ ॥

कविरुवाच ।

साधु पृष्टं त्वया राजन् जानताऽपि हरीच्छया ।
हितायैव मुमुक्षूणां भवव्याकुलचेतसाम् ॥४०॥

श्रीयोगेश्वर कवि बोले–हे राजन् ! आप जानते हुये भी भक्त दुखहारी श्रीभगवान्‌की इच्छासे, संसार-तापसे व्याकुल चित्त वाले मोक्षाभिलाषियोंके हितके लिये, यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है ॥४०॥

गुह्यानां परम गुह्यं रहस्यं महतां धनम् ।
श्रूयतां वाञ्छितं श्रोतुं यत्तदेवोच्यते मया ॥४१॥

हे राजन् ! जिसे आप श्रवण करना चाहते हैं वह, छिपाने वाले सभी रहस्योंमें अतिशय छिपाने योग्य महात्माओं का परम धन है, उसको आप श्रवण करें मैं वर्णन करता हू ॥ ४१ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इदं समाभाष्य कविर्महात्मा
श्रीमैथिलेन्द्र विदितात्मतत्त्वम् ।
प्रणम्य भूयो मनसा धरित्रीसुता-
मथोवाच वचो विचार्य ॥ ४२ ॥

इति षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

—: मासपारायण-विश्राम २२ :—

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये ! भगवानमें ही अपनी बुद्धिको तन्मय किये हुये श्रीकविजी महाराज इस प्रकार आत्म तत्त्व भगवानके वास्तविक स्वरूप) के जानने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजसे कहकर, बारम्बार धरणि कुमारी श्रीललीजीको प्रणाम करके पुनः भली भाँतिसे विचार कर यह वाणी बोले :- ।४२॥

मुमुक्षुओंके लिये सर्वसेव्य, सर्वध्येय तथा सर्वोपास्य कौन है ? श्रीमिथिलेशजी महाराजके इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये योगेश्वर कविजी श्रीकिशोरीजीके सहस्रनामका वर्णन कर रहे हैं, श्रीसुनयना अम्बाजी उन्हें गोदमें लिये विराजमान हैं।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

जगत्‌मेंमुमुक्षुओंके लिये कौन सर्वोपास्य और कौन सर्वोपरि पूज्य तथा ध्यान करने योग्य है ?
श्रीमिथिलेशजी-महाराजके इस प्रश्नके उत्तरमें योगश्वर कवि द्वारा वर्णितः—

❀ श्रीजानकी-सहस्र-नाम ❀

श्रीकविरुवाच ।

नीलेन्दीवरलोचनां जनकजां विस्मेरबिम्बाधरां
ब्रह्माविष्णुमहेशसेव्यचरणां दीव्यत्सुवर्णप्रभाम् ।
सव्ये श्रीमिथिलेशितुः सुनयनाक्रोडे मुदा राजितां
वन्दे बन्धुगणान्वितामनुचरीवृन्दैः समाराधिताम् ॥१॥

नीले कमलके समान जिनके विशाल नेत्र, एव पूर्णचन्द्रके समान जिनका आह्लादकारी श्रीमुखारविन्द है, मुस्कान युक्त बिम्बाफलके सदृश जिनके अधर और ओठ हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेशोंको भी जिनकी सेवा करना कर्त्तव्य है, प्रकाशयुक्त सुवर्णके समान जिनकी गौर कान्ति है, जो श्रीमिथिलेशजी महाराजके बायें भागम श्रीसुनयनाअम्बाजीकी गोदीमें प्रसन्नता-पूर्वक विराज रही हैं, अनुचरियाँ (बहिने) अपनी अपनी सेवाके द्वारा जिन्हें प्रसन्न करनेमें तत्पर हैं; उन श्रीलक्ष्मीनिधिजी आदि भाइयोंसे युक्त श्रीमिथिलेशराज दुलारीजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥

अकल्पाऽकल्मपाऽकामा अकायाऽकारचर्चिता ।
अकारणाऽकोपपूज्या अक्रूरैकाऽक्षणाऽक्षरा ॥२॥

१ अकल्पा ❀ जिनकी तुलना नहीं की जा सकती तथा जो 'अ' सर्वव्यापक प्रभु श्रीरामजीको अपने वशमें करनेको समर्थ है ।
२ अकल्मषा ❀ जो अविद्या (माया) रूपी मलसे रहित ह ।
३ अकामा ❀ जिन्हें एक भगवान् श्रीरामजीको छोड़कर और कोई इच्छा नहीं है
४ अकाया ❀ जिनका ब्रह्म ही शरीर है अर्थात् जो ब्रह्ममें रहनेवाली उसकी शक्ति स्वरूपा हैं ।
५ अकारचर्चिता ❀ भगवान् श्रीरामजीके जो चन्दन आदिसे खौर करती है ।
६ अकारणा ❀ जो स्वय कारणस्वरूपा ह ।

७ अक्रोधपूज्या ❀ जो अपराधी जनों पर भी क्षमा गुणकी विशेषताके कारण त्रिलोकीमें पूजित हैं।
८ अक्रूरैका ❀ जो समस्त प्राणियोंके अनुकूल सौम्य स्वरूप वालियोंमें अकेली हैं।
९ अघणा ❀ जो भगवान् श्रीरामजीके आनन्दकी मूर्त्ति हैं।
१० अजरा ❀ जो कभी क्षीणतासे न प्राप्त होकर सदा एक रस बनी रहती हैं।

अगदाऽगुणाऽग्रगण्या अचलापुत्रिकाऽचला ।
अच्युताऽजाऽजेयबुद्धिरज्ञातगतिसत्तमा ॥ ३ ॥

११ अगदा ❀ जो आश्रित-जीवोंको प्रभुप्राप्ति कारक भागवत धर्म (नवधा भक्ति) को प्रदान करती हैं अथवा जो समस्त रोगोंसे अछूती सञ्जीविनी बूटी स्वरूपा हैं।
१२ अगुणा ❀ जो सत्व, रज, तम इन तीनों गुणोंसे परे हैं।
१३ अग्रगण्या ❀ जो सभी लक्ष्मी, सरस्वती, गिरिजादि शक्तियोंका द्वारा पूजने योग्य हैं।
१४ अचलापुत्रिका, ❀ जो विविध प्रकारके अवतारोंको ग्रहण करके अनेक सङ्कटोंसे पृथ्वी देवीकी रक्षा करती हैं।
१५ अचला ❀ जो ब्रह्म श्रीरामजीमें पूर्ण स्थिर हैं तथा जो अपनी सुन्दर उक्तियोंके द्वारा पतित जीवोंको कर्मानुसार दण्ड देनेके विपरीत उनपर कृपा करनेको चलायमान (उद्यत) कर देती हैं।
१६ अच्युता ❀ जो अपने दयालु स्वभावसे कभी नहीं डिगतीं।
१७ अजा ❀ जिनका जन्म कभी होता ही नहीं।
१८ अजेयबुद्धि ❀ जो अपनी बुद्धिसे भगवान् श्रीरामजीको जीत लेनेवाली हैं अथवा जिनकी बुद्धिको कोई जीत नहीं सकता।
१९ अज्ञातगतिसत्तमा ❀ जिनके सर्वोत्तम विचारोंको भगवान् श्रीरामजी ही समझते हैं तथा जो भगवान् श्रीरामजीके विचारोंको समझने वाली शक्तियोंमें सर्वोत्कृष्टा अर्थात् सबसे बढ़ कर हैं ३

अणोरणीयस्यतर्क्या अतीन्द्रियचयाऽतुला ।
अदभ्रमहिमाऽदृश्या अद्वितीयक्षमानिधिः ॥४॥

२० अणोरणीयसी ❀ जो आँखोंसे न देखने योग्य अणुसे भी सहस्रों गुणा सूक्ष्म हैं।
२१ अतर्क्या ❀ जिनके गुण, रूप, लीला, स्वभाव, आदि अनुमान या वाद-विवादके द्वारा समझे नहीं जा सकते।
२२ अतीन्द्रियचया ❀ जो वाणी, मन, बुद्धि चित्त आदि इन्द्रिय समूहसे परे हैं।

२३ अतुला ॐ जो सब प्रकारसे ब्रह्मके समान हैं अर्थात् जिनकी तुलना एक ब्रह्मसे ही की जा सकती, है किसी दूसरेसे नहीं।

२४ अदभ्रमहिमा ॐ जिनकी बहुत बड़ी महिमा है।

२५ अदृश्या ॐ जिनके वास्तविक सर्वव्यापक स्वरूपका दर्शन किसी भी इन्द्रियके द्वारा नहीं लिया जा सकता और जिनके देखनेकी वस्तु एक प्रभु श्रीराम ही हैं।

२६ अद्वितीयक्षमानिधिः ॐ जो ब्रह्मकी क्षमाकी भण्डार-स्वरूप हैं ॥ ४ ॥

अद्वितीयदयामूर्त्तिरद्वितीयानहङ्कृतिः ।
अदीनबुद्धिरद्वैता अधृताऽधोक्षजाऽनघा ॥५॥

२७ अद्वितीयदयामूर्त्ति ॐ जो ब्रह्मके दया गुणकी स्वरूपा हैं।

२८ अद्वितीयानहङ्कृतिः ॐ जो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ब्रह्मकी परम अमानिताकी मूर्त्ति हैं।

२९ अदीनबुद्धि ॐ किसी भी विषयको निश्चय करनेमें जिनकी बुद्धि असमर्थ नहीं होती।

३० अद्वैता ॐ जिनमें किसीके भी प्रति भेद भाव नहीं है तथा जिनसे संयुक्त होने से ब्रह्म युगल-सरकार कहा जाता है।

३१ अधृता ॐ जिन्हें भगवान् श्रीरामजी श्रीवत्सरूपसे सदैव अपने वक्षः स्थल पर धारण करते हैं तथा जिन्हें कभी भी किसीने अपने वशमें नहीं कर पाया है।

अधोक्षजा ॐ जो अपने स्वभावसे कभी भी क्षीण नहीं होती अथवा जो इन्द्रियोंको अपने वशमें रखने वाले भक्तोंके ही हृदय में प्रत्यक्ष होती हैं।

३३ अनघा ॐ जो समस्त दुःखों तथा पापों से रहित हैं ॥ ५ ॥

अनन्तविग्रहाऽनन्ता अनन्तैश्वर्यसंयुता ।
अनन्यभावसन्तुष्टा अनर्थौघनिवारिणी ॥६॥

३४ अनन्तविग्रहा ॐ जो असीम तत्त्व ब्रह्मकी साकार मूर्त्ति हैं अथवा जिनके स्वरूपोंका पार नहीं है अर्थात् जो समस्त चर-अचर-प्राणि स्वरूपा हैं।

३५ अनन्ता ॐ जिनके रूप व गुणोंका कोई अन्त (पार) नहीं है।

३६ अनन्तैश्वर्यसंयुक्ता ॐ जिनके ऐश्वर्य अनन्त अर्थात् भगवान् श्रीरामजी हैं अथवा जो अपार ऐश्वर्य वाली हैं।

३७ अनन्यभावसन्तुष्टा ॐ जिनकी पूर्ण प्रसन्नता अनन्य भावसे होती है अर्थात्-जिसकी आसक्ति पञ्च विषयोंके समेत सब ओरसे हटकर एक उन्हींमें दृढ़ हो जाती है, उसी पर जो प्रसन्न होती हैं।

३८ अनर्थापनिवारिणी ॐ जो आश्रित चेतनोंकी दुर्भाग्य जनित सम्पूर्ण आपत्तियों कोदूर करती हैं ६

अनवद्याऽनामरूपा अनिर्देश्यस्वरूपिणी ।
अनिर्वाच्यसुखाम्भोधिरनिर्वाच्याङ्घ्रिमार्दवा ॥७॥

३९ अनवद्या ॐ जो समस्त दोषोंसे अछूती हैं।

४० अनामरूपा ॐ वस्तुतः जिनका कोई एक नाम या रूप नहीं है।

४१ अनिर्देश्यस्वरूपिणी ॐ जिनके लक्षण बतलाये नहीं जासकते अर्थात् जो मन वाणीसे परे ज्ञानस्वरूपा हैं।

४२ अनिर्वाच्यसुखाम्भोधिः ॐ जिसको वर्णन करना वाणीकी शक्तिसे परे (बाहर) है, उस ब्रह्मके सुखकी जो समुद्र-स्वरूपा हैं।

४३ अनिर्वाच्याङ्घ्रिमार्दवा ॐ जिनके श्रीचरणकमलोंकी कोमलता वर्णन शक्तिसे बाहर है ॥७॥

अनिर्विण्णाऽनुकूलैका अनुकम्पैकविग्रहा ।
अनुत्तमाऽनुत्तमात्मा अनुरागभराञ्चिता ॥८॥

४४ अनिर्विण्णा ॐ जो पूर्ण काम होनेके कारण सदा प्रसन्न रहती हैं।

४५ अनुकूलैका ॐ जो अपनी अनुपम दयालुता वश, अपराधी प्राणियोंको भी भगवान् श्रीरामजीके अनुकूल (दयापात्र) बना देती हैं तथा अपनी अमोघ प्रार्थनाके द्वारा उन चेतनोंके प्रति प्रभु श्रीरामजीको भी अनुकूल (दयान्वित) बना देती हैं।

४६ अनुकम्पैकपूर्णविग्रहा ॐ जिनका स्वरूप ही दयासे परिपूर्ण है।

४७ अनुत्तमा ॐ जिनसे बढ़कर कोई भी शक्ति नहीं है तथा जो सभी विशिष्ट उमा, रमा, ब्रह्माणी आदि शक्तियोंके द्वारा उपासना करने योग्य हैं।

४८ अनुत्तमात्मा ॐ जिनसे बढ़कर किसीकी बुद्धि नहीं है।

४९ अनुरागभराञ्चिता ॐ जो अनुरागके भार (अतिशयता) से सुशोभित हैं ॥८॥

अपारमहिमाऽपारभववारिधितारिणी ।
अपूर्वचरिताऽपूर्वसिद्धान्ताऽपूर्वसौभगा ॥९॥

५० अपारमहिमा ॐ दुष्टप्राणियोंके प्रति दया-भावको लेकर जिनकी महिमा भगवान् श्रीरामजीसे भी बढ़कर है।

५१ अपारभववारिधितारिणी ॐ जो अपने आश्रितोंको अपार संसार सागरसे पार उतार देती हैं अर्थात् दिव्य धाम-वासी बना लेनेकी कृपा करती हैं।

५२ अपूर्वचरिता ॐ जिनके सभी चरित अनोखे हैं।

५३ अपूर्वसिद्धान्ता ॐ जिनका सिद्धान्त (हार्दिकनिश्चय) ऐसा है जैसा कि आज तक किसीका हुआ ही नहीं, यथा "पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति"। अर्थः-चाहे पुण्यात्मा हो चाहे पापी या वध (प्राणदण्ड) के योग्य ही क्यों न हो, पर श्रेष्ठ पुरुषको उसपर भी कृपा ही करनी चाहिये अर्थात् उसका हित ही सोचना चाहिये अहितकर दण्ड नहीं, क्योंकि त्रिलोकीमें कोई ऐसा न तो है और न होगा, जो अपराधोंसे अछूता हो।

५४ अपूर्वसौभगा ॐ जिनके समान आज तक किसीका सौभाग्य ही नहीं हुआ ॥९॥

अप्रकृष्टाऽप्रतिद्वन्द्वविक्रमाऽप्रतिमद्युतिः ।
अप्रतिमाऽप्रमत्तात्मा अप्रमेयसुखाकृतिः ॥१०॥

५५ अप्रकृष्टा ॐ जो अपने निरुपम दयापूर्ण सिद्धान्तमें भगवान् श्रीरामजीसे भी बढ़कर हैं, क्योंकि अपराधों पर ध्यान न देकर दया ही करना आपका सिद्धान्त है और भगवान् श्रीरामजीका सिद्धान्त है, कि जीव एकवार भी यदि निष्कपट भावसे कह दे कि "प्रभो! मैं आपका हूँ मेरी रक्षा कीजिये" तो मैं उसे समस्त प्राणियोंसे अभय कर दूं, विशेषता प्रत्यक्ष ही है।

५६ अप्रतिद्वन्द्वविक्रमा ॐ जिनके पराक्रममें कोई बाधक नहीं बन सकता तथा जो पराक्रममें भगवान् श्रीरामजीके ही समान हैं।

५७ अप्रतिमद्युतिः ॐ जिनके समान और अधिक किसीका तेज है ही नहीं, अर्थात् जो ब्रह्मके तेजवाली हैं।

५८ अप्रतिमा ॐ जो ब्रह्मस्वरूपा हैं अथवा जिनकी समता करने वाला कोई नहीं है।

५९ अप्रमेयसुखाकृतिः ॐ जिसे वाणी वर्णन, मन मनन और बुद्धि निश्चय नहीं कर सकती, उस ब्रह्मके सुखकी जो स्वरूपा हैं अर्थात् जो असीम सुख स्वरूपा हैं।।१०॥

अप्राकृतगुणैश्वर्यविश्वमोहनविग्रहा ।
अभिवाद्याऽमलाऽमाना अमिताऽमृतरूपिणी ॥११॥

६० अप्राकृतगुणैश्वर्यविश्वमोहनविग्रहा ❀ जिनका स्वरूप दिव्य गुण और दिव्य ऐश्वर्यके द्वारा समस्त विश्वको मुग्ध करने वाला है ।

६१ अभिवाद्या ❀ सभी भावोंके द्वारा सभी चर अचर प्राकृत-अप्राकृत प्राणियोंको जिन्हें प्रणाम करना ही उचित है ।

६२ अमला ❀ जो अविद्या (माया) रूपी मलसे रहित शुद्ध ब्रह्म स्वरूपा हैं ।

६३ अमाना ❀ जो ब्रह्मके समान नाप, तोल (आदि, मध्य, अन्त) से रहित, स्वजातीय, विजातीय भेद तथा गुण, रूप शक्तिके अभिमानसे अछूती है ।

६४ अमिता ❀ जो सब प्रकारसे असीम हैं ।

६५ अमृतरूपिणी ❀ जिनका स्वरूप कभी भी नहीं नष्ट होता तथा जो अमृत स्वरूपा हैं ॥११॥

अमृताऽमृतदृष्टिश्च अमृताशाऽमृतोद्भवा ।
अयोनिसम्भवाऽरौद्रा अलोलाऽवनिपुत्रिका ॥१२॥

६६ अमृता ❀ जो जन्म मरणसे रहित हैं ।

६७ अमृतदृष्टि ❀ जिनकी चितवन अमृतके समान समस्त दुःखोंको हरण करके आश्रितोंको अमर बना देने वाली हैं तथा जो सभी रूपोंमें एक भगवान् श्रीरामजीका ही दर्शन करने वाली हैं ।

६८ अमृताशा ❀ जो स्वयं एक भगवान् श्रीरामजीका अनुभव करती हुई अपने आश्रित चेतनों को भी उनका अनुभव करानेकी कृपा करती हैं ।

६९ अमृतोद्भवा ❀ जो अमृतकी कारण हैं ।

७० अयोनिसम्भवा ❀ जो बिना कारण केवल अपनी भक्त-भाव पूरिणी इच्छासे प्रकट होती हैं ।

७१ अरौद्रा ❀ जिनका स्वरूप भयानक न होकर समुद्रके समान अपरिमित माधुर्य-सम्पन्न है ।

७२ अलोला ❀ जो कभी अपने सिद्धान्तसे चलायमान नहीं होती ।

७३ अवनिपुत्रिका ❀ जो अपने आश्रितजनोंके रचण आदि दिव्य गुणोंकी भूमिका भली भाँति विस्तार करती हैं, अथवा जो पृथ्वीसे प्रकट हुई हैं ॥१२॥

अवराऽवर्यमाधुर्या अवर्ण्यकरुणावधिः ।
अविचिन्त्याऽविशिष्टात्मा अव्यक्ताऽव्ययशेमुषी ॥१३॥

७४ अवरा * जिनके दूलह सरकार पूर्णब्रह्म भगवान् श्रीरामजी हैं और जिनसे बढ़कर कोई है ही नहीं ॥७४॥

७५ अवर्यमाधुर्या * जिनकी हृदयमोहिनी सुन्दरता, पूर्ण ब्रह्म श्रीरामजीके द्वाराभी प्रशंसा करने योग्य है ।

७६ अवर्ण्यकरुणावधिः * जिनकी दयाकी सीमा वर्णन शक्तिसे परे है ।

७७ अविचिन्त्या * भगवान् श्रीरामजीके जो विशेष स्मरण करने योग्य हैं अथवा अवि जो(सूर्य) भगवानके उपासना करने योग्य हैं ।

७८ अविशिष्टात्मा * जिनको बुद्धि भगवान् श्रीरामजीसे बढ़कर है अथवा जिनकी बुद्धि एक प्रभु श्रीराघवेन्द्रसरकारकी ही प्रधानताको ग्रहण करती है ।

७९ अव्यक्ता * जो नास्तिक तथा अभक्तोंके लिये सदा परोक्ष (अप्रकट) हैं ।

८० अव्ययशेमुषी * जिनकी बुद्धि कभी क्षीणताको नहीं प्राप्त होती, सदा एक रस रहती है १३

अव्याजकरुणामूर्त्तिरशोकाऽसङ्ख्यकाऽसमा ।
असम्मिताऽऽप्तसङ्कल्पा आत्मज्ञानविभाकरी ॥१४॥

८१ अव्याजकरुणामूर्त्तिः * जो स्वार्थ रहित कृपाकी स्वरूपा हैं ।

८२ अशोका * जो अविद्या-जनित समस्त शोकोंसे रहित आनन्द घन स्वरूपा हैं ।

८३ असङ्ख्यका * जिनमें गिनती न कर सकने योग्य दया, सौशील्यादि समस्त दिव्य गुण भरे हैं ।

८४ असमा * जो ब्रह्मके समान सम्पूर्ण महिमा वाली है तथा जिनकी समता कोई नहीं कर सकता।

८५ असम्मिता * जिनके पास सेवकोंको देनेके लिये सेवाके फल गिनतीके नहीं हैं अर्थात् अनन्त हैं।

८६ आप्तसङ्कल्पा * जिनका कोई भी सङ्कल्प अपूर्ण नहीं है अर्थात् जिनके सङ्कल्पमात्रसे ही सब कुछ हो जाता है ।

८७ आत्मज्ञानविभाकारी * जो परमात्मा भगवान् श्रीरामजीके स्वरूपकी पहिचान कराने वाले दिव्यज्ञानको हृदयमें प्रकाशित करने वाली हैं ॥१४॥

आत्मोद्भवाऽऽत्ममर्मज्ञा आत्मलाभप्रदायिनी ।
आत्मवत्यादिकन्यादिराधारपरमालया ॥१५॥

८८ आत्मोद्भवा ❀ जो प्रभुसे उत्पन्न होने वाली उनकी इच्छाशक्ति हैं।

८९ आत्ममर्मज्ञा ❀ जो भगवान् श्रीरामजीके सभी प्रकार रहस्योंको भली भांति जानती हैं।

९० आत्मलाभ-प्रदायिनी ❀ जो अपने आश्रितोंको भगवत-प्राप्तिका लाभ प्रदान करती हैं।

९१ आत्मवती ❀ जो अपने मनको अपने इच्छानुसार चलानेमें समर्थ हैं तथा जो सर्वश्रेष्ठ बुद्धि-स्वरूपा हैं।

९२ आदिकर्त्री ❀ जो महत्तत्त्व और तन्मात्रादिकोंकी उत्पत्ति करने वाली हैं।

९३ आदिः ❀ जो आदि कालकी तथा सभीकी आदि कारण स्वरूपा हैं।

९४ आधारपरमालया ❀ जो विश्वके सभी प्रकारके समस्त आधारोंके रहनेकी सबसे उत्तमगृह स्वरूपा हैं, अर्थात् जिनमें सभी प्रकारके सम्पूर्ण आधार निवास करते हैं ॥१५॥

आध्येयाङ्घ्रिसरोजाङ्का आनन्दामृतवर्षिणी ।
आम्नायवेद्यचरणा आश्रितत्राणतत्परा ॥१६॥

९५ आध्येयाङ्घ्रिसरोजाङ्का ❀ जिनके श्रीचरणकमलोंके चिन्ह सभी सकाम, निष्काम प्राणियोंके ध्यान करने योग्य हैं।

९६ आनन्दामृतवर्षिणी ❀ जो भक्तोंके लिये आनन्द रूपी अमृतकी वर्षा करने वाली हैं।

९७ आम्नायवेद्यचरणा ❀ वेदोंके द्वारा जिनकी महिमा जानने योग्य है।

९८ आश्रितत्राणतत्परा ❀ जो आश्रितोंकी रक्षामें लगी हुई हैं ॥१६॥

आसक्त्यपहृतासक्तिरास्यस्पर्द्धिविधुव्रजा ।
आह्लादसुपमासिन्धुरिनवंश्यपरप्रिया ॥१७॥

९९ आसक्त्यपहृतासक्तिः ❀ जिनमें प्राप्त हुई आसक्ति अन्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तथा स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति आदि सभी प्रकारकी आसक्तियोंको हरण कर लेती है।

१०० आस्यस्पर्द्धिविधुव्रजा ❀ जो अपने श्रीमुखारविन्दकी कान्ति तथा आह्लादक गुणसे चन्द्र समूहोंको लज्जित करती हैं।

१०१ आह्लादसुपमासिन्धुः ❀ जिनमें आह्लाद तथा निरतिशय सौन्दर्य समुद्रके समान अथाह हैं।

१०२ इनवंश्यपरप्रिया ❀ जो सूर्य वंशज सर्वोत्कृष्ट श्रीचक्रवर्तीकुमार, श्रीरघुनन्दन प्यारेकी प्राणवल्लभा हैं ॥१७॥

इन्दुपूर्णोल्लसद्वक्त्रा इभराजसुतागतिः ।
इयत्त्वरहितैर्गव्वी प्रपन्नसकलापदाम् ॥१८॥

१०३ इन्दुपूर्णोल्लसद्वक्त्रा * जिनका श्रीमुखारविन्द पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाश युक्त तथा आह्लाद-प्रदायक है।

१०४ इभराजसुतागतिः * ऐरावत हाथीकी बालिकाके समान जिनकी अत्यन्त मनोहर चाल है।

१०५ इयत्तरहिता * जो सभी प्रकारसे असीम हैं।

१०६ ईर्ग्ली प्रपन्नसकलापदाम् * जो शरणागत चेतनोंकी (सभी प्रकारकी) आपत्तियोंको नाश करती हैं ॥१८॥

इष्टा समस्तदेवानामीप्सितार्थप्रदायिनी ।
ईश्वरी सर्वलोकानामुच्छिन्नाश्रितसंशया ॥१६॥

१०७ इष्टा समस्तदेवानां * जो ब्रह्मादि सभी देवताओंकी इष्ट हैं।

१०८ ईप्सितार्थप्रदायिनी * जो आश्रितोंके सभी मनोरथोंको पूर्ण करने वाली हैं।

१०९ ईश्वरी सर्वलोकानां * जो चर-अचर प्राणियोंके सहित ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि सभी विश्वके शासकों पर शासन करने वाली हैं।

११० उच्छिन्नाश्रितसंशया * जो आश्रितोंकी सम्पूर्णशङ्काओंको जड़से नष्ट कर देती हैं ॥१९॥

उज्ज्वलैकसमाराध्या उत्फुल्लेन्दीवरेक्षणा ।
उत्तरोत्तानहस्ताब्जा उत्तमोत्सङ्गभूषणा ॥२०॥

१११ उज्ज्वलैकसमाराध्या * जिन्हें केवल एक अनुरागसे ही प्रसन्न किया जा सकता है।

११२ उत्फुल्लेन्दीवरेक्षणा * पूर्णखिले नीले कमलके समान मनोहर जिनके विशाल नेत्र हैं।

११३ उत्तरा * जो सभी शक्तियोंमें उत्तम है तथा अपने कर्त्तव्य-सागरको जो भली-भाँति पार कर रही हैं।

११४ उत्तानहस्ताब्जा * जिनका हस्तकमल उदारता तथा आश्रितवत्सलताके कारण सदा ऊँचा उठा रहता है।

११५ उत्तमा * जो सबसे उत्तम है।

११६ उत्सङ्गभूषणा * जो श्रीसुनयना अम्बाजीकी गोदको भूषणके समान सुशोभित करने वाली हैं ॥२०॥

उदारकीर्त्तनोदारचरितोदारवन्दना ।
उदारजपपाठेज्या उदारध्यानसंस्तवा ॥२१॥

११७ उदारकीर्त्तना ❀ जिनका कीर्त्तन, उदार (सभी सिद्धियोंको देने वाला) है।

११८ उदारचरिता ❀ जिनके चरित उदार अर्थात् हृदयको आदर्श प्रदान करनेमें सर्वोत्तम हैं।

११९ उदारवन्दना ❀ जिनका प्रणाम उदार (दिव्य-धामको प्रदान करनेवाला) है।

१२० उदारजपपाठेज्या ❀ जिनका जप, पाठ, यज्ञ सब उदार (अभीष्ट प्रदायक) हैं।

१२१ उदारध्यानसंस्तवा ❀ जिनका ध्यान तथा स्तोत्र उदार अर्थात् चारो पदार्थोंको प्रदान करने वाला है ॥२१॥

उदारवल्लभोदारवीक्षणस्मितभाषिता ।
उदारश्रीनामरूपलीलाधामगुणव्रजा ॥२२॥

१२२ उदारवल्लभा ❀ जिनके प्राणप्यारे उदार अर्थात् अत्यन्त मनोहर हैं।

१२३ उदारवीक्षणस्मितभाषिता ❀ जिनकी चितवन, मन्द मुस्कान तथा कोकिल वाणी उदार (मनो मुग्धकारी) है।

१२४ उदारश्रीनामरूपलीलाधामगुणव्रजा ❀ जिनकी कान्ति नाम, रूप, लीला, धाम एवम् अन्य गुण समूह, सब उदार अर्थात् परमप्रिय, अनन्त फल-दायक तथा परम हितकारी हैं ॥२२॥

उदारालिगणोदारोपासका ऋतरूपिणी ।
ऋभुवन्द्याङ्घ्रिॠकारा लृपुत्री लॄस्वरूपिणी ॥२३॥

१२५ उदारालिगणा ❀ जिनकी सखियाँ भी अत्यन्त उदार हैं।

१२६ उदारोपासका ❀ जिनके उपासक भी बड़े उदार हैं।

१२७ ऋतरूपिणी ❀ जो ज्ञानस्वरूपा है।

१२८ ऋभुवन्द्याङ्घ्रिः ❀ जिनके श्रीचरण-कमल ब्रह्मादि देवताओंसे भी प्रणाम करने योग्य हैं।

१२९ ॠकारा ❀ जो दया तथा स्मृति स्वरूपा है।

१३० लृपुत्री ❀ जो सरस्वतीजीकी कारण स्वरूपा है तथा जिनका प्राकट्य पृथ्वीसे हुआ है।

१३१ लॄस्वरूपिणी ❀ जो देवमाता अदिति स्वरूपा है ॥२३॥

एकैकशरणं पुंसामैक्यभावप्रसादिता ।
ओकःप्रधानिकौजोऽङ्घ्रिरौदार्यौत्कर्ष्यविश्रुता ॥२४॥

१३२ एका ❀ जो अपने समान आप ही है।

१३३ एकशरणं पुंसा ❀ जिनसे बढ़कर कोई भी प्राणियोंका न हित करने वाला है न रक्षा

करनेमें ही समर्थ हैं, तथा जो समस्त प्राणियोंकी पूर्ण शान्ति प्रदायक मुख्य निवासस्थ स्वरूपा हैं, अन्य नहीं।

१३४ ऐक्यभावप्रसादिता ॥ जो समस्त प्राणियोंमें भगवद्-भावना करनेसे प्रसन्न होती हैं अथवा जिनकी प्रसन्नता केवल अनन्य भावसे होती है।

१३५ ओकःप्रधानिका ॥ जो समस्त प्राणियोंकी प्रमुख निवासस्थान स्वरूपा हैं अर्थात् पूर्ण ब्रह्ममयी हैं, अत एव जिस प्रकार प्राणी जब तक अपने मुख्य घरमें नहीं पहुँचता, तब तक वह पूर्ण निश्चिन्त नहीं हो पाता, उसी प्रकार बिना जिनको प्राप्त हुये जीव कभी भी पूर्ण शान्तिको नहीं प्राप्त कर सकता।

१३६ ओजोऽब्धिः ॥ जिनकी सामर्थ्य अन्य सभी शक्तियोंके सामने समुद्रके समान अथाह है।

१३७ औदार्यैकमूर्ध्यविश्रुता ॥ जो अपनी सर्वोत्तम उदारतासे विश्वमें विख्यात हैं, इसमें इन्द्रके पुत्र जयन्तकी कथा ज्वलन्त प्रमाण है। जहाँ भगवान श्रीरामजी उसे कर्मका उचित फल देने के लिये बाणका प्रयोग कर चुके और पिता इन्द्र तथा ब्रह्मादि देव वृन्दने भी जिसका बहिष्कार कर दिया, वहाँ प्यारेके सामने पैर करके पड़े हुये तुरत वध कर देने योग्य उसी जयन्तके चरणोंको, अपने करकमलोंके द्वारा सामनेसे हटा कर उसका शिर चरणोंमें रख कर, विनय पूर्वक प्रार्थना करती है, हेप्यारे! इसकी रक्षा करो रक्षा करो। भला इससे बढ़कर और दयालुताकी पराकाष्ठा ही क्या हो सकती है? (पद्मपुराण)!॥२४॥

कमला कमलाराध्या करणं कलभाषिणी।
कलाधारा कलाभिज्ञा कलामूर्त्तिः कलावधिः॥२५॥

१३८ कमला ॥ जो श्रीलक्ष्मी स्वरूपा हैं अर्थात् जो समस्त सुख और ऐश्वर्यसे परिपूर्ण हैं।

१३९ कमलाराध्या ॥ जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्रादिके भी आराधना करने योग्य हैं, अथवा श्रीकमलाजी जिन्हें प्रसन्न करनेमें समर्थ हैं क्योंकि वे सखी व नदी आदि अनेक रूपोंसे सेवामें विराज मान हैं।

१४० करणं ॥ जो जगत्‌की कारण स्वरूपा हैं।

१४१ कलभाषिणी ॥ जो स्पष्ट, मधुर, और श्रवणसुखद वाणी बोलने वाली हैं।

१४२ कलाधारा ॥ जो समस्त कला (विद्या) ओंकी आधार-स्वरूपा हैं अर्थात् जिनसे सभी विद्याओं का प्राकट्य हुआ है।

१४३ कलाभिज्ञा ॥ जो समस्त कलाओंकी ज्ञान-स्वरूपा हैं अर्थात् उन्हें भली भाँति जानती हैं।

१४४ कलामूर्त्तिः ॐ जो सम्पूर्ण कलाओंकी स्वरूप ही है।

१४५ कलावधिः ॐ जो सभी विद्याओंकी सीमा है ॥२५॥

कल्पवृक्षाश्रया कल्प्या कल्मषौघनिवारिणी।
कल्याणदात्री कल्याणप्रकृतिः कामचारिणी ॥२६॥

१४६ कल्पवृक्षाश्रया ॐ जो कल्प वृक्षकी कारण स्वरूपा है, अर्थात् कल्पवृक्षमें जो सभी सङ्कल्पों को पूर्ण करनेकी शक्ति प्रदान करती हैं।

१४७ कल्प्या ॐ जो सम्भवको असम्भव और असम्भवको सम्भव करनेमें पूर्ण समर्थ हैं।

१४८ कल्मषौघनिवारिणी ॐ जो पाप समूहोंको पूर्ण रूपसे भगा देने वाली हैं।

१४९ कल्याणदात्री ॐ जो प्राणीमात्रको मङ्गल प्रदान करनेवाली हैं।

१५० कल्याणप्रकृतिः ॐ जो प्राणियोंके दोषों (अपराधोंका) विचार छोडकर उनका हित ही सोचती रहती है।

१५१ कामचारिणी ॐ जो ब्रह्मा, विष्णु और महेशको सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन तथा संहारके कर्त्तव्योंमें नियुक्त करने वाली है ॥२६॥

कामदा काम्यसंसक्तिः कारणाद्वयकारणम्।
कारुण्यार्द्रविशालाक्षी कालचक्रप्रवर्तिका ॥२७॥

१५२ कामदा ॐ जो आश्रितोंके सभी अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करने वाली हैं।

१५३ काम्यसंसक्तिः ॐ जिनके प्रति पूर्ण आसक्ति चाहना, प्राणीमात्रका कर्त्तव्य है।

१५४ कारणाद्वयकारणम् ॐ जो समस्त कारणोंकी उपमा रहित कारण स्वरूपा हैं अर्थात् जिन सर्वोत्कृष्ट कारण स्वरूपाजीसे जगत्‌के सभी कारणों (उत्पादकों) की उत्पत्ति होती है।

१५५ कारुण्यार्द्रविशालाक्षी ॐ जिनके कमलके समान मनोहर विशाल नेत्र स्नेहसे भरे हैं।

१५६ कालचक्रप्रवर्तिका ॐ जो सत्य, त्रेता द्वापर, कलि, इन चारो युगोंको चक्रके समान चलाती रहती हैं अर्थात् जिनकी इच्छासे ये चारो युग नाचते हुये पहियामें जड़े हुयेके समान क्रमशः आते जाते रहते हैं। ॥२७॥

कीनाशभयमूलघ्नी कुञ्जकेलिसुखप्रदा।
कुञ्जराधीशगतिका कृतज्ञाऽर्च्या कृतागमा ॥२८॥

१५७ कीनाशभयमूलघ्नी ॐ जो यमराजके द्वारा प्राप्त होने वाले समस्त भयोंके कारण स्वरूप भक्तोंके किये हुये पापोंको नाश कर देती हैं।

१५८ कुञ्जकेलिसुखप्रदा ॐ जो अपने अनन्य भक्तोंको कुञ्जोंकी रहस्यमयी क्रीडाओंका सुख प्रदान करती हैं।

१५९ कुञ्जराधीशगतिका ॐ जो ऐरावत हाथीके समान मस्त चाल वाली हैं अर्थात् जैसे गजराज जब चलता है तब वह कुत्ता आदि किसी भी दुष्ट प्राणीकी परवाह नहीं करता, उसी प्रकार जो किसीके आक्षेपोंकी परवाह न करके अपने कर्त्तव्य मार्गमें सदैव अग्रसर रहती हैं।

१६० कृतज्ञार्च्या ॐ जो समस्त प्राणियोंके किये हुये शुभ कर्मोंके जानने वाले इन्द्रियों पर विराजमान सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, शिव, बृहस्पति, इन्द्र, विष्णुभगवान आदि देवताओंके द्वारा भी पूजने योग्य है, क्योंकि ये देववृन्द अपनी २ केवल इन्द्रियोंके कर्मोंको पृथक्-पृथक् जानने वाले हैं और वे सभी इन्द्रियोंके द्वारा किये हुये कर्मोंको अकेली ही जानती हैं। अथवा जो अपने निमित्त की हुई सेवाका उपकार मानने वालोंमें सर्वोत्कृष्ट हैं।

१६१ कृतागमा ॐ जो सभी वेद और शास्त्रोंकी रचने वाली हैं ॥२८॥

कृपापीयूषजलधिः कोमलार्च्यपदाम्बुजा।
कौशल्याप्रतिमाम्भोधिः कौशल्यासुतवल्लभा ॥२९॥

१६२ कृपापीयूषजलधिः ॐ जिनकी कृपा अमृतके समान असम्भवको सम्भव करने वाली समुद्रके सदृश अथाह है।

१६३ कोमलार्च्यपदाम्बुजा ॐ जिनके दोनों श्रीचरण, कमलके समान कोमल, सुगन्धमय, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्रके द्वारा पूजने योग्य हैं।

१६४ कौशल्याप्रतिमाम्भोधिः जो चतुराईकी उपमा रहित सागर स्वरूपा हैं अर्थात् समुद्रमें रत्नों के समान जिनमें सब प्रकारकी चतुराई भरी है।

१६५ कौशल्यासुतवल्लभा ॐ जो कौशल्यानन्दन श्रीराम भद्रजूकी प्राण प्यारी हैं ॥२९॥

खरारिहृदयातुल्यपरमोत्सवरूपिणी।
खलान्यमतिसन्दात्री खवासीशादिवन्दिता ॥३०॥

१६६ खरारिहृदयातुल्यपरमोत्सवरूपिणी ॐ जो भगवान् श्रीरामजीके हृदयको अनुपम महान उत्सवके समान सुख देनेवाली हैं।

१६७ खलान्यमतिसन्दात्री ॐ जो अपने आश्रितोंको वास्तविक हित करने वाली सज्जनताकी बुद्धि प्रदान करती हैं।

१६८ खवासीशादिवन्दिता ॐ जिन्हें देवराज इन्द्र आदिक प्रणाम करते हैं ॥३०॥

खेलमात्रजगत्सृष्टिर्गणनाथार्चिता गतिः ।
गतैश्वर्यस्मयश्रेष्ठा गभीरा गम्यभावना ॥३१॥

१६९ खेलमात्रजगत्सृष्टिः ॐ समस्त चर-अचर सब अनन्त ब्रह्माण्डोंके प्राणियोंकी सृष्टि करना जिनका एक खेल मात्र है ।

१७० गणनाथार्चिता ॐ जिनकी पूजा श्रीगणेशजी करते हैं ।

१७१ गतिः ॐ जो सभी प्राणियोंकी प्राप्य स्थान स्वरूपा, सभीकी रक्षा करनेवाली, और सभीके कल्याणका उपाय सोचने वाली हैं ।

१७२ गतैश्वर्यस्मयश्रेष्ठा ॐ अपनी प्रभुताके अभिमानरहितोंमें जो सबसे बढ़कर हैं ।

१७३ गभीरा ॐ जिनका स्वभाव और हृदय अत्यन्त गम्भीर है ।

१७४ गम्यभावना ॐ जिनके श्रीचरण कमलोंकी भक्ति प्राप्त करना मनुष्य मात्रके जीवनका चरम लक्ष्य है ॥३१॥

गहनाग्रया गीर्गीर्वाणहितसाधनतत्परा ।
गुप्ता गुहेशया गुह्या गेयोदारयशस्ततिः ॥३२॥

१७५ गहनाग्रया ॐ अत्यन्त विलक्षण स्वरूप, सामर्थ्य और लीलाओंके कारण जिन्हें पहिचानना सबसे अधिक असम्भव है ।

१७६ गीः ॐ जो श्रीसरस्वती स्वरूपा हैं ।

१७७ गीर्वाणहितसाधनतत्परा ॐ जो देवताओंका हित साधन करनेमें सदैव तत्पर रहती हैं ।

१७८ गुप्ता ॐ जो स्वयं अपनी शक्तिसे सुरक्षित हैं अथवा जो भक्तोंके हृदयमें छिपी रहती हैं ।

१७९ गुहेशया ॐ जो समस्त प्राणियोंकी हृदय रूपी गुफामें परमात्मरूपसे सदैव निवास करती हैं ।

१८० गुह्या ॐ उपासक भक्तोंको जिन्हें अपने हृदय-मन्दिरमें सदा छिपाकर रखना चाहिये ।

१८१ गेयोदारयशस्ततिः ॐ जिनका उदार यश समूह सदा ही गान करने योग्य है ॥३२॥

गोपनीयपदासक्तिर्गोप्त्री गोविदनुत्तमा ।
ग्रहणीयशुभादर्शा ग्लौपुञ्जाभनखच्छविः ॥३३॥

१८२ गोपनीयपदासक्तिः ॐ उपासकोंको, जिनके श्रीचरण-कमलोंकी प्राप्त हुई आसक्तिको काम, क्रोध,लोभ,मोह,राग-द्वेष, मान-प्रतिष्ठा आदि लुटेरोंसे छिपाकर सुरक्षित सदा रखना चाहिये ।

१८३ गोप्त्री ॐ जो भक्तोंको सभी ओर सब प्रकारकी आपत्तियोंसे सुरक्षित रखती हैं ।

१८४ गोविदनुत्तमा ❀ जो अन्तर्यामिनी होनेके कारण समस्त इन्द्रियोंकी सभी क्रियाओंका ज्ञान सबसे अधिक रखती हैं।

१८५ ग्रहणीयशुभादर्शा ❀ जिनका हितकर मङ्गलमय आदर्श सभी मनुष्योंको अपने जीवनकी सफलताके लिये ग्रहण करने योग्य है।

१८६ ग्लौपुञ्जाभनखच्छविः ❀ चन्द्र समूहोंके समान प्रकाशमय जिनके श्रीचरण-कमलोंके नखोंकी सुन्दरता है ॥२३॥

घनश्यामात्मनिलया घर्मद्युतिकुलस्नुषा ।
घृणालुका ङस्वरूपा चतुरात्मा चतुर्गतिः ॥२४॥

१८७ घनश्यामाङ्कनिलया ❀ जो सजल मेघोंके समान श्याम वर्ण श्रीरघुनन्दन प्यारेजूके हृदयमें विराजने वाली हैं।

१८८ घर्मद्युतिकुलस्नुषा ❀ जो सूर्य वंशकी पतोहू हैं।

१८९ घृणालुका ❀ जो दयाकी मूर्त्ति हैं।

१९० ङस्वरूपा ❀ जो ङ कार स्वरूपा हैं।

१९१ चतुरात्मा ❀ जो श्रीसीताजी श्रीउर्मिलाजी श्रीमाण्डवीजी श्रीश्रुतिकीर्त्तिजी इन चार स्वरूप वाली हैं अथवा जो मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त इन चार अन्तः करण वाली हैं।

१९२ चतुर्गतिः ❀ जो सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य रूप चार परम गतिस्वरूपा हैं २४

चतुर्भावा चतुर्व्यूहा चतुर्वर्गप्रदायिनी ।
चतुर्वेदविदां श्रेष्ठा चपलासत्कृतद्युतिः ॥२५॥

१९३ चतुर्भावा ❀ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये चारो ही पुरुषार्थ जिनसे उत्पन्न होते हैं।

१९४ चतुर्व्यूहा ❀ श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी, इन तीनों भाइयोंके सहित चार शरीर वाले भगवान श्रीरामजीकी जो प्राण वल्लभा हैं।

१९५ चतुर्वर्गप्रदायिनी ❀ जो अपने आश्रितोंको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-स्वरूप अपना दिव्य धाम प्रदान करने वाला हैं।

१९६ चतुर्वेदविदां श्रेष्ठा ❀ जो चारों वेदोंका मर्म समझनेवालोंमें सबसे उत्कृष्ट (बढ़कर) हैं।

१९७ चपलासत्कृतद्युतिः ❀ जिनके श्रीअङ्गकी कान्ति बिजुलीके द्वारा सत्कारको प्राप्त है ॥२५॥

चन्द्रकलासमाराध्या चन्द्रबिम्बोपमानना ।
चारुशीलादिभिः सेव्या चारुसंपावनस्मिता ॥२६॥

१९८ चन्द्रकलासमाराध्या ❀ जिन्हें श्रीचन्द्रकलाजी पूर्ण रूपसे प्रसन्न कर सकती हैं अथवा श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा जिनकी पूर्ण प्रसन्नताकी प्राप्ति सम्भव है।

१९९ चन्द्रबिम्बोपमानना ❀ जिनके प्रकाशमान, परमाह्लादकारी श्रीमुखारविन्दके उपमा योग्य, एक चन्द्रबिम्ब ही है।

२०० चारुशीलादिभिः सेव्या ❀ श्रीचारुशीलाजी आदि अष्ट सखियाँ ही जिनकी पूर्ण सेवा कर सकती हैं।

२०१ चारुसंपावनस्मिता ❀ जिनकी मुस्कान सुन्दर और सब प्रकारसे पवित्र करने वाली है ३६

चारुरूपगुणोपेता चारुस्मरणमङ्गला।
चार्वङ्गी चिदलङ्कारा चिदानन्दस्वरूपिणी ॥३७॥

२०२ चारुरूपगुणोपेता ❀ जो विश्वविमोहनस्वरूप और दया, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य, औदार्य आदि समस्त दिव्य मङ्गल गुणोंसे युक्त हैं।

२०३ चारुस्मरणमङ्गला ❀ जिनका चिन्तन सुन्दर और मङ्गल कारी है।

२०४ चार्वङ्गी ❀ जिनके सभी अङ्ग परममनोहर हैं।

२०५ चिदलङ्कारा ❀ जिनके सभी भूषण चैतन्य मय हैं।

२०६ चिदानन्दस्वरूपिणी ❀ जो चैतन्य एवम् आनन्द-घन (ब्रह्म) की स्वरूप हैं ॥३७॥

छविलुब्धरतिः छिन्नप्रणताशेषसंशया।
जगत्क्षेमविधानज्ञा जगत्सेतुनिबन्धिनी ॥३८॥

२०७ छविलुब्धरतिः ❀ जिनकी सहज-सुन्दरतासे रति क्षोभको प्राप्त है।

२०८ छिन्नप्रणताशेषसंशया ❀ जो अपने भक्तोंकी समस्त शङ्काओंको दूर करने वाली हैं।

२०९ जगत्क्षेमविधानज्ञा ❀ जो चर-अचर समस्त प्राणियोंके कल्याणका पूर्ण उपाय जानती हैं।

२१० जगत्सेतुनिबन्धिनी ❀ जो जगत्‌की मर्यादा बाँधने वाली हैं अर्थात् जो प्राणियोंकी हित-सिद्धि के लिये, उन्हें यथोचित नियमोंमें बान्धने वाली हैं ॥३८॥

जगदादिर्जगदात्मप्रेयसी जगदात्मिका।
जगदालयवृन्देशी जगदालयसद्व्यसूः ॥३९॥

२११ जगदादिः ❀ जो जगत्‌की कारण स्वरूपा हैं।

२१२ जगदात्मप्रेयसी ❀ जो चर-अचर समस्त प्राणियोंके आत्मस्वरूप भगवान् श्रीरामजीकी प्राणवल्लभा हैं।

२१३ जगदात्मिका ॥ जो समस्त स्थावर जङ्गम प्राणियोंके रूपमें सर्वत्र प्रकट हैं।

२१४ जगदालयवृन्देशी ॥ जो अनन्त ब्रह्माण्डों पर शासन करती हैं।

२१५ जगदालयसङ्कुलः ॥ जो अपने सङ्कल्प मात्रसे चर-अचर चेतन मय ब्रह्माण्ड समूहोंको उत्पन्न करती हैं अर्थात् जो अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करने वाली हैं ॥३९॥

जगदुद्भवादिकर्त्री जगदेकपरायणम् ।
जगन्नेत्री जगन्माता जगन्माङ्गल्यमङ्गला ॥४०॥

२१६ जगदुद्भवादिकर्त्री ॥ जो जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार करने वाली हैं।

२१७ जगदेकपरायणम् ॥ जो सभी चर-अचर प्राणियोंकी अनुपम निवासस्थान स्वरूपा हैं।

२१८ जगन्नेत्री ॥ जो समस्त चर-अचर प्राणियोंको उन्हींके कर्मानुसार चलाती हैं।

२१९ जगन्माता ॥ जो सभी चर-अचर प्राणियोंकी वास्तविक (असली) माता है।

२२० जगन्माङ्गल्यमङ्गला ॥ जगत्में जितने भी मङ्गलवाचक शब्द, नाम, रूपादि पदार्थ हैं, उन सभीका जो मङ्गल करने वाली हैं ॥४०॥

जगन्मोहनमाधुर्यमनोमोहनविग्रहा ।
जतुशोभिपदाम्भोजा जनकानन्दवर्धिनी ॥४१॥

२२१ जगन्मोहनमाधुर्यमनोमोहनविग्रहा ॥ जो अपने माधुर्यसे समस्त चर-अचर प्राणियोंको मुग्ध कर लेते हैं, उन विश्वविमोहन, कन्दर्पदर्प दलनपटीयान भगवान् श्रीरामजीके भी मनको मुग्ध कर लेने वाला जिनका विग्रह अर्थात् (दिव्य स्वरूप) है।

२२२ जतुशोभिपदाम्भोजा ॥ जिनके श्रीचरण-कमल महावरके शृङ्गारसे सुशोभित हैं।

२२३ जनकानन्दवर्द्धिनी ॥ जो वात्सल्य सुख-प्रदान करके श्रीजनकजी-महाराजके आनन्दको बढ़ाने वाली हैं ॥४१॥

जनकल्याणसक्तात्मा जननी सर्वदेहिनाम् ।
जननीहृदयानन्दा जनबाधानिवारिणी ॥४२॥

२२४ जनकल्याणसक्तात्मा ॥ जिनका चित्त अपने आश्रितोंका हित चिन्तन करनेमें सदैव आसक्त रहता है।

२२५ जननीसर्वदेहिनाम् ॥ जो समस्त देहधारियोंकी माताके समान पालन-पोषण पूर्वक सुरक्षा करने वाली हैं।

२२६ जननीहृदयानन्दा ॐ जो विश्वमोहन शिशुरूपको धारण करके अपनी मनोहर लीला, मनोहर तोतली वाणी, मनोहर मुस्कान, तथा मनोहर चितवन, मनहरण चाल, परम आह्लादकारी स्पर्श आदिके द्वारा अपनी श्रीअम्बाजीके हृदयके आनन्दकी स्वरूप ही है।

२२७ जनबाधानिवारिणी ॐ जो वास्तविक हितकर कर्त्तव्यमें तत्पर हुये, अपने आश्रितोंके सभी उपस्थित विघ्नोंको दूर करने वाली हैं ॥४२॥

जनसन्तापशमनी जनित्री सुखसम्पदाम् ।
जनेश्वरेड्या जन्मान्तत्रासनिर्णाशचिन्तना ॥४३॥

२२८ जनसन्तापशमनी ॐ जो शरणागत भक्तोंके दैहिक (बीमारीके कारण) दैविक (देवताओंके कोपसे) आध्यात्मिक (मनकी चिन्तासे) प्राप्त होनेवाले तीनों प्रकारके तापोंको पूर्णरूपसे नष्ट कर देती है।

२२९ जनित्री सुखसम्पदाम् ॐ जो सुखस्वरूप भगवान श्रीरामजीकी सम्पत्ति ज्ञान, वैराग्य, अनुराग आदिको भक्तोंके हृदयमें उत्पन्न कर देने वाली है।

२३० जनेश्वरेड्या ॐ जो भक्तोंके शासन (आज्ञा) में रहने वाले प्रभु श्रीरामजीके द्वारा भी दया गुणमें प्रशंसाके योग्य हैं।

२३१ जन्मान्तत्रासनिर्णाशचिन्तना ॐ जिनका सुमिरण प्राणियोंके जन्म-मरणके कष्टको पूर्ण नष्ट कर देता है अर्थात् जन्म मरणके चक्करसे छुड़ाकर सीधे दिव्यधाम वासी बना देता है ४३

जपनीया जयघोषाराध्यमाना जयप्रदा ।
जया जयावहा जन्मजरामृत्युभयातिगा ॥४४॥

२३२ जपनीया ॐ जो जन्म (प्राकट्य काल) से ही प्रशंसाके योग्य हैं तथा विष्णुभगवानको भी जिनकी स्तुति करना कर्त्तव्य है, अथवा प्राणियोंको अपने लौकिक, पारलौकिक हित-साधनके लिये जिनके मन्त्र-राजका जप सदैव करना उचित है।

२३३ जयघोषाराध्यमाना ॐ जो जयकार घोषके द्वारा सदा ही प्रसन्नकी जारही हैं अर्थात् जिनको प्रसन्न करनेके लिये, सब समय किसी न किसीके द्वारा, कहीं न कहीं जयकार बोला ही जा रहा है।

२३४ जयप्रदा ॐ जो अपने आश्रितोंको जय प्रदान करने वाली हैं।

२३५ जया ॐ जो साक्षात् जय स्वरूपा हैं।

२३६ जयावहा ॥ जो भक्तोंके पास विजय विभूतिको स्वय होकर पहुँचाने वाली हैं।

२३७ जन्मजरामृत्युभयातिगा ॥जिन्हें जन्म, बुढ़ापा व मृत्यु आदि शारीरिक परिवर्तनका भी भय नहीं है अर्थात् जो अजर-अमर व अजन्म वाली है ॥४४॥

जलकेलिमहाप्राज्ञा जलजासनवन्दिता ।
जलजारुणहस्ताङ्घ्रिर्जलजायतलोचना ॥४५॥

२३८ जलकेलिमहाप्राज्ञा ॥ जो जलक्रीडाकी कला जानने वाली श्रीचन्द्रकलाजी श्रीचारुशीलाजी आदि सखियोंमें भी सबसे बढ़कर हैं। अथवा जो जगत्‌की उत्पत्ति और प्रलयकी लीला करनेमें सबसे अधिक बुद्धि मती है।

२३९ जलजासनवन्दिता ॥ जिन्हें जगत्पितामह श्रीब्रह्माजी भी प्रणाम करते हैं।

२४० जलजारुणहस्ताङ्घ्रिः ॥ लाल कमलके समान जिनके लालिमा युक्त दोनो श्रीहस्त एवं पद कमल हैं।

२४१ जलजायतलोचना ॥ जिनके नेत्र कमलके समान विशाल और मनोहर हैं ॥४५॥

जवानतमनोवेगा जाड्यध्वान्तनिवारिणी ।
जानकी जितमायैका जितामित्रा जितच्छविः ॥४६॥

२४२ जवानतमनोवेगा ॥ सर्वत्र व्यापक होनेके कारण जो अपनी शीघ्रगामितासे समस्त चेतनोंके मनकी तीव्र गमन शक्तिको लज्जित कर देती हैं।

२४३ जाड्यध्वान्तनिवारिणी ॥ जो जप परायण भक्तोंके हृदयकी जड़ता रूपी अन्धकारको दूर कर देती है।

२४४ जानकी ॥ ब्रह्मा पर्यन्त समस्त जीव जिनकी स्तुति करते हैं, उन भगवान् श्रीरामजीके ही परत्वको अपने मन, वचन, कायसे जो सदैव प्रतिपादन (सिद्ध) करती हैं अथवा श्रीजनकजी-महाराजके तप और अनेक जन्मोंके सञ्चित पुण्य विपाकसे उदित हुई दयाके वशीभूत होकर, उनके मनोभिलाषकी पूर्तिके लिये उनके गृहमें प्रकट हुई हैं।

२४५ जितमायैका ॥ जो अपने आश्रितोंकी अज्ञान शक्ति तथा दुष्टोंके इन्द्रजाल (जादूगरी) का विनाश करने वाली सभी शक्तियोंमें अनुपम हैं।

२४६ जितामित्रा ॥ सभी प्राणिमात्रका पालन पोषण तथा रक्षण करने वाली होनेके कारण जिनका कोई शत्रु नहीं है, तथा सर्वशक्तिमती होनेके कारण जो अपने आश्रितोंके काम, क्रोध, लोभ मोह आदि सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाली हैं।

२४७ जितच्छविः ॐ जो उमा, रमा, ब्रह्माणी, रति आदि समस्त शोभानिधि शक्तियोंकी शोभा को विजय करने वाली हैं, अर्थात् अपरिमित शोभाकी खान है ॥४६॥

जितद्वन्द्वा जितामर्षा जीवमुक्तिप्रदायिनी ।
जीवानां परमाराध्या जीवेशी जेतृसद्गतिः ॥४७॥

२४८ जितद्वन्द्वा ॐ जो राग द्वेष आदि सभी द्वन्द्वोंसे रहित है ।

२४९ जितामर्षा ॐ जो जगज्जननी होनेके कारण जीवोंके हजारों अपराधोंको जानती हुई भी उनपर अहित कर क्रोध नहीं करती, बल्कि उनका हित करनेके लिये दया करना ही अपना कर्त्तव्य समझती है, यथा श्रीवाल्मीकीयरामायणे" पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ।"

२५० जीवमुक्तिप्रदायिनी ॐ जो अविद्या (बन्धनकारिणी) और विद्या (बन्धन मोचिनी) दोनों शक्तियोंकी स्वामिनी होनेके कारण आश्रित जीवोंको मोक्षस्वरूप अपना दिव्य धाम प्रदान करने वाली है ।

२५१ जीवानां परमाराध्या ॐ जीवोंकी आराधना के लिये जिनसे बढ़कर एवं समान ब्रह्मा, विष्णु महेश, गणेश, सुरेश, दिनेश (सूर्य) दुर्गादि कोई भी नहीं है ।

२५२ जीवेशी ॐ जो समस्त जीवोंके प्राणोंको अपने वशमें रखनेवाली हैं अथवा सभी जीवोंको कर्मानुसार अनेक प्रकारका जो फल प्रदान करती है ।

२५३ जेतृसद्गतिः ॐ जो समस्त शक्तियोंकी सञ्चालिका होनेके कारण लौकिक-पारलौकिक विजय चाहने वाले सभी प्राणियोंकी विजय प्राप्तिका उपाय तथा उसकी सर्वोत्तम फल स्वरूपा हैं, क्योंकि यदि कोई उनकी प्रदानकी हुई शक्तिसे विश्वविजयी भी होकर उनको भूल गया, तो फिर उससे (विजयाभिमानी) को यमयातना पूर्वक चौरासी लक्ष योनियोंका दुःख अवश्य उठाना पड़ेगा, उसी प्रकार पारलौकिक विजय चाहनेवाला उनकी दी हुई शक्तिसे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं तथा लौकिक शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध आदिके सहित मन और प्राण पर भी विजय प्राप्त करके यदि उनको भूल गया, तो उसे भी निगोदमें भटकनेसे अवकाश न मिलेगा, अत एव पूर्ण विजयकी सफलता उन सर्वशक्तिमतीकी प्राप्ति में ही है ॥४७॥

जेत्री ज्ञानदा ज्ञानपाथोधिर्ज्ञानिनां गतिः ।
ज्ञेयाऽऽत्महितकामानां ज्येष्ठा ज्योत्स्नाधिपानना ॥४८॥

२५४ जेत्री ॐ जो सभी पर विजय प्राप्त करने वाली हैं।

२५५ ज्ञानदा ॐ जो सभी प्राणियोंके अन्तः करणमें कर्म करते समय निर्भयताके रूपमें हितकर और भयके रूपमें अहितकरका ज्ञान प्रदान करती हैं अथवा अपने आश्रित भक्तोंको स्वस्वरूप, पर स्वरूप जगत्स्वरूप, प्राप्य स्वरूप और प्राप्य-प्राप्ति-साधक तथा प्राप्ति-बाधक स्वरूपका ज्ञान प्रदान करने वाली हैं।

२५६ ज्ञानपायोधिः ॐ जिनका ज्ञान समुद्रके समान अथाह है।

२५७ ज्ञानिनां गतिः ॐ जो आत्मतत्त्वको जान लेने वालोंकी परम प्राप्य स्थान स्वरूपा हैं, अर्थात् जिन्हें अपने तथा उनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान हो गया है, उन्हें अपने मन, बुद्धि, चित्तको ठहरानेके लिये एक जिनको छोड़ कर और कोई आधार ही नहीं है।

२५८ ज्ञेयाऽऽत्महितकामानां ॐ अपना कल्याण चाहने वालोंको जिनके स्वरूप, गुण और ऐश्वर्य आदिका ज्ञान प्राप्त करना परम आवश्यक है, अन्योंका नहीं, क्योंकि अन्य शक्तियाँ उनकी अंश होनेसे जीव ही हुईं, अतः उपासनाके लिये वे ज्ञेय नहीं हैं।

२५९ ज्येष्ठा ॐ जो सभी शक्तियोंमें बड़ी हैं।

२६० ज्योत्स्नाधिपानना ॐ जिनका श्रीमुखारविन्द शरद्-ऋतुके पूर्ण चन्द्रके समान परम आह्लादकारी तथा प्रकाशयुक्त है ॥ ४८ ॥

ज्वरातिगा ज्वलत्कान्तिर्ज्वालामालासमाकुला ।
झणन्नूपुरपादाब्जा झम्पाकेशप्रसादिता ॥४९॥

२६१ ज्वरातिगा ॐ जो भक्तोंके शारीरिक और मानसिक सभी प्रकारके ज्वरोंको दूर करनेमें समर्थ हैं।

२६२ ज्वलत्कान्तिः ॐ जिनके श्रीअङ्गकी कान्ति प्रकाशयुक्त है।

२६३ ज्वालामालासमाकुला ॐ जो प्रकाशपुञ्जसे परिपूर्ण हैं।

२६४ झणन्नूपुरपादाब्जा ॐ जिनके श्रीचरणकमलोंमें नूपुर बज रहे हैं।

२६५ झम्पाकेशप्रसादिता ॐ वानरराज श्रीहनुमानजीने जिन्हें प्रसन्न कर लिया है ॥४९॥

झषकेतुप्रियायूथसश्रितच्छविमोहिनी ।
झाटवाटोत्सवाधारा ञरूपा टुण्टुकेतरा ॥५०॥

२६६ झषकेतुप्रियायूथसश्रितच्छविमोहिनी ॐ जो अपने सहज-सौन्दर्यसे रतिसमूहोंकी छवि-राशिको मुग्ध कर लेनेमें विशेषता रखती हैं।

२६७ ऋाटवाटोत्सवाधारा ॐ जो कुञ्जस्थलियोंके विविध प्रकारके उत्सवोंकी आधार-स्वरूपा हैं अर्थात् जिनकी कृपासे ही सखियोंको कुञ्जकी क्रीडाओंका सुख प्राप्त होता है।

२६८ अरूपा ॐ जो गानविद्याकी स्वरूपा हैं।

२६९ ड्रुण्डुकेतरा ॐ जो सबसे बड़ी और परमदयालु हृदय वाली हैं ॥५०॥

ठात्मिका डम्बरोत्कृष्टा डामराधीशगामिनी ।
ढुण्ढीष्टदेवता ढक्कामञ्जुनादप्रहर्षिता ॥५१॥

२७० ठात्मिका ॐ जो सूर्य-चन्द्र मण्डल स्वरूपा हैं।

२७१ डम्बरोत्कृष्टा ॐ जो उमा, रमा, ब्रह्माणी रति आदि सभी विश्वविख्यात महाशक्तियोंमें भी सबसे बढ़कर हैं।

२७२ डामराधीशगामिनी ॐ जिनकी मनोहर चाल राजहंसके समान है।

२७३ ढुण्ढीष्टदेवता ॐ जो श्रीगणेशजीकी आराध्यदेवता हैं।

२७४ ढक्कामञ्जुनादप्रहर्षिता ॐ जो बड़ी ढोलके मनोहर नादसे विशेष हर्षको प्राप्त होती हैं ॥५१॥

णकारा तडिदोघाभदीप्ताङ्गी तत्त्वरूपिणी ।
तत्त्वकुशला तत्त्वात्मा तत्त्वादिस्तनुमध्यमा ॥५२॥

२७५ णकारा ॐ जो सर्वज्ञान स्वरूपा हैं।

२७६ तडिदोघाभदीप्ताङ्गी ॐ बिजुलीकी राशिके समान चमकते हुये जिनके श्रीअङ्ग हैं।

२७७ तत्त्वरूपिणी ॐ जो (दश इन्द्रिय, चतुष्टय अन्तःकरण पञ्च, प्राण, पञ्च तन्मात्रा) २४ तत्त्वोंकी स्वरूप हैं।

२७८ तत्त्वकुशला ॐ जो तत्त्व (सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके स्वरूपको भली भाँति जानती हैं।

२७९ तत्त्वात्मा ॐ जिनकी बुद्धिमें एक पूर्ण तत्त्व भगवान श्रीरामजी ही सदा निवास करते हैं।

२८० तत्त्वादिः ॐ जो समस्त तत्त्वोंकी आदि कारण हैं।

२८१ तनुमध्यमा ॐ जिनकी कमर सिंहके समान सुन्दर और पतली है।

तन्तुप्रवर्द्धिनी तन्वी तपनीयनिभद्युतिः ।
तपोमूर्त्तिस्तपोवासा तमसः परतः परा ॥५३॥

२८२ तन्तुप्रवर्द्धिनी ॐ जो अपने उपासकोंके वंशकी वृद्धि करती हैं।

२८३ तन्वी ॐ जिनका शरीर अत्यन्त कोमल है।

२८४ तपनीयनिभद्युतिः ※ जिनकी कान्ति तपाये सुवर्णके समान गौर है।

२८५ तपोमूर्त्तिः ※ जो सर्व तपस्वरूपा हैं।

२८६ तपोवासा ※ जो सभी प्रकारके तपोंकी भण्डार हैं।

२८७ तमसः परतः परा ※ जो पूर्ण सत् स्वरूपा हैं ॥५३॥

तमोघ्नी तापशमनी तारिणी तुष्टमानसा ।
तुष्टिप्रदायिका तृप्ता तृप्तिस्तृप्त्येककारिणी ॥५४॥

२८८ तमोघ्नी ※ जो आश्रितोंके मैं, मेरा रूप अज्ञानको दूर करने वाली हैं।

२८९ तापशमनी ※ जो अपने भक्तोंकी दैहिक, दैविक तथा मानसिक तीनों प्रकारकी तापोंको नष्ट कर देती हैं।

२९० तारिणी ※ जो अपने शरणागत भक्तोंको अनायास ही संसार रूपी सागरसे पार उतार देती हैं अर्थात् दिव्य धाम पहुँचा देती ह।

२९१ तुष्टमानसा ※ जिनका मन सदा प्रसन्न रहता है।

२९२ तुष्टिप्रदायिका ※ जो अपने भक्तोंको पूर्ण प्रसन्नता प्रदान करती हैं।

२९३ तृप्ता ※ जो पूर्ण काम हैं।

२९४ तृप्ति ※ जो तृप्ति स्वरूपा हैं।

२९५ तृप्त्येककारिणी ※ जो आश्रितोंको अपनी छवि-माधुरी के रसास्वादन द्वारा सदैव छकाये रहती हैं अर्थात् पूर्ण निष्काम बना देती है ॥५४॥

तेजः स्वरूपिणी तेजोवृपा तोयभवार्चिता ।
त्रिकालज्ञा त्रिलोकेशी थै थै शब्दप्रमोदिनी ॥५५॥

२९६ तेजः स्वरूपिणी ※ जो सम्पूर्ण तेजसमूहकी मूर्त्ति हैं।

२९७ तेजोवृपा ※ जो सर्वत्र अपने तेजकी वर्षा करती हैं।

२९८ तोयभवार्चिता ※ जिनकी श्रीकमला (लक्ष्मी) जी सदैव पूजा करती हैं।

२९९ त्रिकालज्ञा ※ जो भूत, भविष्य वर्तमान तीनों कालके सभी प्राणियोंके कायिक वाचिक, मानसिक प्रत्येक क्रियाओंको जानती हैं।

३०० त्रिलोकेशी ※ जो तीनों लोकों पर शासन करती हैं।

३०१ थै थै शब्दप्रमोदिनी ※ जो रासादि लीलाके समय थै थै शब्दसे विशेष प्रसन्नता को प्राप्त होती हैं ॥५५॥

दत्ता दनुजदर्पघ्नी दमिताश्रितकण्टका ।
दम्भादिमलमूलघ्नी दयार्द्राक्षी दयामयी ॥५६॥

३०२ दत्ता ❀ जो भक्तोंकी सुरक्षा करनेमें परम चतुर है ।

३०३ दनुजदर्पघ्नी ❀ जो अभिमान रूपी दैत्य का संहार करने वाली है अथवा जो दानवों (पर हित हननकारियों) के अभिमानको नष्ट करने वाली हैं ।

३०४ दमिताश्रितकण्टका जो अपने आश्रितोंके काँटा रूपी सभी बाधाओंको शान्त करती हैं ।

३०५ दम्भादिमलमूलघ्नी ❀ जो आश्रितोंके छल, कपट, काम क्रोध लोभ मोहादि विकारोंकी अज्ञानरूपी जडको नष्ट कर देती हैं ।

३०६ दयार्द्राक्षी ❀ जिनके दोनों नेत्र रूपी कमल दयासे तर है ।

३०७ दयामयी ❀ जो दयाकी स्वरूप ही हैं ॥५६॥

दशस्यन्दनजप्रेष्ठा दाक्षिण्याखिलपूजिता ।
दान्ता दारिद्र्यशमनी दिव्यध्येयशुभाकृतिः ॥५७॥

३०८ दशस्यन्दनजप्रेष्ठा ❀ जो दशरथनन्दन श्रीरामभद्रजूकी प्राणप्रियतमा हैं ।

३०९ दाक्षिण्याखिलपूजिता ❀ जो सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन, संहार कार्यकी चतुराईमें सभी शक्तियोंके द्वारा पूजित हैं ।

३१० दान्ता ❀ जो मनके समेत सभी इन्द्रियोंको अपनी इच्छानुसार चलाती है ।

३११ दारिद्र्यशमनी ❀ जो आश्रितोंकी दरिद्रताका नाश कर देती हैं ।

३१२ दिव्यध्येयशुभाकृतिः ❀ जिनके मङ्गलमय स्वरूपका ध्यान दिव्य (शब्द, स्पर्श, रूपादि विषयोंकी, आसक्तिसे रहित भक्त जन) ही कर सकते हैं ॥५७॥

दिव्यात्मा दिव्यचरिता दिव्योदारगुणान्विता ।
दिव्या दिव्यात्मविभवा दीनोद्धरणतत्परा ॥५८॥

३१३ दिव्यात्मा ❀ जिनकी बुद्धि लोकसे परे है ।

३१४ दिव्यचरिता ❀ जिनकी सभी लीलायें अप्राकृत अर्थात् मायिक सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंसे परे है ।

३१५ दिव्योदारगुणान्विता ❀ जो भक्तोंको इच्छासे अधिक फल प्रदान करने वाले अप्राकृत दया, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्यादि दिव्य गुणोंसे युक्त हैं ।

३१६ दिव्या ॥ जो शब्द, स्पर्श, रूप-रसादिक विषयोंके सहित आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इस पञ्च तत्त्वोंसे रहित सच्चिदानन्दघन शरीर वाली हैं।

३१७ दिव्यात्मविभवा ॥ जिनकी ज्ञान-शक्ति लोकसे परे है।

३१८ दीनोद्धरणतत्परा ॥ जो अभिमान-रहित प्राणियोंका उद्धार करनेमें तत्पर हैं ॥५८॥

दीप्ताङ्गी दीप्तमहिमा दीप्यमानमुखाम्बुजा।
दुरासदा दुराराध्या दुरितघ्नी दुर्मर्षणा ॥५९॥

३१९ दीप्ताङ्गी ॥ जिनके सभी अङ्ग परम प्रकाशमय हैं।

३२० दीप्तमहिमा ॥ जिनकी महिमा इस दृश्य जगत् रूपमें चमक रही है।

३२१ दीप्यमानमुखाम्बुजा ॥ जिनका श्रीमुखारविन्द अनन्त चन्द्रमाओंके सदृश आह्लादकारी प्रकाशयुक्त है।

३२२ दुरासदा ॥ जो अभक्तोंको महान् कष्टसे भी नहीं प्राप्त होतीं।

३२३ दुराराध्या ॥ अनन्य प्रेमसे साध्या होनेके कारण जिन्हें योग, यज्ञ, तप आदि विशेष कष्ट कर साधनोंके द्वारा भी कोई प्रसन्न नहीं कर सकता।

३२४ दुरितघ्नी ॥ जो भक्तोंके समस्त पापजनित दुःखोंका नाश करने वाली हैं।

३२५ दुर्मर्षणा ॥ जो भक्तोंके प्रति किसीके किये हुये अपराधको दुःखसे भी सहन नहीं कर पातीं अर्थात् उसे अपने सर्वेश्वरी रूपानुसार अवश्य उचित दण्ड प्रदान करती हैं ॥५९॥

दुर्ज्ञेया दुष्प्रकृतिघ्नी दुःस्वप्नादिप्रणाशिनी।
द्युतिर्द्युतिमती देवचूडामणिप्रभुप्रिया ॥६०॥

३२६ दुर्ज्ञेया ॥ जो असीम होनेके कारण अत्यन्तसीमित बुद्धि वाले प्राणियोंके जप, तप पूजा यज्ञादिके द्वारा भी समझमें नहीं आतीं।

३२७ दुष्प्रकृतिघ्नी ॥ जो आश्रितोंके खोटे स्वभावको नष्ट कर देती हैं।

३२८ दुःस्वप्नादिप्रणाशिनी ॥ जो भक्तोंके स्वप्नमें देखे हुये, अनिष्ट कारक स्वप्नोंके फलको भली-भांतिसे एक ही नाश करने वाली हैं।

३२९ द्युतिः ॥ जो प्रकाश-स्वरूपा हैं।

३३० द्युतिमती ॥ जो अपने आप सहज प्रकाश युक्त हैं।

३३१ देवचूडामणिप्रभुप्रिया ॥ जो समस्त देवताओंमें शिरोमणि भगवान् विष्णुके नियामक श्रीराघवेन्द्र-सरकारकी प्राण वल्लभा हैं ॥६०॥

देवताहितदा दैन्यभावाचिरसुतोषिता ।
धराकन्या धरानन्दा धरामोदविवर्धिनी ॥६१॥

३३२ देवताहितदा ॐ जो दैवी सम्पत्तिसे युक्त अपने भक्तोंको हित स्वयं प्रदान करती हैं।

३३३ दैन्यभावाचिरसुतोषिता ॐ जो अभिमान रहित भावसे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाती हैं।

३३४ धराकन्या ॐ जो भूमिसे प्रकट होनेके कारण भूमिकन्या कहाती हैं।

३३५ धरानन्दा ॐ जो पृथ्वी देवीके आनन्दकी स्वरूप हैं।

३३६ धरामोदविवर्द्धिनी ॐ जो अपने क्षमा गुणकी सर्वोत्कृष्टताके द्वारा श्रीपृथ्वीदेवीके आनन्द-की विशेष वृद्धि करने वाली है ॥६१॥

धरारत्नं धर्मनिधिर्धर्म सेतुनिबन्धिनी ।
धर्मशास्त्रानुगा धामपरिभूततडिद्द्युतिः ॥६२॥

३३७ धरारत्नं ॐ जो पृथिवीमें रत्न स्वरूपा हैं।

३३८ धर्मनिधिः ॐ जो सम्पूर्ण धर्मोंकी भण्डार स्वरूपा हैं।

३३९ धर्म-सेतुनिबन्धिनी ॐ जो धर्मकी मर्यादा बाँधने वाली हैं।

३४० धर्मशास्त्रानुगा ॐ जो लोकमें श्रीमनु महाराज आदिके रचित धर्मशास्त्रोंके अनुसार आचरण करने कराने वाली हैं।

३४१ धामपरिभूततडिद्द्युतिः ॐ जो अपने श्रीअङ्गकी चमकसे बिजुलीकी चमक को तुच्छ कर रही हैं ॥६२॥

धृतिर्ध्रुवा नतिप्रीता नयशास्त्रविशारदा ।
नामनिर्धूतनिरया निगमान्तप्रतिष्ठिता ॥६३॥

३४२ धृतिः ॐ जो सात्विक धारणाशक्ति स्वरूपा हैं।

३४३ ध्रुवा ॐ जिनका नाम, रूप लीला, धाम, सुमिरण, भजन सब अटल (अविनाशी) हैं।

३४४ नतिप्रीता ॐ जो पूर्ण काम होनेके कारण केवल प्रणाम मात्रसे प्रसन्न हो जाती हैं यथा श्रीवाल्मीकीयरामायणे सुमेरुकाण्डे "प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा"।

३४५ नयशास्त्रविशारदा ॐ जो नीतिशास्त्रको भली-भाँति जानती हैं।

३४६ नामनिर्धूतनिरया ॐ जिनका नाम लेतेही नरककी यातना (दण्ड) नष्ट हो जाती है।

३४७ निगमान्तप्रतिष्ठिता ॐ जिन्हें वेदान्तशास्त्रने प्रतिष्ठा प्रदानकी है अर्थात् जिनकी महिमाको स्वयं वेदान्तशास्त्र गान करता है ॥६३॥

निगमैर्गीतचरिता नित्यमुक्तनिषेविता ।
निधिर्निमिकुलोत्तंसा निमित्तज्ञानिसत्तमा ॥६४॥

३४८ निगमैर्गीतचरिता ॥ जिनके आदर्श पूर्ण, समस्त विश्वहितकर चरितोंको चारोवेद गान करते हैं।

३४९ नित्यमुक्तनिषेविता ॥ जो नित्य मुक्त जीवोंके द्वारा सदा सेवित हैं।

३५० निधिः ॥ जो सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण वैराग्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण यशकी भण्डार स्वरूपा हैं।

३५१ निमिकुलोत्तंसा ॥ जो निमिकुलको भूषणके समान सुशोभित करने वाली हैं।

३५२ निमित्तज्ञानिसत्तमा ॥ जो समस्त प्राणियोंके तन, मन, वाणी द्वारा किये हुये प्रत्येक कर्मके उद्देश्य (मतलब) को समझनेवाली सम्पूर्ण शक्तियोंमें सर्वोत्तमा हैं, क्योंकि अन्य देवशक्तियाँ केवल अपने २ एक २ अङ्गकी चेष्टाओंका कारण जानती हैं, सभी इन्द्रियोंकी नहीं किन्तु सर्व व्यापक होनेके कारण जिनसे किसी भी इन्द्रियकी कोई भी चेष्टाका कारण गुप्त नहीं रह सकता ॥॥६४॥

नियतेन्द्रियसम्भाव्या नियतात्मा निरञ्जना ।
निराकारा निरातङ्का निराधारा निरामया ॥६५॥

३५३ नियतेन्द्रियसम्भाव्या ॥ *जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुये साधकोंके ही ध्यानमें* भली-भाँति आने योग्य हैं।

३५४ नियतात्मा ॥ जिनका मन पूर्ण रूपसे अपने वशमें रहता है अथवा भगवान् श्रीरामजीमें लीन है।

३५५ *निरञ्जना ॥ जो सभी प्रकारके विकारोंसे अछूती हैं।*

३५६ निराकारा ॥ जो सर्वस्वरूपा होनेके कारण किसी एक सीमित स्वरूप वाली नहीं हैं।

३५७ निरातङ्का ॥ जिन्हें जन्म मृत्यु, जरा, व्याधि आदि किसीभी बातका भय नहीं है।

३५८ निराधारा ॥ जिनका आधार कोई नहीं है तथा जो समस्त आधारोंकी अधार-स्वरूपा हैं।

३५९ निरामया ॥ जिन्हें शारीरिक या मानसिक कोई रोग होता ही नहीं ॥६५॥

निर्व्याजकरुणामूर्त्तिर्नीतिः पङ्करुहेक्षणा ।
पतितोद्धारिणी पद्मगन्धेष्टा पद्मजार्चिता ॥६६॥

३६० निर्व्याजकरुणामूर्त्तिः ❀ जो किसी प्रकारके साधन आदिके बहानाकी अपेक्षा न रखने वाली कृपाकी स्वरूपा हैं।

३६१ नीतिः ❀ जो नीति स्वरूपा हैं।

३६२ पङ्करुहेक्षणा ❀ जिनके नेत्र-कमलके समान विशाल तथा मनोहर हैं।

३६३ पतितोद्धारिणी ❀ जो अभिमान रहित, लोक दृष्टिमें गिरे हुये प्राणियोंकाउद्धार करने वाली हैं।

३६४ पद्मगन्धेष्टा ❀ जो श्रीपद्मगन्धाजीकी इष्ट हैं।

३६५ पद्मजार्चिता ❀ जो श्रीब्रह्माजीके द्वारा पूजित हैं ॥६६॥

पद्मपादा पद्मवक्त्रा पद्मिनी परमेश्वरी।
परब्रह्म परस्पष्टा पराशक्तिः परिग्रहा ॥६७॥

३६६ पद्मपादा ❀ जिनके दोनों चरण-कमलके समान तथा मधुर (आनन्दप्रद) सुगन्धवाले हैं।

३६७ पद्मवक्त्रा ❀ जिनका श्रीमुखचन्द्र-कमलके समान प्रफुल्लित तथा सुगन्धमय है।

३६८ पद्मिनी ❀ जिनके सर्वाङ्ग कमलवत् सुकोमल हैं तथा जो पतिव्रता और साम्राज्ञी चिन्होंसे युक्त हैं।

३६९ परमेश्वरी ❀ जो सभी हरिहरादि शासकोंपर भी शासन करती हैं, अर्थात् जिनके शासनानुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष, इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण, वायु, चन्द्र, सूर्य अग्नि, मृत्यु आदि सब पूर्ण सावधानता पूर्वक अपने अपने कर्त्तव्यमें सदैव तत्पर बने रहते हैं।

३७० परब्रह्म, जो सबसे बड़ी और सूक्ष्म होनेके कारण सभीको अपनेमें रहनेका अवकाश (स्थान) देने वाले आकाशादि सभी पञ्च महातत्वोंसे उत्कृष्ट हैं।

३७१ परस्पष्टा ❀ जो अपने अनन्य प्रेमी भक्तोंके लिये सदैव प्रत्यक्ष रहती हैं।

३७२ पराशक्तिः ❀जो सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करने वाली ब्रह्माणी, रमा उमा आदि शक्तियोंसे श्रेष्ठ अर्थात् उनको अपनी इच्छासे प्रकट करने वाली हैं।

३७३ परिग्रहा ❀ जो सभी ओरसे भक्तोंके भावोंको ग्रहण करती हैं ॥६७॥

परित्रात्री परिश्लाघ्या परेष्टा पर्यवस्थिता।
पवित्रं पाठ्याधारा पातिव्रत्यधुरन्धरा ॥६८॥

३७४ परित्रात्री ❀ जो अपने आश्रितोंकी सब ओर से सुरक्षा करती हैं।

३७५ परिश्लाघ्या ❀ जो सब प्रकारसे प्रशंसा करने योग्य हैं।

३७६ परेष्टा ※ जो ब्रह्मादि देवोंकी भी इष्ट (उपास्य) देवता हैं।

३७७ पर्यवस्थिता ※ जो सर्वव्यापिका होनेके कारण सभी ओर सर्वत्र विराजमान हैं।

३७८ पवित्र ※ जिनका नाम सङ्कीर्त्तन यज्ञादि अमोघ अस्त्रोंसे भी रक्षा करने वाला है।

३७९ पाटवाधारा ※ जो सम्पूर्ण चतुराईका आधार (केन्द्र) स्वरूपा है।

३८० पातिव्रत्यधुरन्धरी ※ जो पति व्रतोंयोंके धर्मका पालन करनेवाली स्त्रियोंमें अग्रगण्या हैं ६८

पापिपापौघसंहर्त्री पारिजातसुमार्चिता ।
पावनानुत्तमादर्शा पावनी पुण्यदर्शना ॥६९॥

३८१ पापिपापौघसंहर्त्री ※ जो शरणागत पापियोंके पापसमूहोंको सब प्रकारसे हरणकर लेती हैं।

३८२ पारिजातसुमार्चिता ※ इन्द्रादि देव कल्पवृक्षपुष्पोंके द्वारा जिनकी पूजा करते हैं।

३८३ पावनानुत्तमादर्शा ※ जिनका आदर्श सर्वोत्तम तथा प्राणियोंको स्वभाविक पवित्र बनाने वाला है।

३८४ पावनी ※ जिनका नाम, रूप, लीला, धाम सब कुछ, प्राणियोंके काम, क्रोध, लोभादि विकार रूपी अपवित्रताको दूर करके निर्विकारिता रूपी पवित्रता प्रदान करने वाला है।

३८५ पुण्यदर्शना ※ जिनका दर्शन हृदयमें अत्यन्त पवित्रताको प्रदान करने वाला पुण्यके उदयसे प्राप्त होता है ॥६९॥

पुण्यश्रवणचरिता पुण्यश्लोकवरीयसी ।
पुष्पालङ्कारसम्पन्ना पुष्टिः पुष्टिप्रदायिनी ॥७०॥

३८६ पुण्यश्रवणचरिता ※ जिनके मङ्गल मय चरित्रोंको श्रवण करनेसे अन्तःकरणमें स्वाभाविक पवित्रता उदय होती है।

३८७ पुण्यश्लोकवरीयसी ※ जो पवित्रतम यशवाली सभी महाशक्तियोंमें सबसे उत्कृष्ट हैं।

३८८ पुष्पालङ्कारसम्पन्ना ※ जो फूलोंके शृङ्गारसे युक्त है।

३८९ पुष्टिः ※ जो पुष्टि शक्ति स्वरूपा हैं अर्थात् जिनकी उस शक्तिसे ही सभी प्राणियोंको पुष्टिकी प्राप्ति होती है।

३९० पुष्टिदायिनी ※ जो भक्तोंके लिये शारीरिक तथा हार्दिक पुष्टि (दृढ़ता) प्रदान करती हैं ७०

पूतात्मा पूतसर्वेहा पूज्यपादाम्बुजद्वया ।
पूर्णा पूर्णेन्दुवदना प्रकृतिः प्रकृतेः परा ॥७१॥

३९१ पूतात्मा ❀ जिनकी बुद्धि परम पवित्र है।

३९२ पूतसर्वेहा ❀ जिनकी समस्त चेष्टायें परम-पवित्र हैं।

३९३ पूज्यपादाम्बुजद्वया ❀ जिनके कमलवत् सुकोमल दोनों श्रीचरण सभीके पूजने योग्य हैं।

३९४ पूर्णा ❀ जिन्हें अपनी किसी भी इच्छाकी पूर्ति करना शेष नहीं है तथा जो भूत भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें सर्वत्र पूर्ण रूपसे विराजमान हैं।

३९५ पूर्णेन्दुवदना ❀ जिनका श्रीमुखारविन्द पूर्ण चन्द्रमाके सदृश शीतल प्रकाशमय तथा परम आह्लादकारी है।

३९६ प्रकृतिः ❀ जो ब्रह्मकी इच्छा स्वरूपा हैं।

३९७ प्रकृतेः परा ❀ जो विद्या अविद्या रूपी मायासे परे हैं ॥७१॥

प्रकृष्टात्मा प्रणम्याङ्घ्रिः प्रणयातिशयप्रिया ।
प्रणतातुल्यवात्सल्या प्रणतध्वस्तसंसृतिः ॥७२॥

३९८ प्रकृष्टात्मा ❀ जिनकी बुद्धि सबसे बढ़ कर है।

३९९ प्रणम्याङ्घ्रिः ❀ जिनके श्रीचरण कमल प्रणाम करनेके ही योग्य हैं।

४०० प्रणयातिशयप्रिया ❀ जिन्हें प्रेम सबसे अधिक प्रिय है।

४०१ प्रणतातुल्यवात्सल्या ❀ भक्तोंके प्रति जिनके वात्सल्यकी उपमा नहीं दी जासकी।

४०२ प्रणतध्वस्तसंसृतिः ❀ जो अपने आश्रितोंके जन्म मरणरूपी आवागमनको नष्ट कर देती हैं।

प्रणविनी प्रतिष्ठात्री प्रथमा प्रथिता प्रधीः ।
प्रपन्नरक्षणोद्योगा प्रवित्तं प्रविशारदा ॥७३॥

४०३ प्रणविनी ❀ जो ॐ कार वाच्य भगवान् श्रीरामजीकी प्राणप्यारी हैं।

४०४ जो वात्सल्य भावकी परा काष्ठाके कारण अपने भक्तोंको विशेष सम्मान देती हैं।

४०५ प्रथमा ❀ जो सबसे आदिकी हैं।

४०६ प्रथिता ❀ जो अपनी महिमाके द्वारा सर्वत्र तीनों कालमें प्रसिद्ध हैं।

४०७ प्रधीः ❀ जिनका ज्ञान सबसे उत्कृष्ट है।

४०८ प्रपन्नरक्षणोद्योगा ❀ शरणागत जीवोंकी रक्षा करना ही जिनका मुख्य धंधा है।

४०९ प्रवित्तं ❀ जो भक्तोंकी सबसे बढ़कर सम्पत्ति (धन) हैं।

४१० प्रविशारदा ❀ जो भक्तोंकी रक्षा करनेमें सबसे अधिक चतुरा हैं ॥७३॥

प्रह्वी प्राणप्रदा प्राणनिलया प्राणवल्लभा ।
प्राणात्मिका प्रार्थनीया प्रियमोहनदर्शना ॥७४॥

४११ प्रह्वी ॥ जिनका स्वभाव अत्यन्त नम्र है ।

४१२ प्राणप्रदा ॥ जो समस्त शरीरोंमें पञ्च प्राणोंका सञ्चार करने वाली हैं ।

४१३ प्राणनिलया ॥ जो समस्त प्राणोंके निवास स्थान स्वरूपा हैं ।

४१४ प्राणवल्लभा ॥ जो प्राणोंको अत्यन्त प्रिय हैं ।

४१५ प्राणात्मिका ॥ जो पञ्च प्राणोंमें विराज रही हैं अथवा जो पञ्च प्राणस्वरूपा हैं ।

४१६ प्रार्थनीया ॥ सभी (ब्रह्मादि देवताओं) को भी जिनसे याचना करना उचित है ।

४१७ प्रियमोहनदर्शना ॥ जो ज्ञानकी पराकाष्ठासे अपने प्यारे भगवान् श्रीरामजीको भी मुग्ध रखती हैं ॥७४॥

प्रियार्हा प्रीतितत्त्वज्ञा प्रीतिदा प्रीतिवर्धिनी ।
प्रेज्या प्रेमरता प्रेमवल्लभातीववल्लभा ॥७५॥

४१८ प्रियार्हा ॥ जो गुण, रूप, ऐश्वर्य आदिकी दृष्टिसे प्यारे श्रीरामभद्रजूके योग्य दुलहिन तथा श्रीराघवेन्द्र सरकारजी सब प्रकारसे जिनके दूलह होनेके योग्य हैं, अथवा जो संसारकी प्यारीसे प्यारी वस्तुयें अर्पण करनेके योग्य पात्र स्वरूपा हैं ।

४१९ प्रीतितत्त्वज्ञा ॥ जो प्रेमके रहस्यको हर प्रकारसे समझती हैं ।

४२० प्रीतिदा ॥ जो अपने आश्रितोंको संसारके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि पाँचों विषयोंसे वैराग्य करानेके लिये भगवानके श्रीचरण-कमलोंमें अनुराग प्रदान करती हैं ।

४२१ प्रीतिवर्द्धिनी ॥ जो भगवदानन्दकी अनुभूति करानेके लिये भक्तोंके हृदयमें उत्तरोत्तर अनुरागकी वृद्धि करती रहती है ।

४२२ प्रेज्या ॥ जो सभी देव, मुनि, सिद्ध, परमहंसोंके द्वारा भी सबसे बढ़कर पूजने योग्य हैं ।

४२३ प्रेमरता ॥ जो भक्तोंके सहित भगवान् श्रीराघवेन्द्रसरकारके प्रेममें सदैव आसक्त बनी रहती हैं

४२४ प्रेमवल्लभातीववल्लभा ॥ जिन्हें गुण, रूप, वैभव आदि प्रियतम होकर एक प्रेम ही प्रिय है उन श्रीरघुनन्दनप्यारेजूकी जो सबसे अधिक प्यारी हैं ॥७५॥

प्रेमवारां निधिः प्रेमविग्रहा प्रेमवैभवा ।
प्रेमशक्त्येकविवशा प्रेमसंसाध्यदर्शना ॥७६॥

४२५ प्रेमवारां निधिः ॐ जो प्रेमकी समुद्र हैं अर्थात् जिनमें समुद्रके समान अथाह प्रेम भरा हुआ है।

४२६ प्रेमविग्रहा ॐ जो प्रेमकी स्वरूप ही हैं।

४२७ प्रेमसंभरा ॐ जिनकी प्यारी सम्पत्ति एक प्रेम ही है।

४२८ प्रेमशक्त्येकविवशा ॐ जो अनुपम प्रेम शक्ति-सम्पन्न प्रभु श्रीरामजीके अधीन हैं।

४२९ प्रेमसंसाध्यदर्शना ॐ जिनके दर्शनोंका अमोघ उपाय एक प्रेम ही है ॥७६॥

प्रेमैकहाटकागारा प्रेमैकाद्भुतविग्रहा ।
फणीन्द्रावर्ण्यविभवा फलरूपा सुकर्मणाम् ॥७७॥

४३० प्रेमैकहाटकागारा ॐ जिनके निवासके लिये प्रेम ही मुख्य श्रीकनक-भवन है।

४३१ प्रेमैकाद्भुतविग्रहा ॐ जो प्रेमकी आश्चर्यमयी अनुपम मूर्त्ति हैं।

४३२ फणीन्द्रावर्ण्यविभवा ॐ सहस्र मुख वाले शेषजी भी जिनके ऐश्वर्यका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं।

४३३ फलरूपा सुकर्मणाम् ॐ जो समस्त हितकर कर्मोंकी फलस्वरूपा हैं ॥७७॥

बुद्धिदा बुधमृग्याङ्घ्रिकमला बोधवारिधिः ।
ब्रह्मलेखातिगा ब्रह्मवेत्त्री ब्रह्माण्डवृन्दसूः ॥७८॥

४३४ बुद्धिदा ॐ जो प्रत्येक भले बुरे कर्ममें तत्पर होनेके प्रारम्भमें सभी प्राणियोंको निर्भयता, प्रसन्नता और भयचिन्ताके रूपमें हित और अहितका ज्ञान स्वयं प्रदान करती हैं।

४३५ बुधमृग्याङ्घ्रिकमला ॐ ज्ञानियों के खोजने योग्य एक जिनके श्रीचरणकमल हैं।

४३६ बोधवारिधिः ॐ जिनमें ज्ञान शक्ति समुद्रके समान अथाह है।

४३७ ब्रह्मलेखातिगा ॐ जो भक्तोंके मस्तकमें श्रीब्रह्माजीकी लिखी हुई दुर्भाव रेखाओंको भी टाल (मिटा) देती हैं अर्थात् सौभाग्य-जनित सद्भावना, सद्विचार, परहितैषिता आदि (मन, बुद्धि, चित्त) में भर देती हैं।

४३८ ब्रह्मवेत्त्री ॐ जो ब्रह्म भगवान् श्रीरामजी अथवा वेदके रहस्यको हर प्रकारसे जानती हैं।

४३९ ब्रह्माण्डवृन्दसूः ॐ जो अनन्त ब्रह्माण्डोंकी जन्म दात्री हैं ॥७८॥

भक्तत्राणविधानज्ञा भक्तिसंसाध्यदर्शना ।
भजनीयगुणोपेता भयघ्नी भवतारिणी ॥७९॥

४४० भक्तत्राणविधानज्ञा ॐ जो भक्तोंकी रक्षाका उपाय भली भाँति जानती हैं।

४४१ भक्तिसंसाध्यदर्शना ॐ जिनका दर्शन केवल पूर्ण प्रेमाभक्तिसे सुलभ है।

४४२ भजनीयगुणोपेता * जो उपासना करने योग्य सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता तथा भगवत्ता, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य, कारुण्य, उदारता आदि अनेक दिव्य मङ्गल गुणोंसे परिपूर्ण हैं।

४४३ भयघ्नी * जो अपनी महिमा पर विश्वास दिलाकर भक्तोंके सम्पूर्ण भयोंको नष्ट कर देती हैं।

४४४ भवतारिणी * जो अपने श्रीचरण-कमलोंकी आसक्ति रूपी जहाजके द्वारा आश्रित भक्तोंको संसारसागरसे पार कर देती हैं अर्थात् दिव्य-धाममें बुला लेती हैं ॥७६॥

भवपूज्या भवाराध्या भवोत्पत्त्यादिकारिणी।
भाग्यैकसंशोधयित्री भावैकपरितोषिता ॥८०॥

४४५ भवपूज्या * श्रीभोलेनाथजीको भी जिनकी पूजा कर्त्तव्य है।

४४६ भवाराध्या * जो भगवान श्रीभोलेनाथजीके द्वारा भी उपासित होने योग्य हैं। अथवा जिनकी आराधना वास्तवमें भली भाँति भगवान् श्रीशङ्करजी ही कर पाते हैं।

४४७ भवोत्पत्त्यादिकारिणी * जो अपने सत्व, रज, तम त्रिगुणमय आकारोंसे जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करने वाली हैं।

४४८ भाग्यैकसंशोधयित्री * जो अपने आश्रितोंके बिगड़े हुये भाग्यको भली-भाँति सुधार देती हैं।

४४९ भावैकपरितोषिता * जिन्हें अनन्य भाव वाले भक्त ही पूर्ण प्रसन्न कर पाते हैं ॥८०॥

भूतप्रसूतिर्भूतात्मा भूतादिर्भूतिदायिनी।
भूतिमत्समुपास्याङ्घ्रिर्भूसुता भ्रान्तिहारिणी ॥८१॥

४५० भूतप्रसूतिः * जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति करने वाली हैं।

४५१ भूतात्मा * सम्पूर्ण चर-अचर प्राणी ही जिनके शरीर हैं अथवा जो सभी प्राणियोंकी आत्मस्वरूपा हैं।

४५२ भूतादिः * जो आकाशादि पञ्चमहाभूतोंकी आदि कारण स्वरूपा हैं।

४५३ भूतिदायिनी * जो आश्रितोंको अनेक प्रकारका सौभाग्य प्रदान करती हैं।

४५४ भूतिमत्समुपास्याङ्घ्रिः * भगवान्की प्रसन्नता प्राप्तिके लिये ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंको भी जिनके श्रीचरणकमलोंकी आराधना करना परम आवश्यक है।

४५५ भूसुता * जो पृथ्वीसे प्रकट होनेके कारण भूमि पुत्री कहाती हैं।

४५६ भ्रान्तिहारिणी * जो आश्रितोंकी सभी प्रकारकी शङ्काओंको दूर कर देती हैं ॥८१॥

मङ्गलाशेषमाङ्गल्या मङ्गलैकमहानिधिः ।
मधुरा मधुराकारा मननीयगुणावलिः ॥८२॥

४५७ मङ्गलाशेषमाङ्गल्या ॐ जो सम्पूर्णमङ्गलोंमें सबसे उत्कृष्टमङ्गल स्वरूपा है।
४५८ मङ्गलैकमहानिधिः ॐ जो समस्तमङ्गलोंकी सबसे बड़ी निधि (भण्डार) स्वरूपा हैं।
४५९ मधुरा ॐ जो अपने आश्रित चेतनोंको भगवदानन्द प्रदान करती रहती है।
४६० मधुराकारा ॐ जिनका मङ्गल मयविग्रह महान् आनन्द दायक है।
४६१ मननीयगुणावलिः ॐ जिनके क्षान्ति, वात्सल्य सौशील्य, कारुण्यादि गुणसमूह सतत, मनन करने योग्य हैं ॥८२॥

मनोजवा मनोज्ञाङ्गी मनोरमगुणान्विता ।
मनः स्वरूपा महती महनीयगुणाम्बुधिः ॥८३॥

४६२ मनोजवा ॐ जिनकी सर्वत्र पहुँचने की शक्ति, मनसे भी अधिक तीव्र है।
४६३ मनोज्ञाङ्गी ॐ जिनके श्रीचरण-कमल आदिक सभी अङ्ग, बड़े ही मनोहर हैं।
४६४ मनोरमगुणान्विता ॐ जो सभी मनोहर गुण समूहोंसे परिपूर्ण हैं।
४६५ मनःस्वरूपा ॐ जो सम्पूर्ण इन्द्रियामें मन स्वरूपा है।
४६६ महती ॐ जो शक्तियामें सबसे बड़ी महिमा वाली है।
४६७ महनीयगुणाम्बुधिः ॐ जो पूजने योग्य क्षमा, वात्सल्य उदारता आदि सभी गुणोंकी समुद्र-स्वरूपा हैं ॥८३॥

महदैश्वर्यैका महाकीर्तिर्महाकोशा महाक्रतुः ।
महाक्रमा महागर्ता महाछविर्महाद्युतिः ॥८४॥

४६८ महदैश्वर्यैका ॐ जो अनुपम महान् ऐश्वर्यवाली हैं।
४६९ महाकीर्तिः ॐ जो ब्रह्मकी कीर्तिस्वरूपा हैं अथवा जिनसे बढ़कर किसीकी कीर्ति है ही नहीं।
४७० महाकोशा ॐ जो ब्रह्मके सभी गुण, शक्ति, सौन्दर्य, ऐश्वर्य आदिकी भण्डार हैं।
४७१ महाक्रतुः ॐ जो महान् यज्ञस्वरूपा हैं।
४७२ महाक्रमा ॐ जिनकी गमन शक्ति सबसे अधिक तीव्र है।
४७३ महागर्ता ॐ जो माया रूपी महान् गर्त (गढ़े) वाली हैं।

४७४ महाछविः ❀ जिनसे बढ़कर किसी का सौन्दर्य है ही नहीं अर्थात् जो ब्रह्मके सौन्दर्यकी मूर्ति हैं ।

४७५ महाद्युतिः ❀ जो ब्रह्मकी कान्तिस्वरूपा हैं अथवा जिनसे बढ़कर किसीकी कान्ति नहीं है॥८४॥

महादृष्टिर्महाधाम्नी महानन्दस्वरूपिणी ।
महानायकसम्मान्या महानैपुण्यवारिधिः ॥८५॥

४७६ महादृष्टिः ❀ जिनकी दृष्टि ब्रह्मके समान सर्वव्यापक है ।

४७७ महाधाम्नी ❀ जिनका धाम श्रीमिथिलाजी सर्वोत्कृष्ट है अथवा जो ब्रह्मकी तेजःस्वरूपा हैं

४७८ महानन्दस्वरूपिणी ❀ जो ब्रह्मके आनन्दकी मूर्ति हैं अथवा जिनका स्वरूप महान् आनन्द प्रदायक है ।

४७९ महानायकसम्मान्या ❀ जो सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजीके द्वारा भी सम्मान पाने योग्य हैं ।

४८० महानैपुण्यवारिधिः ❀ जो महान् चतुराईकी सागर-स्वरूपा हैं अर्थात् जैसे सागरमें अथाह जल भरा हुआ है, उसी प्रकार जिनमें अथाह महान् चतुराई भरी हुई है ॥८५॥

महापूज्या महाप्राज्ञा महाप्रेज्या महाफला ।
महाभागा महाभोगा महामतिमतां वरा ॥८६॥

४८१ महापूज्या ❀ जिनसे बढ़कर कोई भी शक्ति पूजने योग्य नहीं है अथवा जो श्रीलक्ष्मणजी श्रीभरतजी श्रीशत्रुघ्नजी आदि के द्वारा पूजने योग्य हैं ।

४८२ महाप्राज्ञा ❀ जो अत्यन्त बुद्धिमती हैं ।

४८३ महाप्रेज्या ❀ जो सबसे बढ़कर उपासनाके योग्य हैं ।

४८४ महाफला ❀ जिनकी प्राप्ति ही समस्त सत्कर्मोंका सबसे उत्कृष्ट फल है ।

४८५ महाभागा ❀ जिनका सौभाग्य प्रशंसनीय है अर्थात् जिनसे बढ़कर किसीका सौभाग्य है ही नहीं।

४८६ महाभोगा ❀ जो सर्वोत्कृष्ट भोग वाली हैं ।

४८७ महामतिमतां वरा ❀ जो समस्त बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं ॥८६॥

महामाधुर्यसम्पन्ना महामायास्वरूपिणी ।
महायोगप्रमाध्येशा महायोगेश्वरप्रिया ॥८७॥

४८८ महामाधुर्यसम्पन्ना ❀ जो महान् मनो मुग्धकारी सौन्दर्यसे परिपूर्ण हैं ।

४८९ महामायास्वरूपिणी ❀ जो महामायाकी कारण स्वरूपा हैं ।

४६० महायोगप्रसाध्यैका ॐ जो चित्तवृत्तिकी महान् आसक्तिसे प्राप्त होनेवाली सभी शक्तियोंमें मुख्य हैं।

४६१ महायोगेश्वरप्रिया ॐ जो महायोगेश्वर भगवान् श्रीरामजीकी प्राणवल्लभा हैं ॥८७॥

महारतिर्महालक्ष्मीर्महाविद्यास्वरूपिणी ।
महाशक्तिर्महाश्रेष्ठा महाश्लाघ्ययशोऽन्विता ॥८८॥

४६२ महारतिः ॐ जो भगवत् सम्बन्धी परम आसक्ति अथवा अनन्त रतियोंकी कारण-स्वरूपा हैं।

४६३ महालक्ष्मी ॐ जो अपने अंशसे अनन्त लक्ष्मियोंको प्रकट करती हैं।

४६४ महाविद्यास्वरूपिणी ॐ जो समस्त विद्याओंकी आधार भूता हैं।

४६५ महाशक्तिः ॐ जो समस्त शक्तियोंकी कारण-स्वरूपा हैं।

४६६ महाश्रेष्ठा ॐ जो सभी श्रेष्ठ सज्जन पुरुषोंकी श्रेष्ठताकी आधार स्वरूपा है।

४६७ महाश्लाघ्ययशोऽन्विता ॐ जो भगवान् श्रीरामजीके द्वारा प्रशंसनीय यशसे युक्त हैं ॥८८॥

महासिद्धिर्महासेव्या महासौभाग्यदायिनी ।
महाहविर्महार्हार्हा महिष्ठात्मा महीयसी ॥८९॥

४६८ महासिद्धिः ॐ जिनकी प्राप्तिसे बढ़कर कोई सिद्धि नहीं है अर्थात् जो सर्वोत्कृष्ट सिद्धि-स्वरूपा हैं।

४६९ महासेव्या ॐ जो श्रीचन्द्रकलाजी श्रीचारुशीलाजी आदि नित्य, दिव्य महाशक्तियोंके द्वारा ही नित्य सेवित होने योग्य हैं, अथवा जिनसे बढ़कर कोई भी आराधना का पात्र नहीं हैं।

५०० महासौभाग्यदायिनी ॐ जो प्रसन्न होकर भक्तोंको नित्य असीम-सौभाग्य सम्पन्न सच्चिदानन्द-घन विग्रह प्रभु श्रीरामजीको भी, दे डालती हैं।

५०१ महाहविः ॐ जो यज्ञमें हवन के लिये दी जाती हुई महा (उत्कृष्ट) हवि स्वरूपा हैं। अथवा जिनकी शरणरूपी अग्निमें जीव ही हवि स्वरूप बनता है।

५०२ महार्हार्हा ॐ जो परम पूजनीया उमा, रमा, ब्रह्माणी आदि महाशक्तियोंके द्वारा भी पूजने योग्य हैं।

५०३ महिष्ठात्मा ॐ अनेक भक्तोंके विभिन्न प्रकारके भावोंकी पूर्त्ति के लिये अत्यन्त भक्त वत्सलताके कारण, जो अपने मङ्गलमय विग्रहसे इस पृथ्वी तल पर विराजमान होती हैं।

५०४ महीयसी ॐ जो जगत्में सबसे बड़े पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि पञ्च तत्त्वों से भी बहुत बड़ी हैं ॥८९॥

महीशजा महोत्कर्षा महोत्साहा महोदया ।
महोदारा महेशादिसमालम्ब्याङ्घ्रिपङ्कजा ॥९०॥

५०५ महीशजा ❀ जो पृथ्वीपति श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी यज्ञभूमिसे प्रकट होनेके नाते उनकी पुत्री कहाती हैं ।

५०६ महोत्कर्षा ❀ जिनकी महिमा सबसे बढ़कर हैं ।

५०७ महोत्साहा ❀ जो आश्रित रक्षणमें सबसे अधिक उत्साह गुण युक्ता हैं ।

५०८ महोदया ❀ लोक-कल्याणार्थ जिनके वात्सल्य, औदार्य (उदारता) क्षमा आदि गुणोंकी सबसे अधिक उन्नति है ।

५०९ महोदारा ❀ जिनके समान कोई उदार नहीं है ।

५१० महेशादिसमालम्ब्याङ्घ्रिपङ्कजा ❀ भगवत् प्राप्तिके लिये जिनके श्रीचरण-कमलोंका अवलम्बन लेना भगवान् शङ्करजी आदि महायोगियोंके लिये भी परम आवश्यक है, फिर इतर प्राणियोंके लिये कहना ही क्या ?॥९०॥

माता समस्त जगतां माधुरीजितमाधुरी ।
मान्यपरमसम्मान्या मा मितकोकिलस्वना ॥९१॥

५११ माता समस्तजगतां ❀ जो समस्त चर-अचर प्राणियोंकी वास्तविक (असली) माता हैं ।

५१२ माधुरीजितमाधुरी ❀जो अपने सौन्दर्यसे सुन्दरताको भी लज्जित करती हैं ।

५१३ मान्यपरमसम्मान्या ❀ मान्य देव, ऋषि, योगि, सिद्ध आदिकोंसे उत्कृष्ट, इन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा विष्णु आदिके द्वारा भी जो परम सम्मान पानेके योग्य हैं ।

५१४ मा ❀जो श्रीलक्ष्मी स्वरूपा है ।

५१५ मितकोकिलस्वना ❀ जिनकी बोली कोयलके समान सुरीली और प्रयोजन मात्र है ॥९१॥

मिथिलेशकृतूद्भूता मिथिलेश्वरनन्दिनी ।
मीनाक्षी मुक्तिवरदा मुनिसेव्यपदाम्बुजा ॥९२॥

५१६ मिथिलेशक्रतूद्भूता ❀ जो श्रीमिथिलेशजी महाराजके यज्ञसे प्रकट हुई हैं ।

५१७ मिथिलेश्वरनन्दिनी ❀ जो अपनी बाललीलाओंके द्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजको परम आनन्द देने वाली हैं ।

५१८ मीनाक्षी ❀ जिनके विशाल नेत्र भक्तोंको भावपूर्ण चेष्टाओंको देखनेके लिये मछलीके नेत्रों के समान चञ्चल बने रहते हैं।

५१९ मुक्तिवरदा ❀ जो अपने आश्रित चेतनोंको पञ्च (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) विषयोंसे निवृत्तिरूपा मुक्तिका वर देने वाली हैं।

५२० मुनिसेव्यपदाम्बुजा ❀ जिनके श्रीचरण कमलोंकी सेवा करना मुनियोंका भी कर्त्तव्य है ॥९२॥

मुनीन्द्रावर्ण्यमहिमा मूलप्रकृतिसंज्ञिता ।
मृगनेत्रा मृगाङ्काभवदना मृदुभाषिणी ॥९३॥

५२१ मुनीन्द्रावर्ण्यमहिमा ❀ जिनकी महिमाको भगवान् श्रीव्यासजी, श्रीवाल्मीकिजी, श्रीअगस्त्यजी, श्रीलोमशजी श्रीनारदजी आदि बड़े बड़े मुनिराज भी वर्णन करनेको समर्थ नहीं हैं।

५२२ मूलप्रकृतिसंज्ञिता ❀ जिनका नाम मूलप्रकृति भी है।

५२३ मृगनेत्रा ❀ जिनके नेत्र हरिणके नेत्रोंके समान विशाल और हृदयाकर्षक है।

५२४ मृगाङ्काभवदना ❀ जिनका श्रीमुखारविन्द पूर्णचन्द्रमाके समान शीतल प्रकाश युक्त परम आह्लादकारी है।

५२५ मृदुभाषिणी ❀ जो बड़ी ही कोमल वाणी बोलती हैं ॥९३॥

मृदुला मृदुलाचारा मृदुसम्मोहनेक्षणा ।
मृदुस्वभावसम्पन्ना मृद्वी मेधसमुद्भवा ॥९४॥

५२६ मृदुला ❀ जो अपने उपासकोंमें भी कोमलता भर देती हैं।

५२७ मृदुलाचारा ❀ जिनके सभी आचरण (व्यवहार) अत्यन्त कोमल हैं।

५२८ मृदुसम्मोहनेक्षणा ❀ जिनके दर्शनासे कोमलता भी परम मूर्छाको प्राप्त होती है।

५२९ मृदुस्वभावसम्पन्ना ❀ जो आश्रितोंके अपराधोंको नहीं देखती अर्थात् जिनका स्वभाव अत्यन्त कोमल है।

५३० मृद्वी ❀ जिनका सब कुछ अत्यन्त कोमल है अर्थात् जो कोमलताका स्वरूप ही हैं।

५३१ मेधसमुद्भवा ❀ जो श्रीमिथिलेशजी महाराजकी यज्ञभूमिसे प्रकट हुई हैं अथवा जो समस्त यज्ञोंकी कारण स्वरूपा हैं ॥९४॥

मेधेशी मैथिली मोदवर्षिणी मौढ्यभञ्जिका ।
यतचित्तेन्द्रियग्रामा युक्ता युक्तात्मभाविता ॥६५॥

५३२ मेधेशी ※ जो समस्त यज्ञोंकी स्वामिनी है ।

५३३ मैथिली ※ जो मिथिवंश उजागरी तथा श्रीमिथिलेशजी महाराजकी राजदुलारी हैं ।

५३४ मोदवर्षिणी ※ जो भक्तोंके लिये निरन्तर आनन्दकी वर्षा करने वाली है ।

५३५ मौढ्यभञ्जिका ※ जो आश्रितोंकी मूढ़ताको नष्टकर देती हैं ।

५३६ यतचित्तेन्द्रियग्रामा ※ जो भक्तोंके भरण, पोषण, तथा सुरक्षाके लिये चित्त और इन्द्रियोंको सदैव अपने अधीन रखती हैं ।

५३७ युक्ता ※ जो परम निपुण और सब प्रकारसे सम्पन्न है ।

५३८ युक्तात्मभाविता ※ अपने मनको पूर्णस्वाधीन रखने वाले योगिजन जिनकाध्यान करते हैं।६५॥

योगदा योगनिलया योगस्था योगिनां गतिः ।
योगिनां समुपालम्भ्या योगिराजप्रियात्मजा ॥६६॥

५३९ योगदा ※ जो आश्रित जीवोंको अपनी निर्हेतुकी कृपा द्वारा प्रभुसे मिलन करा देती हैं ।

५४० योगनिलया ※ जो सम्पूर्ण योगोंकी आधार-स्वरूपा है ।

५४१ योगस्था ※ जो, जीवोंको भगवत् प्राप्तिके उपायमें लगाती रहती हैं ।

५४२ योगिनां गतिः ※ जो भगवत्-सम्बन्धी चेतनोंके प्राप्त करने योग्य है अथवा जो प्रभुसे मिलने के लिये चल पड़े हैं, उन सौभाग्यशाली जीवोंकी जो एकमात्र उपाय स्वरूपा हैं ।

५४३ योगिनां समुपालम्भ्या ※ भगवत् प्राप्ति चाहने वाले चेतनोंको जिनकी कृपाका आश्रय लेना नितान्त आवश्यक है ।

५४४ योगिराजप्रियात्मजा ※ जो योगिराज श्रीमिथिलेशजी महाराज की प्राणप्यारी पुत्री हैं ॥ ६६ ॥

रक्तोत्पललसद्धस्ता रघुनन्दनवल्लभा ।
रघुनाथस्वभावज्ञा रघुवीरसुखेरता ॥६७॥

५४५ रक्तोत्पललसद्धस्ता ※ जिनके हस्तारविन्दमें लालकमल सुशोभित हैं अर्थात् जो प्रफुल्लित कमल को अपने हस्त कमलमें लेकर, उसीके समान प्रत्येक अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितिमें भक्तोंको, खिले रहनेका ही मौन-उपदेश प्रदान कर रही हैं ।

५४६ रघुनन्दनवल्लभा ॐ जो रघुवंशियों को वात्सल्य जनित विशेष आनन्द प्रदान करने वाले प्राणप्यारे श्रीराघवेन्द्र सरकार की प्राणप्रियतमा हैं।

५४७ रघुनाथस्वभावज्ञा ॐ जो समस्त जीवोंके स्वामी श्रीरामभद्र जूके स्वभाव को भली भाँति जानती हैं।

५४८ रघुवीरसुखेरता ॐ जो प्राणप्यारे रघुकुलवीर श्रीरामभद्र जूको सुख पहुँचाने में सदैव संलग्न रहती हैं ॥६७॥

रतिसौन्दर्यदर्पघ्नी रतीशेड्डाहरस्मृतिः ।
रविमण्डलमध्यस्था रविवंशेन्दुहृत्स्थिता ॥९८॥

५४९ रतिसौन्दर्यदर्पघ्नी ॐ जो अपने सौन्दर्यबिन्दुसे रतिके महान् सुन्दरता-जनित अभिमानको दूर करती हैं।

५५० रतीशेड्डाहरस्मृतिः ॐ जिनके स्मरण मात्रसे कामचेष्टा लुट जाती है।

५५१ रविमण्डलमध्यस्था ॐ जो सूर्यमण्डलमें भगवान् श्रीरामजीके सहित विराज रही हैं।

५५२ रविवंशेन्दुहृत्स्थिता ॐ जो सूर्यवंश रूपी चकोरको पूर्णचन्द्रके समान परमआह्लादित करने वाले प्रभु श्रीरामजीके हृदयकमलमें विराज रही हैं ॥६८॥

रसज्ञा रसभावज्ञा रसानन्दविवर्धिनी ।
रमणीयगुणग्राता रमाराध्या रमालया ॥६६॥

५५३ रसज्ञा ॐ जो सभी रसोंकी पूर्ण जानकारी रखती हैं अथवा सभी भक्त अपनी अपनी इच्छा के अनुसार अनेक प्रकारसे जिसका आस्वादन करते हैं, उस रस (सच्चिदानन्दघन ब्रह्म) को जो हर प्रकारसे जानती हैं।

५५४ रसभावज्ञा ॐ जो रसरूप भगवान श्रीरामजीकी (सभी चेष्टाओंके) भावोंका तात्पर्य जानती हैं।

५५५ रसानन्दविवर्द्धिनी ॐ जो अपने श्रीचरणस्पर्श, बाललीला, तथा क्षमादि लोकोत्तर गुणोंके द्वारा पृथ्वीके आनन्दको बढ़ाती रहती हैं।

५५६ रमणीयगुणग्रामा ॐ जिनके सभी गुण समूह अत्यन्त मनोहर हैं।

५५७ रमाराध्या ॐ श्रीलक्ष्मीजीकोभी जिनकी उपासना करना कर्त्तव्य है।

५५८ रमालया ॐ जिनमें अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सभी लक्ष्मियाँ निवास करती हैं ॥६६॥

रम्यरम्यनिधी रम्याशेषा रसमयाकृतिः ।
रसापुत्री रसासक्ता रसिकानां परागतिः ॥१००॥

५५९ रम्यरम्यनिधिः * जो मनोहरसे मनोहर, सुन्दरसे सुन्दर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि की भण्डार हैं।

५६० रम्याशेषा * जिनका नाम, रूप, लीला, धाम तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सब कुछ मनोहर है।

५६१ रसमयाकृतिः * जिनका आकार रस (सच्चिदानन्दघन ब्रह्म) मय है अथवा सभी रसोंकी जो साकार विग्रह हैं।

५६२ रसापुत्री * जो पृथिवीसे प्रकट होनेके नाते उसकी पुत्री कही जाती है।

५६३ रसासक्ता * जो रसस्वरूप भगवान् श्रीरामजीमें परम आसक्त हैं अथवा जिनके प्रति भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकार भी परम आसक्ति रखते हैं।

५६४ रसिकानां परागतिः * जो रसस्वरूप भगवान् श्रीरामजीके उपासकोंकी परम आधार तथा रक्षा करने वाली है ॥१००॥

रसिकेन्द्रप्रिया राकाधिपपुञ्जनिभानना ।
राघवेन्द्रप्रभावज्ञा राधा रासरसेश्वरी ॥१०१॥

५६५ रसिकेन्द्रप्रिया * जो भक्तोंको अपना स्वामी मानने वाले भगवान् श्रीरामजीकी प्राणप्यारी हैं

५६६ राकाधिपपुञ्जनिभानना * जिनका श्रीमुखारविन्द शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रमाके समान शीतल प्रकाशमय, परम आह्लादकारी है।

५६७ राघवेन्द्रप्रभावज्ञा * जो श्रीराघवेन्द्र सरकारकी महिमाको हर प्रकारसे जानती हैं।

५६८ राधा * जो आश्रितोंके लौकिक तथा पारलौकिक सभी प्रकारके हितकर मनोरथोंकी पूर्ति करती हैं।

५६९ रासरसेश्वरी * जो भगवान् श्रीरामजीके आनन्द-भण्डारकी स्वामिनी हैं अर्थात् जिनकी कृपासे ही प्राणियोंको भगवद् चिन्तन, मनन, श्रवण, कीर्तन, सेवादि जनित आनन्दकी अनुभूति प्राप्त होती है ॥१०१॥

रासलीलाकलापज्ञा रासानन्दप्रदायिनी ।
रासेशी रूपदाक्षिण्यमण्डिता लक्ष्मणार्चिता ॥१०२॥

५७० रसलीलाकलापज्ञा ॐ जो भगवान् श्रीरामजीकी लीलाओं का यथार्थ तात्पर्य जानती हैं।

५७१ रसानन्दप्रदायिनी ॐ जो अपने आश्रितोंको रसस्वरूप भगवान् श्रीरामजीके दिव्य धाम-निवासी भक्तोंका आनन्द प्रदान करती हैं।

५७२ रासेशी ॐ जो वात्सल्यभाव की पराकाष्ठाके कारण भक्तोंके शासनमें रहती हैं।

५७३ रूपदाक्षिण्यमण्डिता ॐ जो निरतिशय (सबसे बढ़कर) सौन्दर्य तथा चतुराईसे विभूषित हैं।

५७४ लक्ष्मणार्चिता ॐ जो यूथेश्वरी सखी श्रीलक्ष्मणाजीसे पूजित हैं अथवा श्रीलखनलालजी जिनका नित्यपूजन करते हैं ॥१०२॥

ललनादर्शचरिता ललनाधर्मदीपिका ।
ललामैकनामरूपलीलाधामगुणादिका ॥१०३॥

५७५ ललनादर्शचरिता ॐ जिनके चरित्र पतिव्रता स्त्रियोंके लिये आदर्श रूप हैं।

५७६ ललनाधर्मदीपिका ॐ जो स्त्रियोंके (पातिव्रत्य) धर्मपर दीपकके समान प्रकाश डालने वाली हैं।

५७७ ललामैकनामरूपलीलाधामगुणादिका ॐ जिनका नाम रूप, लीला, धाम, गुण समूहादि सब कुछ निरुपम सुन्दर है ॥१०३।

ललिताम्भोजपत्राक्षी ललिताशेषचेष्टिता ।
लावण्यजितपाथोधिर्लोकृतिर्लीनरक्षिका ॥१०४॥

५७८ ललिताम्भोजपत्राक्षी ॐ कमलदलके समान जिनके निरालेनेत्र हैं।

५७९ ललिताशेषचेष्टिता ॐ जिनकी सभी चेष्टायें अत्यन्त मनोहर हैं।

५८० लावण्यजितपाथोधिः ॐ जो अपनी सुन्दरताकी अगाधतासे समुद्र को जीत लिये हैं।

५८१ लाकृतिः ॐ जो समस्त ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीरामजीकी लक्ष्मी स्वरूपा हैं।

५८२ लीनरक्षिका ॐ जो भावमग्न भक्तोंकी स्वयं रक्षा करती हैं ॥१०४॥

लीलाभूमाधवप्रेष्ठा लोककल्याणतत्परा ।
लोकत्रयमहाराज्ञीलोकमृग्याङ्घ्रिपङ्कजा ॥१०५॥

५८३ लीलाभूमाधवप्रेष्ठा ॐ जो श्री, भू, लीलादेवीके पति भगवान् श्रीरामजीकी परमप्यारी हैं।

५८४ लोककल्याणतत्परा ॐ जो प्राणियोंके वास्तविक कल्याण साधनमें तत्पर रहती हैं।

५८५ लोकत्रयमहाराज्ञी ॐ जो तीनों लोकोंकी महारानी हैं।

५८६ लोकमूर्ग्याड घ्रिपङ्कजा * ब्रह्मा, विष्णु, महेशोंको भी जिनके श्रीचरणकमलोंकी खोज करना आवश्यक कर्त्तव्य है ॥१०५॥

लोकज्ञा लोशरणं लोकपावनपावनी ।
लोकप्रगीतमहिमा लोकानुत्तमदर्शना ॥१०६॥

५८७ लोकज्ञा * जो तीनों लोकोंका ज्ञान रखती है ।

५८८ लोकशरणम् * जो सभीकी वास्तविक रक्षा करने वाली है ।

५८९ लोकपावनपावनी * जो लोकको पवित्र करने वाले तीर्थोंको भी अपने भक्तोंके चरणस्पर्शसे पवित्र बनाने वाली हैं ।

५९० लोकप्रगीतमहिमा * ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उत्कर्षता पूर्वक जिनकी महिमाका गान करते हैं ।

५९१ लोकानुत्तमदर्शना * प्राणियोंके लिये जिनका दर्शन सबसे बढ़कर है ॥१०६॥

लोकालयकलापाम्बा लोकोत्पत्यादिकारिणी ।
लोकेशकान्ता लोकेशी लोकैकप्रियकाङ्क्षिणी ॥१०७

५९२ लोकालयकलापाम्बा * जो ब्रह्माण्ड समूहोंकी माता हैं ।

५९३ लोकोत्पत्यादिकारिणी * जो लोककी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करने वाली हैं ।

५९४ लोकेशकान्ता * जो ब्रह्मा, विष्णु, महेशके नियामक भगवान् श्रीरामजीकी प्राणप्यारी हैं ।

५९५ लोकेशी * जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा तीनों लोकों पर शासन करने वाली हैं ।

५९६ लोकैकप्रियकाङ्क्षिणी * जो प्राणियोंका सबसे बढ़कर भला चाहती है ॥१०७॥

लोचनादीन्द्रियव्रातशक्तिसञ्चारकारिणी ।
लोपयित्री लोभहरा लोमशादिकभाविता ॥१०८॥

५९७ लोचनादीन्द्रियव्रातशक्तिसञ्चारकारिणी * जो नेत्रादि सभी इन्द्रियोंमें शक्तिका सञ्चार करती हैं अर्थात् जिनके शक्तिसञ्चार करनेसे ही नेत्रोंमें देखनेकी श्रवणमें सुननेकी, मनमें मनन करने की, बुद्धिमें निश्चय करनेकी शक्ति प्राप्त होती है, जिस इन्द्रियमें शक्तिसञ्चार नहीं किया जाता या बन्द कर दिया जाता है, वह व्यर्थ ही रहती है ।

५९८ लोपयित्री * जो आश्रितोंके सभी पाप और दुःखों को लोप (भायर) कर देती हैं ।

५९९ लोभहरा * जो भक्तोंके हृदयसे सार्वभौम (चक्रवर्ती) इन्द्र, ब्रह्मा आदि के पद का तथा अष्ट सिद्धि, नव निधियों की प्राप्ति का भी लोभ हरण कर लेती हैं ।

६०० लोमशादिकभाविता ❀ चिरञ्जीवी श्रीलोमशजी आदि महर्षि गण जिनका ध्यान करते हैं ॥१०८॥

वत्सरा वत्सलोत्कृष्टा वदान्या वनजेक्षणा ।
वनमालान्विता वभ्री वरणीयपदाश्रया ॥१०९॥

६०१ वत्सरा ❀ जिनमें सभी चर-अचर प्राणियों का निवास है ।

६०२ वत्सलोत्कृष्टा ❀ जो अपराधोंको हृदयमें न रखकर, केवल हितचाहने वाली शक्तियोंमें, सबसे बढ़कर हैं ।

६०३ वदान्या, ❀ जिनके समान कोई उदार नहीं है ।

६०४ वनजेक्षणा ❀ जिनके नेत्र कमल दलके समान विशाल तथा मनोहर हैं ।

६०५ वनमालान्विता ❀ जो वनके पुष्पोंसे गुथी हुई मालाको धारण करती हैं ।

६०६ वभ्री ❀ जो समस्त जीवों का भरण (पालन) करने वाली हैं ।

६०७ वरणीयपदाश्रया ❀ जिनके श्रीचरणारविन्दका आधार ग्रहण करना ही समस्त देह धारियों के लिये कर्त्तव्य है ॥१०९॥

वरदाधिराजकान्ता वरदा वरवर्णिनी ।
वरबोधा वरारोहाभूषिता वर्णनातिगा ॥११०॥

६०८ वरदाधिराजकान्ता ❀ जो अभीष्ट प्रदायक सभी देवोंके सम्राट् (शाहंशाह) की पटरानी हैं ।

६०९ जो ❀ आश्रितोंके सभी अभीष्टको प्रदान करती हैं ।

६१० वरवर्णिनी ❀ जो स्त्रियोंमें लक्ष्मी स्वरूपा हैं ।

६११ वरबोधा ❀ जिनका ज्ञान ही सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है ।

६१२ वरारोहाभूषिता ❀ यूथेश्वरी वरारोहाजीने जिनको शृङ्गार धारण कराया है ।

६१३ वर्णनातिगा ❀ जो वर्णनसे परे हैं अर्थात् चाहे जितना भी वर्णन किया जाय पर जो उससे भी परे ही रहती हैं ॥११०॥

वर्णमाता वर्णश्रेष्ठा वर्णाश्रमविधायिनी ।
वर्णनीयवधूचित्केलिवर्द्धिनी सुखसम्पदाम् ॥१११॥

६१४ वर्णमाता ❀ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि चारो वर्णोंकी कारणस्वरूपा हैं ।

६१५ वर्णश्रेष्ठा ❀ जो चारो वर्णोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण (ब्रह्मोपासक) स्वरूपा है ।

६१६ वर्णाश्रमविधायिनी ॐ जिन्होंने लोक व्यवहारकी सुलभताके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र इन चार आश्रमोंको बनाया है।

६१७ वर्ण्यानवद्यचित्रकेलिः ॐ जिनकी प्रशंसा योग्य, तथा सभी दोषोंसे रहित चित्र (आश्चर्य स्वरूप) लीला वर्णन करने योग्य हैं।

६१८ वर्धिनी सुखसम्पदाम् ॐ जो भक्तोंके वास्तविक सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि करती रहती हैं १११

वशकृद्वशगश्रेष्ठा वश्या वसुप्रदायिनी ।
बहुश्रुता वाच्यकीर्तिर्वारिजासनवन्दिता ॥११२॥

६१९ वशकृत् ॐ जो अपने अगाध प्रेम तथा अनुपम निर्हेतुकी कृपादि दिव्यगुणोंके द्वारा प्यारे श्रीरामजीको वशमें कर चुकी हैं।

६२० वशगश्रेष्ठा ॐ जो निष्कपट भावके द्वारा भक्तोंके वशमें हो जाती हैं।

६२१ वश्या ॐ जिन्हें केवल भावसे ही वशमें किया जा सकता है।

६२२ वसुप्रदायिनी ॐ जो भक्तोंको सब प्रकारकी हित कर सम्पत्ति प्रदान करती हैं।

६२३ बहुश्रुता ॐ जो अपनी स्वाभाविक महिमाके कारण पूर्ण विख्यात हैं।

६२४ वाच्यकीर्तिः ॐ जिनका सुन्दर यश वर्णन ही करने योग्य है।

६२५ वारिजासनवन्दिता ॐ जिन्हें श्रीब्रह्माजी भी प्रणाम करते हैं ॥११२॥

विकल्मषा विचारात्मा विगतेहा विजेतृका ।
विज्ञानदात्री विज्ञानमयाप्राकृतविग्रहा ॥११३॥

६२६ विकल्मषा ॐ जो सब प्रकारके पापोंसे अछूती हैं।

६२७ विचारात्मा ॐ जिनकी बुद्धि कभी भी क्षीण नहीं होती।

६२८ विगतेहा ॐ पूर्ण काम होनेके कारण जो सब प्रकारकी चेष्टाओंसे रहित हैं।

६२९ विजेतृका ॐ जिन्हें अपने बल-बुद्धिसे कोई जीत नहीं सकता।

६३० विज्ञानदात्री ॐ जो आश्रित-चेतनोंको भगवत्-सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान प्रदान करती हैं।

६३१ विज्ञानमयाप्राकृतविग्रहा ॐ जिनका सुन्दरस्वरूप पञ्चभूतोंसे न बना हुआ (दिव्य) विज्ञान-मय है ॥११३॥

विज्ञा विज्वरा विदिता विदिशा विद्ययाऽन्विता ।
विद्यावत्पुङ्गवोत्कृष्टा विधात्री विधिकेतना ॥११४॥

६३२ विज्ञा ॐ जो समस्त प्राणियोंके मन, बुद्धि, चित्तकी क्रियाओंका भी विशेष ज्ञान रखती हैं।

६३३ विज्वरा ॐ जो दैहिक, दैविक तथा मानसिक ज्वरोंसे परे हैं।

६३४ विदिता ॐ जो अपने शक्ति, स्वरूप कीर्त्तिके द्वारा सभीको ज्ञात हैं।

६३५ विदिशा ॐ जो प्राणियोंको उनके कर्मानुसार नाना प्रकारका फल देनेवाली हैं।

६३६ विद्ययाऽन्विता ॐ जो ब्रह्म विद्यासे परिपूर्ण हैं।

६३७ विद्यावत्सुद्धवोत्कृष्टा ॐ जो श्रेष्ठ विद्वानोंमें भी सबसे बढ़कर हैं।

६३८ विधात्री ॐ जो सम्पूर्ण सृष्टिका नियम बनाने वाली हैं।

६३९ विधिकेतना ॐ जो समस्त हितकर विधियोंमें और सम्पूर्ण विधियाँ जिनमें निवास करती हैं ॥ ११४ ॥

विधिदुर्ज्ञेयमहिमा विधुपूर्णमुखाम्बुजा ।
विनयार्हा विनीतात्मा विपक्वात्मा विपद्धरा ॥११५॥

६४० विधिदुर्ज्ञेयमहिमा ॐ जिनकी महिमाको चारो वेदोंके द्वारा भी समझना कठिन है अथवा जगत् पितामह ब्रह्माको भी जिनकी महिमाका ज्ञान प्राप्त होना कठिन है।

६४१ विधुपूर्णमुखाम्बुजा ॐ जिनका श्रीमुखारविन्द पूर्ण चन्द्रमाके समान, हृदयताप-निवारक, परम आह्लादकारी है।

६४२ विनयार्हा ॐ जो सभी देव, मुनि, सिद्ध तथा साधकोंके द्वारा विनय ही करने योग्य हैं।

६४३ विनीतात्मा ॐ जिनका स्वभाव बहुत ही नम्र है।

६४४ विपक्वात्मा ॐ जिनका ज्ञान पूर्ण परिपक्व है।

६४५ विपद्धरा ॐ जो आश्रितोंकी सम्पूर्ण आपत्तियोंको हरण कर लेती हैं ॥११५॥

विमत्सरा विमलार्च्या विमुक्तात्मा विमुक्तिदा ।
विमोहिनी वियन्मूर्तिर्विरतिप्रदचिन्तना ॥११६॥

६४६ विमत्सरा ॐ जिन्हें किसीकी उन्नतिको देखकर ईर्ष्या (डाह) नहीं होती।

६४७ विमलार्च्या ॐ जो यूथेश्वरी सखी श्रीविमलाजीके द्वारा पूजने योग्य हैं।

६४८ विमुक्तात्मा जिनका हृदय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि पञ्चविषयोंसे रहित है।

६४९ विमुक्तिदा ॐ जो अपने आश्रितोंको उपर्युक्त विषयोंसे निवृत्ति प्रदान करती हैं।

६५० विमोहिनी ॐ जो अनायास ही अपने शील स्वभावसे चेतनोंको पूर्ण मुग्ध कर लेती हैं।

६५१ वियन्मूर्तिः ※ जिनका मङ्गलमय विग्रह आकाशतत्वके समान सर्वत्र व्यापक है।

६५२ विरतिप्रदचिन्तना ※ जिनका चिन्तन (स्मरण) वैराग्यको प्रदान करता है ॥११६॥

विरामा विलसत्क्षान्तिर्विबुधर्षिगणार्चिता ।
विवेकपरमाधारा विवेकवदुपासिता ॥११७॥

६५३ विरामा ※ जो समस्त प्राणियोंका विश्रामस्थान हैं अर्थात् जिनको प्राप्त करके प्राणी सब प्रकारसे निश्चिन्त हो जाता है और जब तक नहीं प्राप्त होता भटकता ही रहता है।

६५४ विलसत्क्षान्तिः ※ जिनकी क्षमा समस्त ब्रह्माण्डमें लहलहा रही है।

६५५ विबुधर्षिगणार्चिता ※ देवता तथा ऋषि वृन्द जिनकी पूजा करते हैं।

६५६ विवेकपरमाधारा ※ जो ज्ञानकी सबसे श्रेष्ठ (मुख्य) आधारस्वरूपा हैं।

६५७ विवेकवदुपासिता ※ वास्तविक ज्ञानी जिनकी उपासना करते हैं ॥११७॥

विशदश्लोकसम्पूज्या विशालेन्दीवरेक्षणा ।
विशिष्टात्मा विशेषज्ञा विश्वलीलाप्रसारिणी ॥११८॥

६५८ विशदश्लोकसम्पूज्या ※ जो पवित्र यश वाले भाग्यवानोंके द्वारा सब प्रकारसे पूजनेयोग्य हैं।

६५९ विशालेन्दीवरेक्षणा ※ श्याम कमल दलके समान जिनके विशाल एवं मनोहर नेत्र हैं।

६६० विशिष्टात्मा ※ जिनके मन बुद्धि और चित्तमें एक भगवान् श्रीरामभद्रजू ही सदा निवास करते हैं अथवा जिनकी बुद्धि सबसे बढ़कर है।

६६१ विशेषज्ञा ※ जिनका ज्ञान सबसे बढ़कर है।

६६२ विश्वलीलाप्रसारिणी ※ जो विश्वरूपी लीलाको फैलाने वाली हैं ॥११८॥

विश्वतः पाणिपादास्या विश्वमात्रैकधारिणी ।
विश्वभरणी विश्वात्मा विश्वालयत्रजेश्वरी ॥११९॥

६६३ विश्वतः पाणिपादास्या ※ जिनके हाथ, पैर, मुख श्रवण आदि इन्द्रियाँ चारो ओर हैं अर्थात् जो सब ओर भक्तोंकी रक्षा, भरण-पोषण करती हैं, उनके भक्तिपूर्वक समर्पण किये हुये पदार्थोंको सभी ओरसे ग्रहण करतीहैं तथा उनकी भाव पूर्तिके लिये पूजा तथा प्रणामादि स्वीकार करती हैं, उनकी की हुई प्रार्थनाको जो सभी ओरसे श्रवण करती हैं।

६६४ विश्वमात्रैकधारिणी ※ जो शेष रूपसे विश्वमात्रको सबसे मुख्य धारण करने वाली हैं।

६६५ विश्वभरणी ※ जो विश्वके समस्त प्राणियोंका पालन करती हैं।

६६६ विश्वात्मा ❀ जो समस्त विश्वकी आत्मा हैं अथवा सारा विश्वही जिनका शरीर है।

६६७ विश्वालयब्रह्मेश्वरी ❀ जो ब्रह्माण्ड समूहों पर शासन करने वाली हैं॥११९॥

विश्वासरूपा विश्वेषां साक्षिणी विस्तृतोत्तमा।
वीणावाणी वीतभ्रान्ति र्वीतरागस्मयादिका ॥१२०॥

६६८ विश्वासरूपा ❀ जो विश्वास स्वरूपसे प्राणियोंके हृदयमें प्रकट होकर पूर्ण निर्भयता प्रदान करती हैं।

६६९ विश्वेषां साक्षिणी ❀ जो समस्त प्राणियोंके कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मोंकी साक्षिणी (गवाह) स्वरूपा है।

६७० विस्तृतोत्तमा ❀ जो सभी आकाश, वायु आदि व्यापक तत्त्वोंसे उत्तम हैं।

६७१ वीणावाणी ❀ जिनकी बोली वीणाके शब्दके समान सुमधुर है।

६७२ वीतभ्रान्तिः ❀ जिन्हें कभी भी किसी प्रकार का धोखा नहीं होता।

६७३ वीतरागस्मयादिका ❀ जिनमें किसी प्रकारकी आसक्ति और अभिमान आदि कोई भी विकार नहीं हैं॥१२०॥

वीतशङ्कसमाराध्या वीतसम्पूर्णसाध्वसा।
बुधाराध्याङ्घ्रिकमला वृषपा वेदकारणम् ॥१२१॥

६७४ वीतशङ्कसमाराध्या ❀ जो अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान हो जानेके कारण समस्त शङ्काओं से रहित साधकों द्वारा ही भली भाँति सेवित होनेको सुलभ हैं।

६७५ वीतसम्पूर्णसाध्वसा ❀ सब विकारोंसे रहित और पूर्णकाम होनेके कारण जिन्हें किसीका किसी प्रकारका भी कोई भय नहीं है।

६७६ बुधाराध्याङ्घ्रिकमला ❀ आत्मज्ञानियोंके लिये जिनके श्रीचरण-कमल ही एक उपासनाके योग्य हैं।

६७७ वृषपा ❀ जो सनातन धर्म की रक्षा करने वाली हैं।

६७८ वेदकारणम् ❀ जो चारों वेदोंकी कारण स्वरूपा हैं॥१२१॥

वेदगा वेदनिःश्वासा वेदप्रणुतसम्भवा।
वेदप्रतिपाद्यतत्वा वेदवेदान्तकोविदा ॥१२२॥

६७९ वेदगा ❀ जो सम्पूर्ण वेदोंमें व्याप्त हैं अथवा जो सामवेद का गान करने वाली हैं।

६८० वेदनिःश्वासा ॥ वेद जिनके श्वास स्वरूप हैं।

६८१ वेदप्रस्तुतवैभवा ॥ वेद भगवान् जिनके ऐश्वर्य की स्तुति करते हैं।

६८२ वेदप्रतिपाद्यतत्त्वा ॥ जिनके तत्त्वको वर्णन करनेमें कुछ वेद भगवान् ही समर्थ हैं अथवा वेदों के वर्णन करने योग्य एक जिनका परतत्त्व ही है।

६८३ वेदवेदान्तकोविदा ॥ जो वेद और वेदान्त (उपनिषदों) के तात्पर्य को भली भाँति जानती हैं ॥१२२॥

वेदरक्षाविधानज्ञा वेदसारमयाकृतिः।
वेदान्तवेद्या वेदान्ता वैदेही वैभवार्णवा ॥१२३॥

६८४ वेदरक्षाविधानज्ञा ॥ जो वेदों की रक्षा का उपाय स्वयं जानती हैं।

६८५ वेदसारमयाकृतिः ॥ जो वेदसार (ब्रह्मविद्या) स्वरूपा है।

६८६ वेदान्तवेद्या ॥ जिन्हें वेदान्त के द्वारा ही कुछ समझा जा सकता है।

६८७ वेदान्ता ॥ जो वेदान्त स्वरूपा हैं।

६८८ वैदेही ॥ ब्रह्मलीनताके कारण देह की सुधि बुधि रहित श्रीविदेह महाराज के वंशमें जिनका प्राकट्य है।

६८९ वैभवार्णवा ॥ जिनका ऐश्वर्य समुद्रके समान अथाह है ॥१२३॥

वक्रचिकुरा वक्रभ्रूर्वक्राकर्षणवीक्षणा।
शक्तिव्रजेश्वरी शक्तिः शतमूर्तिः शतोदिता ॥१२४॥

६९० वक्रचिकुरा ॥ जिनके मनोहर घुंघराले केश हैं।

६९१ वक्रभ्रूः ॥ जिनकी भौंहें काम धनुषके समान मनोहर और टेढ़ी हैं।

६९२ वक्राकर्षणवीक्षणा ॥ जिनकी कृपापूर्ण कटाक्ष सभी प्राणियोंके हृदयको सहजहीमें आकर्षित कर लेती है।

६९३ शक्तिव्रजेश्वरी ॥ जो अपने इच्छानुसार शक्ति-समूहोंको विभिन्न प्रकारके कर्त्तव्योंमें नियुक्त करने वाली हैं।

६९४ शक्तिः ॥ जो ब्रह्मकी पूर्णशक्ति-स्वरूपा हैं।

६९५ शतमूर्तिः ॥ जिनके स्वरूप हजारों हैं अर्थात् जो चर-अचरके सम्पूर्ण आकार वाली हैं।

६९६ शतोदिता ॥ असङ्ख्यों भक्त जिनकी महिमाका निरन्तर वर्णन करते हैं ॥१२४॥

शब्दब्रह्मातिगा शब्दविग्रहा शमदायिनी ।
शमिताश्रितसंक्लेशा शमिभक्त्याशुतोपिता ॥१२५॥

६९७ शब्दब्रह्मातिगा ❀ जो वेदोंसे परे हैं अर्थात् जिनका यथार्थ वर्णन भगवान् वेद भी नहीं कर सकते ।

६९८ शब्दविग्रहा ❀ जो सम्पूर्ण शब्द स्वरूपा है।

६९९ शमदायिनी ❀ जो आश्रितोंके मनको शान्ति (स्थिरता) प्रदान करने वाली हैं।

७०० शमिताश्रितसंक्लेशा ❀ जो आश्रितोंके समस्त कष्टोंको निवृत्त कर देती हैं।

७०१ शमिभक्त्याशुतोपिता ❀ जो एकाग्र चित्तवाले भक्तोंकी आसक्तिसे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाती हैं ॥१२५॥

शम्पादामोल्लसत्कान्तिः शम्प्रदध्यानसंस्तवा ।
शम्मयाशेषकैङ्कर्या शरणं सर्वदेहिनाम् ॥१२६॥

७०२ शम्पादामोल्लसत्कान्तिः ❀ बिजुलीकी मालाके समान चमकती हुई जिनके श्रीअङ्गकी कान्ति है ।

७०३ शम्प्रदध्यानसंस्तवा ❀ जिनका ध्यान तथा स्तोत्र दोनों ही परम मङ्गलदायी हैं।

७०४ शम्मयाशेषकैङ्कर्या ❀ जिनकी सभी प्रकारकी सेवा मङ्गलमयी है।

७०५ शरणं सर्वदेहिनाम् ❀ जो समस्त देहधारियोंकी रक्षा करनेको समर्थ हैं तथा जो सबकी मुख्य निवास स्थान हैं ॥१२६॥

शरणागतसंत्रात्री शरण्यैकाऽसुधारिणाम् ।
शबरीमानदप्रेष्ठा शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥१२७॥

७०६ शरणागतसंत्रात्री ❀ जो शरणमें आये हुये प्राणियोंकी पूर्ण रक्षा करने वाली हैं।

७०७ शरण्यैकाऽसुधारिणाम् ❀ जो प्राणियोंकी सबसे बढ़कर रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ हैं।

७०८ शबरीमानदप्रेष्ठा ❀ जो शबरी मइयाको प्रतिष्ठा देने वाले प्रभु श्रीरामजीकी परम प्यारी हैं।

७०९ शान्ता ❀ जो परम शान्ति-स्वरूपा हैं।

७१० शान्तिप्रदायिनी ❀ जो उपासकोंको निष्कामता प्रदान करके परम शान्ति प्रदान करती हैं१२७

शाश्वतचिन्तनीयाङ्घ्रिकमला शाश्वतस्थिरा ।
शाश्वती शासिकोत्कृष्टा शिरोधार्यकराम्बुजा ॥१२८॥

७११ शाश्वतचिन्तनीयाङ्घ्रिकमला ❀ प्राणियोंको जिनके श्रीचरणकमलोंका चिन्तन निरन्तर ही करना चाहिये।

७१२ शाश्वतस्थिरा ❀ जो अपने वास्तविक (ब्रह्म) स्वरूपसे सदा ही स्थिर रहती हैं अर्थात् कभी परिवर्त्तनको नहीं प्राप्त होती।

७१३ शाश्वती ❀ जो सदा ही एकरस रहने वाली है।

७१४ शासिकोत्कृष्टा ❀ जो शासन करने वाली सभी शक्तियोंमें उत्तम हैं।

७१५ शिरोधार्यकराम्बुजा ❀ मनुष्य जीवनकी सफलताके लिये, जिनके हस्त-कमल शिर पर धारण करनेका सौभाग्य प्राप्त कर लेना परम आवश्यक कर्त्तव्य है ॥१२८॥

शिशिरा शीलसम्पन्ना शुचिगम्याङ्घ्रिचिन्तना।
शुचिप्राप्यपदासक्तिः शुद्धान्तःकरणालया ॥१२९॥

७१६ शिशिरा ❀ जो भक्तोंके दैहिक, दैविक तथा मानसिक तापोंको हरण करनेके लिये शिशिर ऋतु (माघ फाल्गुन) के समान है।

७१७ शीलसम्पन्ना ❀ जिनका स्वभाव अत्यन्त सुन्दर है।

७१८ शुचिगम्याङ्घ्रिचिन्तना ❀ जिनके श्रीचरणकमलोंका चिन्तन विकार रहित साधकोंके लिये ही सुलभ है।

७१९ शुचिप्राप्यपदासक्तिः ❀ जिनके श्रीचरण-कमलोंकी आसक्ति विकार रहित साधकको ही प्राप्त होती है।

७२० शुद्धान्तःकरणालया ❀ जो शुद्ध (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी आसक्ति रूपी मलिनतासे रहित भाग्यशालियों) के ही अन्तः करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) में सदा निवास करती हैं ॥१२९॥

शुद्धा शुद्धिप्रदध्याना शूलत्रयनिवारिणी।
शैलराजसुतादीप्टा शोभासागरसत्कृता ॥१३०॥

७२१ शुद्धा ❀ जो माया (अज्ञान) रूपी मलसे रहित हैं।

७२२ शुद्धिप्रदध्याना ❀ जिनका ध्यान हृदयमें निर्विकारिता अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धमें वैराग्य प्रदान करता है।

७२३ शूलत्रयनिवारिणी ❀ जो दैहिक दैविक तथा मानसिक तीनों प्रकारकी शूल (पीड़ाओंको) भगा देती हैं।

७२४ शैलराजसुतादीष्टा ❀ जो भगवती श्रीपार्वतीजी आदि महाशक्तियोंकी इष्ट देवता हैं।

७२५ शोभासागरसत्कृता ❀ श्रीअङ्गकी असीम, अकथनीय सुन्दरतासे मुग्ध हो भगवान् श्रीरामजी भी जिनका पूर्ण सत्कार करते हैं ॥१३०॥

शौर्यपाथोनिधिः श्यामा श्रयणीयपदाम्बुजा ।
श्रवणीययशोगाथा श्रीकरी श्रीप्रदायिनी ॥१३१॥

७२६ शौर्यपाथोनिधिः ❀ जिनका बल-पराक्रम समुद्रके समान अथाह है।

७२७ श्यामा ❀ जो भक्तोंके सुखार्थ सदैव बारह वर्षकी अवस्थामें रहती हैं।

७२८ श्रयणीयपदाम्बुजा ❀ अपने पूर्ण कल्याण के लिये जिनके श्रीचरणकमलों का सहारा लेना ही प्राणियों का परम कर्त्तव्य है।

७२९ श्रवणीययशोगाथा ❀ इष्ट-प्राप्तिके निमित्त त्याग का आदर्श लेनेके लिये जिनके चरित श्रवण करने योग्य हैं।

७३० श्रीकरी ❀ जो भक्तों की समृद्धि (उन्नति) करने वाली हैं।

७३१ श्रीप्रदायिनी ❀ जो उपासकों को सात्विक सम्पत्ति प्रदान करती हैं ॥१३१॥

श्रीमदुत्तंसमहिता श्रीमयी श्रीमहानिधिः ।
श्रीलक्ष्म्यादिभिः सेव्या श्रीवासा श्रीसमुद्भवा ॥१३२॥

७३२ श्रीमदुत्तंसमहिता ❀ जो ऐश्वर्य वालोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, हरि, हरादिकोंके द्वारा पूजित हैं।

७३३ श्रीमयी ❀ जो सम्पूर्ण शोभा मयी हैं।

७३४ श्रीमहानिधिः ❀ जो राजसी सम्पत्तिकी सबसे बड़ी भण्डार हैं।

७३५ श्रीलक्ष्म्यादिभिः सेव्या ❀ श्रीलक्ष्मीजी आदि महाशक्तियोंको भी जिनकी उपासना कर्त्तव्य है।

७३६ श्रीवासा ❀ जिनमें सम्पूर्ण सुन्दरता निवास करती है।

७३७ श्रीसमुद्भवा ❀ जिनके अंशसे सम्पूर्ण शोभा, सम्पत्ति और गौरव आदिकी उत्पत्ति होती है ॥१३२॥

श्रीः श्रुतिगीतचरिता श्रुत्यन्तप्रतिपादिता ।
श्रेयोगुणेरणा श्रेयोनिधिः श्रेयोमयस्मृतिः ॥१३३॥

७३८ श्रीः ॐ जो ब्रह्मकी सम्पूर्ण श्री स्वरूपा हैं।

७३९ श्रुतिगीतचरिता ॐ भगवान् वेद जिनके चरित्रोंका गान करते हैं।

७४० श्रुत्यन्तप्रतिपादिता ॐ जिनके स्वरूपकी व्याख्या वेदान्तमें की गयी है।

७४१ श्रेयोगुणरेखा ॐ जिनका गुण-गान मङ्गलमय है।

७४२ श्रेयोनिधिः ॐ जो सम्पूर्ण कल्याण की भण्डार हैं।

७४३ श्रेयोमयस्मृतिः ॐ जिनका सुमिरण मङ्गलमय है ॥१३३॥

श्रौत्रियकसमाराध्या श्लक्ष्णसूनृतभाषिणी।
श्लाघनीयमहाकीर्त्तिः श्लीलचारित्रविश्रुता ॥१३४॥

७४४ श्रौत्रियकसमाराध्या ॐ जो वेदका यथार्थ अर्थ समझने वाले विद्वानोंके लिये, सबसे बढ़कर उपासनाके योग्य हैं।

७४५ श्लक्ष्णसूनृतभाषिणी ॐ जो मधुर और यथार्थ बोलती हैं।

७४६ श्लाघनीयमहाकीर्त्तिः ॐ जिनकी कीर्त्ति सबसे अधिक प्रशंसाके योग्य है।

७४७ श्लीलचारित्रविश्रुता ॐ जो अपने मङ्गलकारी चरित्रों से त्रिलोकीमें विख्यात हैं ॥१३४॥

श्लोकलोकार्चिताञ्जाङ्घ्रिः श्वसनाधीशसत्कृता।
श्वेतधामोल्लसद्वक्त्रा षट्चतुर्वस्विलोदिता ॥१३५॥

७४८ श्लोकलोकार्चिताञ्जाङ्घ्रिः ॐ जिनके श्रीचरण-कमल पुण्यशाली लोगोंके द्वारा सदैव पूजित हैं।

७४९ श्वसनाधीशसत्कृता ॐ जो उञ्चासों वायुओंके पति देवराज इन्द्रके द्वारा सत्कारको प्राप्त हैं।

७५० श्वेतधामोल्लसद्वक्त्रा ॐ जिनका श्रीमुखारविन्द चन्द्रमाके समान परमाह्लादकारी तथा मनोहर है।

७५१ षट्चतुर्वस्विलोदिता ॐ जिनका वर्णन छः शास्त्र, चारो वेद और अठारह पुराणों द्वारा किया गया है ॥१३५॥

षडतीता षडाधारा षडर्द्धाचिह्नदिस्थिता।
सखीमण्डलमध्यस्था सगुणा संचयोज्झिता ॥१३६॥

७५२ षडतीता ॐ जो षट् (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) विकारोंसे रहित हैं।

७५३ षड्धारा ❀ जो सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्णयशको भली भांति धारण करने वाली हैं।

७५४ षड्दर्शहृदिस्थिता ❀ जो त्रिनेत्रधारी भगवान् श्रीभोलेनाथजीके हृदयमें इष्ट रूपसे विराज रही हैं।

७५५ सखीमण्डलमध्यस्था ❀ जो अपनी सखियोंके मण्डलमें मध्यस्थ (निष्पक्ष) रूपसे विराजती हैं।

७५६ सगुणा ❀ जो भक्त-सुखार्थ अपनी परम-पावनी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये सम्पूर्ण गुणोंको ग्रहण करती हैं।

७५७ संचयोज्झिता ❀ जिनके रूप, गुण, शक्ति, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि कभी भी क्षीणताको प्राप्त नहीं होते अर्थात् सदैव एक रस अखण्ड बने रहते हैं॥१३६॥

सङ्ख्यातीतगुणा सङ्गमुक्ता सङ्गीतकोविदा ।
सङ्कीर्णप्रणतत्राणा सङ्ग्रहानुग्रहे रता ॥१३७॥

७५८ सङ्ख्यातीतगुणा ❀ जिनके गुण सङ्ख्या (गणनासे) परे अर्थात् अनन्त हैं।

७५९ सङ्गमुक्ता ❀ जिनकी किसी विषयमें आसक्ति नहीं है।

७६० सङ्गीतकोविदा ❀ जो सङ्गीतशास्त्रको भली प्रकारसे जानती हैं।

७६१ सङ्कीर्णप्रणतत्राणा ❀ प्रणाम मात्र करने वाले भक्तों की भी रक्षा करनेके लिये जिनकी प्रतिज्ञा है।

७६२ सङ्ग्रहानुग्रहेरता ❀ जो कर्मानुसार प्राणियोंको दण्ड तथा अनुग्रह रूपी पुरस्कार प्रदान करने में तत्पर रहती हैं॥१३७॥

सख्यशीघ्रसमासाद्या सज्जनोपासिताङ्घ्रिका ।
सतताराध्यचरणा सतीत्वादर्शदायिनी ॥१३८॥

७६३ सख्यशीघ्रसमासाद्या ❀ जो मित्रताके भाव द्वारा प्रसन्न होने में शीघ्र ही सुलभ हैं।

७६४ सज्जनोपासिताङ्घ्रिका ❀ जिनके श्रीचरण-कमलों की उपासना सन्त जन करते हैं।

७६५ सतताराध्यचरणा ❀ जिनके श्रीचरण-कमलों की उपासना निरन्तर ही करना चाहिये।

७६६ सतीत्वादर्शदायिनी ❀ जो पतिव्रताओं के आचरण का आदर्श प्रदान करती हैं॥१३८॥

सतीवृन्दशिरोरत्नं सतीशाजस्त्रभाविता ।
सत्तमा सत्यधर्मैकपालिका सत्यरूपिणी ॥१३९॥

७६७ सतीवृन्दशिरोरत्नं ❀ जो पतिव्रताओंमें सबसे मुख्य है।

७६८ सतीशोजसभाविता ❀ भगवान् श्रीभोलेनाथजी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं।

७६९ सत्तमा ❀ जिनसे बढ़कर कोई है ही नहीं।

७७० सत्यधर्मैकपालिका ❀ जो सत्य तथा धर्म पालन करने वाली शक्तियोंमें सबसे बढ़कर है।

७७१ सत्यरूपिणी ❀ जो सत्य (ब्रह्म) का स्वरूप ही है ॥१३९॥

सत्यसञ्चिन्तना सत्यसन्धा सत्यापतिस्नुषा ।
सत्या सत्रधरागर्भोद्भूता सत्यवदग्रणीः ॥१४०॥

७७२ सत्यसञ्चिन्तना ❀ जिनका ध्यान ही वस्तुतः सत्य (सार) है और सब असार।

७७३ सत्यसन्धा ❀ जिनकी प्रतिज्ञा कभी झूठी होती ही नहीं।

७७४ सत्यापतिस्नुषा ❀ जो अयोध्या नरेश श्रीदशरथजी महाराजकी पुत्रवधू (पतोहू) हैं।

७७५ सत्या ❀ जो भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें सत्य हैं।

७७६ सत्रधरागर्भोद्भूता ❀ जो श्रीमिथिलेशजी महाराजकी यज्ञभूमिके गर्भसे प्रकट हुई हैं।

७७७ सत्यवदग्रणीः ❀ जो पराक्रमियोंमें सबसे बढ़कर हैं ॥१४०॥

सदाचारा सदासेव्या सदृशातीतशेमुषी ।
सनातनी सनानम्या सन्तोषैकप्रदायिनी ॥१४१॥

७७८ सदाचारा ❀ जिनके सभी आचरण सत् हैं।

७७९ सदासेव्या ❀ जिनकी निरन्तर सेवा करना ही प्राणियों का कर्तव्य है।

७८० सदृशातीतशेमुषी ❀ जिनके समान किसीकी भी विशाल बुद्धि नहीं है।

७८१ सनातनी ❀ जो आदि-काल की हैं।

७८२ सनानम्या ❀ जो निरन्तर प्रणाम करने योग्य हैं।

७८३ सन्तोषैकप्रदायिनी ❀ जो दर्शनादि के द्वारा आश्रितोंको सबसे बढ़कर सन्तोष प्रदान करती हैं ॥१४१॥

सन्देहापहरा सन्धिः सन्निषेव्यसमाश्रिता ।
सन्नुत्याशेषचरिता सभ्यलोकसभाजिता ॥१४२॥

७८४ सन्देहापहरा ❀ जो आश्रितोंके हृदयमें उदित हुई सभी शङ्काओंको हरण कर लेती हैं।

७८५ सन्धि ❀ जो सन्धि (अवकाश) स्वरूपा हैं।

७८६ सिन्तपेव्यसमाश्रिता ❀ जिनके आश्रितजन भी तन, मन, धन आदिके द्वारा सब प्रकारसे सेवा करने योग्य हैं।

७८७ सन्तुत्याशेषचरिता ❀ जिनके सम्पूर्ण चरित सब प्रकारसे स्तुति (प्रशंसा) करने योग्य हैं।

७८८ सम्यलोकसमाजिता ❀ सज्जनवृन्द जिन्हें सदैव प्रणाम करते हैं ॥१४२॥

समग्रज्ञानवैराग्यधर्मश्रीयशोनिधिः ।
समग्रैश्वर्यसम्पन्ना समतीतगुणोपमा ॥१४३॥

७८९ समग्रज्ञानवैराग्यधर्मश्रीयशोनिधिः ❀ जो सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण वैराग्य, सम्पूर्ण धर्म सम्पूर्ण श्रीः (सुन्दरतान्तेज), सम्पूर्ण यशकी भण्डार हैं।

७९० समग्रैश्वर्यसम्पन्ना ❀ जो सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी भण्डार हैं।

७९१ समतीतगुणोपमा ❀ जिनके गुणोंकी उपमा नहीं है ॥१४३॥

समदृष्टिः समर्च्यैका समर्थाग्रया समर्थका ।
समविश्वमनोज्ञाङ्गी समवेद्याङ्घ्रिलाञ्छना ॥१४४॥

७९२ समदृष्टिः ❀ जिनकी दृष्टिमें सदैव प्राणप्यारे ही विराजते हैं अथवा समस्त प्राणियोंके प्रति जिनकी समान हितकर दृष्टि है।

७९३ समर्च्यैका ❀ जिनसे बढ़कर कोई पूजने योग्य है ही नहीं।

७९४ समर्थाग्रया ❀ जिनसे बढ़कर कोई समर्थ नहीं।

७९५ समर्थका ❀ जिनसे बढ़कर कोई अभीष्ट पूर्ण करनेवाला नहीं है।

७९६ समविश्वमनोज्ञाङ्गी ❀ जिनके सभी श्रीअङ्ग विश्वभरमें सबसे अधिक मनोहर और सुडौल हैं अर्थात् जहाँ जिस प्रकार होने चाहिये वहाँ उसी प्रकार के हैं।

७९७ समवेद्याङ्घ्रिलाञ्छना ❀ जिनके श्रीचरण-कमलोंके स्वस्तिक, ऊर्ध्व रेखा, कमल, वज्र कुलिश, छत्र, चामर, हल, मूसल सिंहासन, त्रिवली अमृत कुण्ड, सरयू लक्ष्मी, पृथ्वी आदि सभी चिन्ह, वश दर्शन ही करने के योग्य हैं ॥१४४॥

समाकर्ण्ययशोगाथा समादर्शी समाहिता ।
समानात्मा समाराध्या समालम्ब्याङ्घ्रिपङ्कजा ॥१४५॥

७९८ समाकर्ण्ययशोगाथा ❀ (मनुष्य जीवन की सफलताके लिये जिनका यशगान भली भाँति सुनने योग्य है ।

७९९ समाहर्त्री * जो भक्तोंके सम्पूर्ण कष्टोको पूर्ण रूप से हरण कर लेती है अथवा महाप्रलयमें सारी सृष्टि को समेट कर जो अपने आपमें लीन कर लेती हैं।

८०० समाहिता * हित साधन पूर्वक भक्तोंकी सुरक्षा के लिये जो सदैव सावधान रहती है।

८०१ समानात्मा * जो सभी भले बुरे, चर अचर प्राणियो के लिये समान निराकार ब्रह्मकी आत्म स्वरूपा हैं।

८०२ समाराध्या * पूर्णसुख शान्ति के लिये भली भाँति जिनकी उपासना करना ही प्राणियोंका अमोघ-साधन है।

८०३ समालम्ब्याङ्घ्रिपङ्कजा * ससार रूपी अथाह सागरसे पार होनेके लिये जिनके श्रीचरण-कमल रूपी नौका ही सहारा लेने योग्य है ॥१४५॥

समावर्ता समासेव्या समार्हा समितिञ्जया।
समीक्ष्याव्याजकरुणा सविभाव्यसुविग्रहा ॥१४६॥

८०४ समावर्ता * जो ससार रूपी चक्रको भली भाँति घुमाती रहती है।

८०५ समासेव्या * जो जगज्जननी और परमहितकारिणी होनेके कारण, प्राणियोके लिये सम्यक् प्रकारसे सेवा (उपासना)करने योग्य हैं।

८०६ समार्हा * जो अन्तर्यामिनी रूपसे सभीके लिये समान है तथा भगवान श्रीरामजी ही जिनके योग्य वर और जो उनके योग्य दुलहिन हैं।

८०७ समितिञ्जया * जिन्हे सर्वत्र विजय प्राप्त है।

८०८ समीक्ष्याव्याजकरुणा * भगवदानन्द सागरमें गोता लगानेके लिये, सभी प्रकारकी प्रिय-अप्रिय, उपस्थित परिस्थितिया (हालत) मे जिनकी अहैतुकी कृपाका ही उत्तम प्रकारसे अनुसन्धान करना चाहिये।

८०९ सविभाव्यसुविग्रहा * शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचो विषयो पर विजय पानेके लिये जिनके मङ्गलमय सुन्दर विग्रहका ही भली भाँति सदैव ध्यान करना कर्त्तव्य है ॥१४६॥

सरयूपुलिनाक्रीडा सरला सरसेक्षणा।
सर्गस्थित्यन्तप्रदा सर्वकामप्रदायिनी ॥१४७॥

८१० सरयूपुलिनाक्रीडा * जो श्रीसरयूजीके किनारे भक्त-सुखद लीला करती हैं।

८११ सरला * जिनमे किसी प्रकारकी भी कुटिलता नहीं है अर्थात् जो अत्यन्त सीधे स्वभाव वाली हैं।

८१२ सरसेक्षणा ॐ जिनके कमलवत् नेत्र दयालुता रूपी रससे रसीले हैं।

८१३ सर्गस्थित्यन्तग्रभवा ॐ जो जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, तथा संहारकी सबसे मुख्य कारण हैं।

८१४ सर्वकामप्रदायिनी ॐ जो अपने आश्रितोंकी सभी हितकर इच्छाओंको पूर्ण करती हैं।१४७।

सर्वकार्यबुधा सर्वच्छद्मज्ञा सर्वजन्मदा।
सर्वजीवहिता सर्वज्ञानिनां ज्ञेयसत्तमा ॥१४८॥

८१५ सर्वकार्यबुधा ॐ जो सभी प्रकारके कर्त्तव्यों का ज्ञान रखती हैं।

८१६ सर्वच्छद्मज्ञा ॐ जो सबके कपटको भली भाँतिसे जान लेती हैं।

८१७ सर्वजन्मदा ॐ जो सभी जीवों को जन्म देने वाली हैं।

८१८ सर्वजीवहिता ॐ जो सभी जीवमात्र का हित करने वाली हैं।

८१९ सर्वज्ञानिनां ज्ञेयसत्तमा ॐ समस्त ज्ञानियोंके लिये भी, जिनके रहस्यको समझना परमावश्यक है।

८२० सर्वज्ञाननिधिः ॐ जो सम्पूर्ण ज्ञान की निधि (भण्डार) हैं ॥१४८॥

सर्वज्ञाननिधिः सर्वज्ञानवद्भिरुपासिता।
सर्वज्ञा सर्वज्येष्ठादिः सर्वतीर्थमयस्मृतिः ॥१४९॥

८२१ सर्वज्ञानवद्भिरुपासिता ॐ समस्त ज्ञानी जन, जिनका भजन करते हैं।

८२२ सर्वज्ञा ॐ जो सभी प्राणियोंके भूत, भविष्य, वर्तमान के कायिक, वाचिक मानसिक कर्म तथा उनके अनिवार्य फल सुख-दुःख रूप पुरस्कार एवं दण्ड को भली भाँति जानती हैं।

८२३ सर्वज्येष्ठादिः ॐ अवस्थामें, जिनसे बड़ा कोई है ही नहीं।

८२४ सर्वतीर्थमयस्मृतिः ॐ जिनका सुमिरण साढ़े तीन करोड़ तीर्थोंसे अधिक पुण्य-दायक है॥१४९॥

सर्वतोऽक्ष्यास्यहस्ताङ्घ्रिकमला सर्वदर्शना।
सर्वदिव्यगुणोपेता सर्वदुःखहरस्मिता ॥१५०॥

८२५ सर्वतोऽक्ष्यास्यहस्ताङ्घ्रिकमला ॐ विराट् रूप होनेके कारण जिनके नेत्र, मुख, हस्त, चरण-कमल आदि सभी ओर हैं।

८२६ सर्वदर्शना ॐ जो सब जीवोंकी सभी चेष्टाओंको प्रत्येक समय देखती रहती हैं।

८२७ सर्वदिव्यगुणोपेता ॐ जो सम्पूर्ण दया, क्षमा, सौशील्य, वात्सल्य, गाम्भीर्य, औदार्य, आदि दिव्य (अप्राकृत) गुणोंसे युक्त हैं।

८२८ सर्वदुःखहरस्मिता ॐ जिनकी मन्द मुस्कान सम्पूर्ण दुःखोंको हरण कर लेती हैं ॥१५०॥

सर्वदेवनुता सर्वधर्मतत्त्वविदां वरा ।
सर्वधर्मनिधिः सर्वनायकोत्तमनायिका ॥१५१॥

८२९ सर्वदेवनुता ॐ जिनकी सभी देवता स्तुति करते हैं ।
८३० सर्वधर्मतत्त्वविदां वरा ॐ जो सम्पूर्ण धर्मोंका रहस्य समझनेवाली तथा सभी शक्तियोंमें श्रेष्ठ हैं।
८३१ सर्वधर्मनिधिः ॐ जो सम्पूर्ण धर्मोंकी भण्डार हैं ।
८३२ सर्वनायकोत्तमनायिका ॐ जो सम्पूर्ण नायकों (नेताओं) में सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीरामभद्रजूकी पटरानी हैं ॥१५१।

सर्वनीतिरहस्यज्ञा सर्वनैपुण्यमण्डिता ।
सर्वपापहरध्याना सर्वपावनपावनी ॥१५२॥

८३३ सर्वनीतिरहस्यज्ञा ॐ जो सब प्रकारकी नीतियोंका रहस्य (तात्पर्य) भलीभाँति जानती हैं
८३४ सर्वनैपुण्यमण्डिता ॐ जो सब प्रकारकी चतुराईसे अलंकृत हैं ।
८३५ सर्वपापहरध्याना ॐ जिनका ध्यान सम्पूर्ण पापोंको छीन लेता है ।
८३६ सर्वपावनपावनी ॐ जो पवित्र करनेवाली तीर्थों को अपने भक्तोंके चरण-स्पर्श द्वारा पवित्र कर देती हैं ॥१५२॥

सर्वभक्तावनाभिज्ञा सर्वभक्तिमतां गतिः ।
सर्वभावपदातीता सर्वभावप्रपूरिका ॥१५३॥

८३७ सर्वभक्तावनाभिज्ञा ॐ जो सभी भक्तों की रक्षा का उपाय, भली भाँति जानती हैं ।
८३८ सर्वभक्तिमतां गतिः ॐ जो समस्त भक्तों की रक्षा करने वाली हैं ।
८३९ सर्वभाव-पदातीता ॐ जो सभी भावोंके पदसे परे हैं ।
८४० सर्वभाव-प्रपूरिका ॐ जो आश्रितोंके सभी हितकर भावों की पूर्ति करती हैं ॥१५३॥

सर्वभुक्तिप्रदोत्कृष्टा सर्वभूतहिते रता ।
सर्वभूताशयाभिज्ञा सर्वभूतासुधारिणी ॥१५४॥

८४१ सर्वभुक्तिप्रदोत्कृष्टा ॐ हितकर भोगोंका प्रदान करने वाली शक्तियोंमें, जो सबसे बढ़कर हैं।
८४२ सर्वभूतहिते रता ॐ जो समस्त प्राणियोंके वास्तविक हितकर साधनमें सदैव तत्पर रहती हैं
८४३ सर्वभूताशयाभिज्ञा ॐ जो सभी देहधारियोंकी समस्त चेष्टाओंका मनोभाव (मनतव) भली-भाँतिसे जानती हैं ।

८४४ सर्वभूतासुधारिणी ❀ जो सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राणोंको धारण करने वाली हैं ॥१५४॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्या सर्वमण्डनमण्डना ।
सर्वमेधाविनां श्रेष्ठा सर्वमोदमयेक्षणा ॥१५५॥

८४५ सर्वमङ्गलमाङ्गल्या ❀ जो सम्पूर्ण मङ्गलोंकी मङ्गल-स्वरूपा हैं ।
८४६ सर्वमण्डनमण्डना ❀ जो सम्पूर्ण सजावटको सुसज्जित करने वाली हैं ।
८४७ सर्वमेधाविनां श्रेष्ठा ❀ जो बुद्धिमानोंमें सबसे बढ़कर हैं ।
८४८ सर्वमोदमयेक्षणा ❀ जिनकी चितवन तथा दर्शन सम्पूर्ण आनन्द-मय है ॥१५५॥

सर्वमोहच्छिदासक्तिः सर्वमोहनमोहिनी ।
सर्वमौलिमणिप्रेष्ठा सर्वयज्ञफलप्रदा ॥१५६॥

८४९ सर्वमोहच्छिदासक्तिः ❀ जिनके श्रीचरणोंकी आसक्ति-सम्पूर्ण आसक्तियोंको समाप्त कर देती है अर्थात् जिनके प्रति आसक्ति प्राप्त कर लेने पर, संसारके किसी भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी आसक्ति हृदयमें ही रह नहीं जाती है ।

८५० सर्वमोहनमोहिनी ❀ सभी जड़-चेतनोंको मुग्ध करलेने वाले, भगवान् श्रीरामजीको भी जो अपने दयालु स्वभावकी पराकाष्ठासे मुग्ध कर लेती हैं ।

८५१ सर्वमौलिमणिप्रेष्ठा ❀ जो सबके शिरमौर भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारकी प्राणप्यारी हैं ।
८५२ सर्वयज्ञफलप्रदा ❀ जो सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करने वाली हैं ॥१५६॥

सर्वयज्ञव्रतस्नाता सर्वयोगविनिःसृता ।
सर्वरम्यगुणागारा सर्वलक्षणलक्षिता ॥१५७॥

८५३ सर्वयज्ञव्रतस्नाता ❀ जो सम्पूर्ण यज्ञोंको कर चुकी हैं ।
८५४ सर्वयोगविनिःसृता ❀ शास्त्रोक्त नाना प्रकारके साधनों द्वारा ही जिन्हें समझा जा सकता है अथवा जिनसे समस्त योगोंका प्राकट्य है ।
८५५ सर्वरम्यगुणागारा ❀ सम्पूर्ण सुन्दर गुण-समूहोंका जिनमें निवास है ।
८५६ सर्वलक्षणलक्षिता ❀ जो समस्त दिव्य (अलौकिक) लक्षणोंसे युक्त हैं ॥१५७॥

सर्वलावण्यजलधिः सर्वलीलाप्रसारिणी ।
सर्वलोकनमस्कार्या सर्वलोकेश्वरप्रिया ॥१५८॥

८५७ सर्वलावण्यजलधिः ❀ जो सम्पूर्ण सुन्दरताकी समुद्र हैं।

८५८ सर्वलीलाप्रसारिणी ❀ जो जगत्‌की सम्पूर्ण लीलाओंको फैलाने वाली हैं।

८५९ सर्वलोकनमस्कार्या ❀ जो अनन्त ब्रह्माण्डोंके सभी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिकोंके द्वारा नमस्कार करने योग्य हैं।

८६० सर्वलोकेश्वरप्रिया ❀ जो समस्त ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंके नियामक श्रीसाकेताधीश प्रभु श्रीरामकी प्यारी हैं। १५८

सर्वलोकेश्वरी सर्वलौकिकेतरवैभवा।
सर्व विद्याव्रतस्नाता सर्ववैभवकारणम् ॥१५९॥

८६१ सर्वलोकेश्वरी ❀ जो सम्पूर्ण लोकोंकी स्वामिनी हैं।

८६२ सर्वलौकिकेतरवैभवा ❀ जिनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य अलौकिक (दिव्य) है।

८६३ सर्वविद्याव्रतस्नाता ❀ जो विधिपूर्वक सम्पूर्ण विद्याओंको पढ़ चुकी हैं।

८६४ सर्ववैभवकारणम् ❀ जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य सम्पत्तिकी कारण-स्वरूपा हैं ॥१५९॥

सर्वशक्तिमतामिष्टा सर्वशक्तिमहेश्वरी।
सर्वशत्रुहरा . सर्वशरणं सर्वशर्मदा ॥१६०॥

८६५ सर्वशक्तिमतामिष्टा ❀ जो सर्वशक्तिमान-ब्रह्मा, शिवादिकोंकी इष्टदेवता हैं।

८६६ सर्वशक्तिमहेश्वरी ❀ जो सम्पूर्ण शक्तियोंकी सबसे मुख्य स्वामिनी हैं।

८६७ सर्वशत्रुहरा ❀ जो आश्रितोंके बाहरी तथा भीतरी (काम, क्रोधादि) शत्रुओंको गुम कर देती हैं।

८६८ सर्वशरणम् ❀ जो चर-अचर सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करने वाली हैं।

८६९ सर्वशर्मदा ❀ जो भक्तोंको सब प्रकारका लिकर-सुख प्रदान करती हैं ॥१६०॥

सर्वश्रेयस्करी सर्वसहा सर्वसदर्चिता।
सर्वसद्भावनाधारा सर्वसद्भावपोषिणी ॥१६१॥

८७० सर्वश्रेयस्करी ❀ जो भक्तोंका सब प्रकारका कल्याण करती हैं।

८७१ सर्वसहा ❀ जो प्राणियोंके किये हुये सभी प्रकारके अपराधोंको सहन करती हैं।

८७२ सर्वसदर्चिता ❀ सभी सन्त जिनका पूजन करते हैं।

८७३ सर्वसद्भावनाधारा ॐ जो सम्पूर्ण सद्भावनाओंकी आधार अर्थात् हर प्रकारसे धारणकरने योग्य केन्द्र-स्वरूपा हैं।

८७४ सर्वसद्भावपोषिणी ॐ जो प्राणियोंके सभी सद्भावोंकी पुष्टि करती हैं ॥१६१॥

सर्वसौख्यप्रदा सर्वसौभाग्यैकप्रदायिनी ।
साकेतपरमस्थाना साकेतपरमोत्सवा ॥१६२॥

८७५ सर्वसौख्यप्रदा ॐ जो सभी चर-अचर प्राणियोंको स्वाभाविक सुख प्रदान करने वाली हैं।

८७६ सर्वसौभाग्यैकप्रदायिनी ॐ जो आश्रितोंको सब प्रकारका हितकर सौभाग्य प्रदान करने वाली महाशक्तियोंमें उपमा रहित हैं।

८७७ साकेतपरमस्थाना ॐ श्रीसाकेतधाम जिनका सबसे उत्कृष्ट स्थान है।

८७८ साकेतपरमोत्सवा ॐ जो श्रीसाकेतधाम निवासी भक्तोंको महान् उत्सवके सदृश आनन्द देने वाली हैं ॥१६२॥

साकेताधिपतिप्रेष्ठा साकेतानन्दवर्षिणी ।
साक्षाच्छ्रीः साक्षिणी सर्वदेहिनां सर्वकर्मणाम् ॥१६३॥

८७९ साकेताधिपतिप्रेष्ठा ॐ जो साकेताधीश भगवान् श्रीरामजीकी परम प्यारी हैं।

८८० साकेतानन्दवर्षिणी ॐ जो श्रीसाकेत धाममें आनन्दकी वर्षा करती रहती हैं।

८८१ साक्षाच्छ्रीः ॐ जो सच्चिदानन्दघन ब्रह्मकी साक्षात् श्री (सुन्दरता, तेज और सम्पत्ति इत्यादि) हैं।

८८२ सर्वदेहिनां सर्वकर्मणाम् साक्षिणी ॐ जो समस्त प्राणियोंके सभी कर्मोंकी साक्षिणी स्वरूपा हैं ॥१६३॥

साधप्राणिजनारुष्टा सातपत्रोत्तमासना ।
साधनातीतसम्प्राप्तिः साध्या साध्वीजनप्रिया ॥१६४॥

८८३ साधप्राणिजनारुष्टा ॐ जो अपराधी जीवों पर भी कभी कुपित कर क्रोध नहीं करतीं।

८८४ सातपत्रोत्तमासना ॐ जिनका उत्तम सिंहासन मनोहर छत्रसे युक्त है।

८८५ साधनातीतसम्प्राप्तिः ॐ जिनकी प्राप्ति सब साधनोंसे परे है अर्थात् जो केवल कृपा साध्य हैं।

८८६ साध्या ॐ जो अनन्य आसक्तिसे प्राप्त होने योग्य हैं।

८८७ साध्वीजनप्रिया ॐ जिन्हें सती स्त्रियाँ प्रिय हैं ॥१६४॥

सामगा सामगोद्गीता साफल्यैकप्रदायिनी ।
सामर्थ्यजगदाधारमोहिनी साम्यदायिनी ॥१६५॥

८८८ सामगा ॥ जो सामवेदका गान करने वाली हैं।

८८९ सामगोद्गीता ॥ सामवेद का गान करने वाले जिनकी महिमा का विशेष रूपसे गान करते हैं।

८९० साफल्यैकप्रदायिनी ॥ जीवन की सफलता दान करने में जो एक ही (सर्वोत्कृष्ट) हैं।

८९१ सामर्थ्यजगदाधारमोहिनी ॥ जो अपने पराक्रमके द्वारा समस्त जगत्के आधार भगवान् श्रीरामजी को भी मुग्ध कर लेती हैं।

८९२ साम्यदायिनी ॥ जो अपनी अद्भुत, अनुपम उदारता से आश्रितों को अपनी समता प्रदान करदेती हैं अर्थात् अपने समान ही पूज्य बना देती हैं॥१६५॥

सारज्ञा सिद्धसङ्कल्पा सिद्धसेव्यपदाम्बुजा ।
सिद्धार्था सिद्धिदा सिद्धिरूपिणी सिद्धिसाधनम् ॥१६६॥

८९३ सारज्ञा ॥ जो समस्त विश्वके सारस्वरूप भगवान् श्रीरामजीकी महिमाको भलीभाँतिसे जानती हैं।

८९४ सिद्धसङ्कल्पा ॥ जिनका सङ्कल्प सिद्ध है अर्थात् इच्छा करते ही तत्क्षण सब कुछ उपस्थित हो जाता है।

८९५ सिद्धसेव्यपदाम्बुजा ॥ जिनके श्रीचरण-कमल, भगवत्प्राप्ति रूपी सिद्धिको प्राप्त कर चुके सिद्धोंके द्वारा, सेवन करने योग्य हैं।

८९६ सिद्धार्था ॥ जो पूर्ण काम हैं।

८९७ सिद्धिदा ॥ जो आश्रितोंको भगवत्प्राप्ति रूपी सिद्धि प्रदान करती हैं।

८९८ सिद्धिरूपिणी ॥ जो भगवत् प्राप्तिका स्वरूप ही हैं।

८९९ सिद्धिसाधनम् ॥ जो भगवत्-प्राप्तिकी साधन स्वरूपा हैं ॥१६६॥

सीता सीमन्तिनीश्रेष्ठा सीरध्वजनृपात्मजा ।
सुकटाक्षा सुकीर्त्तीड्या सुकृतीनां महाफला ॥१६७॥

९०० सीता ॥ जो भक्तोंके समस्त दुःख और पापोंको नष्ट करके सुख-शान्ति रूपी सम्पत्तिका विस्तार करती हैं।

९०१ सीमन्तिनीश्रेष्ठा ॥ जो सौभाग्यवती माताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं।

९०२ सीरध्वजनृपात्मजा ॥ जो श्रीसीरध्वज महाराजकी राजदुलारी हैं।

९०३ सुकटाक्षा ॥ जिनकी चितवन परम मङ्गलमय तथा मनोहर है।

९०४ सुकीर्त्तीज्या ॐ जो अपनी सुन्दर (आदर्श) कीर्त्तिके द्वारा तीनों लोकोंमें प्रशंसा करने योग्य हैं।

९०५ सुकृतीनां महाफला ॐ जो समस्त जप, तप, यज्ञ, दानादि सत्कर्मोंका सर्वोत्कृष्ट फल भगवत्प्राप्ति स्वरूपा हैं ॥१६७॥

सुकेशीसुखमूलैका सुखसन्दोहदर्शना ।
सुगमा सुघनज्ञाना सुचार्वी सुजवोत्तमा ॥१६८॥

९०६ सुकेशी ॐ जिनके अत्यन्त कोमल सघन, सूक्ष्म, घुँघराले, काले केश हैं।

९०७ सुखमूलैका ॐ जो सम्पूर्ण सुखों की सर्वोत्तम कारण-स्वरूपा है ।

९०८ सुखसन्दोहदर्शना ॐ जिनके दर्शनोंसे ही समस्त सुख प्राप्त होते हैं।

९०९ सुगमा ॐ जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयों से रहित अपने अनन्य उपासकोंके लिये ही सुलभ हैं।

९१० सुघनज्ञाना ॐ जिनका घन (नित्य त्रिकालस्थायी) ज्ञान, सबसे सुन्दर है।

९११ सुचार्वी ॐ जो अत्यन्त सुन्दरी हैं।

९१२ सुजवोत्तमा ॐ आश्रितोंकी रक्षा आदिके लिये जिनका वेग सबसे बढ़कर है ॥१६८॥

सुज्ञा सुतन्वी सुदती, सुदाननिरताश्रया ।
सुधावाणी सुधीरात्मा सुधीश्रेष्ठा सुधेक्षणा ॥१६९॥

९१३ सुज्ञा ॐ जिनका ज्ञान सबसे सुन्दर है।

९१४ सुतन्वी ॐ जो आकाशादि महा तत्वोंसे भी अत्यन्त सूक्ष्म है।

९१५ सुदती ॐ जिनकी दन्तपङ्क्ति अनारके दानों के समान सुन्दर है।

९१६ सुदाननिरताश्रया ॐ जो वास्तविक हितकर दान (भगवच्चरणानुरागिणी बुद्धिको प्रदान) करने वालोंकी आधार-स्वरूपा हैं।

९१७ सुधावाणी ॐ जिनकी बोली अमृतके समान मृतक जिलानेवाली अर्थात् सम्पूर्ण दुःखोंको हरण कर लेने वाली है।

९१८ सुधीरात्मा ॐ जिनकी बुद्धि अतिशय धैर्यवती है।

९१९ सुधीश्रेष्ठा ॐ जो उत्तम बुद्धिमानोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं।

९२० सुधेक्षणा ॐ जिनकी चितवन अमृतके समान समस्त दुःखोंको हरण कर लेती है ॥१६९॥

सुनयनाक्रोडरत्नं सुनयनाप्रपोषिता ।
सुनयनामहाराज्ञीहृदयानन्दवर्द्धिनी ॥१७०॥

९२१ सुनयनाक्रोडरत्नम् ॥ जो श्रीसुनयनाअम्बाजीकी गोदको रत्नके समान सुशोभित करनेवाली हैं

९२२ सुनयनाप्रपोषिता ॥ महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीने जिनका पालन पोषण किया है ।

९२३ सुनयनामहाराज्ञीहृदयानन्दवर्द्धिनी ॥ जो अपनी शिशु लीलाके द्वारा श्रीसुनयना महारानी-के हृदय का आनन्द बढ़ाने वाली हैं ॥१७०॥

सुनासा सुनिदिध्यास्या सुनीतिः सुप्रतिष्ठिता ।
सुप्रसादा सुभगायाः करपल्लवचर्चिता ॥१७१॥

९२४ सुनासा ॥ जिनकी नासिका तोतेकी नाकके समान सुन्दर है ।

९२५ सुनिदिध्यास्या ॥ जिनका भली भाँति एकाग्रतापूर्वक बारंबार ध्यान करना चाहिये ।

९२६ सुनीतिः ॥ जिनकी नीति सबसे सुन्दर है ।

९२७ सुप्रतिष्ठिता ॥ जो अपनी महिमामें हर प्रकारसे स्थित हैं ।

९२८ सुप्रसादा ॥ जिनकी प्रसन्नता सबसे बढ़कर सुखद एवं मङ्गलकारिणी है ।

९२९ सुभगायाः करपल्लवचर्चिता ॥ यूथेश्वरी श्रीसुभगाजी अपने कर कमलोंके द्वारा जिनके मस्तक आदिमें चन्दनकी खौर इत्यादि करती हैं ॥१७१॥

सुभागा सुभुजा सुभ्रूः सुमुखी सुरपूजिता ।
सुराध्यक्षा सुरानम्या सुराधीशजरक्षिका ॥१७२॥

९३० सुभागा ॥ जिनके समान कोई सौभाग्यवती नहीं ।

९३१ सुभुजा ॥ जिनकी भुजायें ऊपरसे नीचेकी ओर हाथोंकी सूड़के समान पतली, चिकनी तथा गोल हैं ।

९३२ सुभ्रूः ॥ काम-धनुषके समान जिनकी मनोहर भौंहे हैं ।

९३३ सुमुखी ॥ जिनका परम मनोहर तथा मङ्गलमय श्रीमुखारविन्द है ।

९३४ सुरपूजिता ॥ समस्त देवता जिनका पूजन करते हैं ।

९३५ सुराध्यक्षा ॥ जो सभी देवताओंकी देख रेख करने वाली हैं ।

९३६ सुरानम्या ॥ जो सभी देवताओंके द्वारा प्रणाम करने योग्य हैं ।

९३७ सुराधीशजरक्षिका ॥ जो अपने साथ महान अपराध करने वाले, वध योग्य, देवराज इन्द्रके

पुत्र जयन्त की भगवान श्रीरामजीके अग्नि बाणसे रक्षा करने वाली हैं ॥१७२॥

सुरेश्वरी च सुलभा सुवर्णाभाङ्गशोभना ।
सुवेद्यैका सुशरणं सुश्रीः सुश्लोकसत्तमा ॥१७३॥

६३८ सुरेश्वरी च ॐ जो समस्त देवताओं की स्वामिनी हैं ।
६३९ सुलभा ॐ जो विशुद्ध हृदय और अनन्यभाव वाले भक्तों को सुलभतासे प्राप्त हो जाती हैं।
६४० सुवर्णाभाङ्गशोभना ॐ जिनके सुवर्ण के समान गौर वर्णमय अङ्ग परम सुहावन हैं ।
६४१ सुवेद्यैका ॐ प्राणियोंको अपने कल्याणके लिये भली भाँति जिनका जानना परमावश्यक है।
६४२ सुशरणम् ॐ जो समस्त विश्व की भली भाँतिसे सुरक्षा करने वाली हैं ।
६४३ सुश्रीः ॐ जिनकी सम्पत्ति, सुन्दरता तथा कान्ति सब सुन्दर तथा असीम हैं ।
६४४ सुश्लोकसत्तमा ॐ जो सबसे बढ़कर सुन्दर और पवित्र यश वाली हैं ॥१७३॥

सृष्टदीनहितोपाया सृष्टिजन्मादिकारिणी ।
सेव्या सैरध्वजीज्येष्ठा सोमवत्प्रियदर्शना ॥१७४॥

६४५ सृष्टदीनहितोपाया ॐ जो अभिमान रहित प्राणियोंके हितका उपाय रच लेती हैं।
६४६ सृष्टिजन्मादिकारिणी ॐ जो सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली हैं ।
६४७ सेव्या ॐ भगवत् प्राप्तिके लिये जिनकी आराधना करना आवश्यक है ।
६४८ सैरध्वजीज्येष्ठा ॐ जो श्रीसीरध्वज महाराजकी यज्ञभूमिसे प्रकट हुई बड़ी पुत्री हैं ।
६४९ सोमवत्प्रियदर्शना ॐ जिनका दर्शन शरदऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान परम प्रिय है ॥१७४॥

सौभाग्यजननी सौम्या स्थानं सर्वासुधारिणाम् ।
स्थिरा स्थूलदया चैव स्थूलसूक्ष्मविलक्षणा ॥१७५॥

६५० सौभाग्यजननी ॐ जो सभी प्रकारके सौभाग्यका उदय करनेवाली हैं ।
६५१ सौम्या ॐ जो परम शान्त तथा मनोहर दर्शनवाली हैं ।
६५२ स्थानं सर्वासुधारिणाम् ॐ जिनमें चर-अचर सम्पूर्ण प्राणी निवास करते हैं ।
६५३ स्थिरा ॐ जो सदा से हैं और सदा रहेंगी (कभी स्व स्वरूपसे प्रचलित नहीं होने वाली) ।
६५४ स्थूलदया चैव ॐ जिनकी दया मोटी तगड़ी है ! (कम और नहीं !)
६५५ स्थूलसूक्ष्मविलक्षणा ॐ जो स्थूल, सूक्ष्मसे परे कारण स्वरूपा हैं ॥१७५॥

स्पृष्टपात्रन्तकर्तृणामीश्वरी स्वगतिप्रदा ।
स्वच्छिका स्वच्छहृदया स्वच्छन्दा सज्जनप्रिया ॥१७६॥

९५६ सप्टपात्रन्तकर्तृत्वामीश्वरी * जो उत्पत्ति पालन और संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु महेशों-को भी तत्तत् कार्यों में नियुक्त करने वाली हैं।

९५७ स्वगतिप्रदा * जो आश्रितोंको अपना निवासस्थान साक्षात् श्रीसाकेतधाम प्रदान करने वाली हैं।

९५८ स्वङ्घ्रिका * जिनके श्रीचरणकमल बड़े ही सुन्दर मङ्गलमय हैं।

९५९ स्वच्छहृदया * जिनका हृदय अत्यन्त पवित्र (निर्विकार) भगवान् श्रीरामजी का निवास स्थान है।

९६० स्वच्छन्दा * जो केवल एक भगवान् श्रीरामजीके अधीन रहती हैं।

९६१ स्वजनप्रिया * जिनको अपने भक्त विशेष प्रिय हैं ॥१७६॥

स्वजनानन्दनिवहा स्वतर्क्या स्वधरस्मिता।
स्वधर्माचरणाख्याता स्वधर्मावनपण्डिता ॥१७७॥

९६२ स्वजनानन्दनिवहा * जो अपने आश्रितों के आनन्द की पुञ्ज है।

९६३ स्वतर्क्या * जिनके विषयमें किसी प्रकारका भी तर्क (अनुमान) नहीं किया जासकता।

९६४ स्वधरस्मिता * जिनके अधरों (होठों) की मन्द मुस्कान बड़ी ही मनोहर तथा मङ्गलकारीहै।

९६५ स्वधर्माचरणाख्याता * जो अपने धर्म मय आचरणोंके द्वारा त्रिलोकीमें विख्यात हैं।

९६६ स्वधर्मावनपण्डिता * जो अपने भागवत धर्म की रक्षा करनेमें बड़ी ही चतुर हैं ॥१७७॥

स्वधास्वरूपा स्वधृता स्वभावाघहरस्मिता ।
स्वभावापास्तनार्शंस्या स्वभावावर्ण्यमार्दवा ॥१७८॥

९६७ स्वधास्वरूपा * जो स्वधा स्वरूपा हैं।

९६८ स्वधृता * जिन्हें भगवान् श्रीरामजी कौस्तुभमणिके रूपमें अपने वक्षःस्थलपर धारण करते हैं।

९६९ स्वभावाघहरस्मिता * जिनकी मन्द-मुस्कान स्वाभाविक समस्त पाप व दुःखोंको हरण करने वाली है।

९७० स्वभावापास्तनार्शंस्या * जो स्वाभाविक कठोरतासे रहित (परम दयामयी) हैं।

९७१ स्वभावावर्ण्यमार्दवा * जिनके अङ्गकी स्वाभाविक कोमलता वर्णनसे परे है अथवा जिनके सहज कोमल स्वभावका वर्णन वाणीसे नहीं हो सकता ॥१७८॥

स्वभावावाच्यवात्सल्या स्ववशा स्वस्तिदक्षिणा ।
स्वस्तिदा स्वस्तिरूपा च स्वामिनीसर्वदेहिनाम् ॥१७९॥

९७२ स्वभावावाच्यवात्सल्या ॐ जिनका स्वाभाविक वात्सल्य कथन शक्तिसे परे है।

९७३ स्ववशा ॐ जो भगवान् श्रीरामजीके ही एक वशमें रहती हैं।

९७४ स्वस्तिदक्षिणा ॐ जिन्हें यज्ञमें अर्पणकी हुई दक्षिणा मङ्गलमय होती है।

९७५ स्वस्तिदा ॐ जो आश्रितोंको मङ्गल प्रदान करती हैं।

९७६ स्वस्तिरूपा च ॐ जो सम्पूर्ण मङ्गल स्वरूपा हैं।

९७७ स्वामिनी सर्वदेहिनाम् ॐ जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी स्वामिनी (शासन करने वाली) है ॥१७९॥

स्वास्या स्वाश्रितसर्वेष्टदायिनी स्विष्टदेवता ।
स्वेच्छाचारेणरहिता हरिणोत्फुल्ललोचना ॥१८०॥

९७८ स्वास्या ॐ जिनका मुखारविन्द परम मनोहर तथा मङ्गलकारी है।

९७९ स्वाश्रितसर्वेष्टदायिनी ॐ जो अपने आश्रितोंकी सभी हितकर इच्छाओंको पूर्ण करती हैं।

९८० स्विष्टदेवता ॐ जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी सबसे श्रेष्ठ इष्ट देवता हैं।

९८१ स्वेच्छाचारेणरहिता ॐ जिनके सभी आचरण शास्त्र मर्यादानुकूल हैं, मनमानी नहीं।

९८२ हरिणोत्फुल्ललोचना ॐ हरिणके नेत्रोंके समान खिले हुये जिनके नेत्र कमल हैं ॥१८०॥

हारसम्भूषिता हास्यस्पर्द्धिचन्द्रकरव्रजा ।
हितैका सर्वजगतां हृदयानन्दवर्द्धिनी ॥१८१॥

९८३ हारसम्भूषिता ॐ जो विविध प्रकारके हारों का शृङ्गार धारण किये हुई हैं।

९८४ हास्यस्पर्द्धिचन्द्रकरव्रजा ॐ जो अपनी मन्द मुस्कान से चन्द्रमाके किरण समूहों को लज्जित कर रही हैं।

९८५ हितैका सर्वजगतां ॐ जो सम्पूर्ण जगत् (चर-अचर) प्राणियों का सबसे अधिक हित करने वाली हैं।

९८६ हृदयानन्दवर्द्धिनी ॐ जो अपने अनुपम् गुण, स्वभाव कीर्त्तिसे समस्त प्राणियोंके हृदयमें आनन्दको बढ़ाती रहती है ॥१८१॥

हृदयेशी च हृद्येका हेमागारनिवासिनी ।
हेमासेव्यपदाम्भोजा हेयपादाब्जविस्मृतिः ॥१८२॥

९८७ हृदयेशी ॐ जो मन बुद्धि चित्त, अहङ्कार रूपी समस्त इन्द्रियों पर शासन करती हैं।

९८८ हृद्यका ॐ जो सबसे बढ़कर मनोहर हैं।

९८९ हेमागारनिवासिनी ॐ जो दिव्य (अपाञ्चभौतिक) श्रीसाकेतधामके श्रीकनकभवनमें निवास करती हैं।

९९० हेमासेव्यपदाम्भोजा ॐ जिनके श्रीचरणकमल यूथेश्वरी श्रीहेमाजीके द्वारा विशेष सेवित होने योग्य हैं।

९९१ हेयपादाब्जविस्मृतिः ॐ संसारमें सबसे अधिक त्याग करने योग्य जिनके श्रीचरण-कमलोंका विस्मरण (भूलजाना) ही है ॥१८२॥

ह्लादिनी ह्रीमतां श्रेष्ठा क्षमाध्वस्तधरास्मया ।
क्षमास्वरूपा क्षमिणां क्षमेशी क्षान्तिविग्रहा ॥१८३॥

९९२ ह्लादिनी ॐ जो सभी प्राणियोंके हृदयमें आह्लाद रूपसे विराजती हैं।

९९३ ह्रीमतां श्रेष्ठा ॐ जो शास्त्र-मर्यादा विरुद्ध कर्मोंको करनेमें सबसे अधिक लज्जा रखती हैं।

९९४ क्षमाध्वस्तधरास्मया ॐ जो अपने क्षमागुणसे पृथिवी देवीके अभिमानको दूर करती हैं।

९९५ क्षमास्वरूपाक्षमिणाम् ॐ जो क्षमा शीलोंमें क्षमा (सहनशीलता) रूपमें विराजती हैं।

९९६ क्षमेशी ॐ जिनके शासनानुसार क्षमा सर्वत्र प्रकट होती है।

९९७ क्षान्तिविग्रहा ॐ जो क्षमाकी साक्षात् मूर्त्ति हैं ॥१८३॥

क्षितीशतनया क्षेमदायिनी क्षेमयार्चिता ।
सुता तवैषा कल्याणी सर्वोपास्येति मे मतम् ॥१८४॥

९९८ क्षितीशतनया ॐ जो पृथ्वी पति श्रीमिथिलेशजी महाराजकी राजदुलारी हैं।

९९९ क्षेमदायिनी ॐ जो भक्तों के लिये सब प्रकार का मङ्गल प्रदान करती हैं।

१००० क्षेमयार्चिता ॐ जो यूथेश्वरी श्रीक्षेमा सखीके द्वारा पूजित हैं। हे राजन् ! आपकी (वेटी) कल्याणस्वरूपा श्रीजलीजी सभी (देहधारियों) के लिये उपासना करने योग्य हैं ॥१८४॥

इयं हि राजन् ! मृगपोतलोचना वागीश्वरीशैलसुतारमादिभिः ।
निषेव्यमाणाङ्घ्रिसरोरुहद्वया विराजते पूर्णसुधाकरानना ॥१८५॥

हे राजन् ! आपकी मृग शिशुके समान सुन्दर नेत्रवाली चन्द्रमुखी ये श्रीललीजी के चरण-कमल श्रीसरस्वतीजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीलक्ष्मीजी आदि महाशक्तियोंके द्वारा पूजित हैं, अतः ये सर्वोत्कर्षको प्राप्त हैं ॥१८५॥

महामुनीनां यतिपुङ्गवानां योगेश्वराणां सुरसत्तमानाम् ।
सिद्धीश्वराणां विगतैषणानां भोगार्थिनां मोक्षपदेच्छुकानाम् ॥१८६॥
हानीतरौत्सुक्यसमन्वितानां स्वजन्मनो भूमिपतेऽखिलानाम् ।
सम्भावनीया समुपासनीया ज्ञेयाऽनुगेया तनया तवेयम् ॥१८७॥

हे राजन्! कहाँ तक कहें? जितने भी सकाम, निष्काम, मोक्षाभिलाषी महामुनि, यतिशिरोमणि, योगी राज, देवश्रेष्ठ, सिद्धप्रवर, अपने मानव-जीवनकी सफलता चाहने वाले हैं, उन सभीके लिये सब प्रकारसे भावना करने योग्य, उपासना करने योग्य, तथा ज्ञान प्राप्त करने योग्य और बारम्बार गान करने योग्य आपकी ये ही श्रीललीजी हैं ॥१८६॥१८७॥

अनन्तनामानि तवात्मजायाः सन्ति क्षितीशप्रवराद्य तेषाम् ।
मया सहस्रेण मुदा प्रगीता तनोतु शं सेयमयोनिजा नः ॥१८८॥

हे भूमिनाथोंमें परमश्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराज! आपकी श्रीललीजीके असङ्ख्यों नाम हैं उनमेंसे केवल इस समय मैंने जिनका सहस्र नामसे वर्णन किया है, वे अयोनिसम्भवा अर्थात् अपनी इच्छासे प्रकट हुई आपकी ये श्रीललीजी हम सबोंका कल्याण करें ॥१८८॥

भक्त्याऽनुरक्त्या पठतामजस्रं ध्यानान्वितानां तनया धरण्याः ।
दृग्गोचरी वाञ्छितसिद्धिदात्री भूयादद्रुतं नाम सहस्रमेतत् ॥१८९॥

इस सहस्र नामको ध्यान-पूर्वक अनुरागके साथ, नित्य पाठ करने वालोंको, अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेवाली ये श्रीललीजी शीघ्र ही प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान करें ॥१८९॥

श्रीशिव उवाच ।

नृणां चतुर्वर्गविलोलचेतसां पाठ्यं ससङ्कल्पमिदं शुभावहम् ।
गिरीन्द्रकन्ये! मधुराक्षरान्वितं श्रीजानकीनामसहस्रमन्वहम् ॥१९०॥

इति सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

—: नवाहपारायण-विश्राम ७ मासपारायण-विश्राम २३ :—

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती! धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्तिके लिये जिनका चित्त चञ्चल हो रहा है उन्हें, मधुर अक्षरोंसे युक्त, मङ्गलकारी इस श्रीजानकीसहस्रनामका पाठ सङ्कल्प-पूर्वक प्रति दिन करना चाहिये ॥१९०॥

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

श्रीकिशोरीजीके सहस्र (१०००) नाम श्रवण पूर्वक उनके अष्टोत्तरशत (१०८) नाम तथा द्वादश (१२) नामों को श्रवण करके श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रेम मूर्च्छा तथा नव योगेश्वरों द्वारा उनका पृथक् समाश्वासन।

श्रीजनक उवाच।

अष्टोत्तरशतं नाम्नामपीदानीं तदुच्यताम्।
भवद्भिः सानुकम्पं मे सर्वज्ञाः श्रुतिमङ्गलम् ॥१॥

श्रीजनकजी-महाराज बोले:-हे सर्वज्ञ महर्षियों! अब आप लोग श्रवणमात्रसे मङ्गल करनेवाले श्रीललीजीके अष्टोत्तरशतनामोंको भी मुझे बतलाने की कृपा करें ॥१॥

श्रीहरिरुवाच।

साधु पृष्टं त्वया राजन् श्रूयमेकाग्रचेतसा।
अष्टोत्तरशतं वक्ष्ये नाम्नां परमपावनम् ॥२॥

श्रीहरिनामके योगेश्वर बोले:-हे राजन्! आपका प्रश्न बहुत इच्छा है अत एव मैं श्रीललीजीके परम-पावन अष्टोत्तरशतनामोंका वर्णन करता हूँ आप उसका एकाग्रचित्तसे श्रवण कीजिये ॥२॥

सीरध्वजसुता सीता स्वाश्रिताभीष्टदायिनी।
सहजानन्दिनी स्तव्या सर्वभूताशयस्थिता ॥३॥

१ सीरध्वजसुता ❀ श्रीसीरध्वज-महाराजके सुखका विस्तार करनेवाली।

२ सीता ❀ अपने आश्रित चेतनोंके समस्त दुःख शोकोंकी मूल आसुरी सम्पत्तिका विनाश करके दया, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य आदि दैवी सम्पत्तिके विस्तार द्वारा अनायास संसार-सागरसे पार उतारने वाली।

३ स्वाश्रिताभीष्टदायिनी ❀ अपने आश्रितोंकी हितकर इच्छाओंको पूर्ण करने वाली।

४ सहजानन्दिनी ❀ अपने शीलस्वभाव और गुणरूप आदिसे सभी, जड़ चेतनोंको स्वाभाविक आनन्द प्रदान करने वाली।

५ स्तव्या ❀ सभीके द्वारा सब प्रकारसे स्तुति करने योग्या।

६ सर्वभूताशयस्थिता ❀ सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयोंमें निवास करने वाली ॥३॥

ह्लादिनी क्षेमदा क्षान्तिः षडर्द्धाक्षहृदिस्थिता ।
श्रीनिधिः श्रीसमाराध्या श्रियः श्रीः श्रीमदर्चिता ॥४॥

७ ह्लादिनी ❀ सम्पूर्ण चेतनाके हृदयमें आह्लाद प्रदान करने वाली ।
८ क्षेमदा ❀ कल्याण प्रदान करनेवाली ।
९ क्षान्ति ❀ सहनशीलता स्वरूपा ।
१० षडर्द्धाक्षहृदिस्थिता ❀ त्रिनेत्रधारी (भगवान् शिवजी) के हृदयमें निवास करनेवाला ।
११ श्रीनिधिः ❀ सम्पूर्ण शोभा कान्ति तथा धनकी भण्डार स्वरूपा ।
१२ श्रीसमाराध्या ❀ श्रीलक्ष्मीजीके द्वारा सम्यक् प्रकारसे सेवित होने योग्य ।
१३ श्रियः श्रीः ❀ कान्तिकी कान्ति और शोभाकी शोभा स्वरूपा ।
१४ श्रीमदर्चिता ❀ तेज और सम्पत्तिशाली ब्रह्मादि देव वृन्दोंसे पूजित ॥४॥

शरण्या वेदनिःश्वासा वैदेही विबुधेश्वरी ।
लोकोत्तराम्बा लोकादी रघुनन्दनवल्लभा ॥५॥

१५ शरण्या ❀ सभी प्राणियोंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ ।
१६ वेदनिःश्वासा ❀ वेदमय श्वास वाली ।
१७ वैदेही ❀ श्रीविदेहकुलकी सर्वोत्कृष्ट राजदुलारी ।
१८ विबुधेश्वरी ❀ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अग्नि, सूर्य, पवन, यम, कुबेर, इन्द्रादि सभी देवताओं पर शासन करने वाली ।
१९ लोकोत्तराम्बा ❀ सम्पूर्ण प्राणियोंकी अपाञ्चभौतिक (दिव्य) माता ।
२० लोकादिः ❀ समस्त लोकों की कारण स्वरूपा।
२१ रघुनन्दनवल्लभा ❀ रघुकुलको वात्सल्य जनित आनन्द प्रदान करने वाले भगवान् श्रीरामजीकी परम प्यारी ॥५॥

रम्यरम्यनिधी रामा योगेश्वरप्रियात्मजा ।
यज्ञस्वरूपा यज्ञेशी योगिनां परमा गतिः ॥६॥

२२ रम्यरम्यनिधिः ❀ सभी सुन्दरों में सुन्दर (भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकार) की निधि (भण्डार) स्वरूपा ।
२३ रामा ❀ आकाश तत्व से सहस्रों गुणा अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण सम्पूर्ण प्राणियों की

अपनी गोदमें खेलाने वाली और स्वयं विविध प्रकारके स्थूल सूक्ष्मादि रूपोंके द्वारा सबके साथ खेलने वाली भगवान् श्रीरामजी की प्राणवल्लभा ।

२४ योगीश्वरप्रियात्मजा ⁂ योगियों पर शासन करनेवाले श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी प्यारी पुत्री ।

२५ यज्ञस्वरूपा ⁂ यज्ञ स्वरूप वाली ।

२६ यज्ञेशी ⁂ समस्त यज्ञोंकी रक्षा करनेवाली ।

२७ योगिनां परमा गतिः ⁂ भगवत्-प्राप्तिके साधकोंका सब प्रकारसे सम्हाल करने वाली ॥६॥

मृदुस्वभावा मृदुला मैथिली मधुराकृतिः ।
मनोरूपा महेज्येज्या महासौभाग्यदायिनी ॥७॥

२८ मृदुस्वभावा ⁂ अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली ।

२९ मृदुला ⁂ कोमल स्वभाव तथा अति कोमल अङ्गों वाली ।

३० मैथिली ⁂ मिथिवंशमें सबसे अधिक प्रख्यात श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी ।

३१ मधुराकृतिः ⁂ अत्यन्त मनोहर तथा सर्वानन्दप्रदायक सुन्दर स्वरूप वाली ।

३२ मनोरूपा ⁂ मनके स्वरूप वाली ।

३३ महेज्येज्या ⁂ महान् पूजनीय श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देव तथा उमा, रमा ब्रह्माणी आदि महाशक्तियोंके द्वारा भी पूजने योग्य ।

३४ महासौभाग्यदायिनी ⁂ भक्तोंको सर्वोत्तम सौभाग्य प्रदान करने वाली ॥७॥

भूमिजा बुधमृग्याङ्घ्रिकमला बोधवारिधिः ।
फलस्वरूपा तपसां फणीन्द्रावर्ण्यवैभवा ॥८॥

३५ भूमिजा ⁂ पृथ्वी से प्रकट होने वाली श्रीमिथिलेशराज-दुलारी जी ।

३६ बुधमृग्याङ्घ्रिकमला ⁂ ज्ञानियोंके खोजने योग्य जिनके एक श्रीचरण-कमल ही हैं ।

३७ बोधवारिधिः ⁂ समुद्रके समान अथाह ज्ञान वाली ।

३८ फलस्वरूपा तपसाम् ⁂ सम्पूर्ण तपोंके फल (भगवत्प्राप्ति) स्वरूप वाली ।

३९ फणीन्द्रावर्ण्यवैभवा ⁂ सहस्रमुख, (दो हजार जिह्वा) वाले श्रीशेषजी द्वारा भी जिनका ऐश्वर्य वर्णन करनेमें असम्भव है ॥८॥

नमस्या प्रियदृष्टिश्च धरारत्नं धरासुता ।
दिव्यात्मा दीप्तमहिमा तत्वात्मा जनकात्मजा ॥९॥

घनश्यामात्मनिलया गोप्त्री गुप्ता गुहेशया ।
गेयोदारयशःपङ्क्तिर्गतैश्वर्यकृतस्मया ॥१२॥

५७ घनश्यामात्मनिलया ❀ सजल मेघोंके सदृश श्यामवर्ण श्रीराघवेन्द्र सरकारके हृदयमें निवास करने वाली ।

५८ गोप्त्री ❀ समस्त चर-अचर प्राणियोंकी रक्षा करने वाली ।

५९ गुप्ता ❀ भक्तोंके हृदय रूपी कुञ्जमें छिपी हुई ।

६० गुहेशया ❀ प्राणियोंके हृदय रूपी गुफामें परमात्मस्वरूपसे शयन करने वाली ।

६१ गेयोदारयशःपङ्क्तिः ❀ गान करने योग्य यश-समूह वाली ।

६२ गतैश्वर्यकृतस्मया ❀ अपने अनुपम ऐश्वर्यके अभिमानसे अछूती ॥१२॥

गमनीयपदासक्तिः खलभावनिवारिणी ।
कृपापीयूषजलधिः कृतज्ञा कृतिसाधनम् ॥१३॥

६३ गमनीयपदासक्तिः ❀ आसक्ति प्राप्त करने योग्य श्रीचरण कमल वाली ।

६४ खलभावनिवारिणी ❀ अहित कर भावनाको भगा देने वाली ।

६५ कृपापीयूषजलधिः ❀ समुद्रके समान अथाह कृपा रूपी अमृत वाली ।

६६ कृतज्ञा ❀ जीवोंके कर्मोंके भी किये हुये किञ्चित्‌भी पूजन, वन्दन, स्मरण तथा अर्पण आदि कर्म को, कभी भी न भूलने वाली ।

६७ कृतिसाधनम् ❀ भगवत्-प्राप्तिके पुरुषार्थकी साधनस्वरूपा ॥१३॥

कल्याणप्रकृतिः काम्या कल्याणी कामवर्षिणी ।
कारुण्यार्द्रविशालाक्षी कम्बुकण्ठी कलानिधिः ॥१४॥

६८ कल्याणप्रकृतिः ❀ मङ्गलकारी स्वभाववाली ।

६९ काम्या ❀ पूर्ण कामोंके लिये भी, प्राप्तिकी इच्छा करने योग्य ।

७० कल्याणी ❀ कल्याण-स्वरूपा ।

७१ कामवर्षिणी ❀ भक्तोंकी हितकर इच्छाओंकी वर्षा करने वाली ।

७२ कारुण्यार्द्रविशालाक्षी ❀ दया-भावसे द्रवित कमलके समान विशाल नेत्रों वाली ।

७३ कम्बुकण्ठी ❀ शङ्खके समान रेखाओंसे युक्त मनोहर कण्ठवाली ।

७४ कलानिधिः ❀ समस्त विद्याओंकी भण्डार स्वरूपा ॥१४॥

४० नमस्या ॐ समस्त प्राणियों के लिये एकमात्र नमस्कार भाजन।

४१ प्रियदर्शिः ॐ प्रियदर्शन वाली

४२ धरारत्नम् ॐ पृथ्वीकी सर्वोत्कृष्ट रत्न स्वरूपा।

४३ धरासुता ॐ पृथिवीके सुखसमूह का विस्तार करने वाली।

४४ दिव्यात्मा ॐ अलौकिक बुद्धिवाली।

४५ दीप्तमहिमा ॐ विख्यात प्रभाव वाली।

४६ तत्वात्मा ॐ तत्व (ब्रह्म) स्वरूपवाली।

४७ जनकात्मजा ॐ श्रीजनक वंशमें सर्वोत्तम महिमा वाली, श्रीसीरध्वजराजकुमारीजी ॥९॥

जगदीशापरश्रेष्ठा ज्ञानिनां परमायनम्।
जगन्मङ्गलमाङ्गल्या जरामृत्युभयातिगा ॥१०॥

४८ जगदीशापरश्रेष्ठा ॐ सचराचर प्राणियों पर शासन करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, यम आदि से उत्कृष्ट दिव्यधामाधिप भगवान् श्रीरामजीकी परम प्यारी।

४९ ज्ञानिनां परमायनम् ॐ ज्ञानियोंके चित्त वृत्तिके लिये सर्वोत्तम स्थान स्वरूपा।

५० जगन्मङ्गलमाङ्गल्या ॐ चराचर प्राणियोंके मङ्गलका भी मङ्गल स्वरूपा।

५१ जरामृत्युभयातिगा ॐ बुढ़ापा और मृत्युके भयसे अछूती। १०॥

चन्द्रकलासुखासाध्या चिदानन्दस्वरूपिणी।
चतुरात्मा चतुर्व्यूहा चन्द्रबिम्बोपमानना ॥११॥

५२ चन्द्रकलासुखासाध्या ॐ यूथेश्वरी श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा सुखपूर्वक प्राप्त होनेके योग्य।

५३ चिदानन्दस्वरूपिणी ॐ जिसका मन कुछ चेतन एवम् आनन्द-मय है, उस ब्रह्म की साकार स्वरूप वाली।

५४ चतुरात्मा ॐ मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार-इन चार स्वरूपों वाली।

५५ चतुर्व्यूहा ॐ श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न इन तीनों भाइयोंके सहित चार शरीर वाले श्रीराघवेन्द्र सरकारकी पटरानीजी।

५६ चन्द्रबिम्बोपमानना ॐ शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रके बिम्बके समान उज्ज्वल प्रकाशमय, परम आह्लादकारी श्रीमुखचन्द्रवाली ॥११॥

घनश्यामात्मनिलया गोप्त्री गुप्ता गुहेशया ।
गेयोदारयशःपङ्क्तिर्गतैश्वर्यकृतस्मया ॥१२॥

५७ घनश्यामात्मनिलया ※ सजल मेघोंके सदृश श्यामवर्ण श्रीराघवेन्द्र सरकारके हृदयमें निवास करने वाली ।
५८ गोप्त्री ※ समस्त चर-अचर प्राणियोंकी रक्षा करने वाली ।
५९ गुप्ता ※ भक्तोंके हृदय रूपी कुञ्जमें छिपी हुई ।
६० गुहेशया ※ प्राणियोंके हृदय रूपी गुफामें परमात्मस्वरूपसे शयन करने वाली ।
६१ गेयोदारयशःपङ्क्तिः ※ गान करने योग्य यश समूह वाली ।
६२ गतैश्वर्यकृतस्मया ※ अपने अनुपम ऐश्वर्यके अभिमानसे अछूती ॥१२॥

गमनीयपदासक्तिः खलभावनिवारिणी ।
कृपापीयूषजलधिः कृतज्ञा कृतिसाधनम् ॥१३॥

६३ गमनीयपदासक्तिः ※ आसक्ति प्राप्त करने योग्य श्रीचरण कमल वाली ।
६४ खलभावनिवारिणी ※ अहित कर भावनाको भगा देने वाली ।
६५ कृपापीयूषजलधिः ※ समुद्रके समान अथाह कृपा रूपी अमृत वाली ।
६६ कृतज्ञा ※ जीवोंके कर्मोंके भी किये हुये किञ्चित्सी पूजन, वन्दन स्मरण तथा अर्पण आदि कर्मको, कभी भी न भूलने वाली ।
६७ कृतिसाधनम् ※ भगवत् प्राप्तिके पुरुषार्थकी साधनस्वरूपा ॥१३॥

कल्याणप्रकृतिः काम्या कल्याणी कामवर्षिणी ।
कारुण्यार्द्रविशालाक्षी कम्बुकण्ठी कलानिधिः ॥१४॥

६८ कल्याणप्रकृतिः ※ मङ्गलकारी स्वभाववाली ।
६९ काम्या ※ पूर्ण कामोंके लिये भी, प्राप्तिकी इच्छा करने योग्य ।
७० कल्याणी ※ कल्याण-स्वरूपा ।
७१ कामवर्षिणी ※ भक्तोंकी हितकर इच्छाओंकी वर्षा करने वाली ।
७२ कारुण्यार्द्रविशालाक्षी ※ दया भावसे द्रवित कमलके समान विशाल नेत्रों वाली ।
७३ कम्बुकण्ठी ※ शङ्खके समान रेखाओंसे युक्त मनोहर कण्ठवाली ।
७४ कलानिधिः ※ समस्त विद्याओंकी भण्डार स्वरूपा ।१४॥

केलिप्रिया कलाधारा कल्मषौघनिवारिणी ।
ॐ शब्दवाच्या ह्योजोऽब्धिरुदितश्रीरुदारधीः ॥१५॥

७५ केलिप्रिया ❀ भक्त-सुखद लीलाओंमें प्रेम रखने वाली ।

७६ कलाधारा ❀ समस्त विद्याओंकी आधार स्वरूपा ।

७७ कल्मषौघनिवारिणी ❀ स्मरण करने वालोंके पापसमूहोंको भगा देने वाली ।

७८ ॐ शब्दवाच्या ❀ ॐ शब्दसे वर्णन करने योग्य ।

७९ ओजोऽब्धिः ❀ समुद्रके समान अथाह बल पराक्रम वाली ।

८० उदितश्रीः ❀ जो वेदशास्त्रोंके द्वारा गाई हुई हैं एवं कण-कण पत्ती पत्तीसे जिनकी स्वयं शोभा कान्ति तथा ऐश्वर्य प्रकट है ।

८१ उदारधीः ❀ जिनकी बुद्धि, किसी भी असम्भवको सम्भव करनेमें कभी सङ्कोचको प्राप्त नहीं होती ॥१५॥

उदारकीर्त्तिरुदिता ह्युदारातुल्यदर्शना ।
इष्टप्रदेभगमना आदिजाऽऽह्लादिनी परा ॥१६॥

८२ उदारकीर्त्ति ❀ सर्वाभीष्टदायक यश वाली ।

८३ उदिता ❀ सभी वेद शास्त्र, पुराण संहिताओंके द्वारा जिनका वर्णन किया गया है ।

८४ उदारातुल्यदर्शना ❀ धर्म, अर्थ, काम, मोक्षदायक अनुपम मनोहर दर्शन वाली ।

८५ इष्टप्रदा ❀ भक्तोंको मनोवाञ्छित सिद्धि प्रदान करने वाली ।

८६ इभगमना ❀ गजराजके समान मनोहर चालसे चलने वाली ।

८७ आदिजा ❀ सबसे पहिले प्रकट होने वाली ।

८८ आह्लादिनीपरा ❀ आह्लाद प्रदायिका सभी शक्तियों में सर्वोत्तम ॥१६॥

आश्रितवत्सला ऽऽराध्या ह्यनिर्देश्यस्वरूपिणी ।
अद्वितीयसुखाम्भोधिरव्याजकरुणापरा ॥१७॥

८९ आश्रितवत्सला ❀ अपने आश्रितोंके अपराधों पर ध्यान न देकर उनके हितमें सदैव तत्पर रहने वाली ।

९० आराध्या ❀ सब प्रकारसे, सभीके उपासना करने योग्य ।

९१ अनिर्देश्यस्वरूपिणी ❀ इदमित्थं (ऐसा ही है यह) निश्चय न कर सकने योग्य स्वरूप वाली ।

९२ अद्वितीयसुखाम्भोधिः ॐ समुद्रके समान अनुपम, असीम अथाह सुख वाली।
९३ शश्वद्याजकरुणापरा ॐ प्रत्येक प्राणीके प्रति विना किसी स्वार्थ भावनाके ही कृपा करनेमें तत्पर रहने वाली ॥१७॥

अनवद्याऽप्रमत्तात्मा अनन्तैश्वर्यमण्डिता ।
अमानाऽयोनिजाऽकोपा अविचिन्त्याऽनघस्मृतिः ॥१८॥

९४ अनवद्या ॐ सब प्रकार प्रशंसा योग्य।
९५ अप्रमत्ता ॐ भक्तोंकी सुरक्षामें सदा पूर्ण सावधान रहने वाली।
९६ अनन्तैश्वर्यमण्डिता ॐ असीम (ब्रह्मके) ऐश्वर्यसे विभूषित।
९७ अमाना ॐ आदि, अन्त मध्य आदि नाप-तौलसे रहित।
९८ अयोनिजा ॐ विना किसी कारण अपनी भक्त-भाव पूरिणी इच्छासे प्रकट होनेवाली।
९९ अकोपा ॐ वध योग्य अपराधी जीवों पर भी क्रोध न करनेवाली।
१०० अविचिन्त्या ॐ भगवान् श्रीरामजीके स्वयं चिन्तन करने योग्य।
१०१ अनघस्मृतिः ॐ पुण्यमय सुमिरण वाली ॥१७॥

अनीहाऽनियमाऽनादिमध्यान्ताऽद्भुतदर्शना ।
अजेयाऽकल्मषाऽकारवाच्येत्यवनिपोत्तम ! ॥१६॥
अष्टोत्तरशतं नाम प्रोच्यतेऽस्या महर्षिभिः ।
पठतां प्रत्यहं भक्त्या काऽपि सिद्धिर्न दुर्लभा ॥२०॥

१०२ अनीहा ॐ पूर्ण काम होनेके कारण सभी प्रकारकी चेष्टाओंसे रहित।
१०३ अनियमा ॐ भाव-गम्य होनेके कारण किसी भी जप, तप, आदि साधनसे प्राप्त न होने वाली तथा भगवत्-प्राप्तिकारक साधन स्वरूपा।
१०४ अनादिमध्यान्ता ॐ आदि, मध्य, अन्तसे रहित पूर्ण ब्रह्म-स्वरूपा।
१०५ अद्भुतदर्शना ॐ परम आश्चर्यमय दर्शन वाली
१०६ अजेया ॐ कभी भी किसीके द्वारा न जीती जासकने वाली।
१०७ अकल्मषा ॐ समस्त पाप दोषों से रहित।
१०८ अकारवाच्या ॐ भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारके ही वर्णन करने योग्य।

हे राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराज ! इस प्रकार महर्षियोंने इन श्रीललीजीके १०८ नामोंका वर्णन किया है, जिनका नित्य प्रति श्रद्धा पूर्वक पाठ करने वालोंके लिये इस त्रिलोकीमें कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है ॥१९॥ ॥२०॥

श्रीजनक उवाच ।

श्रुतं नाम सहस्रं मे ह्यष्टोत्तरशतं तथा ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि द्वादशं लोकविश्रुतम् ॥२१॥

श्रीजनकजी महाराज बोले हे महर्षियों ! आप लोगोंकी कृपासे मैंने श्रीललीजीके हजार तथा १०८ नामोंका श्रवणकर लिया, अब लोक प्रसिद्ध १२ नामोंको भी श्रवण करना चाहता हूँ ॥२१॥

यदि श्रोतुं तदर्होऽस्मि भवद्भिः कृपयोच्यताम् ।
अक्लेशं परमोदाराः सिद्धा ! कृपणवत्सलाः ॥२२॥

हे परम उदार, दीनवत्सल, सिद्ध महात्माओ ! यदि मैं उन्हें सुखपूर्वक सुननेका अधिकारी होऊँ, तो आप लोग उन्हें भी सुनानेकी कृपा करें ॥२२॥

श्रीअन्तरिक्ष उवाच ।

मैथिली जानकी सीता वैदेही जनकात्मजा ।
कृपापीयूषजलधिः प्रियार्हा रामवल्लभा ॥२३॥

श्रीअन्तरिक्ष-योगेश्वरजी महाराज बोले:-

१ मैथिली ❀ श्रीमिथिवंशमें सर्वोत्कृष्ट रूपसे विराजने वाली श्रीसीरध्वजराजदुलारीजी ।

२ जानकी ❀ श्रीजनकजी महाराजके भावकी पूर्त्ति के लिये उनकी यज्ञवेदीसे प्रकट होने वाली ।

३ सीता ❀ आश्रितोंके हृदयसे सम्पूर्ण दुःखोंकी मूल दुर्भावनाको नष्ट करके सद्भावना का विस्तार करने वाली ।

४ वैदेही ❀ भगवान् श्रीरामजीके चिन्तनकी तल्लीनतासे देहकी सुधि भूल जाने वाली शक्तियोंमें सर्वोत्तम ।

५ जनकात्मजा ❀ श्रीसीरध्वज महाराज नामके श्रीजनकजी महाराजके पुत्री भावको स्वीकार करने वाली ।

६ कृपापीयूषजलधिः ❀ समुद्रके समान अथाह एवम् अमृतके सदृश असम्भवको सम्भव कर देने वाली कृपासे युक्त ।

७ प्रियार्हा ❀ जो प्यारेके योग्य और प्यारे श्रीरामभद्रजू जिनके योग्य हैं ।

८ रामवल्लभा ❀ जो श्रीराघवेन्द्र सरकारकी परम प्यारी हैं ॥२३॥

सुनयनासुता वीर्यशुल्काऽयोनी रसोद्भवा ।
द्वादशैतानि नामानि वाञ्छितार्थप्रदानि हि ॥२४॥

९ सुनयनासुता * श्रीसुनयना महारानीके वात्सल्यभाव-जनित सुखका भली भाँति विस्तार करने वाली ।

१० वीर्यशुल्का * शिवधनुष तोड़ने की शक्ति रूपी न्यौछावर ही वधू रूपमें जिनकी प्राप्तिका साधन है अर्थात् जो भगवान् शिवजीके धनुष तोड़ने की शक्ति रूपी न्यौछावर अर्पण कर सकेगा उसीके साथ जिन का विवाह होगा ।

११ अयोनिः * किसी कारण विशेषसे प्रकट न होकर केवल भक्तोंका भाव पूर्ण करनेके लिये अपनी इच्छानुसार प्रकट होने वाली।

१२ रसोद्भवा * जन्मसे ही अपनी अलौकिकता व्यक्त करनेके लिये किसी प्राकृत शरीरसे प्रकट न होकर पृथ्वीसे प्रकट होने वाली ।

हे राजन्! श्रीलली जीके ये बारह नाम मनोवाञ्छित (मन चाही) सिद्धिको प्रदान करने वाले हैं। यह सुनकर गद्गद हो श्रीजनकजी महाराज बोलेः-।

श्रीजनक उवाच ।

अहोऽहं परमो धन्यो धन्यधन्यो धरातले ।
सुताभावेन मां नित्यं नन्दयत्यखिलेश्वरी ॥२५॥

हे नवो योगेश्वर महाराज! इस पृथ्वीतल पर मैं धन्योंमें भी धन्य, सबसे बढ़कर सौभाग्यशाली हूँ जो ये श्रीसर्वेश्वरीजी पुत्री भावसे मुझे नित्य आनन्द प्रदान कर रही हैं॥२५॥

यस्याः सम्बन्धमात्रेण त्रिलोक्यां सर्वभूभृताम् ।
यतीनां योगिवर्याणां सिद्धानां सुमहात्मनाम् ॥२६॥
महाभागवतानां च मुनीनां त्रिदिवौकसाम् ।
पूज्यपूज्यप्रपूज्यानां ब्रह्मविष्णुपिनाकिनाम् ॥२७॥
सर्वेषां दुर्लभासीनामादरेक्षणभाजनम् ।
अहमस्मि विशेषेण स्वल्पभूमिपतिः पुमान् ॥२८॥

मैं छोटा सा मनुष्य राजा, जिनके सम्बन्ध मात्रसे ही त्रिलोकीमें सभी राजा, यति, योगी, सिद्ध, बड़े-बड़े महात्मा (२६) बड़े-बड़े भक्त, मुनि देवता, पूज्योंके भी पूज्योंके महान् पूजनीय ब्रह्मा

विष्णु, महेश आदि (२७) कहाँ तक कहें जिनकी प्राप्ति महान् दुर्लभ है उन सभीके आदरदृष्टि का विशेष रूपसे मैं पात्र हो रहा हूँ ॥२८॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्त्वा प्रेमसंरुद्धगलो विस्फारितेक्षणः ।
विसञ्ज्ञां तत्क्षणं प्राप महासौभाग्यभूषितः ॥२९॥

भगवान् श्रीशिवजी बोले—हे पार्वती ! महासौभाग्यभूषित श्रीमिथिलेशजी महाराज इस प्रकार गदगद् कण्ठ हो कहकर श्रीललीजीके दर्शनार्थ नेत्रोंको फैलाये हुये उसी क्षण मूर्छाको प्राप्त कर गये ॥२९॥

भूपं तथाविधं दृष्ट्वा सभायां प्रेमविह्वलम् ।
आविर्होत्रो महातेजास्तमुत्थाप्येदमब्रवीत् ॥३०॥

सभीके बीचमें उस प्रकार श्रीमिथिलेशजी-महाराजको प्रेम विह्वल हुये देखकर महातेजस्वी योगेश्वर श्रीआविर्होत्रजी-महाराज उठ कर उनसे यह बोले :—॥३०॥

श्रीआविर्होत्र उवाच ।

सहजानन्दिनी यस्य सुताभावमनुव्रता ।
परं ब्रह्म परं धाम ततः को भाग्यवत्तमः ॥३१॥

जो परंब्रह्म, (सबसे बड़ा और आकाश आदि महातत्त्वोंसे अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण सभीको अपने में बढ़नेका पूर्ण अवकाश देनेवाली हैं), परंधाम (जिनका तेज सबसे बढ़कर है) वे श्रीललीजी जिनके पुत्री भावमें वर्त रही हैं, भला उन आपसे बढ़कर और अधिक सौभाग्यशाली कौन हो सकता है अर्थात् कोई भी नहीं ॥३१॥

यस्या अंशसमुद्भूता ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
सशक्तिका अनन्ताश्च ब्रह्माण्डानां परेश्वराः ॥३२॥

जिनके अंशसे उमा, रमा, ब्रह्माणी आदि महाशक्तियोंके सहित ब्रह्माण्ड समूहोंके सर्वश्रेष्ठ शासन करनेवाले अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादिकोंका प्राकट्य होता है ॥३२॥

देवासुरसमभ्यर्च्या भाव्यायाः परमर्षिभिः ।
तस्या लब्धप्रतिष्ठो यः पराशक्तेर्यदृच्छया ॥३३॥

देवता, असुर सभी जिनका भलीभाँतिसे पूजन करते हैं और बड़े-बड़े महर्षिगण जिनका निरन्तर

ध्यान करते हैं, वे सर्वोत्तम महाशक्तिजीने दैवसंयोग अथवा अपनी निर्हेतुकी कृपा वश, जिनको प्रतिष्ठा प्रदान की है ॥३३॥

स केषांचिन्न सम्मान्य आदरदृष्टिभाजनम् ।
सर्वार्हगुणहीनोऽपि ब्रह्मादीनां भवेदिह ॥३४॥

वह पूजने योग्य सभी गुणोंसे हीन होने पर भी भला इस लोकमें ब्रह्मादिकोंमें भी किसके द्वारा सम्मान पाने योग्य और किसकी आदर दृष्टिका पात्र न बनेगा ? ॥३४॥

श्रीप्रबुद्ध उवाच ।

किं पुनर्योगिमुख्यानामृषभो ज्ञानिनामपि ।
श्रीमान् विदेहनृपतिर्जनको मिथिलेश्वरः ॥३५॥
भवान् सर्वगुणैर्युक्तः पूजनीयैर्महात्मभिः ।
तत्राप्यवाप्तसम्बन्धो जगन्मातामहस्य सन् ॥३६॥

श्रीप्रबुद्धयोगेश्वरजी बोले:–फिर मुख्य योगियों तथा ज्ञानियोंमें भी सर्वश्रेष्ठ, श्रीयुक्त, विदेहराज, श्रीमिथिलानरेश श्रीजनकजी ॥३५॥ जो महात्माओंके द्वारा पूजने योग्य सभी गुणोंसे युक्त, उसपर भी जगज्जननीजूके पिताका सम्बन्ध प्राप्त है, वे आप सभीके आदर और सम्मान भाजन भला क्यों न होंगे ? किन्तु अवश्य ही होना चाहिये ॥३६॥

श्रीपिप्पलायन उवाच ।

ईक्षया सर्वलोकानामुत्पत्यादिलयान्तकम् ।
नाट्यं विरचितं यस्या मायया कल्पनातिगम् ॥३७॥
तदिच्छामतिवर्तेत को नु ज्ञानमहोदधे !
स्वयं विचार्य भूपेन्द्र ! भव सुस्थिरमानसः ॥३८॥

श्रीपिप्पलायनजी बोले: जिनकी कृपाकटाक्ष मात्रसे श्रीमायादेवी समस्त लोकों की उत्पत्तिसे लेकर महाप्रलय पर्यन्तकी वह नाटक लीला कर रही हैं, जिसको कोई समझ भी नहीं सकता ॥३७॥ हे महासागरके समान अथाह ज्ञान वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज ! भला उनकी इच्छाको कौन टाल सकता है ? अर्थात् जब वे स्वयं आपको आदर देना चाहती हैं, तो उनकी इच्छाके प्रतिकूल भला कौन कर सकता है ? यह विचार कर आप अपने चित्तको पूर्ण सावधान कर लीजिये ॥३८॥

श्रीकरभाजन उवाच ।

बालेयं रूपमात्रेण शक्त्या वाग्धीमनोऽतिगा ।
दीप्तनूपुरपादाब्जा मातुरुत्सङ्गवर्तिनी ॥३९॥

श्रीकरभाजनजी बोलेः—अपने श्रीचरणकमलोंमें प्रकाशमान नूपुरोंको धारण किये हुई, श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजमान, ये श्रीललीजी केवल रूप मात्रसे ही बालिका हैं, किन्तु शक्तिके द्वारा वाणी, मन, बुद्धिसे भी परे हैं अर्थात् रूपसे तो मांकी गोदीमें विराजमान हैं ही, किन्तु इनकी शक्तिका न वाणी वर्णन कर सकती है न मन मनन और न बुद्धि निश्चय ही कर सकती है ॥३९॥

देवर्षिपितृभूताप्तनृणां नायमृणी नरः ।
न किङ्करो महाभाग ! य एनां समुपाश्रितः ॥४०॥

हे महाभाग ! अत एव जो कोई इनके आश्रित हो जाता है वह देव ऋषि पितर, भूत आदि अपने किसी भी कुटुम्बीका न ऋणी रहता है न सेवक, बल्कि सभीका पूज्य बन जाता है ॥४०॥

श्रीद्रुमिल उवाच ।

अस्या विक्रीडितं राजन् भावयन्हृदि सर्वदा ।
न बध्यते कर्मपाशैर्नरो याति परां गतिम् ॥४१॥

श्रीद्रुमिलजी बोलेः—हे राजन् ! इन श्रीललीजीकी बालक्रीडाओंका हृदयमें सदा ध्यान करते रहनेसे, मनुष्य अपने कर्मोंके रस्सेमें नहीं बँधता, बल्कि प्राणियोंकी सबसे उत्कृष्ट रक्षा करने वाली इन श्रीललीजीको ही प्राप्त हो जाता है ॥४१॥

गुणाननन्तानस्या यो गणयेत्स तु बालिशः ।
कालेन महता कामं कलयेत्पार्थिवान्कणान् ॥४२॥

बहुत कालमें पृथ्वीके कण कोई भले ही गिन ले, किन्तु जो इन श्रीललीजीके अनन्त गुणोंके गिननेका साहस करता है, वह निपट मूर्ख है ॥४२॥

श्रीचमस उवाच ।

य एनां न भजन्तीह च्युताः स्थानात्पतन्ति ते।
पण्डितमानिनो मूर्खा लोलुपा आत्मघातिनः ॥४३॥

श्रीचमसजी बोलेः—जो अपनी पण्डिताईके अभिमानमें पड़कर इन श्रीललीजीका भजन नहीं करते वे अपने पदसे गिर जाते हैं अत एव वे ? * विषय लोलुप, आत्मघाती हैं ॥४३॥

श्रीशिव उवाच ।

पुनर्भागवतान्धर्माञ्छ्रावयित्वा सविस्तरम् ।
राज्ञाऽनुपृष्टा मुनयो बभूवुस्ते तिरोहिताः ॥४४॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! पुनः श्रीमिथिलेशजी महाराजके पूछने पर भगवत्-तत्त्व मनन-शील वे नव योगेश्वर उन्हें विस्तार-पूर्वक प्रभु-भक्तोंका धर्म श्रवण कराकर गुप्त हो गये ॥४४॥

गतेष्वदृश्यतां तेषु स राजा कौतुकान्वितः ।
पूज्यवर्येषु मुनिषु तान् प्रणम्य महीयसः ॥४५॥
सदारः श्रीधरापुत्र्या पुत्रीपुत्रगणान्वितः ।
जगाम भवनं रम्यमात्मनो गगनस्पृशम् ॥४६॥

उन महाभागवतोंके गुप्त हो जानेके पश्चात् आश्चर्य युक्त हो श्रीमिथिलेशजी महाराज, मुनिवरों को प्रणाम करके ॥४५॥ पुत्री-पुत्र गणोंसे युक्त श्रीभूमि कुमारीजीके साथ श्रीमहारानीजीके सहित आकाशको स्पर्श करने वाले अपने मनोहर भवनको गये ॥४६॥

तत्रोडुराजाभमनोहराननां सिन्दूरबिन्दूल्लसितोरुमस्तकाम् ।
स्निग्धालकालङ्कृतगण्डयुग्मकामिन्दीवरोत्फुल्लविशाललोचनाम् ॥४७॥
नासाग्रमुक्तामणिशोभनाधरां ताराधिनाथांशुमनोहरस्मिताम् ।
बिम्बारुणोष्ठीं नवनीतकोमलां स्मरप्रियालङ्कृतदिव्यविग्रहाम् ॥४८॥
विष्णुप्रियाकञ्जकरैः समर्चितां नाकेश्वरीचामरलोलकुन्तलाम् ।
हारैः समुद्योतितहृच्छुभस्थलीं समाश्रितत्राणकराब्जपाणिकाम् ॥४९॥
शैलेन्द्रजासेवितपादपङ्कजां नामास्तसर्वाघचयागनिन्दिताम् ।
सखीजनैश्चन्द्रमुखैर्विराजितामुदीक्ष्य संप्रापधृतिर्विदेहराट् ॥५०॥

वहाँ पूर्ण चन्द्रमाके समान परम आह्लादकारी जिनका मनोहर श्रीमुखारविन्द है, सिन्दूरका बिन्दु जिनके विशाल मस्तक पर चमक रहा है, इत्रोंसे सींची हुई घुंघुराली अलकें जिनके कपोलों-की शोभा बढ़ा रही हैं, नीले कमलके समान जिनके विशाल नेत्र हैं ॥४७॥ नासामणि जिनके अधरों पर सुशोभित हो रही है, चन्द्र-किरणोंके समान जिनकी मनोहर मुस्कान है, कुन्दुरूके फलके सदृश लाल-लाल जिनके ओष्ठ हैं तथा जो मक्खनके समान कोमल हैं, श्रीरतिजीने जिनके दिव्य अङ्गों का शृङ्गार किया है ॥४८॥ विष्णुवल्लभा भगवती श्रीलक्ष्मीजीके करकमलों द्वारा

षोडशोपचारसे पूजित हैं, जिनकी अलकावली श्रीइन्द्राणीजीकी चँवर सेवासे हिल रही है तथा जिनकी मनोहर हृदयस्थली मणिमय हारोंसे जग मगा रही है, जिनके हस्तकमल आश्रितोंकी सदा रक्षा करने वाले हैं ॥४९॥ श्रीगिरिराजकुमारी भगवती पार्वतीजी जिनके श्रीचरणकमलोंकी सेवा कर रही हैं तथा अपनी चन्द्र मुखी सखियोंके साथ जो विराज रही हैं, उन श्रीललीजी का दर्शन करके श्रीविदेहजी महाराज अपनी देहकी सुधि बुधि भूल गये पुन धैर्यको प्राप्त हो॥५०॥

निशामयन्तीषु सुतासु सादरं रसस्वरूपां सरसं निजात्मजाम् ।
जगाद राजाऽमृततुल्यया गिरा रम्भोर्वशीड्यालिगणामिदं वचः ॥५१॥

पुत्रियोंके श्रवण करते हुये अपनी अमृत तुल्य मीठी वाणीके द्वारा आदरपूर्वक परम सुन्दरी रम्भा, उर्वशी आदि अप्सराओंके स्तुति करने योग्य सखियों वाली आनन्द-घन (ब्रह्म) स्वरूपा अपनी श्रीललीजीसे वे यह सरस वचन बोले॥ ॥५१॥

श्रीजनक उवाच ।

वदन्ति सन्तः कवयो मुनीन्द्रा रसात्मिकां त्वां प्रकृतेः परामजाम् ।
जगत्समुत्पत्तिलयादिकारिणीं निराकृतिं विश्वविमोहनाकृतिम् ॥५२॥
सहस्रनामानि निगद्य तेऽधुना गौणानि मुख्यानि समीड्यविक्रमे !
विज्ञापिता त्वं महतां महीयसामुपासनीया निखिलाण्डवासिनाम् ॥५३॥

हे विश्व-विमोहन स्वरूप वाली श्रीललीजी ! सन्त, कवि तथा मुनीन्द्र आपको प्रकृतिसे परे जन्मसे रहित, जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करने वाली, आकार रहित ब्रह्मस्वरूपा बतलाते हैं ॥५२॥ हे सब प्रकार स्तुति करने योग्य पराक्रम वाली श्रीललीजी ! ऋषियोंने आपके मुख्य-मुख्य गुणप्रचारक सहस्र नामों का वर्णन करके मुझे इस समय यह ज्ञान करा दिया है, कि आप समस्त ब्रह्माण्ड निवासी महान्से महान् चेतनों के लिये भी उपासना करने योग्य हैं, फिर साधारणोंकी बात ही क्या ! ॥५३॥

सा त्वं कृपातः क्रतुवेदिसम्भवा ममासि लोकत्रयसृष्टिकारिणी ।
अहो विचित्रं तव चारु चेष्टितं कृतार्थितोऽहं जगति त्वया ध्रुवम् ॥५४॥

सो आप तीनों लोकोंकी सृष्टि करने वाली, मेरी यज्ञ-वेदीसे प्रकट हुईं, अहो ! आपकी लीला बड़ी ही विचित्र है । आपने मुझे इस जगत्में निश्चय ही कृतार्थ कर दिया ॥५४॥

रूपं तवेदं मम दृष्टिगोचरं हृदिस्थितं चास्तु मनोज्ञमन्वहम्।
वात्सल्यभावान्वितचित्तवृत्तयस्त्वय्यस्तमायान्त्वखिलेश्वरप्रिये ! ॥५५॥

हे सर्वेश्वरप्राणवल्लभा श्रीलली जी ! मेरी आँखोंके सामने विराजमान यह आपका मनोहर बालस्वरूप मेरे हृदयमें सदा अटल रहे और मेरे चित्तकी वात्सल्यभावमयी सम्पूर्ण वृत्तियाँ भी आपमें ही लीन हो जावें ॥५५॥

यदा कदा वा खलु यासु कासु वा ममोद्भवो योनिषु जायते यदि ।
न त्वद्वियोगोऽस्तु कदापि मे प्रिये ! वरं प्रयाचे त्विदमेव वाञ्छितम् ॥५६॥

और जब कभी, जिस किसी योनिमें भी यदि मेरा जन्म हो, तो आपका वियोग मुझे कभी प्राप्त न हो, यह अपना अभीष्ट वर मैं आपसे माँगता हूँ ॥५६॥

श्रीशिव उवाच ।

इति संस्तुतयाऽऽश्वस्तः सभार्यो जनकस्तया ।
मोहिन्या माययाऽऽच्छन्नमतिः स सुस्थिरोऽभवत् ॥५७॥

इत्यष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! इस प्रकारकी स्तुति करने पर श्रीकिशोरीजीने श्रीसुनयना महारानीके समेत उन्हें आश्वासन देकर, जब अपनी मोहिनी मायासे उनके उस ज्ञानको ढक दिया, तब वे श्रीजनकजी-महाराज शान्त भावको प्राप्त हुये ॥५७॥

अथैकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

निर्विघ्न यज्ञ सम्पन्न हो जाने पर श्रीविश्वामित्रजीका श्रीजनकपुर-प्रस्थान, मार्गमें श्रीरामभद्रजूके द्वारा श्रीअहल्याजीका उद्धार कराके उनका श्रीजनकपुर प्रवेश, तथा दोनों श्रीचक्रवर्ती-कुमारोंका श्रीजनकपुर नगर-दर्शन-

श्रीशिव उवाच ।

विश्वामित्रो महातेजाः सुबाहौ निहते रणे ।
प्रक्षिप्ते चैव मारीचे रामेणाम्बुधिरोधसि ॥१॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती ! जब भगवान् श्रीरामभद्रजूने युद्धमें सुबाहुको मारा और बिना नोकके बाणसे मारीचको समुद्रके किनारे फेंक दिया, तब महातेजस्वी श्रीविश्वामित्रजी महाराज ॥१॥

मुनिभिः स्तूयमानाभ्यां लब्धकामैः समन्ततः ।
श्रीरामलक्ष्मणाभ्यां स रराजानन्दनिर्भरः ॥२॥

अपने मनोरथोंको प्राप्त हुये मुनियोंके द्वारा सब ओरसे प्रशंसा किये जाते हुये श्रीरामलक्ष्मण दोनों भइयोंके साथ आनन्द निर्भर हो परम शोभाको प्राप्त हुये ॥२॥

अथ श्रीमिथिलेन्द्रस्य पत्रं प्राप्य मुदान्वितः ।
उवाचेदं वचः श्लक्ष्णं श्रीरामं लक्ष्मणाग्रजम् ॥३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजका पत्र पाकर हर्षित हो, वे श्रीलषनलालजीके बड़े भ्राता श्रीरामभद्रजूसे, यह मीठा वचन बोले:-॥३॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

वत्स ! राम ! नरेन्द्रस्य जनकस्य कराङ्कितम् ।
प्रतिहारसमानीतमिदं पत्रमुदीक्ष्यताम् ॥४॥

हे वत्स श्रीरामभद्रजू ! दूतके लाये हुये इस पत्रको अवलोकन कीजिये, यह श्रीमिथिलेशजी-महाराजका हस्तलिखित पत्र है ॥४॥

धनुर्यज्ञप्रवृत्तेन स्वपुत्र्युद्वाहहेतवे ।
निमन्त्रितोऽस्मि भूपेन मिथिलाया महात्मना ॥५॥

अपनी पुत्रीका विवाह करनेके लिये धनुषयज्ञमें प्रवृत्त हुये, महात्मा श्रीमिथिलेशजी-महाराजने हमें निमन्त्रण भेजा है ॥५॥

अतो मया हि गन्तव्या मिथिला तात ! सत्वरम् ।
पालिता नरदेवेन विदेहेन महात्मना ॥ ६ ॥

हे तात ! इस लिये हमें शीघ्रही महात्मा श्रीविदेहजी-महाराजसे पालित श्रीमिथिलाजीको चलना है ॥६॥

तद्गृहे शाम्भवं चापमद्भुतं लोकविश्रुतम् ।
प्रदत्तं देवराताय पुरा त्र्यक्षेण वर्तते ॥७॥

उनके घर पर प्राचीन कालमें भगवान् शङ्करजीके द्वारा, श्रीदेवरातजीको दिया हुआ लोक-विख्यात अद्भुत शिव-धनुष है ॥७॥

तद्दृष्टुं शम्भुकोदण्डमयोध्यां गन्तुमर्हसि ।
सानुजस्त्वं मया साकमिदानीं मिथिलां व्रज ॥८॥

उस शिव-धनुषका दर्शन करके आप श्रीअवध पधारेंगे, अभी अपने भइया श्रीलषन लालजी के साथ मेरे सङ्ग श्रीमिथिलाजी चलें ॥८॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तं वचस्तस्य समाकर्ण्य स राघवः ।
आज्ञाप्रमाणमाभाष्य कुशिकात्मजमन्वगात् ॥९॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! अपने गुरुदेवकी इस आज्ञाको सुनकर श्रीरामभद्रजू "मुझे तो आपकी आज्ञा ही प्रमाण है" ऐसा कहकर उन कुशिक महाराजके पुत्र श्रीविश्वामित्रजी महाराजके पीछे वे चल पड़े ॥९॥

तेन श्रीरामचन्द्रेण सानुजेन महामुनिः ।
अतीव शुशुभे गच्छन् मोदमानमनाः पथि ॥१०॥

भाई श्रीलक्ष्मणके सहित श्रीराम भद्रजूके साथ-साथ प्रसन्न चित्त हो, मार्गमें चलते हुये महामुनि श्रीविश्वामित्रजी महाराज बड़ी ही शोभासे युक्त हो रहे थे ॥१०॥

गङ्गायाः पारमासाद्य गौतमस्याश्रमं शुभम् ।
स प्रविश्य कुमाराभ्यामहल्यान्तिकमाययौ ॥११॥

वे श्रीगङ्गाजीको पार करके महर्षि श्रीगौतमजीके पवित्र आश्रममें प्रविष्ट हो, दोनों श्रीराजकुमारोंके सहित श्रीअहल्याजीके समीपमें गये ॥११॥

आश्रमं तं समालोक्य सर्वजन्तुविवर्जितम् ।
फलपुष्पभराक्रान्तैर्द्रुमैरत्यन्तशोभितम् ॥१२॥

फलपुष्पोंके भारसे झुके हुये वृक्षोंसे अत्यन्त सुशोभित, उस आश्रमको सभी प्रकारके जीवोंसे रहित देखकर ॥१२॥

रामः पप्रच्छ गाधेयं स्वामिन् ! कस्य महात्मनः ।
रम्याश्रमोऽयमास्याहि सर्वजन्तुविवर्जितः ॥१३॥

श्रीरामभद्रजूने गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजीसे पूछा, स्वामिन् ! बतलाइये सब-जीवोंसे रहित यह किस महात्माका रमणीय आश्रम है ? ॥१३॥

कीदृशीयं शिला नाथ ! दृश्यते मानुषाकृतिः ।
कथ्यतां कृपयेदानीं भवता सा महामुने ! ॥१४॥

हे नाथ ! यह शिला कैसी है ? जो मनुष्यके आकारकी दिखाई दे रही है, हे महामुने ! अब आप कृपा करके उस रहस्यको भी वर्णन कीजिये ॥१४॥

श्रीशिव उवाच ।

रामस्य वचनं श्रुत्वा अहल्योद्धारसस्पृहः ।
उवाच कौशिको वाक्यं मुदितेनान्तरात्मना ॥१५॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीअहल्याजीका उद्धार चाहने वाले महर्षि श्रीविश्वामित्रजी श्रीरामभद्रजूके इस वचनको सुनकर, बड़े ही प्रसन्न चित्तसे बोले: ॥१५॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

रामभद्र ! महाबाहो ! कौशल्यानन्दवर्द्धन !
गोतमस्याश्रमं विद्धि महर्षेरिममुत्तमम् ॥१६॥

हे श्रीकौशल्या महारानीजीके आनन्दको बढ़ाने वाले बड़ी-बड़ी भुजाओंसे युक्त श्रीरामभद्रजू ! यह महर्षि गोतमजीका उत्तम आश्रम है सो जानिये ॥१६॥

गोतमर्षेस्तु पत्नीयमहल्या लोकविश्रुता ।
शिलारूपमनुप्राप्ता भर्तृशापेन राघव ! ॥१७॥

हे श्रीराघवजी ! ये लोक-विख्यात महर्षि श्रीगोतमजीकी धर्मपत्नी श्रीअहल्याजी हैं जो अपने पतिदेवके शापके कारण शिला हो गयी हैं ॥१७॥

आश्रमोऽयं मुनेर्वाक्यात्सर्वजन्तुविवर्जितः ।
तपोदत्तमतेरस्या निवासायाभवत्किल ॥१८॥

और यह आश्रम तपस्यामें बुद्धि लगाई हुई इन श्रीअहल्याजीके निवासके लिये है, जो श्रीगोतमजीके वचनानुसार समस्त जीवोंसे रहित होगया है ॥१८॥

इमां सौन्दर्यसाराढ्यां सर्वसल्लक्षणान्विताम् ।
विश्वैकसुन्दरीं पुत्रीं निर्ममे नीरजोद्भवः ॥१९॥

भगवान् की नाभि-कमलसे उत्पन्न श्रीब्रह्माजीने सौन्दर्यके सारसे युक्त सभी, शुभ लक्षणों वाली तथा विश्वमें अनुपम सौन्दर्य सम्पन्ना अपनी इस पुत्रीको बनाया ॥१९॥

हल्यं न विद्यते यस्यामहल्येति जगाद ताम् ।
पुनः कस्मै प्रदेयेयं चिन्तयित्वा मुहुर्मुहुः ॥२०॥

जब देखा कि इस पुत्रीके शरीर निर्माणमें किसी प्रकारकी भी त्रुटि नहीं है, तो उन्होंने इसका नाम अहल्या कहा, "पुनः" यह पुत्री किसे प्रदान करना चाहिये, यह वारम्बार चिन्तन करने पर२०

ब्रह्मणो बुद्धिरुत्पन्ना प्रभुया तस्य यदृच्छया।
प्रदेयेयं प्रयत्नेन मया दान्ताय योगिने ॥२१॥
एनामनिच्छते कन्यामबालब्रह्मचारिणे ।
प्रशान्तेन्द्रियचित्ताय तत्त्वविचक्रवर्तिने ॥२२॥

श्रीब्रह्माजीके हृदयमें अकस्मात् यह अटल-विचार उत्पन्न हुआ, कि अपनी इस पुत्रीको मैं यत्न पूर्वक किसी जितेन्द्रिय योगी जिसे इस कन्याकी प्राप्तिकी इच्छा न जागरित हो और जो पूर्ण बालब्रह्मचारी पूर्णशान्त चित्त तथा इन्द्रिय वाला, तत्त्ववेत्ताओंमें अत्यन्त श्रेष्ठ हो, उसीको दूँ॥२१॥२२॥

इति निश्चित्य मनसा ब्रह्मा लोकपितामहः।
आश्रमांश्च मुनीनां स सकन्यो विचचार ह ॥२३॥

समस्त लोकोंके बाबा श्रीब्रह्माजी ऐसा बुद्धिसे निश्चय करके इस पुत्रीके सहित वे मुनियोंके आश्रमोंमें विचरने लगे ॥२३॥

जातकामान् दुहितरि विहाय मुनिसत्तमान्।
आजगामाश्रमं पुण्यं गोतमस्य महात्मनः ॥२४॥

अपनी पुत्रीकी प्राप्ति चाहने वाले बड़े-बड़े मुनियोंको छोड़कर, वे श्रीब्रह्माजी महात्मा श्रीगोतम जीके इस पवित्रआश्रममें पधारे ॥२४॥

दृष्ट्वा पितामहः प्राह तं व्यवस्थितचेतसम्।
तद्वृत्तिसंपरीक्षार्थं विधिवत्तेन पूजितः ॥२५॥

श्रीगोतमजीका चित्तपूर्ण अटल देखकर, उनसे विधिपूर्वक पूजित हो, उनकी चित्त-वृत्तिकी परीक्षा लेनेके लिये श्रीब्रह्माजी बोले॥२५॥

श्रीब्रह्मोवाच।

वत्स गोतम ! भद्रं ते यावदागमनं मम।
तावदेनामहल्यां त्वं न्यासभावेन पालय ॥२६॥

हे वत्स ! गोतम ! तुम्हारा कल्याण हो, जब तक मैं पुनः वापस नहीं आता हूँ, तब तक इस अहल्याको तुम धरोहरके भावसे रक्षा करो ॥२६॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा समर्प्याङ्ग सुतां स लोकसुन्दरीम् ।
तस्मै महर्षिवर्याय पश्यतस्तत्तिरोदधे ॥२७॥

भगवान् शिवजी बोले हे पार्वती ! इतना कहकर ब्रह्माजी महर्षियोंमें श्रेष्ठ उन श्रीगोतमजीको लोकों सुन्दरी पुत्री, अहल्या सौंप कर उनके देखते ही अन्तर्हित (गुप्त) हो गये ॥२७॥

दिव्यवर्षसहस्राणि व्यतीतानि यदाऽभवन् ।
धर्मतो रक्षतोऽहल्यां महर्षेर्विदितात्मनः ॥२८॥

पुनः आत्मज्ञान-सम्पन्न महर्षि श्रीगोतमजी को धर्मपूर्वक श्रीअहल्याजी की रक्षा करते हुये जब देवताओंके कई हजार वर्ष व्यतीत हो गये ॥२८॥

तदाऽऽश्रमं पुनस्तस्य स्वयंभूराजगाम ह ।
प्रणिपत्यासनासीनं कृत्वा ऽसौ तमपूजयत् ॥२९॥

तब पुनः श्रीब्रह्माजी उनके आश्रममें पधारे, श्रीगोतमजीने प्रणाम करके उन्हें आसन पर विराजमान कर पूजन किया ॥२९॥

ततोऽहल्यां महात्मा सत्कृतां चिरपालिताम् ।
सादरं लोकगुरवे द्रुहिणाय समार्पयत् ॥३०॥

तत्पश्चात् उन्हीं ने बहुत दिनों से पाली हुई श्रीअहल्याजी को परमहर्ष पूर्वक, आदर-समन्वित लोकगुरु श्रीब्रह्माजी को अर्पण किया ॥३०॥

दृष्ट्वा तस्येदृशीं बुद्धिं निर्मलां तपसाऽर्जिताम् ।
वेधाः परमसन्तुष्टो गोतमं वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥

तपसे प्राप्त हुई उनकी इस प्रकारकी निर्मल (आसक्ति रहित) बुद्धिको देखकर श्रीब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुये और उन श्रीगोतमजीसे बोले :-॥३१॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते वृत्त्या दुर्लभयाऽनया ।
रक्षतोऽपि रहस्येनां मालिन्यं नाजगाम या ॥३२॥

हे वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारी इस दुर्लभ वृत्तिसे बहुत ही सन्तुष्ट हूँ, क्योंकि एकान्तमें इतने दिनों तक इस लोक सुन्दरी अहल्याकी रक्षा करते हुये भी वह विकारको नहीं प्राप्त हुई ॥३२॥

अतो मदाज्ञया वत्स ! गृहाणेमां शुभेक्षणाम् ।
पत्नीभावेन सेवायामिदानीं हृष्टचेतसा ॥३३॥

हे वत्स ! इस लिये आप मेरी आज्ञासे इस मनोहर नेत्रवाली अहल्याको अब पत्नी (स्त्री) भावसे अपनी सेवामें हर्ष-पूर्वक ग्रहण करें ॥३३॥

एवमाश्वास्य तं वेधा ब्रह्मलोकमुपागमत् ।
समर्प्य विधिना पुत्रीं तस्मै परमसुन्दरीम् ॥३४॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे पार्वती ! इस प्रकार श्रीब्रह्माजी श्रीगौतमजीको आश्वासन प्रदान करके विधि पूर्वक अपनी परम सुन्दरी पुत्री उन्हें समर्पण कर, ब्रह्मलोकको चले गये ॥३४॥

कदाचिन्नारदो लोकान्पर्यटन् वासवालयम् ।
आससाद मुनिश्रेष्ठो ब्रह्मपुत्रो हरिं स्मरन् ॥३५॥

किसी समय मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीब्रह्माजीके पुत्र, देवर्षि श्रीनारदजी कीर्त्तन द्वारा भगवान् श्रीहरि का स्मरण करते हुये, अनेक लोकों मे भ्रमण करते र देवराज इन्द्रके महलमें पधारे ॥३५॥

तमभ्यर्च्येति विधिना महेन्द्रः पाकशासनः ।
प्रणम्य दण्डवद् भक्त्या परिपप्रच्छ सादरम् ॥३६॥

पर्वतों पर शासन करने वाले देवराज इन्द्रने उनका विधि पूर्वक पूजन कर, प्रेम-समन्वित आदर पूर्वक प्रणाम करके, उनसे इस प्रकार पूछा–॥३६॥

श्रीइन्द्र उवाच ।

भगवंश्चित्रमाचक्ष्व यच्च किञ्चिद्विलोकितम् ।
भवता भ्रमतेदानीं लोकेषु प्रणताय मे ॥३७॥

भगवन् ! तीनों लोकोंमे भ्रमण करते हुये आपने जो कुछ आश्चर्यकी बात देखी हो उसे कृपा करके इस समय मुझ सेवकको बताइये ॥३७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तो मघवता सुरर्षिर्लोकपूजितः ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा तमिदं कौतुकप्रियः ॥३८॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! इन्द्रके इस प्रकार पूछने पर प्रसन्न चित्त हो, सभी लोकोंसे पूजित, कौतुकप्रिय, देवर्षि श्रीनारदजी महाराज उनसे यह बोले: ॥३८॥

श्रीनारद उवाच ।

साम्प्रतं गोतमस्याहं वल्लभां तच्छुभाश्रमे ।
दृष्टवानस्मि देवेन्द्र । परमाश्चर्यरूपिणीम् ॥३९॥

हे देवराज ! इस समय सबसे बढकर आश्चर्यकी स्वरूप मैंने गोतमपत्नी श्रीअहल्याजीको उनके आश्रममें देखा है ॥३९॥

तादृशी नैव गन्धर्वी न यक्षी न च पन्नगी ।
न ते प्राणप्रिया शक्र । नो रती रूपसम्पदा ॥४०॥

सौन्दर्य सम्पत्तिमें उन अहल्याजीके समान न कोई गन्धर्वी है न यक्षी न नागकन्या न आपकी प्रिय शची और न रति ॥४०॥

इदं हि परमाश्चर्यं मयेदानीं विलोकितम् ।
स्वरूपदर्पनाशाय सर्वासां साऽजनिर्मिता ॥४१॥

इस समय सबसे बडा आश्चर्य मैंने यही देखा है, मेरा अनुमान तो यह है कि सभी स्त्रियोंका सौन्दर्य-जनित अभिमान नष्ट करनेके लिये ही विधाताने, उन श्रीअहल्याजी को बनाया है ॥४१॥

श्रीशिव वाच ।

एवमाभाष्य देवर्षौ स तस्मिन्प्रस्थिते सति ।
रूपश्रवणमात्रेणाहल्यासक्तमना अभूत् ॥४२॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! इतना कहकर जब वे देवर्षि श्रीनारदजी महाराज चले गये, तब इन्द्रका मन सुन्दरता सुनने मात्रसे ही श्रीअहल्याजीके प्रति आसक्त हो गया ।

ततः कामविमूढात्मा शक्रस्त्रिदशपुङ्गवः ।
साकं चन्द्रमसा प्रागाद्गोतमस्याश्रमं निशि ॥४३॥

इस लिये देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्र काम वासनासे ज्ञान नष्ट हो जानेके कारण चन्द्रमाके साथ रात्रि में श्रीगोतमजीके आश्रम पर गया ॥४३॥

तेजसा तस्य भीतात्मा न प्रविश्य बहिः स्थितः।
निशीथे शशिनं प्राह लम्पटः स्वानुयायिनम् ॥४४॥

किन्तु महर्षि गोतमजीके तेजसे भयभीत मन हो कर, वह पर स्त्रीलम्पट (इन्द्र) भीतर न जाकर बाहर ही रहा और जब अर्द्ध रात्रिका समय आया, तब अपने अनुयायी चन्द्रमासे बोला ॥४४॥

श्रीइन्द्र उवाच ।

चन्द्रारुणशिखो भूत्वा कुरु शब्दं परिस्फुटम् ।
येनासौ तपसां राशिरिदानीमेव सत्वरम् ॥४५॥
ब्राह्मं मुहूर्त्तमाज्ञाय गङ्गां स्नातुमितो व्रजेत् ।
मुनौ याते ऽन्तरं लब्ध्वा तत्स्वरूपो व्रजानि ताम् ॥४६॥

हे चन्द्रदेव ! तुम मुर्गा बन कर अपनी स्पष्ट बोली बोलो जिससे तपोराशि श्रीगोतमजी इस समय शीघ्रता पूर्वक ब्राह्ममुहूर्तको जानकर स्नान करनेके लिये गंगा चले जावें, उनके आश्रमसे चल जाने पर अवकाश पाकर मैं गोतमजीका स्वरूप धारण करके उस अहल्याके पास जाऊँगा ॥४६॥

छद्मना वञ्चयित्वा तामहल्यां लोकसुन्दरीम् ।
अहं स्वं रूपमास्थाय करिष्यामि तव प्रियम् ॥४७॥

मुनिवेषके द्वारा लोकसुन्दरी उस अहल्याको ठग कर अपने इन्द्र रूपमें स्थित हो मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा ॥४७॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्यादिष्टो महेन्द्रेण शब्दं चक्रे पुनः पुन ।
भूत्वा स कुक्कुटस्तेन त्यक्तनिद्रोऽभवन्मुनिः ॥४८॥

भगवान् शिवजी बोले :—हे पार्वती ! इन्द्रकी इस आज्ञाको पाकर वह चन्द्रमा मुर्गा बनकर बार बार शब्द करने लगा, उस शब्दसे श्रीगोतमजी महाराजकी निद्रा भङ्ग हो गयी ॥४८॥

ब्राह्ममुहूर्त्तसंभ्रान्त्या हरिध्यानसमन्वितः ।
मज्जनार्थं ययौ गङ्गां महेन्द्रस्तत्स्वरूपधृक् ॥४९॥

और वे ब्राह्म मुहूर्तके धोखेसे भगवान् श्रीहरी का ध्यान करते हुये उधर वे स्नानके लिये श्रीगङ्गाजी पधारे और इधर इन्द्र ने उनका स्वरूप धारण कर ॥४९॥

संप्रविश्याश्रमं तस्य न्यस्तचीरकमण्डलुः ।
उवाचाहल्यया पृष्टस्तां परिष्वज्य देवराट् ॥५०॥

उनके आश्रम में जा कर अपना चीर कमण्डलु रख दिया,जब श्रीअहल्याजी ने तुरत वापस आने का कारण पूछा,तब वह उनका आलिङ्गन करके बोला ॥५०॥

श्रीइन्द्र उवाच ।

नास्ति ब्राह्ममुहूर्तोऽयं निशीथसमयः प्रिये ।
मन्मथाग्निप्रशान्त्यर्थं त्वामहं समुपेयिवान् ॥५१॥

हे प्रिये ! यह अर्द्ध रात्रिका समय है, ब्राह्म मुहूर्त नहीं, अतः कामाग्नि को शान्त करनेके लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ ॥५१॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्त्वा तां गतो भोक्तुं मुनेर्भीत्याऽऽशु निर्ययौ ।
यदृच्छयाऽऽश्रमद्वारं गोतमोऽपि तदाऽऽगमत् ॥५२॥

भगवान् शिवजी बोले—हे पार्वती ! इतना कहकर वह आनन्द पूर्वक उनका भोग करनेके लिये गया पुनः महात्मा श्रीगोतमजीके भयसे वह शीघ्र ही बाहर निकला, किन्तु दैवसंयोगसे उसी समय अपने आश्रमके द्वार पर श्रीगोतमजी भी आपहुँचे ॥५२॥

दृष्ट्वाऽन्यं गोतमं सोऽपि चित्र दध्यौ ततोऽञ्जसा ।
शशाप वृत्तमाज्ञाय सर्वं तस्य महामुनिः ॥५३॥

महामुनि श्रीगोतमजीने उन दूसरे गोतमको देखकर आश्चर्य युक्त हो ध्यान किया, उससे अनायास ही सारी करतूतें समझकर इन्द्रको शाप दे दिया ॥५३॥

श्रीगोतम उवाच ।

योनिलम्पट ! दुष्टात्मन् ! धिक्त्वां श्रीमदोद्धतम् ।
मम शापप्रभावेण सहस्रभगवान्भव ॥५४॥

श्रीगोतमजी बोले:—हे योनिलम्पट ! (व्यभिचारी) नीच बुद्धि ! इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यके अभिमान से बहुत ही उद्दण्ड हो गये हो ! अत एव तुम्हें धिक्कार है, मेरी शापके प्रभावसे तू हजार योनि वाला हो जा ॥५४॥

विवाहवेषं श्रीरामं दृष्ट्वा विगतकल्मषः ।
सहस्राक्षः प्रभविता तमित्युक्त्वाऽब्रवीत्प्रियाम् ॥५५॥

त्रेता युगमें विवाहवेष धारी भगवान श्रीराम का जब तुम्हें दर्शन होगा, तब मेरी इस शापसे

मुक्त होकर तू हजार नेत्र वाला होगा, इस प्रकार इन्द्रको शाप देकर वे अपनी प्रिया श्रीअहल्या-जीसे बोले ॥५५॥

शिलामयी तपोयुक्ता तिष्ठ पापे ! शतं समाः ।
दुष्कृतेः फलमेवेदं रामस्त्वामुद्धरिष्यति ॥५६॥

हे पापे ! तू शिला रूप होकर तपस्या करती हुई सैकड़ों वर्षों तक यहीं पड़ी रह, यही कुकर्म का फल है। तेरा उद्धार भगवान् श्रीराम करेंगे ॥५६॥

विधुं कम्पितसर्वाङ्गं ताडितं मृगचर्मणा ।
संस्तुवन्तं मुनिः प्राह नीच ! कर्मफलं व्रज ॥५७॥

चन्द्रमाको मृगचर्मसे मारने पर जब वह सभी अङ्गोंसे काँपता हुआ उनकी स्तुति करने लगा, तब वे मुनि बोले:—हे नीच ! अपने कर्म का फल भोग ॥५७॥

ताडितोऽसि मया यस्माद्रुषा त्वं मृगचर्मणा ।
चिरं लोक प्रमाणार्थं भव त्वं मृगलाञ्छनः ॥५८॥

मैं ने क्रुद्ध हो कर जो तुझे मृगचर्म से मारा है अत एव लोक प्रमाणार्थ सदाके लिये तेरे शरीरमें मृगका चिन्ह हो जाय ॥५८॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमिन्द्रं सचन्द्रं तं तथाऽहल्यां निजप्रियाम् ।
कृत्वा शापपरिक्लिष्टां महेन्द्राचलमभ्यगात् ॥५९॥

इसप्रकार श्रीगौतमजी महाराज चन्द्रमाके सहित उस इन्द्र को तथा अपनी प्रिया अहल्या को शाप पीड़ित करके महेन्द्राचल नामके पर्वतपर चले गये ॥५९॥

नीचकर्मरता बुद्धिर्यस्य नीचः स उच्यते ।
महत्यासक्तबुद्धिर्हि महात्मेति निगद्यते ॥६०॥

हे पार्वती ! जिसकी बुद्धि नीच कर्मोंमें आसक्त है, वस्तुतः उसी को नीच कहा गया है, और जिसकी बुद्धि परब्रह्म परमात्मा भगवान्में आसक्त होती है, उसे ही महात्मा कहते हैं ॥६०॥

पदेनेन्द्रः सुराधीशस्तथा चन्द्रः सुधाकरः ।
कीदृशं तु फलं लब्धमुभाभ्यां नीचकर्मणः ॥६१॥

पदमें इन्द्रको देवताओं का राजा और चन्द्रमा अमृतकी खान कहा गया है, किन्तु उन दोनों ने अपने नीच कर्म का फल किस प्रकार प्राप्त किया ॥६१॥

अतः सर्वैः प्रयत्नेन बहिष्कार्या दुरेषणा।
यया मलिनतां याता बुद्धिः सर्वविनाशिनी ॥६२॥

इस लिये सभी साधकोंको पूर्ण प्रयत्नके साथ अपने हृदयसे दुर्वासनाको बाहर निकाल देना चाहिये, जिसके संसर्गसे बुद्धि मलिनताको प्राप्त कर सर्व विनाशिनी बन जाती है ॥६२॥

दण्डो लोकोपकारार्थं सत्प्रदत्तो हरीच्छया।
परेशार्पितचित्तानां तमः स्थानं कुतो हृदि ॥६३॥

हे पार्वती! महात्माओंका दिया हुआ दण्ड लोकोपकारके लिये भगवानकी इच्छासे होता है अन्यथा जिनका चित्त त्रिगुणातीत अपार सुखसिन्धु उन भगवान् श्रीहरिमें आसक्त है, उनके हृदयमें फिर भला तमोगुणके लिये कहा अवकाश? जिससे क्रोध उत्पन्न हो ॥६३॥

अतस्तु गौतमस्यायं दण्डो लोकोपकारकः।
महामहात्मनो देवि! भगवत्प्रेरितात्मना ॥६४॥

हे देवि! इस लिये महात्माओंमें श्रेष्ठ उन श्रीगौतमजीकी भगवत्प्रेरित बुद्धिसे दिया हुआ यह दण्ड, लोक-कल्याण-कारक ही है ॥६४॥

कारणं भर्तृशापस्य प्रोच्येत्थं गाधिनन्दनः।
रामेण सादरं पृष्टः कौतुकासक्तचेतसा ॥६५॥

कौतुकासक्त चित्त भगवान् श्रीरामजीके आदरपूर्वक पूछने पर गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजी ने इस प्रकार श्रीअहल्याजीके पतिशाप का कारण बतलाकर ॥६५॥

रामं कमलपत्राक्षं लक्ष्मणेनोपशोभितम्।
पुनः संश्लक्ष्णया वाचा सप्रमोदमवोचत ॥६६॥

पुनः मीठी वाणी द्वारा श्रीलक्ष्मण भाईसे सुशोभित कमल दललोचन श्रीरामभद्र जूसे बोले ॥६६

श्रीविश्वामित्र उवाच।

वत्स! श्रीराम! भद्रं ते भर्तृशापप्रपीडिताम्।
इमां स्वपादपद्मेन संस्पृश्योद्धर्तुमर्हसि ॥६७॥

हे वत्स श्रीरामभद्रजू! आपका मङ्गल हो, अपने श्रीचरण-कमल द्वारा स्पर्श करके पतिशाप से पीड़ित इस अहल्या का उद्धार कीजिये ॥६७॥

नान्यथाऽस्या विमोक्षः स्यान्मुनिवाक्यप्रमाणतः ।
अतः स्वपादरजसा कृपयैनां समुद्धर ॥६८॥

श्रीगौतमजी की वाणीके प्रमाणके कारण इसका और किसी अन्य साधन द्वाराके, उस शापसे छुटकारा हो ही नहीं सकता, इस हेतु आप अपनी चरण-धूलिके द्वारा कृपा करके इस अहल्या का पूर्ण उद्धार कीजिये ॥६८॥

ऋषिपत्नीति विज्ञाय पादसंस्पर्शपातकात् ।
नास्तु ते साध्वसं किंचित्तात ! मद्वाक्यगौरवात् ॥६९॥

मेरी आज्ञा प्रधान होनेके कारण "यह ऋषि पत्नी है ऐसा समझ कर" आप अपने श्रीचरण-कमल द्वारा इसके स्पर्श जनित अपराधसे न डरें; क्योंकि मेरी आज्ञा परम मान्य होने के कारण आपको अपराध न लगेगा ॥६९॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्तो राजराजेन्द्रसूनुर्भुवनसुन्दरः ।
रामो राजीवपत्राक्षस्तं ननाम मुनीश्वरम् ॥७०॥

श्रीविश्वामित्र महाराज द्वारा इस प्रकार आज्ञा मिलने पर, भुवनसुन्दर कमलदललोचन, चक्रवर्ती कुमार श्रीरामभद्रजूने उन्हें प्रणाम किया ॥७०॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततः स रघुवल्लभः ।
पस्पर्श पादपद्मेन मुनिभार्यां शिलामयीम् ॥७१॥

तत्पश्चात् हाथ जोड़े हुये वे रघुकुलके परम प्यारे श्रीराघवेन्द्र सरकारजूने उस शिलामयी मुनिपत्नी श्रीअहल्याजीका, अपने कमलवत् सुकोमल चरणसे स्पर्श किया ॥७१॥

तस्य सा स्पर्श मात्रेण निर्धूताऽशेषकिल्बिषा ।
श्रीरामं स्तोत्रयामास समुत्थाय कृताञ्जलिः ॥७२॥

उस (श्रीचरण-कमलके) स्पर्श मात्रसे ही उन श्रीअहल्याजीके सब पाप नष्ट हो गये अतः वह ऋषि पत्नी रूपमें प्राप्त हो उठी और अपने दोनों हाथ जोड़े हुई भगवान् श्रीरामभद्रजूकी स्तुति करने लगी ॥७२॥

तस्यै तु वाञ्छितं प्रादात्कृपार्द्रनयनो हरिः ।
पूजितः परया भक्त्या वन्द्यमानो मुहुर्मुहुः ॥७३॥

पुनः बड़ी श्रद्धा-पूर्वक उसने प्रभु श्रीरामजी का पूजन और बारंबार प्रणाम किया जिससे भक्त दुःखापहारी प्रभु श्रीरामभद्रजूने कृपा वश सजल नेत्र हो, उन श्रीअहल्याजीको मनोभिलषित वर प्रदान किया ॥७३॥

रामं सलक्ष्मणं नत्वा विश्वामित्रं मुहुर्मुहुः ।
रामात्मा साश्रुनेत्रा सा लब्धाज्ञा पतिमभ्यगात् ॥७४॥

श्रीलखनलालजीके समेत श्रीरामभद्रजू तथा श्रीविश्वामित्रजी-महाराजको बारम्बार प्रणाम करके प्रभु श्रीरामको हृदयमें विराजमान किये हुई, उनकी आज्ञा लेकर सजल नेत्र हो वे श्रीअहल्याजी अपने पतिदेव श्रीगौतमजीके पास पधारीं । ७४॥

ततो विदेहनगरं प्रविवेश महामुनिः ।
कृतार्थयन् पथिगतान् दर्शनेन कुमारयोः ॥७५॥

श्रीअहल्याजीका उद्धार हो जानेके बाद महामुनि श्रीविश्वामित्रजी, दोनों श्रीराजकुमारोंके दर्शनों द्वारा मार्गमें आये हुये समस्त सौभाग्यशाली प्राणियोंको कृतार्थ करते हुये विदेहपुरी श्रीमिथिलाजीमें पहुँचे ॥७५॥

रम्यमाराममालोक्य सर्वकालसुखावहम् ।
तत्रोवास महातेजा उभाभ्यां स तपोधनः ॥७६॥

सब कालमें सुख पहुँचानेवाले एक मनोहर बगीचेको देखकर महातेजस्वी, तपोधन श्रीविश्वामित्रजी महाराजने दोनों राजकुमारोंके समेत उसीमें निवास किया ॥७६॥

जनेभ्यस्तत्समाश्रुत्य मिथिलेशो द्विजैर्वृतः ।
वासं जगाम तत्तूर्णं स्वागतार्थमनिन्दितः ॥७७॥

जब लोगोंके द्वारा यह समाचार श्रीमिथिलेशजी महाराजने सुना, तब ब्राह्मण समाजसे घिर कर सर्वलोकोंमें प्रशंसित,श्रीजनकजी महाराज उनका स्वागत करने के लिये तुरत उसवाटिकामें गये ७७

ननाम दण्डवद्भूमौ गाधेयं तपसां निधिम् ।
कुमारौ पुनरालोक्य दशरथस्य मोहितः ॥७८॥

सम्पूर्ण तपोंकी निधि गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजीको प्रणाम कर, श्रीदशरथजी महाराजके राजकुमारों का दर्शन करके वे वेसुध हो गये। ७८॥

प्रतिलब्धधृती राजा पप्रच्छ जनको मुनिम् ।
हर्षगद्गदया वाचा कौतूहलसमन्वितः ॥७९॥

जब कुछ सावधान हुये तब वे राजा श्री जनकजी महाराज आश्चर्य युक्त हो, हर्षसे गद्गद हुई वाणी द्वारा पूछने लगे ॥७९॥

हास्यस्पर्द्धितसोमांशू दीप्तकोदण्डधारिणौ ।
काकपक्षधरौ वीरौ माधुर्याम्बुधिसत्कृतौ ॥८०॥

जिनकी मुस्कानसे चन्द्रकिरणें डाह कर रही हैं, जो प्रकाशमान धनुषको धारण किये हुये हैं और जिनके शिरपर काकपक्षके समान सुन्दर पीछेकी ओर घुमाये हुये केशोंकी शोभा है, जिनकी सुन्दरताका सत्कार अथाह समुद्र करता है क्योंकि वह अपनेको इतना बड़ा और अथाह नहीं मानता, जितनी उनकी सुन्दरताको, फिर भी जो वीर हैं ॥८०॥

इमौ कौ मुनिशार्दूल ! नीलपीतमणिप्रभौ ।
कुमारौ पद्मपत्राक्षौ राकापतिनिभाननौ ॥८१॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! नील, पीत-मणिके समान श्यामगौर प्रकाश युक्त, कमलदल-लोचना एवं पूर्ण चन्द्रमाके समान आह्लादकारी मनोहर मुख वाले ये दोनों राजकुमार कौन हैं ? ॥८१॥

भासयन्तौ दिशः सर्वा ह्लादयन्तौ चराचरम् ।
राजतः कोटिकामाभौ सहजानन्दविग्रहौ ॥८२॥

जो करोड़ो कामदेवके समान सुन्दर, स्वाभाविक आनन्दस्वरूप अपने सहज प्रकाशसे दशो दिशाओंको प्रकाशित और सम्पूर्ण चर-अचर प्राणियोंको आह्लादित करते हुये विराज मान हैं ॥८२॥

मुनिपुत्रौ च वा कच्चिद्राजवंशविभूषणौ ।
द्विधा कृत्वाऽथवाऽऽत्मानं साक्षाद्ब्रह्म विराजते ॥८३॥

क्या ये दोनों बालक मुनि पुत्र हैं ? अथवा राजकुलभूषण ? अथवा साक्षात् ब्रह्मही तो नहीं अपने श्याम-गौरमय दो रूप बनाकर स्वयं विराजमान हैं ? ॥८३॥

यस्मात्सहजवैराग्यस्वरूपं मे मनः प्रभो !
आसक्तिं परमां प्राप प्रेक्ष्य चन्द्रं चकोरवत् ॥८४॥

हे प्रभो! क्योंकि मेरा मन स्वाभाविक वैराग्यस्वरूप है, वह भी इनका दर्शन करके इस प्रकार आसक्त हो गया है, जैसे चन्द्रको देखकर चकोर हो जाता है ॥८४॥

इमां मे संशयग्रन्थिं सुदृढां छेत्तुमर्हसि।
मुनिवर्य! कृपासिन्धो! सर्वदा दीनवत्सल! ॥८५॥

हे दीनों पर सदैव वात्सल्य भाव रखने वाले! मुनियोंमें श्रेष्ठ! हे कृपा सागर! मेरे हृदय की इस शङ्का रूपी पक्की गाँठ को आप काटने की कृपा कीजिये ॥८५॥

श्रीविश्वामित्र उवाच।

अमृषैव विमर्शस्ते योगीन्द्रकुलभूषण!
ख्यातौ दशरथस्यैतौ तनयौ रामलक्ष्मणौ ॥८६॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोले: हे योगीन्द्र कुलभूषण श्रीमिथिलेशजी महाराज! आप का अनुसन्धान (सन्देह) ठीक ही है किन्तु श्रीरामलक्ष्मण ये दोनों भाई श्री दशरथजी महाराजके पुत्र कहाते हैं ॥८६॥

क्रतुरक्षार्थमानीतौ याचयित्वा महानृपम्।
अयोध्यातो महाभाग! स्वाश्रमं मुनिसङ्कुलम् ॥८७॥

हे महासौभाग्यशाली राजन्! इन्हें मैं यज्ञ की रक्षाके लिये श्रीचक्रवर्ती (दशरथ) जीसे माँग कर श्रीअयोध्याजीसे ही अपने मुनियोंसे भरे हुयेआश्रममें लाया था ॥८७॥

यज्ञं प्रकुर्वतस्तत्र मुनिभिर्मम रक्षसाम्।
क्रतुद्विषां कुबुद्धीनां संहारो लीलया कृतः ॥८८॥
सानुजेन क्षणार्द्धेन रामेणानेन भूपते।
बाणेनैकेन च क्षिप्तो मारीचो मुनिहिंसकः ॥८९॥
तीरे महोदधेराशु तस्य मृत्युमनिच्छता।
सुबाहौ निहते युद्धे कौतुकं तदभूत्परम् ॥९०॥

वहाँ मुनियोंके सहित जब मैं यज्ञ करने लगा, तब यज्ञ विध्वंसक, दुष्ट बुद्धि, राक्षसोंने आक्रमण किया, उन्हें अपने छोटे भाई श्रीलखनजीके सहित इन्हीं श्रीरामभद्रजूने खेल-पूर्वक मार डाला। पुनः युद्धमें सुबाहु राक्षसके मारे जाने पर मुनियोंकी हिंसा करनेवाले मारीचकी मृत्यु न

चाहनेके कारण इन श्रीरामभद्रजूने अनायास ही अपने बिना नोकके वाणसे उसे महोदधि (महासागर) के किनारे फेंक दिया, सो बड़ी ही लीला हुई ॥८८॥८९॥९०॥

अथायं सानुजो रामः पूज्यमानो महात्मभिः ।
कर्मणा तेन मुदितैर्मयाऽऽपद्गौतमाश्रमम् ॥९१॥

यज्ञपूर्ण करादेनेसे प्रसन्न हुये महात्माओंके द्वारा पूजित होते हुये अपने छोटे भइयाके सहित ये श्रीरामभद्रजू मेरे साथ श्रीगौतमजीके आश्रममें गये ॥९१॥

भर्तृशापविनिर्मुक्तामहल्यां मदनुज्ञया ।
स्वपादस्पर्शमात्रेण कृतवान् रघुनन्दनः ॥९२॥

यहाँ भी इन श्रीरघुनन्दनजूने मेरी आज्ञासे अपने श्रीचरण-कमलके स्पर्श मात्रसे ही अहल्याको अपने पति (महर्षि श्रीगौतमजी) की शापसे मुक्त किया है ॥९२॥

धनुर्दर्शनलाभाय मदाज्ञां परिपालयन् ।
आगतो मिथिलाधीश ! सानुजो भवतः पुरीम् ॥९३॥

हे श्रीमिथिलामहीपतिजू ! अब ये मेरी आज्ञाको पालन करते हुये अपने लघु भ्राताजूके सहित धनुष-दर्शनका लाभ लेनेके लिये ही आपकी पुरीमें आये हैं ॥९३॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तो नराधीशो जनको गाधिजन्मना ।
प्रहर्षं परमं लेभे लालयन् बहुशो हि तौ ॥९४॥

भगवान् श्रीशिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीविश्वामित्रजी महाराजके इस प्रकार परिचय देने पर श्रीजनकजी महाराजने दोनो श्रीराजकुमारोंका बहुत प्रकारसे लाड़ करते हुये महान् हर्षको प्राप्त किया ॥९४॥

आसनाशनसंवेशप्रबन्धं समयोचितम् ।
कारयित्वा नृपस्तेषामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥९५॥

पुनः उनके आसन, भोजन, शयनका समयोचित प्रबन्ध कराके श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीविश्वामित्र मुनिकी आज्ञा पाकर, अपने महलमें प्रवेश किया ॥९५॥

रामो बन्धोरभिप्रायं विज्ञाय भ्रातृवत्सलः ।
गाधिजं निजगादेदं प्रणिपत्य शुभं वचः ॥९६॥

अपने भाइयों पर वात्सल्य भाव रखने वाले श्रीरामभद्रजू अपने भइया श्रीलखनलालजीके हृदयकी उत्कण्ठा समझकर प्रणाम करके, गाधिपुत्र श्रीविश्वामित्रजीसे यह शुभ वाणी बोले ॥९६॥

श्रीराम उवाच ।

इदानीं द्रष्टुमिच्छाऽस्ति नगर्य्यां लक्ष्मणोरसि ।
स्वयं भियाऽप्यमाख्यातुं भवन्तं नैव वाञ्छति ॥९७॥

श्रीरामभद्रजू बोले:-हे नाथ ! इस समय श्रीलखनलालजीके हृदयमें श्रीजनकपुर को देखने की इच्छा है, किन्तु भयके कारण उसे, ये आपसे स्वयं नहीं कहना चाहते ॥९७॥

अनुज्ञां प्राप्नुयां स्वामिंस्तत्र चेदविलम्बतः ।
नगरीं दर्शयित्वेमां शीघ्रमागम्यते मया ॥९८॥

हे स्वामिन् ! इस लिये यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं लखनलालजीको नगरका दर्शन कराके शीघ्र वापस चला आऊँ ॥९८॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

गच्छ वत्स ! पुरं रम्य सानुजः पूर्निवासिनाम् ।
दर्शनेनात्मनो रूपं लोचनानि कृतार्थय ॥९९॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोले:-हे वत्स ! अपने अनुजके सहित आप इस मनोहर नगरमें पधारें और अपना सुन्दर स्वरूप दिखलाकर पुरवासियोंके नेत्रोंको कृतार्थ करें ॥९९॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्तं वचनं तस्य सन्निशम्य तमानतः ।
लक्ष्मणानुचरो रामः प्रविवेशोत्तमां पुरीम् ॥१००॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीविश्वामित्रजी-महाराजके कहे हुये इस वचनको सुनकर श्रीरामभद्रजूने गुरुदेवको प्रणाम करके श्रीलखनलालजीके आगे चलकर उस उत्तम नगरमें प्रवेश किया ॥१००॥

रामं तमद्भुताकारं दृष्ट्वा नागरबालकाः ।
अन्वीयुः परमानन्दनिर्भरा रघुनन्दनम् ॥१०१॥

उन विलक्षण सुन्दर स्वरूपवान श्रीरामभद्रजीका दर्शन करके, नगरके बालक ब्रह्मानन्दसे परिपूर्ण हो श्रीरघुनन्दनप्यारेजूके पीछे लगे ॥१०१॥

कुत्रत्यौ कस्य वंशेनौ भवन्तौ कुत आगतौ ।
काभ्यां मङ्गलनामभ्यां कुमारौ ! लोकविश्रुतौ ॥१०२॥

आप कहाँके रहनेवाले हैं ? किस वंशको सूर्यके समान आप जगत्‌में विख्यात कर रहे हैं ? आप आये कहाँसे हैं ? हे युगलकुमार ! आप दोनोंको किन मङ्गलमय नामोंसे पुकारा जाता है १०२

श्रीशिव उवाच ।

इत्यादिकाञ्छुभान्प्रश्नान् रामस्य मधुरं वचः ।
जनाः संश्रोतुमिच्छन्तः कुर्वन्तोऽनुययुर्मुदा ॥१०३॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीरामलालजूकी मधुर वाणी सुननेकी इच्छासे पुरवासी लोग, इस प्रकारके अनेक प्रश्न करते हुये उनके पीछे लगे ॥१०३॥

बालका आदृतास्ताभ्यां भाषणस्मितवीक्षणैः ।
ऊचुः प्रेमार्द्रया वाचा दर्शयन्तोऽङ्गुलीङ्गितम् ॥१०४॥

पुनः वाणी मुस्कान और चितवनके द्वारा उन दोनों श्रीराजकुमारोंसे आदर पाकर वे श्रीमिथिलानिवासी बालकवृन्द, अपनी प्रेम भीनी वाणीसे अङ्गुलीका सङ्केत करते हुये बोले—॥१०४॥

श्रीबालकाऊचुः ।

इदं गजाननागारमिदं तु गिरिजागृहम् ।
पश्यतं शारदावेश्म रमागेहमिदं शुभम् ॥१०५॥

यह श्रीगणेशजीका मन्दिर है, यह मन्दिर श्रीपार्वतीजीका, देखिये यह श्रीसरस्वतीजीका और यह मनोहर मन्दिर श्रीलक्ष्मीजीका है ॥१०५॥

धेनुशालाततो पुण्ये पश्यतं वाजिनामिमे ।
कुञ्जराणामिमे पङ्क्ती दृश्येते परमोच्छ्रिते ॥१०६॥

ये दोनों पवित्र पंक्तियाँ गौशालाकी हैं, ये देखिये दोनों अश्वशाला की पंक्तियाँ हैं, ये दोनों परम ऊँची पङ्क्तियाँ गजशालाओं की दिखाई देती हैं ॥१०६॥

महिषीणामिमे राजी विद्यालयतती शुभे ।
आगन्तुकमहीपानामिमे पङ्क्ती सुसद्मनाम् ॥१०७॥

ये दोनों पंक्तियाँ भैंसीशाला की और ये दोनों मनोहर पङ्क्तिया विद्यालयों की हैं, ये सुन्दर महलों की पंक्तियाँ आगन्तुक राजाओं की हैं ॥१०७॥

सुमतस्येदमागारं पश्यतं दिशि पश्चिमे ।
श्रीसन्धिवेदनस्येदं मन्त्रिणो भवनं शुभम् ॥१०८॥

देखिये पश्चिम दिशामें यह महल श्रीसुमतमन्त्रीजीका और यह श्रीसन्धिवेदन मन्त्रीका उत्तम महल है ॥१०८॥

जयमानस्य सदनं सुदर्शनगृहं तथा ।
विष्वक्सेनस्य निलयः सुदाम्नोऽयं शुभालयः ॥१०९॥

यह श्रीजयमानमन्त्री का महल है, यह महल श्रीसुदर्शन मन्त्रीजी का है, यह विष्वक्सेन मन्त्री जी का महल है, यह उत्तम महल श्रीसुदामा मन्त्रीजीका है ॥१०९॥

पश्यतं पद्मपत्राक्षौ सुनीलस्य निवेशनम् ।
इदं वेश्म विधिज्ञस्य वसुखण्डसमुच्छ्रितम् ॥११०॥

हे कमलदललोचन ! देखिये यह सुनील मन्त्रीका महल है, यह आठ खण्ड ऊँचा महल विधिज्ञ मन्त्रीजीका है ॥११०॥

इदं तु पश्चिमे रम्यं श्रीविलाकरमन्दिरम् ।
चन्द्रभानोरिदं सद्म पश्यतं स्मितमोहनौ ॥१११॥

पश्चिममें यह मनोहर मन्दिर श्रीविलाकरजीका है, हे अपनी मुस्कानसे मुग्ध कर लेनेवाले सरकार ! देखिये यह श्रीचन्द्रभानु महाराजका महल है ॥१११॥

अयं प्रतापनावासो ह्यसौ जयपताकिनः ।
अरिमर्दनवेश्मेदं युवाभ्यां समुदीक्ष्यताम् ॥११२॥

यह महल श्रीप्रतापन महाराजका है, यह श्रीविजयध्वज महाराजका महल है, देखिये यह श्रीअरिमर्दनजी महाराजका महल है ॥११२॥

श्रीतेजःशालिनो वेश्म विशालमिदमुच्छ्रितम् ।
राज्ञीहट्टमिदं रम्य दृश्यते बहुविस्तृतम् ॥११३॥

यह विशाल और ऊँचा महल श्रीतेजःशालीजी महाराजका है, यह बहुत विस्तारमें जो दिखाई दे रहा है, वह रानी बाजार है ॥११३॥

इदं शत्रुजिदागार श्रीयशः शालिनस्त्विदम् ।
अस्तीदमुत्तरद्वार श्रीयशध्वजमन्दिरम् ॥११४॥

यह शत्रुजित् महाराजका महल है, यह महल श्रीयशः शालीजी महाराजका है, उत्तर द्वार वाला यह महल श्रीयशध्वज महाराजका है ॥११४॥

इदं वीरध्वजस्यास्ति भवनं मोहनेक्षणौ !
पश्यतं भूरिशोभाढ्यं रिपुतापनमन्दिरम् ॥११५॥

दर्शन मात्रसे मुग्ध कर लेने वाले हे दोनों सरकार! यह श्रीवीरध्वजमहाराजका महल है, देखिये–यह बहुत ही शोभा युक्त महल श्रीरिपुतापनजी महाराजका है ॥११५॥

हंसध्वजस्य निलयो मनोज्ञो दृश्यतामयम् ।
इदं केकिध्वजस्यास्ति दर्शनीयं निकेतनम् ॥११६॥

देखिये यह मनोहर महलश्री हंसध्वज महाराजका है, यह केकिध्वजका सुन्दर महल है ११६

इदं तु परमं रम्यं श्रीकुशध्वजमन्दिरम् ।
भ्रातुः सहोदरस्यास्ति मिथिलाया महीपतेः ॥११७॥

यह परम मनोहर महल श्रीमिथिलेशजी महाराजके सहोदर भाई श्रीकुशध्वज महाराज का है ११७

इदं परमशोभाढ्यं दर्शनीयं दिवौकसाम् ।
सुप्रभं भवनं दिव्यं मिथिलाधिपतेः शुभम् ॥११८॥

सुन्दर प्रकाशसे युक्त, देवताओंके भी दर्शन करने योग्य, परमशोभासम्पन्न यह दिव्य महल श्रीमिथिलेशजी महाराजका है ॥११८॥

अस्मिन्पूर्वे स्यमन्ताख्यः स्फाटिकाख्यश्च पश्चिमे ।
उत्तरे हाटकाख्योऽयं याम्यां मरकतालयः ॥११९॥

इस महलमें पूर्वकी ओर स्यमन्तक-भवन, पश्चिमकी ओर स्फटिक-भवन, उत्तरमें हाटक-भवन और दक्षिणमें यह मरकत-भवन है ॥११९॥

चत्वारोऽपि महाबाहू ! षष्टिखण्डोन्नता गृहाः ।
विशालाः परिदृश्यन्ते दशयोजनदूरतः ॥१२०॥

हे बड़ी-बड़ी भुजाओं वाले सरकार ! ये चारों ही साठ-साठ खण्ड ऊँचे, मनोहर और विशाल महल दशयोजन (चालीस कोस) दूरसे ही भली भाँति दिखाई देते हैं ॥१२०॥

श्रीशिव उवाच ।

नार्यस्तु स्वालयद्वारं काश्चित्तं द्रष्टुमागमन् ।
काश्चिद्वातायनैश्चक्रुर्दर्शनं राजपुत्रयोः ॥१२१॥

भगवान शिवजी बोले:-हे पार्वती ! उनका दर्शन करनेके लिये कुछ स्त्रियाँ अपने गृह द्वार पर आगयीं और कुछ झरोखों द्वारा श्रीराजकुमारोंका दर्शन करने लगीं ॥१२१॥

काश्चिदुधर्म्ये समारूढा युवत्यो वामलोचनाः ।
ददृशू रूपसम्पन्नौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥१२२॥

और कुछ मनोहर नेत्र और युवा अवस्था वाली स्त्रियाँ, अपने-अपने महलों पर चढ़कर श्रीदशरथजी-महाराजके परम रूपवान, राजकुमारोंका दर्शन करने लगीं ॥१२२॥

रामं कमलपत्राक्षं चन्द्रबिम्बोपमाननम् ।
नवदूर्वादलश्यामं कैशोरे वयसिस्थितम् ॥१२३॥
कोटिकन्दर्पसदृशमतीवप्रियदर्शनम् ।
लक्ष्मणेन समं भ्रात्रा सहस्रैःपूर्निवासिभिः ॥१२४॥
आवृतं छविसंमुग्धैर्व्रजन्तं राजवर्त्मना ।
ऊचुः परस्परं नार्यो निरीक्ष्य रघुनन्दनम् ॥१२५॥

चन्द्रबिम्बके समान सुन्दर जिनका श्रीमुखारविन्द है कमलदलके सदृश विशाल एवं मनोहर जिनके नेत्र हैं नवीन दूबके दलके समान श्याम जिनके श्रीअङ्ग हैं, किशोर जिनकी अवस्था है, जो करोड़ों कामदेवोंके सदृश मनोहर और अत्यन्त प्रिय दर्शनवाले हैं, जीव-मात्रको आनन्द प्रदान करनेवाले उन श्रीरामभद्रजूको अपने भइया श्रीलखनलालजीके समेत, सुन्दरता पर आसक्त हुये सहस्रों पुर-वासियोंके बीचमें राजमार्गसे आते हुये देखकर स्त्रियाँ परस्पर (एक दूसरेसे) कहने लगीं १२५

श्रीजनकपुरस्त्रिय ऊचुः ।

सुमुखि ! सुरसुतानां यक्षगन्धर्वजाना-
मसुरपतिसुतानां किन्नरेन्द्रात्मजानाम् ।
फणिपनवसुतानां नेदृशी चारुशोभा
परममुनिमनोज्ञा मानुषाणां कुतस्तु ॥१२६॥

हे सुमुखी ! बड़े-बड़े ब्रह्मतत्वका मनन करनेवाले महात्माओंके भी मनको हरण करने वाली

ऐसी मनोहर शोभा देव, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, किन्नर नागराज (शेषजी) आदिके पुत्रोंमें भी नहीं है, फिर मनुष्य कुमारोंमें कहाँसे होगी ॥१२६॥

छविनिधिरिह कामः श्रूयते ब्रह्मसृष्टौ
चरणनलिनसाम्यं नार्हति प्राप्तुमस्य ।
हरिरसुरनिहन्ता कैटभारीन्दिरेशः
श्रुतिमितभुजयुक्तोऽनेन तुल्यः कथं स्यात् ॥१२७॥

ब्रह्माजीकी सृष्टिमें कामदेव सुन्दरताका भण्डार ही सुना जाता है किन्तु वह तो इनके श्रीचरण कमलकी भी समानताको नहीं प्राप्त कर सकता, राक्षसोंके संहार करनेवाले कैटभ दैत्यके शत्रु जो श्रीलक्ष्मीपति विष्णु भगवान् हैं, वे चार भुजाओंके होनेके कारण सुन्दरतामें इनकी तुलना भला कैसे कर सकते हैं, ॥१२७॥

निखिलभुवनशोभासंविधाता विरञ्चि-
र्भजति न चतुरास्यो हन्त सादृश्यमस्य ।
नगपतितनयेशो भूतपो भस्मधारी
भव इह समताहः स्यात्कथं मुण्डमाली ॥१२८॥

समस्त लोकों की सुन्दरता को बनाने वाले श्रीब्रह्माजी हैं पर उनके मुख चार हैं अत एव वे भी किसी प्रकार सुन्दरतामें इनकी समता नहीं प्राप्त कर सकते, पार्वतीवल्लभ श्रीभोलेनाथजी भी सुन्दर हैं, परन्तु वे चिताकी भस्म और मुण्डोंकी मालाको धारण करने वाले तथा भूतोंके स्वामी हैं, अत एव वे भी सुन्दरतामें, भला किस प्रकार इनकी बराबरी कर सकते हैं ? ॥१२८॥

अपर इह ततः कस्तुल्यतां प्राप्तुमर्हः ।
कथय सखि ! विमृश्यानेन विध्वाननेन ।
अहह सुमुखि ! योग्यो राजपुत्र्या वरोऽसा
विह कथमुपयातस्तत्र विज्ञः कुतश्च ॥१२९॥

अरी सखी ! फिर तू ही विचार करके बता, भला और कौन ऐसा दूसरा है जो सुन्दरतामें इन चन्द्रवदन (श्रीराजकुमार) जी की समता करने को समर्थ हो सकता है ? अरी सुमुखि ! अहह ! ये तो श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके योग्य वर हैं, परन्तु ये किस प्रकार और कहाँ से यहाँ पधारे हैं" यह हम नहीं जानतीं ॥१२९॥

भुवनजठरमध्ये को यतीनामधीशो
विजितसुषममेन यो न दृष्ट्वा विमुह्येत् ।
मरकतमणिगात्रं चन्द्रवक्त्रं सुनेत्र
कथय सखि ! सनेत्रः सर्वचित्तैकचौरम् ॥१३०॥

अरी सखी ! बतला-इस त्रिलोकीमें भला ऐसा कौन नेत्रवान् त्यागियोंका सम्राट् है, जो मरकतमणिके समान प्रकाशमान श्यामवर्ण शरीरधारी, चन्द्रमाके समान मनोहर मुखारविन्द एवं कमल-दलके सदृश सुन्दर नेत्रोंसे युक्त, अपने श्रीअङ्गके अलौकिक सौन्दर्यसे लौकिक सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यको जीतने वाले सभी प्राणियोंके, इन अनुपम चित्तचोरका दर्शन करके पूर्ण आसक्त न हो जाय ? ॥१३०॥

दशरथनृपसूनुः सर्वलोकाभिरामः
कुशिकसुतमखैकत्राणयोगप्रवीणः ।
विजितसकलशत्रुर्गौतमीशापहारी
कुसुमशरमनोज्ञः श्रीनिधिः श्याम एषः ॥१३१॥

दूसरी सखी बोली:-अरी सखी ! कामदेवके भी मनको मुग्ध करलेने वाले, सभी लोगोंके प्यारे, सम्पूर्ण श्री (अलौकिक प्रतिभा और कान्ति)के भण्डार, ये श्रीश्यामसुन्दरजी श्रीविश्वामित्र महाराजके यज्ञकीरक्षा करनेमें अनुपम प्रवीण (बड़े ही चतुर) सम्पूर्ण शत्रुओंको परास्त एवं श्रीअहल्याजीको पतिशापसे मुक्त करदेने वाले श्रीदशरथजी महाराजके राजकुमार हैं ॥१३१॥

समरहतसुबाहुः क्षिप्तमारीचरक्षा
असुरवनदवाग्निः पूतपापाङ्घ्रिरेणुः ।
धृतनवशरचापः श्यामलो मोहनाङ्गः
स्मितरुचिरकटाक्षो रामचन्द्रोऽयमालि ! ॥१३२॥

अरी सखी ! जिन्होंने युद्धमें सुबाहु राक्षसको मारा और मारीचको समुद्रके किनारे फेंका, जो राक्षसरूपी वनको जलाने के लिये दावानलके समान समर्थ, और नूतन धनुष बाणको धारण किये हुये हैं, जिनकी चरणधूलि, पापियोंको भी पवित्र करने वाली है अर्थात् अहल्याको पवित्र किया है, जिनकी मुस्कान युक्त कटाक्ष बड़ी ही मनोहर है तथा जिनका प्रत्येक अङ्ग मुग्धकारी है वे श्याम वर्णसे युक्त ये श्रीरामभद्रजू हैं ॥१३२॥

कनककलितकान्तिर्वाणकोदण्डपाणि-
ललितचपलचक्षुर्भ्रातृपादानुगामी ।
दलितविबुधशत्रुव्रात इन्द्राननो वै
सुमुखि ! शृणु सुमित्रानन्दनो लक्ष्मणोऽयम् ॥१३३॥

अरी सुमुखी ! सुनोः— सुवर्णके समान सुन्दर जिनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति है, जो अपने हाथोंमें धनुषबाण को धारण किये हुये हैं, जिनके नेत्र चञ्चल एवं मनोहर हैं, जिनका श्रीमुखारविन्द चन्द्रमाके समान सुशोभित है, जो श्रीसुमित्रामहारानीको वात्सल्य भाव-जनित आनन्दको विशेष प्रदान करने वाले, असुर समूहोंके संहारक, अपने भाई श्रीरामभद्रजूके पीछे-पीछे चलने वाले हैं वे, ये श्रीलखनलालजी हैं ॥१३३॥

कुशिकतनययज्ञं पारयित्वा सलीलं
विबुधरिपुकलापं संनिहत्याध्वरघ्नम् ।
मुनिवरसमुदायैः पूज्यमानाविदानीं
हरधनुरिह दिष्ट्या द्रष्टुमायातवन्तौ ॥१३४॥

अरी सखी ! यज्ञविध्वंसकारी राक्षस समूहोंका खेल-पूर्वक संहार करके श्रीविश्वामित्रजी-महाराजके यज्ञको पूर्ण कराके बड़े-बड़े मुनियोंके द्वारा पूजित होते हुये, ये दोनों श्रीराजकुमारजी सौभाग्यवश इस समय शिवधनुषका दर्शन करनेके लिये यहाँ पधारे हैं ॥१३४॥

यदि जनकनृपस्य प्रागमद् दृष्टिमार्गं
परममधुरमूर्तिर्नीलपङ्केरुहाङ्गः ।
पणमिह परिहृत्य स्वात्मजां वीर्यशुल्कां
सपदि सखि ! स दाता रूपमुग्धः किलास्मै ॥१३५॥

अरी सखी ! नीले कमलके समान सुगन्धमय कोमल अङ्गसे युक्त इस मनोहर मूर्त्तिको यदि कहीं श्रीजनकजी-महाराज देख लेंगे, तो वे इनके रूप पर मुग्ध होकर अपनी वीर्य शुल्का (शिव धनुष खण्डन कारी प्रताप रूपी न्यौछावरको पाकर ही जिस पुत्रीके विवाह करनेकी प्रतिज्ञा है उस) पुत्रीको शीघ्रही पण छोड़कर इन (श्रीरामभद्रजी) को अर्पण करदेंगे, यह निश्चय है । १३५॥

न हि न हि सखि ! भूपो हास्यति स्वप्रतिज्ञां
परमदृढतरोऽयं हन्त सिद्धान्त आलि ! ।

विदितपरिचयोऽसौ गाधिपुत्रेण साकं
सविधिमपि समर्च्यावासमाभ्यां दिदेश ॥१३६॥

यह सुनकर दूसरी सखी बोलीः-अरी सखी ! नहीं श्रीजनकजी महराज अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ सकते, यह पूर्ण पक्का सिद्धान्त है। श्रीजनकजी महाराजको इन दोनों ही श्रीराज-कुमारों का परिचय ज्ञात है, क्योंकि उन्होंने ही यथोचित सत्कार करके श्रीविश्वामित्रजी महाराजके सहित इन दोनोंको निवासस्थान प्रदान किया है ॥१३६॥

अहह ! सखि ! कथञ्चित्स्याद्वरोऽयं यदि
श्रीजनकनृपतिपुत्र्याः श्यामलो मत्तकाशी ।
सफलमिह न एतन्मानुषं जन्म लोके
दशरथनृपसूनोर्दर्शनेनास्य भूयः ॥१३७॥

दूसरी सखी बोलीः-अहह ! सखी ! यदि किसी प्रकारभी गजराजके समान मस्त चाल चलने-वाले ये श्रीश्यामसुन्दर प्यारे श्रीजनकराजदुलारीजीके वर हो जाँय, तो इन श्रीदशरथराज कुमार-जीके बार बारके दर्शनोंसे निःसन्देह हम लोगोंका यह मनुष्यजीवन सफल है। यह सुनकर अपर सखी बोलीः-॥१३७॥

त्रिनयनधनुराख्यो दुर्भिदं वज्रसारं
निखिलभुवनशूरैर्यद्विभज्यं कथं तत् ।
परममृदुतरेणानेन तूलोपमेन
प्रभवति मनसीयं दुःखदाऽद्योरुशङ्का ॥१३८॥

अरी सखियो ! किन्तु जिसे समस्त लोकोंके शूरवीरोंको मिलकर भी तोड़ना कठिन है, उस वज्रसारके समान कठोर श्रीभोलेनाथजीके पिनाक धनुषको रूईके समान अत्यन्त कोमल शरीर वाले ये श्रीराजकुमारजी भला किस प्रकार तोड़ सकेंगे ? यह आज मनमें बड़ी ही दुखदाई शङ्का हो रही है। यह सुनकर अपर सखी बोलीः-॥१३८॥

रघुकुलकमलेनस्ताटकाप्राणहारी
युधि निहतसुबाहुः पीतमारीचदर्पः ।
चरणशमितगेध.पुत्रपत्न्युग्रशापः
परममृदुलगात्रो नावधार्योऽल्पवीर्यः ॥१३९॥

अरी सखी ! जैसे इनका शरीर अत्यन्त कोमल है वैसे बल पराक्रममें तू इन्हें कमजोर मत समझे, क्योंकि ये रघुकुल रूपी कमलको सूर्यके समान खिलाने वाले हैं, मार्गमें श्रीअयोध्याजीसे आते हुये इन्होंने महाबलवती ताडका राक्षसीका प्राण लिया और युद्धमें सुबाहु राक्षसको मारा तथा मायावी राक्षस मारीचके अभिमानको पिया, एवं अपने चरण कमलके स्पर्श मात्रसे ब्रह्माजीके पुत्र श्रीगोतमजी महाराजकी धर्मपत्नी श्रीअहल्याजीकी महाभयङ्कर शापको नष्ट किया है। यह सुनकर अन्य सखी बोली:-॥१३९॥

निरुपमगुणरूपा ऽ पारशक्तिप्रभावा
जनकनृपसुतेयं येन सृष्टा विधात्रा ।
दशरथकुलभानुस्तेन सृष्टो वरो ऽ यं
सकलसुकृतिपुञ्जा भूरिभागा वयं वै ॥१४०॥

हे सखी ! जिस विधाताने उपमारहित गुणरूपसे युक्त, अपारशक्ति और प्रभाव वाली इन श्रीजनकराजदुलारीजीको बनाया, उन्होंने ही श्रीदशरथजीके कुलको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले इन श्रीराजकुमारजीको उनका, वर (दूलह) बनाया है, अत एव हम सभी निःसंदेह सम्पूर्ण साधनोंकी पुंज और बड़ भागिनी हैं। यह सुनकर भावावेशमें आकर दूसरी सखी बोली ॥१४०॥

जनकनृपतिपुत्रीकोशलाधीशसून्वो-
र्नवलयुगलमूर्तिर्हेमदूर्वादलाभा ।
अहह ! सुमुखि ! पश्य भ्राजते वीक्ष्यमाना
परिणयवरभूषाऽलङ्कृता कीदृशीयम् ॥१४१॥

हे सुन्दर मुख वाली सखी ! अहह ! देख, विवाहोचित उत्तम शृङ्गार धारण किये हुई श्रीजनकराजकुमारी और श्रीकोशलाधीशकुमारजूकी सुवर्ण एवं दूर्वादलके समान गौरश्याम नूतन युगल-मूर्त्ति किसप्रकार सुशोभित हो रही है ? ॥१४१॥

युगलतनुसुदीप्त्या मण्डपो दीप्यमानः
प्रसभमपिनराणामालि ! चित्तापहो ऽ यम् ।
नगरनववधूनां चारुमाङ्गल्यगानैः
कथमपि न हि शब्दः श्रूयमाणोऽगम्यः ॥१४२॥

हे सखी ! श्रीयुगलसरकारके श्रीअङ्गकी सुन्दर कान्तिसे प्रकाशमान यह मण्डप, बड़े बड़े ऋषियोंके चित्तको बलपूर्वक हरणकर रहा है, और नगरकी नववधुयें जो मङ्गलगीत गारही है, उससे सुनता हुआ शब्द भी किसी प्रकार समझमें नहीं आता। यह सुनकर दूसरी सखी बोलीः—॥१४२॥

वदसि वत किमेतद् दृश्यमानं यदस्ति
त्वमसि विगतनेत्रा वीक्षसे यन्न युग्मम्।
शशिमुखि ! नयनाभ्यां सयुताऽहं न हीना
न तु कमलदलाक्षि! त्वादृशी दिव्यचक्षुः ॥१४३॥

अरी सखी ! आश्चर्य है, यह तू क्या कह रही है ? उसने कहाः—जो दिखाई देरहा है उसेही तो मैं कह रही हूँ, क्या तू अँधी है ? जो इन श्रीयुगल सरकारको नहीं देखती। यह सुनकर वह बोलीः- हे चन्द्रमाके समान मुख और कमलके समान नेत्रवाली सखी ! मैं अँधी नहीं हूँ, प्रत्युत दोनो नेत्र वाली हूँ, किन्तु तेरे समान मैं दिव्यदृष्टि वाली नहीं हू ॥१४३॥

रविकुलकमलेनं मैथिली कान्तमेनं
जितमदननिकायं गच्छतु स्पर्द्धितश्रीः।
भवतु सखि ! वचस्ते सत्यमुक्तं द्रुतेन
सकलनगरनार्यः स्याम सौख्यर्द्धियुक्ताः ॥१४४॥

अरी सखी ! तेरी कही हुई यह बात शीघ्रही सत्य हो, अपनी शोभासे श्रीदेवीको भी ईर्ष्या (डाह) युक्त करने वाली श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी, कामदेव समूहकी सुन्दरताको जीतने वाले इन रविकुल कमलदिवाकर श्रीराम भद्रजीको दूलह रूपमें प्राप्त करें, जिससे हम पुरनारियोंको पूर्ण सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति हो ॥१४४॥

श्रीशिव उवाच।

जनकनगरनार्यो हर्षभापूर्गदन्यो
रघुकुलमणिमेवं वीक्ष्य वाचामतीतम्।
स तु नरपतिसूनुर्बालकैश्चोपनीतो
ललितरचनयाढ्यां चापयज्ञावनिं तैः ॥१४५॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! श्रीजनकजी महाराजके नगरकी स्त्रियाँ रघुकुलमणि

श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके अनायास ही अवर्णनीय सुखको प्राप्त हुईं। उधर वे बालकवृन्द श्रीचक्रवर्तीकुमारजीको मनोहर सजावटसे युक्त धनुष-यज्ञ-भूमि पर ले गये ॥१४५॥

सुखमपि तदवन्या दर्शनेनेन्दुवक्त्रः
परममुदित आसीत्कौतुकासक्तचेताः।
अथ मनसि विलम्बं संप्रबुध्योरुभीत्या
त्वरितमभिजगाम श्रीगुरोः सन्निधिं सः ॥१४६॥

इत्येकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

—: मासपारायण विश्राम २४ :—

उस भूमिके सुख-पूर्वक दर्शनोंसे चन्द्रमाके समान परम आह्लादकारी मुखारविन्दवाले श्रीरामभद्रजीको बड़ी ही प्रसन्नता हुई, उनका चित्त उस दृश्यमें आसक्त हो गया। पुनः जब उन्हें विलम्बका ज्ञान हुआ, तो महान् भयसे युक्त हो, वे तुरत अपने गुरुदेव श्रीविश्वामित्रजी महाराजके पास पधारे ॥१४५॥

अथ नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

श्रीरामभद्रजूका गुरुदेवके निमित्त पुष्प लेनेके लिये पुष्प-वाटिका (बाग-तड़ाग) गमन तथा वहाँ पर श्रीकिशोरीजीके द्वारा श्रीगिरिजा-पूजन

श्रीशिव उवाच।

प्रातः परेद्युः कृतनित्यकृत्यः सौमित्रिणा साकमतुल्यरूपः।
पुष्पार्थमाज्ञत इयाय रामः स वाटिकां गाधिसुतेन राज्ञः ॥१॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती! उपमा रहित रूपवाले श्रीरामभद्रजूने दूसरे दिन प्रातः काल अपने नित्य-कृत्यसे निवृत्त हो श्रीविश्वामित्रजी-महाराजकी आज्ञा पाकर श्रीलखनलालजीके सहित, पुष्प लानेके लिये श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी फुलवारीमें पधारे ॥१॥

तस्मिन्क्षणे भूमिसुता जनन्या निदेशमासाद्य सखीशतेन।
तामेव शैलेन्द्रसुतार्चनाय प्रापेन्दुपुञ्जप्रतिमाननश्रीः ॥२॥

उसी क्षण चन्द्रसमूहोंके समान परम मनोहर प्रकाशमय, आह्लादप्रद के मुख-कान्तिसे युक्त,

भूमिसे प्रकट हुई श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी, श्रीपार्वतीजीकी पूजा करनेके लिये अपनी श्रीअम्बाजीकी आज्ञा पाकर, सैकड़ों सखियोंके साथ उसी पुष्पवाटिकामें पधारीं ॥२॥

सरोवरे साऽपि निमज्य मैथिली नखच्छविस्पर्द्धितबालचन्द्रका ।
उपेत्य शैलेन्द्रसुतानिकेतनं चमत्कृतं तां मुदितां व्युदैक्षत ॥३॥

अपने श्रीचरणकमलके नखोंकी सुन्दरतासे द्वितीयाके चन्द्रमाको ईर्ष्या (डाह) युक्त करने वाली श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी सरोवरमें स्नान करके, श्रीपार्वतीजीके चमचमाते हुये मन्दिरमें पधारीं और आनन्द पूर्वक उनका दर्शन करने लगीं ॥३॥

पुनस्तु तामर्च्यसमर्च्यवन्दिताः समर्चयामास शिवामयोनिजा ।
विधानतः स्वालिसमूहमध्यगा निसर्गमोदाम्बुधिमोहनस्मिता ॥४॥

जिनकी स्वाभाविक मुस्कान आनन्द सागर (भगवान् श्रीराम) को भी मुग्ध कर लेती है तथा जो लोकोंमें पूजने योग्य साधु-ब्राह्मणोंके भी परम पूजनीय ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिके द्वारा प्रणामकी हुई अपनी इच्छासे प्रकट हुई हैं, उन श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीने अपनी सखियोंके मध्यमें विराजमान होके विधि-पूर्वक श्रीपार्वतीजीका पूजन किया ॥४॥

तदन्तरे चन्द्रकला प्रवीणा राजेन्द्रसूनुच्छविमत्तचित्ता ।
अदृश्यताश्चर्यदशां प्रपन्ना सखीभिरानन्दमहार्णवायाः ॥५॥

उसी बीच महासागरके समान अथाह आनन्दवाली श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजीकी सखियोंने बड़ी ही चतुरा सखी श्रीचन्द्रकलाजीको, श्रीचक्रवर्तीकुमारजीकी छबिसे मस्त चित्त हो, विचित्र ही दशामें प्राप्त देखा ॥५॥

सख्यः ऊचुः ।

दशेयमाप्ता कुत आलि ! शंस त्वया प्रमत्ता सुधियां वरिष्ठे !
दृग्बाणतः कस्य हतेन्दुवक्त्रे ! नृशंसवृत्तेस्त्वमुपागताऽसि ॥६॥

सखियाँ बोलीं :—हे सखी ! आपतो सभी बुद्धिमानोंमें अत्यन्त श्रेष्ठा हैं, तब बतलाइये-आपकी यह मतवाली दशा किस प्रकार हुई ? हे चन्द्रमुखीजी ! किस निर्दयीके नेत्र रूपी बाणसे घायल होकर आप यहाँ आई हैं ? बतलाइये ॥६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

अहं तु साकं भवतीभिरालयः समाव्रजन्ती हतकामदर्पौ ।
दृष्ट्वा कुमारौ सुपरीक्षणार्थं विहाय वस्तौ समुपागताऽऽसम् ॥७॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:-अरी सखियो ! मैं आप सभीके साथ आती हुई अपने श्रीअङ्गकी शोभा से कामदेवके अभिमानको चूर्ण करने वाले, दो कुमारोंको देखकर हर प्रकारसे उनकी परीक्षा लेनेके लिये पास में गयी थी ॥७॥

उभौ हि तौ पद्मपलाशलोचनौ बिम्बाधरौ पूर्णसुधाकराननौ ।
अरालसुस्निग्धसुकोमलालकौ विशालभालौ स्मरचापसुभ्रुवौ ॥८॥

उन दोनोंको ही-जिनके नेत्र-कमलदलके समान विशाल एवं मनोहर हैं, अधर-बिम्बाफलके सदृश लाल हैं, मुख-पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर प्रकाशमय है, अलकें-अत्यन्त कोमल चिकनी तथा घुंघराली हैं, मस्तक-चौड़ा है, भौहें-कामदेवके धनुषके समान सुन्दर तथा टेढ़ी हैं ॥८॥

सुनासिकौ शुक्तिसमश्रुतिद्वयौ महामनोहारिकपोलयुग्मकौ ।
सुकम्बुकण्ठौ विपुलांसशोभनौ निगूढजत्रू सुविशालवक्षसौ ॥९॥

जिनकी नासिका-तोतेकी नाकके समान सुन्दर है, दोनों कान-शुक्ति (सीपी) के सदृश मनोहर हैं, दोनों कपोल अतिशय मनोहर हैं, कण्ठ-शङ्खके समान सुन्दर है, कन्धे बड़े और सुहावने हैं, कन्धेसे गले तक आने वाली हड्डी-छिपी हुई है, वक्षः स्थल-सुन्दर एवं विशाल है ॥९॥

गम्भीरनाभी मृगराजमध्यमौ स्वाजानुबाहू कदलीनिभोरुकौ ।
पादाब्जशोभालवनिर्जितस्मरौ सर्वाङ्गरम्यौ रमणीयचेष्टितौ ॥१०॥

जिनकी नाभि गहरी है, कमर सिंहके समान पतली है, बाहें घुटने पर्यन्त लम्बी हैं, जङ्घे केलास्तम्भके समान चिकने गोल तथा सुडौल हैं, जो अपने श्रीचरणकमलकी कणमात्र शोभासे कामदेवको विजयकर रहे हैं, जिनके सभी अङ्ग अत्यन्त सुन्दर हैं और सभी चेष्टायें परम मनोरम हैं॥

नीलोत्पलस्वर्णनिभाद्भुताकृती दृष्टौ मया मत्तकरीन्द्रगामिनौ ।
आह्लादयन्तौ स्वरुचा मनो मम प्रकाशयन्ताविह पुष्पवाटिकाम् ॥११॥

जिनका अद्भुत शरीर, नील-कमलके समान श्याम और सुवर्णके सदृश गौर है, जो अपनी दिव्य कान्तिसे मेरे मनको आह्लादित एवं पुष्पवाटिकाको इस समय प्रकाश युक्त करते हुये गजराजकी भाँति मस्त चल रहे हैं, मैंने दर्शन किया ॥११॥

तयोरहं श्यामलकान्तवर्ष्मणः कटाक्षबाणाभिहता विमोहिता ।
सलीलमाल्यः प्रसभं रसाम्बुधेर्नवीन पुष्पाणि मुदा विचिन्वतः ॥१२॥

अरी सखियो। उन दोनोंमें मनोहर श्याम शरीर वाले रससागर राजकुमारने, आनन्द-पूर्वक नवीन पुष्पोंको चुनते हुये अपने कटाक्ष रूपी बाणसे जबरदस्ती खेल पूर्वक (अनायास) ही मुझे घायल करके बेहोश कर दिया॥१२॥

अत्रागता राजसुताप्रसादात्कथञ्चिदाख्यातुमहं तमेव।
स दर्शनीयो भुवनाभिरामः सहस्रकन्दर्पविमोहनश्रीः॥१३॥

अब मैं श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी की ही कृपासे किसी प्रकार, उनराज कुमारजीको बतलाने के लिये यहाँ आसकी हूँ, अरी सखियो। वे राजकुमार अपनी सुन्दरतासे हजारों काम देवोंको मुग्ध कर देने वाले, त्रिभुवन-सुन्दर, बस देखने ही योग्य हैं॥१३॥

श्रीशिव उवाच।

इतीरितं तद्वचनं निशम्य श्रीचारुशीलादिसमस्तसख्यः।
प्रणम्य भूयो मिथिलेशपुत्रीमिदं निबद्धाञ्जलयो मुदोचुः॥१४॥

भगवान् शिवजी बोलेः-श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा इस प्रकारके कहे हुये वचनोंको सुनकर श्रीचारुशीलाजी आदि सभी सखियाँ श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीको बारम्बार प्रणाम करके हाथ जोड़े हुये, प्रसन्नता पूर्वक उनसे यह बोलीं:-॥१४॥

श्रीसख्यऊचुः।

अयि! क्षमाशीलकृपास्वरूपिणि! श्रीमैथिलि स्वाश्रितभावपूरिके।
उभौ कुमारौ पुरमागतौ श्रुतौ तौ लोकनीयौ कुसुमाश्रये त्वया॥१५॥

हे क्षमा, शील, कृपा स्वरूपिणी तथा अपने आश्रितोंका भाव पूर्ण करनेवाली श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी! "जिन राजकुमारोंको नगरमें आये हुये सुना है, उन्हें आप इस वाटिकामें, हम लोगोंका भाव पूर्ण करनेके लिये, भलीभाँति देख लीजिये॥१५॥

श्रीशिव उवाच।

इत्येवमुक्ता जनकात्मजा तदा निगूढभावा भजदीप्सितार्थदा।
दूरं ततः किञ्चिदगान्मृगीक्षणा निरीक्ष्य रामं समगाद्विदेहताम्॥१६॥

भगवान् शिवजी बोलेः-हे पार्वती! सखियों द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करने पर भक्तोंका मनोष्ट प्रदान करने वाली श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी वहाँसे कुछ दूर आगे गयीं और वहाँसे श्रीराम-भद्रका दर्शन करके अत्यन्त गूढ़ भाव होनेके कारण पूर्ण बेसुध हो गयीं॥१६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

विलोकयैनं रघुवंशभानुं नीलाम्बुजश्यामतनुं मनोज्ञम् ।
पीताम्बरं पूर्णशशाङ्कवक्त्रं सहस्रपत्रायतमोहनाक्षम् ॥१७॥
शुचिस्मितं मन्मथकोटिसुन्दरं प्रियेक्षणं स्वीकृतताटकावधम् ।
सुबाहुहन्तारमदेवनाशनं प्रक्षिप्तमारीचममोघविक्रमम् ॥१८॥
मुनीन्द्रवृन्दोत्तममानभाजनं समुद्धृतर्षीश्वरभार्यमात्मदम् ।
श्रीगाधिपुत्रेण समं समागतं विदेहसंमोहनचारुदर्शनम् ॥१९॥
स्वरूपसम्पत्तिविमोहकारिणं पुरौकसां ह्यो विहरन् सहानुजम् ।
पुष्पाणि चेतुं गुरुपूजनाय वै यदृच्छया सम्प्रति वाटिकागतम् ॥२०॥
अप्राकृतं प्राकृतभाववर्जितं जितेन्द्रियं वाग्मिनमात्मसाक्षिणम् ।
अनन्तकल्याणगुणैकसागरं शरीरिणामात्मशताधिकप्रियम् ॥२१॥
वेदान्तसारं जगदेकसारं सारैकसारं सुषमैकसारम् ।
आनन्दसारं जनकामसारं पश्य प्रिये ! श्रीरघुवंशहारम् ॥२२॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:—हे श्रीललीजी ! रघुकुलको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाले पीताम्बरधारी इन मन हरण सरकारको देखिये, जिनका-कि नीले कमलके समान श्याम सचिक्कण वर्ण है, पूर्ण चन्द्रमाके सदृश परम प्रकाशमय आह्लादकारी श्रीमुखारविन्द और कमलदलके समान जिनके विशाल नेत्र हैं ॥१७॥ जिनकी पवित्र मुस्कान एवं प्यारी चितवन है, जो करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर, ताड़का राक्षसीका वध करनेवाले, सुबाहु राक्षसके घातक तथा सभी राक्षसोंके विनाशक हैं, जिन्होंने अपने बिना नोकवाले बाणसे मारीच राक्षसको सौ योजन दूर समुद्रके किनारे फेंक दिया है, तथा अमोघ (कभी निष्फल न जानेवाले) पराक्रमसे जो युक्त हैं अर्थात् जिनका कोई भी पराक्रम आज तक कभी निष्फल हुआ ही नहीं ॥ १८ ॥ इस लिये बड़े-बड़े मुनियोंने भी जिनका उत्तम सम्मान किया है, पुनः श्रीमिथिलाजी आते समय जिन्होंने मार्गमें अपने गुरुदेवकी आज्ञासे अपने चरणकमलके स्पर्शमात्र द्वारा ही ऋषिश्रेष्ठ गौतमजीकी धर्मपत्नी श्रीअहल्याजीका उद्धार किया है, इसी प्रकार श्रीविश्वामित्रजीके साथ श्रीमिथिलाजी आनेपर जिनका दर्शन करते ही श्रीविदेहराज (आपके पिताजी) भी मुग्ध हो चुके हैं ॥१९॥ और कल अपने छोटे भइयाके साथ नगरमें विचरते हुये, ही जिन्होंने अपनी सुन्दरता रूपी सम्पत्तिसे समस्त पुरवासियोंको विमुग्ध बना

डाला है, इस समय गुरुदेवके पूजनके लिये जो पुष्प चुननेके हेतु इस फुलवारीमें आये हैं ॥२०॥ जो पाञ्चभौतिक सृष्टिसे परे स्वेच्छामय दिव्य शरीर वाले, मायिक भावोंसे रहित, अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारादि समस्त इन्द्रियोंको वशमें किये हुये, बड़े ही सुन्दरवक्ता तथा बुद्धिके साक्षी, अनन्तकल्याण कारी गुणोंके अनुपम भण्डार और समस्त प्राणधारियोंको आत्मासे भी सैकड़ों गुना अधिक प्यारे हैं ॥२१॥ हे श्रीप्यारीजू। कहाँ तक कहूँ ? जो वेदान्तके, सम्पूर्ण जगत्के, समस्त-सारोंके, सम्पूर्ण अनुपम सौन्दर्यके, सम्पूर्ण आनन्दके तथा भक्तोंकी सम्पूर्ण इच्छाओंके सार (सत्, चित, आनन्दघन ब्रह्म) हैं, उन श्रीयुक्त रघु महाराजके वंशको हारके समान सुशोभित करने वाले इन श्रीराजकुमारका दर्शन कर लें ॥२२॥

श्रीशिव उवाच।

दिव्यद्युतिं ह्लादमयस्वरूपिणीं श्रुत्यन्तवेद्यां भजदेकवत्सलाम्।
विदेहजां तामवलोक्य लक्ष्मणं जगाद रामोऽप्रतिमैकसुन्दरीम् ॥२३॥

भगवान् शिवजी बोले: हे प्रिये ! जो वेदान्त शास्त्रके द्वारा कुछ समझमें आती हैं, भक्तों पर जिनका अत्यन्त वात्सल्य है, उन दिव्य कान्तिसे युक्त, परम आह्लाद मय स्वरूप वाली, अनुपम सुन्दरी, श्रीविदेह-राजदुलारीजीको देखकर, श्रीरामभद्रजू श्रीलखनलालसे बोले: ॥२३॥

श्रीराम उवाच।

धनुर्मखः श्रीजनकेन निश्चितो यस्या निमित्तं दुहितुर्महीभृता।
इयं हि नूनं सुषमैकवारिधिः साऽयोनिजा पावनमोहनस्मिता ॥२४॥

हे तात ! यह निश्चय है, कि श्रीजनकजी महाराजने अपनी जिस पुत्रीके निमित्त धनुष-यज्ञ करनेका निश्चय किया है, वही अनुपम सुन्दरताकी भण्डार, पवित्र और मुग्ध कारी मुस्कानसे युक्त, अपनी इच्छासे प्रकट हुई ये श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजी हैं ॥२४॥

इयं श्रियः श्रीर्मिथिलेशनन्दिनी समस्तसम्पूज्यगुणौरुपासिता।
नीलाम्बुजोत्फुल्लदलायतेक्षणा निसर्गपूताखिलचारुचेष्टिता ॥२५॥

शोभाकी भी शोभा स्वरूपा, सभी प्राणियोंके द्वारा सब प्रकारसे पूजित होने योग्य गुणोंसे युक्त, नीले कमल दलके समान विशाल नेत्रवाली इन श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूकी सभी चेष्टायें पवित्र एवं मनोहर हैं ॥२५॥

देदीप्यमानाम्बरभूषणेयं माधुर्यसंछिन्नरतिस्मयाधिः।
आह्लादिनी स्वीयरुचा मनो मे मुष्णाति दिव्येन जितात्मनो द्राक् ॥२६॥

हे तात ! प्रकाश मान वस्त्र भूषणोंसे युक्त अपनी सुन्दरतासे रतिके अभिमान रूपी मानसिक व्यथा को दूर करने वाली ये श्रीआह्लादिनी जू अपनी अलौकिक शोभाके द्वारा मेरे अधीन किये हुये भी मनको अनायास ही हरण कर रही हैं ॥२६॥

वेदास्य हेतुर्विधिरेव तात ! वदामि किं ते सुधियां वरिष्ठ !
जातो विलम्बो बहु वाटिकायां कोपाय मा गाधिसुतस्य सोऽस्तु ॥२७॥

हे बुद्धिमानोंमें परम श्रेष्ठ ! इसका कारण विधाता ही जानते हैं, मैं आपसे क्या कहूँ ? हे तात ! अब फुलवारीमें विलम्ब विशेष हो गया है, कहीं वह गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजीके कोपका कारण न हो जाय ॥२७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं तदोक्त्वा गुरुभीतिभीतो रामो मुनेरन्तिकमाजगाम ।
प्रसूनपूर्णोरुपुटाञ्चिताब्जसुकोमलस्निग्धमनोज्ञपाणिः ॥२८॥

भगवान् शिवजी बोले: हे पार्वती इस प्रकार अपने भाईसे कहकर गुरुदेवके डरसे डरते हुये श्रीरामभद्रजू अपने कमलके समान सुकोमल चिकने और मनोहर हाथमें पुष्पोंसे भरे हुये बड़े दोने को लेकर श्रीविश्वामित्रजी महाराजके पास पधारे ॥२८॥

स गाधिपुत्रेण मुदा सबन्धुर्गाढं परिष्वज्य शुभैर्वचोभिः ।
अभ्यर्चितस्तेन विलम्बहेतुं विज्ञाय तुष्टिः परमां प्रपेदे ॥२९॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज प्रसन्नता पूर्वक श्रीरामभद्रजीको लखन लालजीके सहित हृदयसे लगाकर अपने मङ्गलमय वचनोंके द्वारा उनका पूजन किया पुनः विलम्बका कारण जानकर वे बड़े ही प्रसन्न हुये ॥२९॥

सख्योऽपि तां वीक्ष्य सुविह्वलाङ्गीं ता मातृभीत्या खलु बोधयित्वा ।
निन्युः सरः शोभितमन्दिरं तच्छैलेन्द्रपुत्र्याः परिपूजनाय ॥३०॥

उधर सखियाँ भी श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीको विशेष विह्वल हुई देखकर श्रीसुनयना अम्बाजीका भय दिखाकर उन्हें सावधान करके सरोवरसे शोभित श्रीपार्वतीजीके मन्दिरमें, पूजन करानेके लिये ले गयीं ॥३०॥

प्रक्षालिताम्भोजकराङ्घ्रियुग्मया तया विदेहाधिपभूपकन्यया ।
अकारयच्छैलसुतासमर्चनं पूजाविदुष्यो विधिना वरासये ॥३१॥

वहाँ कमलवत् सुकोल मनोहर हाथ-पैरोंको धोकर वर प्राप्तिके लिये पूजापद्धति जाननेवाली सखियोंने उन श्रीविदेहराजकुमारीजूके द्वारा श्रीगिरिराजकुमारीजीका विधि पूर्वक पूजन कराया ३१

श्रीरामरूपाम्बुधिमग्नचित्ता ताभिः स्तवार्थं परिनोदिता सा ।
सीताऽसिताम्भोजपलाशनेत्रा ततः स्तुतिं कर्तुमभूत्प्रवृत्ता ॥३२॥

तत्पश्चात् श्रीरामभद्रजूके सौन्दर्य सागरमें डूबे हुये चित्तवाली, नीलकमलदल-लोचना, भक्तोंका दुःख दूर करके उनके सुखका विस्तार करनेवाली, वे श्रीराजदुलारीजी उन सखियोंकी प्रेरणासे श्रीपार्वतीजीकी स्तुति करने लगीं ॥३२॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

जयशैलराजपुत्रिके ! भक्तदीप्सितार्थदायिके ।
मुनिसिद्धदेव वन्दिते प्रणमामि ते पदाम्बुजे ॥३३॥

श्रीजनकराजदुलारीजी बोलीः-हे श्रीगिरिराज कुमारीजू ! मैं आपके उन श्रीचरण कमलोंको प्रणाम करती हूँ जो भक्तोंके लिये सभी मनोरथोंको प्रदान करने वाले, मुनि, सिद्ध, देवताओंसे नमस्कृत हैं ॥३३॥

त्वमसीह सर्वदेहिनां ध्रुवमन्तरात्मरूपिणी ।
विदितं वदामि किं हि ते मनसेप्सितं प्रसीद मे ॥३४॥

हे देवि ! आप सभी देह धारियोंकी अन्तरात्म (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारमें साक्षी रूपसे रहने वाली परमात्म) स्वरूपा हैं अत एव निश्चय ही आप मेरा मनोरथ जानती ही हैं, मैं कहूँ क्या ? मुझ पर प्रसन्न हुजिये ॥३४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रुत्वेति वाचं तदशेष शक्तेर्याच्ञामयीं पाणिधृताङ्घ्रिकायाः ।
मूर्त्यानिबद्धाञ्जलिसम्पुटाऽऽविर्भूत्वाऽम्बिका तत्पदयोः पपात ॥३५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः-हे कात्यायिनी ! अपने कर-कमलोंसे चरणोंको पकड़े हुई उन पूर्ण ब्रह्मकी शक्ति स्वरूपा श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीकी याचना मयी इस वाणीको सुनकर श्रीपार्वतीजी, हाथ जोड़े हुई मूर्तिसे प्रकट हो उनके श्रीचरणकमलोंमें पड़ गयीं ॥३५॥

ततोऽति भक्त्या पुलकायमाना सर्वेश्वरीं दत्तजनैककामनाम् ।
तुष्टाव सा गद्गदया गिरा तां प्राणेश्वरी चालयुपांशुनोलैः ॥३६॥

तत्पश्चात् मस्तक पर द्वितीयाके चन्द्रको धारण करने वाले, श्रीभोले नाथजीकी प्राणप्रिया श्रीपार्वतीजी पुलकायमान होती हुई अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक, भक्तोंको अतुलित सम्मान प्रदान करने वाली सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीकी गद्‌गद वाणीसे स्तुति करने लगीं ॥३६॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

नौमि सदा श्रीजनककिशोरीं नूतनपङ्केरुहविमलाचीम् ।
दत्तजनैकाद्भुतभृशमानां पादनखस्पर्द्धितशशिपङ्क्तिम् ॥३७॥
विष्णुमहेशद्रुहिणनताङ्घ्रिं विद्युदद्भ्राद्भुतरुचिदेहाम् ।
घोरभवाम्भोनिधिपदपोतां भक्तनिलिम्पद्रुमवरिवस्याम् ॥३८॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं:-जिनकी सेवा भक्तों के लिये कल्पवृक्षके समान सभी मनोरथोंको प्रदान करनेवाली है, तथा जिनके श्रीचरण-कमल घोर संसार-सागरसे पार करनेके लिये जहाजके सदृश हैं, बिजुलीके समान महान्-अद्भुत कान्तिसे युक्त जिनका श्रीविग्रह है, जिनके श्रीचरणकमलोंको ब्रह्म, विष्णु, महेश भी नमस्कार करते हैं, जिनके श्रीचरणकमलोंकी नखच्छटाको देखकर चन्द्रपङ्क्तिको डाह होता है तथा जो भक्तोंको अद्भुत महान् सम्मान प्रदान करनेवाली शक्तियोंमें सबसे बढ़कर हैं, नवीन कमलके सदृश सुन्दर, विशाल, स्वच्छ नेत्रोंवाली उन श्रीजनकराजकिशोरीजीको मैं सदा ही नमस्कार करती हूँ ॥३७॥३८॥

योगिमुनीन्द्रादितिसुतसिद्धादूपितचेतस्स्विह विहरन्त्यै ।
श्रीकुलविद्याप्रभृतिमदान्धैः शश्वदगम्याम्बुजचरणायै ॥३९॥
सर्वमहामङ्गलगुणरत्नव्रातसमालङ्कृतहृदयायै ।
भक्तसुखार्थं नम उदितायै प्राकृतकन्याचरितरतायै ॥४०॥

जो बड़े बड़े योगी, मुनि, देव, सिद्धोंके पवित्र चित्तोंमें विहार करती हैं तथा जिनके श्रीचरण कमल, धन, रूप, कुल, विद्या आदिके मदसे अन्धे प्राणियोंके लिये सदा ही दुष्प्राप्य हैं ॥३९॥ जिनका हृदय सम्पूर्ण महामङ्गल कारी गुण रूपी रत्न समूहोंसे अलंकृत है, जो मुख्यतया केवल भक्तोंके सुखार्थ प्रकट हुई हैं और प्राकृत कन्याओं की तरह चरित कर रही हैं, उन श्रीमिथिलेश राजदुलारी जूके लिये मेरा नमस्कार है ॥४०॥

यत्पदपङ्केरुहशरणाप्ताः पूर्णकृतार्थाः सपदि भवन्ति ।
सा खलु मां प्रार्थयस इदं ते मानसुदानं दृढमिति मन्ये ॥४१॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! जिनके श्रीचरण-कमलोंकी शरणमें आये हुये प्राणी पूर्ण कृतार्थ हो जाते हैं, आज वे ही आप मुझसे (वरप्राप्तिके लिये) प्रार्थना कर रही हैं; यह मुझको मान प्रदान करनेके लिये एक आपकी लीला ही है, यही मैं दृढ़ करके मानती हूँ ।४१॥

दृदे वरं ते वरदवरेण्ये ! वचोऽभिसिद्ध्यै विधुवदनायै ।
अस्त्युचितं ते भवितुमजस्रं हन्त सुखे नो भुवि सुखिता वै ॥४२॥

हे वरदाताओंमें सर्व श्रेष्ठ ! हम सभीको आपके सुखमें सदैव सुखी रहना ही उचित है इस लिये अपनी वाणीको सिद्ध करने के लिये मैं आप श्रीचन्द्रमुखीजीको, आपके भावानुसार वर प्रदान करती हूँ ॥४२॥

याहि वरं श्रीरघुकुलभानुं मन्मथकोटिप्रतिमललामम् ।
राममुदारद्युतिविजितेनं नायकरत्नं मृदुतरगात्रम् ॥४३॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! रघुकुल रूपी कमलको सूर्यके समान प्रफुल्लित करने वाले, करोड़ो काम देवोंके समान सुन्दर, अपनी उत्कृष्ट कान्तिसे भगवान् भास्करको जीतने वाले, नायकोंमें रत्न (सर्वोत्कृष्ट) अत्यन्त सुकोमल शरीर वाले श्रीरामभद्रजू ही आपको वर मिलें ॥४३॥

स्वामिनि ! मे तं कुरु मुकटाक्षं येन पदाम्भोरुहयुगयोर्वै ।
दास्यरता ऽहं सरसिजनेत्रे ! स्यां युवयोः शाश्वतमिति याचे ॥४४॥

हे कमलदललोचने श्रीस्वामिनिजू ! अब आप मेरे प्रति वह कृपा कटाक्ष कीजिये, जिससे मैं आप दोनों सरकारके युगल श्रीचरण कमलोंकी सेवामें तल्लीन हो जाऊँ, यही मैं आपसे सदा वरदान माँगती हूँ ॥४४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रुत्वाऽऽशिषं शैलनरेन्द्रपुत्र्याः सख्यः प्रहृष्टा अभवंस्तु सर्वाः ।
श्रीमैथिलीं मङ्गलमूलमूर्त्तिं निन्युर्नितान्तः पुरमम्बुजाक्ष्यः ॥४५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनी ! श्रीगिरिराज कुमारीजूकी मङ्गल मयी इस आशीषको सुनकर, वे कमल दल लोचना सखियाँ प्रसन्न हो समस्त मङ्गलोंकी मूल स्वरूपा श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीको अन्तः पुरमें ले गयीं ॥४५॥

आशीर्वचो यद् गिरिकन्ययोक्तं तद्धै जनन्यै समवर्णयंस्ताः ।
राज्ञी तदाश्रुत्य सुधांशुवक्त्रां पुत्रीं निजाङ्के मुमुदे निधाय ॥४६॥

इति नवविंशोऽध्यायः ॥२६॥

यहाँ उन्होंने श्रीगिरिराजकुमारीजीके द्वारा श्रीललीजीको दिये, हुये आशीर्वादको श्रीसुनयना-अम्बाजीसे कह सुनाया, उसे सुनकर श्रीमहारानीजीने अपनी चन्द्रमुखी उन श्रीललीजीको गोदमें बिठाकर बड़े ही आनन्दको प्राप्त किया ॥४६॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

श्रीलखनलालजीके पूछने पर श्रीविश्वामित्रजीके द्वारा पिनाक धनुषकी उत्पत्तिकथा वर्णनः—

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अथ रामो महातेजाः सीताध्यानपरायणः ।
कृतसान्ध्यविधिर्बन्धुं मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनी ! उधर श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके ध्यानमें तल्लीन, महातेजस्वी श्रीरामभद्रजू सन्ध्या विधि करके अपने भाई श्रीलखनलालजीसे यह प्रिय वचन बोले १

श्रीराम उवाच ।

पश्य तात ! प्रतीच्यां त्वं मोदितं शर्वरीकरम् ।
साभिमानं कलापूर्णं भ्राजते न तथाऽप्ययम् ॥२॥

हे तात ! देखिये पूर्व दिशामें चन्द्रदेव बड़े ही अभिमान पूर्वक पूर्ण कलाओंसे उदित हुये हैं किन्तु ये उस प्रकार शोभित नहीं होते जैसा श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजीका यह श्रीमुखचन्द्र ॥२॥

लवणार्णवसम्भूतो विषबन्धुरयं यतः ।
दुःखदो दर्शनादेव विशेषेण वियोगिनाम् ॥३॥

क्योंकि यह चन्द्रमा एकतो खार-समुद्रसे उत्पन्न हुआ है, दूसरे इस का भाई विष है, अत एव वियोगियोंको इसका दर्शन ही विशेष दुखदाई है ॥३॥

क्षीयते वर्द्धते चायं सकलङ्कः सदा पुनः ।
राहुत्रासपरित्रस्तो हंसरूपो बको यथा ॥४॥

यह चन्द्रमा कलङ्कसे युक्त १५ दिन घटता और १५ दिन बढ़ता है, पुनः राहुके भयसे सदा त्रसित रहता है, अत एव देखने में तो यह हंसके समान सुन्दर है, किन्तु गुणोंमें बगुलाके सदृश ही है ॥४॥

स चन्द्रस्त्वविदुग्धाब्धिसम्भूतो विश्वमोहनः।
नित्यःपूर्णद्युतिः श्रीलः सर्वदा सुखदर्शनः ॥५॥

और श्रीमिथिलेश राजदुलारीजूका वह मुखचन्द्र छविरूपी दुग्ध सागरसे उत्पन्न, समस्त विश्वको मुग्ध कर लेने वाला, सदा एक रस पूर्ण प्रकाशसे युक्त, श्रीसम्पन्न, दर्शनोंसे सदा सभी को पूर्ण सुख प्रदान करने वाला ॥५॥

निष्कलङ्को गतातङ्कः सर्वदा सुस्मिताधरः।
सर्वतापैकशमनः कोटिचन्द्रविमोहनः ॥६॥

पूर्ण निर्दोष, भयसे रहित, मनोहर मुस्कान युक्त ओठोंसे सदा सुशोभित, सम्पूर्ण तापों को हरण करने में उपमासे रहित, करोड़ों चन्द्रमाओं को भी मुग्ध कर लेने वाला है ॥६॥

नायं तुलयितुं योग्यस्तेन चित्तापहारिणा।
कथञ्चिज्जातु सद्बन्धो! सागरेणेव सीकरः ॥७॥

हे भाई! इस लिये इस चन्द्रमाका उस चित्तचोर मुखचन्द्रसे तुलना करना कभी भी और किसी प्रकारसे भी उचित नहीं है, जैसे सीकर (सींकके अग्र भागमें लगे हुवे जल कण) से समुद्र की ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

इत्युक्त्वा भ्रातरं रामः समाधाय स्वचेतसम्।
विह्वलन्तं महाधीरः प्रकृतिस्थो बभूव ह ॥८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये! इस प्रकार अपने भइया श्रीलखनलालजीसे कह कर (श्रीकिशोरीजीके विशेष चिन्तन से) विह्वलताको प्राप्त होते हुवे, अपने चित्तको सावधान करके महान धैर्य शाली श्रीरामभद्रजू अपनी स्वाभाविक स्थितिमें आगये ॥८॥

ततो गत्वा महात्मानं विश्वामित्रं तपोनिधिम्।
ननाम दण्डवद्भूमौ सानुजो रघुनन्दनः ॥९॥

तत्पश्चात् छोटे भाई श्रीलखनलालजीके सहित श्रीरघुनन्दन प्यारेजूने जाकर तपस्याके भण्डार स्वरूप, महात्मा श्रीविश्वामित्रजीसे पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥९॥

कृतमान्यविधिं दोर्भ्यां समालिङ्ग्य महामुनिः।
रामं कमलपत्राक्षं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥१०॥

महामुनि श्रीविश्वामित्रजी सन्ध्या वन्दन करके आये हुये उन दोनों भाइयोंको हृदयमें लगाकर कमलदललोचन श्रीराम भद्रजूसे यह मधुर वचन बोले ॥१०॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

वत्स ! राम ! महाभाग ! धनुर्यज्ञो महात्मना ।
निश्चितः श्वो विदेहेन त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥११॥

हे महाभाग्यशाली वत्स श्रीरामभद्रजू ! महात्मा श्रीविदेहजी महाराजने तीनों लोकोंमें विख्यात धनुष यज्ञ करनेका कल ही निश्चय किया है ॥११॥

अतोऽसि सानुजो द्रष्टा श्वो नृपालैः समाकुलाम् ।
धनुर्यज्ञस्थली तात ! गत्वा रम्यां मया सह ॥१२॥

हे तात ! इस लिये राजाओंसे परिपूर्ण उस धनुषकी यज्ञस्थलीको कल मेरे साथ चलकर श्रीलखनलालजीके समेत आप अवलोकन करेंगे ॥१२॥

श्रीलक्ष्मण उवाच ।

तत्तु कस्य धनुर्नाथ ! कथं श्रीमिथिलापुरीम् ।
सम्प्राप्तमेतदाख्याहि सुवृत्तान्तमशेषतः ॥१३॥

श्रीलखनलालजी बोले:-हे नाथ ! वह धनुष किसका है ? और श्रीमिथिलाजीमें किस प्रकार आया ? इस वृत्तान्तका आप पूर्ण रूपसे वर्णन कीजिये ॥१३॥

कस्मात्कृता प्रतिज्ञेति भगवंस्तदिहोच्यताम् ।
जनकेन सुताया मे धनुर्भङ्गकरो वरः ॥१४॥

हे भगवन् ! श्रीजनकजी महाराजने यह प्रतिज्ञा क्यों की ? कि "जो धनुषको तोड़ेगा वही मेरी श्रीराजकुमारीजीका वर होगा" इस वृत्तान्तको भी आप कहनेकी कृपा करें ॥१४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तो महातेजा लक्ष्मणेन महामुनिः ।
मोदमानेन चित्तेन कौशिको वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये ! श्रीलखनलालजीके इस प्रकार प्रार्थना करने पर महातेजस्वी, मुनियोंमें श्रेष्ठ, श्रीविश्वामित्रजी महाराज प्रसन्न चित्त हो बोले:-॥१५॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

साधु साधु तव प्रश्नः सुमित्रानन्दवर्द्धन !
शृणु चाहं प्रवक्ष्यामि तत्तु यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१६॥

हे श्रीसुमित्रानन्दवर्द्धनजू ! आपका प्रश्न बहुत ही अच्छा है, अब आप जिस रहस्यको सुनना चाहते हैं उसे मैं वर्णन करता हूँ, श्रवण कीजिये ।१६॥

त्वयाऽपि श्रूयतां वत्स ! राम ! राजीवलोचन ! ।
पौराणिकी कथा या च लक्ष्मणाय मयोच्यते ॥१७॥

हे राजीवलोचन श्रीरामभद्रजू ! वत्स ! मैं लखनलालजीको पुराणोक्त जिस कथाको सुना रहा हूँ, उसे आप भी श्रवण कीजियेगा ॥१७॥

वृत्रत्रासपरित्रस्तास्त्रिदशा जगदीश्वरम् ।
उपतस्थू रमानाथं शक्रमुख्याः सवेधसः ॥१८॥

हे वत्स ! जब वृत्रासुरके भयसे इन्द्रादि देवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये, तब श्रीब्रह्माजीके समेत वे सम्पूर्ण जगत्के नियामक श्रीलक्ष्मीपति भगवान् की स्तुति करने लगे ॥१८॥

श्रीदेवा ऊचुः ।

जय सुरसिद्धयोगिमुनिवन्द्यपदाम्बुरुह !
त्रिभुवननाथ ! दीनजनरक्षणदक्षमते ! ।
हरसि सदा प्रपन्नजनदुःखमतो मुनिभि-
र्हरिरिति कथ्यसेऽपहर दुःखमतोऽजित ! नः ॥१९॥

हे देव, सिद्ध, योगि, मुनि, इन्दोंसे प्रणाम करने योग्य श्रीचरणकमल ! हे त्रिलोकी नाथ ! हे दीनोंकी, रक्षा करनेमें बड़ी ही चतुर बुद्धिवाले प्रभो ! आपकी जयहो । आप शरणागत जीवों के नाना प्रकारके दुःखोंको सदा हरण करते रहते हैं, इसीलिये मुनिवृन्द आपको श्रीहरि कहते हैं । हे अजित (सर्व विजयी प्रभो) इस हेतु आप हम देवोंके समस्त दुखोंको हरण कीजिये ॥१९॥

त्वमसि जगदुद्भवस्थितिलयादिकरप्रथमो
विधिहरवन्दितः श्रुतिनुतोरुपवित्रयशाः ।
तव महिमानमीश ! कथनाय सहस्रमुखो-
ऽप्यलमिह नास्ति तर्हि कुधियश्च कथं नु वयम् ॥२०॥

आप ही इस जगत्के उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलयके मुख्य कारण हैं, ब्रह्मा शिव आदि सभी आपकी वन्दना करते हैं, तथा आपके पवित्र यशकी वेद भगवान् स्तुति करते हैं। हे ईश आपकी महिमा को सहस्रमुख शेषजी भी जब वर्णन करने को समर्थ नहीं हैं, तब खोटी (स्वार्थ-दूषित) बुद्धि वाले हम देवगण भला किस प्रकार कर सकते हैं ॥२०॥

भगवन्! सर्वदाऽस्माकं तव पादावलम्बिनाम्।
निहत्यासुरसङ्घातं कृता रक्षा त्वया प्रभो! ॥२१॥

हे सर्वसमर्थ भगवान्! आपने राक्षस-वृन्दोंका संहार करके अपने श्रीचरणकमलका अवलम्ब लेने वाले हम देवताओंकी सदा ही रक्षाकी है ॥२१॥

इदानीं त्वां विना नाथ! गतिर्नो काऽपि दृश्यते।
वृत्रासुरभयार्त्तानां सुराणां नो जगत्पते! ॥२२॥

हे जगत्पते! इस समय वृत्रासुरके भयसे व्याकुल हुये हम देवताओंकी रक्षा करने वाला आपके बिना और कोई भी नहीं दीखता ॥२२॥

त्राहि त्राहि त्रिलोकेश! प्रपन्नान्नो दयानिधे!।
वृत्रासुरमहाकालात् संक्षयाय कृतोद्यमात् ॥२३॥

हे त्रिलोकीनाथ! आप दयाके भण्डार हैं, अत एव दया करके पूर्ण विनाशके लिये कमर कसे हुये उस वृत्रासुर रूपी महाकालसे हम शरणमें आये हुये देवताओंकी रक्षा करें ॥२३॥

अनष्टेऽस्मिन्कृपासिन्धो! वृत्राख्येऽसुरसत्तमे।
न श्रेयो विद्यतेऽस्माकममराश्च मृता वयम् ॥२४॥

हे कृपासागर! जब तक राक्षस श्रेष्ठ इस वृत्रासुरका विनाश नहीं होता है, तब तक हम लोगोंका कल्याण है ही नहीं और हम अमर भी मरे ही के तुल्य हैं ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

इत्थं समीडितो भक्त्या भगवान् भक्तवत्सलः।
वाचा मधुरया प्राह सस्मितं चतुराननम् ॥२५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी-महाराज बोले:-हे कात्यायनी! प्रेम-पूर्वक देवताओंके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करने पर भक्तवत्सल भगवान् मन्द मुस्काते हुये अपनी मधुर वाणी द्वारा श्रीब्रह्माजीसे बोले-॥२५॥

श्रीभगवानुवाच ।

ब्रह्मन्, वृत्रासुरोऽवध्यस्तव सृष्टिसमुद्भवैः ।
नाहं तं घातयिष्यामि स्वभक्त जातुवै प्रियम् ॥२६॥

हे ब्रह्माजी ! आपकी सृष्टिमें जो उत्पन्न हैं या होंगे, उन सभीसे यह वृत्रासुर अवध्य है अर्थात् मर नहीं सकता और मैं कभी भी उसका वध करूंगा नहीं क्योंकि वह मेरा प्यारा भक्त है ॥२६॥

चिन्तां त्यजन्तु विबुधाः प्रपन्नानां पितामह !
अहं रक्षा करिष्यामि सर्वदैतद्व्रतं मम ॥२७॥

हे पितामह ! देववृन्द अपनी चिन्ताको परित्याग करदें, क्योंकि वे मेरी शरणमें आचुके हैं और मैं शरणागत प्राणियोंकी अवश्य ही सदा रक्षा करूँगा ॥२७।

मय्यासक्तमना वृत्रो मद्धामागमनस्पृही ।
तं न लोभयितु शक्त पारमेष्ठ्यादिकं पदम् ॥२८॥

वृत्रासुरका मन मेरेमें आसक्त है और उसको मेरे दिव्यधाम आनेकी इच्छा है, अत एव अब उसको आपका परमेष्ठी पद आदि भी लोभमें फँसानेको समर्थ नहीं हो सकता ॥२८॥

शापादेवैष पार्वत्या आसुरीं योनिमासवान् ।
योनिवृत्तिमुपालम्भ्य सुराणां निधनोद्यतः ॥२९॥

भगवती श्रीपार्वतीजीके शापके कारण ही इसे यह राक्षसी योनि मिली है, अत एव उस योनिके अनुसार वृत्तिको ग्रहण करके यह देवताओंका विनाश करनेको उद्यत है ॥२९॥

दधीचिरिति विख्यातो महर्षिस्तपतां वरः ।
तदस्थिनिर्मितास्त्रेण कालो वध्य. कुतोऽसुरः ॥३०॥

जो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ "महर्षि दधीचि" इस नामसे लोकमें विख्यात हैं, उनकी हड्डियों द्वारा बनाये हुये अस्त्रसे वृत्रासुरको कौन कहे कालका भी वध किया जासकता है । ३०॥

तस्मिन्निवेशयिष्यामि स्वतेज. कमलोद्भव ! ।
वज्राख्ये तेन चास्त्रेण शक्रो जेता महासुरम् ॥३१॥

हे ब्रह्मन् ! श्रीदधीचि ऋषिकी हड्डियों द्वारा जो वज्र नामका अस्त्र बनाया जावेगा उसमें मैं अपनी शक्ति भर दूंगा और मेरी शक्तिसे युक्त उस अस्त्रके द्वारा इन्द्र इस वृत्रासुरको विजय करेगा ॥३१॥।

सुराणामर्थसिद्ध्यर्थं दधीचिर्मत्परायणः ।
शरीरं प्रार्थितः सद्यो वदान्यो वः प्रदास्यति ॥३२॥

श्रीदधीचि ऋषि मेरे भक्त तथा दाताओंमें श्रेष्ठ हैं अतः आप लोगोंके माँगने पर देवताओंकी हितसिद्धि के लिये वे अपना शरीर अवश्य दान करदेंगे ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ।
ब्रह्मणा सान्त्वितः शक्रः स्वलोकं प्राप नाकिभिः ॥३३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः-हे प्रिये ! इतना कहकर उन देवताओंके देखते भगवान् अन्तर्हित हो गये, तब श्रीब्रह्माजीके आश्वासन देने पर इन्द्र देवताओंके सहित अपने लोकको गया ३३

ततो वृन्दारकाः सार्कं सुरेन्द्रेण महामुनेः ।
दधीचेराश्रमं गत्वा प्रणेमुर्भक्तिपूर्वकम् ॥३४॥

वहाँसे देववृन्दने इन्द्रको साथमें लेकर महर्षि दधीचिके आश्रममें पहुँचकर, उनको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया ॥३४॥

महर्षिस्तान्समालोक्य कृताञ्जलिपुटान्स्थितान् ।
पप्रच्छ प्रणतो भूत्वा समुत्थाय दिवौकसः ॥३५॥

महर्षि श्रीदधीचिजी महाराजने हाथ जोड़ कर उपस्थित हुये उन देवताओंको देखकरके उठकर प्रणाम किया और पूछा ॥३५॥

श्रीदधीचिरुवाच ।

दृष्ट्वा यदृच्छयाऽऽयातं भवतामपृतान्धसः ! ।
परं कौतूहलं जातमिदानीं मम चेतसि ॥३६॥

हे देवताओ ! आप लोगों का इस समय यह आकस्मिक आगमन देखकर मेरे चित्तमें बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है ॥३६॥

कस्मान्मदन्तिकं प्राप्ता इदानीं तदिहोच्यताम् ।
करवाणि यथाशक्ति सेवां वोऽदितिनन्दनाः ॥३७॥

हे अदितिनन्दन देवताओं ! मैं यथा शक्ति आप लोगोंकी अवश्य सेवा करूँगा, अतः बतलाइये-आप लोग इस समय मेरे पास किस लिये आये हैं ? ॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमाश्वासिता देवाः सदा स्वार्थपरायणाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयो नम्रा दधीचिमृषिसत्तमम् ॥३८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे तपोधन ! सदा निज स्वार्थमें ही लगे रहने वाले वे, देवता इस प्रकारका आश्वासन पाकर नम्र हो हाथ जोड़े हुये ऋषियोंमें परम श्रेष्ठ उन श्रीदधीचिजी महाराजसे बोले—॥३८॥

देवा ऊचुः ।

त्वदस्थिनिर्मितादस्त्रान्मृतिर्वृत्रस्य कल्पिता ।
येन संपीडिता ब्रह्मन् सम्भ्रमाम इतस्ततः ॥३९॥

हे ब्रह्मन् ! जिस वृत्रासुरसे पीड़ित होकर हम सभी देवता इधर उधर भटक रहे हैं, उसकी मृत्यु आपके हड्डियों द्वारा बनाये हुये वज्रसे होनी है ॥३९॥

वधकामा वयं तस्य भवन्तं शरणं गताः ।
स्वास्थिपुञ्जप्रदानेन भव देवाभयप्रदः ॥४०॥

हम लोग उस वृत्रासुरके वधके इच्छुक हो आपकी शरणमें आये हैं, सो आप अपनी हड्डियोंकी राशि प्रदान करके देवताओंको अभय कीजिये ॥४०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति तेषां वचः श्रुत्वा सुराणां विनयान्वितम् ।
महाधीरः प्रहृष्टात्मा महात्मा वाक्यमब्रवीत् ॥४१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजीमहाराज बोलेः—हे प्रिये ! देवताओंके विनययुक्त इस वचनको सुनकर महान् धैर्यशाली महात्मा श्रीदधीचिजीमहाराज बड़े हर्षित मनसे बोले :—॥४१॥

श्रीदधीचिरुवाच ।

शरीरं नूनमेवेदं भौतिकं क्षणभङ्गुरम् ।
अस्पृश्यं विगतप्राणं नित्यश्चात्माऽव्ययोऽजरः ॥४२॥

यह पंच भूतोंसे बना हुआ शरीर निश्चय ही क्षणमात्रमें नष्ट हो जाने वाला है तथा प्राणोंके निकल जाने पर यह छूने योग्य भी नहीं रहता क्योंकि इतना अपवित्र हो जाता है और आत्मा जरा-मृत्यु आदि से रहित सदा एक रस रहने वाला है ॥४२॥

तस्माच्छरीरदानेन यदि साध्यं हितं हि वः ।
तूर्णमेव प्रदास्यामि प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥४३॥

इस लिये यदि मेरे शरीर दान कर देने से आप लोगो का हित बनता है, तो मैं अपने प्रसन्न हृदयसे इस शरीरको तुरत दान करता हूँ ॥४३॥

अहो धन्यं हि मे भाग्यं भवद्भिरभियाच्यते ।
स्वाभयार्थप्रसिद्धयर्थं गतासुं मत्कलेवरम् ॥४४॥

अहो मेरा भाग्य कितना सुन्दर है जो आप देवगण अपनी अभय कामना को पूर्ण करनेके, लिये मेरे प्राण रहित इस शरीर का दान माँग रहे है ॥४४॥

अस्थिपुञ्जं शरीरं मे सुखं स्वीकुरुतामराः ! ।
अहमेतत्परित्यज्य संव्रजामि हरेः पदम् ॥४५॥

हे अमरण शील देवताओ ! इस लिये आप लोग हड्डियोंके पुञ्ज भूत मेरे शरीरको सुख पूर्वक स्वीकार कीजिये, मैं इस को छोड कर भगवान् श्रीहरिके धाम (वैकुण्ठ) को जा रहा हूँ ॥४५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्त्वा तपोमूर्त्तिर्यतवाक्कायमानसः ।
विसृज्य नश्वरं देहं जगाम हरिमन्दिरम् ॥४६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये ! इस प्रकार देवताओंसे कहकर तपोमूर्ति श्री-दधीचिजी महाराज मौन हो सिद्धासनसे बैठ गये और अपने इच्छानुसार मनको श्रीभगवानके चरण कमलमें लगाकर इस नाशवान् शरीर को छोड कर श्रीवैकुण्ठधामको चले गये ॥४६॥

परोपकारः कर्त्तव्यः सदा निष्कामया धिया ।
तस्मान्नास्ति परं पुण्यं तपोदानव्रतादिकम् ॥४७॥

इस लिये निष्काम बुद्धिसे दूसरों का हित सदैव करना चाहिये क्योंकि उस (परोपकार) से, बढ़कर न कोई पुण्य है, न तप है न दान है न कोई व्रत आदि ॥४७॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

अथ वत्स ! महाभाग ! तदस्थीनि महात्मनः ।
सुरेन्द्रो विश्वकर्माणं प्रदायोवाच सादरम् ॥४८॥

श्रीविश्वामित्रजी बोलेः—हे वत्स ! हे महाभाग ! तत्पश्चात् देवराज इन्द्र विश्वकर्माको बुलाकर महात्मा श्रीदधीचिजीकी हड्डियोंको देकर उनसे आदर पूर्वक बोलेः—॥४८॥

श्रीइन्द्र उवाच ।

मुनेरस्थिचयादस्मान्निर्मितास्त्रैर्महामते ! ।
प्रहतो राक्षसः कोऽपि जीवितो न भविष्यति ॥४९॥

हे विश्वकर्माजी ! श्रीदधीचि मुनिजी इन हड्डियोंसे जो अस्त्र बनेंगे उनके द्वारा प्रहार करने पर कोई भी राक्षस जीवित न बचेगा ॥४६॥

तस्मादस्य त्रयो भागाःकर्त्तव्या भवता पुनः ।
अस्त्रत्रयस्य निर्माणं यथा वच्मि विधीयताम् ॥५०॥

इस लिये इस अस्थिपुञ्जके पहिले आप तीन भाग कर लीजिये पुनः मैं जैसे कहता हूँ उसी प्रकार अस्त्रों का निर्माण कीजिये ॥५०॥

आदौ धनुर्द्वयं दिव्यं वज्रमेकमथोत्तमम् ।
निर्मापय महाबुद्धे ! नानामणिपरिष्कृतम् ॥५१॥

हे महाबुद्धे ! पहिले अनेक प्रकारकी मणियोंसे जटित दो दिव्य धनुष, उसके पश्चात् एक उत्तम वज्र बनाइये ॥५१॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एवं मघवताऽऽदिष्टो विश्वकर्मा सुराधिपम् ।
यथोक्तं करवाणीति समाभाष्य ननाम तम् ॥५२॥

श्रीविश्वामित्रजीमहाराज बोले:-हे वत्स ! इन्द्रकी इस आज्ञाको पाकर विश्वकर्माजीने आज्ञानुसार ही करूँगा यह कहकर उनको प्रणाम किया ॥५२॥

ततः सर्वेश्वरं नत्वा पञ्च ब्रह्म च भक्तितः ।
अस्त्राणि निर्ममे त्रीणि जगत्क्षेमकराणि सः ॥५३॥

तत्पश्चात् श्रीविश्वकर्माजीने सर्वेश्वर प्रभु श्रीसाकेताधीशजीको तथा पञ्चब्रह्म (गणपति, दुर्गा, शिव, विष्णु, भगवान्) को प्रणाम करके विश्व कल्याणकारी तीनों अस्त्रोंको बनाया ॥५३॥

तानि दृष्ट्वा प्रसन्नात्मा सुरेन्द्रः सुप्रशस्य तम् ।
ब्रह्मणे दर्शयामास स समीक्ष्याह वासवम् ॥५४॥

उन तीनो अस्त्रोंको देखकर देवराज इन्द्रका हृदय बहुत प्रसन्न हुआ, अत एव विश्वकर्माजीकी सम्यक् प्रकारसे प्रशंसा करके उन अस्त्रोंको श्रीब्रह्माजीको दिखलाया, ब्रह्माजी उन्हें देख कर इन्द्रसे बोले :-॥५४॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

यदिदं निर्मितं पूर्वं शक्र ! कोदण्डमद्भुतम् ।
अर्पणीयं त्वया भक्त्या विष्णवे शार्ङ्गसञ्ज्ञकम् ॥५५॥

हे इन्द्र ! पहिले जो यह अद्भुत अस्त्र बनाया गया है, उस शार्ङ्गनामक धनुषको तुम श्रीविष्णु भगवानको अर्पण करो ॥५५॥

पिनाकाख्यमिदं चापं शूलिने चन्द्रमौलये ।
सादरं त्रिदशश्रेष्ठ ! ह्यर्पणीयं पुरारये ॥५६॥

हे देव श्रेष्ठ ! दूसरा जो पिनाक नामका धनुष है, उसे तुम मस्तक पर चन्द्रमा और हाथमें त्रिशूल धारण करने वाले पुर दैत्यघाती श्रीभोले नाथजीको अर्पण करो ॥५६॥

वज्राभिधमिदं चास्त्र सर्वरक्षोविनाशनम् ।
त्वया सुरपते ! ग्राह्यं वृत्रविध्वंसमिच्छता ॥५७॥

हे देवराज ! और वृत्रासुरका विनाश चाहने वाले तुम सभी राक्षसोंके नाश करने वाले इस वज्र नामक अस्त्रको ग्रहण करो ॥५७॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

बहुशः प्रार्थितौ देवौ ससुरेशेन वेधसा ।
प्रादुर्बभूवतुस्तत्र हरिः शम्भुः कृपान्वितौ ॥५८॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोलेः-हे वत्स ! इन्द्रके सहित ब्रह्माजीके द्वारा बहुत प्रार्थना करने पर वे कृपालु श्रीविष्णु भगवान् तथा श्रीभोलेनाथजी दोनों ही प्रकट हो गये ॥५८॥

परितोषाय देवानां धनुषी ते समर्पिते ।
ऊरीकृत्य सुरेन्द्रेण जग्मतुस्तावदृश्यताम् ॥५९॥

इत्यैकनवतितमोऽध्याय ॥९१॥

और देवताओंके सन्तोषके लिये इन्द्रके द्वारा अर्पण किये हुये दोनों धनुषोंको श्रीभोलेनाथजी तथा श्रीविष्णु भगवान् स्वीकार करके अन्तर्हित हो गये ॥५९॥

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

इस शिव-धनुषको जो तोड़ेगा उसीके साथ हमारी श्रीललीजूका विवाह होगा, इस विषयमें श्रीविश्वामित्रजीके द्वारा भगवान् शिवजीका श्रीविष्णु भगवान्के साथ युद्ध तथा श्रीमिथिलेश महाराजको धनुषकी प्राप्ति एवं उनकी प्रतिज्ञाका कारण वर्णन ।

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

वृत्रं युधि जघानेन्द्रः सर्वदेवभयावहम् ।
तेन वज्राभिधास्त्रेण तन्मनोभावलज्जितः ॥१॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोले:—हे वत्स ! समस्त देवताओंके भयदायक उस वृत्रासुरको, उसके मनोभावों पर लज्जित होने पर भी इन्द्रने उसी वज्रास्त्रसे मार दिया ॥१॥

वर्षपुञ्जे गते देवाः कोऽधिको वीर्यवानिति ।
ईशविष्णवोरिति प्रश्नं मिथश्चक्रुः कुतूहलात् ॥२॥

बहुत वर्षोंके व्यतीत होने पर कौतूहल वश देवोंने आपसमें यह प्रश्न किया, कि भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णुमें कौन अधिक बलवान् हैं ॥२॥

केषांचित्सम्मतेनेशहर्योरीशो मतो वरः ।
केषांचिदथ सम्मत्या हरिरेव वरोऽधिकः ॥३॥

उनमें कुछ देवताओंके मतसे ईश(श्रीशङ्करजी) और विष्णु भगवान्में शिवजी ही श्रेष्ठ सिद्ध हुये और कुछ देवताओंकी सम्मतिसे श्रीविष्णु भगवान् ही अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुये अर्थात् शैवोंने शिवजी-को और वैष्णवोंने श्रीविष्णु भगवान्को अधिक श्रेष्ठ सिद्ध किया ॥३॥

अलब्धे निर्णये भूयो स्पर्द्धमानाः परस्परम् ।
उपगम्य विधातारं प्रणेमुर्निर्जरा हि ते ॥४॥

इस विषयमें बारम्बार विवाद करने पर भी जब सर्व सम्मतिसे कोई एक निर्णय न हो सका, तब उन देववृन्दोंने श्रीब्रह्माजीके पास जाकर उनको प्रणाम किया ॥४॥

तानुवाच नतस्कन्धान्सर्वलोकपितामहः ।
किमर्थं वो हि देवानां भूतागमनकारणम् ॥५॥

कन्धा झुकाये हुये उन देववृन्दोंको देखकर समस्त लोकोंके बाबा श्रीब्रह्माजी बोलेः-हे देवताओं! बतलाइये-आप लोगोंके यहाँ आनेका क्या कारण है...? ॥५॥

श्रीविश्वामित्र उवाच।

अधिगम्य शुभादेशं ब्रह्मणस्ते स्वयम्भुवः।
ऊचुः प्राञ्जलयो नत्वा याचमानाः क्षमां मुहुः ॥६॥

श्रीविश्वामित्रजीमहाराज बोलेः-हे वत्स! वे देववृन्द श्रीब्रह्माजीकी इस मङ्गलमयी आज्ञाको पाकर वारम्बार क्षमा माँगते हुये, प्रणाम करके उनसे हाथ जोड़कर बोले :-॥६।

श्रीदेवा ऊचुः।

ईशहर्य्योर्वरः कोऽस्ति विवादोऽयं हि नो महान्।
केचिद्वदन्ति भूतेशं तयोः केचिद्वरं हरिम् ॥७॥

भगवान् श्रीशिवजी और श्रीविष्णु भगवान्में कौन श्रेष्ठ है, इस विषयमें हम लोगोंका महान् विवाद (झगड़ा) है। उन दोनोंमें कुछ भगवान् श्रीभूतनाथजीको और कुछ लोग भगवान् श्रीहरिको श्रेष्ठ बतलाते हैं ॥७॥

निश्चयं नाधिगच्छामः कतमः श्रेष्ठ इत्यमी।
अतो वयं समायाताः शरणं त्वां जगद्गुरो? ॥८॥

परन्तु वस्तुतः दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है? यह हम लोग निश्चय नहीं कर पाते। हे जगद्गुरो! इसी शङ्काको दूर करानेके लिये हम लोग आपकी शरणमें आये हैं। ८॥

श्रीब्रह्मोवाच।

द्वयोर्युद्धं विना देवा नाभीष्टं वः प्रसिद्ध्यति।
रोषवृद्धिं विना तस्य क्वापि सिद्धिर्न जायते ॥९॥

श्रीब्रह्माजी बोले-हे देवताओ! विना दोनोंमें युद्ध हुये आप लोगोंका यह अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता, और विना क्रोध वृद्धिके कभी युद्ध होता नहीं ॥९॥

महादेवे कथं सा स्याद् विष्णोर्वैष्णवपुङ्गवे।
शिवस्यापि तथा विष्णौ चिन्त्यमानपदाम्बुजे ॥१०॥

उस क्रोध की वृद्धि श्रीविष्णु भगवान्के हृदयमें परम वैष्णव श्रीसदाशिवजीके प्रति और

श्रीभोलेनाथजीके हृदयमें जिनके, कि श्रीचरण कमलोंका वे ध्यान करतेहैं उन श्रीविष्णु भगवान् के प्रति किस प्रकार हो सकती है ? अर्थात् दोना असङ्गत ही है ॥१०॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

इति तद्व्याहृतं वाक्यं समाकर्ण्य दिवौकसः ।
ब्रह्माणं प्रत्युवाचेदं नान्यथा तुष्टिरेव नः ॥११॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोलेः हे वत्स ! श्रीब्रह्माजीके कहे हुये वचन को सुनकर, देवताओं ने फिर उनसे कहाः-हे पितामह ! बिना अपनी शङ्काको दूर कराये हमें सन्तोष नहीं है ॥११॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एतादृशं हठं दृष्ट्वा देवानां भगवानजः ।
सुरर्षिं नारदं दध्यौ ततोऽसौ द्रुतमाययौ ॥१२॥

श्रीविश्वामित्रजी बोलेः हे तात ! देवताओंका इस प्रकारका हठ देखकर भगवान ब्रह्माजी ने देवर्षि नारद का ध्यान किया, जिससे वे (श्रीनारदजी महाराज) तुरत आ पधारे ॥१२॥

तमुवाच महातेजाः प्रणतं दीनवत्सलम् ।
परोपकारिणां मुख्यं ब्रह्मा भुवनवन्दितम् ॥१३॥

महातेजस्वी श्रीब्रह्माजी, जिनको समस्त विश्व प्रणाम करता है, जो दीनों पर वात्सल्य भाव रखने वाले तथा सब से बढ़कर परोपकारी हैं, उन प्रणाम करने वाले श्रीदेवर्षिजीसे बोले ॥१३॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

एते वृन्दारका वत्स ! ईशहर्य्योर्महात्मनोः ।
प्रत्यक्षं द्रष्टुमिच्छन्ति बलवान्क इति स्फुटम् ॥१४॥

हे वत्स ! ये देव वृन्द श्रीहरि हरमें कौन विशेष बलवान है" यह स्पष्ट रूपसे प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं ॥१४॥

मया निषिद्धयमानानां सन्तोषो नैव जायते ।
अतस्त्वं कलहोत्पत्तेः साधने देहि मानसम् ॥१५॥

मैं इनको मना कर रहा हूँ, पर इन्हें सन्तोष ही नहीं होता है, इस लिये उन भगवान् विष्णु तथा श्रीभोलेनाथजीमें जिस प्रकार कलह उत्पन्न हो जाय, वैसा ही साधन करनेमें अपना मनोयोग दें ॥१५॥

त्वदन्यो न क्षमो लोके कार्यस्यास्य प्रसाधने ।
सुराणां संशयं छिन्धि न ह्यानिस्ते भविष्यति ॥१६॥

तुम्हारे अतिरिक्त और कोई इस कार्यको करनेमें समर्थ नहीं है, इस लिये इस कार्यके द्वारा तुम देवताओंकी शङ्काको नष्ट करो, तुम्हारे लिये किसी प्रकारकी हानि न होगी ॥१६॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

यथाऽऽदिष्टं करोमीति पितरं सोऽभिभाष्य तम् ।
नमस्कृत्य जगामाशु कैलाशं शिवपालितम् ॥१७॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोलेः—हे वत्स ! श्रीनारदजीमहाराज अपने पिताजीसे "जैसी आज्ञा है, वैसा ही करूँगा" ऐसा कहकर उन्हें नमस्कार करके वे भगवान् शिवजीके द्वारा पालित कैलाश को तत्क्षण चले गये ॥१७॥

तत्र शम्भुं सुखासीनं प्रणनाम समादृतः ।
संपृष्टः कुशलं भूयः सुरर्षिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥

वहाँ सुखासनसे बैठे हुये श्रीभोले नाथजीको, देवर्षि श्रीनारदजीने प्रणाम किया और पूर्ण आदर को पाकर कुशल समाचर पूछने पर वे श्रीशिवजीसे बोलेः—॥१८॥

श्रीनारद उवाच ।

भवान् ब्रह्मा च विष्णुश्च त्रिरूपस्त्वेक एव हि ।
वस्तुतः प्रवदन्तीत्थं श्रुतयश्च महर्षयः ॥१९॥

भगवन् ! आप (शिव), ब्रह्माजी तथा श्रीविष्णुभगवान् तीन स्वरूप होते हुये भी वास्तवमें तो एक ही हैं, ऐसा चारो वेद तथा महर्षि गण कहते हैं ॥१९॥

मद्भिया पवनो वाति तपतीह त्विषांपतिः ।
वृष्टिं करोति देवेशः शेषो धत्ते वसुन्धराम् ॥ २० ॥

मेरे डरसे पवन उचित मात्रामें बहता है, सूर्य मेरे भयसे अनुकूल मात्रामें ही उष्णता प्रदान करता है, मेरे भयसे इन्द्र उचित परिमाणमें ही यथा समय जल बरसाता है तथा मेरे भयसे श्रीशेष जी सदैव पृथ्वीको अपने शिर पर रक्खे रहते हैं ॥२०॥

ब्रह्मणा सृज्यते विश्वं ह्रियते शम्भुना ऽखिलम् ।
ममैवाज्ञानुवर्तिभ्यां सर्वेषां च प्रभोरिति ॥२१॥

तथा मुझ सर्वेश्वरके आज्ञानुसार ही ब्रह्मा इससम्पूर्ण जगत्की सृष्टि और रुद्र संहार करते हैं२१

श्रीनारद उवाच।

वैकुण्ठे श्रुतवानस्मि वदतः श्रीपतेः स्वयम्।
ततः शङ्कान्वितो भूत्वा भवन्तमहमागतः ॥२२॥

इस बात को वैकुण्ठमें स्वयं श्रीपति भगवान् विष्णुके द्वारा मैंने सुना है, इस लिये सन्देह वश होकर मैं आपके पास आया हू ॥२२॥

श्रीशिव उवाच।

विष्णुः परात्परं ब्रह्म साकेताधिपतिः प्रभुः।
अहं तद्भक्तिनिरतो न विष्णोः सृष्टिरक्षितुः ॥२३॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे श्रीनारदजी! जो विष्णु परात्पर ब्रह्म, सर्वसमर्थ, श्रीसाकेताधीश राम हैं, मैं उनका भक्त हूँ, सृष्टि रचक विष्णुका नहीं ॥२३॥

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे सर्वदाऽऽज्ञापरायणाः।
सर्वेश्वरस्य रामस्य तेषां मुख्यास्त्रयो वयम् ॥२४॥

ब्रह्मादि सभी देवगण सर्वदा सर्वेश्वर श्रीरामभद्रजूके ही आज्ञाकारी हैं, उन सभी देवोंमें भी हम लोग ३ मुख्य हैं ॥२४॥

चराचरस्य जगतः सृष्टिकर्ता पितामहः।
विष्णुश्च पालकस्तस्य संहर्ताऽपि तथाऽस्म्यहम् ॥२५॥

जगत्के सम्पूर्ण चर-अचर प्राणियाकी सृष्टि का काम ब्रह्माजीका, पालन करनेका विष्णुजीका तथा संहार करनेका काम हमारा है ॥२५॥

एतेषां कस्यचित्कोऽपि न स्वामी दास एव च।
दासाः सर्वे तु रामस्य स्वामी रामस्तथैव नः ॥२६॥

इस लिये इन तीनोंमें न कोई किसीका दास है, न कोई किसीका स्वामी। हम सभी उन सर्वेश्वर ब्रह्म भगवान् श्रीरामजीके दास हैं तथा वही श्रीरामजी हम सबके स्वामी हैं ॥२६॥

तावदेवाखिलं विश्वं जायते दृष्टिगोचरम्।
यावदस्य विनाशाय मतिर्मे नोपजायते ॥२७॥

हे नारदजी ! यह विश्व तभी तक दिखाई दे रहा है, जब तक इसका विनाश करने के लिये मेरा निश्चय नहीं होता ॥२७॥

मयि क्रुद्धे न देवेशो नान्तको वारिजासनः ।
न च विष्णुः परित्रातुं क्षमो विश्वं कथञ्चन ॥२८॥

मेरे क्रुद्ध होजाने पर न इन्द्र, न यम, न ब्रह्मा न विष्णु ही इस विश्व की रक्षा करने को समर्थ हैं ॥२८॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

तदित्याशंसितं श्रुत्वा नारदो देवकार्यकृत् ।
अभिवाद्य तदाज्ञप्तो वैकुण्ठं समुपेयिवान् ॥२९॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज श्रीलखनलालजीसे बोले:- हे वत्स ! श्रीभोलेनाथजी के इस कथन को सुनकर देवताओं का कार्य करने वाले वे श्रीनारदजी उनकी आज्ञा पाकर प्रणाम करके, वैकुण्ठ में पधारे ॥२९॥

प्रणतः सत्कृतस्तेन रमानाथं जगत्पतिम् ।
संपृष्टकुशलस्तत्र सुरर्षिः प्राह साञ्जलिः ॥३०॥

वहाँ जगत्पति, श्रीलक्ष्मीनाथ भगवान् को प्रणाम करके उनके द्वारा सत्कार प्राप्त कर कुशल समाचार पूछने पर श्रीनारदजी हाथ जोड़ कर बोले ॥३०॥

श्रीनारद उवाच ।

यदृच्छयाऽद्य देवेश ! कैलाशं गतवानहम् !
साहङ्कारमुवाचेदं तत्र रुद्रस्तु मे वचः ॥३१॥

हे देवेश देवताओं के स्वामी) ! दैव संयोगसे आज मैं कैलाशको गया था, वहाँ भगवान् रुद्रने अहङ्कार पूर्वक मुझसे यह बात कही है ॥३१॥

श्रीरुद्र उवाच ।

गोप्यमानमिदं विश्वं विष्णुना प्रभविष्णुना ।
नाशयाम्यल्पकालेन मयासोऽपि न जायते ॥३२॥

शक्तिशाली विष्णुके द्वारा रक्षा करते रहने पर भी, जब मेरी इच्छा होती है, तब कुछ ही समयमें मैं इस विश्वको नष्ट कर डालता हूँ उसमें मुझे कुछ भी परिश्रम नहीं होता ॥३२॥

मय्येतद्धि जगत्सर्वं संहाराय समुद्यते।
न तु त्रातुं क्षमो विष्णुश्चक्रपाणिश्चतुर्भुजः ॥३३॥

और जब मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को संहार करनेके लिये उद्यत हो जाता हूँ, तब सुदर्शन चक्रधारी चार-भुजाओं वाले वे विष्णु भी इसकी रक्षा नहीं कर पाते ॥३३॥

अत एव मुने ! शक्तौ मम विष्णोश्च संस्फुटम्।
त्वया विचारः कर्त्तव्यो गुर्वी लघ्वी तु कस्य वै ॥३४॥

हे मुने ! इस लिये मेरी तथा विष्णुकी शक्तिमें आप ही विचार कर सकते हैं कि, किसकी छोटी या बड़ी है ॥३४॥

त्र्यधीशानामहं श्रेष्ठ इत्यहङ्कार उद्धतः।
विष्णोर्मत्सम्मुखं प्राप्तवतस्तूर्णं विनश्यति ॥३५॥

अत एव तीनों देवोंमें मैं ही श्रेष्ठ हूँ, विष्णु का यह बढ़ा हुआ अभिमान, मेरे सम्मुख आते ही तुरत नष्ट हो जायगा ॥३५॥

श्रीनारद उवाच।

इत्यहं वाक्यमाकर्ण्य कौतूहलसमन्वितः।
अनुक्त्वा तत्र किमपि प्रागमं तेऽन्तिकं प्रभो ! ॥३६॥

श्री नारदजी बोले :-हे प्रभो ! भगवान् शङ्करजीके इस कथनको सुनकर मैं आश्चर्यमें पड़ गया और बिना कुछ कहे ही वहाँ से आपके पास चला आया हूँ ॥३६॥

श्रीविश्वामित्र उवाच।

साभिमानमिदं वाक्यं रुद्रस्य नारदेरितम्।
समाश्रुत्य स्मितं कृत्वा प्रत्युवाच सतां पतिः ॥३७॥

श्रीविश्वामित्रजी श्रीलखनलालजीसे बोले:-हे वत्स ! श्रीनारदजीके द्वारा भगवान् शिवजीके अभिमान युक्त कहे हुये, इस वचनको सुनकर, सन्तोंकी रक्षा करने वाले भगवान् श्रीहरि मन्द मुसकरा कर उनसे बोले:-॥३७॥

श्रीभगवानुवाच।

सत्यमुक्तं हि रुद्रेण किन्तु युद्धेन तस्य मे।
परीक्षा पश्यतां शक्तेः सर्वेषां वो भविष्यति ॥३८॥

हे नारदजी ! श्रीरुद्रजीने कहा सत्य ही है, किन्तु यदि युद्ध हो, तो उसके द्वारा आप आदिक सभी उपस्थित दर्शकोंको हमारी और उनकी शक्तिकी परीक्षा हो जायगी ॥३८॥

क्व यातस्तद्बलं वीर्यं वृके चाप्यनुधावति ।
कमेत्य शरणं शर्म प्राप्तोऽसविति चिन्तयेत् ॥३९॥

जिस समय वृकासुर पार्वतीजीके लोभसे उन्हें भस्म करनेके लिये पीछे दौड़ रहा था, उस समय उनका यह बल और पराक्रम कहाँ चला गया था ! और किसके शरणमें आने पर उन्हें शान्ति मिली थी ? इस बातपर वे ही विचार करें कि कौन श्रेष्ठ है ? ॥३९॥

श्रीनारद उवाच ।

जानामि भगवन् सर्वं पौरुषं मुण्डमालिनः ।
भवन्तं सो ऽवजानाति केवलं दर्पमाश्रितः ॥४०॥

श्रीनारदजी बोले:-हे भगवन् ! मैं मुण्डोंकी माला धारण करने वाले श्रीरुद्र भगवानका पौरुष जानता हूं, वे तो केवल अभिमानके वशी भूत होकर आपका अपमान कर रहे हैं ॥४०॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एवमाभाष्य तं देवं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
कैलाशं नारदो योगी प्राप्य रुद्रं ननाम ह ॥४१॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज श्रीलखनलालजीसे बोले:-हे वत्स ! श्रीनारदजी इस प्रकार श्रीविष्णु भगवानसे कहकर तथा उन्हें बारंबार प्रणाम करके कैलाश पहुँचे और भगवान शिवजीको उन्होंने प्रणाम किया ॥४१॥

नारदं व्यग्रमनसं समालोक्य पुरान्तकः ।
सादरं परिपप्रच्छ कस्माद्व्यग्रमना ह्यसि ॥४२॥

श्रीनारदजीका चित्त चञ्चल देखकर पुरदैत्य को मारने वाले भगवान् रुद्रजी ने पूछा:-हे नारदजी ! आज आपका मन चञ्चल क्यों हो रहा है ? ॥४२॥

श्रीनारद उवाच ।

विजयाय धनुष्पाणिर्विष्वक्सेनादिपार्षदैः ।
आयाति भगवान् विष्णुः सगर्वस्तेऽन्तिकं प्रभो ! ॥४३॥

श्रीनारदजी बोले:-हे प्रभो ! अपने विष्वक्सेनादि पार्षदोंके समेत, हाथमें धनुषबाण को धारण किये हुये, अभिमान से युक्त हो, विष्णु भगवान् विजय करनेके लिये आपके पास आरहे हैं॥४३॥

तत्तु सूचयितुं तुभ्यं व्यग्रचित्तः समागमम्।
परिणामोऽस्य को भूयाद्युद्धस्यैष न निश्चयः ॥४४॥

आपको इस बातकी सूचना देने के लिये ही भयभीत चित्त होकर आया हूँ! इस युद्ध का क्या परिणाम होगा यह अनिश्चित है ॥४४॥

युद्धार्थं तेन गन्तव्यं त्वयाऽपि चन्द्रशेखर!
स्वगणैरचिरेणैव रणे वार्यो हि तन्मदः ॥४५॥

हे चन्द्रशेखर (चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले) प्रभो! अब आप को भी अपने गणों के सहित विष्णु भगवानके साथ युद्ध करनेके लिये शीघ्र चल देना चाहिये, और युद्ध में उन विष्णु भगवान् का अभिमान दूर करना चाहिये ॥४५॥

श्रीविश्वामित्र उवाच।

एवमुक्तो महाक्रुद्धो रुद्रो भूतगणान्वितः।
प्रस्थितो योद्धुकामोऽसौ पिनाकी शार्ङ्गपाणिना ॥४६॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज श्रीलखनलालजीसे बोले:-हे वत्स! श्रीनारदजीके इस प्रकार कहने पर श्रीरुद्रजी अत्यन्त क्रुद्ध हो भूत गणोंके सहित पिनाक धनुष को धारण करके शार्ङ्ग-पाणि श्रीविष्णु भगवान्से लड़ने के लिये चल दिये ॥४६॥

ततो वैकुण्ठमागत्य सुरर्षिस्त्रिपुरद्विषः।
चेष्टितं हरये कृत्स्नं प्रणिपत्य न्यवेदयत् ॥४७॥

इधर देवर्षि श्रीनारदजीने वैकुण्ठमें पहुँच कर भगवानको प्रणाम करके, त्रिपुरदैत्य का वध करने वाले भगवान रुद्रकी समस्त चेष्टाओंको उनसे कह सुनाया ॥४७॥

तन्निशम्य रमानाथः स्मयमानमुखाम्बुजः।
नारदं प्रत्युवाचेदं किमेतद्रुद्रनिश्चितम् ॥४८॥

उसको सुनकर रमापति मुसकराकर बोले:-रुद्रने यह क्या निश्चय कर लिया ॥४८॥

युद्धायोपस्थितं दृष्ट्वा नैवार्होऽस्मि पलायितुम्।
अजय्यो देवदैत्येन्द्रैर्नीतिरेषा दुरत्यया ॥४९॥

अब युद्ध के लिये उन्हें उपस्थित देखकर मुझे भाग जाना भी उचित नहीं है क्योंकि मैं देव-दैत्य दोनोंसे ही अजय हूँ, इस नीतिको छोड़ना सभी के लिये दुःखकर होगा, अतः मुझे उनसे हार मान लेना भी नीति विरुद्ध है ॥४९॥

अतो ऽहङ्कारमूढात्मा लाभायात्र समागतः ।
कृत्वा युद्धं मया सार्द्धं रुद्रो हानिमवाप्स्यति ॥५०॥

एतदर्थ अहङ्कारसे पागल हुई बुद्धि वाले रुद्र देव, विजय लाभ के लिये यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करने पर पराजय रूपी हानि को ही प्राप्त करेंगे ॥५०॥

देवर्षे ! किं करोम्यत्र दूषणं किं तथाऽस्ति मे ।
अनिच्छतोऽपि मे युद्धं तेन सार्द्धं भविष्यति ॥५१॥

हे देवर्षे ! इस विषयमें अब मैं क्या करूँ ? तथा इस उपस्थित समस्यामें मेरा दोष ही क्या है उनके आजाने पर बिना इच्छाके भी मुझे उनके साथ युद्ध करना ही पड़ेगा ॥५१॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एवमुक्तं वचः श्रुत्वा श्रीपतेर्मधुराक्षरम् ।
नारदः स्वाञ्जलिं बध्वा सादरं तमभाषत ॥५२॥

श्रीविश्वामित्रजी बोले :-हे वत्स श्रीलखनलालजी ! श्रीपति भगवानके इन मधुर वचनोंको सुन कर, श्रीनारदजी उनसे आदर पूर्वक, हाथ जोड़ कर बोले:-॥५२॥

श्रीनारद उवाच ।

भगवन् ! युद्धकालेऽस्मिन्नैषा कार्या विचारणा ।
पराजितानां भवता हानिर्लाभाय कल्पते ॥५३॥

हे भगवन् ! इस युद्ध के समयमें आप इस वात्सल्यपूर्ण विचारको छोड़ दीजिये, क्योंकि आप जिन्हें जीत लेते हैं, उन की पराजय (हार) रूपी हानि भी दिव्यधाम प्राप्ति रूपी महान् लाभ को प्रदान कर देती है ॥५३॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

इत्थं संप्रार्थितो भक्त्या भगवान् भक्तवत्सलः ।
पार्षदैः संवृतो योद्धुं स रुद्रेण विनिर्ययौ ॥५४॥

श्रीविश्वामित्रजी बोले । हे तात ! श्रीनारदजी की प्रेम-पूर्वक की हुई प्रार्थना को सुनकर भक्त-वत्सल भगवान् अपने पार्षदोंके सहित श्रीरुद्रजीसे युद्ध करनेके लिये बाहर निकले ॥५४॥

तयोः समागमं दृष्ट्वा युद्धसंदत्तचित्तयोः ।
कौतूहलवशाद्देवास्तत्र मुख्या उपाययुः ॥५५॥

युद्ध में पूर्ण चित्त दिये हुये, श्रीहरि-हरको उपस्थित देखकर आश्चर्यवश हो, वहाँ सभी मुख्य देव-वृन्द भी उपस्थित हो गये ॥५५॥

अथ शार्ङ्गधरं दृष्ट्वा रुद्रस्त्रिपुरघातकः ।
बाणान्ववर्ष कुपितो जलानीन्द्र इवाचले ॥५६॥

तत्पश्चात् त्रिपुर दैत्य का वध करने वाले श्रीरुद्रजी शार्ङ्गधनुषधारी भगवानको देखकर क्रुद्ध हो,इस प्रकार उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे जैसे इन्द्र पर्वत पर जलकी करता है ॥५६॥

वारयित्वा निजैर्बाणैः सलीलं तान्स्मिताननः ।
मुमोच सायकं दिव्यं पिनाके गरुडध्वजः ॥५७॥

उन बाणोंको अपने बाणोंसे खेल पूर्वक हटाकर मन्द मुस्कराते हुये, गरुडध्वजाधारी श्रीविष्णु-भगवानने अपना एक बाण पिनाक धनुष पर छोड़ा ॥५७॥

तत्स्पर्शादेव भूतेशः सपिनाको हि सत्वरम् ।
जडत्वमगमद्वत्स ! पश्यतां च दिवौकसाम् ॥५८॥

हे वत्स ! उस बाण का स्पर्श होते ही देवताओंके देखते देखते श्रीरुद्रजी पिनाक धनुषके सहित जड़ हो गये ॥५८॥

तदा देवा जगन्नाथमलं युद्धेन ते प्रभो !
प्रार्थयन्त इति श्रीशमब्रुवन्सादरं वचः ॥५९॥

तब देव लक्ष्मीपति जगतके स्वामी श्रीविष्णु भगवानसे "हे प्रभो ! अब युद्ध बहुत हो गया बन्द कीजिये" बन्द कीजिये, इस प्रकार प्रार्थना करते हुये आदरपूर्वक बोले :-॥५९॥

देवा ऊचुः ।

भगवन् महती शङ्का निवृत्ता नो दुरत्यया ।
नातः प्रयोजनं तेऽद्य सङ्ग्रामेण पुरारिणा ॥६०॥

हे भगवन ! हम सबोंकी यह बहुत बड़ी शङ्का, जिसका कि निवारण करना कठिन था, दूर हो गयी, इस लिये अब आपको रुद्रजीके साथ युद्ध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥६०॥

चेतनत्वं समायातु पिनाकी त्वत्प्रसादतः ।
निर्जराणामिमां नाथ ! प्रार्थनां स्वीकुरु प्रभो ! ॥६१॥

हे नाथ ! आपकी कृपासे पिनाक धनुषको धारण करनेवाले श्रीभोलेनाथजी अपने चेतन स्वरूपको प्राप्त हो जावें, देवताओंकी इस प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये ॥६१॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एवमुक्त्वा सुराःसर्वे नमस्कृत्य जगत्प्रभुम् ।
कृतकृत्येन मनसा प्रागमंस्ते दिवं मुदा ॥६२॥

श्रीविश्वामित्रजी बोले :–हेवत्स ! इस प्रकार वे जगत् (चर-अचर मय प्राणियोंके) प्रभु विष्णु भगवान् को प्रार्थना पूर्वक नमस्कार करके प्रसन्नताके साथ, स्वर्ग लोक चले गये ॥६२॥

कृपाकटाक्षमात्रेण चेतनत्वं पुरारये ।
प्रदाय भगवान् विष्णुर्ऋचीकाय ददौ धनुः ॥६३॥

इधर श्रीविष्णु भगवान् ने अपनी कृपा-कटाक्ष मात्रसे श्रीशिवजी को चेतनता प्रदान करके अपना वह शार्ङ्ग, धनुष ऋचीक महाराजको दिया ॥६३॥

त्र्यम्बकः प्राप्य चैतन्यं क्षीणवीर्योद्धतस्मयः ।
महत्या लज्जया युक्तः पपात श्रीशपादयोः ॥६४॥

भगवानकी कृपा कटाक्षसे चेतनता को प्राप्त हुये श्रीभोलेनाथजी अपनी शक्तिके अत्यन्त बढ़े हुये अभिमानसे रहित हो, परम लज्जा पूर्वक श्रीपति भगवान् श्रीविष्णुजीके दोनों श्रीचरण-कमलोंमें पड़ गये ॥६४॥

आश्वास्य तं महादेवं विष्णुः सत्यपराक्रमः ।
पश्यतां सर्वलोकानामभूदन्तर्हितस्तदा ॥६५॥

तब सत्यपराक्रमसे युक्त श्रीविष्णुभगवान् श्रीमहादेवजीको सान्त्वना प्रदान करके समस्त लोगोंके देखते हुये अन्तर्हित हो गये ॥६५॥

श्रीशिव उवाच ।

येन मे धनुषा युद्धं बभूव शार्ङ्गपाणिना ।
तन्नधार्यं मया जातु भक्तिपक्षावलम्बिना ॥६६॥

श्रीशिवजी बोले:–जिस धनुषके द्वारा शार्ङ्गपाणि श्रीविष्णुभगवान्‌के साथ मेरा युद्ध हुआ मुझ भक्तिपक्षावलम्बीको उसे किसी प्रकार भी अब धारण करना उचित नहीं है ॥६६॥

श्रीविश्वामित्र उवाच।

विचिन्त्येति शिवानाथो देवराताय भूभृते।
भक्ताय प्रददौ चापं पिनाकाख्यं वरात्मकम् ॥६७॥

श्रीविश्वामित्रजी बोले:–हे वत्स लखनलाल! भगवान् शिवजीने ऐसा विचार करके अपने भक्त श्रीदेवरातजी महाराजको वरदान रूपमें उस धनुषको दे दिया ॥६७॥

देवरातो महीपालो धनुःपूजनतत्परः।
विहाय प्राकृतं देहं हरिलोकमवाप्तवान् ॥६८॥

श्रीदेवरातजी महाराज उस धनुषके पूजनमें तत्पर हो अपने पाञ्च भौतिक शरीरको छोड़कर श्रीविष्णु लोकको पधारे ॥६८।

तस्य राज्ये सदा राज्ञामाधिपत्यजुषामिति।
कुलक्रमागतं जातं नियतं चापपूजनम् ॥६९॥

उन धर्मात्मा राजाके राज्यपद भोगी राजाओंके वंश परम्परासे धनुष-पूजन का नियम चलता रहा ॥६९॥

तमेव नियमं प्राप्य पूज्यते शाम्भवं धनुः।
अधुनाऽपि श्रीविदेहेन भक्तिभावेन सादरम् ॥७०॥

उसी नियमानुसार श्रीविदेहजी महाराज भी इस समय भक्ति भाव समन्वित, आदर-पूर्वक उस धनुष का पूजन करते हैं ॥७०॥

एकदा प्रेषिता मात्रा पाकसंसक्तचित्तया।
मार्जनाय धनुर्भूमेः सखीभिर्जनकात्मजा ॥७१॥

एक दिन रसोईके कार्यमें संलग्न होनेके कारण श्रीसुनयना अम्बाजीने अवकाशाभावसे सखियों-के समेत अपनी श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजीको धनुष भूमिकी स्वच्छता (सफाई करने) के लिये भेजा था ॥७१॥

देवासुरमहाशूरैरनुत्थाप्यं हि यद्धनुः।
तन्ममार्ज यथाकाममुत्थाप्यापञ्चवार्षिकी ॥७२॥

जिस धनुषको देव, राक्षस, महाशूर भी उठानेको समर्थ नहीं है, उसे श्रीजनकराजदुलारीजीने पाँच वर्षसे भी कमकी अवस्थामें उठाकर, इच्छानुसार सफाईकी ॥७२॥

अथ सीरध्वजो राजा धनुःपूजनहेतवे ।
प्रयाय मन्दिरं दिव्यरोचिष्कं तद्ददर्श सः ॥७३॥

तदन्तर श्रीसीरध्वज महाराजने धनुष-पूजनकी इच्छासे उस भवनमें जाकर धनुषको दिव्य प्रकाशसे युक्त देखा ॥७३॥

ऋजु संस्थापितं दृष्ट्वा शिवकोदण्डमद्भुतम् ।
आश्चर्यं परमं गत्वा कथञ्चित् सोऽभ्यपूजयत् ॥७४॥

पुनः भगवान् शिवजीके उस आश्चर्यमय धनुषको सीधा रक्खा हुआ देखकर श्रीमिथिलेशजी महाराज अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हो, उसकी किसी प्रकारसे (बड़ी कठिनतासे) पूजाकी ॥७४॥

पुनः राज्ञ्या निशाम्येति जगामाद्यावनेः सुता ।
मार्जनार्थं धनुर्भूमेः प्रतिज्ञामिति चाकरोत् ॥७५॥

पुनः आज श्रीललीजी धनुष भूमिको साफ़ करनेके लिये पधारी थी" श्रीसुनयना महारानी-जीसे ऐसा श्रवण करके श्रीमिथिलेशजी महाराजने यह प्रतिज्ञाकी ॥७५॥

श्रीजनक उवाच ।

इदं सुमेरुसङ्काशं गौरवे शाम्भवं धनुः ।
अनयोत्थापितं पुत्र्या नवनीताभगात्रया ॥७६॥

मक्खनके समान सुकोमल अङ्गों वाली श्रीललीजीने सुमेरु पर्वतके समान भारी इस शिव-धनुषको उठाया है ॥७६॥

अत एव महाशूरस्त्रैलोक्यविजयी हि सः ।
पतिर्मे भविता पुत्र्या य एतत्त्रोटयिष्यति ॥७७॥

अत एव जो महाशूर इस धनुषको तोड़ेगा, वही त्रिलोकविजयी मेरी श्रीराज-दुलारीजी का वर होगा अर्थात् उसके साथ ही मैं अपनी श्रीललीजूका विवाह करूँगा ॥७७॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एतदर्थं समाहूता राजानः श्रुतविक्रमाः ।
आगता बलिनां वर्या राजन्ते साम्प्रतं पुरि ॥७८॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोले:—हे वत्स ! श्रीलखनलालजी ! इस लिये श्रीमिथिलेशजी

महाराजके द्वारा बुलाये हुये प्रसिद्ध पराक्रमी, महाबलशाली राजा इस समय श्रीमिथिलाजीमें विराज रहे हैं ॥७८॥

श्व एव मैथिलेन्द्रेण धनुर्भङ्गाय सत्तिथिः ।
तेभ्यो दातुं महीपेभ्यो निदेशं वत्स ! निश्चिता ॥७६॥

प्रातःकाल ही श्रीमिथिलेशजी महाराजने उन राजाओंको धनुष तोड़नेके हेतु आज्ञा देनेके लिये उत्तम तिथि निश्चितकी है ॥७९॥

यत्तात ! पृष्टं भवता तदीरितं सुखाय ते पुण्यतमं कथानकम् ।
स्वापो विधेयो विगताऽधिका निशा स्वास्थ्याय साकं द्रुतमग्रजन्मना ॥८०॥

हे तात ! आपने जिस पवित्र कथाको मुझसे पूछा था, आपके सुखार्थ मैंने उसका वर्णन किया, अब रात्रि बहुत बीत गयी है, अत एव स्वास्थ्य-रक्षाके लिये अपने बड़े भ्राताजीके समेत आप शीघ्र शयन कीजिये ॥८०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्येवमुक्तौ रघुवंशदीपकौ निपीड्य पादौ तदनूतनाश्रमे ।
राजधिराजालयमुख्यशायिनौ संवेशमाचक्रतुरन्तिके गुरोः ॥८१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे कात्यायनी ! गुरुदेवकी आज्ञा पाकर रघुवंशको दीपकके समान सुशोभित करने वाले और श्रीचक्रवर्तीजीके प्रधान राज भवनमें शयन करने वाले उन दोनों राजकुमारोंने श्रीगुरुदेवकी चरण सेवा करके उनके पुराने आश्रममें, समीप हीमें शयन किया ८१

तयोरभेदेऽपि हरित्रिनेत्रयोरुपासनीयो हरिरेव मुक्तये ।
प्रसाधितः सत्वगुणप्रधानकः सर्वेश्वरेणाद्भुतलीलयाऽनया ॥८२॥

इति द्विनवतितमोऽध्यायः ॥६२॥

श्रीविष्णु भगवान् और श्रीभोलेनाथजीमें अभेद (समानता) है अर्थात् न श्रीविष्णुभगवानसे श्रीभोलेनाथजी छोटे और न श्रीभोलेनाथजीसे श्रीविष्णुभगवान् बड़े हैं, तथापि जन्ममरणके बन्धनसे छूटनेके लिये प्राणियोंको-सत्वगुण प्रधान श्रीभगवान्‌की ही उपासना करनी चाहिये इसीको सिद्ध करनेके लिये सर्वेश्वर प्रभुने रजोगुण, तमो गुण मयी, यह अद्भुत (आश्चर्यमयी) लीलाकी है ८२

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

श्रीशतानन्दजी-महाराजकी प्रार्थनासे श्रीविश्वामित्रजी महाराजका श्रीरामभद्रजूके सहित
धनुषभूमिमें विराजमान होना तथा तिलभर भी किसीके धनुषको न उठा हुआ
देखकर श्रीजनकजी महाराजके द्वारा "पृथिवी वीरोंसे शून्य हो गयी"
इस कहे हुये वचनको सुनकर श्रीलखनलालजीका रोषः-

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

प्रातः सुमित्रातनयः प्रबुध्य प्राबोधयद्राघवमिन्दुवक्त्रम् ।
तदा स चोत्थाय मुनीन्द्रपादौ निपीडयामास रघुप्रवीरः ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले-हे कात्यायनी ! प्रातः काल होने पर सुमित्रानन्दन श्रीलखनलालजी ने जागकर चन्द्रवदन श्रीराघवेन्द्र सरकारको जगाया, रघुकुलको दीपकके समान सुशोभित करने वाले वे श्रीरामभद्रजू उठकर मुनिराज श्रीविश्वामित्रजी महाराजके चरण दबाने लगे ॥१॥

विसृष्टनिद्रः कुशिकात्मजस्तं सौमित्रिणा साकमवेक्ष्य रामम् ।
आशीर्वचोभिः प्रणयातिरेकात्सत्कृत्य सद्योऽनिमिषेक्षणोऽभूत् ॥२॥

उस चरण-सेवासे निद्रा रहित हो श्रीविश्वामित्रजी महाराजने श्रीलखनलालजीके समेत श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके अपने शुभाशीर्वादके द्वारा उनका सत्कार कर प्रेमकी अधिकताके तत्क्षण अपने नेत्रोंकी पलकोंका गिराना बन्द कर दिया ॥२॥

पुनः समाधाय मनो मुनीन्द्रः प्रभातकृत्याय ददौ निदेशम् ।
ताभ्यामयोध्याधिपपुत्रकाभ्यां स्वयं स्वकृत्याय मतिञ्चकार ॥३॥

पुनः मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीविश्वामित्रजी महाराजने अपने मनको सावधान करके दोनों श्रीचक्रवर्ती-कुमारोंको नित्य नियम करने के लिये आज्ञा दी और स्वयं भी नित्य-कर्म करने को उद्यत हुये ॥ ३ ॥

अथोत्तराह्णे मिथिलामहेन्द्रसंप्रार्थितो ब्रह्मसुतस्य सूनुः ।
गाधेः सुतस्यान्तिकमूर्जकीर्तिः प्राप्तः शतानन्द उदारतेजाः ॥४॥

तत्पश्चात् श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रार्थनासे, अत्यन्त तेजस्वी श्रीशतानन्दजी महाराज महायशस्वी श्रीविश्वामित्रजी महाराजके पास गये ॥४॥

श्रीराजराजेन्द्रसुतोत्तमेनाभिवादितः स्निग्धकराम्बुजाभ्याम् ।
तद्दर्शनानन्दनिमग्नचेताः प्रणम्य गाधेयमिदं जगाद ॥५॥

चक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजूके कर-कमलों द्वारा प्रणाम करने पर श्रीशतानन्दजी महाराज का चित्त उनके दर्शन जनित आनन्दमें डूब गया, पुनः सावधान होकर वे गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजीमहाराजसे बोले ॥५॥

श्रीशतानन्द उवाच ।

कोदण्डयज्ञावसरोऽयमाप्तो ह्यागन्तुकाः सर्व उपस्थिताश्च ।
यज्ञस्थले भूपतिशूरवीरा गर्वान्विता वै भगवन् ! प्रमत्ताः ॥६॥

हे भगवन् ! अब धनुष-यज्ञका समय उपस्थित है, अत एव अभिमानी, मतवाले सभी आगन्तुक शूरवीर राजा भी उस यज्ञ स्थलीमें उपस्थित हो गये हैं ॥६॥

तस्मादहं श्रीमिथिलेश्वरेण संप्रेषितो नेतुमितो भवन्तम् ।
श्रीकोशलानायकनन्दनाभ्यां यज्ञावनिं तेऽन्तिकमागतोऽस्मि ॥७॥

इस लिये दोनों कोशलाधीश (श्रीदशरथ) नन्दनोंके समेत आपको यहाँसे यज्ञभूमिमें ले जानेके लिये श्रीमिथिलेशजी महाराजका भेजा हुआ मैं आपके पास आया हूँ ॥७॥

अतस्तु तूर्णं गमनं विधेयं यज्ञस्थले राजकुमारकाभ्याम् ।
मयैव सार्द्धं भवता कृपालो ! तपोधनश्रेष्ठ! नमो नमस्ते ॥८॥

हे तपोधनों में श्रेष्ठ ! हे कृपालो ! इस लिये आप मेरे साथ दोनों राजकुमारों के सहित यज्ञस्थली में शीघ्र पधारिये, मेरा आपको वारम्बार नमस्कार है ॥८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तदीरितं वाक्यमिदं निशम्य वाढं समाभाष्य महामुनीन्द्रः ।
राजेन्द्रपुत्रद्वयशोभमानस्तदागमच्चापमखावनिं सः ॥ ९ ॥

ब्रह्माकी महिमाका मनन करने वालोंमें श्रेष्ठ, वे श्रीविश्वामित्रजी महाराज उनकी इस प्रार्थनाको सुनकर "बहुत अच्छा" कह कर दोनों श्रीचक्रवर्तीकुमारोंसे सुशोभित होते हुये उस धनुष यज्ञ-भूमि पर पधारे ॥९॥

सा दीप्तसौवर्णसमुच्छ्रितालयैः प्रकाशमाना परितो मनोहरा ।
अनिम्ननिम्नोत्तमपीठपङ्क्तिभिः सुशोभमाना समलङ्कृता मही ॥१०॥

शूरैश्च वीरैः क्षितिमण्डलेशैर्नारीनरैर्दर्शनसाभिलाषैः ।
समाकुला रूपरतिस्मराभैः समन्ततोऽदृश्यत कौशिकेन ॥११॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराजने देखा, कि वह पूर्ण सुसज्जित भूमि, चमकते सुवर्णके समान अत्यन्त ऊँचे महलों द्वारा चारो ओरसे प्रकाशित हो मनको हरण कर रही है, उसमें उत्तम सिंहासनोंकी ऊँची-नीची पङ्क्तियाँ चारोओर सुशोभित हैं ॥१०॥ शूर, वीर, राजा और दर्शनाभिलाषी, रति-कामके समान अत्यन्त सुन्दर स्त्री-पुरुषोंसे (वह धनुष यज्ञ-भूमि) सब ओरसे खचा-खच भरी है ११

सर्वोत्तमे तुङ्गसुवर्णमञ्चे मध्ये नृपाधीशकुमारयोश्च ।
श्रीकौशिकं तत्र समादरेण विराजयामास गुरुर्नृपस्य ॥१२॥

वहाँ श्रीविदेहमहाराजके गुरुदेव श्रीशतानन्दजी महाराजने आदर पूर्वक श्रीविश्वामित्रजी महाराजको सबसे उत्तम तथा ऊँचे सुवर्णके सिंहासन पर, श्रीचक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजी तथा श्रीलखनलालजीके बीचमें विराजमान किया ॥१२॥

यथोडुवृन्दे रजनीकराभ्यां वियत्तलं राजकुमारकाभ्याम् ।
तथा परीता मखभूमिका सा भूपालवर्यैः सुभृशं रराज ॥१३॥

जैसे तारागणोंके सहित दो चन्द्रमाओंसे आकाश सुशोभित होता हो, उसी प्रकार राजाओंके सहित उन दोनों चक्रवर्ती कुमारोंसे, वह यज्ञभूमि अत्यन्त ही शोभाको प्राप्त हुई ॥१३॥

तदाऽऽज्ञया वन्दिवरोऽखिलेभ्यः कृतप्रणामो नृपतेः प्रतिज्ञाम् ।
निवेदयामास मनोज्ञवाचा श्रीरामचन्द्रास्यचकोरदृष्टिः ॥१४॥

उस समय आज्ञापाकर वन्दीश्रेष्ठने प्रणाम करके श्रीरामभद्रजूके मुख रूप चन्द्रमा पर अपने नेत्ररूपी चकोरोंको आसक्त किये हुये श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रतिज्ञाको अपनी मनोहर वाणीके द्वारा सभीसे निवेदन किया ॥१४॥

श्रीवन्द्युवाच ।

हे भूपवर्या बलिनां वरिष्ठा ! नानाप्रदेशाधिनिवासिनश्च ।
शृण्वन्तु सर्वे खलु दत्तचित्ता यदर्थमत्रागमनं शुभं वः ॥१५॥

हे अनेक देशोंमें निवास करनेवाले बलवानोंमें श्रेष्ठ, उत्तम राजाओ ! आप लोगोंने जिस कारण यहाँ आनेका कष्ट किया है, उसे एकाग्र-चित्तसे श्रवण कीजिये ॥१५॥

समुत्थपाणिर्मिथिलेश्वरस्य प्रतिश्रुतं वच्मि कृतं पुरा यत् ।
ज्ञात्वा समुत्थापितमीशचापमपञ्चवर्षान्वितया स्वपुत्र्या ॥१६॥

पाँच वर्षसे भी कम अवस्थावाली अपनी श्रीराजदुलारीजीके द्वारा भगवान् शिवजीके धनुषको उठाया हुआ जानकर, श्रीमिथिलेशजी-महाराजने पूर्वमें जो प्रतिज्ञाकी थी उसको मैं हाथ उठाकर वर्णन करता हूँ ॥१६॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

इदं महेशस्य धनुस्त्रिलोक्यामुत्थाप्य यः खण्डयुगं विदध्यात् ।
तेनैव पाणिर्मम पुत्रिकाया ग्राह्यस्त्रिलोकीविजयेन साकम् ॥१७॥

श्रीमिथिलेशजी-महाराज बोले:-तीनों लोकोंमे जो भगवान् शिवजीके इस धनुषको उठाकर दो खण्ड कर देगा, उसे ही त्रिलोकीकी विजयके सहित हमारी श्रीललीजीके कर-कमलको ग्रहण करनेका अधिकार प्राप्त होगा ॥१७॥

श्रीवन्द्युवाच ।

तदर्थसिद्ध्यै मिथिलाधिपेन धनुर्मखोऽयं समभीप्सितो हि ।
यं द्रष्टुकामाः सकला भवन्तोऽत्रोपस्थितास्तेन निमन्त्रिता वै ॥१८॥

बन्दी (भाट) बोला:-हे राजाओ ! अपनी श्रीललीजीके पाणिग्रहण (विवाह) की सिद्धि के लिये ही श्रीमिथिलेशजी-महाराजको इस धनुषयज्ञके करनेकी इच्छा हुई, जिसको देखनेके लिये आप सभी लोग उनसे निमन्त्रित हो, यहाँ उपस्थित हैं ॥१८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एतत्समाकर्ण्य बलोन्मदान्धाः कोलाहलं भूपतयः प्रचक्रुः ।
छेत्स्याम्यहं चापमहं किलेति पाणिं ग्रहीष्यामि विदेहपुत्र्याः ॥१९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये ! उस बन्दीके मुखसे इतना सुनते ही, बलके अभिमानसे अन्धे हुये राजा-लोग" मैं धनुष तोड़ूंगा, मैं अवश्य भूमि कुमारी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी का पाणि-ग्रहण करूँगा" इस प्रकार कोलाहल करने लगे ॥१९॥

इत्थं लपन्तः प्रणिपत्य देवान् स्वेष्टान् क्रमाद्भूपतयो मदान्धाः ।
उत्थाय गत्वाऽऽजगवान्तिकं ते चक्रुस्तदुत्थापनपूर्णयत्नम् ॥२०॥

ऐसा कहते हुये वे अभिमानी राजा अपने २ इष्टदेवोंको प्रणाम करके क्रमशः उठ-उठ कर भगवान् शिवजीके उस धनुषके पास जाकर उसके उठाने के लिये पूर्ण प्रयत्न करने लगे ॥२०॥

यदा कथञ्चिन्न चचाल चापः केनापि शूरेण महीश्वरेण ।
तदा मिलित्वा बलिनो नरेन्द्रा उत्थापनार्थं युगपत् प्रवृत्ताः ॥२१॥

जब कोई भी शूरवीर राजा उस धनुषको हिला भी न सका, तब वे बलशाली राजा एक साथ मिलकर उस धनुषके उठानेका प्रयत्न करने लगे ॥२१॥

धनुस्तदानीं ववृधेऽमितस्तद्धयं तावदुर्वीपतयश्च सर्वे ।
शूरा मिलित्वा युगपद्गृहीत्वा ह्युत्थापनार्थं स्म सुखं यतन्ते ॥२२॥

उस समय धनुष भी इतनी मात्रामें बढ़ गया, जिससे सभी राजाओंने उसको सुखपूर्वक एक साथ पकड़कर उठानेका यत्न प्रारम्भ किया ॥२२॥

तन्नोदतिष्ठच्चिकुरैकमात्रं तथाऽपि भूपालमदच्छयाय ।
नष्टश्रियः केचिदपास्तसंज्ञा भूपा निपेतुस्तत एव भूमौ ॥२३॥

किन्तु वह धनुष राजाओंके बलका अभिमान नष्ट करनेके लिये पृथ्वीसे एक बालमात्र भी न उठ सका, इस लिये वे राजा श्रीहीन हो गये, कुछ मूर्छित हो भूमिपर गिर पड़े ॥२३॥

तर्ह्यागतौ चापमखं निशम्य यदृच्छया बाणदशाननौ च ।
ज्ञात्वा प्रतिज्ञां मिथिलाधिपस्य प्रावर्ततोत्थापयितुं दशास्यः ॥२४॥
निषिद्ध्यमाणोऽपि बलोन्मदान्धो बाणासुरेणासुरराजराजः ।
चापे प्रसक्तं करमावियुज्य नैवोत्थितेऽगात्स्वपुरं सलज्जः ॥२५॥

उसी समय धनुष-यज्ञका समाचार सुनकर बाणासुर तथा दशमुख रावण, ये दोनों भी वहाँ आगये ! श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रतिज्ञा सुनकर बाणासुरके मना करने पर भी राक्षसोंका सम्राट् रावण उस धनुष को उठाने का प्रयत्न करने लगा, इससे उसका हाथ उसीमें चिपक गया, फिर भी जब धनुष न उठ सका, तब वह अपने हाथको किसी प्रकार छुड़ाकर, लज्जित हो अपनी लङ्का पुरीको चला गया ॥२४॥२५॥

श्रीमैथिलेन्द्रस्तदवेक्ष्य भूपानुवाच बाष्पाहतनिःस्वनेन ।
उत्थाय सम्बोध्य सचिन्तचित्तश्चूर्णसमया! मे शृणुतोक्तिमेताम् ॥२६॥

सो देखकर चिन्तित चित्त हो श्रीमिथिलेशजी महाराज उठकर थरथराती हुई बोलीमें सभी राजाओंको सम्बोधित करके बोले-हे चूर अभिमानियों! मेरे इस कथन को सुनो ॥२६॥

नाना प्रदेशाधिनिवासिनश्च वीर्य्याभिमत्ता जगति प्रसिद्धाः ।
यूयं सुताया मम चोरुकीर्त्तेर्लाभप्रलोभात्पुरमागता मे ॥२७॥

आप लोग अनेक देश-वासी होनेपर भी इस पृथिवीतलपर प्रसिद्ध बलाभिमानी हैं, सो मेरी महायशस्विनी श्रीराजदुलारीजूके लाभके महान् लोभसे ही मेरी पुरी (श्रीमिथिलाजी) में आये हैं ॥ २७ ॥

अता प्रतिज्ञा विहिता मया या भवद्भिरेकाग्रहृदा कठोरा ।
पाणिग्रहार्थं क्षितिसम्भवायाः सकारणा वन्दिवरोदिता वै ॥२८॥

भूमिसे प्रकट हुई अपनी श्रीराजकुमारीजीके विवाहके लिये जो मैंने कठोर प्रतिज्ञाकी है और जिस कारणसे की है, उसे भी आप लोगोंने एकाग्र चित्तसे वन्दीके मुखसे श्रवण किया है २८

छित्वा धनू राजसुतां वरिष्ये त्वेवं वदन्तः क्रमशश्च यूयम् ।
उत्कम्प्य चोत्कम्प्य गृहीतचापा दृष्टा मया मोघपराक्रमा हि ॥२९॥

"मैं धनुष तोड़कर श्रीराजकुमारीजूको वरण करूँगा" इस प्रकार कथनी कथते हुये उछल-उछल कर आप लोगोंने क्रमशः धनुषको पकड़ा, किन्तु मैंने देख लिया, आप लोगोंका पराक्रम सब व्यर्थ है ॥२९॥

अद्य प्रभृत्यात्मबलाभिमानं करोतु मा कश्चिदिहासुधारी ।
निर्वीरमेतद्भुवनत्रयं हि ज्ञातं मया शम्भुधनुःप्रसादात् ॥३०॥

आज भगवान् शिवजीके धनुषकी कृपासे मुझे ज्ञात हो गया, कि यह त्रिलोकी (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) वीरोंसे रहित है अर्थात् तीनों लोकोंमें अब कोई वीर रह ही नहीं गया, इस हेतु आजसे अब कोई भी प्राणी अपने बलका अभिमान न करे ॥३०॥

इदं पुरा चेद्विदितं मया स्यात्कृता प्रतिज्ञेति तदेव न स्यात् ।
यस्या निमित्तं मम राजपुत्री शश्वत्कुमारी प्रभवित्र्यवन्याम् ॥३१॥

यदि मुझे यह पहिले ज्ञात होता, कि अब तीनों लोकोंमें कोई वीर है ही नहीं, तो इस प्रकारकी मैं कठोर प्रतिज्ञा न करता, जिसके परिणाममें मेरी श्रीराजपुत्रीजीको इस पृथिवी पर सदाके लिये अविवाहिता ही रहना पड़ेगा ॥३१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रुत्वा वाक्यमिदं विदेहभणितं रोषान्वितो लक्ष्मणः
प्रोत्थायाशु पदारविन्दयुगलं भ्रातुः प्रणम्यादरात् ।
श्रीरामं नियताञ्जलिः क्षितिभृतां संशृण्वतां तिष्ठतां
वाचं प्रोच इमां महीं च दिग्गिभान् सञ्चालयन्वीरराट् ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे कात्यायनी ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके कहे हुये इन वचनोंको सुनकर वीरचक्रवर्ती श्रीलखनलालजीको रोष आ गया अतः तुरत उठकर अपने भ्राता श्रीरामभद्रजू के दोनों श्रीचरण कमलोंको प्रणाम करके अपने दोनों हाथोंको जोड़कर, उपस्थित राजाओंके सुनते हुये पृथ्वी तथा दिग्गजाओंको कम्पायमान करते हुये श्रीरामद्रजूसे वे आदर पूर्वक बोले:-॥३२॥

श्रीलक्ष्मण उवाच ।

हा हा नाथ ! समस्तभूमिपतयः शूरा महाविक्रमा
राजन्ते खलु यत्र तत्र समितौ केनाप्यभाष्यं वचः ।
हन्तायं समवोचदद्य सहसा स्वैरं भवन्तं प्रभो !
ज्ञात्वा श्रीमिथिलेश्वरो रघुकुलोत्तंसं स्थितं सानुजम् ॥३३॥

हे नाथ ! बड़े दुःखकी बात है, कि जिस स्थानमें महापराक्रमी शूर समस्त राजा विराजमान हैं, उस सभामें जो बात किसीके भी कहने योग्य न थी, उसे इन श्रीमिथिलेशजी महाराजने छोटे भाई के सहित आप रघुकुल भूषण को उपस्थित जानकर भी स्वच्छन्दता पूर्वक कह डाली है । ३३ ॥

भिन्द्यां मूलकसन्निभं गिरिवरं ब्रह्माण्डकुम्भं तथा
खेलन् वामकरे निधाय सुचिरं सस्फोटयाम्यञ्जसा ।
एतन्नाथ ! कियत्तवैव कृपया जीर्णं पुराणं धनु-
र्देह्याज्ञां हि मृणालवद्द्रुतमहं छेत्स्यामि दासस्तव ॥३४॥

हे नाथ ! आप की कृपासे मैं हिमालय पर्वत को मूलीके समान तोड़ सकता हूँ और ब्रह्माण्ड को घड़ेके समान अपने बायें हाथ पर रख कर बहुत समय तक खेलते हुये बिना किसीपरिश्रम के फोड़ सकता हूँ; फिर यह पुराना जीर्ण (गला हुआ) धनुष किस गिनती में है ? मैं आप का दास हूँ अतः आज्ञा दीजिये, मैं इसको कमल की दण्डी के समान तत्क्षण तोड़ डालूँ । ३४॥

नोचेन्नैव शरासनं रघुपते ! गृह्णाम्यहं कर्हिचित्
सत्यं वच्मि विधाय नाथ शपथं त्वत्पादपाथोजयोः।
प्रत्यक्षं खलु दर्शयामि मिथिलानाथाय लोकत्रयं
निर्वीरं न सवीरवर्यमिति ते छित्वा धनुश्चेद्रुचिः ॥३५॥

हे नाथ ! मैं आपके श्रीचरण कमलोंको शपथ खाकर सत्य कहता हूं, यदि मैं ऐसा न कर सकूँ, तो फिर कभी भी मैं धनुषको धारण नहीं करूँगा। हे रघुकुलके स्वामी! यदि आपकी प्रसन्नता हो, तो मैं इस धनुषको तोड़कर श्रीमिथिलेशजी महाराजको दिखला दूँ, कि यह त्रिलोकी-वीरोंसे शून्य नहीं अपि तु वीरश्रेष्ठसे युक्त है ॥३५॥

लोकाः कौतुकमेतदेव विहितं पश्यन्तु सर्वे मया
रामस्यानुचरेण नो रघुपतेरर्हा जना वीक्षितुम्।
वीर्यं चाद्भुतविक्रमं निरुपमं ब्रह्माण्डवृन्देशितु-
र्दुर्दर्श्यं द्रुहिणादिदेवनिवहैः स्वल्पायुषो मानुषाः ॥३६॥

इति त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

—: मासपारायण-विश्राम २५ :—

मुझ श्रीरामभद्रजूके अनुचरका यह किया हुआ खेल सभी लोग देखें क्योंकि लोग अनन्त ब्रह्माण्ड-नायक भगवान् श्रीरामजीके अद्भुत पराक्रम और बलको देखनेके अधिकारी ही नहीं हैं, क्योंकि उसका दर्शन तो ब्रह्मादि देव-समूहोंके लिये भी कष्टसाध्य है, फिर अल्पायु मनुष्यों के लिये कहना ही क्या ? ॥३६॥

अथ चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

धनुर्भङ्ग तथा श्रीमिथिलेशराज दुलारीजूके कर-कमलों द्वारा श्रीरामभद्रजूको अपने गलेमें जयमालकी प्राप्तिः—

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

इति वचस्तु निशम्य तदीरितं द्रुतमवारयदङ्ग मृदुस्मितः।
रघुपतिर्नयनेङ्गितमात्रतो रिपुनिषूदनपूर्वजमानतम् ॥ १ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे प्रिये श्रीलखनलालजीके इन वीर रस युक्त वचनोंको सुनकर मधुर मुस्कान युक्त, रघुकुलके स्वामी श्रीराघवेन्द्र-सरकारजूने शिर झुकाये हुये शत्रुघ्नलालजीके बड़े भ्राता उन श्रीलखनलालजीको अपने नेत्रोंके इशारासे धनुष तोड़नेसे मना किया, क्योंकि दयालु सरकारने विचारा श्रीजनकजी-महाराजकी यह प्रतिज्ञा है, कि जो कोई इस धनुषको तोड़ेगा उसीके साथ में अपनी श्रीराजकुमारीजूका विवाह करूँगा, सो ये लखनलालजी उन जगज्जननी तथा अपनी स्वामिनीजूके साथ किस प्रकार विवाह कर सकेंगे ? और लोग भी यह हँसी करेंगे कि बड़े भाईके रहते हुये अपने विवाहके लाभसे लखनलालजीने धनुष तोड़ डाला। अतः इनका धनुष तोड़ना घोर पश्चात्तापका कारण बन जायगा। रोषके आवेशमें इन्हें परिणामका कुछ भी ध्यान नहीं है, अतः तोड़नेको मना किया। श्रीलखनलालजी तत्सुख-प्रधान एवं परम आज्ञाकारी हैं यह सिद्ध करनेके लिये उन्हें नेत्रोंके सङ्केतसे मना किया ॥१॥

अथ महर्षिवरेण रघूत्तमो मधुरया परयेति गिरोदितः ।
त्वमिह वत्स ! महेशशरासनं मम निदेशत आशु विभञ्जय ॥२॥

तदनन्तर महर्षियोंमें श्रेष्ठ श्रीविश्वामित्रजी महाराजने, अपनी परम मधुर-वाणीके द्वारा श्रीरघुकुलोत्तम सरकारजीको आज्ञा दी:—हे वत्स ! मेरी आज्ञासे इस शिवधनुषको अब शीघ्र तोड़ डालिये ॥२॥

जनकतापमपाकुरु सत्वरं सुकृतिमज्जनतामुदमावह ।
हरधनुः परिभज्य शिवोऽस्तु ते जनकजाकरमाल्यमुरीकुरु ॥३॥

हे वत्स ! आपका कल्याण हो। आप भगवान् शिवजीके धनुषको तोड़कर श्रीजनकजी महाराजके हृदयके सन्तापको दूर और पुण्य शालीजनताको आनन्दित तथा श्रीजनकराजदुलारीजूके कर-कमलोंकी जयमालको स्वीकार कीजिये ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति निदेशभरेण नतेक्षणः कुशिकजस्य विधाय मुहुर्नतीः ।
चरणयोर्मृगराजगतिर्व्रजन् निखिलचित्तहरो रघुनन्दनः ॥४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे प्रिये ! श्रीविश्वामित्रजी महाराजके इस आज्ञाभारसे नतदृष्टि हो, श्रीरघुनन्दन प्यारेजूने उनके चरणोंमें बारंबार प्रणाम करके धनुषकी ओर सिंहके समान मतवाली चालसे चलते हुये, सभीके चित्तको चुरा लिया ॥४॥

शूरैः शूरतमो नृपैः कुमतिभिः कालस्तदा सज्जनै-
रिष्टो वत्सतरः सभार्यमिथिलानाथेन चोद्वीक्षितः ।
विद्वद्भिश्च विराडनङ्गसुभगः स्त्रीभिर्वरः सीतया
सर्वेषामिति वै निसर्गमधुरो रामो हि भावानुगः ॥५॥

उस समय सहज मनहरण श्रीरघुनन्दन प्यारेजू शूरोंको शूरशिरोमणि, पापबुद्धि राजाओंको काल, सज्जनोंको इष्टदेव, महारानी श्रीसुनयनाजीके समेत श्रीमिथिलेशजी महाराजको अत्यन्त शिशु, ज्ञानियोंको विराट्, स्त्रियोंको काम देवसे बढ़कर अत्यन्त सुन्दर और श्रीमिथिलेश-राज दुलारीजी को दूलह रूप में, दिखाई दिये। इस प्रकार श्रीरामभद्रजू ने सबको उनके भावानुसार तद्वत् रूपसे दर्शन प्रदान किया ॥५॥

तमवलोक्य पिनाकसमीपगं सुनयना मिथिलाधिपवल्लभा ।
कमलकोमलकान्तकलेवरं द्रुतमसौ प्रबभूव सुविह्वला ॥६॥

कमलके समान कोमल मनोहर अङ्गों वाले उन श्रीरामभद्रजूको धनुषके समीपमें उपस्थित हुये देखकर, श्रीमिथिलेशवल्लभा श्रीसुनयना महारानीजी तुरत अत्यन्त व्याकुल हो उठीं ॥६॥

धृतिमवाप्य जगाद सुदर्शनां परमविज्ञतमां श्लथया गिरा ।
विधिरहो प्रतिकूल उदीर्यते दुहितरीति ममेह महीभुवि ॥७॥

पुनः धैर्यको प्राप्त हो वे परम चतुरा श्रीसुदर्शना महारानीके प्रति अपनी शिथिल (गद्गद) वाणीसे बोलीं:-हे बहिन ! भूमिसे प्रकट हुई हमारी श्रीललीजीके प्रति विधाता ही प्रतिकूल प्रतीत होरहा है ॥७॥

यत इमं सुमकोमलविग्रहं सखि ! न को ऽपि निवारयतीह वै ।
हरकठोरशरासनभञ्जनान्मतिरभूत्सुधियामपि कुण्ठिता ॥८॥

हे सखी ! बुद्धिमानों की बुद्धि भी कुण्ठित हो गयी है, जो सुमनके समान कोमल अङ्गों वाले इन श्रीरामभद्रजूको भगवान् शिवजीके धनुषको तोड़नेसे कोई भी नहीं बरजता है ॥८॥

अपि नृपो जडतावशमागतः पणमुपेक्ष्य सुतेन नृपेशितुः ।
परिणयं न करोति हितप्रदं दुहितुरालि ! महाछविवारिधेः ॥९॥

हे सखी ! राजा भी अज्ञानतामें पड़े हैं, जो प्रतिज्ञाकी उपेक्षा करके महाछविसागरा श्रीललीजूका हितकर विवाह इन श्रीचक्रवर्ती कुमारजूके साथ नहीं कर रहे हैं ॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति निगद्य विवर्जितसञ्ज्ञकां समवदत्प्रतियोऽ्य सुदर्शना ।
शृणु समाश्रुतमेव वदामि ते धृतिमती मिथिलाधिपवल्लभे ! ॥१०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः-हे प्रिये ! इतना कहकर जब वे मूर्च्छित हो गयीं, तब उनको सावधान करके श्रीसुदर्शनाअम्बाजी बोलीं:-हे श्रीमिथिलाधिपवल्लभे ! मैंने जो सुना है वह आपसे कहती हूँ, आप धैर्य पूर्वक श्रवण कीजिये ॥१०॥

मुनिमखं समवता सुबाहुको युधि हतोऽब्धिपुलिने निपातितः ।
रघुवरेण खलु ताटकासुतो निजशरेण तदमृत्युमिच्छता ॥११॥

इन श्रीरघुवीरप्यारेजूने ही श्रीविश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा करते हुये युद्धमें सुबाहु राक्षसको मारा और मृत्युकी इच्छा न करके मारीच राक्षसको अपने बाणसे समुद्रके किनारे फेंका है ॥११॥

अमितविक्रम उदारसद्यशाः पदसमुद्धृतमुनीश्वरप्रियः ।
मधुर एष खलु दर्शनेन वै न तु बलेन भुवि पौरुषेण च ॥१२॥

और मुनीश्वरगोतमकी धर्मपत्नी श्रीअहल्याजीका उद्धार किया है, अत एव इनका पवित्र यश सर्वोत्तम तथा पराक्रम अनन्त है, पृथ्वी पर केवल देखनेमें ही ये मधुर अर्थात् सुकुमार हैं, पर बल-पराक्रममें नहीं ॥१२॥

अपि यथा प्रथित एकवर्णको लघुतमः प्रणवसञ्ज्ञको मनुः ।
शिवविरिञ्चिहरिवासवादयः सुमुखि ! सर्व इह तद्वश गताः ॥१३॥

हे श्रीसुमुखीजू ! जैसे एक वर्णका प्रसिद्ध प्रणव नामक मन्त्र ॐ सबसे छोटा है, किन्तु ब्रह्मा-विष्णु-महेश-इन्द्र आदि (देवगण) सभी उसके अधीन हैं अर्थात् उस परम छोटे मन्त्र ॐ के द्वारा इन सभी देवताओंको वशमें किया जा सकता है, यह शक्तिकी महिमा है, रूपकी नहीं ॥१३॥

मिहिरबिम्ब उत भाति पश्यतां लघुतरस्तु हरते जगत्तमः ।
बुधजनेन न तु तेजसाऽन्वितो लघुरतोऽञ्जनयने हि गण्यते ॥१४॥

इसी प्रकार सूर्यका घेरा देखने वालोंको अत्यन्त छोटा प्रतीत होता है, किन्तु वह समस्त जगत् का अन्धकार दूर कर देता है। हे कमलनयने इस लिये बुद्धिमान (विचार शील) लोग तेजस्वीको कभी छोटा नहीं मानते ॥१४॥

धनुरिदं हि परिखण्डयिष्यति त्वरितमेव रविवंशभास्करः ।
वरयिता च तनयां तवप्रियां ध्रुवमतो न कुरु चात्र संशयम् ॥१५॥

इस लिये यह निश्चय है, कि सूर्य वंशको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले ये श्रीरामभद्रजू अब तुरत ही धनुषको तोड़ेंगे और भूमिसे प्रकट हुई आपकी श्रीराजदुलारीजूको वरण करेंगे, अतः इस विषयमें आप कुछभी सन्देह न करें ॥१५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति वचोभिरथ हेतुदर्शकैः सुनयना जनकराजवल्लभा ।
धृतिमवाप परिबोधिता तया सुकृतशालिवरकीर्त्यसौभगा ॥१६॥

श्रीसुदर्शना महारानीजूके प्रमाण युक्त इन वचनों द्वारा समझाने पर, पुण्य शालियोंके द्वारा भी वर्णन करने योग्य महान् सौभाग्य सम्पन्ना वे श्रीजनकजी महाराजकी महारानी श्रीसुनयनाजीने धीरजको प्राप्त किया ॥१६॥

उपगतं तमरविन्दलचनं धनुरवेत्य मिथिलेशनन्दिनी ।
मृदुतमाङ्गमतिकान्तदर्शनं सजलकञ्जनयनेत्यचिन्तयत् ॥१७॥

परम मनोहर दर्शन और अत्यन्त कोमल अङ्गों वाले उन कमल-दललोचन श्रीरामभद्रजीको धनुषके समीपमें उपस्थित हुये देखकर श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजू माधुर्य भावावेशसे अपने कमलवत् नेत्रोंमें जल भर कर सोचने लगीं ॥१७॥

कुलिशसारकठोरमिदं धनुः कमलकोमलकायवता विधे !
कथमनेन विभेद्यमहो भवेत्पितुरयं पण एव सुदारुणः ॥१८॥

हे विधाता ! कमलके समान अत्यन्त कोमल अङ्गों वाले ये श्रीराज-कुमारजी किस प्रकार वज्र सारके समान इस महान कठोर धनुषको तोड़ेंगे ? अहो ! पिताजीकी यह प्रतिज्ञा बड़ी ही कठोर है ॥१८॥

भजतु चापमिदं सुमलाघवं नृपकुमारककञ्जकरान्वितम् ।
हरिहरद्रुहिणेन्द्रगजाननप्रभृतयोऽस्य भवन्तु सहायकाः ॥१९॥

यह धनुष, श्रीराजकुमारजीके करकमलका योग पाते ही पुष्पके समान अत्यन्त हलका होजाय और धनुष तोड़नेमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सुरेश, गणेश आदिक सभी देवगण इन श्रीराज-कुमारजीकी सहायता करें ॥१९॥

पुनरभूदतिदुस्तरचिन्तया जनकजा भृशविह्वलमानसा ।
तदवगम्य मनोहरदर्शनो धनुषि दृष्टिमदाद्रघुसत्तमः ॥२०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः-हे कात्यायनी ! इसके पश्चात् अत्यन्त दुस्तर चिन्ताके कारण श्रीजनकराजदुलारीजीका मन अत्यन्त विह्वल हो उठा, श्रीराघवेन्द्रसरकारजूने इस बातको जानकर अपने मनोहर दर्शनसे उनके चिन्तित मनको हरण करके, अपनी दृष्टि उस धनुष पर डाली ॥२०॥

तद्दृष्ट्वोन्नतपाणिपद्मयुगलः संबोधयँल्लक्ष्मणः
प्रोवाचेति फणीन्द्रनागकमठान् युष्मद्गिराज्ञा मम ।
सश्रद्धैर्नियतात्मभिः क्षितिधरैः सर्वैरियं श्रूयतां
सद्यः सन्तु समाहितेन मनसा यूयं स्वकार्योद्यताः ॥२१॥

यह देखकर श्रीलखनलालजी अपने दोनों कर-कमलोंको उठाकर, शेष, दिशागज और कच्छपको सम्बोधित करके बोलेः-हे शेष ! हे दिशागजाओ हे कच्छप ! आप लोग पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं अतः मेरी इस आज्ञाको सभी दत्तचित्त होकर सुनें और श्रद्धा-पूर्वक सावधान मनसे, तत्क्षण अपने-अपने भूमि रक्षण कार्यमें उद्यत हो जाइये ॥२१॥

श्रीरामो जगदीश्वरो हरधनुर्लब्ध्वा निदेशं गुरो-
र्भङ्क्तुं दत्तमनाः कृपार्द्रहृदयस्तस्यान्तिकं चाययौ ।
भूमिं तत्तु रसातलाभिगमनाद्यूयं प्रयत्नान्विता
रुन्ध्वं चाद्य बलेन विश्वमखिलं यायाल्लयं नो यतः ॥२२॥

क्योंकि गुरुदेवकी आज्ञा पाकर जगत्पति भगवान् श्रीरामजी, कृपासे द्रवित नेत्र हो शिव धनुषको तोड़नेका निश्चय करके उसके पासमें आगये हैं, इस लिये आप लोग बलपूर्वक पूर्णप्रयत्नके साथ इस पृथ्वीको रसातल जानेसे थाम लीजिये, जिससे आज यह समस्त विश्व लयको न प्राप्त हो जाय ॥२२॥

पृथ्वीं वीक्ष्य सुरक्षितां क्षितिधरैरव्यग्रचित्तैस्तदा
ह्यादेशादनुजस्य भूरियशसः सीतां तथा व्याकुलाम् ।
शैवञ्चापमथाब्जदण्डसदृशं ह्युत्थाप्य रङ्गाजिरे
सर्वोपस्थितदेहिनां सुकुतुकं रामेण चोत्पादितम् ॥२३॥

तब महायशस्वी भ्राता श्रीलखनलालजीकी आज्ञासे स्थिर चित्त-पूर्वक पृथिवीको धारण करने वाले कच्छप, शेष, दिग्गजोंके द्वारा भूमिको सुरक्षित तथा श्रीजनकराजदुलारीजीको व्याकुल देखकर, भगवान् श्रीरामजीने कमलनालके समान अनायास उस शिव धनुषको उठाकर, रङ्गभूमिमें उपस्थित सभी जनताके लिये सुन्दर कौतुक प्रकट कर दिया ॥२३॥

राज्ञां दर्पमपाहरन् नरपतेः सन्तापमुन्मूलयन्
राज्ञ्याः शर्म विवर्धयन् सुकृतिनां चेतस्ततोह्लादयन् ।
वैदेहीविरहानलं प्रशमयन् ध्यानं हरस्त्रूलिन-
स्त्रैलोक्यं परिकम्पयन् हरधनू रामो बभञ्जाञ्जसा ॥२४॥

पुनः राजाओंके बलाभिमानको हरण करते तथा श्रीमिथिलेशजी महाराजके सन्तापको जड़से उखाड़ते, श्रीसुनयनामहारानीके आनन्दको विशेष बढ़ाते, पुण्यात्माओंके चित्तको आह्लादित करते तथा श्रीविदेहराजनन्दिनीजूकी विरहाग्निको पूर्ण शान्त करते तथा भगवान् शिवजीका ध्यान तोड़ते हुए त्रिलोकीको थरथराते हुये भगवान् श्रीरामजीने अनायास ही उस शिव-धनुषको तोड़ डाला ॥२४॥

मातुस्तर्हि निदेशमेत्य सुखदं मोदाब्धिमग्नात्मभिः
स्वालीभिर्जनकात्मजाधरणिजा रामान्तिके प्रापिता ।
आपादाब्जशिरोविभूषणवरालङ्कारसंशोभिता
दृष्ट्वा रूपमलौकिकं च मुमुहुस्तत्सर्वदेहिव्रजाः ॥२५॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजीकी सुखद, आज्ञाको पाकर आनन्दसागरमें निमग्न मनवाली सुन्दरी सखियाँ श्रीचरणकमलोंसे लेकर शिखा पर्यन्तके सर्वोत्तम शृङ्गारसे पूर्ण सुशोभित, अवनिकुमारी श्रीमिथिलेशराज दुलारीजीको श्रीरामभद्र प्यारेजूके समीपमें ले गयीं। उनके उस अलौकिक दिव्य धामोचित स्वरूपका दर्शन करके सभी देहधारी मुग्ध (चकित) हो गये ॥२५॥

नेमुस्तां सुधियः कृतार्थहृदया लोकाभिरामाकृतिं
प्रेक्ष्य श्रीरघुनन्दनोऽपि समभूत्पूर्णाभिलाषः स्वराट् ।
ऊचुस्तामिति पद्मपत्रनयनाः प्रेम्णा प्रणम्यादरात्
मत्याः सानुनयं गिरा मधुरया माधुर्य्यवारां निधिम् ॥२६॥

विवेकशीलसज्जनोंने विश्वसुखद स्वरूपा उन श्रीजनकराजदुलारीजूका दर्शन करके हृदयसे अपनेको कृतार्थ मान कर उन्हें प्रणाम किया, समस्त जीवोंके राजा श्रीरघुनन्दनप्यारेजू भी उनका दर्शन करके कृत कृत्य हो गये, उन माधुर्य्य सागरा श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूसे कमल-लोचना सखियाँ प्रार्थना पूर्वक अपनी मधुरी वाणी द्वारा सप्रेम इस प्रकार बोलीं:-॥२६॥

श्रीसख्य ऊचु ।

हे श्रीराजकिशोरि ! कञ्जनयने ! सौभाग्यपाथोनिधे !
लावण्याहृतमीनकेतुदयितारूपस्मये ! शोभने ।
सद्यो विश्वविमोहनस्य जगतीनाथेन्द्रसूनोर्गले
मालामस्य निधाय कम्बुसदृशे सद्वृन्दमानन्दय ॥२७॥

अपने सौन्दर्यसे रतिके सुन्दरता जनित अभिमानको दूर करने वाली, मङ्गलमयी, सौभाग्यसागरा कमल-लोचना हे श्रीजनकराजकिशोरीजी ! अब आप शीघ्र विश्वविमोहन इन श्रीचक्रवर्तीकुमारजूके शङ्खके सदृश मनोहर गलेमें जयमाल डालकर सज्जनवृन्दोंको आनन्दित कीजिये ॥२७।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्ता जनकात्मजा प्रियसखीवृन्दैर्विनम्रेक्षणा
रम्यालौकिकरोचिषा निजतनोः प्रद्योतयन्ती दिशः ।
मालां कञ्जकरद्वयेन च शनैरुत्थापितेनाद्भुतां
श्रीरामस्य जगन्मनोज्ञवपुषः कण्ठे ततोऽधारयत् ॥२८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये ! प्रिय सखियोंके इस प्रकार प्रार्थना करने पर अपने श्रीअङ्गकी मनोहर अलौकिक (दिव्य) कान्तिसे दशों दिशाओंको पूर्ण प्रकाशित करती हुई श्रीजनकराजदुलारीजूने दृष्टि नीचे किये हुये, अपने कमलवत् सुन्दर सुकोमल हाथोंसे धीरे धीरे उठाकर उस अद्भुत मालाको, अपने रूप सौन्दर्यसे चर-अचर प्राणियोंके मनको मुग्ध कर लेने, वाले भगवान् श्रीरामभद्रजूके गलेमें धारण कराया ॥२८॥

प्रारब्धा विबुधैस्तदा सुमनसां वृष्टिः शिवा हर्षदा
नानावाद्यसुशोभना जयजयेत्युच्चैः सुराब्दैर्युता ।
आलोक्योरसि राघवस्य ललितां दिव्यां च रत्नस्रजं
दोर्भ्यां श्रीमिथिलाधिराजसुतया प्रेम्णा स्वयं धारिताम् ॥२९॥

पुनः उसी समय श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके करकमलोंमें प्रेमपूर्वक धारण कराई हुई रत्नों की उस दिव्य मनोहर मालाको श्रीराघवेन्द्र सरकारके हृदय पर सुशोभित देखकर देवताओंने "जय हो, जय, हो" इन शब्दोंके सहित नाना प्रकारके बाजाओंसे सुहावनी फूलोंकी मङ्गलमयी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥२९॥

इत्थं सा कलधौतकोमलतनुः सञ्चिन्त्यपादाम्बुजा
श्रीरामस्य गले निधाय विजयश्रीलां शुभां मालिकम् ।
गायन्तीः सुमनोहरं च नृपजा सर्वाः कुरङ्गीदृशो
मातुः पार्श्वमुपागमद्विधुमुखी संमोदयन्ती सखीः ॥३०॥

इति चतुर्णवतितमोऽध्याय ॥९४॥

इस प्रकार सुवर्णके समान गौर तथा अत्यन्त कोमल अङ्ग, ध्यान करने योग्य श्रीचरणकमल वाली, शरद्-चन्द्रमाके सदृश परम आह्लादकारी निर्मल प्रकाश युक्त श्रीमुखारविन्द वाली श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी, विजयलक्ष्मीसे युक्त मङ्गलमयी जयमाल श्रीरामभद्रजूके गलेमें पहिनाकर, मृगलोचना सखियोंके मङ्गलगीतगाते हुये वे अपनी सखियोंको पूर्ण सुखी करती हुई, श्रीसुनयना अम्बाजीके पास पधारीं ॥३०॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

श्रीपरशुराम संवाद ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अथोर्वीशपुत्रो धनुः खण्डयित्वा ।
मुनेर्दक्षपार्श्वे रराज सजाड्यः ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये ! धनुष तोड़नेके पश्चात् जयमालाको धारण किये हुये श्रीराघवेन्द्र सरकारजू श्रीविश्वामित्रजी महाराजके दाहिने भागमें जाकर सुशोभित हुये ॥१॥

समालिङ्गितः प्रेमपूर्णोरसाऽसौ ।
महर्षिप्रकृष्टेन वै कौशिकेन ॥ २ ॥

महर्षियोंमें परम श्रेष्ठ श्रीविश्वामित्रजी महाराजने प्रेमपूर्ण हृदय से उन श्रीरामभद्रजीका आलिङ्गन किया ॥२॥

तदालोक्य हृष्टः सुमित्राकुमारः ।
विदेहो विदेहत्वमाशु प्रपेदे ॥ ३ ॥

यह देखकर श्रीसुमित्रा कुमार श्रीलखनजी ने, बड़े ही हर्ष को प्राप्त किया और श्रीविदेहजी महाराज तो दर्शन करतेही अपने देह की सुधि बुधि भूल गये ॥३॥

तदा भूमिपाला निकृष्टस्वभावाः ।
मिथोऽनर्थकं ते विवादं प्रचक्रुः ॥ ४ ॥

तब खोटे स्वभाव वाले वे राजा आपसमें (परस्पर) व्यर्थ का विवाद करने लगे ॥४॥

नृपा ऊचुः ।

सुबालस्य किं वै धनुर्भञ्जनेन ।
रणे सर्वजेत्रा कुमारी हि लभ्या ॥५॥

राजा बोले:-भाइयो ! इस सुन्दर बालकके धनुष तोड़नेसे ही क्या हुआ ? श्रीजनकराजकुमारी जी उसीको मिलेंगी, जो युद्धमें सभीको जीत ले ॥५॥

अहं राजपुत्रीं वरिष्ये न चान्यः ।
बलीयान् हि मत्तः परः कोऽस्ति लोके ॥६॥

राजपुत्रीको मैं वरूँगा दूसरा नहीं, क्योंकि मुझसे बढ़कर लोकमें बलवान ही कौन है ? ॥६॥

विदेहो हठाचेत्प्रदाता किलास्मै ।
सुतामोजसैनं विजित्याहरिष्ये ॥७॥

यदि श्रीविदेहजी महाराज इसी हठ पूर्वक अपनी श्रीराजकुमारीको इन्हें ही अर्पण करेंगे, तो अपनी सामर्थ्यसे इनको जीत कर राजकुमारीको छीन लेंगे ॥७॥

यदि स्यात्सहायो विदेहोऽस्य भूपः ।
तमाहत्य तूर्णं निनेष्यामि पुत्रीं ॥८॥

और यदि श्रीविदेहजी महाराज इनकी सहायता करेंगे, तो मैं उनको भी मारकर इन पुत्रीको छीन लूँगा ॥८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

निशम्येति तेषां वचो बुद्धिमन्तः ।
शनैरेतदाहुः परेशानुरक्ताः ॥ ९ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोले–हे तपोधने ! उन दुष्ट राजाओं की इन बातोंको सुनकर भगवत्-चरण-कमलानुरागी बुद्धिमान राजाओंने धीरेसे यह कहा ॥९॥

श्रीसद्भूपा ऊचुः ।

अलं वः प्रलापैर्नरेन्द्राः समेषाम् ।
यदि प्राणरक्षा त्विदानीमभीष्टा ॥१०॥

हे राजाओं ! सुनो, यदि आप लोगोंको अपने प्राणों की रक्षा अभीष्ट हो, तो पारस्परिक निरर्थक विवाद बहुत हो चुका, अर्थात् अब चुप रहो ॥१०॥

पिनाकं सभायां समुत्थापयन्तः ।
क्षितावुच्छ्वसन्तो भवन्तोऽपतन्यत् ॥११॥

क्योंकि सभाके बीचमें पिनाक धनुषको तोडनेका यत्न करते हो आप लोग ऊर्ध्वश्वास लेते हुये पृथिवी पर गिर चुके हैं ॥११॥

बलं पौरुषं वस्तदेवास्ति यद्वा ।
इदानीं नवीनं समासादितं हि ॥१२॥

आप लोगोंका बल पौरुष वही है न ? अथवा इस समय कुछ नूतन प्राप्त हो गया है ?॥१२॥

दशास्योऽपि दोर्भ्यां धनुर्यस्सलज्जः ।
अभिस्पृश्य कामं गतो मोघवीर्यः ॥१३॥

जिस धनुषको दोनों हाथोंसे इच्छानुसार भली भाँति स्पर्श करके दशमुख (बीसहाथों वाला रावण) अपने पराक्रमको निष्फल देखकर लज्जा वश लङ्काको चला गया ॥१३॥

अनायासमैशं धनुः पश्यतां वः ।
तदुत्थाप्य भग्नं ह्यकार्षीद्द्रुतं यः ॥१४॥

भगवान् शिवजीके उसी पिनाक धनुषको जिस बालकने आप लोगोंके देखते-देखते उठा कर तोड़ डाला ॥१४॥

स बालो भवद्भिः परिज्ञायतेऽतः ।
नमो दर्पमत्ता ! धिये कोटिशो वः ॥१५॥

हे अभिमानके मदसे पागलराजाओ ! उसको आप लोग बालक ही समझ रहे हैं ? अतः आप लोगोंकी इस बुद्धिको कोटिशः प्रणाम अर्थात् धिक्कार है ॥१५॥

अयं रामभद्रस्त्रिलोकीपरेशः ।
परं ब्रह्म साक्षादुपास्यो मुनीन्द्रैः ॥१६॥

ये श्रीरामभद्रजू तीनों लोकोंके सबसे बड़े शासक, मुनिराजोंके उपास्यदेव साक्षात् पर ब्रह्म हैं ॥१६॥

असौ राजपुत्री पराशक्तिरस्य ।
त्रिलोक्येकमाता रमोमादिवन्द्या ॥१७॥

और वे श्रीमिथिलेश राजदुलारजी त्रिलोकी की आदि माता, श्रीलक्ष्मी, गिरिजादि महाशक्तियोंके प्रणाम करने योग्य इनकी परा शक्ति है ॥१७॥

तपः पुञ्जतुष्टो दशस्यन्दनस्य ।
गतः पुत्रभावं सुरैर्याचितोऽयम् ॥१८॥

ये श्रीरामभद्रजू देवताओं की याचनासे (पूर्व जन्म की) तपो राशिसे प्रसन्न हो श्रीदशरथजी महाराजके पुत्र बने हैं ॥१८॥

अयोन्युद्भवाऽऽद्या धरागर्भजाता ।
विदेहार्थिताऽसौ पुराजन्मनीह ॥१९॥

और वे, विना किसी कारण अपनी इच्छासे प्रकट होने वाली आद्याशक्ति श्रीविदेहमहाराजके पूर्व जन्मके प्रार्थनानुसार भूमिसे प्रकट हो, उनके पुत्री भावमें विराज रही हैं ॥१९॥

वचस्तथ्यमेतद्भवन्तो विदित्वा ।
दुराशां विसृज्याक्षिलाभं लभध्वम् ॥२०॥

आप लोग इस बातको सत्य जानकर अपनी नीच वासनाको परित्याग करके, नेत्रोंका लाभ लीजिये ॥२०॥

अयं रामबन्धुस्तदाज्ञानुसारी ।
फणीशावतारी पयः सिन्धुशायी ॥२१॥

ये श्रीरामभद्रजूके भइया श्रीलखनलालजी, उनकी ही आज्ञानुसार चलनेवाले शेषजीके अवतारी क्षीरशायी श्रीविष्णु भगवान् हैं ॥२१॥

प्रियं जीवितं वो नृपास्तावदेव ।
न यावद्रुषाढ्यो भवेल्लक्ष्मणोऽयम् ॥२२॥

अतः हे राजाओ! आप लोगोंका यह प्रिय जीवन तभी तक है, जब तक ये श्रीलखन लालजी रोष नहीं करते ॥२२॥

वयं राजपुत्रीं कुमारं तथैनम् ।
समालोक्य सद्यः कृतार्थत्वमाप्ताः ॥२३॥

हम लोग तो श्रीजनकराजदुलारीजूका तथा इन श्रीचक्रवर्तीकुमारजूका दर्शन करके तत्क्षण कृतार्थ हो गये ॥२३॥

वयं जन्मनोऽद्धा फलं प्राप्तवन्तः ।
भवन्तो यथेष्टं तथा वै कुरुध्वम् ॥२४॥

हम लोगोंको अपने जन्मका फल मिल गया, आप लोगोंकी जो इच्छा हो करें ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

धनुर्भङ्गशब्दं तदा जामदग्न्यः ।
निशम्यागतोऽसौ महाकालकल्पः ॥२५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी कात्यायनीजीसे बोलेः हे तपस्विनि! उसी समय धनुष टूटनेका शब्द सुनकर महाकालके समान भयभीतकारी जमदग्नि ऋषिके पुत्र श्रीपरशुरामजी आकर उपस्थित हुये ॥२५॥

तमालोक्य भूपाः प्रणेमुर्नताङ्गा ।
समुच्चार्य नाम स्वकं सान्वयं ते ॥२६॥

उनको देखकर राजाओंने कुलके सहित अपना नाम लेकर सभी अङ्गोंसे झुक कर प्रणाम किया ॥२५॥

समभ्यर्चितं तं भृगूणामधीशम् ।
महार्हासनस्थं नतो मैथिलेशः ॥२७॥

श्रीमिथिलेशजीमहाराजने परमोत्तम आसन पर विराजमान करके, षोडशोपचारसे उनका पूजन कर भृगुवंशियोंमें परम श्रेष्ठ उन श्रीपरशुरामजीको प्रणाम किया ॥२७॥

समाहूतयाऽसौ प्रणामं स्वपुत्र्या ।
ततोऽकारयत्तन्मुनेः पादयुग्मे ॥२८॥

पुनः अपनी श्रीललीजीको बुलाकर, उन मुनिदेवके चरणकमलोंमें प्रणाम कराया ॥२८॥

शुभाशीर्वचोभिः स तां भार्गवेन्द्रः ।
समादृत्य सीतां जगामातिहर्षम् ॥२६॥

श्रीपरशुरामजी महाराजने मङ्गलमय आशीर्वादके द्वारा श्रीजनकराजदुलारीजूका सत्कार करके अत्यन्त हर्षको प्राप्त किया ॥२६॥

मुनिः कौशिकस्तं नमस्कृत्य भूयः ।
नतिं राघवाभ्यां मुदाऽकारयत्सः ॥३०॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराजने उनको वारम्वार प्रणाम करके, दोनों राजकुमारोंसे प्रणाम कराया ॥३०॥

इमौ तेन पुत्रौ दशरथनन्दनस्य ।
सुविज्ञापितौ सुनवे रेणुकायाः ॥३१॥

पुनः उन्होंने रेणुका पुत्र, श्रीपरशुरामजीको बतलाया-ए दोनों पुत्र श्रीदशरथजीमहाराजके हैं ३१

अयं रामभद्रो दिनेशान्वयार्कः ।
सदाऽस्यानुगामी श्रुतो लक्ष्मणोऽयम् ॥३२॥

सूर्यवंशको सूर्यवत् प्रकाशित करनेवाले श्रीरामभद्रजूका सदा ही अनुगमन करने वाले ये श्रीलखनलालजी हैं ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

विलोक्याद्भुतं तन्मनोहारिरूपम् ।
मुनिस्ताटकारेर्मुदं शातमाप ॥३३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः-हे प्रिये! ताड़का राक्षसीको मारनेवाले उन श्रीरामभद्रजूके उस मनोहर व अद्भुत रूपको देखकर, गमन-परायण श्रीपरशुरामजीमहाराज, अत्यन्त सुखको प्राप्त हुये ३३

धनुर्वीक्ष्य भग्नं ततोऽसौ पुरारेः ।
अपृच्छद्विदेहं क एतद्बभञ्ज ॥३४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तत्पश्चात् भगवान् शिवजीके धनुषको खण्डित हुआ देखकर श्रीपरशुरामजीने श्रीविदेहजी महाराजसे पूछाः-राजन्! इस धनुषको किसने तोड़ा है? ॥३४॥

मुखस्याकृतिं तत्समालोक्य तूष्णीम् ।
गते भूमिपाले नमन् राम ऊचे ॥३५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे प्रिये ! इस प्रकार उनके पूछने पर जब श्रीमिथिलेशजी महाराज उनके मुखकी (रोषयुक्त) आकृतिको देखकर मौन रहे तब श्रीरामभद्रजू नमस्कार करते हुये बोले३५

श्रीराम उवाच ।

भवेन्नाथ ! दासस्तवैको हि कश्चित् ।
धनुर्येन भक्तं पुरारेः पुराणम् ॥३६॥

हे नाथ ! जिसने भगवान् शिवजीके पुराने इस धनुष को तोड़ा है, वह कोई आपका एक (मुख्य) दास ही होगा ॥३६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

रुषैतत्तदुक्तं वचो राघवस्य ।
समाकर्ण्य वीरोऽवदज्जामदग्न्यः ॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोलेः—हे तपोधने ! श्रीराघवेन्द्र सरकारके इन वचनों को सुनकर वीर श्रीपरशुरामजी रोष पूर्वक बोलेः ॥३७॥

श्रीजामदग्न्य उवाच ।

न दासोऽस्ति शत्रुर्य एतद्बभञ्ज ।
गुरोः कार्मुकं स भवेत्सम्मुखो मे ॥३८॥

हे राम ! जिसने मेरे गुरुदेवका धनुष तोड़ा है, वह मेरा दास नहीं शत्रु है, मेरे वह सम्मुख हो जाय ॥३८॥

नृपा भूप ! सर्वे प्रयास्यन्ति मृत्युम् ।
इदानीं तु नोचेन्न दोषो ममास्ति ॥३९॥

हे भूप ! नहीं तो इसी समय सभी राजाओं की मृत्यु हो जायगी, मेरा इसमें कोई दोष नहीं है ॥३९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

वाणीं निशम्य परुषामिति लक्ष्मणस्तं कम्पत्तनुं परशुपाणिमुवाच वीरः ।
बाल्ये बहूनि दलितानि धनूंषि देव ! क्रोधः कृतो न भवता हि कदापि पूर्वम्४०

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले: हे कात्यायनी ! उनके इन कठोर वचनों को सुनकर वीर श्रीलखन लालजी कम्पित शरीरसे युक्त, हाथ मे फरसा लिये हुये श्रीपरशुरामजीसे बोले: हे देव बाल्यावस्था में न जाने मैं ने कितने ही धनुष तोड़ डाले, किन्तु आप ने पहिले कभी क्रोध नहीं किया ॥४०॥

कस्मान्ममत्वमिति ते किलकार्मुकेऽस्मिन्नीपत्कराम्बुरुहयोगविखण्डिते च ।
रोषः किमर्थमिति वै क्रियते त्वयाऽतो दोषो न कोऽपि मुनिवर्य! रघूद्वहस्य ४१

फिर किञ्चित् हस्त कमलके स्पर्शमात्रसे टूटे हुये इस धनुष पर आपकी ऐसी क्यों ममता है ? और आप किस लिये इस प्रकार का क्रोध कर रहे हैं ? हे मुनिश्रेष्ठ ! श्रीरामभद्रजू का धनुष टूटनेमें कोई दोष नहीं ॥४१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

सौमित्रिणोक्तमिदमेव वचो निशम्य क्रोधं गतो द्विगुणितं भृगुजस्तमूचे ।
चापैरुपेति समतां किमु चन्द्रमौलेः कोदण्डमेतदितरैर्वद मूढ ! मह्यम् ॥४२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोले:-हे तपोधने ! सुमित्रानन्दन श्रीलखनलालजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीपरशुरामजी दुगुने क्रुद्ध हो उनसे बोले:-रे मूढ़ ! मुझे बतला, क्या यह भगवान शिव जीका धनुष अन्य धनुषोंके समान हो सकता है ? ॥४२॥

गर्भार्भकघ्नपरशुर्मम पाणिपद्मे तस्माच्छुचा गमय मा पितरौ स्वकीयौ ।
किं मे प्रदर्शयसि मोघभटाभिमानिन्! भूयः कुठारमभितो गतसाध्वसोऽहम् ४३

श्रीपरशुरामजी बोले:-गर्भके बालकों का नाश करने वाला यह कुल्हाड़ा मेरे हस्त-कमलमें है, अतः अपने माता-पिताको शोकमें मत डाल । श्रीलखनलालजी बोले:-हे व्यर्थ योद्धा होने का अभिमान रखने वाले ! मुझको आप कुल्हाड़ा क्यों बारम्बार दिखा रहे हैं ? मैं सब प्रकारसे अभय हूँ ॥४३॥

मत्वा द्विजं भृगुकुलप्रभवं भवन्तं रोषं निरुद्ध्य परुषाणि वचांसि सेहे ।
सर्वाणि ते विबुधविप्रगवांकुलेऽस्मद्वंशस्य नैव मुनिनाथ! यतो हि शौर्य्यम्४४

आपको भृगुकुलमें उत्पन्न ब्राह्मण मानकरके, अपने हृदयमें तरङ्गित रोषको रोक कर, मैंने आपके सभी कठोर वचनोंको सहन किया है । हे मुनिनाथ ! क्योंकि देवता-गौ-ब्राह्मणोंके प्रति हमारे कुलकी शूरता नहीं है ॥४४॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

त्वं बालकं कलयता न मयाऽधुनाऽपि सहन्यसेऽत्र इह वै मुनिरेव वेत्ति ।
मां कार्तवीर्यभुजखण्डनयोगदक्षं राजन्यवंशदहनं भुवनप्रसिद्धम् ॥४५॥

तुझे मैं बालक समझकर अभी तक नहीं मार रहा हूँ, इसी लिये राजवंशी अग्निके समान जला डालने वाले, कार्तवीर्य (सहस्र बाहु) की भुजाओंको काटनेमें मुझ परम चतुर विश्वविख्यात को केवल मुनि ही जानता है ॥४५॥

श्रीलक्ष्मण उवाच ।

क्रोधं वदन्ति मुनयः खलु पापमूलं द्वारं प्रशस्तमिनसूनुपुरस्य देव !
त्यक्त्वा तदेव मुनिवर्य ! शमेन युक्तस्तोषो यथाऽस्तु न चिरेण तथा कुरुष्व ४६

श्रीलखनलालजी श्रीपरशुरामजीसे बोले:—हे देव ! हे मुनिश्रेष्ठ ! मुनि जन क्रोधको पापकी जड और यमलोकका मुख्य द्वार बतलाते हैं इस लिये आप क्रोधको परित्याग कर शान्ति पूर्वक जिस प्रकार शीघ्र शान्ति मिले वही कीजिये ॥४६॥

दृष्ट्वा कुठरविशिखासनबाणपाणिं वीरं विचार्य यदिहानुचितं मयोक्तम् ।
तद्वै द्विजेन्द्र ! भृगुनायक ! वीरमूर्ते ! मह्यं क्षमस्व कृपया नम एव तुभ्यम् ४७

हे वीर मूर्त्ते ! हे भृगुकुलनायक ! हे ब्राह्मणोत्तम ! आपको कुल्हाड़ी तथा धनुष बाण हाथमें धारण किये हुये देखकर वीर विचार करके मैंने जो कुछ अनुचित कह दिया हो, उसे आप कृपया क्षमा कीजिये, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥४७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एतन्निशम्य वचनं रघुवीरबन्धोः प्रोवाच गाधितनयं स तु जामदग्न्यः ।
जातः कलङ्क इव विश्रुतसूर्यवंशे नूनं निसर्गकुटिलो नृपबालकोऽयम् ॥४८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले हे कात्यायनी ! श्रीरामभद्रजूके भइया श्रीलखनलालजीके इन वचनोंको सुनकर वे श्रीपरशुरामजी महाराज श्रीविश्वामित्रजीसे बोले:—हे गाधिनन्दन ! यह राजकुमार तो स्वाभाविक बड़ा ही कुटिल है और विख्यात सूर्यवंशमें मानो कलङ्क ही उत्पन्न हुआ है ॥४८॥

रक्षा त्वयाऽभिलषिता यदिमन्दबुद्धेरस्याशु चैनमुपवर्जय कौशिक ! त्वम् ।
उक्त्वा बलं च मम पौरुषमेव नोचेदेषोऽन्तकस्य भविता कवलः क्षणेन ॥४९॥

हे कुशिक नन्दन श्रीविश्वमित्रजी ! इस लिये आप यदि विचार शक्ति हीन इस बालक की रक्षा चाहते हैं, तो मेरा बल पराक्रम सुना कर इस को (बोलने से) मना करदीजिये, नहीं तो यह क्षणभरमें काल काग्रास बन जायगा ॥४९॥

श्रीलक्ष्मण उवाच ।

कीर्त्तिः स्विका स्वमुखतो बहुवारमद्धा तोषो न चेत्कथयतो हृदि जायते वै।
रीत्या मुने! बहुधया भवतोऽधुनाऽपि मह्य प्रशंस पुनरेव हि तां शृणोमि॥५०॥

श्रीलखनलालजी बोलेः हे मुने। अपने मुखसे अपनी कीर्त्तिको बारम्बार वर्णन करते हुये भी यदि आपके हृदयमें अभी तक सन्तोष नहीं हो रहा है, तो फिर अनेक प्रकार से अपनी उस कीर्त्ति को मुझसे वर्णन कीजिये। मैं निःसन्देह उसका श्रोता हूँ॥५०॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

बालं विचार्य कुटिलं कटुवादिमुख्यं तन्मर्पितानि सुबहूनि दुरीरितानि ।
भूयो मया न सकृदद्य निजस्वभावाद् गन्ता मृतिं नृपतिसूनुरयं तथाऽपि५१

श्रीपरशुरामजी श्रीविश्वामित्रजी से बोलेः हे मुनिराज! अत्यन्त कड़ई बाड़ी बोलने वाले इस कुटिल को, बालक विचार करके एकबार नहीं, अनेकों बार इसके कहे हुये बहुत से दुर्वचनों को मैंने सहन किया तथापि यह राजकुमार अपने इस दुष्ट स्वभावके कारण आज मरने को ही है॥५१॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

बालस्य नैव गणयन्ति गुणं न दोषं सन्तः पवित्रमतयो विदितात्मतत्वाः ।
चन्तुं विधस्व करुणां भृगुवंशभानो! दोषानतोऽस्य तनयस्य नृपेश्वरस्य ५२

श्रीविश्वामित्रजी बोलेः-हे भृगुवंशरूपी सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाले! परमात्मतत्वको समझनेवाले, पवित्र विचार शील सन्त, बालकके दोष गुणोंकी गिनती ही नहीं करते, इस लिये आप इस चक्रवर्तीकुमारके दोषोंको क्षमा ही करें॥५२॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

प्रत्युत्तरं प्रददतोऽभिमुखं स्थितस्य दृष्ट्वा मयाऽस्य सकुठारकरेण रक्षा ।
शीलेन ते मुनिवर! क्रियते निहत्य नोचेद्व्रजाम्यनृणतां स्वगुरोरिहाज्ञः ५३

श्रीपरशुरामजी बोलेः-हे मुनि-श्रेष्ठ-सम्मुख स्थित होकर जवाब पर जवाब करते हुये देखकर हाथमें कुल्हाड़ी रहते हुये भी केवल आपके शीलसे इसकी रक्षा कर रहा हूँ, नहीं तो इसका वध करके अनायास ही मैं गुरु ऋणसे मुक्त हो जाता॥५३॥

श्रीसौमित्रिरुवाच ।

ज्ञात्वा मयाऽपि मुनिवर्य! भृगूद्वहस्त्वं भूपध्रुगद्य सनयं समुपेक्षितोऽसि ।
मह्यं कुठारमनुवारमिहोत्थपाणिः किं दर्शयस्यखिललोकभयाश्रिताय॥५४॥

श्रीलखनलालजी बोले:-हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं जानता हूं, कि आप समस्त राजाओंका शत्रु हैं, तथापि आपको भृगु कुलमें उत्पन्न जानकर मैंने न्याय पूर्वक आपकी उपेक्षाकी है ! आप मुझ सम्पूर्ण लोकके स्वामीके आश्रितको हाथ उठाकर बारंबार वृथा फरसा दिखा रहे हैं ? ॥५४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

क्रोधानलं भृगुवरस्य समेधमानं दृष्ट्वा निवार्य निजबन्धुमुवाच रामः ।

श्रीराम उवाच ।

हे नाथ तेऽतुलितमेव बलं प्रतापं जानाति चेद्वदति किं परुषा गिरस्ते ॥५५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे तपोधन ! श्रीपरशुरामजीके क्रोध रूपी अग्निको पूर्ण रूपसे बढ़ती हुई देख कर, अपने भइया श्रीलखनलालजीको बोलनेसे रोक कर, प्यारे श्रीरामभद्र उनसे बोले:-हे नाथ ! यदि यह बालक आपके अतुलित बल-प्रतापको जानता ही होता, तो आपके प्रति ऐसी कठोर वाणी ही क्यों बोलता ।५५।

विज्ञानसिन्धुरसि शूरतमश्च धीरः चन्तुं शिशोरनुचरस्य वचोऽर्हसि त्वम् ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तुष्टः स्मितास्यमवलोक्य च रामवाचा क्रुद्धो जगाद पुनरेव स लक्ष्मणस्य ५६

आप विज्ञानके सागर, महान्शूर वीर तथा धीर हैं, इस लिये शिशुसेवकके कठोर वचनोंको क्षमा ही करें । श्रीरामभद्रजूकी इस अमृत मयी वाणीसे वे प्रसन्न हो गये, किन्तु श्रीलखनलालजी-के मुस्कान युक्त मुखको देखकर, पुनः क्रुद्ध हो बोले: ॥५६॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

रक्षामि राम तव बन्धुमिमं विदित्वा दुष्टाशयं सविषहेमघटोपमं च ।
रम्याकृतिं मलिनचित्तमहं किलेति मन्दं जहास स निशम्य हि लक्ष्मणस्तत् ५७

श्रीपरशुरामजी बोले-हे राम ! जैसे विष, भरा हुवा घड़ा देखने में सुन्दर, किन्तु प्राणान्तकारी दुःख देने वाला होता है, इसी प्रकार यह देखनेमें तो अत्यन्त सुन्दर है, किन्तु है मलिन चित्त व दुष्ट विचार वाला, महान् दुःख दाई । केवल आपका भाई विचार कर मैं इसकी रक्षा कर रहा हूँ, यह सुनकर श्रीलखनलालजी मन्द मुस्काने लगे ॥५७।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

संदह्यमानहृदयं भृगुवंशदीपं क्रोधानलेन सकुठारकरारविन्दम् ।
बन्धुं हसद्धिमुखं च निरीक्ष्य रामः प्राहेत्यसौ प्रणयतस्तमुदारभावः ॥५८॥

तब भृगु-कुल को दीपक के समान सुशोभित करने वाले, हाथमें फरसा लिये हुये श्री परशु-

रामजीके हृदय को क्रोधाग्निसे जलते तथा श्रीलखनलालजी के चन्द्रवत् मनोहर मुख को मुस्काते हुये देखकर, उदार भाव वाले उन श्रीरामभद्रजूने प्रेम-पूर्वक उनसे कहा ॥५८॥

श्रीराम उवाच।

श्राव्यानि सन्ति न हि बालवचांसि देव ! विप्रोत्तमेन महता भवता द्विजेन्द्र! ।
चापच्छिदस्मि खलु सम्प्रति सापराधो दोषो न चास्य शिशुभावमुपाश्रितस्य ५६

हे देव ! हे द्विजोत्तम ! आप तो महान् ज्ञानी हैं, अतः आपको बालकके वचनों पर ध्यान नहीं देना चाहिये, पुनः धनुषको तोड़ा है मैंने, अतः अपराधी मैं ही हूँ, शिशु भावसे युक्त इस बालक का कोई दोष नहीं है ॥५९॥

कार्यो ऽत एव मयि कोप उत क्षमा हि बन्धो वधश्च भवता निजदासदासे।
शान्तिर्भवेन्मनसि ते च यथा कुरुष्व कामं स्थितोऽस्मि नतकायशिरास्त्वदग्रे ६०

अत एव मुझ अपने दासोंके दास पर ही आपको क्षमा, कोप, बन्धन तथा मृत्यु आदि दण्ड करना चाहिये। इतना ही नहीं अपितु जिस प्रकारसे भी आपके मनको शान्ति मिले, उसी प्रकार आप अपनी इच्छानुसार व्यवहार कीजिये। मैं शरीर व शिरको झुका कर आपके आगे उपस्थित हूँ ॥६०॥

श्रीपरशुराम उवाच।

मां साभ्यसूयमवलोकयतस्तवास्य भ्रातुः प्रदाय न गले कठिनं कुठारम्।
शान्तिः कुतःकरुणया न निहन्मि चैनं जातो विरुद्ध इति हन्त मम स्वभावः६१

यह सुनकर तिरछी दृष्टि पूर्वक मुस्काते हुये श्रीलखनलालजीको देखकर, श्रीपरशुरामजी श्रीरामभद्रजूसे बोले:-हे राम ! तिरस्कार पूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखते हुये इस तेरे भाईके गले पर बिना इस कठोर फरसाको दिये मेरेको शान्ति कहाँ ? किन्तु फिर भी दया वश मैं इसे नहीं मारता हूँ। आश्चर्य है मेरा यह स्वभाव बदल कैसे गया ? ॥६१॥

कारुण्यमेव मम दुःसहदुःखमूलं जातं ममाद्य मनसीह पदृच्छयैव।

सौमित्रिरुवाच।

तस्माद्भवान् करुणमूर्त्तिरिह प्रसिद्धो वाक्ं निसर्गमधुरा श्रवणस्पृशा च ॥६२॥

हे राम ! आज अकस्मात् मेरे मनमें उदय हुई करुणा ही मेरे दुःखका कारण बन गयी है। यह सुनकर श्रीलखनजी बोले:-हे महाराज ! इसी लिये लोकमें आप करुणाकी मूर्ति प्रसिद्ध हैं ना ? और आपकी वाणी भी सहज स्वभावसे बड़ी ही मधुर व श्रवण सुखदाई है ॥६२॥

कारुण्यतो दहति चेद्धृदयं त्वदीयं क्रोधेनरक्ष नचिरेण भृगुप्रवीर ! ।

श्रीजामदग्न्य उवाच ।

वालं निहन्मि न तु दूरमितो नयैनं मच्चक्षुषोर्विषयतो नृप रे विदेह ! ॥६३॥

हे भृगुवंशियोंमें परमश्रेष्ठ ! यदि कृपाके कारण आपका हृदय जल रहा है तो क्रोधसे उसे शीघ्र बचा लीजिये । यह सुनकर श्रीपरशुरामजी बोले:—हे विदेह नृप ! मैं इस बालक को मार डालूंगा, नहीं तो इसे मेरी आँखोंके सामनेसे हटादो ॥६३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

सावज्ञमाह स्वनिशम्य हि लक्ष्मणस्तद् दृश्यो निमीलितदृशो भवतो न कोऽपि।
रामानुजस्य वचनं श्रुतिगं विधाय श्रीजामदग्न्य इति राममुवाच रुष्टः ॥६४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोले–हे तपोधने ! श्रीपरशुरामजीके उक्त वचनको सुनकर श्रीलखनलालजी तिरस्कार सूचकवाणीसे बोले:—हे महाराज ! "आप अपनी आँखें मूंद लीजिये कोई भी न दिखाई देगा । श्रीरामभद्रजूके छोटे भाईके इन वचनों को सुनकर श्रीपरशुरामजी रुष्ट होकर श्रीरामजीसे बोले– ॥६४॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

चापं विभज्य परितोषयसीह मां त्वं भक्त्या करोषि विनयं मम कैतवेन ।
लब्धेङ्गितो हि कटुवाग्विशिखैरयं ते । भ्राताऽनुताडयति राघव ! सोपहासम्६५

हे राम ! तू धनुष को तोड़कर मुझे प्रसन्न करना चाहता है, पर कपटयुक्त भक्तिके द्वारा मेरी प्रार्थना करता है, क्यों कि तेरा भाई तेरा ही सङ्केत पाकर अपने कटु वचन रूपी बाणोंसे बारबार उपहास पूर्वक मेरेको घायल कर रहा है ! ॥६५॥

युध्यस्व सम्प्रति मया सह राम ! नोचेद्धन्ता सबन्धुमहमस्म्यचिरेण च त्वाम् ।
दोलत्कुठारकरवाक्यमिदं सरोषं श्रुत्वाऽऽह राम इति तं प्रणमन्स्मितास्यः ६६

हे राम अब आप मेरे साथ युद्ध करो नहीं तो अब भाईके समेत तुम्हें शीघ्र मार डालूंगा । उनकी इस बातको सुनकर प्रणाम करके–श्रीरामभद्रजू हाथमें कुल्हाड़ा घुमाते हुये उन श्रीपरशुरामजीसे बोले-॥६६॥

श्रीराम उवाच ।

युद्धं कथं नु कथय प्रभुदासयोः स्याद्रोषं विहाय भगवन्नुपयाहि शान्तिम् ।
त्वद्वीरवेषमवलोक्य कुलानुसारं वीरोक्तयो निगदिता न हि जानता त्वाम् ६७

हे भगवन् ! आप ही बतलाइये दास और स्वामीमें किस प्रकारसे युद्ध हो सकता है ? अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं, अत एव आप क्रोधको छोड़ कर शान्त हो जाइये। आपके वास्तविक मुनि स्वरूपको न जानकर केवल बाहरी वीर वेषको देखकर इस बालकने अपने कुलके अनुरूप ही वीर वाणी कही है ॥६७॥

संपश्यता तु मुनिवेषमनेन नूनं त्वत्पादरेणुरनिशं ध्रियते स्म मूर्द्धनि ।
बालं विचार्य परितुष्टिमुपेहि देव ! वात्सल्यतोऽस्य पितृवत्खलु वीरवाग्भिः॥६८॥

यदि यह आपके मुनि वेषको देखता, तो अवश्य आपके श्रीचरण कमलोंकी रजको अपने मस्तक पर धारण करता अतः इसे बालक विचार कर अपने वात्सल्यभावसे इसकी वीरोचित वाणियोंके द्वारा पिताके समान आप पूर्ण प्रसन्न होइये ॥६८॥

युग्माक्षरं हि मम नाम सपञ्चवर्णं त्वन्नाम लोकविदितं द्विजवंशरत्न !
एको गुणो मम धनुर्नव ते शमाद्याः स्यादावयोः क समता शिरसा पदस्य ६६

हे ब्राह्मणवंशमें रत्नके समान सर्वश्रेष्ठ ! फिर मेरा नाम केवल दो अक्षरोंका और आपका लोक विख्यात पाँच अक्षरोंका नाम है, पुनः हमारेमें एक धनुषकाही गुण प्रधान है, और आपमें शमदमादि नव गुणोंकी प्रधानता है, अतः जैसे चरणकी शिरसे बराबरी नहीं होती उसी प्रकार हमारी आपकी बराबरी नहीं हो सकती ॥६६॥

श्रीजामदग्न्य उवाच ।

बाह्वोर्बलं न विदितं मम वै त्वयाऽतो विप्रेति राम ! गदता समनादृतोऽस्मि ।
त्वं वेत्सि मां लघुमते ! यदि विप्रमेव सो ऽहं यथा द्विजवरः शृणु तत्त्वतस्तत् ७०

श्रीपरशुरामजी बोले:-हे राम ! तुमने मेरी भुजाओंके बलका ज्ञान नहीं है, इस लिये तुमने ब्राह्मण कहकर मेरा घोर अपमान किया है। हे अल्प बुद्धि राम ! यदि तुम मुझे ब्राह्मण ही जानते हो तो, मैं जैसा ब्राह्मणोत्तम हूं उसे वस्तुतः सुनो ॥७०॥

चापस्रुवश्च विशिखाहुतिरुग्रकोपो वह्निः समित्सुपृतना चतुरङ्गिणी च ।
भूपा हि यज्ञपशवो मम तान्निहत्यानेनास्मि वै परशुना कृतकोटियज्ञः ॥७१॥

मेरा धनुष ही स्रुवा (अग्निमें घृत छोड़नेका काष्ठ पात्र) वाण आहुति, विकराल क्रोध अग्नि, चतुरङ्गिणी सेना लकड़ी तथा मेरे यज्ञके पशु राजा हैं, सो इसी फरसासे उनको मार कर मैंने करोड़ों यज्ञ किये हैं ॥७१॥

कोदण्डमेव परिखण्ड्य मदोन्मदान्धो निःशेषविश्वजिदिवेह रघूद्वहाभूः ।

श्रीवाल्मीकिरुवाच ।

रोषप्रकम्पिततनोरिदमेव वाक्यं संश्रुत्य तस्य निजगाद रघुप्रवीरः ॥७२॥

हे रघुवंशीपुत्र ! एक धनुषको तोड़कर अभिमानके मदमें तू ऐसा अन्धा हो रहा है, मानों सम्पूर्ण विश्वको ही जीत लिया हो ! श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनी ! क्रोधके कारण थर थर काम्पते हुये शरीर वाले उन श्रीपरशुरामजीके इन वचनोंको सुनकर रघुवंशियोंमें सर्वोत्तम वीर श्रीराघवेन्द्र सरकारजी बोले:—॥७२॥

श्रीराम उवाच ।

स्वल्पापराध इह मे तव भूरिकोपो मत्पाणिसङ्गपरिखण्डितमैशचापम् ।
कस्मात्करोमि तदहं कथयाभिमानं हे भार्गवेन्द्र ! मदमत्तनरेन्द्रशत्रो ! ॥७३॥

हे मदोन्मत्त राजाओंके शत्रु तथा भृगुवंशियोंके स्वामी ! मेरे अत्यन्त थोड़ेसे अपराध पर आपका महान् कोप है, यह धनुष तो हाथका स्पर्श पाते ही टूट गया है अतः आप ही बतलाइये, मैं अभिमान किस बात पर करूँ ? ॥७३॥

दर्पेण ते यदि मया क्रियतेऽपमानो विप्रेन्द्र ! नाथ ! मुनिवर्यतमेति चोक्त्वा ।
तं ब्रूहि विश्वजठरेऽसुरदेवतानां कोऽसौ भियाऽहमपि यत्प्रणतिं करोमि ॥७४॥

हे नाथ ! और यदि मैं अभिमान वश—हे ब्राह्मणोत्तम ! हे भृगुवर्य ! अथवा हे मुनिश्रेष्ठ ! कह कर आपका अपमान ही कर रहा हूँ, तब आप ही बतलाइये:—इस विश्वमें देवता अथवा असुरों (राक्षसों) में भी ऐसा कौन है ? जिसको मैं भयसे प्रणाम करूँ ॥७४॥

कालाद्भयं न भुवि मर्त्यसुरासुरेभ्यो मह्यं कुतः समरभूमिमुपस्थिताय ।
एष द्विजेन्द्र ! रघुवंशभुवां स्वभावः संस्तौमि नैव निजवंशमृतं ब्रवीमि ॥७५॥

युद्ध भूमिमें उपस्थित हो जाने पर जब मुझे कालका ही भय नहीं होता, तब मनुष्य तथा देव-राक्षसोंका कहाँसे होगा ? हे ब्राह्मणोत्तम रघुवंशियोंका यही स्वभाव है। मैं अपने कुलकी यह प्रशंसा नहीं करता अपि तु सत्य कहता हूँ ॥७५॥

एतन्महत्त्वमपि भूमिसुरान्वयस्य त्वत्तो बिभेमि गतभीः सचराचरेभ्यः ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रुत्वेति वाक्यमिदमिन्दुनिभाननस्य प्रोवाच तं परशुपाणिरसौ सशङ्कः ॥७६॥

फिर भी ब्राह्मण कुलकी यह महिमा है, जो सभी चर अचरमय प्राणियोंसे निर्भय हो कर भी आपसे डर रहा हूँ श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनी ! चन्द्रवदन श्रीराघवेन्द्र सरकारके इस (रहस्य मय) वचनको सुनकर हाथमें फरसाको धारण करने वाले वे श्रीपरशुरामजी महाराज शङ्कायुक्त हो उनसे यह बोले: ॥७६॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

चापं प्रगृह्य रघुनन्दन ! शार्ङ्गपाणेराकर्षयैनमचिरेण कराम्बुजेन ।
शङ्काऽस्तमेतु यत एव हि मे हृदिस्था जग्राह राम इति तद्वनुरङ्गसोक्तः ७७

हे श्रीरघुनन्दनजू ! श्रीविष्णु भगवानके इस धनुषको हाथमें लेकर अपने कर कमलसे इसको खींचिये, जिससे मेरे हृदयमें बैठी हुई शङ्का अवश्य दूर हो जाय। श्रीपरशुरामजीके इस प्रकार कहने पर भगवान् श्रीरामजीने अनायास ही श्रीविष्णु भगवानके उस धनुषको उनसे ले लिया ॥ ७७ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

बाणं नियोज्य च गुणे धनुषश्चकर्ष रामः सलीलमभितस्मरमोहनाङ्गः ।
दृष्ट्वा व्यपास्तमदकोपमुवाच रामं बाणं वदेति न चिरात्क निपातयानि ॥७८॥

पुनः अनन्तकामदेवोंको अपनी सुन्दरतासे मुग्ध कर लेनेवाले उन श्रीरामभद्रजूने खेल पूर्वक धनुषकी डोरी पर बाणको चढ़ाकर खींचा और अभिमान व क्रोधसे रहित हुये उन श्रीपरशुरामजीसे बोलेः-बताइये मैं इस बाणको कहाँ (किसपर) फेंकूँ ॥७८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

आकृष्टचापगुणराममुवाच रामः कम्पायमानसकलावयवः प्रणम्य ।

श्रीपरशुराम उवाच ।

ज्ञातोऽधुना त्वमसि नाथ ! मया परेशः सर्वावतारभृदनन्तगुणोऽवतारी ॥७९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः-हे तपोधने ! तब सभी अङ्गोंसे काँपते हुये श्रीपरशुरामजी धनुष व, डोरीको खींचे हुये श्रीरामभद्रजीको प्रणाम करके कहा-हे नाथ ! इस समय मैंने जान लिया, आप सम्पूर्ण अवतारोंको धारण करने वाले अनन्त दिव्यगुणोंसे युक्त, सभी अवतारोंके मूलकारण, तथा ब्रह्मादि देवताओंके भी स्वामी हैं ॥७९॥

त्वां द्रष्टुकाम इह सिन्धुसुतेशचापं पाणौ वहामि सततं नयनाभिराम !
कारुण्यशीलसुषमाक्षमतैकसिन्धो ! तुभ्यं नमोऽस्तु रघुनन्दन ! सानुजाय ॥८०॥

हे श्रीरघुनन्दनजू ! आपके दर्शनोंकी इच्छासे ही श्रीलक्ष्मीपति विष्णुभगवानके इस धनुषको मैं अपने हाथमें ढोता रहता हूँ हे कृपा शील सौन्दर्य क्षमाके अनुपम सागर प्रभो ! छोटे भ्राता श्रीलखनलालजीके समेत आपको मेरा नमस्कार है ॥८०॥

व्रीडा तवेति भवितुं न हि चार्हतीश ! काकुत्स्थ ! हे रघुपते ! दशरथानसूनो ! ।
विप्रोऽहमद्य भवता विमुखीकृतो यल्लोकत्रयाधिपतिना नृपवंशशत्रुः ॥८१॥

हे ईश ! हे काकुत्स्थ वंशमें प्रकट हुये रघुकुलके स्वामी दशरथ नन्दन श्रीरामभद्रजू ! आपने जो मुझको अपमानित किया, उस बातके लिये आपको लज्जा नहीं होनी चाहिये, क्योंकि आप केवल रघुकुलके ही पति नहीं, अपितु त्रिलोकीके पति हैं और मैं ब्राह्मण ही नहीं, राजवंशका शत्रु हूँ, इस लिये रघुपतिपदके अधिकारानुसार नहीं, अपितु त्रिलोकी नाथ पदके अधिकारानुसार जब सभी गौ-ब्राह्मण-देव सन्तोंको भी उनके कर्मानुसार आप दण्ड व पुरस्कार दे सकते हैं, तब यदि मेरी उद्दण्डताके कर्मानुसार मान हानि का (मुझे) दण्ड दिया ही, तो इस त्रिलोकीनाथके पदानुसार लज्जा करने की कोई बात नहीं है ॥८१॥

छिन्ध्यप्रमेयमहिमञ्जगदेकनाथ ! बाणेन पुण्यनिवहं मम स्वर्गतिं च ।
संक्षम्य भानुकुलकैरवपूर्णचन्द्र ! सर्वापराधनिचयं मदजानतस्त्वाम् ॥८२॥

हे सूर्य वंश रूपीकोकाबेलीको पूर्ण चन्द्रमाके समान विकसित करने वाले, असीम महिमासे युक्त, जगत्के अनुपम नाथ ! आपको न जानने वाले मुझ अज्ञानी के अपराध समूहों को क्षमा करके, आप अपने इस बाणके द्वारा मेरे पुण्य समूह तथा स्वर्ग जानेकी शक्तिको नष्टकर दीजिये ८२

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्तइन्दुवदनो गतगर्ववाचा श्लक्ष्णं शरेण कलुपेतरस्वर्गती तत् ।
चिच्छेद तर्हि भृगुनायक आनतस्तं तप्तुं तपश्च समियाय महेन्द्रशैलम् ॥८३॥

इति पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये ! जब श्रीपरशुरामजी महाराजने अभिमान रहित वाणी से इस प्रकार प्रार्थनाकी, तब पूर्णचन्द्रमाके समान परम आह्लाद कारी मुख कमल वाले, श्रीराघवेन्द्र सरकारजू ने उस धनुष पर चढ़े हुये बाण से, उनके पुण्य तथा स्वर्ग जाने की शक्ति को नष्ट कर दिया, उसी समय भृगुकुल-नायक श्रीपरशुरामजी श्रीरामभद्रजीको प्रणाम करके तपस्या करने के लिये महेन्द्र पर्वत पर चले गये ॥८३॥

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराजकी अनुमतिसे श्रीदशरथजी महाराजको बुलानेके लिये श्रीमिथिलेशजी महाराजका दूतोंको भेजना तथा उनका बरात सजाकर श्रीमिथिला-आगमन-

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तस्मिन् गते तु वै सर्वे जामदग्न्ये महीश्वराः ।
बभूवुर्विगतातङ्का गताशा विगतस्मयाः ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे कात्यायनी ! श्रीपरशुरामजीमहाराजके चले जाने पर सभी राजाओंका भय, आशा तथा अभिमान, नष्ट हो गया ॥१॥

अकारि नाकिभिर्वृष्टिः कुसुमानां शुभावहा ।
निगद्य जय रामेति कुर्वद्भिर्दुन्दुभिस्वनम् ॥२॥

हे राम ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो, ऐसा कहकर नगाड़ाका शब्द करते हुये देवताओंने पुष्पोंकी मङ्गलमयी वर्षाकी ॥२॥

विश्वामित्रान्तिकं गत्वा तत्प्रणम्य पदाम्बुजे ।
उवाच स्निग्धया वाचा विदेहो हर्षगद्गदः ॥३॥

श्रीविदेहजी महाराज श्रीविश्वामित्रजीके समीपमें जाकर उनके श्रीचरण-कमलोंको प्रणाम करके हर्षसे गद्गद् हो स्नेहभरी वाणीसे बोले ॥३॥

श्रीजनक उवाच ।

मुनिराज ! कृपादृष्ट्या तवानेनेशकार्मुकं ।
सलीलमधुनोत्थाप्य रामभद्रेण खण्डितः ॥४॥

हे मुनिराज ! आपकी कृपादृष्टिसे ही खेलपूर्वक इस समय श्रीरामभद्रजूने भगवान् शिवजीके धनुषको उठाकर तोड़ा है ॥४॥

कारितः कृतकृत्योऽहं त्वया रामेण सर्वथा ।
अद्य यचोचितं नाथ ! तद्विचार्य्य विधीयताम् ॥५॥

हे नाथ ! आपने श्रीरामभद्रजूके द्वारा मुझे पूर्ण कृतार्थ कर दिया, अब जो उचित हो सो विचार कर कीजिये ॥५॥

भञ्जिते कार्मुके ह्यस्मिन् विवाहो दुहितुर्मम ।
बभूव किल रामेण मत्प्रतिज्ञानुसारतः ॥६॥

हमारी प्रतिज्ञानुसार इस धनुषके टूटते ही श्रीललीजू का विवाह निश्चय ही श्रीरामभद्रजूके साथ हो चुका ॥६॥

तथाऽपि मुनिशार्दूल ! लोकरीतिं प्रपश्यता ।
कर्त्तव्यो विधिनोद्वाहो मया सर्वसुखावहः ॥७॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! तथापि यह विवाह सभीको सुखदाई होनेसे लोक रीतिको देखते हुये मुझे विधि पूर्वक करना ही ठीक है ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति तद्भाषितं श्रुत्वा कौशिको मुनिसत्तमः ।
उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्नृपतेर्मनः ॥८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले—हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके इस वचन को सुनकर मुनियों में परम श्रेष्ठ श्रीविश्वामित्रजी उनके मनको आह्लादित करते हुये यह मधुर वाणी बोले ॥८॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

प्रेष्यन्तां भवता दूता अयोध्यामविलम्बतः ।
समानेतुं नृपं दत्वा पत्रिकां स्वाक्षराङ्किताम् ॥९॥

श्रीदशरथजी महाराज को बुलाने के लिये अपने हस्त कमल की लिखी हुई पत्रिका देकर दूतों को शीघ्र श्रीअयोध्याजी भेज दें ॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

कौशिकेन समाज्ञप्तस्तदेवं मिथिलाधिपः ।
व्यादिदेश समाहूय दूतान् गमनहेतवे ॥१०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले—हे तपोधने ! श्रीविश्वामित्रजी महाराजकी इस आज्ञाको पाकर श्रीमिथिलेशजी महाराज ने दूतों को बुलाकर श्रीअयोध्याजी जाने का आदेश दिया ॥१०॥

ते प्रहृष्टेन मनसा दूताः कार्यविशारदाः ।
आदाय पत्रिकामीयुरयोध्यां नृपमानताः ॥११॥

वे कार्य कुशल दूत बड़े ही प्रसन्न मनसे श्रीमिथिलेशजी महाराजको प्रणाम करके पत्रिका लेकर श्रीअयोध्याजी गये ॥११॥

अथ श्रीमान् समाहूय विदेहः सर्वमन्त्रिणः ।
अलङ्कारयितुं तेभ्यो निदेशं दत्तवान् पुरीम् ॥१२॥

तत्पश्चात् श्रीमान् विदेहजी महाराजने अपने सभी मन्त्रियोंको बुलाकर, उन्हें पुरीको सजाने के लिये आज्ञा प्रदानकी ॥१२॥

अमात्यैस्तैर्नृपादिष्टैर्महोत्साहसमन्वितैः ।
अलङ्कर्तुं पुरीं कृत्स्नां शिल्पिनः संप्रचोदिताः ॥१३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञा पाकर महान् उत्साहसे युक्त उन मन्त्रियोंने नगरकी सजावट के लिये शिल्पकारोंको प्रेरित किया ॥१३॥

तेषां ये परमाचार्या विश्रुता जगतीतले ।
निर्मातुं ते समाज्ञप्ता विवाहोत्सवमण्डपम् ॥१४॥

तथा जो पृथ्वीतल पर विशेष विख्यात थे; उन शिल्पकारोंके परमाचार्योंको विवाह-मण्डप बनानेकी आज्ञा प्रदानकी ॥१४॥

ब्रह्माणं ते नमस्कृत्य विधातारं जगद्गुरुम् ।
मण्डपं रचयामासुर्दर्शयन्तः स्वकौशलम् ॥१५॥

उन परमाचार्योंने सम्पूर्ण सृष्टिको बनाने वाले, जगद्गुरु श्रीब्रह्माजीको प्रणाम करके, अपनी चतुराईको दिखाते हुये विवाह मण्डपकी रचनाकी ॥१५॥

अथ दूताः समासाद्य कोशलेन्द्रपुरीं शुभाम् ।
द्वाःस्थैः स्वागमनं राज्ञे मिथिलाया न्यवेदयन् ॥१६॥

उधर दूतोंने श्रीचक्रवर्तीजीकी पुरी श्रीअयोध्याजीमें पहुँचकर दशरथजीमहाराजको द्वारपालोंके द्वारा श्रीमिथिलाजीसे अपने-आनेका समाचार निवेदन कराया ॥१६॥

राजा दशरथस्तांस्तु समाहूय च सादरम् ।
प्रीत्या कुशलमप्राक्षीत्प्रणतान्भक्तिसंयुतान् ॥१७॥

श्रीदशरथजी महाराजने श्रीमिथिलेशजी महाराजके उन श्रद्धालु दूतोंको बुला कर उनके प्रणाम कर चुकने पर प्रेमपूर्वक आदर समन्वित उनसे कुशल समाचार पूछा—॥१७॥

निवेद्य कुशलं तस्मै पत्रिकां मिथिलेशितुः ।
प्रदाय नरदेवाय स्थिताः संयतपाणयः ॥१८॥

उन दूतोंने श्रीदशरथजी महाराजसे कुशल समाचार निवेदन करके श्रीमिथिलेशजी महाराजकी चिट्ठी उन्हें देकर हाथ जोड़ कर खड़े होगये ॥१८॥

तामसौ मिथिलेन्द्रस्य करकञ्जाक्षराङ्किताम् ।
पत्रिकां वाचयामास सवत्स्नेहाश्रुलोचनः ॥१६॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके करकमलोंसे लिखी हुई उस पत्रिकाको श्रीदशरथजी महाराजने अपने नेत्रोंसे स्नेहमय अश्रुओंको गिराते हुये पढ़ा ॥१६॥

पुनस्तानुरसाऽऽलिङ्गय दूतान्वचनमब्रवीत् ।
कथं श्रीमिथिलेन्द्रेण रामो ज्ञातस्तु सानुजः ॥२०॥

पुनः हृदयसे लगाकर उन दूतोंसे बोले:-हे भइया! श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपने छोटे भइया लखनलालके सहित श्रीरामभद्रजीको पहिचाना किस प्रकार ? ॥२०॥

दूता ऊचु ।

अयं भानुरिति ज्ञानप्राप्तये किं नराधिप !
दीपापेक्षा भवेत्पुंसां कदाचिदपि मानद ! ॥२१॥

दूत बोले:-हे सम्मान प्रदायक महाराज! ये सूर्य देव हैं" इस जानकारीके लिये क्या मनुष्यों-को कभी भी दीपककी आवश्यकता होती है ? अर्थात् नहीं, उनका तेज ही उनका परिचय करा देता है ॥२१।

एवं हि सानुजो रामस्तेजसा स्वेन भूभृता ।
परिज्ञातो महाराज ! ह्यविचिन्त्यपराक्रमः ॥२२॥

इसी प्रकार राजा श्रीजनकजीने जिनके पराक्रमको कोई विचार भी नहीं सकता, छोटे-भाईके सहित उन श्रीरामभद्रजीको उनके तेजसे ही पहिचाना है॥२२॥

सर्वासुधारिणां शक्तिस्वरूपं शाङ्करं धनुः ।
यत्स्पर्शात्सर्वभूपाला बभूवुर्विगतस्मयाः ॥२३॥

सभी प्राणियोंकी शक्तिस्वरूप भगवान् शिवजीका धनुष था, जिसके स्पर्शमात्रसे ही सभी राजाओंका अभिमान चूर हो गया ॥२३॥

उद्धृतो येन कैलाशः पुरा व कन्दुकोपमः ।
सोऽपि दृष्ट्वा दशग्रीवो यत्सलज्जो ययौ पुरीम् ॥२४॥

जिसने, पहिले कैलाशको गेंदके समान उठा लिया था, वह रावण भी जिस धनुषको देखकर लज्जित हो पुरी (लङ्का) को चला गया ॥२४॥

तदेव शाम्भवं चापं सभायां रघुनन्दनः ।
कौशिकेन समादिष्टो बभञ्जोत्थाप्य लीलया ॥२५॥

उसी शिव धनुषको श्रीविश्वामित्रजीमहाराजकी आज्ञासे श्रीरघुनन्दन प्यारेजूने खेल पूर्वक उठाकर सभाके बीचमें तोड़ा है ॥२५॥

महता कर्मणाऽनेन रामो राजीवलोचनः ।
विराजते महाराज ! नृपाणां सदसि स्थितः ॥२६॥

इस महान् कर्मके द्वारा कमलदललोचन श्रीरामभद्रजू राजसभामें सर्वोत्कृष्टताको प्राप्त हो रहे हैं ॥२६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

दूतागमनमाकर्ण्य भरतः खेलतत्परः ।
सानुजस्तूर्णमागच्छत्तदानीमन्तिके पितुः ॥२७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे तपोधने ! उसी समय खेलते हुये श्रीभरतलालजी दूतोंके आनेका समाचार सुनकर भइया श्रीशत्रुघ्नलालजीके समेत, तुरत अपने पिताजीके पास आगये ॥२७॥

पठित्वा सोऽपि तां नत्वा पत्रिकां प्रेमनिर्भरः ।
भूयो भूयो हि पप्रच्छ वृत्तान्तं पूर्वजन्मनः ॥२८॥

और उस पत्रिकाको प्रणाम पूर्वक पढ़कर प्रेम निर्भर हो, बारम्बार वे अपने बड़े भइया श्रीराघवेन्द्रकुमार सरकारका समाचार पूछने लगे ॥२८॥

दूता बहुविधं प्राहुस्तेऽपि प्रीतिवशंगताः ।
चरितं रामचन्द्रस्य पुण्यं श्रवणमङ्गलम् ॥२९॥

उन दूतों ने भी प्रेम वश हो श्रीरामभद्रजूके श्रवण-मात्रसे मङ्गलकारक विविध प्रकारके पवित्र चरितों को कह सुनाया ॥२९॥

वशिष्ठाय ततस्तेन पत्रिका चक्रवर्तिना ।
दर्शिता मिथिलेन्द्रस्य प्रणिपत्य सुखावहा ॥३०॥

तत्पश्चात् श्रीचक्रवर्तीजी महाराज ने श्रीवशिष्ठजी महाराजको प्रणाम करके श्रीमिथिलेशजी महाराजकी उस सुख प्रदायिनी चिट्ठी को दिखाया ॥३०॥

तामुदीक्ष्य महात्मा वशिष्ठः कोशलेश्वरम् ।
अब्रवीच्छ्लक्ष्णया वाचा रामस्मरणविह्वलम् ॥३१॥

उस पत्रिका को देखकर मनमे अत्यन्त हर्षित हो श्रीवशिष्ठजी महाराज, श्रीरामभद्रजूके स्मरण से विह्वल हुये, अयोध्यानाथ श्रीदशरथजी महाराजके प्रति अत्यन्त कोमल वाणी बोले:-॥३१॥

श्रीवशिष्ठ उवाच ।

अतृष्णं सरितो यान्ति यथा सर्वा हि सागरम् ।
आयान्ति धर्मशीलं वै तथैवाशेषसम्पदः ॥३२॥

हे राजन् ! धर्मात्मा पुरुषोंके पास सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ इस प्रकार आती रहती हैं, जैसे कामना हीन समुद्रके पास सभी नदियाँ ॥३२॥

कश्च लोकत्रये राजन् ! पुण्यपुञ्जो भवादृशः ।
यस्य पुत्रत्वमापन्नो रामः सर्वेश्वरः प्रभुः ॥३३॥

हे राजन् ! सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामभद्रजी जिनके पुत्र हैं, भला उन आपके समान तीनों लोकों में पुण्य का राशि कौन है ? अर्थात कोई नहीं ॥३३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

मिथिलागमनार्थाय सुप्रबन्धो विधीयताम् ।
निगद्येति महातेजा वशिष्ठः स्वाश्रमं ययौ ॥३४॥

अत एव श्रीमिथिला चलनेके लिये अब आप सुन्दर प्रबन्ध कीजिये । श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले हे कात्यायनी ! महातेजस्वी श्रीवशिष्ठजी महाराज श्रीदशरथजी महाराज से इस प्रकार कह कर अपने आश्रम को चले गये ॥३४॥

प्रविश्यान्तः पुरं राजा दर्शयामास पत्रिकाम् ।
राज्ञीभ्यः खिन्नचित्ताभ्यो विरहोच्छेदकारिकाम् ॥३५॥

पुनः श्रीचक्रवर्तीजी महाराज अपने अन्तः पुरमें जाकर खिन्न चित्त हुई अपनी रानियोंको उनको विरह काटने वाली उस चिट्ठीको दिखाया ॥३५॥

तां विलोक्य मुदं प्राप्ता अनिर्वाच्यां हि मातरः ।
दानं दत्वा च विप्रेभ्यः प्रचक्रुर्मङ्गलोत्सवम् ॥३६॥

उस चिट्ठीको देखकर सभी माताओंने अवर्णनीय सुखको प्राप्त किया, पुनः ब्राह्मणोंको दान देकर वे मङ्गलोत्सव मनाने लगीं ॥३६॥

अयोध्या सर्वतोऽमात्यैस्तदाऽलङ्कारिता भृशम् ।
सहट्टमार्गपुलिना सदेवालयवाटिका ॥३७॥

मन्त्रियों ने देवालय, वाटिका, बाजार, मार्ग, नदी, सर (तालाब) के किनारोंके समेत श्री अयोध्याजीकी सब ओरसे पूर्ण सजावट की ॥३७॥

सीतारामात्मकं गानं माङ्गलिकं वराङ्गनाः ।
गायन्त्यः पर्यदृश्यन्त यत्र तत्र मृगीदृशः ॥३८॥

जहाँ तहाँ सर्वत्र मृगलोचना सुन्दरी स्त्रियाँ श्रीसीताराम सम्बन्धी मङ्गलगान गाती हुई दिखाई देने लगीं ॥३८॥

वेदपाठध्वनिश्चापि कचिच्चित्तापहारकः ।
विवाहवार्ता रामस्य जनैः सर्वत्र श्रूयते ॥३९॥

कहीं कहीं चित्ताकर्षक वेद पाठकी ध्वनि, तो कहीं श्रीरामविवाहकी चर्चा लोगोंको सर्वत्र सुनाई पड़ने लगीं ॥३९॥

विवाहयात्रां रामस्य भरतः संप्रचोदितः ।
नरदेवेन सोत्साहो रचयामास मन्त्रिभिः ॥४०॥

श्रीदशरथजीमहाराजकी प्रेरणासे मन्त्रियोंके सहित श्रीभरतलालजी उत्साह-पूर्वक श्रीरामभद्रजूकी बरातको सजाने लगे ॥४०॥

शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते वशिष्ठो भगवान् स्वयम् ।
विवाहयात्रया भूपं प्रस्थातुं मुदितोऽदिशत् ॥४१॥

शुभ मुहूर्त आने पर श्रीदशरथजीमहाराजको बरातके समेत प्रस्थान करनेके लिये स्वयं भगवान् श्रीवशिष्ठजीने प्रसन्न होकर आज्ञा प्रदान की ॥४१॥

तदा स्वर्णमये रम्ये नानारत्नचमत्कृते ।
रथे वशिष्ठमुर्वीशः सादरं संन्यवेशयत् ॥४२॥

तब श्रीदशरथजीमहाराजने अनेक प्रकारके रत्नोंसे चमकते हुये सुवर्णके मनोहर रथपर, आदर पूर्वक श्रीवशिष्ठजीमहाराजको विराजमान किया ॥४२

गानं माङ्गलिकं स्त्रीणां गायन्तीनां मनोहरम् ।
आरुरोह रथं राजा हृदि संस्मृत्य शङ्करम् ॥४३॥

स्त्रियोंके द्वारा मङ्गलगान होतेसमय श्रीदशरथजी महाज अपने हृदयमें श्रीभोलेनाथजीका सुमिरण करके रथ पर विराजमान हुये ॥४३॥

गर्जितैः कुञ्जराणां च सह घण्टामहास्वनैः ।
रथानां घण्टिकाशब्देर्हेषाभिश्चैव वाजिनाम् ॥४४॥
अनेकविधवाद्यानां जयघोषस्य निःस्वनैः ।
पूरितं सकलं भद्रे ! तदानीं भुवनत्रयम् ॥४५॥

हे कल्याणी ! हाथियोंकी गर्जनके समेत घण्टोंके, रथोंकी घण्टियों के, घोड़ोंके हिनहिनानेके तथा अनेक विध बाजाओंके, व जय घोषके महान शब्दोंके द्वारा तीनो लोक परिपूर्ण हो गये ४४ ४५

अवर्षन् देवपुष्पाणि त्रिदशा मोदनिर्भराः ।
प्रस्थीयमाने भूपेन्द्रे कुमाराभ्यां रथंस्थिते ॥४६॥

श्रीभरत, शत्रुघ्न दोनो राजकुमारोंके सहित रथमें बैठकर श्रीदशरथजी महाराजके प्रस्थान करते समय आनन्द निर्भर हो, देवताओंने कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षाकी ॥४६॥

श्यामकर्णहयारूढाः कुमारा रघुवंशजाः ।
गच्छन्तः परिशोभन्ते चञ्चलाश्चित्तचौरकाः ॥४७॥

श्यामकर्ण जातिके घोड़ों पर चढ़कर चञ्चल, चित्तचोर, रघुवंशी राजकुमार चलते हुये अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुये ॥४७॥

सज्जितया प्रवेशया च शोभमानान् महागजान् ।
सुखमारुह्य गच्छन्तः सुशोभन्ते सहस्रशः ॥४८॥

तथा झूलोंसे सजाये हुये बड़े बड़े हाथियों पर बैठकर चलते हुये, सहस्रों रघुवंशी सुशोभित हुये ॥४८॥

केचिद्धयरथारूढाः केचिद्गजरथे स्थिताः ।
जग्मुश्च तीव्रवेगेन सर्वाभरणभूषिताः ॥४६॥

उन बरातियोंमें कुछ सम्पूर्ण शृङ्गारको धारण किये हुये घोड़े वाले और कुछ हाथी वाले रथों-में बैठकर शीघ्र गतिसे चले ॥४९॥

मागधा वन्दिनः सूता दासाश्चैव पुरौकसः ।
यथाधिकारमारूढाः प्रस्थिता मिथिलापुरीम् ॥५०॥

मागध, बन्दी, सूत, (भाट आदिक वंश प्रशंसक जातियाँ) दास तथा पुरवासी जन अपने अपने अधिकारानुसार सवारियों पर बैठ कर श्रीमिथिला पुरी को चले ॥५०॥

उच्चैर्ध्वजपताकाभिः स्यन्दनो भास्करप्रभः ।
नाना मणिगणाकीर्णः खे नृपस्येन्दुवद्बभौ ॥५१॥

ऊँची ऊँची ध्वजा पताकाओंसे युक्त सूर्यके समान प्रकाशमान, अनेक प्रकारकी मणियोंसे परिपूर्ण श्रीदशरथजी महाराजका रथ आकाशमें चन्द्रमा माके समान सुशोभित हुआ अर्थात् जैसे चन्द्रमासे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार उनके रथसे सारी बारात सुशोभित हुई ॥५१॥

दर्शनीयतमा साऽऽसीद्विबुधानामपि प्रिये ! ।
विवाहयात्रा रामस्य व्रजन्ती रम्यवर्त्मना ॥५२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे प्रिये ! कहाँ तक कहें ? मनोहर मार्गसे जाती हुई श्रीरामभद्रजूकी वह बरात देवताओं के लिये भी अत्यन्त दर्शन करने योग्य हुई ॥५२॥

शकटोष्ट्रवृषेन्द्राश्वैः सहस्रैर्मन्त्रिणोदिताः ।
पाथेयं विविधं पूर्णमनयन् राजकिङ्कराः ॥५३॥

राजसेवक मन्त्रियोंकी आज्ञानुसार हजारों बैल गाड़ी, ऊँट, बैल, तथा घोड़ोंके द्वारा अनेक प्रकारकी मार्गोचित आवश्यक सामग्रिया को ले कर चले ॥५३॥

आयान्तीं तामथाकर्ण्य विदेहो नृपसत्तमः ।
पन्थानं शिल्पिनां लक्षसहस्रैः समशोधयत् ॥५४॥

उस बरातको आती हुई सुनकर राजाओंमें परमश्रेष्ठ श्रीविदेहजी महाराज ने दश करोड़ शिल्पकारियोंके द्वारा सम्य क् प्रकारसे मार्गको शुद्ध (ठीक) कराया ॥५४॥

निम्नगास्वपि सर्वासु बद्धाः सुदृढसेतवः ।
सरयूकमलयोर्मध्यप्रदेशस्थासु शोभनाः ॥५५॥

श्रीकमलाजीसे लेकर श्रीसरयूजीके मध्य वाले देशोंमें स्थित सभी नदियों पर सुन्दर तथा अत्यन्त पक्के पुलों को बँधवाया ॥५५॥

कृतानि पथि रम्याणि विश्रामार्थं शतानि च ।
स्थानानि परिपूर्णानि सर्वावश्यकवस्तुभिः ॥५६॥

तथा मार्गमें विश्राम करनेके लिये सम्पूर्ण आवश्यक वस्तुओं से परिपूर्ण कई सौ मनोहर स्थानोंको बनाया ॥५६॥

जलशालासहस्राणि खाद्यवस्तुयुतानि च ।
कृतानि शिल्पिभिश्चैव निदेशान्मिथिलेशितुः ॥५७॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञासे शिल्पकारियोंने खाद्य वस्तुओंसे युक्त कई सहस्र जलशालायें (प्याऊ) बनायीं ॥५७॥

अतः सुखेन मिथिलां नृपेन्द्रः पञ्चमेऽहनि ।
प्रविवेश महारम्यां जनकेनाभिपालिताम् ॥५८॥

अत एव सुखपूर्वक श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने पाँचवें दिन श्रीजनकजी महाराजसे पालित अत्यन्त मनोहारिणी श्रीमिथिलाजीमें प्रवेश किया ॥५८॥

प्राकारैः सप्तभिर्युक्तां नानारत्नचमत्कृतैः ।
चतुर्विंशतिसंख्याकैरुद्यानैश्च सुवेष्टिताम् ॥५९॥

जो श्रीमिथिला पुरी अनेक रत्नोंसे अलङ्कृत सात आवरणों (घेरों) से युक्त, चौबिस मनोहर उपवनोंसे घिरी हुई है ॥५९॥

रक्षकैः शतसाहस्रै रचिताश्च समन्ततः ।
दत्तचित्तैर्महाशूरैश्चतुर्भिर्निः सरैर्युताम् ॥६०॥

करोड़ों पूर्ण सावधान बड़े-बड़े योद्धा रक्षक जिसकी चारो ओरसे सुरक्षा करते हैं, जो चार द्वारोंसे युक्त है ॥६०॥

त्रिखण्डोच्चगृहश्रेण्या ह्याद्यया च तथान्त्यया ।
आवृत्या मनुखण्डोच्चगृहपङ्क्त्या विराजिताम् ॥६१॥

जो प्रथम आवरणमें तीनखण्ड ऊँचे महलोंकी पंक्तिसे और अन्तिमके (सातवें) आवरणके चौदह खण्ड ऊँचे महलोंकी पङ्क्तिसे सुशोभित ॥६१॥

सरित्कूपतडागैश्च वापिकाभिः सरोवरैः ।
आरामैर्वाटिकाभिश्च विहारोद्यानसङ्कुलाम् ॥६२॥

नदी, कुआँ, तालाब, वापी (बावड़ी), कुण्ड, बगीचा, पुष्पवाटिका (फुलवाड़ी) तथा विहार-वनोंसे युक्त है ॥६२॥

अत्यन्तमृदुलक्षोणीं पताकाध्वजमण्डिताम् ।
कलशैर्दीप्तसौवर्णैर्योजनप्रासदर्शनाम् ॥६३॥

जिसकी भूमि अत्यन्त कोमल है प्रकाशमान सुवर्ण (सोने) के कलशोंसे जिसका दर्शन एक योजनसे ही प्राप्त होने लगता है तथा जो ध्वज-पताकाओंकी सजावटसे युक्त है ॥६३॥

अनेकविधवाद्यानां कलघोषैः समाकुलाम् ।
तामुदीक्ष्य पुरीं राजा रामस्मरणविह्वलः ॥६४॥

अनेक प्रकारके बाजाओंके मनोहर शब्दोंसे परिपूर्ण उस श्रीमिथिलापुरीका दर्शन करके श्रीदशरथजीमहाराज श्रीरामभद्रजूका स्मरण करके विह्वल हो गये ॥६४॥

तदानीं मिथिलेन्द्रेण प्रेषिता भ्रातरो मुदा ।
लक्ष्मीनिध्यादिभिः पुत्रैः शतानन्देन संयुताः ॥६५॥
स्वागतार्थं नरेन्द्रस्य रथवाजिगजस्थिताः ।
विप्रवृन्दैरमात्यैश्च पुरवासिभिरन्विताः ॥६६॥

उसी समय श्रीमिथिलेशजीमहाराजने हर्ष पूर्वक ब्राह्मणवृन्द, मन्त्रि, पुरवासियोंके सहित श्रीलक्ष्मीनिधि आदि अपने राजकुमारोंके समेत श्रीशतानन्दजीमहाराजके साथ हाथी, घोड़ों और रथों पर विराजमान अपने श्रीकुशध्वजजी आदि भाइयोंको श्रीदशरथजीमहाराजका स्वागत करनेके लिये भेजा ॥६५॥६६॥

सुदुन्दुभ्यादिवाद्यानि वाद्यविद्याविपश्चिताम् ।
वादयतां मानोज्ञानि द्रुतं ते तमुपस्थिताः ॥६७॥

वाद्य-विद्याके पूर्ण ज्ञाताओंके मनोहर दुन्दुभी आदि सुन्दरबाजोंके बजाते हुये वे शीघ्र ही श्रीदशरथजीमहाराजके समीपमें जा पहुँचे ॥६७॥

मिमिलुश्च मिथः सर्वे परमानन्दसंप्लुताः ।
जयेति कुर्वतां घोषं वन्दिनां च पुरौकसाम् ॥६८॥

पुनः पुरवासी तथा वन्दियों (भाटों) के जयकारका घोष करते समय, महान् आनन्दमें डूब हुये, वे परस्पर एक दूसरेसे मिलने लगे ॥६८॥

प्रणम्यान् प्रणतिं कृत्वा वयस्यानुपगूह्य च ।
प्रेम्णा विधाय संहृष्टा आदरं ते लघीयसम् ॥६९॥

सम अवस्था वालों का आलिङ्गन तथा छोटों का स्नेह पूर्वक आदर करके ॥६९॥

शुभोपायनपात्राणि सहस्राणां शतानि च ।
अनेकविधिवस्तूनां नृपेन्द्राय समार्पयन् ॥७०॥

अनेक प्रकारकी वस्तुओंके कई लाख पात्र श्रीदशरथजी महाराजको अर्पण किये ॥७०॥

फलानां रसपूर्णानां विविधानां पृथक्पृथक् ।
दध्नां च चिपिटान्नानां भारान्वस्त्रसमावृतान् ॥७१॥
राजभृत्यैः समानीतान् स्वागतार्थं मनोहरैः ।
माङ्गल्यद्रव्यसंयुक्तान्नृपः प्रेक्ष्य प्रहर्षितः ॥७२॥

स्वागतार्थ मनोहर राजसेवकों द्वारा लाये हुये वस्त्रोंसे ढके अनेक प्रकारके रस पूर्ण फल, दही, चिउड़ा आदिके अलग अलग भारोंको मङ्गलवस्तुओंसे युक्त देखकर, श्रीदशरथजी महाराज अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुये ॥७१॥७२॥

सादरं तैर्द्रुतं नीतो ह्यतीत्यावरणानि षट् ।
राजद्वारं विदेहेन विधिना तत्र पूजितः ॥७३॥

पुनः उन स्वागतकारी श्रीविदेहमहाराजके भाइयोंने उन्हें आदर पूर्वक नगरके छः आवरणोंको पार करके श्रीमिथिलेशजीमहाराजके द्वार पर पहुँचाया, वहाँ पर श्रीविदेहजीमहाराजने उनका विधि-पूर्वक पूजन किया ॥७३॥

प्रविवेश प्रहृष्टात्मा जनावासं नृपस्तदा ।
कोशलेन्द्रो वशिष्ठेन सार्कमुद्वाहपर्वणि ॥७४॥

तत्पश्चात् उस विवाह पर्व पर श्रीदशरथजीमहाराज अत्यन्त हर्षित हृदयसे श्रीवशिष्ठजीके सहित बरातके साथ-साथ जनवासेमें पधारे ॥७४॥

वृष्टिं पुष्पमयीं चक्रुर्निर्जरा मोदनिर्भराः ।
प्रविशन्तं महाराजं जनावासं विलोक्य च ॥७५॥

उस जनवासमें श्रीचक्रवर्तीजीमहाराजको प्रवेश करते हुये देखकर आनन्द मग्न हो देवताओंने पुष्पोंकी वर्षाकी ॥७५॥

पञ्चमावरणं तत्तु जनावासो बभूव ह ।
पुर्याः श्रीमिथिलेन्द्रस्य तप्तकार्तस्वरप्रभम् ॥७६॥

तपाये सुवर्णके समान प्रकाशसे युक्त श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पुरी का वह पाँचवाँ आवरण ही जन वासा हुआ ॥७६॥

पितुरागमनं श्रुत्वा रामो राजीवलोचनः ।
दर्शनातुरचित्तोऽपि नैच्छद्वक्तुं महामुनिम् ॥७७॥

कमलके समान विशाल व मनोहर नयन श्रीरामभद्रजू अपने पिताजी का आगमन सुनकर दर्शनों के लिये चित्तमें व्याकुल होने पर भी उन्होंने, उस विषयमें महामुनि श्रीविश्वामित्रजीसे कुछ कहनेकी इच्छा न की ॥७७॥

ततो राममुवाचेदं विश्वामित्रः स्वयं वचः ।
वत्स ! रामेति सम्बोध्य तच्छीलेन प्रहर्षितः ॥७८॥

वे अत्यन्त हर्षित हो, हे वत्स ! हे राम ! इस प्रकार उन्हें सम्बोधित करके उनसे स्वयं ही यह बोले ॥७८॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

सहायातोऽनुजाभ्यां ते पिता वै दशरथो वशी ।
तं त्वद्वियोगसंतप्तं नचिराद्द्रष्टुमर्हसि ॥७९॥

हे वत्स ! आपके पिता श्रीदशरथजी आपके दोनो छोटे भाई श्रीभरत शत्रुघ्नलालजीके समेत आये हैं, आपके वियोगसे अत्यन्त सतप्त उन अपने पिताजीका आप शीघ्र दर्शन कीजिये ७९

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्त्वोत्थिते तस्मिन् कौशिके हि तपोधने ।
सुताभ्यां गुरुणोर्वीशो वशिष्ठेन समन्वितः ॥८०॥
मन्त्रिभिर्विप्रवृन्दैश्च युक्तो दशरथो नृपः ।
रामदर्शनलोलाक्षः स्यन्दनेन समाययौ ॥८१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे यशोधने ! इस प्रकार कहकर महामुनि श्रीविश्वामित्रजीमहाराजके उठते ही दोनों पुत्र श्रीभरतशत्रुघ्नलालजी तथा गुरुदेव श्रीवशिष्ठजीमहाराजके सहित श्रीरामभद्रजूके दर्शनार्थ चञ्चल नेत्र हो श्रीदशरथजीमहाराज अपने मन्त्रियों तथा ब्राह्मणोंके साथ रथके द्वारा वहाँ जा पहुँचे ॥८०॥८१॥

दण्डवत्पतितं भूमौ तं निरीक्ष्य नरेश्वरम् ।
विश्वामित्रो महातेजा द्रुतमुत्थाप्य सस्वजे ॥८२॥

उन श्रीदशरथजी महाराजको भूमि पर दण्डके समान पड़े हुये अर्थात् साष्टाङ्ग प्रणाम करते-हुये देखकर, महातेजस्वी श्रीविश्वामित्रजी महाराजने उनको उठाकर तुरत अपने हृदयसे लगाया ॥८२॥

अभिवाद्य वशिष्ठं स कुलाचार्यं महामुनिम् ।
रामः कमलपत्राक्षो लक्ष्मणेनातिहर्षितः ॥८३॥

कमलदललोचन वे श्रीरामभद्रजू श्रीलखनलालजीके समेत अपने कुल गुरु महामुनि श्रीवशिष्ठजीको प्रणाम करके, अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥८३॥

प्रणमन्तं तमिन्द्वास्यं सानुजं कोशलेश्वरः ।
समालोक्योरसाऽऽलिङ्ग्य परमानन्दमाप्तवान् ॥८४॥

पुनः श्रीलखनलालजीके समेत चन्द्रमाके समान परमाह्लादकारी मुखवाले श्रीरामभद्रजीको प्रणाम करते हुये देखकर, श्रीदशरथजी महाराजने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त किया ॥८४॥

ततो भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या परमया युतौ ।
रामस्य लोकरामस्य पादपद्मे ववन्दतुः॥८५॥

तत्पश्चात् श्रीभरतलालजी तथा श्रीशत्रुघ्नलालजीने समस्त लोकोंके मन को हरने वाले श्रीराम भद्रजूके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम किया ॥८५॥

उभावालिङ्ग्य तौ तेन श्रीरामेण कृतार्थितौ ।
ततो ननाम भरतं लक्ष्मणः परया मुदा ॥८६॥
तं महताऽनुरागेण भरतः कैकयीसुतः ।
गाढमालिङ्गयामास तस्य भाग्यं प्रशंसयन् ॥८७॥

उन दोनों भाइयोंको श्रीरामभद्र प्यारेजूने अपने हृदयसे लगाकर कृतार्थ करदिया, तदन्तर श्रीलखनलालजीने बड़े हर्ष पूर्वक श्रीभरतलालजीको प्रणाम किया ॥८६॥ उन्हें कैकयी नन्दन श्रीभरतलालजीने बड़े ही प्रेम पूर्वक उनके सौभाग्यकी सराहना करते हुये अपने हृदयसे लगाया ८७

कृतप्रणामं सौमित्रिं सौमित्रिः परिषस्वजे ।
ब्राह्मणा वन्दिता भक्त्या.रामेणानन्दनिर्भराः ॥८८॥

पुनः श्रीशत्रुघ्नलालजीके प्रणाम करने पर श्रीलखनलालजीने उनका आलिङ्गन किया, इधर ब्राह्मण वृन्द श्रीरामभद्रजूके श्रद्धा-समन्वित प्रणाम करने पर आनन्द निर्भर हो गये ॥८८।

मन्त्रिणः सानुजं रामं वीक्ष्य तेन नमस्कृताः ।
भूयो भूयः समालिङ्ग्य समीयुः सुखमद्भुतम् ॥८६॥

श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके उनसे नमस्कृत हो, बार बार उन्हें हृदयसे लगाकर विलक्षण सुखको प्राप्त किया ॥८६॥

इत्थं पङ्क्तिरथः समाजसहितः श्रीकौशिकेनान्वितो
रामं विश्वमनोहरं तदनुजं कामं हृदाऽऽलिङ्ग्य च ।
ब्रह्मानन्दयुतः प्रसन्नहृदयः पुत्रैश्चतुर्भिः समं ।
प्रागच्छज्जनवासमुख्यनिलयं द्वारेण पूर्वेण सः ॥९॥

इति षण्णवतितमोऽध्यायः ॥६६॥

इस प्रकार श्रीदशरथजीमहाराज अपने समाजके सहित विश्वमनोहर श्रीरामभद्रजीको तथा उनके छोटे भइया श्रीलखनलालजीको इच्छानुसार हृदयसे लगाकर, पूर्ण भगवदानन्दको प्राप्त हो प्रसन्न हृदय अपने चारो राजकुमारोंके सहित, पूर्व द्वारसे श्रीविश्वामित्रजीके साथ साथ मुख्य जनवास भवनमें गये ॥६०॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

श्रीरामभद्रजूका विवाह-मण्डप प्रस्थानः--

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रीकोशलेन्द्रं जनवासगेहे निवेश्य ते सर्वसुखोपपन्ने ।
सुखं निवृत्ता जनकानुजास्तं नतास्ततः स्वागतकारिणश्च ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे कात्यायनि ! श्रीजनकजी महाराजके वे भइया, श्रीदशरथजी महाराज को सब सुखसे युक्त उस जनवास भवनमें विराजमान करके, स्वागतकारियोंके सहित उनको प्रणाम कर वहाँ से सुखपूर्वक वापस हुये ॥१॥

सरयस्तदानीं नवसप्तपूर्णा विध्वाननाः पद्मपलाशनेत्राः।
सहस्रशो मङ्गलगानपङ्क्तिं गायन्त्य आपुर्जनवासगेहम् ॥२॥

तब सहस्रों कमल दललोचनाएँ, चन्द्रमुखी सखियाँ सोलहो श्रृङ्गारको धारण करके, मङ्गल गान गाती हुई जनवासेमें गयीं ॥२॥

रामस्य भाले तिलकं मनोज्ञं गोरोचनाद्यैः शुभदैर्विधाय।
लब्ध्वा पुरस्कारममूश्च राज्ञः समागता मैथिलराजवेश्म ॥३॥

और श्रीरामभद्रजूके मस्तक पर मङ्गलकारी गोरोचन आदि (द्रव्यों) से मनोहर तिलक करके श्रीचक्रवर्तीजीमहाराजसे पुरस्कार ले, वे श्रीमिथिलेशजीमहाराजके भवनमें गयीं ॥३॥

श्रीपुरजना ऊचुः।

नार्यो नरास्तर्हि निबद्धयूथा ऊचुर्मिथः सादरमेतदेव।
शोभैकसिन्धू मिथिलेशपुत्री रामो दशस्यन्दननन्दनश्च ॥४॥

तब स्त्री तथा पुरुष अपना अपना झुण्ड बना कर परस्पर यह आदर पूर्वक कहने लगे- श्रीमिथिलेशराजदुलारी तथा श्रीदशरथनन्दन श्रीरामजी ये दोनों ही शोभाके सागर हैं ॥४॥

श्रीकोशलेशो मिथिलेश्वरश्च लोकत्रये सत्कृतिनां वरिष्ठौ।
वयं सुधन्या अपि पुण्यपुञ्जा अभूम लोके मिथिलौकसश्च ॥५॥

और श्रीअवधेशजी तथा श्रीमिथिलेशजी ये दोनों, तीनों लोकोंमें सभी पुण्यकर्मियोंमें श्रेष्ठ हैं, तथा हम लोग भी बड़े सौभाग्यशाली एवं पुण्यकी राशी हैं, जो लोकमें मिथिलावासी हुये हैं ॥५॥

रामस्य याः श्रीमिथिलेशजायाः शोभामपश्याम मनोऽभिरामाम्।
तयोरथोद्वहसुवेषभूषां स्यामावलोक्याङ्ग भृशं कृतार्थाः ॥६॥

जो श्रीरामजूकी व श्रीजनकराजदुलारीजू दोनोंकी ही मनोहारिणी सुन्दरता दर्शन कर रही हैं और आगे पुनः दोनोंके विवाह वेषकी भाँकीका दर्शन करके महान् कृतार्थ होवेंगी ॥६॥

यथा सबन्धुः सखि ! रामचन्द्रो गुणैश्च रूपेण मनोऽभिरामः।
तथा सबन्धुर्भरतः सकारो निरीक्षितः पङ्क्तिरथस्य रम्यः ॥७॥

हे सखी! जैसा भइया लखनलालजीके सहित श्रीरामभद्रजी अपने गुण व रूपके द्वारा समस्त विश्वके मनोमोहक (चितचोर) हैं उसी प्रकार श्रीदशरथजी महाराजके पास अपने भइया श्रीशत्रुघ्नलालजीके सहित श्रीभरतलाल मनोहर दिखाई देते हैं ॥७॥

रामोपमः श्रीभरतः कुमारो रामः कुमारो भरतोपमश्च ।
श्रीलक्ष्मणस्यारिरिपुश्च तस्य श्रीलक्ष्मणो भ्रात्युपमोपमेयः ॥८॥

श्रीरामजीकी उपमाके योग्य श्रीभरतकुमारजी और श्रीभरतजीकी उपमाके योग्य श्रीरामकुमारजू हैं तथा श्रीलखनलालजीकी उपमाके श्रीशत्रुघ्नलालजी व उनकी उपमाके योग्य श्रीलखनलालजी प्रतीत होते हैं ॥८॥

भवेद्विवाहो ननु पङ्क्तियानप्रियात्मजानामिह चेदमीपाम् ।
गायेम सख्यः शुभमङ्गलानि गीतानि कामं परमप्रहृष्टाः ॥९॥

अरी सखियों! यदि दैवसंयोगसे श्रीदशरथजी महाराजके इन प्यारे चारो राजकुमारोंका विवाह यहीं हो, तो अनुपम हर्षसे युक्त हो हमलोग मङ्गल गीत गानेका सौभाग्य पा सकती हैं ॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

एतत्समाकर्ण्य वचस्तयोक्तमन्या सखी तामिति सजगाद ।
विधास्यतीदं द्रुहिणो ह्यभीष्टं मा चात्र शङ्कां कुरु कंरुहाक्षि ॥१०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे कात्यायनी! उस सखीके इस वचनको सुनकर दूसरी सखी उनसे बोलीः—हे कमल पत्रके समान सुन्दर नेत्रोंवाली सखी! इस विषयमें तू शङ्का न कर हम लोगों के इस मनोरथको ब्रह्माजी अवश्य सफल करेंगे ॥१०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

इत्थं गदन्त्यो मुदिताननास्ता भावानुसारं सुखमद्भुतं ताः ।
जग्मुर्विशालाम्बुजपत्रनेत्राः प्रपूर्णताराधिपतुल्यवक्त्राः ॥११॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे तपोधने! पूर्ण चन्द्रमाके सदृश मुख व कमलदलके समान नेत्रोंवाली वे सखियाँ इस प्रकार कहती हुई प्रसन्न मुख हो, अपने-अपने भावानुसार विलक्षण सुखको प्राप्त हुई ॥११॥

धनुर्मखे पापधियो नृपालाः समागता ये मिथिलां मदान्धाः ।
अपूर्णकामा ह्यवलोक्य रामं स्वं स्वं च देशं विमदाः प्रजग्मुः ॥१२॥

धनुष-यज्ञमें जो अभिमानमें अन्धे, पापबुद्धि राजा श्रीमिथिलाजीमें आये थे, वे श्रीरामभद्रजूको देखते ही अहङ्कार रहित हो, मनोरथकी सफलता न देखकर अपने अपने देशोंको चले गये ॥१२॥

सुखेन तत्रावसतो दिनानि बहून्यतीतानि नृपस्य दृष्ट्वा ।
सोद्वाहयात्रस्य सुतैश्चतुर्भिस्ततस्तु देवर्षिमुवाच वेधाः ॥१३॥

तत्पश्चात् बरातके सहित चारो पुत्रोंके साथ श्रीदशरथमहाराजके वहाँ सुख पूर्वक निवास करते हुये बहुत दिन व्यतीत हुये देखकर श्रीब्रह्माजी देवर्षि श्रीनारदजी महाराजसे बोले—॥१३॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

योगर्क्षलग्नग्रहतिथ्यहानि शुभानि सर्वाणि सुसम्मतानि ।
मार्गे सितेऽद्यैव ततो हि कार्य्यो राज्ञेपुतिथ्यां दुहितुर्विवाहः ॥१४॥

हे तात ! आज अगहन, शुक्ल पञ्चमीमें सभी शुभ, ग्रह, नक्षत्र, लग्न, योग, तिथि व दिन विराज रहे हैं, अत एव श्रीमिथिलेशजी महाराजको चाहिये, कि वे अपनी श्रीललीजूका विवाह आज ही कर देवें ॥१४॥

त्वं सूचयैतन्मिथिलां हि गत्वा विदेहराजाय यशोधनाय ।
मा वत्स ! कार्य्यो भवता विलम्बो भद्रं हि ते तात ! ममाज्ञयेतः ॥१५॥

हे तात ! तुम्हारा कल्याण हो, मेरी आज्ञासे तुम यहाँ से श्रीमिथिलाजीमें जाकर यशोधन (यश रूपी पूर्ण सम्पत्ति वाले) श्रीविदेहजी महाराजसे इस बातकी सूचना करदो । हे वत्स ! विलम्ब न करो ॥१५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इमं समासाद्य तदा विधातुर्निदेशमम्भोरुहपत्रनेत्रः ।
तं नारदो दिव्यगतिः प्रणम्य द्रुतं विदेहाधिपमाजगाम ॥१६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले । हे तपोधने ! श्रीब्रह्माजी की इस आज्ञाको पाकर अलौकिक गमन शक्ति वाले कमल दल-लोचन श्रीनारदजी उन्हें प्रणाम करके श्रीविदेहजी महाराजके पास आये १६

वाक्यं यदुक्तं द्रुहिणेन तस्मै तच्छ्रावयित्वा ससुखं सुरर्षिः ।
अन्तर्हितोऽभूदचिरेण तस्य प्रपश्यतो विद्युदिवाम्बुदे सः ॥१७॥

श्रीब्रह्माजीने जो बात कही थी, उसे सुख पूर्वक सुनाकर उनके देखते हुये वे तुरत मेघमें बिजुलीकी भाँति छिप गये ॥१७॥

ब्रह्मोदितां पुण्यतिथिं निशम्य श्रीनारदास्यान्मिथिलेश्वराय ।
विनिश्चितां प्रागगणैर्नृपस्य द्विजोत्तमाः शातमवाच्यमापुः ॥१८॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणवृन्द राज-ज्योतिषियोंके द्वारा पूर्वसे निश्चितकी हुई ही तिथिको श्रीमिथिलेशजीके प्रति श्रीब्रह्माजीकी कही हुई श्रीनारदजीके मुखसे सुनकर अवर्णनीय सुखको प्राप्त हुये ॥१८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अवर्ण्यसत्कीर्तिरयं विवाहो यस्मिन्विधाता गणको बभूव ।
एतावदुक्त्वा वचनं मिथस्ते श्रीमैथिलेशं वच एतदूचुः ॥१९॥

जिस विवाहमें श्रीब्रह्माजी स्वयं ज्यौतिषी बने हैं, उसकी पवित्र कीर्तिका वर्णन नहीं हो सकता श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये ! आपसमें इस प्रकार कहकर वे उत्तम ब्राह्मगण मिथिवंशियोंके स्वामी श्रीविदेहजीमहाराजसे बोले:-॥१९॥

श्रीब्राह्मणा ऊचुः ।

गोधूलिवेला समुपागतेयं समस्तमाङ्गल्यनिधिस्वरूपा ।
उपस्थितं कार्यमतो विधेयं त्वयाऽधुनाऽस्यां समुदारबुद्धे ! ॥२०॥

हे सम्यक् प्रकार उदार बुद्धि वाले राजन् ! सम्पूर्ण मङ्गलोंकी भण्डार स्वरूपा यह गोधूलिकी वेला निकट है, अतः आप इसमें उपस्थित कार्यको कर लें ॥२०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

आज्ञापितो विप्रवरैर्नरेशो गुरुं समाहूय समर्चिताङ्घ्रिम् ।
तं सुखसन्नाखिलरोमराजिं प्रणम्य बद्धाञ्जलिरेतदाह ॥२१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-(हे तपोधने !) द्विज वरोंकी इस आज्ञाको पाकर श्रीजनकजी महाराज गुरुदेव श्रीशतानन्दजी महाराजको बुलाकर तथा उनके श्रीचरणकमलोंको पूजन-पूर्वक प्रणाम करके रोम-रोम खिले हुये उन श्रीशतानन्दजी महाराजसे हाथ जोड़कर बोले-॥२१॥

श्रीविदेह उवाच ।

शुभे मुहूर्त्ते सति चागते को विलम्बहेतुर्भगवन्निदानीम् ।
आनीयतां नाथ ! सगानवाद्यः समाजयुक्तो विधिनाऽऽशु रामः ॥२२॥

हे भगवन् ! शुभ मुहूर्तके उपस्थित होने पर अब विलम्ब करने का क्या कारण है ? अतः

हे नाथ! अब विधिपूर्वक श्रीरामभद्रजीको जनवासेसे गानवाद्य पूर्वक समाजके सहित शीघ्र मण्डपमें ले आइये ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

इत्यर्थितः सप्रणयं नृपेण तूर्णं समाहूय स मन्त्रिवर्गम्।
द्रव्याण्यशेषाणि शुभानि नीत्वा दध्मौ दरं वै वरमानिनीषुः ॥२३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे कात्यायनि! श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रेम-पूर्वक इसप्रकारकी प्रार्थना करने पर श्रीशतानन्दजी महाराजने मन्त्रियोंको बुलाकर सम्पूर्ण माङ्गलिक द्रव्योंको ले, श्रीवर सरकारको लानेकी इच्छा करके शङ्खको बजाया ॥२३॥

अवादयन्वाद्यकलाप्रवीणा वाद्यानि नानाविधिभिर्मनोज्ञम्।
जगुः कलं माङ्गलिकं सुगानं नवा वधूट्यः पिकपोतकण्ठ्यः ॥२४॥

बाजा बजानेकी कलाको जानने वाले गुणी जन, अनेक प्रकारसे मनोहर बाजाओंको बजाने लगे और कोकिल शिशुके समान सुरीले कण्ठ वाली नव वधुयें मनोहर मङ्गलगान गाने लगीं २४

वेदध्वनिं तर्हि महीसुराणां प्रकुर्वतां भूपतिबान्धवाश्च।
मुदा महीपालसुतैः समेता द्रुतेन जग्मुर्जनवासवेश्म ॥२५॥

तब ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि करते हुये श्रीमिथिलेशजीके श्रीकुशध्वजजी आदि भाइयों तथा श्रीलक्ष्मीनिधि आदिराजकुमारोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र जनवास भवनमें गये ॥२५॥

समाजमालोक्य नृपाधिपस्य तुच्छं निलिम्पाधिपवैभवं ते।
मत्वा मुनिभ्यां सहितं प्रणम्य तं प्रार्थयामासुरिदं सभावम् ॥२६॥

चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराजकी सभाको देखकर उन्होंने श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीविश्वामित्रजी दोनों मुनियोंके समेत उनको प्रणाम करके भावपूर्वक यह प्रार्थनाकी ॥२६॥

श्रीजनकानुजाऊचुः।

उपस्थितोऽयं समयो नरेन्द्र! वैवाहिको माङ्गलिको वरस्य।
इतस्त्वया शीघ्रमतो विधेयं गन्तुं विदेहाधिपराजसद्म ॥२६॥

हे राजन्! वर कुँवरके विवाहका यह मङ्गल मय समय उपस्थित है, अत एव आप यहाँसे श्रीविदेहजी महाराजके राज भवनमें पधारने की शीघ्रता करें ॥२७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इदं च तेषां वचनं निशम्य वाढं समाभाष्य विरिञ्चिसूनोः ।
आज्ञामुपालभ्य सगाधिजस्य सुहृज्जनैः साकमियेष गन्तुम् ॥२८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनि ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंकी उस प्रार्थनाको सुनकर तथा उनसे ऐसा ही होगा कहकर, श्रीविश्वामित्रजीके समेत श्रीवशिष्ठजी महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर सुहृज्जनोंके समेत वे श्रीजनकजी महाराजके राजभवनमें चलनेको इच्छुक हुये ॥२८॥

अतुल्यलावण्यमयाश्वमुख्यं तदा समारुह्य समीरवेगम् ।
लोकाभिरामो वरवेषरामः कन्दर्पशोभां सुतिरश्चकार ॥२९॥

तब समस्त लोकोंके सुखदायक सौन्दर्यसे युक्त, दूलहा वेषधारी प्यारे श्रीरामभद्रजीने अनुपम सुन्दर, वायुवेगके समान वेगसे चलने वाले घोड़े पर विराजमान हो, कामदेव की सुन्दरताको अपमानित (तुच्छ) कर दिया ॥२९॥

भेरीविपञ्चीसुषिरादिकानां शब्दध्वनिः कर्णसुखप्रदोहि ।
व्याप्तिं चकाराखिललोकमध्ये तदद्भुतं चैतदभूत्सुराणाम् ॥३०॥

भेरी (नगाड़ा) विपञ्ची (वीणा) सुषिर (वायुसंयोगसे बजने वाले छिद्र युक्त) बाजाओंकी श्रवणसुखद ध्वनि सभीलोकोंमें व्याप्त हो गयी उस समय देवताओंके लिये यह बहुत ही आश्चर्य हुआ ॥३०॥

नृत्यद्धयारूढमुदारशोभं तं भ्रातृभिः साकमवेक्ष्य रामम् ।
श्रीवागुमेशा मुमुहुस्तदानीं दुर्भागिनां दृष्टिचरोऽपि नाभूत् ॥३१॥

नाचते हुये घोड़ेपर विराजमान, अतिशय सुन्दरतासे युक्त, भ्राताओंके साथ, उन श्रीरामभद्रजीका दर्शन करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी मुग्ध हो गये किन्तु दुर्भागियोंको तो उनका दर्शन भी नहीं हुआ ॥३१॥

एवं मुदाऽसौ स्वसुतैः परीतः श्रीकोशलेन्द्रो जनवासगेहात् ।
चचाल भूदेववरैर्मुनीन्द्रैः सुहृज्जनैः साकमृषीश्वराभ्याम् ॥३२॥

इस प्रकार आनन्द पूर्वक श्रीदशरथजी महाराज उत्तम ब्राह्मण, मुनि श्रेष्ठ, सुहृद वर्गके सहित ऋषि-नायक (श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजी) के साथ अपने चारो राजकुमारोंके समेत जनवास भवनसे चले ॥३२॥

तदा भृशं खं दिविषद्विमानैराच्छादितं चित्रविचित्रवर्णैः ।
पुष्पाणि वर्षद्भिरनुत्तमाभैश्चन्द्राननाभिः शुशुभे परीतैः ॥३३॥

उस समय पुष्पोंकी वर्षा करते हुये चन्द्रमुखी देवाङ्गनाओंसे युक्त, अनुपमप्रकाशमय, चित्र-विचित्रवर्णके देव-विमानोंसे ढका हुआ आकाश अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुआ ॥३३॥

तन्मार्गपार्श्वद्वयमन्दिराणां गवाक्षजालेषु विराजमानाः ।
रामं समालोक्य मनोऽभिरामा व्यपास्तलज्जाः कुसुमान्यवर्षन् ॥३४॥

उस मार्गके दोनों बगलके महलोंके झरोखोंमें बैठी हुई मनोहारिणी स्त्रियाँ श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके लज्जा छोड़कर फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥३४॥

अपाहरश्चित्तमणींश्च तासां शृण्वन्स्ववैवाहिकभद्रगानम् ।
सर्वत्र मोदाप्लुतमानसानां स्त्रीणां कलं कोकिलकण्ठिकानाम् ॥३५॥

श्रीरामभद्रजू कोकिल (कोयल) के समान सहज चित्ताकर्षक स्वर तथा-आनन्दनिमग्न-चित्तवाली स्त्रियों द्वारा निज विवाह-सम्बन्धी मङ्गल गानको सुनते हुये उनके चित्तरूपी मणियोंकी चोरी करते ॥३५॥

पश्यन्समुन्नेत्रमुखाम्बुजानां प्रेमप्रवाहं तटयोः स्थितानाम् ।
असङ्ख्यवाद्यध्वनिपूज्यमानो ययौ विदेहाधिपवेश्म रामः ॥३६॥

असङ्ख्य बाजाओंकी ध्वनिसे सम्मानित होते हुये, मार्गके दोनों किनारों पर नीचे उपस्थित ऊँचे नेत्र व मुखकमल किये हुये नर-नारियोंके प्रेम-प्रवाहको देखते हुये, श्रीरामभद्रजू श्रीमिथिलेशजी-महाराजके राजभवनको गये ॥३६॥

देवाङ्गना वीक्ष्य विदेहपुर्याः सौभाग्यलक्ष्मीं विपुलेक्षणानाम् ।
अत्यल्पपुण्याः खलु मन्यमानाः स्वात्मानमासन् हतभाग्यदर्पाः ॥३७॥

देव स्त्रियोंने श्रीजनकपुरीकी विशाललोचना स्त्रियोंके सौभाग्यलक्ष्मीको देखकर अपनेको अत्यन्त अल्पपुण्यवाली मानकर, अपने सौभाग्यका अभिमान छोड़ दिया ॥३७॥

पुरीपरिस्पन्दमवेक्ष्य हृष्टस्ततो विरिञ्चो रचनां स्वकीयाम् ।
कुत्रापि नासाद्य निरीक्षमाणः कौतूहलाब्धौ प्रबभूव मग्नः ॥३८॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजी श्रीजनकपुरीकी विलक्षण रचनाको देखकर हर्षित हुये, किन्तु खोजने पर भी वहाँ अपनी रचनाको कहीं भी न पाकर वे आश्चर्य सागरमें डूब गये ॥३८॥

श्रीशिव उवाच ।

सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशपुत्री सर्वेश्वरः श्रीदशरथनसूनुः ।
तयोर्विवाहावसरे किमस्मिन्नाश्चर्यकं ब्रूहि विचार्यमेतत् ॥३९॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे ब्रह्मन् ! श्रीमिथिलेशदुलारीजी सर्वेश्वरी और श्रीदशरथनन्दन श्रीरामभद्रजू सर्वेश्वर हैं, यह विचार करके आप ही कहें कि उनके इस विवाहके मङ्गलमय अवसर पर आश्चर्यकी क्या बात है अर्थात् सब कुछ सम्भवका असम्भव और असम्भवका सम्भव हो सकता है ३९

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं स उक्तो द्रुहिणो हरेण माध्व्या गिरा युक्तिपरीतया च ।
निरस्तशङ्कः सह षड्मुखाद्यैः श्रीराममिन्द्वाननमाददर्श ॥४०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे तपोधने ! भगवान् शङ्करजीके युक्ति-युक्त इस प्रेममयी वाणीके द्वारा समझाने पर ब्रह्माजी शङ्का रहित हो षट्मुख (कार्तिकेयजी) आदि देवोंके सहित चन्द्रवदन श्रीरामभद्रजू का दर्शन करने लगे ॥४०॥

उद्वाहवेषं तदवेक्ष्य वेधःषडाननपञ्चमुखाः प्रहृष्टाः ।
नेत्रैः स्वकीयैः क्रमशोऽधिकैस्ते भाग्यश्रियं स्वामनुवर्णयन्तः ॥४१॥

श्रीब्रह्माजी (चतुर्मुख), षट्मुख (श्रीकार्तिकेय) जी, पञ्चमुख (श्रीशिव) जी श्रीरामभद्रजूके दुलह वेष का क्रमशः अपने अपने अधिक आठ, बारह, पन्द्रह नेत्रोंके द्वारा दर्शन करके निज सौभाग्य लक्ष्मीकी प्रशंसा करते हुये महान हर्षको प्राप्त हुये ॥४१॥

दृष्ट्वा सहस्राक्षमथो त ऊचुः प्रेम्णा तदालोकनतत्परं तम् ।
नान्येन तुल्यः सुकृतां वरिष्ठः शापो वरः सम्प्रति यस्य जातः ॥४२॥

पुनः सहस्र नेत्रधारी इन्द्र को प्रेम पूर्वक श्रीरामभद्रजूके उस वेषके दर्शन करनेमें तत्पर देख कर, वे ब्रह्मादि देवगण बोले:-हे देव श्रेष्ठो ! इस समय इन्द्र के बराबर कोई भी श्रेष्ठ पुण्यात्मा नहीं है, जिसके प्रति महर्षि गोतमजी का दिया हुआ शाप भी वरदान हो गया जिसके कारण इन्हें भगवान् श्रीरामजीके इस वर वेषके दर्शन करने का सौभाग्य सहस्र (हजार) नेत्रों से प्राप्त है ॥४२॥

इत्थं वदत्स्वेव सुरेषु तेषु त्यक्त्वा स षष्ठावरणं तदानीम् ।
संप्राप सप्तावरणे मनोज्ञे रामो विदेहालयमुत्तमाभम् ॥४३॥

उन देव वृन्दोंके परस्पर इस प्रकार कथन करते हुये श्रीरामभद्रजू छठे आवरण को त्यागकर सातवें आवरणके उत्तम प्रकाश युक्त मनोहर श्रीविदेहजी महाराजके भवनको पधारे ॥४३॥

अथो नृपद्वारमुपस्थितं तं विज्ञाय मावागिगरिराजपुत्र्यः ।
सुराङ्गनाभिस्सहिता अवेद्याः योषिद्गणं सविविशुर्मनोज्ञम् ॥४४॥

तत्पश्चात् उन श्रीरामभद्रजी को श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारपर पधारे हुये जानकर उमा, रमा, ब्रह्माणी ये तीनों शक्तियाँ भी अन्य देव स्त्रियोंके सहित गुप्त रूपसे स्त्रियोंके मनोहर यूथमें जा मिलीं४४

गानं प्रचक्रुर्मधुरस्वरेण चन्द्राननास्ताः समयानुसारम् ।
नीराजयन्त्यो नयनाभिरामं रामं मुनीन्द्रामलचित्तचौरम् ॥४५॥

पुनः वे चन्द्रमुखी सखियाँ बड़े-बड़े मुनियोंके चित्तको चुराने वाले सुन्दर और नयन-सुखद श्रीरामभद्रजूकी आरती करती हुई समयानुकूल मधुर स्वरसे मङ्गलगान करने लगीं ॥४५॥

पथांऽशुकाढ्येन सुकोमलेन सुवासितेनोत्तमगन्धिभिस्तम् ।
निन्युर्मुदा मण्डपमम्बुजाक्ष्यो वैवाहिकं निर्वचनीयरम्यम् ॥४६॥

तत्पश्चात् कमलदललोचना सखियाँ उत्तम सुगन्धसे सुवासित, सुकोमल वस्त्रोंसे आच्छादित, मार्ग द्वारा उन्हें अकथनीय-मनोहर विवाह-मण्डपमें ले गयीं ॥४६॥

दूर्वादलश्यामलकोमलाङ्गं लोकाभिरामं शरदिन्दुवक्त्रम् ।
विवाहभूपापरिशोभमानं निरीक्ष्य रामं सुखिनी सुनेत्रा ॥४७॥

दूर्वादल (दूबकी पत्ती)के समान श्यामवर्ण एवं कोमल अङ्गों वाले, सभी प्राणियोंको सुखद, शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके सदृश आह्लादकारी मुख-कमल वाले, दूलह वेषसे अत्यन्त सुशोभित उन श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके श्रीसुनयनामहारानी सुखी हो गयीं ॥४७॥

मृगीदृशां माङ्गलिके सुगाने प्रवर्तमाने जितकोकिलानाम् ।
निसर्गचित्तापहरे मुनीनां प्रीत्याऽन्विताऽथो महताऽऽदरेण ॥४८॥
मनः समाधाय कुलानुसारं शास्त्रानुसारं व्यवहारमद्धा ।
विधाय सर्वं सविधि सखीभिस्तस्मै ददौ मङ्गलमासनं सा ॥४९॥

तत्पश्चात् अपने मनोहर स्वरसे कोयलपक्षीको पराजित करनेवाली मृगलोचना सखियोंके स्वाभाविक मुनिचित्त हारी, सुन्दर मङ्गल-गान प्रारम्भ करने पर प्रीतिसे अत्यन्त युक्त हो श्रीसुनयना-

महारानीने महान् आदरके साथ अपने आनन्द-विभोर चित्तको सावधान करके कुलानुसार तथा शास्त्रानुसार सभी व्यवहारोंको करके, उन श्रीरामभद्रजूको मङ्गलमय आसन प्रदान किया ॥८४॥४९॥

गायन्त्य आपुर्न च तृप्तिमाल्यो वीणास्वरा मङ्गलमम्बुजाक्ष्यः ।
ब्रह्मादिदेवा धृतविप्ररूपास्तद्दर्शनासक्तदृशो बभूवुः ॥५०॥

कमलदललोचना, वीणाके समान स्वर वाली सखियाँ मङ्गल गाती हुई अघाती ही न थीं, उसे सुनकर ब्राह्मण वेषधारी ब्रह्मादि देवताओंके नेत्र श्रीरामदूलह-सरकारके दर्शनोंमें आसक्त हो गये ॥ ५० ॥

श्रीकोशलेन्द्रं मिथिलामहेन्द्रः प्रीत्या मिमेलातुलया समावम् ।
तयोर्न चायानुपमां निलिम्पा लोकत्रयेऽस्मिन्परिमार्गयन्तः ॥५१॥

श्रीदशरथजीमहाराजसे श्रीमिथिलेशजीमहाराज बड़े ही प्रेम-पूर्वक मानसमन्वित मिले देववृन्द इन तीनों लोकोंमें खोजने पर भी उन दोनोंकी उपमाको न पा सके ॥५ ॥

अर्घ्यं प्रदायानयदूर्विनाथं स मण्डपं सादरमिन्द्रवन्द्यम् ।
मुनीश्वराभ्यामनुजैः परीतं सवामदेवादिमहर्षिवृन्दम् ॥५२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजी महाराज दोनों मुनीश्वरों सहित छोटे भाइयोंके साथ, वामदेव आदि महर्षियोंसे युक्त, इन्द्र द्वारा प्रणाम करने योग्य श्रीदशरथजी महाराजको अर्घ्यदेकर आदर पूर्वक मण्डपमें ले गये ॥५२॥

स्वयं कराभ्यां विशदासनानि प्रदाय सर्वेभ्य उपस्थितेभ्यः ।
संपूजयामास यथाविधानं विदेहराजः परयाऽनुरक्त्या ॥५३॥

पुनः सभी उपस्थितोंको अपने हाथोंसे सुन्दर आसन प्रदान करके श्रीविदेहजी महाराजने उनका विधिपूर्वक, बड़े ही अनुरागके साथ पूजन किया ॥५३॥

रामानुजा रामधियाऽर्चिता वै श्रीमैथिलेन्द्रेण च पूर्वमेव ।
द्विपार्श्वयोर्भूपमणेस्तदानीं भृशं व्यशोभन्त सुमण्डपे ते ॥५४॥

श्रीरामभद्रजूके तीनों भाई श्रीरामभद्रजूके अनुसार श्रीमिथिलेशजीमहाराजके द्वारा पूर्वमें ही पूजित होकर, उस मण्डपमें श्रीचक्रवर्तीजीमहाराजके दोनों भागमें विराजमान हो अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुये ॥५४॥

अभूत्सपाजद्वयमेव तर्हि मोदाब्धिमग्नं वरमुद्विलोक्य ।
स्वस्त्युच्चरन्तो मुनयो विरेजुर्वाद्यध्वनिं चारु निशामयन्तः ॥५५॥

उस समय वर सरकारको देखकर दोनों श्रीअवध तथा श्रीमिथिलाजीका समाज आनन्द-सागर में डूब गया, मुनिवृन्द बाजाओंकी मनोहर ध्वनिको श्रवण करते व स्वस्तिवाचन करते हुये महान् उत्कर्षको प्राप्त हुये ॥५५॥

विष्णवीश्वराजेन्द्रदिवाकराद्याः महत्त्ववेत्तार उदारकीर्त्योः ।
रामस्य च श्रीमिथिलेशजायास्तत्राविशन्संधृतविप्ररूपाः ॥५६॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, सूर्य आदि देवगण जो उदार कीर्ति श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजूके तथा श्रीदशरथराज दुलारे श्रीरामभद्रजूकी महिमाको जानने वाले थे, सभी अपना ब्राह्मण रूप बना कर उस मण्डपमें जा मिले ॥५६॥

रामस्तु विज्ञाय ननाम भक्त्या तानभ्रमूर्द्धा मनसा सुरेशान् ।
शीलं तदालोक्य दिवौकसस्ते न्यस्तस्मयाः शातमपारमापुः ॥५७॥

उन देवताओंको पहिचान कर श्रीरामभद्रजूने सिर झुकाये उनको श्रद्धापूर्वक हृदयसे प्रणाम किया, प्रभुके इस अभिमान रहित मर्यादा-पालक स्वभावको देखकर वे देवगण अभिमानरहित हो अपार सुखको प्राप्त हुये ॥५७॥

श्रीकौशिकस्यानुमतेन वेधः सुतेन पौत्रो जलजासनस्य ।
उक्तोऽधुनाऽऽहूय विदेहकन्या ह्यानीयतामाशु च मण्डपेऽस्मिन् ॥५८॥

पुनः श्रीविश्वामित्रजी महाराजकी अनुमतिसे श्रीब्रह्माजीके पौत्र (महर्षि गोतमजीके पुत्र) श्रीशतानन्दजी महाराजको बुलाकर ब्रह्मपुत्र श्रीवशिष्ठजी महाराजने उनसे कहा-अब श्रीविदेहराज नन्दिनीजूको इस मण्डपमें शीघ्र ले आवें ॥५८॥

तेनापि राज्ञी मिथिलेश्वरस्य विज्ञापिताऽयोनिभवा तया च ।
सर्वाम्बराभूषणभूषिताङ्गी ह्यानीयमाना सुभृशं रराज ॥५९॥

श्रीशतानन्दजी महाराजने श्रीसुनयना महारानीको उस बातकी सूचना दी, तदनुसार जब वे श्रीअम्बाजी लेकर चलीं, तब अपनी इच्छासे प्रकट होने वाली वे श्रीललीजी सम्पूर्ण वस्त्र भूषणोंका शृङ्गार धारणकी हुई अत्यन्त ही शोभाको प्राप्त हुईं ॥५९॥

देवाङ्गनास्ता नगराङ्गनाभिर्मनोहराङ्ग्यो रतिमोहिनीभिः ।
तामन्वयुर्मत्तगजेन्द्रगत्या मुदा जगन्मोहनमोहनाङ्गीम् ॥६०॥

अपनी सहजसुन्दरतासे रतिको मुग्ध कर लेने वाली तथा मनोहर अङ्गों वाली पुरवासिनी स्त्रियोंके सहित पहलेसे ही आई हुई, श्रीरमा, उमा, ब्रह्माणी आदि देवाङ्गनायें; अपने मनोहर अङ्गोंसे चर-अचर सम्पूर्ण प्राणियोंके मनहरण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको भी मुग्धकर लेने वाली उन श्री-मिथिलेशराजदुलारीजूके पीछे-पीछे प्रसन्नतापूर्वक मत्त गजराजकी भाँति चालसे चलीं ॥६०॥

ध्यानं विसृष्टं मुनिभिस्तदानीमज्ञोऽत्रपन्तस्मरकोकिलाश्च ।
गानं निशम्यामरसुन्दरीणां तथा च भूपान्वयसम्भवानाम् ॥६१॥

देवाङ्गनाओं तथा राजवंशी कन्याओंका गान सुनकर उस समय मुनियोंने अपना ध्यान छोड़ दिया तथा कामदेवके कोयल अनायास ही लज्जित होगये ॥६१॥

स्त्रीणां तथा मध्यगता कुमारी विदेहराजस्य जगन्नियन्त्री ।
रराज दिव्यच्छविसुन्दरीणां विश्वैकवन्द्या सुषमाङ्गनेव ॥६२॥

चर-अचर प्राणियोंकी स्वामिनी तथा विश्वके द्वारा एकमात्र प्रणाम करने योग्य श्रीविदेहराज-कुमारीजी, स्त्रियोंके मध्यमें इस प्रकार सुशोभित हुईं, जैसे, दिव्य छविरूपी स्त्रियोंके बीचमें सुषमा (अनुपम सौन्दर्य) रूपी स्त्री सुशोभित होती है ॥६२॥

कृता मुदा पुष्पमयी सुवृष्टिः सुरद्रुमाणां त्रिदशैरनल्पम् ।
आनन्दवारां निधिमग्नचित्तैर्निरन्तरं तज्जयमुच्चरद्भिः ॥६३॥

उन श्रीजनकराजदुलारीजूका, जय-जयकार बोलते हुये आनन्दमें डूबते चित्त, देववृन्दोंने कल्पवृक्ष की पुष्पमयी अखण्ड प्रचुर वर्षा की ॥६३॥

विसृष्टदेहस्मृतयश्च सर्वे ते मण्डपस्था युगपक्षिणश्च ।
श्रीजानकीं दृष्टिचरीं विधाय कृतप्रणामाः सुषमैकसिन्धुम् ॥६४॥

मण्डपमें विराजे हुये दोनों (वर-दुलहिन सरकारके) पक्षके सभी लोग उनको प्रणाम करके अपने देहकी सुधि-बुधि भूलगये और अनुपम श्रेष्ठ सौन्दर्य समुद्र उन श्रीजनकराजदुलारीजूकी ओर टकटकी लगाये रह गये ॥६४॥

तद्रूपमाधुर्य्यमवेक्ष्य रामो मुग्धः परां तृप्तिमथाससाद ।
श्रीकोशलेन्द्रोऽपि जगाम मूर्च्छां मोदाम्बुनाथं व्यवगाहमानः ॥६५॥

श्रीरामभद्रजू भी उनके रूपकी अनुपम छविको अवलोकन करके मुग्ध हो गये और उन्हें सर्वश्रेष्ठ तृप्तिकी प्राप्त हुई तथा श्रीदशरथजीमहाराज उस आनन्द-सागरमें स्नान करते हुये बेसुध होगये ६५

ब्रह्मादयो देवगणा मिलित्वा सर्वे मिथः कैतवविप्ररूपाः ।
वेदध्वनिं चक्रुरतीवपुण्यं श्रेयोमयं तामुरसा प्रणम्य ॥६६॥

सभी ब्रह्मादि देवगण कपटसे ब्राह्मण वेष धारण किये हुये आपसमें मिलकर, श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजीको हृदयसे प्रणाम करके, परमपुण्य व मङ्गलमय वेद-ध्वनि करने लगे ॥६६॥

अवाचयन्स्वस्ति महामुनीन्द्रा जयध्वनिं सर्व उपस्थिताश्च ।
उच्चैः प्रचक्रुः किल सानुरागं तया ततं विश्वमिदं समग्रम् ॥६७॥

बड़े-बड़े मुनिराज स्वस्तिवाचन करने लगे तथा सभी उपस्थित लोग अनुराग-पूर्वक उच्च स्वरसे जय ध्वनि करने लगे। वह जय-जयकार घोष समस्त विश्वमें व्याप गया ॥६७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं श्रीमिथिलामहेन्द्रतनया दिव्याङ्गनालङ्कृता
सौभाग्येन वलीयसा च महता संप्राप्यसद्दर्शना ।
शान्तिं सपठतां प्रसन्नमनसां तेषां मुनीनामसौ
ह्यागच्छन्छुभमण्डपं गजगतिः स्वाह्लादयन्ती जगत् ॥६८॥

इति षष्ठनवतितमोऽध्यायः॥६७॥

—: मासपारायण-विश्राम २६ नवाह्न-पारायण-विश्राम ८ :—

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे कात्यायनि ! इस प्रकार उन प्रसन्न-मन मुनियों द्वारा शान्ति पाठ करते हुये देव स्त्रियोंके द्वारा शृङ्गारयुक्त (अलंकृत) की हुई गजगामिनी श्रीमिथिलामहेन्द्रराजदुलारीजी, जिनका सदा एक रस रहनेवाला पवित्र दर्शन बहुत बड़े वलिष्ठ सौभाग्यसे ही प्राप्त होता है (वे) भली प्रकारसे समस्त चर-अचर प्राणियोंको पूर्ण आह्लादित करती हुई, उस मङ्गलमय विवाह-मण्डपमें पधारी ॥६८॥

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

❀ श्रीसीताराम-विवाह ❀

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तात्कालिकोऽथ युगलान्वययोर्गुरुभ्यां शास्त्रोदितः शुचिविधिः किल कारितश्च ।
गौरीगजाननमुखास्त्रिदशाः प्रहृष्टाः पूजामगुः प्रकटिताः परिपूज्यमानाः ॥१॥

श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीशतानन्दजी महाराजने दोनों कुलकी तथा शास्त्रोक्त उस समयकी पवित्र विधिको कराया, पूजनके समय श्रीगौरी गणेशजी आदि प्रमुख देवी-देवगण अत्यन्त हर्षित हो अर्पणकी हुई अपनी पूजा को प्रकट होकर ग्रहण करने लगे ॥१॥

आशीः प्रदाय शुभदां वरकन्यकाभ्यां ब्रह्माण्डकोटिसुषमासुखसागराभ्याम् ।
ते भूयशः सकललोकमहेश्वराभ्यामीयुः सुखं परतरं वचसामगम्यम् ॥२॥

तथा वे देव समस्त लोकोंके सर्वोपरि नियामक, करोडों ब्रह्माण्डोंके अनुपम सौन्दर्य व सुखके समुद्र उन वर-कन्या-रूपधारी श्रीसीतारामजी महाराजको बारंबार मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान करके अत्यन्त उस सुखको प्राप्त हुए, जिसका वर्णन वाणीके द्वारा नहीं हो सकता ॥२॥

द्रव्याणि चैव परिचारकवृन्दमुख्याश्चितेप्सितानि निखिलानि मुनीश्वराणाम् ।
सौवर्णपात्रनिहितानि निधाय पाण्योः पार्श्वस्थिता नयनमार्गचरा भवन्ति॥३॥

मुनिराज-जिस समय जिस माङ्गलिक द्रव्यकी इच्छा करते हैं, श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रमुख सेवक वृन्द, उसे अपने हाथोंमें सुवर्णके पात्रोंमें लिये हुये, सामने उपस्थित दिखाई देते हैं ॥३॥

रीतिं कुलस्य सकलां सविधिं समुक्तां प्रीत्या विधाय मिहिरेण महामुनीन्द्रैः ।
सौवर्णकं विविधरत्नमयं प्रदत्तं सिंहासनं जनकभूपतिपुत्रिकायै ॥४॥

सूर्य भगवान्की बतलाई हुई कुलकी सब रीतिको विधिपूर्वक सम्पन्न करके, महामुनीन्द्रोंने प्रेमपूर्वक अनेक रत्नोंसे जटित सुवर्ण का सिंहासन श्रीजनकराजदुलारीजीको प्रदान किया ॥४॥

प्रीतिस्तयोः समवलोकयतोर्मिथो वै कस्यापि नैव समभून्मतिगोचरा च ।
होमाहुतिं प्रकटदिव्यतनुः कृशानुर्जग्राह शातपरिपूर्णहृदा तदानीम् ॥५॥

उस समय परस्पर अवलोकन करते हुये उन दोनों वर-दुलहिन सरकारकी प्रीतिको, श्रीब्रह्मा-

जी भी न समझ सके, अग्नि देव दिव्य शरीरको धारण करके हवनकी आहुतियोंको प्रकट होकर पूर्णसुखी हृदयसे ग्रहण करने लगे ॥५॥

वेदैर्गृहीतवसुधासुरवर्यदेहैर्वैवाहिको विधिरशेषतया सहर्षम्।
संवर्ण्यते स्म शुभदः समयानुसारं दिव्याम्बराभरणकौसुममाल्ययुक्तैः॥६॥

और दिव्य वस्त्र भूषण तथा पुष्प हारोंसे युक्त उत्तम ब्राह्मण रूप धारी चारो वेदोंने समयानुसार विवाहकी सम्पूर्ण विधियोंको हर्ष पूर्वक वतलाया ॥६॥

भाग्योल्लसत्सुनयना मुनिभिस्तदानीं वैदेहपट्टमहिषी नवसुन्दरीभिः।
विज्ञापिता भुवनमोहनमण्डपं हि ह्लादप्रपूर्णहृदया द्रुतमाजगाम ॥७॥

तब मुनियोंकी आज्ञासे अपने सौभाग्य द्वारा चमकती हुई, श्रीविदेहकुलोत्पन्न श्रीसीरध्वज महाराजकी पटरानी श्रीसुनयना महारानीजी आह्लादयुक्तहृदय हो नवसुन्दरियोंके साथ उस विश्व विमोहन मण्डपमें तुरत आ पधारीं ॥७॥

सा श्रीर्यशःसुकृतिराशिरिवोपसृष्टा धात्रा श्रुता जनकजाजननी जगत्याम्।
शक्या कथं कथयितुं कविभिः कदाचिद्भाग्यश्रिया विजितनिर्जरपट्टकान्ता॥८॥

अपनी सौभाग्य सम्पत्तिसे इन्द्राणी पर विजय प्राप्त करने वाली, श्रीजनकराजदुलारीकी माता श्रीसुनयना महारानीको मानो विधाताने पृथिवी पर शोभा, यश और पुण्यकी राशि ही बनाया हो, अतः कवि-जन भला किस प्रकार उनका वर्णन करने को समर्थ हो सकते हैं ? ॥८॥

सव्ये निदेशमुपलभ्य ततो मुनीनां राज्ञी रराज मिथिलानृपतेः सुनेत्रा।
श्रीमेनकेव गिरिनायकपार्श्वगा वै पुत्र्या विवाहसमयेऽप्यधिकाऽपि तस्याः ॥९॥

मुनियोंकी आज्ञा पाकर वे श्रीसुनयनामहारानीजी श्रीमिथिलेशमहाराजके वायें भागमें इस प्रकार सुशोभित हुईं, जिस प्रकार अपनी पुत्रीके विवाहमें श्रीमेनकाजी श्रीहिमाचलमहाराजके पासमें बैठकर शोभाको प्राप्त हुई थीं, वैसे ही नहीं अपितु उनसे बढ़कर सुशोभित हुईं ॥९॥

कुम्भं समङ्गलजलं मणिभाजनं च तौ दम्पती परमहर्षनिमग्नचित्तौ।
श्रीकोशलेन्द्रसुकुमारपुरो ऽधरेतां तद्रूपसक्तनयनौ स्वकराम्बुजेन ॥१०॥

अपार हर्षमें निमग्न चित्त वे दम्पती (श्रीसुनयनामहारानी तथा श्रीमिथिलेशजीमहाराज) श्रीकोशलेन्द्रकुमार श्रीराम-चन्द्रसरकार पर आसक्त नेत्र हो अपने कर-कमलसे मङ्गल-जल-युक्त कलश तथा मणिमय पात्रको उनके सामने रक्खा ॥१०॥

संवर्षतां सुकुसुमानि ततोऽमराणां वेदं सुमङ्गलगिरा पठतां मुनीनाम् ।
आज्ञापितो द्रुहिणसूनुसुतेन पादप्रक्षालनाय नृपतिर्वरसत्तमस्य ॥११॥

पुनः श्रीशतानन्दजी महाराजने देववृन्दोंके द्वारा पुष्पोंकी वर्षा तथा मुनियों की मङ्गलमयी वाणीसे वेद-पाठ होते समय श्रीमिथिलेशजी महाराजको सर्वशिरोमणि श्रीराम दूलह सरकारके पाद-प्रक्षालन करनेकी आज्ञा प्रदान की ॥११॥

तस्यावलोक्य वररूपमपारशोभं रोमाञ्चिताङ्ग उपगृह्य पदारविन्दम् ।
सोऽभूज्जयध्वनिततिः प्रययौ दिगन्तं तात्कालिको नगरनाकनिवासिनां च १२

श्रीविदेहजी महाराज उन श्रीरामचन्द्रजूके उस वर रूपकी अपार शोभाको देख कर उनके श्रीचरण कमलोंको हृदयसे पकड़ते ही रोमाञ्चको प्राप्त हो गये, नगर तथा स्वर्गनिवासियोंकी उस समय की जयध्वनिकी लहर पूर्णतया दशों दिशाओंमें गूंज उठी ॥१२।

शश्वन्मनोजरिपुमानसराजहंसं पुण्यं सकृत्स्मरणशान्तकलिप्रकोपम् ।
चेतोमलघ्नमननं भजदर्थदोहं योगीन्द्रसिद्धमुनिदेववरैकवन्द्यम् ॥१३॥

जो पुण्यस्वरूप सर्वदा भगवान् शिवजीके मनरूपी मानससरोवरमें राजहंसके समान विराजते हैं, जिनके एकबारका स्मरण भी कलिकालके प्रकोपको शान्त करदेता है, तथा जिनका मनन चित्तके सभी विकारोंको नष्ट करदेता है, जो सेवकोंको सब प्रकारका हितकर अभीष्ट प्रदान करते हैं और बड़े-बड़े योगी, सिद्ध मुनि, देव श्रेष्ठोंके द्वारा अनुपम प्रणाम करने योग्य हैं ॥१३॥

देवापगा शिरसि यन्मकरन्दरूपा पापापहा शुचितरा विधृता शिवेन ।
पादाम्बुजं शमितगोतमदारशापं प्राक्षालयत्त्विति पतिस्तदमोघभावः ॥१४॥

जिनके मकरन्द स्वरूपा, पापहारिणी, अत्यन्त पवित्रा भगवती भागीरथी श्रीगङ्गाजीको भगवान् शिवजीने अपने शिर पर रक्खा है, जिन्होंने श्रीगौतमजीकी धर्मपत्नीजूकी शापको नष्ट कर दिया, उन श्रीचरण-कमलोंको अमोघभाव वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज पखारने लगे ॥१४॥

सौभाग्यपात्रमयमेव नृपो जगत्यामित्थं विचार्य मनसा मुनयो निलिम्पाः ।
उच्चैः समूचुरथ ते परिमुक्तकण्ठा राजन् ! जयेति तदवेक्ष्य भृशं प्रसन्नाः १५

सो देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो मुनियों तथा देवताओंने मनमें यह विचार किया कि:—"ये श्रीमिथिलेशजी महाराज ही तो जगत्‌में सौभाग्यके पात्र हैं अतः प्रसन्न चित्तसे पूर्ण गला खोलकर उच्चस्वरसे बोले:—हे राजन् ! आपकी जय हो, जय हो जय हो ॥१५॥

कन्याकुमारयुगपाणितलं नियोज्य मार्तण्डवंशनिमिवंशगुरू प्रहृष्टौ ।
वंशद्वयस्य विमलस्य सुशंसतुस्तौ शाखे पवित्रयशसः शुभ आदितश्च ॥१६॥

पुनः सूर्य तथा निमिवंशके गुरु श्रीवशिष्ठजी तथा शतानन्दजीमहाराज वर-कन्याकी दोनों हथेलियोंको एकमें जोड़कर पूर्ण हर्षित हो, दोनों निष्कलङ्क तथा पवित्र यश सम्पन्न निमि व सूर्य वंशकी मङ्गलमयी शाखाओंका आदिसे बखान करने लगे अर्थात् दोनों कुलोंके पूर्वजोंके नाम एवं गुण वर्णन करते हुए, सङ्कल्प तथा मंत्र बोलने लगे ॥१६॥

सर्वेशयोर्जनकजादशयानसून्वोर्ध्येयं सुमङ्गलकरग्रहणं विलोक्य ।
ब्रह्मादयोऽमरवरा मुनयो मनुष्या आनन्दमग्नहृदया अभवन्नशेषाः ॥१७॥

सर्वेश्वरी श्रीजनकराजनन्दिनीजू तथा सर्वेश्वर श्रीदशरथनन्दनप्यारेजूके ध्यान करने योग्य, सुन्दर मङ्गलमय पाणिग्रहण-महोत्सवका दर्शन करके, ब्रह्मादिक देव-श्रेष्ठ, मुनिवृन्द, तथा मनुष्य सभी आनन्दमें विभोर चित्त हो गये। १७॥

मूलं सुखस्य वरमिन्दुविमोहनास्यं दम्पत्यवेद्य मुदितौ सुभृशं च तस्मै ।
कन्याप्रदानमिह चक्रतुरात्मदाय रोमाञ्चिताखिलतनू हि यथाविधानम् ॥१८॥

-दम्पती श्रीमिथिलेशजी महाराज तथा श्रीसुनयना महारानी, समस्त सुखोंके कारण-स्वरूप तथा अपने मुखकी शोभासे चन्द्रमाको मुग्ध करने वाले श्रीवर-सरकारका दर्शन करके अत्यधिक मुदित हो, सर्वाङ्गरोमाञ्चित हो, सरबस दान देने योग्य उन दूलह सरकार श्रीरामभद्रजीको विधि पूर्वक कन्या-दान करने लगे ॥१८॥

शैलेन्द्रजा हिमवता त्रिपुरान्तकाय दत्ता यथा च हरये जलराशिना श्रीः ।
रामाय कामशतकान्तरुचे तथाऽसौ सीतामदाज्जनकराड् भुवनाभिरामाम् १६

जिस प्रकार हिमवान्ने श्रीपार्वतीजीको भगवान् शिवजीके लिये तथा श्रीलक्ष्मीजीको समुद्रने श्रीविष्णुभगवानके लिये जिस प्रकार अर्पण किया था, उसी प्रकार उन श्रीजनकजीमहाराजने त्रिभुवन-सुन्दरी श्रीसीताजीको सैकड़ों कामदेवोंके समान मनोहर कान्तिवाले श्रीरामजीके लिये प्रदानकिया १६

हुत्वा तदा मुनिवरा सविधिं च ताभ्यां ग्रन्थिं निबध्य पटयोर्वरकन्ययोश्च ।
वामेतरक्रमविधिं समकारयँस्ते संवर्षतां दिविषदां कुसुमानि भूयः ॥२०॥

तब मुनिवरोंने हवन कराके विधिपूर्वक वर और कन्याके वस्त्रोंमें गांठ बांधकर उनसे भाँवरीकी विधि सम्यक् प्रकारसे करायी, उस समय पूर्ण विधि पर्यन्त देवता लोग बारंबार फूलोंकी वर्षा करते ही रहे ॥२०॥

वाद्यध्वनिं च विपुलं जयघोषपूर्वं शृण्वन्त एत्य न तु तृप्तिमुदारभावाः ।
चक्षुष्फलं समगमन् नगरौकसस्ते संदर्शनेन तदतीवदुरासदेन ॥२१॥

जयघोष पूर्वक बाजाओंकी महान् ध्वनिको सुनते हुये भी वे नगरवासी तृप्तको न प्राप्त होकर, उस भावँरीके अत्यन्त दुर्लभ दर्शनोंके द्वारा अपने नेत्रोंको सफल किये ॥२१॥

वीतोपमं परिणयं तदसौ मनोजो रत्या समं विहितकोटिसहस्ररूपः ।
संपश्यतीति युगलप्रतिविम्बमद्धा स्तम्भेषु रत्नखचितेषु गतं बभासे ॥२२॥

श्रीयुगल (वर-दुलहिन) सरकारकी रत्न जड़ित खम्भों पर प्राप्त छाया इस प्रकार प्रतीत हो रही थी, मानो रतिके समेत कामदेव अनन्त रूप धारण कर उस अनुपम विवाह का दर्शन का रहा हो ॥२२॥

निःसीमसौख्यसंवर्पणदर्शनाशो ह्याविर्भवत्यसौ श्रीवरकन्ययोश्च ।
तुच्छं स्वरूपमुद्वीक्ष्य तयोः पुरस्तादन्तर्हितः स्वसम्मानविनष्टिभीत्या ॥२३॥

दोनो श्रीवरकन्याओंके असीम सुखवर्षणकारी दर्शनोंकी आशासे वह कामदेव बारम्बार प्रकट होता है, किन्तु उनके सामने अपनी सुन्दरताको तुच्छ देखकर अपनी मानहानिके भयसे छिप जाता है ॥२३॥

आसन् विदेहा अपरेऽपि सर्वे तत्प्राप्तसद्दर्शनपुण्ययोगाः ।
प्रदक्षिणप्रक्रमणं च ताभ्यामित्थं मुनीन्द्रैः समकारि भद्रम् ॥२४॥

इसी भाँति उन दोनों सरकारके नित्य सदा एक रस रहनेवाले दर्शनोंका पुण्यमय संयोग प्राप्त करके अन्य लोग भी, देहानुसन्धान-रहित (बेसुध विदेह) हो गये। इस प्रकार मुनिवरोंने दोनों सरकारकी मङ्गलमय भाँवरी कराई ॥२४॥

भाले विशाले जनकात्मजायाः प्रेमाप्लुताक्षो रघुवंशदीपः ।
दातुं स सिन्दूरमभूत्प्रवृत्तो जयेति भूयो वदतां सुराणाम् ॥२५॥

श्रीरघुकुलके दीपक (प्रकाशक) श्रीराम वर सरकारजूने प्रेमार्द्रनेत्र हो श्रीजनकराजदुलारीजूके मनोहर विशाल भालमें सिन्दूर प्रदान करनेको उद्यत हुये, उस समय देवता लोग जय-जयकार कर रहे थे ॥२५॥

भोगी यथा रक्तपरागमब्जे धृत्वा सनालेऽमृतलोलुपश्च ।
विभूषयंश्चन्द्रमसं विभाति सीतालिकं रामकरस्तथैव ॥२६॥

जैसे अमृतका लोभी सर्प-नाल युक्त कमल-पुष्पमें लालपरागको भरकर उससे चन्द्रमाको भूषित करते हुये शोभाको प्राप्त होता है, उसी प्रकार श्रीरामभद्रजूका प्रेमरूपी अमृतका लोभी हस्त कमल, सिन्दूरसे श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके मस्तकको अलंकृत करते हुये अत्यन्त सुशोभित हुआ ॥२६॥

गुरोर्वशिष्ठस्य निदेशतश्च कन्यावरौ तौ सुपमैकसिन्धू ।
एकासनस्थौ प्रवभूवतुस्तद् विलोक्य सर्वे जयमित्यथोचुः ॥२७॥

तत्पश्चात् आचार्य श्रीवशिष्ठजी महाराजकी आज्ञासे अनुपम सुषमा (निरतिशय सौन्दर्य) के सागर दोनों श्रीकन्या तथा वर सरकार एक आसन पर विराजमान हुये, इस छटाको देखकर सभी बोल उठे—श्रीनवदुलहिन दूलह सरकारकी जय हो, जय हो, जय हो ॥२७॥

श्रीकोशलेन्द्रः पुलकाचिताङ्गो निरीक्ष्य वध्वा सहितं स्वपुत्रम् ।
श्रीमैथिलेन्द्रो हि विदेहभूपो भाग्यश्रियं स्वामुदितामुदीक्ष्य ॥२८॥

श्रीदशरथजी महाराज श्रीवधू सरकारके साथ अपने श्रीराजदुलारेजीको देखकर, हर्ष पुलकित हो गये तथा श्रीमिथिलेशजी महाराज तो अपनी सौभाग्य लक्ष्मीको उदय हुई देखकर, आनन्द की अत्यन्त बाढ़से विदेहभूप (बेसुधि वालोंके राजा) ही हो गये ॥२८॥

अभूद्विवाहो मिथिलेशपुत्र्या रामस्य सर्वेश्वरयोरिहेति ।
आनन्दमग्नं समभूत्तदानीं लोकत्रयं वै परमोत्सवाढ्यम् ॥२६॥

सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशराजदुलारी श्रीसीताजी तथा सर्वेश्वर श्रीरामभद्रजूका विवाह श्रीमिथिलाजी में हो गया" इस आनन्दमें डूब कर उस समय तीनों लोक महोत्सवोंसे परिपूर्ण हो गये ॥२६॥

आज्ञां वशिष्ठस्य तदा निशम्य कुशध्वजं श्रीजनको जगाद ।

श्रीजनक उवाच ।

भ्रातः ! कुमारीः समुपानयात्र तासां विवाहोभविताऽधुनैव ॥३०॥

तब श्रीवशिष्ठजीकी आज्ञाको सुन कर श्रीजनकजी महाराज श्रीकुशध्वजजीसे बोले:—हे भइया ! राजकुमारियोंको यहाँ ले आइये, उनका भी विवाह अभी होगा ॥३०॥

अस्मत्कुलं पुण्यतमं कृतार्थं सौभाग्यपात्रं जगति प्रसिद्धम् ।
श्रीकोशलाधीशकुमारकाणामर्थे वृणोत्येष सुता वशिष्ठः ॥३१॥

ये भगवान् श्रीवशिष्ठजीमहाराज श्रीचक्रवर्ती-कुमारोंके लिये, पुत्रियोंको माँग कर रहे हैं, अतः आज हमारा यह निमिकुल परमपवित्र, कृतार्थ तथा जगतमें प्रसिद्ध सौभाग्यका पात्र है ॥३१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इदं प्रियं वाक्यमुदाहृतं तन्निशम्य हृष्टस्तनये स्वकीये ।
वैवाहिकालङ्कृतिशोभमाने तत्रानयामास सुमण्डपे सः ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-(हे तपोधने !) श्रीमिथिलेशजीमहाराजकी इस प्रिय-वाणीको सुनकर श्रीकुशध्वजजी महाराज हर्षित हो, विवाह-शृङ्गारसे सुशोभित, अपनी दोनों पुत्रियोंको, उस मण्डप में बुला लिये ॥३२॥

अथोर्मिला चापि विदेहपुत्री शीघ्रं जनन्या समलङ्कृताङ्गी ।
आनीय वैवाहिकमण्डपं सा निवेशिता सादरमिन्दुवक्त्रा ॥३३॥

पुनः श्रीविदेहजीमहाराजकी विवाह-शृङ्गारसे अलंकृत चन्द्रमुखी राजकुमारी श्रीऊर्मिलाजीको महारानीजीने बुलाकर उस मण्डपमें आदर-पूर्वक ॥३३॥

रीत्या यथाऽयोनिभवोर्विपुत्री रामाय राज्ञा विधिनाऽर्पिता वै ।
तथैव तिस्रः किल कन्यकाश्च समर्पिता राजकुमारकेभ्यः ॥३४॥

श्रीमिथिलेशजीमहाराजने जिस प्रकार विधि-पूर्वक अपनी अयोनिसम्भवा (अपनी इच्छासे प्रकट हुई) श्रीललीजीको श्रीरामभद्रजीको अर्पण किया, उसी प्रकार उन तीनों पुत्रियोंको भी श्रीचक्रवर्तीकुमारोंको प्रदान किया ॥३४॥

श्रीमाण्डवी श्रीभरताय दत्ता भावप्रधाना च सुदर्शनाभूः ।
पुत्र्यूर्मिला कान्तिमतीकुमारी श्रीलक्ष्मणायोज्ज्वलकीर्त्यकीर्त्तिः ॥३५॥

भावकी प्रधानतासे युक्ता श्रीसुदर्शनाकुमारी श्रीमाण्डवीजी श्रीभरतलालजीको व अनुरागसे कीर्त्तन करने योग्य कीर्त्तिवाली, श्रीकान्तिमतीजूकी पुत्री श्रीऊर्मिलाजी, श्रीलखनलालजीको दी गयी ॥

शत्रुद्विपे श्रीश्रुतिकीर्त्तिनाम्नी सुधीः सुभद्रातनया मनोज्ञा ।
समर्पिता सादरमम्बुजाक्षी यथाविधानं जनकेन राज्ञा ॥३६॥

श्रीसुभद्रा महारानीकी मनोहर, कमललोचना सुन्दरबुद्धि, सम्पन्ना पुत्री श्रीश्रुतिकीर्त्तिजी श्रीशत्रुघ्नलालजीको, श्रीजनकजी महाराजने आदर-पूर्वक अर्पण किया ॥३६॥

कन्याश्चतस्रो हि चतुर्वराश्च महार्हसिंहासनराजमानाः ।
तन्मण्डपे वै विभवश्च जन्तोरुरस्यवस्थाभिरिवोपपन्नाः ॥३७॥
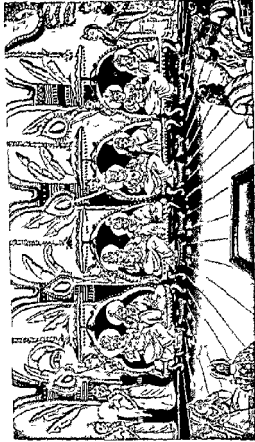
विवाह मण्डप में श्रीसीतारामजी महाराज आदि चारो वर दुलहिन सरकार ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इदं प्रियं वाक्यमुदाहृतं तन्निशम्य हृष्टस्तनये स्वकीये ।
वैवाहिकालङ्कृतिशोभमाने तत्रानयामास सुमण्डपे सः ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-(हे तपोधने !) श्रीमिथिलेशजीमहाराजकी इस प्रिय-वाणीको सुनकर श्रीकुशध्वजजी महाराज हर्षित हो, विवाह शृङ्गारसे सुशोभित, अपनी दोनों पुत्रियोंको, उस मण्डप में बुला लिये ॥३२॥

अथोर्मिला चापि विदेहपुत्री शीघ्रं जनन्या समलङ्कृताङ्गी ।
आनीय वैवाहिकमण्डपे सा निवेशिता सादरमिन्दुवक्त्रा ॥३३॥

पुनः श्रीविदेहजीमहाराजकी विवाह शृङ्गारसे अलंकृत चन्द्रमुखी राजकुमारी श्रीऊर्मिलाजीको महारानीजीने बुलाकर उस मण्डपमें आदर-पूर्वक ॥३३॥

रीत्या ययाऽयोनिभवोर्विपुत्री रामाय राज्ञा विधिनाऽर्पिता वै ।
तथैव तिस्रः किल कन्यकाश्च समर्पिता राजकुमारकेभ्यः ॥३४॥

श्रीमिथिलेशजीमहाराजने जिस प्रकार विधि पूर्वक अपनी अयोनिसम्भवा (अपनी इच्छासे प्रकट हुई) श्रीललीजीको श्रीरामभद्रजीको अर्पण किया, उसी प्रकार उन तीनों पुत्रियोंको भी श्रीचक्रवर्तीकुमारोंको प्रदान किया ॥३४॥

श्रीमाण्डवी श्रीभरताय दत्ता भावप्रधाना च सुदर्शनाभूः ।
पुत्र्यूर्मिला कान्तिमतीकुमारी श्रीलक्ष्मणायोज्ज्वलकीर्त्यकीर्तिः ॥३५॥

भावकी प्रधानतासे युक्ता श्रीसुदर्शनाकुमारी श्रीमाण्डवीजी श्रीभरतलालजीको व अनुरागसे कीर्तन करने योग्य कीर्तिवाली, श्रीकान्तिमतीजूकी पुत्री श्रीऊर्मिलाजी, श्रीलखनलालजीको दी गयी ॥

शत्रुद्विषे श्रीश्रुतिकीर्तिनाम्नी सुधीः सुभद्रातनया मनोज्ञा ।
समर्पिता सादरमम्बुजाक्षी यथाविधानं जनकेन राज्ञा ॥३६॥

श्रीसुभद्रा महारानीकी मनोहर, कमललोचना सुन्दरबुद्धि, सम्पन्ना पुत्री श्रीश्रुतिकीर्तिजी श्रीशत्रुघ्न-लालजीको, श्रीजनकजी महाराजने आदर पूर्वक अर्पण किया ॥३६॥

कन्याश्चतस्रो हि चतुर्वराश्च महार्हसिंहासनराजमानाः ।
तन्मण्डपे वै विभवश्च जन्तोरुरस्यवस्थामिरिवोपपन्नाः ॥३७॥

उस समय चारों कन्यायें तथा चारों दूलह सरकार उस मण्डपमें बहुमूल्य सिंहासनों पर इस प्रकार सुशोभित हुये, मानो जीवके हृदयमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति व तुरीया, इन चारों अवस्थाओंसे युक्त विश्व, तैजस, प्राज्ञ व ब्रह्म ये चारों शिशु विराजमान हों ॥३७॥

श्रीसीतयाऽम्भोजदलायताक्ष्या बाल्यादजस्रं परिलाल्यमानाः ।

तत्पादपद्मार्पितजीवितास्ताः सुताः सुतैः साकमपास्तरागैः ॥३८॥

कमल दल-लोचना श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीके द्वारा बाल्यावस्थासे ही लाड लडाई हुई तथा उनके श्रीचरण-कमलोंमें अपना जीवन अर्पण की हुई पुत्रियोंको, आसक्ति रहित पुत्रोंके सहित ॥३८॥

विवाहिता श्रीजनकात्मजेयं रामेण सार्द्धं नचिरादयोध्याम् ।

ध्रुवं गमिष्यत्यनया शुचार्त्ताः पूर्वाद्विसृष्टान्नजलाः कृशाङ्गीः ॥३९॥

निरीक्ष्य तद्भ्रातृगणस्य राज्ञः तासां प्रदानाय मनोऽभिलाषः ।

जातो यशस्यः सुमहांस्तदानीं सवल्लभस्याशु सुखैकमूलम् ॥४०॥

"ये श्रीजनकराजदुलारीजी विवाह हो जाने पर श्रीरामभद्रजूके साथ निश्चय ही शीघ्र श्री-अयोध्याजी चली जावेंगी, इस चिन्तासे युक्त, पूर्वसे ही अन्न-जल छोड़े कृशशरीर हुई देखकर, रानियोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंकी यश बढ़ाने वाली, सुखकी कारण स्वरूपा इच्छा, उन पुत्रियोंको दान करने के लिये मनमें उदय हो गयी ॥३९॥४०॥

शृङ्गारयित्वा बहुशः स्वपुत्रीः पुत्रांश्च सर्वाभरणैः परार्घ्यैः ।

श्रीजानकीपङ्क्तिकरयात्मजाभ्यामुवाच दैन्येन स दातुकामः ॥४१॥

अत एव अपने पुत्र तथा पुत्रियोंको बहुमूल्य भूषणोंसे शृङ्गार करके वे विधिपूर्वक श्रीजनक-राजदुलारीजू तथा श्रीदशरथनन्दन प्यारेको दान करनेकी इच्छासे दीनतापूर्वक बोले:–॥४१॥

श्रीजनकभ्रातृगण उवाच ।

स्वसॄरिमा बन्धुभिरन्विताश्च समर्प्यमाणास्तव दास्यरक्ताः ।

वत्से ! गृहाणाङ्घ्रिनिषेवणार्थं त्वत्पाणिपङ्केरुहलालिता हि ॥४२॥

हे वत्से ! आपके सेवानुरागी तथा आपके करकमलोंसे सदा लाड़को प्राप्त, अपने भाइयोंके सहित इन अपनी बहिना को हमारे अर्पण करते हुये, अपने श्रीचरण-कमलों की सेवाके निमित्त ग्रहण कीजिये ॥४२॥

हे वत्स ! सूर्यान्वयवारिजेन ! दयार्णवाया मिथिलेन्द्रपुत्र्याः ।
अस्या वियोगागमबोधदीनास्त्यक्तान्नतोयाः कृतलालनायाः ॥४३॥
एते कुमाराः स्वसृभिः परीताः समर्प्यमाणाः कृपया युवाभ्याम् ।
अङ्गीक्रियन्तां निमिवंशजाताः स्वभृत्यभावेन रघुप्रवीर ! ॥४४॥

हे सूर्यवंशी कमलको सूर्यके समान प्रफुल्लित करने वाले ! हे वत्स ! लाड करने वाली, दया सागरा इन श्रीमिथिलेश राजदुलारीजूके वियोग प्राप्ति के ज्ञानसे दीन, अन्न, जल छोड़े हुये बहिनोंके समेत इन निमि वंशी पुत्रोंको, आप दोनों श्रीललीलालजू कृपया सेवक-भावसे स्वीकार कीजिये, क्योंकि आप रघुवंश में सबसे अधिक दानवीर हैं ॥४३॥४४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तैरेतदुक्तो रघुवंशरत्न रामः सबाष्पाम्बुजपत्रनेत्रः ।
अङ्गीचकाराशु सबन्धुवर्गास्ताश्चैव पाणिग्रहणेन सर्वाः ॥४५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे कात्यायनि ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंके इस प्रकार का प्रार्थना करने पर सजलकमलदलके समान आर्द्र नेत्र हो, रघुकुल रत्न श्रीरामभद्रजूने बन्धु वर्गोंके सहित उन सभी निमिवंश कुमारियों को, पाणिग्रहणके द्वारा स्वीकार किया ॥४५॥

तासां च तेनेन्दुकला क्रमेण श्रीचारुशीला तदनन्तरं हि ।
श्रीलक्ष्मणाद्याश्च ततो गृहीताः शृङ्गारनिध्यादिकबन्धुभिस्ताः ॥४६॥

उन्होंने उनमें क्रमशः श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीचारुशीलाजी तत्पश्चात् श्रीशृङ्गारनिधि आदि भाइयोंके सहित श्रीलक्ष्मणाजी आदि कुमारियोंको ग्रहण किया ॥४६॥

इत्थं वधूभिः सहितान्स्वपुत्रान् स्वीयानुजैः स्वसृभिरन्विताभिः ।
प्रेमाप्लुतैर्दास्यपरायणाभिर्दृष्ट्वा नृपेन्द्रः समभूत्कृतार्थः ॥४७॥

इस प्रकार प्रेममग्न अपने भाइयोंसे युक्त सेवापरायणा अपनी बहिनोंके सहित, वधुओंसे सुशोभित अपने श्रीराजकुमारोंको देखकर, श्रीचक्रवर्तीजीमहाराज सब प्रकार कृतार्थ हो गये ॥४७॥

श्रीशिव उवाच ।

अङ्गीकृतोद्वाहसुवेषयोश्च श्रीजानकीराघवयोस्त्रिलोक्याम् ।
चक्षुष्मतां स्वर्णसुनीलवर्णं विचित्रसंमोहनमास तेजः ॥४८॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! सुन्दर विवाह-वेष धारी श्रीजानकीजी तथा प्यारे श्रीरघु-

नन्दनजूका सुवर्ण तथा नील रङ्गका तेज तीनों लोकोंमें आश्चर्य पैदा करनेवाला तथा मुग्धकारी हुआ अर्थात् त्रिलोकीको सम्यक् प्रकारसे मुग्ध कर लेनेमें बड़े आश्चर्यका काम किया ॥४८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एतावदुक्त्वा वचनं महार्थं महेश्वरोऽसौ छविसिन्धुमग्नः ।
संलब्धसञ्ज्ञः पुनराप्तकामो महीध्रपुत्रीं कृपयेत्युवाच ॥४९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे तपोधने ! महान् अर्थसे युक्त इस वचनको कह कर पूर्ण काम, महेश्वर (श्रीभोलेनाथ) जी, श्रीयुगल सरकारके उस छवि रूपी समुद्रमें डूब गये, पुनः सावधान हो कृपा-वश वे श्रीपार्वतीजीसे इस प्रकार बोले:-॥४९॥

श्रीशिव उवाच ।

गौरश्यामाद्भुतं तेजो दृशोर्यस्य विराजते ।
तस्य मायानटी किं हि विप्रियं कर्तुमर्हति ॥५०॥

जिस प्राणीके नेत्रोंमें वह गौर-श्याम तेज विराजमान है, माया रूपी नटी भला उस भाग्यशालीका क्या अपकार कर सकती है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥५०॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजो न यावद्धृदि भासते ।
तावदेव हि संसारो दुस्तरः शैलनन्दिनि ! ॥५१॥

हे श्रीगिरिराजनन्दिनीजू ! जब तक हृदयमें वह अद्भुत गौर एवं श्याम तेज भासित नहीं होता, तब तक संसारसे पार पाना कठिन है ॥५१॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजो दुर्लभं योगिनामपि ।
कृपासाध्यमतो विद्धि परं मुक्तैकजीवनम् ॥५२॥

वह अद्भुत गौर-श्याम तेज, मुक्त-प्राणियोंका परम जीवन स्वरूप तथा उन्हीं श्रीयुगलसरकारकी वश कृपासे ही प्राप्त होने योग्य है, अत एव उसकी प्राप्ति योगियोंके लिये भी दुर्लभ जानो५२

गौरश्यामाद्भुतं तेजो न लब्धं जीवता यदि ।
धिगस्तु जीवितं तत्तु पापमस्वार्थसाधनम् ॥५३॥

और यदि जन्म पाकर उस अद्भुत गौर-श्याम तेजकी प्राप्ति न हुई, तो अपने हित-साधनमें सहायक न बनने वाले इस पाप मय जीवनको धिक्कार है ॥५३॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजस्तेन लब्धं कथम्भवेत् ।
हृदयं दूषितं यस्य प्रिये ! दुर्वासनादिभिः ॥५४॥

हे प्रिये ! जिसका हृदय नाना प्रकारकी दुर्वासना आदिसे दूषित (अपवित्र) भला वह प्राणी उस अद्भुत गौर श्याम तेजको किसप्रकार प्राप्त कर सकता है ? अ.... करदेने साधनसे नहीं ॥५४॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजो येन लब्धं कथञ्चन ।
तस्य भाग्यं प्रशंसन्ति मुक्तकण्ठास्तु सूरयः ॥५५॥

विद्वान जन (सार असारको समझने वाले) उस प्राणीके भाग्यकी प्रशंसा करते हैं, जिसने किसी प्रकार भी उस अद्भुत गौर और श्याम तेजको प्राप्त कर लिया है ॥५५॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजो दृशोर्न्यस्तवतः प्रिये ।
ब्रह्मानन्दोऽपि दुर्गम्यो न लोभायोपकल्पते ॥५६॥

हे प्रिये ! जिसने अपने नेत्रोंमें उस अद्भुत गौर श्याम तेजको रख लिया है, उसे दुर्लभ ब्रह्मसुख भी लोभ नहीं करा सकता, विषय सुखकी बात ही क्या ? ॥५६॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजो हृदये यस्य राजते ।
तस्यानर्थं कथं कुर्यात्पुष्पबाणो गणैः सह ॥५७॥

जिसके हृदय (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) में वह अद्भुत गौर श्याम तेज विराजमान है भला उसका कामदेव अपने गणों (उर्वशी मेनकादि अप्सराओं) के सहित भी क्या अनर्थ(अहित) कर सकता है ? ॥५७॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजः सर्वगं विगतोपमम् ।
तस्मिन् दृष्टे शिवे ! नूनं नानात्वं विनिवर्तते ॥५८॥

वह अद्भुत गौरश्याम तेज सभी उपमाओंसे परे तथा सर्वत्र विराजमान है, जब उसका दर्शन हो जाता है, अर्थात् जब उसे भली प्रकारसे समझ लिया जाता है, तब एक वही दीखता है नानात्व भावना रहती ही नहीं। ५८॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजो यदि चित्तं समाविशेत् ।
जीवितं सफलं ज्ञेयं सर्वकृत्यमनुष्ठितम् ॥५९॥

वह अद्भुत गौर श्याम तेज यदि चित्तमें भली प्रकारसे बस जावे, तो जीवनको सफल और सभी कृत्योंको सम्पन्न जानना चाहिये ॥५९॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजो न यावन्नेत्रयोर्वसेत् ।
मनः क्षोभकरास्तावद्विषया वै जितात्मनाम् ॥६०॥

वह अद्भुत गौर श्याम तेज, जब तक हृदयमें नहीं बसता, तब तक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँचों विषय मन इन्द्रियोंको वशमें कर लेने वाले योगियोंके भी मनको क्षोभकारी रहते हैं ॥६०॥

विषयासक्तचित्तानां लोचनाशुद्धमन्दिरे ।
गौरश्यामाद्भुतं तेजः क्षणार्द्धं नावतिष्ठति ॥६१॥

जिनका चित्त इन पाँच विषयोंमें आसक्त है, उनके नेत्र रूपी अपवित्र मन्दिरमें, वह गौर-श्याम तेज, आधे क्षणके लिये भी नहीं ठहरता ॥६१॥

यत्र वै विषयासक्तिः सर्वोत्कृष्टेन वर्तते ।
गौरश्यामाद्भुतं तेजस्तत्र स्वप्नेऽपि दुर्लभम् ॥६२॥

जिसमें विषयासक्तिकी प्रधानता है, उस हृदयमें वह अद्भुत गौर श्याम तेज स्वप्नमें भी दुर्लभ है ॥६२॥

गौरश्यामाद्भुत तेजो यत्र सूक्ष्ममपि स्थितम् ।
तत्र गन्तुं न विषयाः शक्ताः सूर्यं यथा तमः ॥६३॥

जिस हृदयमें वह अद्भुत गौर श्याम तेज सूक्ष्म रूपसे भी विराजमान है, उसमें जानेके लिये ये पाँचो विषय इस प्रकार असमर्थ है, जैसे सूर्यमें अन्धकार ॥६३॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजो न यावदुपलभ्यते ।
अनिवार्य्यं ध्रुव ताव त्प्रिये ! संसारदर्शनम् ॥६४॥

हे प्रिये ! जब तक उस अद्भुत गौर श्याम तेजकी प्राप्ति नहीं होती, तब-तक संसारका दर्शन अनिवार्य है, अर्थात् संसार मयी दृष्टिका निवारण असम्भव है ॥६४॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजो यस्य बुद्धौ व्यवस्थितम् ।
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥६५॥

जिसकी बुद्धिमें वह अद्भुत गौर-श्याम तेज स्थित होगया, वह सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित हो जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥६५॥

गौरश्यामाद्भुतं तेजो भवभावविमोचनम् ।
चेन्न लब्धं मुधा सर्वं तपो यावदनुष्ठितम् ॥६६॥

संसारकी भावना छुड़ने वाला वह अद्भुत गौर-श्याम तेज यदि न प्राप्त हो सका, तो किया हुआ भी सब तप व्यर्थ ही है ॥६६।

तपस्तदेव मन्ये ऽहं यतस्तु त्रिविधाघहृत् ।
गौरश्यामाद्भुतं तेजो हृदयागारमावसेत् ॥६७॥

मैं उसी साधनको वास्तविक तप मानता हूँ, जिसके द्वारा तीनों प्रकारके पापोंको नष्ट करदेने वाला वह अद्भुत गौर-श्याम तेज अपने हृदय रूपी मन्दिरमें आ बसे ॥६७॥

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेज उपासते ।
न स प्राप्नोति संसिद्धिं वर्षैरप्ययुतायुतैः ॥६८॥

जो बिना गौर तेजके ही केवल श्यामतेजकी उपासना करता है, वह अर्बों वर्षोंमें भी अपने लक्ष्यकी पूर्ण सिद्धिको नहीं प्राप्त होता ॥६८॥

अहो रूपमनल्पाभं सर्वविश्वविमोहनम् ।
श्रीसीतारामयोर्दिव्यमवाच्यानन्दवर्षणम् ॥६९॥

अहो समस्त विश्वको मुग्ध करनेवाला, महान् प्रकाशमय, अवर्णनीय (वर्णनमें न आ सकने योग्य) आनन्दकी वर्षा करनेवाला श्रीसीतारामजीमहाराजका क्या ही दिव्य रूप है ! " ॥६९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

वर्णयन्नित्थमेवासौ पार्वतीं पार्वतीपतिः ।
तयोर्ध्यानसमासक्तो जगादानन्दनिर्भरः ॥७०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले-"हे प्रिय ! उस अद्भुत गौर श्याम तेजके ध्यानमें आसक्त, पार्वतीपति श्रीभोलेनाथजी इस प्रकार उस युगल तेजका वर्णन करते करते आनन्द निर्भर हो श्रीपार्वतीजीसे बोले ॥७०॥

श्रीशिव उवाच ।

स्यातामशेषवरदोत्तमपूज्यमाने श्रेयोनिधी शिरसिमे शरणे मदीये ।
सानन्तकामरतिमोहिविवाहवेषश्रीजानकीभरतपूर्वजपाणिपद्मे ॥७१॥

अपनी छविसे अनन्त काम व रतिको मुग्ध कर लेने वाले विवाह वेषसे युक्त श्रीजानकीजू तथा रघुनन्दन प्यारेजूके वे कर कमल मेरे शिरपर विराजमान हों, जो समस्त उत्तम वरदानियोंसे पूजित, कल्याणके भण्डार तथा सबकी रक्षा करने वाले हैं ॥७१॥

वन्दे मुनीन्द्रयतिसिद्धमनोऽलिजुष्टे वाञ्छाप्रदे सुजतुनूपुरशोभमाने ।
सानन्तकामरतिमोहिविवाहवेषश्रीजानकीभरतपूर्वजपादपद्मे ॥७२॥

अपनी छविसे अनन्त काम व रतिको मुग्ध करलेने वाले विवाह वेषसे युक्त श्रीजानकी रघुनन्दन प्यारेजूके ऽन श्रीचरण कमलोंको मैं प्रणाम करता हूँ, जो मुनिराज, यति, सिद्धोंके मनरूपी भँवरोंसे सेवित, भक्तों की हितकर इच्छाओं को प्रदान करने वाले, सुन्दर महावर तथा नूपुरोंसे सुशो भित हैं ॥७२॥

लोकोत्तरं त्रिविधतापहरं मनोज्ञं चित्ते ममावसतु दिव्यसुखैकवर्षि ।
सानन्तकामरतिमोहिविवाहवेषश्रीजानकीभरतपूर्वजमन्दहास्यम् ॥७३॥

अपनी छवि माधुरीसे अनन्त काम व रतिको मुग्ध करलेने वाले विवाह वेषसे युक्त श्री जानकी-रघुनन्दन प्यारे की मन्द मुस्कान जो दैहिक दैविक, भौतिक तीनों तापोंको हरण करने वाली, अलौकिक, मनोहर, तथा दिव्य सुखकी वर्षा करनेवाली हैं, वह मेरे चित्त में आवसें ॥७३॥

काम्यः कृपासमुपलम्य उदारभावः पुण्यो मनोहरतरो मयि सर्वदा ऽस्तु ।
सानन्तकामरतिमोहिविवाहवेषश्रीजानकीभरतपूर्वजसत्कटाक्षः ॥७४॥

अपने सौन्दर्यसे अनन्त रति व कामको मुग्ध करलेने वाले श्रीजानकी रघुनन्दनप्यारेकी वह कृपाकटाक्ष मेरे प्रति सदा बना रहे जो निरन्तर एक रस रहने वाला, चाहने योग्य तथा कृपासे ही प्राप्त होने वाला उत्कृष्ट भावसे युक्त, पवित्र एवं अत्यन्त मनोहर है ॥७४॥

विद्युत्पयोधरनिभा भुवनाभिरामा सौभाग्यवत्प्रवरचित्तगताऽस्तु हृत्स्था ।
सानन्तकामरतिमोहिविवाहवेषश्रीजानकीभरतपूर्वजकान्तकान्तिः ॥७५॥

अपनी सुन्दरतासे अनन्त काम व रतिको मुग्ध कर लेने वाले विवाह वेषसे युक्त श्रीजानकी रघुनन्दन प्यारेकी मनोहर कान्ति, जो बिजुली और सजलमेघोंके समान गौर-श्याम वर्ण वाली त्रिभुवनमोहिनी तथा अत्यन्त सौभाग्यशालियोंके ही चित्तमें जो प्राप्त होती है, वह मेरे नेत्रोंमें निवास करे ॥७५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रीशम्भुशुद्धमनसा हि विचिन्त्यमानौ सीरध्वजाब्जकरलब्धयथार्हपूजौ ।
ध्यायत्सुरद्रुमनिभौ शरणं ममास्तां श्रीजानकीरघुकुलोत्तमयोःशुभाङ्घ्री॥७६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः-हे प्रिये ! श्रीभोलेनाथजीका अत्यन्त पवित्र चित्त जिनके चिन्तनमें संलग्न है, जो श्रीमिथिलेशजी महाराजके करकमलोंसे यथोचित पूजित, ध्यान करने वालोंको कल्पवृक्षके समान सभी मनोरथोंको पूरे करने वाले श्रीजानकी रघुकुलोत्तम (श्रीरामभद्र) जूके मङ्गलमय वे श्रीचरण-कमल हमारी रक्षा करें। ७६॥

विद्युत्पयोदसदृशातिमनोज्ञवर्णौ बिम्बाधरौ शशिकरस्मितमोहनास्यौ ।
कैशोरकञ्जकमनीयदलायताक्षौ श्रीजानकीरघुवरौ सततं भजामः ॥७७॥

जो बिजुली तथा मेघके समान अत्यन्त मनोहर गौर-श्याम वर्णसे युक्त, बिम्बाफलके सदृश लाल अधर व चन्द किरणोंके समान मुस्कानसे मनोहर मुख वाले हैं, उन नवल खिले कमलके सदृश मनोहर नेत्रोंसे युक्त दोनों श्रीजानकी-रघुवरजूका हम सदा भजन करते हैं ॥७७॥

श्रीसूत उवाच ।

कात्यायनीमेतदसौ प्रभाष्य श्रीयाज्ञवल्क्यो भगवान्मुनीन्द्रः ।
श्रीजानकीरामविवाहवेषच्छविप्रसक्ताक्षियुगो बभूव ॥७८॥

श्रीसूतजी बोलेः—हे शौनकजी ! इस प्रकार श्रीकात्यायनीजीसे कहकर मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीयाज्ञवल्क्यजीके दोनों नेत्र, श्रीजनकराजदुलारी व श्रीरामभद्रजूके विवाहवेषकी छविमें आसक्त हो गये ॥७८॥

मनोज्ञं भावज्ञं निखिलजगदानन्दसदनं
स्मितास्यं बिम्बोष्ठं परिणयसुवेषेण सहितम् ।
प्रवर्षन्शोभाभ्रान्मुदमृतमदोऽपारविभवं
वसेद्रत्नं चित्ते विमलनिमिरघ्वोर्हि युगलम् ॥७९॥

जो मनके भावको जानने वाले, सम्पूर्णजगतके आनन्दस्थान, मुस्कानयुक्त मुस्कानयुक्त मुखारविन्द कुन्दरू के फलके सदृश लाल ओंठ, सुन्दर विवाह वेषसे युक्त हैं, वे अपने सौन्दर्य रूपी मेघसे आनन्दरूपी अमृतकी वर्षा करते हुये अपार वैभवसे युक्त निमि व रघुमहाराजके कुलके युगल रत्न श्रीसीतारामजी महाराज सदा हमारे चित्तमें निवास करें ॥७९॥

इमं सीतोद्वाहं निरतिशयमाङ्गल्यनिचयं
यतात्मा यो नित्यं पठति शृणुयाद्वा शुभमतिः ।
पथिस्थौ तौ तस्याखिलशुभनिधीशौ नयनयोः
शुभौ शीघ्रं स्यातां गदत गमनीयं किमु ततः ॥८०॥

इत्यष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

यह श्रीजनक नन्दिनीजूका विवाह मङ्गलोंकी राशि है इसको पवित्र बुद्धि पढ़ता अथवा सुनता है उसको सम्पूर्ण मङ्गलभण्डारों की स्वामिनीतथास्वामी श्रीसीतारामजी महाराज शीघ्रहो दर्शन देते हैं फिर उससे बढ़कर प्राप्त करनेही योग्य और क्या है ? ॥८०॥

अथैकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

कोहवर-लीला।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

अथो मुनीन्द्रस्य निदेशमेत्य हर्षाप्लुताभिः ससुता वरास्ते।
श्वश्रूभिरापूर्य विधिं समग्रं नीता द्युमत्कौतुकरम्यवेश्म ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे तपोधने! श्रीवशिष्ठजी महाराजकी आज्ञा पाकर हर्ष-मग्ना श्रीसुनयना अम्बाजी आदि सासुयें मण्डपकी सभी विधियों को पूरा करके, अपनी पुत्रियोंके सहित वर सरकारोंको प्रकाशयुक्त रमणीय कोहवर-भवनमें ले गयीं ॥१॥

प्राच्या निकेतं भरतो हि नीतो याम्याः सुमित्रातनयप्रधानः।
तथा ह्युदीच्या रिपुसूदनोऽपि रामः प्रतीच्याः स्वयमेव नीतः ॥२॥

पूर्व दिशाके भवनमें श्रीभरतजीको दक्षिणके भवनमें श्रीलखनलालजीको तथा उत्तर वालेमें श्रीशत्रुघ्नलालजीको और पश्चिम दिशा वाले मनोहर भवनमें स्वयं श्रीराम दूलहसरकारको ले गयीं२

इमानि चत्वारि गृहाणि राज्ञः खण्डे द्वितीये भवनस्य चासन्।
मध्याजिरे रत्नचमत्कृतोऽसौ वैवाहिको मण्डप आलयस्य ॥३॥

ये चारों भवन श्रीमिथिलेशजीमहाराजके राजभवनके द्वितीय खण्ड पर हुये और भवनके मध्य आँगनमें रत्नोंसे चमचमाता हुआ प्रकाशमान विवाह-मण्डप था ॥३॥

चामीकरोर्व्यां स्फटिकालयास्ते लसन्ति भव्याः समलङ्कृताः स्म।
ससारिकाकीरमृगादिचित्रैर्मनोहरैश्चित्तमुषो मुनीनाम् ॥ ४ ॥

वे चारो कोहवर-भवन स्फटिक मणिके बने हुये, सुवर्णमणि भूमिसे युक्त शुक-सारिका (तोता-मैना) हरिण आदिके मनोहर चित्रोंसे सब प्रकार सुसज्जित, मुनियोंके भी चित्तकी चोरी करने वाले हुये ॥४॥

रत्नाञ्चितादर्शततिर्विभाति रम्या चतुर्दिक्षु तथा वितानम्।
विनिर्मितं हाटकतन्तुभिश्च मध्योल्लसच्चन्द्रमणिप्रकाशम् ॥५॥

उन भवनोंमें चारों ओर रत्न जटित शीशोंकी पङ्क्तियाँ तथा मध्यमें चन्द्रमणिके प्रकाशसे युक्त, सोनेके धागोंसे निर्मित तथा तना हुआ चँदोवा सुशोभित था ॥५॥

सुवर्णसूत्रास्तरणं मनोज्ञं विचित्रचित्रं मृदुलं च यत्रास्ति ।
तेष्वालयेषूत्तमचित्रपङ्क्तिर्मनोभिरामा च सुरोत्तमानाम् ॥६॥

उन चारोंमें देवताओंके उत्तम, मनोहर, चित्रोंकी पङ्क्ति तथा सुवर्णके धागोंसे रचा हुआ अत्यन्त कोमल बिछावन सुशोभित था ॥६॥

तेषां चतुर्दिक्षु निकेतनानां सेवागृहा रम्यतरा विरेजुः ।
अवर्ण्यसौन्दर्यपरिष्कृता वै संदर्शनीया दिविषद्वराणाम् ॥७॥

उन महलोंमें चारों ओर अकथनीय सौन्दर्यसे युक्त, देवश्रेष्ठोंके लिये भी परम दर्शन करने योग्य मनोहर सेवागृह थे ॥७॥

रामे स्थिते कौतुकमन्दिरेऽद्धा तया विदेहाधिपराजपुत्र्या ।
स्त्रीणां सहस्रे रतिमोहिनीनां जयेति घोषस्तुमुलो बभूव ॥८॥

श्रीविदेहराजनन्दिनीजूके सहित श्रीरामभद्रजूके कोहबर भवनमें पहुँच जाने पर, अपनी छविसे रतिको मुग्ध कर लेने वाली, सहस्रों स्त्रियोंने अति-उच्च स्वरसे जय घोष किया ॥८॥

सुदर्शनाम्बा भरत सखीभी रामानुजं कान्तिमती तदैव ।
निन्ये सुभद्रा रिपुसूदनं च पृथक्पृथक् कौतुकवेश्म रम्यम् ॥९॥

तब श्रीसुदर्शना अम्बाजी सखियोंके सहित श्रीभरतलालजीको श्रीकान्तिमतीजी श्रीलखनलाल-जीको तथा श्रीसुभद्रा अम्बाजी शत्रुघ्नलालजीको, पृथक्‌कर उन मनोहर कोहबर, भवनोंमें ले गयीं ॥९॥

रामं ततो ऽयोनिजया निवेश्य भद्रासने रत्नचमत्कृते च ।
मृद्वंशुकाढ्ये मिथिलेश्वरी वै ताभ्यां सुरार्चां समकारयत्सा ॥१०॥

तत्पश्चात् मिथिलेश्वरी श्रीसुनयना महारानीजूने अपनी अयोनिजा श्रीसीताजूके सहित प्यारे श्रीरामचन्द्र सरकारजीको कोमल बिछावनसे युक्त, रत्नोंसे जगमगाते हुऐ मङ्गलमय आसन पर विराजमान करके दोनोंसे देवपूजन करवाया ॥१०॥

विधाय देवा नयनाभिरामं योषिद्वपुः संविविशुः प्रधानाः ।
द्रष्टुं सुखं कौतुकमन्दिरं स्वं तदद्भुतं भाग्यवशोपलब्धम् ॥११॥

भाग्यसे प्राप्त, उस अद्भुत सुखको देखनेके लिये प्रधान देव-गण, अपना मनोहर स्त्री रूप धारण करके उस कोहबर-भवन में जा पहुँचे ॥११॥

देव्यः समस्ताः प्रमदप्रमत्ताः सुदिव्यशृङ्गारसुशोभनाङ्गयः।
प्रागेव राज्ञ्या सममाप्रयाता दिव्यत्विषोऽशेषगुणप्रवीणाः ॥१२॥

उनकी दिव्यकान्ति वाली सम्पूर्ण गुणोंमें चतुरी देवियाँ अत्यन्त हर्षसे मतवाली हो, अपने अङ्गोंको दिव्य सुन्दर-शृङ्गारसे सुशोभित करके वहाँ पहले ही श्रीसुनयना अम्बाजूके साथ आचुकी थीं। १२॥

माङ्गल्यगीतानि निशामयन्त्यो वरं विलोक्य च्छविसिन्धुसारम्।
सौवर्णपात्रे मधुपर्कमाल्यो निधाय सद्यो ह्यनयंस्तु तत्र ॥१३॥

सखियाँ मङ्गल गीतोंको श्रवण करती हुई, छवि-समुद्रके सार स्वरूप श्रीदूलह-सरकार का दर्शन करके, सुवर्ण-पात्रमें मधुपर्क (मधु, घृत मिला हुआ दही आदि) रखकर वहाँ तुरत ले आईं १३

सिद्धिः स्वहस्तेन तदम्बुजाक्षी निधाय रामस्य तदा पुरस्तात्।
उवाच विस्मेरमुखी तमेतत् प्रियां प्रिय ! प्राशय लोकरीत्या ॥१४॥

तब कमलके समान नेत्र व मुस्कान युक्त मुख वाली, श्रीसिद्धिजी अपने हाथ से उसे श्रीरामभद्रजूके सामने रखकर बोलीं:-हे प्यारे ! लोक रीतिके अनुसार इसे आप अपनी श्रीप्रियाजीको पवाइये ॥१४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

सङ्कोचतः प्राशयितुं कराब्जं नोत्थीयमानं रघुनन्दनस्य।
प्रियां सखीभिः परिणोदितस्यासकृद्यदा शैलसुता ददर्श ॥१५॥

सखियोंके बारम्बार प्रेरणा करने पर भी, सङ्कोचके कारण श्रीपर्वतीजीने, श्रीरघुनन्दन प्यारेजूके हाथको जब श्रीप्रियाजीको पानेके लिये उठते नहीं देखा ॥१५॥

तदा गृहीत्वा स्वकरेण पाणिं रामस्य सीतां पुलकायमाना।
तत्प्राशयामास विवाहभूषाचमत्कृताङ्गीं गिरिजा प्रहृष्टा ॥१६॥

तब पुलकायमान होती हुई वे अपने हाथसे श्रीरामभद्रजूका हाथ पकड़कर, विवाह-शृङ्गारसे चमत्कृत अङ्गोंवाली श्रीकिशोरीजीको, अत्यन्त हर्षके साथ उसे मधुपर्कको पवाने लगीं ॥१६॥

तदद्भुतं शातमवेक्ष्य सख्यः प्रेमप्रमत्ता यतपद्महस्ताः।
श्रीलक्ष्मणाद्या अवदन्विनीतास्तां प्राशयेतीन्दुमुखि ! स्वकान्तम् १७

उस अद्भुत सुखको देखकर श्रीलक्ष्मणाजी आदि प्रेममें मतवाली सखियाँ विनम्रभावसे अपने

हस्तकमल जोड़कर उन श्रीमिथिलेश राजदुलारीजूसे बोलीं:-हे श्रीचन्द्रमुखीजू! अब आप श्रीप्राण-प्यारेजूको पवाइये ॥१७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

नोच्छिष्टमाज्ञाय तदात्मनः सा पस्पर्श तत्पात्रमपीति दृष्ट्वा ।
सौपम्यलेशाहृतविश्वगर्वा गिरा गृहीतं करपङ्कजं तत् ॥१८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये! अपनी सुन्दरताके कणमात्रसे समस्तविश्वके अभिमानको हरण करनेवाली वे श्रीललीजीने उस मधुपर्कको अपना उच्छिष्ट जानकर उसके पात्रको भी नहीं स्पर्श किया, यह देखकर श्रीसरस्वतीजी उनके कर-कमलको पकड़ लिये ॥१८॥

तस्याः कराब्जेन करस्थितेन संप्राशयन्ती नयनाभिरामम् ।
रामं स्म चायाति न मोदपारं वागीश्वरी श्रीमिथिलेन्द्रपुत्र्याः ॥१९॥

पुनः अपने हाथमें विराजमान श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके उस कर-कमल द्वारा, अपनी छबिसे नेत्रोंको अतीव सुखदेने वाले श्रीरामभद्रजीको, उसी मधुपर्कको पवाती हुई वे श्रीवागीश्वरीजी, आनन्द का पार ही नहीं पारही थीं ॥१९॥

उच्छिष्टसंप्राशनको विधिर्वै ताभ्यां मुदा मञ्जुगीतवाद्यैः ।
इत्थं भवानी विधिकन्यकाभ्यां सुकारितोऽद्वैतमतिप्रसिद्ध्यै ॥२०॥

इस प्रकार उन दोनों श्रीपार्वती व श्रीसरस्वतीजीने दोनों अलौकिक दुलहिन-दूलह सरकारसे मङ्गलमय गीत वाद्योंके सहित परस्पर पूर्ण-अभेदबुद्धिकी सिद्धि (प्राप्ति) के लिये उच्छिष्ट संप्राशन नामकी विधिको हर्षपूर्वक करवाया ॥२०॥

आसाद्य सङ्केतमयोनिजाया मातुर्वयस्या जलपूर्णपात्रम् ।
उपानयत्केलिविलोलचित्ता सौवर्णकं रत्नचमत्कृतं द्राक् ॥२१॥

पुनः अयोनिजा अर्थात् बिना किसी कारण (अपनी इच्छा) से प्रकट हुई श्रीजनक राज-दुलारी जीकी श्रीअम्बाजीका सङ्केत पाकर, हास्य-लीलाके लिये सदा चञ्चलचित्त रहने वाली सखी, पूर्ण जल भरे हुये रत्न जटित सोनेके पात्रको, तत्क्षण समीपमें ले आई ॥२१॥

प्रपश्यतोस्तर्हि तयोर्मनोज्ञे वराटिके श्रीमिथिलेश्वरी द्वे ।
निपात्य तस्मिन्मणिनिर्मिते च प्रोवाच वाक्यं वरकन्यके ते ॥२२॥

महारानी श्रीसुनयनाजी दोनों वर-कन्या सरकारके देखते हुये, मणिनिर्मित दो मनोहर कौडियों को उसमें, डाल कर बोलीं ॥२२॥

श्रीसुनयनोवाच।

पूर्वं समुद्धृत्य कपर्दिका मे प्रदर्शिता येन यया च भूयात्।
सा वा स वै कौतुकमन्दिरस्य ह्यस्यांसभायां जयपत्रमीयात् ॥२३॥

इस पात्रसे कौडी निकालकर हम जो पहिले दिखावेगा या दिखावेगी, उसी को इस समाजमें कोहबर-भवनका जयपत्र प्राप्त होगा ॥२३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

इत्थं वदन्त्यां वचनं च तस्यां कलं जगुर्मङ्गलगीतमाल्यः।
रामः करं वारिगतं विधाय तामुद्यतोऽन्वेष्टुमभूज्जयेप्सुः ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनी ! श्रीसुनयना अम्बाजीके इस प्रकार कहने पर सखियाँ मङ्गलगीत गाने लगीं, तब श्रीरामवल्लह सरकारजी जयके इच्छुक हो, उस जलमें अपना हस्त कमल छोड कर कौडीका खोजनेके लिये उद्यत हुये ॥२४॥

तत्रैव दृष्ट्वा मणिकङ्कणेऽसौ प्रियामुखेन्दुप्रतिबिम्बमञ्जः।
तद्दर्शनासक्तसरोजनेत्रो वराटिकां स्पर्ष्टुमभूदनीशः ॥२५॥

उसी समय मणिमय कँगनामें श्रीप्रियाजूके मुखचन्द्रका दर्शन करके उनके कमलनेत्र उस मुखचन्द्रके दर्शनोंमें आसक्त हो गये, अतः वे जलमें पडी कौडीको स्पर्श करनेमें भी असमर्थ रहे ॥२५॥

लब्ध्वाऽवकाशं मिथिलेन्द्रपुत्र्याः करारविन्देन कपर्दिकेते।
जलात्समुद्धृत्य ततो जनन्यै समर्पिते तत्क्षणमम्बुजाक्ष्या ॥२६॥

इस लिये अवकाश पाकर, कमललोचना श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी, अपने कमलवत् कोमल हाथसे उन दोनो कौडियोंको जलसे निकालकर, श्रीसुनयना-अम्बाजीको तत्क्षण अर्पण कर दिया२६

जितेति घोषं नृपनन्दिनी नः पराजितो दाशरथिः प्रियोऽयम्।
एणीदृशः पाणितलं वयस्याश्चक्रुः स्मितास्याः परिनादयन्त्यः ॥२७॥

मुस्कान युक्त मुखवाली, मृगलोचना सखियाँ, हाथकी ताली बजाती हुई यह घोष करने लगीं:—हमारी श्रीराजनन्दिनीजू जीत गयीं, ये श्रीदशरथनन्दन प्यारेजू हार गये ॥२७॥

सख्यस्तदानीमथ शारदाद्या विशारदाः सादरमेकमत्यः ।
अकारयञ्छद्ममयीरनेका लीला वरैं राजसुतामुदे ताः ॥२८॥

पुनः श्रीशारदाजी आदि वे परम-चतुरी सखियाँ एक मति हो श्रीजनकदुलारीजू आदि राजकुमारियोंकी प्रसन्नताके लिये चारो वर-सरकारों द्वारा अनेक प्रकारकी छलपूर्ण लीला करवाने लगीं ॥२८॥

क्षुधाऽन्विता मे तनयेति चेतसा विचारयन्ती न चिराच्छुचाऽऽकुला ।
तद्वेश्मनोऽधः स्थितगेहमालिभी राज्ञी सुतां स्वां गमयाञ्चकार ह ॥२९॥

"हमारी श्रीललीजी भूखी होंगी" श्रीसुनयना महारानीजीने मनमें यह विचार करती हुई शोक-से व्याकुल हो तुरत अपनी श्रीललीजीको सखियोंके द्वारा उस कोहवर भवनके नीचे वाले स्थित भवनमें भेज दिये ॥२९॥

निदेशमाश्रुत्य सुदर्शनादयो राज्यो महिष्या मिथिलेशितुर्मुदा ।
कन्याः स्विकास्ता गमनं प्रचक्रिरे तस्या मनोहारि रहो निकेतनम्-३०

श्रीसुदर्शनाजी आदि रानियोंने श्रीसुनयना महारानीजीकी आज्ञा सुनकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी अपनी उन कन्याओंको उनके ऐकान्तिक भवनमें पहुँचाया ॥३०॥

सषड्रसं वेदविधं सुधोपमं सुवासितं स्वादुयुतं ततोऽशनम् ।
सौवर्णपात्रेषु निधाय सत्वरं समानयामास विदेहवल्लभा ॥३१॥

तत्पश्चात् छः रसोंसे युक्त चार प्रकारके अमृतके समान स्वादिष्ट तथा गुणकारी भोजनोंको सुवर्णके पात्रोंमें सजाकर श्रीविदेहराजवल्लभाजू वहाँ तुरत ले आईं ॥३१॥

तदर्पितं न स्पृशतीति पाणिना वरः समालोक्य समादृतोऽपि सन् ।
क्षुधा मनोभावममुष्य पुष्कलं राज्ञी ददावीप्सितपारितोषिकम् ॥३२॥

सब प्रकार आदर करने पर भी, श्रीवर सरकार उस अर्पित भोजनको छू भी नहीं रहे हैं, यह देखकर उनके मनोभावको समझकर श्रीसुनयना महारानीजीने उन्हें यथेष्ट भेंट प्रदानकी ॥३२॥

तदा सखीनां सरसं रघूद्वहः शृण्वन् कलं हास्यगिरो मनोहराः ।
श्वश्र्वा वचोभिर्मधुरैः प्रतोषितो भोक्तुं ह्यमावारभत स्मिताननः ॥३३॥

तब अपनी सासुजीकी मधुर वाणी द्वारा पूर्ण सन्तुष्ट हो, सखियोंके हास्ययुक्त वचनोंको श्रवण करते हुये, मन्द मुस्कान युक्त मुख वाले वे वर सरकार श्रीराम भद्रजू भोजन करने लगे।३३॥

शेषेभ्य एवाशु वरेभ्य आलिभिः संप्रेष्य साहित्यमथाशनस्य वै ।
यथा हि रामाय तथैकभावतो जगाम तेषां भवनानि सा क्रमात् ॥३४॥

पुनः शेष तीनों वरोंके लिये श्रीरामभद्रजूके समान एकभावसे सम्पूर्ण भोजन सामग्रीको सखियोंके द्वारा शीघ्र भेज कर, स्वयं क्रमशः उनके भवनोंमें गयीं ॥३४॥

सुलालयन्ती बहुशो मुदाप्लुता प्रसादयित्वेप्सितपारितोषिकैः ।
आज्ञां वरेभ्यः सुगिरा समादिशद्भोक्तुं सहस्रालियुतेभ्य आदरात् ३५

पुनः हजारों सखियोंसे युक्त उन वरोंको बहुत प्रकारसे प्यार करती हुई, उन्हें अभीष्ट भेंट देकर आनन्दमें डूबी श्रीसुनयना महारानीजीने भोजन करनेकी आज्ञा दी ॥३५॥

पुनः समासाद्य रहः स्वमन्दिरं निलिम्पनाथादिककौतुकप्रदम् ।
ददर्श पुत्रीं निमिजासहस्रकैर्निषेव्यमाणां परिदर्शितालसाम् ॥३६॥

अपनी शोभासे इन्द्र आदिको भी आश्चर्ययुक्त करनेवाले, अपने ऐकान्तिक भवनमें पहुँचकर हजारों निमिवंश कुमारियोंसे सेवित, आलस्य प्रकट करती हुई अपनी श्रीललीजीको देखा ॥३६॥

तामङ्कमादाय मृगायतेक्षणां विवाहभूषापरिदीप्तविग्रहाम् ।
प्रेमातिरेकेण बभूव विह्वला प्रशंसयन्ती निजभाग्यवैभवम् ॥३७॥

विवाहके शृङ्गारसे अत्यन्त प्रकाशमान श्रीअङ्गोंसे युक्त, हरिणके सदृश सुन्दर नेत्रोंवाली उन श्रीललीजीको अपनी गोदमें लेकर, अपने भाग्यरूपी सम्पत्तिकी प्रशंसा करती हुई वे प्रेमकी अधिकतासे विह्वल हो गयीं ॥३७॥

पुनः समाधाय मनो मनस्विनी श्रीकान्तिमत्यादिभिराशु बोधिता ।
निवेश्य मध्ये स्वसुतामयोनिजां कुमारिकाणां स्वकुलस्य हर्षिता ॥३८॥

पुनः श्रीकान्तिमतीजी आदि रानियोंके सावधान करने पर उदार मनवाली श्रीसुनयनामहारानीजी मनको सावधान करके, अपने कुलकी कुमारियोंके बीचमें अपनी अयोनिजा श्रीललीजीको विराजमान करके हर्षको प्राप्त हुईं ॥३८॥

संस्थाप्य पात्राणि शतानि चाग्रतः प्रत्येक पुत्र्या मणिभास्वराण्यथ ।
पृथक्पृथग्भोजनवस्तुसंयुतान्युदारभावा सकला ददर्श ताः ॥३९॥

तत्पश्चात् अत्यन्त उत्कृष्ट भाववाली वे श्रीअम्बाजी प्रत्येक पुत्रीके सामने पृथक्-पृथक् मणियोंसे प्रकाशमान, भोजनकी वस्तुओंसे युक्त सैकड़ों पात्रोंको रखकर सभीकी ओर देखती हुई ॥३९॥

मोदाब्धिमग्ना मिथिलेश्वरी तदा सर्वाम्य आज्ञामशनाय चादिशत् ।
कुमारिकाभ्योऽवनिजापदाब्जयोः प्रसक्तधीभ्यो जलजायतेक्षणा ॥४०॥

आनन्द-सागरमें डूबी हुई कमलके समान विशाल नेत्रों वाली श्रीसुनयना महारानीजीने श्रीललीजीके चरण-कमलोंमें आसक्त हुई बुद्धि वाली सभी कुमारियोंको, भोजन करने के लिये आज्ञा प्रदान की ॥४०॥

लब्ध्वा प्रसादं दुहितुर्धरेशितुः समाशुरम्बेङ्गितमुद्विलोक्य ताः ।
अत्यल्पमत्वा मिथिलेशनन्दिनी गता विरामं सुमनोज्ञदर्शना ॥४१॥

वे श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजू का प्रसाद प्राप्त करके तथा श्रीअम्बाजीका सङ्केत देखकर भोजन करने लगीं, किन्तु अत्यन्त मनोहर दर्शनों वाली श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजू, अत्यन्त थोड़ा भोजन करके रुक गयीं ॥४१॥

ततः समस्ता निमिवंशसम्भवा अप्रार्थयन्भोक्तुमुदीक्ष्य तन्मुहुः ।
मोघं प्रयाते विनये समत्यजंस्तस्मिञ्छुचा ता युगपद्धि भोजनम् ॥४२॥

यह देखकर सभी निमिवंश कुमारियोंने बारंबार भोजन करनेके लिये उनसे प्रार्थनाकी, और उसके सफल न होने पर शोकवश उन्होंने भी एकबारगी भोजन छोड़ दिया ॥४२॥

श्रीसुनयनोवाच ।

किमर्थमश्नासि न मोदवारिधे ! भद्रं हि ते ब्रूहि तदाशु मे प्रिये ! ।
त्यक्ताशनायां त्वयि तेऽनुजा इमा सर्वाः प्रपश्योज्झितभोजनाः स्थिताः ॥४३

श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीललीजीसे बोलीं:-हे समुद्रवत् अथाह आनन्दवाली ! हे प्यारी ! आपका कल्याण हो, मुझे बतलाइये-आप भोजन क्यों नहीं कर रही हैं ? आपके छोड़ते ही देखिये आपकी ये सभी बहिनें भी भोजन छोड़बैठी हैं ॥४३॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवमुक्ताऽवनिनाथनन्दिनी जगाद सा मातरमम्बुजेक्षणा ।

श्रीसीतोवाच ।

नात्तुं ममोत्तिष्ठति हेऽम्ब वै करः किं कारणं तेऽन्यदहं ब्रवीम्यतः ॥४४॥

भगवान् शिवजी बोलेः-हे गिरिराजकुमारी ! कमललोचना, अवनिनाथ श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी श्रीअम्बाजीके इस प्रकार कहने पर उनसे बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! भोजन करने के लिये मेरा हाथ ही नहीं उठ रहा है अत एव दूसरा कारण क्या बताऊँ ? ॥४४॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं सुमुल्याभिहितं वचोऽमृतं श्रुत्यञ्जलिभ्यां च निपीय सादरम् ।
स्वदेवरस्त्रीभिरसौ प्रचोदिता न्यवेशयत्स्वाङ्कमुपेत्य तां सुताम् ॥४५॥

भगवान शिवजी बोलेः-हे प्रिये ! श्रीसुमुखीजूके इस प्रिय वचन रूपी अमृतको अपने कान रूपी अञ्जलियोंसे पीकर, आदरपूर्वक अपनी देवरानियोंकी प्रेरणासे श्रीललीजूके पास जाकर श्रीसुनयना महारानीजीने, उन्हें अपनी गोदमें बिठा लिया ॥४५॥

ग्रासं विरच्येन्दुमुखीं दरस्मितां वत्से ! भवत्याऽयमयं प्रगृह्यताम् ।
इत्युचरन्ती प्रणयेनपुत्रिकां तां प्राशयामास विदेहवल्लभा ॥४६॥

विदेह, वल्लभा श्रीसुनयना महारानीजी ग्रास बनाकर किञ्चित् मुस्कान युक्त चन्द्रमाके समान परम-आह्लादकारी, प्रकाशमान मुख वाली अपने श्रीललीजीसे हे वत्से ! इस ग्रासको ले लीजिये, अच्छा इस ग्रासको ले लीजिये, इस प्रकार प्रेमपूर्वक कहती हुई उन्हें भोजन कराने लगीं ॥४६॥

सा तद्गृहीत्वा जलजाभपाणिना ग्रासत्रयं नाश चतुर्थकं यदा ।
चन्द्रप्रभा प्रीतिगृभीतया गिरा जगाद सग्रासकराम्बुजेति ताम् ॥४७॥

श्रीललीजी अम्बाजीके कमलवत् हाथोंसे तीन ग्रास लेकर चौथेको जब नहीं खाती हुईं, तब श्रीचन्द्रप्रभाजी अपने हस्त कमलमें ग्रास लेकर प्रेमभरी वाणी द्वारा बोलीं ॥४७॥

श्रीचन्द्रप्रभोवाच ।

स्नेहोऽस्ति चेन्मय्यनुरागविग्रहे किञ्चित्तवाप्येकमिमं ह्युरीकुरु ।
स्वस्त्यस्तु ते श्रीसुकुमारि ! शोभने ! भावप्रसन्ने !ऽखिलभावपूरिके ४८

हे शोभने (सुन्दरी) जू ! हे श्रीसुकुमारीजू ! आप सभीके भावोंकोपूर्ण करती हैं तथा भाव से ही प्रसन्न होती हैं, आपका मङ्गल हो ! यदि मेरे प्रति आपका कुछ भी स्नेह है, तो मेरे एक इस ग्रासको स्वीकार कीजिये ॥४८॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवमुक्ता मिथिलेशनन्दिनी जग्राह तद्ग्रासमसौ मुदान्विता ।
ततस्तु सर्वाभिरगाधनिश्चया संभोजितेत्थं क्रमशो दयामयी ॥४९॥

अथाह दृढसङ्कल्पवाली दयामयी श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूने उनके उस ग्रासको हर्षपूर्वक ग्रहण कर लिया तत्पश्चात् क्रमशः इसी प्रकार सभी माताओंने उनको पारी पारीसे भोजन कराया४९

कुमारिकाश्चापि तथैव तर्पिताः सर्वाः स्वमात्रा स्वसृमातृभिः क्रमात् ।
सर्वाभिरानन्दयुताभिरुर्विजा यथैव तामिर्निमिवंशसम्भवाः ॥५०॥

जैसे श्रीभूमिनन्दिनीजीको उनकी माताजीके समेत आनन्द युक्त सभी रानियोंने क्रमशः भोजन के द्वारा तृप्त किया, उसी प्रकार निमिवंशमें प्रकट हुई सभी कुमारियोंको ॥५०॥

प्रक्षालितेन्द्वास्यकराङ्घ्रिपङ्कजा ताभिः परीताऽवनिनाथनन्दिनी ।
प्रदाय ताम्बूलमथाम्बया मुदा प्रस्वापिता सादरमात्मसद्मनि ॥५१॥

पुनः श्रीसुनयना अम्बाजीने उन सभी पुत्रियोंके सहित श्रीललीजूके मुखचन्द्र तथा हस्त-चरण कमलोंको धोकर आनन्द-पूर्वक उन्हें पान देकर अपने भवनमें शयन कराया ॥५१॥

विदेहराजः सह बन्धुभिः स्वकैः सोद्वाहपात्रं निशि भोजनालये ।
श्रीकोशलेन्द्रं कृतभोजनं मुदा ह्यप्रापयत्तं जनवासमन्दिरम् ॥५२॥

उधर अपने भाइयोंके सहित श्रीविदेहजी महाराजने वरातके साथ अयोध्यापति श्रीदशरथजी महाराजको ज्यारू महलमें भोजन कराकर आनन्द पूर्वक उन्हें जनवासभवनमें पहुँचाया ॥५२॥

लब्ध्वाऽवकाशं स विधाय भोजनं सर्वैर्दिवास्वापगृहे समस्वपत् ।
प्रस्वापितांस्तांश्च तथैव ता नृपो विज्ञाय राज्ञ्या तनया वरान्सुखम् ५३

पुनः श्रीमहारानीके द्वारा कन्याओं तथा वरोंको शयन कराया हुआ जानकर उन्होंने अवकाश मिलने पर भोजन करके सबके सहित दिनके विश्रामभवनमें शयन किया ॥५३॥

अम्बा सुनेत्रा स्वसखीर्विचक्षणा संप्रेष्य वै कौतुकमन्दिराणि सा ।
आज्ञां वधूभ्यः परिदिश्य चास्वपत्ततो वराणां शयनाय सत्वरम् ॥५४॥

इधर अत्यन्त चातुर्य्यगुण सम्पन्ना श्रीसुनयनाअम्बाजी अपनी सखियोंको कोहबर-भवनोंमें भेजकर, सिद्धिजी आदि वहुओंके लिये तुरत चारो वर कुमारोंको शयन करानेकी आज्ञा देकर, स्वयं भी शयन करती हुईं ॥५४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आह्लादसिन्ध्वाप्लुतमानसा सती माताऽस्मदीया सदयोरुवत्सला ।
निद्रामसौ प्रेष्ठ ! भवेदवाप्तये कथं समर्थाऽगमभाग्यभूषिता ॥५५॥

श्रीस्नेहपराजी श्रीरामभद्रजूसे बोलीं:-हे प्यारे ! अन्यको न प्राप्त होने योग्य सौभाग्य अलंकृत हमारी अत्यन्त वात्सल्यरसभरी हुई उन दयालु माँ (श्रीसुनयनाअम्बाजी) का ज मनही आह्लादसागरमें डूबा पड़ा था तब भला वे निद्रा लेनेको किस प्रकार समर्थ हो सकती थीं अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं ॥५५॥

निद्रां प्रयातास्वखिलासु वै ततः शनैः समुत्थाय ददर्श भूमिजाम् ।
शशोर्णकप्रावृतकान्तविग्रहां शरत्प्रपूर्णेन्दुमनोहराननाम् ॥५६॥

अत एव सबके सो जाने पर वे धीरेसे उठीं और खरगोशके रोमोंसे बने हुये ऊनी दुशाले ढके, मनोहर शरीरवाली अपनी शरद्ऋतुके पूर्णचन्द्रमाके समान परम प्रकाशमय, आह्लाद-परि मुखवाली श्रीललीजूका दर्शन करने लगीं ॥५६॥

क्वचिच्छयाना क्वचिदुत्थिता पुनः पश्यत्यसौ तच्छविसिन्धुमीप्सितम् ।
बिम्बोष्ठमब्जाक्षमुशस्मितानन न तृप्तिमेति स्म हृदा कथञ्चन ॥५७॥

वे कभी किसीके जागनेकी सम्भावनासे सो जातीं और कभी सबको सोई हुई जानकर दर्श की अधीरता वश उठकर अपने मनोऽभिलषित उनके बिम्बा फलके समान लाल ओष्ठ, कमल समान विशाल नेत्रोंसे युक्त, समुद्रके समान अथाह सौन्दर्यवाले मनोहर मुस्कान युक्त श्रीमुखारवि का दर्शन करतीं किन्तु उससे वे किसी प्रकार भी तृप्त नहीं हो रही थीं ॥५७॥

निसर्गसम्मोहनरूपसम्पदा गुणैर्मनोज्ञैश्चरितैर्हृदिस्पृशैः ।
भूत्वा ह्यसुभ्योऽपि महावरीयसी प्राणप्रियेयं जगतां विराजते ॥५८॥

इत्येकोनशततमोऽध्यायः ॥९९॥

अपने सम्यक् प्रकारसे मुग्धकारी, सौन्दर्य सम्पत्ति, तथा मनोहर गुणगण एवं अत्य हृदयाकर्षक चरितोंके द्वारा सभी चर-अचर प्राणियों की प्राणोंसे भी अत्यन्त श्रेष्ठ होकर, हमा ये श्रीप्राणप्रियाजी सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हैं ॥५८॥

—: मासपारायण-विश्राम २७ :—

अथ शततमोऽध्यायः ॥१००॥

श्रीसुनयना अम्बाजीकी आज्ञानुसार श्रीसिद्धिजीके द्वारा चारो वरों का
कोहबर-भवनमें शयन-

श्रीशिव उवाच।

राज्ञ्यां गतायां तदधः स्वमन्दिरं सख्यः सुमुख्यो मृगशावकेक्षणाः।
हास्योक्तिभी राममनङ्गमोहनं ता हासयन्त्यो मुदमद्भुतां ययुः ॥१॥

भगवान् शिवजी बोले हे पार्वती! जब श्री सुनयना महारानीजी उस कोहबर-भवनके नीचे वाले अपने भवनमें चली गयीं, तब मृग शिशुके समान विशाल चञ्चल नेत्रों तथा सुन्दर मुखों वाली वे सखियाँ अपनी छबिसे काम को भी मुग्ध कर लेने वाले श्रीदूलह-सरकार को हास्य-मय वचनों के द्वारा हँसाती हुई विलक्षण सुखको प्राप्त हुईं ॥१॥

संपाययित्वा चषकेण निर्मलं सुधोपमं श्रीकमलासरिज्जलम्।
रामाय लब्धाचमनाय चार्पयंस्ताम्बूलवीटीः कृतभोजनाय ताः ॥२॥

पुनः श्रीकमलानदीके अमृत समान सुन्दर निर्मल जलको, सुवर्ण-मय गिलाससे पिलाकर आचमन करलेने पर उन्होंने श्रीरामभद्रजी को पानके बीरे अर्पण किये ॥२॥

उपानहौ तस्य सुवस्त्रवेष्टिते व्यकल्पयन्दिव्यविभूषणान्विताम्।
देवीं सुपीठस्थगतां सकौतुकं पुष्पस्रजाढ्यां वसनावृताननाम् ॥३॥

इसके बाद सखियोंने दूलह सरकारकी जूतियोंको, सुन्दर वस्त्रसे लपेट कर उन्हें दिव्य भूषणोंसे अलंकृत सुन्दर चौकी पर विराजमान, पुष्पमालाओंसे सुशोभित वस्त्रसे मुख ढकी हुई देवीजी बना दिया ॥३॥

ज्ञात्वा तदम्भोजदलायतेक्षणा सिद्धिर्महाहास्यकलाविशारदा।
जगाद रामं स्मितपूर्वया गिरा माध्व्येति वाक्यं पिकमोहनस्वना ॥४॥

हास्यकलामें अत्यन्त प्रवीणा कमललोचना तथा अपने स्वरसे कोयलोंको मुग्ध करने वाली श्रीसिद्धिजी इस (लीला) को जानकर मुस्कान पूर्वक मधुरवाणी द्वारा श्रीदूलहसरकार श्रीरामभद्रजूसे बोलीं—॥४॥

श्रीसिद्धिरुवाच ।

उपस्थितोऽयं समयः शुभावहो देव्यर्चनस्यातिवरोऽब्जलोचन !
इतस्ततः साकमुपेत्य वै मया तदालयं तां परिपूजय द्रुतम् ॥५॥

हे कमल-लोचन ! देवी-पूजनका यह अति उत्तम मङ्गलकारी समय उपस्थित है, अत एव आप यहाँ से मेरे साथ मन्दिरमें पधारकर उनका शीघ्र पूजन कीजिये ॥५॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा निखिलाण्डनायकं सिद्धिस्तमादाय ययौ मुदान्विता ।
देव्यालयं कल्पितमाशु शोभनं खण्डे तृतीये मणिभिः प्रभासिते ॥६॥

भगवान् श्रीसदाशिवजी बोले:-हे गिरिराजकुमारीजू ! इस प्रकार कह कर श्रीसिद्धिजी उन अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीदूलहसरकारको लेकर, प्रसन्नतापूर्वक तुरत मणियोंसे प्रकाशित तीसरे खण्ड पर देवीके कल्पित सुन्दर मन्दिरमें गयीं ॥६॥

प्रविश्य तन्मन्दिरमम्बुजेक्षणं जगाद रां वरवेषमित्यसौ ।
इयं कृपामूर्त्तिरशेषसिद्धिदा सिद्धीश्वरी ते कुलपूज्यदेवता ॥७॥

और उस मन्दिरमें जाकर वर-वेषधारी कमललोचन श्रीरामभद्रजूसे वे इस प्रकार बोलीं:-हे प्यारे ! ये सम्पूर्ण सिद्धियोंको देने वाली, कृपामूर्त्ति, आपकी कुलपूज्यदेवता श्रीसिद्धीश्वरीजी हैं ॥७॥

दाम्पत्यसौख्यर्द्धिविवृद्धिमिच्छतां पूज्या वराणां शुभदा विशेषतः ।
इयं समस्तापदरिष्टवारिणी त्वया वरश्रेष्ठ ! ततः प्रपूज्यताम् ॥८॥

ये सिद्धेश्वरी देवी समस्त आपत्तियों व अनिष्टोंको हटाने वाली तथा मङ्गलदेने वाली हैं, इस लिये दाम्पत्य (स्त्री-पुरुषके सम्बन्धके) सुख, सम्पत्तिकी विशेष वृद्धि चाहने वाले वरोंके लिये ये विशेष पूजने योग्य हैं, इस हेतु, हे सर्वोत्तम वर सरकार ! आप भी इनका पूजन कीजिये ॥८॥

ब्रह्मादिभिर्वन्द्यतमेयमन्वहं भजज्जनानामखिलेष्टदायिका ।
निरस्तसर्वाघगिरीन्द्रदर्शना समर्च्यतां प्रेष्ठ ! ममार्चिता त्वया ॥९॥

हे प्यारे ! ये देवीजी ब्रह्मादि देवोंके भी नित्य प्रणाम करने योग्य, भक्तोंके सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करनेवाली तथा दर्शनमात्रसे समस्त पाप रूपी पहाड़ोंको नष्ट करनेवाली हैं, मैं इनका करचुकी हूँ, अतः आप भली प्रकारसे इनका पूजन कीजिये ॥९॥

श्रीशिव उवाच ।

प्रपूज्यतां वागुदितां मुहुर्मुहुः कुलस्य देवी भवतेति सादरम् ।
स्मृत्वा हसन्तीरवलोक्य शङ्कितश्चन्द्राननां राम उवाच तामिदम् ॥१०॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे श्रीपार्वतीजी ! "इन कुल देवीजीका आदर-पूर्वक आप पूजन कीजिये" बारम्बार इस कही हुई वाणीको स्मरण करके चन्द्रमुखी सखियोंको हंसती हुई देखकर शङ्कायुक्त हो श्रीरामभद्रजू सिद्धिजीसे यह बोले:-॥१०॥

श्रीराम उवाच ।

संप्रेर्यमाणोऽस्म्यसकृत्प्रिये ऽधुना त्वया समानीय किलात्र शोभने ।
समर्च्यतां सद्य इयं वरप्रदा कुलस्य देवीति सरोरुहेक्षणे ! ॥११॥

हे शोभने ! हे प्रिये । हे कमललोचने ! आप यहाँ लाकर इन वरदायिनी देवीजीका अब भली प्रकारसे पूजन कीजिये", इस प्रकारकी आप मुझे बारंवार भली प्रकारसे प्रेरणा कर रही हैं ॥११॥

अपश्यतोऽस्या मुखपंकजं हि मे श्रद्धा कथञ्चिद्धृदि नोपजायते ।
तस्मादपावृत्य पटं यथोचितं समर्चयिष्यामि विलोक्य साम्प्रतम् ॥१२॥

किन्तु इनके मुख-कमलको देखे बिना मेरे हृदयमें पूजनेकी श्रद्धा ही किसी प्रकार उदय नहीं हो रही है, इसलिये अब मैं वस्त्र हटाकर दर्शन करके, इनका यथोचित भली प्रकारसे पूजन करूँगा१२

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवमाभाष्य सरोरुहेक्षणः सिद्धिं स्मितास्यो रघुवंशवर्द्धनः ।
देवीमुपागत्य सरोजपाणिना निषिद्ध्यमाणोऽपि तया सहालिभिः ॥१३॥
रामो दशस्यन्दनसूनुसत्तमोऽपसारयामास पटं प्रवेष्टितम् ।
वस्त्रेष्वपश्यन्नपसारितेष्वसौ स्वीयं पदत्राणयुगं गिरीन्द्रजे ! ॥१४॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती ! इस प्रकार रघुकुलकी वृद्धिकरने वाले, मृदुमुस्कानयुक्त मुख, कमलके समान नेत्र वे श्रीसरकार सिद्धिजीसे इस प्रकार कहकर देवीजीके समीपमें प्राप्त हो, सखियों सहित श्रीसिद्धिजीके मना करने पर भी, अपने कमलवत् हाथसे ॥१३॥ लपेटे हुये वस्त्रों को हटा दिये, हे अनघे ! उन वस्त्रोंके हटाते ही उन सर्वोत्तम श्रीदशरथनन्दन श्रीरामभद्रजूने अपने ही जूतियोंको देखा ॥१४॥

श्रीराम उवाच ।

उदाहरन्त्यास्तव चेतसि प्रिये ! देवीति वस्त्रैः परिवेष्ट्य नूतनैः ।
उपानहौ मे न भयं प्रजायते धूर्त्तोत्तमासीति ममैष निश्चयः ॥१५॥

श्रीरामभद्रजू बोले:-हे प्रिये ! हमारी जूतियोंको नवीन वस्त्रोंसे लपेट कर "ये देवी है" ऐसा कहते हुये आपके चित्तमें भय नहीं होता ? अतः आप बड़ी धोखे बाज हैं, मेरा यह निश्चय है ॥१५॥

श्रीसिद्धिरुवाच ।

इयं तु देवी प्रिय ! सत्यमेव हि ब्रह्मादिवन्द्या महदर्चिता शिवा ।
निषेविताऽस्माभिरभूदुपानहौ त्वदङ्घ्रिसंश्लेशमवाप्तुमुत्सुका ॥१६॥

श्रीसिद्धिजी बोलीं:-हे प्यारे ? ये निश्चय ही ब्रह्मादि देवोंसे प्रणाम करने योग्य, महात्माओंसे पूजित, तथा हम सभी आश्रिताओंसे सब प्रकार सेवित सच्ची देवी हैं, केवल आपके श्रीचरण कमलोंका आलिङ्गन प्राप्त करनेके लिये को उत्सुक हो जूती बन गयी है ॥१६॥

इमां समर्च्येप्सितमाप्यतेऽखिलं सर्वैर्ममश्रोत्रगतेति विश्रुतिः ।
तस्मादिदानीं तव भद्रकाम्यया कृता मयेच्छाऽर्चयितुं त्वया किल ॥१७॥

इनका सम्यक् प्रकार (विधिपूर्वक) पूजन करके सभी अपने सम्पूर्ण मनोरथों की सफलता प्राप्त करते हैं, ऐसी प्रसिद्धि मैंने सुनी थी इस हेतु आपके कल्याणकी इच्छासे ही मैंने इस समय आपके द्वारा इनका पूजन करवाने की इच्छा की ॥१७॥

श्रीशिव उवाच ।

तस्यां वदन्त्यामिति पाटव वचः सिद्धौ च रामं स्मितशोभिताननम् ।
संप्रेषिता आस्वगमंस्तदालयं सख्यो विदेहाधिपपट्टकान्तया ॥१८॥

भगवान् शिवजी बोलेः-हे प्रिये ! इस प्रकार उन मुस्कानसे सुशोभित मुख वाले श्रीरामभद्रजूके श्रीसिद्धिजीके अत्यन्त चतुरता युक्त वचन कहते ही श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पटरानी श्री-सुनयना अम्बाजीकी भेजी हुई सखियाँ वहाँ तुरत गयीं ॥१८॥

रामस्य दृष्ट्वा वरवेषमद्भुतं तद्रूपमुग्धा अभवन्पुरःस्थिताः ।
स्मृत्वा निदेशं समवेदयन्पुनः सिद्ध्यै च राज्ञ्या कथितं मुदान्विताः १६

वे श्रीरामसरकारके उस अद्भुत वर-वेषका दर्शन करके उनके रूप पर मुग्ध हो सामने आ बैठीं

पुनः आज्ञा को स्मरण करके प्रसन्नता पूर्वक श्रीसुनयना महारानीजूके कहे हुये आदेशको भली प्रकारसे श्रीसिद्धिजीको ज्ञात कराया ॥१९॥

श्रीसख्य ऊचुः ।

यामैकशेषा रजनी हि वर्तते स्वापोऽत एवाशु वरैर्विधीयताम् ।
नापैत्विय हास्यविलासलीलया वध्वो यथा वै कुरुताचिरात्तथा ॥२०॥

सखियाँ बोलीं:-अब केवल एक याम मात्र रात्रि शेष है, इस लिये अब वरोंको शयन करना चाहिये। हे वहुओं! जिस प्रकार यह शेष रात्रि भी हास्य विलासकी लीलामें न समाप्त हो जावे, वैसी ही तुरत युक्ति करें ॥२०॥

प्रदत्तवत्येति निदेशमागता संप्रेषितास्त्वां वयमम्बुजेक्षणे ।
राज्ञ्या स्वयं स्वसृगणेन संयुतां संभोज्य वै श्रीनिमिवंशभूषणाम् ॥२१॥

हे कमलके समान नेत्रवाली वहूजी! वहिनाके सहित निमिकुलकी भूषण स्वरूपा श्रीललीजीको स्वयं भोजन कराके, उक्त प्रकारकी आज्ञा देकर श्रीमहारानीजीके द्वारा ही भेजी हुई हम आप लोगोंके पास आई हैं ॥२१॥

श्रीशिव उवाच ।

तामेतदाभाष्य मनोहरस्मितां सिद्धिं च लक्ष्मीनिधिवल्लभां शुभाम् ।
वाण्यादिका अप्युपगम्य ताः क्रमादश्रावयन् राज्ञ्युदितं यथातथम् २२

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती! इस प्रकार वे सखियाँ मनोहर मुस्कानसे युक्त, शुभ आचरण सम्पन्ना, लक्ष्मी निधिजीकी प्रिया श्रीसिद्धिजीसे कह कर क्रमशः श्रीवाणीजी आदि तीनों मुख्य वहुओंके भी पास जाकर श्रीमहारानीजीके कहे आदेशको उन्हें ज्ञात कराया ॥२२॥

श्वश्र्वा निदेशं सुनिशम्य शोभनं ज्येष्ठं वरं सा शशिसन्निभानना ।
निन्येऽथ सर्वेशगृहं प्रकल्पितं मध्ये स्थितं चन्द्रमणिप्रकाशितम् ॥२३॥

अपनी सासुजीकी उस सुन्दर आज्ञाको सुनकर बड़े श्रीदूलह सरकारको चन्द्र मुखी वे श्रीसिद्धिजी उस कल्पित शयनभवनमें ले गयीं, जिसके मध्यमें चन्द्रमणि का प्रकाश था ॥२३॥

सौवर्णतल्पे मणिभिश्च मस्कृते दिव्ये सुतूलास्तरणे परिष्कृते ।
नीराज्य तस्मिन्सुमुखीगणैर्वृता सा ऽस्वापयत्तं महताऽऽदरेण वै ॥२४॥

वहाँ उन्होंने सुन्दर मुखवाली सखियोंके सहित आरती करके, वहाँसे सुसज्जित मणियोंसे चमचमाते हुये सोनेके पलङ्ग पर महान् आदरके साथ उन श्रीवरसरकारको शयन कराया ॥२४॥

वाण्या तदाऽऽनीय मुदाऽऽशु लक्ष्मणः प्रस्वापितः श्रीभरतस्तथोपया ।
इत्थं रिपुघ्नस्त्वरयैव नन्दया रामान्तिके कौतुकमन्दिरे शुभे ॥२५॥

तब वाणीजीने श्रीलखनलालजीको, उपाजीने श्रीभरतलालजीको एवं नन्दाजीने श्रीशत्रुघ्नलालजीको तुरत लाकर उस कोहवर भवनमें श्रीरामभद्रजूके समीपम शयन कराया ॥२५॥

श्रीसिद्धिरुवाच ।

स्वल्पाऽवशिष्टा रजनी हि वर्तते तन्द्रान्विता राजकुमारका इमे ।
वयं व्रजामो मदनुज्ञया न वै कस्याश्चिदस्त्वागमनं ततस्त्विह ॥२६॥

श्रीसिद्धिजी बोलीं:-अब रात्रि बहुत थोड़ी बची है, इन राजकुमारोंको आलस्य भी आ रहा है अतः मैं जाती हूँ, मेरी आज्ञासे यहाँ अब कोई न आवे ॥२६॥

श्रीशिव उवाच ।

एतत्समाभाष्य वचः शुभाक्षरं शनैस्तु लक्ष्मीनिधिवल्लभा सखीः ।
विसृज्य तिस्रोऽप्यनुजाः समन्विता सखीभिरायात्स्वरहो निकेतनम् ॥२७॥

भगवान् श्रीशिवजी बोले:-हे श्रीपार्वतीजी ! इस प्रकार श्रीलक्ष्मी निधि भइयाजूकी प्राणप्रिया श्रीसिद्धिजी सखियोंसे धीरेसे कहकर तथा तीनों नन्दा, वाणी, उपा बहिनोंसे विदा करके, सखियों के सहित वे अपने ऐकान्तिक भवनको गयीं ॥२७॥

इत्थं ताः शरदिन्दुपूर्णवदनं रामं सरोजेक्षणं
सख्यो भ्रातृभिरन्वितं मृगदृशः प्रस्वाप्य मोदाप्लुताः ।
शेषां वीक्ष्य तदोनयामरजनीं सिद्धेर्निदेशानुगा-
श्चक्रुः स्वापमुपाद्भुतालयगृहे तेषां हृदा त्वन्तिके ॥२८॥

इति शततमोऽध्यायः ॥१००॥

इस प्रकार श्रीसिद्धिजीकी आज्ञाकारिणी, आनन्दमग्न वे मृगलोचना सखियाँ एक पहर भी कम रात्रिको शेष देखकर, भ्राताओंके सहित शरद ऋतुके पूर्ण चन्द्रवत् मनोहर मुख तथा कमलदल लोचन श्रीरामदूलह सरकार को शयन कराके उस कौतुक भवनके पासमें, किन्तु हृदयसे उन चारो वर सरकार के पासमें शयन करती हुईं ॥२८॥

अथैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

चारो वर सरकारोका जनवासमें जाकर श्रीमिथिलेश-
भवन आगमन—

श्रीशिव उवाच ।

अनेकवाद्यघोषेण मधुरेण प्रबोधिताः ।
प्रातः संददृशुः सख्यो गतं यामार्द्धकं दिनम् ॥१॥

भगवान् शिवजी बोले—हे प्रिये ! अनेक प्रकारके बाजाओंके सुखप्रद घोषके द्वारा जागी हुई सखियोंने देखा, आध पहर दिन व्यतीत होगया ॥१॥

आचम्यापो जगुस्ताश्च माङ्गल्यानि समन्ततः ।
प्रबुद्धा राजपुत्रास्ते ताभिरुत्थापितास्ततः ॥२॥

जलसे आचमन करके वे चारो ओरसे वे माङ्गलिक पद गाने लगीं, उससे जब वे राजकुमार पूर्ण सावधान हुये तब उन्हें सखियोंने उठाया ।२॥

ईषदालस्यमुक्तास्ते जृम्भमाणा मुहुर्मुहुः ।
क्षालितेन्द्वास्यपद्माक्षा दृष्ट्वा मङ्गलभाजनम् ॥३॥

बारंबार जम्हुआई लेते हुये, कुछ आलस्यसे युक्त उन राजकुमारोंने मङ्गलथालका दर्शन करके अपने मुखचन्द्र तथा नेत्र-कमलोंको धुलाया ॥३॥

नीराजितस्ततस्ताभिः सखीभिः परया मुदा ।
गायन्तीभिर्मनोज्ञानि मङ्गलानि वरोत्तमाः ॥४॥

तत्पश्चात् मनोहर मङ्गल गीत गाती हुई उन सखियोंने बडे हर्ष पूर्वक सर्वोत्तम उन चारों वर सरकारकी आरतीकी ॥४॥

विधाय पुष्पवृष्टिं च जयकारसमन्विताम् ।
नीताःपृथक्पृथग्वेश्म भरताद्या नृपात्मजाः ॥५॥

—पुनः जयकार संयुक्त पुष्पोंकी वर्षा करके, श्रीभरतजी आदि राजकुमारोंको अलग अलग भवनोंमें ले गयीं ॥५॥

सादरं दन्तसंशुद्धिपर्यन्तो हि विधिः शुभः ।
कारितस्तैश्च विधिना ताभिरेव महोत्सवैः ॥६॥

और उन्होंने ही महोत्सवके समान परम आनन्ददायक उन वर सरकारके द्वारा दन्तधावन पर्यन्तकी पवित्र विधि करवाई ॥६॥

किञ्चिदुपाशनं प्रेम्णा कारयित्वा वरोत्तमान् ।
हावभावकटाक्षैस्ता यथाकाममरञ्जयन् ॥७॥

पुनः थोड़ासा कलेऊ करवाकर अपने हाव, भाव, कटाक्षोंके द्वारा उन वरोंको अपनी इच्छानुसार प्रसन्न करने लगीं ॥७॥

राज्ञ्या सुनेत्रया तर्हि सुविद्याद्या निजानुगाः ।
आदिष्टाः समुपानेतुं जामातॄन्द्रुतमाययुः ॥८॥

उसी समय श्रीसुनयना महारानीजीकी आज्ञासे उनकी श्रीसुविद्याजी आदि दासियाँ, जामाताओं (दामादों) को उनके पास ले जानेके लिये वहाँ शीघ्र आगयीं । ८॥

श्रीसुविद्योवाच ।

अहो पुत्र्यो महाराज्ञ्या निदेशाद्धि त्रयो वराः ।
अनेन रामभद्रेण समं नेयास्तदालयम् ॥ ९ ॥

श्रीसुविद्याजी बोलीं:-हे पुत्रियों ! श्रीसुनयनाजूके निदेशानुसार इन श्रीरामभद्रजूके सहित तीनों वरोंको उनके भवनमें ले चलना है॥९॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं तासां समुक्तानां भरतादिनिकेतनम् ।
गत्वा कतिपयाः क्षिप्रं राज्ञ्यनुज्ञां न्यवेदयन् ॥१०॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वतीजी ! श्रीसुविद्याजीके इस प्रकार कहने पर उन सखियोंमें कुछ कोहबर भवनमें जाकर, श्रीसुनयना महारानीजीकी आज्ञा को निवेदन करती हुईं ॥१०॥

ततस्ते भ्रातरो हृष्टाः सखीभिः परिवेष्टिताः ।
राममासाद्य शीघ्रेण प्रणेमुस्तत्पदाम्बुजे ॥११॥

तब सखियोंसे घिरे हुये श्रीभरतलालजी आदि भाइयोंने, श्रीरामभद्रजूके पास शीघ्र आकर उनके श्रीचरण कमलों को प्रणाम किया ॥११॥

चतुर्णां रूपमाधुर्य्यं पिबन्त्यो रूपसम्पुटैः।
अतृप्ता एव तान्निन्युः सख्यः सुनयनालयम् ॥१२॥

सखियाँ चारो वर सरकारकी छवि माधुरीको अपने नेत्र रूपी दोनोंसे पानकरती हुई भी अतृप्त रहकर ही, उन्हें श्रीसुनयना अम्बाजीके महलमें ले गयीं ॥१२॥

तत्र नीराजितान्प्रेम्णा लालयन्त्या ह्यनेकधा।
दौरुपभोजनं राज्ञ्या सानुरोधं सुकारितम् ॥१३॥

वहाँ श्रीसुनयनाअम्बाजीने आरती करके अनेक प्रकारसे दुलार करती हुई उन्हें अनुरोध पूर्वक कलेऊ करवाया ॥१३॥

पुनः संप्रेषिताः पुत्रैर्लक्ष्मीनिध्यादिभिर्वराः।
भूपान्तिकं जनावासं लब्धताम्बूलवीटिकाः ॥१४॥

पुनः श्रीलक्ष्मीनिधि आदि पुत्रोंके साथ उन्हें पानका बीड़ा देकर श्रीदशरथजीमहाराजके पास पहुँचाया ॥१४॥

श्यामकर्णहयारूढा सेनया परिरक्षिताः।
पुष्पवृष्ट्या मृगाक्षीणां पूज्यमाना मनोहराः ॥१५॥

श्यामकर्ण घोड़े पर सवार तथा सेनासे सुरक्षित हो, मृगलोचना सखियोंकी पुष्पवृष्टिके द्वारा पूजित (सम्मानित) हुये, मनको हरण करनेवाले वे दूलह सरकार ॥१५॥

श्रवः सुखदवाद्यानां शृण्वन्तश्चारुनिःस्वनम्।
जनावासमुपागच्छन् सहस्रैः पुरवासिभिः ॥१६॥

श्रवण-सुखद बाजाओंका मनोहर घोष सुनते हुये सहस्रोंपुरवासियोंसे युक्त हो जनवासेमें पहुँचे १६

प्रत्युद्गम्य समानीता जनावासं मुदान्वितैः।
सखीभिर्मन्त्रिभिश्चैव राज्ञा दशरथेन च ॥१७॥

श्रीदशरथजीमहाराज आनन्दसे युक्त सखाओं तथा मन्त्रियोंके सहित आगे आकर उन्हें जनवासमें ले गये ॥१७॥

ते प्रणम्य महीपालं पितरं कुलभूषणाः।
अतिस्वाध्यायमायान्तं वशिष्ठं चाभिवादयन् ॥१८॥

कुलको भूषणके समान सुशोभित करने वाले वे वर सरकार, अपने पिता राजा दशरथजीको प्रणाम करके वेद पाठसे निवृत्त हो कर आये हुये श्रीवशिष्ठजीमहाराजको अभिवादन (प्रणाम) किये।

पितृव्यानथ वन्दित्वा विप्रान् वृद्धान् वयोवरान्।
लघीयसः समादृत्य कटाक्षैः कौशिकं ययौ ॥१९॥

उसके बाद चाचाओंको, ब्राह्मणोंको, वृद्धोंको तथा अवस्थामें अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करके अपनेसे छोटोंको अपनी कृपा कटाक्षके द्वारा सत्कार करके, विश्वामित्रजीमहाराजके पास गये ॥१९॥

ध्यानस्थं तं परिक्रम्य श्रीरामो बन्धुभिर्युतः।
ववन्दे चरणौ तस्य शिरसा भक्ति-पूर्वकम् ॥२०॥

उन्हें ध्यानस्थ देखकर अपने भाइयोंके सहित परिक्रमा करके, श्रीरामभद्रजूने भक्ति पूर्वक शिर झुकाकर उनके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम किया ॥२०॥

बहिर्वृत्तिर्मुनिर्भूत्वा विलोक्य रघुनन्दनम्।
भ्रातृभिः सहितं रामं वरवेषं मुदाप्लुतः ॥२१॥

तब मननशील श्रीविश्वामित्रजीमहाराज बहिर्वृत्ति अर्थात् सावधान होकर, भ्राताओंके सहित रघुकुलनन्दन श्रीरामभद्रजीको वरवेषमें देखकर आनन्दमें डूब गये ॥२१॥

सस्वजे तं समाधाय स्वचित्तं स्नेहपूर्वकम्।
कौशल्यानन्दनं रामं वह्वल्यास्ततनुस्मृतिः ॥२२॥

तदनन्तर अपने चित्तको सावधान करके स्नेह पूर्वक, कौशल्यानन्दन श्रीरामभद्रजीको अपने हृदयसे लगाकर विह्वलताके कारण अपने देहकी सुधि भूल गये। २२॥

ततोऽसौ भरतं प्रीत्या सौमित्री च पुनः पुनः।
परिष्वज्य हृदा काममपारानन्दमाप्तवान् ॥२३॥

उनके पश्चात् श्रीभरतलालजी व दोनों सुमित्रानन्दन श्रीलखनलालजी तथा श्रीशत्रुघ्नलालजी को बारंबार हृदयसे लगाकर असीम सुखको प्राप्त हुये ॥२३॥

श्रीविश्वामित्र उवाच।

वत्स! राम! कृतार्थोऽहं भवन्तं भ्रातृभिर्युतम्।
वरवेषं समालोक्य सर्वविश्वमनोहरम् ॥२४॥

श्रीविश्वामित्रजी बोलेः—हे वत्स ! श्रीरामभद्रजू ! भाइयों के सहित समस्त विश्वके मनको हरण करने वाले आपके इस दूलह वेषको देखकर मैं कृतार्थ हो गया ॥२४॥

अद्य मे सफलं जन्म सफलं चाद्य मे तपः ।
सफलाः सत्क्रियाः सर्वा मम त्वां वत्स ! पश्यतः ॥२५॥

हे वत्स ! आज आपको इस वेषमें देखकर मेरा जन्म, मेरा तप, तथा मेरे सभी सत्कर्म सफल हो गये ॥२५॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा समाघ्राय मस्तकं स तपोनिधिः ।
आशीर्वाक्यैः समातोष्य निन्ये दशरथान्तिकम् ॥२६॥

वे श्रीविश्वामित्रजी इस प्रकार कहकर तथा उनके मस्तक को सूंघ कर एवं आशीर्वाद मय वचनों के द्वारा सन्तुष्ट करके उन्हें श्रीदशरथजी महाराजके पास ले गये ॥२६॥

तेनाभिपूजितो भक्त्या सत्कृतश्चाजसूनुना ।
विश्वामित्रो महातेजा नृपेन्द्रं वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥

महातेजस्वी श्रीविश्वामित्रजी महाराज उनसे प्रेमपूर्वक पूजित हो कर तथा श्रीवशिष्ठजी महाराज से सत्कार पाकर-श्रीचक्रवर्तीजी महाराजसे बोलेः—॥२७॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

भोजयैतान्नराधीश ! गतं यामद्वयं दिनम् ।
लज्जया श्वशुरागारे नैते कामं कृताशनाः ॥२८॥

हे राजन् ! दो पहर दिन बीत चुका, अब इन राजकुमारों को भोजन कराइये क्योंकि श्वसुरके भवन में सङ्कोचवश इन्होंने अपनी इच्छानुसार (पूर्ण) भोजन नहीं किया होगा ॥२८॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमाज्ञापितस्तेन स वशिष्ठेन सादरम् ।
सामत्या रामभद्रस्य नृपो मन्त्रिणमब्रवीत् ॥२९॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे श्रीपार्वतीजी ! इस प्रकार श्रीवशिष्ठजी महाराजके समेत श्रीविश्वामित्रजी महाराजकी आज्ञा पाकर श्रीरामभद्रजूकी सम्मतिसे श्रीदशरथजी महाराजने श्रीसुमन्त्रजीसे कहा ॥२९॥

श्रीदशरथ उवाच ।

आहूयन्तां त्वया सर्वे भोजनार्थं नरेश्वराः ।
स मात्यबन्धुपुत्राश्च ससुहृत्किङ्करप्रजाः ॥३०॥

आप पुत्र, बन्धु, मन्त्रियोंके समेत, सखा, सेवक, प्रजाके सहित सभी राजाओंको भोजन करनेके लिये बुला लीजिये ॥३०॥

निवेश्य पङ्क्तिस्ततांश्च सादरं नतिपूर्वकम् ।
ततो मे सूचनां दद्याः कुमारैः परिवारितः ॥३१॥
वशिष्ठकौशिकाभ्यां च बन्धुभिश्च द्विजोत्तमैः ।
तूर्णमेवाहमायामि व्रजेतो मा विलम्बय ॥३२॥

पुनः प्रणाम पूर्वक आदरके साथ उन्हें पङ्क्तिपूर्वक विराजमान करके हमें सूचित करें, उस सूचनाको पाते ही कुमारोंसे युक्त श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजी तथा भ्राताओं व द्विजवरोंके सहित मैं तुरत आजाऊँगा इस लिये आप यहाँसे जाइये विलम्ब न कीजिये ॥३१॥३२॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तस्तथेत्युक्तः सत्वरं भोजनालयम् ।
सुमन्तो ह्यानयामास सर्वानेव नरेश्वरान् ॥३३॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीचक्रवर्तीजीके इस प्रकार आदेश करने पर श्रीसुमन्तजी उनसे "एसा ही होगा" कहकर तुरत सभी राजाओंको भोजन गृहमें बुला लिये ॥३३॥

आसनेष्वति रम्येषु तान्निवेश्य सुपङ्क्तितः ।
राज्ञे निवेदयाञ्चक्रे सर्व एवागता इति ॥३४॥

तथा अत्यन्त मनोहर आसनों पर उन्हें पङ्क्तिपूर्वक विराजमान करके उन्होंने श्रीचक्रवर्तीजीसे "सभी आगये" यह निवेदन किया ॥३४॥

तस्य तत्सूचितं श्रुत्वा मन्त्रिणः कोशलेश्वरः ।
गन्तुमभ्यर्थयामास वशिष्ठकुशिकात्मजौ ॥३५॥

उस मन्त्रीजीकी उस सूचनाको सुनकर अयोध्यापति श्रीदशरथजी महाराजने श्रीविश्वामित्रजी तथा श्रीवशिष्ठजी महाराजसे चलनेके लिये प्रार्थनाकी ॥३५॥

जग्मतुस्तौ महात्मानौ कुमारैर्बन्धुभिर्द्विजैः ।
शोभितेन नृपेन्द्रेण ततस्तद्भोजनालयम् ॥३६॥

उससे दोनों महात्मा श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजी, चारों राजकुमारोंके सहित बन्धुओं तथा द्विजवरोंसे सुशोभित उन श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके साथ साथ उस भोजन भवनमें पधारे ॥३६॥

नवदूर्वादलश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
शरच्चन्द्राननं रामं भ्रातृभिः परिशोभितम् ॥३७॥
विलोक्य लोचनानन्दं कोटिमन्मथसुन्दरम् ।
कृतकृत्या बभूवुस्ते सह पित्रा समागतम् ॥३८॥

जो नेत्रों के लिये आनन्द-स्वरूप, करोडों काम देवोंके सदृश सुन्दर, अपने पिताजीके साथ आये हुये भाइयोंसे सुशोभित, रेशमी पीत वस्त्रोंसे युक्त, शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रके समान सुन्दर मुखारविन्द व नवीन दूबके दलके तुल्य श्याम वर्ण वाले श्रीरामभद्रजीको देख कर वे सभी कृत-कृत्य हो गये ॥३७।३८॥

सत्कृत्य सकलान् राजा साङ्केत्यैश्च विलोकनैः ।
पाकशालां प्रविष्टोऽसौ मुनिभ्यां बन्धुभिः सह ॥३९॥

श्रीदशरथजी महाराजने चितवन व सङ्केत आदिके द्वारा सभीका सत्कार करते हुये बन्धुओं तथा दोनों मुनियोंके सहित उस पाकशालामें प्रवेश किया ॥३९॥

प्रत्येकस्य विधेर्दृष्टा राशयस्तेन पङ्क्तितः ।
मिष्टान्नानामनेकानां कूटतुल्याश्च तत्र वै ॥४०॥

वहाँ उन्होंने प्रत्येक प्रकारके मिष्टान्नोंकी पहाड़के समान राशियाँ देखीं॥४०॥

अपश्यत्प्रेषिता राशीर्जनकेन महात्मना ।
प्रत्येकस्य विधेरित्थं पक्वान्नानां जनाधिपः ॥४१॥

इस प्रकार उन्होंने महात्मा श्रीजनकजीमहाराजके भेजे हुये, प्रत्येक प्रकारके पकवानोंकी राशियोंको देखा ॥४१॥

ततोऽद्भुतानि भाण्डानि दध्यादीनां महीभृता ।
शाकानां पृथुपात्राणि लक्षाण्येवेक्षितानि च ॥४२॥

तत्पश्चात् श्रीचक्रवर्तीजीने दही आदिके दशहजार और शाकों (भाजियों) के कई लाख पात्रोंको अवलोकन किया ॥४२॥

सङ्केतं नृपतेर्लब्ध्वा गुणरूपमनोहराः ।
मणिपात्रेषु सर्वेभ्यः सूदा विपुलसङ्ख्यकाः ॥४३॥

श्रीचक्रवर्तीजीका सङ्केत पाकर अपने रूप व गुणोंसे सभीके मनको हरण करनेवाले, बहु सङ्ख्यक रसोइया सभीके लिये मणिमय पात्रोंमें ॥४३॥

पृथक्पृथगपि वस्तूनि समग्राण्यचिरेण च ।
वितीर्य परया प्रीत्या बभूवुः शातनिर्भराः ॥४४॥

पृथक्-पृथक् सभी प्रकारकी वस्तुओंको अत्यन्त प्रेम-पूर्वक शीघ्र ही वितरण करके आनन्द से परिपूर्ण हो गये अर्थात् उनके रोम-रोममें आनन्द भर गया ॥४४॥

राजा दशरथस्ताभ्यां समाज्ञप्तो हि सादरम् ।
प्रार्थितो राजभिश्चैव रामाभिमुखमाविशत् ॥४५॥

श्रीविश्वामित्रजी, तथा श्रीवशिष्ठजीमहाराजकी आदर-पूर्वक आज्ञा तथा सभी राजाओंकी प्रार्थनासे श्रीदशरथजीमहाराज श्रीरामभद्रजूके सम्मुख विराजमान हुये ॥४५॥

बान्धवाः पार्श्वयोस्तस्य विरेजुर्विमलत्विषः ।
कुमाराश्चापि वै तेषां रामस्योभयपार्श्वयोः ॥४६॥

निर्मल कान्तिसे युक्त भाई वृन्द महाराजके दोनों बगलमें तथा उन भाइयोंके राजकुमार श्रीरामभद्रजूके दोनों बगलमें सुशोभित हुये ॥४६॥

तदा वशिष्ठसम्मत्या सर्व एव मुदान्विताः ।
अकुर्वन् भोजनं राममुखासक्तविलोचनाः ॥४७॥

तब श्रीवशिष्ठजीकी सम्मतिसे अपने नेत्रोंको श्रीरामभद्रजूके मुखचन्द्र पर आसक्त करके, हर्षसे युक्त हो सभी भोजन करने लगे ॥४७॥

कोशलेन्द्रस्तमिन्द्वास्यं लालयन्बहुशो वशी ।
प्रणयेनाशयामास भ्रातृभिः पार्श्वशोभितम् ॥४८॥

तब श्रीदशरथजी महाराज भ्राताओं द्वारा दोनों बगलमें सुशोभित, चन्द्रवत् मनोहर मुखवाले उन श्रीरामभद्रजीको बहुत प्रकारसे लाड करते हुये अत्यन्त प्रेम पूर्वक भोजन कराने लगे ॥४८॥

निवृत्ते भोजनाद्रामे स सर्वैश्चापि बन्धुभिः ।
आज्ञया श्रीवशिष्ठस्य कोशलेन्द्रः समुत्थितः ॥४९॥

पुनः भाइयों तथा सखके सहित श्रीरामभद्रजूके भोजनसे निवृत्त हो जाने पर श्रीवशिष्ठजी महाराजकी आज्ञासे श्रीदशरथजी महाराज उठे ॥४९॥

प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च लब्धताम्बूलवीटिकाः ।
आज्ञया तस्य ते सर्वे चक्रुर्विश्राममुर्विपाः ॥५०॥

हाथ-पैर धोकर पानका बीड़ाले उन सभी राजाओंने, उनकी आज्ञासे विश्राम किया ॥५०॥

श्रीरामो बन्धुभिः सार्द्धं मध्याह्नशयनालयम् ।
आदाय स्थापितः पित्रा पङ्क्तियानेन सत्वरम् ॥५१॥

पुनः भाइयोंके सहित श्रीरामभद्रजीको, पिता श्रीदशरथजी महाराजने मध्याह्नके शयन भवनमें ले जाकर शयन कराया। ५१॥

पुनरेव तदागारे विश्रामं स चकार ह ।
भ्रातृ भिः सहितो राजा चिन्तयन्हृदि राघवम् ॥५२॥

तत्पश्चात् उन्होंने भी अपने भाइयों के सहित हृदयमें श्रीरघुनन्दन प्यारेका चिन्तन करते हुये उसी भवनमें विश्राम किया ॥५२॥

कालेनाल्पीयसा देवि ! विदेहाधिपतेः सुतः ।
अनुजैर्मित्रवर्गैश्च जनावासमुपागमत् ॥५३॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे देवि ! थोड़े समय बाद श्रीविदेहजी महाराजके पुत्र श्रीलक्ष्मीनिधि जी, अपने छोटे भइया तथा मित्रोंके साथ, उस जनवासेमें पधारे ॥५३॥

सत्कृतः कोशलेन्द्रेण ज्ञात्वोत्थाय समागतः ।
अङ्कमारोप्य सस्नेहं तेन रामो यथाऽन्वहम् ॥५४॥

उन्हें आया हुआ जानकर श्रीकोशलेन्द्र (दशरथ) जी महाराजने उठकर, स्नेह-पूर्वक उसी प्रकारसे सत्कार किया, जिस प्रकार प्रतिदिन वे श्रीरामभद्रजूका करते थे ॥५४॥

भूपं प्रणम्य स श्लक्ष्णं वचनं चेदमब्रवीत् ।
आनेतुं प्रेषयामास मामम्बा वरसत्तमान् ॥५५॥

श्रीलक्ष्मी निधि भइयाजीने प्रणाम करके श्रीदशरथजी महाराजसे यह मनोहर वचन कहा:- हे तात ! वर श्रेष्ठोंको ले आनेके लिये हमें श्रीअम्बाजीने भेजा है ॥५५॥

तस्माच्छीघ्रेण तं सार्द्धं मया गन्तुमुपादिश ।
भवनं बन्धुभिर्युक्तं कुमारं मोहनस्मितम् ॥५६॥

इस हेतु भाइयोंसे युक्त मनोहर मुसक्यान वाले उन कुँवरजी को आप प्रसन्नता पूर्वक हमारे साथ भवन चलनेके लिये शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥५६॥

श्रीशिव उवाच ।

इति तद्भाषितं वाक्यं समाकर्ण्य नृपाधिपः ।
आह्वयामास शीघ्रेण भ्रातृभिस्तं गतालसम् ॥५७॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे देवि ! इस प्रकार उन श्रीलक्ष्मीनिधिजूके कहे हुये वचनको सुन कर, श्रीदशरथजीमहाराजने भाइयोंके सहित आलस्य रहित हुये, उन श्रीरामभद्रजीको बुला भेजा ५७

आगतं तं विशालाक्षं सुकुमारवयःस्थितम् ।
लालयन्निदमेवोचे वाक्यं वाक्यविदां वरम् ॥५८॥

जब वे अत्यन्त सुकुमार अवस्थामें विराजमान, विशालनयन, वाणीका अर्थ समझने वालोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ, श्रीरामभद्रजू वहाँ आये, तब उनका दुलार करते हुये श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने कहा-।५८॥

श्रीदशरथ उवाच ।

भद्रमस्तु हि ते वत्स ! राम ! राजवलोचन !
सर्वदा देवदैत्यर्षिग्रहादीनां सुरक्षताम् ॥५९॥

हे कमल-लोचन ! वत्स श्रीरामभद्रजू ! सभी देव, दैत्य, ऋषि, ग्रहादिकोंके रक्षा करते हुये, आपका सर्वदा ही मङ्गल हो ॥५९॥

स्वालयं प्रेषितो मात्रा वयस्यैर्बन्धुभिर्युतः ।
आगतस्त्वामितो नेतुं स्यालो ऽयं तव पुत्रक ! ॥६०॥

अपने भाइयों तथा मित्रोंके सहित ये आपके स्याले श्रीलक्ष्मीनिधिजी, अपनी अम्बाजीके भेजे हुये आपको महलमें ले जानेके लिये आये हैं ॥६०॥

गम्यतां श्वशुरागारमत एवाविलम्बतः ।
अनेन राजपुत्रेण भ्रातृभिः सौम्यमूर्तिना ॥६१॥

इस लिये अपने भाइयोंके सहित इन सौम्यस्वरूप-श्रीविदेहराजकुमारजूके साथ शीघ्रता पूर्वक आप अपने श्वशुरके भवनको जाइये। ६१॥

श्रीशिव उवाच।

एवमाज्ञापितस्तेन पित्रा दशरथेन सः।
नत्वा ते श्वशुरागारं गमनायोद्यतो ऽभवत् ॥६२॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये! इस प्रकार वे अपने पिता श्रीदशरथजी महाराजकी आज्ञा पाकर, उन्हें प्रणाम करके श्वशुर श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवनको, चलने के लिये उद्यत हुये ६२

ततोऽभिवाद्य राजेन्द्रं लक्ष्मीनिधिरुदारधीः।
सानुरागं समुत्थायाग्रहीद्रामकराङ्गुलिम् ॥६३॥

तत्पश्चात् उदार बुद्धि श्रीलक्ष्मीनिधि भइयाजीने श्रीचक्रवर्तीजीको प्रणाम करके अनुरागपूर्वक उठकर श्रीरामभद्रजीकेहाथकी उंगली पकड़ ली ॥६३॥

बहिर्निष्क्रम्य भवनाद्गजयानं मनोहरम्।
आरुरोहानुजैर्युक्तो दाशरथीन्निवेश्य सः ॥६४॥

उस दिन ! विश्राम भवनसे बाहर निकलकर श्रीदशरथ-राज कुमारोंको मनोहर गजयानमें विराजमान करके अपने भाइयोंके सहित वे श्रीलक्ष्मीनिधि भइयाजी उसमें विराजमान हुये ॥६४॥

बहूनि हययानानि सज्जितानि विशेषतः।
अन्वयुर्निमिवंश्यानां बालकैः शोभितानि च ॥६५॥

उस गजयानके पीछे निमिवंशी बालकोंसे सुशोभित, बहुतसे सुसज्जित अश्वयान चले ॥६५॥

रामो विदेहभवनं ययौ यानेन सत्वरम्।
श्वश्रूर्नीराज्य तं द्वारि निनायान्तर्निकेतनम् ॥६६॥

उस गजयानके द्वारा श्रीरामभद्रजू अपने श्वशुर श्रीमिथिलेशजी महाराजके महलमें पहुँचे, वहाँ सासु श्रीसुनयना महारानीजी, द्वारपर आरती करके उन्हें अपने महलके भीतर ले गयीं ॥६६॥

फलैर्नानाविधैर्मिष्टै रसवद्भिः सुधोपमैः।
संतर्प्य लालयन्ती तं कौतुकागारमानयत् ॥६७॥

वहाँ अनेक प्रकारके रसमय, अमृतके समान मीठे, स्वादिष्ट फलोंके द्वारा तृप्त करके प्यार करती हुई उन्हें वे कोहबर भवनमें ले गयीं ॥६७॥

श्रीलक्ष्मी निधि भइयाजीने प्रणाम करके श्रीदशरथजी महाराजसे यह मनोहर वचन कहाः- हे तात ! वर श्रेष्ठोंको ले आनेके लिये हमें श्रीअम्बाजीने भेजा है ॥५५॥

तस्माच्छीघ्रेण तं सार्द्धं मया गन्तुमुपादिश ।
भवनं बन्धुभिर्युक्तं कुमारं मोहनस्मितम् ॥५६॥

इस हेतु भाइयोंसे युक्त मनोहर मुसकान वाले उन कुँवरजी को आप प्रसन्नता-पूर्वक हमारे साथ भवन चलनेके लिये शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥५६॥

श्रीशिव उवाच ।

इति तद्भाषितं वाक्यं समाकर्ण्य नृपाधिपः ।
आह्वयामास शीघ्रेण भ्रातृभिस्तं गतालसम् ॥५७॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे देवि ! इस प्रकार उन श्रीलक्ष्मीनिधिजूके कहे हुये वचनको सुन कर, श्रीदशरथजीमहाराजने भाइयोंके सहित आलस्य रहित हुये, उन श्रीरामभद्रजीको बुला भेजा ५७

आगतं तं विशालाक्षं सुकुमारवयःस्थितम् ।
लालयन्निदमेवोचे वाक्यं वाक्यविदां वरम् ॥५८॥

जब वे अत्यन्त सुकुमार अवस्थामें विराजमान, विशालनयन, वाणीका अर्थ समझने वालोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ, श्रीरामभद्रजू वहाँ आवे, तब उनका दुलार करते हुये श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने कहा-।५८॥

श्रीदशरथ उवाच ।

भद्रमस्तु हि ते वत्स ! राम ! राजवलोचन !
सर्वदा देवदैत्यर्षिग्रहादीनां सुरक्षताम् ॥५९॥

हे कमललोचन ! वत्स श्रीरामभद्रजू ! सभी देव, दैत्य, ऋषि, ग्रहादिकोंके रक्षा करते हुये, आपका सर्वदा ही मङ्गल हो ॥५९॥

स्यालयं प्रेषितो मात्रा वयस्यैर्बन्धुभिर्युतः ।
आगतस्त्वामितो नेतुं स्यालो ऽयं तव पुत्रक ! ॥६०॥

अपने भाइयों तथा मित्रोंके सहित ये आपके स्याले श्रीलक्ष्मीनिधिजी, अपनी अम्बाजीके भेजे हुये आपको महलमें ले जानेके लिये आये हैं ॥६०॥

गम्यतां श्वशुरागारमत एवाविलम्बतः ।
अनेन राजपुत्रेण भ्रातृभिः सौम्यमूर्तिना ॥६१॥

मैथिलीं निमिवंश्याभिर्द्दारामात्समागताम् ।
उपभोज्य महाराज्ञी सुखमस्वापयद्द्रुतम् ॥७४॥

इत्येकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

इधर निमिवंश कुमारियोंके सहित महलके उद्यानसे पधारी हुई अपनी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीको श्रीसुनयना महारानीजीने भी कलेऊ करवा कर सुखपूर्वक शयन कराया ॥७४॥

अथ द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

समस्त बरातियोंके समेत चक्रवर्तीजी महाराजका श्रीमिथिलेशजीके भवनमें भोजन—

श्रीशिव उवाच ।

अथ प्रातः समुत्थाय माता सुनयना सुताम् ।
ऊचे मधुरया वाचा लालयन्तीत्यनेकधा ॥१॥

भगवान शिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीसुनयना अम्बाजी प्रातः काल उठकर अनेक प्रकारसे दुलार करती हुई बड़ी मीठी वाणी द्वारा अपनी श्रीललीजी से बोलीं ॥१॥

श्रीसुनयनोवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कञ्जाक्षि ! लोकोत्तरगुणालये !
त्वय्युत्थीयमानायामुत्थितं भुवनत्रयम् ॥२॥

हे अलौकिक गुणोंकी मन्दिर स्वरूपा, कमल-लोचने श्रीकिशोरीजी ! अब आप उठें, उठें क्योंकि आपके उठने पर ही त्रिलोकी का उत्थान है ॥२॥

उत्तिष्ठ सहजानन्दविग्रहे ! कामवर्षिणि ! ।
त्वय्युत्थीयमानायामुत्थितं स्याज्जगत्त्रयम् ॥३॥

हे भक्तोंकी समस्त हितकर कामनाओं की वर्षा करने वाली, सहज आनन्द स्वरूपा श्रीललीजी ! अब आप उठें, क्योंकि यह त्रिलोकी आपके उठने पर ही उत्थानको प्राप्त होता है ॥३॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं प्रबोधिता मात्रा सहजानन्दिनी तदा ।
भुजमालां गले दत्वा पर्यङ्के तां न्यवेशयत् ॥४॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! श्रीअम्बाजीके इस प्रकार जगाने पर स्वाभाविक आनन्द

वराणां परिचर्यायां संनियोज्य प्रियाः स्नुषाः ।
आजगामान्तिकं पुत्र्याः सेवितायाः स्वस्वसृभिः ॥६८॥

वहाँ वरोंकी सेवामें, अपनी प्यारी पतोहुओंको लगाकर स्वयं बहिनोंसे सेवित अपनी श्रीललीजूके पास आगयीं ॥६८॥

फलानि भोजयामास प्रीत्या परमया युता ।
सुदर्शनादिभिः सार्द्धं मुखचन्द्रार्पितेक्षणा ॥६९॥

और श्रीसुदर्शनाजी आदि देवरानियोंके सहित श्रीललीके मुखचन्द्र पर अपनी दृष्टिको अर्पित (संलग्न) करके श्रीअम्बाजी बड़े प्रेम पूर्वक उन्हें फल पवाने लगीं ॥६९॥

नागवल्याः कृता वीटीः स्वादुपूर्णाः प्रदाय सा ।
सर्वाभ्यश्च गृहारामं तयाऽऽज्ञां गन्तुमादिशत् ॥७०॥

पुनः पानका लगाया हुआ अत्यन्त स्वादिष्ट बीरा उन्हें प्रदान करके उनके, साथ अपने भवनके उद्यानमें जानेके लिये उन्होंने सभीको आज्ञा प्रदान की ॥७०॥

सखीनां दर्शयन्तीनां नृत्यगीतादिकौशलम् ।
वेलोपभोजनस्यापि सञ्जाता कौतुकालये ॥७१॥

उधर कोहवर-भवनमें सखियोंके नृत्य गीतादिकी कुशलता (चतुराई) दिखानेमें ही, ब्यारूका समय उपस्थित हो गया ॥७१॥

ततस्ताभिर्मुदाढ्येन चेतसा रघुनन्दनः ।
सहितो भ्रातृभिश्चैव भोजनैश्चारु तर्पितः ॥७२॥

इस हेतु उन श्रीसिद्धि आदिकोंने बड़े ही प्रसन्न चित्तसे, भाइयोंके सहित, श्रीरघुनन्दन-प्यारेजीको भोजनके द्वारा भली प्रकारसे तृप्त किया ॥७२॥

आदिष्टाभिर्महाराज्ञ्या स्नुषाभिः स्वापिताः पुनः ।
कुमारा राजराजस्य लोकोत्तरविभूतयः ॥७३॥

इधर निमिवंश-कुमारियोंके सहित महलके उद्यानसे पधारी हुई अपनी श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीको श्रीसुनयनामहारानीजीने भी कलेऊ करवा कर सुख-पूर्वक शयन कराया ॥७३॥

तब श्रीसिद्धिजी आदिकोंने मङ्गल गाती हुयी बड़े हर्ष पूर्वक उनकी आरती की, पुनः पुष्पाञ्जलि प्रदान करके उन्हें माङ्गलिक पदार्थों का दर्शन कराया ॥१०॥

मज्जनं कारयामासुस्तान् वरान्वामलोचना ।
दन्तधावनमिन्द्वास्याः कारयित्वाऽतिवल्लभान् ॥११॥

तत्पश्चात् मनोहर नेत्रों तथा चन्द्रमाके समान मुखवाली उन सखियोंने दन्त-धावन कराके अत्यन्त प्यारे वरोंको स्नान कराया ॥११॥

आसाद्य भवनं मुख्यं राज्ञी प्रेमपरिप्लुता ।
प्राशनाय च राजेन्द्र-कुमारान् समुपाह्वयत् ॥१२॥

प्रेममें डूबी हुई श्रीसुनयना महारानीजी जब अपने मुख्य भवनमें पहुँचीं, तब उन्होंने कलेऊके लिये श्रीचक्रवर्ती-कुमारोंको बुला भेजा ॥१२॥

श्रुत्वा आहुतिमाज्ञायवरांस्तास्तानु पानयन् ।
मसिविन्दूल्लसद्भालं सिद्धयाद्याः संविभूषितान् ॥१३॥

अपनी सासुजीकी बुलावा जानकर वे श्रीसिद्धिजी आदि बहुयें पूर्ण शृङ्गार करके कज्जलके बिन्दुसे सुशोभित भाल वाले उन वरोंको उनके पास ले गयीं ॥१३॥

प्रत्युद्गम्य महाराज्ञी जामातॄन् हर्षनिर्भरा ।
गाढं तानुरसाऽऽलिङ्ग्य निन्ये प्रथममन्दिरम् ॥१४॥

हर्ष निर्भर हो श्रीसुनयना महारानीजी अपने जमाइयोंको आगे जाकर उन्हें हृदयसे लगाकर अपने मुख्य भवनमें ले गयीं ॥१४॥

कान्तिमत्यादयः सर्वा राज्ञ्यस्तान् क्रमशस्तदा ।
अभोजयन् महाराज्ञ्या रम्योर्णासनराजितान् ॥१५॥

तब श्रीकान्तिमतीजी आदि सभी रानियाँ मनोहर ऊनी आसनों पर विराजमान, उन वरोंको श्रीमहारानीजीके सहित अपनी २ पारीसे भोजन कराने लगीं ॥१५॥

दक्षिणस्थां तु कक्षायां पुत्रिका भूमिजादयः ।
तथोपभोजिताः सर्वास्ताभिश्चन्द्रनिभाननाः ॥१६॥

उसी प्रकार दक्षिणवाले कमरेमे चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली भूमिजा (श्रीमिथिलेश-राजनन्दिनी) जू आदि सभी पुत्रियोंको उन्होंने श्रीसुनयना महारानीजूके साथ २ भोजन कराया १६

स्वरूपा वे श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजीने अपनी भुजमाला उनके गलेमें डालकर उन्हें पलङ्ग पर बिठा लिया ॥४॥

साऽपि तामुरसाऽऽलिङ्ग्य प्रेमाकुलित लोचना ।
आघ्राय मस्तकं तस्याः शातमापदनुत्तमम् ॥५॥

वे प्रेम भरे नेत्रों वाली श्रीअम्बाजी उन्हें हृदयसे लगाकर तथा मस्तक को सूंघ कर सबसे बढ़कर (ब्रह्म) सुख को प्राप्त हुईं ॥५॥

पुत्र्यः सर्वास्तदोत्थाय वन्दित्वा तत्पदाम्बुजे ।
प्रणता मैथिलीं सीतामुपतस्थुर्मुदान्विताः ॥६॥

उस समय सभी पुत्रियाँ उठकर उनके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम करके, सब दुःख-भञ्जिनी तथा सब सुख-विस्तारिणी श्रीललीजीको प्रणाम करके हर्षित हो, उनके समीपमें जा विराजीं ॥६॥

ततस्तां स्वस्तिकागारं जगामादाय सा सुताम् ।
सेव्यमाना सखीवृन्दैः छत्रचामरपाणिभिः ॥७॥

तत्पश्चात् छत्र, चवँर आदि हाथोंमें लिये हुई अपनी सखियोंसे सेवित होती हुई, वे श्रीसुनयनाअम्बाजी अपनी श्रीललीजीको लेकर स्वस्तिक (मङ्गल) भवनमें पधारीं ॥७॥

वध्वः सिद्ध्यादयो ऽभ्येत्य कौतुकागारमद्भुतम् ।
जगुः कलं सुमधुरं पिककण्ठ्यः सहालिभिः ॥८॥

उधर कोकिलके समान कण्ठवाली श्रीसिद्धिजी आदि राजपुत्रवधुयें सखीवृन्दोंके सहित उस कोहवर भवनमें जाकर अत्यन्त मधुर तथा मनोहर मङ्गल गाने लगीं ॥८॥

त्यक्तनिद्रोऽभवत्तेन श्रीरामो वरसत्तमः ।
भ्रातृभिः सुषमासिन्धुस्तूयमानपदाम्बुजः ॥९॥

उपमारहित सुन्दरताका समुद्र अपनेको तुच्छ देखकर जिनके श्रीचरणकमलोंकी प्रशंसा करता है, वरोंमें सर्वोत्तम वे श्रीरामभद्रजी अपने भाइयोंके सहित उस गानसे निद्रा रहित हो गये अर्थात् जाग गये ॥९॥

तदार्तिक्यं मुदा चक्रुर्गायन्त्यस्ताः सुमङ्गलम् ।
दत्वा पुष्पाञ्जलिं तस्मै माङ्गल्यानि व्यदर्शयन् ॥१०॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजीके लाये उन अलौकिक श्रीदूलहसरकारोंने प्रेमपूर्वक दोनों मुनियोंको प्रणाम करके अपने पिता श्रीदशरथजी महाराजको प्रणाम किया ॥२३॥

अथायोध्याधिपो राजा ससमाजो हि सादरम् ।
प्रक्षालितसरोजाङ्घ्रिः स्वासने सन्निवेशितः ॥२४॥

तदनन्तर चरण कमलोंको धोकर समाजके सहित अयोध्यापति महाराजको श्रीजनकजी महाराजने आदर पूर्वक सुन्दर आसन पर बिठाया ॥२४॥

उपविष्टेषु सर्वेषु मुनीन्द्रेषु नृपेषु च ।
स्वासनानि महार्हाणि स वरेष्वाह भूपतिः ॥२५॥

बहु मूल्य सुन्दर आसनों पर, वरोंके समेत सभी मुनियों तथा राजाओंके विराजमान हो जाने पर पृथिवीपति श्रीमिथिलेशजी महाराज बोलेः-॥२५॥

श्रीजनक उवाच ।

औदनिकप्रधाना मे ऽनुज्ञया परमाशनैः ।
भवद्भिराशु भूपेन्द्रः ससमाजः सुतर्प्यताम् ॥२६॥

हे हमारे प्रधान रसोइयों ! आप लोग मेरी आज्ञासे सर्वोत्तम प्रकारके भोजनोंके द्वारा सम्पूर्ण समाजके सहित श्रीचक्रवर्तीजी महाराजको शीघ्र तृप्त कीजिये ॥२६॥

श्रीशिव उवाच ।

त इत्याज्ञापिता राज्ञा वितेरुर्विविधाशनम् ।
सर्वेषां मणिपत्राणामुपर्य्याशु यथाक्रमम् ॥२७॥

भगवान् शिवजी बोलेः-हे पार्वती ! श्रीमिथिलेशजी महाराजकी इस आज्ञाको सुनकर वे रसोइया शीघ्रही सबके मणिमय पत्तलोंके ऊपर क्रमशः विविध प्रकार की सामग्रियों को परोसने लगे ॥२७॥

विविधोदनानि सूपांश्च स्वर्णपात्रेषु धारितान् ।
वेढमिकास्तथाऽऽज्याक्ता गोधूमादेश्च रोटिका ॥२८॥

अनेक प्रकारके भात, स्वर्णपात्रों में रक्खी हुई विविध प्रकारकी दालें वेढ़ई तथा घृतमें बोरी हुई गेहूँ आदि की रोटियाँ ॥२८॥

कृशरा सर्पिषा युक्ता मुद्गवद्यम्लिका वटाः ।
अङ्गारकर्करीश्चापि काञ्जिकावटकांस्तथा ॥२९॥

पुनः प्रदाय ताम्बूलवीटिकाः कौतुकालयम् ।
प्रेषिता राजपुत्रास्ते सखीभिश्च पृथक्पृथक् ॥१७॥

पुनः पानका बीड़ा देकर सखियोंके सहित, उन श्रीराजकुमारोंको अलग अलग कोहवर गृहोंमें भेजा गया ॥१७॥

कुशध्वजेन भूपेन्द्रः प्रार्थितः सखिबन्धुभिः ।
अमात्यैः स सुहृद्भिश्च श्रीविदेहालयं ययौ ॥१८॥

उधर श्रीकुशध्वज महाराजकी प्रार्थनासे श्रीचक्रवर्तीजी महाराज अपने सुहृद, बन्धु तथा मन्त्रियों-के सहित श्रीविदेहजी महाराजके राजभवनको चले ॥१८

दर्शनोत्सुकचित्तानां जनानां पुरिवासिनाम् ।
सहस्रैः परिपूर्णं तद्राजमार्गतटद्वयम् ॥१९॥

उनके दर्शनोंके उत्सुक सहस्रों पुर वासियोंसे उस राजमार्गके दोनो किनारे परिपूर्ण हो गये १९

अनेकविधवाद्यानां निःस्वनैः पूरिता पुरी ।
आगच्छतो नरेन्द्रस्य तस्य श्रीजनकालयम् ॥२०॥

उन श्रीदशरथजी महाराजके श्रीजनक भवनको जाते समय अनेक प्रकारके बाजाओंके घोषसे वह नगर परिपूर्ण हो गया ॥२०॥

विज्ञायागमनं राज्ञः कोशलेन्द्रस्य हर्षिताः ।
राज्ञ्यः सर्वाः सखीवृन्दैर्भोजनालयमाययुः ॥२१॥

श्रीदशरथजी महाराजको आये हुये जानकर, सभी रानियाँ अपनी सखियोंके सहित भोजन सदनमें आगयीं ॥२१॥

ततः स राजशार्दूलः ससमाजो महानसम् ।
सत्कृत्य विधिनाऽऽनीतो मिथिलेन्द्रेण धीमता ॥२२॥

तत्पश्चात् श्रीमिथिलेशजी महाराज सम्पूर्ण समाजके सहित श्रीचक्रवर्तीजी महाराजका सत्कार करके बुद्धिमान् श्रीजनकजी महाराज उन्हें अपनी भोजन शालामें ले गये ॥२२॥

लोकोत्तरवरा राज्ञा समानीताः प्रियोत्तमाः ।
नत्वा मुनीन्द्रौ पितरं प्रणेमुः प्रणयान्विताः ॥२३॥

कुण्डलिनीश्च विविधाः सेविका मोदकांस्तथा ।
वेसनमोदकान्मुक्तामोदकांश्चैव फेनिकाः ॥३५॥

कुण्डलिनी (जिलेबी), अनेक प्रकारके बने हुए 'स्यौं' आदि, वेसन डालकर और दूसरे तीसरे प्रकारसे बनाये गये मोदक, फेनिका आदि ॥३५॥

प्रपानकांश्च विविधान् भोजनैकरुचिप्रदान् ।
तेमनानि पटोलस्यालाबुवो मूलकस्य च ॥३६॥

भोजनमें रुचिको बढ़ानेवाले नाना प्रकारके पेय पदार्थ, परवल (पढोर), सजमनि (सजकोड़ा) और मूलक (मूर=मुरै) आदिसे बने रंग बिरंग 'तेमन' (तीमन), ॥३६॥

कूष्माण्डस्य च कर्कट्या रक्तालोरालुकस्य च ।
वृन्ताकस्य तथा शिम्बेस्तथा रम्भाफलस्य च ॥३७॥

कूष्माण्ड (कोहड़ा) कर्कटी (काँकड़ या गुलमण्टी)-लाल आलू आलू वगन सीम और, केला ॥३७॥

नवराजकोशातक्याः सुविम्ब्याः सर्षपस्य च ।
आर्पयन् विविधाञ्छाकान् रुक्मपात्रनिवेशितान् ॥३८॥

घिउरा (नेनुआँ=घेरा) तिलकोड सरसों, आदिसे बने हुये नाना प्रकारके शाक, सोने (स्वर्ण) की कटोरियोंमें भर कर अर्पित हुये ॥३८॥

तेषां कतिपयानां च शृणु नामानि शैलजे !
राजिकायाः कलायस्य तण्डुलीयस्य वै तथा ॥३९॥

हे पार्वतीजी ! उनमेंसे कुछके नाम भी सुनो, राई मटर, चौराई (गेन्हारी और ॥३९॥

कासमर्दस्य कन्दस्य वास्तूकस्य तथैव च ।
सौभाञ्जनफलानां च कारवेल्लपटोलयोः ॥४०॥

कासमर्द (गमहारि), कन्द, और बथुआ इत्यादि पत्ती शाक और सौहिजन (मुनिगा) करैल परवल (पड़ोर) आदिका ॥४०॥

सूरणालाबुवोश्चैव पट्टकूष्माण्डयोस्तथा ।
सर्षपस्य कलायस्य कर्कटीकासमर्दयोः ॥४१॥

घी से तर-वतर खिचड़ी, मुगौड़ी (मूँगकी वड़ी), इमली आदिके रसमें बनाये गये बरे, नाना प्रकारकी वड़ियाँ, अङ्गार कर्कटी (वाटी-लिटी), सुन्दर सुस्वादु लाभप्रद काञ्जियोंसे बनाये गये बड़े ॥२९॥

कूष्माण्डवटिका मुद्गवटका 'सुपरिष्कृताः' ।
मुद्गार्द्रवटकाश्चैव वेसनवटिका अपि ॥३०॥

कूष्माण्डवटिका (कुम्हड़ौरी) अच्छीतरह बनाये गये मूँगके बड़े, मूँग और आदी इन दोनोंसे बनाये गये बड़े, और वेसनकी बनी बड़ियाँ ॥३०॥

अलाबूवटिका माषवटिकाश्चैव मण्डकम् ।
कुल्माषा विविधाश्चैव तिलकुट्टानि वै तथा ॥३१॥

सजकोहड़ेकीवड़ी, माष (उड़द) की वड़ी, मण्डक (यूप-मशाले डालकर अच्छीतरह बनाया गया माँड), कुल्माष (कुलथीसे बने हुये), और तिलको कूट कर उससे बनाये गये नाना प्रकार के व्यञ्जन तथा चटनी ॥३१॥

राज्यक्तान् कथितास्तापहरीः सस्वादुपर्पटाः ।
अपूपान् पूरिकाश्चैव शष्कुलीर्मठकं तथा ॥३२॥

राई देकर बनाये गये शाक, तापको हरनेवाले सुन्दर-सुन्दर काढ़े, अच्छी अच्छी पापड़, अपूप (मालपुआ इत्यादि) पूड़ियाँ, रोटियाँ, मट्ठा (छोला) ॥३२॥

संयावान् पायसं नालिकेरक्षीरी च सेविकाः ।
लप्सिकाश्चैव कर्पूरनालिका दुग्धकूपिकाः ॥३३॥

संयाव (हलुआ आदि), पायस (दूधमें मशाला आदि डाल कर पकाया गया चावल 'खीर'), नारियर डालकर पकाया हुआ गाढ़ा दूध, सेविका (सेव=मिठ्ठी जैसी खानेवाली पवित्र चीज), रंग विरंगकी लप्सियाँ, कपूरनी शाक विशेष, दुग्ध कूपिका (रसगुला) ॥३३॥

तक्रं लाजाक्षीरीं च चिपटान्नं दधिमिश्रितम् ।
दध्योदनं च दधिजं नूतनं खण्डमिश्रितम् ॥३४॥

तक्र (छाँछ), लाजाक्षीरी (लावाका तस्मै), दही-चूड़ा, दही-भात, खाँड़ मिश्रित दहीसे बनाया गया खाद्य पदार्थ ॥३४॥

कुण्डलिनीश्च विविधाः सेविका मोदकांस्तथा ।
वेसनमोदकान्मुक्तामोदकांश्चैव फेनिकाः ॥३५॥

कुण्डलिनी (जिलेबी), अनेक प्रकारके बने हुए 'सयौं' आदि, वेसन डालकर और दूसरे तीसरे प्रकारसे बनाये गये मोदक, फेनिका आदि ॥३५॥

प्रपानकांश्च विविधान् भोजनैकरुचिप्रदान् ।
तेमनानि पटोलस्यालाबुवो मूलकस्य च ॥३६॥

भोजनमें रुचिको बढ़ानेवाले नाना प्रकारके पेय पदार्थ, परवल (पढोर), सजमनि (सजकोंढा), और मूलक (मूर=मुरै) आदिसे बने रंग बिरंग 'तेमन' (तीमन), ॥३६॥

कूष्माण्डस्य च कर्कट्या रक्तालोराल्लुकस्य च ।
वृन्ताकस्य तथा शिम्बेस्तथा रम्भाफलस्य च ॥३७॥

कूष्माण्ड (कोहड़ा) कर्कटी (काँकड़ या गुलमण्टी)-लाल आलू-आलू बगन सीम-और, केला ॥३७॥

नवराजकोशातक्याः सुबिम्व्याः सर्षपस्य च ।
आर्पयन् विविधाञ्छाकान् रुक्मपात्रनिवेशितान् ॥३८॥

पिउरा (नेनुआँ=घेरा)-तिलकोड-सरसौं, आदिसे बने हुये नाना प्रकारके शाक, सोने (स्वर्ण) की कटोरियोंमें भर कर अर्पित हुये ॥३८॥

तेषां कतिपयानां च शृणु नामानि शैलजे !
राजिकायाः कलायस्य तण्डुलीयस्य वै तथा ॥३९॥

हे पार्वतीजी ! उनमेंसे कुछके नाम भी सुनो, राई-मटर, चौराई (गेन्हारी और ॥३९॥

कासमर्दस्य कन्दस्य वास्तूकस्य तथैव च ।
सौभाञ्जनफलानां च कारवेल्लपटोलयोः ॥४०॥

कासमर्द (गमहारि), कन्द, और बथुआ इत्यादि पची शाक और सीहिजन (मुनिगा)-करैल-पर वल (पड़ोर) आदिका ॥४०॥

सूरणालाबुवोश्चैव पट्टकूष्माण्डयोस्तथा ।
सर्षपस्य कलायस्य कर्कटीकासमर्दयोः ॥४१॥

सूरण (ओल)-सजमन पटुआ-कोहड़ा सरसों-मटर-गुलमण्टी या कोंहड़ आदि पत्ती और कन्द फलकी मिलावटसे बने हुये व्यञ्जन ।४१॥

राजकोशातकी बिम्ब्योः शिम्बिवृन्ताक्ययोस्तथा ।
आरूकस्य तथा शाकं रक्तालोः स्वादुवत्तरम् ॥४२॥

नेपाली घिउरा तिलकोड़ सीम बैगन (भाटाँ)-अरुआ-और लालआलू आदि दो दो के मेलसे बने हुये बड़े ही स्वादिष्ट शाक ॥४२॥

शाकं मूलकपत्राणां रम्भाकन्दादिकस्य च ।
रचितं नैकविधिना प्रत्येकस्य च वस्तुनः ॥४३॥

मूलीकी पत्ती-केला-और कन्द आदिसे अनेक भाँतिके (अलग अलग और दो तीन या उससे भी अधिक वस्तुकी मिलावटसे बनाये गये, भूजे तथा रस दार) शाक (व्यञ्जन) ॥४३॥

दधि दुग्धं घृतं तोयं मुक्तहस्तैर्मुदान्वितैः ।
निहितं स्वर्ण पात्रेषु सर्वेभ्यस्तैः समर्पितम् ॥४४॥

उन रसोइयोंने दही, दूध, घी, और जलको सोनेके पात्रोंमें रखकर सभीको खुले हाथों समर्पण किया (अन्य वस्तुओंके लिये फिर कहना ही क्या !) ॥४४॥

तत उत्थापयद्ग्रासं कोशलेन्द्रो वरैर्युतः ।
लब्ध्वेप्सितोपहारांश्च प्रार्थितो जनकेन सः ॥४५॥

तत्पश्चात् अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकारकी भेटको पाकर श्रीमिथिलेशजीमहाराजकी प्रार्थनासे श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने चारो वर सरकारोंसे युक्त हो (भोजनके लिये) ग्रास उठाया ॥४५॥

शृण्वन्मृगनिभाक्षीणां गायन्तीनां मुदान्वितः ।
हास्यवाचो नृपाधीशःसमश्नाति शनैः शनैः ॥४६॥

और मृगलोचना मैथिलानियोंके गाते हुये हास्य रस युक्त वचनोंको श्रवण करते हुये, आनन्द युक्त हो वे श्रीचक्रवर्तीजी महाराज बहुत धीरे धीरे भोजन करने लगे ॥४६।

तल्लीलादर्शनानन्दप्रमत्तानां दिवौकसाम् ।
जयध्वन्याऽखिलं विश्वं संव्याप्तं शातपूर्णया ॥४७॥

उस लीला-दर्शन-जनित आनन्दसे मतवाले हृदय उन देववृन्दोंकी सुखसमन्वित जयकार ध्वनिसे सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हो गया ॥४७॥

कृताशनाः पुनः सर्वे लब्धताम्बूलवीटिकाः ।
यानैः प्रेषिता वास-मन्दिरं चक्रवर्तिना ॥४८॥

पुनः भोजन कर चुकनेके पश्चात् पानका बीरा देकर सभीको श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके साथ रथोंके द्वारा वास-मन्दिर अर्थात् जनवासमें भेजा गया ॥४८॥

सत्कृताः सविधं राज्ञा विदेहेन यथोचितम् ।
सहिताः कोशलेन्द्रेण मुनिवर्य्यैर्नृ पार्चितैः ॥४९॥
सत्कृतिं नम्रतां स्थैर्य्यं स्वभावं शीलमेव तत् ।
अवाच्यानन्दमापन्ना वर्णयन्तः परस्परम् ॥५०॥

श्रीविदेह महाराजसे पूजित मुनिवरोंके सहित, श्रीदशरथजी महाराजके साथ श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा यथोचित सत्कारको पाकर, सभी बराती परस्पर उनके सत्कार नम्रता, स्थिरता, स्वभाव, शीलकी प्रशंसा करते हुये वे अवर्णनीय सुखको प्राप्त हुये ॥४९॥५०॥

सिद्ध्यादयो महाभागा मैथिलीमभिवाद्य च ।
कृपाकटाक्षसन्तुष्टा आव्रजन्नशनालयम् ॥५१॥

महाभाग्यशालिनी वे श्रीसिद्धिजी आदि राजवधुयें श्रीललीजीकी कृपाकटाक्षको पाकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो, उन्हें प्रणाम करके उस भोजन भवनमे पधारीं ॥५१॥

राज्ञी सुनयना ताभ्यः श्रीकुशध्वजमन्दिरम् ।
व्यादिदेश वरान्नेतु तत्सुखस्याभिवृद्धये ॥५२॥

वहाँ श्रीसुनयना महारानीजीने वरों को श्रीकुशध्वज महाराजके महलमें, उनके विशेष सुखार्थ ले जाने लिये अपनी उन सिद्धिजी आदि चारों बहुआ को आज्ञा दी । ५२॥

सुदर्शना सुभद्रा च निशम्यादेशमीप्सितम् ।
तस्याः प्रहर्षपूर्णदृशौ पादपद्मे प्रणेमतु ॥५३॥

श्रीसुदर्शनाजी व श्रीसुभद्रा महारानीजी अपनी मनोऽभिलषित आज्ञा को सुनकर हर्ष पूर्ण नेत्र हो, उन श्रीसुनयना महारानीजीके श्रीचरण-कमलों से प्रणाम करती हुई ॥५३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

कुमारीरवलोक्यैव स्वापयित्वा पुनश्च ताः ।
आगमिष्याम्यहं शीघ्रं स्वालयं नयतां वरान् ॥५४॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-मैं कुमारियों को देखकर तथा उन्हें विश्राम कराके शीघ्र आती हूँ आप दोनों ही वरों को लेकर अपने महल को चलें ॥५४॥

श्रीशिव उवाच।

एवमाज्ञापिते राज्ञ्या ते प्रणम्य पुनः पुनः।
वरयाने स्थिते रामे भ्रातृभिर्मुदिताननेे ॥५५॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती! श्रीसुनयना महारानीजीको इस प्रकारकी आज्ञा पाकर, वे दोनों महारानी उन्हें बारबार प्रणाम करके, भाइयोंके सहित श्रीरामभद्रजूके उस वरयानमें विराज जाने पर प्रसन्न मुख हो गयीं ॥५५॥

स्थितासु परिचर्यायां सिद्धयादिषु स्नुषासु च।
वराणां माण्डवीमाता चलच्चामरपाणिषु ॥५६॥

हाथसे डोलते हुये चँवरको धारण करके श्रीसिद्धिजी आदि पतोहुओंके वरोंकी सेवामें तत्पर हो जाने पर श्रीमाण्डवीजीकी माता श्रीसुदर्शना अम्बाजी ॥५६॥

वरयानस्थिताभिश्च राज्ञीभिः स्वालिभिस्तथा।
प्रार्थ्यमाना मुहुर्भक्त्या सादरं रथमारुहत् ॥५७॥

उस वरयान पर विराजी हुई रानियों तथा अपनी सखियोंके प्रेम-पूर्वक आदर समन्वित बारबार प्रार्थना करने पर वे रथमें विराजीं ॥५७॥

चचाल वरयानं तत्सुभद्राया निदेशतः।
सर्वोच्छ्रितं महारम्यं पताकाध्वजमण्डितम् ॥५८॥

तब श्रीसुभद्रा महारानीजीकी आज्ञासे, ध्वजा पताकासे अलङ्कृत सबसे ऊँचा तथा अत्यन्त मनोहर वह रथ चला ॥५८॥

परिवृत्य विमानानां सहस्राण्येव योषिताम्।
चेलुस्तदद्भुतं मुक्तापुष्पमाल्यैरलङ्कृतम् ॥५९॥

मोतियों तथा पुष्पमालाओं द्वारा सब प्रकारसे सुसज्जित, उस विलक्षण रथको चारो ओरसे घेर कर, स्त्रियोंके हजारों रथ चले ॥५९॥

सुभद्रा ह्यग्रतोऽगच्छत्स्वागतार्थं निजालयम्।
वहिर्द्वारं समायाता सखीभिः पुनरावृता ॥६०॥

वरोंका स्वागत करनेके लिये श्रीसुभद्रा महारानी आगे ही अपने महलको गयीं और पुनः स्वागतार्थ सखियोंके सहित द्वार पर आगयीं ॥६०॥

प्रत्युद्गम्य विमानं सा ताश्नीराज्य वरर्षभान् ।
महोत्सवेन स्वागारं निनायानन्दनिर्भरा ॥६१॥

और वे विमानके आगे जाकर सर्वोत्तम चारो वरोंकी आरती करके, महान् उत्सवपूर्वक, आनन्दमें निर्भर हो, उन्हें अपने भवनसे ले गयीं ॥६१॥

जयवादित्रमाङ्गल्यगीतघोषविमिश्रितैः ।
रथानां घण्टिकाशब्दैः खान्तमापूरितं जगत् ॥६२॥

उस समय बाजाओंके, जयकारके तथा माङ्गलिक गीतोंके घोषसे मिले हुये रथोंकी घण्टियोंके शब्दसे यह चर-अचर प्राणियों-मय जगत आकाश पर्यन्त शब्दोंसे भर गया ॥६२॥

आससादातिशीघ्रेण दिवासवेशमन्दिरम् ।
तेषामर्थे वराणां हि सर्वतः समलङ्कृते ॥६३॥

वह रथ बड़ी शीघ्रतापूर्वक दिनके विश्राम-भवनमें जा पहुँचा, क्योंकि वह भवन उन वरोंके ही लिये सब ओरसे सजाया गया था ॥६३॥

कृत्वा नीराजनं प्रेम्णा वराणां श्रीसुदर्शना ।
पाययित्वा पयः क्षिप्रं स्वापयामास तान्मुदा ॥६४॥

वहाँ श्रीसुदर्शना अम्बाजीने प्रेमपूर्वक वरोंकी आरती करके, तथा दुग्ध-पान कराके हर्षपूर्वक उन्हें शयन कराया ॥६४॥

बहिर्नीत्वा ततः सर्वाः सत्कृतास्ता यथेप्सितम् ।
सत्कृतिं चिन्तयन्त्येव वराणां तन्मयी बभौ ॥६५॥

तत्पश्चात् वे श्रीसुदर्शना अम्बाजी यथोचित सत्कार की हुई उन सभी माताओंको बाहरी लाकर वरोंके सत्कारका चिन्तन करती हुई तन्मय हो गयीं ॥६५॥

आजगाम तदा राज्ञी स्वालिभिः परिवारिता ।
स्वापयित्वा प्रियां पुत्रीं परीतां स्वसृभिर्द्रुतम् ॥६६॥

उसी समय तुरत श्रीसुनयना महारानीजी बहिनोंके समेत परमप्यारी श्रीललीजीको शयन कराके अपनी सखियोंके सहित वहाँ (श्रीकुशध्वज महाराजके भवनमें) आपधारीं ॥६६॥

तदागमनमाज्ञाय तूर्णमेव समुत्थिता ।
नत्वा सत्कारयामास सविधं तां सुदर्शना ॥६७॥

उनके शुभागमनको जानकर वे श्रीसुदर्शना महारानीजी तत्त्वण उठकर खड़ी हो गयीं, पुनः प्रणाम करके विधिपूर्वक उन्होंने उनका सत्कार किया ॥६७॥

ततो वीतालसान्बुद्ध्वा वरान्छ्रीजनकप्रिया ।
तया प्रविश्य चापश्यन्तांस्तदन्तर्निकेतनम् ॥६८॥

तत्पश्चात् श्रीसुनयना महारानीजीने दूलह सरकारोंको आलस्य रहित हुये जानकर, श्रीसुदर्शना जीके समेत भीतर महलमें लेजाकर उन्हें देखा ॥६८॥

आचमनादिकं कृत्यं कारयित्वाऽपि सादरम् ।
मध्यं वेश्मानयामास तस्यास्तु समहोत्सवम् ॥६९॥

पुनः आचमनादि कृत्योंको करवा कर आदर-पूर्वक महान् उत्सवके सहित, उन चारो वरोंको श्रीसुदर्शना महारानीके मध्य महल में ले गयीं ॥६९॥

दर्शनानन्दमग्नानां समक्षं कुलयोषिताम् ।
सुदर्शना समं राज्ञ्या ताननुरागनिर्भरा ॥७०॥
उपवेश्य सुपीठेषु वाञ्छितं पारितोषिकम् ।
प्रदाय सादरं प्रेम्णाऽतर्पयद्विविधाशनैः ॥७१॥

वहाँ महारानीश्रीसुनयना अम्बाजीके सहित श्रीसुदर्शना अम्बाजीने अनुराग पूर्वक, दर्शनोंके लिये व्याकुल चित्तवाली निमिकुलकी स्त्रियोंके समक्ष (देखते हुये) उन वरों को सुन्दर सिंहासनों पर विराजमान करके उन्हें इच्छानुसार नेग देकर प्रेम व आदरपूर्वक विविध प्रकारके भोजनों द्वारा तृप्त किया ॥७०॥७१॥

वराणामागतिं गेहे स्वस्याकर्ण्य कुशध्वजः ।
प्रविश्य तत्र तानाशु दृष्ट्वा प्राप कृतार्थताम् ॥७२॥

श्रीकुशध्वज महाराज अपने महलमें वरोंका आगमन सुनकर वहाँ अपने महलमें आकर उनका दर्शन करके कृतकृत्य हो गये ॥७२॥

साकेत्यं च पुनर्ज्ञात्वा लक्ष्मणस्य मुदान्विता ।
अकारयत्स्वाचमनं तैः सकान्ता सुदर्शना ॥७३॥

पुनः श्रीलखनलालजीरा सङ्केत समाकर आनन्द परिपूर्ण हो श्रीसुदर्शना अम्बाजीने अपने पतिदेवके सहित उन वरोंको आचमन कराया ॥७३॥

नागवल्लया दलानां च रचिताः सुष्ठुवीटिकाः ।
स्वकरेणार्पयामास तेषामास्यसुधांशुषु ॥७४॥

पुनः उन्होंने पानके बनाये हुये स्वादिष्ट बीरोंको स्वयं अपने कर-कमलसे, उनके मुखचन्द्रोंमें अर्पण किया ॥७४॥

घ्रापयित्वा पुनर्धूपं पुष्पमाल्यैर्विभूषितान् ।
मुदा नीराजयाञ्चक्रे गानवाद्यपुरः सरम् ॥७५॥

तत्पश्चात् पुष्पमालाओंसे विभूषित करके उन्हें धूपको सुँघाकर, अपार हर्ष-पूर्वक गान बजानके सहित उनकी आरतीकी ॥७५॥

अथेनं निष्प्रभं दृष्ट्वा तया सा वरसत्तमान् ।
कथञ्चिद्धैर्यमालम्ब्य निनायोर्वीशमन्दिरम् ॥७६॥

इसके बाद भगवान् भास्करको प्रभा हीन हुये देखकर श्रीसुनयनामहारानीके सहित श्रीसुदर्शनाअम्बाजी किसी प्रकार धैर्यका अवलम्बन लेकर उन सर्वोत्तम वर सरकारों को श्रीजनकजी महाराजके महलमें पहुँचाया ॥७६॥

तांस्तु कान्तिमती राज्ञी पुरोऽभ्येत्य मुदाप्लुता ।
नीराज्य महता प्रेम्णा सादरं गृहमानयत् ॥७७॥

आनन्दमें डूबी हुई श्रीकान्तिमती अम्बाजी आगे जाकर महान् अनुरागके साथ आरती करके उन्हें अपने महलमें ले गयी ॥७७॥

उपविष्टेषु वै तेषु स्वासनेषु वरेषु च ।
सखीनां नृत्यगीतादेः समारम्भो बभूव ह ॥७८॥

उन वरोंके सुन्दर सिंहासनों पर विराजमान हो जाने पर सखियोंका नृत्य-गान आदि आरम्भ हुआ ॥७८॥

उपनैशाशनं तेभ्यः कारयित्वा स्वपाणिना ।
प्रेषयामास सा ताभिस्तांस्तदा कौतुकालयम् ॥७९

तब श्रीकान्तिमती अम्बाजीने उन चारों वरोंको अपने हाथसे रात्रिका भोजन (ब्यारु) करवा कर, उन्हें सखियोंके साथ कोहबर-भवनको भेजा ॥७९॥

पुत्र्यस्त्वशेषराज्ञीभिः श्रीजनकात्मजादिकाः ।
स्वापिता लाल्यमानास्ताः कारितोपनिशाशनाः ॥८०॥

तथा श्रीसुनयनाअम्बाजी आदि सभी महारानियोंने श्रीजनकदुलारीजी आदि सभी पुत्रियोंको प्यार करती हुई भोजन कराके, उन्हें शयन कराया ॥८०॥

सुदर्शना सुभद्राद्या राज्ञ्यः सर्वाः कृताशनाः ।
महाराज्ञ्या समं तत्र शिश्यिरे मुदितात्मना ॥८१॥

पुनः श्रीसुदर्शना, सुभद्राजी आदि सभी रानियोंने व्यारू करके श्रीसुनयनामहारानीजीके सहित प्रसन्न मनसे वहीं शयन किया ॥८१॥

कोशलेन्द्रं विदेहोऽपि ससमाजं सकौशिकम् ।
भोजयित्वाऽनुजैः प्रागात्तद्विसृष्टो महानसम् ॥८२॥

उधर अपने भाइयोंके सहित श्रीविदेहजीमहाराजने श्रीविश्वामित्रजीके समेत, समाज संयुक्त श्रीदशरथजीमहाराजको भोजन कराके जनवासमें पहुचाया। पुनः उनके बीदा करने पर अब अपने उस भोजन-भवनमें आये ॥८२॥

तत्र कृत्वाऽशनं सुप्ता वरैः पुत्रीः कृताशनाः ।
निशम्य चिन्तयंस्तांस्ताः सुष्वापानन्दनिर्भरः ॥८३॥

वहाँ वराके सहित अपनी पुत्रियासे भोजनपूर्वक विश्रामकी हुई सुनकर वे स्वयं भोजनसे निवृत्त हो उन युगलजोड़ियों का चिन्तन करते हुये आनन्द निर्भर हो सो गये ॥८३॥

श्रीराम कौतुकागारे भ्रातृभिर्मोहनेक्षणम् ।
स्वापयित्वा विदेहत्वं राजवध्वोऽञ्जसा गताः ॥८४॥

उस कोहवर भवनमें भाइयोंके सहित अपनी चितवनसे सभीको मुग्ध करलेने वाले उन श्रीरामभद्रजीको शयन कराकर वे राज वधूयें अनायास ही अपने देहकी सुधि-बुधि भूल गयीं ॥८४॥

सिद्ध्यादिभिः श्रीधरपुत्रिकाभिः सेवारताभिः सुखमद्वितीयम् ।
लब्धं वराणां दशयानजानां श्रीवागुमानामपि दुर्लभं यत् ॥८५॥

जो अनुपम सुख श्रीलक्ष्मीजी, श्रीपार्वतीजी श्रीसरस्वतीजीके लिये भी दुर्लभ है, उसीको श्रीदशरथकुमार नवरसोंकी सेवापरायण श्रीधर महाराजकी श्रीसिद्धिजी आदि पुत्रियोंने प्राप्त किया ॥८५॥

इत्थं समासादितदिव्यमोदा निद्रां प्रयातेषु वरोत्तमेषु ।
रात्र्यां गतायां हि ततोऽधिकायां स्वापं गताः स्वालिगणेन ताश्च ॥८६॥

इति द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

—: मासपारायण-विश्राम २८ :—

इस प्रकार उन उत्तम वरोंके सो जाने पर दिव्य सुखको प्राप्त हुई वे श्रीसिद्धिजी आदि श्रीकिशोरीजीकी भौजाइयाँ अधिक रात्रि व्यतीत हो जाने पर अपनी सखियोंके सहित निद्राको प्राप्त हुईं ॥८६॥

अथ त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

श्रीसीताराम-विवाह विधिपूर्ति तथा श्रीसिद्धिजीके भवनमें चारोंवर सरकारका माध्याह्निक विश्राम ।

श्रीशिव उवाच ।

अथ प्रत्यूषसमये दुन्दुभीनां कलस्वनम् ।
निशम्योत्थापिताः शीघ्रं सखीभिः सादरं हि ताः ॥१॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे श्रीगिरिराजकुमारीजू ! पुनः प्रातः काल होने पर नगाड़ोंके मनोहर शब्द को श्रवण करके सखियों ने उन श्रीसिद्धिजी आदि को शीघ्र आदर पूर्वक उठाया ॥१॥

रामध्यानसमासक्ता मैथिलीचरणाम्बुजे ।
प्रणम्य मनसा हृष्टा उत्थापनपदं जगुः ॥२॥

श्रीरामसरकारके ध्यान में आसक्त चित्ता वे राजवधुएं श्रीमिथिलेशराज दुलारीजी को मन ही मन प्रणाम करके हर्षित हो उत्थापनके पद गाने लगीं ॥२॥

तेन संवीततन्द्राका अभूवन्वरसत्तमाः ।
तैश्च ताः कारयामासुर्मुदिता दन्तधावनम् ॥३॥

उस गानसे वर शिरोमणि श्रीरामभद्रजू आदि चारो भाइयों ने आलस्य का परित्याग किया तब श्रीसिद्धिजी आदि बहिनों ने मुदित हो उन्हें दातून करवाई ॥३॥

ततस्ताः पद्मपत्राद्यः समानेतुं कुमारिकाः ।
श्रश्वा भवनमासाद्य प्रणेमुस्ता मुदाऽखिलाः ॥४॥

तत्पश्चात् वे सभी कमललोचनायें श्रीजनकराजनन्दिनीजू आदि कुमारियोंको लेनेके लिये साथु श्रीसुनयना महारानीजीके महलमें पहुँच कर उनको प्रणाम किये ॥४॥

मैथिलीपादपाथोजे ताः प्रणम्य पुनः पुनः ।
अपारहर्षमगमन् सिद्ध्याद्याश्चैव सादरम् ॥५॥

उन श्रीसिद्धिजी आदिकों ने श्रीमिथिलेश राजदुलारीजीके श्रीचरणकमलोंको आदर,पूर्वक बारम्बार प्रणाम करके, अपार हर्ष को प्राप्त हुईं ॥५॥

सवाद्यं पिककण्ठीनां श्रुत्वा माङ्गलिकं पदम् ।
कान्तिमत्यादिराज्ञीभिः सुनयना प्रहर्षिता ॥६॥

बाजोंके सहित कोकिलके समान कण्ठवाली सखियोंके मङ्गलमय पदों को श्रवण करके श्री कान्तिमतीजी आदि रानियोंके सहित श्रीसुनयना महारानी अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुईं ॥६॥

पुत्र्यन्तिकं समासाद्य परिष्वज्य पुनः पुनः ।
लालयन्तीदमभ्याह वाक्यं मधुरया गिरा ॥७॥

तत्पश्चात् अपनी श्रीललीजीके पास आकर, बार बार हृदयसे लगाकर प्यार करती हुई उनसे ये मधुर वाणी बोलीं—॥७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

साम्प्रतं कौतुकागारविधिसम्पूर्तिहेतवे ।
त्वां समानेतुमायाता इमा वध्वो मृगेक्षणे ! ॥८॥

हे मृगलोचने श्रीललीजी ! कोहबर ! भवनकी शेष विधिको पूर्ण करानेके लिये आपकी भौजाइयाँ इस समय आपको वहाँ ले जानेके लिये आई हैं ॥८॥

वत्से ! तद्गम्यतां शीघ्रमेताभिः स्वभूमिसूतया ।
कौतुकागारमिन्द्वास्ये ! स्वाश्रितामोदवृद्धये ॥९॥

हे चन्द्रमुखी ! वत्से ? इस लिये आप अपनी नहिनाके सहित, इन भौजाइयोंके साथ, अपनी आश्रितोंके आनन्दवृद्धिके लिये, शीघ्र उस कोहबर भवनमें पधारिये ॥९॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमाज्ञापिता मात्रा महागाम्भीर्यतोयधिः ।
मैथिली शीलसम्पन्ना युक्तया सा निमातृभिः ॥१०॥

अन्य माताओंके सहित अपनी श्रीसुनयना अम्बाजीकी इस प्रकारकी आज्ञाको पाकर महासागरके समान अथाह गम्भीरता वाली शील (सौन्दर्य) सम्पन्ना श्रीललीजी ॥१०॥

गायन्तीनां वयस्यानां सामयिकं सुमङ्गलम् ।
स्वसृवृन्देन सहिता महामाधुर्य्यमण्डिता ॥११॥

सखियोंके समयोचित मङ्गल-गीत गाते हुये बहिनोंके सहित महामाधुर्यसे युक्ता ॥११॥

छत्रचामरहस्ताभिः सेव्यमाना समन्ततः ।
सिद्ध्यादिभिर्मृगाक्षीभिर्मत्तमातङ्गगामिनी ॥१२॥

छत्र, चवँर हाथोंमें लिये हुई मृगलोचना श्रीसिद्धिजी आदिके द्वारा सब ओरसे सेवित, मस्त हाथीके समान सुन्दर चालसे युक्त ॥१२॥

प्रणम्य जननीः सर्वा विनयानतलोचना ।
जगाम कौतुकागारं जयघोषाभिनन्दिता ॥१३॥

सुन्दर नेत्रोंवाली अपनी सभी माताओंको प्रणाम करके जयघोषके द्वारा सभी ओरसे सत्कारको प्राप्त हो, कोहवर-भवनमें पधारीं ॥१३॥

ऊर्मिला माण्डवी चैव श्रुतिकीर्त्तिः सुता इमाः ।
सेव्यमानाः सखीवृन्दैः प्रणम्य जनकात्मजाम् ॥१४॥

सखीवृन्दोंसे सेवित श्रीऊर्मिलाजी, श्रीमाण्डवीजी, श्रीश्रुतिकीर्तिजी इन तीनों पुत्रियोंने श्रीजनकराजदुलारीजीको प्रणाम किया ॥१४॥

मातुराज्ञां पुरस्कृत्य स्वं स्वं ताः कौतुकालयम् ।
प्रागमन्निन्दुवदनाश्चिन्तयन्त्यो धरासुताम् ॥१५॥

श्रीअम्बाजीकी आज्ञाको स्वीकार करके श्रीभूमिनन्दिनीजूका ही चिन्तन करती हुई, वे चन्द्रमुखी राजकुमारियाँ अपने अपने कोहवर भवनोंमें पधारीं ॥१५॥

विधायोद्वर्तनं ताश्च ग्रन्थिबन्धनपूर्वकम् ।
वस्त्रमन्तरतः कृत्वा सप्रियाः स्नापिता मुदा ॥१६॥

उन चारों सखियोंने श्रीदुलहिन सरकारसे वरोंके साथ गाठबन्धन-पूर्वक उबटन लगानेकी विधि को पूरी कराके, दोनोंके बीचमें वस्त्रकी आड (ओट) देकर उन्हें साथ ही साथ स्नान करवाया ॥१६॥

धारयित्वा सुवस्त्राणि महार्हाणि मृदूनि च ।
केशप्रसाधनं चक्रु र्भूमिजाया मृगीदृशः ॥१७॥

पुनः अत्यन्त कोमल, बहुमूल्य, सुन्दर वस्त्रोंको धारण कराके मृगलोचना सखियोंने भूमिसुता श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके बालोंको सँवारा ॥१७॥

ततः साऽलङ्कृता ताभिः सप्रिया जनकात्मजा ।
गर्भागारं समानीता जगदानन्दरूपिणी ॥१८॥

तदनन्तर सम्पूर्ण चर-अचर प्राणियोंकी आनन्दस्वरूपा श्रीजनकराजनन्दिनीजूको प्यारेके सहित भवनके बीचवाले मुख्य भागमें ले गयीं ॥१८॥

आससाद तदा राज्ञी सुनयना तदालिभिः ।
अहल्यया समं तत्र कुलस्त्रीभिः समावृता ॥१९॥

उसी समय अपनी सखियोंके सहित श्रीअहल्याजीके साथ कुलकी स्त्रियोंसे घिरी हुई वहाँ महारानी श्रीसुनयनाजी पधारीं ॥१९॥

पूजां तु पञ्चदेवानां सविधं मोदनिर्भरा ।
प्रार्थिता श्रीमहाराज्ञ्या सादरं गोतमप्रिया ॥२०॥
ताभ्यां सा कारयामास कृतार्थेनान्तरात्मना ।
पिबन्ती रूपमाधुर्यं कन्यायाश्च वरस्य च ॥२१॥

उनकी प्रार्थनासे गोतमजीकी प्राणप्रिया श्रीअहल्याजीने अपने कृतार्थ हृदयसे, वर-कन्याओंकी स्वरूप-माधुरीका पान करते हुये उन दोनोंसे हर्ष निर्भर हो पञ्चदेवोंकी पूजा करवाई ॥२०॥२१॥

कङ्कणोन्मोचनाख्यश्च तयोः संपादितो विधिः ।
गायन्तीनां वयस्थानां मङ्गलं ध्यानमङ्गलम् ॥२२॥

पुनः सखियोंके मङ्गल गाते हुये ध्यान मात्रसे मङ्गल करनेवाली, उन दोनों सरकारोंकी कङ्गन-खोलन नामकी विधि सम्पन्नकी गयी ॥२२॥

तौ हि सर्वेश्वरावित्थं नरलीलानुसारतः ।
वैदिकं लौकिकं सर्वं चक्रतुः सादरं विधिम् ॥२३॥

इसीप्रकार उन दोनों दुलहिन-दूलह सरकार प्रभु श्रीसीतारामजी महाराजने सर्वेश्वर (समस्त

शासकों के अनुपम शासक) होते हुये भी अपनी नर लीलाके अनुसार आदर पूर्वक, श्रद्धासमन्वित सभी प्रकार की वैदिक तथा लौकिक विधियों का पालन किया ॥२३॥

त्रिभ्योऽपि चानया रीत्या कारितोऽशेषतो विधिः ।
वरेभ्यः सह कन्याभिर्महाराज्ञ्या पृथक्पृथक् ॥२४॥

इसीप्रकार श्रीसुनयनाजीने कन्याओंके सहित तीनों वरोंसे अलग अलग सम्पूर्ण विधियों को 'करवाया' ॥२४॥

मार्गे मार्गे नगर्यां स्म विदेहस्य तदा शिवे !
सर्वत्र वाद्यवृन्दानां श्रूयते मङ्गलस्वनः ॥२५॥

हे शिवे (मङ्गलस्वरूपे) ! उस समय श्रीमिथिलापुरीके प्रत्येक मार्गमें सर्वत्र बाजाओंकी मङ्गल ध्वनि सुनाई पड़ रही थी ॥२५॥

तदानन्दपरीतात्मा राज्ञी सुनयना शुभा ।
सर्वाभ्यः प्रददौ कामं पुष्कलं पारितोषिकम् ॥२६॥

उस आनन्द से युक्त हृदय वाली, सौभाग्यवती श्रीसुनयना अम्बाजी सभी को बहुत-बहुत इच्छित पुरस्कार प्रदान करने लगीं ॥२६॥

तन्निशम्य महीपालो विदेहो वंशभूषणम् ।
आज्ञां दिदेश मन्त्रिभ्यः समाहूयेति सादरम् ॥२७॥

कुलभूषण श्रीविदेहजी महाराजने यह सुनकर अपने मन्त्रियोंको बुलाकर आदरपूर्वक उन्हें यह आज्ञा प्रदान की ॥२७॥

श्रीविदेह उवाच ।

अद्य श्रीकोशलाधीशः सूपहारैः सहस्रशः ।
सामात्यः ससुहृद्वृन्दो महोत्साहेन तर्प्यताम् ॥२८॥

श्रीविदेहजी महाराज बोले:-आज अनन्त प्रकारके सुन्दर उपहारोंके द्वारा महान् उत्साहपूर्वक मन्त्रियों तथा सुहृद् वृन्दोंके सहित अयोध्या नरेश श्रीदशरथजी महाराज को तृप्त कीजिये ॥२८॥

अन्नैर्वस्त्रैर्नरेन्द्राहैर्गजैरश्वै रथैर्धनैः ।
तर्प्यन्तां मे प्रजाः सर्वाः परग्रामनिवासिनः ॥२६॥

तथा हमारे पुर एवं ग्राम निवासी प्रजा को राजवंशोचित सुन्दर अन्न वस्त्र, हाथी, घोड़ा रथ तथा अनेक प्रकार की सम्पत्तियोंसे संतुष्ट कीजिये ॥२९॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थमाज्ञां शुभां श्रुत्वा तद्विदेहेन्द्रमन्त्रिणः ।
परमानन्दमग्नास्ते शकटैश्च सहस्रशः ॥३०॥
भूषणानि महार्हाणि वस्त्राण्यभिनवानि च ।
धनानि तप्तगाङ्गेयमणिरत्नमयानि च ॥३१॥
गवाश्वनागमहिषीरथानामयुतं तथा ।
न चिरेण प्रतिग्रामं प्रेष्य तैश्च यतात्मभिः ॥३२॥
अतर्पयन् राजपुम्भिः स्वनिदेशानुवर्तिभिः ।
प्रतिग्रामं प्रजाः सर्वाः सादरं विनयान्वितैः ॥३३॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती! श्रीविदेहराजके मन्त्रियोंने उनकी उस परम हितकर आज्ञा को सुनकर परम (भगवत्) आनन्दमें डूबकर हजारो बैलगाड़ियोंके द्वारा नवीन बहुमूल्य वस्त्र, भूषण तथा तपाया हुआ सोना मणि, रत्नों मय अनेक प्रकार के धन दशहजार गौ घोड़ा हाथी, भैंस रथों को भेज कर एकाग्र बुद्धि वाले अपने आज्ञाकारी विनम्रस्वभावसे युक्त राजकर्मचारियोंके द्वारा प्रत्येक ग्रामकी प्रजाको आदर पूर्वक तृप्त करवाया ॥३०॥३१॥३२॥३३॥

आशिशुशुक्लकेशानां सर्वेषां मुखपङ्कजात् ।
अतिशयेन तृप्तानां संप्रवृत्तो जयध्वनिः ॥३४॥

अत एव अत्यन्त तृप्त हुये शिशुओंसे लेकर वृद्धों तक सभीके मुख कमलसे, जय-जयकारकी ध्वनि निकलने लगी ॥३४॥

एवमेव तदा तैश्च तर्पिता हि पुरौकसः ।
जयकारध्वनिं चक्रुरपठन्स्वस्ति भूसुराः ॥३५॥

इसी प्रकार उन मन्त्रियोंके द्वारा सभी पुरवासी तृप्त होकर जय-जयकार करने लगे और द्विजवृन्द स्वस्ति-वाचन करने लगे ॥३५॥

कोशलेन्द्रो महापूर्णो नावकाशं विलोक्य च ।
स्थापयितुं हि तद्गृहे प्रेषितानुपदांस्ततः ॥३६॥

श्रीचक्रवर्तीजीमहाराज श्रीमिथिलेशजीमहाराजकी भेजी हुई उस भेंटको देखकर ही पूर्ण हो गये और जब अपने पास रखनेके लिये भी अवकाश नहीं देखे तब ॥३६॥

पुनरावर्तयामास सानुरोधं हि तान् बुधाः।
अमात्याः स्थापयामासुः पृथगन्यत्र वेश्मनि ॥३७॥

अनुरोध पूर्वक उसे वापस कर दिये किन्तु उसे बुद्धिमान् मन्त्रियोंने दूसरे भवनमें रखवा दिया।

कङ्कणोन्मोचनाख्यो हि विधिरद्य प्रपूरितः।
श्रीसीतारामयोः पुण्यः कथेति मिथिलौकसाम् ॥३८॥
सर्वेषामेव जिह्वाग्रे समवर्तत सौख्यदा।
अवर्ण्यं तत्सुखं देवि! जिह्वयेति मतिर्मम ॥३९॥

आज श्रीसीतारामजीकी कङ्कन खोलाई नामकी विधि पूरी हो गयी, यह कथा सभी मिथिला वासियोंकी जिह्वा पर वर्तने लगी। भगवान् शिवजी कहते हैं:—हे देवि! उस सुखका जिह्वासे वर्णन नहीं हो सकता, ऐसा मेरा सिद्धान्त है ॥३८-३९॥

मङ्गलस्पर्शनं चक्रुस्ततः सर्वा हि योषितः।
वरकन्याशुभाङ्गानां वाद्यगानपुरः सरम् ॥४०॥

तत्पश्चात् सभी सौभाग्यवती स्त्रियोंने गान-बजान पूर्वक दोनों वर-कन्याओंके मनोहर अङ्गोंका माङ्गलिक स्पर्श किया ॥४०॥

अहल्यामभिवाद्याङ्ग वन्दिता हि द्विजाङ्गनाः।
उभाभ्यां वन्द्यवन्द्याभ्यां तदा श्वश्र्वा निदेशतः ॥४१॥

तब सासु श्रीसुनयना महारानीजीकी आज्ञासे वन्दनीय ब्रह्मादि देवताओंके भी प्रणाम करने योग्य उन दोनों कन्या-वर सरकारोंने श्रीअहल्याजीको प्रणाम करके, ब्राह्मण-पत्नियोंको प्रणाम किया ॥४१॥

सर्वाभिः प्रेममत्ताभिः प्रदाय मङ्गलाशिषः।
उभाभ्यां वरकन्याभ्यां निजजिह्वा कृतार्थिता ॥४२॥

उन सभी प्रेम मतवाली माताओंने उन्हें मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान करके अपनी जिह्वाको कृतार्थ किया ॥४२॥

वस्त्रैर्भूषैर्महार्हैश्च धनैः संतर्प्य पुष्कलैः ।
ताः स्वकीयालिभी राज्ञी जगामात्मनिकेतनम् ॥४३॥

श्रीसुनयना महारानीजी उन्हें बहुमूल्य वस्त्र, भूषण तथा पर्याप्त धनके द्वारा सम्यक् प्रकारसे तृप्त करके, सखियोंके सहित अपने भवनको गयीं ॥४३॥

कुमार्यः श्रीधरस्याथ ह्युपयामोत्थितं दिनम् ।
समीक्ष्योपाशनार्थाय तेषां चिन्तितमानसा ॥४४॥

श्रीधर महाराजकी कुमारी श्रीसिद्धिजी आदिकोंने लगभग एक पहर दिन उठा हुआ देखकर उन्हें कलेऊ करवानेके लिये चिन्तित हो उठीं ॥४४॥

प्रातराशाय ताः सर्वाः प्रार्थयामासुरुत्सुकाः ।
सादरं परया प्रीत्या नवपङ्कजलोचनान् ॥४५॥

अतः नवीन कमलके समान सुन्दर विशाल नेत्रों वाले उन चारों वर सरकारोंसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक आदरके साथ सभीने सबेरेके लघु भोजनके लिये प्रार्थनाकी ॥४५॥

तासां स्नेहमयीं वाणीं संनिशम्य रघूद्वहः ।
चकार प्रातरशनं भ्रातृभिश्च पृथक्पृथक् ॥४६॥

उनकी स्नेहमयी वाणीको सुनकर श्रीरघुनन्दन प्यारेजू अपने भइयोंके सहित अलग अलग कलेवा करने लगे ॥४६।

आहूतश्चः पुनः श्वश्र्वा मुदा श्रीमत्सुनेत्रया ।
नीत्वा ताभिर्विशालाक्षः प्रापितो ऽसौ तदन्तिकम् ॥४७॥

तब सासु श्रीसुनयना महारानीजीके बुलाने पर उन श्रीसिद्धिजी आदिकोंने उन विशाल नयन श्रीरामभद्रजीको प्रसन्नता पूर्वक उनके पास पहुँचाया ॥४७॥

तयाऽसौ सत्कृतः प्रीत्या बन्धुभिः शातवर्द्धनः ।
क्षालिताङ्घ्रिकराम्भोजः सुखासनविराजितः ॥४८॥

उन्होंने भाइयोंके सहित उन सुखवर्द्धन प्यारेजूका सत्कार करके उनके कमलवत् सुकोमल हाथों तथा पैरोंको धुलवाकर सुखपूर्वक विराजमान किया ॥४८॥

लाल्यमानस्तया राज्ञीभिरन्याभिः परीतया ।
चकार भ्रातृभी रामस्तदानीमुपभोजनम् ॥४९॥

शृण्वन्मृगनिभाक्षीणां सरसं मोदवर्द्धनम् ।
हास्यवाक्यान्वितं गानं सखीनां सुस्मितानन: ॥५०॥

तब मृगके समान चञ्चल तथा मनोहर नेत्रों वाली उन सखियोंके रसमय, आनन्द वर्धक, हास्य वचन युक्त गीतोंको श्रवण करते हुये, अन्य रानियोंके सहित श्रीसुनयना अम्बाजीके प्यार करते हुये, उन श्रीरामभद्रजूने अपने भाइयोंके समेत क्लेऊ करना प्रारम्भ किया ॥४९-५०॥

पत्न्यो ह्यशेषवन्धूनां जनकस्य तदा क्रमात् ।
सर्वा जामातृबुद्ध्या तान् सानुरागमभोजयन् ॥५१॥

तब श्रीमिथिलेशजीमहाराजके पन्द्रहो भाइयोंकी रानियोंने क्रमशः उन चारो वरोंको अपने भावसे अनुराग पूर्वक भोजन करवाया ॥५१॥

प्रीत्या प्रदाय सा तेभ्यो राज्ञी ताम्बूलवीटिका: ।
आजगामान्तिके पुत्र्या: समाचान्तेभ्य एव च ॥५२॥

जब वे आचमन ले चुके, तब श्रीसुनयना महारानीजीने उन कुमारोंको पानका बीड़ा प्रदान करके अपनी श्रीललीजीके पासमें आईं ॥५२॥

लालनैर्विविधैस्तस्यै युतायै सर्वस्वसृभि: ।
तर्पयामास सुप्रीत्या विविधैस्तत्प्रियाशनै: ॥५३॥

और हर्ष पूर्वक, अत्यन्त प्रेमके साथ, सभी बहिनोंके सहित अपनी श्रीललीजीको अनेक प्रकार से प्यार करती हुई,उनके विविध प्रकारके प्रिय भोजनोंके द्वारा उन्हें तृप्त किया ॥५३॥

कारयित्वा तयाऽऽचामं प्रदत्ता वीटिका: पुन: ।
तद्रूपामृतपाथोधिमग्नपङ्कजनेत्रया ॥५४॥

पुनः श्रीललीजीके छवि रूपी सुधा सागरमें डूबे हुये नेत्रोंवाली उन श्रीअम्बाजीने उन्हें आचमन कराकर पानका बीड़ा प्रदान किया ॥५४॥

सिद्धि: श्वश्रूमनुज्ञाप्य श्रीरामं बन्धुभिर्युतम् ।
निनाय भवनं स्वीयं सखीभि: परिवारिता ॥५५॥

तब श्रीसिद्धिजी अपनी सासुजीसे आज्ञा मागकर भाइयोंके सहित दूलहसरकार श्रीरामभद्रजीको सखियोंके सहित अपने भवनमें ले गयीं ॥५५॥

कृत्वा नीराजनं प्रेम्णा गानवाद्यपुरः सरम् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं मणितल्पे न्यवेशयत् ॥५६॥

वहाँ गान-बजानके सहित आरती करके श्रीसिद्धिजी उनके कर-कमलको अपने हस्तकमलसे पकड़ कर उन्हें मणिमय पलङ्ग पर विराजमान किये ॥५६॥

स्वसृभिः सहिता तत्र वसन्तोत्सवकाङ्क्षिणी ।
पिष्टातेन कपोलौ द्वौ तेषां सा चार्वभूषयत् ॥५७॥

पुनः सखियोंके सहित उन वरोंसे वसन्तोत्सवकी इच्छा करके उन्होंने सुगन्ध युक्त गुलालसे उन चारोंके कपोलोंको भूषित किया ॥५७॥

क्रीडया च तया रामः कृत्वा तां मुदितां भृशम् ।
जनावासं समागत्य प्रणनाम मुनीश्वरौ ॥५८॥

सर्वसुखदाई तथा सभीके अन्तः करणमें रमण करने वाले, वे प्रभु श्रीरामजी श्रीसिद्धिजीको उस क्रीडाके द्वारा अत्यन्त सुखी करके जनवासेमें पहुँच कर, उन्होंने मुनीश्वर श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीविश्वामित्रजीको प्रणाम किया ।५८॥

बन्धुभिः प्रणमन्तं तं कोशलेन्द्रो विमोहनम् ।
अवगाहत वीक्ष्यैव महानन्दपयोनिधिम् ॥५६॥

भाइयोंके सहित उन विश्वविमोहन सरकार (श्रीरामभद्रजू) को प्रणाम करते देख कर ही श्रीदशरथजी महाराज महान्-आनन्द-सागरमें डुबकी लगाने लगे ॥५६॥

ततो लक्ष्मीनिधिञ्चैव श्रीनिधिं च गुणाकरम् ।
आलिलिङ्ग मुदायुक्तः श्रीनिधानकमेव सः ॥६०॥

तत्पश्चात् श्रीलक्ष्मीनिधिजी, श्रीनिधिजी, श्रीगुणाकार जी तथा श्रीनिधानकजीको हर्षित हो उन्होंने अपने हृदयसे लगाया ॥६०॥

अन्ये सर्वे कुमाराश्च सत्कृता भूपपुत्रवत् ।
महाराजेन मुदिता रामपार्श्व उपस्थिताः ॥६१॥

और भी श्रीरामभद्रजूके बगलमें उपस्थित कुमारों का भी श्रीविदेहराजकुमार श्रीलक्ष्मीनिधि आदि भइयोंके समान ही उन्होंने सत्कार किया ॥६१॥

प्रहितो मैथिलेन्द्रेण चन्द्रभानुर्महामतिः ।
नृपेन्द्रं प्रार्थयामास गन्तुं स भोजनालयम् ॥६२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके भेजे हुये महामति श्रीचन्द्रभानुजी महाराजने श्रीचक्रवर्तीजीसे भोजन-भवनमें पधारनेके लिये प्रार्थना की ॥६२॥

ततः सर्वसमाजैश्च युक्तो दशरथो नृपः ।
वशिष्ठकौशिकाभ्यां च चन्द्रभानुसमन्वितः ॥६३॥

उनकी प्रार्थनासे सम्पूर्ण समाजसे युक्त हो, श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजी महाराजके सहित श्रीचन्द्रभानु महाराजके साथ श्रीदशरथजी महाराज-॥६३॥

स्यन्दनं स समारुह्य चचालाशनमन्दिरम् ।
गजयाने स्थिते रामे श्यालैर्भ्रातृभिर्युते ॥६४॥

श्रीभरतजी आदि भाइयों तथा श्रीलक्ष्मीनिधिजी आदि शालोंके सहित श्रीरामभद्रजूके गजरथ पर बैठ जाने पर, वे (श्रीचक्रवर्तीजी) रथपर आरूढ़ हो भोजन-भवनको चले ॥६४॥

सफलानि च चक्षूंषि कुर्वन्तो नृपतेः सुताः ।
जनानां मार्गलब्धानां दर्शनेन मनोऽहरन् ॥६५॥

चारों राजकुमारोंने अपने दर्शनोंसे मार्ग में उपस्थित जनताके नेत्रोंको सफल करते हुए उनके मनोंको हरण कर लिया ॥६५॥

विदेहो भोजनागारं निशम्यागच्छतो वरान् ।
प्रत्युद्गम्यानयामास तान् नृपेण महानसम् ॥६६॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने वरोंको भोजन भवनमें पधारते हुये सुन कर, आगे जाकर श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके सहित उन्हें भोजन गृहमें ले आये ॥६६॥

वशिष्ठादिमहर्षीणां प्रक्षाल्यादौ पदाम्बुजे ।
ततः श्रीकोशलेन्द्रस्य वराणां तदनन्तरम् ॥६७॥
क्षालयित्वा पदाम्भोजे संनिवेश्यासनेषु च ।
यथोचितेषु सर्वान् सः स्वौदनिकानचोदयत् ॥६८॥

यहाँ पहिले श्रीवशिष्ठजी आदि महर्षियोंके चरण-कमलोंको धोकर पुनः श्रीदशरथजीके तदनन्तर

चारो वरोंके श्रीचरण कमलोंको धोकर सभीको यथोचित आसनों पर विराजमान करके अपने रसोइयों-को परोसनेके लिये सङ्केत किया ॥६७॥६८॥

ते तदिङ्गितमासाद्य नरेन्द्रस्य स्मिताननाः ।
सद्यो वितरयामासुर्भोजनं हि चतुर्विधम् ॥६६॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके उस सङ्केतको पाकर, मन्द मुसकान युक्त वे रसोइया चारो प्रकारके भोजनोंको तुरत परोस दिये ॥६६॥

षड्रसं निहितं तत्तु सौवर्णं पृथुपात्रके ।
लघुपात्रशताकीर्णे नानारत्नचमत्कृते ॥७०॥

छोटे-छोटे सैकड़ों लघुपात्रोंसे परिपूर्ण अनेक प्रकारके रत्नोंसे चमकते हुये सोनेके विशाल थालमें रक्खा हुआ वह षड्रस भोजन ॥७०॥

ततस्तु भोजनं चक्रुः सर्वे विनयतोषिताः ।
विदेहस्य नृपेन्द्रेण शोभितेन सुतैः सह ॥७१॥

विदेहजीमहाराजकी विनयसे संतुष्ट हो, पुत्रोंसे सुशोभित श्रीचक्रवर्तीमहाराजके साथ सभी लोग पाने लगे ॥७१॥

तद्वंश्या मन्त्रिवंश्याश्च सर्वे एवाशुरादृताः ।
कोशलेन्द्रसमाजेन सार्द्धमानन्दनिर्भराः ॥७२॥

श्रीदशरथजीमहाराजके वंशके तथा मन्त्रियोंके वंशके सभी लोग, समाजके सहित श्रीदशरथ-जीमहाराजके साथ बड़े आदर-पूर्वक भोजन करने लगे ॥७२॥

सर्वे पुरौकसश्चापि बालवृद्धस्त्रियो नराः ।
यत्र तत्र निकेतेषु सादरं परितर्पिताः ॥७३॥

बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष आदि सभी पुरवासी जो जहाँ थे, उन्हें वहीं आदर-पूर्वक तृप्त किया गया ॥७३॥

ग्रामौकसस्तथा सर्वे सस्नेहं परितर्पिताः ।
भोजनैर्विविधैः प्रीत्या दुर्लभै राजसद्मसु ॥७४॥

उसी प्रकार राज महलोंमें भी दुर्लभ अनेक प्रकारके भोजनोंके द्वारा स्नेहपूर्वक सभी ग्राम निवासी जनताको पूर्ण सन्तुष्ट किया गया ॥७४॥

ग्रामे ग्रामे नगर्यां च मार्गे मार्गे गृहे गृहे ।
तृप्तानामशनैस्तर्हि श्रूयते स्म जयध्वनिः ॥७५॥

नगरमें, प्रत्येक ग्राममें, प्रत्येक मार्गमें तथा प्रत्येक घरमें भोजनसे सन्तुष्ट हुये प्राणियोंके मुखसे केवल जय-जयकारकी धुनि ही सुनाई पड़ती थी ॥७५॥

शृण्वन् गानं मृगाक्षीणां कोशलेन्द्रः सुतैः सह ।
स्मितास्यो मोदमापन्नः परितृप्तः सुधाशनैः ॥७६॥

मृगलोचना सखियोंके गानोंको श्रवण करते हुये श्रीदशरथजीमहाराजने राजकुमारोंके सहित अमृतवत् भोजनसे सन्तुष्ट हो महान् हर्षको प्राप्त किया ॥७६॥

आचमनं ततः कृत्वा क्षालिताङ्घ्रिकराम्बुजः ।
ससमाजो विदेहेन सत्कृतो विविधोपदैः ॥७७॥

आचमन करके कमलवत् हाथ पैरोंको धुलवा लेनेके बाद, समाजके सहित श्रीदशरथजीमहाराजको श्रीविदेहजीमहाराजने अनेक प्रकारके उपहारों द्वारा सत्कार किया ॥७७॥

स राजेन्द्रः पुनस्तेन प्रार्थितो नतिपूर्वकम् ।
भ्रातॄणां मे गृहं गत्वा भवेषां भावपूरकः ॥७८॥

पुनः श्रीविदेहजी महाराजने नमस्कार पूर्वक उनसे यह प्रार्थनाकी कि-आप हमारे भाइयोंके भी भवनोंमें जाकर इनके भावको पूर्ण करें ॥७८॥

इति तद्व्याहृतं वाक्यं समाकर्ण्य नृपाधिपः ।
बाढमित्याह तच्छ्रुत्वा सर्वे ऽपारसुखं ययुः ॥७९॥

श्रीचक्रवर्तीजी महाराज श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वाराकी हुई प्रार्थनाको सुनकर बोलेः–"ऐसा ही होगा" यह सुनकर सबको अपार सुख हुआ ॥७९॥

ततः कमलपत्राक्षं रामं स्मेरमुखाम्बुजम् ।
प्रवेश्यान्तः पुरं शीघ्रं भ्रातृभिः परिशोभितम् ॥८०॥

तत्पश्चात् भाइयोंसे सुशोभित, कमलदललोचन, मुस्कान युक्त मुख कमल वाले श्रीरामभद्रजीको अपने अन्तः पुरमें भेजकर ॥८०॥

प्रेष्य तत्र जनावासे सादरं नृपपुङ्गवम् ।
चकार भोजनं राजा भ्रातृवृन्दसमन्वितः ॥८१॥

साथ राजशिरोमणि श्रीदशरथजीमहाराजको जनवासेमें भेजकर श्रीमिथिलेशजीमहाराजने वहाँ भोजन किया ॥८१॥

वरास्ते सादरं नीत्वा स्वनिकेतं महाधिया ।
मणितल्पेषु नीराज्य सिद्ध्या च स्वापिताः प्रियाः ॥८२॥

महाबुद्धि श्रीसिद्धिजी उन प्यारे वरोंको अपने भवनमें ले जाकर, आरती करके उन्हें मणिमय पलङ्ग पर शयन कराया ॥८२॥

राज्ञी सुनयना चापि संसुप्तासु दुहितृषु ।
निजवंशाङ्गनाभिश्च चकाराशनमालिभिः ॥८३॥

महारानी श्रीसुनयनाजीने भी पुत्रियोंके सो जाने पर अपने वंशकी स्त्रियोंके सहित सखियोंके साथ भोजन किया ।८३॥

स्वसंवेशालये दृष्ट्वा मीलिताक्षीमयोनिजाम् ।
स्वसृवृन्देन सहितां भासयन्तीं त्विषाऽऽलयम् ॥८४॥

इति त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

पुनः अपने शयन-भवनमें अयोनिसम्भवा (विना किसी कारण अपनी इच्छासे प्रकट हुई) श्रीललीजीको अपनी बहिनोंके सहित अपने श्रीअङ्गकी कान्तिसे भवनको प्रकाशित करती हुई आँखें बन्द किये हुये देखकर, धीरेसे बाहर आकर उन श्रीमिथिलेश्वरीजीने अपनी श्रीललीजीका तथा चारो वरोंका चित्तसे चिन्तन करती हुई थोड़ी देरके लिये विश्राम किया ॥८४॥८५॥

अथ चतुरुत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

श्रीकुशध्वजमहाराज आदि सभी अनुरागी श्रीमिथिलावासियोंके भवनोंमें जाकर
चारो वर-सरकारोंके द्वारा उन्हें दिव्य सुख-दान--

श्रीशिव उवाच ।

प्रतिबुध्य विदेहाय प्रणम्य श्रीकुशध्वजः ।
ससमाजं नृपं वेश्म नेतुमिच्छामदर्शयत् ॥ १ ॥

श्रीकुशध्वज महाराजने सावधान होकर श्रीविदेहजी महाराजको प्रणाम करके, समाज सहित श्रीदशरथजी महाराजको अपने भवनमें ले जानेकी उनसे इच्छा प्रकटकी ॥१॥

तस्मादसौ विदेहेन्द्रो गत्वा दशरथं नृपम्।
भ्रातुरभीप्सितं नत्वा निजगाद कृताञ्जलिः ॥२॥

इस हेतु श्रीविदेहजी महाराजने श्रीदशरथजी महाराजके पास जाकर उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम करके, अपने भाई श्रीकुशध्वज महाराजकी प्रार्थनाको उनसे निवेदनकी ॥२॥

स च तद्भाषितं श्रुत्वा सुमन्तं मन्त्रिसत्तमम्।
उवाच परया प्रीत्या कोशलेन्द्रः शुभाक्षरम् ॥३॥

कोशलेन्द्र श्रीदशरथजी महाराज, श्रीमिथिलेशजी महाराजकी उस प्रार्थनाको सुनकर श्रीसुमन्त-जी से प्रेमपूर्वक मधुर, वाणीसे बोले ॥३॥

श्रीदशरथ उवाच।

सत्वरं स्वं समाजं त्वं कुरु गन्तुं समुद्यतम्।
श्रीमत्कुशध्वजागारमभिभाष्य महामुनी ॥४॥

हे सुमन्तजी! आप श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीविश्वामित्रजी दोनों महामुनियोंसे आज्ञा लेकर श्रीकुशध्वज महाराजके भवनको चलनेके लिये अपने दलको तय्यार कीजिये ॥४॥

श्रीशिव उवाच।

स गत्वा क्षणमात्रेण विधायाशु सुसज्जितम्।
शोभमानं मुनीन्द्राभ्यां तस्मै सुखमदर्शयत् ॥५॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती! श्रीसुमन्तजी जाकर क्षणमात्रमें सुसज्जित करके दोनों मुनियोंसे शोभायमान उस दल को सुखपूर्वक श्रीचक्रवर्तीजीको दिखाया ॥५॥

आगतौ मुनिनाथौ तौ निरीक्ष्योत्थाय सादरम्।
ननाम नृपशार्दूलो विदेहेन समन्वितः ॥६॥

आये हुये उन मुनिवरों को देखकर, श्रीमिदेहजी महाराजके सहित श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने आदर पूर्वक उन्हें उठकर प्रणाम किया ॥६॥

समादिष्टस्ततस्ताभ्यां दिव्ययानं समारुहत्।
तयोरारूढयोर्भूपः स्यन्दनं दिव्यतेजसम् ॥७॥

उन दोनोंके दिव्य तेजमय रथपर विराजमान हो जाने पर, राजा श्रीदशरथजी महाराज उनकी आज्ञा पाकर अपने दिव्य रथपर सवार हुये ॥७।

अन्ये सर्वेऽपि यानानि स्वेप्सितानि शुभानि च ।
आरुरुहुर्मुदा युक्ता दिव्याम्बरविभूषणाः ॥८॥

तथा और सभी लोग दिव्य वस्त्र भूषणोंको धारण करके, प्रसन्नता-पूर्वक अपनी इच्छानुसार मनोहर रथों पर विराजमान हुये ॥८॥

वाद्यानि युगपन्नेदुर्विविधानि कलस्वनम् ।
प्रस्थीयमान उर्वीशे मनोज्ञं सर्वदेहिनाम् ॥९॥

जब श्रीदशरथजी महाराज जनवासे से श्रीकुशध्वजमहाराजके भवनको प्रस्थान करने लगे, उस समय प्राणियोंके मुग्धकारी, धीमी, मीठी और स्पष्ट, ध्वनिसे अनेक प्रकारके सभी बाजे एकही साथ बजने लगे । ९॥

अन्वगाद्राजयानं तन्मुनियानं रविप्रभम् ।
आजगाम क्षणेनैव श्रीविदेहोपमन्दिरम् ॥१०॥

सूर्यके समान उस मुनिरथके पीछे श्रीचक्रवर्तीजीका रथ चला और थोड़ी देरमें ही वह श्रीमिथिलेशजीके राज-भवनके समीपमें जा पहुँचा ॥१०॥

वराः स्वलङ्कृता राज्या सूचितया नृपेण च ।
आहूय सिद्धेर्भवनात्कृतोत्थापनभोजनाः ॥११॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञाको पाकर श्रीसुनयना अम्बाजीने श्रीसिद्धिजीके भवनसे उत्थापन भोग पाये हुये चारो दूलह सरकारोंको बुलाकर, भली प्रकारसे सजाया, ॥११॥

पुत्रीः शीघ्रं समादाय कुशध्वजगृहं व्रज ।
इत्याज्ञाप्य नृपो राज्ञीं वरान्निन्ये नृपान्तिकम् ॥१२॥

"आप पुत्रियोंको लेकर शीघ्र श्रीकुशध्वजके भवनको जाइये" महारानीजीको यह आज्ञा देकर श्रीमिथिलेशजीमहाराजवरोंको लेकर, श्रीदशरथजी महाराजके पास गये ॥१२॥

वरयाने ततो रामं संनिवेश्यानुजैर्युतम् ।
आजगामालयद्वारं कुशकेतोर्मनोहरम् ॥१३॥

वरवाले रथपर भाइयोंके सहित श्रीरामदूलहसरकारको बिठाकर, श्रीकुशध्वजमहाराजके मनोहर भवन-द्वार पर आये ॥१३॥

पत्रिकाभिर्युता राज्ञी सर्वाभिः स्वालिभिः सह ।
वधूभिः सहिता पूर्वमाययौ तन्निवेशनम् ॥१४॥

श्रीसुनयनामहारानीजी अपनी पुत्रियों, बहुओं तथा सभी सखियोंके सहित उनसे पहिले ही उस भवनमें जा पहुँची ॥१४॥

श्रीसुदर्शनया तर्हि महाराज्या परीतया ।
द्वारमालीभिरभ्येत्य वर नीराजितास्तया ॥१५॥

तब श्रीसुनयनामहारानीजीके समेत श्रीसुदर्शनाअम्बाजीने सखियोंके सहित द्वार पर आकर हर्ष पूर्वक वरोंकी आरतीकी ॥१५॥

सत्कृतिं विधिना कृत्वा तान्निनायात्ममन्दिरम् ।
तदोत्सवेन महता महाराज्योपशोभितान् ॥१६॥

पुनः वे विधि पूर्वक सत्कार करके महान् उत्सवके साथ, महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीसे सुशोभित, उन वरोंको अपने राज भवनमेंले गयी ॥१६॥

सुभद्रया तदा दोर्भ्यां समालिङ्ग्य पुनः पुनः ।
स्वासनेषु महार्हेषु सादरं ते निवेशिताः ॥१७॥

तब श्रीसुभद्रा अम्बाजीने आदर-पूर्वक हृदयसे लगाकर उन्हें अपने दोनों हाथोंसे अत्युत्तम सिंहासन पर विराजमान किया ॥१७॥

कोशलेन्द्रो विदेहेन ससमाजो महानसे ।
समानीय सुसत्कृत्या मुनिभ्यां स्थापितोऽन्वितः ॥१८॥

उधर श्रीविदेहजी महाराजने सम्पूर्ण समाजके सहित श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजीसे युक्त श्रीदशरथी महाराजको बड़े सत्कार पूर्वक भोजन भवनमें लाकर विराजमान किया ॥१८॥

प्रविश्यान्तः पुर मुख्य तानन्त्याद्भुतान् वरान् ।
राजा कुशध्वजो हृष्टो विदेहेन समन्वितः ॥१९॥

तब श्रीविदेह महराजके सहित श्रीकुशध्वज महाराज, अपने मुख्य अन्तः पुरमें जाकर उन विलक्षण वरोंका दर्शन करके हर्षित हो उठे ॥१९॥

पुनस्तस्याज्ञया शीघ्रं सूदानामयुतं प्रिये ! ।
भोजयितुं महीनाथं मुदा तत्र समुद्यतम् ॥२०॥

पुनः उनकी आज्ञासे वहाँ (भोजन भवनमें) हजारों रसोइयाँ श्रीदशरथजी महाराजको भोजन करानेके लिये सहर्ष उद्यत हुये। २०॥

स्वासनेषु महार्हेषु संनिवेश्य मुदान्विताः ।
कल्पयित्वा शुभाः पङ्क्तिः सर्वेषां च पृथक्पृथक् ॥२१॥

सभीके लिये अलग-अलग पङ्क्तियाँ बना कर अत्युत्तम आसनों पर विराजमान करके वे बड़े आनन्दको प्राप्त हुये ॥२१॥

शतसौवर्णपात्रेषु निहितानि कृतत्वराः ।
नानाविधानि भोज्यानि तेभ्यस्तेऽपरिवेषयन् ॥२२॥

उन रसोइयोंने सैकड़ों सुवर्ण के पात्रोंमें रक्खे हुये, अनेक प्रकारके भोजनोंको शीघ्रता पूर्वक सभी को परोस दिया ॥२२॥

प्रार्थितो मिथिलेन्द्रेण कोशलेन्द्रोऽनुजैर्युतः ।
चकार भोजनं प्रीत्या षड्रसं स चतुर्विधम् ॥२३॥

श्रीमिथिलेशजीमहाराजकी प्रार्थनासे श्रीदशरथजीमहाराजने अपने भाइयोंके सहित प्रेम-पूर्वक षट्रसोंसे युक्त, चारो प्रकारका भोजन किया ॥२३॥

एवमेव महाराज्या समेता श्रीसुदर्शना ।
वरान्संतर्पयामास लालयन्ती सुधाशनैः ॥२४॥

इसी प्रकार श्रीसुनयनामहारानीजूके समेत, श्रीसुदर्शनाअम्बाजीने चारो वरोंको प्यार करती हुई, अमृतवत् हितकारी भोजनके द्वारा तृप्त किये ॥२४॥

पुत्रिकाः पुनरासाद्य प्रणयेन परीतया ।
तया संतर्पिता भोज्यैश्चतुर्भिः षड्रसान्वितैः ॥२५॥

तत्पश्चात् पुत्रियोंके पास जाकर प्रेमयुक्ता उन श्रीसुदर्शनाअम्बाजीने उन्हें चारो प्रकारके षट्रस भोजनोंके द्वारा तृप्त किया ॥२५॥

श्रीशिव उवाच ।

अन्तः सीताऽनुजाभिश्च वहीं रामोऽनुजैर्युतः ।
मुखचन्द्ररुचा ऽऽनन्दसिन्धुमुच्छालयत्यसौ ॥२६॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! उस समय भीतर (माताओंकी समाजमें) अपनी बहिनोंके समेत श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी और बाहर (पुरुष मण्डल) में अपने चारों भाइयोंके सहित दशरथ नन्दन प्यारे श्रीरामभद्रजू अपने मुखचन्द्रकी कान्तिसे आनन्द-सागरको उछाल रहे थे ॥२६॥

या हि यत्र गता तत्र निमग्नैव बभूव ह ।
वच्मि किं गिरिजे ! तुभ्यं सुखं तद्वागगोचरम् ॥२७॥

इस हेतु उस समय जो भीतर या बाहर जहाँ भी पहुँची, वहीं वह आनन्द सागरमें डूब गयी ! हे श्रीगिरिराजकुमारीजी ! मैं आपसे उस सुखका क्या वर्णन करूँ ? उसे न मन मनन ही कर सकता है न वाणी वर्णन ही !"'॥२७॥

प्रदाय वीटिकास्ताभ्यो वरेभ्यश्च सुधामयीः ।
नागवल्ल्याः स्वरचिताः प्रेममग्ना सुदर्शना ॥२८॥

श्रीसुदर्शना अम्बाजी अपने हाथके बनाये हुये पानके अमृतमय बीड़ोंको उन वर सरकारों-को प्रदान करके प्रेममें डूब गयीं ॥२८॥

ताम्बूलवीटिकाभिश्च सुमाल्यैर्दिव्यसौरभैः ।
सत्कृते स्वसमाजेन सुखं राजनि राजिते ॥२९॥
कुशध्वजो महाराजो धावन्नेव सुखाप्लुतः ।
पुत्रिकाणां सकाशे च वराणामन्तिके तथा ॥३०॥

पान तथा सुगन्ध मय पुष्प मालाओं द्वारा समाजसंयुक्त सत्कृत होकर, श्रीजनकजीजी महाराजके सुखपूर्वक विराज जाने पर, श्रीकुशध्वज महाराजजी उनके पास तथा वरोंके पास इधर-उधर दौड़ते हुये सुखमें डूब गये, क्योंकि दोनों ओर ही आनन्द सागर उछाला आ रहा था ॥२९॥३०॥

भ्रातुरन्तः पुरं गत्वा स शीघ्रं मिथिलेश्वरः ।
सेव्यमानो मुदा तेन वराणां दर्शनाशया ॥३१॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने भाई श्रीकुशध्वज महाराजसे सेवित होते हुये वरोंको देखनेके लिये उनके अन्तः पुरमें पधारे ॥३१॥

संप्रहृष्टः समालोक्य लालयित्वा शुभाशिषा ।
तान्नियोज्य स धर्मात्मा प्रणतान् भूपतिं ययौ ॥३२॥

वहाँ वरोंका दर्शन करके, तथा उन प्रणाम कारियोंको शुभाशीर्वाद प्रदान करके वे अत्यन्त हर्षित हो श्रीचक्रवर्तीजीके पास आये ॥३२॥

सप्रियांश्च वरांस्तर्हि सुभद्रा विश्वदृङ्मुषः ।
सिंहासनेषु हैमेषु स्थापयामास पङ्क्तितः ॥३३॥

उस समय श्रीसुभद्रा महारानीजीने उन विश्वविलोचन-चोर, चारों वरोंको दुलहिनोंके सहित सोनेके सिंहासनों पर एक पंक्तिमें विराजमान किया ॥३३।

पुनर्नीराजयाञ्चक्रे सखीभिः प्रेमकातरा ।
श्रीसुदर्शनया सार्द्धं गानवाद्यैः सुशोभितम् ॥३४॥

पुनः श्रीसुदर्शना महारानीके साथ सखियोंके सहित उन्होंने प्रेम विह्वल हो गान बजानसे सुशोभित चारो युगल जोड़ियोंकी आरती की ।३४॥

पुष्पवृष्टिमनल्पां च संविधाय पुनः पुनः ।
वस्त्राभरणरत्नानि न तृप्तिं वितरन्त्यगात् ॥३५॥

तत्पश्चात् बार बार पुष्पों की पर्याप्त वर्षा करके वस्त्र, भूषण, रत्नों को लुटानेसे वे तृप्त ही नहीं हो रही थीं ॥३५॥

उपहारैरसङ्ख्यैश्च सत्कृतः परया मुदा ।
अथासौ श्रीमहाराजः प्रहृष्टः कुशकेतुना ॥३६॥

तत्पश्चात् असङ्ख्यों उपहारोंके द्वारा श्रीकुशध्वज महाराजने बड़े ही प्रेम-पूर्वक श्रीचक्रवर्तीजी महाराज का सत्कार किया ॥३६॥

सायं समयमालोक्य नित्यकृत्यविधित्सया ।
जनावासं नृपो गन्तुं स्वाभिलाषं न्यवेदयत् ॥३७॥

सायंकालका समय देखकर अपने नित्य कृत्यको पूर्ण करनेके लिये, श्रीचक्रवर्तीजीने जनवास में जानेके लिये अपनी इच्छा निवेदन की ॥३७॥

कुशध्वजं समातोष्य तेन साकं नृपाधिपम् ।
जनावासं विदेहेन्द्रो निनायाशु महाप्रभम् ॥३८॥

श्रीविदेहजी महाराज श्रीकुशध्वज महराजको भली प्रकारसे सान्त्वना देकर उनके सहित श्रीदशरथजी महाराजको शीघ्र परम प्रकाश मय, उस जनवास भवनमें ले गये ॥३८॥

ततः सुनयना राज्ञी कान्तिमत्या समन्विता ।
सुदर्शनां सुभद्रां च परितोष्य स्वभाषितैः ॥३९॥

तब श्रीकान्तिमतीजीके समेत श्रीसुनयना अम्माजी श्रीसुदर्शनाजी व श्रीसुभद्रा अम्बाजीको अपने आश्वासन-पूर्ण वचनोंसे परितोष प्रदान करके ॥३९॥

प्रेषयित्वा सुताःपूर्वं वधूभिः परिसेविताः ।
रक्षिकाणां सखीनां च सहस्रैः परिरक्षिताः ॥४०॥

हजारों रक्षा करने वाली सखियोंसे सुरक्षित तथा श्रीसिद्धिजी आदि बहुओंसे सब प्रकार सेवित होती हुई अपनी श्रीललीजू को पहिले भेजकर ।४०॥

स्वालिभिर्देवरस्त्रीभिः कुशकेतुप्रियादिभिः ।
राज्ञी याने समारोप्य वरान्स्वालयमानयत् ॥४१॥

श्रीकुशध्वज-वल्लभा श्रीसुदर्शनाअम्बाजी अपनी सखियोंके सहित, देवरानियोंसे युक्त श्रीसुनयना महारानीजी वरोंको रथपर बिठाकर अपने भवनमें ले आईं ॥४१॥

इत्थं नित्यं जनकनृपतेर्बन्धुसन्मन्दिरेषु
गत्वा सार्कं क्वचिदवरजैः राजराजं विनैव ।
पित्रा सार्कं क्वचिदवरजैः कुर्वतो दिव्यकेलिं
मुद्वृद्धयै वो भवतु शुभदा दृष्टिरुर्वीशसूनोः ॥४२॥

इस प्रकार भक्तोंके आनन्दकी वृद्धिके लिये कभी अपने पिताजीके बिना ही केवल छोटे भाइयो के साथ, कभी अपने पिताजी व भाइयोंके सहित श्रीजनकजी महाराजके भाइयोंके उत्तम भवनोंमें जाकर, दिव्य (शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आदिकी आसक्तिसे रहित) लीला करते हुये श्रीचक्रवर्तीकुमारजीकी कृपा दृष्टि आप सभी भक्तोंको मङ्गल प्रदान करें ॥४२॥

सिद्धयादीनामनुजलसतो व. सदा समियस्य
रामस्यास्तु प्रथितयशसश्चिन्तनं चित्तशुद्धयै ।
श्वश्रूणां वै निखिलमिथिलावासिनां सज्जनानां ।
नित्यं वेश्मस्वपि विहरतः कुर्वतो भावसिद्धिम् ॥४३॥

इति चतुरुत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

अपने छोटे भाइयोंके सहित श्रीसिद्धिजी आदि सभी सालियाँ तथा श्रीसुनयनाअम्बाजी आदि सभी सासुओंके ही कौन कहे ? सम्पूर्ण मिथिला निवासी सज्जनोंके मनोमें नित्य विहार व उनके भावकी पूर्ति करते हुये, वेद शास्त्रोंमें प्रसिद्ध कीर्त्ति वाले, प्रिया श्रीजनकराजदुलारीजूके सहित श्रीरामभद्रजूका चिन्तन, आप सभीके चित्तमें निर्विकारिता प्रदान करनेवाला होवे अर्थात् उनके चिन्तनसे आप लोगोंके चित्तके काम क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, तथा शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध आदिकी आसक्ति रूप सभी प्रकारके विकार नष्ट हो जॉय ॥४३॥

अथ पञ्चोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

श्रीअयोध्याजीमें वर सरकारोंके समेत श्रीमिथिलेशराजकुमारियोंका श्वसुरगृह प्रवेशः—

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

लीलामभीप्सितां श्रुत्वा समाधिस्थे शिवेऽप्युमा ।
तदानन्दातिरेकेण साऽन्तर्वृत्तिरभूत्क्षणात् ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनीजी ! अपनी इच्छित लीलाको श्रवण करके भगवान् शिवजीके समाधिस्थ हो जाने पर आनन्दकी बाढ़से, भगवती श्रीपार्वतीजी भी क्षणमात्रमें ध्यानस्थ हो गयीं ॥१॥

ततस्तौ च परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
ब्रह्मपुत्रा महात्मानः कृतार्था जग्मुरीप्सितम् ॥२॥

तत्पश्चात् सनकादिक चारो ब्रह्म-पुत्रअपने मन, बुद्धि, चित्त आदिमें एक उन्हीं विवाह वेष धारी श्रीसीतारामजीको विराजमान करके कृत कृत्य हो दोनो श्रीगौरीशङ्कर भगवानको परिक्रमा पूर्वक वारंवार नमस्कार करके अपने इच्छित स्थानको चले गये ॥२॥

तां समासेन ते लीलां वदन् कलिमलापहाम् ।
अवाच्यानन्दमग्नोऽहं बहुनोक्तेन किं प्रिये ! ॥३॥

हे प्रिये ! उसी कलि मल (काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग,–द्वेष्य, ईर्ष्या, पाखण्ड) नाशिनी श्रीजनकराजनन्दिनीजूकी लीलाको सचेपसे वर्णन करता हुआ मैं अवर्णनीय आनन्द (भगवदानन्द) में डूब गया हूं''! इससे अधिक और कहने की क्या आवश्यकता '' ? ॥३॥

श्रीसूत उवाच।

कात्यायनी महाभागा निमज्जन्ती सुखार्णवे।
कृतार्थितास्मि भवता मुनिमुख्येत्यभूद्वाक् ॥४॥

श्रीसूतजी बोले:—हे श्रीशौनकजी! महाभाग्य शालिनी श्रीकात्यायनीजी सुख सागरमें डूबती हुई विवाह वेषधारी प्रभु सीतारामजीके स्वरूपका मनन करते हुये श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराजसे आपने हमें कृतार्थ कर दिया, ऐसा कहकर वे प्रेमावेशके कारण रुद्ध कण्ठ हो मौन हो गयी ॥४॥

पुनश्चित्तं समाधाय मैथिलीध्यानतत्परा।
जगौ कलं गिरा माध्व्या वाष्पसंरुद्धकण्ठया ॥५॥

पुनः चित्तको सावधान करके श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके ध्यानमें तल्लीन हो, कण्ठमें रुकी हुई अपनी मीठी वाणी द्वारा वे धीमे स्वरसे बोलीं ॥५॥

श्रीकात्यायन्युवाच।

जाताऽऽह्लादकविग्रहा निमिकुले साकेतधामेश्वरी
भित्त्वा भूमितलं परात्परतमा सिंहासनस्था शुभा।
नानोपायनपाणिभिश्च भुवि या संसेव्यमानालिभि-
र्विद्युत्कोटिनिभद्युतिर्विधुमुखी तस्यै सदा मङ्गलम् ॥६॥

जिनका श्रीमुखारविन्द पूर्ण चन्द्रमाके समान आह्लादकारी है तथा जिनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति करोडो बिजुलीके समान है, जो अनेक प्रकारकी भेंटोंको हाथोंमें लिये हुई सखियोंसे सेवित होती हुई आह्लादकारक स्वरूपसे पृथ्वीको भेदनकर सिंहासन पर बैठी हुई, निमिकुलमें प्रकट हुई हैं, उन सबसे बड़ी मङ्गल-स्वरूपा श्रीसाकेतधामेश्वरी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका सदा ही मङ्गल हो ॥६॥

या नेतीति निगद्यते रसमयी वेदैरशेषेश्वरी
यस्याः पादसरोजजा श्रुतिनुता शक्तिः स्वतः प्राकृता।
उत्पाद्येदमवत्यथात्ति सकलं सा सद्गतिर्गीयते
लोके श्रीजनकात्मजेति मुनिभिस्तस्यै सदा मङ्गलम् ॥७॥

जिन सर्वेश्वरी, रसस्वरूपाजीको वेद भगवान् नेति नेति कहकर गान करते हैं, तथा जिनके श्रीचरणकमलसे उत्पन्न हुई स्वाभाविक शक्ति वेदोंसे स्तुत, सम्पूर्ण विश्वको स्वयं उत्पन्न करके इसकी

पालन व संहार करती है, मुनिजन लोकोंमे सन्तोंकी रक्षा करनेवाली उन्हीं श्रीसाकेतविहारिणी-जीको श्रीजनकराजनन्दिनीजी कहते हैं अतः उन अनन्त ब्रह्माण्डनायिकाजूका सदा ही मङ्गल हो ७

सर्वा सर्वगतिर्ध्रुवा शरणदा सर्वांशिनी सर्वगा
सर्वाभीष्टदुघारविन्दचरणा सर्वं ययेदं ततम्।
सा सर्वेश्वरनायकस्य दयिता सीरध्वजस्याजिरे
क्रीडत्यात्मसखीसमूहसहिता तस्यै सदा मङ्गलम् ॥८॥

जो सर्वस्वरूपा, सभीकी निवासस्थान और सभीको रक्षा प्रदान करने वाली हैं, जिनके अंश-से अनन्त शक्तियोंकी उत्पत्ति होती है, जो अपने निराकार स्वरूपसे सर्वत्र उपस्थित हैं तथा जिनके श्रीचरण कमल सभी प्रकारके अभीष्टको प्रदान करने वाले हैं, जिन्होंने अपने सर्वव्यापक ब्रह्म-स्वरूप से इस विश्वको व्याप्त कर रक्खा है, वे समस्त इन्द्र, वरुण, सूर्य, चन्द्र तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेशा-दिकोंको पृथक्-पृथक् लोकहितकर कार्य्योंमें नियुक्त करनेवाले साकेताधीश प्रभु श्रीरामजीकी प्राण वल्लभाजू अपने सखीवृन्दोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके आँगनमें खेल रही हैं उन अनुपम भक्तवत्सला, दयासागराजूका सदा ही मङ्गल हो ॥८॥

यस्याः सागरसीकरांशनिभया शक्त्या सुदुर्बोधया
ब्रह्माण्डौघनिवासिनः प्रतिपलं चेष्टामयन्तेऽखिलाम्।
लक्ष्यन्ते तु विना मृता इव तया सा वै गृहीताङ्गुलीं
मातुः संस्खलती प्रयाति मधुरं तस्यै सदा मङ्गलम् ॥९॥

जिनके सागरके सीकर अंशके समान अल्पल्प किन्तु समझमें न आने योग्य शक्तिके द्वारा, अनन्त ब्रह्माण्डोंमें निवास करनेवाले प्राणी प्रत्येक पलमें सभी प्रकारकी चेष्टा करते हैं और उस शक्तिके बिना वे मृतक तुल्य ही दृष्टिगोचर होते हैं, वे शक्ति सागरा श्रीजनकराजदुलारीजी अपनी श्रीअम्बाजीके हाथकी अङ्गुली पकड़कर फिसलती हुई चलती हैं, उन अद्भुत भक्त-सुखद-लीला विस्तारिणी श्रीकिशोरीजीका मङ्गल हो ॥९॥

या धीचित्तमनोगिरामविषया सर्वान्तरात्मा शिवा।
वेधोविष्णुशिवाद्यलभ्यचरणा वेदान्तवेद्या परा।
आविर्भूय विदेहवंश उदिते सीरध्वजस्याङ्गणे
खेलत्यात्मसखीसमूहसहिता तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१०॥

जिन्हें चित्त चिन्तन नहीं कर सकता, नेत्र देख नहीं सकते, बुद्धि निश्चय नहीं कर सकती, वाणी जिनका वर्णन नहीं कर सकती, जो सभी प्राणियोंके मन, बुद्धि चित्त व अहङ्कारमें निवास करने वाली, मङ्गलस्वरूपा तथा सबसे परे हैं जिनकी महिमाको ब्रह्मा विष्णु महेश भी नहीं जान सकते, जिनके स्वरूपका कुछ ज्ञान वेदान्तके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है वे उदय हुये श्रीविदेह वंशमें श्रीसीरध्वज महाराजके आङ्गणमें अपनी सखी वृन्दोंके साथ खेलती है, उन विलक्षण लीला वाली श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥१०॥

दृष्ट्वा यां चपलासहस्रनिचया नष्टत्विषो भान्ति वै
यस्या वीक्ष्य सहिष्णुतां क्षितिरियं मुग्धाऽचलत्वं गता ।
चन्द्रोऽभूद्रजनीचरः क्षयरुजं प्राप्तश्च चिन्ताकुलो
यस्याः प्रेक्ष्य मृदुस्मितास्यममलं तस्यै सदा मङ्गलम् ॥११॥

जिनका दर्शन करके बिजुलीकी हजारों राशियां प्रकाशहीनसी प्रतीत होती है, पृथ्वी देवी जिनकी सहन शक्तिको देखकर मुग्ध हो अचलताको प्राप्त हो गयी अर्थात् प्रेम मूर्च्छा को प्राप्त हैं, जिनके मन्द मुस्कान युक्त श्रीमुखारविन्दका दर्शन करके चन्द्रदेव अपनी मान-हानि चिन्तासे व्याकुल हो क्षयरोग ग्रस्त और रजनीचर बन गये हैं अर्थात् रात्रिमें ही विचरते हैं, उन अद्भुततेज व कान्तिमयी श्रीजनकराज दुलारीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥११॥

भीषा यस्य बिभेति भीतिरनिशं दृष्ट्वैव सा चक्षुषा
दूराद्वानरचित्रमाशु भयतः क्रोडं समाश्लिष्यति ।
सर्वानन्दकरीर्विचित्ररुचिरा लीलाः करोत्यन्वहं
भाव्येयं मिथिला कृता ननु यया तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१२॥

जिनके भयसे भयभी भय मानता है, वे दूरसे वानरके चित्रको देखकर भयके कारण अपनी श्रीअम्बाजीको गोदमें झट लिपट जाती हैं, इस प्रकार जो सभीको आनन्द-प्रदान करने वाली आश्चर्य मयी लीलाओंको नित्यही करती हैं तथा जिन्होंने अपने बालविहारसे श्रीमिथिलाजीको ध्यान करने योग्य बना दिया है, उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका सदाही मङ्गल हो ॥१२॥

सर्वज्ञा श्रुतिवेद्यलेशमहिमा या चार्यया पाठ्यते
या वै श्रीमिथिलानिवासितनया अध्यापयद्वै स्वयम् ।

लोकानां नयनोत्सवात्मसुगुणैर्या सर्वभूवाधिका
कारुण्यामृतसागरा रसनिधिस्तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१३॥

जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंमें स्थित सभी जीवोंके मन, बुद्धि, चित्त आदिकी तीनों कालकी सभी वार्तोंका व उनके हित-अहितका पूर्ण ज्ञान रखती हैं, वेदोंके द्वारा जिनकी किञ्चित मात्र महिमाका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, उन्हें गुरुआनीजी विद्या पढ़ती हैं, जो श्रीमिथिलानिवासी कन्याओंको स्वयं पढ़ानेकी कृपा करती हैं तथा जो अपने सर्व सुखद, हितकर गुणोंके द्वारा सभीके नेत्रोंको उत्सवके समान विशेष सुख देनेवाली, करुणारूपी अमृतकी समुद्र, रस (भगवान् श्रीरामजी) की निधि (खजाना) स्वरूपा है, शिक्षाका आदर्श देनेवाली उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका सदा ही मङ्गल हो ॥१३॥

दृष्ट्वा स्वप्रतिबिम्बमेव चकिता त्वं कासि कासीति या
जल्पन्ती सुखवर्षिणी सुमधुरं हस्ताज्जिघृक्षुः क्वचित् ।
मिष्टान्नं प्रददाति हर्षसहिता तस्मै कराभ्यां स्वयं
तामुत्सृज्य तनोति केलिमपरां तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१४॥

जो मणिमय खम्भों आदिमें अपने प्रतिबिम्ब (मूर्ति) को देखकर चकित हो तुम कौन हो ? हे तुम कौन हो ? इस प्रकार बड़े प्रेमसे कहती हुई, उसको पकड़ने की इच्छुक हो उसे हर्षपूर्वक अपने दोनों हाथोंसे मिष्टान्न प्रदान करती हैं, पुनः अपनी उस केलिको छोड़कर दूसरी लीलाका विस्तार करती हैं, उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥१४॥

नीत्वा सर्वसखीसमूहममलं श्रीकञ्चनाख्ये वने
नानावर्णलताद्रुमालिसहिते नानानिकुञ्जावृते ।
नानाचारुमोहरा रसमयीर्लीलाः करोत्यन्वहं
यां जानन्ति न तत्वतः श्रुतिविदस्तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१५॥

जिन्हें वस्तुतः वेद-वेत्ता भी नहीं जानते वही जो अनेक वर्णकी लता वृक्ष भँवरोंसे युक्त विविध प्रकारके लतागृहोंसे घिरे हुये श्रीकञ्चनवनमें अपनी विशुद्ध भाव वाले सखीवृन्दको ले जाकर (वहाँ) अनेक प्रकारकी सुन्दर, मनोहर भगवत् सम्बन्धी लीलाओंको नित्य किया करती हैं, उन श्रीमिथिलेशजीकी राजदुलारीजू का सदा ही मङ्गल हो ॥१५॥

मञ्जुस्निग्धसुकुञ्चितासितकचा कोटीन्दुतुल्यानना
भाले सुन्दरचन्द्रिका मणिमयी बालार्कपुञ्जप्रभा ।
फुल्लाम्भोजदलार्द्रचारुनयना मन्दस्मिता शोभना
नाना रत्नसुकुण्डला जयति या तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१६॥

जिनके मनोहर, चिकने, अत्यन्त घुंघुराले, काले केश हैं, करोड़ों चन्द्रमाओंके सदृश आह्लाद वर्द्धक प्रकाशमय जिनका श्रीमुख है, जिनके मस्तकपर उदय कालके सूर्य-पुञ्जके समान प्रकाशवाली मणियोंकी चन्द्रिका है, खिले कमल-दलके सदृश जिनके सुन्दर नेत्र और मन्द मुसकान है एवं जो मङ्गलकारिणी नाना प्रकारके रत्नमय सुन्दर कुण्डलोंको धारण किये हुये सर्वोत्कर्षको प्राप्त हैं, उन श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥१६॥

सुभ्रूर्बिम्बफलाधरा च सुदती रत्नाम्बुजस्रग्विणी
रक्तारक्ताम्भोरुहहस्तपादसुतला चित्राम्बरा बालिका ।
नाना भूषणभूषिता सुललिता भालाङ्कसंशोधिका
भावज्ञाऽखिलवन्दिता जयति या तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१७॥

जो भक्तोंके भालमें लिखे हुये प्रतिकूल दुःखकर कुअङ्कोंको सुधार देती हैं अर्थात् सुखकर व अनुकूल बना देती हैं। जो प्राणी मात्रके मन, बुद्धि, चित्तमें समाई हुई होनेके कारण सभीके सब भावोंको जानती हैं, वात्सल्यभावकी पराकाष्ठा पूर्वक विलक्षण उदारताके कारण अखण्ड देहधारी (भगवान् श्रीरामजी भी) जिनको नमस्कार करते हैं, जिनकी भौंहें कामदेवके धनुषके समान सुन्दर हैं, जिनके अधर व ओष्ठ कुन्दरूफलके सदृश लाल-लाल हैं, जिनकी दन्तपंक्ति अनारके दोनोंके समान सुन्दर है, जो कमलपुष्प व रत्नोंकी मालाओंको धारण किये हुये हैं, लाल कमलके समान जिनके हाथ पैरोंके तलवोंकी लालिमा है, जिनके वस्त्र विचित्र वर्णके हैं, जो बाल्यावस्थासे युक्त अनेक प्रकारके भूषणोंसे भूषित अत्यन्त सुन्दरी सर्वोत्कर्षको प्राप्त हो रही हैं, उन श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजीका सदा ही मङ्गल हो ॥१७॥

आदाय स्वयमेव कञ्जकरयोर्मिष्टान्नपात्रं क्वचित्
सर्वास्तर्पयति प्रदाय विपुलं यस्या यदेवेप्सितम् ।
नीत्वेत्थं नवकन्दुकं सुललितं साकं सखीभिर्मुदा
विक्रीडत्यखिलेश्वरी जनकजा तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१८॥

जो सर्वेश्वरी श्रीजनकराजदुलारीजी कभी अपने कर कमलोंमें स्वयं मिष्टान्न-पात्र लेकर जिसको जो अभीष्ट होता है उसको वही विशेष मात्रामें देकर सभीको तृप्त करती हैं, उसी प्रकार नवीन, अत्यन्त मनोहर गेंदको लेकर अपनी सखियोंके साथ आनन्दपूर्वक खेलती हैं, उन भक्तसुखद-लीला विस्तारिणी श्रीजनकराजदुलारीजीका सदा ही मङ्गल हो ॥१८॥

गत्वा श्रीकमलां तु या सुखनिधिः पश्यन्मनोह्लादिनी
तस्यां क्रीडति सा सुखं सुनयनाहृत्पद्मभानुप्रभा ।
सिद्धानामपि बुद्धिवागविषया सर्वादिजा स्वालिभि-
र्भक्तैर्ग्रस्तसुकोमलार्द्रहृदया तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१९॥

जो सभी सुखोंकी भण्डार, दर्शकोंके मनको आह्लादित करने वाली तथा श्रीसुनयना अम्बाजी के हृदय कमलको खिलाने के लिये जो सूर्यके प्रकाशके समान हैं, एवं सिद्धोंका मन भी जिनके वास्तविक स्वरूपका यथार्थ मनन नहीं कर सकता, वाणी वर्णन नहीं कर सकती, जो साकाररूप में सबसे पहिले प्रकट हुई हैं, तथा जिनका अत्यन्त कोमल हृदय भक्तों के द्वारा पकड़ा हुआ है, उन श्रीमिथिलेश राजनन्दिनीजूका सदा ही मङ्गल हो । १९॥

गौराङ्गी मधुरस्मितार्द्रनयना सिंहासनस्था क्वचि
न्नाना पूजनवस्तुभिः सहचरी वृन्दैः समभ्यर्च्यते ।
नौलीलां च कदाचिदेव कुरुते ता ह्लादयन्ती भृशं
नृत्यं पश्यति या कदाचिदथवै तस्यै सदा मङ्गलम् ॥२०॥

जो गौर वर्ण, मन्दमुस्कान और दयासे द्रवित नेत्र कमल वाली श्रीकिशोरीजी, कभी सिंहासन पर विराजमान हो कर अपनी सहचरियोंसे अनेक प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंके द्वारा षोड़शोपचार से पूजित होती हैं, कभी उन सखियोंको अत्यन्त आह्लाद युक्त करती हुई नौका-लीला करती हैं, कभी उनका नृत्य देखती हैं, उन दयामयी श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥२०॥

या वै दीनहिता पवित्रचरिता कारुण्यावरांनिधिः
सौशील्यादि समस्तदिव्यसुगुणैः संभूषिताऽयोनिजा ।
यस्याः क्षान्तिरशेषलोकविदिता गात्रेषु संवीचिता
ब्रह्माण्डाः परमाणवो रसनिधेस्तस्यै सदा मङ्गलम् ॥२१॥

सम्पूर्ण रसोंकी भण्डारस्वरूपा जिन श्रीकिशोरीजीके अङ्गोंमें ब्रह्माण्ड समूह परमाणुओंके समान अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि-गोचर होते हैं, जिनकी क्षमा समस्त लोकों में विख्यात है, जो विना और किसी कारणोंके केवल अपनी इच्छासे प्रकट, सौशील्य आदि समस्त मङ्गलकारी गुणोंसे युक्त व पवित्र यश वाली हैं, जिनकी दयालुता समुद्रके समान अथाह और कीर्ति अत्यन्त पवित्र है, तथा जो दीन (सम्पूर्ण साधनोंके अभिमानसे रहित) प्राणियों का वास्तविक हित करने वाली हैं, उन श्रीमिथिलेश-राजकिशोरीजीका सदा ही मङ्गल हो।२१॥

आलीनां निजपादपङ्कजजुषां सौभाग्यलक्ष्म्यैकया।
देवानां वरयोषितां बहुविधं दर्पं जहाराञ्जसा।
श्रीरामेण वरेण या स्थितवती वैवाहभूषान्विता
नानारत्नमयासने छविनिधिस्तस्यै सदा मङ्गलम् ॥२२॥

जिन छवि-निधि (सौन्दर्यकी भण्डार-स्वरूपा) जी ने विवाह वेषसे युक्त हो श्रीरामदूलह सरकार के सहित अनेक प्रकारके रत्न जटित सिंहासन पर विराजी हुई, अपने श्रीचरणकमलकी सेविका सखियोंकी उपमा रहित सौभाग्य रूपी लक्ष्मीके द्वारा, देवताओंकी उत्तम स्त्रियोंके गुण-रूपादिक अनेक प्रकारके अभिमानको अनायास ही हरण किया है,) उन श्रीमिथिलेश-राजनन्दिनीजूका सदा ही मङ्गल हो॥२२॥

दिव्यानन्तगुणाऽप्रमेयचरिता निःसीमसद्वैभवा
स्वाङ्गोदाररुचा स्वभर्तुरुरसः कौतूहलोत्पादिका।
रामस्याखिलचित्तहारिवपुषः शोभामहावारिधे-
र्नित्यं याऽऽश्रितभावपूर्तिनिरता तस्यै मङ्गलम् ॥२३॥

जो वात्सल्य सौशील्य, सौलभ्य, सौहार्द, सौजन्य, कारुण्य, माधुर्य्य, सर्वैश्वर्य आदि अनन्त अप्राकृत गुणोंसे युक्त असङ्ख्य चरितों वाली हैं, जिनका ऐश्वर्य सदा एक रस रहने वाला अनन्त है, जो अपने श्रीविग्रहकी छटासे सभी प्राणियोंके चित्तको हरण करने वाले महासागरके समान अथाह शोभासे युक्त अपने प्राणवल्लभ श्रीरामभद्रजूके चित्तमें भी अपने श्रीअङ्गकी उदार (मनोहर) कान्तिसे आश्चर्य उत्पन्न करने वाली हैं तथा जो आश्रित-भक्तोंके भावकी पूर्तिकरनेमें सदैव तत्पर रहती हैं, उन श्रीमिथिलेश-राजनन्दिनीजूका सदा ही मङ्गल हो॥२३।

श्रीन्दुभालदयिताद्यलङ्कृताऽऽलकेशकमनीयदर्शना ।
चन्द्रिकाञ्चितमनोज्ञमस्तका प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२४॥

श्रीलक्ष्मीजी तथा श्रीपार्वतीजी आदि महाशक्तियोंने जिनका शृङ्गार किया है, घुँघुराले केशोंसे जिनका दर्शन बड़ा ही सुन्दर है तथा जिनका मनोहारी मस्तक मणिमय चन्द्रिकासे विभूषित है वे श्रीकिशोरीजी हम सबों पर प्रसन्न हों ॥२४॥

सीरकेतुसुखधिः शुचिस्मिता फुल्लनीलजलजायतेक्षणा ।
कुन्तलाकुलकपोलशोभिता प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२५॥

जो श्रीसीरध्वज महाराजके सुखकी भण्डार-स्वरूपा, पवित्र मुसकान, नीले कमलके समान नेत्रों वाली है, केशोंसे सुहावन जिनके कपोल हैं, वे श्रीजनकराजकन्यका श्रीकिशोरीजी हम सब पर प्रसन्न होवें ॥२५॥

तालपत्रपरिशोभितश्रवा नासिकाग्रमणिशोभनाधरा ।
नीलवस्त्रवरभूषणाञ्चिता प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२६॥

कर्ण-भूषणोंसे जिनके कान अत्यन्त सुशोभित हैं, नासामणिसे जिनके अधर मनोहर हैं तथा नीले वस्त्र व उत्कृष्ट भूषणोंसे जो अलंकृत हैं, वे श्रीजनकराज-कन्यका श्रीकिशोरीजी हम सभी जीवों पर प्रसन्न होवें ॥२६॥

येकभावरतशातवृद्धये स्वीकृतातिशयकान्तविग्रहा ।
सा दयार्द्रहृया स्वभावतः प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२७॥

जिन्होंने अनन्यभावमें आसक्त भक्तोंके सुखवृद्धिके लिये, अत्यन्त मनोहर स्वरूपको धारण किया है, वे स्वाभाविक दयासे द्रवित हृदयवाली श्रीजनकराज कन्याका सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी हम सबों पर प्रसन्न होवें ॥२७॥

स्वालियूथपरिसेविता मुदा वागुमाजलधिजादिवन्दिता ।
प्राणनाथभुजमालमण्डिता प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२८॥

जो अपने सखीयूथोंके द्वारा हर्ष-पूर्वक सब ओरसे सेवित है, जिन्हें सरस्वतीजी, पार्वतीजी तथा श्रीलक्ष्मीजी प्रणाम करती हैं, जो अपने श्रीप्राणनाथजूकी भुजमालासे अलंकृत हैं, वे श्रीजनकराजकन्यका सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी हम सभी चेतनों पर प्रसन्न हों ॥२८॥

हारभूषितहृदयप्रदेशिका स्निग्धभूरिमृदुपादपङ्कजा ।
प्रीतिशीलकरुणाप्लुताशया प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२६॥

जिनका हृदय प्रदेश हारोंसे विभूषित है तथा जिनके श्रीचरणकमल चिकने एवं अत्यन्तकोमल हैं, जिनका हृदय प्रेम, शील, व करुणासे नहाया हुआ है, वे श्रीजनकराज कन्यका सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी हम सभी पर प्रसन्न होवें ॥२६॥

श्रीसूत उवाच ।

गायन्त्यथैवं स्रवदम्बुनेत्रा श्रीमैथिलीपादविलीनवृत्तिः ।
तपोनिरस्ताखिलकल्मषा सा कात्यायनी मोदनिधौ निमग्ना ॥३०॥

श्रीसूतजी बोलेः—हे शौनकजी ! तपस्याके द्वारा सभी पाप नष्ट हो जानेके कारण श्रीकात्यायनीजी नेत्रोंसे आसुओंको गिराती हुई श्रीमिथिलेशललीजूके इस प्रकार गुण रूपादिका गान करते, उनकी चित्त-वृत्ति श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके श्रीचरण-कमलोंमें तल्लीन हो गयी, अत एव वे आनन्द सागरमें डूब गयीं ॥३०॥

दिनपूगे गते राजा पङ्क्तियानो महामनाः ।
जनकं प्रार्थयामास साकेतं गन्तुमिच्छया ॥३१॥

बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर उदार चित्त वाले उन श्रीदशरथजी महाराजने श्रीअयोध्याजी जानेकी इच्छासे श्रीजनकजी महाराजसे प्रार्थना की ॥३१॥

वशिष्ठेन समाज्ञप्तः शतानन्देन च स्वयम् ।
प्रस्थापनावधिं चक्रे सर्वमेव यथोचितम् ॥३२॥

तब श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीशतानन्दजी महाराजकी आज्ञा पाकरके श्रीमिथिलेशजी महाराज विदाई की यथोचित सभी विधियोंको करते हुये ॥३२॥

तद्यौतिकेन महता कोशलेन्द्रोऽपि विस्मितः ।
बभूव प्रेमवशगो विदेहाधिपतेः प्रभोः ॥३३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज द्वारा दिये हुये उस दहेजको देखकर श्रीदशरथजी महाराज भी चकित हो उनके प्रेमके वशीभूत हो गये ॥३३॥

आदौ पतिव्रताधर्मं शिक्षयित्वा सविस्तरम् ।
ताभ्यः सुनयना राज्ञी लालयन्ती मुहुर्मुहुः ॥३४॥

उधर श्रीसुनयना महारानीजीने अपनी उन पुत्रियों को प्यार करती हुई पहिले पतिव्रता-स्त्रियों के धर्मकी विस्तार पूर्वक वारंवार शिक्षा देकर ॥३४॥

जामातॄन्संपरिष्वज्य सत्कृतान् साश्रुलोचना ।
पुत्रीः समर्पयामास क्रमशस्तेभ्य आदरात् ॥३५॥

उन्होंने सत्कार किये हुये अपने उन जमाइयों को हृदयसे लगाकर सजल नेत्र हो आदर-पूर्वक उन्हें क्रमशः अपनी पुत्रियोंको समर्पण किया। ३५॥

अनेकविधवाद्यानां प्रवृत्ते मङ्गलध्वनौ ।
कथञ्चिन्मातृभिस्ता वै शिविकासु निवेशिताः ॥३६॥

अनेक प्रकारके मङ्गल ध्वनि होते समय माताओंने किसी प्रकार हृदय में धीरज धारण करके अपनी श्रीजनकराज दुलारीजी आदि उन सभी पुत्रियो को पालकियोंमें बिठाया ॥३६॥

सीताविरहतप्तानां दशाऽवाच्या पतत्रिणाम् ।
तदानीं मुनिशार्दूल ! मातॄणां तु कथैव का ॥३७॥

उन श्रीजनकराजदुलारीजीके वियोग से संतप्त शुक-सारिकादि पक्षियो की भी उस समयकी स्थिति कहने योग्य नहीं है फिर माताओंकी उस समयकी दशाको कहना ही क्या ? ॥३७॥

जयकारो महानासीत् पुष्पवृष्टिपुरः सरः ।
प्रस्थिते भ्रातृभी राम कोशलाभिमुखं शुभः ॥३८॥

भाइयोंके सहित श्रीरामभद्रजूके श्रीअयोध्याजीकी ओर प्रस्थान करते ही पुष्पवृष्टि पूर्वक मङ्गलमय महान् जय जय कार होने लगा ॥३८॥

वेदघोषो महर्षीणां बभूवानन्दवर्द्धनः ।
विशेषेण महाप्राज्ञ ! वरपक्षावलम्बिनाम् ॥३९॥

हे महाप्राज्ञ (श्रीशौनकजी) महर्षियों का उस समय का वेदघोष वर (दूलह सरकार के) पक्षियोंके लिये विशेष आनन्द वर्द्धक हुआ ॥३९॥

श्रीराममुरसाऽऽलिङ्गय सीताविरहकर्शितः ।
जनकः प्रार्थनाञ्चक्रे वाचा प्रेमनिरुद्धया ॥४०॥

श्रीजनकजी महाराजने श्री किशोरीजीके विरहसे अत्यन्त कृश होने श्रीरामभद्रजीको हृदयसे लगाकर गद्गद वाणी द्वारा उनसे प्रार्थना की ॥४०॥

श्रीजनक उवाच ।

वत्स ! श्रीराम ! भद्रं ते मुनयस्तत्त्ववादिनः ।
वदन्ति परमात्मानं त्वामज प्रकृतेः परम् ॥४१॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने कहाः-हे वत्स ! श्रीराम ! आपका मङ्गल हो ! तत्ववादी (ब्रह्म तत्त्वकी ही प्रधानता बतलाने वाले) मुनि-जन आपको मायासे परे, जन्मसे रहित, परमात्मा (सबसे बढ़कर व्यापक शक्ति वाला) बतलाते है ॥४१॥

परत्वं नारदाच्छ्रुत्वा मया प्राग्भवदाप्तये ।
सर्वेश्वर्या हि सम्प्राप्तिः सुतारूपेण काङ्क्षिता ॥४२॥

पहिले श्रीनारदजीके मुखसे आपके परत्वको सुनकर आपकी प्राप्तिके लिये मैंने पुत्री रूपमे श्रीसर्वेश्वरीजीकी प्राप्तिकी इच्छा (कामना) की थी ॥४२।

सेच्छया भवतः पूर्णा मम स्वल्पप्रयत्नतः ।
इदानीं कृतकृत्योऽहं भवतो हि प्रसादतः ॥४३॥

वह आपकी इच्छासे मेरे स्वल्प प्रयाससे ही पूरी हो गयी अतः इस समय म आपकी कृपासे पूर्ण कृतार्थ हूं ॥४३॥

अन्तः स्थस्त्वं यथा मेऽसि तथा भव बहिश्चरः ।
इयं मे प्रार्थनाऽप्येका स्वीक्रियतां त्वया हरे ! ॥४४॥

आप जैसे मेरे हृदयमे निवास करते हैं, उसी प्रकार दृष्टिके बाहर भी निवास कीजिये,हे भक्तोंके समस्त अनिष्टोंको हरण करने वाले प्रभो ! मेरी एक इस प्रार्थनाको भी स्वीकार कीजिये ४४

त्वद्वियोगमहं सोढुं न क्षमोऽस्मि कथञ्चन ।
न क्षमोऽस्मि तथा पुत्र्या दारुणं सम्प्रसीद मे ॥४५॥

क्योंकि न मैं आपके ही इस प्रत्यक्ष वियोगको सहन करनेके लिये किसी प्रकार समर्थ हू, न अपनी श्रीललीजीके दारुण वियोगको, अतः मेरे प्रति आप प्रसन्न होवें अर्थात् मेरे लिये भीतरके समान बाहर भी प्रत्यक्ष बने रहिये ॥४५॥

श्रीसूत उवाच ।

एवमुक्तस्तदा रामः श्वशुरेण महात्मना ।
विश्वकर्माणमाहूय व्यादिदेश तमादरात् ॥४६॥

श्रीसूतजी बोलेः-हे श्रीशौनकजी ! महाबुद्धिशाली श्वसुर श्रीजनकजीमहाराजके इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्रीरामभद्रजूने श्रीविश्वकर्माजीको बुलाकर उन्हें आदरपूर्वक यह आज्ञा प्रदानकी ४६

श्रीराम उवाच ।

भ्रातृभिः सीतयायुक्तां मम मूर्त्तिं मनोहराम् ।
निर्मापय महाबुद्धे ! शीघ्रमेव ममाज्ञया ॥४७॥

भगवान् श्रीरामजी बोलेः-हे महाबुद्धि ! मेरी आज्ञासे श्रीजनकराजकिशोरीजीके सहित तीनों भाइयोंसे युक्त, मेरी मनोहर मूर्त्तिको शीघ्रही बनाइये ॥४७॥

श्रीसूत उवाच ।

एवमाज्ञापितस्तेन श्रीरामेण त्वरान्वितः ।
निर्माप्य परमं रम्यं मूर्त्तिपञ्चकमभ्यगात् ॥४८॥

श्रीसूतजी बोलेः-हे शौनकजी ! उन श्रीरामभद्रजूकी इस आज्ञाको पाकर श्रीविश्वकर्माजीने शीघ्रताके साथ पाँच मूर्त्तियोंको बनाकर उनके पास आये ॥४८॥

श्रीराम उवाच ।

अनेनैव स्वरूपेण सदा स्थास्यामि ते गृहे ।
सुलभः सर्व लोकानां कल्याणैकविधित्सया ॥४६॥

श्रीरामभद्रजूने कहाः-हे तात ! समस्त प्राणियोंका कल्याण करनेकी मुख्य इच्छासे मैं इसी स्वरूपसे सुलभ होकर सदा आपके भवनमें निवास करूँगा ॥४६॥

श्रीसूत उवाच ।

बहुशस्तोषयित्वैवं श्वशुरं रघुनन्दनः ।
सद्यो निवर्त्तयामास विदेहाधिपतिं प्रभुः ॥५०॥

श्रीसूतजी बोलेः-हे मुने ! इस प्रकार सर्वसमर्थ श्रीरघुनन्दनप्यारेजीने अपने श्वशुरजीको बहुत प्रकारसे सन्तोष प्रदान करके, उन्हें शीघ्रही वापस कर दिया ॥५०॥

रामस्यागमनं श्रुत्वा श्रीसाकेतनिकेतनाः ।
उत्सवं सुमहांश्चक्रु रलञ्चक्रुश्च तां पुरीम् ॥५१॥

श्रीअयोध्यानिवासी श्रीचक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजूके शुभागमनका समाचार सुनकर महान् उत्सव तथा पुरीकी सजावट करने लगे ॥५१॥

मातरो हर्षपूर्णाक्ष्यः समेताः पुत्रवत्सलाः ।
द्वारि नीराज्य तनयान् वधूभिर्गृहमानयन् ॥५२॥

हर्ष भरे नेत्रों वाली, पुत्रवत्सला मातायें श्रीकौशल्या अम्बाजी आदि एकत्रित हो द्वार पर आरती करके वधुओंके सहित अपने पुत्रोंको भवनके भीतर ले आई ॥५२॥

अतुल्यसुषमाशीलं पुत्रमाचिन्त्य मातरः ।
मैथिलीं सुषमाराशिं निरीक्ष्यातीवविस्मिताः ॥५३॥

अपने पुत्र श्रीरामभद्रजीको अतुलनीय महान् सुन्दर विचार कर, श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूको सब प्रकारसे उपमा रहित सुन्दरताकी भण्डार देखकर आश्चर्यमें पड़ गयीं अर्थात् जब माताओंने श्रीरामभद्रजीको देखा, तो उनके हृदयमें यह भाव उठा, कि हमारे श्रीलालजी निःसन्देह अतुलित सुन्दर हैं अतः इनके अनुरूप सुन्दरी वहू मिलना असम्भव ही है, यह विचार कर कुछ उदास हो लोक रीतिके अनुसार जब वे श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजी का दर्शन करती हैं, तब वे उन्हें उपमा रहित सुन्दरताकी भण्डार देखकर चकित रह गयीं अर्थात् श्रीरघुनन्दन प्यारेसे भी अधिक सुन्दरी पाया ॥५३॥

कैकेय्या स्वं तदा दत्तं भवनं हेमनिर्मितम् ।
अद्वितीयं मुदा तस्यै सप्तकक्षाभिरन्वितम् ॥५४॥

तब श्रीकैकयी अम्बाजीने हर्ष पूर्वक उपमा- रहित सात आवरणोंसे युक्त, सोनेका बनवाया हुआ अपना श्रीकनक भवन" उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीको प्रदान किया ॥५४॥

कुमारान् जननी सार्कं वधूभिः परया मुदा ।
सिंहासनेषु संस्थाप्य विधिं सर्वमकारयत् ॥५५॥

तब श्रीकौशल्या अम्बाजी वधुओंके सहित अपने श्रीराजकुमारोंको महान हर्ष-पूर्वक सिंहासनों पर विराजमान करके सभी विधियोंको कराने लगीं ॥५५॥

भक्तिसूत्रोपनद्धौ तावुभौ स्वच्छन्दचारिणौ ।
मातुराज्ञां पुरस्कृत्य चक्रतुः सुस्मिताननौ ॥५६॥

सर्वेश्वर सर्व नियन्ता होनेके कारण अपनी इच्छानुसार सब व्यवहार करने वाले वे दोनों सरकार श्रीसीतारामजी महाराज, श्रीकौशल्या अम्बाजीकी श्रद्धा व आसक्ति रूपी डोरसे बँधे होने के कारण अपनी माताजीकी आज्ञाको मान कर, मृदु मुसकाते हुये उन सभी विधियोंको सम्पन्न किये ॥५६॥

ब्राह्मणेभ्यः सभार्येभ्यः पूजयित्वाऽतिभक्तितः ।
दानं बहुविधं प्रादात्कौशल्या तर्हि पुष्कलम् ॥५७॥

तब श्रीकौशल्या अम्बाजीने पत्नियोंके सहित ब्राह्मणोंका अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक पूजन करके उन्हें बहुत प्रकारका पर्याप्त दान-प्रदान किया ॥५७॥

स्वादुवद्भिः सुधाकल्पैरन्धोभिश्च चतुर्विधैः ।
षड्रसैः सहितै राज्ञ्या लालनैर्विविधैः सुतान् ॥५८॥
तर्पिताञ्जृम्भमाणास्यान्मुहुर्मीलितलोचनान् ।
सालसाम्भोजपत्राक्षीः स्नुषाश्चावेक्ष्य कातरः ॥५९॥
राजा दशरथः श्रीमान् महाराज्ञीर्महोदयः ।
स्वापयितुं द्रुतं पुत्रांस्तदाऽऽज्ञाप्य बहिर्ययौ ॥६०॥

तब श्रीकौशल्या महारानीजीके द्वारा चार प्रकारके अमृतवत् अत्यन्त स्वादिष्ट षट्रस व्यञ्जनों के द्वारा तृप्त किये हुये जम्हुआई लेते हुये मुख तथा बारंबार बन्दकरते नेत्र कमल वाले कुमारोंको तथा आलस्य युक्त नेत्रकमल वाली अपनी पुत्र-वधुओंको देखकर महान् उदय शोभाको प्राप्त वे श्रीचक्रवर्तीजी महाराज घबड़ाहटको प्राप्त हो उन्हें शीघ्र शयन करानेके लिये आज्ञा देकर स्वयं बाहर चले गये ॥५८। ५९॥६०॥

ताश्च पत्या समाज्ञप्ता महिष्यः प्रेमविह्वलाः ।
वध्वः सोत्सङ्गमादाय स्वापिताः परया मुदा ॥६१॥

प्रेम-विह्वला श्रीकौशल्या अम्बाजी आदि माताओंने अपने पतिदेवकी आज्ञा पाकर वधुओं को अपनी गोदी में लेकर बड़े हर्ष पूर्वक शयन कराया ॥६१॥

पुत्रान् प्रस्वापितान्पूर्वं स्वपन्तीश्च नवा वधूः ।
चक्षुर्भ्यामसकृद्वीक्ष्य ह्यपारं मोदमाप्नुयुः ॥६२॥

पहिले शयन कराये हुये पुत्रोंको तथा सोती हुई नव वधुओंको बारंबार देखकर वे श्रीकौश इत्यादि महारानियाँ हर्ष का पार न पासकीं ॥६२॥

एवं महाभाग्यतमो नृपेन्द्रः श्रीकोशलेन्द्रस्तनयान्स्वकीयान् ।
उद्वाह्य सम्यङ् मिथिलाप्रदेशात्मत्यां गतोऽभूत्परिपूर्णकामः ॥६३॥

इति षष्ठोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

इस प्रकार समस्त मान्य, शालियों में श्रेष्ठ अयोध्यानाथ श्रीदशरथजी महाराज अपने पुत्रों का सम्यक् प्रकारसे विवाह कराके श्रीमिथिलाजीसे श्रीअयोध्याजी पहुँच कर पूर्ण कृतकृत्य हो गये ॥६३॥

अथ षडुत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

श्रीप्रमोदवनान्तर्गत कदम्बवनमें यक्षकुमारियों द्वारा विश्वनाट्यलीला-प्रदर्शन—

श्रीसूत उवाच ।

राममेकान्त आलिङ्ग्य कौशल्या जननी मुदा ।
अपृच्छद्वृत्तमखिलं सादरं पुत्रवत्सला ॥ १ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे शौनकजी ! पुत्रवत्सला श्रीकौशल्याअम्बाजी एकान्तमें श्रीरामभद्रजीको हर्ष-पूर्वक हृदयसे लगाकर उनसे आदर-पूर्वक सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछने लगीं ॥१॥

श्रीकौशल्योवाच ।

पद्भ्यां नु गच्छता वत्स ! कथयदा दुष्टचारिणी ।
कथं त्वया हता पापा पुष्पकोमलवर्ष्मणा ॥२॥

हे वत्स ! आपका शरीर तो पुष्पके समान अत्यन्त कोमल है, फिर आपने पैदल जाते हुये दुष्ट-आचरण सम्पन्ना उस पापिनी ताड़का राक्षसीको किस प्रकार मारा ? ॥२॥

कथं निपातिता युद्धे राक्षसाः कूटयोधिनः ।
यज्ञमारक्षता तस्य कौशिकस्य महात्मनः ॥३॥

पुनः आपने महात्मा विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा करते समय छलसे युद्ध करनेवाले उन हजारों राक्षसोंको किस प्रकार मार गिराया ? ॥३॥

यं न जेतुं क्षमा देवा मनुष्या दानवादयः ।
कथं सुबाहुमवधीः क्रूरकर्माणमाहवे ॥४॥

जिसको देवता, मनुष्य, दानव आदि कोई भी जीतनेको समर्थ नहीं थे, उस क्रूर कर्म करने वाले सुबाहु राक्षसको आपने युद्धमें किस प्रकार मार दिया ? ॥४॥

शरेणैकेन मारीचं प्राक्षिपः सागरान्तिके ।
कथमेव दुराधर्षमनासादितयौवनः ॥५॥

हे वत्स ! अभी तो आप युवावस्थाको भी नहीं प्राप्त हुये हैं, तब उस दुर्जय मारीच राक्षसको आपने किस प्रकार एकही बाणसे समुद्रके किनारे फेंक दिया था ? ॥५॥

अहल्यां पादरजसा पावयित्वा शिलामयीम् ।
कथं त्वं मिथिलां प्राप्तः सानुजस्तदिहोच्यताम् ॥६॥

अब बतलाइये आप अपने चरण धूलीसे प्रस्तरमयी श्रीअहल्याजीको किस प्रकार पवित्र करके अपने भइयाके साथ श्रीमिथिलाजी गये ॥६॥

अयुप्युत्थापयितुं शक्तो रावणो न महाबलः ।
लीलयोत्थापितो येन कैलाश इव कन्दुकः ॥७॥

जिसने कैलाशपर्वतको गेंदके समान बिना किसी परिश्रमके ही उठा लिया था, वह महाबल शाली रावण भी जिसको उठाने में असमर्थ ही रहा ॥७॥

शूरा महारथश्रेष्ठास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।
समेत्य यस्य भूस्पर्शमपाकर्तुं न चक्षमाः ॥८॥

तथा तीनों लोकोंमें विख्यात सभी शूर, महारथी भी मिलकर जिसके भूमि-स्पर्शको भी नहीं छुड़ा सके ॥८॥

तत्कथं वत्स ! लोकेषु विश्रुतं सव्यपाणिना ।
अत्रोटय उदारात्मन् ! धनुरुत्थाप्य लीलया ॥९॥

हे वत्स ! भगवान् शिवजीके उसी त्रिलोकी विख्यात धनुषको खेलपूर्वक किस प्रकार उठाकर आपने बायें हाथसे तोड़ा था ? ॥९॥

रहस्यं सम्यगाख्याहि परं कौतूहलं हि मे ।
मया दीर्घवियोगान्ते वत्स ! प्राप्तमिदं सुखम् ॥१०॥

हे वत्स ! मुझे इन उक्त सभी विषयोंमें महान् आश्चर्य है, अत एव मेरे सन्देहानुसार आप उन सभी घटनाओंके रहस्यको सम्यक् प्रकारसे वर्णन कीजिये ॥१०॥

श्रीराम उवाच ।

सर्वमेतद्धि विज्ञेयं महर्षेः सुप्रसादतः ।
चरित्रमद्भुतं मातस्तथ्यमेव वदामि ते ॥११॥

श्रीरामभद्रजू बोलेः—हे श्रीअम्बाजी ! मैं आपसे यथार्थ कहता हूं, आप इन सम्पूर्ण आश्चर्यमय चरित्रोंको महर्षि श्रीविश्वामित्रजीकी ही विशेष कृपासे हुआ जानिये अर्थात् उन सभी घटनाओंमें गुरुदेवकी कृपा ही प्रधान है ॥११॥

स शक्तः सर्वकार्येषु भगवान् कुशिकात्मजः ।
कृतो निमित्तमात्रं वै तेनाहं विदितात्मना ॥१२॥

वे कुशिकनन्दन गुरुदेव भगवान् श्रीविश्वामित्रजी सभी कार्योंको करनेमें पूर्ण समर्थ हैं, उन सभी कार्योंमें केवल मुझे निमित्तमात्र बना दिया है, वस्तुतः वह सब लीला उन्हींकी है ॥१२॥

श्रीकौशल्योवाच ।

वत्स ! सत्यमिदं मन्ये विश्वामित्रो महातपाः ।
कर्तुं कारयितुं शक्तो न यत्कार्यं न तत्क्वचित् ॥१३॥

यह सुनकर श्रीकौशल्या अम्बाजी बोलीं:—हे वत्स ! मैं आपके इस कथनको सत्य मानती हूँ क्योंकि वास्तवमें वह कहीं भी कोई दुष्कर कार्य नहीं है, जिसे वे महातपस्वी श्रीविश्वामित्रजी करनेमें असमर्थ हों ॥१३॥

अपश्यन्त्या गता वारास्त्वामिमे ये ममात्मभूः ।
विदधातु न सङ्कल्पं दर्शयितुं पुनश्च तान् ॥१४॥

हे वत्स ! आपके दर्शनोंके बिना जो मेरे दुःख मय इतने दिन व्यतीत हुये हैं, उन्हें पुनः विधाता कभी दिखाने का सङ्कल्प न करे ॥१४॥

श्रीसूत उवाच ।

कौशिकं तमथाहूय स्वभवने परमोत्तमे ।
महिषी पूजयामास भक्त्या परमयान्विता ॥१५॥

श्रीसूतजी बोलेः—हे शौनकजी ! पुनः श्रीकौशल्या महारानीजीने श्रीविश्वामित्रजी महाराजको अपने अत्यन्त श्रेष्ठ भवनमें बुला कर उनकी परम श्रद्धाके साथ पूजाकी ॥१५॥

अयोध्यायामुषित्वा स दिनानि कतिचिन्मुनिः ।
रामं सानुजमालिङ्ग्य गाधेयः स्वाश्रमं ययौ ॥१६॥

वे गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजी महाराज कुछ दिन श्रीअयोध्याजीमें रहकर श्रीरामभद्रजू तथा श्रीलखनलालजूको हृदयसे लगा कर अपने आश्रमको चले गये ॥१६॥

श्रीरामः सीतया साकं हेमागारकृतालयः ।
भजतां भावपूर्त्यर्थं रेमे विष्णुरिव श्रिया ॥१७॥

श्रीरामभद्रजू श्रीजनकराजनन्दिनीजूके सहित श्रीकनकभवनमें निवास करते हुये भक्तोंकी भावपूर्त्तिके लिये इस प्रकारकी भक्त-सुखद लीलायें करने लगे जैसे विष्णु भगवान श्रीलक्ष्मीजीके सहित वैकुण्ठमें करते हैं । १७॥

स लब्धस्वीकृती रामः सुतारत्नानि भूभृताम् ।
अन्येषामपि चानीय प्रियायै मुदितोऽर्पयत्॥ ॥१८॥

पुनः स्वीकृति लेकर श्रीरामभद्रजूने राजाओंकी भी कन्यारत्नोंको लाकर हर्ष पूर्वक अपनी प्रिया श्रीमिथिलेशराज नन्दिनीजीको समर्पणकीं ॥१८॥

नागकन्याश्च गन्धर्व्यो देवकन्या मनोहराः ।
वरुणस्य सुता दिव्या भक्तियोगचमत्कृताः ॥१९॥
स्वीकृता रामभद्रेण सीताकैङ्कर्यलोलुपाः ।
अनेकशास्त्रकुशलाः प्रेमतत्त्वविचक्षणा ॥२०॥

भक्ति योगसे चमत्कृती हुई मनोहर नागकन्या, देवकन्या,गन्धर्वकन्याओंको श्रीरामभद्रजूने जो प्रेमतत्वको पूर्ण समझने वाली, अनेक शास्त्रोंकी पण्डिता तथा श्रीमिथिलेशराज-किशोरीजीकी सेवाके प्रति अत्यन्त लोभ वाली थी उन्हें स्वीकार कीं ॥१९॥२०॥

रूपलावण्यसम्पन्ना भावमत्ताः शुचिव्रताः ।
ताः समालोक्य वैदेही प्रससाद मृगेक्षणा ॥२१॥

रूपकी मनोहरतासे युक्त, पवित्र व्रत वाली भावमस्त, उन कन्याओंको देखकर मृगलोचना श्रीकिशोरीजी देहकी सुधि बुधि भूलकर बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त हुईं ॥२१॥

सन्तोष्य ता गिरा मृद्व्या स्वालये वासमादिशत् ।
महाकरुणयोपेता स्वभावमृदुलाशया ॥२२॥

पुनः अतिशय करुणासे युक्त, स्वभाविक अत्यन्त कोमल हृदय वाली वे, श्रीकिशोरीजी उन्हें अत्यन्त कोमल वाणीसे सन्तुष्ट करके श्रीकनक-भवनमें निवास प्रदान किये ॥२२॥

ता अपि सर्वदा तस्या दासीभावमनुव्रताः ।
स्वदेहस्य यथमूर्खा अभवन्सेवने रताः ॥२३॥

वे भी सब कुमारियाँ उनके दासीभावको ग्रहण करके उनकी सेवामें सदा इसप्रकार रत हुईं, जिस प्रकार अपने वास्तविक स्वरूपको न जानने वाले अज्ञानी प्राणी अपने शरीरकी सेवामें आसक्त रहते हैं ॥२३॥

ताभिरेव कृपामूर्तिर्वैदेही वामलोचना।
ययौ प्रमोदविपिनं कदाचित्स्वसृभिर्युता ॥२४॥

कृपामूर्ति, मनोहरलोचना श्रीविदेहराजनन्दिनीजू उन सबोंके सहित अपनी सखियोंके साथ एक दिन श्रीप्रमोदवनमें पधारीं ॥२४॥

तस्मिन् कदम्बविपिनमतीवप्रियदर्शनम्।
सा प्रविश्यैव दिव्येहा जगामानन्दमद्भुतम् ॥२५॥

श्रीप्रमोदवनके अत्यन्त प्रिय दर्शनों वाले उस कदम्ब वनमें प्रवेश करके ही सम्पूर्ण दिव्य (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी आसक्ति रहित) चेष्टाओं वाली वे श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजी विलक्षण आनन्दको प्राप्त हुईं ॥२५॥

तत्र सिंहासनस्थायां तस्यामिन्दुप्रभासुता।
मृगीर्निदर्शयामास प्राव्रजन्तीः सहस्रशः ॥२६॥

वहाँ उनके सिंहासन पर विराजमान हो जाने पर श्रीचन्द्रप्रभा महारानीकी पुत्री श्रीचन्द्रकलाजी- ने आती हुईं हजारों मृगियोंकी ओर उन्हें लक्षित कराया ॥२६॥

मैथिली कौतुकं तत्र दर्शयन्ती शुचिस्मिता।
सकलाः किङ्करीः स्वस्या यतवाणी व्यराजत ॥२७॥

श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजी अपनी सेविकाओंको वह कौतुक दिखलाती हुई मौन हो विराजी रहीं २७

तां मृग्यस्ताः परिक्रम्य सम्मुखे बद्धपङ्क्तयः।
संस्थिता स्तोत्रयामासुर्देववाण्या विशुद्धया ॥२८॥

वे हरिणियाँ परिक्रमा करके पङ्क्तियाँ बाँधकर सम्मुख खड़ी हो विशुद्धदेववाणी (संस्कृतभाषा) द्वारा उनकी स्तुति करने लगीं ॥२८॥

मनोऽभिप्रायमाबुध्य तासां जनकनन्दिनी।
कृपया परयोपेता बभूवेषत्स्मितानना ॥२९॥

उनके मानसिक भावको जानकर महती कृपासे युक्त हो वे श्रीजनकराजनन्दिनीजी मुख पर किञ्चित् मुस्कान युक्त हो गयीं ॥२९॥

पश्यन्तीनां हि सर्वासां ता युगपत्तिरोहिताः ।
आश्चर्याप्लुतचित्तानां पुनरेवाविलम्बतः ॥३०॥

तब आश्चर्यमग्न चित्तवाली उन सभी सखियोंके देखते व पुनः एक ही साथ तत्क्षण गुप्त हो गयीं ॥३०॥

आजगाम तदा तत्र राघवो रघुनन्दनः ।
मधुरदासवृन्देन परीतो मन्मथोन्मथः ॥३१॥

उसी समय अपने सौन्दर्यसे कामदेवके अभिमानको चूर्ण करने वाले रघुकुलनन्दन श्रीराघवजी अपने मधुरदास वृन्दके सहित वहाँ आगये ॥३१॥

सत्कृत्य परया प्रीत्या सोऽभ्युत्थानादिभिः प्रियः ।
सादरं स्वासने रम्ये भूमिपुत्र्या निवेशितः ॥३२॥

भूमिपुत्री श्रीकिशोरीजीने आसनसे उठ कर खड़े होने आदिकी सम्मानपूर्वक क्रियाओंके द्वारा बड़े प्रेमपूर्वक आदरके सहित सत्कार करके, उन श्रीप्राणप्यारेजीको अपने मनोहर आसन पर विराजमान किया ॥३२॥

भूयो भूयः प्रपश्यन्तीं सुभगां सुस्मिताननाम् ।
विवक्षया हसन् रामस्तामवोचदिदं वचः ॥३३॥

उस समय कुछ पूछनेकी इच्छासे बारंबार विशेष रूपसे देखती व सुन्दर मुस्काती हुई उन श्रीसुभगाजीसे श्रीरामभद्रजू हँसते हुये यह वचन बोले—।३३॥

श्रीराम उवाच ।

सुभगे ! का विवक्षास्ति कथ्यतां मुदितात्मना ।
इष्यते सा मया श्रोतुं कौतूहलसमन्विता ॥३४॥

हे सुभगाजी ! आप कौनसी आश्चर्यकी बात कहना चाहती हैं ? मुझे सुननेकी इच्छा है अतः आप उसको कहिये ॥३४॥

श्रीसुभगोवाच ।

प्राणनाथाद्य संप्राप्य सख्यः परमशोभनाः ।
स्वामिनीं तुष्टुवुः प्रेम्णा व्यक्तया देवभाषया ॥३५॥

श्रीसुभगाजी बोलीं:-हे श्रीप्राणनाथजू! यही सुन्दरी मृगियोंने आज आकर इन श्रीस्वामिनीजीकी स्पष्ट देवभाषा (संस्कृत वाणी) में स्तुति की है ॥३५॥

श्रीमृग्य ऊचुः।

जय जय कृपाशीले! रामकान्ते कलस्मिते।
यक्षकन्या वयं बोध्याः प्रपन्नास्त्वत्पदाम्बुजम् ॥३६॥

मृगियोंने कहा:-हे कृपाकारक स्वभाव वाली! हे मनोहर मुस्कान युक्ते! हे श्रीरामवल्लभेजू! हमें आप अपने श्रीचरणकमलोंकी शरणागतयक्ष-कुमारियाँ जानिये ॥३६॥

कामरूपधराः सर्वा नाट्यलीलाविशारदाः।
आगता अद्य तेऽभ्याशे गुणसाफल्यकाम्यया ॥३७॥

हम लोग अपने इच्छानुसार स्वरूपको धारण करनेवाली नाट्य लीलाकी पण्डिता हैं अतः इस समय अपने इस प्राप्त गुणको सफल करनेके लिये ही आपके पास आई हैं ॥३७॥

श्रीसुभगोवाच।

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं विलोक्य सुस्मिताननाम्।
अन्तर्हिता बभूवुस्ताः पश्यन्तीनां हि नः प्रिय! ॥३८॥

श्रीसुभगाजी बोलीं:-श्रीविदेहराजनन्दिनीजूका दर्शन करके तथा उनसे इस प्रकारकी प्रार्थना निवेदन करके हम सभीके देखते २ वे वहीं गुप्त हो गयी ॥३८॥

किमुक्ता स्मितया वाचा स्वामिन्या कुत्र चागमन्।
मृग्यः कास्ता मनोज्ञाङ्ग्यो न विद्मः प्राणवल्लभ! ॥३९॥

हे श्रीप्राणवल्लभजू! हम नहीं जानतीं, कि उन परमसुन्दरी मृगियोंसे श्रीस्वामिनीजूने अपने मुस्कानरूपी वाणी द्वारा क्या कहा? और वे सुनकर कहाँ चली गयीं तथा थीं कौन? ॥३९॥

श्रीराम उवाच।

यदुक्तं याश्चताः सख्यो वीक्षध्वं मीलितेक्षणाः।
क्षणमात्रेण मद्वाचि विश्वासो यदि वो भवेत् ॥४०॥

श्रीरामभद्रजू बोले:-हे सखियो! यदि मेरे वचनोंमें आप सबको विश्वास हो, तो आँखें बन्द करके क्षणमात्रमें देख लीजिये कि वे कौन थीं और श्रीप्रियाजूने उनसे कहा क्या? ॥४०॥

श्रीसूत उवाच ।

एवमुक्तास्तदा सख्यः प्रेयसा कौतुकान्विताः ।
निमीलिताक्ष्यो मुदिता अभवन्सुस्मितानना: ॥४१॥

श्रीसूतजी बोले:-हे शौनकजी ! श्रीप्यारेजूके इस प्रकार कहने पर हर्षित हो आश्चर्यके साथ, सुन्दर मुस्कान युक्त मुखवाली उन सखियोंने, नेत्र बन्द कर लिये ॥४१॥

आज्ञया प्रेयसोः प्राप्ता यक्षकन्याः सहस्रशः ।
तत्क्षणं ता हि विश्वास्याः क्वणत्पादाङ्गदाङ्घ्रयः ॥४२॥

उसी क्षण दोनों प्रिया-प्रियतमजू श्रीसीतारामजीमहाराजकी आज्ञासे अपने चरणोंमें पायजेब आदिका शब्द करती हुई, वे हजारों चन्द्रमुखी यक्षकुमारियाँ वहाँ आ गयीं ॥४२॥

निर्ममे सुस्थलं तासामेका परमशोभनम् ।
सत्वरं सिद्धसङ्कल्पास्तयोरिङ्गितमात्रतः ॥४३॥

उनमें एक (सर्वप्रधान) सिद्धसङ्कल्पवाली कुमारीने श्रीयुगलसरकारका सङ्केत पाकर तत्क्षण परम मनोहर एक सुन्दर स्थल बनाया ॥४३॥

फलवृक्षाननेकांश्च नानास्वादुसमन्वितान् ।
परितस्तत्र निर्माय नता पादाब्जयोर्द्वयोः ॥४४॥

पुनः उसमें चारों ओर नाना प्रकारके स्वादुवाले अनेक वृक्षोंको बनाकर, उनसे दोनों सरकारके युगल-श्रीचरणकमलोंमें प्रणाम किया ॥४४॥

ततः सैका शुभां वाचमूचे यक्षकुमारिकाः ।
इमानीमानि भुञ्जीथ नेमानीमानि कर्हिचित् ॥४५॥

तत्पश्चात् उस प्रधान कुमारीजूने सभी यक्षकुमारियोंसे यह मङ्गलकारिणी वाणी कही-हे हे सखियो ! आप लोग इन-इन फलोंको ग्रहण कीजियेगा पर इन-इनको कभी भी नहीं ॥४५॥

यदि मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य स्वदिष्यध्वे यथेप्सितम् ।
तत्प्रभावं तदा यूयं स्वयमनुभविष्यथ ॥४६॥

और यदि मेरी वाणीका उल्लङ्घन करके आप लोग अपने इच्छानुसार ही फलोंको ग्रहण करेंगी, तो उसके प्रभाव (परिणाम) को भी उसी समय स्वय ही अनुभव कर लेंगी ॥४६॥

श्रीसूत उवाच।

तदेवं बोधयित्वा ता दम्पत्योः पार्श्वमास्थिता।
नन्दयन्ती यथा बुद्धया स्वयमानन्दनिर्भरा ॥४७॥

श्रीसूतजी बोले:—हे श्रीशौनकजी, इस प्रकार अपनी सभी सखियाको समझा बुझा कर यह प्रमुख सखी श्रीयुगल सरकारके पासमें बैठकर अपनी मतिके अनुसार उन्हें आनन्दित करती हुई उन (श्रीयुगल सरकार) के स्वरूपानन्दमें निमग्न हो गई ॥४७॥

अथादेशं समासाद्य तयोरानतकन्धरा।
कौतुकं दर्शयामास विविधं मोहसम्भवम् ॥४८॥

पुनः श्रीयुगल सरकारकी आज्ञाको पाकर उन्हें प्रणाम करके, अज्ञानमयी आसक्तिसे होने वाले अनेक प्रकारके कौतुकोंको दिखाने लगी ॥४८॥

काश्चनानेकधा लीलास्तयोः प्रीतिप्रसिद्धये।
कुर्वन्त्यो मोदमापन्ना मनोवाचामगोचरम् ॥४९॥

कुछ यक्षकुमारियाँ नेत्रोंके तुच्छ सुखमें आसक्त हो दोनो सरकारकी उपेक्षा करके उस स्थलकी ही सुन्दरताको देखने लगीं तथा कुछ उन फलोंका आस्वादन करने लगीं ॥४९॥

काश्चित्तु तौ किलोपेक्ष्य प्रापश्यन्स्थलसौष्ठवम्।
तुच्छनेत्रसुखासक्ता आरभन्तात्तुमुत्फलम् ॥५०॥

कुछ नेत्रोंके तुच्छ विषय-सुखमें आसक्त होनेके कारण उन दोनों सरकारकी उपेक्षा करके स्थलकी ही सुन्दरताको अवलोकन करने लगीं, तो कुछ फलोंका आस्वादन करना ही प्रारम्भ कर दिये ॥५०॥

प्रहर्षितास्ततः काश्चित्काश्चिदुन्मत्तबुद्धयः।
रुरुदुः काश्चिज्जगुः काश्चित्काश्चिदानतकन्धराः ॥५१॥

उन फलों का आस्वादन करनेसे कुछ हर्षित हो उठीं, कुछकी बुद्धि पागल हो गयी, कुछ रोने लगीं तो कुछ गाने लगी, कुछ सिर झुका दिये ॥५१॥

ननृतुर्जहसुः काश्चित्काश्चिदालापतत्पराः।
काश्चिज्जल्पुर्हहेति मुमुहुः काश्चिदञ्जसा ॥५२॥

कुछ नृत्य करने लगीं, तो कुछ हँसने लगीं, कुछ आलाप करने लगीं, कुछ हा हा शब्द करने लगीं, कुछ अनायास ही मूर्छित हो गयीं ॥५२॥

काश्चिदाढ्यास्मि दीनाऽस्मि बलवत्यबलाऽस्मि च ।
काश्चिदाहुरयं शत्रुर्मित्रमेष प्रियो मम ॥५३॥

कुछ मैं धनी हूँ तो कुछ मैं दीन हूँ, कुछ मैं बलवती हूँ, कुछ मैं अबला हूँ कुछ मेरा यह शत्रु है, कुछ बोलीं मेरा यह मित्र है कुछ मेरा यह प्रिय है ॥५३॥

अग्रजो बाहुजश्चास्मि वैश्योऽहं पादजोऽस्म्यहम् ।
गृहस्थोऽस्मि विरक्तोऽस्मि वानप्रस्थोऽस्म्यहं वटुः ॥५४॥

कुछ मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ मैं वैश्य हूँ, मै शूद्र हूँ, मै गृहस्थ हूँ, मैं विरक्त हूँ, मैं वानप्रस्थ हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ ॥५४॥

सुखिता दुःखिता चास्मि दाताऽहं भिक्षुकोऽस्म्यहम् ।
अहं यक्ष्यामि दास्यामि मोदिष्ये मुदिताऽस्म्यहम् ॥५५॥

मैं सुखी हूँ ! मैं दुखी हूँ ! मैं दाता हूँ ! मैं भिक्षुक हूँ ! मैं यज्ञ करूँगा ! मैं दान करूँगा ! मैं आनन्द करूँगा ! मैं आनन्दित हूँ ॥५५।

कर्ता कारयिता चास्मि शिष्योऽहं दैशिकोऽस्म्यहम् ।
भूमिपालोऽस्मि रङ्कोऽस्मि जेताऽहं निर्जिताऽस्म्यहम् ॥५६॥

मैं अमुक कार्योंका करनेवाला हूँ ! मै अमुक कार्योंको करवानेवाला हूँ ! मैं शिष्य हूँ ! मैं गुरु हूँ ! मैं राजा हूँ ! मैं दरिद्र हूँ ! मै विजयी हूँ ! मैं पराजित हूँ ॥५६॥

अहं बद्धो विमुक्तोऽहं मुमुक्षुरहमेव च ।
अजितात्मा जितात्माऽहं सज्ञानोऽज्ञानवानहम् ॥५७॥

मैं बद्ध हूँ ! मै मुक्त हूँ ! मै मोक्षार्थी हूँ ! मैं इन्द्रियोंके वशीभूत हूँ ! मै इन्द्रियोंको वशमे करने वाला हूँ ! मैं ज्ञानी हूँ ! मैं अज्ञानी हूँ ॥५७॥

सर्वसाधनयुक्तोऽहमहमप्राप्तसाधनः ।
अहं साधुरसाधुश्च जीवोऽहं ब्रह्म चास्म्यहम् ॥५८॥

मैं सब साधन सम्पन्न हूँ ! मेरे पास कोई साधन नहीं है । मैं साधु (अपने-पराये हितका साधक) हूँ ! मैं असाधु (अपने परायेका हित घातक) हूँ ! मैं जीव हूं ! मैं ब्रह्म हूँ ॥५८॥

एवं नानाविधान्भावान्व्यञ्जयामासुरञ्जसा ।
फलानि तानि संभुज्य नानागुणमयानि ताः ॥५६॥

श्रीसूतजी बोले:—हे शौनकजी ! इस प्रकार वे यक्षकुमारियाँ नाना प्रकारके प्रभावमय उन फलोंको खाकर अनेक प्रकारके पृथक् पृथक् भावोंको प्रकट करने लगीं ॥५६॥

पुनस्तस्यां समाप्तायां लीलायां त्वरित हि ताः ।
पूर्वां वृत्तिं समास्थाय सर्वा नेमुः प्रियाप्रियौ ॥६०॥

इति षडुत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

—: मासपारायण-विश्राम २९ :—

पुनः उस लीलाके समाप्त होने पर उन सभी (यक्षकुमारियोंने) अपनी पूर्व की वृत्तिको प्राप्त हो तत्क्षण श्रीयुगलसरकारको प्रणाम किया ॥६०॥

अथ सप्तोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

यक्षकुमारियों द्वारा श्रीरामलीला प्रदर्शनः—

श्रीसख्य ऊचुः ।

प्राणनाथ ! रसागार ! सुखसिन्धो ! कृपानिधे ! ।
इमा युगपदायाताः सर्वा एव हि नोऽग्रतः ॥१॥

सखियाँ बोलीः—हे समस्त शान्त, दास्य, सख्य, शृङ्गार आदि रसोंके भण्डार ! हे समुद्रवत् अथाह सुखवाले ! हे कृपाके निधान ! हे श्रीप्राणनाथजू ! ये सभी सखियाँ हम सबोंके सामने एक ही साथ आई थीं ॥१॥

दशामनेकधा प्राप्ताः कुतः कस्माद्धि कारणात् ।
अस्मभ्यं कृपया ब्रूहि शरणागतवत्सल ! ॥२॥

तब इन्हें अनेक प्रकारकी यह अवस्था कहाँ से ? किस कारण प्राप्त हुई ? हे शरणागतवत्सल हम लोगोंको यह कृपा करके समझाइये ॥२॥

श्रीराम उवाच ।

एताः सर्वाः समायाता आवयोरेव तुष्टये ।
परिस्पन्दः स्थलस्यापि मदर्थं विहितो ह्ययम् ॥३॥

श्रीराम भद्रजू बोले:-हे सखियो ! वास्तवमें ये सभी यक्षकुमारियाँ हमको प्रसन्न करनेके लिये ही यहाँ आई थी और हम दोनोंकी प्रसन्नता प्राप्तिके लिये उनकी प्रधानाजूने इस मनोहर स्थलका निर्माण किया था ॥३॥

एकया बोधिताः पूर्वं सकला मुक्तया गिरा ।
आवयोरिङ्गितं लब्ध्वा भ्रमस्योन्मूलनाय ह ॥४॥

पुनः उस प्रधाना सखीने मेरा सङ्केत पाकर अपनी स्पष्ट वाणीके द्वारा भ्रम दूर करनेके लिये उन्हें सावधान भी कर दिया, कि इन फलोंको खाना और इनको नहीं ॥४॥

आसां निवृत्तसर्वाशाः श्रद्धावत्यो विचक्षणाः ।
यथार्थफलमध्यापन् मय्यनन्यमनोधियः ॥५॥

उस मुख्य सखीके समक्ष देनेपर इनमें जो सभी इच्छाओंसे रहित, कर्त्तव्यका ज्ञान रखने वाली श्रद्धालु थीं उन्होंने ही अपने मन व बुद्धिको केवल मुझमें लगाकर, अपने खानेके यथार्थ फलको प्राप्त हुईं ॥५॥

अनेकविषयासक्तमनोबुद्धीन्द्रियव्रजाः ।
विभिन्नफलभेदेन विभिन्नां सिद्धिमश्नुयुः ॥६॥

किन्तु जिनके मन, बुद्धि तथा इन्द्रिय समूह अनेक विषयोंमें आसक्त थे वे भाँति भाँतिके फलों के भेदसे भाँति-भाँतिकी सिद्धियोंको प्राप्त हुईं अर्थात् जिसने जिस गुण वाला फल खाया तदनुसार वह उसी गुणसे युक्त हो गयी ॥६॥

विश्वनाट्यमिदं कृत्स्नमावयोरेव तुष्टये ।
मायया रचितं सख्य आद्यया परमाद्भुतम् ॥७॥

हे सखियो ! यह समस्त विश्व अद्भुत नाट्य लीला है इसे हम दोनोंको प्रसन्न करनेके लिये आदि माया (मेरी इच्छा शक्ति) ने रचा है ॥७॥

आवां समाश्रिता ये ते सर्वासक्तिविवर्जिताः ।
सच्चिदात्मसुखे मग्ना वीतमायैकशासनाः ॥८॥

अत एव इनमें जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध आदि पञ्च विषयों तथा स्त्री-पुत्रादि सभी प्रकारकी आसक्तियों को छोड़कर सब प्रकारसे केवल हम दोनोंके ही आश्रित हैं, उनके ऊपर माया (ईश्वर रूपमें स्थित मेरी इच्छा शक्ति) का कोई शासन नहीं रहता अर्थात् वह सभी विधि निषेधोंसे परे होकर मेरे सदा एक रस रहने वाले चिन्मय-भगवत् सुखमें निमग्न हो जाता है ॥८॥

आवां विहाय ये चैव स्वातन्त्र्यसुखलोलुपाः ।
मायापाशेन बद्धास्ते दृश्यन्ते बहुरूपिणः ॥९॥

और जो हम दोनों को छोड कर स्वतन्त्रताके सुखका लोभ करते हैं वे मायापाश (मेरी शासक ईश्वर रूपिणी इच्छा शक्तिकी नीति) में बँधे हुये अनेक रूप वाले दिखाई देते हैं ॥९॥

नाट्यपात्राणि यान्येव निर्विण्णानि सुनाट्यतः ।
आवां शरणमायान्ति मायातीतानि तानि वै ॥१०॥

जो नाट्य-लीलाके पात्र उस लीलासे घबड़ा कर हम दोनोंकी शरणमें आजाते हैं, उनके ऊपर माया रूपी नाट्यलीलाध्यक्ष का कोई शासन रहता ही नहीं ॥१०॥

नातीतविषयासक्तिर्याति नौ साधनैः शतैः ।
यथाऽऽसां यक्षकन्यानां स्वयं यूयमपश्यत ॥११॥

जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचो विषयोंकी आसक्तिसे रहित नहीं है वह सैकड़ों साधन करने पर भी हम दोनोंको प्राप्त नहीं कर सकता, जैसा कि इन यक्षकुमारियोंमें स्वयं आप लोगों ने देखा है ॥११॥

इदं मद्भोग्य माज्ञाय सत्कुर्वन्तो मदात्मकम् ।
अपञ्चविषयासक्ता गुरोराज्ञानुवर्तिनः ॥१२॥
हितकृत्स्वेव कार्येषु योजयन्तो निरन्तरम् ।
मामियन्त्येव मच्चित्ता इन्द्रियाणि चतुर्दश ॥१३॥

जो इस विश्वको मेरा स्वरूप और मेरे भोगनेकी वस्तु जानकर इसका केवल सत्कार करते हुये शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध इन पाँचो विषयोंकी आसक्तिसे रहित हो, श्रीसद्गुरु भगवानके आज्ञाकारी हो जाते हैं, वे अपनी श्रवण, नेत्र नासिका, जिह्वा आदि पञ्च ज्ञानेन्द्रिय व हाथ-पैर, गुदा, उपस्थ आदि पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार इन चौदहों इन्द्रियोंको केवल अपने व दूसरोंके हितकर ही कर्मोंमें निरन्तर लगाते हुये, चित्तको निरन्तर मेरेमें अर्पण करके मुझको ही प्राप्त होते हैं ॥१२॥१३॥

आचरतोऽहितं कर्म मनसा चेतसा धिया ।
अपि स्युर्नावयोः प्रीत्यै साधनानि शतानि च ॥१४॥

किन्तु मन, बुद्धि, चित्तसे भी जो अपना या पराया अहित करता है, उसके सैकड़ों साधन भी हम दोनोंको प्रसन्न नहीं कर सकते ॥१४॥

आशु तुष्टिकरी लोके मम सख्यो ! ह्यसंशयम् ।
सर्वभूतहितेहैव प्रियायाश्चाखिलात्मनः ॥१५॥

हे सखियो ! हमारी तथा सभी विश्वके शरीरोंमें निवास करने वाली श्रीप्रियाजूकी शीघ्रातिशी प्रसन्नता कराने वाली सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति हितकर चेष्टा ही है ॥१५॥

इदं रहस्यमाख्यातं सारात्सारतरं मया ।
विश्वनाट्यप्रसङ्गेन यो यच्चित्तस्तमेति सः ॥१६॥

इस विश्वनाट्यके प्रसङ्गानुसार मैंने समस्त सारोंके सारभूत इस रहस्यको आप लोगोंसे कथन किया है, कि जिसका चित्त जिसके प्रति आसक्त है, वह उसीको प्राप्त होता है ॥१६॥

तस्माद्धि विश्वकल्याणभावसंशुद्धया धिया ।
आवयोरर्पितं चित्तं विधायावां सुखं व्रजेत् ॥१७॥

इस लिये प्राणीको चाहिये, कि वह विश्वकल्याणकी भावना द्वारा सम्यक् प्रकारसे शुद्ध (आसक्तिरूपी विकारोंसे रहित) हुई बुद्धिके द्वारा, अपने चित्तको हम दोनोंके प्रति अर्पण करके सुखपूर्वक हम दोनोंको प्राप्त करले ॥१७॥

सख्यः किमिच्छथ द्रष्टुं यूयं कावं हि शंसत ।
यत्नकन्या इमाः सर्वा दर्शयिष्यन्ति वाञ्छितम् ॥१८॥

हे सखियों ! बतलाइये, अब आप लोग और कौनसी नाट्य (लीला) देखना चाहती हैं ? ये सभी यत्नकुमारियाँ उसे दिखायेंगी ॥१८॥

सख्य ऊचुः ।

श्रूयते भगवान् विष्णुर्भवतो रूपमन्वधात् ।
तस्य लीलां वयं द्रष्टुमिच्छामो युवयोः पुरा ॥१९॥

सखियाँ बोलीं:-हे प्यारे ! सुना जाता है, श्रीविष्णुभगवानने आपका रूप धारण किया था अतः हम लोग आप दोनों सरकारके सामने उनकी लीलाको देखना चाहती हैं ॥१९॥

श्रीसूत उवाच ।

सखीनां प्रार्थितं श्रुत्वा स्मयमानमुखाम्बुजौ ।
दिदिशातुस्तदैवाज्ञां यत्नकन्याभ्य आदरात् ॥२०॥

श्रीसूतजी बोले:-हे श्रीशौनकजी! उन सखियोंकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीयुगलसरकारने मन्द मुसकाते हुये यक्षकुमारियोंको आदर-पूर्वक आज्ञा प्रदानकी :-॥२०॥

श्रीदम्पत्यूचतु।

भवतीभिर्मुदा लीला विष्णुनाऽनुकृता शुभा।
दर्शयन्तामावयोरग्रे संक्षेपेण शुभेक्षणाः ॥२१॥

श्रीयुगलसरकार बोले:-हे सुन्दर लोचनाओ! आप लोग प्रसन्नता पूर्वक हमारे सामने श्रीविष्णु भगवानके द्वारा हम दोनोंकी अनुकरणकी हुई मङ्गलमयी लीलाको सूक्ष्मरूपसे दिखाइये॥२१॥

श्रीसूत उवाच।

एवमुक्ताश्च ताभ्यां रामलीलामदर्शयन्।
आजन्मराज्यलाभान्तां यथा वच्मि तथा मुने! ॥२२॥

श्रीसूतजी बोले:-हे श्रीशौनकजी! श्रीयुगल सरकारकी इस आज्ञाको सुनकर यक्ष कुमारियोंने जिस प्रकार जन्मसे राजसिंहासनारूढ होने तककी श्रीरामलीलाका दृश्य दिखाया, उसी प्रकार मैं आपसे वर्णन करता हूँ॥२२॥

यथा पापभराक्रान्ता माधवी माधवप्रिया।
ब्रह्माणं नाकिभिः सार्कं समियाद्गोस्वरूपिणी ॥२३॥

जिस प्रकार भगवानकी प्यारी श्रीपृथ्वी देवी पापके भारसे बोझिल हो गौरूपको धारण करके देववृन्दोंके सहित श्रीब्रह्माजीके पास गयी॥२३॥

धरादुःखाभिभूतेन ब्रह्मणा च यथा हरिः।
प्रादुर्भूय स्तुतः प्रादात्सान्त्वनां कृपयाऽन्वितः ॥२४॥

पुनः पृथ्वी देवीके दुखसे दुखी हुये श्रीब्रह्माजीके प्रार्थना करने पर, जिस प्रकार भगवान्ने प्रकट होकर उन्हें धैर्य देनेकी कृपाकी॥२४॥

दाशरथे गृहे विष्णोः प्रादुर्भावो यथाऽभवत्।
निजांशैः संयुतस्यापि रामरूपेण शार्ङ्गिणः ॥२५॥

जिस प्रकार अपने अंशोंके सहित शार्ङ्ग धनुषधारी श्रीविष्णु भगवान्ने श्रीरामरूपसे श्रीदशरथजी महाराजके भवनमें अवतार ग्रहण किया॥२५॥

भ्रातृभिः सह रामस्य बालचेष्टा मनोहराः ।
मातृभिर्लालनं प्रेम्णा यथा नित्यं विधीयते ॥२६॥

पुनः भाइयोंके सहित श्रीरामभद्रजूकी जो मनोहर लीलायें हुईं, जैसे श्रीकौशल्या अम्बाजी आदि उनका नित्य प्यार करती थीं ।२६॥

विश्वामित्रमहाराज-संवादोऽपि यथाऽभवत् ।
कौशल्यया तदाज्ञप्तो रामो गन्तुं यथर्षिणा ॥ २७ ॥

श्रीविश्वामित्रजीका श्रीदशरथजी महाराजके साथ जिस प्रकार संवाद हुआ, पुनः श्रीकौशल्या अम्बाजीने जिस प्रकार श्रीराम भद्रजीको श्रीविश्वामित्रजीके साथ जानेकी आज्ञा प्रदानकी ॥२७॥

ताटकां च यथा हत्वा यज्ञं संरक्षता मुनेः ।
रक्षसां सुभुजादीनां वधो रामेण वै कृतः ॥२८॥

जैसे ताड़का राक्षसीका वध करके श्रीविश्वामित्रजी महाराजके यज्ञकी रक्षा करते समय श्रीरामभद्रजूने सुबाहु आदि राक्षसोंका वध किया ॥२८॥

अहल्यां शापनिर्मुक्तां विधाय मिथिलापुरीम् ।
आगतो मिथिलेन्द्रेण यथा दृष्टश्च सानुजः ॥२९॥

जिस प्रकार श्रीअहल्याजीको शापसे मुक्त करके श्रीरामभद्रजी मिथिलाजीमें पधारे तथा जिस प्रकार श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीलखनलालजीके सहित उनका दर्शन किया ॥२९॥

भिन्ने धनुषि रामस्य मैथिली पद्मपाणिना ।
जयमालां यथा कण्ठे प्रार्पयन्नृपसंसदि ॥३०॥

जिसप्रकार धनुष तोड़ने पर श्रीमिथिलेश-राज किशोरीजीने अपने कर-कमलों द्वारा राजसभामें श्रीरामभद्रजूके गलेमें जयमाल अर्पणकी ॥३०॥

विवाहो भ्रातृभिस्तस्य परीतस्य यथाऽभवत् ।
रामस्य लोकरामस्य श्रीमिथिलेशसद्मनि ॥३१॥

जिस प्रकार भाइयोंके सहित श्रीरामभद्रजूका श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवनमें विवाह हुआ ॥

जामदग्न्यस्य संवादः श्रीरामेण यथाऽभवत् ।
कौशल्याया यथा गेहे मैथिलीनां प्रवेशनम् ॥३२॥

जिस प्रकार श्रीरामभद्रजूसे श्रीपरशुरामजी का सम्वाद हुआ पुनः जिस प्रकार श्रीजानकीजी आदि श्रीमिथिलेशकुमारियाने श्रीकौशल्या अम्बाजीके भवनमे प्रवेश किया । ३१॥

तथा प्रदर्शिता लीला ध्येया हृदयसंस्पृशः ।
यत्नकन्याभिरालीभ्यो मुदा श्रीरामसीतयोः ॥३३॥

उसी प्रकार यत्नकुमारियाने सखियोके लिये श्रीसीतारामजीकी ध्यान करने योग्य मनोहर लीलायें दिखाई ॥ ३३ ॥

अतीते द्वादशे वर्षे रामप्रव्राजनं वने ।
यथेह प्रीत्यै कैकेय्याः पित्रा दशरथेन च ॥३४॥

बारह वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् रानी कैकेयीकी प्रसन्नताके लिये पिता श्रीदशरथजीने जिस प्रकार श्रीरामभद्रजीको वन वास दिया ॥३४।

द्वारमावृत्य तिष्ठन्त्या माण्डव्या साश्रुनेत्रया ।
रामाद्वनं न यास्यामि वागवाप्ता यथेति च ॥३५॥

जिस प्रकार द्वारको घेरकर खड़ी हो अश्रुलोचना श्रीमाण्डवीजीने श्रीरामभद्रजूसे "अच्छा हम वनको नहीं जाँयगे" इस वचनको प्राप्त किया ।३५॥

प्रव्रजन्तं समालोक्य श्रीरामं सीतयाऽन्वितम् ।
लक्ष्मणेन समं भ्रात्रा प्रकृतीनां यथा दशा ॥३६॥

श्रीलखनलालजी तथा श्रीजनकराजकिशोरीजीके सहित श्रीरामभद्रजीको वन जाते हुये देखकर प्रजाकी जो दशा हुई ॥३६॥

सर्वा विरहसंतप्ताः श्रीरामे प्रस्थिते वनम् ।
माण्डवी दुःखरहिता चकिता वीक्ष्य तां यथा ॥३७॥

श्रीरामभद्रजूके वनको चले जाने पर जिस प्रकार उनके वियोग जन्य दुःखसे रहित श्रीमाण्डवी जी सभी माताओंको विरहज्वालासे अत्यन्त तपी हुई देखकर चकित हुई, कि ये सब क्यों इस प्रकार दुःखी हैं ? क्योंकि श्रीरामभद्रजू तो अपनी प्रतिज्ञानुसार वनको न जाकर मेरी आँखोके सामने अनेक प्रकारकी परिकरसुखद लीलायें कर ही रहे है, और वे विरह व्याकुल मातायें जिस प्रकार उन श्री माण्डवीजीको दुखी न देखकर आश्चर्य करती हुई, कि यह कितनी कठोर है, जो सबको रोते हुये देखकर भी नहीं रोती है ॥३७॥

निषादस्नेहवार्ता च भरद्वाजसमागमः ।
यमुनापारगमनं दर्शितेन पथा मुनेः ॥३८॥

निषादराजगुहकी श्रीरामभद्रजीसे जिस प्रकार प्रेम वार्ता हुई तथा जिस प्रकार उनका श्रीभरद्वाजजीसे मिलन हुआ, पुनः उनके दिखलाये हुये मार्गके द्वारा श्रीयमुनाजीको जिस प्रकार पार किये ॥३८॥

वाल्मीकिमहितो रामस्तदाज्ञामनुपालयन् ।
चित्रकूटे यथोवास पर्णशालां विधाय सः ॥३९॥

जिस प्रकार महर्षि श्रीवाल्मीकिजीसे पूजित होकर श्रीरामभद्रजूने उनकी आज्ञाका पालन करते हुये पत्तोंकी कुटी बनाकर चित्रकूटमें निवास किया ॥३९॥

कोशलेन्द्रतनुत्यागो यथा च भरतोद्यमः ।
नेतुं पुरीमयोध्यां श्रीरामं दुःखदकाननात् ॥४०॥

जिस प्रकार श्रीदशरथजी महाराजने अपने शरीरका त्याग किया, जिस प्रकार श्रीरामभद्रजीको दुःख दायक वनसे अपनी श्रीअयोध्यापुरीको वापस लानेके लिये श्रीभरतलालजीने उद्योग किया ४०

सीताया अंशुकोत्सृष्टा दिव्याः कनकबिन्दवः ।
सुप्तायाः शिंशुपामूले यथाऽऽसंस्तस्य तापदाः ॥४१॥

जिस प्रकार शीशम वृक्षकी जड़में सोते हुये श्रीजनक-राजदुलारीजीके वस्त्रोंसे टूटकर गिरे सोनेके नगोंको देखकर श्रीभरतलालजीके हृदयमें महान परिताप हुआ ॥४१॥

समुत्तीर्णः परीक्षायां भरद्वाजेन सान्त्वितः ।
यथा ददर्श श्रीरामं भरतश्चित्रकूटगम् ॥४२॥

राजसुख-त्याग परीक्षामें पास हो जाने पर जिस प्रकार श्रीभरद्वाजजीके सान्त्वना (धैर्य) देने पर श्रीभरतलालजीने चित्रकूटमें विराजे हुये श्रीरामभद्रजीका दर्शन किया ॥४२॥

रामभरतसंवादो यथा जातो ह्यलौकिकः ।
प्रदाय पादुके भ्रात्रेऽयोध्यायां तं न्यवर्तयत् ॥४३॥

जिस प्रकार श्रीचित्रकूटमें श्रीरामजीका श्रीभरतलालजीके साथ अलौकिक संवाद हुआ, पुनः जिस प्रकार अपनी चरण पादुकाओंको देकर श्रीरामभद्रजूने श्रीभरतलालजीको श्रीअयोध्याजीको वापस भेजा ॥४३॥

दर्शिता मोहिनी लीला दृश्यैरावश्यकैर्युता ।
भवतापहरी पुण्या यक्षकन्याभिरुज्ज्वला ॥४४॥

उसी प्रकार यक्ष-कन्याओंने अनेक आवश्यक दृश्योंके सहित संसारकी तापको हरण करने वाली अर्थात् दिव्यधाम-प्रदान करने वाली पवित्र, उज्ज्वल, मोहिनी लीला दिखाई ॥४४॥

यथा जनकनन्दिन्याः सुसंवादोऽनसूयया ।
शरभङ्गतनुत्यागः सुतीक्ष्णप्रेमदर्शनम् ॥४५॥

जैसे श्रीजनकनन्दिनीजूका श्रीअनसूयाजीके साथ मातृ-शोक-सुखकर संवाद हुआ। जिस प्रकार शरभङ्ग ऋषिने अपने शरीरका त्याग किया, जिस प्रकार श्रीसुतीक्ष्णजीके प्रेमका दर्शन हुआ ॥४५॥

श्रीरामागस्त्ययोर्वार्ता यथाऽऽसीन्मोदवर्धना ।
यथा पञ्चवटीं गत्वा न्यवसत्कुम्भजाज्ञया ॥४६॥

जैसे श्रीरामभद्रजू का श्रीअगस्त्यजी महाराजके साथ आनन्दवर्धक सम्वाद हुआ, जैसे श्रीरामभद्रजूने श्रीअगस्त्यजी महाराजकी आज्ञासे पञ्चवटीमें जाकर निवास किया ॥४६॥

ससेनानां खरादीनां कृतो रामेण वै वधः ।
पञ्चवट्यां च वसता यथा हिंसारतात्मनाम् ॥४७॥

जिसप्रकार पञ्चवटीमें निवास करते हुये श्रीरामभद्रजूने सेनाके सहित हिंसापरायण खर, दूषण आदि राक्षसों का संहार किया ॥४७॥

मायासीतापहरणं जटायूरामदर्शनम् ।
कबन्धे निहते मार्गे भक्षणाय कृतोद्यमे ॥४८॥
शबरीरामसंवादस्तत्कृता प्रभुसत्क्रिया ।
तथा ता दर्शयामासुर्लीला यक्षकुमारिकाः ॥४९॥

मायाकी बनाई श्रीसीताजीका जिस प्रकारसे हरण हुआ, जिस प्रकार जटायुने श्रीरामभद्रजू का दर्शन किया, मार्गमें भक्षण करनेको उद्यत हुये कबन्ध राक्षसके मारे जाने पर श्रीरामभद्रजूका श्रीशबरीजीके साथ जिसप्रकार सम्वाद हुआ, जिस प्रकार श्रीशबरीजीने श्रीरामभद्रजीका सत्कार किया, उसी प्रकारसे यक्ष कुमारियोंने सखियोंको लीला दिखाई ॥४८॥४९॥

वायुपुत्रेण रामस्य ऋष्यमूकगिरौ यथा ।
कारितः कृतहृद्येन सुग्रीवेण समागमः ॥५०॥

ऋष्यमूक पर्वतपर कृत कृत्य हो वायु पुत्र श्रीहनुमत्लालजीने जिसप्रकार श्रीरामभद्रजूका श्रीसुग्रीवजीसे मिलन करवाया ॥५०॥

निहत्य वालिन युद्धे हर्योश्च युद्धयमानयोः ।
सुग्रीवाय ददौ राज्यं यथा रामो हि बुद्धिमान् ॥५१॥

युद्धमें दोनों वानरोंमे परस्पर युद्ध करने पर जिसप्रकार महाबुद्धिमान श्रीरामभद्रजूने बालीको मारकर उसका राज्य सुग्रीवको प्रदान किया ॥५१॥

तथा प्रदर्शयाञ्चक्रुर्लीलास्ता यक्षकन्यकाः ।
सखीभ्यो विस्मितातम्भ्यो जानकीरामभद्रयोः ॥५२॥

यक्षकुमारियोंने आश्चर्य युक्त हृदय हुई श्रीयुगल सरकारकी उन सखियोंको उसी प्रकारकी लीलायें दिखाईं ॥५२॥

विसृष्टो वानरेन्द्रेण हनुमान् मारुतात्मजः ।
अङ्गदाद्यैः कपिश्रेष्ठैः सहस्रैर्वानरैर्यथा ॥५३॥

जिस प्रकार वानरराज सुग्रीवने श्रीअङ्गदजी आदि सहस्रों श्रेष्ठ वानरोंके सहित श्रीहनुमानजीको श्रीजनकनन्दिनीजूकी खोज करने के लिये विदा किया ॥५३॥

सम्पातिवचनाल्लङ्कां प्रविष्टेन हनूमता ।
अशोकवनिकामध्ये यथा दृष्टा विदेहजा ॥५४॥

जिस प्रकार सम्पातिके बतलाने पर श्रीहनुमानजीने लङ्कामें पहुँचकर अशोकवाटिकामें श्रीविदेह-राजनन्दिनीजूका दर्शन किया ॥५४॥

दग्धलङ्केन वै तेन भर्त्सयित्वा दशाननम् ।
वानरेभ्यस्तटस्थेभ्यः प्रदत्ता सान्त्वना यथा ॥५५॥

जिस प्रकार लङ्का जलाने वाले उन श्रीहनुमानजीने दशमुख (रावण) को फटकार लगाकर, समुद्रके किनारे उपस्थित वानरोंको सान्त्वना प्रदानकी ॥५५॥

मारुतेः सर्ववृत्तान्तं श्रीसीतायाः रघूत्तमः ।
निशम्य वानरैः सेतुं यथा सिन्धावकारयत् ॥५६॥

जिस प्रकार श्रीरामभद्रजूने श्रीपवनकुमारके द्वारा श्रीजनकराजनन्दिनीजूका सम्पूर्ण समाचार श्रवण करके वानरोंके द्वारा समुद्र पर पुल बँधवाया ॥५६॥

तथा ता दर्शयामासुर्यक्षपुत्र्यो मनोहराः ।
दृश्यैश्च संयुतां लीलां यथार्हैस्ताभ्य आत्मदाम् ॥५७॥

उसी प्रकार यक्षकुमारियोंने सखियोंको यथायोग्य दृश्योंके सहित भगवत्प्राप्तिकारिणी लीला दिखाई ॥५७॥

सुवेलाचलमासाद्य प्रहितो रावणान्तिकम् ।
अविरोधसुखस्थित्यै राघवेणाङ्गदो बली ॥५८॥

जिस प्रकार सुवेलपर्वत पर पहुँच कर, श्रीरामभद्रजूने बिना विरोध (प्रेमभाव) वाले सुखको स्थिर रखनेके लिये बलशील अङ्गदजीको रावणके पास भेजनेकी कृपा की ॥५८॥

बलैश्वर्यमदान्धं तं निरीक्ष्य कपिकुञ्जरः ।
धर्षयित्वा दशग्रीवं श्रीरामान्तिकमाययौ ॥५९॥

बल व ऐश्वर्यके अभिमानमें रावणको अँधा हुआ देखकर श्रीअङ्गदजी जिस प्रकार उसे अपमानित करके श्रीरामभद्रजूके पास आये ॥५९॥

कथितं वालिपुत्रस्य समाकर्ण्य रघूद्वहः ।
युद्धारम्भाय भगवान् कपीन्द्राय यथाऽऽदिशत् ॥६०॥

श्रीअङ्गदजीके कथनको सुनकर सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण वैराग्य, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण ऐश्वर्य तथा सम्पूर्ण धर्मके भण्डार श्रीरामभद्रजूने वानर-राजसुग्रीवको युद्ध आरम्भ करनेके लिये जिस प्रकार आज्ञा प्रदानकी ॥६०॥

रक्षसां वानरैर्ऋक्षैर्हर्यृक्षाणां च राक्षसैः ।
समारब्धं यथा युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥६१॥

राक्षसोंका वानरोंके साथ और वानरोंका राक्षसोंके साथ जिस प्रकार अत्यन्त घोर तथा रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हुआ ॥६१॥

लक्ष्मणेन हतो युद्धे मेघनादो महाबलः ।
कुम्भकर्णस्तु रामेण त्रिलोकीभयदोऽसुरः ॥६२॥

जिस प्रकार युद्धमें श्रीलखनलालजीने महाबलशाली मेघनादको और त्रिलोकीके भयदायक कुम्भकर्ण राक्षसको प्रभु श्रीरामजीने मारा ॥६२॥

अवशिष्टैर्महाशूरैः परीतः सबलप्रजः ।
यथा रामेण निहतो रावणो लोकरावणः ॥६३॥

पुनः जिस प्रकार भगवान् श्रीरामभद्रजूने शेष बचे हुये शूरों तथा सेनाके सहित अपने उग्र व्यवहारके द्वारा समस्त लोगोंको रुदन करानेवाले रावणका सहार किया ॥६३॥

विभीषणाय तद्राज्यं प्रदाय जनकात्मजाम् ।
अग्निहस्तात्त देवानां स्वीचक्रे पश्यतां यथा ॥६४॥

जिस प्रकार उस रावणका राज्य श्रीविभिषणजीको प्रदान करके श्रीरामभद्रजूने समस्त देवताओंके समक्ष अग्निदेवके हाथसे श्रीजनकराजनन्दिनीजीको ग्रहण किया ॥६४॥

पुष्पकं स समारुह्य विमानं देवनिर्मितम् ।
अयोध्याभिमुखं रामो लङ्कायाः प्रस्थितो यथा ॥६५॥

देव निर्मित पुष्पक विमानमें बैठकर श्रीरामभद्रजू जिस प्रकार लङ्कासे श्रीअयोध्याजीकी ओर प्रस्थान किये ॥६५॥

तथा प्रदर्शिता लीला यक्षकन्याभिरादरात् ।
समेता बहुभिर्दृश्यैः सर्वचित्तापहारिभिः ॥६६॥

उसी प्रकार यक्षकुमारियोंने आदरके साथ सभीके चित्तको हरणकर लेनेवाले अनुकूल दृश्योंके सहित लीलायें दिखाईं ॥६६॥

प्रवृत्तिं भरतस्याथ श्रुत्वा स्नेहचमत्कृताम् ।
भरद्वाजाश्रमाद्रामो नन्दिग्रामं यथाऽगमत् ॥६७॥

जिस प्रकार श्रीभरतलालजीकी स्नेहविभूषित प्रवृत्तिको सुनकर श्रीरामभद्रजी श्रीभरद्वाजजीके आश्रमसे नन्दिग्रामको पधारे । ६७॥

यथा भरतमालिङ्ग्य ददावाश्वासनं प्रभुः ।
मातृभ्यश्च प्रजाभ्यश्च सर्वाभ्यो युगपत्क्षणात् ॥६८॥

जिस प्रकार श्रीभरत लालजीको हृदयसे लगाकर श्रीरामभद्रजूने उन्हें व श्रीकौशल्या अम्बाजी आदि माताओंको तथा सभी प्रजाको एक ही साथ क्षणमात्रमें आश्वासन प्रदान किया ॥६८॥

तथा ता दर्शयाञ्चक्रुर्विष्णो रामस्वरूपिणः ।
लीलाः सुखप्रदा हृद्याः स्मर्तॄणां किल्बिषापहाः ॥६९॥

उसी प्रकार उन यक्ष कुमारियोंने श्रीरामरूपधारी विष्णु भगवानकी सुखद, मनोहर तथा चिन्तन करने वालोंके सम्पूर्ण पापोंको हरण करने वाली लीलाओंको दिखाया ॥६९॥

राज्याभिषेकलीलां च सखीभ्यः श्रुतिपावनीम् ।
अदर्शयन्महाभागाः सुदृश्यैर्विश्वमोहिनीम् ॥७०॥

पुनः उन भाग्य शालियोंने श्रवणोंको पवित्र करने वाली सुन्दर दृश्योंसे युक्त विश्वको मुग्ध करदेने वाली श्रीरामभद्रजूके राज्याभिषेक वाली लीला सखियोंको दिखाई ॥७०॥

हर्षशोकावतिक्रम्य प्रणतानन्दवर्द्धनौ ।
प्रणेमुर्दम्पती प्रीत्या पुनस्ता प्राणवल्लभौ ॥७१॥

पुनः हर्ष शोकसे रहित हो उन यक्ष कुमारियोंने भक्तोंके आनन्द वर्द्धक प्राणप्यारे श्री-युगलसरकारको बड़े प्रेम पूर्वक प्रणाम किया ॥७१॥

श्रीदम्पत्यूचतु ।

वरं ब्रूत यथा कामं ज्ञात्वा नौ हृष्टमानसौ ।
भद्रं वो यक्षपुत्र्योऽस्तु वरदौ नाट्यलीलया ॥७२॥

श्रीयुगल सरकार बोले:-हे यक्षकुमारियो ! आप लोगोंका कल्याण हो। इस नाट्य लीलासे हम दोनों वरदायकोंको तुम प्रसन्न जानकर जो तुम्हारी इच्छा हो माग लो ॥७२॥

श्रीयक्षकुमार्य ऊचु ।

यदि तुष्टौ कृपामूर्ती भवन्तौ जगदीश्वरौ ।
वयं धन्या महाभागाश्चीर्णनानाविधव्रताः ॥७३॥

यक्षकुमारियाँ बोलीं-हे कृपामूर्ती ! यदि आप दोनों चर अचरके नियामक प्रभु हम लोगों के प्रति प्रसन्न हैं, तो हमारे नाना प्रकारके सभी व्रत पूरे हो गये, और हम लोग निश्चय ही बड़ी भाग्यशालिनी तथा पुण्यात्मा हैं ॥७३॥

दास्यमेवेप्सितं नित्यं दम्पत्योः पादपद्मयोः ।
अस्माकं वरमासाद्यं तद्धि नो दातुमर्हथ ॥७४॥

हे श्रीयुगलसरकार ! आप दोनो श्रीप्रियाप्रियतमजूके श्रीचरणकमलोंकी सेवकाई ही हम लोगोंका अभीष्ट तथा प्राप्त करने योग्य वर है, अतः उसे ही प्रदान करनेकी कृपा करें ॥७४॥

वासः प्रदीयतां तत्र वसन्तीनां हि यत्र नः ।
सेवासौलभ्यसंप्राप्तिर्युवयोः सर्वदा भवेत् ॥७५॥

और हम लोगोंको जहाँ रहकर युगल-सेवाकी सुलभता प्राप्त हो सके, वहीं निवास प्रदान करने की कृपा हो ७५॥

तोषिताभ्यां च किङ्कर्यः सेवया तुच्छया वयम् ।
युवाभ्यां प्राणनाथाभ्यां निबोध्याः शरणं गताः ॥७६॥

और तुच्छ सेवासे प्रसन्न हुये आप दोनो सरकार, हम लोगोंको अपनी शरणमें आई हुई अपनी किङ्करियाँ जानिये । ७६॥

श्रीसूत उवाच ।

एवमुक्तौ दयाशीलौ शरण्यौ सर्वविद्विभू ।
जानकीराघवौ ताभ्यो ददतुर्वाञ्छितं वरम् ॥७७॥

श्रीसूतजी बोले:—हेश्रीशौनकजी ! यक्षकुमारियोंके इसप्रकार प्रार्थना करने पर दयामय स्वभाव वाले, समस्तजीवोंकी रक्षा करनेको समर्थ, सर्वज्ञ, सर्व समर्थ, श्रीजनकराजनन्दिनीजी तथा श्रीरघुनन्दन प्यारजूने उन्हें अभीष्टवर प्रदान किया ॥७७॥

अथ सरसिजनेत्रौ संपरीतौ सखीभिः कनकभवनसञ्ज्ञं प्रेयतुर्दिव्यहर्म्यम् ।
असितकनकवर्णौ नीलपीताम्बराढ्यौ विविधवनजमालौ पूर्णलावण्यधाम्नी ७८

तत्पश्चात् जिनके कमलके समान नेत्र हैं, श्याम व सुवर्णके समान जिनका श्याम गौर वर्ण है, नीलाम्बर व पीताम्बरको जो धारण किये हुये हैं, अनेक प्रकारके कमलोंकी मालायें जिनके गलेमें सुशोभित हैं तथा जो पूर्ण सौन्दर्यके धाम हैं, वे दोनों सरकार श्रीसीतारामजी महाराज अपनी सखियोंके साथ श्रीकनक-भवन नामके दिव्य भवनमें पधारे ॥७८॥

इत्थं नित्य प्रमुदि विपिने स्वालिभिः सप्रियश्च
कुर्वन्केलीः कनकभवने ह्लादिनीः कीर्त्यकीर्त्तिः ।
सर्वेशोऽसौ स्वतनुसुषमाकामदर्पापहारी
हित्वाऽयोध्याममितविभवां पादमेकं न याति ॥७९॥

इति सप्तोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

इस प्रकार कीर्त्तनकरने योग्य कीर्त्तिसे युक्त, अपने श्रीअङ्गकी अतुलित शोभासे कामदेवके अभिमानको हरण करने वाले वे सर्वेश्वरप्रभु श्रीरामभद्रजू अपनी श्री प्रयाजूके सहित-श्रीकनक भवनमें आह्लाद-प्रदायिनी केलियोंको करते हुये अनन्त ऐश्वर्य शालिनी श्रीअयोध्याजी छोड़कर एक पैर भी कभी कहीं बाहर नहीं जाते ॥७९॥

अथाष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

सम्पूर्णग्रन्थके प्रत्येक अध्यायोंकी विषय सूची-

काव्यं सुमङ्गलं हृद्यं 'जानकी-चरितामृतम्' ।
विषय - सूच्यध्यायानां-क्रमादस्योच्यतेऽधुना ॥१॥

लौकिक पारलौकिक मङ्गलोंसे भरपूर हृदयको प्रतीत होनेवाला जो "श्रीजानकी चरितामृत" नामक 'काव्य' (है), इसके अध्यायोंकी यह विषय सूचीको अब क्रमशः वर्णन करता हूँ ॥१॥

जीवसंबोधव्याजेन पातु सीतायशोऽमृतम् ।
आदौ कात्यायनीप्रश्नो याज्ञवल्क्यमुनिं प्रति ॥२॥

श्रीसूतजी बोले:-इस श्रीजानकी-चरितामृतके प्रथम अध्यायमें जीवोंका किस साधनसे अनायास कल्याण हो सकता है" इस जानकारीकी प्राप्तिके बहाने श्रीजनकनन्दिनीजूके चरितामृतको पान करनेके लिये, अपने पतिदेव श्रीयाज्ञवल्क्य मुनिके प्रति श्रीकात्यायनीजीका प्रश्न ॥२॥

श्रीसीतारामसम्बन्ध-भावनिष्ठानुवर्णनम् ।
याज्ञवल्क्येन मुनिना द्वितीये भावितात्मना ॥३॥

दूसरे अध्यायमें भगवच्चिन्तन परायण श्रीयाज्ञवल्क्य मुनिने श्रीसीतारामजी महाराजके प्रति अनेक सम्बन्ध भावकी निष्ठाका वर्णन किया है। ३॥

आविर्भावस्य को हेतुः पराशक्तेर्निशम्य तत् ।
पार्वतीशिवसंवादं तृतीये स समूचिवान् ॥४॥

पराशक्ति, जगज्जननी, सर्वेश्वरी, श्रीकिशोरीजीके इस पृथ्वीतल पर अवतार ग्रहण करनेका क्या कारण हुआ ? श्रीकात्यायनीजीके इस प्रश्नको सुनकर श्रीयाज्ञवल्क्यजीने उनके प्रति भगवती श्रीपार्वतीजी तथा श्रीभोलेनाथजीके सम्वादको वर्णन किया है ॥४॥

श्रीसीतामन्त्रराजार्थं प्रियायै चाभिशंसनम् ।
पृष्टस्य याज्ञवल्क्यस्य चतुर्थे भावितात्मनः ॥५॥

चौथे अध्यायमें पूछने पर भगवत् तत्त्वचिन्तक श्रीयाज्ञवल्क्यजीने अपनी प्रिया श्रीकात्यायनीजीके प्रति श्रीसीतामन्त्रराजके अर्थका वर्णन किया है ॥५॥

परधामानुकथनं कृत्वा श्रीमङ्गलस्तुतिम् ।
सेवाया मुक्तजीवानां पञ्चमे वर्णनं शुभम् ॥६॥

पाँचवें अध्यायमें श्रीकिशोरीजीकी मङ्गलस्तुति करके श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराजने दिव्यधामका तथा वहाँ के निवासी नित्यमुक्त जीवोंकी सेवाका मङ्गलमय वर्णन किया है ॥६॥

अद्वितीयकृपाम्भोधिः सीता षष्ठे पुरारिणा ।
सप्रमाणं समाभाष्य प्रियाशङ्का निवारिता ॥७॥

छठे-ध्यायमें श्रीराम-बल्लभा श्रीमिथिलेश राज किशोरीजी अनुपम कृपा-सागरा है" इसे प्रमाण के सहित वर्णन करके श्रीभोलेनाथजीने अपनी प्रिया श्रीपार्वतीजीकी शङ्काका निवारण किया है ॥

श्रीसीतारामसंवादवर्णनं सप्तमे कृतम् ।
जीवकल्याणप्राप्त्यर्थं साकेतस्य शुभावहम् ॥८॥

सातवें अध्यायमें जीवोंके कल्याण-प्राप्तिके लिये श्रीसाकेतधाममें पारस्परिक श्रीसीतारामजी महाराजके मङ्गलकारी सम्वाद का वर्णन किया गया है ॥८॥

निमिवंशानुकथनं सीरध्वजनृपावधि ।
कलत्रापत्यबन्धूनामष्टमे तस्य वर्णनम् ॥९॥

आठवें अध्याय मे श्रीइक्ष्वाकु महाराजसे लेकर श्रीसीरध्वज महाराज तकके निमिवंश का तथा उनके रानियों, पुत्र, बन्धुओंका वर्णन है ॥९॥

सम्बन्धिनां तथाऽन्येषां वर्णनं क्रमपूर्वकम् ।
कृतं मातामहादीनां नवमे तत्समासतः ॥१०॥

तथा नवमें अध्यायमें उन श्रीमिथिलेशजी महाराजके नाना आदिक अन्य सम्बन्धियोंका क्रमपूर्वक वर्णन किया गया है ॥१०॥

स्नेहपराशुभासक्तेर्दिनचर्याविधेस्तथा ।
पद्मगन्धोपदेशस्य कथनं दशमे शिवम् ॥११॥

दशवें अध्यायमें श्रीस्नेह-पराजीकी मङ्गलमयी आसक्तिका तथा उनकी दिन-चर्याकी विधिका एवं उनके प्रति श्रीपद्मगन्धाजीके उपदेशका मङ्गलकारी वर्णन है ॥११॥

सीतारामसमाह्वानं दशौके तत्स्वमन्दिरे ।
इच्छन्त्या उक्ति कथनं पद्मगन्धोत्तरं तथा ॥१२॥

ग्यारहवें अध्यायमें श्रीसीतारामजी महाराजको अपने भवनमें बुलाने की इच्छा रखती हुई उन श्रीस्नेहपराजी की उक्ति का कथन तथा श्रीपद्मगन्धाजीके उत्तरका वर्णन है ॥१२॥

चन्द्रकलोपदिष्टायास्तन्मनोभाववर्णनम् ।
नित्यसेवारतायाश्च द्वादशे श्रीविहारिणोः ॥१३॥

बारहवें अध्यायमें श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा उपदेश प्राप्त तथा भक्तोंके हृदयमें विहार करने वाले श्रीसीतारामजीकी नित्यसेवापरायणा श्रीस्नेहपराजीके मानसिक भावोंका वर्णन है ॥१३॥

भोजनान्तेऽसुनाथाभ्यां मनोभावनिवेदनम् ।
चन्द्रकलाप्रधानायास्तस्याः स्तुत्वा त्रयोदशे ॥१४॥

तेरहवें अध्यायमें भोजनके बाद, स्तुति करके अपने दोनों श्रीप्राणनाथोंके लिये श्रीचन्द्रकलाजीको अपनी प्रधान यूथेश्वरी मानने वाली उन श्रीस्नेहपराजूका अपने मनोभावको निवेदन करना ॥

एवमस्त्विति संवीय दम्पत्योर्वचनामृतम् ।
विश्रामागारगमनं श्रुतीन्दौ तच्छुभात्मनः ॥१५॥

चौदहवें अध्यायमें "ऐसा हो होगा" श्रीयुगल सरकारके इस वचन रूपी अमृतको पान करके उन पवित्र मति श्रीस्नेहपराजीका अपने विश्राम भवनमेंजाना ॥१५॥

गृहमायास्यतो मेऽद्य प्राणेशौ तच्छ्रत्स्मितौ ।
संस्मरन्त्या इति प्रेमप्रलापादि प्रदर्शनम् ॥१६॥

पन्द्रहवें अध्यायमें हमारे दोनों प्राणनाथ श्रीयुगलसरकारजी "आज मेरे भवनमें पधारेंगे" ऐसा स्मरण करती हुई उन श्रीस्नेहपराजीके प्रेम प्रलापका वर्णन है ॥१६॥

श्रीसीतारामगमनं स्नेहपरानिकेतने ।
तदाभोजनपूजाया वर्णनं तु रसोडुपे ॥१७॥

सोलहवें अध्यायमें श्रीसीतारामजीका श्रीस्नेहपराजीके भवनमें पधारने तथा उनके द्वारा श्रीयुगलसरकारके भोजन पर्यन्तकी पूजाका वर्णन किया गया है ॥१७॥

समाप्य शेषपूजां तस्तुत्वा सप्तदशे प्रियौ ।
क्षमापनानुकथनं प्रमादकृतविस्मृतेः ॥१८॥

सत्रहवें अध्यायमें शेष पूजाको पूर्ण करके अपने प्यारे श्रीसीतारामजीमहाराजसे स्तुति करके श्रीस्नेहपराजीका अपने प्रमाद वशकी हुई भूल चूककी क्षमा याचना ॥१८॥

पर्य्यङ्के संस्थापितयोस्तयोः शोभावलोकनम् ।
पुष्पालङ्कारकरणं ततो वसुनिशाकरे ॥१९॥

अठारहवें अध्यायमें श्रीस्नेहपराजीका पलङ्गपर शयन कराये हुये दोनों श्रीसीतारामजी महाराजकी शोभाका अवलोकन तथा उनके द्वारा श्रीयुगलसरकारको पुष्पका श्रृङ्गार धारण कराना ॥१९॥

ग्रहावनौ चन्द्रकला नभो वीक्ष्य घनावृतम् ।
प्रियाभ्यां वेदयामास दोलोत्सवमनोरथम् ॥२०॥

उन्नीसवें अध्यायमें मेघोंसे आच्छादित आकाश मण्डलको देखकर श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा दोनों परम प्यारे श्रीसीतारामजीसे सखियोंके झूलन महोत्सवका मनोरथ निवेदन ॥२०॥

नभो नेत्रे प्रस्थितयोः सुचित्रानन्दिनीगृहात् ।
प्रेयसोः सरयूतीरे दोलनोत्सववर्णनम् ॥२१॥

बीसवें अध्यायमें सुचित्रानन्दिनी श्रीस्नेह पराजीके भवनसे प्रस्थित हुये श्रीप्रियाप्रियतमजूके श्रीसरयूतटपरके झूलनोत्सवका वर्णन है ॥२१॥

पुनस्तयोरेकविंशे श्रीसरय्वास्तटाच्छुभात् ।
रत्नसिंहासनागारगमनस्यानुकीर्त्तनम् ॥२२॥

पुनः इकीसवें अध्यायमें श्रीसरयूजीके पवित्र तटसे प्यारे श्रीसीतारामजी महाराजके रत्न-सिंहासन भवनमें पधारनेका वर्णन ॥२२॥

सम्पन्ने मङ्गले गाने सखीनामञ्जसा सति ! ।
अदृष्टवाणीभावानां द्वाविंशे श्रवणं स्मृतम् ॥२३॥

बाइसवें अध्यायमें श्रीरत्न सिंहासन भवनमें सखियोंके मङ्गलगान सम्पन्न हो जाने पर, अदृष्ट वाणीके भावोंको श्रवण करना ॥२३॥

सोद्धार्य्येति गुणपद्ये गदन्त्या श्रुतिरूपया ।
दृष्टं जीवाशिरोजुष्टं प्रेयसोश्चरणद्वयम् ॥२४॥

पुनः तेइसवें अध्यायमें श्रीश्रुतिरूपाजीके श्रीयुगल सरकारसे अब उसका उद्धार होना चाहिये यह कहते ही उन्होंने उस जीवा सखीके शिरसे सेवित श्रीयुगलसरकारके दोनों श्रीचरणकमलोंको देखा ॥

श्रुतिनेत्रे तया भावपुष्पाञ्जलिसमर्पणम् ।
आनिशाशानशृङ्गारभवनागमनं तयोः ॥२५॥

चौबीसवें अध्यायमें श्रीयुगल सरकारके लिये श्रीजीवासखीका अपने भावरूपी पुष्पाञ्जलिका समर्पण करना तथा श्रीयुगलसरकारका ब्यारूसे शृङ्गार-भवन तक पदार्पण ॥२५॥

शरनेत्रमिते स्वापमन्दिरे गमनं तयोः ।
रासागारमथोगत्वा कृत्वा रासमहोत्सवम् ॥२६॥

पचीसवें अध्यायमें रास-भवन (भगवानके मन्दिर) में जाकर भगवदानन्द प्रदायक महोत्सव-को करके श्रीयुगल-सरकार अपने शयन-भवनमें पधारे ॥२६॥

सुचित्रानन्दिनी ताभ्यां विसृष्टा रसलोचने ।
स्वालये सा प्रियौ दृष्ट्वा पृच्छयते प्रेयसा पुनः ॥२७॥

छब्बीसवें अध्यायमें श्रीयुगल सरकारके द्वारा विदा होकर वह अपने भवनको आई और अपने शयनगृहमें दोनों सरकारका दर्शन किया तब श्रीप्यारेजीने उनसे पूछा ॥२७॥

मुनिनेत्रे प्रियागाथा कथ्यतां रतिदायिनी ।
इति स्नेहपराऽऽज्ञप्ता नतोचे नारदागमम् ॥२८॥

सत्ताइसवें अध्यायमें हे सखी ! श्रीप्रियाजूके उन चरित्रोंको वर्णन कीजिये जिन्होंने तुम्हारे हृदयमें उनके प्रति इस प्रकारकी प्रेमासक्ति प्रदानकी है, इस आज्ञाको सुनकर श्रीस्नेहपराजीने प्रणाम करके उनके जन्मोत्सवमें श्रीनारदजीके शुभागमनका वर्णन किया ॥२८॥

रामोऽयं मे कथं भूयाज्जामातेति शुचा नृपः ।
भ्रातरं प्रेषयामास वसुनेत्रेऽन्तिकं सताम् ॥२९॥

अट्ठाइसवें अध्यायमें श्रीचक्रवर्ती-कुमार श्रीरामभद्रजू, "हमारे किसप्रकार जमाई बनमकेंगे" इस चिन्तासे युक्त हो श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपने भाई श्रीकुशध्वजजीको सन्तोंके पास भेजा २९

आगतेभ्यो महर्षिभ्यः समाह्वानस्य कारणम् ।
प्रोक्तं विदेहराजेन पृष्टेन ग्रहलोचने ॥३०॥

उन्तीसवें अध्यायमें श्रीमिथिलाजीमें आये हुये उन महर्षियोंके पूछनेपर श्रीविदेहजी महाराजने बुलानेका कारण निवेदन किया ॥३०॥

आज्ञया परमर्षीणां वियद्ग्रामे प्रतोषितात् ।
जनकस्य वरप्राप्तिः शङ्करान्मङ्गलाशिषा ॥३१॥

तीसवें अध्यायमें ऋषियोंकी आज्ञासे प्रसन्न किये हुये श्रीभोलेनाथजीके द्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजको आशीर्वाद-पूर्वक वरदानकी प्राप्ति ॥३१॥

क्षितिगुणेऽथ यज्ञार्थमावासादिप्रकल्पनम् ।
पुनराह्वानकरणं महर्षिनृपशिल्पिनाम् ॥३२॥

एकतीसवें अध्यायमें पुत्रीष्टि यज्ञके लिये निवासस्थानोंको बनवाना पुनः महर्षियों राजाओं तथा शिल्पकारियोंको आमन्त्रित करना ॥३२॥

पञ्चम्यां माधवे मासि यज्ञारम्भश्च दृग्गुणे ।
अब्दे पूर्णे नवम्यां च मैथिलीजन्मकीर्तनम् ॥३३॥

बत्तीसवें अध्यायमें वैशाख शुक्ल पञ्चमीके दिन यज्ञको प्रारम्भ करना तथा एक वर्ष पूर्ण होने पर वैशाखशुक्ला नवमीके दिन श्रीमिथिलेशराज नन्दिनीजूके प्राकट्यका वर्णन है ॥३३॥

अभिनन्दनं दम्पत्योः प्रेममुग्धैर्महर्षिभिः ।
जगद्गुणे कुमारीणां हार्दिकेहानुवर्णनम् ॥३४॥

तैंतीसवें अध्यायमें प्रेममुग्ध महर्षियोंके द्वारा श्रीसुनयना महारानी व श्रीमिथिलेशजी महाराजका अभिनन्दन तथा श्रीनिमिवंश-कुमारियोंका अपने हृदयकी इच्छाओंका वर्णन है ॥३४॥

श्रुतिलोके तु प्रत्येकवर्गजातिनिकेतने ।
जन्मोत्सवस्य जानक्या आषष्ठ्युत्सववर्णनम् ॥३५॥

चौंतीसवें अध्यायमें प्रत्येक वर्गकी प्रत्येक जातियोंके गृहमें श्रीजनकराज-नन्दिनीजूके जन्म (प्राकट्य) से लेकर छट्ठी तक के उत्सव का वर्णन है ॥३५॥

चन्द्रकलादिकन्यानामवतारादिवर्णनम् ।
शरल्लोके भुवः पुत्री प्रसादेऽस्नुषां शुभम् ॥३६॥

पैंतीसवें अध्यायमें भूमिसे प्रकट हुई उन श्रीमिथिलेश राजदुलारीकी मुख्य प्रसन्नता प्राप्त

श्रीचन्द्रकलाजी तथा श्रीचारुशीलाजी आदि निमिवंश कुमारियोंके मङ्गलमय अवतार आदि का वर्णन है ॥३६॥

सर्वेश्वरीपदप्राप्तिः शङ्करेण प्रकीर्त्तिता ।
तयोश्चन्द्रकलायाश्च रसलोकेऽखिलेशयोः ॥३७॥

छत्तीसवें अध्यायमें भगवान् शिवजीने दोनों सर्वेश्वरी-सर्वेश्वर प्रभु श्रीसीतारामजी महाराजसे श्रीचन्द्रकलाजीके लिये सर्वेश्वरी पद प्राप्ति का वर्णन किया है ॥३७॥

मुनिलोके विदेहस्य नारदागमनं गृहे ।
तस्य श्रीमैथिलीपादपद्मचिह्नाभिशंसनम् ॥३८॥

सैंतीसवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवनमें श्रीनारदजीका आगमन तथा उनका श्रीमिथिलेश-राज नन्दिनीजूके श्रीचरण-कमलोंके अड़तालीस चिन्होंका वर्णन करना । ३८॥

वसुलोके तु मैथिल्याः पाणिचिह्नानुवर्णनम् ।
ब्रह्मपुत्रस्य मे नोक्तिर्मृषेति भाषणं पुनः ॥३९॥

अड़तीसवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके हस्त-कमलोंके चौंसठ-चिन्होंका वर्णन व "मेरा कथन झूठा नहीं हो सकता" यह ब्रह्म-पुत्र श्रीनारदजीका कथन ॥३९॥

तान्त्रिकस्यागतस्याथ ग्रहशङ्करलोचने ।
मैथिल्या व्याधिव्याजेन भावपूर्त्तिप्रदापनम् ॥४०॥

उनचालिसवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशराज-नन्दिनीजूका अपने व्याधिके बहाने नगरमें आये हुये श्रीतान्त्रिक महाराजके भावकी पूर्त्ति करना ॥४०॥

दृष्ट्वा सीतां नभोवेदे तिरोधानादिवर्णनम् ।
ध्यानस्थानां कुमाराणां ध्यायतो मिथिलेशितुः ॥४१॥

चालीसवें अध्यायमे श्रीजनकराजदुलारीजीका दर्शन करके सनकादिक चारों भाइयोंका श्रीमिथिलेशजी महाराजके ध्यानमें प्रवृत्त (ध्यानस्थ) होते ही अन्तर्धान होजाने आदिकी लीलाका वर्णन है ॥

नामकरणलीलाया विधुवेदेऽनुकीर्त्तनम् ।
जनकस्य सुतायाश्च राघवाणां प्रपश्यताम् ॥४२॥

एकतालिसवें अध्यायमें श्रीरामभद्रजी आदि चारों रघुवंशी राजकुमारोंके सामने श्रीजनकराज-नन्दिनीजूकी नाम-करण लीलाका वर्णन है ॥४२॥

आह्वानं दाशरथीनां मैथिलीजननीगृहे ।
उपाशनविधेश्चैव कथनं पञ्चवर्गके ॥४३॥

बयालिसवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशराजनन्दिनूकी अम्बा श्रीसुनयनामहारानीजीके भवनमें चारों श्रीचक्रवर्तीकुमारोंका बुलाना तथा उनके कलेऊकी विधिका वर्णन है ॥४३॥

कौतुकादिगृहं गत्वा तेषां कृत्वेप्सिताशनम् ।
गुणवेदे दिवास्वापसद्मप्राप्त्यनुवर्णनम् ॥४४॥

तेंतालिसवें अध्यायमें उन श्रीराजकुमारोंका कौतुक आदि गृहोंमें भोजन करके दिनके शयन भवनमें पधारना ॥४४॥

पुरीसंदर्शनं वेदश्रुतौ हेमगृहाट्टतः ।
पुनः स्वापालये तेषां निशि संवेशवर्णनम् ॥४५॥

चौवालिसवें अध्यायमें उन राजकुमारोंका हाटक भवनकी छतसे श्रीजनकपुरका दर्शन करना पुनः श्रीसुनयनाअम्बाजीके शयन भवनमें उनका शयन ॥४५॥

मङ्गलादिसुसद्मानि नीत्वा बाणश्रुतौ मुदा ।
मण्डितानां महाराज्ञ्या सभागारप्रवेशनम् ॥४६॥

पैंतालिसवें अध्यायमें मङ्गलभवन आदि अनेक महलोंमें लेजाकर श्रीसुनयनाअम्बाजीका शृङ्गार किये हुये श्रीचक्रवर्तीकुमारोंको श्रीमिथिलेशजीमहाराजके सभा-भवनमें पहुँचाना ॥४६॥

कारयित्वा ऽशनं प्रेम्णा सुनयना रसश्रुतौ ।
अनयद्भोजनागारात्तान्दिवास्वापमन्दिरम् ॥४७॥

छियालिसवें अध्यायमें श्रीसुनयनाअम्बाजी प्रेम-पूर्वक भोजन कराके, उन श्रीकोशलेन्द्रकुमारोंको दिनके शयन-भवनमें ले गयीं ॥४७॥

सर्वावरणधिष्ण्यानां मुनिवेदेऽभिशंसनम् ।
राघवेभ्यो महाराज्ञ्याः स्वमन्तश्रीमतः क्रमात् ॥४८॥

सैंतालिसवें अध्यायमें श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा स्वमन्तक भवनकी छतसे श्रीदशरथ कुमारोंके लिये अपने नगरके सातो आवरणों (घेरों) के सभी प्रमुख स्थानोंका क्रमशः वर्णन ॥४८॥

कृताशनैस्तदा पुत्रैर्दशरथस्य महीभृतः ।
वसुवेदे महाराज्ञ्यास्तैः समं स्वापवर्णनम् ॥४९॥

अड़तालिसवें अध्यायमें श्रीदशरथराजकुमारोंके भोजन कर लेने पर उनके सहित श्रीसुनयना अम्बाजीका शयन ॥४८॥

सकाशं पङ्क्तियानस्य श्रुत्वा नृपतिभाषितम् ।
प्रेषणं राजपुत्राणां राज्ञ्या प्रहृयुगेऽसुखम् ॥५०॥

उञ्चासवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशजी महाराजके कथनको सुनकर श्रीसुनयना महारानी अम्बाजीका दुःखपूर्वक चारों श्रीराजकुमारोंको श्रीचक्रवर्तीजीके पास भेजना ॥४६॥

व्योमवाणे महाधीरः सत्कृतान् विधि पूर्वकम् ।
श्रीकोशलेन्द्रप्रमुखान् नृपो गन्तुं समादिशत् ॥५१॥

पचासवें अध्यायमें महान् धैर्यशाली श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा विधि-पूर्वक सत्कार करके श्रीदशरथजीमहाराज आदि सभी आगन्तुक राजाओंको जाने के लिये आज्ञा प्रदान ॥५०।

देवज्ञावेषमासाद्य धातुरिन्दुशरे शुभम् ।
आगमनं नृपागारे मैथिलीं द्रष्टुमिच्छतः ॥५२॥

इक्यावनवें अध्यायमें श्रीमिथिलेश-राजनन्दिनीजूके दर्शनोंके इच्छुक हुये श्रीब्रह्माजीका ज्योतिषिनीजीका रूप धारण करके श्रीजनकजो महाराजके भवनमें आगमन ॥५१॥

विष्णोर्ब्राह्मणरूपेण जनकस्य निवेशने ।
दर्शनार्थं तु वैदेह्याः प्रवेशो नेत्रमार्गणे ॥५३॥

बावनवें अध्यायमें श्रीविदेहराज-नन्दिनीजूके दर्शनोंके लिये ब्राह्मण रूपसे श्रीविष्णु भगवान्का मिथिलेशजी महाराजके भवनमें प्रवेश ॥५२॥

चन्द्रखेलोपकरणं दीयतां गुणजिह्मगे ।
इति सीताहठं दृष्ट्वा जनन्या युक्तिवर्णनम् ॥५४॥

तिरपनवें अध्यायमें "माँ मुझे चन्द्र खेलौना दे" श्रीजनकराज-नन्दिनीजू के इस हठको देखकर श्रीसुनयना अम्बाजीकी युक्तिका वर्णन ॥५४॥

निगमेषौ महाराज्ञीं वाक्यबद्धां तथा गिरः ।
मूर्च्छितामवलोक्याशु प्रदानं दर्शनस्य वै ॥५५॥

चौवनवें अध्यायमें श्रीसुनयना महारानीजीसे प्रतिज्ञा कराके, उनको मूर्च्छित हुई देखकर श्रीसरस्वतीजीका उन्हें दर्शन प्रदान करना ॥५५॥

आगतया तु पार्वत्या संविभूष्य धरासुताम् ।
शरवाणे तदुच्छिष्टप्रसादादिकयाचनम् ॥५६॥

पचपनवें अध्यायमें श्रीसुनयना अम्बाजीके भवनमें पधारी हुई पार्वतीजीका श्रीभूमि-कुमारी जीका शृङ्गार करके श्रीअम्बाजीसे उनके प्रसाद आदिकी याचना करना ॥५६॥

कपाटपिहितद्वारं प्रविश्य "सुवृतालयम्" ।
रसेषौ रञ्जनं चैव भूमिजाया हि तन्मनः ॥५७॥

छप्पनवें अध्यायमें श्रीसुवृता अम्बाजीके किवाड़ बन्द भवनमें पहुँचकर, श्रीजनकराजदुलारी जीका उन्हें आनन्द प्रदान करना ॥५७॥

प्रयाय काञ्चनारण्यं दोलितां च लतागृहे ।
रामेण संस्मृत्य तस्या वर्णनं मुनिमार्गणे ॥५८॥

सत्तावनवें अध्यायमें श्रीकञ्चन-वनमें जाकर झूला झूली हुई श्रीविदेहराजनन्दिनीजीको स्मरण करके श्रीरामभद्रजूके द्वारा उनका वर्णन ॥५८॥

श्रीप्रमोदवनस्याथ काञ्चनारण्यसङ्गमः ।
वसुभूते प्रभाते च श्रीरामस्वप्नदर्शनम् ॥५९॥

अट्ठावनवें अध्यायमें प्रातः काल श्रीरामभद्रजीका स्वप्नदर्शन तथा श्रीप्रमोदवनका कञ्चन वनसे मिलनका वर्णन है ॥५९॥

सप्रमोदवनस्य श्रीरामस्य मिथिलापुरीम् ।
प्रापणं ग्रहनाराचे सखीभिः समुदाहृतम् ॥६०॥

उन्सठवें अध्यायमें सखियोंके द्वारा श्रीप्रमोदवनके सहित श्रीरामभद्रजीको श्रीमिथिलाजीमें पहुँचाने की लीला-वर्णन ॥६०॥

विवादविजयप्राप्तेर्गगनर्तौ प्रकीर्त्तनम् ।
चन्द्रभानुसुतायाश्च रामाद्भुवनसुन्दरात् ॥६१॥

साठवें अध्यायमें विवादमें भुवनसुन्दर श्रीरामभद्रजीसे श्रीचन्द्रकलाजीके विजयप्राप्तिका वर्णन है ॥

निरोशर्तौ समास्यातः सीतारामसमागमः ।
निमिवंशकुमारीणामपूर्वानन्ददायकः ॥६२॥

एकसठवें अध्यायमें श्रीनिमिवशकुमारियोंको अपूर्व आनन्द प्रदान करने वाले श्रीसीतारामजीके मिलनका वर्णन है ॥६२॥

अभिनन्द्य मिथःप्राप्तदुर्लभेप्सितकामयोः ।
रासादिकविहाराणां नेत्रर्तौ चाभिशंसनम् ॥६३॥

बाँसठवें अध्यायमें दुर्लभ मनोरथको प्राप्त हुये श्रीयुगलसरकारजूके परस्पर अभिनन्दन करके भक्तोंके साथ क्रीड़ा आदिका कथन है ॥६३॥

स्वप्नदर्शनसंसिद्धया समाश्वास्य विदेहजाम् ।
पावकर्तौ तु रामस्य सत्याप्रस्थानवर्णनम् ॥६४॥

तिरसठवें अध्यायमें स्वप्न दर्शनकी प्रत्यक्ष पूर्ण सिद्धिके द्वारा श्रीविदेहराजनन्दिनीजीको आश्वासन प्रदान करके श्रीरामभद्रजीका श्रीअयोध्याजी प्रस्थान ॥६४॥

सुतामालिभिरानीतां जनन्या परिरभ्य च ।
प्रेमाश्रुपूर्णनेत्राया वेदर्तौ चाभिभाषणम् ॥६५॥

चौंसठवें अध्यायमें सखियोंके द्वारा लाई हुई श्रीललीजीको हृदयसे लगाकर प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रवाली श्रीसुनयनामहारानीजीका उनके साथ वार्तालाप ॥६५॥

पुनर्निशाशनागारे भुक्त्वा प्राणरसे मुदा ।
नीतायाः स्वसृभिर्मात्रा स्वापलीलानुवर्णनम् ॥६६॥

पेंसठवें अध्यायमें व्यारूभवनमें ब्यारू (रात्रिका भोजन) करके श्रीअम्बाजीके द्वारा बहिनोंके सहित लाई हुई श्रीललीजीकी शयन लीला ॥६६॥

मातुराज्ञामुपालभ्य लेपयित्वा धनुर्धराम् ।
रसर्तौ भूमिकन्यायाः क्रीडानुमतिशंसनम् ॥६७॥

छाँछठवें अध्यायमें श्रीअम्बाजीकी आज्ञासे धनुकी भूमिको लीप करके भूमि-कुमारी श्री-जनकराजदुलारीजीके खेलकी अनुमतिका वर्णन है ॥६७॥

गत्वा मरकतागारं कुर्वन्त्या मुन्यृतौ शुभाम् ।
दृङ्मीलनाभिधां लीलां तिरोधानादिवर्णनम् ॥६८॥

सरसठवें अध्यायमें मरकत भवन जाकर पवित्र अँखमिचौनीलीला करती हुई श्रीमिथिलेशराज-नन्दिनीजूका अन्तर्धान होना ॥६८॥

नैराश्यं संप्रयातासु सर्वास्वेव च स्वसृषु ।
वस्युतौ भूपनन्दिन्या आविर्भावाभिशंसनम् ॥६९॥

अरसठवें अध्यायमें सभी बहिनोंके निराश हो जाने पर, श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजू की प्राकट्य लीला ॥६९॥

सान्त्वनायाः प्रदानस्य स्वसृभ्यो मुक्तया गिरा ।
न त्यक्ष्यामीति जानक्या ग्रहतौ वोऽभिशंसनम् ॥७०॥

उनहत्तरवें अध्यायमें श्रीजनकराजदुलारीजीका "मैं आप लोगोंको कभी नहीं छोड़ूँगी अपनी इस स्पष्ट वाणी द्वारा सभी बहिनोंको सान्त्वना प्रदान करना ॥७०॥

पुनरशनलीलायाः स्वसॄणां तोषवृद्धये ।
व्योमर्षौ नृपनन्दिन्याः कृतायाश्चारुवर्णनम् ॥७१॥

सत्तरवें अध्यायमे बहिनोंके सन्तोष वृद्धिके लिये श्रीजनकराजनन्दिनीजूकी की हुई सुन्दर भोजन-लीला ॥७१॥

भक्त्या परिचरन्तीनां प्रदाय मङ्गलाशिषः ।
चन्द्रर्षौ मेदिनीपुत्र्यै स्वसॄणां भाववेदनम् ॥७२॥

एकहत्तरवें अध्यायमें प्रेम-पूर्वक सेवा करती हुई बहिनोंका भूमि पुत्री श्रीजनकराजदुलारीजीको मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान करके अपने हृदयका भाव निवेदन करना ॥७२॥

धनुर्दर्शनसंक्षुब्धचेतसे नृपमौलये ।
आगताय महाराज्ञ्याः पक्षद्वीपेऽथ सान्त्वनम् ॥७३॥

बहत्तरवें अध्यायमें धनुषके दर्शनासे क्षोभ युक्त चित्त हुये, नृपशिरोमणि श्रीमिथिलेशजी महाराजको आये हुये देखकर, श्रीसुनयना महारानीजीका सान्त्वना प्रदान करना ॥७३॥

गुणर्षौ, मिथिलेन्द्रस्य निगद्य क्षोभकारम् ।
राज्ञ्यै मरकतागारगमनेच्छानिवेदनम् ॥७४॥

तिहत्तरवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशजी महाराजका श्रीमहारानीजीसे अपने क्षोभका कारण निवेदन करके मरकत-भवन जानेकी इच्छा निवेदन करना ॥७४॥

वेदर्षौ पृच्छते तस्मै चारुशीलानिवेदनम् ।
धनुरुत्थापितं तात ! मम स्वसेत्येति वै ॥७५॥

चौहत्तरवें अध्याय में पूछने पर हे तात ! "धनुष को यकेलो ही हमारी श्रीनन्दिनि जीने उठाया है" यह, श्रीचारुशीलाजीका श्रीमिथिलेशजी महाराजसे निवेदन ॥७५॥

त्रोटयिष्यति यश्चापं जामाता मे स नापरः ।
इति राजप्रतिज्ञायाः शरपौ परिकीर्त्तनम् ॥७६॥

पचहत्तरवें अध्यायमें "भगवान् शिवजीके इस धनुषको जो तोड़ेगा वही मेरा जमाई होगा अर्थात् मेरी पुत्रीको वरण करेगा दूसरा नहीं" श्रीमिथिलेशजी महाराजकी इस प्रतिज्ञाका वर्णन७६

कमलायास्तटे रम्ये मैथिलीं द्रष्टुमिच्छताम् ।
सङ्गमो ब्रह्मपुत्राणां राज्ञा रसमुनौ स्मृतः ॥७७॥

छिहत्तरवें अध्यायमें श्रीकमलानदीके तटपर श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीके दर्शनोंके इच्छुक ब्रह्मा जीके प्रधान-पुत्र सनकादिकोंका श्रीसुनयना महारानीजीसे भेंट ॥७७॥

मुक्तिमालोक्य गच्छन्तीं गच्छतां धामतत्पराम् ।
लब्धसीताप्रसादानां द्वीपर्षौ च स्तवव्रजः ॥७८॥

सतहत्तरवें अध्यायमें श्रीमिथिलाधामकी उपासिका मुक्तिदेवीको धाममें जाती हुई देखकर, वहाँ से आते हुये श्रीमिथिलेशराज-नन्दिनीजूके परमकृपा पात्र सनकादिकोंके स्तोत्र-समूह ।७८॥

स्वसृभिर्गृहमागत्य वस्वृषौ दुहितुर्भुवः ।
ततो मोदस्रवागारगमनस्यानुकीर्त्तनम् ॥७९॥

अठहत्तरवें अध्यायमें बहिनोंके सहित अपने भवनमें आकर, श्रीभूमि-कुमारीजूका श्रीमोदस्रवा-गार-प्रस्थान ॥७९।

सुचित्रावेश्मगमनं जानक्या सममालिभिः ।
ग्रहद्वीपे च संवादवर्णनं श्रीसुचित्रया ॥८०॥

उन्यासिवें अध्यायमें अपनी सखियोंके सहित श्रीजनकराजनन्दिनीजूका श्रीसुचित्रा महारानीजू के भवनमें पधारना तथा उनके साथ श्रीसुचित्रा अम्बाजीका संवाद ॥८०॥

चम्पकारण्यगमनं महीपुत्र्या वियद्वसौ ।
मुरल्याः सम्भवस्तत्र मुरलीसरसः स्मृतः ॥८१॥

अस्सीवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका श्रीचम्पक वनमें पधारना तथा उनकी मुरली से वहाँ मुरली सरकी उत्पत्ति तथा उसका माहात्म्य ॥८१॥

विद्याध्ययनकथनं सुताया मिथिलेशितुः ।
महेन्द्राणया नृपागारप्रवेशो मेदिनीवसौ ॥८२॥

इक्कयासिवें अध्याय में श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका विद्याध्ययन तथा इन्द्राणीजीका राजभवन में प्रवेश ॥८२॥

सुशीलायाः पराभक्तेर्दग्वसौ परिकीर्तनम् ।
लब्धदर्शनलाभायाः श्रीकृपाप्राप्तिवर्णनम् ॥८३॥

बयासिवें अध्यायमें श्रीसुशीलाजीकी पराभक्तिका तथा श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीके दर्शनोंकी प्राप्ति होने पर उनकी कृपा-प्राप्तिका वर्णन है ॥८३॥

श्रीधरस्य स्वपुत्रीणां विवाहेच्छानुशंसनम् ।
गुणसिद्धौ विदेहाय श्रुतशीलविसर्जनम् ॥८४॥

तिरासिवें अध्यायमें श्रीधरमहाराजका श्रीमिथिलेशजी महाराजसे अपनी पुत्रियोंके विवाहकी इच्छाका वर्णन पुनः अपनी पुरीमें पहुँचकर वहाँ से अपने कुलपुरोहित श्रीश्रुतशीलजीको श्रीविदेहराजजीके पास भेजना ॥८४॥

श्रुतशीलेप्सितप्राप्तिमुक्त्वा श्रुतिवसौ पुनः ।
सुकान्त्याः स्वालये सीतादर्शनप्राप्तिवर्णनम् ॥८५॥

चौरासिवें अध्यायमें श्रीश्रुतशीलजीके मनोरथकी सिद्धिको कहकर श्रीसुकान्ति महारानीका अपने भवनमें श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीके दर्शनोंकी प्राप्तिका वर्णन है ॥८५॥

श्रीधरस्य दुहितृणां सीतया सुसमागमम् ।
वर्णयित्वा शरवसौ जलक्रीडादिवर्णनम् ॥८६॥

पच्चासिवें अध्यायमें श्रीधर महाराजकी पुत्रियोंका श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीसे मिलन वर्णन करके उनके साथ जल-क्रीडाका वर्णन किया गया है ॥८६॥

रससिद्धौ महर्षीणां मिथिलायां समागमः ।
संवादो जनकस्यात्र नवयोगेश्वरैः स्मृतः ॥८७॥

छियासिवें अध्यायमें महर्षियोंका श्रीमिथिलाजीमें आगमन तथा नव योगेश्वरोंके साथ श्रीमिथिलेशजी महाराजका सम्वाद ॥८७॥

अकारादिक्षकारान्तं प्रोक्तं नाम-सहस्रकम् ।
श्रीमिथिलेशनन्दिन्याः पुण्यं मुनिवसौ शुभम् ॥८८॥

सत्तासिवें अध्यायमें क्रमशः अकारसे लेकर क्षकार तक अक्षरोंमें श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके मङ्गलकारी सहस्रनामका वर्णन है ॥८८॥

अष्टोत्तरशतं चैव द्वादशं नाम शोभनम् ।
जनकाय महीपुत्र्या वसुसिद्धौ प्रकीर्त्तितम् ॥८९॥

अट्ठासिवें अध्यायमें अवनि-कुमारी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीके अत्यन्त सुन्दर तथा मङ्गलकारी अष्टोत्तरशत (१०८) द्वादश (१२) मुख्य नामोंका योगेश्वरोंने श्रीजनकजी महाराजसे वर्णन किया है ॥

मारीचादिवधं कृत्वा मिथिलामेत्य भूपतेः ।
रामस्य बन्धुना चाङ्कवसौ नगरदर्शनम् ॥९०॥

राक्षसोंका वध करके अपने भाई श्रीलखनलालके सहित श्रीमिथिलाजीमें प्राप्त हो श्रीरामभद्रजू का श्रीविदेहमहाराजके नगरका दर्शन करना ॥९०॥

वाटिकायां महीपुत्रीदशस्यन्दनपुत्रयोः ।
आगतयोस्तु व्योमाङ्के मिथो दर्शनवर्णनम् ॥९१॥

नब्बेवें अध्यायमें पुष्पवाटिकामें पधारे हुये श्रीरामभद्रजू तथा भूमिकुमारी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीके पारस्परिक दर्शनोंका वर्णन ॥९१॥

लक्ष्मणाय च पृष्टस्य पिनाकोत्पत्तिकीर्त्तनम् ।
कौशिकस्य शशाङ्काङ्के श्रीरामे परिशृण्वति ॥९२॥

इक्यानवें अध्यायमें श्रीलखनलालजीके पूछने पर श्रीरामभद्रजूके श्रवण करते हुये श्रीविश्वामित्रजी महाराजके द्वारा भगवान शिवजीके पिनाक-धनुषकी उत्पत्ति वर्णन ॥९२॥

सीतापतिर्धनुर्भेत्ता पणस्येतस्य कारणम् ।
दृगङ्के जनकस्योक्तं धनुः-सम्प्राप्तिपूर्वकम् ॥९३॥

बान्नबेवें अध्यायमें धनुषकी प्राप्ति पूर्वक "जो धनुष तोड़ेगा वही हमारी श्रीराजदुलारीजीका पति होगा" श्रीजनकजी महाराजके इस प्रकारकी प्रतिज्ञा का कारण-वर्णन ॥ ९३ ॥

गुणाङ्के मिथिलेन्द्रस्य निर्वीरं पृथिवीतलम् ।
इदं वचनमाकर्ण्य सौमित्रे रोषवर्णनम् ॥९४॥

तिरान्नबेवें अध्यायमें "पृथ्वीतल वीरोंसे शून्य है" श्रीमिथिलेशजी महाराजके इस वचनको सुनकर श्रीलखनलालजीके रोषका वर्णन ॥९४॥

धनुर्भङ्गेऽथ रामस्य वेदाङ्के शोभने गले ।
पश्यतां सर्वलोकानां स्रक्प्रदानं महीभुवः ॥९५॥

चौरानवेवें अध्यायमें धनुष टूटने पर समस्त लोकोंके अवलोकन करते हुये भूमिसुता श्री मिथिलेशराजकिशोरीजीका श्रीरामभद्रजूके मनोहर गलेमें जयमाल-दान । ९५॥

शराङ्के जामदग्न्यस्य यज्ञभूमौ समागमम् ।
वर्णयित्वा हि तद्रूपं नत्वा प्रस्थानवर्णनम् ॥९६॥

पञ्चान्नवेवें अध्यायमें धनुषयज्ञ भूमिमें श्रीपरशुरामजीका आगमन वर्णन करके श्रीरामभद्रजीको नमस्कार कर उनके प्रस्थानका वर्णन ॥९६॥

आगतिं पङ्क्तियानस्य मिथिलायां रसग्रहे ।
श्रीरामलक्ष्मणाभ्यां तत्सङ्गमः पुनरीरितः ॥९७॥

छान्नवेवें अध्यायमें श्रीदशरथजी महाराजका श्रीमिथिलाजीमें आगमन व उनका श्रीरामभद्रजू तथा श्रीलखनलालजीसे मिलन ॥९७॥

विवाहमण्डपे सीतारामयोः परिकीर्त्तितम् ।
मुन्यङ्के शुभागमनं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥९८॥

सत्तानवेवें अध्यायमें स्वस्तिवाचन पूर्वक विवाह मण्डपमें श्रीसीतारामजी महाराजके शुभागमनका वर्णन ॥९८॥

सीतारामशुभोद्वाहसुमहोत्सववर्णनम् ।
तथैव निमिवंश्यानां ताभ्यां वसुग्रहेऽर्पणम् ॥९९॥

अट्ठानवेवें अध्यायमें श्रीसीतारामजी महाराजके मङ्गल मय विवाहके सुन्दर उत्सवका वर्णन तथा उन दोनोंके लिये निमिवंशभूमिपोंका सर्वस्व समर्पण ॥९९॥

ग्रहाङ्के कौतुकागारादानीतायै महीभुवे ।
कारयित्वाऽशनं मातुः स्वापच्छव्यवलोकनम् ॥१००॥

निन्यानवेवें अध्यायमें कोहवर भवनसे बुलाई हुई, भूमिसे प्रगट श्रीललीजीको भोजन कराके श्रीसुनयना महारानीजीका उनके शयनकी छविका, अवलोकन ॥१००॥

रामस्य कौतुकागारे स्वापो व्योमवियद्विधौ ।
भ्रातृभिः समुपेतस्य रचितस्यालिभिर्मुदा ॥१०१॥

सौवें अध्यायमें सहस्त्रों सखियोंसे सुरक्षित अपने श्रीलखनलालजी आदि भाइयोंके सहित श्री रामभद्रजीका कोहबर-भवनमें शयन ॥१०१॥

भूव्योमेन्दौ जनावासादाहूतस्य च बन्धुभिः ।
कोशलेन्द्रकुमारस्य गमनं जनकालये ॥१०२॥

एकसौएकवें अध्यायमें अपने भाइयोंके सहित जनवासे से बुलाये हुवे श्रीकोशलेन्द्र-कुमार श्रीरामभद्रजीका श्रीजनकजी महाराजके महलमें प्रस्थान ॥१०२॥

पत्तव्योमावनौ चैव राज्ञो दशरथस्य वै ।
श्रीजनकालये प्रोक्तं ससमाजस्य भोजनम् ॥१०३॥

एकसौदोवें अध्यायमें समाज सहित महात्मा श्रीदशरथजी महाराजका श्रीजनकजी महाराज के भवनमें भोजन ॥१०३॥

गुणव्योमचितौ पूर्तांवधेर्वैवाहिकस्य च ।
सिद्धचालये वराणां तु दिवाविश्रामवर्णनम् ॥१०४॥

एकसौतीनवें अध्यायमें विवाहकी सभी विधियाकी पूर्ति तथा श्रीसिद्धिजीके महलमें जाकर वरोंका दिनमें विश्राम ॥१०४॥

गत्वा गृहाणि सर्वेषां दिव्यमुदानवर्णनम् ।
रामस्य श्रुतिव्योमोर्व्यां कात्यायन्याः सुखस्थितेः ॥१०५॥

एकसौचारवें अध्यायमें भवनोंमें जाकर श्रीरामभद्रजूके द्वारा सभीको दिव्यानन्द-प्रदान तथा सुखस्वरूपा श्रीकिशोरीजीके श्रीचरणकमलोंमें श्रीकात्यायनीजीके पूर्ण स्थित हो जानेका वर्णन १०५

मैथिलीनां सकान्तानां शरव्योमभुवीरितः ।
गृहप्रवेश आसाद्यायोध्यां स्वश्वशुरस्य च ॥१०६॥

एकसौपाँचवें अध्यायमें पतिदेवके सहित श्रीमिथिलेशराजकुमारियोंका श्रीअयोध्याजीमें पहुँच कर अपने श्वशुरके गृहमें प्रवेश करना ॥१०६॥

कदम्बविपिने सीतारामयो रसखावनौ ।
आज्ञया यक्षकन्याभिर्विश्वनाट्यप्रदर्शनम् ॥१०७॥

एकसौ छवें अध्यायमें कदम्बवनमें श्रीसीतारामजीमहाराजकी आज्ञासे यक्षकुमारियोंका विश्व-नाट्य लीला दिखाना ॥१०७॥

हरेर्लीलां समालोक्य मुनिव्योमचितौ पुरः।
धृतरामावतारस्य तयोः सरयः सुविस्मिताः ॥१०८॥

एकसौ सातवें अध्यायमें श्रीरामभद्रजीका अवतार धारण किये हुवे श्रीविष्णु भगवानकी लीलाओंका भली प्रकारसे अवलोकन करके श्रीयुगलसरकारकी सखियोंका विस्मित होना ॥१०८॥

वसुव्योमावनौ सूची सचित्रविषयान्विता।
अध्यायानां हि सर्वेषा ग्रन्थस्यास्य प्रवर्णिता ॥१०९॥

एकसौ आठवें अध्यायमें ग्रन्थके सभी अध्यायोंके सचित्र विषय सूचीका वर्णन है ॥१०६॥

संहितेयं महापुण्या सीतावालयशाऽन्विता।
कल्मषघ्नी सुपठतां पराभक्ति-प्रदायिनी ॥११०॥

श्रीजनक राजदुलारीजीके बाल चरितास युक्त यह संहिता अत्यन्त पवित्र, पाठकोंके सम्पूर्ण पापोंको नाश तथा प्रेमा भक्तिको प्रदान करने वाली है ॥११०॥

य इमां मानवा लोके पुण्यपुञ्जा हताशुभाः।
अध्येष्यन्ते प्रयास्यन्ति स्वाभीष्टं नात्र संशयः ॥१११॥

लोकमें इस संहिताको जो पुण्य शाली पाठ करेंगे, वे निःसन्देह अपने मनोरथोंकी सिद्धिको प्राप्त होंगे और उनके सभी अमङ्गल नष्ट हो जावेंगे ॥१११॥

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य तेजसो यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव निधानं भूमिजाऽवतु ॥११२॥

जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण तेज, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्णज्ञान तथा सम्पूर्ण वैराग्यकी भण्डार हैं, वे भूमिसे प्रकट हुई श्रीमिथिलेशराज दुलारीजी सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करें ॥११२॥

जननी सर्वलोकानामद्वितीयदयाम्बुधिः।
सा हि सद्बुद्धिदा सर्वप्राणिनामस्तु जानकी ॥११३॥

वे ही अनुपम दया सागरा जगज्जननी श्रीजनकराजदुलारीजी समस्त प्राणियोंको सद् (भगवद् सम्बन्धी) बुद्धिको प्रदान करनेकी कृपा करें ॥११३॥

स्वयं या ऽऽविर्भूता जनकमखभूमौ मृदुतनुः
सखीवृन्दैः साकं कनकमणिसिंहासनगता।

निमेः श्लाघ्ये वंशे निरतिशयमाधुर्य्यजलधि-
भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११४॥

जिनका माधुर्य गुण समुद्र के समान असीम (अथाह) व श्रीविग्रह अत्यन्त कोमल है, जो सखी वृन्दोंके सहित, निमि महाराजके प्रशंसनीय वंशमे श्रीजनकजी महाराजकी यज्ञ भूमिसे सुवर्ण मणिके सिंहासन पर विराजमान होकर स्वयं अपनी भक्त-भाव पूरण शोला निर्हेतुकी कृपा वश प्रकट हुई हैं, रघुकुल नायक श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीजनकराजदुलारीजीका हम चेतन वृन्द सदैव भजन करते है । ११४॥

सुताभावं गत्वा जनकनृपतेर्विश्वजननी शिशुक्रीडा सर्वा निरवधिमनोज्ञाःप्रकुरुते।
चिदानन्दाकारा विधिहरिहरैर्जुष्टचरणा भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम्॥

जिनके श्रीचरण-कमल ब्रह्मा, विष्णु महेशादिसे सेवित हैं, चेतन्य व आनन्दमय जिनका श्रीविग्रह है तथा जो समस्त विश्वकी जननी (मां) होकर भी श्रीजनकजी महाराजके पुत्री भावको स्वीकार करके सभी अनन्त मनोहारिणी शिशु लीलाओं को कर रही हैं, रघुकुलनायक श्रीरामभद्रजू के सहित उन श्रीमिथिलेश राजदुलारीजीका हम सभी प्राणी वृन्द भजन करते हैं ॥११५॥

जगन्त्यादिं यस्या भृकुटिगतिमात्रेण नितरां
स्थितिं चान्तं यान्ति प्रथितविभवा या धरणिजा।
सखीभिः क्रीडन्ती हरति मुनिचेतांस्यपि दृशा
भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११६॥

जिनके भृकुटि हिलाने मात्रसे ही सभी ब्रह्माण्ड उत्पत्ति, स्थिति, तथा संहारको प्राप्त हो जाते हैं, जिनकी महिमा जगत्-रूपम विख्यात हैं, जो पृथ्वीसे प्रकट हुई है और सखियोंके साथ खेलती हुई अपनी दृष्टि मात्रसे मुनियोंके चित्तको हरण कर लेती हैं, समस्त जीवोंके नियामक (स्वामी) श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीमिथिलेश राजदुलारीजीका हम सभी चेतन जन भजन करते हैं ॥११६॥

किशोरी हेमाङ्गी कुवलयदृशा चन्द्रवदना
सुकेशी बिम्बोष्ठी जितमदनजायामितरुचिः ।
दयापारावारा ह्यभयदकरा क्षान्तिनिलया
भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११७॥

जिनकी १२ वर्ष आयुके अनुरूप अवस्था है सुवर्णके समान जिनका गौरवर्ण है, कमलके समान नेत्र हैं पूर्ण चन्द्रमाके समान जिनका परम आह्लादकारक श्रीमुखारविन्द है, सुन्दर घुंघुराले केश तथा बिम्बाफलके सदृश लाल ओष्ठ हैं, अनन्त रतियोंको जीतनेवाली जिनकी कान्ति है, समुद्रके समान जिनकी दया अथाह, व महान् है जिनके कर-कमल प्राणिमात्रको अभय प्रदान करनेवाले हैं, जो सहन शीलताकी भण्डार ही हैं, रघुकुलके स्वामी श्रीरामभद्रजूके समेत उन श्रीजनकराजदुलारी जूका हम सभी आश्रित जन भजन करते हैं ॥११७॥

रमोमासावित्री-प्रभृतिपरमाशक्तिनिकरा
यदीयांशाः प्रोक्तास्त्रिगुणनिधयोऽपारगतिकाः।
सदाराध्याऽजस्रं प्रणतजनकल्याणवरदा
भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११८॥

सत्व, रज, तम तीनों गुणोंकी भण्डार-स्वरूपा, अपार महिमावाली उमा, रमा, सावित्री आदि सर्वोत्कृष्ट शक्तियां जिनकी अंश कहीजाती हैं तथा जो सन्तोंके द्वारा सदा ही उपासना करने योग्य आश्रित जनोंको कल्याण-कारक वरदान देनेवाली हैं, रघुकुलके स्वामी श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका हम प्राणीजन भजन करते हैं ॥११८॥

मुमुक्षूणां यस्या युगलचरणाम्भोरुहमृते
गतिर्नान्या दृष्टा श्रुतिषु मुनिभिः काऽपि सुखदा।
महालावण्याब्धिर्विमलहृदया सच्छरणदा
भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११९॥

जन्म-मरणके बन्धनसे छुटकारा पानेके इच्छुक प्राणियोंके लिये मुनियोंको वेदोंमें जिनके श्रीचरणकमलको छोड़कर और कोई सुखद उपाय ही नहीं, दीखता जो सर्वोत्कृष्ट सुन्दरताकी समुद्र, विमल (मायिक विकारोंसे रहित) भगवान श्रीरामजीको ही अपने हृदयमें विराजमान रखने वाली, अपने आश्रितोंको सदा एक रस रहने वाले अपने दिव्यधामको प्रदान करने वाली है, रघुकुलके स्वामी श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूका हम सभी दीन जन आश्रित प्राणी भजन करते हैं ॥११९॥

कृपाशीलक्षान्तिप्रणयसुपरैश्वर्यजलधि-
र्वधार्हेष्वप्यात्ताभयदमृदुभावा स्मितमुखी ॥
श्रियः श्रीः साकेतप्रभुहृदयपाथोजनिलया।
भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥१२०॥

जिनकी कृपा, शील, क्षमा, प्रेम, अनुपम सुन्दरता व ऐश्वर्य सब समुद्रके समान अथाह हैं तथा जो वध योग्य प्राणियोंके प्रति भी अभयदायक कोमलताका भाव चाहती हैं, जिनका श्रीमुखारविन्द मुस्कानसे युक्त है जो शोभाकी शोभा और श्रीसाकेताधीश प्रभुके हृदयकमलमें निवास करने वाली हैं, रघुकुल पति श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीजनकराजदुलारीजीका हम सभी अबोध जीव भजन करते हैं ॥१२०॥

निराधाराधाराऽऽहृतसपदिवध्याधमशठा ।
मनोहारीन्द्वास्याऽऽभरणपटरोचिष्णुसुतनुः ॥
मनोज्ञा भावज्ञा प्रणतिपरितुष्यार्द्रहृदया ।
भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥१२१॥

अवलम्ब रहित प्राणियोंकी परम आधार-स्वरूपा, तुरत वधकर देने योग्य अधम शठ जीवोंका भी आदर करनेवाली, चन्द्रमाके समान परम प्रकाशमान मनोहर मुखवाली, भूषण-वस्त्रोंसे चमकता हुआ अर्थात् देदीप्यमान जिनका शरीर है, अपने नाम, रूपलीला, धामसे मनको हरण करनेवाली हैं, तथा मन, बुद्धि, चित्तमें विराजमान होनेके कारण जो सभी प्राणियोंके सभी भावोंको भली भाँति जानती हैं। जिनका सरसहृदय प्रणाममात्रसे ही प्रसन्नताको प्राप्त हो जाता है, समस्त जीवोंके कुलका पालन करनेवाले श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीजनकराजदुलारीजीका हम सभी साधन हीन प्राणी भजन करते है ॥१२१॥

सीता मे शरणं विदेहतनया सीतां भजे सप्रियां
संरक्ष्योऽस्मि च सीतया जगति सीतायै नमः सर्वदा
सीताया ननु का परा श्रुतिषु सीतायाः प्रपन्नोऽस्म्यहं
सीतायां रतिरस्तु मे शुभतरा सीते ! प्रसन्ना भव ॥१२२॥

विदेहराजकुमारी श्रीसीताजी ही हमारी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाली हैं, प्यारे श्रीरामभद्रजूके सहित मैं उन्हीं श्रीसीताजीका भजन करता हूँ, मेरी रक्षा भी यही श्रीजनकराजदुलारीजी कर सकती हैं अतः उन श्रीसीताजीके लिये जगत्में मेरा सदा ही नमस्कार है, वेदोंमें श्रीसीताजीसे बढ़कर भला है, ही कौन ? अतः मैं उन्हीं श्रीसीताजीका शरणागत हूँ, मेरी परम पवित्र प्रीति उन्हीं श्रीकिशोरीजीमें हो, हे श्रीकिशोरीजी ! आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥१२२॥

चित्तेन्द्रियं मे च विधाय तस्मिन्स्वचिन्तनस्यापि ददौ सुशक्तिम् ।
मर्त्येतरप्राणभृतां दुरापां दुश्चिन्तितं सा च तया क्षमेत ॥१२३॥

जिन्होंने मेरी चित्त इन्द्रियको बनाकर उसमें अपने स्वरूप चिन्तनकी यह महती शक्ति प्रदान की, जो मनुष्योंको छोड़कर और किसीको भी सुलभ नहीं, उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके विपरीत जो मैंने अहितकर छोटी २ बातोंका चिन्तन किया हो, उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२३॥

कृत्वेन्द्रियं मानसमेव तस्मिञ्छक्तिं ददौ सन्मननस्य या वै।
मर्त्येतरप्राणभृतां दुरापां क्षमेत सा दुर्मननं तथा मे ॥१२४॥

जिन्होंने मेरी मन इन्द्रियको बनाकर मेरे कल्याणार्थ उसमें सत् (त्रिकालाबाध सदा एक रस रहने वाले भगवान) को मनन करनेकी शक्ति प्रदानकी, मनुष्यको छोड़कर अन्य किसीको भी न प्राप्त होने योग्य उस महान् शक्तिके द्वारा जो मैंने अहितकर वस्तुओंका मनन किया हो, उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२४॥

बुद्धीन्द्रियं मे च विधाय तस्मिन्निश्चेतुमर्हां प्रददौ सुशक्तिम्।
मर्त्येतरप्राणभृतां दुरापां दुर्निश्चितं सा च तथा क्षमेत ॥१२५॥

जिन्होंने मेरी 'बुद्धि' इन्द्रियको बनाकर हमारे कल्याणके लिये उसमें "हितकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य"का निश्चय करनेकी सुन्दर शक्ति प्रदानकी, जो मनुष्योंके अतिरिक्त और किसी प्राण धारीके लिये सुलभ ही नहीं, उस शक्तिके द्वारा उनके सुमिरण-भजन तथा उनके प्यारे भक्तोंकी सेवा आदिसे भगवदानन्द प्राप्तिका निश्चय छोड़कर उनकी इच्छाके जो प्रतिकूल अहितकर विषयानन्द प्राप्तिका मैंने निश्चय किया हो, उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२५॥

यच्छ्रद्धकृतिप्रत्ययमथेन्द्रियं मे कृत्वाभ्यदादुन्नतये सुशक्तिम्।
मर्त्येतरप्राणभृतां दुरापां सा क्षन्तुमर्हा दुरहङ्कृतिं मे ॥१२६॥

जिन्होंने मेरी अहङ्कार इन्द्रियको बनाकर, उसमें उन्नतिके लिये अपने वास्तविक हितकर "स्वरूपतः मैं ब्रह्म हूं अथवा मैं उन सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ, सर्वव्यापक प्रभुका सेवक या अंश हूँ प्रभु मेरे हैं" इस प्रकारका हितकर शुद्ध अहङ्कार करनेकी सुन्दर शक्ति प्रदानकी जो मनुष्योंको छोड़कर और किसीको प्राप्त ही नहीं हो सकती, उस शक्तिके द्वारा, उनकी इच्छाके विपरीत अपना या किसीका भी अहित करनेवाला "मैं अमुक हूँ मेरा यह ऐश्वर्य है, मेरे ये कुटुम्बी हैं, ये मेरे सहाया हैं इत्यादि" जो मैंने मिथ्या सीमित अहङ्कार किया हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामय श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२६॥

नेत्रेन्द्रियं मे च विधाय तस्मिञ्छक्तिं ददौ या च विलोकनस्य ।
विशेषतोऽनुग्रहभाजनानां दुष्प्रेक्षितं सा च तया क्षमेत ॥१२७॥

जिन्होंने मेरे नेत्र इन्द्रियको बनाकर, मेरे कल्याणार्थ उसमें विशेष करके अपने कृपापात्रोंके दर्शन करनेकी शक्ति प्रदानकी, उनकी इच्छाके प्रतिकूल उस शक्तिके द्वारा जो मैंने किसीके प्रति बुरी (अहितकर) दृष्टिकी हो उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२७॥

कर्णेन्द्रियं मे च विधाय तस्मिञ्छक्तिं ददौ या श्रवणाय कीर्त्तेः ।
विशेषतः प्राणपरप्रियाणां सा दुःश्रुतं मे च तया क्षमेत ॥१२८॥

जिन्होंने मेरी श्रवण इन्द्रियको बनाकर उसमें विशेषकरके अपने प्राणप्रिय सन्त-भक्तोंकी कीर्त्तिको श्रवण करनेकी सुन्दर शक्ति प्रदानकी, उस शक्तिके द्वारा जो मैंने उनकी इच्छाके विपरीत अहितकर शब्दोंको श्रवण किया हो,उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें १२८

घ्राणेन्द्रियं मे कृपया विधाय तस्मिन् समाघ्रातुमदात्सुशक्तिम् ।
हितं समाघ्रातुमपीह या वै तया दुराघ्रातमसौ क्षमेत ॥१२९॥

जिन्होंने मेरी नासिका इन्द्रियको बनाकर हितकर वस्तुओंको सूँघनेके लिये उसमें सुगन्ध-दुर्गन्ध जाननेकी शक्ति प्रदान की है,उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके प्रतिकूल जो मैंने दुखःप्रद(अहितकर) पदार्थोंको सूँघा हो, उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२९॥

विरच्य या मे रसनेन्द्रियं वै तस्मिन्समास्वादनशक्तिमादात् ।
हितं समास्वादयितुं कृपातो दुःस्वादितं मे च तया क्षमेत ॥१३०॥

जिन्होंने मेरी जिह्वा इन्द्रियको बनाकर, हितकर पदार्थोंको आस्वादन करनेके लिये उसमें आस्वादन करनेकी शक्ति प्रदानकी, उनकी इच्छाके विरुद्ध उस शक्तिके द्वारा जो मैंने दुःखप्रद वस्तुओंका स्वाद लिया हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें१३०

त्वगिन्द्रियं मे च विधाय तस्मिन् सत्स्पर्ष्टुमर्हां प्रदिदेश शक्तिम् ।
हिताय याऽपारदयासमुद्रा तयाऽहितस्पृष्टमसौ क्षमेत ॥१३१॥

जिन्होने मेरी त्वचा (खाल) इन्द्रियको बनाकर उसमें सन्तोंके हितकर स्पर्श करनेकी शक्ति प्रदानकी, उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके प्रतिकूल जो मैंने किसीका भी अहितकर स्पर्श किया हो, उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१३१॥

वागिन्द्रियं चैव विधाय तस्मिन्नुच्चारणार्हां प्रददौ सुशक्तिम् ।
हिताय भक्ताचरितस्य मुख्यतस्तया दुरुच्चारितमाक्षमेत ॥१३२॥

जिन्होंने वाणी इन्द्रियको बनाकर मेरे कल्याणकी सुविधाके लिये उसमें विशेषकर अपने भक्तों के चरितों (गुणानुवाद) को कथन करने योग्य शक्ति प्रदानकी, उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके प्रतिकूल जो मैंने अहितकर शब्दोंका उच्चारण किया हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१३२॥

हस्तेन्द्रियं मे च विरच्य तस्मिन् हिताय कर्मार्हसुशक्तिमादात् ।
प्राधान्यतो भागवतान् हि सेवितुं तयाऽहितं मे विहितं क्षमेत ॥१३३॥

जिन्होंने मेरे कल्याणके लिये हस्तेन्द्रिय (हाथ) बनाकर उसमें हितकर कर्म मुख्यतया अपने भक्तोंकी सेवा करनेकी शक्ति प्रदानकी, उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके प्रतिकूल जो मैंने किसीका भी अहित कर कर्म किया हो, उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१३३॥

पादेन्द्रियं या च विरच्य तस्मिन्-हिताय गन्तुं प्रदिदेश शक्तिम् ।
विशेषतः सन्मनसां दिदृक्षया तया तु सा दुश्चलितं क्षमेत १३४

जिन्होंने मेरी चरण (पाँव) इन्द्रियको बनाकर, मेरे हित साधनके लिये उसमें विशेष करके उन सन्त-भक्तोंके दर्शनार्थ चलनेकी शक्ति प्रदानकी, जिनके हृदय में एक सत् स्वरूप भगवान ही सदैव विहार करते हैं, उनकी उस इच्छाके विपरीत जो मैं बुरे कर्मोंके लिये चला होऊँ, उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१३४॥

गुदेन्द्रियं मे च विरच्य तस्मिन् ददौ मलोत्सर्जनचारुशक्तिम् ।
स्वास्थ्याय या लोकहितप्रसाधितु तया तु सा दुर्विहितं क्षमेत ॥१३५॥

जिन्होंने मेरी 'गुदा' इन्द्रियको बनाकर उसमें लोकहितकर साधन करनेके लिये स्वास्थ्य-रक्षाके निमित्त मल विसर्जन करनेकी उत्तम शक्ति प्रदानकी है उस शक्तिके द्वारा मैंने जो कुत्सित व्यवहार किये हों, उस मेरे महान् अपराधको वे दया-मयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१३५॥

कृत्वा ह्युपस्थेन्द्रियमेव तस्मिञ्छक्तिं ददौ मूत्रविसर्जनार्हाम् ।
स्वास्थ्याय याऽशेषहितप्रसाधितुं तया तु सा दुश्चरितं क्षमेत ॥१३६॥

जिन्होंने मेरी उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) को बनाकर सम्पूर्ण हितसाधन करनेके लिये उसमें स्वास्थ्य-रक्षार्थ मूत्र त्यागनेकी शक्ति प्रदानकी, उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके विपरीत जो मैंने दुराचरण किये हों, उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें १३६

सर्वे भवन्तु सुखिनो विगतामयाश्च पश्यन्त्वशेषसुहृदः किल मङ्गलानि।
मा कश्चिदस्त्वसुखभाक्च सन्तु भक्ताः सर्वेऽस्तु नेतृनिकरो हितकृन्महात्मा॥१३७

हे श्रीकिशोरीजी! सभी प्राणी सबके सुहृद अर्थात् हितचिन्तक मित्र बनें, सभी सब प्रकारसे शारीरिक तथा मानसिक रोगोंसे रहित हो सदाके लिये पूर्ण सुखी हो जाँय, सभी सर्वदा सर्वत्र मङ्गल ही मङ्गल अवलोकन करें, सभी भक्त अर्थात् आपके प्रति अटूट श्रद्धा विश्वासपूर्ण अनन्य प्रेम रखने वाले बनें तथा सभी नेतागण अपनी बुद्धिसे भगवानकी प्रधानता मानने वाले जनताके वास्तविक हित (भगवत्प्राप्ति) कराने वाले बनें॥१३७॥

चेतश्चिन्तयताद्धि सत्त्वमननं नित्यं विदध्यान्मनो
भूयाद्गोनिकरः सदा हितकरो धीः सद्विचारान्विता।
अस्माकं कमलार्चिते! प्रतिदिनं रामप्रिये! याचतां
सर्वासम्भवसम्भवाय कुशले! लीलाजगन्मोहिनि!॥१३८॥

हे श्रीरामवल्लभाजू! आप सभी असम्भवको सम्भव करनेमें अत्यन्त चतुरा तथा अपने स्वरूपी लीलासे समस्त चर अचर प्राणियोंको मुग्ध करने वाली श्रीकमलाजीसे पूजित हैं, हम याचकों (भिखारियों) का चित्त सदा (आपके सत् एक रस रहने वाले) स्वरूपका ही चिन्तन करे और उसीका मनन करे हमारी बुद्धि आपके उसी सत् स्वरूप नाम, रूप लीला धाम आदिके विषयमें ही सदा विचार करने वाली बने, हमारी सभी इन्द्रियाँ सदा वास्तविक हित अर्थात् भगवत्प्राप्ति कराने वाली बनें॥१३८॥

लोकाः श्रयध्वं हितमात्मनश्चेदिष्टं मनोज्ञं चरणारविन्दम्।
रामप्रियाया जगतां सुशक्तेः सञ्चारिकायाः सकलेन्द्रियेषु॥१३९॥

हे प्राणियो! यदि आप लोग अपना वास्तविक हित (भगवत्प्राप्ति) चाहते हैं, तो समस्त चर अचर प्राणियोंकी सम्पूर्ण इन्द्रियों में शक्तिसञ्चार करने वाली श्रीरामवल्लभाजूके मनोहर श्रीचरण कमलोंकी सेवा करें॥१३९॥

विश्वस्य सेवा हितकारिकैका तुष्टिप्रदा तज्जगतां जनन्याः।
तदानुकूल्याच्च परं न जन्तोर्हितं हि वैमुख्यपरा न हानिः॥१४०॥

उन जगज्जननीजूकी सबसे बढ़कर प्रसन्नता कराने वाली, विश्वकी हितकर-सेवा ही है, उनके अनुकूल (कृपापात्र) बन जानेसे बढ़कर जीवका और कुछ हित नहीं और उनसे विमुख होनेके समान और कोई हानि भी नहीं है॥१४०॥

इदं विदित्वा क्षणभङ्गुरं तन्नृदेहमुत्सृष्टसमस्ततर्काः ।

शक्त्या स्वबुद्ध्याऽसुभृतो हि तस्यां नियोजयन्तो हितमारभध्वम् १४१

इसलिये इस मनुष्य देहको क्षणमात्रमें नष्ट हो जाने वाली जानकर, समस्त कुतर्कोंको छोड़करके अपनी शक्ति व बुद्धिके द्वारा प्राणियोंको उन सर्वेश्वरी, अनन्त ब्रह्माण्ड-नायिका, जगज्जननी, श्रीमिथिलेश राजदुलारीजूमे, किसी प्रकार लगाते हुये अपना तथा अन्य प्राणियोंका वास्तविक हित करें ॥

एषा बुद्धिमतां मतिर्भगवतः सिद्धान्ततो विश्रुतम्

शूराणां खलु शौर्य्यमेतदतुलं सत्यं पदं चामृतम् ।

देहेन क्षणभङ्गुरेण तदियात्सत्येतरेणैव य-

न्नोचेच्छूकरगर्दभोपमधियां धिग्धिङ्नृणां जीवितम् ॥१४२॥

जीवोंकी गति-अगतिका उपाय जाननेवाले सम्पूर्ण ज्ञानके भण्डारस्वरूप श्रीभगवान्के सिद्धान्तसे बुद्धिमानोंकी उसी बुद्धि और शूरोंकी उसी अनुपम विख्यात शूरताकी प्रशंसा है, जो असत्य (परिवर्तन शील) क्षणमात्रमें नष्ट हो जानेवाले इस मनुष्य शरीरके द्वारा उन श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजीके सदा एक रस रहने वाले, अविनाशी पद श्रीसाकेतधामको प्राप्तकर लें, अन्यथा शूकर (के समान केवल तुच्छ विषय सुखमें ही आसक्त) और गदहेके समान (अपनी योग्यता रूपी भारका समुचित लाभ न ले सकने योग्य बुद्धि वालोंके इस व्यर्थ जीवनको धिक्कार है, धिक्कार है ॥१४२॥

भक्तानां हृदयेप्सितार्थफलदा सम्शृण्वतां गायतां

सर्वस्य जनकात्मजापदजुषामाकर्णिताऽऽपृच्छ्य च ।

श्रीरामेण मुदा विदेहतनयासद्बाललीलान्विता

रामानुग्रहकारिणी सुपठतां भूयादियं संहिता ॥१४३॥

इत्यष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

—: मासपारायण-विश्राम ३० नवाह्नपारायण-विश्राम ९ :—

श्रीजनकराजदुलारीजूके श्रीचरणकमलोंके सेवकोंके लिये सर्वसम्पत्ति स्वरूपा तथा उनकी सत् (सम्पूर्ण विकारोंसे रहित बाललीलाओंसे जो युक्त है, जिसे श्रीरामभद्रजूने स्वयं स्नेहपराजीसे पूछकर बड़े हर्ष पूर्वक श्रवण किया है, वही यह संहिता (निर्मिति) श्रवण, गान तथा पाठ करनेवाले भक्तोंके हृदयकी अभिलाषाका पूर्ण करनेवाली तथा श्रीरामभद्रजूकी कृपा करानेवाली बनें १४३

सम्वत् श्रुति-शशि-विन्दु-नेत्रमित विक्रम गायो । शर तिथि भादौंमास आजु गुरुवार सुहायो ॥
दिव्य जानकीमहल्ल मुख्य जगमोहन माहीं । धाम जनकपुर मध्य वेद यश गावत जाहीं ॥
सन्तोंका आदेश मानि निजमति अनुहारी । लिख्यों भूल जो होइ लेहिं बुध ताहि सुधारी ॥
जनकलली-रघुलालकी कृपादृष्टिसे यहचरित । टीकासो शोभित भयो भक्ति-सुधासों जो भरित ॥
कार्तिकेय गुरुदेव कृपा सों सो पुनि आजू । श्रीकमलाम्बा-पुण्य-द्रव्य सों पाइ सुसाजू ॥
मोक्षपुरी विख्यात जासु काशी अस नामा । भक्तशिरोमणि श्रीमहेशको धाम ललामा ॥
तासु मुख्य 'श्रीरामप्रेस' में यह पृथुकाया । चरितामृत 'श्रीजनकललीको प्रभुकी दाया ॥
सम्वत् युग-भू-व्योम-पक्ष मित अगहन माहीं । शुक्ला शर तिथि भौमवार दिन मुदित आहीं ॥
या में जो कुछ है सम्हार सो प्रभुको कीन्हों । बुद्धि हीनता वश बिगाड़ सबही मम चीन्हों ॥
जासु कृपा वश भयो पूर्ण भक्तन सुखदाई । उन्हें समर्पण करूँ ग्रन्थ यह विनय सुनाई ॥
प्रेम परस्पर होइ सभी प्राणिन में प्रभुजी । द्वेष भावना-मूल कृपासों जावे मीजी ॥
अवगुण दृष्टिहि छोड़ि सभी गुण-ग्राही होकर । रहें सर्वदा ही हितकर-कर्त्तव्य-सुतत्पर ॥
सुन्दर अब अध्याय मयी तुलसीकी माला । सिय-यश-सौरभ युक्त ग्रहण कीजे रघुलाला ॥
पढ़े सुने जो सद्विचार युत चित्त लगाई । कृपादृष्टि सों तासु सकल हितकर हो जाई ॥
दृष्टिहिं विषयाकार हटाकर प्रभु करुणाकर । युगलस्वरूपाकार कीजिये मृदु मुस्काकर ॥
अथवा जैसा उचित नाथ ! समझें सोइ कीजे । भक्तन की इक कृपा-भीख मोहि माँगे दीजे ॥
चिरजीवें सब भक्त विश्वहित करुणासिन्धो । उनका जनि चितिको वियोग दें आरतबन्धो ॥
रामसनेहीदास नाम फुर कीजे प्यारे । जानि सबहिं विधि हीन, पतित मोहिं राजदुलारे ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

—: श्रीसीतारामार्पणमस्तु :—

(श्रीरामविवाह-पञ्चमी सम्वत् २०१४ वि० मङ्गलवार ।)

❀ श्रीकरुणानिधये नमः ❀

हे नाथ ! आपकी कृपासे—
विश्वका कल्याण हो !
सभी कर्त्तव्य परायण हों,
परस्पर प्रेम हो ।

सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीकी जय

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

अशुद्धि-शुद्धिपत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३	२४	त्यागि !	त्यागी	१०६	१	३१	१३	१७१	१	सत ! हे	हे सत्
४	३	त्यानी	त्यायनी	१०६	४	निर्ह्रुकी	निर्हेतुकी	१७३	१८	स्त्रित	स्मित
२२	१२	रजघा	रजसा	१०६	१५	मुख्य	मुख्य	१७८	१७	शान्वि	शान्ति
२६	३	च्छूया	च्छाया	१११	११	ऽर्थों	ऽर्थों	१८१	१४	नैत्थ	नेत्थम्
२६	१२	राष्या	राष्या	११३	१	लिङ्गनं	लिङ्गनं	१८३	३	तुमी	तुभी
३०	२	कडपि	काऽपि	११३	१०	श्मामा	श्यामा	१८३	१८	ऽहि	हि
४०	१	फकार	रकार	११४	१५	दण,र्प	दर्पण,	१८६	२६	रस	राव
४५	२०	स्पष्ट	स्पष्ट	११७	४	श्राद्धा	श्रद्धा	१८६	२१	तत्त	तत्तु
४८	१३		जो	११७	२०	यथा	पया	१८८	३	ऽभि	ऽभि
५३	१४	:		११८	१०	भो	भी	१६०	१२	यारया	शरया
६५	२४	मन्छ्र	मन्छ	११८	११	पूर्न	पूर्व	१६२	२	याम्य	यान्य
६७	२०	यव	यैव	११८	१५	पल्ल	पाल	१६२	२०	ममी	मनी
७३	१७	वाशात्	वाद्यात्	११६	१	होय	हाथ	१६५	७	जनन	जन्न
७४	७	कये	करे	११६	१८	भिली	मिली	१६८	३	वैल्य	वौल्य
७५	१६	ताङ्गे	ताङ्गो	१२०	१३	तत्र	तत्रो	१६६	६	अभितो	आभितो
८१	२	पार	पर	१२१	२५	मूर्छि	मूर्च्छि	१६६	६	मुख्य	मुख
८१	४	पुत्र	पुत्री	१२२	२	रतो	रती	२१६	३	ताप	माथ
८१	८	वृता	वृता	१२३	१६	कालस्थ	काकु	२१७	६	वैष्णव	वैष्णव
८१	६	दोमा	द्येमा	१२८	२१	नेद	नेक	२२२	१६	सर्वे	सर्वे
८१	११	इयएव	ईशएव	१२६	६	जो	जी	२२४	१८	कृषा	कृपा
८१	१४	भत्री	पुत्री	१३०	११	पश्चात	पश्चात्	२२५	१५	तुरे	तुम्रे
८१	२१	शीलि	शीला	१३२	१५	सङ्क	सङ्कु	२२८	१०	उग्र	उगाथ
८१	२२	नम्नी	नाम्नी	१३६	१७	कारा	कार	२३२	१	बता	मुता
८२	१	तुली	तुलो	१४१	५	भिद्धा	भिद्ध	२३७	१६	भित्रा	स्थितौ
८२	३	पुत्र	पुत्री	१४३	१४	कृत्य	कृत	२३४	१०	द्रपा	द्रव्या
८२	१०	यस्यां	तस्यां	१४७	१०	श्रपि	श्रभि	२३४	२२	ग्रश	दृष्या :
८२	१६	मङ्गला	मङ्गल	१४८	३	वर्णो	वर्यौ	२३६	७	मत्ता	मतथ.
८३	१	विग्रह	स्पष्ट	१५०	१०	दृष्ट	दृष्ट	२३६	६	पुष्प	पुष्प ,
८३	३	ध्या	ध्या	१५१	३	भर्न	पर्न	२३६	८	मैं	मे
८४	२२	आ	भी	१५३	१६	सर	सरकारी	२३६	२४	शुद	शुद्धि
८७	३	राज	राजा	१६५	११	आदर्य	सादर्य	२४०	२१	श्री	श्री

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२४४	२४	द्या	द्रुणा	३१३	७	सुमन्त्र	सुमन्त	४५८	८	जात	जातो
२४६	११	विल्श	विम्श	३१३	४	सुमन्त्र	सुमन्त	४५८	२३	त्रण	त्रण
२४९	१७	फरूँग	फरूँगा	३१३	६	सुमन्त्र	सुमन्त	४५८	२६	शङ्क	शङ्का
२५३	२६	साकेत	साकेत	३१३	१०	सुमन्त्र	सुमन्त	४६३	९	निखर	निकर
२५५	७	नेको	करनेको	३१५	२६	आप	अपार	४६३	२३	पूर्ति	पूर्त्ति
२५५	१५	दश	श	३१९	३	मङ्ग	मङ्गल	४७४	७	न्ती	न्ती
२५५	२२	पनित	पतित	३२०	६	झलि	झलि	४८४	८	मुफ	मुफे
२५७	२३	वथते	विघते	३२५	२६	सेश	लेश	४८९	१५	प्रतीती	प्रतीत
२६५	१	छुकु	कुछु	३२८	७	मद्दो	मद्दो	४९२	१८	प्रित्रा	पित्रा
२६५	१२	कमी	कम	३३५	१	वाल	वालों	४९६	३	दष्टुं	द्रष्टुं
२६५	२२	फिञ्चित्	किञ्चित्	३४३	१६	तिये	लिये	४९८	१	में	मे
२६५	२३	का	को	३४३	९	सुमन्त्रो	सुमन्तो	४९८	१८	च्छेठ	च्छैन
२६६	१९	अर्त	आर्च	३४३	१०	सुमन्त्र	सुमन्त	५०१	१	वर्पन	वर्धन
२६६	१९	अदय	अदश्य	३५३	१४	सुमन्त्र	सुमन्त	५०७	१५	सच	धच
२६६	२६	अकार	प्रकार	३५३	२०	कीर्ती	कीर्त्ती	५०७	१८	स्या	स्यया
२६८	१७	अदान	प्रदान	३५७	१६	सुहोम	सुहोत्र	५०८	१८	सखीमि	सखीभिः
२७१	१२	कहा	महा	३५८	१	मोढ	मीढ	५०८	२५	चक्र	चकु
२७२	१६	मान	दान	३५८	२०	धीर	धौर	५०९	८	सु	पु
२७२	२५	अतन्ता	अनन्ता	३६३	२१	रत्त	भरत	५१०	२४	ज	जी
२७४	२४	स्वयंकाडा	स्वयक्रीडा	३६५	१	शी	श्री	५१९	२२	न	नै
२७६	८	लम्यै	लम्यो	३६९	२३	वैमल	वैद्दल	५२२	१०	ज्ञे	ज्ञे
२७६	९	तस्यो	तस्यै	३७०	१८	रणेज	रणेक	५२४	३	वाच	उवाच
२७७	२४	रहने	रखने	३७१	२१	आयास्थ	आयास्य	५२५	२३	म	मा
२७८	१६	धार	धारण	३७२	१५	इप	इस	५२५	२३	क	कुं
२९१	१७	पूर्वक		३७३	२१	त्रात्	तात्	५३०	१०	शंदन	दर्शन
२९३	१३	ऽ	ऽऽ	३८३	१७	सह	सह्व	५३१	७	घ	ध
२९३	१६	वैमुय	वेमुय	३८३	१९	श्र	श्री	५३६	१२	पङ्क्ति	पङ्क्ति
२९८	१२	निार्भर	निर्भर	४०२	६	प्रक्षा	प्रा	५३६	२६	नौः	नौ
३००	१८	पु	पु	४०९	२५	पङ्क्ति	पङ्क्ति	५३९	५	द्र	द्रा
३०१	३	अपनो	अपनी	४११	१८	इशो	द्रुगो	५४०	९	ष्ठ	ष्ट
३०४	२	अश्वासन	आश्वासन	४१२	११	दर	फर	५४३	१	र्भ	र्य
३०६	६	सन्तोप	सन्तोष	४१६	१०	सुमगा	सुभगा	५४४	५	न	क
३०७	१२	मूता	मूर्त्ता	४२०	१४	द्र	द्रु	५४९	१०	द्रु	द्रुम
३०७	२५	दोरवा	दोलखा	४२७	१६	त्रिं	र्धि	५४९	११	द्रु	द्रुम
३०९	१२	ये	में	४३०	११	प्रर	पर	५४९	१३	व	वै
३१०	१	शाष	शेष	४३१	६	भि	श्री	५५१	२१	म	भ
३१२	१४	मयय	प्रयाय	४४७	२२	न्वो	द्वो	५५१	२३	स्वाश्रो	श्यो
३१२	२४	सुमन्त्र	सुमन्त	४५५	१६	व	वै.	५५७	१०	लिपश	शिल्प

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
८४३	२६	मान	माना
८४४	१०	वरा	वारा
८४५	८	खिले	खिले
८४६	४	मुशो	सुशो
८४६	१८	विष्श	विष्णु
८४६	२०	यों को	यां का
८४८	२०	सन	सनत्
८५३	८	त्यो	त्यो
८५७	११	के	केशाध
८५७	२०	सेपर	पर
८६१	१	बातीहुइ	
८६५	८	है	है
८७४	७	निपि	निधि
८७५	२२	लगी	लगे
८७९	१४	तद्	तद्वु
८८०	१५	अस	अप्स
८८६	१९	यारे	प्यारे
८८९	१८	शश	शेश
८९०	८	समी	सभी
८९२	१	त्य	सत्य
८९७	६	नोंसे	नोंके
८९९	१	पश्य	पश्ये
९०१	७	गया,	गाय
९०१	१६	क	दतउ
९०३	१२	वाको	वाकी
९०६	१९	श्रा	श्री
९०९	२	दश	दर्श
९१०	१०	दखा	क्षण
९१५	२५	यानि	योनि
९१७	२३	राकु	राबकु
९२०	८	सभी	सामी
९२०	१४	प्रर्थि	प्रार्थि
९२२	७	कुार	कुमार
९२६	८	मक	कम
९३६	२१	विधू ,	विधू
९४१	१४	की	को
९४१	१४	प्रातः	प्रास
९४२	१५	अनेप	अपने
९४९	१६	हैं	
९५०	१४	उसकी	उसके
९५८	१०	योंका	योंके
९५८	१३	द्वारा	द्वाराउन्हें
९६०	१५	मैं	म
९६३	१०	को	की
९६६	१५	लूपु	लुपु
९७१	२३	वाना	वाली
९७२	८	चारु	चारु
९७७	२०	लतरका	लरका
९७८	११	श्री	भी
९७९	१०	साग	सागर
९८०	२१	दिव्या	दिव्या
९८६	९	पूरे	परे
९८६	१५	सकी	सकती
९८७	१६	प्रका	प्रकार
९८७	२३	प्रियतम	प्रिय न
९८८	६	ध्रुत	द्ध्रुव
९९८	२३	मूर्ति	मूर्ति
९९०	५	ननन्द	नन्द
९९१	१५	पूशा	पूष्या
९९२	१२	सिद्धि	सिद्धि
९९७	१०	वात्	वान्
९९७	१२	४६	५६
९९७	२३	चिन	चिन्तन
९९९	२४	भाय	गाय
१०००	२५	कर	कार
१००१	३	ब्राह्मण	ब्रह्म
१००२	१३	पित	पिता
१००३	८	चिमा	चिता
१००४	२४	वम	वैभ
१००४	२६	देव	वेद
१००९	५	भद्दा	भद्दा
१०१२	६	श्रं	श्वयं
१०१३	२४	प्रवा	प्रभवा
१०१८	२०	धना	धना
१०२१	१९	हार्यों	हायी
१०२७	१३	इच्छा	अच्छा
१०२८	६	वाला	वाली
१०२९	२२	साम्	साम्
१०३३	४	ध्रुत	द्ध्रुव
१०३९	२५	श्राद्ध	श्रोद्ध
१०४०	२०	जरने	करने
१०४५	१८	पिव	पवि
१०४७	२०	इन्द्र	इन्द्र
१०४९	२२	हूत्त	हूर्त
१०४९	२३	थ	थें
१०५१	११	द्रय	दूषा
१०५३	५	के,	,
१०५३	१५	व्वा	व
१०५४	२५	लोवथ	लोक्य
१०५५	१५	नना	चन
१०५८	१३	रम्म	रम्य
१०५९	२५	भशी	मैंधी
१०६५	११	रिप	रिपु
१०६५	१६	मम	मय
१०६६	५	सित्र	मित्र
१०७४	१२	मक्ष	मक्ष
१०७६	२०	कैया	कैयाँ
१०७९	९	भी	बी
१०८०	२४	ङ्क	ङ्ग
१०८२	१२	स्व	स
१०९०	१२	व्यीत	व्यतीत
१०९७	४	ऽग्र	ऽग्रा
१०९८	१५	वकु	वैकु
११०१	१८	ता	तां
११०२	११	चाप	व्याप
११०२	२०	काश	काया
११०३	१८	स्त्र	स्त्रै
११०५	९	बाल	लाल
११०६	२२	ब्रह्मा	ब्रह्म
११०९	७	वृचे	वृथे
११११०	६	मिश्रि	मिथि
१११०	६	मैं	में
१११०	८	मता	भुता
१११३	७	लाभ	लोभ

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१११५	२४	लाग	लोग	११६३	१	नाना	ना	१२०१	२३	साम	शम
१११८	१४	ंघि	ठिध	११६४	१६	सन	मन	१२०२	३	हमा	सामा
११२२	२	कह	कहा	११६६	३	वेंदे	वेंदे	१२०२	१०	पङ्कि	पङ्क्ति
११२२	२५	म	गल	११६९	१	विप	विपु	१२०२	११	वाधी	वधि
११२३	७	र	री	११६९	३	तृस	तृसि	१२०२	२०	पङ्गि	पङ्क्ति
११२३	२३	को	की	११७३	१२	फा	फी	१२०३	१४	मिः	भिः
११२५	१०	तुन	सुन	११७३	१७	भात्	भ्रात्	१२०३	१७	विपें	विपे
११२८	४	वकी	वयाकी	११७५	६	गय	नय	१२०४	१५	दनां	दोनों
११२८	५	कक्ष	का	११७६	२३	द्र	दृष्टु	१२०४	१६	पाप	पाम
११२८	११	लम्रा	त्वा	११७६	२५	छुड़	छुड़ा	१२०५	५	दो	दी
११२८	११	न्नि	।न्ति	११७९	३	नत	नूत	१२०५	११	मार	वार
११२८	१५	वा	वाण	११७९	१७	नुपा	मुपा	१२०५	१३	तव	त
११२८	१७	कि	की	११७९	२६	मम्ू	सम्ू	१२०६	१८	बव	जीव
११२८	२३	बल	कल	११८२	१८	पर्व	पार्व	१२०६	२१	ला	ल
११२८	२६	श्व	श्वा	११८२	१९	पा	पवा	१२०६	२७	मि.	भि
११२९	१०	वाडी	वाणी	११८२	२३	उसे	उस	१२०७	९	ह्न	ह्नु
११२९	१६	भृगु	भृगु	११८४	११	यमा	यना	१२०७	२०	श्य	श्च
११२९	२४	भृगु	भृण	११८४	१२	नङ्ग	मङ्ग	१२०९	३	तवि	त
११३०	१	का	के	११८६	२१	र्पि	र्पि	१२०९	१६	कक्कि	किक
११३०	३	श्रति	भित	११८६	२२	कान्त	कान्ति	१२१६	१९	निमा	निभा
११३०	२१	प्र	प्रा	११८६	२६	न्यु	न्यु	१२१७	१५	तुष्टाः	तुष्टा
११३०	२७	द्वि	द्विषु	११८८	१३	पने	पनी	१२१७	२०	ने	नेके
११३२	८	स्वनि	स नि	११८९	२०	घू	धू	१२१७	२२	पूर्ण	पूर्णा
११३४	६	प	प	११९०	१	त्ले	स्ले	१२१७	२२	तु	तुः
११३४	११	तिं	ति	११९०	१३	यल	मल	१२१८	१९	क्क	ह्रू
११४०	२५	व	वे	११०१	६	मी	भी	१२१९	६	से	में
११४३	२६	वीं	वीं	११९१	१८	भिते	भित	१२१९	९	श्री	श्रौ
११४५	१०	माके	के	११९२	२२	ष	प	१२१९	१०	पय	पयं
११४६	१	स्थिव	स्थित	११९३	१६	वव	व	१२१९	२१	रो	र
११४६	१९	से	पै	११९४	२१	जूके	जूसे	१२१९	२५	रीजी	रानीजी
११४६	२०	नं	में	११९४	२४	खे	त्वे	१२२०	६	न्तां	चां
११४६	२६	क्नि	क्लिक	११९५	२५	ता	ता	१२२०	९	ड्यि	थ
११५०	२	राल	राज	११९७	११	सेवे	से	१२२०	११	का	को
११५३	२	ध्मन	ध्म	११९७	१३	मुक्ता	युक्ता	१२२०	१६	यं	पं
११५३	१७	शङ्का	याङ्का	११९७	२१	ध्य	ध्न	१२२३	९	विवाह	कोहवर
११५९	२०	खह	ख	११९८	६	टाच	कटाचे	१२२४	६	हुर	किया
११६०	१४	।व	वा	१२०१	१६	वह	वैद्य	१२२५	७	य	थ
११६२	१८	ममि	मति	१२०१	३	सट	सफ	१२२८	२६	स्याप	स्यान

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१२३८	१४	रम	रथ
१२४०	६	छि	च्छी
१२४१	१	वाम	गवा
१२४२	५	गें	रों
१२४२	१०	के	की
१२४७	२०	अप	श्राप
१२४७	२५	हूँ	द्वै
१२४८	२५	रवा	राव
१२४९	११	रक्त	
१२४९	१४	दोनों	दानों
१२५०	६	प्रमा	प्रभा
१२५२	१९	न्या	न्य
१२५४	१६	राम	राम
१२५४	२५	होने	हो
१२५९	१२	वय	व्या
१२६०	७	श्रयु	श्र
१२६१	५	तता	ता
१२६१	६	उन	उन्होंने
१२६१	२३	चिमु	चिन्मु
१२६२	१३	शा	णा
१२६३	१७	तच	तत्तु
१२६६	११	स्त	व
१२६६	१६	नसे	सने
१२६८	१५	दैंशि	देशि
१२७०	१०	यका	व्यका
१२७०	२६	वह	वे
१२७०	२७	ता है	ते हैं
१२७१	११	या	यों
१२७१	१८	नच	वल
१२७२	५	तिशी	तिशीघ्र
१२७७	२३	रो	र
१२७९	६	स्यैं	स्यै
१२८०	४	च	सु
१२८०	८	सुप	मुस
१२८०	१२	मिं	मि
१२८२	२४	थि	थि
१२८४	२४	यगन्वा	श्रगत्वा
१२८५	७	मा	हि
१२८७	७	तयी	तयो
१२९२	४	उत	उन
१२९३	८	तीं	तौं
१२९४	१९	रै	रो
१२९६	८	प्राति	प्राप्ति
१२९६	२५	रज	राज
१२९४ १२९८	२०	मीरा	मारि
१३०० १३०४	२४	श्राद	श्रहि
१३०० १३०४	२४	हाया	हायक
१३०० १३०४	२५	मय	मयी
१३०४	२५	मय	मयी

❀ श्री करुणानिधये नमः ❀

हे नाथ ! आपकी कृपा से–

विश्व का कल्याण हो !

सभी कर्त्तव्य-परायण हों !

परस्पर प्रेम हो !

❀ सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी की जय ❀

—❀❀❀❀—